

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है। जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १० खण्ड २	मई, १९३२	संख्या १ पूर्ण संख्या ११

उपालम्भ

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

मेरी जीर्ण-शीर्ण कुटिया में चुपके-चुपके आकर।
निर्मोही! छिप गए कहाँ तुम? नाहक़ आग लगा कर॥

ज्यों-ज्यों इसे बुझाती हूँ—बढ़ती जाती है आग।
निठुर! बुझा दे, मत बढ़ने दे, लगने दे मत दाग़॥



सम्पादकीय विचार

चाँद

मई, १९३२

हिन्दू-समाज और जातिभेद

"It was only said to thee "Untouchability is the national sin" But I say unto you "Everything which devides is sin." Caste the present spirit of caste, of which untouchability is but the effect and symptom—that is the national sin!

—*Paul Richard*

भारतीय संस्कृति अथवा हिन्दू-समाज की सब से बड़ी विशेषता इसकी वर्ण-व्यवस्था मानी जाती है। बहुत से लोगों का, जिनमें अनेकों सुप्रसिद्ध विद्वान और विचारक भी सम्मिलित हैं, मत है कि यह वर्ण-व्यवस्था सामाजिक सङ्गठन की आदर्श प्रणाली है और इसी के फल-स्वरूप हिन्दू-जाति का अभी तक अस्तित्व क़ायम है। वर्ण-व्यवस्था का वर्णन करते हुए वेद में लिखा है कि—"पुरुष (अर्थात् समाज-रूपी शरीर) का ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय बाहु है, वैश्य जङ्घा है और शूद्र पैर है।" इस वेद-मन्त्र से लोग यह तात्पर्य निकालते हैं कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति विभिन्न पेशों के आधार पर हुई है और इसका उद्देश्य यही था कि समाज के लिए आवश्यक काम सुचारु रूप से होते रहें।

यदि वर्ण-व्यवस्था का स्वरूप ऐसा ही है, जैसा कि उपर्युक्त वेद-मन्त्र से प्रकट होता है—और इतिहास के अनुशीलन से मालूम होता है कि अति प्राचीन काल में सम्भवतः ऐसी ही स्थिति थी—तो कोई व्यक्ति इस पर आपत्ति नहीं कर सकता। किसी न किसी प्रकार का श्रम-विभाग प्रत्येक समाज या राष्ट्र के लिए आवश्यक है, और प्रायः सभी देशों में इस प्रकार विभिन्न श्रेणियों के लोग पाए जाते हैं। प्राचीन यूरोप में धर्मगुरु, सरदार, सौदागर और दास लोग पाए जाते थे। आजकल भी उन देशों में पादरी, राजनीतिज्ञ, पूँजीपति और मज़दूर पाए जाते हैं। सारांश यह कि समाज की सुव्यवस्था के लिए यह ज़रूरी है कि उसकी जितनी प्रधान आवश्यकताएँ हों, उनको एक-एक वर्ग या दल के सुपुर्द कर दिया जाय।

यदि हम सामाजिक विकास की दृष्टि से विचार करें, तो भी वर्ण-व्यवस्था की यह प्रणाली स्वाभाविक जान पड़ती है। प्रत्येक देश में और जन-समुदाय में, जो जङ्गली दशा से निकल कर सभ्यता की तरफ़ अग्रसर होता है, क्रमशः इन चारों वर्णों या वर्गों की उत्पत्ति होना अनिवार्य है। आरम्भ में जब कि देश की जन-संख्या कम होती है और लोग खेती-बारी अथवा उद्योग-धन्धों से परिचित नहीं होते, तो समाज मे वर्ण भी नहीं होते। सब लोग जङ्गल से फल-फूल इकट्ठे करके या शिकार मार कर अपना पेट भर लेते हैं और गुफाओं या झोपड़ियों में अलग-अलग रहते हैं। इसके बाद जब जन-संख्या की वृद्धि होती है, लोग गाँव बना कर रहने लगते हैं, खेती-बारी आरम्भ होती है, तो उनमे अनेकों प्रकार की सामाजिक प्रथाओं की उत्पत्ति होने लगती है और खेती की रक्षा तथा बीमारी आदि से बचे रहने के लिए तरह-तरह के अन्धविश्वास भी फैल जाते हैं। इन सामाजिक प्रथाओं, उत्सवों और अन्धविश्वासों की पूर्ति के लिए धर्म-क्रिया कराने वालों या ब्राह्मणों की उत्पत्ति होती है। उसके बाद जब जन-संख्या और बढ़ जाती है तथा लोगों को अपने निवास-स्थानों मे जगह की कमी होने लगती है, तो वे दूसरे लोगों के निवास-स्थान पर आक्रमण करने लगते हैं या आपस में ही लूट-मार, चोरी-डाका आदि की प्रवृत्ति फैलने लगती है। तब समाज और देश की रक्षा के लिए क्षत्रियों की उत्पत्ति होती है। फिर जब राजाओं की शान-शौकत और विभूति के फल-स्वरूप तरह-तरह की कारीगरियों, कला और उद्योग-धन्धों की उत्पत्ति हुई, तो वैश्यों का आविर्भाव हुआ। रह गए शूद्र, उनकी उत्पत्ति दो कारणों से जान पड़ती है। एक तो यह कि जब किसी देश पर विजय प्राप्त की जाती थी, तो प्रायः वहाँ के निवासियों को दास बना कर उनसे सेवा का कार्य लिया जाता था। अथवा जब सभ्यता पर्याप्त परिमाण में फैल गई, तो अधिकार और सम्पत्ति-सम्पन्न लोगों के आराम के लिए निर्धन और साधारण बुद्धि वाले लोगों को उनका सेवक बन कर रहने को विवश होना पड़ा।

उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि वर्ण-व्यवस्था कोई ईश्वरीय विधान अथवा धार्मिक अनुशासन नहीं है, वरन् इसकी रचना विकास-वाद के सिद्धान्तानुसार स्वभावतः और क्रमशः हुई है। इसके फल से यद्यपि समाज में कुछ विषमता और उसके कारण पारस्परिक ईर्षा-द्वेष तथा कलह की उत्पत्ति हुई, पर साथ ही इससे सभ्यता की भी बहुत वृद्धि हुई। प्रत्येक कार्य के लिए एक समुदाय या वर्ण के नियत हो जाने के कारण वह कार्य कहीं अच्छे ढङ्ग से होने लगा और वे लोग उसके करने में कुशल हो गए। शूद्रों या दासों के कारण कितने ही साधन-सम्पन्न लोगों को जीवन निर्वाह के झञ्झटों से छुट्टी मिल गई और उस अवकाश के समय में उन्होंने अध्ययन और मनन करके नाना प्रकार के दर्शनों, काव्य तथा साहित्य का निर्माण किया। इस प्रकार आरम्भिक युग मे यह वर्ण-व्यवस्था सभ्यता की वृद्धि तथा प्रचार का मूल आधार सिद्ध हुई।

पर जैसे-जैसे समय बीतता गया, इस प्रथा मे तरह-तरह के दोष उत्पन्न होने लगे तथा गुणों का लोप होने लगा। आरम्भ मे इस वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म पर था और जो व्यक्ति जिस पेशे को अङ्गीकार कर लेता था, वह उसी वर्ण का माना जाता था। इसके फल से उसकी शक्तियों का सदुपयोग होता था और समाज को भी इससे लाभ पहुँचता था। पर जब उच्च वर्ण के लोगों ने देखा कि उनकी स्थिति विशेष वाञ्छनीय है और वे अपने से नीच वर्ण वालों से मन-माना लाभ उठा सकते हैं, तो उन्होंने दूसरे लोगों को अपने साथ सम्मिलित न होने देने की चेष्टा आरम्भ की और अपनी सन्तान तथा वंश वालों

को ही उस वर्ण में रखने का उद्योग किया। इससे धीरे-धीरे वर्णों का निर्णय कर्म के बजाय जन्म के आधार पर होने लगा और यही वर्तमान समय के अगणित जाति-भेदों का कारण हुआ।

जब तक वर्ण का आधार कर्म पर था और प्रत्येक व्यक्ति इच्छा होने पर अपना वर्ण परिवर्तन कर सकता था, तब तक सभी वर्णों में परस्पर खुले तौर पर विवाह आदि सम्बन्ध होते थे और उनकी सन्तानें स्थिति के अनुसार अपने पिता या माता के वर्ण में शामिल कर ली जाती थीं। पर जब वर्णों की सीमा नियत कर दी गई और उनमें अन्य लोगों के प्रवेश करने का मार्ग रोक दिया गया, तो विवाह आदि सम्बन्ध भी अपने ही वर्ण में होने लगे। उस दशा में यदि कोई व्यक्ति प्रेम-वश या अन्य किसी कारण से दूसरे वर्ण की स्त्री से विवाह कर लेता था तो उसे वर्ण से पृथक कर दिया जाता था और उसकी सन्तान वर्णसङ्कर कहलाती थी। धीरे-धीरे इन वर्णसङ्करों की संख्या बहुत बढ़ गई और समाज के ठेकेदारों ने उनकी अलग-अलग जातियाँ बना दीं। उदाहरणार्थ ब्राह्मण पिता और वैश्य माता का पुत्र अम्बष्ठ, और ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता का पार्शव कहा जाता था। अगर किसी क्षत्रिय पुरुष और ब्राह्मण स्त्री मे सम्पर्क हो जाता, तो उनकी सन्तान सूत कही जाती थी। इसी प्रकार वैश्य पिता क्षत्रिय माता से मागध; वैश्य पिता और ब्राह्मण माता से वैदेह; शूद्र पिता और ब्राह्मण माता से अयोगव; शूद्र पिता और क्षत्रिय माता से क्षत्त और शूद्र पिता तथा वैश्य माता से चाण्डालों की उत्पत्ति हुई। आगे चल कर जब इन वर्णसङ्कर जाति के लोगो का सम्बन्ध फिर शुद्ध ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र जाति के स्त्री-पुरुषो से हुआ, तो उनकी नई जातियाँ बनाई गईं और इस तरह यह जातियों का मूर्खतापूर्ण जाल दिन पर दिन बढ़ने लगा और इस समय तक यह जातियों की पेचीदगी यहाँ तक बढ़ गई है कि कितने ही लोगों की जाति का निर्णय हो सकना ही असम्भव हो गया है।

यह जाति-भेद की प्रथा आरम्भ मे उतनी कड़ाई से नहीं बरती जाती थी, जैसी आजकल देखने में आती है। मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण पिता और शूद्र माता से उत्पन्न हुआ पार्शव सातवीं पीढ़ी मे फिर ब्राह्मण हो जाता है।* महाभारत मे जिस विदुर को आदर्श धार्मिक माना है और जिसके यहाँ स्वयं श्रीकृष्ण ने भोजन ग्रहण किया था, वह ब्राह्मण पिता और शूद्र माता की सन्तान था। इसी प्रकार क्षत्रिय पिता और ब्राह्मण माता से उत्पन्न सूत जी हिन्दू-शास्त्र के सबसे बड़े वक्ता माने गए हैं। खान-पान में भी उस समय बहुत अधिक परहेज़ नहीं था और आवश्यकता पड़ने पर प्रसिद्ध ऋषि भी नीच कही जाने वाली जातियों के हाथ से भोजन ग्रहण कर लेते थे। इसके कितने ही दृष्टान्त महाभारत और अन्य पुराणों मे पाए जाते हैं। इन बातों से मालूम होता है कि उस समय समाज में वास्तविक जीवन और चैतन्यता का अस्तित्व था और लोग आवश्यकतानुसार सामाजिक नियमों मे परिवर्तन कर लेते थे। इस प्रकार जाति-भेद का हानिकारक प्रभाव बहुत-कुछ कम हो जाता था।

पर जैसे-जैसे समाज की जीवनी शक्ति क्षीण होती गई, जाति-भेद की प्रथा मे जड़ता घुसती गई और उसके बन्धन कठोर होते चले गए। अब यहाँ तक नौबत आ पहुँची है कि जातिभेद ही हिन्दू-धर्म का मुख्य चिन्ह रह गया है और प्रत्येक व्यक्ति अपने नाम के साथ जाति का पुछल्ला जोड़ना आवश्यक ही नहीं, वरन् एक प्रकार का धार्मिक कर्तव्य मानता है। उसे अपने को केवल

---

* शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते।
अश्रेयान्श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात्॥
—मनु० अ० १०, श्लोक ६४

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य या शूद्र कहने से ही सन्तोष नहीं होता, वरन् वह अपनी उपजाति को ही मुख्य मानता है और उसी के आधार पर उच्च या नीच समझा जाता है। वर्तमान समय में ऐसी उपजातियों की संख्या कई हज़ार तक जा पहुँची है। केवल ब्राह्मणों मे करीब १८८६ उपजातियाँ हैं। इसी प्रकार क्षत्रिय ५९० फ़िर्क़ों में बँटे हुए हैं। यही दशा वैश्यो और शूद्रो की भी है।

वर्तमान समय मे जो जाति-भेद फैला हुआ है, उसका आधार न वर्ण-व्यवस्था पर है और न किसी धार्मिक सिद्धान्त पर। ये जातियाँ मुख्य करके भौगोलिक और शिल्प-सम्बन्धी पेशो के आधार पर बनी हैं। ब्राह्मणों मे जो कान्यकुब्ज, सरयूपारी, गौड़, सारस्वत, मैथिल, महाराष्ट्र, द्रविड़, काश्मीरी आदि जातियाँ है, वे केवल एक विशेष प्रदेश के निवासियो का भाव ही प्रकट करती हैं। इसी प्रकार बनियों की अग्रवाल, खण्डेलवाल, जैसवाल आदि जातियाँ भी खास-खास स्थानों की मूल निवासी होने के कारण बनी हैं। शूद्रों की अधिकांश जातियों का आधार पेशे पर है, जैसे सुनार, लुहार, धोबी, छीपी, कहार, धीमर, कोरी, मोची, माली आदि। क्षत्रियो की जातियाँ प्राय: वंशों के आधार पर प्रचलित हुई है, जैसे राठौर, सीसोदिया, तोमर, सोलङ्की, चौहान आदि।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वर्तमान जाति-भेद से धर्म-कर्म का कुछ भी सम्बन्ध नही है और उसमे कोई भी बात ऐसी नहीं है, जिसके कारण एक जाति के व्यक्ति का दूसरी जाति के व्यक्ति से रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना किसी दृष्टि से हानिकारक या चरित्र और नीति के विरुद्ध सिद्ध किया जा सके। तो भी लोग जिस कट्टरता से इन जातियो से चिपटे हुए है और जिस प्रकार इनको सर्वस्व माने बैठे है, उसे देख कर आश्चर्य होता है। कितनी ही जातियों में तो दूसरी जाति के व्यक्ति के हाथ का पानी पी लेने से ही जाति-च्युत होना पड़ता है। किसी की जाति पर किसी तरह का आक्षेप कर देने से या जातीय मामलों में उपेक्षा हो जाने से लोग न्यायालयों की शरण लेते है। भारत की अदालतों मे प्रति वर्ष हज़ारो मुकदमे जात-पाँत के कारण चलाए जाते है। जाति के सवाल पर दङ्गा-फसाद और मार-पीट हो जाना मामूली बात है और कभी-कभी खून-ख़राबी का दृश्य भी देखने मे आता है।

जाति-भेद के कारण इस देश को जो हानि पहुँची है, उसकी कल्पना हो सकनी भी कठिन है। सच पूछा जाय तो देश की पराधीनता और अवनति का मूल कारण यह जात-पाँत की प्रथा ही है। इसके कारण यहाँ के लोग छोटे-छोटे टुकड़ों मे बँट गए, वे अपनी ही जाति के दस-पाँच हज़ार या कुछ अधिक व्यक्तियो को अपना और शेष सबको पराया समझने लगे। इसके कारण एक राष्ट्र की भावना का सत्यानाश हो गया और चारो तरफ़ फूट का साम्राज्य छा गया। ऐसी दशा मे यहाँ के निवासी विदेशियो का मुकाबला किस तरह कर सकते थे? इतना ही नही, कितने ही स्थानों मे एक जाति वालो ने दूसरी जाति वालो को नीचा दिखाने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों की मदद की। छोटी जाति वाले तो, जिन्हे ऊँची जाति वाले दबा कर रखते थे तथा जिन पर वे तरह-तरह के अन्याय, अत्याचार करते थे, विदेशियों के आक्रमण या शासन मे किसी तरह की हानि समझ ही नही सकते थे। क्योकि न तो उनके पास माल था और न उनको किसी तरह के अधिकार थे, जिनके छीने जाने का उनको भय था। इसके विपरीत वे यह आशा कर सकते थे कि सम्भवत: ऊँची जाति वालों के पराजित, पददलित हो जाने के बाद हमको उठने का मौका मिले। इसमें एक विशेष बात यह भी थी कि अगर कुछ साहस, कष्ट-सहन की शक्ति थी, तो वह इन्हीं छोटी जाति के कहलाने वालों मे थी। ब्राह्मण, बनिया आदि तो आराम की ज़िन्दगी गुज़ारते रहने से पहले ही अकर्मण्य और कायर हो गए थे। क्षत्रियों

पेशा अवश्य लड़ने-भिड़ने का था, पर वे भी भोग-विलास मे पड़ कर निर्बल हो गए थे और आपस के लड़ाई-झगड़ों मे भी उनकी बहुत सी शक्ति क्षीण होती रहती थी। इन कारणो से विदेशी लोगो को इस देश पर अधिकार करने मे कुछ भी कठिनाई नही पड़ी।

विदेशी शासन की भाँति, विदेशी धर्मों के फैलने का कारण भी यही निन्दनीय प्रथा है। हम लोगों ने अपनी आँखो से देखा है और अब भी देख रहे हैं कि हिन्दू जाति के जो लोग इस्लाम या क्रिश्चियन धर्मों मे दीक्षित होते हैं, उनमें से ९९ फ़ी सदी जात-पाँत के अत्याचारो के कारण ही ऐसा करते है। पुराने ज़माने में यह बात और भी ज़ोरो पर थी। किसी व्यक्ति को मुसलमान या ईसाइयों ने छल-बल से छुआ खाना खिला दिया या कोई व्यक्ति भूल से इस तरह का काम कर बैठा, तो उसकी जाति वाले फ़ौरन उसे निकाल बाहर करते थे। हिन्दुओं की और किसी जाति में उसके लिए स्थान ही न था। यदि वह छोटी से छोटी और नीच से नीच जाति के साथ मिल कर जीवन व्यतीत करना चाहता, तो इसके लिए भी गुञ्जायश न थी। क्योकि सभी जातियो ने अपने दर्वाज़े बन्द कर रक्खे थे और दूसरों द्वारा नीच समझी जाने पर भी वे अपने को किसी से कम नहीं समझती थीं। लाचार होकर उस बेचारे को विधर्मियो में सम्मिलित होना पड़ता था। इस तरह न मालूम कितने करोड़ आदमी अब तक हिन्दू जाति को अन्तिम नमस्कार कर चुके है और फिर इसी जाति के दुश्मन तथा जड़ खोदने वाले बन चुके हैं।

जाति-भेद के कारण हिन्दू जाति की शारीरिक और मानसिक अवनति भी बहुत अधिक परिमाण मे हुई है। क्योकि इस प्रथा के कारण लोगों को विवाह-सम्बन्ध में घोर कठिनाइयो का सामना करना पड़ता है और वे प्रायः अयोग्य सम्बन्ध कर बैठते हैं, जिसके फल से हीन सन्तान उत्पन्न होती है। बाल-विवाह, जिसने हिन्दू जाति की जड़ खोखली कर दी है और यहाँ के स्त्री-पुरुषों को मोम की मूर्तियों के समान शक्तिहीन बना दिया है, का प्रधान कारण यह जाति-भेद ही है। क्योंकि लोग इस भय से कि ज़रूरत पड़ने पर हम अपनी जाति मे योग्य वर अथवा बधू न पा सकेंगे, किसी भी समय मन के लायक़ लड़का या लड़की पा जाने पर अपनी सन्तानो का विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर डालते हैं। इसी प्रथा के कारण हज़ारो बार पूर्णरूप से शिक्षित और सुसभ्य व्यक्ति का गठ-बन्धन घोर मूर्खा और दुष्टा नारी से हो जाता है, जिससे उसका समस्त जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। इसी के कारण देवी-स्वरूपा कन्याएँ मूर्ख, गँवार और नीच व्यक्तियों के पाले पड़ जाती है, क्योंकि उनको जाति के नियमानुसार दूसरा सुयोग्य वर नही मिल पाता। दहेज़ की भयङ्कर प्रथा, जिस पर हज़ारो कोमल बालिकाओं का जीवन बलिदान हो चुका है, इसी जात-पाँत के भेद के कारण प्रचलित है। कहाँ तक गिनाएँ, इस प्रथा ने हिन्दू-समाज के गार्हस्थ्य जीवन को नरक सदृश कर रक्खा है और असंख्य व्यक्तियों को इसके कारण घोर कष्ट उठाना पड़ रहा है।

इस प्रथा के कारण हिन्दुओं का मानसिक पतन भी कम नहीं हुआ है। अछूत कही जाने वाली जातियो के लोगो को तो इसने बिल्कुल पशु सदृश ही बना दिया है। उनके आत्म-सम्मान के भाव को इसने ऐसा मिटाया है कि वे बेचारे अपने को मनुष्य भी नही समझते। अगर संयोगवश उनमें कोई प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न हुआ तो उसकी प्रतिभा योंही व्यर्थ जाती है और उसे दुरवस्था में ही जीवन व्यतीत करना पड़ता है। ऊँची जाति वालों के पेशे भी इस कारण परिमित हो गए हैं और यदि उनके मन का स्वाभाविक झुकाव किसी दूसरी ओर हो तो वे उसे नही कर सकते। इस दशा में संसार-व्यापी आर्थिक कारणों से अब परिवर्तन होने लगा है, पर तो भी इस

पकार जो लोग समाज में प्रचलित पेशों के विरुद्ध कोई नीच समझा जाने वाला पेशा कर लेते हैं, उनको अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता और जात-पाँत के अभिमानी मूर्ख लोग उनकी निन्दा करते हैं।

पर अब काल-चक्र बड़ी शीघ्रता के साथ घूम रहा है और जो प्रथाएँ तथा संस्थाएँ हज़ारों वर्षों से प्रचलित थीं, तथा अचल और अमिट समझी जाती थीं, वे खण्ड-खण्ड होकर लोप हो रही हैं। यह परिवर्तन-युग है, और इसमे वही जाति तथा राष्ट्र जीवित रह सकता है, जो उसके अनुकूल चलने को राजी हो और इसकी शक्ति रखता हो। हिन्दू-जाति को भी यदि जीवित रहना है और उन्नति के मैदान में दूसरी जातियों का मुक़ाबला करना है, तो उसे उन सब हानि-कारक तथा तर्क और विवेक के विरुद्ध रीति-रिवाजों को त्याग देना चाहिए, जिनसे उसकी अधोगति हो रही है। यह स्पष्ट है कि जाति-भेद की प्रथा इस जाति का घोर अनहित कर रही है और यह और भी अनेक कुरीतियों की जननी है। इसलिए इसका नाम-निशान जहाँ तक शीघ्र बन सके, मिटा देना ही बुद्धिमानी की बात है। चाहे सम्पूर्ण वर्ण-व्यवस्था एकदम ख़त्म न की जाय, क्योंकि कुछ लोगों की दृष्टि में वह हिन्दू जाति की अति प्राचीन प्रथा है और उसके सम्बन्ध में कितने विद्वानों की सम्मति है कि वह समाज के सञ्चालन के लिए आवश्यक तथा उपयोगी है। पर कम से कम इन हज़ारों उपजातियों को मिटा देना तो अनिवार्य है, क्योंकि न तो किसी धर्म-शास्त्र में इनका विधान है और न इनसे किसी तरह का लाभ जान पड़ता है। इसलिए अगर ये उपजातियाँ मिटा दी जायँ और केवल चार वर्ण रह जायँ, जो परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार करने लगें, तो वर्तमान दुर्दशा आधे से अधिक दूर हो जायगी।

दूसरा आवश्यकीय सुधार, जोकि धर्म-शास्त्रों के सर्वथा अनुकूल और न्याय-सङ्गत है, यह होना चाहिए कि यदि वर्ण-व्यवस्था मानी जाय तो कर्मानुसार, न कि जन्मानुसार। इस बात का समर्थन किसी प्रकार नहीं किया जा सकता कि चोरी और हत्या करने वाला ब्राह्मण सदाचारी और ईमानदार शूद्र की अपेक्षा पूजनीय माना जाय या समाज पर उसका अधिक प्रभुत्त्व स्वीकार किया जाय। हिन्दुओं की पूजनीय पुस्तक महाभारत मे साफ़ लिखा है कि—जन्म, अध्ययन और विद्या के आधार पर कोई व्यक्ति ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता, ब्राह्मणत्त्व का आधार केवल चरित्र और सदाचरण पर है।* यदि वर्ण-व्यवस्था की इस कसौटी को मान लिया जाय और इसके अनुसार जो व्यक्ति जिस योग्य हो, उसे उसी वर्ण का स्वीकार किया जाय, तो वर्तमान जाति-भेद सम्बन्धी बहुत सी बुराइयों का अन्त हो सकता है।

---

* शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न श्रुतं
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥

—वनपर्व अ० ३१३, श्लोक १०८

दो शब्द

[श्री० पदुमलाल पुन्नालाल जी बख़्शी, बी० ए०]

वसन्तोत्सव में लिख दो शब्द,
भेजता हूँ तुमको मै आज ।
क्याकि नव भावो का उद्रेक,
सभी मे कर देता ऋतुराज ॥

दैन्य, दुख, ग्लानि तथा अपमान,
आज हम सब जाते हैं भूल ।
सभी पर डाल एक ही रङ्ग,
द्वेष को कर देते उन्मूल ॥

कष्ट में पड़ता हूँ जब नाथ,
तब तुम्हारा लेता हूँ नाम ।
सभी सुख में देते हैं साथ,
दुःख मे तुम आते हो काम ॥

दूसरों को करता हूँ तुष्ट,
सर्वदा कर सेवा, सत्कार ।
किन्तु लेता हूँ दीनानाथ,
तुम्हारा नाम एक ही बार ॥

डूब जावेगी जब यह नाव,
तभी आओगे तुम क्या नाथ ?
जब सभी हो जावेगा नष्ट,
बढ़ाओगे तब क्या तुम हाथ ?

हो गई है वेदना असह्य,
लगाओ अब न दयामय देर ।
सुनी है जैसी सबकी नाथ,
आज सुन लो मेरी भी टेर ॥

हो गई थी अति दारुण दाह,
कर लिया था ज्वर ने आच्छन्न ।
चेतना थी हो गई विलुप्त,
हो गया था मैं मरणासन्न ॥

हुआ ज्योंही मै फिर चैतन्य,
पड़ी तब पहले किस पर दृष्टि ?
स्नेह की प्रतिमा सी उपविष्ट,
कर रही थी जो अमृत-वृष्टि ॥

रहा तुमसे मैं दूर सदैव,
कभी भी कर न सका कुछ काम ॥
कहूँ क्या मैं सेवा की बात,
न कर पाया मैं तुम्हे प्रणाम ।

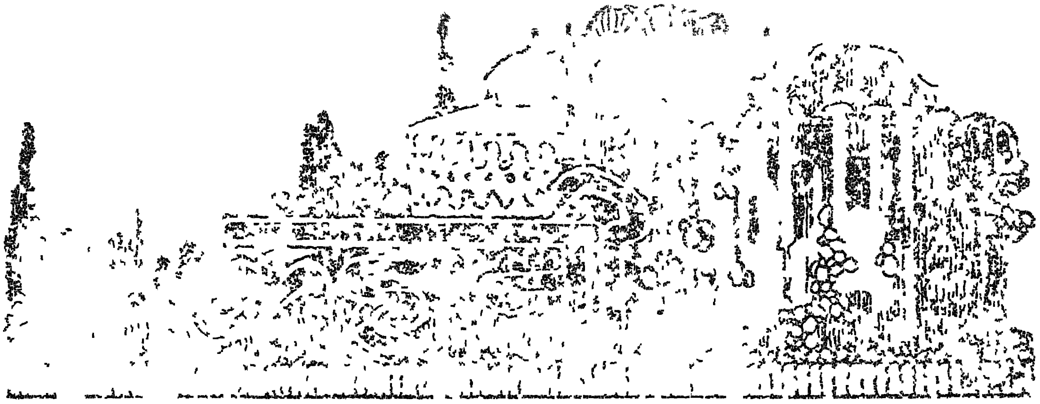
है वही ग्राम, धाम, परिवार,
किन्तु सम्बन्ध हुआ विच्छिन्न,
कभी जिन पर था मेरा स्वत्व,
हो गए वे सब कितने भिन्न ॥

नही यह रत्नों का उपहार,
फूल ही हैं ये तो दो-चार ।
भले ही हों ये सौरभहीन,
करें सर्वेश इन्हे स्वीकार ॥

भक्त की रखते आए लाज,
सर्वदा सुन ली उनकी टेर ।
लिया तण्डुल-कण भी सस्नेह,
खा गए सूखे-सूखे बेर ॥

चला जाता है बह कर स्रोत,
पड़े रह जाते प्रस्तर-खण्ड ।
जान जाते हैं उनसे विज्ञ,
किधर धारा बह गई प्रचण्ड ॥

बहा ले जाता सब कुछ काल,
नहीं रह जाता कुछ अवशिष्ट ।
यहाँ लिख देता हूँ दो शब्द,
कि गति उनसे होगी निर्दिष्ट ॥



साहस

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

उन दोनों मे घनिष्ठ मित्रता थी। विमल कायस्थ का पुत्र था, रमेश ब्राह्मण का। दोनों की जातियों में महान भेद था— एक को लोग ऊँचा समझते थे, दूसरे को ज़रा नीचा। परन्तु जाति-भेद की इस ऊँच-नीच ने उनकी मैत्री मे कोई बाधा नहीं पहुँचाई थी, प्रत्युत वह नित्य-प्रति वृद्धि पा रही थी, मानो जातियों का निर्माण उनके लिए हुआ ही न था। वे दोनों एक साथ खाते, एक साथ पीते, एक साथ उठते-बैठते। लोग उनके इस कार्य पर आपत्ति करते, परन्तु वे किसी की न सुनते।

विमल एक ज़मींदार का पुत्र था, रमेश एक साधारण गृहस्थ का। दोनों एक साथ स्कूल मे पढ़े थे, फिर दोनों ही साथ-साथ कॉलेज में जाकर भर्ती हुए। एफ़० ए० पास किए बिना ही दोनों ने साथ ही साथ कॉलेज छोड़ा। विमल ने पढ़ना इसलिए छोड़ा कि वह एक धनिक का एकलौता पुत्र था। रमेश ने पढ़ना इसलिए छोड़ा कि उसका पिता अधिक समय तक उसकी पढ़ाई के लिए व्यय नहीं कर सकता था।

इस प्रकार दोनों में कहीं समानता और कहीं असमानता होने पर भी दोनो की मैत्री बहुत दृढ़ थी। ग्राम के बाहर विमल का एक बाग़ था, उसके बीच में एक छोटा-सा बँगला बना हुआ था। कभी-कभी वे दोनों वहीं जाकर कुछ दिन रहते, भाँग-बूटी छानते, गाना-बजाना करते। कॉलेज से निकलने के बाद इस प्रकार उनके कई वर्ष व्यतीत हो गए।

२

उन दिनों सामाजिक सुधारो की चर्चा छिड़ी हुई थी। उनमें स्त्री-शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया जा रहा था। चारों ओर इसी विषय पर व्याख्यान दिए जा रहे थे, इसी विषय पर लेख लिखे जा रहे थे।

जब कॉलेज में थे, तो रमेश और विमल दोनों ही स्त्री-शिक्षा के विषय में बहुत-कुछ पढ़ चुके थे, बहुत-कुछ सुन चुके थे। उस समय वे दोनो

दिशा मे कुछ कार्य करने की बात सोचा करते थे, परन्तु वहाँ उन्हें अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। कॉलेज छोड़ कर ग्राम मे आने के बाद वे उन सब बातों को भूल गए।

एक दिन एक समाचार-पत्र मे एक लेख पढ़ कर विमल रमेश के पास पहुँचा। रमेश ने भी उस लेख को पढ़ा। उसमे बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में नवयुवको से समाज-सेवा करने की अपील की गई थी।

"हम लोग यहाँ बेकार ही तो बैठे रहते हैं, क्यो न कुछ सामाजिक सुधार का उद्योग करें!"—विमल ने कहा।

"बात तो ठीक है, तुम्हारी जमींदारी और हम लोगों का परिश्रम इस ग्राम में सुधार सम्बन्धी कार्य करने के लिए काफ़ी हैं।"—रमेश ने उत्तर दिया।

"कार्य प्रारम्भ किस प्रकार हो?"

"प्रारम्भ करने के लिए बीसियों बातें हैं।"

"ग्राम्य-सङ्गठन?"

"यह तो एक बड़ी योजना होगी। क्यो न कुछ स्त्री-शिक्षा के विषय मे किया जाय?"

"स्त्री-शिक्षा ही सही। लड़कियों के लिए स्कूल की स्थापना ठीक होगी?"

"ठीक तो सभी कुछ होगा, परन्तु यदि हम पहले अपने घर में ही सुधार प्रारम्भ कर दें, तो ग्राम वालों पर अधिक प्रभाव पड़ेगा।"

"इसके लिए भी मैंने प्रयत्न किया है, परन्तु अधिक सफलता नही मिली। मैंने अपनी बहिन को पढ़ाने की चेष्टा की है, परन्तु मैं उसे नहीं पढ़ा सकता। तुम तो जानते हो, वह बड़ी लजीली है।"

"कोई ट्यूटर ही क्यों न रख दो?"

"कोई बाहरी आदमी रखता हूँ, तो समाज में एक साथ हलचल मच जाने का भय है और प्रारम्भ मे समाज को विद्रोही बना देना अच्छा नहीं है।"

दोनो कुछ देर तक सोचते रहे। फिर विमल बोला—रमेश, तुम्हीं किशोरी को क्यों नहीं पढ़ाते?

"मैं?"—रमेश ने विस्मित होकर पूछा।

"क्यों नही?"

"मुझसे ही वह कैसे पढ़ सकेगी?"

"तुम फिर भी बाहरी पुरुष हो। तुम ट्यूटर का कार्य कर सकते हो।"

"परन्तु समाज?"

"तुम्हारे लिए समाज? सब जानते हैं कि हम तुम दोनो सगे भाइयों से भी अधिक है। किशोरी जिस प्रकार मेरी बहिन है, उसी प्रकार तुम्हारी है। तुम्हारे लिए समाज कुछ भी नहीं कहेगा।"

३

रमेश किशोरी को पढ़ाने लगा। पहले कुछ दिन विमल भी उनके पास बैठता था, परन्त फिर उसने वहाँ बैठना छोड़ दिया, क्योंकि इस प्रकार पढ़ाई में बाधा होती थी।

कई महीने इस प्रकार व्यतीत हो गए। उन्हे समाज का कुछ भय न था, वे समझते थे कि समाज कुछ भी न कहेगा। परन्त समाज चुप न रहा। समाज के कान होते हैं, वे बड़े सतर्क रहते हैं। समाज के नेत्र होते हैं, वे हर समय खुले हुए रहते हैं। वे नेत्र ऐसे होते हैं, जो अदृश्य कृत्यों को भी देख सकते हैं। कोई भी बात हो, चाहे प्रगट हो, चाहे पर्दे के पीछे, समाज उसका पता लगा लेता है। और फिर उस पर टीका-टिप्पणी शुरू हो जाती है। एक मुख से दो, दो से चार, चार से सौ, इसी प्रकार समाज सहस्रो मुखों से उन बातो की आलोचना करता है। एक से दूसरे तक जाते-जाते वे बातें एक नया ही रूप धारण कर लेती है, परन्तु उनकी आत्मा वही रहती है।

समाज में किशोरी और रमेश के विषय में बाते होने लगीं। यहाँ तक कि सारे ग्राम का यही एक आलोच्य विषय हो गया। विमल अब तक इन बातों को नहीं जानता था। एक दिन जब ग्राम

के एक वृद्ध पुरुष ने उससे यह चर्चा चलाई, तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

"तम लोगों का यह सन्देह व्यर्थ है।"—उसने कहा।

"व्यर्थ ही हो, परन्त सन्देह, सन्देह ही है। एक बार समाज में इस प्रकार का सन्देह पैदा हो जाय, यह बात भी तो अच्छी नही है।"—वृद्ध ने उत्तर दिया।

"ये बातें तुम लोगो को कैसे मालूम हुईं?"

"दीवारों के भी कान होते हैं और वे भी बातें कर सकती हैं।"

"इस प्रकार मै कभी विश्वास नही कर सकता। तुम जानते हो कि रमेश मुझे भाई के बराबर है। किशोरी जैसी मेरी बहिन है, वैसी ही उसकी है। किशोरी और रमेश के लिए ऐसी बातें कहना वैसा ही है, जैसा यह कहना कि मै और किशोरी पातकी हैं।"

"तुम स्वयं किसी दिन देख लोगे।"—वृद्ध यह कह कर चला गया।

इस घटना का विमल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु जब इसी प्रकार कई मित्रों और कुटुम्बियो ने उसे सलाह दी, तो वह अधीर हो उठा। उसने इस बात की परीक्षा करने का विचार कर लिया। सारे ग्रामवासी आखिर क्यों इस प्रकार की बात कर रहे थे? क्या वास्तव में किशोरी और रमेश के बीच कोई बात हो सकती थी? उसे उन दोनो पर स्वयं सन्देह होने लगा।

जिस समय रमेश किशोरी को पढ़ाने आता था, उससे कुछ पहले विमल घोड़े पर सवार होकर बाहर चल दिया। वह किशोरी से कह गया था कि वह रात्रि को कुछ देर से लौटेगा। कुछ देर तक इधर-उधर घोड़े को टहला कर वह अचानक घर आ गया। रमेश उससे पहले ही आ पहुँचा था। जैसे ही वह घोड़े से उतरा, वैसे ही किशोरी के कमरे की ओर चल दिया। किवाड़े भिड़े हुए थे। धीरे से उसने एक किवाड़ को थोड़ा खोल कर भीतर झाँका। उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न था। जो कुछ वह देख रहा था, उस पर विश्वास न कर सकता था। किशोरी रमेश के बाहु-पाश में! उसने किवाड़ मे धक्का देकर उसे पूरा खोला और भीतर पहुँच गया।

किशोरी और रमेश विमल को वहाँ देखने के लिए तैयार न थे। दोनों शीघ्रता से उठ खड़े हो गए। दोनों की गर्दनें नीची थी।

"रमेश!"—विमल ने पुकारा।

रमेश न बोला।

"मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। मैं नहीं जानता था कि तुम इतने नारकीय, इतने भ्रष्ट, इतने विश्वासघाती × × ×"

अभी तक किशोरी चुपचाप खड़ी थी। वह बीच ही में बोल उठी—भैया!

विमल ने उसकी ओर देखा।

"रमेश स क्रुद्ध न होओ।"

"क्रुद्ध न होऊँ? इतना हो जाने पर भी? यह तुम क्या कहती हो, किशोरी?"

"हमने—दोनों ने—यह सब इच्छा से किया है, जान-बूझ कर। हम पातकी नही हैं, एक-दूसरे को प्रेम करते हैं।"

"प्रेम?"

"हाँ!"

"परन्तु किशोरी, तुम नहीं समझती हो कि इस प्रकार के प्रेम का क्या अन्त होगा।"

"मैं समझती हूँ, रमेश समझते हैं।"

"अर्थात्?"

"विवाह!"

"विवाह?"

"हाँ! रमेश ने मेरे साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली है।"

"क्या यह सच है?"—विमल ने रमेश की ओर देख कर पूछा।

"हाँ।"—रमेश ने धीरे से कह दिया, उसके नेत्र अब भी पृथ्वी की ओर थे।

विमल कुछ देर तक विचार करता रहा। फिर बोला—अच्छा, इस समय तुम दोनो जाओ, इस समय मेरा मस्तिष्क कुछ काम नही कर रहा।

४

दो दिन इसी प्रकार व्यतीत हो गए। इस बीच मे किशोरी और विमल में किसी प्रकार का वार्तालाप नही हुआ था। न विमल और रमेश ही उस दिन के बाद एक-दूसरे से मिले थे।

विमल ने सारी घटनाओं पर विचार किया। वह पहले किशोरी और रमेश पर मन ही मन क्रुद्ध हुआ। उसकी दृष्टि में वे पापी हो चुके थे। यह उसके संस्कारों का प्रभाव था। उसने संसार में—अपने संसार मे—यह सीखा था कि प्रेम करना विवाह के बाद ही उचित होता है। अविवाहित बालक और बालिका का प्रेम एक पातक है। परन्तु कुछ देर बाद उसे नवयुग की शिक्षा याद आई, उसका ध्यान मानव विकारो की ओर गया। क्या रमेश और किशोरी ने कोई काम ऐसा किया था जो अस्वाभाविक था? क्या उन्होने वही नहीं किया था, जो प्रकृति के नियमों के अनुसार होता आया है।

तब उसका ध्यान अपनी ओर गया। सारा दोष उसी का था। यदि वह उन दोनो को इस प्रकार मिलने न देता तो यह सब कुछ न होता। यदि वह प्रारम्भ मे ही लोगो का कहना मान लेता और अपनी बहिन की पढ़ाई रोक देता, तो मामला इतना न बढ़ने पाता। परन्तु फिर वह अपने को और अपने कृत्यो को भी नवयुग की कसौटी पर चढ़ाने लगा। क्या प्रकृति के मार्ग को बन्द करके हम इस प्रकार की घटनाओं को रोकना चाहते हैं? क्या इन समस्याओं के लिए वह उपयुक्त उपाय है? वृक्ष की रक्षा करने के लिए वृक्ष की मूल को काट देना। धारा का प्रवाह किसी विशेष दिशा की ओर न जाने देने के लिए उसकी गति ही को रोक देना। क्या यही रोग की चिकित्सा थी? इस प्रकार विचार करके उसने निश्चय किया कि दोनों ने जो कुछ किया है, उसमें वह बाधा न डालेगा। वह सहर्ष उनके विवाह की सम्मति दे देगा। उसने किशोरी को अपने पास बुलाया। किशोरी काँपती हुई उसके समक्ष आई।

"डरो मत, बहिन!"—उसने कहा।

"तो क्या आपने मुझे क्षमा कर दिया, भैया?"—किशोरी ने कातर भाव से पूछा।

"पहले यह बताओ कि रमेश ने तुमसे प्रतिज्ञा कर ली है कि वह विवाह करेगा?"

"हाँ।"

"बिरादरी के विरोध का वह कुछ भी विचार न करेगा?"

"नहीं।"

"मैं तुम्हारे विवाह की सम्मति दे दूँगा, यदि तुम इस सम्बन्ध से प्रसन्न रह सकती हो।"

किशोरी के मुख पर हर्ष और सन्तोष के चिन्ह थे।

इसी समय नौकर ने लाकर विमल के हाथ में एक पत्र दिया। वह रमेश का पत्र था। किशोरी उत्सुकतावश उसके निकट आ गई। विमल ने पत्र को निकाल कर पढ़ा:—

"प्रिय विमल,

मैं तुमसे उस दिन कह आया था—तुम्हें वचन दे आया था—कि मैं किशोरी के साथ विवाह कर लूँगा। यही प्रतिज्ञा मैंने एक दिन किशोरी के सामने भी की थी। कल तक मैं अपने इस विचार पर दृढ़ था। परन्तु आज सहसा मुझे अपने विचार को बदलने के लिए बाधित होना पड़ा है।

मैं कल तक समझता था कि मै भी सुधारक हो सकता हूँ। तुम जानते हो कि मै सुधारो के कैसे स्वप्न देखता रहा हूँ। परन्तु आज मुझे मालूम पड़ा है कि वास्तव में इस मार्ग मे कितने कम व्यक्ति ठहर सकते हैं। मैं ब्राह्मण का पुत्र हूँ और समाज यह सहन नही कर सकता कि मैं एक कायस्थ की पुत्री से विवाह करूँ। जब से मैंने घर वालों पर

अपने विचार प्रकट किए, तब से मुझे यहाँ रहना असह्य हो गया है। घर वाले विरुद्ध, जाति वाले विरुद्ध, सम्बन्धी विरुद्ध। विरोध के अतिरिक्त मुझे कुछ और दिखाई नहीं देता। ऐसी दशा में मेरा अपने विचार पर अटल रहना अत्यन्त कठिन होगा। मैं समझता हूँ, अभी अन्तर्जातीय विवाहों के लिए समय उपयुक्त नहीं है।

मैं किशोरी का अपराधी हूँ। इसका मुझे दुःख है। परन्तु इसका प्रायश्चित्त करने के लिए मैं इस स्थान को छोड़ कर शीघ्र ही चला जाऊँगा और फिर कभी इधर मुख नहीं दिखाऊँगा।

मैं तुमसे मिलता, परन्तु तुम्हारे सामने आने का साहस नहीं पड़ता। क्षमा करना !

तुम्हारा,
रमेश"

पत्र को पढ़ कर विमल का मुख रक्त वर्ण हो गया और उसके मुख से बड़े ज़ोर से निकल गया—'कायर !'

किशोरी अब तक चुप खड़ी थी। कुछ साहस करके वह बोली—भैया !

विमल ने उसकी ओर देखा।

"किसका पत्र है ?"

"रमेश का।"

"क्या × × ×?"

"पढ़ लो।"—कह कर विमल ने पत्र उसकी ओर कर दिया। उसने पत्र पढ़ा और एक चीख मार कर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

"किशोरी !"—कह कर विमल उसको उठाने लगा। वह उसके जूतों से लिपट कर रोने लगी।

"इतनी अधीर क्यों होती हो, बहिन ?"—विमल ने पूछा।

"भैया, मैंने अपना सर्वस्व खो दिया ! मैं अब पातकी हूँ, कुल-कलङ्क हूँ।"

"सर्वस्व !"—विमल ने एक निःश्वास लेकर आप ही आप कहा। फिर उसने किशोरी को उठा कर कहा—"मेरे नेत्रों की ओर देखो।"

किशोरी ने देखा।

"क्या तुम और रमेश × × ×?"

किशोरी ने केवल शिर हिला कर 'हाँ' कहा।

विमल ने किशोरी का हाथ छोड़ दिया और कुछ सोचने के बाद घर से बाहर चला गया।

५

विमल रमेश के पत्र को पृथ्वी पर पड़ा हुआ छोड़ गया था। किशोरी ने उसे उठा लिया और उसे पढ़-पढ़ कर रोने लगी। जिस पर उसने इतना विश्वास किया, जिसके लिए वह अपना सतीत्त्व भी अर्पण कर चुकी थी, वह इतना कायर निकला, इतना नीच निकला ? कहाँ तो वे सुधार की बातें, प्रेम की बातें, आदर्श जीवन व्यतीत करने की बातें और कहाँ यह पत्र। हाय ! उन्हीं ऊँची बातों ने उसे रमेश के प्रति अनुरक्त कर दिया था। वह क्या जानती थी कि जिसे वह देवता समझती थी, वह इतना गिरा हुआ निकलेगा। उसे रमेश पर क्रोध आने लगा। उसे प्रतीत होने लगा कि रमेश उसके सामने खड़ा है। वह उत्तेजित होकर वहाँ से उठी। जिधर वह जाती थी, उधर ही उसे रमेश की मूर्ति दिखाई देती थी। वह उस मूर्ति की ओर घृणा से, अपमान से और क्रोध से देखने लगी ! उसे विदित हुआ मानो उसके भावों पर वह मूर्ति हँस रही है। उसके हृदय में बदले की भावना उत्तेजित हो गई। जिसने उसके सतीत्त्व-रत्न का अपहरण किया, क्या उसे वह जीवित छोड़ सकेगी ? उसने अपना पिस्तौल निकाला, उसे भरा और द्वार की ओर चलने लगी। इतने ही में द्वार पर धक्का लगा। उसने द्वार खोला, सशङ्कित हाथों से। द्वार पर विमल और रमेश खड़े थे।

न रमेश ने किशोरी की ओर देखा, न किशोरी ने रमेश की ओर। विमल जब रमेश को साथ लेकर भीतर आया, उससे पहले ही किशोरी चुपचाप बैठक में घुस गई और मेज़ पर पिस्तौल रख कर शीघ्र ही भीतर चौक में चली गई। वह

समझती थी कि विमल रमेश को लेकर अपने कमरे मे जायगा, जहाँ वे दोनों अक्सर बैठ कर बातें किया करते थे। परन्तु विमल उधर न जाकर बैठक ही में गया। सामने की कुर्सी पर उसने रमेश को बैठा दिया और आप मेज़ पर बैठ गया।

"तो तुम सब कुछ समझ गए, विमल!"—रमेश ने पूछा।

"हाँ, और तुम भी समझ गए, जो कुछ मैंने कहा ?"

"हाँ।"

"विवाह और प्रायश्चित्त, ये दो बाते तुम्हारे सामने है। तुम विवाह नही कर सकते। प्रायश्चित्त करने को तैयार हो ?"—इतना पूछते-पूछते विमल का हाथ पिस्तौल पर पड़ा।

रमेश ने स्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया।

"तुम्हे विश्वास है कि पीछे तुम विचलित न हो जाओगे ?"

रमेश कुछ ठहरा। फिर उसने पूछा—वह प्रायश्चित्त क्या होगा ?

विमल ने पिस्तौल का मुख रमेश की ओर करके कहा—देखते हो यह ?

"मृत्यु ?"

"हाँ !"

"परन्तु × × ×।"

"प्रायश्चित्त से भी डरते हो ?"

"इतना भीषण प्रायश्चित्त ?"

"भीषण प्रायश्चित्त ? क्या तुम्हारा कृत्य इससे कम भीषण था ? तुमने एक निर्दोष बालिका का सतीत्त्व ही नष्ट नही किया है, परन्तु आगामी नवयुवक सुधारको के सामने एक बुरा उदाहरण रख दिया है। तुमने दुष्कृत्य का उदाहरण रक्खा है। मै प्रायश्चित्त का—दण्ड का—उदाहरण रखना चाहता हूँ।"

रमेश ने आँख बन्द करके कहा—अच्छा! विमल ने तेज़ी से पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया।

* * *

किशोरी ने पिस्तौल दगने का शब्द सुना, तो वह बैठक की ओर दौड़ी आई। विमल पागल की भाँति घर स बाहर जा रहा था। किशोरी ने पुकारा—'भैया!' विमल ने सुना नही। वह शीघ्र ही आँखो से ओझल हो गया। उसने देखा, बैठक में एक ओर पृथ्वी पर रमेश का शरीर पड़ा हुआ था और मेज़ पर पिस्तौल पड़ा था।

६

विमल ने पुलिस को जाकर आत्म-समर्पण कर दिया। परन्तु उसने किसी से यह नही कहा कि उसने रमेश की हत्या क्यो की। इस प्रश्न पर वह चुप हो जाता। वह एक बड़ा ज़मींदार था। जिले के अधिकारी उसे मानते थे। स्वयं पुलिस-इन्सपेक्टर यह चाहता था कि विमल हत्या का कोई कारण बता दे, ताकि उसे बचाने का कुछ प्रयत्न किया जाय। मित्रो ने सन्देश भेजे, वकीलो ने दबाव डाला। परन्तु वह विचलित न हुआ। उसने सबसे कह दिया—मैंने रमेश की हत्या की है, यह मै मानता हूँ। परन्तु मैं यह नहीं बताऊँगा कि मैंने वह हत्या क्यो की। मै केवल यह कह सकता हूँ कि वह जीवित रहने योग्य नही था, इसीलिए मैंने उसकी हत्या कर डाली।

रविवार का दिन था। विमल को जेल में कई दिन हो गए थे। उस दिन किशोरी उससे मिली। विमल को देखते ही किशोरी रो पड़ी।

"बावली हुई हो, रोने का क्या काम है ?"—विमल ने किशोरी को थपथपाते हुए कहा।

"यह तुम क्या कर रहे हो, भैया ?"

"वही कर रहा हूँ, किशोरी, जो एक आत्माभिमानी युवक को करना चाहिए।"

"साफ क्यो नही कह देते कि यह सब तुमने मेरे लिए किया था।"

"किसलिए ?"

"तुम्हारे प्राण बच जायँगे। यदि तुम साफ नहीं छूटोगे, तो कुछ वर्षों की सज़ा ही हो जायगी, परन्तु फाँसी के तख्ते से तो बचोगे।"

"यह ठीक है बहिन! परन्तु तुमने दूसरी ओर ध्यान नहीं दिया। मेरे प्राण बच जायँगे, परन्तु चारो ओर कुटुम्ब का नाम डूब जायगा। और फिर तुम्हारा भी तो प्रश्न है। सब कुछ बता देने पर तुम्हारा क्या होगा? बदनामी होगी, कोई विवाह करने के लिए भी तैयार न होगा।"

"मेरे और समाज के लिए तुम ऐसा कर रहे हो? क्या मैं, कुटुम्ब का नाम और समाज इस योग्य हैं कि तुम्हारा अमूल्य बलिदान ले सकें? मैं पातकी हूँ, संसार को जानने दो कि मैं पातकी हूँ। एक नवयुवक ने सुधारों की आड़ मे एक अपराध किया है, संसार को उसे जानने दो। अपने दोष के लिए मैं तुम्हारा प्राण लूँ? नहीं भैया, ऐसा न होगा। मैं अपने प्राण दे दूँगी, संसार में पापिनी कहाना पसन्द करूँगी, और यदि समाज चाहेगा, तो वेश्या का जीवन बिताना पसन्द करूँगी, परन्तु × × × परन्तु तुमसे इतना त्याग नहीं कराऊँगी।"

किशोरी रोने लगी। समय समाप्त हो रहा था। विमल ने उसके आँसू पोंछे और कहा—तुम जाओ, सब ठीक हो जायगा, मेरी चिन्ता न करो।

बहिन आँसू बहाती हुई चली। भाई ने उसकी ओर देखा। कुछ देर के लिए भ्रातृ-प्रेम उमड़ आया। हठात् उसके नेत्रों मे दो आँसू छलक आए।

७

विमल चुप रहा, न उसने अपनी पैरवी की। कुछ दिनों में ही वह सेशन्स के सुपुर्द कर दिया गया। वहाँ भी वही बात हुई। सबने उससे कहा कि वह रमेश की हत्या का कारण बता दे, परन्तु उसने एक शब्द तक न कहा। असेसरों और जज के सामने उसने यह मान लिया कि वह 'अपराधी' था।

उस दिन हुक्म सुनाया जाने वाला था। जज अपने स्थान पर आकर बैठ गया था। इतने ही में एक ओर से शब्द आया, 'हुजूर, ठहरिए।' सबने उस ओर देखा। किशोरी बाल खोले हुए भीतर चली आ रही थी।

"रमेश की हत्या का अपराधी विमल नहीं है।"—उसने जज के सामने जाकर कहा।

"फिर कौन है?"—जज ने पूछा।

"मैं!"

चारो ओर सन्नाटा छा गया। विमल जज की ओर देख कर बोला—'माई लॉर्ड!' परन्तु जज ने उसे चुप करा दिया। किशोरी आगे बुलाई गई और उससे सत्य बोलने की प्रतिज्ञा कराई गई।

"यह किस प्रकार सिद्ध हो कि तमने रमेश की हत्या की थी?"

"वह पिस्तौल, जो पुलिस हमारे घर से लाई है, मेरा है। उसके घोड़े के नीचे मेरा नाम लिखा है।"

उसका कथन सच निकला। जज के पूछने पर किशोरी फिर बोली—"मैं सब कुछ सच बताए देती हूँ, जिससे आप सबको मालूम हो जायगा कि मैंने रमेश की हत्या क्यों की। मेरे भाई में और रमेश मे प्रगाढ़ मित्रता थी। दोनों सामाजिक सुधारों के पक्षपाती थे। रमेश को मेरे भाई ने मुझे उच्च शिक्षा देने का भार सौंपा। कुछ दिनों तक तो पढ़ाई साधारण रूप से चलती रही। परन्तु फिर रमेश का भाव मेरी ओर से कुछ-कुछ बदलने लगा। कभी वह प्रेम की कहानियाँ सुनाता, कभी स्वयं मुझे अपना प्रेम जताता। धीरे-धीरे मैं भी उसकी ओर अनुरक्त होने लगी। अन्त मे जब एक दिन उसने मुझसे विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली, तो मैंने अपना सतीत्त्व उसकी भेंट कर दिया।"

इस स्थल पर वह फूट-फूट कर रोने लगी। अदालत में पूर्ण निस्तब्धता थी। कुछ देर बाद वह फिर बोली—"कुछ दिनों बाद भाई ने हम दोनों को इस प्रकार प्रेम करते हुए देख लिया। परन्तु रमेश की विवाह करने की प्रतिज्ञा सुन कर

उन्होंने कुछ कहा नहीं। दूसरे दिन ही उनको रमेश का एक पत्र मिला, जिसमें उसने विवाह करने की असमर्थता दिखाई थी। यह पत्र मेरे पास है।"

इतना कह कर किशोरी ने वह पत्र जज के सामने रख दिया। फिर वह कहने लगी—

"इस पत्र को पढ़ कर मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने रमेश से बदला लेने की प्रतिज्ञा कर ली। उसी दिन मैंने रमेश को अन्तिम बार दर्शन देने के लिए बुलाया। पत्र में मैंने ऐसी बातें लिखी थीं कि वह आ ही गया। बैठक मे उसको लाञ्छित करने के बाद मैंने उस पर पिस्तौल चला दिया।"

वह इतना कह कर मूर्छित हो गई। एक वकील ने उस पर पानी के छींटे फेंके। एक अर्दली उसको हवा करने लगा। कुछ देर में वह फिर ठीक हुई और कहने लगी—

"इतने ही में भाई वहाँ आ गए। सब कुछ देख कर पहले तो वे स्तम्भित हो गए। परन्तु पीछे मुझे भीतर भेज कर आप पुलिस के पास चले गए। उन्होंने हत्या का दोष अपने ऊपर इसलिए लिया है कि संसार मेरे पाप को न जान सके और कुटुम्ब का नाम बदनाम न हो। परन्तु, हुज़ूर, मैं कहती हूँ, वह निर्दोष है, निर्दोष है। हत्या मैंने की है और मैं उसके लिए मरने को तैयार हूँ।"

इतना कह कर उसने एक छोटी शीशी निकाली और जब तक किसी को यह ज्ञान हो कि वह क्या कर रही थी, तब तक उसने उसमें भरा हुआ विष पान कर लिया।

मरणासन्न हुई वह भूमि पर पड़ी थी। विमल ने उसके पास आकर आँसू बहाते हुए कहा—किशोरी, बहिन, यह तुमने क्या किया?

किशोरी के सूखे हुए होठों पर एक धीमी-सी मुसकान दौड़ गई और उसने कहा—वही, जो मुझे करना चाहिए था। अब मैं सन्तोष से मर सकूँगी।

जीवन-रहस्य

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

किस रहस्य मे छिपा हुआ है,
चिर-छवि का संसार।
बार-बार ये पाप आ रहे,
करने मुझसे प्यार॥

वे अतीत के स्वप्न फैलते,
बुद्-बुद् के अनुसार।
एक प्रवाहित समय-धार ही,
है उनका आधार॥

अन्धकार में खोज रहा हूँ,
मै जीवन का सार।
नीरस आशाओं को लेकर,
आता है संसार॥

हाय, हो रहा भार मुझे,
मेरा ही छोटा प्यार।
मुझे खोजने दो आशाओं—
मे रहस्य का द्वार॥

बौद्धधर्म का अभ्युदय और विस्तार

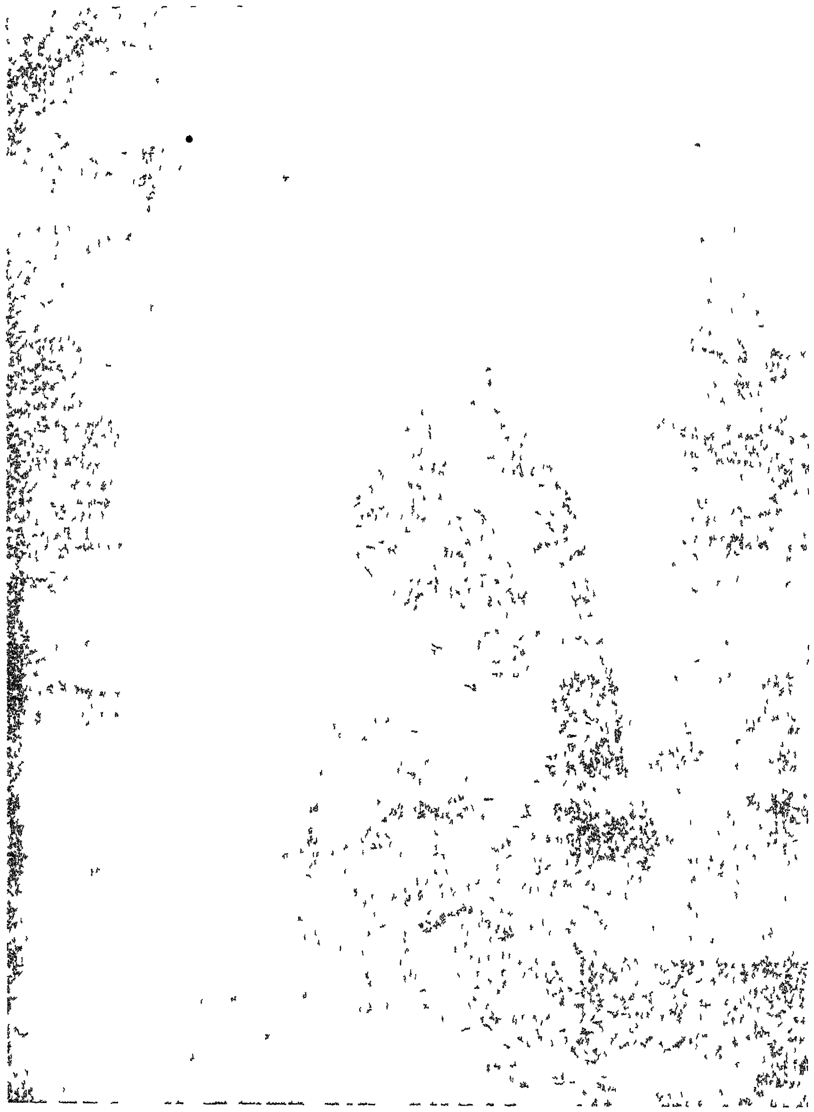
[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

ईसा से पूर्व छठवीं शताब्दी मे भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक विचारधारा मे एक विशेष परिवर्तन दिखाई दिया था। हज़ारो वर्ष पूर्व से इस देश के आर्य अधिवासी निर्विवाद और निर्विचार रूप से जिस आचार-विचार, रीति-रिवाज और धर्मानुष्ठान आदि का प्रतिपालन करते आ रहे थे, क्रमशः वह शिथिल और निर्जीव हो रहा था। लोगों की आस्था मानो उन तमाम विचारों की ओर से शिथिल होती जा रही थी। उनके द्वारा अब किसी के मन में धर्म-बोध नहीं होता था। बहु शताब्दी पूर्व ऋग्वेद के ऋषियो ने अत्याश्चर्यपूर्ण नैसर्गिक शोभा से विह्वल होकर, स्वाभाविक भक्तिपूर्ण वन्दना-मन्त्रो में इन्द्र, वरुण, सूर्य और ऊषा आदि देवताओं और देवियो की जो आराधना प्रचलित की थी, वह पूर्ववत् वर्तमान थी। लोग उन देवताओं के नामो का भी स्मरण किया करते थे, परन्तु इसके द्वारा उनके हृदयो में आन्तरिक श्रद्धा और भक्ति का सञ्चार बहुत कम होता था। प्राचीन युग के ऋषियों के वंशधरों ने सामयिक आवश्यकता की पूर्त्ति और प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपने कर्मों मे विभाग करके जिन नाना वर्णों की सृष्टि कर डाली थी, वे काल-क्रमानुसार एक-एक पृथक जाति के रूप में परिणत हो गए थे और उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी क्षीण हो चला था। इन विविध वर्णों में ब्राह्मण नाम का जो दल बना था, उसे यज्ञ-याज्ञ, पठन-पाठन और अन्य प्रकार के धर्मानुष्ठानों का कार्य सौंपा गया था। इसी तरह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामधारी दलों को समाज की आवश्यकता के अनुसार पृथक-पृथक कार्य सौंपे गए थे। यद्यपि यह कहना उचित न होगा कि इस व्यवस्था द्वारा समाज को कोई लाभ नहीं पहुँचा था अथवा यह सम्पूर्ण रूप से विफल हो गई थी, तथापि हमें यह स्वीकार कर लेने मे किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं होना चाहिए कि कुछ काल के उपरान्त ब्राह्मणेतर वर्णों ने ब्राह्मणों को ईश्वर का 'एजेण्ट' या धर्मानुष्ठान सम्बन्धी कार्यों के लिए अपना 'प्रतिनिधि' मान लिया था। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि ब्राह्मणेतर वर्णों की इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण-कामना के लिए धर्मानुष्ठान और देवाराधन आदि इन एजेण्टों या प्रतिनिधियो का पैतृक व्यवसाय बन गया। वैदिक ऋषियों ने जन-समाज के मङ्गलार्थ जिन धर्मानुष्ठानों और वन्दना-मन्त्रों की सृष्टि की थी, उनका प्रयोग और उनकी आवृत्ति धीरे-धीरे निष्प्रयोजन प्रतीत होने लगी। ब्राह्मणो ने अपने को समस्त वैदिक विद्या का जन्म-सिद्ध उत्तराधिकारी मान लिया। फलतः ऋषियों ने जिन भावों को लेकर वैदिक मन्त्रों की सृष्टि की थी, वे भाव-समूह धर्मानुष्ठान के महा आडम्बर मे छिप कर तिरोहित हो गए। कष्ट स्वीकार करके व्यक्तिगत भाव से ईश्वरोपासना या अन्य प्रकार के धर्मानुष्ठान को लोग अनावश्यक समझने लग गए। फलतः ज्यों-ज्यों आन्तरिक भावों का अभाव बढ़ने लगा, त्यों-त्यो आडम्बरपूर्ण कर्म-काण्ड की भी वृद्धि होने लगी। यहाँ तक कि वर्तमान काल के अनुसार धर्मानुष्ठान और ईश-वन्दना एक रूढ़ि के रूप में परिणत हो गया। धर्म का वास्तविक रूप उपनिषद्-प्रणेता ऋषियों द्वारा की हुई

विश्व-व्यापी देवता की महिमा की घोषणा और दुर्बोध वादानुवादों द्वारा की हुई, दार्शनिक पण्डितों की धर्म और ईश्वर सम्बन्धी मीमांसा मुष्टिमेव लोगों में सीमाबद्ध होकर रह गई थी। साधारण जन-समूह न तो इन तत्त्वों की गहराई में उतरना चाहता था और न उसमें वहाँ तक पहुँचने की योग्यता ही रह गई थी। फलतः जिस तरह आजकल बहुत से धर्मात्मा सज्जन गीता का अर्थ समझे बिना ही प्रतिदिन उसका पारायण किया करते हैं और गायत्री मन्त्र का अर्थ न समझने वाले भी नहा-धोकर एक माला जप कर लेने पर जल ग्रहण करते हैं, इसी तरह उस ज़माने के लोग भी प्रचलित धर्मानुष्ठानों और क्रिया-कर्म के अर्थ, उद्देश्य और अभिप्राय को समझे बिना ही उनका प्रतिपालन करने लग गए थे। परन्तु प्रकृति का यह नियम है कि मनुष्य अपनी समझ और बुद्धि के प्रयोग के विपरीत जो कार्य करता है, उसमें उसका मन नहीं लगता। कुछ दिनों के बाद ही वह ऐसे अर्थहीन कामों से ऊब कर विद्रोही बन बैठता है। यही दशा महात्मा गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय इस देश के जन-समूह की हो गई थी। महात्मा बुद्ध ने आकर इस विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण किया। जन-समूह के एक छोटे से दल ने उन्हे अपना पथ-प्रदर्शक और अवशिष्ट लोगों ने उन्हे वेद-विरोधी नास्तिक माना। परन्तु युग-प्रवर्तक महा-पुरुष ऐसी निन्दा-स्तुति की परवाह कब करते हैं। बुद्ध ने जनता की निन्दा को मुकुट की तरह सिर पर धारण करके दृढ़ हाथो से विद्रोह की पताका उठा ली। उन्होने दर्शन-शास्त्र के गहन तत्त्वों की व्याख्या छोड़ कर सीधी-सादी भाषा मे सहज सत्य का प्रचार आरम्भ किया। छोटे-बड़े तथा ऊँच-नीच सबको बुला कर धर्म का उदार और विशाल क्षेत्र दिखला दिया। उन्होंने स्वयं जिस सहज सत्य की उपलब्धि की थी, उसी का प्रचार किया था। इसी से उनका धर्म कतिपय पण्डितों को धर्म न बन कर भारत का और अन्त में एशिया महादेश के अधिकांश का सार्वभौम धर्म बन गया था। बहुत दिनों के बाद एक अविकृत और अनावृत सत्य की उपलब्धि करके भारत के साथ ही प्रायः आधी दुनिया ने शान्ति प्राप्त की थी। परन्तु हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि भगवान गौतम ने अपने धर्मवाद द्वारा किसी नवीन तत्व का प्रचार किया था। क्योंकि उनके अपूर्व जीवन की इतिवृत्ति का अध्ययन करने से अच्छी तरह पता लगता है कि उन्होने आर्य-धर्म और आर्य-शास्त्रों की ख़ूब आलोचना की है। इसके बाद योग्य गुरुओ के शरणापन्न होकर तथा अपनी साधना द्वारा जिस सत्य की उपलब्धि उन्होने की थी, उसी का प्रचार किया था।

भगवान गौतम बुद्ध ने सबसे पहले काशी के निकटवर्त्ती मृगदाव (वर्तमान सारनाथ) नामक स्थान में, अपने पाँच शिष्यों के सामने अपने सद्धर्म का प्रचार किया था। इसके बाद अन्य काशीवासियों में उसका प्रचार हुआ था। सबसे पहिले काशी के यश नामक वणिक-तनय ने बुद्ध भगवान का शिष्यत्व ग्रहण किया। यश के पिता एक धर्मवान और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। पुत्र के बौद्ध हो जाने के बाद पिता-माता ने भी नवीन धर्म की दीक्षा प्राप्त की थी। इस तरह जब शिष्यों की संख्या यथेष्ट हो गई, तो बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचारार्थ एक सङ्घ की स्थापना की और शिष्यो को उपदेश प्रदान किया कि—"तुम लोग दलबद्ध होकर संसार में सत्य का प्रचार करो। पुण्य, प्रेम और सत्यानुराग में एक होकर, सर्व-साधारण के हितार्थ, इस आदि कल्याण, मध्य कल्याण और अन्त कल्याण सद्धर्म की कथा का प्रचार करो। तुम लोग संसार के समस्त प्राणियों को बता दो कि उनका जीवन अत्यन्त पवित्र है। तुम्हारी सत्य वाणी निश्चय ही उनके अन्तस्तल को स्पर्श करेगी।"

इस समय उरुविल्व नामक स्थान में काश्यप नाम के एक प्रसिद्ध अग्निहोत्री रहते थे। उन्होने



अपनी पूजनीय माता (बैठी हुई) सहित डॉ० (कुमारी) लीलावती जी, एल० डी० एम०। आप शेखपुरा (पञ्जाब) के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर श्री० सदाराम जी की कन्या-रत्न हैं। आपने कलकत्ते में दन्त-चिकित्सा (Dental Surgery) की परीक्षा पास की है। २६ मार्च को आप बङ्गाल ऑर्डिनेन्स द्वारा गिरफ्तार कर ली गई थीं। बाद में बङ्गाल गवर्नमेण्ट ने आपको ६ घण्टों के भीतर बङ्गाल की सीमा से बाहर निकल जाने की आज्ञा प्रदान की है।

अपने भाई तथा हज़ारों शिष्यों के साथ भगवान बुद्ध के नवधर्म की दीक्षा ली। तभी से इस धर्म की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। इस समय मगध के राजसिंहासन पर विम्बिसार नामक नरेश राज्य करता था। उसने भी नवधर्म की दीक्षा ली और उसके प्रचार-कार्य में योगदान किया। राज्याश्रय पाकर यह धर्म और भी बढ़ा। विम्बिसार ने अङ्ग देश को जीत कर अपने राज्य में मिला लिया, अतः वहाँ भी बौद्धधर्म का प्रचार हुआ। सारिपुत्र और मौद्गल्यायन नाम के प्रसिद्ध धर्माचार्यों ने भी बुद्ध की दीक्षा ग्रहण की। इससे मानो सोने मे सुगन्धि आ गई और सारा मगध प्रदेश बौद्ध हो गया।

गौतम बुद्ध ने स्वयं भी भारत के कई प्रसिद्ध स्थानों मे भ्रमण करके अपने धर्म का प्रचार किया था। वे और उनके शिष्यगण ने तत्कालीन बोल-चाल की भाषा में समस्त भेद-भावों को अलग रख कर जन-कल्याणकारी पवित्र धर्म का प्रचार किया था, इसलिए वे जहाँ गए, वहीं उन्हें यथेष्ट सफलता भी प्राप्त होती गई। काशी के बाद ही उन्होंने अपने जन्म-स्थान कपिलवस्तु की यात्रा की। उस समय उनके वृद्ध पिता जीवित थे और उन्होंने भी बुद्ध का शिष्यत्व ग्रहण किया था। इसके बाद उनकी स्त्री यशोधरा और पुत्र राहुल ने भी बौद्धधर्म स्वीकार किया। गौतम के चचेरे भाई आनन्द ने इस नवीन धर्म के प्रचार-कार्य में विशेष परिश्रम किया था। ये भगवान बुद्ध के दक्षिण हस्त-स्वरूप थे। महात्मा आनन्द सदैव भगवान बुद्ध के साथ रहते थे और बड़ी सावधानी तथा सतर्कता से उनकी आज्ञा का पालन किया करते थे। आनन्द के अनुरोध से ही बुद्ध ने स्त्रियों को भी संन्यास ग्रहण करने की अनुमति दी थी और धर्म के प्रचारार्थ भिक्षु-दल की भाँति भिक्षुणी-दल भी बना था। गौतम की विमाता महाप्रजावती गौतमी सबसे पहली भिक्षुणी थीं।

बुद्ध ने जिस समय प्रचार-कार्य आरम्भ किया था, उस समय उनकी अवस्था केवल पैंतीस वर्ष की थी। इसके बाद वे पैंतालीस वर्षों तक जीवित रहे और भारत के नाना स्थानों में भ्रमण करके अपने धर्म का प्रचार किया था। जीवन के अन्तिम भाग में उन्होंने वैशाली तथा उसके निकटवर्त्ती स्थानों मे अपने धर्म का प्रचार किया था। इस समय उनका स्वास्थ्य अत्यन्त ख़राब हो चला था। बहुत दिनों तक रक्तामाशय रोग से पीड़ित थे और इसी अस्वस्थावस्था में वैशाली से कुशीनगर (वर्तमान कसिया ज़िला गोरखपुर) चले आए थे और यहीं वैशाखी पूर्णिमा को परिनिर्वाण लाभ किया था।

इस समय भारतवर्ष में अङ्ग, मगध, काशी, कोशल, भज्जि, मल, चेदि, वंश, कुरु, पाञ्चाल, मत्स्य, सूरसेन, अश्वक, अयन्ती, गान्धार और काम्बोज, ये सोलह वृहत राज्य थे, और इन सभी राज्यों के नरेश बौद्धधर्म की दीक्षा ले चुके थे। यहाँ की अधिकांश प्रजा भी बौद्धधर्म की अनुयायिनी बन चुकी थी। बौद्ध-ग्रन्थों से पता चलता है कि बुद्ध ने इनमें से अधिकांश राज्यों में स्वयं भ्रमण करके अपने धर्म का प्रचार किया था। उनके निर्वाण प्राप्त करने पर इन राज्यों में से आठ राज्यों के प्रतिनिधि उनकी अस्थि संग्रह करने की इच्छा से कुशीनगर आए थे। इसी झगड़े के कारण उनका शव इक्कीस दिनों तक रक्खा रहा। इसके बाद द्रोण नाम के एक ब्राह्मण ने उसका विभाग किया था। इन बातों से पता चलता है कि महात्मा बुद्ध के जीवन-काल में ही उनके मतवाद ने इस देश में यथेष्ट प्रसार लाभ किया था।

निर्वाण प्राप्त के समय उन्होंने धर्म-प्रचार का कार्य अपने सहकारी आनन्द को सौंपा था। उस समय आनन्द को अपने निकट बुला कर कहा था—"मेरी मृत्यु के बाद मेरा प्रवर्त्तित धर्म ही तुम लोगों का परिचालक होगा।"

महात्मा बुद्ध के निर्वाण-लाभ के बाद आनन्द ने प्रचार-कार्य सुचारु रूप से किया और मगधराज

अजात-शत्रु की सभा में समस्त बौद्ध भिक्षुओं की एक महती सभा करके उन्होंने बुद्ध के उपदेशों को सङ्कलित करके उसे बौद्ध-शास्त्र का रूप प्रदान कराया। भिक्षु-सङ्घ का नवीन रूप से सङ्गठन हुआ और बड़ी तत्परता के साथ प्रचार-कार्य होने लगा। प्रायः सौ वर्षों तक बड़ी शान्ति और शृङ्खला के साथ प्रचार-कार्य होता रहा। इसके बाद ईसा की पूर्व ३७७ शताब्दी में सङ्घ के कतिपय भिक्षुओं ने अपने लिए कुछ विशेष अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा की। वैशाली में महासमिति का एक विशेष अधिवेशन हुआ। परन्तु कोई मीमांसा न हो सकी। इस सभा में सात सौ भिक्षु उपस्थित थे। विशेष अधिकार-दावा अस्वीकृत हुआ। फलतः महात्मा आनन्द द्वारा सङ्गठित सङ्घ दो दलों में विभक्त हो गया और उसी समय बौद्ध-धर्म की 'महा साङ्घिक' और 'खेरबादी' नाम की दो शाखाओं का सूत्रपात हुआ, जो अन्त मे 'महायान' और 'हीनयान' नाम से प्रसिद्ध हुईं।

यद्यपि उपर्युक्त कथन के अनुसार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों मे बौद्ध-धर्म का प्रसार हो गया था और कई प्रदेशों के नरेशों द्वारा भी उसे प्रश्रय प्राप्त हुआ था, परन्तु बौद्ध-धर्म मे जाति-भेद को कोई स्थान न था, इसलिए अधिकतर अनार्यों ने ही इसे अपनाया था और जहाँ आर्यों का विशेष प्रभाव था, वहाँ इसे प्रश्रय भी बहुत ही कम प्राप्त हुआ था। परन्तु ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी मे, जिस समय मगधराज्य भारतवर्ष के शक्तिशाली राज्य के रूप मे परिणत हुआ, उस समय राज्याश्रय पाकर बौद्ध-धर्म ने भी विशेष प्रसार लाभ किया। महाराज अशोक के पितामह महाराज चन्द्रगुप्त ने ग्रीकों के अधीनता-पाश से भारतवर्ष को मुक्त करके बड़ी भारी कीर्त्ति प्राप्त की थी। नर्मदा-तट से लेकर हिमालय और हिन्दू-कुश पर्वत तक, समस्त उत्तर भारत के प्रदेश महाराज चन्द्रगुप्त के अधीन थे। ग्रीक सेनापति सेल्यूकस ने महाराज चन्द्रगुप्त से हार कर उन्हें पञ्जाब और काबुल का शासनाधिकार प्रदान किया। साथ ही अपनी कन्या के साथ उनका विवाह करके भारतवर्ष और ग्रीस को अत्यन्त प्रिय बन्धन मे आबद्ध कर लिया। उस समय ये दोनों देश विशेष शक्तिशाली और सभ्य समझे जाते थे। इस प्रिय सम्बन्ध के कारण दोनों जातियों का विशेष कल्याण साधित हुआ था। ग्रीकों ने भारतवर्ष से ज्योतिष और गणित आदि विद्याएँ सीखने का सुयोग प्राप्त किया। परन्तु चन्द्रगुप्त तथा उनके पुत्र बिम्बिसार बौद्ध न थे। सम्भवतः देश की राजनीतिक उलझनों को सुलझाने में लगे रहने के कारण इन दोनों महापराक्रमशाली नरेशों को इस नवीन धर्म की ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिला। इसी लिए इन दोनों नरेशों के राजत्वकाल मे बौद्ध-धर्म की कोई विशेष उन्नति न हो सकी।

इसके बाद मगध के राजसिंहासन पर सम्राट अशोक समासीन हुए और इन्होंने इस धर्म की उन्नति में विशेष सहायता प्रदान की। बौद्ध-ग्रन्थों में सम्राट अशोक के बौद्ध होने के सम्बन्ध में एक विचित्र कहानी प्रचलित है। कहते हैं, अशोक पहले अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी थे। परन्तु एक युद्ध मे असंख्य लोगों की हत्या करने के कारण एकाएक उन्हें अनुताप हुआ और वे बौद्ध-धर्मावलम्बी हो गए। परन्तु सम्राट अशोक के शिला-लेखों से प्रतीत हुआ है कि वे सदैव से ही एक दयावान, न्यायप्रिय और उदार प्रकृति नरेश थे। राजसिंहासन प्राप्त करने के आठ वर्ष बाद महाराज अशोक ने कलिङ्ग देश विजय किया था, इस युद्ध मे बहुत से आदमी मारे गए थे। इस हिंसामूलक युद्ध से अशोक का हृदय व्यथित हो गया था। अशोक के एक शिला-लेख में लिखा है कि कलिङ्ग के अधिवासी बड़े भले आदमी, धार्मिक और उदार थे। युद्ध में ऐसे लोगों के मारे जाने से अशोक को स्वतः बड़ा दुःख हुआ था। इसीलिए

उन्होंने अहिंसामूलक बौद्ध-धर्म का आश्रय लिया था। इस घटना के अढ़ाई वर्ष बाद ही उन्होंने धर्म-याजक रूप से बौद्ध-सङ्घ मे प्रवेश किया था और तब से बराबर इस धर्म की उन्नति मे लगे रहे। सारे संसार मे इस धर्म को फैला देने के लिए राजर्षि अशोक ने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए उन्होने अपने पुत्र महेन्द्र, अपनी कन्या सङ्घमित्रा को सिहल-द्वीप भेजा था। सिंहल-नरेश तिस्स ने बौद्ध-धर्म स्वीकार किया था। सिंहलराजकुमारी अनुला भी सङ्घमित्रा से दीक्षा ग्रहण करके बौद्ध भिक्षुनी बनी थीं। बौद्ध-धर्म के महत्त्व और प्रभाव के विस्तार के लिए अशोक ने देश के कोने-कोने मे अगणित स्तूपों, विहारो, चैत्यों और मन्दिरों की स्थापना की थी। पर्वतों की शिलाओं और शिला-स्तम्भों पर बौद्धधर्म की सुनीति और उपदेशो को अङ्कित करा कर उन्होने इस धर्म के प्रसार में विशेष सहायता दी थी। शासन-कार्य के निर्वाहार्थ जो राजकर्मचारी नियुक्त होते थे, वे सभी बौद्ध-धर्मावलम्बी ही होते थे। इन्हे 'धर्म-महापात्र' और 'धर्म-युक्त' की पदवियाँ दी गई थीं, अशोक ने धर्ममहापात्रो और धर्मयुक्तों का एक दल तैयार किया था। ये ही शासन-कार्य का सञ्चालन किया करते थे। इसके सिवा धर्म-प्रचारकों का एक दल भी उन्होंने बनाया था, जो एशिया, यूरोप और अफ्रिका मे बौद्धधर्म के प्रचारार्थ भेजे गए थे। बौद्ध-शास्त्रों की आलोचना के लिए महाराज अशोक ने बौद्ध-भिक्षुओ की एक महती सभा बुलाई थी, जिसमें भारत, सिंहल, अफग़ानिस्तान और अन्यान्य देशों से एक हज़ार भिक्षु आए थे। इसके सिवा महाराज अशोक ने बौद्धधर्म के प्रचारार्थ और भी कितने ही कार्य किए थे। इसीलिए आज भी बौद्ध-जगत इस महान राजर्षि का नाम बड़ी श्रद्धा और भक्ति से स्मरण किया करता है।

अशोक के बाद ही महात्मा बुद्धघोष का नाम आता है। इस महापुरुष ने भी बुद्धधर्म के प्रचार के सम्बन्ध में स्तुत्य प्रयत्न किया था। इन्होंने ईसा की ४५०वीं शताब्दी में सिहल से ब्रह्मदेश जाकर बौद्धधर्म का प्रचार किया था। ईस्वो सन् ६३८ मे श्याम राज्य में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था। इसके बाद सुमात्रा आदि देशो में इसकी विजय-दुन्दुभी बजी थी। इन समस्त देशों में हीनयान बौद्धधर्म प्रचलित है।

ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी में पश्चिमोत्तर भारत में महायान बौद्धमत प्रचलित हुआ था। इसके बाद कुशन-वंशीय नरेश कनिष्क ने काश्मीर विजय किया था। यारकन्द, खासगर और खोकन आदि राज्य इसी के अधीन थे। और इन तमाम राज्यों में बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था। कनिष्क बौद्धधर्म के विशेष अनुरागी थे। अशोक की भाँति इन्होंने भी बहुत से विहार और स्तूप आदि का निर्माण कराया था। कनिष्क के राजत्व-काल में चीन में बौद्धधर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ था। अशोक की तरह बौद्धधर्म-शास्त्रों की व्याख्या आलोचना के लिए कनिष्क ने भी बौद्ध संन्यासियों की एक महती सभा बुलाई थी। इस महासभा के बाद से ही बौद्धों के हीनयान और महायान सम्प्रदायों में विशेष पार्थक्य परिलक्षित हुआ था।

चीन में उन दिनों ह्यानवंशीय नरेश मिङ्गती राजा था। इसी के उद्योग से चीन मे बौद्धधर्म का प्रचार हुआ। इसने साई-इन (Tsai-yin) नाम के एक दूत को भारतवर्ष भेज कर बहुत सा बौद्धधर्म-ग्रन्थ और धर्म-प्रचारकों को अपने देश में बुलवाया था। एक सफेद घोड़े पर बहुत सी पुस्तकें लाद कर चीन भेजी गई थीं। चीन के हेनान नामक नगर में इस धर्म-ग्रन्थ-वाही अश्वराज की स्मृति-स्वरूप एक 'पैगोडा' बनाया गया था, जो आज भी मौजूद है। इसे 'पाई-मा-जू' या श्वेताश्व मन्दिर कहते हैं।

इसी समय से चीन का हेनान नगर बौद्धधर्म का केन्द्र-स्थल बन गया था और ईसा की तेरहवीं शताब्दी तक यहाँ भारतीय धर्म, शिल्प, साहित्य

और दर्शन-शास्त्र का यथेष्ट समादर होता रहा। ईसा की तीसरी सदी में, चीन-सम्राट उन्ती के राजत्व-काल में बोधिधर्म नाम का एक भारतीय भिक्षु चीन गया था, जिसने चीन में ध्यान-तत्व का प्रचार किया था। हेनान के शाओलिङ्गजू मन्दिर में यह भारतीय भिक्षु लगातार नौ वर्षों तक ध्यान-मग्न था।

ईसा की सातवी शताब्दी में ताई-सुङ्ग चीन का राजा था। इसने अपने साम्राज्य में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ विशेष उद्योग किया था। इसके साथ ही भारतीय सभ्यता का भी यह प्रेमी था। इसने हेनान में एक विश्वविद्यालय की स्थापना कराई थी, जहाँ विद्यार्थियों को भारतीय शास्त्रों का अध्ययन कराया जाता था। इस विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा चीन, जापान और कोरिया आदि देशों में बौद्धधर्म और भारतीय सभ्यता का बहुत प्रचार हुआ था। सम्राट ताई-सुङ्ग के शासन-काल मे ही इतिहास-प्रसिद्ध चीनी भिक्षु इयान्-चुयाङ्ग भारत भ्रमण के लिए आया था। इसके वापस जाने के बाद ईचिङ्ग आया, जो लगातार पचीस वर्षों तक यहाँ रहा। उस समय चीन के बौद्ध धर्मानुयायी भारत को अपना महा तीर्थ-स्थान मानते थे। जो चीनी पर्याटक इस देश का भ्रमण करके वहाँ वापस जाते थे, वे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाते थे।

जापान में ठीक किस समय बौद्धधर्म का प्रचार हुआ था, इस सम्बन्ध में इतिहास के पण्डितों में मतभेद है। परन्तु बहुतों का अनुमान है कि ईसा की छठी शताब्दी में जापान ने बौद्धधर्म स्वीकार किया था। बौद्धधर्म के साथ ही जापानियों ने बौद्ध सभ्यता का भी यथेष्ट आदर किया था। उसी समय से आज तक जापानी विद्वान बड़े चाव से संस्कृत साहित्य का अध्ययन और मनन करते आते है। आज भी जापान के बौद्धों द्वारा परिचालित सात महा-विद्यालयों में संस्कृत साहित्य-विज्ञान का पठन-पाठन होता है। ईसा की सातवीं शताब्दी मे सुप्रसिद्ध चीनी पर्याटक युवान-चुयाङ्ग ने बौद्ध-शास्त्रों के अनुवाद और प्रचार के लिए चीन में एक बड़ी संस्था स्थापित की थी। इस संस्था मे बहुत से जापानी पुरोहित भी थे, जो वहाँ संस्कृत साहित्य का अध्ययन किया करते थे। इसके बाद ईस्वी सन् ७३५ में बोधिसेन नाम का एक भारतीय भिक्षु अपने सहकर्मियों के साथ जापान में बौद्धधर्म का प्रचार करने गया था। इसके उद्योग से जापान में बौद्धधर्म का विशेष प्रचार हुआ था।

परन्तु जापान में जाकर, कुछ दिनों के बाद बौद्धधर्म की विचित्र रूप से कायापलट हो गई। वहाँ वह कई शाखाओं में विभक्त हो गया। इनमे 'दाईनीची' सम्प्रदाय विशेष रूप से विख्यात है। जापानी पुराणों में सर्य-देवता का नाम 'दाईनीची' है। 'दाई' शब्द का अर्थ महान् और 'नीची' शब्द का अर्थ सूर्य है। पहले इस सम्प्रदाय के उपास्य-देव बुद्ध का नाम "महावैरोचन तथागत' था। इसके बाद यह नाम परिवर्तित होकर 'विरुशानो निवोराई' हो गया। परन्तु अन्त में यह 'दाईनीची नियोराई' हो गया।

राईसेन (Raisen) नाम का एक संस्कृतज्ञ जापानी ईसा की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में चीन गया था और कुछ दिनों के बाद वहाँ की बौद्ध-शास्त्रों का अनुवाद करने वाली संस्था का अध्यक्ष बन गया था। इसने प्राज्ञ नाम के एक भारतीय भिक्षु की सहायता से बौद्ध-सूत्रों का अनुवाद किया था। यह ग्रन्थ आज भी जापान में प्रचलित है। इसका नाम 'शिष्वी को आज्ञो' है। यह वहाँ बौद्धधर्म सम्बन्धी महान और प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। जापान ने अति प्राचीन काल में ही बौद्धधर्म और भारतीय सभ्यता को ग्रहण किया था। उन्ही दिनों जापान-सम्राट सागार का पुत्र भारत का भ्रमण करने आया था। परन्तु दुर्भाग्यवश चीन के लाओस नामक नगर में उसकी मृत्यु हो गई।

जापान तथा उसके आस-पास के देशों में बौद्धधर्म के प्रचार का सारा श्रेय चीन को है। ईस्वी सन् ३७२ मे चीन वालों ने ही इस धर्म का प्रचार कोरिया में किया था। इससे ईसा की चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी में कोचीन, फरमोजा, मङ्गोलिया तथा अन्यान्य देशों में इस धर्म का प्रचार हुआ था।

इतिहास-पण्डितों का अनुमान है कि प्रथम अभ्युत्थान के बाद ही इस धर्म का प्रचार नेपाल मे हुआ होगा। परन्तु ईसा की छठीं शताब्दी तक यह वहाँ का राजधर्म नहीं हुआ था। ईस्वी सन् ६३२ मे तिब्बत के प्रथम बौद्ध राजा ने बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों के संग्रहार्थ अपना एक दूत नेपाल भेजा था। और इस कार्य में उसे नेपाल के तत्कालीन नरेश से विशेष सहायता प्राप्त हुई थी। सम्भवतः इसी समय नेपाल के नरेशों ने इसे अपना राजधर्म बनाया होगा।

ईसा की छठीं शताब्दी में एशिया, अफ्रिका और यूरोप के कई देशों में इस धर्म का प्रचार हुआ था। यही इसके वास्तविक अभ्युत्थान का युग था और इसके द्रुत विकाश का कारण उसकी उदारता, सार्वभौमिकता और मैत्री-भाव था। इसके प्रचारक सच्चे साधु, महान त्यागी और निस्पृह मनुष्य थे। अपने सत्यधर्म के प्रचार द्वारा एक-मात्र संसार का कल्याण साधन ही उनका उद्देश्य था। उनके इस महान धर्म की बदौलत एशिया महादेश में जिस सभ्यता का विकाश हुआ था, उसका प्रभाव आज भी है, आगे भी रहेगा।

अनुरोध

[श्री० वीरेश्वर जी]

जिसकी प्यारी गोदी में,
सिसकियाँ स्वयं खिल पड़तीं।
जिसके हाथों बन मेरी,
गुड़ियाँ परियों सी हँसतीं॥

अनुराग भरे सूर्योदय,
जिसने हैं मुझे दिखाए।
नित चूम-चूम कर जिसने,
मेरे शिशु-भाव जगाए॥

उसकी ही कविता सोए,
हो मृदुल भावना रोती?
मैं कैसे मानूँ बोलो,
हो उसी हृदय का मोती?

यह कविता नहीं तुम्हीं हो,
चिन्ता की चादर ताने।
रो रही हमारी हिन्दी,
उस भूली निधि को पाने॥

माँ बन, चन्दा सी बेटी
पा, दिल के वैभव सारे—
मैं समझा, व्योम-सदृश तुम,
बिखरा दोगी वे तारे॥

पर स्वाति-बिन्दु पा, सीपी
तुम बनीं, रहीं चुप होकर।
यों एक बूँद में डूबीं,
भूलीं अथाह रत्नाकर॥

जागो, अपनी भूलों की
ही कह दो सरस कहानी।
हृदयों का है अमृत वह
आँखों का खारा पानी॥

बस, इसीलिए कहता हूँ,
तुम इतनी दया दिखाना।
निधि समझ, कहीं फोड़े को
मत अधिक बढ़ाती जाना॥*

* फ़रवरी के 'चाँद' में प्रकाशित श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की 'प्रार्थना' शीर्षक कविता का उत्तर।

लाल रणजीतसिंह

[श्री० पदुमलाल पुन्नालाल जी बख्शी, बी० ए०]

लाल रणजीतसिंह न रहे। जीवन और मृत्यु की इस लीला-भूमि में किसी की भी मृत्यु का समाचार सुन कर कोई क्षुब्ध नहीं होता। काल के गर्भ मे अनन्त जीवन-धाराएँ लुप्त होती रहती हैं। तब एक जल-विन्दु के निपात से किसका गात्र कम्पित हो सकता है? परन्तु आज मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मानो मुझे वृद्धावस्था ने आकर घेर लिया है। मेरे देखते ही देखते एक-एक कर कितने ही लोग चले गए। न जाने कहाँ, किस लोक में, एकत्र होकर वे सब मेरी राह देख रहे हैं। क्या कभी उनसे फिर भेंट होगी?

लाल रणजीतसिंह इलाहाबाद आए थे। उन दिनों मैं जैन-बोर्डिङ्ग के सामने एक छोटे से मकान मे रहता था। वहीं लाल साहब आकर ठहर गए। उन्हीं दिनों में मेरे दो मित्र भी आए हुए थे। एक थे 'जगदीश' और दूसरे थे 'महेश'। एक साहित्य के आचार्य थे और दूसरे दर्शनशास्त्र के। प्रति दिन दोनो में विवाद हुआ करता था। लाल साहब उपन्यासों के प्रेमी थे। उन्हे भी साहित्य-चर्चा पसन्द थी। वे भी एक दिन उसी विवाद में सम्मिलित हो गए। आज यहाँ मैं उसी की बात लिख रहा हूँ।

सन्ध्या हो गई थी। मैं इण्डियन प्रेस से काम करके घर लौटा। महेश और जगदीश दोनों बैठे बाते कर रहे थे। मेरे आने पर लाल साहब भी वहीं आकर बैठ गए और महेश से कहने लगे—"मै आज एक उपन्यास पढ़ रहा था। वह है तो एक विख्यात लेखक की कृति, पर उसे पढ़ कर मुझे विशेष प्रसन्नता नही हुई। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि आधुनिक कथा-साहित्य रस से हीन होता जा रहा है। आजकल उपन्यासों मे चरित्रों की सृष्टि के लिए उतनी चिन्ता नही की जाती, जितनी चरित्रगत विशेषता का विश्लेषण करने के लिए की जाती है, इसी से कदाचित उसकी हृदय-ग्राहिता नष्ट हो जाती है।" महेश ने कहा—"पर सत्य के अनुसन्धान मे ही आनन्द की उपलब्धि होती है और चरित्र-वैचित्र्य का विश्लेषण करने से ही हम सत्य को जान सकते हैं।" जगदीश ने कहा—"यहीं तुम भूल कर रहे हो। मनुष्य-जीवन कोई रासायनिक पदार्थ नहीं है, जिसका विश्लेषण कर आप तत्त्व निकाल सकें। मनुष्य को खण्ड-खण्ड कर देखने से हम कभी उसके जीवन का रहस्य नहीं जान सकते। वह जैसा है, हमें ठीक वैसा ही समग्र भाव से ही उस पर विचार करना चाहिए। जहाँ जीवन की सम्पूर्णता है, वहीं दृष्टि-पात करने से ही हम जीवन का यथार्थ तत्त्व जान सकेंगे। इसीलिए प्राचीन काल में महत् चरित्रो की सृष्टि की जाती थी। पर आजकल उपन्यासों में व्यक्तिगत वैचित्र्य को ही स्पष्ट करने के लिए यत्न किया जाता है।"

लाल साहब ने कहा—संसार मे छोटे-बड़े सभी तरह के मनुष्य रहते हैं। वे सदैव महत्त्वपूर्ण कार्यों में निरत नही रहते। अधिकांश का जीवन-काल ऐसे ही कार्यों मे व्यतीत होता है, जो तुच्छ कहे जाते हैं। मनुष्य अपने जीवन मे सुख-दुःख का अनुभव करता है। कभी वह किसी से प्रेम करता है तो कभी किसी से घृणा करता है। काम-क्रोध, मद-लोभ, मोह के चक्र मे वह पड़ा रहता है। मनुष्यो का यह दैनिक जीवन क्या उपेक्षणीय है?

जगदीश ने उत्तर दिया—तुच्छ कार्यों में निरत रहने पर भी मनुष्य इतना अवश्य अनुभव करता

है कि उसका जीवन इतना ही नहीं है। उसके हृदय में यह विश्वास छिपा रहता है कि वह कुछ और भी है। उस कुछ और को प्राप्त करने की वह चेष्टा भी करता है। इसीलिए वह जब किसी मे किसी प्रकार की महत्ता देखता है, तब वह उसकी ओर आकृष्ट होता है। वह शक्ति की महत्ता को समझता है, इसीलिए वह शक्ति का अनुभव करना चाहता है, तभी मनुष्यों में शक्ति के जो-जो प्रतिनिधि होते हैं, वे सभी उसकी कल्पना के नियम हो जाते हैं। यह सच है कि सभी समय में मनुष्य किसी एक में ही शक्ति की पराकाष्ठा या महत्ता का आदर्श नहीं देखता। उसका यह आदर्श बदलता रहता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि महत् भाव की ओर मनुष्यों को अग्रसर कराने के लिए ही साहित्य की सृष्टि होती है। यदि साहित्य मे केवल चरित्रगत विशेषताओ का ही विश्लेषण किया गया, तो उससे हम लोगों मे कोई महत् भाव नहीं आ सकता।

महेश ने कहा—कथाओं के प्रति मनुष्य मात्र का जो अनुराग है, उसका कारण यह है कि एक मनुष्य स्वभावतः दूसरे को जानना चाहता है। पहले उसे कौतूहल होता है; फिर सहानुभूति। असाधारणता से केवल कौतूहल का उद्दीपन होता है, परन्तु सहानुभूति के लिए साधारण बातें ही चाहिए। इसीलिए जिन कथाओ में असाधारण विस्मयकर घटनाओ का विवरण रहता है, उनसे पाठको को विनोद भले ही हो, पर उनसे उनके हृदय में सहानुभूति का भाव जागृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मनुष्य के चरित्र मे जहाँ दुर्बलता है, वहीं हम लोगो की सहानुभूति उत्पन्न होती है। महत्ता से केवल विस्मय, आतङ्क या भक्ति आदि भावो का उद्रेक भले ही हो, परन्तु पाठक उस महत्ता को अपना नहीं सकता। इसीलिए जो उच्च कोटि के लेखक है, वे अपने पाठकों को असाधारण घटनाओं के फेर में नहीं डालना चाहते। वे उन्हे उनके प्रति दिन के सुख-दुःख की बातें बतलाते हैं। इन्हीं से पाठकों की सहानुभूति जागृत होती है। अच्छे लेखकों की रचनाओं का सबसे अच्छा लक्षण यह है कि उन्हे पढ़ते समय हम तन्मय हो जाते हैं। सत्य सदैव सरल, सुन्दर और साधारण होता है। अतएव जिनकी रचनाओ मे सत्य की सरल और सुन्दर छवि आती है, उन्हीं के प्रति हमारा अनुराग होता है। जो लोग कथाओ से केवल कौतूहलोद्दीपन चाहते है, उनके लिए सत्य के ये सरल चित्र चित्ताकर्षक नहीं होते। परन्तु पाठकों के हृदय पर ऐसे चित्रो का प्रभाव पड़ता है।

जगदीश ने कहा—जब जाति की शान्ति क्षीण होने लगती है, तभी वह महत्ता की ओर अग्रसर नहीं होती। और तभी वह महत्ता में असाधारणता का अनुभव करती है। जब किसी जाति का उत्थान होता है, तब उसमे एक दैवी शक्ति सी आ जाती है और तब वह असाधारणता की प्राप्ति के लिए ही उत्सुक होता है। साधारण बातें उसको बिल्कुल तुच्छ जान पड़ती हैं। सच तो यह है कि इसी कारण से साहित्य का स्वरूप परिवर्तित होता है। भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न आदर्शों की सृष्टि होती है। मानव-समाज के उत्थान-पतन के साथ उसके आदर्श भी उच्च कोटि अथवा निम्न कोटि के होते हैं। वाल्मीकि और व्यास के युग में साहित्य का जो आदर्श था, वह कालिदास के युग में न रहा। और न कालिदास का आदर्श मुग़ल-काल मे रह सका। आधुनिक युग मे दूसरे ही आदर्श ग्रहण किए जाते हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि हिन्दू जाति भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का अतिक्रमण करती आई है। कथाओं मे मानव-जीवन की चिरन्तन घटनाएँ और उनकी उच्चतम अभिलाषाएँ छिपी रहती हैं। सच तो यह है कि इन्हीं कथाओं के द्वारा हम किसी भी जाति की जीवन-धारा की गति निर्दिष्ट कर सकते है। प्राचीन काल मे सभी देशों के साहित्य मे विराट भावों की प्रधानता

देखते हैं। ये विराट भाव जाति में तभी प्रचलित हुए हैं, जब उसमें विजय के लिए असीम उत्साह था। प्राचीन काल में राजा ही मानवीय शक्ति का प्रतिनिधि होता था। वही जाति का गौरव-स्थल था। अतएव वही जाति का आदर्श था। इसीलिए सभी देशो के प्राचीन साहित्य में राजा का ही वर्णन है। राजा को आदर्श मान कर मनुष्यो ने उसी में अपनी समस्त इच्छाओं का चरम परिणाम देखना चाहा। ये राजा सबसे अधिक रूपवान हैं। उनमे शक्ति भी असाधारण है। मनुष्यों मे जो सर्वोच्च गुण हो सकते हैं, उन सबका वह आगार है। यह सब कुछ होने पर भी इन कथाओं मे किसी भी राजा का जीवन सुखमय नही है। बात यह है कि सुख और विलास उन्नतिशील जाति के लिए तुच्छ है। वह जानती है कि उन्नति के मार्ग पर कितने ही विघ्न और बाधाएँ हैं—कितने ही सङ्कट और विपत्तियाँ हैं। उन्ही सबको अतिक्रमण करने पर जाति उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचती है। इसीलिए प्राचीन कथाओ के सभी नायको को विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। उनके शत्रु भी विकट थे। परन्तु अन्त मे उन्होंने सभी शत्रुओं को पराभूत कर दिया। सङ्कट में ये नायक कभी धैर्यच्युत नहीं हुए। प्रलोभन में पड़ कर कभी इनकी मति भ्रष्ट नही हुई। जब तक किसी जाति का साम्राज्य स्थापित नही हुआ, तब तक उसमें ऐसे ही आदर्श प्रचलित रहे। उसके बाद धर्म की महिमा से महीयान व्यक्तियों के आदर्श स्वीकृत हुए। जब तक धार्मिक भाव प्रबल रहे, तब तक ये धार्मिक आदर्श भी प्रचलित रहे। आधुनिक युग मे एक ओर संशयावस्था है और दूसरी ओर विलासप्रियता। जो विज्ञान पहले प्रकृति के रहस्यमय द्वार का उद्घाटन करने के लिए प्रयत्नशील था, वह अब मानव-जाति की विलास-सामग्री ढूँढ़ने मे तत्पर है। न जाति में वह अदम्य उत्साह है और न वह प्रबल शक्ति। इसीलिए विराट चरित्रों की सृष्टि लोगो को असाधारण जान पड़ती है। मार्लो और शेक्सपीयर के नाटको मे इङ्गलैण्ड के विजयोल्लास और दर्प के चित्र है। परन्तु आधुनिक नाटकों मे समाज की हीनावस्था के ही चित्र अङ्कित होते हैं।

महेश ने कहा—तुमने जो कहा वह केवल सत्यांश है, सम्पूर्ण सत्य नही है। मनुष्यों को अपने जीवन के आरम्भ-काल मे ही अपने पुरुषार्थ से एक अलक्षित शक्ति से युद्ध करना पड़ा। पद-पद पर उसने उस अलक्षित शक्ति का अनुभव किया। जब उसने प्रकृति की सारी शक्तियो को वशीभूत कर, निर्जन वन मे विशाल नगरी स्थापित कर ली—ऐसे नगर, जहाँ वर्षा के अट्टहास और तड़ित के उग्र विलास में भी वह निशङ्क होकर आत्म-विनोद करता था, ग्रीष्म के प्रचण्ड उत्ताप में वह निर्भय होकर विहार करता था—तब भी उस अलक्षित शक्ति के सम्मुख उसे नतमस्तक होना पड़ा। पुराणों में तारकासुर की कथा मनुष्य-जाति के इसी पराभव की सूचना देती है। तारकासुर ने समस्त देवो को परास्त कर अपने राज्य-भवन में उनको दास बना कर रख छोड़ा था, उसकी आज्ञा के विपरीत न तो वायु चल सकती थी, न सूर्य प्रकाश दे सकता था और न इन्द्र वर्षा कर सकता था। परन्तु उसे भी उस दुर्जेय शत्रु से हार खानी पड़ी। उसी शक्ति से वह पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अन्त मे उसका संहार कर डाला। पुराणों में जो कथाएँ वर्णित है, उन सबका लक्ष्य एकमात्र यही है, वह यह कि मनुष्य एक अलक्षित शक्ति के सर्वथा वशीभूत है। उसका सारा पुरुषार्थ उसके आगे व्यर्थ हो जाता है, वही उसका भाग्य है, वही उसकी नियति है। एक कथा में यह कहा गया है कि हिरण्यकशिपु ने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर उससे यह वर माँगा कि वह देव, मनुष्य और पशु तीनों के लिए अवध्य है। जल और स्थल पर न मारा जा

सके। दिन और रात्रि में उसकी मृत्यु न हो। इस प्रकार वर माँग कर वह मानो उस अलक्षित शत्रु को भी परास्त कर देना चाहता था। परन्तु नियति ने उसका उपहास करके उसे उससे मरवाया, जो न मनुष्य था, न देव था, न पशु था—था वह नृसिंह। न जल पर उसकी मृत्यु हुई, न स्थल पर। मृत्यु हुई उस नृसिंह के अङ्क पर। न दिन मे वह मरा न रात मे। उसकी मृत्यु हुई सन्ध्या मे। सभ्यता के आदि काल मे सभी दशो के मनुष्यो ने उस अलङ्घनीय, अदम्य, दुर्जेय शक्ति का अनुभव किया। ग्रीक साहित्य का आदि काव्य 'इलियड' तो केवल नियति की ही कथा है। उसमे मनुष्यो की प्रचण्ड शक्ति, अदम्य उत्साह सभी कुछ वर्णित है। परन्तु उन सबके अन्त मे ट्राय की निर्जन समर-भूमि मे एकमात्र नियति अट्टहास करती हुई दिखाई देती है। और चारो ओर मनुष्यो का केवल हाहाकार ही सुनाई पड़ता है। प्राचीन युग में मनुष्य-जाति को वाह्य प्रकृति से विशेष प्रतिरुद्ध होना पड़ा। जब तक उसने अपनी अन्तरात्मा की महत्ता न देखी, तब तक वह प्रकृति से पराभूत होने पर अदृश्य शक्ति की महिमा को स्वीकार करती रही। परन्तु जब उसने अपनी अन्तःशक्ति का अनुभव कर लिया, तब वाह्य प्रकृति की शक्ति उसे तुच्छ मालूम होने लगी। धर्म की महिमा से महीयान मध्य युग के सन्तों ने अन्तरात्मा की विभूति का दर्शन करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि साहित्य मे अदृष्ट-वाद की जगह धर्म की अलौकिकता ने प्रधानता प्राप्त कर ली। यह सम्भव है कि वह शक्ति सांसारिक शक्ति के द्वारा पराभूत हो जाय, परन्तु उसकी महिमा सांसारिक महिमा को अतिक्रमण कर एक अलौकिक जगत में अपनी अचल महिमा स्थापित करती थी। इस प्रकार उस शक्ति का पराभव कभी सम्भव न था। वह सत्य की शक्ति थी, वह धर्म की शक्ति थी। किन्तु उसका विकाश केवल महान आत्माओ मे सम्भव था। इसीलिए मध्य युग की कथाओं में महान आत्माओं की गाथाएँ है, सर्वसाधारण की कथाएँ नही। आधुनिक युग मे मनुष्य-मात्र में उसी शक्ति का अनुभव कर कवियों ने साधारण मनुष्यों को ही अपनी रचनाओ मे नायक का स्थान प्रदान किया है। नीच हो या क्षुद्र, कोई भी मनुष्य ऐसा नही है, जिसके अन्तर्जगत मे उस ज्योतिमय शक्ति की लीला न दिखाई पड़ती हो। साधारण मनुष्य के दैनिक जीवन मे भी, उनके साधारण सुख-दुःख और पाप-पुण्य के क्रिया-कलापो मे भी जीवन की एक सम्पूर्णता है, जिससे समस्त विश्व मे एक ही भाव, एक ही शक्ति, एक ही सत्ता का अस्तित्व प्रमाणित हो जाता है।

लाल साहब ने कहा—आधुनिक साहित्य में विराट चरित्रो की अथवा महत भावों की प्रधानता क्या सम्भव ही नही है? तुम लोगों के विवाद से तो मुझे ऐसा जान पड़ता है कि कवि केवल अपने युग की एक वस्तु मात्र है। मानो उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है ही नहीं। मेरी समझ में तो जिनमें प्रतिभा है, वे मौलिक चरित्रों की सृष्टि अवश्य करते है। वाल्मीकि हो या होमर, कालिदास हो या शेक्सपियर, स्काट हो या बङ्किमचन्द्र, चरित्रों की सृष्टि मे ही उनका विशेष कर्तृत्व प्रकट होता है। यदि प्राचीन काल के कवियो मे प्रतिभा थी, तो आधुनिक काल के कवियो मे प्रतिभा का अभाव नहीं हो गया है। मै तो यह समझता हूँ कि आधुनिक उपन्यासो का रहस्य जानने के लिए हमे प्राचीन कथाओ का अनुसन्धान नही करना पड़ेगा। आधुनिक साहित्य मे कथाओं का एक दूसरा ही रूप हो गया है। उनका स्थान भी उच्च हो गया है। सच तो यह है कि प्राचीन काल मे महाकाव्यो का जो स्थान था, उसे अब आधुनिक उपन्यासो ने ले लिया है। प्राचीन महाकाव्यो मे और आधुनिक उपन्यासो मे जो भेद है, वह केवल रूप का भेद है। लक्ष्य दोनों का एक ही है। यह सच है कि महाकाव्य में जिन बातो

का समावेश होता था, उनको अब कोई भी उपन्यासकार अपने उपन्यास में स्थान नहीं दे सकता। यदि वह ऐसा करे तो उसकी कथा का रस ही नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार यदि महाकाव्यों में उन बातों को स्थान दिया जाय, जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन उपन्यासकार किया करते हैं, तो उस महाकाव्य का कोई महत्त्व ही न रह जायगा। बात यह है कि विषय महत होने पर भी उपन्यासकार की कला के साधन कुछ दूसरे ही होते हैं। अतएव यह कहना चाहिए कि प्राचीन काल से लेकर आज तक आप लोगो ने जिस वस्तु का विकाश बतलाया है, वह केवल रूप का विकाश है—वस्तु का विकाश नही। रूप के लिए हम दूसरों का आश्रय ग्रहण करते हैं। परन्तु वस्तु हम लोगों की अनुभूति का फल है। वाल्मीकि ने रामचरित का वर्णन किया है और तुलसीदास तथा केशवदास ने भी रामचन्द्र की कथाएँ लिखी हैं। विषय एक है, रूप भी एक है; क्योंकि तीनों ने महाकाव्य ही लिखे हैं, परन्तु भेद उनमें प्रत्यक्ष है, और उसका एकमात्र कारण है उनकी पृथक्-पृथक् अनुभूति।

महेश ने कहा—आप एक दूसरी ही बात की चर्चा करते हैं और हम लोगो का विवाद कुछ और ही था। परन्तु आपके इस कथन के विरुद्ध भी मैं कुछ कहना चाहता हूँ। साहित्य में कार्य-कारण का नियम उतना ही व्यापक है, जितना बाह्य जगत में। संसार में जब कोई कार्य होता है, तब उसका एक कारण भी होता है। साहित्य में सहसा किसी ग्रन्थ की सृष्टि नही हो जाती। कवि शून्यता से सामग्री नहीं प्राप्त कर सकता। उसके लिए एक विशेष बाह्य स्थिति की आवश्यकता होती है। सच तो यह है कि जब तक उसके लिए समाज प्रस्तुत नहीं है, तब तक वह प्रकट भी नहीं होता। जो भावनाएँ कवि के काव्य की उपजीव्य हैं, वे समाज में पहले से ही प्रचलित हो जाती हैं। यदि तुलसीदास के पहले भक्ति की भावना प्रबल न होती, तो रामचरित-मानस की सृष्टि भी न होती। सृष्टि होती तो ऐसे महाकाव्य की, जो किरातार्जुनीय का दूसरा रूप होता। यह भक्ति-भावना भी किसी कारण का परिणाम है। वह कारण क्या है, यह जानने के लिए हमें तत्कालीन और उसके पूर्ववर्ती इतिहास पर दृष्टि डालनी होगी। इतिहास और साहित्य से विशेष सम्बन्ध है। साहित्य से इतिहास स्पष्ट होता है और इतिहास से साहित्य। विद्वानो ने अब यह समझ लिया है कि साहित्य केवल कल्पना का क्रीड़ास्थल नहीं है और न वह उत्तेजित मस्तिष्क की सृष्टि मात्र है। वह अपने काल के मानसिक विकाश का चित्र है। हम लोगों के विवाद का मुख्य विषय यह विकाश ही था। प्राचीन काल, मध्य युग और आधुनिक युग में किन-किन भावों की प्रधानता होने के कारण साहित्य में किस-किस आदर्श की सृष्टि हुई और उन आदर्शों के द्वारा जाति की कितनी उन्नति या अवनति हुई, अभी हम लोगों के विवाद का विषय यही था।

मैंने कहा—पर वर्तमान साहित्य की एक विशेषता उसका आदर्श भी है। वर्तमान साहित्य का आदर्श है उन सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं को हल करना, जिनके कारण सर्वत्र अशान्ति फैली हुई है। आधुनिक साहित्य में तीन प्रकार के आदर्श स्वीकृत हुए हैं—रियलिस्ट, आइडियलिस्ट और रोमेण्टिसिस्ट। संसार में जो घटनाएँ प्रतिदिन होती हैं, उनका यथार्थ चित्रण करना रियलिस्ट कला-कोविदों का काम है। ऐसे लेखकों की रचना पढ़ते समय यही जान पड़ता है कि मानो हमने यह दृश्य स्वयं कहीं देखा है। यही नहीं, किन्तु उसके पात्रों के चरित्रों में हम अपने परिचित व्यक्तियों के जीवन का सादृश्य देख लेते हैं। आइडियलिस्ट लेखक एक आदर्श चरित्र के उद्घाटन की चेष्टा करते हैं। संसार की दैनिक घटनाओं में वे ऐसे भावों का समावेश करते हैं कि उनसे अपूर्व चित्र खिल उठता है। वह चित्र पाठकों

के हृदय पर स्थायी प्रभाव डालता है। पाठक अपने अनुभव द्वारा कवि के आदर्श की उच्चता को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लेखक सत्य का बहिष्कार नहीं करते। वे संसार की दैनिक घटनाओं से ही अपनी कथा के लिए सामग्री का संग्रह करते हैं। परन्तु उनकी कृतियों में घटनाओं का ऐसा विन्यास किया जाता है कि उनमें कुछ भी अलौकिकता या असाधारणता ज्ञात नहीं होती। पाठकों के मन में यही बात उदित होती है कि ऐसा हमने देखा तो नहीं है, पर देखना अवश्य चाहते हैं। रोमेण्टिक साहित्य कल्पना की सृष्टि है। उसमें साधारण घटनाओं में भी एक असाधारणता का अनुभव कराया जाता है। आधुनिक साहित्य में इन तीनों आदर्शों का समावेश हो रहा है। मेरी समझ में यह मानना भ्रमपूर्ण है कि आधुनिक साहित्य में रियलिज़्म की ही प्रधानता है। आधुनिक साहित्य का मुख्य उद्देश्य यही जान पड़ता है कि व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की रक्षा कर समाज के साथ उसका नैसर्गिक—यथार्थ—सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाय। जो कृत्रिम, अश्रेयस्कर व्यवधान हैं, वे नष्ट कर दिए जायँ। इसीसे आधुनिक साहित्य में वर्तमान काल की सभ्यता के अन्धकारमय भाग पर पर्दा डाल कर छिपाने की चेष्टा नहीं की जाती और उसी के साथ यह बात भी प्रकट कर दी जाती है कि वह किस प्रकार ज्योतिर्मय हो सकता है।

महेश ने कहा—मैं भी यही कहना चाहता हूँ। आधुनिक साहित्य में मैं किसी प्रकार की हीनता का अनुभव नहीं कर रहा हूँ। यह सच है कि पहले जैसे विराट चरित्रों की सृष्टि होती थी, वैसी सृष्टि अब नहीं होती। पर आजकल मनुष्यों के मानसिक भावो में एक बड़ा परिवर्तन हो गया है। पहले की तरह देश-काल में आबद्ध होकर वे सङ्कीर्ण विचारों के नहीं रहे हैं। उनमें यथेष्ट स्वतन्त्रता आ गई है। पहले मनुष्यों की जैसी प्रवृत्ति थी, उनमें प्रेम, घृणा आदि भावों का जैसा सङ्घर्षण होता था, वही लीला हम शेक्सपियर आदि की रचनाओं में देखते हैं। परन्तु अब यह बात नहीं है। आजकल युवावस्था की उद्दाम वासना और प्रेम व्यक्त करने के लिए हमे रोमियो-जूलियट अथवा एण्टोनी-क्लियोपेट्रा की सृष्टि करनी नहीं होगी। उनसे हमारा काम भी नहीं चलेगा। आजकल मनुष्य की भोग-लालसा के साथ ही एक सौन्दर्य-वृत्ति है, जिसमें समाज-बोध और अध्यात्म-बोध का मिश्रण हो गया है। उनके हृदय का आवेग रोमियो अथवा ओथेलो के समान सरल नहीं है। वह बड़ा जटिल हो गया है। 'क्राइम एण्ड पनिशमेण्ट' नामक उपन्यास में विपरीत भावों की अभिव्यक्ति इस तरह हुई है कि उसके पात्रों में जहाँ एक ओर नीच प्रवृत्ति है, वहाँ दूसरी ओर दिव्य भावों की प्रधानता है। जॉर्ज मेरेडिथ के 'दी ईगोइस्ट' का नायक सचमुच कैसा था, यह न तो वह जान सका और न उसके साथी ही। उपन्यास भर में उसके चरित्र की इसी जटिलता का विश्लेषण किया गया है। रवीन्द्र बाबू के 'घर-बाहर' नामक उपन्यास में सन्दीप के चरित्र में भी वही जटिलता है। सच तो यह है कि आधुनिक उपन्यासों के कितने ही प्रसिद्ध नायकों के चरित्र ऐसे अङ्कित किए गए हैं कि जब हम उनके संस्कारों के अनुसार उन पर दृष्टिपात करते हैं, तब तो हमें उनके चरित्र में हीनता दिखाई देती है। पर सत्य की ओर लक्ष्य रख कर देखने से यही कहना पड़ता है कि उनमें उज्ज्वलता भी है। वर्तमान युग परीक्षा का युग है। आधुनिक साहित्य मे रस और तत्त्व का अपूर्व सम्मिलन हो गया है। सच्ची बात तो यह है, रमेश बाबू, कि अतीत का सिर्फ गौरव ही अवशिष्ट रहता है। जो क्षुद्रता होती है, उसे काल नष्ट कर देता है। इसीसे अतीत से तुलना करने पर हमें वर्तमान गौरवपूर्ण प्रतीत नहीं होता। सत्य की परीक्षा से घबड़ा कर कल्पना के विलास-विभ्रम का आश्रय मत लीजिए।

लाल साहब ने कहा—आपका कहना सर्वथा उचित है। कल्पना द्वारा कम से कम उदर-पूर्ति की सम्भावना नहीं है और मेरे लिए सब से अधिक आवश्यक यही है। बख्शी जी, आप देख तो आइए कि अब कितनी देर है। अगर अधिक देर हो तो कल्पना का आश्रय लेकर हम लोग क्षुधा को कुछ देर और रोक रक्खें।

लाल साहब ने इस प्रकार उस दिन विवाद का अन्त कर दिया।

❀ ❀ ❀

आज लाल साहब नहीं हैं। केवल उनकी स्मृति रह गई है। लाल साहब की बातें जब मैं कर रहा था, तब मेरे एक साथी ने पूछा—"वे थे कौन? उन्होंने काम क्या किया है?" मैंने कहा—"भाई, वे कोई नहीं थे। छत्तीसगढ़ के एक छोटे क़सबे—खैरागढ़—में उनका जन्म हुआ और वहीं वे जीवन भर रहे। उन्होंने कोई भी बड़ा काम नहीं किया। इसी खेल में ही उन्होंने अपना जीवन व्यतीत कर दिया। पर अन्त तक उन्हें किसी ने भी कभी क्षण पर भी खिन्न नहीं देखा। सङ्कट किस पर नहीं आता, चिन्ता किसे नहीं होती, पर रणजीतसिंह ने हँसते-हँसते ही जीवन की यात्रा समाप्त कर ली।

रहे तुम तो हँसते ही नित्य,
सह लिया हँस कर विकट प्रहार।
और हँसते ही हँसते आज,
छोड़ कर चले गए संसार॥
विज्ञ-जन रहते हैं उद्विग्न,
क्योंकि यह है जीवन-संग्राम।
किन्तु तुमने तो रणजितसिंह,
किया हँस कर ही सार्थक नाम॥

बाल्य-स्मृति

[श्री० राजनाथराय जी विद्यार्थी]

वह जीवन का मङ्गल-प्रभात।
वह निरुज, सुदृढ़, सुन्दर, सुगात॥
वह मधुर हास्य, वह अट्टहास।
वह मृदु-विनोद, भृकुटी-विलास॥

जीवन-धारा के प्रथम स्रोत।
निर्मलता-जल से ओत-प्रोत।
हे मानवता के आदि रूप!
हे सुखमा के अद्भुत स्वरूप!!

❀

निर्गुण ईश्वर के सगुण रूप।
कवि-मधुर-कल्पना के स्वरूप।
हे प्रकृति-गोद के मृदुल फूल!
हे चञ्चरीक-जन-सुख-समूल!!

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

विघ्न

तुर्की राष्ट्रीयता को आरम्भ में अनेक विघ्नो का सामना करना पड़ा, परन्तु वह दबने नहीं पाई। तुर्की राज्य मे ईसाइयों की बस्तियाँ अनेक और काफी जोरदार थीं। ये लोग या तो वे थे, जो यूरोप से आकर व्यापार या अन्य किसी धन्धे के लिए यहाँ आ बसे थे या वे, जो इसी राज्य के निवासी थे, पर ईसाई-धर्म ग्रहण कर चुके थे। ईसाई लोग तुर्कों से स्वाभाविक घृणा करते थे; क्योकि उनका धर्म, भाषा और स्वार्थ सभी भिन्न थे। ईसाई बस्तियाँ सुलतान तुर्की को भी अपना शासक नही मानती थीं। तुर्की में रहते हुए भी ये लोग अपने देश की ही ओर उल्लसित नेत्रों से ताका करते थे। ये लोग तुर्की राष्ट्र का अङ्ग नहीं बन सकते थे। इसलिए इनके कारण राष्ट्रीय नेताओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त इसी समय अरब लोगो में भी राष्ट्रीयता की लहर चल चुकी थी। अरबस्तान इस समय तुर्की के अधीन था और कुछ तो स्वतः ही और कुछ यूरोपीय कूटनीतिज्ञो के बहकाने से वह तुर्की राज्य से मुक्त होकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र बनना चाहता था। तत्कालीन सुलतान अब्दुलहमीद भी राष्ट्रीयता के विरुद्ध था। क्योकि राष्ट्रीय विचार उसकी निरङ्कुशता तथा मुस्लिम-सङ्गठन दोनों के मार्ग में अड़चन डालते थे। इसलिए उसने राष्ट्रीय आन्दोलन को दबाने की खूब चेष्टा की। जो लोग गला फाड़-फाड़ कर राजभक्ति के गीत गाते थे, उन पर भी राष्ट्रवादी होने का सन्देह किया जाता था। और जो प्रत्यक्ष में राष्ट्रीयता के पक्ष में थे, उनको तो तुरन्त देश-निर्वासन का दण्ड दिया जाता था।

क्रान्ति और असफलता

१९०८ की क्रान्ति ने वास्तव में राष्ट्रीयता की जड़ जमाई। तुर्की युवकों में और विषयों में चाहे कितना ही भेद रहा हो, परन्तु राष्ट्रीयता के सम्बन्ध मे सब एक थे। नवयुवक-दल मातृभूमि के गीत गाने लगा। तुर्की को मुस्लिम संसार में एक अलग देश मानने लगा और तुर्क लोग राष्ट्रीय दृष्टि से अपने आपको शेष मुस्लिम-जगत से अलग समझने लगे। लेकिन उस समय नवयुवक दल ने योग्य और अनुभवी नेता के अभाव से कुछ ऐसी भूलें कीं, जिनके कारण उनका आन्दोलन उस समय कम से कम प्रत्यक्ष में तो असफल हो गया। ये युवकगण यह समझने लगे कि तुर्की राष्ट्र तुर्कों का है। वे यह बात भूल से गए कि उसमे अरब का विस्तृत देश और ईसाइयों की बड़ी-बड़ी बस्तियाँ भी शामिल हैं। उन्होने राष्ट्रीय सङ्गठन इस ढङ्ग से करना शुरू किया, जिससे स्पष्ट हो गया कि उनको तुर्कों के ही हित की चिन्ता थी, वे तुर्कों को अन्य जातियों की अपेक्षा प्रवल बनाना चाहते थे और राष्ट्र में तुर्कों की प्रधानता स्थापित करना चाहते थे। एक ओर राष्ट्रीयता और दूसरी ओर यह स्वार्थ-नीति और जातीय दर्प दोनो साथ-साथ कैसे चल सकते थे। उदारता और सङ्कीर्णता मे मेल कैसे हो सकता था। इसलिए अरबस्तानी और ईसाई असन्तुष्ट होकर राष्ट्रीयता का विरोध करने लगे

और राज्य-सञ्चालन में अनेक बाधाएँ उपस्थित करने लगे। तुर्की राज्य की इस डाँवाडोल तथा परेशान हालत को देख कर यूरोपीय राष्ट्रों के मुख में पानी आने लगा। वे लोग तुर्की को यूरोप का मरीज़ तो कहते ही थे और गिद्धों की भाँति इसकी लाश की प्रतीक्षा कर रहे थे। उस समय सम्पूर्ण यूरोपीय देश व्यापार और सामर्थ्य-वृद्धि के लिए अपने राज्य को विस्तृत करना चाहते थे। इस विस्तार के लिए यूरोप मे तो इस समय गुञ्जाइश थी नहीं। इसलिए मुस्लिम देशों की ओर एकटक दृष्टि लगाए रहते थे। सन् १९०८ की राज्य-क्रान्ति ने उनके लिए अनुकूल अवसर उपस्थित कर दिया। तुर्की राज्य की डगमगाती हुई नाव को एक धक्का देकर डुबा देना क्या कठिन कार्य था? सन् १९११ मे इटली ने त्रिपोली पर आक्रमण करके उसको अपने राज्य में मिला लिया और १९१२ में बालकन राज्यों ने तुर्की पर हमला करके उसके सब पश्चिमी भाग को छीन कर आपस में बाँट लिया। यूरोप की ओर टर्की के पास केवल वह हिस्सा रह गया था, जो क़ुस्तुन्तुनिया और एड्रियानोपल के मध्य मे है। इन धक्को का फल यह हुआ कि राष्ट्रीयता उस समय सफल न हो सकी और सुलतान अब्दुल हमीद फिर गद्दी पर आ बैठा। लेकिन राष्ट्रीयता का पूर्ण उदय हो चुका था। केवल क्षणिक मेघ ने उसको ढक लिया था। यह शीघ्र ही हट गया।

अरबस्तान में राष्ट्रीय जागृति

१९वीं शताब्दी के मध्य में अरबस्तान में भी राष्ट्रीय भाव प्रकट होने लगे। इस समय अरबस्तान, ईरान, फलस्तीन और सीरिया सब तुर्की साम्राज्य में शामिल थे, परन्तु इन देशों के लोग भाषा, संस्कृत, रङ्ग-रूप अनेक बातों मे तुर्कों से भिन्न थे। वे अपनी सभ्यता को उच्च और अपने आपको ख़ुदा की प्यारी क़ौम समझते थे। तुर्की लोग उनकी दृष्टि में केवल रक्त-पिपासु असभ्य सैनिक थे। न उनकी भाषा में माधुर्य था, न उनको कला से प्रेम था और न उनमें कोई गुण-ग्राहिकता थी। अपनी सभ्यता पर इस प्रकार का अभिमान करना अरब लोगों के लिए कोई अनुचित न था। इस्लाम के अभ्युदय-काल में इन लोगों ने कला-कौशल, काव्य, साहित्य तथा वाणिज्य-विस्तार में बहुत उन्नति की थी। तुर्क लोग अभी इस प्रकार की संस्कृति से प्रायः वञ्चित थे, इसलिए इन लोगों की अधीनता अरबों के हृदय मे निरन्तर कसका करती थी और स्वतन्त्र बनने की अभिलाषा, अनेक बार की पराधीनता से भी नष्ट नहीं होने पाई थी। एक भाषा, एक इतिहास और एक ध्येय, इन तीनों बातों ने अरबों में राष्ट्रीयता का सञ्चार कर दिया और अपने देश को तुर्की के चङ्गुल से मुक्त करने के उपाय वे लोग सङ्गठित करने लगे।

दमन की पुनर्जागृति

१८५० तक तो यह आन्दोलन सङ्गठित और सुव्यवस्थित नहीं था। तुर्की का आधिपत्य सबको कसकता था सही, और उसका अन्त करने के लिए देशभक्त लोग कहीं-कहीं उपाय भी करते थे, पर अभी तक आन्दोलन देश-व्यापी न होने पाया था और उपायों में सहयोग का अभाव था। १८५० के बाद इस आन्दोलन का स्वरूप निश्चित और प्रबल होने लगा। तुर्की राज्य के अधीन अरब देशों में सीरिया यूरोप से बिल्कुल निकट था, इसलिए यह स्वाभाविक बात थी कि राष्ट्रीय भावों की जागृति सर्व-प्रथम वहाँ प्रकट होती। सीरिया के कुछ देश-हितैषी आन्दोलको ने देश का ध्यान पराधीनता की ओर आकर्षित करना शुरू किया और देश अपनी दुर्दशा को अनुभव करने लगा। इस राष्ट्रीय जागृति को तुर्की राज्य कैसे सहन कर सकता था? इसलिए यह कुछ प्रबल न होने पाया कि तुर्की सरकार ने इसको दमन की चक्की से पीस डाला। सन् १८७७ में तुर्की और रूस में युद्ध

हुआ। इस समय तुर्की सरकार का सम्पूर्ण सैनिक बल उधर की ओर लगा हुआ था, इसलिए सीरिया-निवासियों को पुनः राष्ट्रीय आन्दोलन करने का मौक़ा मिल गया। कई वर्ष तक राष्ट्रीयता की लहर चलती रही और स्वातन्त्र्य-प्राप्ति की अभिलाषा प्रबल होती रही। इस आन्दोलन का ध्येय यह था कि अरबी संस्कृति के देशो का एक राजनैतिक सङ्घ बना कर मक्के के शरीफ़ को उसका धार्मिक तथा राजनैतिक शासक बना दिया जावे और तुर्की की अधीनता का अन्त कर दिया जावे। यह कार्य-क्रम यूरोपीय राष्ट्रीयता और मुस्लिम ख़िलाफ़त का सम्मेलन था।

अब्दुल हमीद की नीति

राष्ट्रीयता की यह द्वितीय जागृति भी सफल न हो सकी। इस बार दमन से नहीं, लेकिन नीति से इसे दबाया गया। सुलतान अब्दुल हमीद की नीति थी मुस्लिम संसार को यूरोप का सामना करने के लिए सुसङ्गठित करना। इसलिए उसने अनेक उपायो द्वारा अरब लोगों को अपनी ओर मिलाना शुरू किया। यूरोप की आक्रमणात्मक नीति से बचने के लिए उसने अरब लोगों से मुस्लिम सङ्गठन करने की अपील की और अरबी सरदारों तथा अमीरों को अनेक प्रकार के सम्मान और प्रलोभनों से अपनी ओर मिलाया। अरबियों की अनेक शिकायतों को रफ़ा करने के यत्न भी किए गए और शासन-प्रणाली में अनेक हेर-फेर किए गए। इसी अरसे में सीरिया तथा हज्जाज में रेलगाड़ी भी चल चुकी थी, जिसके कारण तुर्की सैनिको का इधर-उधर जाना आसान हो गया और राष्ट्रीय बलवे कठिन हो गए। यूरोप के आक्रमणों के कारण भी समय-समय पर अरबों और तुर्कों के सहयोग की आवश्यकता का अनुभव हुआ करता था। इन कई कारणों से सुल्तान अब्दुल हमीद के प्रयत्न प्रायः सफल हुए। लेकिन फिर भी अनेक समझदार अरब लोग इस भुलावे में नहीं आए और उन्होंने अपने राष्ट्रीय ध्येय को नहीं छोड़ा।

अरबी राष्ट्रीय सङ्घ

१९वीं शताब्दी के अन्त में अरबी देशों के राष्ट्रीय भाव दुर्दम्य हो गए। तुर्की राज्य ने दमन-चक्र चलाना आरम्भ किया। अनेक स्वदेश-प्रेमी कारावास मे ढकेल दिए गए, अनेक फाँसी पर लटकाए गए और अनेक स्वदेश छोड़ कर स्वतन्त्र यूरोपीय देशो में रहने लगे। जो लोग फ़्रान्स में जाकर बसे थे, उन्होने १८९५ मे पेरिस नगर में "अरबी राष्ट्रीय सङ्घ" नामक एक संस्था की स्थापना की और आन्दोलन तथा प्रचार द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत को अपने ध्येय के अनुकूल बनाने का यत्न आरम्भ किया। लगभग १० वर्ष तक तो यह आन्दोलन गुप्त और प्रकट रूप से चलता रहा। तुर्की सरकार ने भी इसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं की। परन्तु सन् १९०५ में सीरिया और हज्जाज में सशस्त्र बलवा हो गया। तुर्की सरकार ने इसको दबाने में कोई कोशिश उठा न रक्खी, पर तो भी यह दबा नहीं। कई वर्ष तक यह चलता रहा और तुर्की सरकार को धन और जन दोनो मे भारी क्षति हुई। इस अवस्था को देख कर १९११ में इटली ने त्रिपोली तुर्की से छीन लिया और बालकन रियासतों ने युद्ध करके तुर्की का पश्चिमी भाग आपस में बाँट लिया।

यूरोप में आन्दोलन

१९०५ के बाद यूरोप में भी इस अरबी प्रश्न की चर्चा होने लगी और अरबी राष्ट्रीयवादियों ने यूरोप को अपने अनुकूल करना शुरू किया। यूरोप के राष्ट्रो की आँख में तुर्की राज्य तो पहले से ही खटका करता था। उसकी सामर्थ्य और विस्तार को ये यूरोप के लिए हितकर नहीं समझते थे। राजनैतिक, भौगोलिक और सैनिक तथा व्यापारिक दृष्टि से तुर्की साम्राज्य का बड़ा महत्त्व था। इसलिए इसको नष्ट करने के लिए यूरोपीय

राष्ट्र सदैव अवसर ताका करते थे। नैपोलियन ने तुर्की पर हमला किया था, और रूस के ज़ार तथा उसमे जो सन्धि हुई थी, उसमे तुर्की का गुप्त बटवारा किया गया था। सारांश यह है कि तुर्की साम्राज्य यूरोप की आँख की किरकिरी था। इसलिए अरबी राष्ट्रवादी जब तुर्की राज्य की निन्दा करते थे और अरबी देशो को उससे निकाल कर अलग राष्ट्र बनाने की योजनाएँ पेश करते थे, तो यूरोप इन बातों को बड़ी रुचि और सहानुभूति के साथ सुना करता था। इसी समय एक अरबी राष्ट्रीय नेता ने "अरब की राष्ट्रीय जागृति" नामक फ़ान्स की भाषा मे एक पुस्तक लिखी थी। इसका अनेक यूरोपीय भाषाओ में अनुवाद हुआ और इसकी लाखो प्रतियाँ थोड़े से समय मे बिक गईं। सन् १९०६ में अरबी राष्ट्रीय सङ्घ ने यूरोप के बड़े राष्ट्रों के नाम अपना मन्तव्य प्रकाशित किया, जिसमे लिखा था कि—"तुर्की राज्य मे एक महान परिवर्तन होने वाला है। उसके मूल में घुन लग गया है और अब वह अपनी प्रजा की रक्षा करने में असमर्थ है। वर्षों से इस राज्य ने अरबो लोगो पर घोर अत्याचार किए हैं और भेद-नीति द्वारा उनको दबाए रक्खा है, परन्तु अब उनकी निद्रा भङ्ग होने लगी है। उनको अपनी संस्कृति, महत्ता तथा स्थिति का ज्ञान हो चला है और अपने पूर्व इतिहास का गौरव उन पर प्रकट होने लगा है। अब दजला और फ़ुरात की घाटी से स्वेज़ के स्थल-सयोजक एक अरबी साम्राज्य की स्थापना की जावेगी। इसका शासक एक अरबी सुलतान होगा, लेकिन उसकी शक्ति प्रजा द्वारा नियन्त्रित होगी। हज्जाज की विलायत और मदीना दोनों की एक स्वतन्त्र रियासत होगी। इसका शासक सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत का ख़लीफ़ा होगा।"

अरबी सङ्घ की घोषणा

इस सङ्घ ने अपने देश-भाइयों के प्रति यह घोषणा प्रकाशित की थी—"प्यारे देश-प्रेमियो! हम सब जानते हैं कि विदेशी लोग—विशेषकर तुर्की लोग—हमसे कितनी घृणा करने लग गए हैं। किसी समय अरबी होना गौरव, सम्मान की बात थी, लेकिन संसार अब इस नाम से भी घृणा करने लगा है। हम यह भी जानते हैं कि मध्य एशिया के जङ्गली तुर्कों के आधिपत्य के कारण हम मूर्खता और हीनता के गहरे गर्त में घुसे जाते हैं। हमारी भूमि संसार में सर्वाधिक सुन्दर और उपजाऊ है, परन्तु इनके कारण वह रेगिस्तान बन गई है। जब हम स्वतन्त्र थे, तो हमने एक शताब्दी भर मे विश्व-व्यापी विजय प्राप्त की थी और हमने सर्वत्र विज्ञान, साहित्य तथा कला का प्रचार किया था। कई शताब्दी तक संसार की सभ्यता के नेता थे, लेकिन जब से इन जङ्गलियों ने हमारे ऊपर आधिपत्य स्थापित किया है और इस्लाम की ख़िलाफ़त को अपनी बपौती बनाया है, तब से ये लोग हमको अधिकाधिक जङ्गली बनाते जाते है। इन लोगों ने हमारे रक्त को ऐसा चूस डाला है कि इस समय हम संसार मे सबसे अधिक निर्धन हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम स्वतन्त्रता की घोषणा कर दें।"

१९०८ की क्रान्ति के समय

युवक अरबियों को तत्काल तो स्वतन्त्रता प्राप्त न हुई। अब्दुल हमीद ने येन-केन-प्रकारेण अधिकांश अरबी देशों को दबाए रक्खा, लेकिन अशान्ति और राष्ट्रीयता की लहर दिन-दिन ज़ोरदार होती रही। अब्दुल हमीद के राज्य मे एक तरफ़ राष्ट्रीयता की जागृति थी, दूसरी ओर मुस्लिम सङ्गठन था और तीसरी तरफ़ था यूरोपीय आक्रमण का भय। जब सन् १९०८ मे तुर्की क्रान्ति हुई, तो अरब लोगो को राष्ट्रीय आन्दोलन का अच्छा सुअवसर मिला। साम्राज्य के प्रत्येक देश मे इस क्रान्ति के लिए हर्ष मनाया गया और अरबी देश भी इस हर्ष मे सम्मिलित हुए। भविष्य के लिए प्रत्येक देश सुख-स्वप्न

देखने लगा। तुर्की प्रतिनिधि-मण्डल में अरबी देशों के लोग भी सम्मिलित किए गए, परन्तु जब उनके प्रतिनिधियों ने प्रस्ताव किया कि अरबी देश साम्राज्य से अलग होने को तो आतुर नहीं हैं, परन्तु वे स्वशासन अवश्य चाहते हैं, तो युवा तुर्कों ने साफ़ इन्कार कर दिया और प्रस्ताव पर विचार भी न होने दिया। इसके कारण राष्ट्रीयता ने और भी बल पकड़ा और अरबी देशों ने तुर्की साम्राज्य से अलग होने की ठान ली। सन् १९११-१२ में तुर्की सरकार ने कई ऐसी व्यवस्थाएँ और योजनाएँ कीं, जिनसे साम्राज्य के प्रत्येक विभाग में तुर्कों का प्राधान्य बढ़ने लगा। जो अवस्था औरङ्गजेब के समय भारतवर्ष मे ग़ैर-मुस्लिम लोगो की थी, वैसी ही हालत इस समय तुर्की साम्राज्य में ग़ैर तुर्क लोगों की होने लगी। अन्तर केवल इतना था कि तुर्की में जज़िया कर नहीं था। इससे राष्ट्रीय आन्दोलन को और भी सहायता मिली। सन् १९१३ में पेरिस नगर में अरबो की एक राष्ट्रीय सभा हुई और क्रान्तिकारी आन्दोलन को अधिक प्रबल तथा विस्तृत बनाने का निश्चय किया गया। जिस समय महासमर की घोषणा हुई, उस समय अरबी देशों में राष्ट्रीयता बढ़ती जाती थी और तुर्की शासन के विरुद्ध अशान्ति फैली हुई थी।

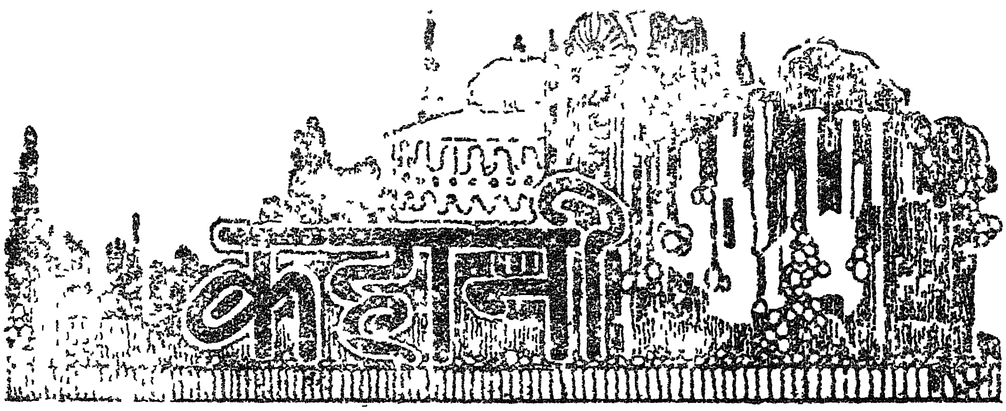
मिसिर

अरबी देशों के साथ ही साथ उत्तरी अफ़्रीका में भी राष्ट्रीयता का सञ्चार होने लगा था। इनमें सब से अधिक उल्लेखनीय है मिसिर। मिसिर की जनता अनेक क़ौमों का सम्मिश्रण है। वहाँ के आदि निवासी अधिकांश कृषक और मजदूर हैं। भारतीय कृषकों की भाँति ये प्रत्येक विजेता के दल को भाग्य का खेल समझ कर स्वीकार करते रहे है। उच्च और प्रतिष्ठित लोग सब एशिया को विजेता जातियों के हैं। इनमें अरबी, कुर्द, सरकेसियन और अल्बेनियन लोगो की प्रधानता है। इनमें कोप्ट लोग भी सम्मिलित हैं, जो ईसाई है। जिस देश की जनता का ऐसा स्वरूप हो, वहाँ राष्ट्रीयता का उदय बहुत कठिन है। लेकिन मिसिर की भौगोलिक स्थिति और यूरोपीय सान्निध्य ने इस कमी को पूरा कर दिया है। एशिया मे सर्वाधिक समृद्ध देश है भारत। यहाँ के व्यापार को हाथ में लेने के लिए सब यूरोपीय देश सदैव से लालायित रहते आए है। जब नैपोलियन ने इङ्गलैण्ड के साथ युद्ध छेड़ा तो उसकी प्रथम तजवीज़ यही थी कि भारत का मार्ग बन्द करके उसको क्षति पहुँचाई जावे। यदि वह अपनी योजना को सफल कर सकता और भारत अङ्गरेज़ों के हाथ से निकल जाता तो फिर इङ्गलिस्तान में रह ही क्या जाता। वह फ़ौरन फ़्रान्स के सामने घुटने टिका देता। इसलिए नैपोलियन ने आक्रमण करके थोड़े समय तक इसको अपने अधीन रक्खा था। अङ्गरेज भी अनुभव करते थे कि यदि भारत का मार्ग रुक गया तो उनका सर्वस्व गया। इसलिए उन्होने मिसिर में से नैपोलियन के पैर उखाड़ने के लिए प्राणपण से प्रयत्न किया और वे सफल भी हो गए। परन्तु उसी समय से मिसिर और यूरोप का सम्पर्क शुरू हो गया और मिसिर पर यूरोपीय सभ्यता का प्रभाव पड़ने लगा।

एक फ़क़ीर किसी क़ाज़ी के घर गया और उससे भीख माँगी। क़ाज़ी ने जवाब दिया—भई, यह तो क़ाज़ी का घर है, यहाँ खाने को क्या माँगता है ; क़सम खा और चला जा।

अमीर आदमी (भिखारी से)—माँगना अच्छा काम नहीं है।

भिखारी—हुज़ूर, मैंने आपसे पैसा माँगा है, सलाह नहीं माँगी।



मीना

[श्री० ब्रह्मस्वरूप जी गुप्त]

"मीना !"

"प्यारे !"

"अब क्या होगा ?"

"क्यो ?"

"बाबा का खून हो गया है। चचा अलाउद्दीन अब शीघ्र ही दिल्ली आकर राज-सिंहासन पर बैठ जाएँगे।"

"और तुम ?"

"मैं ! मीना ? मेरी अब कुछ न पूछो। मैं बड़ा दुखी, संसार से परिष्कृत, अभागा हूँ।"

"छिः ! कायरों की भाँति रोते लज्जा नहीं आती ! मनुष्यों की तरह यदि जी नही सकते, तो मर तो सकते हो।"

"नही मीना, मेरे करने से अब कुछ नही हो सकता। देखती नहीं हो, सारी सेना अलाउद्दीन का दम भर रही है। अपने प्यारे 'जलाल' के लिए अब उनकी आँखों में एक भी आँसू नहीं है। देखती हो मीना, कल ही बाबा के जय-जयकार से दिल्ली का बच्चा-बच्चा प्रसन्न हो उठता था और आज हत्यारे अलाउद्दीन के नाम पर खुशियाँ मनाई जा रही हैं। आह, मीना, यह सूरज वही है, जिसने जलालुद्दीन खिलजी के सिंहासन पर अपनी अरुणिमा डाल कर उसे स्वर्ण-रञ्जित बनाया था और आज उसकी जगह अलाउद्दीन पर अपना वही तेजमय प्रकाश डालेगा। यह आकाश, ये तारे और ये बड़ी-बड़ी रातें अब सब अलाउद्दीन की हो गई हैं। जलाल का नाम भी अब कोई नहीं लेना चाहता × × ×"

"यह प्रमाद है, अज्ञात ! क्या तुम बदला नहीं लेना चाहते ?"

"बदला ? बदले से क्या होगा ? बाबा तो जी नहीं उठेंगे। भारतवर्ष में व्यर्थ के लिए ही हाहाकार मच जाएगा।"

"यों क्यों नहीं कहते कि मृत्यु से डर लगता है ! भारत के नाम पर झूठा आक्षेप लगा कर तुम्हें अकर्मण्य बन कर स्त्रियों की भाँति बैठते हुए लज्जा नहीं आती ?"

"मीना !"

"चुप रहो, मीना कायरों की प्रेमिका नहीं है।"

"नहीं, मीना, मैं मृत्यु से नहीं डरता × × ×"

"फिर किससे डरते हो, अलाउद्दीन से ?"

"नहीं।"

"तो फिर ?"

"मीना, मैं × × × मैं डरता नहीं। मेरा मुँह न खुलवाओ।"

"समझ गई, मृत्यु से डर कर बहाने बनाते हो। तो याद रखना, न दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन ही बैठेगा और न तुम ही बैठ सकोगे।"

"मीना, एक घड़ी और ठहर जाओ। देखो, मैं कायर नहीं हूँ। मुझमें बल है, साहस है, पर मुझमें एक कमी है। मैं फल की सोचा करता हूँ। मैं कर्म करता हूँ, पर फल के लिए। निःस्वार्थ कर्मवादी मैं न हूँ और न हो सकूँगा। यदि मैं अपने प्रयास में असफल हो गया, तो चचा मुझे जीवित जला देंगे। तुम उनका क्रोध नहीं जानतीं। मैंने उनका क्रोध देखा है। ओफ़ मीना, उस दिन मालवे में मैं उनके साथ था। चचा रहमत से किसी बात पर नाराज़ हो गए। उन्होंने आज्ञा दी कि रहमत के बच्चे, रहमत की बूढ़ी माँ और उसकी स्त्री सब एक मैदान मे खड़े किए जायँ। चचा स्वयं भी वहाँ थे। मैं भी पास खड़ा था। उन्होंने आज्ञा दी कि इस नीच की खाल खींच ली जावे। ओफ़, मीना, आगे मत सुनो। जल्लादों ने निर्दयता के साथ उसकी खाल खींची। उसके बाद मिर्चें उसके बदन पर लगा दी गईं। वह बेचारा रोता था। कुछ ही मिनटों में उसका निर्जीव शरीर चचा के क़दमों के पास गिर पड़ा। चचा ने उसमें बस एक ठोकर मार दी। यह तो अलाउद्दीन के लिए एक साधारण बात है। इससे भी बेरहमी और निर्दयता के कार्य करने में उसे हिचक नहीं होती।"

"अक़ात, मुझे तुम पर हँसी आती है।"

"हँस लो, मीना, तुम भी हँस लो। यही अब बाक़ी क्यों रह जावे। कल तक चचा साहब भी आ जाएँगे। उन्हें मुझसे बड़ा डर लगता है कि कहीं मैं सिंहासन के लिए विद्रोह न करूँ। मुझे भय है कि उनके आते ही मेरा सर जुदा हो जायगा।"

"पर सर जुदा होने से पहले तुम बाबा के हत्यारे का सर जुदा नहीं कर सकते ? अल्लाह ने तुम्हें इतना बड़ा शरीर देखने के लिए नहीं दिया है। क्या तुम उसे तलवार से चकनाचूर नहीं कर सकते ?"

"मीना, कोशिश करूँगा। जब तुम्हारी यही इच्छा है तो फिर मैं और कुछ क्यो करूँ !"

"लो, अकात, यह छुरी लो। इसीसे हत्यारे का बदला चुकाना। अगर विजय हुई, तो फिर मीना भी तुम्हारी विजय में अपनी सफलता मनाएगी और अगर हार गए तो स्वर्ग में फिर एक बार तुम्हारा दर्शन होगा।"

२

दिल्ली के सिंहासन पर कितने ही राजा आए और चले गए। दिल्ली कितनी ही बार उजड़ी और फिर बस गई। तैमूर ने तीन दिन में इस जगत-विख्यात, समृद्धिशाली नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, पर उसे आज देख कर कौन कह सकता है कि कभी आततायियों ने यहाँ पर लूट मचाई होगी। जिस समय की यह कथा है, उस समय भारतवर्ष इतना ग़रीब नहीं था। लोग भूखे पेट सोते नहीं थे। नङ्गे और शीत से ठिठुर-ठिठुर कर आधे के लगभग भारतवासी अपना छोटा सा जीवन नहीं बिताते थे। अत्याचार था, पर पेट की मार नहीं थी। ये बड़े-बड़े कॉलेज और यूनिवर्सिटियाँ नही थीं। छोटे-छोटे मक़तब थे, पर मक़तब के विद्यार्थियों को मक़तब से निकलते ही रोटियो की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी। लङ्काशायर और मैनचेस्टर के बने हुए महीन रङ्ग-बिरङ्गे कपड़े नहीं थे, पर जो स्वदेशी वस्त्र था, उसमें स्वदेश की ध्वनि निकलती थी। उसमें भारत का गान और भारतीय राग मिला हुआ था। वह भारत की मेहनत थी, पर भारत का लहू नहीं। उस समय यह नही पता था कि कल कौन राजा होगा। इसकी चिन्ता करने की लोगों को फ़ुर्सत

नहीं थी और न ज्ञान था। नवीन इतिहासज्ञों की दृष्टि में वे मूर्ख थे, असभ्य थे। भारतवर्ष में अलाउद्दीन का राज्य हिमालय की ऊँची गगनचुम्बी चोटी से लेकर दूर—सुदूर दक्षिण में कावेरी-तट तक था। उसके नाम से माता अपने रोते बच्चे को डराया करती थी। उसने हिन्दुओं पर मन-माना अत्याचार करके उन्हे अधम, नीच और जीर्ण-शीर्ण बनाने की चेष्टा की थी। उसके राज्य के फाटकों पर सदैव मनुष्यों के कटे हुए सिर लटके रहते थे। उसकी क्रोधाग्नि में कितनी ही छोटी-बड़ी जागीरें भस्म हो गई थीं। उसने पद्मिनी को अपनाने के लिए तीन बार चित्तौर पर चढ़ाई की, पर फिर भी उसे न पा सका। उस अलाउद्दीन के समय की यह कथा है।

दक्षिण-विजय के उपरान्त अलाउद्दीन ने अपने पितृ-तुल्य चचा की हत्या करके उसके राज्य को अपने अधीन कर लिया था। द्रव्य के लोभ से सारी सेना उसकी आज्ञाकारिणी हो गई थी। पर फिर भी विश्वासघाती को सदैव अपनी चिन्ता रहती थी। दिल्ली आते ही उसने हुक्म दिया—"अक़ात का सर काट लिया जावे।" क्यों? उसे भय था कि कहीं वह राज्य-सिंहासन के विरुद्ध षड्यन्त्र न रचे। अभागा अक़ात, अकेला निस्तब्ध रजनी में निकल कर भाग गया। अलाउद्दीन के सतर्क प्रहरी उसका पता भी न पा सके। सारे राज्य में डोंडी पीटी गई। अक़ात के सिर के लिए स्वर्ण-दीनारों का इनाम रक्खा गया, पर कहीं भी उसका पता न लगा। कितने ही गुप्तचर उसके पीछे भेजे गए, पर न अकात मिला और न उसकी छाया ही।

एक दिन सुलतान अलाउद्दीन अपनी प्रेयसी के शयनागार में घुसे। उनके चेहरे से नीचता टपकती थी। काम से उन्मत्त सुलतान ने इशारे से बुलाया—"मीना!"

"हुज़ूर!"

"तुम मानोगी नहीं?"

"क्या?"

"क्यों समझ कर नासमझ बनती हो, मीना! नहीं जानती, तुम्हारी मुहब्बत ने मेरी क्या दशा की है?"

"पर हुज़ूर तो जानते हैं कि × × ×"

"हाँ, मैं जानता हूँ, ख़ूब जानता हूँ कि तुम अकात से प्रेम करती हो, पर अब अक़ात है कहाँ?"

"हुज़ूर ने ही तो उसके मरवाने की आज्ञा दी थी।"

"नहीं, मीना! यह सब तुम्हारा भ्रम है। मैं उसे अपने लड़के से भी ज्यादा प्यार करता था, पर उसने ख़ुद ही डर कर दिल्ली छोड़ दी है।"

"और जहाँपनाह! यह उसके सर पर इनाम की चर्चा कैसी है?"

"पागल हो गई हो, मीना! ये बातें भूल जाओ, मेरी बात मानो।"

"जहाँपनाह, मैं ग़रीब दासी हूँ। आप शाहन्शाह हैं। आपकी मेरी कुछ बराबरी नहीं हो सकती।"

"नहीं मीना, तुम भूलती हो। तुम स्वर्ग की अप्सरा हो, अथवा किसी उद्यान की एक अध-खिली कली। तुम्हारा रूप एक शीतल ज्वाला है, जिसमें जलने से ही ठण्डक मिलती है।"

"लेकिन अकात?"

"गुजरात में एक राजपूत ने उसकी हत्या कर दी है, ऐसा सुना गया है। उसे तुम भूल जाओ।"

"नहीं, जहाँपनाह! यह ठीक नहीं है। अक़ात ने मुझे वचन दिया था कि वह अकेला नहीं मरेगा। उसके साथ मेरी भी लाश उठेगी।"

"कहाँ अक़ात और कहाँ तुम? उसकी निर्जीव देह अब किसी निर्जन वन में मिट्टी के ढेर के नीचे दबी पड़ी होगी।"

"हुज़ूर, क्या हिन्दोस्तान के प्रबल प्रतापी बादशाह अलाउद्दीन ख़िलजी के लिए कोई और युवती नहीं मिल सकती?"

"मीना, अब बहुत हो चुका। सब्र की भी हद होती है। मैं फिर कहता हूँ, एक तरफ़ मेरी वासनाओं की तृप्ति में जीवन भर आनंन्द और इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग है और मेरी अवज्ञा का परिणाम कितना भयङ्कर है, तुझे मालूम है।"

"मालूम है, जहाँपनाह, मुझे सब मालूम है, पर× × ×"

"अच्छा, पाँच मिनट सोचने का अवसर देता हूँ, फिर इस तलवार से मैं स्वयं ही तेरी गर्दन अलहदा कर दूँगा। देखता हूँ, अकात किस तरह तेरी रक्षा करता है।"

"हुज़ूर पाँच मिनट का वक्त क्यों देते हैं, मैं तो अभी तैयार हूँ। क्या मरते वक्त इबादत करने के लिए अवसर दीजिएगा?"

"इबादत? किसकी? खुदा तो मैं हूँ। जिस खुदा को तू याद करती है, वह तुझे बचा नहीं सकता। मेरी प्रसन्नता में तेरा जीवन और मेरे क्रोध में तेरी मृत्यु है।"

"जहाँपनाह! मैं तैयार हूँ।"—कह कर मीना ने गर्दन झुका दी।

हृदय-शून्य अलाउद्दीन ने तलवार उठाई, पर अकस्मात् ही पीछे से किसी ने एक छुरा अलाउद्दीन की छाती में भोंक दिया। घाव तीक्ष्ण था। अलाउद्दीन बेहोश होकर गिर पड़ा। अक़ात और मीना बन्दी बना लिए गए।

३

वह काली कोठरी थी, जिसमें मीना और अक़ात फटे चीथड़े लपेटे हुए बैठे थे। आज ये दोनों एक दूसरे से मिल सकते हैं। कल सूर्य के निकलते ही दोनों एक दूसरे से सदैव के लिए जुदा कर दिए जाएँगे। अलाउद्दीन के दरबार में शाही खान्दान के दो व्यक्तियों पर कल अभियोग चलेगा। दूर-दूर के प्रान्तीय सूबेदार इस अलौकिक अवसर को देखने के लिए आए हैं, पर अभी तक यह किसी को भी नहीं मालूम कि इस नाटक का नायक कौन है। उस काली कोठरी में मीना और अक़ात शान्त चित्त होकर बैठे हुए हैं। बाहर आकाश में बादल हैं, पर उनकी आँखें उस काली रजनी को भेद कर आकाश तक नहीं पहुँच सकतीं। एकाएक अक़ात ने कहा—"भाना!"

"प्यारे!"

"आज कितने दिनों बाद फिर हम मिले हैं!"

"परन्तु किस प्रकार।"

"इसकी क्या चिन्ता है, यह जीवन परिवर्तनशील है।"

"मैंने ही तुम्हारी यह हालत की है, अक़ात!"

"तुम मेरे कारण यहाँ पड़ी हो, मीना! नहीं तो आज तुम अलाउद्दीन की साम्राज्ञी होतीं।"

"भूल जाओ इन बातों को अक़ात!"

"तुम्हे याद है, मीना, मैंने कहा था कि हम दोनों साथ ही साथ आत्मोत्सर्ग करेंगे।"

"अच्छी तरह याद है।"

अक़ात मीना के पास आ गया। मीना गाने लगी। उस गीत का अर्थ था—

"मैं स्वतन्त्र कोयल थी। विस्तृत वन में मैं स्वाधीन घूमती थी। न मेरा कोई सखा था, न कोई साथी। मैं निर्द्वन्द थी। समय ने मेरा भाग्य पलट दिया। मैं सोने के पिंजरे में बन्द की गई। वहाँ मुझे सब प्रकार का सुख था। मेरा स्वामी मुझे प्यार से बुलाता, पर मैं रोती रहती। मैं हँसना भूल गई थी। मेरा स्वामी नाराज़ हो गया। उसने मेरा पिंजरा खोल दिया। मैं फिर स्वतन्त्र हो गई और उसी वन में स्वतन्त्रता से विचरती हूँ। मैं अब रोना भूल गई हूँ और सदैव हँसती रहती हूँ।"

अक़ात ने कहा—"मीना!"

"प्यारे!"

"कल हम भी स्वतन्त्र हो जायँगे।"

"अवश्य।"

"कल हम भी उसी प्रकार हँसते हुए विस्तृत वन में विचरेंगे।"

"हाँ प्यारे!"—कह कर मीना ने अपना सिर अक़ात के चौड़े वक्षस्थल पर रख दिया।*



फ़लसफ़ए हस्ती

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

किस वास्ते है मदहो[1] सनाए हस्ती,
है महवे फना[2] लुत्फे बकाए[3] हस्ती ।
इतराव न इस ख़ाक पै तुम ऐ "बिस्मिल",
मिट्टी में मिला देगी अदाए हस्ती ।

जाता है बहुत जल्द शबाबे[4] हस्ती,
मौत आकर उलटती है नक़ाबे[5] हस्ती ।
मैख़ानए[6] दुनिया में सँभल ऐ "बिस्मिल",
बदमस्त न हो पी के शराबे हस्ती ।

करता हूँ बयाँ सुनिए बयाने हस्ती,
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं शाने हस्ती ।
इस साँस की बुनियाद ही क्या ऐ "बिस्मिल",
कन्धे पै हवा के है मकाने हस्ती ।

बदनाम ज़माने में है नामे हस्ती,
कमज़ोर है कमज़ोर नज़ामे[7] हस्ती ।
"बिस्मिल" कभी भर कर यह छलक जाएगा,
जामे[8] अबदी[9] कुछ नहीं जामे हस्ती ।

१—प्रशंसा, २—नाश होने में मगन रहना, ३—जीवन, ४—जवानी, ५—पर्दा, ६—शराबख़ाना, ७—बन्दोबस्त, ८—प्याला, ९—हमेशा को ।

ईरान की स्त्रियाँ

[श्री० सत्यभक्त जी]

ईरान एक बड़ा प्राचीन देश है और किसी ज़माने मे उसकी धाक समस्त संसार में मानी जाती थी। ईसा मसीह के चार-पाँच सौ वर्ष पहले उसका राज्य मिश्र, बैबीलोन आदि से लेकर भारतवर्ष की सीमा तक फैला हुआ था और वह दुनिया का सब से अधिक शक्तिशाली साम्राज्य माना जाता था। उसने यूरोप की तरफ़ भी क़दम बढ़ाया, पर यूनान के सम्राट सिकन्दर ने ईसवी सन् से ३३१ वर्ष पहले उसको पूर्णतया परास्त कर दिया। इस पराजय के फल से वह कई सौ वर्ष तक पराधीन और निर्बल अवस्था में पड़ा रहा। सन् २२६ में उसने पुनः स्वाधीनता लाभ की और वह एक उन्नतिशील तथा समृद्ध राष्ट्र समझा जाने लगा। इसके कुछ समय बाद उस पर अरब के मुसलमानों का, जो नवीन धार्मिक जोश से मत्त हो रहे थे, आक्रमण हुआ, और उसके फल-स्वरूप वह अपनी प्राचीन सभ्यता तथा धर्म को पूर्ण रूप से गँवा बैठा। इस्लाम के प्रभाव से उस देश के निवासियों के चरित्र में भी बड़ा परिवर्तन हो गया और उस समय से वह बराबर अवनति के गढ़े में ही गिरता गया। इस्लाम का सब से बुरा प्रभाव ईरान की स्त्रियों पर पड़ा और वे ऐसे कठोर बन्धनो में जकड़ दी गई कि उनकी उन्नति का मार्ग ही बन्द हो गया। इस्लाम से पूर्व ईरान मे स्त्रियों को सम्मान की निगाह से देखा जाता था और वे प्रायः सब बातों में पुरुषों के समान ही अधिकार रखती थीं। पुत्र माता के सामने कभी नहीं बैठते थे। इस तरह के सामाजिक नियम पारसी धर्म के प्रचारक जरदुश्त ने जारी किए थे और उनके प्रभाव से स्त्रियों का समाज में बहुत उच्च स्थान था। जब उस दशा का मुक़ाबला आजकल की ईरानी स्त्रियों की दशा से किया जाता है, तो ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ देखने में आता है। घर के बाहर उनको अपना मुँह नक़ाब से ढँक कर चलना पड़ता है और घर के भीतर पर्दे की आड़ में रहना होता है। किसी भी सार्वजनिक या निजी सामाजिक उत्सव में वे भाग नहीं ले सकतीं। उनको न शिक्षा दी जाती है, न उन पर विश्वास किया जाता है और न उनका सम्मान किया जाता है। वे केवल पुरुषों के आमोद-प्रमोद की सामग्री समझी जाती हैं और उनके सुख-दुख का आधार केवल पुरुषों की प्रसन्नता पर निर्भर है।

वर्तमान समय में ईरान में मुसलमानों का प्राधान्य है और वहाँ के एक करोड़ निवासियों मे नौ-दस हज़ार पारसियों, अस्सी हज़ार ईसाइयो और छत्तीस हज़ार यहूदियो को छोड़ कर शेष सब इस्लाम के अनुयायी हैं। ईरान में स्त्रियों की जो दुर्दशा देखने मे आती है, वह मुख्यतया मुसलमान स्त्रियों की ही है। अन्य जातियों की स्त्रियाँ अब भी उनसे कहीं अच्छी दशा में हैं। उनमें पर्दे का रिवाज बहुत कम है और शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध है। इन जातियों में लड़कियों का विवाह मुसलमानों की अपेक्षा बड़ी उम्र में किया जाता है और उनमें बहु-विवाह की घृणित प्रथा भी नहीं पाई जाती।

शहरों की स्त्रियाँ

पर्दे की प्रथा के कारण ईरान की मुसलमान-स्त्रियों की मानसिक और शारीरिक उन्नति

अधिकांश में रुक गई है। पर्दे के कारण उनको प्रायः घरों में बन्द रहना पड़ता है। ऐसी स्त्रियाँ बहुत ही कम हैं, जो अपने शहर को छोड़ कर बाहर गई हों। वे स्वयम् दूसरे स्थान को जाना पसन्द नहीं करतीं, क्योंकि पर्दे के कारण उनका इधर-उधर जाना असम्भव होता है और नई जगह मे जाकर उनको प्रायः अकेले रहना पड़ता है। बड़े घरों की स्त्रियाँ तो बन्द गाड़ी मे बैठ कर ही घर से निकल सकती हैं और इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है। साधारण घरों की स्त्रियाँ काम-काज और स्नान आदि के लिए बाहर निकलती हैं, पर उनके चेहरे पर सदा नक़ाब पड़ी रहती है। नकाब बिना चल सकना वहाँ असम्भव है। एक ईरानी सरकारी कर्मचारी की स्त्री, जो कई साल तक कुस्तुन्तुनिया में रह चुकी थी, ईरान लौटने पर बिना नक़ाब डाले बाहर निकली। इसकी खबर पाते ही मुजतहिद (बड़े मुल्ला) ने उसको सूचना भेजी कि वह आयन्दा ऐसा न करे, अन्यथा दण्ड-स्वरूप पीटी जायगी। यदि स्त्रियाँ कभी मस्जिदों मे जाती हैं, तो वहाँ भी उनको पर्दों के भीतर बैठना पड़ता है। अगर वे नमाज़ पढ़ना चाहे, तो घर के भीतर ही ऐसा कर सकती हैं। खुली जगहों में पुरुषों की भाँति नमाज़ पढ़ सकने का अधिकार उनको नही है।

शहरों में रहने वाली ग़रीब स्त्रियों की दशा बहुत शोचनीय है। अगर वे मिहनत-मज़दूरी करती हैं, तो उनको बहुत कम मज़दूरी दी जाती है। उनके पुरुष जो कुछ कमाते हैं, उसे प्रायः अपने लिए ही खर्च कर डालते हैं। बच्चों को तो वे कभी थोड़ा-बहुत दे भी देते हैं, पर स्त्रियों की बात बहुत कम पूछी जाती है।

गाँवों की स्त्रियाँ

शहरों की अपेक्षा गाँवों की स्त्रियों का जीवन अधिक स्वतन्त्र तथा सुखकर है। क्योंकि ईरान भी भारतवर्ष की तरह कृषि-प्रधान देश है और स्त्रियों को खेती के कार्य में प्रायः सहयोग करना पड़ता है। गिलन प्रान्त मे चावल बोने का कार्य, जो फ़ुट भर गहरे पानी या कीचड़ में घुस कर करना पड़ता है, स्त्रियाँ ही करती हैं। खेती के अन्य काम भी प्रायः स्त्रियों को ही करने पड़ते है। वे फलों को सुखाती हैं और दूध से मक्खन तैयार करती हैं। आटा पीसने और पानी लाने का भार भी इन्हीं पर होता है। कितने ही घरो मे हाथ से कपड़ा बुनने का कर्घा भी रहता है, जिस पर स्त्रियाँ और बच्चे मिल कर अपनी आवश्यकता के अनुसार मोटा कपड़ा तैयार कर लेते है। कितने ही घरों में क़ालीन तैयार किए जाते है। कपड़े बनाने की तमाम सामग्री ख़ुद ही तैयार कर ली जाती है, विदेशी चीज़ों से किसी तरह की सहायता नहीं ली जाती। रङ्ग भी ये लोग ख़ुद ही बनाते है, जिसमे प्रायः अखरोट, अङ्गूर, प्याज़ आदि के छिलकों का प्रयोग किया जाता है।

इस तरह सदा परिश्रम करते रहने से तथा घर का भार अपने ऊपर ले लेने से गाँवों की स्त्रियों का महत्व अधिक समझा जाता है और पुरुष उनके प्रति दुर्व्यवहार या उपेक्षा का बर्ताव प्रायः नहीं कर सकते। पर अन्य दृष्टियों से उनकी दशा भी वैसी ही शोचनीय है, जैसी अन्य श्रेणी की स्त्रियों की। उनमें शिक्षा का पूर्ण रूप से अभाव है तथा कितने ही तरह के कुसंस्कारों ने उनमें घर बना रक्खा है। उनको अपने छोटे से गाँव के सिवाय संसार का कुछ भी पता नहीं होता। अधिकांश स्त्रियाँ अपनी और अपने बच्चों की उम्र भी नहीं बतला सकती। अपने धर्म के सम्बन्ध में भी वे किसी तरह का ज्ञान नहीं रखतीं। गाँवों में अस्पतालो अथवा दवा-दारू का कोई प्रबन्ध नही होता और जब कोई स्त्री बीमार होती है, तो उसे बड़ी मुसीबत सहनी होती है। उसे कोसों चल कर शहर के किसी अस्पताल में जाना पड़ता है। अगर वह मध्यम श्रेणी की हुई तो गधे पर बैठ कर और बहुत ग़रीब हुई तो पैदल ही यात्रा करती

है। इन लोगो मे गन्दगी भी बहुत है और इसके कारण तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती रहती है।

ख़ानाबदोश स्त्रियाँ

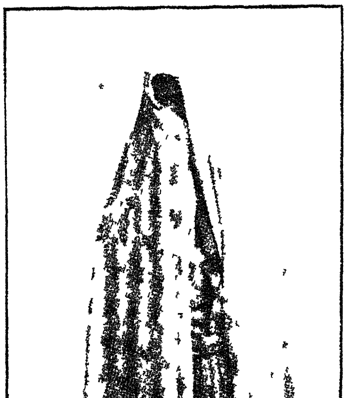
शहरों और गाँवों मे रहने वाले लोगो के सिवाय ईरान मे ख़ानाबदोश लोग भी बहुत बड़ी संख्या मे पाए जाते है। ये लोग विशेषतः पशु पालने का पेशा करते है और जब जिस स्थान मे चारे-पानी का सुभीता होता है, वही जाकर डेरे डाल देते हैं। ये लोग पहाड़ों में रहते हैं और बड़े ही निडर, साहसी, सहनशील तथा चतुर होते हैं। ईरान में जो कुछ पुरानी वीरता शेष रह गई है, वह इन्हीं लोगो मे पाई जाती है। ईरान की सेना में अधिकांश इन्ही का है और इसलिए वहाँ के शासन मे बहुत वर्षों से इनके मुखियाओं या ख़ान लोगों का बड़ा प्रभाव रहा है। इन लोगों में पढ़ने-लिखने का बहुत कम रिवाज है, पर अब कितने ही धनी ख़ान अपने लड़को को शिक्षा प्राप्त करने के लिए यूरोप भेजने लगे हैं। यद्यपि ये मुसलमान है, पर धर्म-कर्म की तरफ़ इनकी रुचि बहुत कम रहती है और इनके प्रदेश की मस्जिदे प्राय. टूटी-फूटी हालत मे रहती है। इनका सबसे बड़ा मुखिया इलख़ानी कहा जाता है। यह पदवी राजा के समान है, पर यह एक ही वंश मे क़ायम नहीं रहती। इलख़ानी के मरने के बाद उसका बेटा उसके स्थान पर नियुक्त नहीं किया जाता, वरन् मृत व्यक्ति का कोई भाई अथवा कोई अन्य ऊँचे दर्जे का ख़ान इस पद के लिए चुना जाता ह।



ईरान के एक पारसी का परिवार। पीछे गमलों में नारङ्गी के वृक्ष लगे हुए हैं।

इन ख़ानाबदोश लोगों की स्त्रियाँ शहरों और गाँवो की मुसलमान स्त्रियों की अपेक्षा कही अच्छी हालत में रहती हैं। ये पुरुषों के कार्य मे बहुत अधिक सहायता पहुँचाती हैं और इसलिए उनका

महत्व बहुत बढ़ा हुआ है। पुराने ज़माने मे तमाम स्त्रियाँ पुरुषो के साथ घूमती रहती थी, पर इधर बीस-पच्चीस वर्षों मे ख़ान लोगो ने अपने रहने के लिए महल बना डाले है और उनकी स्त्रियाँ प्रायः स्थायी रूप से उन्ही में रहती है। ख़ान लोगो की स्त्रियाँ और लड़कियाँ बीबी कहलाती है और अपने समाज में उनका बड़ा अधिकार होता है। जब ख़ान कार्यवश ईरान की राजधानी तेहरान या अन्य किसी दूरवर्ती शहर को जाते हैं, तो उनकी ग़ैरहाज़िरी मे तमाम कारबार उनकी औरतें ही चलाती हैं और उन्हीं पर तमाम फ़िर्क़ेवालो का जीवन-मरण निर्भर होता है। ख़ान लोग चाहते हैं कि उनकी स्त्रियाँ अधिक से अधिक स्वाधीनता उपभोग करें, पर जब इन लोगो को शहरों में रहना पड़ता है, तो वे भी अपनी स्त्रियों को पर्दे मे रखने को बाध्य होते हैं। अन्यथा सामाजिक दृष्टि से वे हीन समझे जाते है और उनको पद-पद पर अपमानित होना पड़ता है। अपने प्रदेश मे इन लोगो की स्त्रियाँ बिना पर्दे के रहती है और साधारण दर्जे के प्रत्येक व्यक्ति से बातचीत कर सकती है। उनको अपने मातहत व्यक्तियो पर हुकूमत करनी पड़ती है और उनसे काम कराना पड़ता है, इसलिए सब लोगो से बात किए बिना उनका काम नहीं चल सकता। यह अवश्य है कि वे अपने मुकाबले के दूसरे ख़ान से, यदि वह उनका कोई निकट सम्बन्धी न हो, तो बातचीत नहीं करतीं।



धनिकों की स्त्रियाँ घरों के भीतर इस प्रकार की पोशाक पहनती हैं।

इन लोगो में बच्चों की सगाई बहुत छोटी उम्र मे ही कर दी जाती है, पर विवाह कई साल बाद होता है। पहले लड़कियो का विवाह आँठ साल में ही कर दिया जाता था, पर अब पन्द्रह-सोलह साल की उम्र तक किया जाता है। चचेरे भाई-बहिनों का विवाह बहुत अच्छा समझा जाता है और ऐसे दम्पति के च्चे शारीरिक दृष्टि से कहीं श्रेष्ठ होते हैं। इन लोगो के बच्चे छोटेपन से ही घोड़े पर सवार होना और बन्दूक चलाना सीखने लगते है। कितनी ही लड़कियाँ भी चतुर घुड़सवार होती है और अचूक निशाना लगाती है। कितने ही लोग अपनी लड़कियों को दस-ग्यारह साल की उम्र तक मर्दाने कपड़े पहिनाते रहते है और लड़कों की तरह उनको भी साथ रखते है।

ख़ान लोगो मे अन्य मुसलमानों की तरह बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है, पर उनके घर मे सब से बड़ी पत्नी की प्रधानता मानी जाती है और अन्य विवाह प्रायः उसकी सम्मति से ही किए जाते है। उसका कहना होता है कि वह अपने पति की पसन्द और नापसन्द को ख़ूब अच्छी तरह समझती है और इसलिए नई पत्नी का चुनाव सब से अच्छा वही कर सकती है। अगर वह किसी स्त्री की बहुत प्रशंसा करना चाहती है, तो उसे अपनी सौत बनने को कहती है।

इन लोगों में तलाक की प्रथा बहुत कम है और यह कार्य बड़ा निन्दनीय समझा जाता है। प्रधान पत्नी को कभी तलाक नहीं दिया जा सकता। यदि कभी उसका पति से मतभेद होता है और वह बहुत नाखुश हो जाती है, तो अपना तमाम माल-असबाब, नौकर-चाकर लेकर अपने पिता के घर चली जाती है। जब कुछ महीनो बाद दोनो मे समझौता हो जाता है, तो वह फिर वापस आ जाती है। दूसरी स्त्रियों को बच्चा न होने पर, बीमार रहने पर या पति के अप्रसन्न हो जाने पर तलाक दिया जा सकता है। इन लोगो मे चरित्रहीनता का सर्वथा अभाव है और स्त्रियाँ सतीत्व का बड़ा ख़्याल रखती हैं। एक बार एक ख़ान ने अपने घर मे प्रस्ताव किया कि वह अपनी बीबी-बच्चो की देख-भाल के लिए एक फ़्रान्सीसी महिला लाए। पर उसकी प्रधान पत्नी ने घृणापूर्वक इससे इन्कार कर दिया और कहा कि जो औरत उसके पति के साथ इतने फ़ासले से अकेली आ सकती है, वह घर मे रखने लायक नही हो सकती।

इन लोगो में क़ालीन बुनने का व्यवसाय भी होता है और इससे बीबियो को अच्छी आमदनी हो जाती है। वे कालीन बुनने का कर्घा अपने रहने के कमरे के पास ही रखती हैं, जिससे वे कार्य का निरीक्षण कर सकें। बुनने का काम औरतो से कराया जाता है, जिनको खाना खिलाया जाता है और एक बड़ा क़ालीन ख़त्म होने पर, जिसके बुनने मे महीनो लगते है, हर एक को दो-चार रुपए इनाम के तौर पर दे दिए जाते है। पर किसी को नियमित मजदूरी नही दी जाती।

ईरानी पति

मुसलमानों मे विवाह करना आवश्यक माना जाता है और इसलिए ईरान मे शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जो युवावस्था के पश्चात् अविवाहित रहे। दरअसल कुरान की शिक्षा के अनुसार अविवाहित जीवन निन्दनीय समझा गया है। इसलिए ईरान मे साधारण व्यक्ति ही नही, मुल्ला और फ़क़ीर तक शादी करते है। ईरान के पुरुषों को अच्छा पुत्र और अच्छा पिता कहा जा सकता है, पर वे अच्छे पति नहीं कहे जा सकते। इसके मुख्य कारण बहुविवाह की प्रथा, तलाक़ दे सकने का सुभीता और कम उम्र मे विवाह होना है। ऐसी दशा मे गार्हस्थ्य जीवन की क्या सम्भावना हो सकती है? ऐसे नियमों के होते हुए पति और पत्नी मे साथीपन अथवा मित्रता का भाव हो ही नहीं सकता। पति और पत्नी एक दूसरे के मित्रो से अपरिचित रहते हैं। सार्वजनिक कार्यों



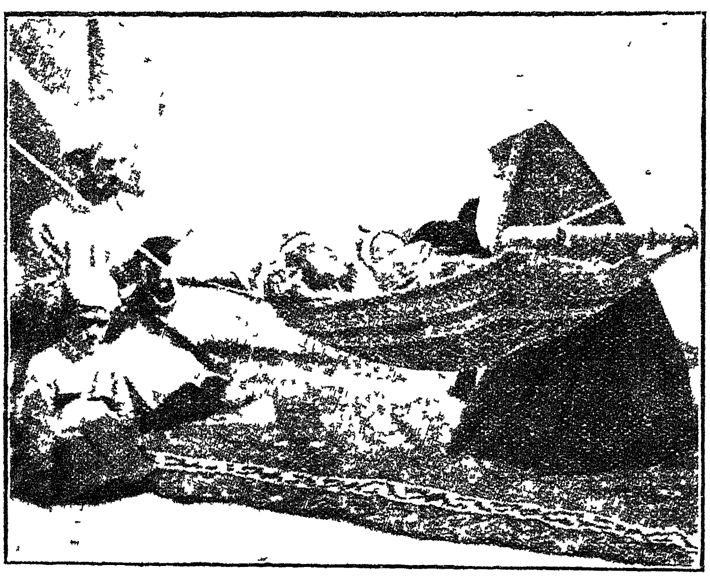
ईरान की ग्रामीण स्त्रियाँ

मे स्त्रियो का किसी तरह का सहयोग नहीं होता। दरअसल ईरान का समाज पुरुषो का समाज है, और पति प्रायः अपनी पत्नी की सम्मति के विपरीत चलना अपना कर्तव्य समझते है। उनके धर्म की शिक्षा भी ऐसी ही है, और उसके अनुसार स्त्री बुराइयों का भण्डार है। ईरान मे कभी स्त्री का नाम लेकर बात नही की जाती। यदि किसी व्यक्ति के स्त्री-बच्चो का कुशल-मङ्गल पूछना हो तो कहा जाता है 'आपके घर का क्या हाल है?' जब कभी किसी स्त्री का जिक्र किया जाता है, तो

'अमुक की स्त्री' या 'अमुक की माता' के नाम से उसका सङ्केत किया जाता है, उसका नाम कभी नहीं लिया जाता।

ईरान में पति अपनी पत्नी का पूर्ण रूप से स्वामी समझा जाता है और उसे हर तरह का व्यवहार कर सकने का अधिकार है। कितने ही व्यक्ति अपनी पत्नियों से छुटकारा पाने के लिए उनको मार डालते है या दूसरे से मरवा देते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने अपनी कम उम्र की स्त्री को, जो उसे खुश नहीं कर सकती थी, मिट्टी का तेल डाल कर जला दिया, पर उसका कुछ नहीं बिगड़ा। मुसलमानों में यह एक धार्मिक रिवाज है कि पत्नी को तलाक देते समय उसे एक निश्चित रकम देनी पड़ती है। इसी से बचने को ये सब काण्ड किए जाते है। ईरानी स्त्रियों और अन्य तमाम मुसलमान स्त्रियों की आजकल क्या दशा है और समाज में उनका क्या स्थान है, इसका वर्णन करते हुए एक प्रसिद्ध मिश्र-निवासी लेखक कासिम अमीन बे ने एक स्थान में लिखा है :—

"वह (स्त्री) पति की काम-प्रवृत्ति की पूर्ति का साधन मात्र है, जिसके साथ वह खिलौने की तरह जब चाहे और जिस तरह चाहे खेल सकता है। ज्ञान पुरुष के लिए है और अज्ञान स्त्री के लिए। मुक्त आकाश और प्रकाश पुरुष के हिस्से में हैं और अन्धकार तथा कालकोठरी स्त्री के हिस्से मे। पुरुष का काम है हुक्म देना और स्त्री का काम है उसे आँखें बन्द करके मान लेना। पुरुष सब कुछ है और स्त्री बिलकुल नाचीज़ है।"



एक ईरानी परिवार। छोटा बच्चा पालने में झूल रहा है, जो क़ालीन, चमड़े तथा मख़मल से बनाया जाता है।

ईरानी पतियो के इस प्रकार उच्छृङ्खल और स्वार्थी होने के कई कारण हैं। ईरान मे स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषों की मृत्यु शीघ्र होती है और इसलिए स्त्रियों की संख्या अधिक है। स्त्रियो के लिए स्वतन्त्र आजीविका का कोई मार्ग नही है और उनको विवाह के लिए बाध्य होना पड़ता है। पुरुष केवल आनन्द-प्राप्ति के लिए विवाह करते हैं और पत्नी को तभी तक अच्छी तरह रखते हैं, जब तक वह उनको खुश रख सके। जैसे ही वह किसी भी कारणवश उनको नापसन्द हो जाती है, वे उसे तलाक देकर या योंही दासी की तरह बना कर दूसरा विवाह कर लेते हैं। दूसरा कारण बहु-विवाह की प्रथा है, जिसके कारण वहाँ के समाज मे काम-सम्बन्धी पवित्रता का भाव सर्वथा नष्ट हो गया है और स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध कोरा पाशविक रह गया है। तीसरा कारण वहाँ के मुसलमानों में अस्थायी विवाह अथवा मुता का प्रचार होना है, जिसके अनुसार कोई स्त्री और पुरुष वर्ष दो वर्ष से लेकर एक दिन तक के लिए विवाह कर सकते हैं और वह जायज़ माना जाता है। इस

प्रथा ने वहाँ की स्त्रियो की स्थिति अनेक अंशों में वेश्याओ के तुल्य बना दी है। ईरानी इस प्रथा को बुरा नही समझते और यदि कोई इसका विरोध करता है, तो वे कहते है कि यह केवल परम्परा की प्रथा ही नही है, वरन् क़ुरान से भी इसका समर्थन होता है। ईरान के साधारण निवासी ही नहीं, वरन् वहाँ के राजवंश के लोग तथा खुद बादशाह तक इस तरह के काम किया करते हैं। जिस स्त्री का एक दिन के लिए भी बादशाह से सम्बन्ध हो जाता है, वह अपने को बड़ा भाग्यशाली समझती है और समाज मे भी उसे बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

सपत्नियाँ

ईरान में प्रत्येक व्यक्ति को इच्छानुसार कितनी भी औरतो से विवाह करने का अधिकार है। वैसे इस्लाम की रू से पुरुष को केवल चार पत्नियाँ रख सकने का अधिकार है, पर वहाँ रखेलियो को भी पत्नी के समान ही अधिकार होते हैं और इस दृष्टि से उपर्युक्त नियम का कोई महत्व नहीं रह जाता। इस्लाम की आज्ञा के सिवाय बहु-विवाह के और भी कितने ही कारण हैं। कितने ही लोग तो ऐसे होते हैं, जिनको एक पत्नी से सन्तोष ही नहीं होता। दूसरी तरह के लोग वे है, जिनको कार्यवश विभिन्न स्थानों मे रहना पड़ता है और वे प्रत्येक स्थान मे एक-एक पत्नी रखते हैं। तीसरी श्रेणी के लोग वे हैं, जो एक स्त्री से शीघ्र ही ऊब जाते हैं, पर जो उसे तलाक न देकर उसके ऊपर एक युवती तथा अधिक सुन्दरी स्त्री ला बैठाते हैं। पर ये सब बातें अमीर लोगो में अथवा जिनकी आर्थिक अवस्था सन्तोषजनक है उन्ही मे देखने मे आती हैं। ग़रीब लोग धन के अभाव से प्रायः इस तरह का काम नहीं कर सकते।

इस बहुविवाह की प्रथा के कारण यहाँ के मुसलमानों के अन्तःपुर नरक बने रहते हैं। सौतिया-डाह प्रसिद्ध बात है और ईरान मे इसका ख़ब ज़ोर देखने मे आता है। स्त्रियाँ पति का प्रेम प्राप्त करने के लिए अथवा पुत्र उत्पन्न होने के लिए सदा तावीज़ो की खोज में रहती हैं। सपत्नियो का अनहित और अपना हित करने के लिए भी तरह-तरह के जादू-टोने काम मे लाए जाते हैं। सपत्नियाँ कभी-कभी हल्के दर्जे का विष देकर एक दूसरे को मार डालने या सदा के लिए रोगी बना देने की



कुछ कुर्दिश सुन्दरियाँ

कुर्दिश स्त्रियाँ शारीरिक परिश्रम करने में अपना सानी नहीं रखती।

चेष्टा करती हैं। बड़ी उम्र का कोई व्यक्ति जब किसी कम उम्र की सुन्दरी को ब्याह कर लाता है, तो उसकी सपत्नियाँ उससे बहुत ही जलने लगती हैं और उसका प्राण सदा संशय में रहता है। स्त्रियों में सदा कलह या गाली-गलौज होते रहना तो मामूली बात है। एक राजवंशीय घराने में काम

करने वाली निरीक्षणकर्ता महिला का कथन है कि इन बड़े लोगो का अन्तःपुर घर के बजाय बिल्लियो का दरबा जान पड़ता है। ये सम्भ्रान्त कुलो की महिलाएँ आपस में सदा चखचख लगाए रहती हैं और उनकी बातचीत प्रायः अपने पुत्रों के विषय में, उनके भावी पट्टों तथा शादी-विवाह आदि के विषय में हुआ करती है।

कितनी ही औरतें किसी पुरुष से शादी करने से पहले अन्य तमाम पत्नियो को तलाक दे देने का आग्रह करती है। वास्तव मे अब वहाँ बहु-विवाह की प्रथा के दुर्गुण प्रायः सबको विदित हो गए हैं और बीस आदमियो पीछे एक व्यक्ति ही एक से अधिक स्त्रियो से शादी करता है। पर रखेलियों, और अस्थायी शादी (मुता) के कारण परिस्थिति वैसी ही शोचनीय तथा जटिल रहती है, जैसी बहुविवाह की दशा में होती।

कन्याओं की दुर्दशा

हिन्दुओ की कितनी ही जातियो की तरह ईरानियों में भी कन्या का जन्म शोक-सूचक समझा जाता है। जब बालक का जन्म होने को होता है, तो उसके लिए पहले से ही बड़ी तैयारियाँ और इन्तज़ाम होने लगते हैं। पर यदि जन्म होने के पश्चात् मालूम हुआ कि बच्चा लड़का नहीं, वरन् लड़की है तो रङ्ग में भङ्ग हो जाता है। तब बढ़िया पलने के बजाय मामूली पलना काम में लाया जाता है, बच्चे को तोला नहीं जाता, और न गाना-बजाना तथा अन्य उत्सव होते हैं। कभी-कभी लड़की पैदा होने पर भी लड़का पैदा होने की अफवाह फैला दी जाती है, जिससे माता-पिता को शर्मिन्दगी न उठानी पड़े। दस-बीस दिन बाद जब सच्ची बात ज़ाहिर होती है, तो लोग इस पर उतना ज्यादा ध्यान नहीं देते। लड़की पैदा होने की खबर देने वाला उसके पिता के सामने डरता और काँपता हुआ जाता है। उसे इनाम के बदले में गालियाँ मिलती हैं। उधर बेचारी माँ फिक्र के मारे दुबली हो जाती है। क्योकि वह जानती है कि लड़का न होने के कारण उसका पति बहुत निराश होगा और उससे अप्रसन्न हो जायगा।

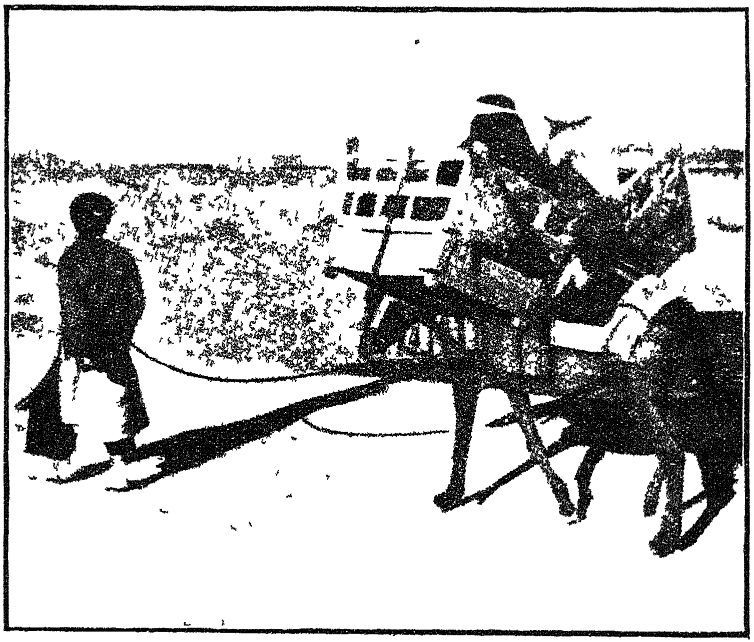
ईरान की लड़कियाँ जब कुछ बड़ी हो जाती हैं, तो वे देखने मे सुन्दर और आकर्षक जान पड़ती है। उनके कपड़े रङ्ग-बिरङ्गे होते हैं, पर उनके ठीक तौर पर पालन-पोषण करने तथा स्वास्थ्य पर बहुत कम ध्यान रक्खा जाता है। उनके बाल प्रायः मैले रहते है और उन पर एक मलमल का रूमाल बँधा रहता है। लड़कियों की शिक्षा की तरफ शायद ही किसी घराने में ध्यान दिया जाता है। ईरान की माताएँ शिक्षा के लाभों तथा विधि को जानती ही नहीं, वे अपने बच्चो को जिस तरह हो सके बड़ा होने देती है।

जब लड़की बड़ी होने लगती है तो वह अन्तःपुर की स्त्रियो की बातो को सुनने और समझने लगती है। कभी-कभी उसके विवाह की चर्चा भी होती है। जब लड़की इस सम्बन्ध मे पूछती है तो या तो उसे झूठ बोल कर फुसला दिया जाता है, या उसे बतलाया जाता है कि विवाह होने पर वह कैसे नए-नए कपड़े, ज़ेवर और मिठाइयाँ पाएगी। पर जब लड़की कुछ बड़ी हो जाती है, तो वह इन बातों की असलियत को समझने लगती है, और विवाह के प्रति उसको घृणा होने लगती है। उनका विवाह प्रायः आठ वर्ष या इससे भी कम उम्र में कर दिया जाता है। कितनी ही लड़कियाँ उस अवसर पर विवाह न करने की ज़िद करती है, पर उनकी बातों तथा इच्छाओं पर कोई ध्यान नहीं देता। जब विवाह की विधि होने लगती है और मुल्ला पूछता है कि 'तुम अमुक व्यक्ति से विवाह करना चाहती हो ?' तो कितनी ही लड़कियाँ इन्कार कर देती है। पर उनसे यही प्रश्न बार-बार पूछा जाता है और माता तथा अन्य स्त्रियाँ डरा-धमका कर उससे हाँ कहलवा देती हैं।

शिक्षा

ईरान मे शिक्षा का नियन्त्रण इस्लाम के नियमों के अनुसार होता है और वहाँ लड़कियों की शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिया जाता है, क्योंकि मुहम्मद साहब कुरान मे लिख गए है कि "स्त्रियो को लिखना मत सिखलाओ।" वहाँ एक कहावत प्रचलित है, जिसका आशय यह है कि स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखाना साँप को ज़हर पिलाने की तरह है। सैकड़ो वर्षों से धर्म और जनमत लड़कियो की शिक्षा के विरुद्ध रहा है। कुछ लड़कियों को निजी तौर पर मुल्लाओ अथवा स्त्री-शिक्षिकाओं द्वारा तालीम दिलाई जाती थी, पर लड़कियो के लिए बाकायदा स्कूलों का वहाँ नाम-निशान न था। जब ईसाई-धर्म-प्रचारक वहाँ पहुँचे तो उन्होंने लड़कियों के लिए स्कूल खोले और अब उनको देख कर कुछ और स्कूल भी क़ायम किए गए है। आरम्भ में लोग इन स्कूलों के भी विरुद्ध थे और विदेशियों के स्कूल ख़ासकर सन्देह की निगाह से देखे जाते थे। लोगो में स्कूलो के सम्बन्ध में अजीब कहावतें प्रचलित थीं। मसलन एक कहावत इस आशय की है कि "एक ख़च्चर स्कूल में गया, वह वहाँ से गधा बन कर निकला।" आरम्भ में ईसाइयों के स्कूलों में आर्मीनियन लड़कियाँ ही जाती थीं, पर अब कुछ वर्षों से लोगों का भ्रम बहुत-कुछ मिट गया है और मुसलमान लड़कियाँ भी उनमें बिना सङ्कोच के जाने लगी हैं।

अब लोगों का दृष्टिकोण स्त्रियों की शिक्षा के विषय में बहुत-कुछ बदल रहा है और सरकारी शिक्षा-विभाग लड़कियों की तालीम के लिए विशेष रूप से प्रबन्ध कर रहा है। दस-बारह वर्ष पहले तेहरान मे लड़कियों के लिए पचास सरकारी स्कूल थे। अन्य शहरो में भी कुछ स्कूल खोले गए हैं। सन् १९११ मे स्त्रियो की एक कॉन्फ्रेन्स शिक्षा के सम्बन्ध में विचार करने के लिए की गई थी। मुल्ला लोग अब भी इन स्कूलो का विरोध करते है, पर इस सम्बन्ध में अब लोगो की आँखें खुल चुकी हैं। ईरान की शासन-सभा के एक नेता ने एक विदेशी विद्वान से बातें करते हुए कहा था कि—"ईरान के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिए सब से आवश्यक बात लड़कियो की शिक्षा है। जब तक हमारे देश की माताएँ शिक्षिता न होंगी, तब तक हमारे यहाँ राजनीतिज्ञ कदापि उत्पन्न नहीं हो सकते।"



पालकी मे यात्रा करता हुआ एक दम्पति।

दुर्दशा का कारण

सैकड़ो वर्षों से समस्त पूर्वीय देशो की तरह ईरान की स्त्रियों की स्थिति घोर शोचनीय रही है। स्त्रियों को स्वयम् भी इसका अनुभव होता है, पर वे इसे अपनी किस्मत या भाग्य समझ कर सन्तोष कर लेती हैं। वे अपने पति की जायदाद की तरह होती हैं और वह उनके साथ इच्छानुसार व्यवहार कर सकता है। पुरुषो ने अपने लाभ और आराम की निगाह से नियम बना दिए है और स्त्रियो के लिए उनको स्वीकार करने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

स्त्रियो की इस दुर्दशा का मुख्य कारण इस्लाम मज़हब के सिद्धान्त हैं। जिस समय इस मज़हब का जन्म अरब मे हुआ था, उस समय वहाँ की स्त्रियों की दशा पशुओ से भी बदतर थी। मुहम्मद साहब ने इस सम्बन्ध मे जो नियम बनाए, उनसे उनकी दशा पहले को अपेक्षा बहुत-कुछ सुधर गई। पर जब उन्हीं नियमो का प्रचार ईरान में किया गया, तो उलटा फल निकला, क्योकि वहाँ उस समय तक स्त्रियाँ स्वाधीनता का उपयोग करती थी और उनका दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता था। इस्लाम ने उनको नीचे घसीट कर अरबी स्त्रियो के समतुल्य बना दिया।

क़ुरान में स्त्रियो के सम्बन्ध मे अनेक नियम बतलाए गए है, जिनके अनुसार ईरानी लोग अपनी पत्नियो तथा अन्य स्त्रियों से व्यवहार करते हैं। क़ुरान मे लिखा है कि—"ख़ुदा का हुक्म है कि बेटे को बेटी की अपेक्षा दुगुना हिस्सा दिया जाय और स्त्री को एक चौथाई भाग दिया जाय।" इसी प्रकार यदि किसी पर जुर्माना किया जाय तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा आधा जुर्माना देना पड़ता है। उसकी गवाही भी आधी समझी जाती है।

तलाक़ की प्रथा के स्वरूप मे इस्लाम ने पुरुषों को ऐसी शक्ति दे दी है, जिससे स्त्रियों का बहुत अधिक अपकार होता है। पुरुष चाहे जब बिना कारण अपनी पत्नी को तलाक़ दे सकता है। मुहम्मद साहब के पोते ने ख़ुद एक सौ औरतो से विवाह किया था और उनको तलाक दे दिया था। ऐसा उदाहरण सामने होते हुए अगर ईरानी पुरुष तलाक देना हँसी-खेल और आनन्द की बात समझें, तो इसमे क्या आश्चर्य है।

क़ुरान के अनुसार स्त्री की अपेक्षा पुरुष श्रेष्ठ है। बहुविवाह की स्पष्ट आज्ञा भी क़ुरान मे मौजूद है और मुहम्मद साहब के स्वयं दस बीबियाँ थी। उन्होंने आयशा नाम की स्त्री से आठ साल की उम्र में विवाह किया था और उनकी लड़की फ़ातिमा का विवाह भी आठ ही साल की उम्र मे किया गया था। ईरान के मुसलमानो को जब कोई बहुविवाह या बाल-विवाह की बुराइयाँ समझाता है, तो वे यही जवाब देते हैं कि जब हमारे पैग़म्बर साहब ऐसा कर चुके हैं, तो हमारी क्या हस्ती है कि उसके विरुद्ध चल सकें।

नवीन जागृति

उपर्युक्त चित्र उस स्थिति का है, जिसमें अब तक ईरानी स्त्रियों को रहना पड़ा था और जो अब भी प्रायः सर्वत्र पाई जाती है। पर गत महा-युद्ध के पश्चात् मुसलमानी देशों मे नवीन जागृति और उन्नति की जो लहर फैली है, उसका असर ईरान पर भी पड़ा है और धीरे-धीरे वहाँ सामाजिक सुधार का कार्य हो रहा है। वहाँ की स्त्रियों ने एक "देशभक्त महिला-सभा" की स्थापना की है, जो लड़कियो की कम उम्र की शादी को रोकने तथा तलाक़ के कानून मे सुधार कराने का आन्दोलन कर रही है। स्त्रियो की तरफ से कई अख़बार भी निकलने लगे है। पर ये तमाम आन्दोलन उसी तरह आरम्भिक दशा में है, जैसा हम भारत मे देख रहे है। पर आशा है कि अब यह दशा अधिक दिनों तक कायम नहीं रहेगी और अन्य पूर्वीय देशों की स्त्रियों के साथ ईरान की स्त्रियाँ भी अधोगति और अन्धकार के गहरे गढ़े से निकल कर अपने उचित अधिकार प्राप्त करेंगी।

सन्तति-निग्रह

[श्री० रामानुज जी पाण्डे, बी० ए०]

"भारतवर्ष मे प्रजोत्पत्ति कमती होने से ठीक है। कमती करने का एक ही इलाज मुझे मान्य है—संयम। पाश्चात्य शास्त्रियो के कृत्रिम इलाज राक्षसी और हानिकर हैं। विवाहित स्त्री-पुरुष भी स्वादेन्द्रिय को मार कर सहल से ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं।"

—महात्मा गाँधी

महात्मा जी के इस विचार से तो यही प्रतीत होता है कि इस विषय पर किसी भी वाद-विवाद की आवश्यकता नहीं। उनके मतानुसार तो जन-संख्या की वृद्धि रोकना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु अब रही बात उपायो की, अर्थात् स्वाभाविक तथा कृत्रिम उपायो में से कौन सा मान्य है। परन्तु इसके प्रथम ही हम इस पर भी विचार करना आवश्यक समझते है कि इस देश के लोगो की दरिद्रता कहाँ तक उनकी असीम जन-संख्या की वृद्धि के कारण है, इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता इसलिए प्रतीत होती है कि सन्तति-निग्रह का प्रश्न इतना महत्त्व रखते हुए भी अभी भारत में कम प्रचलित हुआ है। कुछ झूठ-मूठ की आपत्तियाँ इसके विपक्ष मे रक्खी जाती हैं। कुछ भी क्यों न हो, यह प्रश्न अब आगे रोका नहीं जा सकता है। यह समय ऐसा है कि बिना इस पर विचार किए देश की दशा सुधर नहीं सकती। जब तक यह प्रश्न विचारा नहीं जाता, तब तक यह मानी हुई बात है कि देश की दशा बिगड़ती ही जाएगी और देश रसातल की ओर चलता ही जाएगा। प्रकृति ने मनुष्य को कुछ नियमों के अधीन रक्खा है। मानव-जाति यदि ज्ञान-शक्ति से काम न ले और पशुओं की भाँति, जन-संख्या की वृद्धि को न रोके, तो जन-संख्या इतनी बढ़ जायगी कि सबके भरण-पोषण के लिए काफ़ी भोजन भी न मिल सकेगा।

माल्थस साहब ने सप्रमाण सिद्ध किया है कि यदि खाने-पीने की सुविधा हो, तो हर देश की जन-संख्या हर पचीसवें साल दूनी हो जाती है। माल्थस महोदय के अतिरिक्त अन्य कई अर्थ-शास्त्रियो ने भी लिखा है कि खाने-पीने की सुविधा रहने पर देश की जन-संख्या जल्द से जल्द बढ़ सकती है। ऐसे मुख्य-मुख्य विद्वान ये हैं—जॉन स्टुअर्ट मिल, वॉकर वास्लो तथा हेनरी फॉसेट। इन सभी लोगो ने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि जन-संख्या जल्द से जल्द दूनी हो सकती है। परन्तु साथ ही साथ इन लोगों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि जिस प्रकार मानव-जाति की संख्या में बढ़ती होती है, उस प्रकार उस देश की सम्पत्ति की वृद्धि कदापि नहीं हो सकती। मान लिया कि विज्ञान की सहायता से, नए ढङ्ग पर खेती करने से, बिजली, उत्तम खाद और नए-नए कल-पुर्ज़ों के प्रयोग से आजकल की अपेक्षा उत्पादन शक्ति बढ़ाई जा सकती है, परन्तु किसी देश की उपज, मनुष्य चाहे कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, हर २५वें साल (अर्थात् जन-संख्या के बढ़ने के साथ-साथ) दूनी नहीं हो सकती।

यह बात प्रत्यक्ष है कि मनुष्य की वृद्धि रेखा-गणित के अनुपात (Geometrical proportion) से बढ़ती है और खाद्य पदार्थ अङ्क-गणित के अनुपात (Arithmetic proportion) के हिसाब से। जैसे जन-संख्या १ से २, २ से ४, ४ से ८ इत्यादि होती है, तो देश के खाद्य पदार्थ १ से २, २ से ३, ३ से ४ इत्यादि के रूप में बढ़ते हैं। यही कारण है कि किसी भी देश की सम्पत्ति उसकी जन-संख्या के साथ-साथ

कदापि नहीं बढ़ती है। साथ ही साथ एक मार्के की बात यह है कि एक देश जितना ही दरिद्र होता है, वह अपनी जन-संख्या में उतनी ही वृद्धि करता है। ग़रीबों में धनिको से अधिक बच्चा पैदा करने की शक्ति होती है।

माल्थस महोदय ने यह साफ़-साफ़ दिखलाया है कि किसी देश का सुखी होना केवल इसी बात पर निर्भर होता है कि देश की जन-संख्या और सम्पत्ति में ठीक-ठीक अनुपात हो। यदि देश की सम्पत्ति उसकी जन-संख्या के लिए पूर्ण न हो तो वह देश दरिद्र होगा तथा लोग सुखी नहीं रहेंगे। देश की जन-संख्या केवल उतनी ही बढ़ने देना चाहिए, जितना भोजन उसे मिल सके।

हमको अब यह विचारना है कि भारत की जन-संख्या के लिए देश की सम्पत्ति काफ़ी भोजन दे सकती है अथवा नहीं।

अन्तिम गणना के अनुसार (सन् १९२१) यहाँ की जन-संख्या ३१,८४,९२,४८० है। सन् १९३१ की गणना के अनुसार, जिसके अङ्क अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं, आशा है कि यह लगभग ३५ करोड़ हो जायगी। इस देश का क्षेत्रफल यूनाइटेड स्टेट्स से केवल आधा है, परन्तु यहाँ की जन-संख्या लगभग उस देश से तिगुनी है। यहाँ की वर्तमान जन-संख्या यह है :—

गणना-वर्ष	जन-संख्या	प्रतिशत घटी या बढ़ी
सन् १८७२	२०,६१,६२,३६०	
,, १८८१	२५,३८,९६,३३०	२३'२ प्रतिशत बढ़ी
,, १८९१	२८,७३,१४,६७१	१२'२ ,,
,, १९०१	२९,४३,६१,०५६	२'५ ,,
,, १९११	३१,५१,५६,३९६	७'१ ,,
,, १९२१	३१,४४,४२,४८०	१'२ ,,

सन् १९३१ की जन-संख्या अभी प्रकाशित नहीं हुई, पर लगभग ३५ करोड़ के अन्दाज़ किया जाता है। यदि इसी प्रकार जन-संख्या बढ़ती गई, जो अवश्यमेव बढ़ती ही जाएगी, जब तक यहाँ के लोग इसको रोकने की कोशिश न करेंगे, तो यह अन्दाज़ा लगाया जाता है कि कुछ वर्षों में यह जन-संख्या दूनी हो जायगी।

लोगों का मत है कि भारत की जन-संख्या सीमा पार कर गई है। माल्थस के सिद्धान्त कई स्थानो में ग़लत भी कहे जाते हैं, पर उनकी यह बात कि भोजन के सामान देश की जन-संख्या के साथ-साथ बराबर नहीं बढ़ सकते, बिल्कुल ठीक है। यह भी ठीक है कि ज़मीन की उर्वरता के साथ-साथ ही स्त्रियो की उत्पादन शक्ति भी बढ़ती जाती है। (Fertility of the land is a measure of the fertility of women.)

इन सब बातों के होते हुए हम यह कह सकते हैं कि हमारी दशा तभी अच्छी होगी, जब लोग जन-संख्या की वृद्धि को रोकें।

यह सत्य है कि ईश्वर प्रत्येक मुँह के साथ-साथ दो हाथ भी देता है, परन्तु यहाँ तो यह देखना है कि एक बच्चा यहाँ आने पर अपने लिए उपयुक्त पालन का सामान पाता है या नहीं और उसके साथ ही साथ देश की आर्थिक दशा इस योग्य है या नहीं कि वह अपना निर्वाह कर सके। उन बच्चों को संसार मे लाने से हानि के सिवा कोई लाभ नहीं, जिनका पालन-पोषण ठीक न हो सके।

यदि भारतवर्ष की सभी उत्पादन शक्ति ठीक-ठीक लगा कर वैज्ञानिक रूप से काम किया जाय तथा सारी उपज भारतवासियों के हाथ में रहे, तो भारत इससे चौगुनी जन-संख्या का अच्छी प्रकार भरण-पोषण कर सकता है। परन्तु वर्तमान परिस्थिति में, जबकि देश राजनीतिक तथा आर्थिक गुलामी मे फँसा हुआ है, सारे देशवासियों को खाना नहीं मिलता। यह सब जन-संख्या कम करने से ही हो सकता है।

यह देश अन्य देशो से व्यापार तथा कारबार में पिछड़ा हुआ है। यहाँ के लगभग ७० प्रतिशत निवासी खेती पर निर्भर रहते हैं। इसका फल यह

हुआ है कि अधिक लोग पृथ्वी पर अधिकार किए हैं। खेत भी इसलिए बहुत छोटे-छोटे हो गए हैं।

अगर बच्चे पैदा होने की यही रफ़्तार रहेगी, तो ज़मीन के छोटे-छोटे हिस्सदारों की गिनती भी खूब बढ़ जायगी। भला कोई भी सोच सकता है कि जब इतने छोटे-छोटे खेत रहेंगे, तो क्या लाभ हो सकता है। जितने ही छोटे-छोटे खेत होंगे, उतनी ही थोड़ी आमदनी होगी।

अब यह देखना चाहिए कि जन-संख्या कैसे रोकी जाय। माल्थस साहब ने तथा महात्मा गाँधी ने भी यह लिखा है कि "विवाहित जोड़ा आत्म-निग्रह करे।" परन्तु यह इतना कठिन है कि आजकल बिल्कुल असम्भव कहा जा सकता है। अब रहे कृत्रिम उपाय। यूरोप तथा अमेरिका में इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी गई हैं। हॉलैण्ड आदि देशों मे तो यह काम सरकारी अस्पताल निःशुल्क करने लगे हैं। गर्भ को स्थिर न होने देना वहाँ कोई पाप नहीं है। इसके लिए डॉक्टरों ने दवाइयाँ तथा कई उपकारी यन्त्र निकाले हैं। कोई भी मनुष्य जान-बूझ कर यह नहीं चाहता कि मेरा पुत्र कुली हो, भूखों मरे, आधे पेट खाना खाय, नङ्गा रहे। इसी बात की हमें भी आवश्यकता है।

कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि इसको रोकने के लिए केवल कृत्रिम उपायों की ही शरण लेनी चाहिए। यह सब से अच्छी बात होगी, यदि लोग प्राकृतिक उपायों द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन कर जन संख्या को कम करें। परन्तु जहाँ यह असम्भव है, वहाँ कृत्रिम उपाय ही ठीक है। कुछ दिन हुए, डॉक्टर राधाकमल मुकर्जी ने यहाँ तक लिखा था कि देहातों में इसका बराबर प्रचार करना चाहिए। और यह ठीक भी है; क्योंकि इस कार्य में जितनी ही लोग देर करते हैं, उतनी ही देश की दशा बिगड़ती जा रही है।

सौन्दर्योपासक

[श्री० बलभद्रप्रसाद जी गुप्त, विशारद, 'रसिक']

पूर्व पुण्य से पाया है पर मञ्जु-मूर्ति लख लेने दो।
दृग-पथ से निज रूप-सुधा मन-मानस में रख लेने दो॥
लाभ हमें है, किन्तु तुम्हारी हानि न होगी किसी प्रकार।
तुम्हें बनाने वाले की महिमा का ही होगा विस्तार॥

हृदय चाहता है अपनाना देव! तुम्हारी छवि भरपूर।
नेत्रों की भी अभिलाषा है, हो न कभी तुम इनसे दूर॥
बर्बर बन कर नहीं करूँगा देव! तुम्हारा मैं अपमान।
मुग्ध शलभ सा छवि-ज्वाला पर होने दो मुझको बलिदान॥

❀

हाथ जोड़ कर करता हूँ मैं विनती तुमसे बारम्बार।
होकर क्रूर न निष्ठुरता से कर देना तुम अस्वीकार॥
प्रस्तुत हूँ मैं आत्म-समर्पण करने को तुम पर सानन्द।
पान मुझे करने दो केवल निज मुसकान-रूप-मकरन्द॥

यह आतुर आह्वान मान कर मेरे हठ पर अड़े रहो।
रूप-सुधा का पान कराते हुए सामने खड़े रहो॥
हो अभिलाषा सफल हमारी, जीवन-फल मैं पा जाऊँ।
रूपोपासक से उन्नति कर प्रेमोपासक बन जाऊँ॥

मनोरञ्जक दन्त-कथाएँ

बुद्ध और वृहस्पतिवार की कथा

[श्री० जयनारायण जी कपूर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० तथा श्री० बलखण्डीदीन जी सेठ]

एक नगर में एक राजा रहता था, जिसके सात लड़के और सात ही बहुएँ थीं। राजा के महल के द्वारे दो ब्राह्मण, चचा और भतीजे, हर रोज़ भीख माँगने के लिए आते थे। जब वे द्वारे आकर अलख जगाते, तो बहुएँ हर रोज़ यही कहला भेजती कि महाराज आगे जाओ, इस समय हाथ खाली नहीं है। कुछ दिन बाद ऐसा हुआ कि राजा का सारा का सारा खज़ाना खाली हो गया और वह बहुत ग़रीब हो गया। जब वे दोनों ब्राह्मण फिर भीख माँगने के लिए आए, तो बहुओं ने अब की बार यह कहलाया कि महाराज अब तो हम ख़ुद ही दाने-दाने के लिए मोहताज हैं, अगर हमारे पास कुछ धन होता तो हम आपकी झोली ज़रूर भर देते। सब बहुओं में छोटी बहू बड़ी होशियार थी, उसने मन में सोचा कि हो न हो इन ब्राह्मणों ही के कोप का यह फल है कि हम इतने ग़रीब हो गए। यह सोच कर वह सब से बड़े ब्राह्मण के चरणों पर गिर पड़ी और रो-रोकर यह बिनती करने लगी कि महाराज! अब हमारा क़ुसूर माफ़ कीजिए। अब क्या कर वह उपाय बताइए, जिससे हम फिर अपनी पहली अवस्था को पा सकें। छोटी बहू के गिड़गिड़ाने पर ब्राह्मण का दिल पसीज उठा। उसने कहा—"जा रानी, तेरा भला होगा। तू हर बुद्ध और वृहस्पतिवार को एक ब्राह्मण को जिमाना। अगर तेरे पास रुपया न हो तो अपने खज़ाने के सन्दूक़ को किसी गाय के दो खुरों से छुआ देना, अगर नाज न हो तो अपनी बखारी को वैसे ही गाय के खुरों से छुआ देना। तब उन खुरों की पूजा करना। तेरे घर के सब सन्दूक़ और बखारियाँ धन और नाज से भर जायँगी।"

ब्राह्मण तो यह वरदान देकर चले गए और रानी ने जैसा उन्होंने बताया था वैसा ही किया। थोड़े ही दिनों में उनके पिछले दिन लौट आए और वे सब मालामाल हो गईं। परन्तु एक दिन छोटी रानी ने यह सपना देखा कि बुद्ध और वृहस्पति उसके पास आए हैं। वे कहते हैं कि तेरा स्वामी एक बड़े भारी देश का राजा बन गया है, तू वहीं उसके पास जा, परन्तु देख, हमारी पूजा करना और ब्राह्मणों को भोजन कराना न भूलना। छोटी बहू यह सपना देख कर उठ बैठी, उसने अपनी जिठानियों से सपने का सब हाल कहा। परन्तु वे सब उससे डाह करती थीं और उसके धन को देख-देख कुढ़ती थीं। सपना सुन कर वे जल उठीं और उन्होंने उसे लात-घूँसों से इतना मारा कि छोटी बहू बेचारी अधमरी हो गई और चोटों तथा दर्द के मारे अपने सन्दूक़ों और बखारियों को गाय के खुरों से छुआना भूल गई। जिसका फल यह हुआ

कि उनके सारे सन्दूक़ फिर ख़ाली रह गए, उनकी बखारियों में अन्न का एक दाना भी न रहा। वे रोज़-बरोज़ ग़रीब होती चली गईं। ग़रीबी को देख कर उनके नौकर-चाकरों ने भी जवाब दे दिया, सब कुटुम्बियों ने भी अपने-अपने घर का रास्ता लिया। धीरे-धीरे ऐसा हुआ कि वे एक-एक मुट्ठी चने के लिए मोहताज हो गईं।

एक दिन उन्होंने सुना कि उनका पड़ोसी राजा एक तालाब बनवा रहा है। उसको कुछ मज़दूरों की ज़रूरत है। उन्होंने मज़दूरी के लिए वहाँ जाना तय किया। पेट जो कुछ न करवाए सो थोड़ा है। सातो बहुएँ मज़दूरिनों के से मैले-कुचैले फटे-चिथड़े पहन कर छिपे वेष मे वहाँ जाकर टोकरी ढोने का काम करने लगीं। वह पड़ोसी राजा और कोई न था, छोटी बहू का पति था। जब राजा का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था तब उसका सब से छोटा बेटा कमाई करने के लिए घर से बाहर निकल पड़ा और चलते-चलते एक ऐसे नगर में पहुँचा, जहाँ का राजा मर गया था, लेकिन उसके कोई औलाद न थी। अब उसके बाद गद्दी पर कौन बैठे, इसकी चिन्ता उस नगर के लोगों को हुई। सोचते-सोचते उनके ध्यान में यह बात चढ़ी कि राजा की हथिनी की सूँड़ में एक नौलखा हार लटका दिया जाय और तब उसे छुट्टा छोड़ दिया जाय। वह हाथिनी घूमते हुए जिस परदेसी के गले में वह माला डाल दे, उसी को राज-तिलक किया जाय। दैवयोग से राजा का यह बेटा अनेक शहरों की ख़ाक छानता हुआ उधर से आ निकला। हथिनी ने वह माला उसी के गले मे डाल दी। नगर के लोग बड़े ख़ुश हुए और बड़ी धूमधाम से उसे गद्दी पर बैठाया और सब लोगों ने उसे नज़रें भेंट कीं। राजा के बेटे को जब नया राज्य मिला तो उसे अपनी स्त्री की चिन्ता हुई। उसने सब दिशाओं में अपनी स्त्री का पता लगाने के लिए आदमी भेजे, परन्तु उसका पता न चला। तब अन्त में उसने एक नया तालाब बनवाने का विचार किया और सोचा कि शायद मज़दूरिनों में पेट पालने के लिए उसकी स्त्री भी आ जाय। भाग्य की बात कि सातों बहुएँ इसी तालाब पर मज़दूरी करने के लिए आईं, जब राजपुत्र की उन पर नज़र पड़ी और छोटी बहू से उसकी चार आँखें हुईं तो दोनों एक-दूसरे को पहचान गए। छोटी बहू अपने पति को पाकर बड़ी प्रसन्न हुई और राजपुत्र भी इतना ख़ुशी हुआ कि उसने उसी दिन उसके रानी होने का एलान देश भर में करा दिया।

छोटी बहू तो बात की बात में रानी बन गई, लेकिन उसने अपनी छहों जेठानियों से अपने सौभाग्य के बारे में कोई बात नहीं बतलाई। उसने रानी की हैसियत से उस तालाब के सब मज़दूर और मज़दूरिनों को एक दावत दी। जब सब मज़दूर दावत खाने आए तो उनके साथ उसकी छहो जेठानियाँ भी आईं। उस समय उसने थोड़ा सा गेहूँ का आटा लिया और उसको गूँध कर आदमी के समान हाथ, पैर और मुट्ठियाँ बनाईं और जब छहो जेठानियाँ जीमने बैठीं तो उनके पास जाकर उसने जिस जिठानी ने उसे थप्पड़ों से मारा था, उसकी पत्तल में वही आटे के गुँधे हुए हाथ परोसे और जिसने लातों से मारा था, उसकी पत्तल में पैर परोसे और जिसने उसे घूँसों से मारा था, उसकी पत्तल में मुट्ठियाँ परोसीं। यह देख कर वह छहो जेठानियाँ बड़ी डरीं और उन्होंने फ़ौरन ही छोटी बहू को पहचान लिया। तब सब अपने-अपने किए पर पछताने लगीं और हाथ जोड़-जोड़ माफ़ी माँगने लगीं। छोटी रानी बड़ी दयावती थी, उसने सबको माफ़ कर दिया और उन्हें बड़े प्रेम और आदर से महल में लिवा ले गई और तब से सातों बहुएँ मिल कर बड़े सुख से रहने लगीं।

(क्रमशः)

विविध विषय

देशभक्त डी वेलेरा

आयर्लैण्ड के भाग्य-विधाता और आयरिश फ्री स्टेट के वर्तमान राष्ट्रपति इमन डी वेलेरा संसार के उन थोड़े से देशभक्त महापुरुषों में हैं, जिन्होने अपने देश को पराधीनता के बन्धन से मुक्त करने के प्रयत्न में महान् से महान् कष्टों का सामना करने में कभी आना-कानी नहीं की है और अन्त में सफलता प्राप्त करके ही दम लिया है।

यों तो आयर्लैण्ड वाले गत पौने दो सौ वर्षों से अपनी मातृभूमि को बन्धन-मुक्त करने के प्रयत्न में लगे है और हजारों वीरो ने इसके लिए अपने प्राण तक निछावर कर दिए हैं, परन्तु इनमें डी वेलेरा का स्थान सर्वोच्च है। डी वेलेरा जैसे वीर, साहसी, दृढ़प्रतिज्ञ और सङ्गठन-शक्ति-सम्पन्न हैं, वैसे ही चतुर राजनीतिज्ञ भी है। थोड़े शब्दों में एक पराधीन देश के मुक्तिकामी नेता में जिन सद्गुणों की आवश्यकता होती है, वे सभी सद्गुण-समूह डी वेलेरा महोदय में पाए जाते हैं। यही कारण है कि अपने प्रयत्न में जैसी सफलता डी वेलेरा ने प्राप्त की है, वैसी बहुत कम नेताओं को नसीब होती है।

सबसे पहले, आज से सैकड़ों वर्ष पूर्व ब्रियन बरू नाम के एक पन्द्रह वर्षीय आयरिश बालक ने डेनमार्क के लुटेरो के चङ्गुल से अपने देश की रक्षा करने की चेष्टा की थी। पहले वह डेनों से हार गया; इसलिए आयर्लैण्ड को डेनों की वश्यता स्वीकार कर लेनी पड़ी। परन्तु अन्त में वीर बालक ब्रियन ने डेनों को अपने देश से मार भगाया। इस प्रयत्न में उसे नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा था, वर्षों जङ्गलों और पर्वतों की खाक छाननी पड़ी थी। परन्तु अन्त में उसने सफलता प्राप्त करके ही दम लिया।

इसके बाद आयर्लैण्ड अङ्गरेज़ों के कठोर शिकञ्जे में आ फँसा। तत्कालीन अङ्गरेज़ो ने लगातार कई वर्षों तक आयरिशों को बुरी तरह परेशान किया। उनके अत्याचारों की रोमाञ्चकारी कहानी बड़ी लम्बी है। इस छोटे से लेख में उसका वर्णन सम्भव नहीं।

अङ्गरेज़ो के अत्याचारों से आयरिश घबरा उठे। उन्होंने अपने देश से अङ्गरेज़ों को भगाने की बड़ी-बड़ी चेष्टाएँ कीं। कई गुप्त दलों की स्थापना की। सारे देश में ब्रिटिश-विद्रोह की आग भड़क उठी। परन्तु अङ्गरेज़ बलवान थे। उन्होंने न्याय और विचार को ठुकरा कर आयरिशों को हर तरह से अपङ्ग बना डाला। उस समय रानी एलिज़ाबेथ इङ्गलिस्तान के राजसिंहासन पर थी। उसने क़ानून बना कर अपने भेष और अपनी भाषा से भी बेचारे आयरिशों को वञ्चित कर डाला। कितने ही स्वदेश-प्रेमी आयरिशों को इस गन्दे क़ानून के विरोध में प्राण तक विसर्जन करना पड़ा।

इतने में अमेरिकनों ने अपने कन्धे से अङ्गरेज़ों का जुआ उतार फेंका। अमेरिका स्वतन्त्र हो गया। इसलिए आयरिश युवकों में भी स्वतन्त्रता प्राप्त करने की धुन समाई। उन्होंने संयुक्त आयरिश (United Irishmen) नाम की संस्था की

स्थापना की। सैकड़ों मुक्तिकामी युवक इस संस्था के सदस्य बने और अपनी मातृभूमि के उद्धार की तदबीर सोचने लगे। इसी समय दैवयोग से फ़्रान्स का इतिहास-प्रसिद्ध विप्लव आरम्भ हुआ। आयर्लैंएड के सैकड़ों नवयुवक फ़्रान्स पहुँचे और विप्लव-कला का अध्ययन करने लगे। साथ ही इस बात की भी चेष्टा होने लगी कि फ़्रान्स आयर्लैंएड की सहायता करे। अङ्गरेज़ों को इस बात की ख़बर लग गई। उन्होंने इस दल के सदस्यों को सताना आरम्भ किया। इसलिए यह संस्था एक गुप्त समिति के रूप में परिणत हो गई। अङ्गरेज़ों के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र आरम्भ हुए। परन्तु सन् १७९८ मे अङ्गरेज़ों ने इस समिति के फ़िज़रॉल्ड और उलफ़टन आदि कई नेताओं को पकड़ लिया। आयरिश युवकों ने प्रगट विद्रोह द्वारा इन गिरफ़्तारियों का उत्तर दिया, परन्तु असफल रहे।

इसके बाद सन् १७०० से लेकर १८९३ तक कई बार आयरिशों ने विप्लव की प्रचेष्टाएँ कीं; कितनी ही गुप्त समितियाँ बनीं और अङ्गरेज़ों द्वारा ध्वंस की गईं। इसके बाद नवीन आयर्लैंएड के निर्माता आर्थर ग्रिफ़िथ का आविर्भाव हुआ। इसी महापुरुष की चेष्टा से 'सिनफ़िन' दल की स्थापना हुई। इसके साथियों में यों तो कितने वीर और राजनीतिज्ञ थे, परन्तु उनमें माइकेल कलिन्स, मैकूस्विनी और डी वेलेरा का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मैकूस्विनी ने अङ्गरेज़ों के जेलख़ाने में ७० दिनों तक उपवास करके प्राण विसर्जन किया। डी वेलेरा को भी अपने उद्योग मे नाना प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा, परन्तु उन्होंने सफलता प्राप्त की।

डी वेलेरा का जन्म सन् १८८२ ईस्वी के अक्टूबर महीने में अमेरिका के न्यूयार्क नगर मे हुआ था। इनके पिता स्पेनिश और माता आयरिश महिला थीं। अमेरिका से इनके पिता अन्त में आयर्लैंएड चले आए और वहीं डी वेलेरा की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध हुआ। विद्यार्थी-जीवन में ये बड़े मेधावी, कुशाग्र बुद्धि और सत्साहसी युवक थे। व्यायाम और खेल-कूद से भी इनका बड़ा प्रेम था। बी० ए० की डिग्री प्राप्त करने पर इन्होंने डबलिन के कैथलिक कॉलेज में गणित पढ़ाने का कार्य स्वीकार किया। सन् १९१४ में बी० एस-सी० होकर स्कूल की इन्स्पेक्टरी प्राप्त करने की चेष्टा की, परन्तु सफल नहीं हो सके। राजनीतिक जीवन इससे पहले ही आरम्भ हो चुका था। सन् १९१३ मे ही आयरिश वालण्टियर्स संस्था में नाम भी लिखा चुके थे। साथ ही लेखों और व्याख्यानों द्वारा काफ़ी ख्याति प्राप्त हो गई। सीनफ़िनर भी वे पहले से ही थे। परन्तु किसी विशेष कारणवश १९१६ के ईस्टर-विद्रोह के पहले उन्होंने आन्दोलन में खुल कर भाग नहीं लिया था। परन्तु जब विद्रोह आरम्भ हुआ तो वे एकाएक उसमे आकर सम्मिलित हो गए और डबलिन में विद्रोहियों का नेतृत्व ग्रहण किया। विद्रोहियों और सरकारी सिपाहियो मे ख़ूब गोलियाँ चलीं। अङ्गरेज़ों ने इस विद्रोह को कुचल डाला। और अन्त मे डी वेलेरा को आत्म-समर्पण करने के लिए लाचार हो जाना पड़ा।

अन्त मे फ़ौजी अदालत द्वारा उन्हें फाँसी की सज़ा दी गई। परन्तु फिर बदल कर आजन्म क़ैद की सज़ा के रूप में बदल दी गई। इसके बाद ही आयर्लैंएड और ब्रिटेन में सन्धि की चर्चा आरम्भ हुई। सभी राजनीतिक क़ैदी छोड़ दिए गए। इसी समय डी वेलेरा को भी बिना किसी शर्त के मुक्ति मिल गई। जेल से छूट कर जब वे डबलिन गए तो नगरनिवासियों ने बड़े समारोह से उनका स्वागत किया। सीनफ़िनर आयरिश कैथोलिक उन्हें पाकर अतीव प्रसन्न हुए। इसका कारण यह था कि पुराने नेताओं में से वही एक जीवित बच गए थे। इनके आ जाने से सीनफ़िन आन्दोलन में फिर जान पड़ गई। उन्होंने बड़े

ज़ोर-शोर से स्वतन्त्रता का आन्दोलन आरम्भ किया। सन् १९१८ तक उन्होंने आयर्लैण्ड में घूम-घूम कर बड़े ज़ोरों से प्रचार किया।

सन् १९१७ के अक्टूबर में जो सीनफ़िन कॉन्फ़्रेन्स हुई थी, उसमें डी वेलेरा आयरिश प्रजातन्त्र के राष्ट्रपति चुने जा चुके थे। सन् १९१८ में आयरिशों को ज़बरदस्ती सेना में भरती करने के विरुद्ध एक नया आन्दोलन छिड़ा। डी वेलेरा ने भी बड़े ज़ोरों से इस आन्दोलन में भाग लिया। इसलिए मई के आरम्भ में ही वे फिर गिरफ़्तार कर लिए गए। साथ ही अङ्गरेज़ो को पता लगा कि कुछ आयरिश विद्रोही जर्मनों की सहायता से आयर्लैण्ड को स्वतन्त्र करना चाहते हैं। डी वेलेरा उस समय जेल में थे। परन्तु न जाने किस तरह वहाँ से भाग कर अमेरिका पहुँच गए और वहाँ जाकर बड़े ज़ोरों से प्रचार-कार्य आरम्भ किया। सीनफ़िन आन्दोलन के प्रति लोगों मे ख़ूब सहानुभूति हुई। अमेरिका-प्रवासी आयरिश धनवानों ने आर्थिक सहायता भी जी खोल कर की। न्यूयार्क के राज्याधिकारियों ने आयरिश राष्ट्रपति की हैसियत से डी वेलेरा का स्वागत किया। साथ ही उन्हें अमेरिका के कई नगरों की ओर से नागरिकता का अधिकार भी प्रदान किया। इसके अलावा आयरिश प्रजातन्त्र के लिए दस लाख पौण्ड बतौर ऋण के भी प्राप्त हुए। अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव में भी उन्होंने आयर्लैण्ड का प्रश्न उठाया था। परन्तु इस सम्बन्ध मे उन्हे सफलता नहीं प्राप्त हुई।

सन् १९२१ के वसन्त काल में इङ्गलैण्ड और आयर्लैण्ड मे एक सन्धि हो गई। तब डो वेलेरा भी अमेरिका से वापस आए और आने के कुछ दिन बाद ही आयर्लैण्ड के जातीय महाविद्यालय के चान्सलर बना दिए गए। साथ ही आयरिश प्रजातन्त्र ने उन्हे अपना राष्ट्रपति भी बना लिया। परन्तु परस्पर में मतभेद हो जाने के कारण उन्होने इस पद से इस्तीफ़ा दे दिया। इस समय आयर्लैण्ड में प्रजातन्त्रीय सैनिक दल की स्थापना हो गई थी। अङ्गरेज़ों से जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार आयर्लैण्ड दो भागों में विभक्त हो गया था। एक का नाम उत्तरीय आयर्लैण्ड और दूसरे का नाम दक्षिणी आयर्लैण्ड पड़ा था। महामति डी वेलेरा इस विभाजन के विरुद्ध थे। वे आयर्लैण्ड को एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में सम्पूर्ण स्वतन्त्र देखना चाहते थे। यही उनके जीवन का उद्देश्य था। इसलिए सन्धि के पश्चात् भी उन्होंने स्वतन्त्रता की लड़ाई बन्द नहीं की। इसलिए सन् १९२३ के अगस्त महीने में अधिकारियों ने उन्हें फिर पकड़ लिया। परन्तु १९२४ के जुलाई महीने में वे छोड़ दिए गए। जेल से मुक्त होते ही सीनफ़िनरों ने उन्हें अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। यह बात अलस्टर की सरकार को अच्छी नहीं लगी। उसने डी वेलेरा को अलस्टर प्रान्त से निकल जाने की आज्ञा दी। परन्तु उन्होंने इस आज्ञा की कोई परवा नहीं की, फलतः फिर गिरफ़्तार करके जेल में भेज दिए गए। सन् १९२५ के अन्त में आयर्लैण्ड की आर्थिक सीमा के सम्बन्ध में इङ्गलैण्ड के साथ एक सन्धि हुई। डी वेलेरा इस समय जेल से बाहर थे। परन्तु उनका कार्य-क्षेत्र अत्यन्त सङ्कुचित था। सीनफ़िनरों में पारस्परिक मतभेद चल पड़ा। राष्ट्रीय महासभा के निर्वाचित सदस्यो के लिए राजभक्ति की शपथ लेने की जो क़ैद लगा दी गई थी, वह उन्हें पसन्द न थी। परन्तु १९२६ के नवम्बर में उन्होने अपना मत बदल दिया।

डी वेलेरा ने अमेरिका से जो रुपए उधार लिए थे, उनमें से ख़र्च के बाद पाँच लाख पौण्ड बच गए थे। फ़्री स्टेट की सरकार उन बचे हुए पौण्डों को अपने अधिकार में रखना चाहती थी। इसलिए फिर एक झगड़ा खड़ा हो गया। डी वेलेरा फिर अमेरिका चले गए और वहाँ जाकर उन्होंने घोषणा की कि सन् १९२१ में इङ्गलैण्ड के साथ जो सन्धि हुई थी, वह आयरिश जनता

की वास्तविक इच्छा के अनुसार न थी, इसलिए अवसर पाते ही मैं फ़्री स्टेट की सरकार का अस्तित्व मिटा दूँगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि अमेरिका से जो ऋण लिया गया था, उस पर फ़्री स्टेट का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए, क्योंकि वह रकम स्वतन्त्र आयर्लैंगड के लिए ली गई थी। यह झगड़ा वर्षों तक चलता रहा। आयरिश फ़्री स्टेट के प्रेज़िडेण्ट मि० कासग्रेव इस सम्बन्ध में डी वेलेरा के प्रतिद्वन्दी रहे। पिछले निर्वाचन के समय डी वेलेरा ने मि० कासग्रेव को परास्त करके आयरिश पार्लामेण्ट पर अपना अधिकार जमाने की चेष्टा की। परन्तु अपने दल के एक सदस्य के अनुपस्थित रह जाने के कारण उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। और मि० कासग्रेव प्रेज़िडेण्ट चुन लिए गए। साथ ही गत वर्ष के अक्टूबर महीने में एक क़ानून बना कर उन्होंने आइरिश शासन-विधान का कार्य स्थगित कर दिया। और इसका कारण यह बताया गया कि आयर्लैंगड सङ्गठित होकर वर्तमान सरकार को उलट देना चाहता है। साथ ही आयरिश प्रजातन्त्री सेना और उससे सम्बन्ध रखने वाली कई संस्थाएँ भी ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दी गईं। कई फौजी अदालतों की भी स्थापनाएँ हुईं। खुल्लम-खुल्ला कहा गया कि जिन संस्थाओं को कुचलने के लिए यह तैयारियाँ की गई हैं, उनसे डी वेलेरा का सम्बन्ध है। डी वेलेरा ही ऐसे लोगों के नायक हैं, जो फ़्री स्टेट की सरकार को उलट देना चाहते हैं।

परन्तु डी वेलेरा इन बातों से विचलित होने वाले न थे। उनका अटल सिद्धान्त है, आयर्लैंगड को पूर्ण स्वाधीन कर देना। वे बराबर इसी प्रयत्न में लगे रहे और लगे हैं। सामने की भयङ्कर परिस्थितियों का अतिक्रम करके अब वे आयर्लैंगड के राष्ट्रपति के पद पर पहुँच गए हैं और उन्होंने घोषणा कर दी है कि—

(१) आयर्लैंगड के विधान में राजभक्ति की शपथ हटा दी जाय।

(२) तीस लाख पौगड सालाना जो आयर्लैंगड को भूमि-कर-स्वरूप इङ्गलैगड को देने पड़ते हैं, वे न दिए जायँ।

(३) उत्तरीय और दक्षिणी आयर्लैंगड के नाम से देश का जो विभाजन हुआ है, वह मिटा दिया जाय।

डी वेलेरा के मतानुसार पूर्वोक्त सन्धि के अनुसार आयर्लैंगड को स्वतन्त्रता की पहली क़िस्त मिली थी, इसलिए अब वह दूसरी क़िस्त भी ले लेना चाहता है।

डी वेलेरा की इस घोषणा ने इङ्गलैगड के राजनीतिज्ञों में बेतरह खलबली पैदा कर दी है। देखें, अबकी ऊँट किस करवट बैठता है।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

वर्णों की उत्पत्ति

हमारी वर्ण-व्यवस्था ईश्वर की स्थापित की हुई है और चारों वर्ण ब्रह्म ने सृष्टि के आदि में स्वयं नियत किए थे। ब्रह्मदारुण्यक उपनिषद् के ११ से १३ खगड, अध्याय १, ब्राह्मण ४ बतलाता है :—

ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव। तदेकँ् सन्नव्यभवत्। तच्छ्रेयोरुपमत्यसृजत क्षत्रं, यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति। तस्मात् क्षत्रात् परं नास्ति, तस्माद् ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये। क्षत्र एव तद्यशो दधाति। सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म। तस्माद्यद्यपि राजा परमतां गच्छति, ब्रह्मैवान्तत उपनिश्रयति स्वां योनिम्। य उ एनँ् हिनस्ति; स्वाँ् स योनि मृच्छति। स पापीयान् भवति, यथा श्रेयाँ् सँ् हिँ् सित्वा॥

अर्थ—"निस्सन्देह आरम्भ में केवल एक ब्रह्म था, वह अकेला पूरा समर्थ नहीं हुआ। तब उसने

एक बहुत अच्छी सृष्टि रची, जो क्षत्र (बल वा क्षत्रिय जाति) है। देवताओं में ये क्षत्र हैं—इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु, ईशान। सो क्षत्र से परे कुछ नहीं, इसलिए राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण क्षत्रिय से नीचे बैठता है। वह क्षत्रिय को ही उस यश को देता है। पर इस क्षत्र का उत्पत्ति-स्थान ब्रह्म (ब्राह्मणत्व) है। इसलिए राजा यद्यपि राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण से ऊँचाई पाता है, पर यज्ञ के अन्त में वह ब्राह्मण के नीचे बैठता है। वह (क्षत्रिय) जो इस (ब्राह्मण) की हिंसा करता है (अनादर करता है) वह अपने कारण की हिंसा करता है। वह अधिक पापी बनता है, जैसा कि वह पुरुष, जो अपने से भले पुरुष की हिंसा करता है।"

स नैव व्यभवत्। स विशमसृजत, यान्येतानि देवत्रा गणश आख्यायन्ते वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति।

अर्थ—"वह क्षत्र को रच कर भी पूरा समर्थ नहीं हुआ। उसने विश (वैश्य-प्रजा) को रचा। देवताओं में वैश्य हैं, वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत।"

स नैव व्यभवत्। स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणम्। इयं वै पूषा, इयँ् हीदँ् सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।

अर्थ—"वह पूरा समर्थ नहीं हुआ। उसने शूद्र के वर्ण को रचा, अर्थात् पूषा (पालन-पोषण करने वाले) को। यह (पृथिवी) ही पूषा है, क्योंकि पृथिवी उस सबका पोषण करती है।"

इसी व्यवस्थानुसार हमारी वर्ण-व्यवस्था बनाई गई है। ईश्वर हमारे पूर्व जन्म के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार हमको इन वर्णों में जन्म देता है। ब्राह्मण वर्ण का धर्म वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और लेना है और क्षत्रिय जाति का वेद पढ़ना, दान देना, रक्षा करना है। वैश्य जाति का वेद पढ़ना, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य और दान देना है। शूद्र का केवल सेवा-धर्म। ये सब धर्म भिन्न-भिन्न जातियों के ईश्वर ने निर्माण किए हैं जैसा कि धर्म-ग्रन्थों में लिखा हुआ है।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्राचीन समय में इस वर्ण-धर्म का व्यवहार में क्या उपयोग था? ब्राह्मण अपने धर्मानुसार वेद पढ़ते थे, क्षत्रिय-वैश्य को वेद पढ़ाते थे और यज्ञ करते कराते थे। क्षत्री उनकी रक्षा करते थे और वैश्य तथा क्षत्री दोनों मिल कर उनको दक्षिणा देते थे, ताकि उनकी आजीविका भले प्रकार चल सके। स्थान-स्थान पर उनके वास्ते पाठशालाएँ बनी हुई होती थी। किसी प्रकार उनको आजीविका का कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता था और इस तरह उनको अपना कर्तव्य पालन करने में पूरा सुभीता प्राप्त था। क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य रक्षा करना था। वैश्य कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य के अधिष्ठाता थे और शूद्र अपने सेवा-धर्म पर तत्पर थे। और हमेशा वैश्य क्षत्रियों की धन से और शूद्र सेवा से मदद करते थे, ताकि वे संसार की रक्षा मे हर तरह से समर्थ हों। प्रत्येक पुरुष परोपकार की दृष्टि से अपने धर्म का पालन करता था और देश की उन्नति में अपनी उन्नति समझता था। मुक्ति-प्राप्ति का केवल एक यही मार्ग सबसे अच्छा समझा जाता था कि अपने धर्मानुसार जीवन व्यतीत किया जाय।

आजकल वर्णाश्रम धर्म प्रायः लुप्त होता हुआ प्रतीत होता है। ब्राह्मणों की-दशा शोचनीय है। ब्रह्म विद्या उपार्जन करने का बेचारों को कोई सुभीता ही नहीं है। यज्ञ कौन करावे, श्रद्धा ही नहीं है। क्षत्री-धर्म लुप्त हो गया है, गिना-चुना ही शायद कोई वीर मिले। गोरक्षा की हालत जैसी है, वह सभी जानते हैं। हमारे देश का उद्धार तब तक नहीं हो सकता, जब तक कि हम वर्ण-व्यवस्था को ईश्वर के बनाए हुए आदर्शों के अनुसार ही न मानने लगें। —परमेश्वरीसहाय

❀ ❀ ❀

छाया

ठीक याद नहीं। हाँ, शायद १९२७ के वसन्त के बुध को आकाश ने एक रङ्ग-विरङ्गा शामियाना तैयार किया था। पर अन्धकार के आगमन को देख कर विद्युत् की चमक ने मानो रमणी के कानन-सम आनन को एक स्वर्गीय हँसी की छटा से व्याप्त कर दिया था।

हाँ, उसी समय मैं भी वृक्षों के आनन्द में हिस्सेदार बन कर उधर से निकला। शायद मैं उस समय पत्थरों का साझीदार नहीं बना था। क्योंकि नीरस जड़-हृदय की वहाँ ज़रूरत नहीं थी।

अकस्मात् वृक्षों के आनन्द को भङ्ग करते हुए, प्यासे पक्षियों के प्रेम-जल को लेते हुए, वन्य-जन्तुओं की हृद्तन्त्री को सजग करते हुए मैंने पूछा—कौ...औन...न ?

पुनः उसी दृश्य को प्रगट करती हुई वह कल-कण्ठिनी, प्रियतम के प्रेम से दबी हुई बोली—छाया !

बस, उस दिन का आनन्द-सागर आगे न लहरा सका। वहाँ पूर्ण स्तब्धता हो गई और वही स्थान भयानक बन गया। मैं लौट आया। कई बार उधर गया, पर वृक्षों की सायँ-सायँ के अतिरिक्त कुछ भी नज़र न आया।

१९२८ का वसन्त आया। प्रकृति अपने आपको फिर उसी रङ्ग में रँगने लगी। मेरे पैर भी मुझे आज उसी स्थान को ले जाने लगे। पूर्व का सारा दृश्य फिर से नेत्र-गोचर हो गया।

घर आने पर भी दिल शान्त न हुआ। बड़ी कोशिशें कीं, पर निद्रा-देवी ने प्रसन्नता प्रगट न की। विचार-धारा की तरङ्गें उठने लगीं।

मैं सोचने लगा—छाया ! यह कौन है ? है तो छाया, पर अपने प्रभाव से मुझे भी छाया-सम बना लिया है। मैं भी उसके चरण-चुम्बन के लिए व्याकुल हो उठा हूँ। इस बार मिलने दो, मैं भी अपने आपको उसी में परिवर्तित कर दूँगा। अन्यथा उसको अपने में मिला लूँगा।

जिस दिन हम मिले, शायद, शरद्-ऋतु की रात्रि थी। चन्द्रमा अपनी ठण्डी-ठण्डी किरणें श्रमित मनुष्यों के हृदयों को शान्त करने के मिस से प्रकृति-प्रिया पर फेंक रहे थे।

इतने में वन मे से एक गाने की आवाज़ मेरे कानो में आई। मैं भी उधर आकर्षित होकर गया। गङ्गा का किनारा था। पूर्णमासी होने से जल खूब उछल रहा था। देर तक प्रतीक्षा की। हताश था। पर बिल्कुल निराश न था। प्राकृतिक दृश्यों के विचार में लगा हुआ था।

इतने में गाने की आवाज़ फिर आई। मैं पहिले भी ऐसी आवाज़ पर धोखा खा चुका था। अतः इस बार पूर्व सम जान कर लौटने लगा, पर पैर न उठता था। जल का वह दृश्य हृदय में घुस कर मानो तिरस्कार करके कहने लगा कि हम जड़ पदार्थ होते हुए भी प्रेम का इतना अंश रखते हैं कि अपने आपको प्रेम की आँच में दग्ध करते हैं, पर तुम मनुष्य होकर भी इतने नीरस × × ?

कुछ सोच कर पूर्ववत् मै गायन सुनने लगा। हतज्ञान होकर एक बार फिर उसे अपने प्रेम-पाश में बाँधने दौड़ा। परन्तु फिर धोखा हुआ। मै वहीं बेहोश होकर गिर गया।

इतने में किसी ने मेरे कान में कोमल स्वर में कहा—"असीम, अनन्त, 'छाया' ने इस उपवन को घेर रक्खा है। छाया कभी पराजित हो सकती है ? तुम भी छायामय बनो, तब उसे अपना सकोगे।"

मै उठा, मुझे गर्व था कि मुझे कोई परास्त नहीं कर सकता, परन्तु उस छाया ने मुझे हरा दिया। इतना सोचते ही छाया ने मेरा हाथ पकड़ लिया हो, ऐसा प्रतीत हुआ। मैंने पूछा—"कौन जीता ?" उसने कहा—"तुम ही बताओ।" पर दैवी शक्ति ने मेरे मुँह से निकलवाया—"छाया"।

—सत्यमूर्ति के० पटेल

हमारी गुलाम-प्रवृत्ति

गुलाम राष्ट्रों का दृष्टिकोण भिन्न हो जाता है, महात्मा गाँधी ने इसे 'गुलाम-प्रवृत्ति' (Slave mentality) कहा है। गुलाम देशों के निवासी अपनी प्रत्येक बात को हेय दृष्टि से देखने लगते हैं और शासक राष्ट्रों की नक़ल करना ही उनकी शान हो जाती है। यदि एक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय चरित्र को भूल जाय तो उसका पूरा अधःपतन हो जाता है।

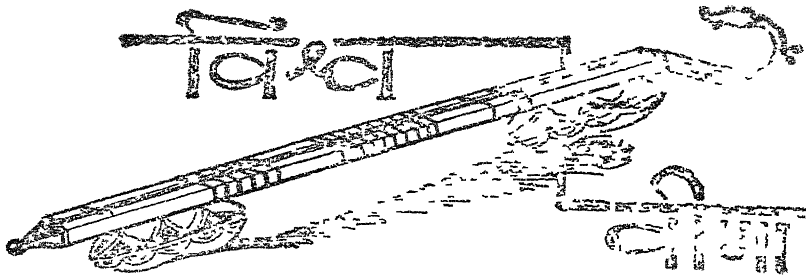
हिन्दुस्तान में हमको 'गुलाम-प्रवृत्ति' के उदाहरण पग-पग पर मिलेंगे। भेष, भाषा और भाव में हम अङ्गरेज़ों की नक़ल करना ही शान समझते हैं। हमारे पास जो कुछ है वह सब कुछ बुरा और जो अङ्गरेज़ों का है वह सब कुछ अच्छा। कभी-कभी तो हम जीवन की छोटी-छोटी बिल्कुल अनावश्यक बातों में भी उनकी नक़ल करते नहीं शर्माते। सड़कों पर कभी-कभी भारतीय देवियों को आप कष्ट से ऊँची एड़ी के जूतों पर चलते हुए देखेंगे, कभी-कभी तो आप ऊँची एड़ी के साथ पायजेब और लच्छों का गङ्गा-टेम्सी मेल देखेंगे। ऊँची एड़ी का जूता और उस पर आधे हाथ लम्बा घूँघट हमारी विचित्र रुचि का परिचायक है।

हममें से अनेक शिक्षित व्यक्ति तो अपने नाम को भी बुरी तरह से तोड़-मरोड़ कर अङ्गरेज़ी रूप देने की चेष्टा करते हैं। एक बँगले पर एन० एम० चेट का साइनबोर्ड देख गया, समझा कोई चेट साहब रहते होंगे। पर बाद को मालूम हुआ कि चेट साहब के खोल में वास्तव में पं० नागरमल चतुर्वेदी रहते हैं। उनकी समझ में चतुर्वेदी से चेट कहीं अधिक शान का नाम है। जिस तरह एक अङ्गरेज़ इङ्गलैण्ड को 'होम' (Home) कहेगा, उसी तरह कुछ हिन्दुस्तानी भी इङ्गलैण्ड को 'होम' कहते हुए सुने जाते हैं, जिसका अर्थ यही है कि वे भारतवर्ष में अपना जन्म होने के कारण लज्जित हैं। इसी तरह भाषा का हाल है। दो अर्ध-शिक्षित युवकों को बातचीत करते हुए देखिए, उन्हें एक-दूसरे के प्रति अपने भाव अङ्गरेज़ी में प्रदर्शित करने में बड़ी कठिनाई होती है, वे आपस में इतने लालित्य के साथ बातें नहीं कर सकते, जितनी कि अपनी भाषा में; पर फिर भी वे टूटी-फूटी अङ्गरेज़ी का व्यवहार करते हैं, क्योंकि अपनी भाषा में बात करना कुछ नीची चीज़ है।

किसी शिक्षित व्यक्ति के घर में घुस जाइए और उसकी रहन-सहन की प्रत्येक प्रणाली को ध्यान से देखिए। आपको वहाँ अङ्गरेज़ी जीवन का ढाँचा तो सब कुछ वही मिलेगा, पर उसमे आप जीवन की कमी देखेंगे। जिस तरह एक कुम्हार मिट्टी का पुतला बना कर मनुष्य के शरीर की नक़ल करता है, उसी तरह वहाँ भी आप अङ्गरेज़ों के रहन-सहन की नक़ल देखेंगे। पर जिस तरह पुतले में सञ्चालन-शक्ति की कमी होती है, उसी तरह इन भारतीय लोगों के अङ्गरेज़ी रहन-सहन में आप सफ़ाई, सौन्दर्य और व्यवस्था की कमी पाएँगे।

भारतीय मस्तिष्क से 'ब्रिटिश गुरुता' (British Superiority) का भाव जितना जल्दी उठ जाय, उतना ही अच्छा है। हमको प्रत्येक बात की तह में बैठ कर परीक्षा करनी चाहिए और जिसका जितना महत्त्व हो, उसको उतना ही देना चाहिए।

—देवकीनन्दन 'विभव'



जर्मनी में माताओं और शिशुओं की रक्षा

डॉक्टर के० सी० चौधुरी, एम० बी० ने जनवरी मास के 'Modern Review' में उपरोक्त विषय पर एक शिक्षाप्रद लेख लिखा था, जिसमें से कुछ ज्ञातव्य बातें यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

आधुनिक जर्मनी में माता और बालक की रक्षा-शिक्षा का विशद तथा सुव्यवस्थित प्रबन्ध है। प्रारम्भ में कुछ संस्थाएँ ग़ैर-क़ानूनी बच्चों के लिए स्थापित की गई थीं। उसके बाद अनाथालय खुले, फिर इस प्रणाली ने और भी व्यापक रूप धारण कर लिया। आजकल जो संस्थाएँ वहाँ खुली हुई हैं, उन्हे तीन भागो में विभाजित किया जा सकता है—(१) माताओं के लिए, (२) शिशुओं के लिए, (३) बड़े बालकों के लिए।

विवाह के विषय में सम्मति देने के लिए राज्य की ओर से १०९ परामर्शदायक समितियाँ हैं, जो विवाह सम्बन्धी आर्थिक, सामाजिक, नैतिक तथा स्वास्थ्यिक मामलों पर परामर्श देती हैं। जो माताएँ बच्चे उत्पन्न करने के अयोग्य समझी जाती हैं, उन्हें वन्ध्या बनाने का प्रबन्ध भी इनके हाथों में है।

माताओं की रक्षा के लिए समितियाँ प्रत्येक नगर तथा ग्राम में हैं। यहाँ गर्भवती माताओं की परीक्षा होती है और उनके लिए सारी बातों का प्रबन्ध किया जाता है। यदि माताओं को किसी प्रकार का रोग होता है, तो उन्हे अस्पताल भेज दिया जाता है। मातृत्व के विषय में व्याख्यान भी होते रहते है। लड़कियों को स्कूलों में बच्चों की देख-रेख, उन्हें भोजन कराना आदि विषयों की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती है। इनके अतिरिक्त माताओं को उनके आर्थिक मामलों और अधिकारों के सम्बन्ध में भी सलाह दी जाती है।

माताओं के लिए कुल २७८ अस्पताल हैं, जिनमें ९२०८ माताओं के लिए स्थान है। माताओं की रक्षा के लिए अनेक क़ानून बनाए गए हैं। उन्हें दिन में ८ घण्टे से अधिक, रात्रि में और छुट्टियो में बिलकुल, काम नहीं करना पड़ता। उनका बीमा स्वल्प फीस पर हो जाता है और गर्भवती होने पर उन्हे ३ मास की सवेतन छुट्टी मिलती है।

शिशुओं की रक्षा के लिए सन् १९२३ में ४,४९१ समितियाँ थीं, जब कि सन् १९१३ में २२१ और सन् १९०० में केवल ३ थीं। इनमें बच्चों की परीक्षा होती है और उनके पालन में यदि कोई त्रुटि होती है, तो वह माता को समझा दी जाती है। जो माताएँ काम पर जाती हैं, वे अपने बच्चों को दिन में 'नर्सरी' में छोड़ आती हैं, जहाँ उनकी सम्यक् रूप से देखभाल की जाती है। सन् १९२४ में जर्मनी में इस प्रकार की ३१८ नर्सरी थीं। यदि घर में कोई संक्रामक रोग फैल गया हो, माता-पिता शराबी हों या घर का वातावरण दूषित हो, तो उनके बच्चों को स्टेट की ओर से खुले हुए 'बोर्डिङ्ग हाउसों' मे स्थान मिल जाता है। रोगी शिशुओं के लिए लगभग

६०० अस्पताल हैं। इन सब उपायों से काम लेने के कारण बच्चो की मृत्यु-संख्या सन् १९०१ में जहाँ २०'७ प्रतिशत थी, वहाँ सन् १९२४ में वह केवल ८'९ प्रतिशत रह गई थी।

बड़े बालकों के लिए भी इसी प्रकार अनेक संस्थाएँ हैं, जैसे—

(१) ३ से ६ वर्ष तक के बच्चों के लिए किण्डर गार्टन स्कूल।

(२) प्राइमरी स्कूल।

(३) कुन्द-ज़हन, लूले-लँगड़े, अन्धे, बहरे बच्चों के लिए अस्पताल-स्कूल।

(४) विशेष प्रकार के गृह—जहाँ बालक छुट्टियों में रक्खे जाते है, या जहाँ उन्हे कुछ दिन रख कर स्वास्थ्य-विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाती है।

(५) बच्चों के लिए जीवन-बीमा-समितियाँ।

(६) जो बालक किन्हीं कारणों से स्कूल नहीं जा सकते, उनके घर पर शिक्षा देने के लिए अध्यापक भेजे जाते हैं।

❀ ❀ ❀

विश्व के महिला-समाज में क्रान्ति

श्रीयुत 'रमेश' ने हाल ही में अजमेर की 'महिला' में निम्नाङ्कित लेख लिखा है, जिससे विश्व की महिलाओ की अभूतपूर्व जागृति पर बहुत-कुछ प्रभाव पड़ता है। 'चाँद' की पाठिकाओं के लाभार्थ यह लेख अविकल रूप से यहाँ उद्धृत किया गया है।

क्रान्ति का युग

वर्तमान युग चतुर्मुखी क्रान्ति का युग है। राजनैतिक क्रान्ति के साथ-साथ सामाजिक क्रान्ति और उसके अन्तर्गत बाल और महिला-समाज में क्रान्ति की विचित्र लहर चल रही है। ईश्वर-प्रदत्त मानवी अधिकारों में अब पुरुष और स्त्री के पृथक्-पृथक् अधिकार नहीं माने जाते। अबला, दासी, अनुचरी और ऐसे ही नामों से पुकारी जाने वाली स्त्रियाँ अब क्रान्ति के अखाड़े में कूद कर साहसी और स्वावलम्बी बन रही हैं, संसार के सभी देशों में महिला-समाज की क्रान्ति ने एक उथल-पुथल मचा दी है।

भारतवर्ष में

नारी-समाज की जागृति का श्रीगणेश तो बहुत पहिले हो चुका था, किन्तु वह जागृति समाज-सुधार की भावना के साथ थी, देश मे जब चारों ओर सुधारो की धूम मचाई जाती है, जातीय, धार्मिक और भिन्न-भिन्न उद्देश्यों को लेकर खड़ी हुई संस्थाएँ जब सुधारों की सड़क पर अपने सपाटे भर रही हैं, उस दशा मे दुनिया का यह 'आधा अङ्ग' अपना सुधार न करे—यह कैसे हो सकता था? किन्तु सुधार और क्रान्ति में समय का बहुत बड़ा मतभेद होता है; सुधार अथवा विकास द्वारा जिस उद्देश्य को हम एक युग में पूरा कर पाएँगे, वह क्रान्ति द्वारा चन्द सालों में पूरा किया जा सकता है। अस्तु, भारत का गत सत्याग्रह आन्दोलन महिला-समाज की क्रान्ति का क्षेत्र बन चुका है। स्वयं महात्मा गाँधी के कथनानुसार आशा से अधिक सफलता हमें गत आन्दोलन में मिली है। देश ने जितना त्याग और बलिदान इस स्वतन्त्रता की लड़ाई में किया, उसके बदले यदि उसे और कुछ न मिले तब भी हमने अपने महिला-समाज को जितना ऊँचा उठा लिया, वह उसके मूल्य में आँका जा सकता है। गत आन्दोलन में रचनात्मक कार्य और वह कार्य, जिसका सबसे अधिक प्रभाव हम सरकार पर डाल चुके हैं, वह महिलाओं द्वारा सम्पन्न हुआ है। बहिष्कार के कार्य मे पुरुष-समाज को इतनी सफलता किसी हालत में न मिल सकती थी। अतः यह बिना सङ्कोच कहा जा सकता है कि भारत की इस स्वराज्य की लड़ाई में पुरुषों के बराबर ही स्त्रियों ने कार्य किया है।

सिर ऊँचा उठ गया

भारतीय नारी-समाज की इस विलक्षण क्रान्ति ने देश का मस्तक ऊँचा उठा दिया है। कोई भी देश आज इस बात का दावा नहीं कर सकता कि वह नारी-समाज के उत्थान में भारतवर्ष से बढ़ा-चढ़ा है। भारतीय महिला-समाज के जागरण की यह एक ऐसी मिसाल है, जिसका सानी दुनिया की तवारीख़ में नहीं मिलेगा। लाखों और करोड़ों महिलाओं का एक सङ्गठन-सूत्र में बँध जाना, अपने ध्येय के पीछे उनमें से सहस्रों का हँसते-हँसते जेल जाना, मार, अपमान, प्रताड़ना और कटु वाक्यों को सहते हुए भारतीय आदर्श और भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए अहिंसा धर्म को निभा लेना—ये ऐसी बातें हैं, जिसके कारण आज हम अपने नारी-समाज के लिए जितना नाज़ करें उतना ही थोड़ा है। भारत को आज मान है कि उसके पास एक ऐसी राष्ट्रीय महिला-सेना तैयार है, जो ब्रिटेन के जहाजी बेड़े, अमेरिका के क्यूजरों, बोल्शेविकों की लाल फ़ौज और इटली के फैसिस्ट सैनिकों से कहीं अधिक शक्तिशाली और सङ्गठित है। लक्ष्मी के इस अपार-भण्डार को रखते हुए कौन कह सकता है कि हमारा देश ग़रीब है!

चीन की महिलाएँ

चीन और भारतवर्ष से धर्म, संस्कृति और सामाजिक बातों में बहुत-कुछ समानता है। वहाँ के महिला-समाज की दशा भी भारत से अधिक मिलती-जुलती है। जब किसी चीनी कुटुम्ब में लड़की का जन्म हो, तो वहाँ प्रसन्नता के स्थान पर शोक छा जाता है, कभी-कभी वे लड़कियों को मार भी डालते हैं। विवाह-सम्बन्ध में लड़की बिलकुल माँ-बाप के अधीन है, अगर वे उसे अयोग्य और उजड्ड व्यक्ति के हाथ में देना चाहें तो लड़की को मुँह से एक शब्द भी निकालने की गुञ्जायश नहीं। नालायक़ पति के फन्दे में पड़ी हुई चीनी स्त्री को पति की प्रत्येक उचित-अनुचित आज्ञा का पालन करना चाहिए। पति कितना ही दुराचारी हो, स्त्री उसके सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कह सकती, यहाँ तक कि पति कितनी ही स्त्रियाँ रक्खे और अपनी स्त्री को दूसरे के हाथ बेच दे, इस पर भी स्त्री को चूँ-चपड़ करने का अधिकार नहीं। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चीनी महिला का जीवन ऐसी ही पराधीनता और कष्टों का करुणापूर्ण जीवन है।

क्रान्ति का श्रीगणेश

सन् १९२६-२७ ई० में चीन की भूमि राजनैतिक क्रान्ति की क्षेत्र बन रही थी, उसी राजनैतिक क्रान्ति के साथ वहाँ के महिला-समाज में क्रान्ति हुई। चीन की क्रान्ति के सूत्रधार डॉक्टर सनयातसेन ने विरासत में 'स्त्री और पुरुषों के समान अधिकार' को छोड़ा था। उनके बाद उनकी धर्मपत्नी ने उनके मिशन को पूरा किया। डॉक्टर सनयात चीन के पुरुष-समाज के नेता थे, तो उनकी पत्नी वहाँ के महिला-समाज की अभिनेत्री हैं। जितने थोड़े काल में चीनी महिला-समाज की जाग्रति हुई, उसे देख कर दूसरे देश वाले दाँतों तले उँगुली दे गए। ईसाई मिशनरियों ने वहाँ महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा और उनमें जागृति का बीज बोया था, किन्तु क्रान्ति ने वहाँ बिल्कुल कायापलट कर दिया। कहाँ तो चीनी महिलाएँ पाँवों में लोहे की खड़ाऊँ बाँध कर चलती थीं, और कहाँ सन् १९३१ के अप्रैल मास में पुरान-खण्डी लोगों को चुनौती देते हुए वहाँ की महिलाओं ने घोषणा कर दी कि हम स्त्रियों का नितङ्ग नङ्गा जुलूस निकालेंगी, यदि किसी में दम है तो हमें रोके। उन्होंने अपनी एक दक़ियानूसी विरोध सभा (Anti old mission) क़ायम की। अपने को घोर क्रान्तिकारी कहने के लिए उन्होंने अपने बाल कटवा लिए। हुयेह के स्त्री-मण्डल ने अपने अधिवेशन में प्रस्ताव पास किए हैं कि यदि

पुरुष स्त्रियों को तलाक़ दे सकता है तो स्त्री को भी तलाक़ का हक़ है। यदि पुरुष स्त्री को छोड़ता है तो स्त्री दावा करके अपने लिए पुरुष से खर्च ले सकती है। पति के बाद उसकी जायदाद की वे ही मालिक हो सकती हैं। यही नहीं, कितनी चीनी महिलाओं ने राजनैतिक क्रान्ति में रूस की कैथेराइन और सोफिया जैसी क्रान्तिकारी महिलाओं के पथ का अनुसरण किया। चीन की क्रान्तिकारी महिला शनकी तो चीन की चण्डी के नाम से प्रसिद्ध है।

मुस्लिम महिलाओं में क्रान्ति

संसार मे जितने धर्म हैं, उनमें महिलाओं के हक़ और उनकी स्वतन्त्रता के लिए मुस्लिम धर्म सबसे घातक सिद्ध हुआ है। मुसलमानी शरीयत के अनुसार स्त्रियों को पुरुषों के समान सार्वजनिक कार्यों में हाथ बटाने का अधिकार नहीं। उनकी दशा पिंजड़े में बन्द जन्तु-विशेष से अच्छी नहीं है। चाहे शरीयत इसको इजाज़त न भी दे, पर मुल्लाओं ने और मुसलमानों के प्रचलित रिवाज़ ने तो मुस्लिम महिलाओं की यही दशा कर रक्खी है। पर सत्य और असल बात पर्दे से नहीं छिपी रहती। धर्म और शरीयत की आड़ में महिलाओं के हक़ और उनकी स्वतन्त्रता का शिकार खेलने वाले अब समझ गए कि उनके फ़तवे और शरीयत की शर्तें केवल किताब की चीज़ें रह गईं, उनका व्यावहारिक मूल्य कुछ भी नहीं रहा। आजकल टर्की, मिश्र, सीरिया और दूसरे मुसलमान देशों की महिलाएँ क्रान्ति के अखाड़े में कूद पड़ी हैं।

टर्की में

टर्की में तो मुस्तफा कमालपाशा के कमाल ने स्त्री और पुरुष के अधिकारों में कोई भेद ही नहीं रहने दिया। वहाँ स्त्रियों को बुर्का और बहु-विवाह क़ानूनन् वर्जित है। टर्की की पहली महिला हादी० जी० सेरया एकेम थी, जिसने सबसे पहिले अपना पर्दा तोड़ा, उसके बाद सारे देश की महिलाओं में एकदम पर्दे के विरुद्ध आन्दोलन शुरू हो गया। अब तो वहाँ स्त्रियों का पर्दा एक गए-गुज़रे ज़माने की बात हो गई है। वहाँ की स्त्रियाँ आजकल विश्वविद्यालय के सीनेट की मेम्बर हैं, बहुत सी वकालत करती हैं, जज और डॉक्टर हैं। सिर से पैर तक बुर्के में बन्द रहने वाली बीबियाँ अब पिण्डलियों से ऊँचे घाघरे पहिन कर गोरी मेमों के समान टोप लगा कर सड़कों पर चलती हैं। यह सब कुछ न कुछ दिनों में हो गया। यदि ये स्त्रियाँ पर्दे में बन्द रहतीं, तो आज भी वे पशु की तरह अपना जीवन बिताने वाली होतीं।

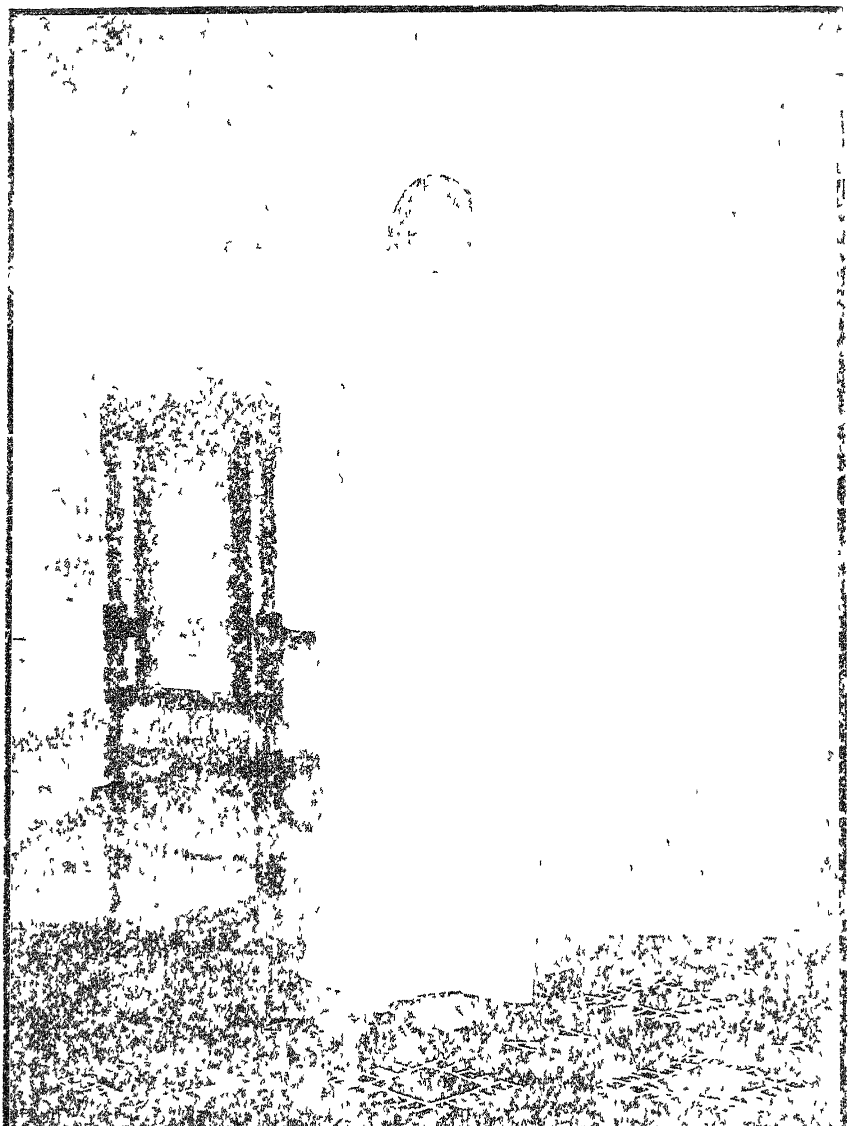
मिश्र

मिश्र की स्त्रियों में भी क्रान्ति की लहर उठ रही है। मिश्र की महिलाओं की अभिनेत्री श्री० हाया शिरोशी पाशा हैं। मिश्र के एकच्छत्र नेता स्वर्गीय ज़गलुल पाशा की धर्मपत्नी आजकल मिश्र की महिलाओं के उत्थान के लिए पूरा प्रयत्न कर रही हैं। अभी महात्मा जी की लन्दन-यात्रा में, जब वे मिश्र के तट पर पहुँचे, तो उन्होंने महात्मा जी की सफल यात्रा के लिए उनके पास अपना सन्देश भेजा। मिश्र के महिला-मण्डल की मन्त्राणी श्री० हदसन अहमद शकीर हैं। इन्होने अमेरिका मे शिक्षा पाई है। आप कुरान की उस शरीयत के ख़िलाफ घनघोर आन्दोलन कर रही हैं, जिसमें पुरुष को चार बीबी रखने का अधिकार दिया गया है।

सीरिया

सीरिया इस्लामी मज़हब का गढ़ है, पर वहाँ भी दक़ियानूसी शादी के विरुद्ध वहाँ की स्त्रियों ने क्रान्ति मचा दी है। दमस्क इस आन्दोलन का खास क्षेत्र है। कुमारी नाजिक अबेद और जुलिया डैमेशी सीरिया के महिला-आन्दोलन की सञ्चालिका हैं। जुलिया डैमेशी एक मासिक पत्रिका का सम्पादन भी करती हैं। अतः उसमें वे महिला-

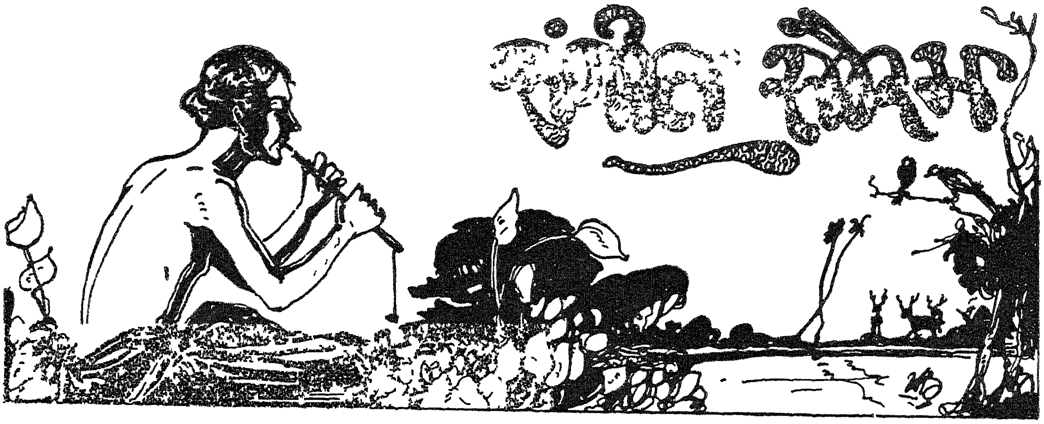
चाँद



डॉक्टर कुन्तलकुमारी देवी

आप उत्कल-निवासिनी होकर भी हिन्दी भाषा से बहुत प्रेम रखती हैं। कुछ समय पूर्व बरेली मे आर्य-महिला-सम्मेलन के अवसर पर आपने एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया था, जिसे पाठक 'विश्ववीणा'-स्तम्भ में पाएँगे।

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



[लेखक—सङ्गीताचार्य श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय "नीलू बाबू"]

सङ्गीत-प्रेमियो मे बहुत कम ऐसे व्यक्ति होंगे, जिन्होने "नीलू बाबू" का शुभ नाम न सुना हो। पिछले ५-६ वर्षों से आपने 'चाँद' के "सङ्गीत-सौरभ" शीर्षक स्तम्भ का जैसा योग्यतापूर्ण सम्पादन किया है, वह 'चाँद' के पाठको से छिपा न होगा। वर्तमान पुस्तक उन्ही कृतियों का सुन्दर संग्रह है। तारीफ़ यह है कि पुस्तक सामने रख कर निम्नाङ्कित राग-रागिनियो मे से जो चाहे, आप निकाल सकते हैं। इस प्रकार घर-बैठे सङ्गीत की शिक्षा देने वाली पुस्तक आपको दूसरी न मिलेगी। मँगा कर देख लीजिए।

६० पाउण्ड के आर्ट-पेपर पर छपी हुई 'चाँद'-साइज़ के लगभग १०० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र २॥) रु०; 'चाँद' के ग्राहकों से १॥।=) मात्र। अपनी कॉपी तुरन्त मँगवा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा।

राग-रागिनियों की सूची :—

१—देश	९—लावनी	१७—तराना विहाग	२५—मुलतानी
२—बहार	१०—श्रीराग	१८—केदारा	२६—देश मलार
३—तरज थियेटर	११—वन्देमातरम्	१९—धानी	२७—खम्भाच
४—सिन्ध	१२—सोरठ	२०—मालश्री	२८—विभास
५—भैरव	१३—बरसाती	२१—रामकली	२९—मिश्र भैरवी
६—कान्हड़ा	१४—कानड़ा	२२—भीम पलासी	३०—गुनकली
७—चैती	१५—झिंझोटी	२३—नट बहार	३१—मालकोस
८—काफ़ी	१६—मॉड	२४—भूपाल	३२—दुर्गा

चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

क्रान्ति के बड़े-बड़े लेख लिखती हैं। मुस्लिम-महिला-जगत की यह क्रान्ति दूर-दूर तक फैल गई है। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान मे महिलाओ का आन्दोलन शुरू हो गया। अफ़ग़ानिस्तान के भूतपूर्व शाह अमानुल्लाह की धर्मपत्नी सूर्या ने अफ़ग़ानिस्तान की महिलाओं में क्रान्ति पैदा कर दी थी। यद्यपि उनका आन्दोलन सफल न हुआ था, तब भी वहाँ की कितनी ही महिलाओ को स्वतन्त्रता की हवा लग चुकी है। थोड़े दिनों बाद ही लोग देखेंगे कि जहाँ की स्त्रियाँ क्रान्ति के मार्ग में अभी तक पिछड़ी हुई थीं, वे उन्नति के मार्ग मे सबसे आगे दौड़ी जा रही हैं।

❀ ❀ ❀

आर्य महिलाएँ

कुछ दिन हुए, बरेली में आर्य-महिला-सम्मेलन की सभानेत्री के पद से डॉक्टर कुन्तल-कुमारी जी ने एक बड़ा सारगर्भित तथा उपयोगी भाषण दिया था। उसका कुछ अंश पाठिकाओं के लाभार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

हम आर्य-महिला तब ही हो सकती हैं, जब हम अपनी जाति को आर्य अर्थात् सभ्य बना सकें। जब तक जगत की करोड़ों नारियाँ जेलखाने मे पड़ी कराहती रहेंगी, जब तक नारियों का अपमान होता रहेगा और वह समाज में हीन स्थान पर ही रक्खी जाएँगी, तब तक बहिनो! हमारे आर्य-महिला होने से कोई लाभ नहीं। जब तक हम अपनी जाति को दासता के बन्धन से मुक्त नही कर सकती हैं, हमें अधिकार नही है कि हम अपने को आर्य-महिला नाम से पुकारें।

हम देश के लिए स्वराज्य चाहती हैं, मगर हमने अपनी जाति के लिए क्या आज तक स्वराज्य हासिल किया? नारी-जाति जब तक पराधीन, तथा ग़ुलामी करने को मजबूर है, तब तक किस मुँह से हम पुरुषो के लिए स्वराज्य माँगती हैं। देश उन्हें जैसा, हमें भी वैसा ही प्यारा है। देश मे उनकी जैसी ज़रूरत है, हमारी भी तो वैसी ही है। समाज में जो उनका सम्मान है, हमे भी वही चाहिए। कॉङ्ग्रेस का जो फैसला है, जाति-धर्म, वर्ण, स्त्री, पुरुष, निर्विशेष सामाजिक और नागरिक अधिकार के लिए—इसके लिए हमें अवश्य लड़ना चाहिए।

अपने बारे मे कुछ कहने का अधिकार नारी को बिलकुल नही है। मूक पशु की भाँति चाहे जब, जिस अवस्था मे पड़ जाय, उसी अवस्था के दुःख-सुख को भाग्य समझना ही उसका फ़र्ज़ है। जिन विषयों पर उसका हक या दावा है, उन विषयों पर भी उसे ज़बरदस्ती चुप रहना पड़ता है। नही तो आज भारत मे पाँच साल की दुधमुँही बच्ची को पचास साल के बुड्ढे के साथ गठबन्धन कराया जाता है, तीन साल की विधवा लड़की को ज़िन्दगी भर एकादशी व्रत करने को शास्त्रीय आदेश नरक-भय दिखा कर विवश करते हैं, जीवन सफल बनाने के लिए भारत-नारी के पास साधन ही और क्या रहा? जो ताज़ी हवा, ताज़ी धूप, आज़ादी का आनन्द कभी नही पाती, उनके लिए हम क्या करती हैं? जिनकी आँखो के सामने कोई रास्ता नहीं है, उनके लिए हमारा क्या कोई कर्तव्य नही है? केवल आर्य-महिला कहला कर मीठी नींद मे सो जाने से हमारा धार्मिक कर्तव्य पूरा नहीं होता। हमारे नाम का तब ही गौरव है, हमारे समाज की तभी उन्नति है, जब हम अपनी सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति अपनी जाति के हित के लिए व्यवहार करें। हम उन्हे अपनी तरह सभ्य, शिक्षित, सस्कृत, स्वाधीन, शक्तिमयी बना लें।

आज जब हम अख़बारो में पढ़ती हैं कि संयुक्त प्रान्त के एक किसान ने अपनी दस साल की लड़की को एक बुड्ढे को बेच कर सरकार की मालगुज़ारी अदा की। बङ्गाल के एक ८० साल के गङ्गा-यात्री बुड्ढे ने १६ साल की एक ग़रीब ब्राह्मण लड़की को बरमाल लेकर उसे पार लगाया,

कहीं पाँच औरत रहते-रहते ६ठी को ब्याह लाया, एक पाँच मास की लड़की की शारदा-एक्ट होते हुए भी तीन साल के लड़के के साथ शादी हो गई, किसी प्रान्त में बाप के दहेज न दे सकने के कारण सुकुमार लड़की ने शरीर पर मिट्टी का तेल उड़ेल कर आग लगा ली, कोई विधवा सास, ससुर, देवर का अत्याचार सहन न कर सकने के कारण गङ्गा मे डूब मरी, कोई घर से निकल कर मुसलमान गुण्डो के हाथों में जा फँसी, कोई किसी को भुला कर विधवा-आश्रम के क़ैदख़ाने में दाखिल की गई और वहाँ वह ज़बरदस्ती बार-बार शादी के लिए मजबूर की गई—यह सब पढ़ते-सुनते हमें क्या ज़रा भी शर्म नहीं आती ? यदि आर्य-महिला होते हुए भी हमारे देश की नारियों के ऊपर ऐसे लाखों लाख अत्याचारो की कहानियाँ सुन कर हमारे रोंगटे खड़े न हो जायँ, दिल न पसीजे तो हम भले ही अनार्य नारी बन जाएँ।

क़ानूनन् सन्तानों के ऊपर, जिन्हे वह खून-पानी करके पालती हैं, उन पर नारी का कोई अधिकार नहीं है। स्वामी के ऊपर ही क्या है ? अपनी जीती-जागती अवस्था में पति चाहे शराब पिए, वेश्या, रक्षिता का आश्रय लें, अथवा नए-नए ब्याह रचें, पत्नी का कोई अधिकार नहीं है कुछ भी कहना। दुःख से जल के मरे अथवा आत्मघात कर ले, इसमें समाज की कोई क्षति नहीं है। और दुर्भाग्यवश पति के साथ वह चाहे बदमाश, नशेबाज़, लूला, लँगड़ा, बहरा, कुष्ठरोगी कैसा भी हो, पत्नी का मनान्तर हुआ और उसने घर से बाहर क़दम उठाया, बस भारतीय समाज सदा के लिए उसके पीछे दरवाज़ा बन्द कर देगा। उसे पार लगाने के लिए और कोई रास्ता नहीं है। सिर्फ़ बाज़ार का आश्रय। अतएव इस परिस्थिति में विवाह और वेश्यावृत्ति इन दो पेशों के सिवाय उदर-पोषण का और कोई अन्य मार्ग नहीं है। धन में उसका कोई अधिकार नहीं, स्वाधीन जीविकोपार्जन के लिए, उच्च कुल में नारियों की पाबन्दी, हर तरह से पराधीन बन कर, अब नारी क्या करे ? बाकी शेष रहा धर्माचरण, अतएव बन्दिनी पराधीनता नारी-धर्म साधन का ही जीवन का सार जानती हैं। बचपन से धर्म के नाना प्रकार, आचार, विचार उसे सिखाए जाते हैं, कुमारीपन, शिवपूजा, सूर्यपूजा करके देव-सदृश पतिलाभ कामना और सधवा, विधवा अवस्था मे पति और ससुर-कुल की सेवा, शास्त्र-पुराणो की मनमानी कथाओं को एकान्त निष्ठा और भक्ति से पालन करना उसके जीवन का प्रधान सुख है। वह विचार करना नहीं जानती है, जानती है सिर्फ धर्म करना। उसे समझा दो यह तुम्हारा धर्म है, वह मरते दम तक उसे नही छोड़ेगी।

भारतीय नारियाँ धर्म के नाम पर सब करने को, सब सहने को तैयार हैं। विचार-शैली के ऊपर नही, अन्ध-विश्वास के मार्ग पर। हमारी नारियो के अन्दर दया, दाक्षिण्य, दान, धर्म सब है। इसी धर्म का नाम लेकर हमारी बहिनें मन्दिरों मे देवदासियाँ बन कर आज भी पापी मठाधीश महन्तों की पाप-वासनाओं को चरितार्थ करती हैं। फिर धर्म के नाम में ही लाखों बहिनें समाज से पतित होकर कहीं बीच बाज़ार, नहीं तो सुदूर ब्रह्मा, मलाया, जावा में कुलीगिरी और पाप-व्यवसाय का आश्रय लेती हैं। भारतीय रमणी परदेशों में बेची जाती है, हिन्दू-घर की कुल-ललनाएँ पाप की मण्डी में खुल्लमखुल्ला बैठ जाती है, यह सोच कर किस नारी-हृदय को कष्ट नहीं होगा ?

धर्म का बहाना बना कर कहीं विधवा-आश्रम, कहीं अनाथालय बन जाते हैं। उसके अन्दर नारियों की मर्यादा पर धर्म की परिधि के भीतर क्या-क्या अकथनीय अत्याचार हो रहे हैं, कहने में ज़बान शर्माती है। आर्य-धर्म के पवित्र नाम पर कितनी विधवा-विवाह सहायक सभाएँ, बनिता-विश्राम आश्रम, महिला-आश्रम आदि खुले हैं। ऋषि दयानन्द का पुण्य नाम लेकर धोखेबाज़ों

ने कितने अनाथालय, आतुर-सहाय आश्रम आदि खोल कर दुनिया को ठगा है, क्या इसका कोई हिसाब है ? मैं ख़ूब जानती हूँ कि ऐसे-ऐसे आश्रमों मे धर्म के नाम पर भयङ्कर व्यभिचार हो रहा है। विधवा-विवाह का ढोंग रच कर, पवित्र वेद के विवाह-मन्त्र को कलङ्कित करके एक स्त्री को दस-दस बार विवाह देना, फिर उन्हें बार-बार अपने पति के यहाँ से भगा लाना, यह चाहे किसी भी समाज में हो, नारी-जाति का घोर अपमान है। इस पर हाल ही मे दिल्ली मे कई मुकदमेबाज़ी हो गई हैं। विधवा-विवाह अवश्य उचित है, लेकिन ऐसे-ऐसे विधवा-आश्रमों का अर्थ पाप का गढ़, औरत बेचने के अड्डों के सिवाय और कुछ नहीं है। इससे भले घरों की बहू-बेटियों की बहुत बेइज्ज़ती होती है। इन आश्रमों के बीस-बीस स्वयंसेवक और कमीशन एजेण्ट हर स्टेशन पर मौजूद रहते हैं, जो कभी-कभी भले घर की बहू-बेटियों को भी लाकर विधवा-आश्रमों मे दाखिल कर बदमाशों के चङ्गल में फँसाते हैं। इनकी कोई ख़ास संस्था नहीं है। विधवाओं को पढ़ाना-लिखाना तो दूर रहा, आश्रम मे पहुँचते ही शादी की तैयारियाँ होना आरम्भ हो जाती हैं।

सेक्रेटरी मनमानी करते रहते है। स्वयं पिता जी बन कर और १०-१५ रुपए में एक अधेड़ औरत को विधवाओं के निरीक्षण के लिए माता जी बना कर रख देते हैं। यह कार्यकर्ता इन्हें बन्द कमरों मे ताला ठोक कर रखते हैं। बड़े-बड़े नामों को लेकर प्रेज़िडेण्ट, वाइस प्रेज़िडेण्ट और मेम्बर बना देते हैं, जिनके दर्शन किसी सभा तक में प्राप्त नहीं होते। हर साल शानदार झूठी रिपोर्ट छपवा कर सीधे-सादे सज्जनों से चन्दा उगाह करके अपना उल्लू सीधा करते है। नारी-रक्षा नाम से यह एक पाप-व्यवसाय (Legal Prostitution) नहीं है तो और क्या है। ४००-६०० रुपए एक-एक कन्या का मूल्य लेकर हर बार किसी न किसी नाम से कभी लक्ष्मी को सरस्वती, गोपी को चन्द्रावली बना कर एक स्त्री को बार-बार बेच कर धन कमाना और पवित्र धर्म-समाज के नाम पर कलङ्क का टीका लगना। ओफ़ ! आर्य बहिनो ! समाज के अन्दर ऐसे घृणित अत्याचार, धर्म के नाम से ! पवित्र वैदिक विवाह-मन्त्र लेकर ऐसा खेल ! इससे तुम्हारी अपनी इज्ज़त पर कैसा बट्टा लगता है, इसे एक बार सोचो तो। जिन विवाह-मन्त्रों को पढ़ कर आर्य-कुमारियों का पवित्र विवाह किया जाता है, वही दो-दो रुपए लेने वाले पुरोहितो के हाथ बेचा जा रहा है। विधवा-विवाह के नाम से सधवा विवाह, गर्भवती का विवाह, ससन्तान माता को लेकर दूसरे के गले मढ़ देना, और थोड़ी सी बात पर विवाह सम्बन्ध से दस्त-बर्दारी की चिट्ठी भी लिखा लेना। यह सब जुआ, चोरी, धोखेबाज़ी होती है आर्य-समाज के नाम पर। कहीं दयानन्द विद्यालय, कहीं श्रद्धानन्द पाठशाला, कहीं वैदिक धर्म शिक्षालय खुले हुए हैं, पर पढ़ाई-लिखाई और यतीम बच्चों की हिफ़ाज़त का कहीं नाम नहीं। हर तरीक़े से जन-साधारण से चन्दा बटोर कर अपना पेट भरना ! बहिनो बतलाओ, तुम्हारी आँखों के सामने आर्य-समाज में यह सब हो रहा है या नहीं ? यदि होता है, तो तुमने आर्य-महिला का पवित्र नाम किस हैसियत से हासिल किया है ?

आज एशियाई महिलाओं में नवजागरण हुआ है। पर्दानशीन मुस्लिम बहिनें, जो हमसे बहुत पीछे थीं, आगे बढ़ गई हैं। तुर्किस्तान, ईरान, मिश्र के घर-घर में आज़ादी का झण्डा फहराने लगा है, नारी वहाँ सेवा-विभाग से लेकर सैन्य विभाग तक दख़ल करने को तैयार हो गई हैं। क़ुरान के पवित्र अनुशासनान्तर्गत पुरुषों के बहु-विवाह के विरुद्ध—सपत्नीक पुरुषों को लड़की नहीं देंगे—यह फ़ैसला अपने अलौकिक साहस से उन्होने दृढ़ कर लिया है। बुरक़ा आज उनके सुन्दर वदन-मण्डल को ढकने वाला भूषण नहीं रहा। काले बुरक़े के साथ वह अज्ञान कालिमा

को भी दूर हटाने का यत्न कर रही हैं। वह चाहती हैं आज प्रकाश, प्रतिभा, विकास, जीवन को सफल बनाना। बौद्ध बहिनो का जागरण और भी आगे हो गया है। जिन देशों में तुम्हारी पूर्वजाओं ने ज्ञान की शलाका जलाई थी, और बौद्ध परिव्राजिकाओं ने अपने भिक्षु भाइयों के साथ सुदूर ब्रह्मा, स्याम, चीन, जापान में जाकर जिन्हे धर्म, कर्म, मोक्ष-मार्ग की शिक्षा दी थी, वही आज तुम्हें असभ्य, पदाक्रान्त, परतन्त्र समझती हैं और वहाँ तुम्हारी भारतीय बहिनें कुलीगिरी करने को जाती है। कैसी शर्म और क्षोभ की बात है?

सत्य हमारा ध्येय, कर्म हमारा प्रेम और शान्ति हमारा साधन है। हम विश्व-सेविका वीराङ्गनाएँ हैं। हमें परमात्मा का आशीर्वाद है, भारत की बन्धन-मुक्ति हमी से हो सकती है। हमने स्वराज्य देवता के दर्शन किए हैं। हम देश को स्वाधीन करके ही छोड़ेगी। यह स्वाधीनता राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, पारमार्थिक होगी। इस सत्य के झण्डे के नीचे वैदिक सतयुग भारत में फिर से आ जायगा। हम उसी सपने में विभोर हैं। रात खत्म हो गई है, अरुणोदय है। सूर्योदय को अब और क्या देर?

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत।

❀ ❀ ❀

क़ानून और न्याय

न्यूयॉर्क के प्रोफेसर फ्रौइद के ७५वें जन्म-दिन के उपलक्ष में मि० जैरोम फ्राङ्क ने एक मनोरञ्जक भाषण दिया था, जो अमेरिका के 'The Psychoanalytic Review' नामक पत्र में 'Freud and the law' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ है। पाठकों के लाभार्थ उसका सारांश यहाँ दिया जाता है :—

अरस्तू ने कहा था, मनुष्य एक राजनैतिक जीव है। फ्रौइद ने इस बात को सार्थक बना दिया है कि मनुष्य एक कौटुम्बिक जीव है। उन्होंने हमें दिखा दिया है कि जजों और वकीलों की मनोवृत्ति पर उनके कौटुम्बिक वातावरण का—जिसमें उन्होने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था—बहुत-कुछ प्रभाव पड़ता है। कौटुम्बिक जीवन मे ही हम अधिकारियों की आज्ञा पालना या उनका विरोध करना, सुव्यवस्था से प्रेम या कानून-भङ्ग करने में प्रसन्नता का अनुभव करना आदि सीख लेते हैं।

फ्रौइद ने सिद्ध कर दिया है कि अधिकांश व्यक्ति भावुकता के लिहाज़ से बच्चे बने रहते हैं, चाहे उनका मस्तिष्क पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुका हो। यदि हमें अपने अन्तःकरण की आवाज़ कष्टप्रद प्रतीत हो, तो हम उसे कभी नहीं सुनते। हम यह समझ लेते हैं कि यह संसार वैसा ही है, जैसा हम उसे चाहते हैं। जब हमारे सामने कठिनाइयाँ आती हैं, तो हम उनके दूर करने के लिए ऐसे उपाय सोचते हैं, जो कभी सफल नहीं हो सकते। ऐसे ही भ्रमात्मक विचार कानून के विषय मे प्रचलित हैं। हम यह समझ लेते हैं कि क़ानून के बनाने वाले तथा उनके अनुसार दण्ड देने वाले वे व्यक्ति हैं, जो कभी भूल नहीं कर सकते।

एक तुच्छ विचार का तथा पक्षपाती या बेईमान जज अपने कृत्य पर यह कह कर पर्दा डाल देता है कि जो कुछ उसने किया है वह कानून के नौकर के रूप में। इस प्रकार क़ानून की आड़ में वह मनमाने कृत्य करता है।

इस प्रकार जो जज अपने को तथा औरों को धोखा देता है, वह एक घातक भूल करता है। कानून से जजों का व्यक्तित्व अलग नहीं किया जा सकता। हमें यह जानना चाहिए कि सब न्यायाधीश हाड़-मांस के बने हैं और जैसे जज होंगे, वैसा ही न्याय हमें मिलेगा। उनकी प्रकृति में जो पक्षपात और अन्य मानव-विकार हैं, उन्हीं पर उनके दिए न्याय का स्वरूप निर्भर करता है।

इन मानव-विकारों मे रुपए का ही विचार नहीं है। ऐसे अनेक विकार हैं, जिन्हें जज भी

स्वयं नहीं जानते। जजों की शिक्षा का एक अङ्ग यह भी होना चाहिए कि वे इन मनोविकारों पर विजय पाना सीख लें।

फ़ौइद के इन विचारों में संशोधन किया जा सकता है, परन्तु कानून और न्याय के इस नए मनोवैज्ञानिक पहलू को समझाने में फ़ौइद का नाम अग्रगण्य रहेगा।

❀ ❀ ❀

कुमारी वीणा दास

मद्रास के अङ्गरेज़ी 'स्त्री-धर्म' में श्री० एन० आर० डी० ने कुमारी वीणा दास के, जिसने बङ्गाल के गवर्नर पर पिस्तौल का वार किया था, विषय में एक बड़ा मर्मस्पर्शी लेख लिखा है। पाठकों के मनोरञ्जनार्थ हम यहाँ उसका अविकल अनुवाद देते हैं:—

"मैं यह विश्वास दिलाती हूँ कि सर स्टेनली जैक्सन के व्यक्तित्व के विरुद्ध मुझे कोई द्वेष-भाव नहीं है। वह मेरे लिए मेरे पिता के समान है।" ये शब्द थे, जो वीणा दास ने मुक़दमा करने वाले जजों के सामने कहे थे। उसके सामने सर जैक्सन के दो रूप थे—एक व्यक्ति का, दूसरा गवर्नर का। हमें भी उस दुखद घटना पर विचार करते समय वीणा को दो रूपों में देखना चाहिए—एक स्त्री का, दूसरा अपराधिनी का। नहीं तो हम, जो हिंसा से घृणा करते हैं, अपराधी से भी नीच समझे जायँगे। जजों को यह विश्वास हो गया कि वीणा का चरित्र आदर्श था। फिर किस कारण उसके हृदय में रक्तपात की इच्छा उत्पन्न हुई?

"मैंने गवर्नर पर जो वार किया था, उसका कारण दलित मातृ-भूमि के प्रति मेरा प्रेम था।" इस प्रकार वीणा ने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दिया था। ऐसा प्रेम, जिसमें पिस्तौल चलाने का अवसर आ जाय, पागलपन कहा जा सकता है, चाहे रुपए के कारण हुआ हो, चाहे स्त्री या देश के कारण, फिर भी इन तीनों की प्रतिक्रियाओं में महान अन्तर है।

वीणा को प्रसन्नता है कि सर जैक्सन उसके वार से बच गए और श्रीमती जैक्सन तथा उनके बच्चों को दुर्भाग्य न देखना पड़ा। इस पश्चात्ताप का किस पर प्रभाव नहीं पड़ सकता? जब पागलपन की घड़ियाँ समाप्त हो गईं, तो वीणा का स्त्रीत्व प्रगट हुआ। क्या ही अच्छा होता, यदि सुनीति चौधरी तथा शान्ति घोष को भी इसी प्रकार का अवसर मिलता। परन्तु बेचारा स्टीवेन्सन तो प्रैड्डी आदि की भाँति दूसरे लोक को चल ही बसा और श्रीमती स्टीवेन्स अपने दुर्भाग्य से न बच सकीं। जब कि श्रीमती स्टीवेन्स कुछ समय पूर्व महारानी मैरी से मिली थीं, तो स्त्रीत्व का ध्यान करके महारानी के नेत्रों मे आँसू अवश्य आ गए होंगे।

वीणा का भविष्य क्या होगा? यौवन, संस्कृति आदि के साथ वह जीवन के द्वार तक पहुँची ही थी। आकांक्षा, प्रेम, सफलता, सभी उसके चरणों में गिरने की बाट जोह रहे थे। यह एक दयनीय बात है कि इस प्रकार का जीवन जेल का आहार बनेगा। इस प्रकार जीवन बिताने से तो एक बार शहीद हो जाना अच्छा है। यद्यपि हम वीणा के कृत्य की निन्दा करते हैं, परन्तु हमें समालोचना के समय हृदयहीन न बन जाना चाहिए। वीणा के जैसे जीवन उलझी हुई समस्याएँ होती हैं। उन्हें विश्वनियन्ता ही समझ सकता है और उसी की दया पर हमें वीणा को छोड़ देना चाहिए।

❀ ❀ ❀

फूलमाला

पण्डित ब्रजनारायण चकबस्त उर्दू के प्रथम श्रेणी के कवि थे। आपने उर्दू की कविता को एक नया रूप दिया था। 'बुलबुल' और 'गुल' की उपमाओं, माशूक़ की लटों के वर्णन आदि को छोड़ कर आपने अपनी कविता में उर्दू-

भाषियों को देश, धर्म, नीति, सभ्यता आदि का दिग्दर्शन कराया था। इन विषयों पर उनकी लेखनी ने कैसे जौहर दिखाए थे, इसका अनुमान पाठक कविवर चकबस्त की 'फूलमाला' शीर्षक निम्नलिखित कविता को पढ़ कर लगा सकेंगे।

रविशेखाम[1] पै मर्दों की न जाना हर्गिज़,
दाग़ तालीम[2] में अपनी न लगाना हर्गिज़।
नाम रक्खा है नुमायश[3] का तरक़्क़ी व रिफ़ार्म[4],
तुम इस अन्दाज़[5] के धोखे मे न आना हर्गिज़।
रङ्ग है जिनमें मगर बूए-वफ़ा[6] कुछ भी नहीं,
ऐसे फूलों से घर अपना न सजाना हर्गिज़।
नक़्ल यूरोप की मुनासिब है, मगर याद रहे—
ख़ाक में ग़ैरते-क़ौमी[7] न मिलाना हर्गिज़।
ख़ुद जो करते हैं ज़माने की रविश[8] को बदनाम,
साथ देता नहीं ऐसों का ज़माना हर्गिज़।
ख़ुदपरस्ती[9] को लक़ब[10] देते हैं आज़ादी[11] का,
ऐसे इख़लाक़[12] पै ईमान न लाना हर्गिज़।
रङ्गो-रोग़न[13] तुम्हे यूरोप का मुबारक लेकिन,
कौम का नक्श न चेहरे से मिटाना हर्गिज़।
जो बनाते है नुमायश का खिलौना तुमको,
उनकी ख़ातिर[14] से यह ज़िल्लत[15] न उठाना हर्गिज़।
रुख़[16] से पर्दे को उठाया तो बहुत ख़ूब किया,
पर्दए-शर्म[17] को दिल से न उठाना हर्गिज़।
तुमको क़ुदरत[18] ने जो बख़्शा है हया[19] का ज़ेवर,
मोल इसका नही कारूँ[20] का ख़ज़ाना हर्गिज़।
दिल तुम्हारा है वफ़ाओं की परस्तिश[21] के लिए,
इस मुहब्बत के शिवाले को न ढाना हर्गिज़।
पूजने के लिए मन्दिर जो है आज़ादी का,
इसको तफ़रीह[22] का मरकज़[23] न बनाना हर्गिज़।
नकद इख़लाक़[24] का हम नल की तरह हार चुके,
तुम हो दमयन्ती यह दौलत न लुटाना हर्गिज़।
ख़ाक में दफ़्न[25] हैं मज़हब के पुराने पाखण्ड,
तुम यह सोते हुए फ़ितने[26] न जगाना हर्गिज़।
अपने बच्चों की खबर क़ौम के मर्दों को नहीं,
ये हैं मासूम[27] इन्हे भूल न जाना हर्गिज़।
इनकी तालीम का मकतब[28] है तुम्हारा ज़ानूँ[29],
पास मर्दों के नहीं इनका ठिकाना हर्गिज़।
काग़ज़ी फूल विलायत के दिखा कर इनको,
देश के बाग़ से नफ़रत[30] न दिलाना हर्गिज़।
नग़मए-कौम[31] की लय जिसमें समा ही न सके,
राग ऐसा कोई इनको न सिखाना हर्गिज़।
परवरिश कौम की दामन[32] मे तुम्हारे होगी,
याद इस फ़र्ज़[33] को दिल से न भुलाना हर्गिज़।
गो[34] बुज़ुर्गों मे तुम्हारे न हो इस वक़्त का रङ्ग,
इन ज़ईफ़ों[35] को न हँस-हँस के रुलाना हर्गिज़।
होगा प्रलय[36] जो गिरा आँख से इनके आँसू,
बचपने से न यह तूफ़ान उठाना हर्गिज़।
हम तुम्हें भूल गए उसकी सज़ा पाते हैं,
तुम ज़रा अपने तईं भूल न जाना हर्गिज़।
किसके दिल में है वफ़ा[37] किसकी ज़बाँ मे तासीर[38],
न सुना है, न सुनोगी यह फ़िसाना[39] हर्गिज़।

१—कच्चा, ढङ्ग, २—शिक्षा, ३—दिखलावा, ४—उन्नति और सुधार, ५—ढङ्ग, ६—गुणों की गन्ध, ७—जातीय लज्जा, ८—रीति, ढङ्ग, ९—अभिमान, १०—पदवी, ११—स्वतन्त्रता, १२—शिष्टाचार, १३—पाउडर इत्यादि, १४—लिए, १५—बदनामी, १६—चेहरे, १७—लाज का पर्दा, १८—प्रकृति, १९—लज्जा, २०—एक प्रसिद्ध धनकुबेर।

२१—गुणों की पूजा, २२—मनोरञ्जन, २३—केन्द्र, २४—शिष्टाचार, २५—दबे हुए, २६—झगड़े, २७—निर्दोष दीन बालक, २८—पाठशाला, २९—घुटना, ३०—घृणा, ३१—जातीय गान, ३२—अञ्चल, ३३—कर्तव्य, ३४—यद्यपि, ३५—वृद्धों, ३६—प्रलय, ३७—प्रेम, ३८—प्रभाव, ३९—कहानी।



बच्चों के दस्त

आपका बच्चा अधिकतर इसलिए बीमार रहता है कि आप उसके खाने-पीने में सावधानी नहीं रखतीं। इस विषय में निम्न-लिखित बातें जान लेना आवश्यक होगा।

यदि बच्चे को दस्त हो गए हैं, तो आपने उसके भोजन मे कुछ गड़बड़ कर दी है। या तो आपने उसे बहुत गाढ़ा दूध दे दिया है और या उसे समय से पहले ही दाल-रोटी खिलाना शुरू कर दिया है। ऐसी हालत में आप इस प्रकार उसका प्रबन्ध कीजिए। फौरन ही उसे खाना देना बन्द कर दीजिए और एक चम्मच या कम अण्डी का तेल पिला दीजिए। चौबीस घण्टों तक उबाला हुआ ठण्डा पानी दीजिए। दूसरे दिन आधी छटाँक पानी, आधी छटाँक मलाई उतारा हुआ दूध और ज़रा सी चीनी मिला कर हर तीसरे घण्टे पिलाइए। बीच-बीच में गर्म पानी पिलाना उपयोगी है। यदि लाभ मालूम होता है तो तीसरे दिन दूध-पानी को दूना कर दीजिए।

इस प्रकार धीरे-धीरे प्रति दिन दूध की तादाद बढ़ा दीजिए। यह तादाद किस आयु के बच्चे के लिए कहाँ तक बढ़ाई जा सकती है, इसके विवरण के लिए नीचे एक कोष्ठक दिया जाता है।

जन्म के बाद आयु के महीने	दिन भर की तादाद			दिन में कितनी बार भोजन दिया जाय
	जल	दूध	चीनी	
पहला	६ छटाँक	३ छटाँक	३ चाय के चम्मचभर	६
दूसरा	५ "	४ "	४ "	६
तीसरा	५ "	६ "	४ "	५
चौथा	५ "	७ "	५ "	५
पाँचवाँ	६ "	९ "	५ "	५
छठा	६ "	१० "	६ "	५
सातवाँ	६ "	१२ "	६ "	५
आठवाँ	४ "	१२ "	७ "	४
नवाँ	३ "	१३ "	८ "	४

गाय, भैंस तथा बकरी का दूध समान रूप से लाभ करता है। हाँ, भैंस के दूध में मलाई अधिक पड़ती है, जिसमें से आधी पहले से ही निकाल लेनी चाहिए। ग्वाला का दूध आते ही औटा लेना चाहिए। दूध को सदा ढका हुआ रखना अच्छा है और बच्चे को पिलाते समय प्रत्येक बार उसे गर्म कर लेना चाहिए।

यदि घर मे ही गाय-भैंस हैं और उनका दूध दुहने से पहले हाथ, थन और बर्तन साबुन से

धो लिए गए हैं, तो जाड़ों में उस दूध को गर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती।

दूध पीने के सारे बर्तन प्रत्येक समय साफ़ रहने चाहिए। खाने के कुछ देर बाद बच्चे को फलों का रस देना उपयोगी है। टमाटर (विलायती आलू), नारङ्गी तथा आम का रस बराबर पानी मिला कर काम दे सकता है।

—(डॉक्टर) डी० एन० फोरमन, एम० डी०

स्वास्थ्य-रक्षा के पाँच नियम

१—सदा सादा भोजन करो। सब्ज़ी और मेवा जितना मिले खाना चाहिए। मैदा और दूसरी ऐसी चीज़ें स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं। मिर्च-मसाले और खटाई बहुत कम उपयोग में लाने चाहिए।

२—ख़ूब पानी पियो। भोजन के दो घण्टे बाद जल पीने से अन्न भली प्रकार पचता है। हमेशा पानी को उबाल कर और छान कर पिया करो। पानी में अनेक रोगो के कीड़े आ जाते है, जो उबालने से नष्ट होते हैं।

३—सदा दाँत साफ़ रक्खो। दाँतों के मैल से मुख में दुर्गन्ध आती है। मसूड़े फूल जाते हैं। ख़ून और पीब बहने लगती है। भोजन के साथ यह विष भी अन्दर जाता है। अजीर्ण, शूल और गठिया आदि अनेक रोग इसी के परिणाम हैं। सायं-प्रातः नमक से दाँतों को साफ़ करना अत्यन्त लाभदायक है।

४—कभी क़ब्ज़ न होने दो। सब रोगो का मूल कारण मल-संग्रह है। जिसके पेट और अँतड़ियाँ साफ़ हैं अर्थात् पाख़ाना खुल के आता है, उसका शरीर स्वस्थ समझना चाहिए। इसके लिए सादा भोजन और जल-पान के अतिरिक्त व्यायाम अत्यावश्यक है। कसरत से सारे शरीर मे रुधिर वेग से गति करता है। जीवन मे नई स्फूर्त्ति उत्पन्न होती है। व्यायाम करते समय पेट का अवश्य ध्यान करना चाहिए। श्वास बाहर फेंक कर पेट का सङ्कोच-विकोच करना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। इससे भूख लगती है और पाचन-शक्ति तीव्र होती है।

५—प्रतिदिन अपनी त्वचा को साफ़ करो। स्नान हिन्दुओं का दैनिक कर्त्तव्य है। स्नान करते समय शरीर को एक खद्दर के अँगोछे से ख़ूब रगड़ना चाहिए। इससे मल दूर होता है। त्वचा के दो कार्य हैं। प्रथम, शरीर के मल को पसीने द्वारा बाहर करना। द्वितीय, सर्दी-गर्मी में टेम्परेचर की ज़रूरत के मुताबिक़ रखना। त्वचा के साफ़ न होने से ये दोनों कार्य ही नहीं हो पाते।

—शान्तादेवी

नेत्रों की रक्षा

आँखों को मज़बूत, सुन्दर और सब रोगो से बचाए रखने के कुछ सहज उपाय है, जो हर स्त्री, पुरुष, बालक, बूढ़ा, १० मिनट किसी भी समय हर रोज़ कर सकता है।

गर्दन को बिना हिलाए आँखो को नीचे लिखे अनुसार घुमाओ :—

(१) दाहिने-बाएँ घुमाना १० बार

(२) ऊपर-नीचे ,, ,, ,,

(३) बाएँ से दाहिने तरफ़ एक चक्र में ऊपर की ओर ५ बार, नीचे की ओर ५ बार।

(४) दाहिने से बाएँ तरफ़ एक चक्र में ऊपर की ओर ५ बार, नीचे की ओर ५ बार।

यह सब करके बीच की और पहली, दोनो अँगुलियो को आँखों पर रख कर एक मिनट धीरे-धीरे मलना चाहिए। इसके बाद एक छोटा चाय का चमचा भर सेंधा नमक साफ़ किया हुआ (उसमे मिर्चें न हो) आध सेर कुनकुने पानी में डाल आँखों में छपका मारें या किसी शीशे या चीनी के बड़े बर्तन में यह पानी डाल आँखों को उसके अन्दर खोलें और बन्द करें।

—"डॉक्टर"

मेरा यूरोप-भ्रमण

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

(फ़रवरी से आगे)

स्विट्ज़रलैण्ड

ग़ार द लिओं (Gare de Lyon) पैरिस का एक बहुत बड़ा स्टेशन है। यहाँ से इटली, स्विट्ज़रलैण्ड, दक्षिणी फ़्रान्स आदि अनेक स्थानों को गाड़ियाँ जाती हैं। 'पुलमैन' नामक कम्पनी के प्रबन्ध से सारी लाइनों पर कुछ गाड़ियाँ चलती हैं। इन गाड़ियों में किराया कुछ अधिक देना होता है, परन्तु इनमें आराम बहुत मिलता है। हमारे यहाँ की मेल ट्रेन से ये बहुत मिलती-जुलती होती हैं। इनमें एक विशेषता यह होती है कि पूरी गाड़ी में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने के लिए एक बरामदा (Corridor) होता है। बैठने के लिए छोटे-छोटे डब्बे बने होते हैं, जिनमें छः से अधिक यात्री नहीं बैठते। प्रत्येक सीट के पीछे उसका नम्बर लगा रहता है। जिस सीट पर आपने अधिकार प्राप्त कर लिया, फिर आप चाहे वहाँ उपस्थित न भी हों, कोई आपके अधिकार को छीनने का साहस नहीं करेगा। प्रत्येक डब्बे के बाहर एक प्लेट पर उस डब्बे की सारी सीटों के नम्बर लिखे रहते हैं। एक रेलगाड़ी का अफ़सर प्रत्येक स्टेशन पर आकर यह देख लेता है कि कौन सी सीटों पर अधिकार हो गया है। उन्हीं के आगे वह 'भरी हुई' का चिन्ह लगा देता है। इससे नए यात्रियों को बड़ी सुविधा होती है। क्योंकि उन्हें यह विदित हो जाता है कि उन्हें कौन सी सीटें मिल सकती हैं।

गाड़ी चली। रात्रि का समय था। सभी यात्रियों को यह चिन्ता थी कि उनके डब्बे में अधिक व्यक्ति न हों, ताकि सोने के लिए कुछ स्थान मिल जाय। मानव-स्वभाव आखिर कहाँ जा सकता है? मैंने यह देखा कि मेरे साथी यात्री प्रत्येक स्टेशन पर यह प्रयत्न करते थे कि कोई नया यात्री हमारे डब्बे में न आने पावे। उस समय मुझे भारतवर्ष की यात्रा के दृश्य याद आ जाते थे, हाँ, वहाँ पर इतना असौजन्य देखने में नहीं आया, जितना यहाँ देखने में आता है।

यात्रियों में लगभग सभी फ़्रेञ्च बोलते थे। थोड़ी देर बाद उनमें से एक यात्री ऐसा निकल आया, जो भारतवर्ष में कुछ दिन रह चुका था। वह अङ्गरेज़ी बोल सकता था। घण्टों तक वह महात्मा गाँधी तथा स्वराज्य-आन्दोलन के विषय में पूछता रहा। दूसरे यात्रियों में भी भारत के विषय में सुनने की उत्कण्ठा थी। उन्हें उसी यात्री ने फ़्रेञ्च में सब कुछ समझा दिया।

प्रातःकाल उठने पर आँख खुली। गाड़ी उस समय स्विट्ज़रलैण्ड की सीमा के भीतर प्रवेश कर रही थी। स्विट्ज़रलैण्ड, संसार का उद्यान, पृथ्वी का स्वर्ग! खिड़की में से देखने पर तत्काल ही विदित हो गया कि वह भूमि स्विट्ज़रलैण्ड की भूमि थी। चारों ओर पर्वत-श्रेणियाँ हरियाली से लदी हुई। उन्हीं में होकर कभी ऊपर, कभी नीचे, कभी किसी सुरङ्ग में होकर, गाड़ी विद्युत् गति से उड़ी चली जा रही थी।

स्विट्ज़रलैण्ड के विषय मे यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सभी उसकी राजनीति, इतिहास, भूगोल के विषय मे जानते हैं। स्विट्ज़रलैण्ड यूरोप के मध्य मे स्थित है, इसी कारण वह यूरोप का हृदय बना हुआ है। अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनो तथा संस्थाओ का यह केन्द्र बना हुआ है। यहीं पर राष्ट्र-समिति (League of Nations) का कार्यालय स्थित है। पूरा देश पर्वतीय है, अतः खेती तथा उद्योग-धन्धो के लिए अधिक गुञ्जायश नहीं। हाँ, प्राकृतिक दृश्यो का यहाँ बाहुल्य है। स्विस लोगो ने परिश्रम और बुद्धि से इन्हीं दृश्यों में कुछ कृत्रिमता का मिश्रण करके देश को सचमुच स्वर्ग बना दिया है और यही कारण है कि स्विट्ज़रलैण्ड में सदैव ही विदेशी यात्रियों का निवास रहता है। ग्रीष्म-ऋतु मे वे वहाँ वायु-परिवर्तनार्थ और दृश्यों के देखने के लिए जाते हैं और शीतकाल में बर्फ़ पर खेले जाने वाले खेलों के लिए। इन यात्रियों के भरोसे पर ही सारे देश का कार्य चलता है। अब कुछ उद्योग-धन्धे भी वहाँ पर होने लगे हैं। दो प्रकार के व्यापार में स्विस लोग ख़ूब कुशल हैं—एक तो घड़ी बनाने में और दूसरे बाहर भेजने के लिए दुग्ध तथा उससे निकली हुई चीजें बनाने मे, जैसे मक्खन, चौकलेट, चीज़ आदि। चारों ओर आने-जाने के लिए बिजली से चलने वाली रेलें बना दी है। ये रेलें पहाड़ों को खोद कर बनाई गई सुरङ्गों में होकर जाती हैं, जिनकी संख्या सैकड़ों पर है। एक सुरङ्ग तो संसार की सबसे लम्बी सुरङ्गों में दूसरे नम्बर पर है। इसकी लम्बाई कई मील है।

स्विस गवर्नमेण्ट संसार के लिए एक आदर्श फ़ैडरल-रिपब्लिक है। यहाँ के प्रत्येक प्रान्त को आन्तरिक बातों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है। निर्वाचन आदि के ऐसे नियम हैं, जिनके द्वारा प्रत्येक नागरिक को राज्य-कार्य में भाग लेने का अवसर कभी न कभी मिल ही जाता है। भाषाओं के लिहाज़ से स्विट्ज़रलैण्ड तीन भागों में बँटा हुआ है। उत्तर में जर्मन बोली जाती है। दक्षिण-पश्चिम में फ्रेञ्च तथा दक्षिण-पूर्व मे इटालियन। इस प्रकार इस छोटे से राज्य का काम तीन भाषाओ मे होता है। राजधानी बर्न मे जर्मन अधिकतर बोली जाती है, परन्तु प्रायः वहाँ के निवासी फ्रेञ्च भी बोलते हैं। इस बात से हमारे देश की स्वाधीनता के विषय मे कई भाषाओं की जो आपत्ति की जाती है, वह निर्मूल सिद्ध हो जाती है।

स्विट्ज़रलैण्ड में नगर छोटे-छोटे है। परन्तु स्वच्छता तथा सजावट के लिहाज़ से आदर्श हैं। एक ख़ूबी की बात तो यह है कि अधिकांश प्रसिद्ध नगर किसी न किसी झील के किनारे बसे हैं, जैसे—जिनीवा, लोज़ान, इन्टरलाकेन, ल्युसर्न, सेण्ट मौरित्स, त्सूरिख़ आदि। कई झीलें तो मीलों लम्बी है। जिनीवा की झील बहुत प्रसिद्ध है ; यह जिनीवा से प्रारम्भ होती है और लोज़ान होती हुई सेण्ट मौरित्स पर समाप्त हो जाती है। नगरों मे सभी आधुनिक बातों—बिजली का प्रकाश, टेलीफ़ोन, नल, आदि—का प्रचार है।

इधर-उधर घाटियों मे ग्राम बसे हुए हैं। अनेक ग्रामों मे अब भी प्राचीन काल की छवि झलकती है। वही पुराने ढङ्ग के मकान, वही पुराने ढङ्ग की पोशाकें। अब भी बुढ़िया माई घरों में चर्ख़ा कातती हुई दिखाई पड़ती हैं। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के ऊपर तक भी रेलें दौड़ा दी हैं। कहीं-कहीं पर्वतो की चोटियाँ २०,००० फ़ीट समुद्र की सतह से ऊँची है, परन्तु वहाँ का भ्रमण भी बिना किसी कष्ट के हो सकता है। एक ऊँचे पर्वत से दूसरे पर्वत पर पहुँचने के लिए ऐसी रेलें बना दी हैं, जो आकाश में तारों के ऊपर चलती है। इस आश्चर्यजनक वैज्ञानिक करश्मे को पाठक स्वयं देख कर भली-भाँति समझ सक्ते हैं।

गाड़ी जिनीवा पर आकर लगी। स्टेशन नया बना है और देखने मे बहुत सुन्दर है। क्लोकरूम

में सामान रख कर बाहर निकला। फ्रेञ्च यहाँ पर भी बोली जाती है, अतः अधिक कठिनता की सम्भावना नहीं थी। रात भर की खुमारी दूर करने के लिए चाय पीने की इच्छा हुई। एक रैस्टोराँ मे गया। चाय का एक प्याला पिया। परन्तु जब बिल सामने आया, तो आश्चर्य से मैं चकित हो गया। यहाँ का सिक्का फ्राङ्क होता है, जो फ्रान्स के फ्राङ्क की भाँति ताँबे का नहीं, बल्कि चाँदी का होता है और मूल्य मे एक शिलिङ्ग से कुछ कम होता है। इसके सौ भाग करके सोंटीम बना दी गई हैं। चाय के प्याले के लिए मुझे ८० सोंटीम (लगभग छः आने) देने पड़े। स्विट्ज़रलैण्ड इस हिसाब से बहुत मँहगा है, क्योंकि स्विस लोग यात्रियों पर ही जीते हैं। एक समय के भोजन के लिए छः फ्राङ्क के लगभग देने पड़ते हैं। मुझ जैसे व्यक्ति के लिए इतना व्यय करना बहुत था। पास ही इधर-उधर मैंने दूध तथा बेकर की दूकानें देखीं। पूछने पर पता चला कि दूध बहुत सस्ता था। दो आने मे एक सेर भर शुद्ध गाढ़ा दूध मिल जाता था। केक, डबल रोटी और मक्खन भी सस्ता था। दोपहर के भोजन के लिए मैंने इन्ही को खरीदा और एक पार्क में बैठ कर खाया। इस प्रकार मुझे केवल एक फ्राङ्क व्यय करना पड़ा। तब से स्विट्ज़रलैण्ड में सर्वत्र मैंने इसी प्रकार स्वल्प व्यय से भोजन किया।

यह कहा जा चुका है कि जिनीवा एक झील के किनारे है। उसी झील में रोन नदी आकर गिरती है। नगर रोन के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। झील को चारों ओर से हरीतिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियाँ घेरे हुए हैं। जितना सुन्दर प्राकृतिक दृश्य है, उतना ही सुन्दर कृत्रिम दृश्य भी बना रक्खा है। झील के किनारे सुन्दर सड़कें तथा बाग़ हैं तथा स्नान करने के स्थान हैं। सड़कों के किनारे आधुनिक प्रकार के सुन्दर महलों की पंक्ति है। उन दिनों आकाश निर्मल था, सूर्यदेव पूर्ण तेज से प्रकाशित हो रहे थे। इङ्गलैण्ड में काहे को ऐसी धूप देखने को मिली थी। रह-रह कर उस दिन भारत की याद आने लगी। जिनीवा के उस सारे दृश्य को देख कर मेरी यही धारणा हुई कि दृश्यों के लिहाज़ से छोटे नगरों में वह सब से सुन्दर है।

झील के किनारे 'प्रेज़ीडेण्ट विल्सन' के नाम की सड़क है, जिस पर League of Nations के भवन तथा International labour office बने हुए हैं।

नगर की जन-संख्या १,३५,००० है। यहाँ पर प्रत्येक देश के व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं। यहाँ का विश्वविद्यालय भी विदेशियो में काफी प्रसिद्ध है। घड़ी बनाने का काम सिखाने के लिए यहाँ एक स्कूल है। यहाँ पर सड़क पर सवारियाँ दाहिने हाथ चलती हैं; इङ्गलैण्ड तथा भारत की भाँति बाएँ हाथ को नहीं। अङ्गरेजी समझने और बोलने वालों की यहाँ एक बड़ी संख्या है।

नगर में अजायबघर, ईसाई-धर्म का अन्तर्राष्ट्रीय सुधार-स्मारक (International monument of reformation), जगत-प्रसिद्ध दार्शनिक रूसो के सम्बन्ध का अजायबघर तथा उसका प्राचीन गृह, स्वर्ण-जटित मीनारों वाला रशियन चर्च, कासीनो आदि दर्शनीय स्थान हैं।

जिनीवा से लोज़ान रेल-द्वारा भी पहुँच सकते हैं तथा स्टीम बोट द्वारा भी। बोट द्वारा जाने से झील का दृश्य देखने को मिलता है। मैं सन्ध्या के समय स्टीम बोट द्वारा चल दिया। उस समय झील का दृश्य बड़ा मनोरम था। जब बीच झील में हमारी बोट आई, तो हमने बड़ा अद्भुत दृश्य देखा। जिनीवा की ओर तो सूर्य चमकता हुआ दिखाई देता था, बोट पर वर्षा हो रही थी और लोज़ान की ओर अन्धकार था। चार घण्टे के बाद झील की यात्रा समाप्त हुई। हम लोग लोज़ान (Lausanne) के बन्दरगाह ऊशी (Ouchy) पर उतरे।

बन्दरगाह से एक सुरङ्ग मे होकर एक छोटी-सी फ्यूनीकुलर रेलवे नगर को गई है; ट्राम भी वहाँ को ले जाती है। नगर कई ऊँची पहाड़ियों पर बसा हुआ है और अपने यहाँ के किसी पहाड़ी-स्थान की भाँति है। कहीं बस्ती ऊँचाई पर है, कहीं नीचाई पर। नगर जिनीवा की भाँति शोभायमान नहीं है। अधिकांश प्राचीन है। यहाँ का जलवायु स्वास्थ्यकर है, इसीलिए यहाँ दूर-दूर से यात्री आकर निवास करते हैं।

होटलों की सूची मेरे पास थी। स्टेशन के निकट ही एक छोटे से प्राइवेट होटल में मैंने ठहरने के लिए एक कमरा लिया। बड़े आराम का स्थान था और चार फ्राङ्क प्रति दिन के हिसाब से मिल गया था। अङ्गरेज़ी यहाँ कोई न बोलता था, परन्तु अब फ्रेञ्च बोलने का कुछ अभ्यास हो जाने के कारण मुझे अधिक कष्ट न हुआ। कुछ दिनों पूर्व मेरी यहीं के विश्वविद्यालय में शिक्षा पाने की इच्छा थी, अतः वहाँ के मेडिकल कॉलेज तथा अस्पताल को मैं विशेष रूप से देखने के लिए गया। लोज़ान एक छोटा-सा स्थान है, परन्तु अस्पताल काफ़ी बड़ा था और स्वच्छता, प्रबन्ध तथा सामान के लिहाज़ से संसार के किसी भी प्रथम श्रेणी के अस्पताल से मुक़ाबला कर सकता था।

लोज़ान से बर्न के लिए जो रेल का मार्ग है, वह बड़ा मनोरञ्जक है। कुछ दूर तक रेल झील के किनारे-किनारे जाती है, फिर पर्वतों में होकर। बर्न स्विट्ज़रलैण्ड की राजधानी है। लोज़ान और बर्न में बहुत अन्तर पड़ जाता है। फ्रेञ्च के स्थान पर यहाँ जर्मन भाषा अधिक बोली जाती है। यह नगर जन-संख्या के हिसाब से दूसरे नम्बर पर है। इसकी विशेषता यह है कि यह कुछ पहाड़ियो पर बसा हुआ है, और 'आर' नदी उन पहाड़ियों को घूमती-घामती हुई काटती गई है, इसीलिए एक दिशा में चलने पर ही नदी तीन बार पार करनी पड़ती है। नदी नगर से इतनी नीची है कि पुलों पर से उसकी ओर देखने में ही भय मालूम होता है। यहाँ की सड़कें अन्य सभी नगरों से विचित्र हैं। दूकानों के सामने सड़कों के दोनों ओर पगडण्डियाँ बनी हुई हैं, जिन पर छत छाई हुई हैं, इस कारण चाहे धूप हो, चाहे वर्षा, पथगामियों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। चौराहों पर पानी के फव्वारे व पुतले बने हुए हैं। पुतले अनेक प्रकार के हैं, कुछ हँसाने वाले, कुछ भयभीत करने वाले तथा कुछ शिक्षाप्रद।

नगर में प्राचीन दृश्य भी हैं, तथा अर्वाचीन भी। प्राचीन में तो कुछ बाग़, कुछ गिर्जे तथा कुछ इमारतें हैं। नयों में सबसे सुन्दर पार्लामेण्ट के भवन हैं। इन नगरों में एक और मुख्य स्थान होता है, जिसको कासीनो (Casino) कहते हैं। यह एक प्रकार का क्लब-घर होता है। यहाँ पर सङ्गीत, नृत्य, खेल-तमाशे, जुआ आदि होते हैं। प्रत्येक नगर में एक ऐसा स्थान होता है, जहाँ उस नगर के निवासी तथा यात्री मनोरञ्जन कर सकते हैं।

बर्न से आगे चलने पर विशुद्ध पर्वतीय प्रदेश मिलता है, इसे 'Berner Oberland' कहते हैं। रेल-पथ में सुन्दर दृश्यों की पराकाष्ठा हो जाती है। इस पर्वतीय प्रदेश में एक छोटा-सा, परन्तु अत्यन्त प्रसिद्ध क़स्बा है—इन्टरलाकेन (Interlaken)। इसका यह नाम पड़ने का कारण यह है कि यह दो झीलों के बीच में बसा हुआ है। क़स्बा छोटा है, परन्तु यहाँ से प्राकृतिक दृश्य देखे जा सकते हैं, अतः यात्रियों का यहाँ ताँता लगा रहता है। शरद ऋतु में तो यहाँ होटलों में स्थान मिलना कठिन हो जाता है, क्योंकि स्विट्ज़रलैण्ड के जाड़े के प्रायः सभी खेल यहाँ के बर्फ़ीले पर्वतों पर खेले जाते हैं। ये खेल संसार भर में प्रसिद्ध हैं। इनमें से दो बहुत प्रसिद्ध हैं—स्केटिङ्ग (Skating) तथा शीइङ्ग (Ski-ing)। पिछला शब्द लिखा तो 'स्कीइङ्ग' जाता है, परन्तु

पढ़ा 'शीइङ्ग'। इन्हें खेलने के लिए यन्त्रों की आवश्यकता होती है, जिन्हें 'स्केट' तथा 'शी' (Ski) कहते हैं। इन दो यन्त्रों से ही लोग बर्फ़ में भाँति-भाँति के खेल खेलते हैं; बर्फ़ में चलते हैं तब भी इनकी सहायता से, नाचते हैं तब भी इन्हें पहन कर। यही नहीं, इन्हीं को पहन कर वे हॉकी, फ़ुटबॉल आदि खेलते हैं। इन यन्त्रों का प्रयोग करना सरल बात नहीं है। जब इन्हे प्रयोग करने का अभ्यास हो जाता है, तब तो लोग आश्चर्यित करने वाले खेल इनकी सहायता से खेलते हैं। कोई गज़ों ऊँची पहाड़ी से कूद कर घाटी में मीलों दौड़े हुए चले जाते हैं। उन्हे ऊँची-नीची पृथ्वी को पार करने में कोई कठिनता नहीं होती। 'शी' के बिना तो बर्फ़ पर मार्ग चलना कठिन हो जाता है। कुछ व्यक्ति कुत्तों की गाड़ी बना कर उनके पीछे स्केट पर चलते हैं। कभी-कभी बर्फ़ पर मेले लगते हैं, और सैकड़ों व्यक्ति एक साथ बर्फ़ पर नाचते-कूदते हैं। जाड़े के दिनों मे तो रेलगाड़ियों में बहुत कम ऐसे यात्री दिखाई पड़ते हैं, जिनके पास 'शी' या 'स्केट' न हों। जब बर्फ़ पिघलने लगता है, तो ये खेल बन्द हो जाते हैं।

मैं इन्टरलाकेन के एक छोटे से होटल मे ठहरा। इसी के साथ एक छोटा-सा रैस्टोरॉ था। उसमें खाना खाते समय वहाँ के निवासियों से वार्तालाप करने तथा वहाँ की बातें जानने का अच्छा अवसर मिला। सङ्गीत और मदिरा के ये लोग बड़े प्रेमी होते हैं। मेरी लैण्डलेडी कुछ अङ्गरेज़ी जानती थी। एक सन्ध्या को मैं घूम कर थका हुआ आया, तो उसने चाय पिला कर सङ्गीत सुनाना प्रारम्भ कर दिया। पहले तो उसने ग्रामोफ़ोन पर जर्मन रिकार्ड सुनाए, उनमें से एक था Weib, wein, Und Gesang (स्त्री, शराब और सङ्गीत)। उस समय इन्टरलाकेन का केवल एक बुड्ढा वहाँ पर उपस्थित था। शराब का प्याला उसके सामने था। उसे हाथ में लेकर ग्रामोफ़ोन की तान के साथ वह झूमने लगा। मैंने उससे पूछा—'स्त्री कहाँ है?' उसने एक नौकरानी को अपने पास बिठा लिया और उस गीत का अर्थ पूरा कर दिया। जीवन को इतनी मस्ती से व्यतीत करते हैं ये लोग।

प्रत्येक होटल में ठहरने वाले यात्री को एक छोटी-सी पॉकेट-बुक मिलती है, जिसे Kur-Karte कहते हैं। इसमें वहाँ के दर्शनीय स्थानों की सूची तथा वहाँ के कासीनो, सिनेमा आदि के प्रोग्राम लिखे होते हैं। इसे दिखाने पर रेल-गाड़ी के किराए में तथा कासीनो आदि की फ़ीस में कुछ रियायत हो जाती है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि इन्टर-लाकेन के पास दृश्यों की भरमार है। इसके चारों ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं तथा कई जल-प्रपात भी इसके निकट हैं। पर्वतों पर पहुँचने के लिए छोटी-छोटी बिजली की रेलें हैं। पर्वतों से इन्टरलाकेन का दृश्य अत्यन्त मनोरम मालूम होता है। एक ओर सामने कुछ दूरी पर युङ्ग-फ़्राउ ग्लेशियर (Jangfrau Glacier) की सफ़ेद चोटी दिखाई पड़ती है। वहाँ की सरकार ने चोटी तक पहुँचने के लिए रेल बना दी है। मार्ग में ट्रूमेल बाख़ (Trummelbach) का जल-प्रपात एक अद्भुत दृश्य है। यहाँ के लिए लाउतर ब्रूनेन स्टेशन (Lauterbrunnen Bahn-hof) पर उतरना होता है, जहाँ से प्रपात लगभग २ मील है। मार्ग में कई छोटे-छोटे प्राचीन ग्राम पड़ते हैं, जिनसे स्विट्ज़रलैण्ड की प्राचीन सभ्यता के विषय में बहुत-कुछ ज्ञात होता है।

ग्लेशियर से जो बर्फ़ पिघल कर पानी बनता है, वह पर्वतों के भीतर ही भीतर होकर इस प्रपात के रूप में नीचे गिरता है और एक नदी का रूप धारण कर लेता है। बाहर से देखने पर यहाँ कुछ भी नहीं दीखता। स्विस गवर्नमेण्ट ने सन् १९१४ में ऊपर ले जाने के लिए एक बिजली का लिफ़्ट लगवा दिया था। उसी से ऊपर पहुँच कर प्रपात

के दर्शन होते हैं। वैसे तो उस स्थान पर अन्धकार रहता है, परन्तु गवर्नमेण्ट ने वहाँ बिजली के रङ्ग-बिरङ्गे बल्ब लगवा दिए हैं। उनका प्रकाश जब गिरते हुए श्वेत जल पर पड़ता है, तो रङ्गों का खेल देख कर बड़ा कौतूहल होता है।

ग्लेशियर का दृश्य भी बड़ा अद्भुत है। दिन में जब सूर्य की किरणें इस पर पड़ती हैं, तो यह चाँदी का चमकता हुआ पर्वत प्रतीत होता है। सन्ध्या को ऐसा मालूम होता है, मानो कोई बड़ा राक्षस सफ़ेद चद्दर ओढ़े पर्वत की चोटी पर बैठा है। कभी-कभी ग्लेशियर का कुछ भाग एकाएक बड़ा शब्द करते हुए नीचे फिसल पड़ता है और अनेक प्राणियों को दबा कर मार डालता है।

इन्टरलाकेन में लकड़ी की बनी हुई विविध भाँति की वस्तुएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ पर मुझे एक और बड़ी अद्भुत बात विदित हुई, जिससे स्विस लोगो का राष्ट्रीय प्रेम झलकता है। यहाँ की भाषा एक प्रकार से 'जर्मन' ही है, यद्यपि कुछ बातो में यहाँ की 'जर्मन' तथा जर्मनी की 'जर्मन' में कुछ अन्तर है। होटल मे एक रिकार्ड सुन कर मैंने कहा—"आपके जर्मन रिकार्ड बहुत अच्छे हैं?"

"जर्मन?"—पास ही बैठी हुई एक स्विस युवती बोल उठी।

"हाँ!"—मैंने कहा।

"यह 'जर्मन' नहीं, हमारी भाषा है।"

"तुम्हारी भाषा जर्मन ही तो है!"—मैंने कहा।

वह कुछ क्रोध दिखाती हुई बोली—जर्मन हमारी भाषा क्यों होने लगी? हमारी भाषा Schweitz (श्वाइत्स) है।

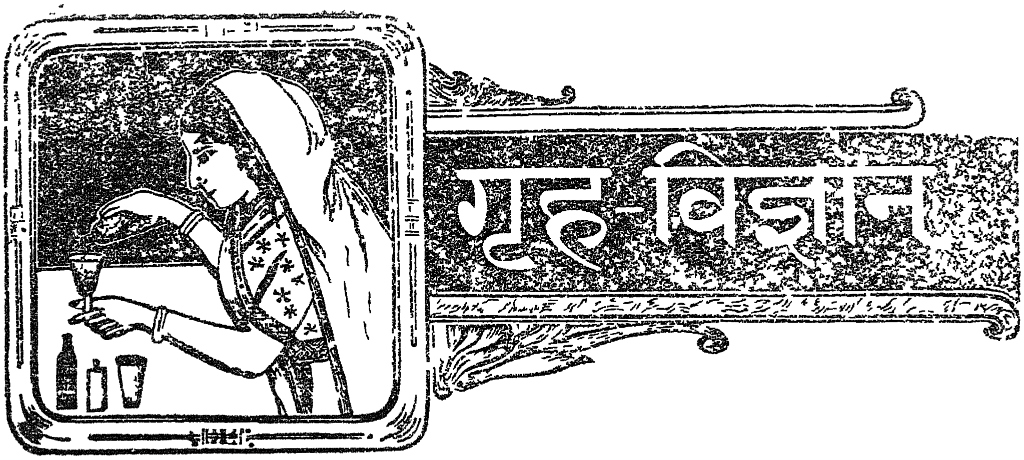
मैं इस राष्ट्र-प्रेम को देख कर दङ्ग रह गया।

इन्टरलाकेन से चल कर मैं लुत्सर्न (Luzern) पहुँचा। अङ्गरेज़ लोग इसे लूसर्न (Lucerne) कहते हैं। यह नगर भी एक झील के किनारे बसा हुआ है, परन्तु बहुत पुराना है। झील के किनारे तो अवश्य ही कुछ नए ढङ्ग की सड़कें तथा इमारतें बन गई हैं। यहाँ के दर्शनीय स्थानों में एक तो पत्थर का सिंह है, जो एक शिला को काट कर बनाया गया है। इसे लोवेनडेङ्कमाल (Lowendenkmal) कहते हैं। यह उन सैनिको का स्मारक है, जो १७९२ में फ़्रान्स के बादशाह लुई १६ वे की रक्षा में युद्ध में मारे गए थे। पास ही यहाँ का 'ग्लेशियर गार्डन' है। यहाँ कई वैज्ञानिक रीतियों से यह दिखाया जाता है कि ग्लेशियर क्या हैं और किस प्रकार वे बनते तथा पिघलते हैं।

लुत्सर्न में एक बात और देखने में आई। जिस प्रकार हमारे यहाँ स्थान-स्थान पर लोग महादेव जी आदि देवताओं की मूर्तियाँ रख देते है और उन पर फूल, बताशे, पत्ते आदि चढ़ाते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी लोग स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे आलों में ईसा की मूर्तियाँ रख देते हैं और उन पर मालाएँ चढ़ाते है तथा धूपबत्तियाँ जलाते हैं। यह विशुद्ध मूर्ति-पूजा नहीं तो और क्या है? परन्तु इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि यहाँ अब भी रोमनकैथोलिक मत के अनुयायी बड़ी संख्या में हैं।

लुत्सर्न से जर्मनी का मार्ग पकड़ा। मार्ग में राइन नदी के किनारे बाज़ल (इसे 'बाल' भी कहते हैं) नामक नगर पड़ता है। यहीं दोनों देशों की सीमा मिलती हैं, नदी के इस पार स्विट्ज़रलैण्ड, नदी के उस पार जर्मनी। बाज़ल के भी दो भाग हैं—स्विस बाज़ल इस पार, जर्मन बाज़ल उस पार। यहाँ के स्टेशन पर यात्रियों के सामान की जाँच होती है। मेरे पास कुछ ग्रामोफ़ोन-रिकार्ड थे। यहाँ उन पर चार मार्क (जर्मन सिक्का) से कुछ अधिक ड्यूटी लग गई, क्योंकि वे बिना ग्रामोफ़ोन के थे।

(अगले अङ्क में समाप्त)



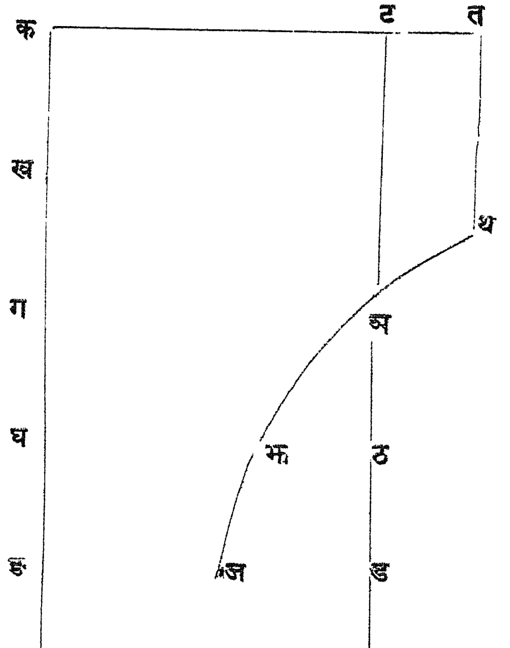
पाजामा काटने की विधि

आवश्यक वस्तुएँ—एक कैंची, एक गज़ (३६ इञ्च लम्बा फीता) कपड़ा, और एक रङ्गीन पैन्सिल।

प्रायः देखा जाता है कि घरों मे कपड़ा नापने के लिए गज़ (जिसमे २॥ इञ्च, (१ गिरह) के १६ निशान लगे हुए होते है) प्रयोग में लाया जाता है, परन्तु इञ्ची टेप जिसमें इञ्चों के निशान लगे हुए होते हैं, यदि प्रयोग में लाया जाय तो अधिक लाभ होगा, क्योकि गज़ में जो गिरह के निशान लगे हुए होते हैं, उससे हम बहुत छोटा हिस्सा नही नाप सकते। इञ्ची टेप से इञ्च का आठवाँ भाग भी नापा जा सकता है। इससे थोड़ी भी ग़लती होने का भय नहीं रहता। इसलिए गज़ के स्थान में इञ्ची टेप ही प्रयोग मे लाना चाहिए।

नाप लेने की विधि—जितना लम्बा पाजामा बनाना हो, पहिले लम्बाई नाप ले, फिर उससे ४ इञ्च अधिक कपड़ा नेफे और मोरी (पहुँचे) के लिए ले ले। जैसे यदि पाजामे की लम्बाई ३६ इञ्च हो, तो ४० इञ्च कपड़ा फाड़ ले। चौड़ाई २७ इञ्च (१२ गिरह) रक्खे। अब कपड़े को लम्बाई की ओर से दोहरा करके मेज पर बिछाओ। फिर पैन्सिल से जैसे चित्र मे दिखाया गया है, ५ भाग बराबर के बना ले।

क से च लम्बाई ४० इञ्च। च से ढ (दोहरा) चौड़ाई १३॥ इञ्च। क से च तक बराबर के पाँच हिस्से करे। जब लम्बाई ४० इञ्च है, तो प्रत्येक हिस्सा ८ इञ्च का हुआ। च से छ ६॥ इञ्च नाप



कर निशान लगा दो, ङ से ज ७ इञ्च पर निशान लगा दो, फिर घ से झ ७॥ इञ्च पर निशान लगाओ। छ से ज और ज से झ को मिला कर झ को ञ से गुलाई से मिलाओ। अब ञ से ट

१६ इञ्च आसन के लिए रह जायगा। बीच में जो गोलाई का निशान दिया है, उसे काट लो, फिर ञ, ठ, ड, ढ, छ, ज, झ, ञ, पर जो कपड़ा बचा है उसे ट, त, थ पर डाल दो। जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। चित्र में पाजामे के एक ओर का हिस्सा दिखाया गया है। दूसरा हिस्सा भी इसी प्रकार से कटेगा।

इसको जोड़ने के लिए पहिले आसन सीना होगा। फिर बीच से टाँगों की गोलाई सीना होगा। इसके पीछे ऊपर नेफा १॥ मोड़ कर सिलाई करनी होगी और पहुँचे भी १ इञ्च मोड़ कर सीना होगा। सीने के लिए यदि सहायता की आवश्यकता हो, तो दर्ज़ी के सिए हुए पाजामे बहुत कुछ सहायता कर सकते हैं। क्योंकि लिख कर बताने से प्रत्येक बात ठीक नहीं बताई जा सकती।

—शकुन्तलादेवी गुप्ता, हिन्दी-प्रभाकर

फूल-पत्तियों के रङ्ग

देशी फूल, पत्ते, जड़ इत्यादि के रङ्गों को सूती रेशों पर चढ़ाने के लिए, सूत को सब से पहले हर्रे की छाल अथवा अनार के बक्कल के अर्क़ में मामूली तौर से रँग लेना चाहिए। चूँकि अनार तथा हर्रे का रङ्ग सूर्य की रोशनी का असर पड़ने से फीका पड़ जाता है, इसलिए सूत को हर्रे या अनार के अर्क मे रँगने के बाद फिटकिरी या लाल पोटाश या कसीस के हल्के पानी में डुबो देना चाहिए।

हर्रे से रँगने की विधि इस प्रकार है—किसी मिट्टी या लकड़ी के बर्तन मे ४०० तोला कुनकुना पानी लेकर उसके अन्दर १०० तोले हर्रे की छाल रात भर भिगोनी चाहिए। दूसरे दिन सवेरे ही इसको ख़ूब गर्म करना चाहिए, यहाँ तक कि १०० तोले पानी बाकी रह जाय। इसको ठण्डा हो जाने पर छान लेना चाहिए। इसमे सूत या वस्त्र को २४ घण्टे डाल रखना चाहिए। सूत को हर्रे के अर्क में रँगने के बाद फिटकिरी, तूतिया आदि में डुबोना चाहिए। इसके बाद सूत को निचोड़ दो और फिर किसी भी फूल-पत्ती के रँग से रँग लो।

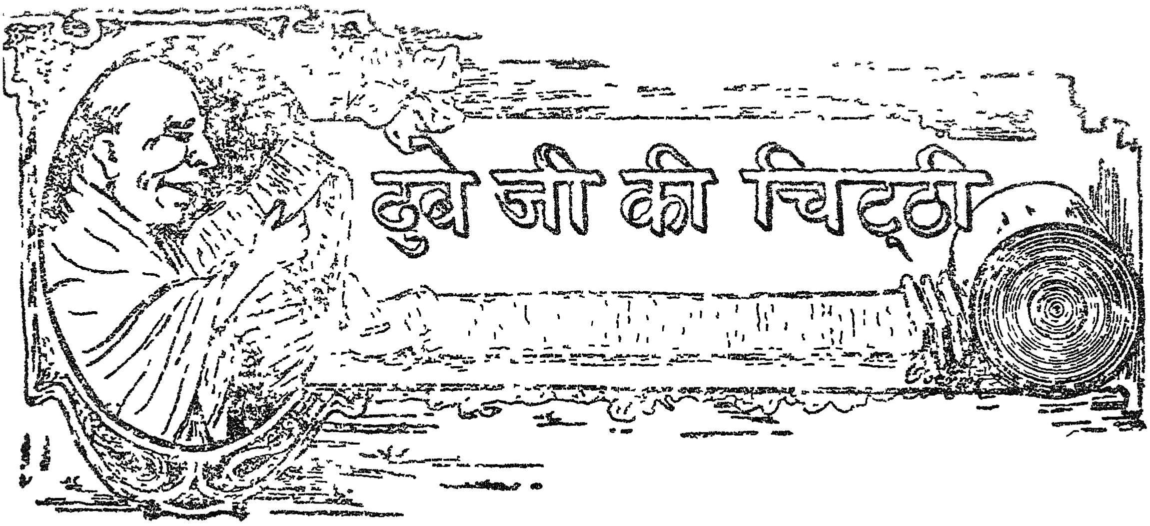
देशी रङ्ग नीचे लिखी हुई भिन्न चीज़ों के अर्क़ से प्रत्येक प्रकार के रेशों पर रँगे जा सकते हैं।

१—अनार, २—आल की लकड़ी, ३—अडूसे के पत्ते, ४—कसूम, ५—केसर, ६—कटेहरी का फूल, ७—कत्था, ८—कपास का फूल, ९—गाजर, १०—टेसू का फूल, ११—नील, १२—पतङ्ग की लकड़ी, १३—फ़स्टिक (Fustic) १४—बेर की छाल, १५—बबूल की छाल, १६—मेंहदी, १७—मजीठ, १८—रेवनचीनी, १९—लाख, २०—लालचन्दन, २१—लौगवुड, २२—हर्रा, २३—हल्दी, २४—हारश्रृङ्गार, २५—धव के फूल, २६—जामुन।

—भूदेव शर्मा, 'उद्योगी'

एक बार अकबर बादशाह अपने बेटे सलीम के साथ किसी नदी मे नहाने गए। बीरबल भी साथ थे। बादशाह ने मज़ाक़ से अपने और सलीम के कपड़े उतार कर बीरबल के कन्धे पर रख दिए और हँस कर बोले—बीरबल, अब तो तुम्हारे ऊपर एक गधे का बोझ हो गया। बीरबल ने तुरन्त उत्तर दिया—हुज़ूर, एक गधा इतना बोझ नहीं उठा सकता, यह तो दो गधों का बोझ है।

किसी ने अपने नौकर को एक रुपया देकर कहा—जाओ, जल्दी से बरफ़ ले आओ। नौकर कुछ देर में थोड़ा सा बरफ़ लेकर आया। मालिक ने झुँझला कर कहा—अबे यहाँ तो गरमी के मारे पिघले जा रहे हैं और तू इतनी देर में आया, सो भी बरफ़ ज़रा सी लाया है। नौकर ने कहा—हुज़ूर, क्या बताऊँ, वाक़ई बड़ी गरमी है। यहाँ तक कि बाज़ार जाते-जाते रुपया भी पिघल कर बारह आने का ही रह गया।



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आज आपको कायस्थों की बारात का कुछ वर्णन सुनाता हूँ। अपने राम को कायस्थों की अनेक बारातें करने का अवसर मिला है। आज से बीस वर्ष पूर्व, जब कि कायस्थों के विवाह-भोजो में मांस तथा मदिरा का दौर-दौरा रहता था, उस समय की बात ही निराली थी। उस समय तो कायस्थों के कुएँ के पानी तक मे से प्याज़-लहसुन की गन्ध आती थी। अपने राम को कई बार ऐसा अवसर पड़ चुका है। प्यास लगी—पीने को पानी माँगा। सामने गिलास आया, हाथ में लेकर जो मुँह से लगाया तो ऐसा जान पड़ा कि पानी के स्थान में प्याज-लहसुन का अर्क ले आए हैं। उस दिन से यदि कभी किसी कायस्थ के घर में प्यास लगी तो समझ लिया कि आज निर्जल-व्रत है; परन्तु पानी माँगने का साहस न पड़ा। उस ज़माने में विवाह-भोजो में पूरा मयखाने (शराबख़ाना) का मज़ा आता था। रण्डियो का नाच भी होता था। लाला भाई ठर्रा जमाए हुए महफिल मे डटे है। हाहा-हूहू हो रहा है। सब अपनी-अपनी धुन में मस्त हैं, रण्डी अलग झख मार रही है। विवाह-भोजो में बड़ी दुर्दशा होती थी। नशे की हालत में भोजन करते हुए कोई चिल्लाता था, कोई शेरख़्वानी (कविता-पाठ) करता था, कोई ओकता था और कोई शोर मचाता था। परन्तु जब से शराब का तथा वेश्यानृत्य का रिवाज बन्द हुआ तब से वे बातें जाती रही। और आजकल तो जनाब, कायस्थ लोग ब्राह्मणों के कान काट रहे हैं। अपने राम के एक कायस्थ मित्र हैं। उनके परिवार की दशा यह है कि शलजम और चुक़न्दर तक नहीं छूते, लहसुन-प्याज़ तथा मांस का तो ज़िक्र ही क्या। एक ज़माना था, जब यही महाशय बिना मांस के टुकड़ा न तोड़ते थे। अस्तु—

एक दिन एक महोदय ने आ घेरा। उर्दू-पद्य में छपा हुआ निमन्त्रण-पत्र सामने रख दिया। अपने राम ने पूछा—"यह क्या ?" बोले—"पन्द्रह तारीख़ को मनिया की शादी है, आपका ज़ुरूर तशरीफ लै चलै का पड़ी। बारात लखनऊ जायगी।"

पहले तो अपने राम ने टालना चाहा। परन्तु जब वह किसी तरह न माने, तो विवश होकर स्वीकार करना पड़ा।

नियत समय पर अपने राम लद-फँद कर स्टेशन पहुँचे। देखते ही लोग-बाग चिल्ला उठे—दुबे जी आ गए, भई ख़ूब आए !

जिनकी बारात थी, वह बोले—बड़ी देर लगायौ, हम तो नाउम्मीद हुइ चले रहन—कुछ तरुद्दुदौ (यह तरुद्दुद (चिन्ता) की भी ख़राबी है) भवा कि शायद कोनौ उफ्ताद पड़ गई।

अपने राम बोले—उस्ताद अपने राम के पास ज़रा कम फटकती है।

एक अन्य महोदय बोले—चलो अब तो आ ही गए—सुबह का भूला शाम को आ जाय तो उसे भूला न कहना चाहिए।

अपने राम ने इन महाशय को ध्यानपूर्वक देखा और यह समझ कर सन्तोष हुआ कि दिल बहलाने के लिए एक महाशय साथ है।

एक वृद्ध महाशय अपना पोपला मुँह चला कर बोले—देर आयद दुरुस्त आयद! (अर्थात्—जो कार्य देर में होता है वह ठीक होता है।)

इसी समय, विवाह-कार्य कराने को जो पण्डित साथ चल रहे थे, वह अपने राम के पास आकर बोले—दुबे जी, आप आ गए, बहुतै नीक भा। हमें तो प्राण अस मिले। इन लोगन की उर्दू-फारसी सुनत-सुनत हमार प्राण ऊब उठे।

अपने राम ने पूछा—शायद आप कायस्थों की बारात में पहले-पहल फँसे हैं?

"हाँ, यह पहला अवसर है।"

"तभी! ख़ैर कोई चिन्ता की बात नहीं, अब अपने राम आ गए।"

ख़ैर साहब, लखनऊ पहुँचे। रास्ते में रेल पर कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई। जनवासे में पहुँचते ही लड़की वाले का [illegible] आरम्भ हो गया। स्वागत के रूप में बारातियों के लिए शर्बत आया था। एक महोदय ने हुण्डा मुँह से लगा कर एक घूँट पिया और पीते ही मुँह बना कर बोले—अरे क्यों, यह शर्बत है?

लड़की-पक्ष का आदमी बोला—जी!

एक दूसरे बराती बोले—यह लखनऊ है जनाब! यहाँ सब बातों में नज़ाकत मिलेगी—शर्बत में भी नज़ाकत है।

एक तीसरे बराती चिल्ला कर बोले—अरे भई, शर्बत माँ शकर कम है तौन बदज़ायका लागत है।

दूसरे महोदय बोले—शकर कम नहीं, यह नज़ाकत है। ज्यादा रहती तो नज़ाकत मारी जाती।

एक ओर से आवाज़ आई—ऊँची दूकान फीका पकवान।

एक अन्य महाशय बोले—सुनते थे लखनऊ वाले बड़े बातमीज़ होते हैं, मगर यहाँ तो वही ढाक के तीन पात निकले। शर्बत बनाने तक की तमीज़ नहीं।

"अरे भई सुनते हैं कि लड़की के वालिद तो बड़े लायक़ आदमी हैं, मगर लड़की की महतारी देहातिन है। और यह भी सुना है कि उनके सामने वालिद की कुछ नहीं चलती। वह जितना पानी पिलाती है, उतना ही वह पीते हैं।"

"लिहाज़ा जैसा शर्बत वह पिलाएँ वैसा ही आप लोगों को पीना चाहिए।"

"अगर वह ख़ुद आकर पिलाएँ तो शर्बत तो क्या, हम पानी तक भी ख़ुशी से पी लेंगे।"

कन्या-पक्ष का आदमी बोल उठा—वह ख़ुद पिलाएँगी तो फिर दूध ही पिलाएँगी।

इस पर कुछ आदमी हँस पड़े। और मज़ाक करने वाले झेंप गए। कन्या-पक्ष के आदमियों के चले जाने पर बरातियों में से एक महोदय बिगड़ कर बोले—वाह साहब वाह! अच्छी बरात है। लड़की वाले मज़ाक करते हैं तो अपने ही आदमी हँसते हैं।

अब अपने राम से न रहा गया, बोल उठे—जी हाँ, आपका कहना ठीक है। लड़की वाले मज़ाक करें तो अपने आदमियों को रोना चाहिए।

"अजी रोना तो क्या, मगर हँसना नहीं चाहिए, इससे उनकी चढ़ बनती है।"

एक अन्य महोदय—उल्लूपन की बातें करत हौ, हँसी न आवे तो का होय। मज़ाक करन चले हैं। मज़ाक़ करन ख़ातिर लियाकत की ज़रूरत है।

इस पर उक्त महाशय बहुत ख़फ़ा हुए और परस्पर झगड़ा होने लगा। एक घण्टे तक इसी पर झगड़ा होता रहा कि मज़ाक किसे कहते हैं और मज़ाक करने की लियाक़त किसमें है। परन्तु फिर भी इस पर कोई सर्व-सम्मत निर्णय न हो

सका। अपने अतिरिक्त किसी ने भी किसी दूसरे को इस योग्य न समझा कि वह इस विषय पर कुछ कह सके।

द्वाराचार के समय समधी के द्वार पर भी काफी चहल-पहल रही। प्रायः सब लोग मनियाँ (वर) की ख़ुशदामन (सास) की ताक में रहे कि उनकी एक झलक देखने को मिल जाय। सम्पादक जी, ख़ुशदामन (सास) की ऐसी छीछालेदर कदाचित ही किसी अन्य जाति में होती हो। बात-बात मे मनियाँ की खुशदामन पेश की जाती थी। एक काली-कलूटी भद्दी सी कहारिन द्वार की आड़ से झाँक रही थी। एक महोदय बोले—"देखो मनियाँ की ख़ुशदामन झाँक रही है।" सब लोग हाहाहा करके हँस पड़े। कहारिन बेचारी शर्मा कर अन्दर भाग गई। अपने राम बोले—"वाह! क्या मज़ाक है! मज़ाक सीखना हो तो आप लोगो से सीखे।"

जिन महोदय से अपने राम ने यह बात कही थी, वह अकड़ कर बोले—इसमें क्या शक है। मज़ाक तो कायस्थों का हिस्सा है।

"जी! और ख़ासकर खुशदामन का मज़ाक़ तो आप लोगों ने निन्नानबे साल के पट्टे पर ले रक्खा है। दूसरी जाति वाले उसे पा ही नहीं सकते।"

दूसरे दिन सवेरे से ही जनवासे में चिल्ल-पों आरम्भ हो गई। अपने राम ने एक महोदय से पूछा—आज क्या बात है, जो लोग इतने व्यस्त दिखाई पड़ते हैं?

वह महोदय बोले—आज गोश्त पकेगा। आप शरीक होंगे न?

अपने राम बोले—गोश्त है तो ऐसी ही चीज़ कि सब लोगों का कर्त्तव्य है कि उसमें शरीक हों। मगर अपने राम में कर्त्तव्यपरायणता छू नहीं गई है, इसलिए मजबूरी है।

कन्या-पक्ष के आदमी से सामान की फरमायश की गई। एक महोदय बोल उठे—और कह देना कि मनियाँ की ख़ुशदामन को भेज दे तो आयके पकाय जायँ। सुना है कि गोश्त निहायत लज़ीज़ (स्वादिष्ट) पकौती है।

इधर यह प्रबन्ध हो रहा था, उधर विवाह-कार्य कराने वाले पण्डित जी अपने राम के पास आकर बोले—दुबे जी, आज तो यहाँ मांस पकेगा। हमे मांस तो क्या, प्याज़-लहसुन की गन्ध तक से घृणा है। बोलिए क्या किया जाय? सोचा था कि आनन्द से रसोई बनेगी। दाल-भात, रोटी बनावेंगे, परन्तु अब तो सारी व्यवस्था ही बिगड़ गई।

अपने राम बोले—तो आपसे क्या मतलब? आप अलग बनाइएगा।

"कहाँ तक अलग बनाऊँगा। जगह तो इतनी ही है।"

"तो आज उपवास कर जाइए—या फलाहार कर लीजिए।"

"सो तो करना ही पड़ेगा। परन्तु आप क्या करेंगे?"

"अपने राम तो पूरी-तरकारी पर गुज़र कर लेंगे।"

उस दिन, दिन के दो बजे तक गोश्त ही पका किया। कुछ वृद्ध लोगों को छोड़ कर बारात भर गोश्त पकाने में जुटी रही। जिसे देखो वहीं डटा है। "क्यों भई, क्या कसर है? दही भी छोड़ा है या नहीं। और अदरख का बघार ज़रूर देना।"

"गोश्त तो हमारे मामा पकावत हैं, इलम क़सम ऐसन गोश्त हम कहूँ नहीं खावा। बड़ी-बड़ी बरातन गएन, मगर वह बात न पाई न पाई।"

"यह भी ईश्वर की देन है।"

"एहि माँ का शक है। ईश्वर ने उनके हाथ माँ कुछ ऐसा वस्फ रक्खा है कि दूसरे माँ वह बातै नहीं है।" एक महोदय बिगड़ते हुए आए और बोले—"वाह साहब, यहाँ आँतें क़ुलहो-अल्लाह पढ़ रही हैं और आपका गोश्त ही नहीं पका, बीरबल की खिचड़ी हो गई क्या?"

पकाने वालों में से एक बोले—ज़रा गलने में कसर है, बाकी सब तैयार है।

"अभी तक गला ही नहीं—तो जान पड़ता है बुड्ढी बकरी का होगा। तोबा ! सारा मज़ा किरकिरा हो गया।"

"भाई साहब, यह लखनऊ है, यहाँ की सब बातें निराली हैं।"

"मनियाँ की सास तो अभी जवान हैं ? क्यों न ?"

अपने राम बोले—तो क्या उन्हीं को पका कर चट करने का इरादा है ?

"जी नहीं, मेरा मतलब यह है कि जब वह ख़ुद जवान हैं तो उन्होंने बुड्ढे जानवर का गोश्त कैसे भेजा।"

अपने राम ने कहा—वाक़ई यह दलील आपकी बहुत ज़बरदस्त है। इस वक़्त कोई हाईकोर्ट का जज होता तो इस दलील की क़द्र करता।

ख़ैर साहब, किसी प्रकार गोश्त तैयार हुआ और लोग गिद्ध की भाँति उस पर टूटे। भगवान जाने कब के तरसे हुए थे कि हड्डियाँ तक चबा गए।

शाम को दो-चार नौजवान गद्दीखाने पहुँच गए और वहाँ ख़ूब ढाली। गर्मी के दिन थे। विवाह कराने वाले पण्डित जी एक चबूतरे पर अपना बिस्तर लगा कर चले गए थे। बेचारों ने सोचा था कि जब तक वह लौटेंगे, तब तक बिस्तर ख़ूब ठण्डा हो जायगा। आनन्द से पड़ के सोएँगे। इधर एक व्यक्ति नशे की झोंक मे उन्हीं के बिस्तर पर आकर लेट गया। थोड़ी देर मे उसने क़ै करना आरम्भ किया। सारा बिस्तर क़ै से भर दिया। लोगो ने उसे उठा कर अलग किया। उसी समय पण्डित जी आ गए। उन्होंने यह दशा देखी तो बड़े नाराज़ हुए। बोले—"हम इसी मारे इनकी बारात मे नही आते थे। इन म्लेच्छों को किसी के धर्म-कर्म का भी विचार नहीं। आज दिन भर हमको उपवास करना पड़ा और सोने का समय आया तो हमारे बिस्तरे की यह दुर्दशा कर दी—नारायण ! नारायण ! अब हम कल प्रातः ही चले जायँगे।"

लोगों ने उनको समझा-बुझा कर शान्त किया।

एक बज़ुर्गवार बोले—ज़्यादा पी गए। इसीलिए कहा है कि कसरत (अति) हर चीज़ की मुज़िर (हानिकारक) होती है।

अपने राम बोल उठे—मगर डण्ड-बैठक की कसरत तो लोग फ़ायदामन्द बताते हैं।

"अजी वह कसरत बात और है, यह और बात है।"

एक वृद्ध महोदय, जो बात-बात में फ़ारसी के शेर पढ़ते थे, बोले—'मय कि बदनाम कुनद अहले ख़िरद रा ग़लतस्त—बल्कि मय मी शवद अज़ सोहबते नादाँ बदनाम।' अर्थात्—शराब किसी को बदनाम नहीं करती, बल्कि शराब स्वयम् नादानों की सोहबत से बदनाम है। ऐसे ही लोगों ने शराब को बदनाम कर दिया है।

एक महाशय बोले—हमरे लाला तमाम उम्र शराब पिहिन, मगर किसी को कभी कानो-कान ख़बर न हुई। रात को खाना खाय के वक़्त पियत रहैं और पियन के बाद चहै लाट-गवर्नरौ आवें तबहूँ मुलाकात न करत रहैं। शादी-ब्याह माँ जात रहै तबहूँ कबहूँ कौनों के साथ शरीक न होत रहैं। लोग जानत रहै कि शराब नहीं पियत हैं और पियत रोज़ रहें।

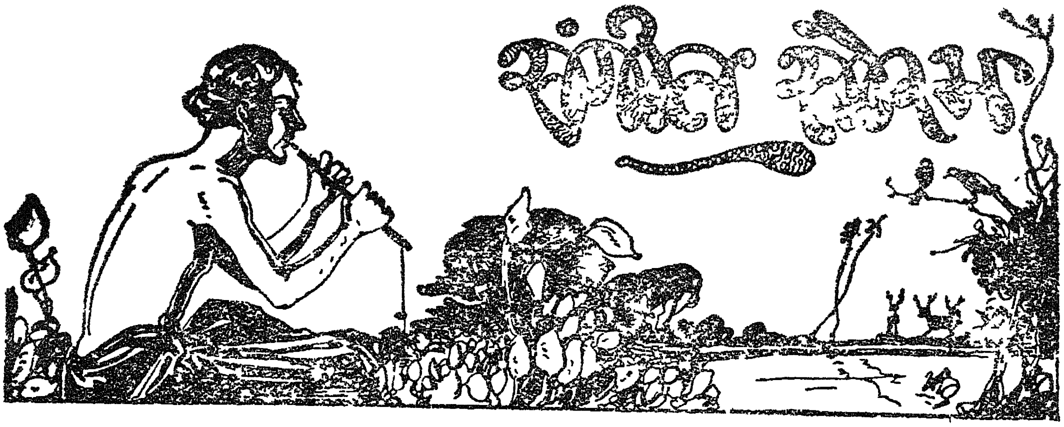
इसी प्रकार जब तक लोग जागते रहे, तब तक मद्यपुराण चलता रहा।

सम्पादक जी, इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हुए। तीन दिन तक शराब, गोश्त और मनियाँ की सास का वृत्तान्त सुनते-सुनते कान पक गए। और पण्डित जी ने तो उस दिन से क़सम खाली कि कभी कायस्थों की बारात मे नहीं जायँगे।

यद्यपि विवाह-भोज में शराब तथा गोश्त उठ गया है, परन्तु प्राइवेट तौर से अब भी इनका ख़ब व्यवहार होता है। प्रत्येक बारात में इन दोनों पदार्थों के अनेक प्रेमी पहुँच जाते हैं।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)



[शब्दकार—डॉ० धनीराम प्रेम]

खम्माच—३ ताल

[स्वरकार—श्रीयुत किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

स्थायी—माखन खाइ गयौ तेरौ कन्हैयाँ ।

अन्तरा—माखन कौ तौ माखन खायौ—
मोरी मरोरि गयौ दोउ बैयाँ ।
अपने कुमर को बरजौ जसोदा,
ग्वालिनि ठाड़ी परै तोरे पैयाँ ।

स्थायी

०				१				×				३			
										क					
स	—	ग	ग	म	—	प	ध	सं	—	नि	ध	प	म	ग	—
मा	—	ख	न	खा	—	इ	ग	यो	—	ते	रो	क	न्है	या	—

अन्तरा

नि	—	नि	नि	नि	—	नि	—	ध	नि	सं	सं	सं	—	सं	—
मा	—	ख	न	को	—	तो	—	मा	आ	ख	न	खा	—	यो	—
		क			क				क						
सं	रें	नि	सं	ध	नि	प	ध	सं	नि	ध	प	म	—	ग	—
मो	ओ	री	म	रो	ओ	रि	ग	यो	ओ	दो	उ	बै	—	यौं	—
												क			
सं	गं	रें	मं	गं	रें	सं	—	नि	सं	रें	सं	नि	—	ध	—
अ	प	ने	कु	म	र	को	—	ब	र	जौ	ज	सो	—	दा	—
		क			क					क					
सं	रें	नि	सं	ध	नि	प	ध	सं	—	नि	ध	प	म	ग	—
ग्वा	आ	लि	न	ठा	आ	ड़ी	प	रे	—	तो	रे	पै	इ	यौं	—



स्त्रियों के अधिकार

एक पञ्जाबी महाशय लिखते :—

"यह पत्र मैं आपको इसलिए लिख रहा हूँ कि दुनिया को पता लग जाय कि हिन्दू-समाज में स्त्रियों पर क्या-क्या जुल्म किए जाते हैं। एक बहिन जी हैं। उमर उनकी २५ वर्ष के क़रीब है। एफ़० ए० तक पढ़ी हुई भी हैं। उनके पतिदेव इङ्गलैण्ड से एक बड़ी डिग्री लेकर यहाँ पर एक अच्छे पद पर काम कर रहे हैं। कोई डेढ़ वर्ष के क़रीब हुए होंगे कि उनका अपनी सगी भाञ्जी से अनुचित प्रेम हो गया है। उनकी दो छोटी-छोटी लड़कियाँ भी हैं। वह अपनी पत्नी की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखते। उसे बेतो से मारते है। वह भी घर के अन्दर नहीं, बल्कि बाहर कम्पाउण्ड में। नौकर देखते हैं, पर कुछ कर नहीं सकते। इर्द-गिर्द चारो तरफ़ यूरोपियनों के बङ्गले हैं। वे भी देखते ही होंगे। वे बेचारी मार खाकर चुप हो जाती हैं। उनसे कई दफ़ा कहा भी है कि मुक़दमा करो। कभी कहती हैं कि तब तक कुछ नहीं करूँगी, जब तक कि उस लड़की की शादी नही हो जाती। उसकी शादी के बाद शायद सँभल जायँ। कभी कहती है कि उनसे अलग होकर मैं लड़कियों को अपने साथ नहीं रख सकूँगी और न उनको उनके पिता के पास ही रहने दूँगी। कहीं बड़ी होकर वह भी अपने पिता की तरह गन्दी न हो जाएँ। वह ख़ुद तो ऐसी भोली है कि कितने दिनो तक उन्हे इस अनुचित प्रेम का पता ही न लगा, हालाँकि वह लड़की कई राते इन्ही के घर मे काट गई है, और अब भी काटती रहती है। एक दफ़ा (जब कि इन्हे इस बात का पता न था) उनकी स्त्री के बहनोई उनके घर आए। बहनोई साहब ने सब कुछ देखा और इन बहिन जी से कहा कि कुछ दुनिया की भी ख़बर है। तब से इन्हे इस बात का पता चला। बहनोई साहब ने जब उन्हे ऐसा करने से मना किया, तो उन्हे पिस्तौल दिखा कर वहाँ से निकाल दिया। उस लड़की का एक सौतेला भाई भी है। उसने अपने पिता को एक चिट्ठी लिखी कि वह अपनी लड़की को सँभाले। चिट्ठी के नीचे इस डर से कि कही वह भी घर से न निकाल दिए जायँ, दस्तख़त उक्त बहिन के बहनोई के ही कर दिए। परन्तु उस पिशाच रूप पिता के कानों पर जूँ तक न रेंगी। उल्टा लिखने वाले को, जोकि असल मे उनके अपने ही लड़के हैं, गालियाँ दे डाली। अब जब कभी मैं उस बहिन के घर जाता हूँ, तो उसे तो दरवाज़े पर बैठे पाता हूँ और उन दोनों को ड्राइङ्ग रूम मे मज़े करते। मैंने अपने एक मित्र से भी यह बात कही थी। वे कहते हैं कि मुकदमा कर दें तो अच्छा रहेगा। क्या आप भी कृपा करके मुझे कोई सलाह देंगे, जिससे कि उक्त बहिन का कष्ट दूर हो।"

[हमें लगभग इसी आशय के अनेक पत्र मिले हैं। सबको इन पृष्ठों में सम्पूर्ण रूप से स्थान देना सम्भव नहीं। सब में स्त्रियों की आर्थिक कठिनाइयों का रोना रोया गया है। एक बिहारी बहिन ने लिखा है,"मैं पति के रहते भी पतिहीना हूँ, क्योंकि वह एक पड़ोसिन विधवा के प्रेम मे पड़ गए हैं। यहाँ तक कि उसने घर पर अपना अधिकार कर लिया है और दोनों ने मुझे मार कर घर से निकाल दिया है। यदि मैथिलों मे विधवा-विवाह का प्रचार होता तो मेरी यह दशा न होती। अब आप सरकार से कह कर मेरा और मेरे बच्चे का ख़र्च दिलवा दीजिए।" एक दूसरी विधवा बहिन ने बङ्गाल से लिखा है कि उसका देवर उसका सतीत्व हरण करना चाहता है और वह पराश्रिता होने के कारण आत्म-हत्या के अतिरिक्त उससे छुटकारा पाने का कोई उपाय नही देखती। तीसरा पत्र हमे सी० पी० से मिला है, जिसमे लिखा है:—"एक नवयुवती का विवाह एक कुष्ठ के रोगी से हो गया। ससुराल मे कष्ट पाने के कारण वह एक गुण्डे के साथ भाग गई। कुछ दिनों में वह गुण्डा पकड़ा गया और लड़की अपने पिता के पास आ गई। परन्तु बीच मे उसके पति ने दूसरा विवाह कर लिया। इधर उसके पिता को समाज ने जातिच्युत कर दिया है। वह युवती कही अच्छे परिवार मे रह कर स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहती है, परन्तु यहाँ का वातावरण बहुत दूषित है।"

इन पत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जब तक स्त्रियों को आर्थिक स्वतन्त्रता न दी जायगी, तब तक स्त्रियों के ऊपर ऐसे ही अत्याचार होते रहेंगे। आर्थिक मार बुरी मार होती है। इसीके कारण स्त्रियाँ सब कुछ करने के लिए विवश हो जाती है। हम इस विषय मे पहले काफ़ी लिख चुके है। अभी कुछ समय पूर्व एसेम्बली में जब विधवाओं के आर्थिक अधिकारों का प्रस्ताव उपस्थित हुआ था, तो एक हिन्दू-सदस्य ने यहाँ तक कह दिया था कि विधवाओं को कोई कष्ट नही है। ऐसे व्यक्तियों की आँखें इन पत्रों को पढ कर खुल जायँगी। यदि ये बहिने अदालतों की शरण ले, तो कुछ हो सकता है, परन्तु उनमे इतनी क्षमता कहाँ! क्या ही अच्छा हो, यदि स्त्री-सभाएँ, आर्य-समाज तथा अन्य सामाजिक संस्थाएँ इस प्रकार की बहिनों को उनके अधिकार दिलाने का भार अपने ऊपर ले ले। यदि कोई महोदय सी० पी० की इस युवती को अपने यहाँ स्थान दे सकते हों, तो कृपया हमे सूचित कर दे।

—सं० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

मज़ाक़ का मधुर फल

मार्च के 'चाँद' मे 'विवाह की इच्छा' शीर्षक चिट्ठी के प्रकाशित होने के बाद हमे तवायफ़ धनाबाई का निम्न-लिखित पत्र मिला:—

"महाशय जी आपने जो मार्च के अख़बार में मुसम्मात धनाबाई की शादी के बारे में लेख दिया है, वह बिलकुल ग़लत है। न मैंने आपके पास कोई पत्र इसके मुतालिक भेजा है। अगर किसी दूसरे आदमी ने मज़ाक़न इस बाबत का पत्र भेजा है, तो ग़लत भेजा है। कृपा कर इतना बता दीजिए कि किसने भेजा है, किसके दस्तख़त हैं।"

हमे जो पत्र मिला था, उस पर धनाबाई का ही नाम था, और उसे बनावटी समझने का कोई कारण नही था, इसीलिए हमने उसे प्रकाशित किया था, केवल सद्भाव से, इस इच्छा से कि एक पतित बहिन का जीवन सुधर जाय। धनाबाई के पत्र के उत्तर में हमने यही लिख कर उनको सलाह दी कि वह इस अपूर्व अवसर से लाभ उठावे और प्रार्थियों मे से किसी के साथ विवाह करके पवित्र गृहस्थ जीवन व्यतीत करें। हमें हर्ष है कि उन्होंने हमारी सलाह पर ध्यान देकर इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का शुभ सङ्कल्प कर लिया है। इस सम्बन्ध मे हमे 'एक ग्राहक' से जो पत्र मिला है, उसे पाठकों के लाभार्थ हम यहाँ देते है:—

"मार्च के चाँद में एक पत्र धनाबाई तवायफ़ के नाम से निकला था, जिसमें उसने शादी की इच्छा प्रगट की थी, मुझे ठीक तरह से मालूम है कि उसके विचारों को देख कर कई भले पुरुषो ने उससे पत्र-व्यवहार किया, लेकिन असल में वह पत्र किसी दूसरे ने भेजा था—शायद मज़ाक़ के तौर

पर और इस सम्बन्ध में धनाबाई ने आपको भी लिखा था, मगर इस मज़ाक का फल बहुत ही अच्छा हुआ है। सैकड़ों पत्रों के आने से उसके दिल में भी तबदीली हो गई और उसने एक पत्र का जवाब दिया, जो उसे पसन्द आया। वह आदमी एक डॉक्टर है और दूसरा कारोबार भी करता है और मेरा मित्र है, जिससे मुझे सारा हाल मालूम है। अब वह मित्र धनाबाई से मिला और उसकी बातों से यह असर हुआ कि उनकी शादी तय हो गई है और जल्दी ही होने वाली है। धनाबाई बड़ी सुशील कन्या है और उसको देख कर कोई नहीं कह सकता कि यह तवायफ़ है। आपके 'चाँद' में पत्र प्रकाशित होने से एक देवी सीधे रास्ते पर आ गई है, इसकी ख़ुशी आपको भी होनी चाहिए और मैं अपने मित्र की तरफ़ से आपका धन्यवाद करता हूँ, और आशा है कि आप इस शुभ काम को जारी रक्खेंगे।

क्या ही अच्छा हो, अगर और भी गुमराह हिन्दू देवियाँ विवाह की इच्छा प्रगट करें, तो मुझे आशा है ऐसे कई सज्जन होंगे, जो देश-सुधार के लिए उनसे विवाह कर लेंगे।"

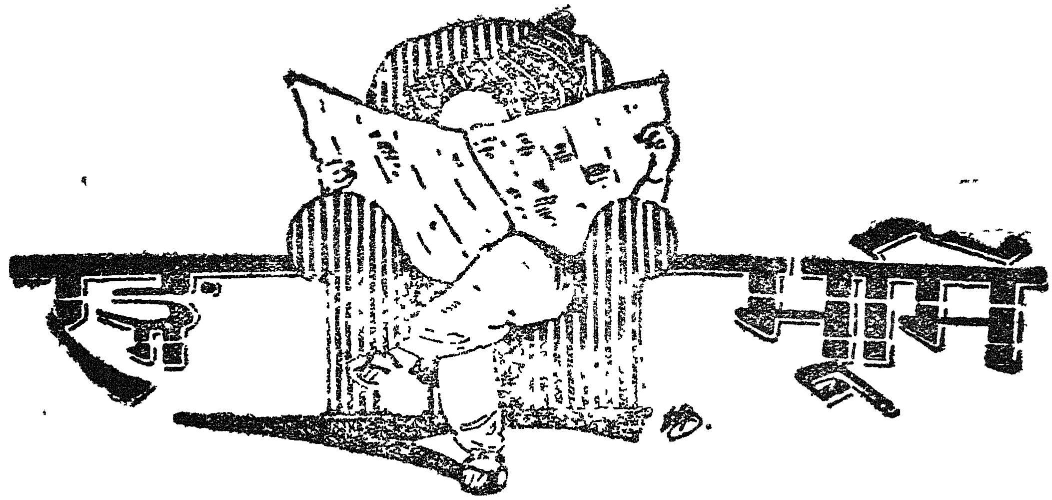
[हमें आशा है कि 'चाँद' के पाठक और पाठिकाएँ हमारे साथ इस घटना पर हर्ष प्रगट करेंगे। 'चाँद' की यह सदा से नीति रही है कि इस प्रकार की पतित बहिनों के उद्धार के लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि उनके साथ विवाह करने के लिए अच्छे कुल के योग्य व्यक्ति तैयार हों। हम इसी नीति का अनुसरण करते रहेंगे और इस दिशा में जितना भी हो सकेगा, कार्य करने को सदा तैयार रहेंगे। —सं० 'चाँद']

समाज का झूठा भय

[मार्च के 'चाँद' में हमने 'समाज का भय' शीर्षक एक चिट्ठी छापी थी। हमें हर्ष है कि हमारे पास कई ग्राहकों के पत्र उस नवयुवक को सहायता देने के हेतु आए हैं। श्रीमती रतनदेवी लाहौर ने १२) मासिक पर बच्चों को पढ़ाने के लिए, श्री० बी० एन० काश्यप, हेडमास्टर नेशनल इङ्गलिश स्कूल नगीना, ज़िला बिजनौर ने १५) मासिक पर अध्यापक का कार्य देने का वचन दिया है। श्री० सौभाग्यचन्द्र सुचन्ती, बिहार-शरीफ़, तथा श्री० प्रेमनारायण गुप्त गार्ड, ई० आई० आर० प्रतापगढ़, श्री० अवधगोपाल भटनागर कानपुर आदि ने यथाशक्ति सहायता देने के लिए लिखा है; जिसके लिए ये सब धन्यवाद के पात्र हैं। हमने इन सब पत्रों का विवरण उक्त नवयुवक के पास भेज दिया है। अभी तक हमें उनका कोई उत्तर नहीं मिला। आशा है, इन महोदयों से पत्र-व्यवहार करने के बाद वह जो कुछ स्वीकार करे, उसकी सूचना हमें दे देंगे।

उक्त पत्र को पढ़ कर हमें एक नवयुवक का पत्र मिला, जिसमें उन्होंने लिखा था कि हमारे बताए हुए उपायों से कोई काम नहीं निकल सकता, क्योंकि जाति से बहिष्कृत होकर रहना कठिन है। इस नवयुवक को यह सोचना चाहिए कि क्या अपना सर्वस्व स्वाहा करके विधर्मी हो जाना जाति के थोड़े समय के विरोध से अच्छा है? यदि इस प्रकार के युवक प्रारम्भ में ही कुछ दृढ़ता से कार्य लें तो उन्हें समाज में अब भी सहानुभूति दिखाने वाले तथा सहायता करने वाले सज्जन मिल सकते हैं, जैसा कि ऊपर के पत्रों से विदित हो सकता है।

—सं० 'चाँद']



श्री० सहगल जी का पासपोर्ट

पाठकों को यह भूला न होगा कि श्री० सहगल जी का पासपोर्ट के लिए दिया गया प्रार्थना-पत्र यू० पी० गवर्नमेण्ट ने तीन बार अस्वीकृत कर दिया था। इस विषय में राव कृष्णपालसिंह साहब ने यू० पी० कौन्सिल में जो प्रश्न किए थे और गवर्नमेण्ट ने जो उत्तर दिए थे, वे इस प्रकार हैं :—

प्रश्न १६—(१) क्या गवर्नमेण्ट को पता है कि मि० आर० सहगल ने १५ मार्च, १९३० को इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, रूस, जर्मनी, टर्की, अमेरिका, चीन तथा जापान के लिए पासपोर्ट माँगा था ? (२) क्या गवर्नमेण्ट ने उनका प्रार्थना-पत्र अस्वीकार किया था ? (३) यदि हाँ, तो उसका कारण क्या था ?

उत्तर—(१) हाँ, (२) हाँ, (३) क़ानून के अनुसार गवर्नमेण्ट को जो शक्ति प्रदान की गई है, उसके अनुसार वह प्रार्थना-पत्र अस्वीकृत हुआ था ?

प्रश्न १७—(१) क्या मि० सहगल ने अगस्त में फिर पासपोर्ट के लिए प्रार्थना-पत्र भेजा था ? (२) क्या उनके प्रार्थना-पत्र पर मि० पी० एच० मेजर्स, पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सिफ़ारिश की थी ? (३) क्या प्रार्थना-पत्र फिर अस्वीकार किया गया था ? (४) यदि ऐसा था, तो क्या गवर्नमेण्ट उसका कारण बताएगी ?

उत्तर—(१) नहीं, (२) नहीं, (३) तथा (४) ये प्रश्न उठते ही नहीं।

प्रश्न १८—(१) क्या मि० सहगल ने तीसरी बार १५ जनवरी, १९३२ को अफ़्रीका के लिए पासपोर्ट माँगा था और इस बात का वचन दिया था कि वे ब्रिटिश भारत से बाहर राजनीति में भाग न लेंगे ? (२) क्या पासपोर्ट उन्हें दिया गया ? (३) यदि नहीं, तो क्यों ?

उत्तर—(१) हाँ, (२) नहीं, (३) नम्बर १६ प्रश्न का उत्तर देखो।

प्रश्न १९—क्या गवर्नमेण्ट कृपया यह बताएगी कि वह इस प्रकार मि० सहगल को विदेश जाने से रोकना क्यों आवश्यक समझती है ?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न २०—क्या गवर्नमेण्ट इस विषय पर पुनर्विचार करेगी ?

उत्तर—नहीं।

इन प्रश्नोत्तरों पर टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ था, परन्तु इनमें दो-एक ऐसी बातें हैं, जिनके सम्बन्ध में दो शब्द लिखना आवश्यक है। पहली बात तो प्रश्न १७ के उत्तर के विषय मे है। गवर्नमेण्ट की ओर से कहा गया है कि श्री० सहगल जी ने अगस्त में कोई प्रार्थना-पत्र नहीं दिया। इसके खण्डन के लिए श्री० सहगल जी ने हमारे पास साप्ताहिक 'भविष्य' का २० अगस्त, १९३१ का वह अङ्क भेजा है, जिसमें उनके और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह प्रकाशित हुआ है। सहगल जी के प्रार्थना-पत्र के उत्तर में डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट मि० मूडी ने १५ अगस्त को लिखा था—"गवर्नमेण्ट ऐसा कोई कारण नहीं देखती, जिससे वह अपने उस निर्णय पर पुनः विचार करना उचित समझे, जिसके अनुसार पहले आपको पासपोर्ट देने से इन्कार किया जा चुका है।" ऐसी दशा में दो बातें सम्भव हो सकती हैं; या तो उत्तर देने में लोकल गवर्नमेण्ट से भूल हुई है, या डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने दूसरे प्रार्थना-पत्र को लोकल गवर्नमेण्ट के पास भेजा ही नहीं। जनता को यह जानने का अधिकार है कि इनमें से कौनसी बात ठीक है।

दूसरी बात यह है कि सहगल जी अफ़्रीका को किसी राजनैतिक मिशन के लिए नहीं जा रहे थे, जैसा कि उन्होने वचन भी दिया था। अफ़्रीका में 'चाँद' के असंख्य प्रेमी हैं। सहगल जी स्वामी भवानीदयाल जी के साथ वहाँ 'चाँद प्रेस, लिमिटेड' के हिस्से बेचने के लिए जाना चाहते थे, क्योंकि उन्हे अफ़्रीका-प्रवासी भारतीय भाइयों से बहुत-कुछ आशा थी। ऐसी दशा में भी उनको पासपोर्ट न देना यदि जनता में यह विश्वास उत्पन्न कर दे कि संस्था के कारोबार को कुचलने के लिए ऐसा किया गया है, तो कोई आश्चर्य नहीं।

अनुपम उदारता

पाठकों को याद होगा कि कुछ समय पूर्व बनारस की पुलिस द्वारा कॉङ्ग्रेस की कुछ स्वयंसेविकाओं पर अत्याचार हुए थे, जिनके कारण देश भर में तहलका मच गया था। गवर्नमेण्ट को अन्त में पुलिस के कारनामों की जाँच करनी पड़ी और जिन पुलिस वालो को अपराधी पाया गया, उन पर मुकदमा चल रहा है। जिस समय उक्त स्वयंसेविकाओं ने यह सुना कि उन सिपाहियों पर मुकदमा चलाया जायगा, तो उन्होंने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को इस आशय का पत्र लिख कर अपनी उदारता तथा विशाल हृदयता का परिचय दिया—

"चूँकि हम लोग महात्मा जी की अनुगामिनी हैं और इस शान्त राजनैतिक आन्दोलन में हम लोगों का किसी पुलिस के आदमी या सरकारी मुलाजिम से किसी प्रकार का व्यक्तिगत विद्वेष या उससे बदला लेने की भावना नहीं रखती हैं, इसलिए हम लोग यह नहीं चाहती हैं कि इस मामले के पीछे हम लोग अदालत में जाकर अपना वक्त बर्बाद करें। हमारा काम इतने से खतम हो गया। हम लोगों ने देश और यहाँ तक कि वर्तमान सरकार के एक मैजिस्ट्रेट तक को यह साबित करके बतला दिया कि हम लोगों ने पत्रों में जो बातें छपवाई थीं वे झूठ नहीं थीं। इसके अलावा हम लोग यह भी नहीं चाहती हैं कि हमारे भाइयों को विदेशी सरकार द्वारा सजा मिले। उन्होंने हमारे साथ जो व्यवहार किया है, उसके लिए हम उन्हे हृदय से क्षमा करती हैं।"

हमे आशा है कि इस पत्र को पढ़ कर उन सरकारी अफ़सरों की आँखें खुल जायँगी, जो अभी तक भारतीय ललनाओं की शक्ति का अन्दाज़ा नहीं लगा सके हैं।

मुसलमान और राष्ट्रीयता

पिछले कई वर्षों से मुसलमानों के कुछ नामधारी नेता राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में जिस दूषित मनोवृत्ति का परिचय दे रहे हैं, वह देश के लिए तो हानिकर सिद्ध हो ही रही है, साथ ही इस्लाम के नाम को भी कलङ्कित कर रही है। इस्लाम की शिक्षा प्रारम्भ में कुछ भी रही हो, परन्तु भारतीय मुसलमानों के आजकल के विचारों को देख कर उन पर दया आती है। जहाँ अन्य मुस्लिम राष्ट्र राष्ट्रीयता के रङ्ग में रँग रहे हैं, वहाँ भारतीय मुसलमान जातीय सङ्कीर्णता के भक्त बनते जा रहे हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि इस जातीय सङ्कीर्णता के प्रहारों का लक्ष्य है हिन्दू-समाज, परन्तु उन प्रहारों के पीछे जो रहस्य छिपे हैं, उनको जान कर बड़ी हँसी आती है। हिन्दुओं को कुचलने के लिए और एक बार फिर से औरङ्गज़ेबशाही स्थापित करने की धुन में मुसलमानों ने एक अपूर्व खोज कर ली है—कि हिन्दू तो मुसलमानों से किसी भी बात में नहीं मिलते-जुलते, परन्तु अङ्गरेज़ और वे सगे भाई हैं। उनके धर्म, उनके आचार-विचार, उनकी सभ्यता, उनकी संस्कृति आदि सब में बहुत-कुछ समानता है। इस खोज की रिपोर्ट पहले-पहल लन्दन के 'टाइम्स' पत्र में एक अवकाश-प्राप्त मुस्लिम सिविलियन ने प्रकाशित कराई थी, जिससे चर्चिल-पन्थी अङ्गरेज़ों की बाँछें खिल गई थीं। अब उस आविष्कार के अनुसार कार्य भी होने लगा है। इसकी पुष्टि में हम दो उदाहरण देना काफ़ी समझते हैं।

अभी कुछ दिन हुए मौलाना शौक़तअली ने कॉङ्ग्रेस की तत्कालीन डिक्टेटर श्रीमती सरोजिनी नायडू को युद्ध की भाषा में पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने कॉङ्ग्रेस के धरना देने वालों के विरुद्ध युद्ध करने की घोषणा की थी। पीछे मौलाना को सूझा कि स्वयं तो आप बीती हुई बहार हुए जा रहे हैं, अतः अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सहायता देने के लिए आपने एक अङ्गरेज़ महिला से विवाह कर लिया है। आप इस महिला को इङ्गलैण्ड से अपनी प्राइवेट सेक्रेटरी बना कर लाए थे। इस गठबन्धन से मौलाना को इतना बल प्राप्त हुआ है कि आप अब लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त करने के स्वप्न देख रहे हैं।

दूसरा उदाहरण है कलकत्ता कॉरपोरेशन के मेयर के चुनाव का। इस पद पर कॉङ्ग्रेस के उम्मेदवार डॉ० विधानचन्द्र राय फिर चुन लिए गए हैं। इस पर आपके प्रतिद्वन्द्वी मि० फ़ज़लुलहक़ हारने के बाद बहुत बिगड़े हैं, चूँकि कॉरपोरेशन के यूरोपियन सदस्यों ने आपको राय न देकर डॉ० राय को राय दी थी। आपने शीघ्र ही एक पत्र प्रकाशित करके उन सदस्यों को बता दिया कि उन्होंने कॉङ्ग्रेस के उम्मेदवार और एक हिन्दू को राय देकर बड़ा पाप कमाया है। और यह सब कुछ किया गया है यह मालूम रहते कि मि० फ़ज़लुलहक़ ने, बक़ौल उनके, राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स में यूरोपियनों के अधिकारों को सुरक्षित कराने का घोर प्रयत्न किया था। और कुछ नहीं तो, कम से कम इस घटना से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि राउण्डटेबिल के मुस्लिम सदस्य क्या मनोवृत्ति लेकर लन्दन गए थे।

इन सब बातों को देख कर ही अवध चीफ़कोर्ट के भूतपूर्व चीफ़ जज सर लुई स्टुअर्ट ने गत बकरीद के अवसर पर लन्दन की मस्जिद में एक बड़ा मज़ेदार भाषण दे डाला। आपने फ़रमाया कि मुसलमानों को पहले आपस में ऐक्य करना चाहिए और फिर ब्रिटिश राज्य की सहायता करनी चाहिए, क्योंकि मुसलमानों के लिए अपने पैरों पर खड़ा होना बड़ा कठिन होगा। हमें आशा है कि मुसलमान नवयुवक इन अनर्गल बातों पर ध्यान न देकर सच्ची राष्ट्रीयता के पक्षपाती बनेंगे और दिखा देंगे कि उन्हें अपने देश के कार्य-

सञ्चालन के लिए किसी विदेशी की आवश्यकता नहीं, चाहे वह एक मुसलमान ही क्यों न हो।

❀ ❀ ❀

अपूर्व साहस

सहयोगी 'अर्जुन' में निम्न-लिखित समाचार प्रकाशित हुआ है :—

"कूचा घासीराम में एक ४५ साल के वर की बारात आई थी। शादी एक १५ साल की लड़की से होनी थी। मगर शादी के बीच में ही फेरों के समय लड़की ने हाथ जोड़ कर वर साहब से कह दिया कि 'आप मेरे पिता के बराबर हैं' फलतः वर साहब चले गए। लड़की की शादी एक बनारस के युवक से हो गई।"

भारत के विभिन्न भागों में आए-दिन ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, जहाँ छोटी-छोटी बालिकाओं को उनकी इच्छा के विरुद्ध बुड्ढे वरों के साथ बाँध दिया जाता है। कहीं-कहीं तो बल-प्रयोग भी किया जाता है। इस वीरबाला ने ऐसी बहिनों के आगे एक अनुपम आदर्श उपस्थित किया है। वर का कार्य भी सराहनीय है। आशा है, 'बाबा' और 'पिता' के बराबर वर इस घटना से शिक्षा प्राप्त करेंगे।

❀ ❀ ❀

शाबास रत्नागिरि!

पाठकों को यह विदित होगा कि अधिक काल से नासिक के मन्दिरों में प्रवेश प्राप्त करने की आज्ञा न पाने के कारण वहाँ के अछूत सत्याग्रह कर रहे हैं। परन्तु फिर भी वहाँ के नामधारी ऊँचे हिन्दुओं को होश नहीं आया। यही कारण है कि आज आम्बेदकर जैसे व्यक्ति अछूतों के नेता बन कर मौलाना शौकतअली की दुम के पीछे लगे फिरते हैं और अछूतों को ऊँचे हिन्दुओं से अलग करने का उद्योग कर रहे हैं।

यह समाचार बड़े हर्ष के साथ पढ़ा जायगा कि कम से कम रत्नागिरि एक स्थान है, जहाँ छूत-छात का भेद-भाव बिलकुल नष्ट कर दिया गया है। वहाँ देशभक्त श्री० विनायकराव सावरकर के परिश्रम से एक 'पतित-पावन मन्दिर' की स्थापना हो गई है, जहाँ भङ्गियों और ब्राह्मणों ने हाल ही में सम्मिलित होकर पूजा की थी। उस दिन पुजारी का कार्य एक भङ्गी के बालक को दिया गया था और भङ्गी, चमार, ब्राह्मण सभी मिल कर वेद-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। यही नहीं, सबने एक पंक्ति में बैठ कर ही प्रसाद भी पाया। अब वहाँ पर अछूत लोग (?) सभाएँ करके पूरे जिले में इन बातों का प्रचार करने का विचार कर रहे हैं।

इन समाचारों को पढ़ कर कट्टर सनातनी हिन्दुओं के पेट में चूहे कूदने लगे हैं। हमें आशा है कि उनकी आवाज़ नक़्क़ारख़ाने में तूती की भाँति होगी और शीघ्र ही भारत का प्रत्येक नगर रत्नागिरि बन जायगा।

❀ ❀ ❀

भविष्यवाणी

आजकल भविष्य-वाक्यियों का बाज़ार गर्म है। व्यक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली भविष्यवाणी से भी अधिक महत्वपूर्ण आजकल मानी जाती है राजनैतिक भविष्यवाणी। संसार की आधुनिक दशा देख कर लोग व्याकुल हो गए हैं और स्वभावतः वे यह जानने के लिए उत्सुक हैं कि यह जो कुछ हो रहा है, वह कहाँ जाकर समाप्त होगा। यूरोप में स्पेन, आयर्लैण्ड, जर्मनी, इङ्गलैण्ड, रूस तथा एशिया में चीन, जापान, भारत तथा फ़िलिपाइन में जो कुछ हो रहा है,

उसके सम्बन्ध में अनेक भविष्यवाणी हुई हैं, परन्तु तिरुतानी के 'गाँधी जोतिष निलयम' के अध्यक्ष ने जो भविष्यवाणी की है, वह बड़ी मनोरञ्जक है। उनका कहना है—"२८ जून तक गवर्नमेण्ट तथा कॉङ्ग्रेस में सुलह हो जायगी और महात्मा गाँधी बिना किसी शर्त के जेल से मुक्त कर दिए जाएँगे। इस सुलह कराने में गवर्नमेण्ट के सहायकों का अधिक हाथ होगा। २८ जून के बाद दूसरा महा-युद्ध प्रारम्भ होगा, जो कुछ महीनों तक ही चलेगा और फिर सारे संसार में शान्ति स्थापित हो जायगी।"

अशान्ति के उपासक इस संसार में इतना शीघ्र शान्ति हो सकेगी, इसमें सन्देह है; परन्तु भविष्यवाणी सब कुछ कर सकती है।

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा

हमें बड़े दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि साहित्याचार्य पं० पद्मसिंह जी शर्मा का ७ अप्रैल को प्लेग से देहान्त हो गया। मृत्यु के समय पण्डित जी अपने ग्राम नगला नायक में प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों की देख-भाल कर रहे थे। लोगों को क्या पता था कि औरों को बचाने के प्रयत्न में आप स्वयं चल देंगे!

पण्डित जी हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा फ़ारसी के उद्भट विद्वान थे। आप लेखक, प्रचारक, सम्पादक, वक्ता, समालोचक आदि सभी रूपों मे हिन्दी तथा आर्य-जगत् में प्रसिद्ध थे। तुलनात्मक समालोचना लिखने में तो आप एक ही थे। आपके ग्रन्थ-रत्न 'सतसई-सञ्जीवन भाष्य', 'पद्म-पराग', 'गद्य-गौरव' आदि हिन्दी-साहित्य की अमर निधि हैं। सर्वप्रथम मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक आप ही को मिला था। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आप सभापति भी निर्वाचित हुए थे। अभी हाल में प्रयाग की हिन्दुस्तानी एकेडमी की ओर से 'हिन्दी और हिन्दुस्तानी' पर आपका एक बड़ा सारगर्भित तथा ओजस्वी भाषण हुआ था। इस प्रकार के सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति किसी भी साहित्य में विरले ही होते हैं।

हिन्दी-साहित्य को आपके निधन से जो क्षति पहुँची है, उसकी पूर्ति होना बहुत कठिन है। हमें आशा है, हिन्दी-साहित्य-सेवी तथा साहित्य-सम्मेलन पण्डित जी की स्मृति में कोई ऐसा कार्य करेंगे, जिससे उनकी कीर्ति अमर हो सके। हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह पण्डित जी की दिवङ्गत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके कुटुम्ब को धैर्य रखने की शक्ति दे।

❀ ❀ ❀

जर्मन राष्ट्रपति का निर्वाचन

जर्मन राष्ट्र ने फिर मार्शल हिन्डेनबुर्ग को ७ वर्ष के लिए अपना राष्ट्रपति निर्वाचित किया है। इस समाचार ने सारे संसार की चिन्ता को कुछ समय के लिए दूर कर दिया है; क्योंकि नाज़ी-नेता हेर हिटलर के राष्ट्रपति हो जाने से शीघ्र ही दूसरे विश्वव्यापी महायुद्ध की आशङ्का ही नहीं, बल्कि सम्भावना थी। परन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है। वह यह कि हेर हिटलर की पार्टी के समर्थकों की संख्या कुछ वर्षों में ही जिस प्रकार बढ़ी है, उससे यह सम्भावना है कि यदि कुछ दिनों में फिर किसी प्रकार निर्वाचन हो, तो उन्हें निर्वाचित होने के लिए पर्याप्त वोट मिल जायँगे। इस सम्भावना को मार्शल हिन्डेनबुर्ग की उस डिक्री से और भी बल प्राप्त होगा, जिसके अनुसार नाज़ी-गुप्त-सेना को जर्मनी में छिन्न-भिन्न कर दिया गया है। इस समय मार्शल के व्यक्तित्व ने, इसमें सन्देह नहीं, उन्हें विजयी बना दिया है,

परन्तु उनकी आयु अधिक होने के कारण यह हो सकता है कि वह अपने सात वर्ष पूरे कर सकें। हेर म्यूनिङ्ग से जर्मनी के वे नवयुवक खार खाए बैठे हैं, जो युद्ध-ऋण को बिलकुल ही उड़ा देना चाहते हैं और इस प्रकार अपने देश के गले से आर्थिक गुलामी की तौक हटा देना चाहते हैं। ऐसी दशा में चूहे की माँ कब तक खैर मनावेगी?

❀ ❀ ❀

स्वदेशी-सङ्घ

महामना मालवीय जी की अपील के फलस्वरूप अखिल भारतवर्षीय स्वदेशी-सङ्घ की शुभ स्थापना हो गई है। मालवीय जी इसके प्रधान हैं। सङ्घ का उद्देश्य है, स्वदेशी वस्तुओं के बनाने, विक्रय तथा प्रयोग का प्रचार करना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सङ्घ निम्न-लिखित उपायों को काम में लाएगा।

१—घर-घर जाकर स्त्री-पुरुषों में प्रचार करना।

२—स्वदेशी सम्बन्धी पुस्तकें, विज्ञापन आदि प्रकाशित करना तथा व्याख्यान, अजायबघर, प्रदर्शिनी, स्टोर्स आदि की योजना करना।

३—स्वदेशी कला-कौशल सम्बन्धी जाँच करना।

इस संस्था का सम्बन्ध किसी दल-विशेष से न होगा, ताकि सभी इसमें भाग ले सकें। सङ्घ भारतवर्ष के प्रत्येक नगर तथा ग्राम में अपनी शाखाएँ स्थापित करने का प्रयत्न कर रहा है।

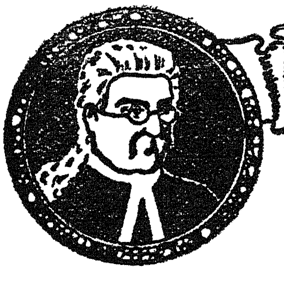
आजकल के आर्थिक सङ्कट के दिनों में सभी देशों में स्वदेशी-प्रचार का उद्योग हो रहा है। वहाँ की गवर्नमेण्ट विदेशी माल पर अधिक से अधिक कर लगा रही हैं। नागरिकों से देश के नाम पर अपीलें की जाती हैं। अभागे भारत में ही इन सब बातो की कमी थी। ऐसी दशा में इस सङ्घ की स्थापना का हम हृदय से स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि प्रत्येक देशवासी इसका सदस्य बन कर स्वदेशी-प्रचार-आन्दोलन को शक्तिशाली और सफल बनाएगा।

❀ ❀ ❀

अति

ऑर्डिनेन्स-राज्य ने अनहोनी बातें भी सम्भव कर दी हैं। व्यक्तियों और संस्थाओं की सर्व प्रकार की स्वतन्त्रता का ऑर्डिनेन्सों ने जिस प्रकार अपहरण किया है, वह किसी प्रकार भी वाञ्छनीय नहीं है। यदि ऑर्डिनेन्सों का राज्य राजनैतिक बातो तक ही सीमित रहता, तब भी एक बात थी, परन्तु आजकल तो 'सब धान बाईस पसेरी' की कहावत चरितार्थ हो रही है।

अभी कुछ दिनों पूर्व दिल्ली में कॉङ्ग्रेस करने का निश्चय हुआ था और महामना मालवीय जी उसके सभापति मनोनीत हुए थे। परन्तु गवर्नमेण्ट ने कॉङ्ग्रेस का किया जाना ग़ैर-कानूनी घोषित कर दिया, यद्यपि पूरी कॉङ्ग्रेस अभी तक ग़ैर-क़ानूनी संस्था क़रार नहीं दी गई है। यहीं तक जाकर गवर्नमेण्ट को सन्तोष न हुआ। प्रति वर्ष कॉङ्ग्रेस के अधिवेशन के साथ सामाजिक परिषद्, विद्यार्थी-परिषद् आदि संस्थाओं के अधिवेशन भी होते हैं। इस वर्ष भी इनकी घोषणा हुई थी, परन्तु गवर्नमेण्ट ने उनके मार्ग में भी रोड़े अटका दिए। आचार्य रामदेव, बी० ए० गुरुकुल काङ्गड़ी को, जो सामाजिक कॉन्फ्रेन्स के मनोनीत सभापति थे, गवर्नमेण्ट की ओर से यह सूचना मिली कि अधिवेशन मे पेश होने वाले समस्त प्रस्तावों को पहले गवर्नमेण्ट के पास भेजना होगा, ताकि वह उनमें काट-छाँट कर सके। इस अपमानजनक व्यवहार से खिन्न होकर अधिवेशन स्थगित कर दिया गया है। क्या ऑर्डिनेन्स राज्य का यह अर्थ है कि समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य करने की स्वतन्त्रता पर भी कुठाराघात किया जाय?



दिलचस्प मुक़दमे

रेलवे कर्मचारी की काली करतूतें

कुछ दिन हुए मुड़वारा के सब-जज ने एक महत्वपूर्ण मुक़दमे में अपना फ़ैसला दिया। यह मुक़दमा एक रेलवे कर्मचारी की ओर से एक अबला तथा उसके निकट सम्बन्धियों के प्रतिकूल चलाया गया था। उपरोक्त कर्मचारी ने प्रतिवादियों से २००) अपनी बहुमूल्य वस्तुओं के उपलक्ष में, जिन्हें वादी के अभियोगानुसार अन्य प्रतिवादियों के कहने पर, उसकी प्राचीन प्रेयसी लेकर फ़रार हो गई थी, दिलाए जाने का दावा किया था। मामले की पूरी छान-बीन करने के उपरान्त विद्वान न्यायाधीश ने वादी के दावे को अन्यायपूर्ण समझ, ख़ारिज कर दिया और प्रतिवादियों का ख़र्चा भुगतान करने का भी उसे आदेश दिया।

न्यायाधीश ने अपने फ़ैसले में बतलाया है कि यह मामला विशेष महत्व रखता है। इसमें एक स्त्री कामोन्मत्त होकर, शान्तिमय गार्हस्थ्य जीवन को तिलाञ्जलि देकर, अपने प्रेमी के साथ चल देती है। यह युवक, जो उसे पहिले जी-जान से प्यार करता था, धीरे-धीरे उसके प्रति उदासीन हो चलता है। परिणाम यह होता है कि इस युवती को वेश्यावृत्ति अङ्गीकार करनी पड़ती है। वह गर्भवती हो जाती है और अपनी कुशलता के लिए अपने हृदयहीन प्रेमी के घर से निकल खड़ी होती है। बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकती हुई वह अपने पति के पास पहुँचती है। उसके हृदय मे ग्लानि और लज्जा के साथ ही साथ स्वार्थमय संसार के कटु अनुभवों का सञ्चार होता है। वादी के स्थान से निकल जाने पर फिर उसे वहाँ टिकने की अनुमति नहीं दी जाती है। उसकी गर्भावस्था नित्य-प्रति प्रौढ़ होती चलती है। समय पाकर वह सन्तानवती होती है। अन्त में विवश होकर, वह अपने पति की शरण मे आती है। वह दयार्द्र होकर उसे पुनः अपना लेता है। यह सब बतलाने की आवश्यकता इसलिए है कि वादी अपनी काली करतूतों के दुखद परिणामों को ग़रीबों के मत्थे मढ़ना चाहता है।

विद्वान न्यायाधीश ने रेलवे के अधिकारियों का ध्यान इस शोचनीय परिस्थिति की ओर आकृष्ट करने के विचार से अपनी यह युक्ति-सङ्गत सम्मति प्रकट की है कि प्रतिवादिनी के बयानों से जान पड़ता है कि रेलवे "क्वार्टर" वेश्या-गृह बनाए जाते हैं। समय आ गया है कि रेलवे के अधिकारी अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर इस बात पर कटिबद्ध हो जावें कि अब उनके "क्वार्टर" दुराचार के दुर्ग न बने रहें।

—विश्वम्भरप्रसाद गौतम

❀

बीमा कम्पनी को धोखा

आजकल बीमा कम्पनियों की एजन्सी ले लेना, और लोगों को चकमा देकर फँसा लेना, ठाले-बैठे का रोज़गार-सा हो गया है। आए-दिन किसी न किसी नई बीमा कम्पनी का नाम सुन पड़ता है; और कई की शिकायतें भी सुनने में आती हैं। किन्तु जिस प्रकार एजण्ट लोग अपने कमीशन के लिए सीधे-सादे लोगों को फँसा लेते और उन्हें केवल फ़ायदे की बातें ही बतलाते हैं, बीच में आने वाली कठिनाइयों से उन्हें अपरिचित रखते और पीछे से परेशान होने का मौक़ा देते हैं, उसी प्रकार कई महाशय ऐसे भी हैं, जो बीमा कम्पनियों के नौकर होते हुए, उसी को धोखा देकर अपना मतलब बनाने की धुन में ऊट-पटाँग काम कर गुज़रते हैं। विगत सप्ताह अमृतसर में ऐसा ही एक मुकदमा चला था। एक बीमा-एजण्ट परमात्मासिंह और उसके भाई मक्खनसिंह पर कम्पनी ने धोखे का इलज़ाम लगाया था। परमात्मासिंह के घर का सामान आग लग जाने से जल गया था। बाद में उसने बीमा-एजण्ट के नाते अपने भाई के मकान का बीमा करा दिया, और १३ जुलाई को उसके घर में भी आग लग गई। फलतः कम्पनी पर ५३१ रुपए का दावा किया गया। किन्तु बीमा कम्पनी के प्रतिनिधि को, जोकि मौक़ा देखने के लिए भेजा गया था—वहाँ की कुछ वस्तुओं पर सन्देह हुआ। उसी वक्त दूसरे एक बीमा-

एजण्ट ने, जो अकस्मात् वहाँ आ पहुँचा था, माल पहचान कर बतलाया कि यह तो वही सामान है, जोकि परमात्मासिंह के घर में जला था। अर्थात् वही माल यहाँ रख कर कम्पनी से दुबारा रुपया वसूल करने के लिए यह चाल चली गई है। फलतः इस धोखेबाज़ी की बदौलत अदालत ने दोनों भाइयों को एक-एक दिन की क़ैद और पाँच-पाँच सौ रुपए जुर्माने की सज़ा दी।

❀

इङ्गलैण्ड में वर्ण विद्वेष

मेरीलेबोन की अदालत ने मि० ओलू नोले आयो डोले अलाक्या नामक अफ़्रिकन विद्यार्थी को लङ्कास्टर गेट के न्यूमैन्शन्स होटल में स्थान देने का वचन और आश्वासन दिए जाने पर भी ठहरने के लिए स्थान देने से इन्कार करने पर उपर्युक्त होटल के मैनेजर पर १२ पौण्ड की मय ख़र्चे के डिक्री दी है।

उपर्युक्त घटना से इस बात का पता चल सकता है कि इङ्गलैण्ड में काली जातियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाता है।

घटना संक्षेप मे इस प्रकार है। मि० अलाक्या, जो अबी ओकूटा, अपर गायना के नरेश के भतीजे तथा क़ानून के विद्यार्थी हैं, ने उपर्युक्त होटल में ठहरने के लिए पत्र द्वारा बातचीत की और उन्हें उत्तर में इस बात की सूचना भी दे दी गई कि उनके लिए स्थान सुरक्षित कर दिया गया है; किन्तु जैसे ही आप वहाँ पर गए त्योंही वहाँ के मैनेजर ने आपका काला रङ्ग देख कर आपको ठहराने से इन्कार कर दिया। इस पर आपने खिन्न होकर अदालत की शरण ली और होटल के मैनेजर पर ५५ पौण्ड की नालिश ठोंक दी।

प्रतिवादी की ओर से सफ़ाई में बतलाया गया कि यदि मि० अलाक्या अपने पत्र में पहिले से लिख देते कि वे अश्वेत जाति के हैं तो उनके लिए कमरे ही रिज़र्व न किए जाते। उन्होंने चूंकि अपने वर्ण के विषय में कुछ नहीं लिखा था, और उनका पत्र शुद्ध और मुहावरेदार अङ्गरेज़ी में लिखा था, इसलिए उन्हें एक गोरा आदमी समझ कर ठहरने के लिए स्थान नियत कर दिया गया था। होटल-मालिक की ओर से यह भी कहा गया कि यदि वह अपने होटल में कालों को ठहराने लगे, तो उनका होटल ही बैठ जाय।

❀

मिस मेयो की कुछ बहिनों के मुक़द्दमे

हाल की घटना है कि १६ वर्ष से कम अवस्था वाली दो लड़कियों ने, जोकि अक्सर एक रेलवे के पुल के नीचे अपने मित्रों से मिलने के लिए जमा हुआ करती थीं, एक मुक़दमे में १४ वर्ष से लेकर १७ वर्ष की अवस्था वाले ४ लड़कों के विरुद्ध गवाही दी है।

इन चिर-कुमारियों ने अपने बयान में एक स्थल पर लिखाया है कि एक बार तो उनको ऐसा मौका आ गया था कि उन लोगों को सारी रात दो लड़कों के साथ एक निकुञ्ज ही में काट देनी पड़ी थी।

इन लड़कियों में से एक ने, जिसकी अवस्था १४ वर्ष की है, आगे चल कर बतलाया कि "चूँकि मुझे घर जाने में डर लगता था, इसलिए इन लड़कों में से एक ने मुझसे कहा कि घर क्यों जाती हो, आओ, मेरे साथ यहीं पर क्यों नहीं रह जातीं! उसके ऐसा कहने पर मैं उसके साथ उस रात को ठहरने के लिए राज़ी हो गई, किन्तु जब हम लोग उसके कमरे के पास पहुँचे, तो हमने उसे भीतर से बन्द देखा। इस पर मैं और वह लड़का दोनों एक नसैनी से खिड़की पर चढ़ कर भीतर जा पहुँचे और वहाँ दोनों ने एक बिस्तर पर रात काटी। सवेरा होने पर मैं उसी राह से बिना किसी के जाने हुए घर से निकल गई।"

लड़के ने अपने बयान में लड़की को अपने साथ ले जाना ज़रूर स्वीकार किया है, किन्तु दूसरी बातों के विषय में कहा है कि वह सब झूठ हैं।

दूसरी लड़की, जिसकी अवस्था १५ साल की है, उसने अपने बयान में बतलाया है कि वह अक्सर काम न करके रात को घर से निकल भागा करती है। उसकी माँ ने उसकी इन हरकतों को रोकने के लिए यद्यपि दो-चार बार कोठरी में बाँध कर बन्द भी कर दिया था, परन्तु वह इतने पर भी किसी प्रकार अपने बन्धन छुड़ा कर निकल भागी थी।



विज्ञान तथा वैचित्र्य

अफ्रीका में स्त्री-विक्रय

अफ्रीका के आदि निवासियों में आजकल भी स्त्रियाँ अन्य बाज़ारू वस्तुओं की भाँति बेची जाती हैं। पहले नक़द सौदा हुआ करता था, परन्तु आजकल की दशा देख कर स्त्रियाँ उधार भी मिलने लगी हैं। मूल्य वहाँ पर रुपयों में नहीं, बल्कि भेड़-बकरी देकर चुकाया जाता है। नई और 'सेकण्डहैण्ड' पत्नियों के लिए दर अलग-अलग है। कुछ दिन हुए एक युवक ने एक 'सेकण्डहैण्ड' स्त्री ८ पशुओं के बदले में ख़रीदी थी और मूल्य चुकाने के लिए दो वर्ष का समय लिया था। जब तक पूरा मूल्य नहीं चुकाया जाता, तब तक जमाई को अपनी पुत्रियाँ ससुर के यहाँ बन्धक रखनी पड़ती हैं।

❀

साढ़े नौ मन का आदमी

लास एञ्जेल्स में हैरी नाम का एक आदमी है, जिसका वज़न ९॥ मन से भी ऊपर, ऊँचाई ६ फ़ुट १ इञ्च और पेट की गोलाई क़रीब ८ फ़ुट है। इससे अधिक मोटे और वज़नी आदमी की बात आज तक सुनी भी नहीं गई थी। इसके सम्बन्ध में कोलम्बस (ओहियो) का "करेण्ट साइन्स" पत्र लिखता है कि "हैरी रोहर की उम्र २३ वर्ष, लम्बाई ६ फ़ुट एक इञ्च और वज़न ७८७ पौण्ड है—यह आज तक तौला गया सबसे वज़नी आदमी है। यह बड़ा ही खुशमिज़ाज है और कभी किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाता, हाँ वह किसी पर गिर ही पड़े तो बात दूसरी है।" पत्र ने आगे इस असाधारण मोटेपन के कारणों पर विचार किया है और इस परिणाम पर पहुँचा है कि "भेजे के नीचे रहने वाली 'पिचुइटरी' नाम की गिल्टी बहुत कमज़ोर होने से इस आदमी के शरीर मे इतनी चरबी बढ़ी है और यह कितना भी कम खाय, जो कुछ खायगा चरबी ही बनता जायगा।" आज दुनिया में इस आदमी के जोड़ की एक मोटी स्त्री भी मौजूद है। वह है रिङ्गलिङ्ग सर्कस की मिस इमा व्हेल, जो वज़न में क़रीब पौने आठ मन है। पर इस मोटेमल ने हाल ही में कृषाङ्गी मिस मेरिडा केसबेल से, जिसका वज़न केवल ८९ पौण्ड (क़रीब १ मन) है, विवाह किया है। प्रेम की लीला विचित्र है।

❀

तैयार मकान को एक जगह से दूसरी जगह ले जाना

इस वैज्ञानिक युग में जो न हो जाय थोड़ा है। अब लोग बने-बनाए बड़े-बड़े मकानों को भी एक जगह से दूसरी जगह बड़ी आसानी से ले जाने लगे हैं। हाल में ही अमेरिका के शिकागो नगर में १८५ फीट लम्बे और ११५ फीट चौड़े गिरजे को अपने स्थान से २०० फीट दूर सरका दिया गया

है। और साथ ही उसे दो भागों में बाँट भी दिया गया है और दोनों भागो के बीच में ३० फीट चौड़ा एक स्थान भी जोड़ दिया गया है। इस गिरजे का वज़न १६,००० टन है। यह सड़क के एक किनारे से दूसरे किनारे पर ले जाया गया है। इस स्थान-परिवर्तन में गिरजे का ज़रा भी चूना या बालू नहीं गिरी। दरवाज़े और खिड़कियाँ भी ज्यों की त्यों साबित रहीं। गिरजे को हटाने की तैयारियाँ करने मे आठ मास लगे, परन्तु स्थान-परिवर्तन मे केवल आध घण्टे ही लगे। गिरजे को हटाने के समय सिर्फ चार जोड़े घोड़े और ५० से भी कम आदमियों की आवश्यकता हुई थी। इस काम में ५०,००० फीट बहुत मज़बूत तख़्ते, ४,००० जैक, ३,००० रोलर और ४,००० लोहे की रेलों की ज़रूरत पड़ी थी। बस, इन्हीं कई सामानो, आठ घोड़े और ५० आदमियो ने एक भव्य प्रासाद को जैसे का तैसा एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर पहुँचा दिया।

❀

खेत की रक्षा करने वाला बिजली का पुतला

पोलैण्ड के एक किसान ने अपने खेत की रखवाली का एक बड़ा ही सुन्दर तरीका निकाला है। उसने अपने खेतों मे आदमी की मूर्तियाँ खड़ी कर दी है, और उन्हे 'ओवरकोट' पहना दिया है, जिससे दूर से वे बिल्कुल मनुष्य के समान मालूम पड़ते हैं। कोट के नीचे एक 'लाउड स्पीकर' लगा रहता है, जो बाहर से देख नहीं पड़ता। उस किसान के घर में रेडियो लगा हुआ है, जिससे इन पुतलों का सम्बन्ध है। अतः उन पुतलो के भीतर से लाउड स्पीकर के ज़रिए बराबर गम्भीर शब्द होते रहते हैं, जिससे कोई भी जानवर खेतो में डर के मारे घुसने नहीं पाता और इस प्रकार उन खेतो की रखवाली इन पुतलों द्वारा मज़े मे हुआ करती है।

❀

धूल-भक्षक गाड़ी

न्यूयार्क (अमेरिका) में एक नई मोटर-गाड़ी चली है। साधारण मोटर गाड़ियाँ रास्ते में जब चलती हैं, तब उनसे धूल उड़ती है, पर इस मोटर-गाड़ी से धूल बिलकुल नही उड़ती। यह गाड़ी उस धूल को अपने भीतर भर लेती है। धूल गाड़ी के भीतर रह कर जब साफ हो जाती है, तब वापिस उसे छोड़ देती है। जिससे यात्री लोगों को कष्ट नही होता।

❀

चलता हुआ रास्ता

यह आविष्कार अमेरिका में हुआ है। वहाँ के लोगों को चलने के लिए कष्ट नहीं उठाना पड़ता, उनके घर के पास ही से फुट-पाथ जाता है। जाने वाले चार फुट-पाथ रहते हैं। पहला पाथ नही चलता। दूसरा तीन मील की चाल से चलता है। मान लीजिए आपको कही जाना है, तो पहले आप जो पाथ नहीं चलता उस पर खड़े हो जाइए, फिर धीरे से ३ मील की चाल वाले पाथ पर जाइए। यदि आपको जल्दी जाना हो, तो आप छः मील चलने वाले पाथ पर चले जाइए। यदि इससे भी तेज़ जाना हो तो आप ९ मील वाले पाथ पर चले जाइए। वहाँ बैठने के लिए कुर्सी आदि भी रहती हैं।

इन फुट-पाथों पर होकर जाने में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता और न टक्कर लगने का ही डर रहता है।



मणि गोस्वामी—(नाटक) लेखक, श्रीयुत कृपानाथ मिश्र, एम० ए०, प्रकाशक पुस्तक-भण्डार, लहेरिया सराय; आकार क्राउन चार पेजी, पृष्ठ-संख्या ५३, छपाई साधारण और मूल्य ।॥)

यह एक सामाजिक नाटक है, जिसमें वृद्ध-विवाह का दुष्परिणाम दिखाया गया है; परन्तु नाट्यकला की दृष्टि से पुस्तक किसी काम की नहीं है। लेखक महोदय ने अपने नाट्यकला-ज्ञान की डींग तो ख़ूब मारी है, इस क्षेत्र में काम करने वालों को कोसने में भी कोई त्रुटि नहीं की है। 'सभों' के लिए, विद्वानों के लिए और नाट्यकारों के लिए अलग-अलग 'परिचय' भी लिखा है। इन परिचयों में नाट्यकला के सम्बन्ध में बहुत सी ज्ञातव्य बातों का भी समावेश है, परन्तु दुःख है कि अपने दिए उपदेशों के अनुसार नाटक लिखने में आप सर्वथा असमर्थ सिद्ध हुए हैं। पात्रों की भाषा में अस्वाभाविकता और अशुद्धियों की भरमार है। कितने वाक्य तो, मालूम होता है, बङ्गला से अनुवाद करके रख दिए हैं। इसका कारण शायद यह है कि हिन्दी आपकी मातृभाषा नहीं है और न शुद्ध हिन्दी लिखना सीखने की आपने चेष्टा ही की है। परन्तु सन्तोष की बात इतनी ही है कि यह पुस्तक आपने अपनी सहधर्मिणी जी के लिए और उन्हीं के अनुरोध से लिखी है। आशा है, वे इसे पढ़ कर प्रसन्न हुई होंगी ?

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

हमारे सहयोगी—इस बीच में कई नए सहयोगियों ने जन्म लिया है। इनमें से विशेष उल्लेखनीय है 'जागरण', जो बनारस के पुस्तक-मन्दिर से श्री० शिवपूजनसहाय के सम्पादकत्व में पाक्षिक रूप में निकला है। इसका वार्षिक मूल्य है ४), पत्र शुद्ध साहित्यिक है। शिवपूजनसहाय जी की कुशल लेखनी से निकले हुए चुटकुले बड़े सजीव और सुन्दर होते हैं। 'स्वाध्याय-सामग्री' एक अच्छा स्तम्भ है। पत्र अङ्गरेज़ी 'पञ्च' के ढङ्ग पर निकल रहा है। निकलते ही इसने एक अखाड़ा भी खोल दिया है, जिसमें प्रेमचन्द जी और 'भारत-सम्पादक' वाजपेयी जी की कुश्तियाँ हो चुकी हैं। उधर पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी अपनी 'टीम' तैयार कर रहे हैं।

जात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर ने श्री० सन्तराम, बी० ए० के सम्पादकत्व में 'युगान्तर' नामक मासिक पत्र निकाला है, जिसका वार्षिक मूल्य २) है। सामाजिक सुधार-सम्बन्धी इसमें अनेक लेख हैं। आशा है, इससे सामाजिक आन्दोलन की एक बड़ी कमी दूर होगी। दूसरी ओर जबलपुर से श्री० वियोगीहरि के सम्पादकत्व में 'पतित बन्धु' पाक्षिक निकलने लगा है, जिसका मूल्य ३) वार्षिक है। अछूतों की समस्या के विषय में इसमें बड़ी उपादेय सामग्री रहती है।

सिनेमा और रङ्गभूमि सम्बन्धी कई पत्रों का जन्म भी पिछले कुछ महीनों में हुआ है; 'रङ्गमञ्च' का कलकत्ते में, 'रङ्गभूमि' का देहली में, 'मञ्च' का इन्दौर में। कलकत्ते से निकलने वाला अङ्गरेज़ी

का 'Filmland' भी हमें मिला है। जितनी अच्छी सामग्री इसमें रहती है, उतनी हिन्दी के उपर्युक्त पत्रों में से किसी में भी नहीं रहती। 'Filmland' का Jubilee Number अच्छी चीज़ है।

'त्रिवेणी' के लुप्त हो जाने का अन्देशा था, परन्तु वह 'विदुषी-अङ्क' के रूप में आख़िर निकल ही आई। यह अङ्क क्या निकला, इसमें पुरुषों और बालकों के स्तम्भो का भी ख़ून हो गया! शायद इसीलिए एक सम्पादक भी ग़ायब हैं। रहे-सहे सम्पादक-सम्पादिकाओं को ही मैदान मे फिर आने पर बधाई।

कलकत्ते के 'चिकित्सा-चमत्कार' ने पाँचवें वर्ष में पदार्पण किया है। होमियोपैथी का अच्छा पत्र है। दिल्ली का 'Children's News' भी बहुत उन्नति कर गया है।

❀ ❀ ❀

निम्न-लिखित की समालोचना सुविधानुसार हो जायगी :—

१—वीरभूमि चित्तौड़गढ़

२—'प्रजापति' झाँसी

प्राप्ति-स्वीकृति

(१) गृहस्थधर्म (उर्दू)—लेखक तत्वदर्शी जी महाराज। मूल्य १)।

(२) रँगाई का सरल शिक्षक—लेखक चन्द्रगुप्त आर्य, जयपुर प्रिन्टिङ्ग वर्क्स, जयपुर। मूल्य ॥=)।

(३) चित्रवंश-निर्णय—लेखक मुन्शी कामता-प्रसाद श्रीवास्तव, काली-महल, बनारस। मूल्य ॥)

(४) १९८९ का भविष्य-फल—लेखक पं० भोलाराम शर्मा, प्रकाश बा० कन्हैयालाल बुकसेलर जयपुर। मूल्य ।=)

(५) भगवान बुद्ध की शिक्षा—लेखक श्री० देवमित्र धर्मपाल, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस। मूल्य ≡)

(६) सिद्ध योगावलि—लेखक मुन्शी दुली-चन्द जैन, वकील, सवाई माधोपुर। मूल्य १।)

(७) सौरस-चिकित्सा—लेखक श्री० तत्व-दर्शी जी महाराज। मूल्य ।)

(८) श्यामायन—लेखक मुन्शी भोलानाथ जयपुर।

(९) जाग्रत नारियाँ—ले० पं० सूर्यनारा-यण व्यास, शारदा-सदन, सतीगेट उज्जैन; मूल्य ॥)

(१०) प्रेम-रस वाटिका—ले० बाबू बाँके-बिहारीलाल, ५ गङ्गाप्रसाद रोड, लखनऊ; मूल्य ॥)

(११) हमारी शिक्षा-पद्धति—ले० पं० कैलाश-चन्द्र जैन, जैनमित्र-मण्डल, धरमपुरा, देहलीमू० =)

(१२) संक्षिप्त क़ानून संग्रह—प्रकाशक श्री० भैंरोदान जेठमल सेठिया, बीकानेर; मूल्य ।=)

(१३) भ्रूण हत्याओं की चिनगारियाँ—ले० सैयद कासिमअली विशारद—प्र० डॉक्टर बिहारीलाल बालाघाट, सी० पी०, मुफ्त।

(१४) उद्भिज का आहार—ले० श्री० एन० के० चटर्जी, प्र० विज्ञान-परिषद, प्रयाग; मूल्य ।)

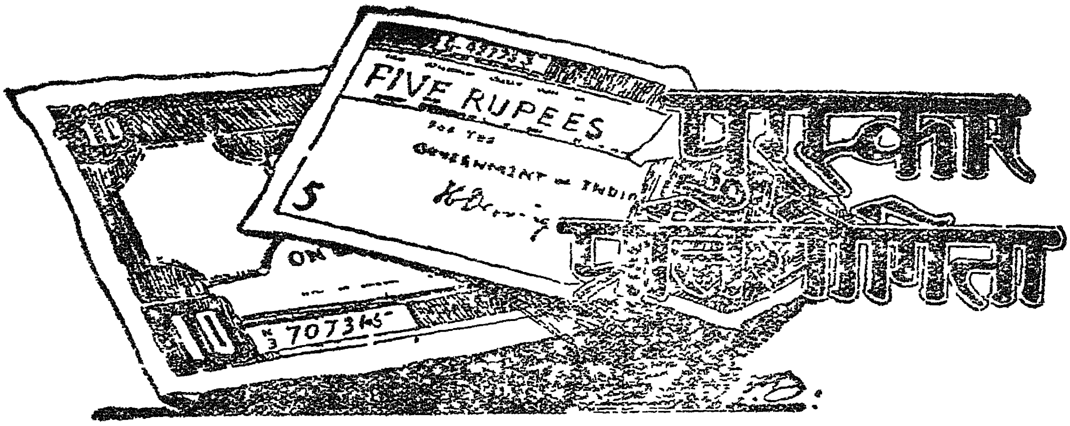
(१५) सुमनमाला—संग्रहकर्त्ता पं० गोपाल-प्रसाद शर्मा, पुरुषोत्तम प्रिंटिङ्ग प्रेस, मथुरा १॥)

(१६) हिन्दी नॉवेल—(मासिक पत्र) मामूरगञ्ज, बनारस, वार्षिक मूल्य ३)

(१७) सुखसञ्चारक कम्पनी और डॉक्टर बर्मन के पञ्चाङ्ग।

(१८) Commercial India Magazine.

(१९) फ़्लाइ टाइ टूर्निके—कौशल ट्रेडिङ्ग कम्पनी इलाहाबाद ने हमारे पास 'फ़्लाइ-टाइ' नामक टूर्निके भेजा है। इसे बड़ी आसानी से हाथ-पैर में बाँधा जा सकता है। रक्तस्राव, साँप के काटने आदि के अवसर पर इसका प्रयोग किया जाता है। डॉक्टरों, स्काउटों फर्स्टएड वालों के काम की चीज़ है। मूल्य १॥)



इस मास की पहेली

१		द	न	पा	
२		र	णा	ग	
३		लि	दा		
४		भा			
५		म			
६		य	नि		
७		व	न	सु	
८		या	नि	धा	

नियम :—

(१) यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। कूपन पर ग्राहकों को ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिए। प्रत्येक ग्राहक जितने चाहे उत्तर भेज सकता है। एक उत्तर तो निःशुल्क होगा, परन्तु उसके बाद प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना आवश्यक होगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें पहले उत्तर के लिए ।।।) का टिकट तथा बाद के प्रत्येक उत्तर के लिए ।) का टिकट भेजना चाहिए।

(२) इस चित्र-पहेली में आठ कोष्ठक हैं। प्रत्येक कोष्ठक में एक शब्द बनता है, जिसके प्रथम और अन्तिम अक्षर के स्थान पर पाठकों को दिए गए चित्रों के प्रथम अक्षर प्रयुक्त करने हैं। उदाहरण के लिए, पहले कोष्ठक में पाँच ख़ाने हैं। प्रथम 'मन्दिर' का चित्र है, अतएव उसका अक्षर 'म' हुआ। फिर तीन अक्षर दिए हुए हैं। अन्तिम ख़ाने में 'लकड़हारा' चित्र है, अतएव उसका अक्षर 'ल' हुआ। इस प्रकार सब अक्षरों को जोड़ने से 'मदनपाल' शब्द बना, जो ठीक उत्तर है। उत्तरों को कूपन के कोष्ठकों में नम्बरवार लिखिए। पाठकों की सुविधा के लिए हम उन शब्दों की सूची यहाँ देते हैं, जिनमें से इन कोष्ठकों के शब्द लिए गए हैं :—

मदनपाल, शरणागत, कालिदास, प्रभाव, अभाव, मायानिधान, बलिदान, जीवन-सुख, शरणागता, प्रभात, दयानिधान, समर, पवनसुत, तोयनिधि, अमर, पयनिधि।

(३) उत्तर हमारे पास ता० ५ जून तक निम्नलिखित पते पर आ जाने चाहिए :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग, चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद।

हमने इस बार इतना समय इसलिए दिया है कि किसी पाठक को शिकायत न रहे। इस तारीख़ के बाद आए हुए उत्तरों पर कोई विचार न किया जायगा, चाहे वे ब्रह्मा या आसाम के ही क्यों न हों। याद रखिए, इस पहेली का उत्तर जौलाई के अङ्क में प्रकाशित होगा।

कूपन

१	मदनपाल	२	
३		४	
५		६	
७		८	

ग्राहक-संख्या ——————

नाम ——————

पता ——————

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

(४) साथ में कोई पत्र न भेजिए। उत्तर सादा काग़ज़ या पोस्टकार्ड पर भी भेजा जा सकता है। कृपया उत्तर की नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या संशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जायगा।

(५) जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जायगा, उस ग्राहक को २५) नकद या ५ वर्ष के लिए 'चाँद' मुफ़्त दिया जायगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उनको 'चाँद' दो वर्ष तक मुफ़्त। यदि कोई उत्तर सही न होगा, तो सब से कम अशुद्धियों वाले ग्राहक को 'चाँद' तीन वर्ष तक मुफ़्त दिया जायगा। अ-ग्राहक को 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ़्त। निर्णय का अधिकार सम्पादक को है।

(६) चाँद प्रेस, लिमिटेड के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं है।

❀

पिछली पहेली का परिणाम

निम्नलिखित पाठकों का उत्तर सही था। उन्हें 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ़्त भेजा जायगा।

१—श्री० आदित्यनारायण तेवारी, टेढ़ा
२—श्री० मूलचन्द शर्मा, देहली
३—मास्टर जयरामदास, देहली
४—श्री० लक्ष्मणप्रसाद, दतिआवाँ (पटना)

सही उत्तर

म	ह	त्व	□	ग्या	र	ह
म	ठ	□	म	□	ज	व
ता	□	क	न	वि	□	न
□	म	हा	भा	र	त	□
भ	□	र	व	थ	□	श
र	त	□	न	□	न	र
त	ट	स्थ	□	तो	य	द

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्रो० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

मुतहर्रिम मौ० शौकतअली को अपने राम अब तक शरीर और अक्ल के ही साँड़ समझते थे, मगर वल्लाह, आप तकदीर के भी साँड़ निकले। बुढ़ौती में आपाद-मस्तक गोरी बीबी! कसम ख़ुदा की, जब से हिज़ होलीनेस ने यह शुभ सम्वाद सुना है, तब से बराबर मुँह मे पानी भर रहा है।

❀

कहावत है—"नारि पटहुँआ कूपजल और बरगद की छाँह, गरमी में सरदी करैं, सरदी गरमी माँह!" सो जनाब, मौलाना के जीवन की ये आख़िरी गरमियाँ-सरदियाँ आनन्द से बीतेंगी। अब की मई के महीने में तोंद का पसीना तोंद में ही रहेगा। घर का माल बाहर जाने से रहा। अरे वाह रे मौलाना की दूरन्देशी!

❀

मौलाना बूढ़े हो चले हैं। शीघ्र ही क़ब्र की तनहाई और क़यामत के इन्तज़ार का मुकाबला है। ऐसी हालत में एक साथिनी की ज़रूरत भला कौन ज़ी-अक्ल महसूस न करता होगा। एक बेचारा मुसलमान शायर तो क़ब्र में जाते ही अल्लाहताला से प्रार्थना करने लगा था :—

या .ख़ुदा जन्नत से किसी हूर को भेज,
मेरे मौला, मुझे आदत नहीं तनहाई की!

❀

मगर मौलाना चूँकि, 'सेल्फ़मेड मैन' हैं, आबकारी की इन्स्पेक्टरी से उछल कर लीडरी तक पहुँच चुके हैं, इसलिए उन्होंने क़ब्र की तनहाई की दवा भी अल्लाह मियाँ से तलब न करके ख़ुद ही कर ली। मौलाना के लिए एक हूर बज़रिए पार्सल क़ब्र तक भेजने की तवालत से अल्लाह मियाँ बच गए, यह उनकी ख़ुशक़िस्मती है।

❀

सुनते हैं, मौलाना के फ़रज़न्द अरजमन्द इस शादी से प्रसन्न नहीं हैं। भई, आजकल के लड़के ऐसे ही नालायक़ होते हैं। राजा ययाति के लायक़ लड़के ने अपने बूढ़े पिता को अपनी जवानी सौंप दी और एक आज के लड़के हैं, जो बूढ़े पिता के विवाह का विरोध करते हैं!

❀

भई, अपने राम तो मौलाना की शादी के पूरे समर्थक हैं। क्योंकि आपने एक ही ढेले में दो शिकार मारे हैं। बुढ़ौती में गोरी अर्द्धाङ्गिनी के लुत्फ़ उठाने के साथ ही एक ईसाइन को मुसल-मानिन बनाकर आपने कुफ़्र का भी एक रोआँ उखाड़ डाला है। चलो, भागे भूत की लँगोटी ही सही!

❀

इस शादी के बाद इङ्गलैण्ड वालों के साथ मौलाना का सम्बन्ध भी मधुर से मधुरतर हो जायगा। कहावत है कि "सारी ख़ुदाई एक तरफ़, जोरू के भाई एक तरफ़!" वे भी अपने मोटे रिश्तेदार की भलाई के लिए अवश्य ही कुछ करेंगे। आश्चर्य नहीं कि उत्तर भारत के भावी मुस्लिम राज्य को भी इस नए सम्बन्ध से काफ़ी मदद मिल जाय।

❀

और कुछ न सही, गत राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर मौलाना ने भारत के अल्प-संख्यक गोरों की जो तरफ़दारी की थी, उसकी मज़दूरी उन्हें काफ़ी मिल गई। दूल्हिन इङ्गलैण्ड ने उन्हें

दी ही, अब दहेज़ में पृथक् निर्वाचन मिल जाय तो बस अङ्गरेज़ों की सआदतमन्दी भी निहाल हो जाय।

❀

मगर कलकत्ते के गोरों ने मियाँ फ़ज़लुलहक को सरासर धोका दिया। गत राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर मियाँ साहब ने उनकी जो मदद की थी, उसके बदले में उन्हें एक गोरी देना तो दूर रहा, बेचारे के 'घोड़ी' (मेयर) होने में उन्होंने कोई सहायता न दी और सारा वोट डॉक्टर विधानचन्द्र राय को दे दिया!

❀

हत्तेरी एहसान-फ़रोशी की! मियाँ साहब ने गोरों की बहबूदी के लिए वहाँ खाँस-खाँस कर लेक्चर दिया था, प्राइवेट कॉन्फ्रेन्सों में आधी-आधी रात तक फिसिर-फिसिर किया था और जब 'मेयरशिप' के लिए वोट देने का अवसर आया तो कमबख़्तों ने साफ़ अँगूठा दिखा दिया। तुलसी बाबा ने ठीक ही लिखा है कि—

सरबस खाइ भोग करि नाना।
समर माँझ भा दुर्लभ प्राना॥

❀

मगर असल बात तो यह है कि—'करम कमण्डलु कर लिए, तुलसी जहँ लगि जाय। सागर सरिता कूप-जल, बूँद न अधिक समाय!' मियाँ साहब को इसी बात पर सब्र कर लेना चाहिए और फ़ौरन् दूसरी साधना आरम्भ कर देनी चाहिए। आख़िरश 'कबहुँ तो दीनदयाल के सबद पड़ेंगे कान!' एक न एक दिन गोरे प्रसन्न होकर मियाँ जी को मेयर बना ही देंगे।

❀

कॉङ्ग्रेस वालों ने तो किसी तरह मूँड़ फुड़वा-फुड़वा कर दिल्ली के घण्टाघर के पास अपना वार्षिक अधिवेशन कर डाला, परन्तु बेचारी सोशल कॉन्फ्रेन्स टापती ही रह गई। वर्त्तमान समय की बौखलाई हुई सरकार ने भी 'मियाँ मिले नहीं तो बीबी को ही नोच डाला!'

❀

भई, अल्लाहताला के फ़ज़ल से जब गोरी सरकार यहाँ मौजूद है तो भारतवासियों को न तो राजनीतिक कॉङ्ग्रेस की ज़रूरत है और न सामाजिक या धार्मिक कॉन्फ्रेन्स की। बस, सारा काम उसकी मरज़ी के अनुसार होना चाहिए।

❀

अगर आपको अपने लल्ला का मुण्डन संस्कार कराना हो, तो सरकार से पूछ लीजिए, लल्ला के विवाह में दहेज़ लेना हो तो सरकार से पूछ लीजिए। अपने राम ने तो निश्चय किया है कि सरकार से पूछे बिना शौच के लिए लोटा भी नहीं उठाएँगे। भाँग-बूटी छानना तो दूर रहा।

❀

फलतः सोशल कॉन्फ्रेन्स के लिए सरकार की यह आज्ञा कि अपने प्रस्तावों की कॉपी पहले हमारे पास भेजो और उसमें हम काट-छाँट कर दें तो उसे पेश और पास कराओ, वाजिब ही थी।

❀

हमें विश्वास है कि सरकार की इस नीति से सोशल कॉन्फ्रेन्स वाले अवश्य ही राजभक्त हो गए होंगे और शीघ्र ही अपने बाल-बच्चों का सामाजिक और धार्मिक भविष्य सरकार को सौंप देंगे। ऐसी सर्व-गुणागरी नौकरशाही सरकार के रहते आवश्यकता ही क्या है, सोशल रिफ़ार्म या सामाजिक सुधार आदि की?

बातचीत

गत मार्च तथा अप्रैल मास में हमें निम्नलिखित नए ग्राहकों के चन्दे मिले हैं। ग्राहकों को चाहिए कि अपना ग्राहक नम्बर नोट कर ले तथा कार्यालय को पत्र भेजते समय अपना नम्बर लिखा करें, ताकि उनके पत्रों की उचित कार्यवाही की जा सके।

ग्राहक-नं०	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
३०१९८	मेसर्स धनराज लाभचन्द चोड़िया जेतारन मारवाड़	६॥)
३०१९९	पं० बी० एन० शुक्ल, अहियापूर, इलाहाबाद	६॥)
३०२००	श्री० रामनारायन मन्त्री, पुष्कर (अजमेर)	६॥)
३ २०१	श्री लाइब्रेरियन, सरस्वती पुस्तकालय, भागलपूर	६॥)
३.२०२	मेसर्स नन्कूराम रामजतनराम, गढ़वा (पलामू) ...	६॥)
३०२०३	मेसर्स जमुनाधर ओङ्कारमल, ठँगवी (ब्रह्मा)	"
३०२०४	श्री० केदारनाथ फिटकिरी वाला, जमालपुर	"
३.२०५	श्री० गोपीचन्द मण्डल, दनकौर बुलन्द-शहर	१२॥)
३०२०६	श्री० वीरेन्द्रसिंह टण्डन, बम्बई ...	३॥)
३०२०७	मुहम्मद सिद्दीक़ साहब, इलाहाबाद सिटी	३।)
३०२०८	श्रीयुत हरिश्चन्द्र जैन, लखनऊ ...	६॥)
३०२०९	श्री० दुर्गादास ज़िलेदार शेखूपुरा ...	"
३०२१०	श्री० शिवेश्वरप्रसाद सिंह, अलीनगर पाली (गया)	"
३०२११	श्री० नन्हूराम, सिहोरा रोड ...	"
३०२१२	श्री० लाजूराम तिवारी, सीकर (शेखावटी)	३॥)
३०२१४	श्री० भैयालाल नेमा, बगसपुर (होशङ्गाबाद)	६॥)
३.२१५	श्री० गङ्गासरन, आरा ...	३॥)
३०२१६	श्री० रावत मोतीसिंह कृष्णकुमार चन्देल, माजरा (देहरादून) ...	६॥)

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
३०२१७	श्री० वासुदेव, बग्धारा (लखनऊ) ...	३।)
३०२१८	श्री० शारदाप्रसाद, जमशेदपूर ...	६॥)
३०२१९	मेसर्स बालानन्द गोमतीप्रसाद, कन्नौज	३)
३०२२०	श्री० मुन्शीराम, गुलियान बाज़ार देहली	७॥)
३०२२१	लाइब्रेरियन एफ़ पी० लाइब्रेरी, सहारनपूर	६॥)
३०२२२	श्री० शिव० डी० सिंह जैन, पहारगञ्ज, देहली	३॥)
३०२२६	श्री० लालबिहारी, सूवा फ़ीजी ...	४।-)
३०२२७	आर० यस० यल० राजबन्सीलाल, जालन्धर	६॥)
३०२२८	श्री० मोतीलाल, हिजली डिटेन्सन कैम्प, खरगपूर	६॥)
३०२२९	मेसर्स पन्नालाल बालमुकुन्द सारस्वत, दीनाजपूर	३॥)
३०२३१	श्री० केदारनाथ प्रसाद, छपरा ...	६।)
३०२३२	सन्तोषकुमार शर्मा, विन्दकी	६॥)
३०२३३	मेसर्स रामानन्द जगन्नाथ, देवराजपूर	६॥)
३०२३४	मैनेजर महोदय गुप्त-विद्या प्रचारक आश्रम लाहौर	६॥)
३.२३५	श्री० भगवतीप्रसाद मिरजनहाट	"
३०२३६	श्री० कृष्णदत्त शर्मा, बेवार, हमीरपूर	"
३.२३७	श्रीमती शान्तादेवी गुजरात, रावलपिण्डी	"
३ २३८	मेसर्स गुरवचनसिंह एण्ड सन्स स्वेबो बर्मा	"
३ २३९	श्री० मूलराज सोलङ्की, ऐट (गालौन)	"
३०२४०	मैनेजर सार्वजनिक वाचनालय, मिलसर (ग्वालियर)	[illegible]
३०२४१	महाशय छोटेलाल गुप्त, बाँसी, बस्ती	[illegible]
३०२४२	श्री० श्रीनिवास मोदी, राँची ...	"
३०२४३	स्वामी चैनदास, लाडनूँ (मारवाड़)	"

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
३०२४४	मेसर्स चिम्मनलाल वेदीलाल, अहमदाबाद	६॥)
३०२४५	श्री० नर्मदेश्वर पाण्डे, फेफना, बलिया	३॥)
३०२४६	सेक्रेटरी श्री० समोह पुस्तकालय, चौमू (जयपुर)	,,
३०२४७	मेसर्स पन्नालाल मथुरालाल सिरोञ्ज	,,
३०२४८	सेक्रेटरी महावीर लाइब्रेरी, हाटोद (होलकर स्टेट)	,,
३०२४९	श्री० रामगोपाल जी मोरारका, कराँची	६॥)
३०२५०	श्रीमती मफिली खातून साहिबा, रीवाँ	,,
३०२५१	श्री० गङ्गाराम भसाली, विश्वनाथघाट (आसाम)	,,
३०२५२	हेडमास्टर, जमुई एच० ई० स्कूल, जमुई (मुङ्गेर)	,,
३०२५३	श्री० धर्मपत्नी बा० परमानन्द जी अमगाँव (जबलपूर)	,,
३ २५४	पुरुषोत्तमलाल अग्रवाला, मायडला	३॥)
३०२५५	श्री० लक्ष्मीचन्द अग्रवाल, सिरोञ्ज	६॥)
३०२५६	श्री० जे० बी० मजूमदार बदरपूर आसाम	,,
३०२५८	श्री० धर्मपाल, लाहौर ...	३)
३-२५९	मेसर्स लक्ष्मीनारायण हीरालाल नाकाचारी (जोरहाट) ...	६॥)
३०२६०	पं० देवदत्त शर्मा अरविया, बुलन्दशहर	,,
३०२६१	श्री० इच्छाराम, दुवरिया (होशङ्गाबाद)	,,
३०२६२	ऑनरेरी सेक्रेटरी, आर्य समाज, नमतू (बर्मा)	,,
३०२६३	श्री० जिनेश्वरदास जैन, मेरठ ...	,,
३०२६४	श्रीमती सरलादेवी, उन्नाव ...	३)
३०२६५	मेसर्स अमरनाथ प्रेमनाथ, झरिया	६॥)
३ २६६	मेसर्स मदनलाल नन्दगोपाल, कलकत्ता	,,
३०२६७	श्रीमती कस्तूरी देवी, लश्कर ग्वालियर	,,
३०२६८	मिसेज़ मदनगोपाल माथुर, हिन्डौन (जयपुर)	,,
३०२६९	श्री० जैमाला देवी जैन, धामपुर ...	६॥)
३०२७०	श्री० मदनमोहन दास रईस, गोरखपूर	,,
३०२७१	श्री० बैजनाथ दीक्षित, कानपूर ...	३॥)
३०२७३	श्री० राधाकृष्ण गुप्त, सिवान कलाँ, (बलिया)	३॥)
३०२७४	श्री० शेषनाथ शर्मा, जाञ्जगीर ..	,,
३०२७५	श्री० चैतन्यस्वरूप गुप्त, मुरादाबाद	६)
३०२७६	श्री० गणेशलाल शर्मा, जलगाँव ..	६॥)
३०२७७	श्री० मेसर्स जमनादास दयाभाई, बोरबद	,,
३०१७८	कुँवर माधोसिंह परहारा (एटा) ..	,,
३०२७९	प० श्यामसुन्दर शर्मा, बम्बई ..	,,
३०२८०	पं० दौलतराम जी, कलकत्ता ...	,,
३०२८१	श्री० ब्रजमोहनलाल धावन, सुल्तानपुर	,,
३०२८२	मिसेज़ जे० एस० माथुर, असन्सोल	,,
३०२८३	मेसर्स श्रीपतीराम बनारसीलाल हज़ारीबाग़	३॥)
३०२८४	श्री० पन्नालाल चोपड़ा गङ्गाशहर, (बीकानेर)	६॥)
३०२८५	श्री० रमेशचन्द्र माथुर, शाहजहाँपूर	,,
३०२८६	ऑनरेरी सेक्रेटरी, इटावा कैनल बुक क्लब, इटावा	,,
३०२८७	श्री० कन्हैयाप्रसाद शाह, मोतीहारी	३॥)
३०२८८	श्री० वज़ीरचन्द मेहता, पिंडदादन खाँ (झेलम)	,,
३०२९०	श्री० श्यामनारायण, चन्दौसी, ...	३॥)
३०२९१	श्री० सरजूप्रसाद, इलाहाबाद ...	३।)
३०२९२	श्री० पुरुषोत्तम आर० पटेल, काड़ी (गुजरात)	६॥)
३०२९३	सेक्रेटरी, भाटापारा क्लब, भाटापारा ...	६॥)
३०२९४	दी हेड पण्डित, ई० टी० स्कूल, सिराहा (चम्पारन) ...	,,
३०२९५	श्री० रामरतन राम मानेर (पटना)	,,
३०२९६	श्री० अमरनाथ धारीवाल ...	,,
३०२९७	श्री० चुन्नीलाल, टी० गावरी, भावनगर (काठियावाड़) ...	,,
३०२९८	श्री० श्यामलाल गोपाल रईस, झिन्झाना	,,
३०२९९	श्री० गोपालनायक कालिया, बनारस सिटी	,,

ग्राहक-नम्बर	नाम ग्राहक	प्राप्त रक़म
३०३००	श्री० ए० पी० सिंह, धर्मजयगढ़ ...	६॥)
३०३०१	श्री० महादेव गोविन्द ठाकर (बम्बई)	"
३०३०२	राजा महेशगिरी जी हैदराबाद (दक्खिन)	"
३०३०३	चन्द्रदेव प्रसादसिंह, भगवानपूर, (मुज़फ़्फ़रपूर)	"
३०३०४	श्री० बाबूराव, भोपाल ...	"
३०३०५	सेठ गङ्गाराम मँगनीराम, नासिक...	६॥)
३०३०६	मुनीम टीकाराम, जबलपुर ...	"
३०३०७	बाबू रामदयाल खेमका, कोटे का पुरवा (मयहो) ...	५॥)
३०३०८	श्री० जी० आर० जोशी, माहो सी० आई०	३॥)
३०३१०	श्री० आर० एल० ओङ्कारचन्द सूद, शिमला	६॥)
३०३११	श्री० जालसिंह राजपूत, विश्वनाथ-घाट (आसाम) ...	"
३०३१२	श्री० मोतीराम नामदेव, वारा, सिउनी	"
३०३१३	श्री० रामकृष्ण देशमुख, कोमाखाँ (रायपुर)	"
३०३१४	श्री० लालताप्रसाद मौरिया, जामपूर	"
३०३१५	श्री० पत्तूलाल वर्मा, बीसलपर (पीलीभीत)	३॥)
३०३१६	श्री० लज्जाराम सिङ्गल, मेरठ ...	"
३०३१७	श्री० बुद्धसेन, इलाहाबाद ...	६॥)
३०३१८	श्री० आत्माराम गुप्ता सीतापूर ...	२)
३०३१९	श्री० यदुनाथप्रसाद वर्मा, नौबतपुर पटना	६॥)
३०३२०	मेसर्स प्यारेलाल प्रभूदयाल, कानपूर	३॥)
३०३२१	श्री० लछमनदास, डिबाई, बुलन्दशहर	६॥)
३०३२२	श्री० भैरवबख़्श कोठारी, जूना-ग्वालियर	"
३०३२३	श्री० माधवराय शर्मा, लाव, टोंकराज	"
३०३२४	श्री० कल्याणसिंह, थाल, सिन्ध ...	"
३०३२५	श्री० कुँवरबहादुर निगम, कानपुर	"
३०३२६	श्री० विष्णुदेव दुबे, मोतीहारी ...	"
३०३२७	सेक्रेटरी श्री० मातृभाषा पुस्तकालय, फ़र्रुख़ाबाद	५॥)
३०३२८	मेसर्स गनपतराय मानमल, छापर, बीकानेर	२)
३०३२९	श्री० कृष्णमूर्ति, नान्डेर, हैदराबाद (दक्खिन)	६॥)
३०३३०	श्री० मुरलीधर खेमका, कोट-कापुरा	"
३०३३१	श्री० मानिकलाल एम० दवे, भावनगर	"
३०३३२	श्री० लक्ष्मीकान्त पाण्डे, पट्टीज़िया बुज़ुर्ग, गोंडा	२)
३०३३३	श्री० कैलाश जी, देहली ...	३॥)
३०३३५	श्री० गङ्गाराम भागीरथ मोदी देवास सीनियर	६॥)

निम्न-लिखित ग्राहक नम्बरों के पुराने ग्राहकों का चन्दा हमें मार्च तथा अप्रैल मास में प्राप्त हुआ है। ग्राहक नम्बर तथा चन्दे की रक़म इस प्रकार है :—

ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म
२७६६२	६॥)	१७३०	६॥)
१७८४७	"	२८०६९	
२५०५३	"	२८१०१	
२४३६५	"	२८१२४	
२४८०७	"	२५००७	
२९१५६	३॥)	२५३७२	
५४६८	६॥)	२५३८६	
२७९९५	"	२८२८१	
२९२०६	"	२७९७१	
२७९६०	"	२८०३३	
२९२८५	३॥)	२८०४१	
२५३१२	६॥)	१३१४७	
२५०७८	"	१७२१९	
२९१४१	३॥)	२८१५६	
९०८९	६॥)	२९३०३	
२९३१२	३।)	५८४३	
५३७९	६॥)	२८१३५	
५८३०	"	२५०९०	
१३०१०	"	२८०२५	

ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम
५७८५	४॥)	१७१६९	६॥)	८२९८	६॥)	१७२७६	६॥)
२८ ६२	६॥)	१७२४६	,,	१७३८०	,,	२८०४५	,,
२८०९९	,,	८५३७	,,	२४९०३	,,	२८१६८	,,
२९१५८	,,	२८१६९	,,	२५१००	,,	२५७१२	१।)
१७४७९	,,	१२८५७	,,	२५६९७	,,	२६७०४	६॥)
८२४६	,,	१३०४६	,,	२५३६५	,,	२८०८५	,,
२८९१३	१।)	२५६८७	,,	२५३८७	५)	२९४२२	,,
२८११७	६॥)	२५६८४	,,	२८२७१	३॥)	२९३६०	३॥)
२४९९२	६॥)	१२६९	,,	१८१२१	५)	२८१६०	६॥)
१४४८६	,,	१२३०	,,	१८००९	६॥)	१४०६	,,
२९२४३	,,	५७४२	,,	२५९६५	,,	१३१६२	,,
२५८३४	६॥)	१२४४५	,,	२५५६१	,,	१७४०२	,,
२५५२२	,,	१३०५६	,,	१७३०४	,,	२९४६१	,,
२५५००	,,	१३०६८	,,	१७१००	,,	१७२५८	,,
२५३८२	,,	२५२४१	,,	१३१६१	,,	२८२७९	,,
२५३५२	,,	२५४९७	,,	२५३५१	,,	२८३६४	,,
१७०४२	,,	२५६२२	,,	२५२८९	,,	२८३८६	,,
१७०४३	,,	२५७४५	,,	२८०३०	,,	...	...

ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
१७१९५	,,	२८०२६	,,
१७२५२	,,	१८०४३	,,
२९२५०	,,	२८११२	,,
२४९३८	,,	२८१४६	,,
२५११७	,,	२९२८२	,,
२५०६१	,,	२८०८७	,,
२५२०४	,,	५७८५	४॥)
२५१३९	६)	१४६३९	६॥)
२८०३८	६॥)	२५०६३	,,
२८०३१	,,	२५१२५	,,
२८०२७	,,	२५२४३	६।)
२७९९४	,,	२५४०१	६॥)
२८१०२	,,	२५४७५	,,
२७७४९	,,	२५५२७	,,
२८१२२	,,	२७८०२	,,
२६१२६	,,	२८०६८	,,
२८०७९	,,	२८५८३	,,
२८००१	,,	२७९४५	५)
२८०४९	,,	३९००	६॥)
६३२९	३॥)	३७२०	,,
१३०३४	६॥)	८३३५	,,
१७३७४	,,	१३०२९	,,
२५३६८	,,	१३१२८	,,
२५५८६	,,	१६९४४	,,
२९२५१	,,	१७१९१	,,
[illegible]८२६	,,	१७१८५	५)

निम्न ग्राहकों को 'चाँद' के अङ्क दुबारा भेजे गए :—

जनवरी १९३२ :—२६८२५, २०७४

फ़रवरी १९३२ :—२२४२९, २६६४६, ३०९१, २५८९९, २१३१२, २८१८९, २०१७४, २९४९५,

मार्च १९३२ :—२८६५८, १३७८९, २९२८२, २४४०५, १४५७५, २४२७५, २८४०६, २५९९७, २२५९०, २९२८९, २९७४८, २८२८९, ५५६७, २१९५९, २११३५, २८५२६, २००७४, १९०६९, २९४९५, २८९३९, १८००९, १६३३०, २६६४६, २५८९९, २९ ९७, २८१६९, २२७९१, २२५९०, २९३१८, २१५३७, २१३१२, २९४८१।

दिसम्बर १९३१ :—२९४१५,

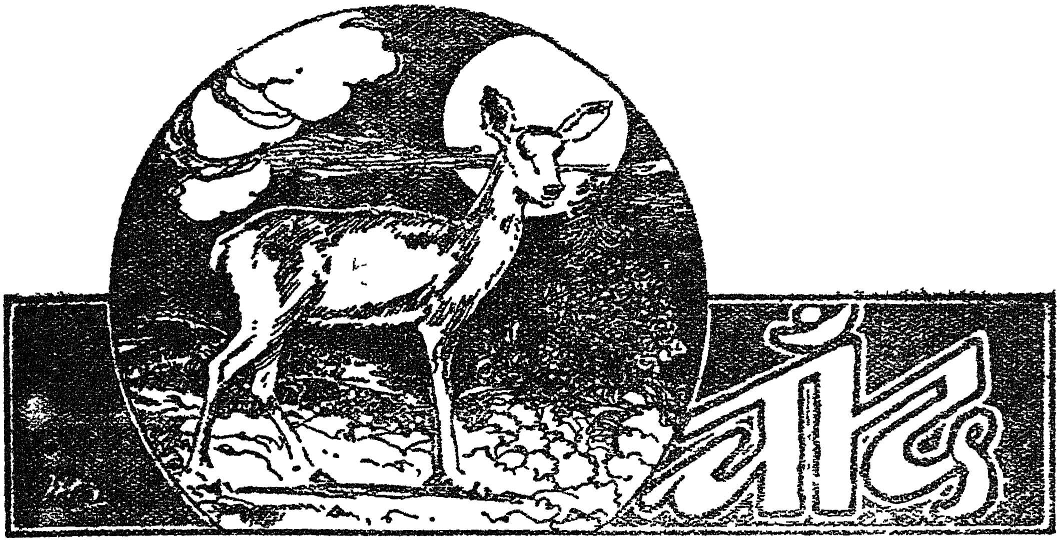
अक्टूबर १९३१ :—२२५९०,

जून १९३१ :—१८०४७,

अप्रैल १९३२ :—२८६५८, १३७८९, २९२८८, २४४०५, १४५७५, २४२७५, २८४०६, २५९९७, २२५९०,

निम्न लिखित ग्राहकों के पतों में परिवर्तन किया गया है :—

२५३८३, २९६७४, २७२५०, २८९५९, १४३७२, ६६९६, २६९५८, २८८८९, २९९७५, २१४४३, ६२११, २९६२४, १३६६४, २३१०, ३०१०६, २९६०४, २९०९७, २८९६१, ७१९६, १३९६०, ३८६६, ३०१९९, ४६५९, १८६४८, २६९५६, १६३३०, २९४३१, २९९०४, १३३८८, ३०९१, १६९३६, ३०१२२, १७२६५, १७३५७, ७१९६, २८१०५, २९९५६, २२२०९, २३०४०, १३२४५, २५०७८



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान मे हम अविचल है, तब तक हमे इसका भय नही, कि हमारे विरोधियो की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २ | जून, १९३२ | संख्या २, पूर्ण संख्या ११६

दीप-शिखा, शलभ के प्रति

[श्री० मोहनलाल जी महतो]

शलभ ! यह मोह तुम्हारा है,
प्रेम नहीं—यह तो ममता का तुनुक सहारा है !

क्यों जलता है—जल जाने दे,
मत भौहों पर बल आने दे,
अफल-जन्म का फल पाने दे,
याद रहे कर्तव्य प्रेम से रहता न्यारा है।

अस्त हुए दिनेश—रजनी है,
अँधियारी छा गई घनी है,
पथिकों की गति बुरी बनी है,
भूल गया इस तम-सागर का कूल-किनारा है।

हूँ जल कर प्रकाश फैलाती,
रवि का प्रतिनिधित्व कर जाती,
यह जीवन है जिनकी थाती,
उन्हे सौंप दूँ यही हृदय-धन ! धर्म हमारा है।

तेरा सिर ऊँचा कर दूँगी,
मिट कर गौरववान करूँगी,
चलते समय बलैया लूँगी,
जगत जानता तेरी हूँ, तू मेरा प्यारा है।
शलभ ! यह मोह तुम्हारा है।



चाँद

जून, १९३२

हिन्दुओं में संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा

हिन्दू-जाति के पतन और अवनति के गढ़े में गिरने के कितने ही कारण हैं। उनमें से एक प्रधान कारण जात-पाँत के भेद का वर्णन हम पिछली बार कर चुके हैं। पर उसके सिवाय और भी कितने ही ऐसे छोटे-बड़े कारण हैं, जिनसे यह जाति पिछड़ी हुई है और उसके उन्नति की तरफ़ अग्रसर होने में तरह-तरह की बाधाएँ पडती रहती हैं। इन्ही में से एक संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा है, जो यद्यपि बहुत महत्वपूर्ण नही जान पडती, पर उसके फल से इस जाति में ऐसी-ऐसी बुराइयाँ पैदा हो गई हैं कि उनके कारण लोगों को घोर कष्ट उठाना पड़ता है और उन्नति में भी बाधा पड़ती है।

हिन्दुओं की यह संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आई है। यह प्रथा कोई हज़ार या दो हज़ार वर्ष पुरानी चीज़ नहीं है, वरन् लाखों वर्षों से, जबकि संसार में सभ्यता का प्रथम दर्शन हुआ और मनुष्य पशु की सी अवस्था से निकल कर सामाजिक प्राणी बनने लगा, यह प्रथा प्रचलित रही है। यह बात भी नही है कि यह प्रथा केवल हिन्दुओं मे ही उत्पन्न हुई है। संसार के समस्त देशों और समस्त जातियों मे किसी न किसी समय यह प्रथा प्रचलित रही है। वास्तव मे यह मानवीय विकास का एक अङ्ग है और जब किसी स्थान के निवासी जङ्गली दशा में शिकार और फल-फूल से जीवन-निर्वाह करने के बजाय गाँव बना कर रहने लगते हैं और खेती-बारी करने लगते हैं तो उनको स्वभावतः इस प्रथा का अवलम्बन करना पडता है। क्योंकि खेतों की पैदावार एक दिन में ख़र्च नहीं हो सकती और उसको महीनों और वर्षों तक सुरक्षित रखना पडता है। साथ ही खेती-बारी का काम अकेले-दुकेले आदमी से अच्छी तरह हो भी नहीं सकता। इसलिए उस समय यह आवश्यक होता है कि एक कुटुम्ब के अधिक से अधिक व्यक्ति मिल कर रहें और अपनी उत्पन्न की हुई सामग्री की दूसरे समूह वालों से रक्षा करें। अब भी कितने ही गाँवों मे ऐसे कुटुम्ब पाए जाते है, जिनके व्यक्तियों की संख्या सौ के लगभग जा पहुँचती है। ये सब लोग एक ही घर में रहते हैं, एक ही जगह खाना खाते हैं, उनकी सम्पत्ति इकट्ठी रहती है, जीवन-निर्वाह का साधन भी एक ही

होता है, उनके पास सम्मिलित रूप मे बहुत सी ज़मीन, पशु आदि होते है, उनके घर मे सम्भवतः एक ख़ान्दानी देवमूर्ति होती है, जिसकी कुटुम्ब की तरफ़ से पूजा की जाती है और वे सम्मिलित रूप से समस्त धार्मिक उत्सव और पूर्वजों का श्राद्ध-तर्पण आदि करते हैं। ऐसे कुटुम्बों मे सबसे बुड्ढा व्यक्ति सबका मालिक समझा जाता है और उसकी आज्ञा प्रत्येक व्यक्ति को शिरोधार्य करनी पडती है। ऐसे कुटुम्ब अङ्गरेज़ी शासन से पूर्व सर्वत्र पाए जाते थे, पर अब उनकी संख्या और विस्तार का दिन पर दिन ह्रास होता जाता है।

समय के परिवर्तन से अब ऐसी स्थिति आ गई है कि बहुत बड़े कुटुम्ब के मिल कर एक जगह रहने की आवश्यकता जाती रही। प्राचीन काल मे इसका मुख्य उद्देश्य आत्म-रक्षा करना था, क्योंकि उस समय शासन बहुत विश्रृङ्खल दशा मे था। चारों तरफ़ छोटे-छोटे राजा और सरदार पाए जाते थे और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला नियम ही सर्वत्र व्याप्त हो रहा था। पर अब समस्त देश का शासन एक ही शक्ति द्वारा होता है और संसार में बड़े से बड़े साम्राज्यों की स्थापना होती जाती है। अब वह ज़माना नही रहा कि सौ-पचास व्यक्तियों का समूह किसी स्थान मे रह कर इच्छानुसार कार्य कर सके और अपने हित के लिए समाज को खुल्लमखुल्ला हानि पहुँचा सके। अब सब लोगों की रक्षा का भार पुलिस और देश की सेना पर रहता है और उसके लिए प्रत्येक व्यक्ति तो काफ़ी टैक्स अदा करना पडता है। पर परिस्थिति के बदल जाने पर भी प्राचीनता के भक्त और आधुनिक विचारों से अनभिज्ञ होने के कारण हिन्दुओं में संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा अनेकांश मे मौजूद है और वे लोग अभी तक उसकी ख़ास-ख़ास बातों पर अमल करते चले जाते हैं। अब भी अनेक हिन्दू-परिवारों में अनेक दूर के रिश्तेदारों का पालन होता रहता है, जिनको गृहस्वामी या उसकी पत्नी के प्रति कदापि हार्दिक अनुराग नहीं हो सकता। क्योंकि वास्तव में गृहस्थी तो पति-पत्नी और उनसे उत्पन्न बच्चों की ही होती है। उनका सम्बन्ध प्राकृतिक होता है और वह सृष्टि-क्रम को जारी रखने के उद्देश्य से स्वयं ही दृढ़ अनुराग के रूप मे प्रकट होता है। ऐसे कुटुम्ब का आधार पति-पत्नी का प्रेम होता है, जिसके फल से आगामी पीढ़ी उत्पन्न होती है और वे इस बात की चेष्टा करते है कि वह पहली पीढ़ी की अपेक्षा अधिक उत्तम हो। दूर-दराज के रिश्तेदारों मे इस प्रकार के भाव कदापि नही पाए जा सकते और वे केवल अपने मतलब से उस कुटुम्ब का अङ्ग बन कर रहते है। ये लोग कुटुम्ब पर भार-स्वरूप होते हैं और उनका दावा किसी तरह युक्ति-सङ्गत नहीं कहा जा सकता।

इस प्रथा के कारण हिन्दू-समाज की कितनी हानि हो रही है, इसका वर्णन मि० हेनरी कॉटन नामक एक सहृदय यूरोपियन ने कुछ वर्ष पूर्व अपनी पुस्तक में किया था। उनका मत है कि "भारतवर्ष की आबहवा कमज़ोरी पैदा करने वाली है और यहाँ लोगों की साधारण आवश्यकताएँ सहज ही में पूरी हो जाती हैं। इसके फल-स्वरूप लोगों में आलसीपन का भाव फैलता है और वे भीख माँग कर या अपने उदार रिश्तेदारों तथा पडोसियों के आधार पर जीवन निर्वाह करना पसन्द करते है। इस प्रथा के कारण देश में करोड़ों निकम्मे व्यक्ति पाए जाते हैं, जिससे उन्नति की गति में बडी बाधा पडती है। यह परिस्थिति निश्चय ही शोचनीय है और प्रत्येक देश-हितैषी व्यक्ति को इसकी निन्दा करनी चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि लोगों में आत्म-निर्भरता और स्वाधीनता का भाव उत्पन्न किया जाय और वे बिना पूरा बदला दिए किसी से सहायता लेना या किसी के परिश्रम पर जीवन निर्वाह करना लज्जाजनक समझें। केवल बीमार, अपाहिज, स्त्री और बच्चों को ही दूसरों के आधार पर रहने का हक है। प्रत्येक सामर्थ्यवान व्यक्ति को परिश्रम करना चाहिए। पूर्वीय देशों की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि यहाँ उत्पन्न होने वालों का परिश्रम की तरफ़ झुकाव ही नहीं होता। इसलिए यहाँ वालों के दिमाग़ मे श्रम की आवश्यकता के सिद्धान्त को भरने की जितनी चेष्टा की जाय उतनी ही कम है। वैसे तो यूरोप आदि पश्चिमी देशों के व्यक्ति भी श्रम को बहुत सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते, पर भारत में तो इसे अपमानजनक समझा जाता है। यहाँ ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है, जो हाथ से काम करके पेट भरने को छोटापन समझते हैं। इसलिए यहाँ के निवासियों का कर्तव्य है कि जो सामाजिक प्रथाएँ लोगों के इस आलस्य के भाव की

वृद्धि करती हों उनको दूर करने या उनका सुधार करने की पूरी चेष्टा करें।"

संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा के कारण हिन्दू-समाज में स्त्रियों की दशा बड़ी गिरी हुई है और उनको केवल अपने पति की ही नहीं, वरन् घर के समस्त वयस्क पुरुषों की अधीनता सहन करनी होती है। इसके सिवाय जब कभी संयोगवश कोई स्त्री असमय में विधवा हो जाती है, तो इस प्रथा के कारण उसे तरह-तरह के कष्ट उठाने पड़ते हैं। जब तक कुटुम्ब का प्रधान कमाने वाला व्यक्ति जीवित रहता है और अपने तमाम आश्रितों का पालन-पोषण करता रहता है, तब तक तो किसी तरह की ख़राबी पैदा नहीं होती। क्योंकि वे जानते हैं कि यदि वह किसी कारण अप्रसन्न हो जायगा, तो वह कुटुम्ब से अलग हो जायगा और उनके निर्वाह का साधन जाता रहेगा। पर जब उसके मरने के बाद उसकी स्त्री विधवा रह जाती है और बच्चे नाबालिग़ होते हैं, अथवा लड़के के बजाय केवल लड़कियाँ ही होती हैं, तो तरह-तरह की चालें और कमीनी हरकतें की जाती हैं और ये पापी रिश्तेदार अपने पालनकर्ता की स्त्री और बच्चों को दुर्दशा में डाल कर घर-बार के मालिक ख़ुद बन बैठते हैं। इस प्रकार के उदाहरण सैकड़ों मिल सकते हैं, जिनमें किसी व्यक्ति के भाई, चचा या भतीजे ने उसके मरने के बाद घर की सम्पत्ति उड़ा दी और बाद में उसके बाल-बच्चों को भूखों मरना पड़ा।

इस प्रथा से एक और हानि यह होती है कि इससे लोगों की व्यक्तिगत स्वाधीनता अधिकांश में नष्ट हो जाती है। यह स्पष्ट है कि इस तरह व्यक्तिगत स्वाधीनता का अभाव होना समाज के कल्याण की दृष्टि से बड़ा हानिकारक है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्तियों की जितनी ही अधिक उन्नति करने और विकास का मौक़ा दिया जायगा, उतना ही उस समाज का भला होगा, जिसका कि उक्त व्यक्ति सदस्य है। जो सामाजिक या राजकीय प्रथा व्यक्तियों के अग्रसर होने और उन्नति करने की उचित व्यवस्था नहीं करती, वह या तो शीघ्र ही असन्तोष और विद्रोह का शिकार बनती है अथवा जीर्ण-शीर्ण होकर नष्ट हो जाती है। एक अङ्गरेज़ लेखक ने भारत की दुर्दशा के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि—"इसका मुख्य कारण जात-पाँत की प्रथा है, जिसके फल-स्वरूप लोगों को चरित्र और बुद्धि सम्बन्धी उन्नति का अवसर नहीं मिलता और मनुष्य एक जड़-पदार्थ के तुल्य बन जाता है।" यह सच है कि जात-पाँत की प्रथा हिन्दू-समाज के नाश का और हिन्दुओं में तरह-तरह के दुर्गुण उत्पन्न करने का प्रधान कारण है, पर संयुक्त कुटुम्ब की प्रथा ने भी इसमें बहुत-कुछ सहायता पहुँचाई है। इसके कारण प्रायः लोगों पर इतना अधिक बोझ पड़ जाता है कि वे उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय और सच या झूँठ का विचार त्याग कर किसी भी उपाय से अधिक से अधिक धन उपार्जन करने की चेष्टा करने लगते हैं। इससे उनकी प्रतिभा का पतन हो जाता है, उनकी महात्वाकांक्षा चौपट हो जाती है और उनके हृदय की सद्भावनाएँ जड़मूल से नष्ट हो जाती हैं। जो लोग देश और समाज की बहुत-कुछ सेवा कर सकते थे, विद्या और कला-सम्बन्धी अनुपम आविष्कार कर सकते थे, ग़रीबों और दुखियों के कष्ट दूर करके जनता के सम्मुख परोपकार का आदर्श उपस्थित कर सकते थे, वे इस कुप्रथा के कारण अर्थ के दास बन जाते हैं और सदा आवश्यकताओं के नीचे पिसते रहते हैं। कितने ही लोग तो जन्म भर बैल की तरह परिश्रम करते रहने और काफ़ी धन कमाने पर भी अन्त में अपने मरने के बाद इतना भी नहीं छोड़ जाते, जिससे उनके बाल-बच्चे कुछ समय तक प्राण-रक्षा कर सकें। उनकी तमाम कमाई को भाई-भतीजे, भानजे, बुआ, बहिन आदि खा जाते हैं और ये ही लोग बाद में उसके बाल-बच्चों के साथ घोर दुर्व्यवहार करते हैं, उनको घर से निकाल देते हैं, जिससे उनको पराए लोगों के टुकड़े खाकर निर्वाह करना पड़ता है। इतने पर भी ये अकृतज्ञ रिश्तेदार अपने पालनकर्ता का किसी तरह का अहसान नहीं मानते। वह जो कुछ उनके लिए करता है, उसे वे अपना हक़ समझते हैं और सदा यही शिकायत किया करते हैं कि उनके लिए बहुत कम दिया जाता है। प्रायः वे एक-दूसरे से ईर्षा-द्वेष किया करते हैं और समझते हैं कि दूसरे को हमसे अधिक मिलता है अथवा अमुक पर गृह-स्वामी की कृपा अधिक रहती है। ऐसे घर में गृहस्थी के आनन्द की क्या आशा की जा सकती है? वहाँ पर लोगों का

अधिकांश जीवन कलह, वादविवाद और एक दूसरे को कोसने में व्यतीत होता है और कमाई करने वाले गृह-स्वामी को अपने त्याग और बलिदान का बहुत बुरा प्रतिफल प्राप्त होता है।

इस तरह की हानिकारक प्रथा केवल हिन्दुओं में ही पाई जाती है। यूरोपियन लोगों का परिवार केवल अपने स्त्री और बच्चों तक ही परिमित रहता है और बच्चे भी बालिग़ होते ही स्वतन्त्र रूप से खाने-कमाने लगते हैं। भारत के मुसलमानों में भी संयुक्त परिवार की प्रथा नहीं है, और उनमें पुरुषों ही नहीं, स्त्रियों की सम्पत्ति का हिसाब भी प्रायः अलग-अलग रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि ये लोग आवश्यकता पड़ने पर अपने भाई-बहिनों की सहायता नहीं करते। एक माँ-बाप से पैदा होने वाले और एक ही घर में साथ-साथ खेल-कूद कर बड़े होने वाले भाई-बहिनों में परस्पर स्नेह और प्रेम का होना स्वाभाविक बात है, और एक के कष्ट तथा आवश्यकता के समय दूसरे का सहानुभूति दिखलाना स्वाभाविक ही है। पर इस तरह की स्वेच्छाकृत और सामयिक सहायता एक बात है और विवश होकर जन्म भर किसी के पालन-पोषण का भार उठाना दूसरी बात।

हिन्दू संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा के कितने ही समर्थक कहते हैं कि इसके कारण अनेक दीन, अनाथ और असहाय लोगों की जीवन-रक्षा होती रहती है और बेकारी की हालत में लोगों को बहुत अधिक कष्ट का सामना नहीं करना पड़ता। इस दलील में थोड़ी सी सचाई ज़रूर है, पर इस तरह से अगर कुछ लोगों का अस्थायी रूप से थोड़ा सा हित हो जाता है, तो समाज का उसकी अपेक्षा बहुत अधिक अनहित होता है। दरअसल संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा बेकारी के प्रश्न को हल करने का समुचित उपाय नहीं माना जा सकता। इसके लिए कोई ऐसा तरीक़ा होना चाहिए, जिससे लोग आलसी बनने के बजाय कार्यक्षम और परिश्रमी बनें। इस सम्बन्ध में मिस्टर हेनरी कॉटन ने लिखा है कि "मेरी सम्मति में यह दलील ठीक नहीं है कि अगर निकम्मे लोगों का कुटुम्ब द्वारा पालन-पोषण रोक दिया जायगा, तो वे भूखों मरने लगेंगे और उनका बोझा समस्त समाज पर पड़ जायगा। बहुत से लोग इस सम्बन्ध में यूरोप के बेकारों का उदाहरण देते हैं, जहाँ सरकार को उनके भरण-पोषण के लिए करोड़ों रुपए ख़र्च करना पड़ता है। पर वास्तव में यूरोप के बेकारों और भारत के बेकारों की दशा में बहुत कम सादृश्य है। अकाल अथवा ऐसी ही अन्य किसी दैवी आपत्ति के अवसर को छोड़ कर भारत के बेकार और निकम्मे लोगों की दशा ऐसी नहीं होती, जिसके लिए समाज को भार उठाना पड़े। इसका कारण यह है कि इङ्गलैण्ड आदि देशों में लोगों के जीवन-निर्वाह का प्रमाण बहुत ऊँचा है, उनकी आवश्यकताएँ बहुत बढ़ी हुई हैं। उसके मुक़ाबले में यहाँ के लोगों की आवश्यकताएँ बहुत ही परिमित हैं। इसलिए अगर हिन्दू-संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा उठ भी जाय तो भी भूखों मरने वालों की संख्या में अधिक वृद्धि नहीं हो सकती। भारत के मुसलमानों में (और पारसी, ईसाइयों आदि में भी) संयुक्त परिवार की प्रथा नहीं है, पर उनमें भूखों मरने वाले लोग अधिक नहीं पाए जाते। इतना ही नहीं, अकाल या अन्य आपत्ति के समय संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा की उदारता स्वयमेव समाप्त हो जाती है और तब इस प्रथा पर आधार रखने वाले निकम्मे लोगों के कष्ट और दरिद्रता कहीं अधिक बढ़ जाती है। उस दशा में उनका भार समाज पर ही पड़ता है। अगर ये लोग इस प्रथा पर आधार न रखते होते और पहले से स्वावलम्बन द्वारा जीवन-निर्वाह करते होते, तो समाज पर उतना ज़्यादा बोझ कभी न पड़ता। दरअसल ये परावलम्बी लोग सदा ही भुक्खड़ होते हैं। उनका उपाय यही है कि वे कोई काम करें, पर संयुक्त कुटुम्ब-प्रथा के भरोसे वे ऐसा नहीं करते। केवल अकाल आदि के समय उनको निराधार छोड़ दिया जाता है और इसलिए अकाल-निवारण के कार्य में बड़ी कठिनाई पड़ती है।"

इस प्रथा के कारण गार्हस्थ्य सुख का अधिकांश में नाश हो जाता है और स्त्रियों को अनावश्यक रूप से तरह-तरह के कष्ट सहने पड़ते हैं। संयुक्त परिवार में अनेक ऐसे व्यक्ति रहते हैं, जिनको घर की भलाई-बुराई का बहुत कम ख़्याल रहता है और वे गृहस्वामी और स्वामिनी में वैमनस्य कराके अपने हितसाधन की चेष्टा करते हैं। परिवार में कितने ही बुड्ढे या बुढ़िया ऐसे होते हैं, जो अधिकार न होते हुए भी केवल अपनी

बुज़ुर्गी के भरोसे शेष सब लोगों को दबा कर रखना चाहते हैं और जो कोई उनकी आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन नहीं करता, उसे घर के और बाहर के लोगों मे बदनाम किया करते है। फिर यहाँ की स्त्रियाँ अविद्या और अन्य कारणों से विशेष कलह-प्रिय होती है और उनके कारण संयुक्त परिवार मे नित्य एक न एक झगडा पैदा होता रहता है, जिससे वहाँ का जीवन दुःखमय बन जाता है। कपडों और ज़ेवरों के विषय मे स्त्रियाँ प्रायः एक-दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता किया करती है और इसके कारण बहुत-कुछ धन और शक्ति का नाश होता है। इसके विपरीत जब वे ही स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ अकेली रहती हैं, तो वे अपने ऊपर ज़िम्मेवारी अनुभव करने लगती है और जहाँ तक सम्भव होता है, कम ख़र्च में घर का सुप्रबन्ध करके अपनी चतुरता और योग्यता प्रमाणित करने की चेष्टा करती है।

इस प्रकार यह संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा हिन्दू-जाति मे तरह-तरह की ख़राबियाँ उत्पन्न करके लोगों का अनहित करती है। इससे लोगों की केवल व्यक्तिगत हानि ही नही होती, वरन् समाज और देश के कार्यों मे भी बडा धक्का लगता है। जिस आदमी पर बहुत बड़े कुटुम्ब का भार होगा, उससे यह आशा करना व्यर्थ है कि वह समय पडने पर देश के लिए किसी तरह का त्याग या बलिदान कर सकेगा। उसे पेट की चिन्ता में ही इतना अधिक व्यस्त रहना पड़ेगा कि देश और जाति की सेवा का ख़्याल कभी दिल मे आ ही न सकेगा। इस प्रथा के कारण लोगों में स्वार्थपरता का भाव बढ़ता है और वे दूसरे लोगों के हित-अनहित का विचार बहुत कम करते हैं। इसके कारण सर्वसाधारण मे परावलम्बन या हरामख़ोरी की प्रवृत्ति फैलती है, जो देशोन्नति की दृष्टि से बडी घातक है। क्योंकि जिस देश के व्यक्ति उद्योगी, परिश्रमी और कष्ट-सहिष्णु न होंगे, उसके आगे बढ़ने की आशा कैसे की जा सकती है? इस प्रथा ने स्त्रियों की उन्नति के मार्ग मे अलङ्घनीय बाधाएँ डाल रक्खी हैं, और बिना स्त्रियों का सुधार हुए किसी राष्ट्र का कल्याण हो सकना असम्भव है।

इन सब बातों को निगाह में रख कर हिन्दू-समाज के नेताओं का कर्तव्य है कि इस प्रथा को मिटाने की चेष्टा करें और 'हिन्दू-लॉ' मे भी ऐसे सुधार करावें, जिससे लोग नाते-रिश्ते के कारण अनुचित लाभ न उठा सकें, न किसी का न्याययुक्त स्वत्त्व अपहरण कर सके। यद्यपि जीवन-निर्वाह के साधनों मे परिवर्तन होने और नौकरी-व्यापार आदि के कारण लोगों के दूर-दूर के स्थानों मे जाकर रहने आदि के फल से शहरों मे यह प्रथा बहुत-कुछ ढीली पड गई है, पर गाँवों मे इसका काफ़ी ज़ोर है। वहाँ जो कोई व्यक्ति शिक्षित होकर कुछ काम-काज करने लगता है, उसे इस प्रथा के कारण बडा कष्ट उठाना पडता है। ऐसे लोग प्रायः अपना तमाम जीवन विदेश मे रह कर कष्ट में बिता देते हैं, पर उनके घर वाले उनके स्त्री-बच्चों को साथ मे रखने की अनुमति नही देते। क्योंकि उनको भय होता है कि ऐसा करने से वह स्वतन्त्र हो जायगा और घर को सहायता भेजना बन्द कर देगा। इसी प्रकार कितनी ही जातियों मे भी संयुक्त परिवार को ही आदर और महत्त्व की दृष्टि से देखा जाता है और जो कोई व्यक्ति उससे अलग होने की चेष्टा करता है, उसकी निन्दा की जाती है। इस दशा मे समाज में अप्रतिष्ठा के ख़्याल से कितने ही लोग कष्ट सह कर अपनी सामर्थ्य न होने पर भी बड़े भारी परिवार का पालन करते रहते है। इस प्रकार देश-काल की परिस्थिति के विपरीत होते हुए भी यह हानिकारक प्रथा अब भी हिन्दुओं मे प्रचलित है और वे अपनी रूढ़ि-प्रियता के कारण उससे अपना पिण्ड नही छुडा सकते। पर अब समय आ गया है कि लोग आँखे खोल कर इस सम्बन्ध मे विचार करें और इस प्रथा में इस तरह के सुधार करें, जिससे लोगों के कष्ट दूर हों और समाज का भी कल्याण हो।

❀ ❀ ❀

स्त्रियाँ और मताधिकार

भावी भारतीय शासन-विधान के सम्बन्ध मे जाँच करने को राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स की जो मताधिकार कमिटी लॉर्ड लोदियान की अध्यक्षता में इस देश मे आई थी और प्रायः तीन मास से विभिन्न स्थानों मे भ्रमण करके लोगों की सम्मतियाँ एकत्रित कर रही थी, उसका कार्य समाप्त हो गया। सम्भवतः

जिस समय यह अङ्क पाठकों के हाथों मे पहुँचेगा, तब तक उसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित हो जायगी। यद्यपि देश की सर्वप्रधान राजनीतिक संस्था कॉङ्ग्रेस उसका विरोध कर रही थी और इसके फल-स्वरूप अधिकांश जनता भी उसकी तरफ़ से उदासीन थी, तो भी देश के कितने ही व्यक्तियों और संस्थाओं ने उसकी कार्यवाही मे भाग लिया और जैसी परिस्थिति दिखाई पड़ रही है, उससे जान पड़ता है कि अन्त मे भारत को जो अधिकार प्राप्त होंगे, उन पर इस कमिटी के निर्णयों का अवश्य ही काफ़ी प्रभाव पड़ेगा। इस दृष्टि से हम चाहे इस कमिटी से सहमत हों या असहमत, उसके निर्णयों पर विचार करना अनिवार्य है।

मताधिकार के सम्बन्ध मे भारत की जनता और उसके प्रमुख नेता बहुत समय से यही माँग पेश करते आए हैं कि संसार के अन्य उन्नतिशील देशों की भाँति यहाँ के निवासियों को भी वयस्क मताधिकार प्राप्त हो। क्योंकि प्रजातन्त्र शासन के सिद्धान्त के अनुसार देश मे बसने वाले समस्त व्यक्तियों को समान अधिकार दिया जाना आवश्यक है। यदि मतदाताओं के सम्बन्ध में कोई विशेष शर्त लगाई जायगी, तो उसका फल यही होगा कि जनता के एक भाग को दूसरे की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त होंगे, जिसके फल से उन दोनों मे सदा कुछ न कुछ वैमनस्य बना रहेगा। उदाहरणार्थ इस समय भारत मे एक नियत आमदनी वाले अथवा एक नियत परिमाण मे टैक्स देने वाले व्यक्तियों को ही वोट देने का हक़ है। इसका नतीजा यह होता है कि ज़मीदारों, व्यापारियों, बड़ी तनख़ाह के नौकरों और अन्य धनवान व्यक्तियों को ही शासन मे भाग लेने का अधिकार है और अधिकांश ग़रीब किसान, मज़दूर, छोटी तनख़ाह के नौकर तथा स्त्रियाँ (क्योंकि एक अत्यन्त सूक्ष्म संख्या को छोड़ कर भारतीय स्त्रियों के पास जायदाद होती ही नही और न उनको टैक्स देना पड़ता है।) उससे वञ्चित है। इसलिए इन लोगों मे सदा असन्तोष बना रहता है। इसी कारणवश भारत के कितने ही प्रतिनिधियों ने लन्दन की कॉन्फ्रेन्स के सामने और लोदियान कमिटी के सामने भी वयस्क मताधिकार का दावा पेश किया था और कह दिया था कि इसके बिना भारतीय मतदाताओं की समस्या सुलझ नही सकेगी। पर खेद है कि अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों ने इस तरफ़ ध्यान नही दिया और लोदियान कमिटी के निर्णय के विषय मे जो अनुमान की हुई बातें प्रकाशित हुई हैं, वे भी इसके सर्वथा विपरीत हैं।

भारतीय जनता के जिन दलों की तरफ़ से वयस्क मताधिकार का दावा पेश किया गया था, उनमे सब से अधिक न्याय और युक्तिपूर्ण दावा भारतीय स्त्रियों का है। उनकी तीन सर्वप्रधान संस्थाओं ने लोदियान कमिटी के सामने एक संयुक्त मेमोरेण्डम पेश किया था, जिसमे स्पष्ट शब्दों मे कहा गया था कि भारतीय स्त्रियाँ वयस्क मताधिकार के सिवाय अन्य किसी तरह की निर्वाचन-पद्धति को स्वीकार नही कर सकतीं और न किसी दूसरी तरह की पद्धति से उनकी शिकायतें दूर हो सकती है। लोदियान कमिटी और अन्य व्यक्तियों की बातों से प्रकट होता है कि वे स्त्रियों को मताधिकार देने के लिए नीचे लिखे तरीकों मे से किसी एक को काम मे लाना उचित समझते है :—

(१) अगर किसी स्त्री के पास निजी जायदाद न हो, तो उसे उसके जीवित अथवा मृत पति की जायदाद के आधार पर वोट का अधिकार दिया जाय।

(२) शिक्षा के आधार पर वोट का अधिकार मिले।

(३) स्त्रियों को मनोनीत करके व्यवस्थापक सभाओं का सदस्य बनाया जाय। अथवा—

(४) उनके लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए जायँ।

पर भारतीय स्त्रियों को इनमे से एक भी पद्धति स्वीकार नही है और इनमें उनको गम्भीर दोष दिखलाई पड़ते है। इनके सम्बन्ध मे उनके विचार इस प्रकार है :—

(१) वोट का अधिकार जायदाद के आधार पर देना, प्रजासत्ता के सिद्धान्त और वर्तमान युग की गति के सर्वथा विपरीत है। साथ ही इस तरह का नियम उन गरीब और मामूली दर्जे के लोगों के हितों की हत्या करने वाला है, जो भारत के अधिकांश भाग में बसे हुए है।

(२) शिक्षा की कसौटी भी अनुपयुक्त अब तक भारतीय स्त्रियों को शिक्षा

वञ्चित रक्खा गया है, उसे दृष्टिगोचर रखते हुए इस तरह की शर्त रखना स्पष्टतः निन्दनीय है।

(३) स्त्री-सदस्यों को मनोनीत करना या उनके लिए स्थान सुरक्षित कर देना बड़ा हानिकारक और लज्जाजनक है और इसमे उन्नति में घोर बाधा पड़ना निश्चित है। यह कार्य चाहे जैसा निष्पक्षपात होकर किया जाय, इसके फल से स्वभावतः ही स्त्री-सदस्य निम्न श्रेणी के समझे जायँगे, और इसलिए कुछ भी क्यों न हो, स्त्रियों को इसे अस्वीकार करना चाहिए। इतना ही नहीं, इस पद्धति के फल से स्त्रियों में भी उस साम्प्रदायिकता के विषमय भाव के फैलने की सम्भावना है, जो आजकल पुरुषों में दृष्टिगोचर हो रहा है और जिसके कारण देश की अकथनीय दुर्दशा हो रही है।

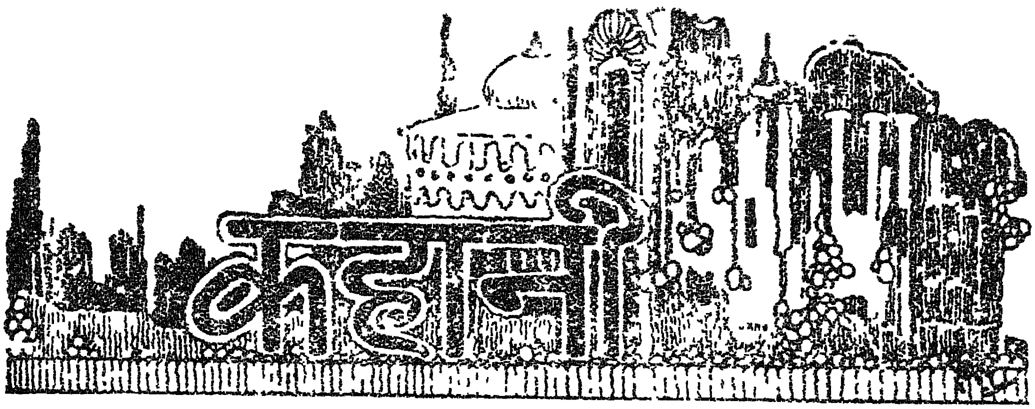
सच तो यह है कि वयस्क मताधिकार ही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा भारतीय पुरुष और स्त्रियाँ अपने न्याययुक्त अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। किसी भी तरह की शर्तें लगाने से यह उद्देश्य नष्ट हो जायगा। कितने ही लोगों का यह ख़्याल है कि इस तरह की खुली हुई प्रतियोगिता में स्त्रियाँ पुरुषों से पार न पा सकेंगी और इसलिए वे बहुत कम तादाद मे व्यवस्थापक सभाओं में प्रवेश कर सकेंगी। बम्बई में लोदियान कमिटी के सामने महिला गवाहों के बयान होते समय उसकी एक सदस्या मिस पिकफ़ोर्ड ने पूछा था कि—"क्या कुछ वर्षों तक स्त्री-सदस्यों के लिए स्थान सुरक्षित रखना अधिक हितकर न होगा?" इसके उत्तर में श्रीमती जे० आर० डॉक्टर ने कहा कि—"नहीं, इसकी कुछ भी ज़रूरत नहीं है। मैं समझती हूँ कि खुले चुनाव में काफ़ी स्त्रियाँ सफल हो सकेंगी।" इतना ही नहीं, स्त्रियाँ यहाँ तक कहती हैं कि यदि पहले दो-एक चुनावों में वे एकदम असफल हों, तब भी कोई चिन्ता नहीं। हमको देश मे न्यायपूर्ण पद्धति का प्रचार कराना है, और उस दशा में यदि हमारा पक्ष सत्य होगा तो अन्त मे हमको सफलता अवश्य प्राप्त होगी।

भारतीय स्त्रियों की वास्तविक माँग यही है कि भावी शासन-विधान मे ये शब्द जोड़ दिए जायँ कि "स्त्रियों और पुरुषों को नागरिकता के समान अधिकार हैं और किसी नागरिक के अधिकारों में लिङ्ग-भेद के कारण किसी तरह का हस्तक्षेप न किया जायगा।" यदि समानाधिकार के सिद्धान्त में, जिसकी आजकल के राजनीतिज्ञ प्रायः दुहाई दिया करते हैं, किसी तरह की सचाई है, तो भारतीय स्त्रियों की उपरोक्त माँग अवश्य स्वीकार की जानी चाहिए। उसे कोई भी थोड़ी सी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति अन्यायपूर्ण या असङ्गत नहीं बतला सकता। देश के अन्य तमाम छोटे-बड़े समुदायों की दृष्टि से भी एकमात्र यही सिद्धान्त कल्याणकारक है।

चन्द्रलोक

[श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय, "वारीश"]

गगन-विहारी इन्दु कहते सभी हैं जिसे, नभ-मध्य एक दीप सुन्दर है लटका।
राका-पति रजनी का कैसा है प्रकाशमान, कान्ति-मणि निशा-सुन्दरी के नए पट का।
मेरी जान गगन-स्थली में युद्ध मचा जब, असुर-सुरों में एक अमृत के घट का!
छिटक गए थे तारागण जब छींटा उड़ा, चन्द्र हुआ पय-प्याला गिरा हाथ सटका॥



अछूत

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

रामपुर, जहाँ मैं पैदा हुआ था, एक छोटा सा क़स्बा था। परन्तु सङ्गीत अच्छा जानने के कारण दूर-दूर के लोग मेरा नाम जानते थे। सङ्गीत एक प्रकार से मेरा पेशा हो गया था, क्योंकि महीने मे पचीस दिन मै बाहर गाने के लिए जाया करता था।

इस बार कासगञ्ज के एक रायसाहब के यहाँ वर्षों की कठिन तपस्या के बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, अतः उसके उपलक्ष मे उन्होंने अनेकों मित्रों को निमन्त्रित करके पाँच दिन उत्सव मनाने का निश्चय किया। मुझे रायसाहब ने बुलाया तो मित्र की हैसियत से था, परन्तु था तो मैं एक गायक। लोगों के आग्रह से प्रत्येक सन्ध्या को मुझे कुछ गाने, गाने पडे।

रायसाहब के घर के पास ही कुछ छोटी सी मडैयाँ कुछ चमारों ने डाल रक्खी थीं। अधिकांश इनमे से राज-मज़दूर थे। तीसरी सन्ध्या को मै जब रायसाहब के द्वार से निकला तो मेरे सामने एक चौदह वर्ष की बालिका आकर खडी हो गई। मै रुक गया। उसने एक गुलाब के फूलों का गुच्छा मेरी ओर करके नीचे को दृष्टि कर ली। मैने गुच्छा उसके हाथ से लिया और पूछा:– कितने का है यह?

"कितने का भी नही।"

"इसका क्या अर्थ?"

वह चुप रही। मैने कुछ क्रोध का भाव दिखा कर कहा—क्या बेचना नहीं है?

"नही।"

"तो यहाँ इसे लेकर क्यों खडी हो गई थी?"

"देने के लिए।"

"किसे?"

"आपको।"

"मुफ़्त?"

"भेट।"

"भेट? और मुझे?"—मैने उत्सुक होकर पूछा।

"हाँ।"— उसने उसी सरलता से कहा।

"परन्तु मै तो तुम्हें जानता भी नही।"

"मै आपको जानती हूँ।"

"वह कैसे?"

"आप रायसाहब की महफ़िल मे गाना गाते है?"

"हाँ।"

"ऐसे।"

"परन्तु यह भेट किस लिए?"

"एक गाने के लिए, केवल भक्ति-भाव से।"

"तुमने मुझे गाते हुए देखा था?"

"नही।"

"फिर तुम यह कैसे जानती हो कि मैं ही गाने गाता हूँ?"

"रायसाहब के नौकर ने कृपा करके बता दिया था।"

"तुम भीतर क्यों नही आई?"

"मैं वहाँ कैसे जा सकती हूँ ?"

"क्यों ? वह तो सबके लिए खुला है !"

"परन्तु कुछ लोग हैं, जो सब में शामिल नहीं हैं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि वे अछूत हैं !"

"तुम अछूत हो ?"—मैंने उछल कर पूछा।

"हाँ, मैं चमारी हूँ !"—उसने मर्म-भरी वाणी से कहा। मैं उससे एक क़दम दूर हट गया। मेरे माथे पर क्रोध से बल पड़ गए। मैंने उसे डाँटते हुए कहा—

"चमार की बच्ची, पहले ही क्यों न कह दिया ?"—यह कह कर मैंने उसके फूल पृथ्वी पर फेंक दिए। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आए। काँपते हाथों से उसने वे फूल उठाए और काँपते हुए शब्दों में वह बोली :—

"मैं नहीं जानती थी कि आप भी ऐसे ही होंगे। क्यों आप अपना गाना बाहर निकलते ही भूल गए ? वह एकता और समानता का राग केवल महफ़िल के ही लिए था ? मैं समझती थी कि आप ही संसार में ऐसे हैं, जो ऊँच-नीच का भेद नहीं मानते। मैं आप ही को भगवान समझने लगी थी। नित्य नियम से इस कोने पर आकर उस गाने को सुनती थी और नित्य मेरी भक्ति आप में बढ़ती जाती थी। परन्तु मुझे क्या मालूम था कि वह केवल एक गान था ! ख़ैर ! मेरी धृष्टता को क्षमा करना।" वह झोपड़ों की ओर मुड़ कर चलने लगी। मैंने उसे पुकार कर कहा—ठहरो !

वह खड़ी हो गई। मैंने उसके पास जाकर पूछा—वह कौन सा गान तुमने सुना था !

"एक पिता के सब सन्तान !"

"पूरा गा सकती हो ?"

"हाँ।"

"सुना सकोगी ?"

"सुना सकूँगी, परन्तु सुनाऊँगी नहीं।"

"मेरे व्यवहार के कारण ? परन्तु यह मेरी भूल थी। वह गाना मैंने सैकड़ों बार गाया है, परन्तु कभी उसका अर्थ नहीं समझा। और लोगों ने उसे बीसियों बार सुना है, तालियाँ बजाई हैं, 'वन्समोर' के नारे बुलन्द किए हैं, परन्तु केवल मेरे स्वर के कारण। कितनों ने उसका अर्थ समझा था ? आज तुम एक मिली हो, जिसने स्वर के लिए नहीं, प्रत्युत उसके अर्थ के लिए उस गान की प्रशंसा की है। यही नहीं, तुमने आज दो शब्द कह कर ही मुझे इसका अर्थ समझा दिया है। तुमने उसे एक ब्राह्मण के मुख से सुना था। मैं उसे एक चमारी के मुख से सुना चाहता हूँ। गाओगी ?"

"अच्छा।"

"यहीं, उस नीम के नीचे, अभी।"

"अच्छा !"

उसने गाना गाया—

एक पिता के सब सन्तान,
कोई बड़ा न छोटा हममें, सब हैं एक समान।
वैश्य, ब्राह्मण, चमार, नाई,
हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई;
यह सब कृत्रिम भेद-भाव हैं, इनमें तत्व न जान।
लग जा सबके गले प्रेम से, तज झूठा अभिमान।
सबका एक वही भगवान।
एक पिता के सब सन्तान ॥
कोई बड़ा न छोटा हममें, सब हैं एक समान ॥

कमाल कर दिया था। दूर से सुनने पर भी, बिलकुल मेरी नक़ल की थी। स्वर में एक दलित-हृदय की वेदना थी, जिसने उसके गान में स्वाभाविकता कूट-कूट कर भर दी थी। मालूम होता था कि 'समता की देवी' स्वयं आकर वह सन्देश सुना रही थी। मैंने उसे शाबाशी देकर पूछा—तुम्हें यह गाना अच्छा लगता है ?

"ख़ूब।"

"तुम बड़ा अच्छा गाती हो।"

"सुनने वाला कौन है ?"

"तुम्हारे घर कोई नहीं ?"

"नहीं।"

"माँ-बाप ?"

"मर गए।"

"अकेली रहती हो ?"

"एक दूर के चचा हैं, उनके पास।"

"करती क्या हो ?"

"जो चमार करते हैं। गोबर बीन लाती हूँ और कण्डे बेच देती हूँ।"

"यह फूल कहाँ से लाई थीं ?"

"मोल।"

"पैसे देकर ?"

"कोई मुफ़्त भी चीज़ मोल देता है ?"—वह हँस कर बोली।

"पैसे कहाँ से लाई थी ?"

"आज कण्डे बेचे थे।"

"खाने को अब कहाँ से लाओगी ?"

"कल का थोड़ा सा आटा रक्खा है।"

मैंने उसके हाथ से फूल ले लिए और एक चवन्नी निकाल कर उसे दी। वह चवन्नी मेरे हाथ में लौटा कर बोली—यह मै न लूँगी।

"तुमने मुझे फूल दिए हैं।"

"मैं यह नहीं चाहती।"

"फिर क्या चाहती हो ?"

"देंगे आप ?"

"अवश्य !"

"एक बार स्वयं इस गाने को गाकर सुना दीजिए !"

"बस ?"

"यह क्या कम है ? ख़ासकर एक चमारी के लिए !"

"कल तुम्हें यहीं आकर सुनाऊँगा ?"

"मेरा नाम 'गङ्गा' है। आप पुकार लेंगे ?"

"हाँ, गङ्गा !"

जब हम चलने लगे तो वह बोली—जाकर आपको स्नान करना पड़ेगा !

"क्यों ?"

"एक चमारी से छू गए ?"

"अब नहीं। एक अछूत से छूकर मैं पवित्र हो गया ?"

ꕥ ꕥ ꕥ

दूसरे दिन मैं रायसाहब की कोठी के पास पहुँचा तो देखा कि गङ्गा मेरी प्रतीक्षा कर रही है। मुझे देखते ही वह प्रसन्न होकर बोली—आप आ गए ?

"क्या तुम समझती थी कि मैं नहीं आऊँगा ?"

"मैं × × × मैं कुछ नहीं जानती।"

"नहीं, ठीक बताओ।"

"नाराज़ तो नहीं होंगे ?"

"नहीं।"

"मैं समझती थी कि आप नहीं आएँगे।"

"क्यों ?"

"क्योंकि आप पण्डित जी हैं और × × ×"

"और तुम चमारी हो ?"

"हाँ।"

"परन्तु पण्डित अपनी बात अवश्य रखते हैं।"

"सब ?"

"सब।"

"शायद रखते हों।"

"देखो, मैं आया या नहीं ?"

"आप वैसे पण्डित थोड़े हैं। नहीं तो एक चमार की लड़की से कोई पण्डित इस प्रकार बातें करता ?"

"ठीक है, गङ्गा, मैं 'पण्डित' नहीं हूँ।"

"यह ठीक है, आप 'पण्डित' नहीं हैं।"

"जानती हो, फिर मैं कौन हूँ ?"

"हाँ।"

"बताओ !"

"देवता।"

वह नीचा सर किए कुछ देर खड़ी रही, फिर मैंने कहा—अच्छा गङ्गा, फिर देवता का गाना सुनोगी ?

"यहाँ ?"

"नहीं, तुम्हारे झोंपड़े के सामने।"

"वहाँ ?"

"क्यों ?"

"वहाँ साफ़ जगह नहीं है।"

"कोई परवाह नहीं। किसी पेड़ के नीचे बैठ जायँगे।"

"अच्छा !"

गङ्गा की झोंपड़ी के सामने ही एक पीपल का पेड़ था। उसीके नीचे चमारों ने एक चबूतरा बना लिया था। मैं उसी चबूतरे पर बैठना चाहता था कि गङ्गा बोली—अभी ठहर जाइए।

"क्यों ?"—मैंने पूछा।

"ज़रा सा ठहर जाइए"—कह कर वह वहाँ से एक झोंपड़े की ओर गई और कुछ ही देर में एक मोढ़ा लेकर आ गई। मैंने पूछा—यह किस लिए ?

"आपके बैठने के लिए। और हम ग़रीबों के यहाँ क्या है ?"

मैं मोढ़े पर बैठ गया। वह मेरे पास चबूतरे पर बैठ गई। मैंने गाना प्रारम्भ किया—

एक पिता के सब सन्तान।
कोई बड़ा न छोटा हममें, सब हैं एक समान ॥

वह झूमने लगी। उसके नेत्रों से एक अपूर्व ज्योति निकल रही थी। वह यह भूल गई थी कि वह चमारी थी या मैं ब्राह्मण था। शायद उसके मस्तिष्क के सामने एक संसार घूम रहा था, जिसमें या तो एक भी प्राणी न था और या सब एक ही प्रकार के थे। वह स्वयं शान्त बैठी थी, परन्तु मेरे शब्दों के साथ वह अपने हृदय को नचा रही थी। मैं उसकी ओर देखता जाता था और गाता जाता था। उस गाने में मुझे कभी इतने आनन्द का आभास नहीं हुआ था। मुझे उसका आदि-अन्त सब भूल गया था। मैं समझ गया कि उसी राग को मेरी आत्मा वर्षों से गा रही थी, परन्तु मैंने सुना नहीं था। मेरा राग इसीलिए बेसुर हो जाता था। परन्तु, आज? आज आत्मा के स्वर के साथ मेरा स्वर मिल रहा था। मेरा भौतिक राग आत्मा के उस अदृष्ट तथापि सत्य राग में लीन हो गया था, फिर मैं उसके आदि-अन्त को कैसे समझ पाता? मेरी भाव-भङ्गी टूटी, जब कि मैंने गङ्गा को अपने साथ ही गाते हुए सुना—

यह सब कृत्रिम भेद-भाव हैं, इनमें तत्व न जान,
लग जा सबके गले प्रेम से, तज झूठा अभिमान।
सबका एक वही भगवान!

गङ्गा ने मेरे पैर को पकड़ कर मेरे जूते पर अपना सर रख दिया। उसके नेत्रों से आँसू निकल रहे थे। मैंने उसके सर पर हाथ रख कर कहा—गङ्गा!

"हाँ।"

"अब तुम सन्तुष्ट हो?"

"सन्तुष्ट? इससे अधिक गहरा कोई शब्द हो तो वह मैं हूँ। कई दिनों की मेरी कामना आज सफल हुई है। मैंने आपके मुख से स्वयं यह गान सुन लिया, मेरा यह सौभाग्य है। बताइए, क्या कभी सारे मनुष्य इसी प्रकार का गान गाने लगेंगे? क्या रायसाहब इसी प्रकार कभी गाएँगे? क्या पुजारी जी सबको गले लगाने के लिए तैयार होंगे? क्या चमार और भङ्गी से कोई घृणा न करेगा?"

"परन्तु चमार-भङ्गी से घृणा करने का तो कारण है।"

"क्या?"

"वे गन्दे कपड़े पहनते हैं।"

"उनका इसमें क्या दोष है?"

"और किसका दोष है? उनके कपड़े भी कोई और धो जाय? ज़रा सा साबुन लगाते हुए उनकी जान निकलती है?"

"परन्तु इसमें उनका दोष कहाँ है? उनके पास इतने पैसे कहाँ जो साबुन लाकर कपड़े धोवें? खाने के तो लाले पड़े रहते हैं। यह सारा दोष इन ब्राह्मण और वैश्यों का है। उनसे गन्दे-गन्दे तो कराते हैं काम, और फिर देते हैं दिन भर में चार टके। उसमें वे क्या-क्या कर लें? क्या पहनें और क्या धोएँ? यदि उनको भी दो रुपए रोज़ मिलें और घास, कण्डे, चमड़ा आदि से हाथ न लगा कर दफ़्तर में बैठ कर काम करने को मिले तो वे भी आप लोगों के से कपड़े पहनने लगें। और फिर क्या घृणा का यही कारण है?"

"और क्या?"—मैंने लज्जित होकर कहा। उसकी बातों का उत्तर मेरे पास क्या था। वह बोली—"यदि मैले कपड़े ही घृणा का कारण हैं तो यह हलवाई रोज़ गन्दे कपड़े पहने रहते हैं, इनकी बनाई हुई मिठाई लोग क्यों खा लेते हैं? भड़भूँजा गन्दे कपड़े पहनता है तो उसके हाथ का भुना हुआ दाना कैसे ग्रहण कर लेते हैं? अनेकों ब्राह्मण गन्दे कपड़े पहन कर भीख माँगते फिरते हैं, उन्हें लोग फिर भी 'पण्डित जी' क्यों पुकारते हैं? उनसे घृणा करके उन्हें अछूत क्यों नहीं कह देते?"

मैं अपनी हार तो नहीं मानना चाहता था, परन्तु मन ही मन मैं अपने समाज के अन्याय के लिए लज्जित हो रहा था, उसे मैं क्या उत्तर देता? वह ठीक कह रही थी। हम पढ़े-लिखे उच्च वर्ण के लोग बहुधा इन 'गन्दे कपड़ों' की आड़ में ही अछूतों पर प्रहार करते हैं, परन्तु क्या वे गङ्गा के उन साधारण प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे?

मैंने अपनी प्रतिष्ठा बचाए रखने के लिए उस बात को वहीं समाप्त करना चाहा। मैंने कहा—गङ्गा, अभी तुम इन बातों को समझती नहीं हो। परन्तु यदि अछूत शुद्धता से रहेंगे तो कुछ दिनों में उनसे कोई भी छुआ-छूत न रक्खेगा।

"तो क्या यदि हम लोग साफ़ कपडे पहनें और सफ़ाई से रहे, तो ऊँची जाति वाले हमे अपना लेगे ? हम भी उनके समान स्कूल मे पढ सकेंगे ? भगवान के दर्शन कर सकेंगे ?"

"हॉ !"—मैने धीरे से कहा, परन्तु मेरी आत्मा मुझे इस झूठ के लिए काट रही थी। क्या वह युग हिन्दू-समाज मे इतना शीघ्र आ जायगा ? असम्भव ! परन्तु गङ्गा इससे बडी प्रसन्न हुई। शायद उसकी आत्मा इस असमानता पर जलती थी, इसीलिए समानता के समाचार उसके लिए इतने शान्ति और उल्लास के होते थे। वह चमारी थी, वह अपढ थी, वह मैली-कुचैली थी, परन्तु उसके भीतर एक सजीव हृदय और जाग्रत मस्तिष्क था। वह समझ सकती थी, वह अनुभव कर सकती थी। अछूतों की जिस जीवित आत्मा को ऊँचे हिन्दुओं ने कुचल कर नष्ट कर डाला है, उसका कुछ अंश उसमे शेष था। इसीलिए वह अपने सम्प्रदाय के लिए बलिदान कर सकती थी। जो अपने दिन भर की कमाई को समानता के एक गाने के लिए भेंट करके भूखी रहे, उसके समान हृदय नामधारी द्विजों मे कितने निकलेंगे ? परन्तु वे हृदय अत्याचारियों की छातियों मे नहीं, पीड़ितों की छातियों मे ही निवास करते है।

२

रायसाहब के यहाँ का उत्सव समाप्त हो चुका था। गङ्गा को मैंने एक नया गीत सिखाया था, उस दिन सन्ध्या को वह उसे गाकर सुनाने वाली थी, अतः मैं उसके झोंपड़े की ओर को चल दिया। रायसाहब के मकान से कुछ दूर मेरे मार्ग में एक महादेव का मन्दिर था। जब मैं उसके पास पहुँचा तो जो कुछ देखा, उससे विस्मित रह गया। कई लोग गङ्गा को सड़क की ओर को घसीट रहे थे। मुझे यह देख कर क्रोध आ गया। इन लोगों का इतना पतन, एक असहाय बालिका पर इतना अत्याचार ! मै दौड़ कर वहाँ पहुँचा और जिसने गङ्गा के कन्धे को पकड़ रक्खा था, उसका हाथ मैंने पकड़ लिया। वह और उसके साथी मेरी ओर विस्मय से देखने लगे और गङ्गा रोती हुई भाग कर मेरे पास खड़ी हो गई। मैने उस मनुष्य से पूछा—इस लड़की को क्यों घसीट रहा है ?

"मन्दिर में घुसना चाहती थी।"

"फिर, क्या हर्ज था ?"

"भला कभी ऐसा हुआ है ? चमार की औलाद और मन्दिर के ऊपर चढ आवे। इसका इतना दुस्साहस ?"

"तो उसे सीधी तरह से क्यों नहीं कह दिया ? इस प्रकार घसीटने की क्या आवश्यकता थी ?"

"तो क्या उसके पैरों पड़ कर खुशामद करते कि वह मन्दिर मे न जाय ? इन नीच लोगों को जितना ही मुँह चढाओ, उतने ही धृष्ट होते जाते है। इनके लिए एक ही दवा है कि इनका सर कुचल दिया जाय।"

"अच्छा, कुछ दिन और देखो, शायद यह दवा तुम्हीं को पीनी पड़ेगी।"—यह कह कर मैने गङ्गा का हाथ पकडा और उसके घर की ओर को चल दिया। वे लोग कुछ देर तक तो अवाक् होकर मेरे पीछे देखते रहे, फिर यह कह कर कि—"घोर कलजुग आ गया बाबा, अब ब्राह्मण भी चमार-भङ्गी की हिमायत करने लगे"—वे मन्दिर की ओर चले गए।

मार्ग में गङ्गा ने पूछा—क्या आप मन्दिर में जायँगे ?

"क्यों ?"

"मै यह फूल लाई थी, क्या आप महादेव जी पर चढा देंगे ?"

"तुम महादेव जी पर फूल चढ़ाने क्यों गई थीं, गङ्गा ?"

"उस दिन आपने कहा था न ?"

"क्या कहा था ?"

"कि यदि मैं साफ़ कपड़े पहनूँगी तो भगवान के दर्शन हो जायँगे।"

"इसीलिए तुमने कपड़े धोए हैं ?"

"हाँ ! मुझे आशा थी, यदि स्नान करके साफ़ कपड़े पहन कर मन्दिर मे जाऊँगी, तो भगवान अपने दर्शन कर लेने देंगे। इसीलिए आज मैंने साबुन से कपड़े धोए थे।"

"गङ्गा !"

"हाँ !"

"तुम एक बात सुनोगी ?"

"क्या ?"

"उस दिन मैने झूठ बोला था।"

"झूठ ?"

"हाँ, झूठ। मैने तुमसे कहा था कि यदि चमार साफ़ कपड़े पहनेंगे तो ऊँची जाति वाले उन्हें अपना लेंगे। परन्तु यह सत्य नहीं है। उस दिन मेरे ब्राह्मणत्व के अभिमान ने मुझे अन्धा कर दिया था। इसीलिए मैंने तुमसे वे बाते कही थीं। मैं नही जानता था कि तुम्हारी बुद्धि इतनी कुशाग्र है कि तुम मन्दिर मे जाने के लिए तैयार हो जाओगी।"

"तो मेरी बात ठीक थी?"

"बिलकुल। अभी ब्राह्मण-वैश्यों में वह भाव उत्पन्न नहीं हुआ। कब होगा, कहा नहीं जा सकता। अभी एक 'अछूत' उनके लिए 'अछूत' है, चाहे वह पढ़ा-लिखा हो, शुद्ध-पवित्र रहता हो, सदाचारी हो, धनिक हो। उसने एक अछूत के घर उत्पन्न होने का जो अपराध किया है, वह समाज के न्यायालय मे क्षम्य नही है। यह एक अत्याचार है, निरङ्कुशता है, हमारे समाज के नाम पर गहरी कलङ्क-कालिमा है; इसे कुछ लोग मानने लगे हैं, परन्तु वे असहाय हैं। समाज के सामने विद्रोह का झण्डा वे अभी उठा नहीं सकते।"

"परन्तु क्या महादेव जी भी इन बातों को नही समझते?"

"कौन से महादेव जी?"

"जो मन्दिर मे बैठे हैं।"

"वे महादेव जी नही हैं।"

"तो फिर कौन हैं?"

"वह तो पत्थर की मूर्ति है। उसमें कुछ समझने की शक्ति है न करने की। उसके नाम पर यह ऊँचे आदमी चाहे जो कुछ करते हैं। यदि महादेव जी इस मन्दिर मे होते तो वे कभी तुम्हें इस प्रकार घसिटने न देते। उनके यहाँ सब एक बराबर है।"

"वे कहाँ रहते है?"

"सब जगह।"

"यहाँ भी हैं?"

"वे यहाँ हैं, तुममें हैं, मुझमें हैं, सब में हैं।"

"क्या वे ही महादेव जी गिर्जे में भी हैं?"

"हाँ, सिर्फ़ नाम उनका वहाँ दूसरा है।"

वह बड़े भोलेपन से इन गुत्थियों को सुलझा रही थी। कुछ देर तक वह चुप रही और फिर बोली—आप कहते हैं कि महादेव जी ही गिर्जे मे हैं?

"हाँ।"

"परन्तु वहाँ वे मन्दिर के महादेव जी की भाँति निर्दय भेद-भाव रखने वाले और नीचों से घृणा करने वाले नही है। गिर्जे के महादेव जी दयालु है, सबको एक दृष्टि से देखने वाले है। हमारे पड़ोस का मुरली जब से खिस्तान हुआ है, तब से वह सबके साथ जाकर गिर्जे मे बैठता है। सब ईसाई उससे हाथ मिलाते हैं। जो पादरी साहब हमारे यहाँ आया करते थे, वे कभी-कभी उसके साथ खाना खाया करते है। यही नहीं, जब कभी वह यहाँ आता है तो रायसाहब की कुर्सी पर बैठता है। एक दिन वह कह रहा था—'हिन्दू अपने भगवान से ईसाइयों के भगवान की ज़्यादा इज़्ज़त करते हैं। क्योंकि जब मैं हिन्दू था तो कोई मेरी ओर देखता भी नही था और जब से ईसाई हुआ हूँ, बड़े-बड़े हिन्दू हाथ मिलाते हैं और पास बिठाते है।' पुजारी जी के महादेव जी से तो ईसाइयों के महादेव जी अच्छे हैं।"

"क्या तुमने भी कभी ईसाई हो जाने का विचार किया है?"

"किया था, एक बार।"

"फिर क्यों नही हुईं?"

"यह सोच कर कि शायद कभी हमारे महादेव जी ही अपने दर्शन देने की कृपा कर दे।"

"गङ्गा, तुम इतनी चतुर हो। कण्डे बेचना ही तुम्हारा काम नहीं है।"

"और हम लोगों के भाग्य मे है ही क्या?"

"तुमने कुछ पढ़ा-लिखा था?"

"कौन पढ़ाता? चमारों मे कोई पढ़ा-लिखा नहीं। ऊँची जात वाला कोई हम लोगों के पास बैठ सकता है? पादरी साहब पढ़ाना चाहते थे, परन्तु मैं उनके यहाँ नहीं गई।"

"तुम्हारी पढ़ने की इच्छा है?"

"इच्छा तो है, परन्तु पढ़ाएगा कौन? और पढ़ने कौन देगा? पण्डितों को मालूम हो जायगा तो कहेंगे—'लो, चमार की लड़की अब पुस्तक पढ़ेगी!' इतने भाग्य कहाँ? चमारों के लिए तो यह सब स्वप्न हैं।"—एक आह भर कर वह चुप हो गई।

उसके एक-एक शब्द से उसके हृदय की व्यथा टपकती थी। उन सरल परन्तु सच्चे शब्दों मे, उच्च वर्णों

के लिए उसके श्राप-घृणा-मिश्रित विद्रोह की गन्ध आती थी। एक चोट खाया हुआ पक्षी कुछ कहता नहीं है, परन्तु उसकी तड़पती हुई एक सिसकारी जो अर्थ रखती है, वह सहस्रों शब्दों में दिया हुआ श्राप नहीं रख सकता। यही दशा गङ्गा की आह की थी। वह बोली थी और बहुत-कुछ बोली थी, परन्तु उन शब्दों ने मेरे हृदय पर वह प्रभाव न किया था, जो उसकी एक दबी हुई आह ने। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि हमारे निरङ्कुश समाज के पापों की कलुषित धारा मेरे सामने बह रही है और गङ्गा उस आह से मुझे फूँक कर उस धारा में फेंके दे रही है। गङ्गा ने कुछ कहा, पर मैं सुन न सका, क्या। परन्तु वह भयानक दृश्य मेरे सामने से हट गया। मैंने पूछा—क्या कहा, गङ्गा?

"आप क्या सोच रहे हैं?"

"मैं यह सोच रहा था कि हम लोग अछूतों पर कैसा अत्याचार कर रहे हैं। वे हमारे समाज के अङ्ग हैं, परन्तु हमारे लिए वे त्याज्य हैं। ईसाइयों के वे कुछ भी नहीं लगते, फिर भी वहाँ उनका स्वागत होता है।"

"परन्तु क्या किया जा सकता है?"

"किया जा सकता है, बहुत कुछ।"

"कौन करेगा?"

"समाज नहीं, व्यक्ति। उनमें से एक मैं हूँ।"

"आप?"

"हाँ, मैं। मैंने तुम्हें समानता का राग सुनाया था। तुमने मुझे समानता का पाठ पढ़ाया है। समाज के पाप का कुछ अंश धोने के लिए मैं तुम्हें अपने साथ रक्खूँगा। बोलो गङ्गा, तुम मेरे साथ चल कर मेरे घर रहोगी?"

"नहीं।"

"हाँ!"

"नहीं।"

"क्यों?"

"आपके ग्राम वाले क्या कहेंगे?"

"इसकी परवाह नहीं। वे मेरा बहिष्कार करेंगे, करें। मैं इसके लिए तैयार हूँ।"

"मेरे लिए इतना बड़ा दण्ड भोगेंगे।"

"तुम्हारे लिए नहीं, अपने अपराधों के लिए, अपने पुरुषाओं के अपराधों के लिए!"

"मुझे क्या करना पड़ेगा?"

"तुम मुझे भोजन बना कर दिया करोगी और मैं तुम्हें पढ़ाऊँगा!"

"आप यह क्या कर रहे हैं? आप ब्राह्मण हैं, मैं चमारी हूँ। आप—मेरे हाथ का—खाना खाएँगे?"

"भूल गई, मैंने तुम्हें क्या सिखाया था—

वैश्य, ब्राह्मण, चमार नाई।
हिन्दू, मुस्लिम या ईसाई।
यह सब कृत्रिम भेद-भाव है, इनमें तत्व न जान,
लग जा सबके गले प्रेम से, तज झूठा अभिमान।
सबका एक वही भगवान?

"अच्छा!"

"तै रहा?"

"रहा।"

३

ग्राम में पहुँचे तो उपद्रव मच गया। जिस बात की आशा थी, वही हुई। उस खलबली पर मुझे आश्चर्य न हुआ, आश्चर्य तो तब होता, जबकि वह खलबली न मचती। सब जगह यही चर्चा होने लगी। पण्डित श्यामलाल के घर में एक चमार की लड़की रहती है, भला यह बिरादरी को कभी सह्य हो सकता था। पञ्चायतें होने लगीं और सबने मिल कर मुझे दण्ड भी दे दिया। पञ्च कौन थे? बड़े-बड़े नामधारी ब्राह्मण, जिनकी चोटी कुएँ से जल खींच कर ला सकती थी, जिनके तिलक आकाश के इन्द्र-धनुष को भी मात करते थे, जिनके ओष्ठ 'राम-राम' कहते-कहते मोटे पड़ गए थे। परन्तु उनके भीतरी जीवन क्या थे? एक, दो-तीन गर्भ गिरा चुका था; दूसरा छिप-छिप कर शराब पिया करता था; तीसरे ने अपने पुत्र की वधू पर ही हाथ साफ़ किया था; चौथे का सम्बन्ध एक सुनारिन से था; पाँचवें ने अपनी पुत्री के श्वसुरालय का सारा धन हज़म किया हुआ था और वह पुत्री विधवा होकर मारी-मारी फिरती थी। यह थे 'पञ्च' जो लम्बे-लम्बे हाथ चला कर मेरा न्याय करने बैठे थे। उनके पास रुपया था, उनके पास शक्ति थी, अतः वे बिरादरी को जिधर चाहते थे, नचाते थे। जो उनका शत्रु था, वह बिरादरी का शत्रु था; जो उनका मित्र था, वह बिरादरी में मान्य था। वे इसी बल पर अपने काले कुकर्मों पर पर्दा डाल सकते थे। बिरादरी

की पञ्चायतों के हाथ में और तो शक्ति रही नहीं है। हाँ, हुक्का-पानी का बन्द करना उन्होंने हाथ में रक्खा है, जो पञ्चों के इशारों पर दुरुपयोग में लाया जा सकता है। मेरे पास हुक्मनामा आ पहुँचा। यदि पञ्चायतों का ही राज्य होता तो मेरा अपराध फाँसी के दण्ड से कम का नहीं था। परन्तु मेरे सौभाग्य से उतना अधिकार उन्हें नहीं था। मुझे "बहिष्कार" का दण्ड मिला था। मेरा हुक्का-पानी बन्द था। कब तक? जब तक कि मैं गङ्गा को घर से निकाल कर सारी बिरादरी को मिठाई-पूरी न खिलाऊँ और महादेव जी पर एक सौ एक रुपए और एक नारियल न चढ़ाऊँ।

मैं इससे विचलित न हुआ था। मैंने जो कार्य अपने ऊपर लिया था, उसके सङ्कटों को जानता था और उनका सामना करने के लिए तैयार था। मैं गङ्गा को योग्य बनाने का प्रयत्न कर रहा था और उसमें मुझे सफलता हो रही थी, इससे अधिक सन्तोष की बात मेरे लिए और क्या हो सकती थी? गङ्गा शुद्ध रहना सीख गई थी, भोजन अच्छा बनाने लगी थी, घर का प्रबन्ध करना उसे आ गया था। उसी गति से वह पढ़ने में भी आगे बढ़ रही थी। उसे ईश्वर ने बुद्धि दी थी और स्वर दिया था। मैं उन्हें उपयोगी साँचे में ढाल रहा था। सब से अधिक उन्नति उसने सङ्गीत में की थी। वह अच्छा गाने लगी थी और कुछ-कुछ सितार बजाने लगी थी। नित्य नियम से वह 'एक पिता के सब सन्तान' सितार पर गाया करती थी।

दिन इसी प्रकार बीतने लगे। कई महीने इसी प्रकार व्यतीत हो गए। गङ्गा अब पहले की गङ्गा नहीं रह गई थी। उसके हाव-भाव, वेश-भूषा, बोल-चाल, रङ्ग-ढङ्ग आदि को देख कर कोई नहीं कह सकता था कि वह एक अछूत की लड़की थी। और 'अछूत' शब्द चमारों के मस्तक पर थोड़े ही लिखा है। यदि उन्हें अच्छी परिस्थितियों में रक्खा जाय तो वे ब्राह्मण के पुत्रों को भी मात कर सकते हैं। ब्राह्मणों और उच्च वर्ण के हिन्दुओं की सन्तान ने ही संसार में सफल होने का ठेका थोड़े ही लिया है।

इटावा ज़िले में मेरा सम्बन्ध पक्का हो गया था। उधर से भी विरोध की मुझे आशा थी, परन्तु अभी तक उसके कोई लक्षण मुझे दिखाई नहीं पड़े थे। परन्तु इस प्रकार कब तक चल सकता था। मेरे श्वसुर भी तो एक कट्टर ब्राह्मण थे, वह भला यह कब सहन कर सकते थे कि जो एक अछूत को अपने घर में शरण दिए हुए है, उसके साथ उनकी कन्या का विवाह हो। आ ही तो धमके। लाल-पीले हो रहे थे, मानो मैं उनका भावी जमाता नहीं, किन्तु कोई गिरा-पड़ा पापी हूँ।

"श्यामलाल!"—आप बोले।

"कहिए!"

"यह क्या कर रहे हो?"

"क्या?"

"एक चमार की लड़की को अपने घर में रख रहे हो, और क्या?"

"इसमें हर्ज क्या है? क्या और लोगों के यहाँ नौकर नहीं है?"

"नौकर हैं तो चमार तो नहीं हैं? अगर नौकर ही रखना था तो कोई ब्राह्मण नहीं मिलता था?"

"जब नौकर ही रखना है तो वह ब्राह्मण हुआ तो क्या, चमार हुआ तो क्या। कोई ब्राह्मण नौकर रखता है, कोई ठाकुर नौकर रखता है, कोई कहार नौकर रखता है, मैंने एक चमार नौकर रख लिया। काम कराने से मतलब।"

"तुम पर मुझे शर्म आती है।"

"क्यों?"

"क्योंकि तुमने सारे पुरखाओं का नाम नीचा कर दिया। अगर तुम्हारे बाप ज़िन्दा होते तो तुम्हारा गला घोंट देते। तमाम बिरादरी चर्चा कर रही है। सुन कर हम रिश्तेदारों की भी नीची होती है।"

"पुरखाओं का नाम ही कब था, जो नीचा कर दिया। और रही बिरादरी की बात, सो बिरादरी के पास सिवाय ऐसी चर्चा करने के और काम ही क्या है?"

"लेकिन बिरादरी में रह कर बिरादरी की बात माननी ही पड़ती है।"

"वे दिन गए।"

"वे दिन नहीं गए, तुम्हें बिरादरी की बात माननी ही पड़ेगी।"

"हाँ?"

"हाँ, और इस लड़की को घर से निकालना ही पड़ेगा।"

मेरा यूरोप-भ्रमण

[डॉ० धनीराम प्रेम]

(शेषांश)

जर्मनी की ओर

जर्मनी एक विचित्र देश है। विगत महायुद्ध में करारी पराजय पाने पर भी आज वह अपना शिर पूर्व की भाँति ही ऊँचा किए हुए है। यद्यपि सारे राष्ट्रों ने जर्मनी के साथ काफ़ी अन्याय किया है और उसे युद्ध की क्षति-पूर्ति स्वरूप अपना हृदय काट कर देना पड़ रहा है, फिर भी अपने व्यापार, अपने कला-कौशल तथा अपने वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण आज भी वह देश यूरोप का सिरमौर बना हुआ है।

राजनीति के वही थपेड़े आज जर्मनी को लग रहे हैं, जो अन्य यूरोपीय राज्यों को लग चुके है, या अब लगने प्रारम्भ हुए है। महायुद्ध के बाद लोगों की श्रद्धा काइज़र के एकतन्त्री शासन पर से उठ गई थी और फल-स्वरूप फॉन हिण्डेन्बुर्ग के अधिनायकत्व मे देश ने प्रजातन्त्रवाद की शरण ली। प्रजातन्त्रवाद को सफलता प्राप्त हुई है, परन्तु दलबन्दी वहाँ भी बहुत भीषण रूप धारण कर रही है। किसी एक दल का बहुमत नहीं है, और फल-स्वरूप आजकल की सरकार कई दल वालों ने मिल कर बनाई। आजकल सबसे प्रबल दल है हेर हिटलर का, जिसे 'नाज़ी' अथवा 'नैशनल सोशलिस्ट पार्टी' कहते है। ये लोग साम्यवादी तो है, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीयता के स्थान पर इनमे राष्ट्रीयता का भाव प्रबल है! इनका उद्देश्य वैरसाई की सन्धि को छिन्न-भिन्न कर देना है। कुछ समय पूर्व इनकी संख्या जर्मनी की पार्लामेण्ट में केवल १२ थी। यह संख्या पिछले चुनाव मे बढ़ कर १०७ हो गई। अब केवल 'सोशल डीमोक्रैट्स' की संख्या ही इनसे अधिक—१४३—है। हिटलर की इस अभूतपूर्व विजय से सारे संसार में आतङ्क छा गया है। सबका विश्वास है कि आगामी कुछ वर्षों मे ही जर्मनी का राज्य-भार हिटलर के हाथों मे होगा और उस समय फिर से एक महायुद्ध होने की सम्भावना है। वर्तमान निर्वाचन ने भी इसकी पुष्टि की है।

जर्मनी के सामाजिक जीवन में भी बहुत-कुछ परिवर्तन हुआ है। सबसे प्रबल परिवर्तन हुआ है वहाँ के युवकों और युवतियों के सामाजिक जीवन मे। वे लिङ्ग-भेद को मिटाने पर तुल गए हैं। स्त्री और पुरुषों के निर्दोष सहवास की वृद्धि के लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए वहाँ पर क्लबें खुली हुई हैं, जहाँ स्त्री-पुरुष साथ-साथ नग्न नृत्य तथा व्यायाम करते है। ये प्रयोग कहाँ तक सफल होंगे, यह कहना बहुत कठिन है।

जर्मनी सब प्रकार की शिक्षा का केन्द्र है, विशेष कर उद्योग-धन्धों की तथा डॉक्टरी की शिक्षा तो यहाँ सर्वोत्तम है। यहाँ कुल ३० के लगभग विश्वविद्यालय हैं, जिनमें म्यूनिच, बर्लिन, हाइडेलबर्ग आदि प्रसिद्ध हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों का तो जर्मनी घर है। रौञ्जेन, हर्त्स, कौक, बुन्सेन, हैकल, आइन्स्टाइन आदि वैज्ञानिकों के नाम जगत-प्रसिद्ध हैं विश्वविद्यालयों में भारतीय विद्यार्थियों के साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया जाता है। यहाँ पर रहने-सहने तथा फ़ीस आदि का व्यय भी इङ्गलैण्ड से कम होता है।

कुछ भारतीय विद्यार्थियों के मस्तिष्क मे जर्मनी की शिक्षा के विषय मे भ्रामक विचार भरे हुए हैं। वे समझते है कि वहाँ डिग्रियाँ मिलना बहुत सरल है। परन्तु वास्तव में यह बात नही है। वहाँ पर अब प्रवेश पाना तब तक कठिन होता है, जब तक कि विद्यार्थी के पास कोई भारतीय डिग्री नही होती। इसके अतिरिक्त जर्मन भाषा का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। उसके बाद वहाँ कई वर्ष रह कर पढ़ना आवश्यक होता है। जर्मन विश्वविद्यालयों में भारत की भाँति क्लासें तथा परीक्षाएँ नहीं होतीं। वहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी इच्छा के अनुसार अपना क्षेत्र चुन लेने की स्वतन्त्रता

दी जाती है। परीक्षाएँ प्रायः मौखिक तथा वैयक्तिक होती हैं और प्रोफ़ेसर को कुछ दिनों की सूचना देने पर कभी भी दी जा सकती हैं। एक बार असफल होने पर पूरा वर्ष नहीं खोना पड़ता, न सहस्रों विद्यार्थियों के लिए एक साथ एक से ही पर्चे दिए जाते है।

बाज़ल से मैंने जर्मनी मे प्रवेश किया। जर्मनी में रेलगाड़ियाँ काफी आराम की होती है। इनमे तीन दर्जे होते हैं। तीसरे दर्जे के यात्रियों के साथ भारत की भाँति भेड़-बकरियों का सा व्यवहार नहीं किया जाता। किराया भी अन्य देशों की अपेक्षा कम है। ऐक्सप्रेस गाड़ियों मे यात्रा करने वालों से कुछ अधिक चार्ज किया जाता है। ऊपर के दर्जों मे तो यात्रियों को अनेक सुविधाएँ हैं, जैसे रेडियो, वायरलैस, टेलीफ़ोन आदि।

बाज़ल से चल कर रेल की लाइन एक वन मे होकर जाती है, जो 'ब्लैक फारैस्ट' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी मे 'बादन-बादन' नामक प्रसिद्ध नगर है, जो अपने चिकित्सा के जल-स्रोतों के लिए प्रसिद्ध है। रात्रि को गाड़ी हाइडेलबर्ग नगर पहुँची। यहाँ मैं एक रात्रि के लिए उतरा। रात्रि को ठहरने के लिए कई होटलों की सूची मेरे पास थी, परन्तु स्टेशन पर मुझे पता चला कि वहाँ दो-एक स्थान ऐसे थे, जहाँ यात्रियों को स्वल्प व्यय पर अच्छा कमरा और भोजन मिल जाता था। स्टेशन पर ही होटलों की ओर से एक व्यक्ति होटलों के विषय में सूचना देने तथा कमरा देने के लिए रहता है। उसी को एक मार्क (जर्मनी का सिक्का, जो एक शिलिङ्ग के बराबर होता है) देकर एक कमरा अपने नाम करा लिया। होटल मे पहुँचने पर डेढ़ मार्क और देने पर कमरा एक दिन के लिए मिल गया। वहीं पर भोजन की भी व्यवस्था थी। एक मार्क देकर जितना अच्छा भोजन वहाँ मिला, उतना अच्छा फ़्रान्स और स्विट्ज़रलैण्ड में तिगुना देकर भी नहीं मिला था। जिस स्थान पर मैं ठहरा था, वहीं एक रैस्टोराँ भी था, जहाँ विद्यार्थी भोजन करने आते थे। वहाँ कई जापानी, चीनी तथा ईरानी विद्यार्थियों को देखा। एक ईरानी से कुछ वार्तालाप करना चाहा, परन्तु वह फ़ारसी तथा जर्मन के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं बोलता था। उससे टूटी-फूटी जर्मन में वार्तालाप करने पर विदित हुआ कि ईरानी विद्यार्थी अधिकतर जर्मन भाषा पढ़ कर शिक्षा के लिए जर्मनी जाते हैं, इङ्गलैण्ड जाने वालों की संख्या बड़ी नहीं है।

हाइडेलबर्ग एक प्राचीन नगर है; यहाँ की जन-संख्या लगभग ८०,००० है। नैकार नदी के दोनों ओर यह बसा हुआ है। अपने विश्वविद्यालय के लिए—और विशेषकर डॉक्टरी की शिक्षा के लिए—यह नगर जगत-प्रसिद्ध है। यह विश्वविद्यालय जर्मनी का सर्वप्रथम विश्वविद्यालय है और सन् १३८६ में स्थापित हुआ था। सहस्रों विद्यार्थी—स्त्री और पुरुष—इसमें शिक्षा पाते हैं। यहाँ का विद्यार्थी-जीवन इतना प्रसिद्ध है कि उसके विषय में 'Student Prince' नाम का जो नाटक लिखा गया था, वह केवल न्यूयॉर्क में ही ९०० बार खेला गया था। विद्यार्थियों के लिए जो भोजन-भवन है, उसमे केवल ७ आने मे अच्छा भोजन मिल जाता है। सहस्रों विद्यार्थी इस भवन से लाभ उठाते हैं। दर्शनीय स्थानो मे बिस्मार्क गार्डन, मार्केट स्क्वेयर, शैफ़ेल हाउस (Scheffelhaus) जिसकी प्रसिद्धि Student Prince के कारण हो गई है, प्राचीन क़िले के भग्नावशेष, इत्यादि हैं।

हाइडेलबर्ग से कुछ दूर पर फ़्राङ्कफ़ोर्ट नगर है, जो माइन नदी के किनारे है। यह नगर जर्मनी के अत्यन्त समृद्धिशाली नगरों मे से एक है। व्यापार और उद्योग-धन्धों का यह घर तो है ही, साथ ही अत्यन्त सुन्दर भी है। देखने मे छोटा बर्लिन विदित होता है। इस नगर की एक विशेषता यह भी है कि यहाँ पर जर्मनी के प्रसिद्ध कवि गुइटे (Goete) का जन्म हुआ था। गुइटे के नाम पर कई बाज़ार, मार्ग, अजायबघर आदि बने हुए है। इसी नगर में मैंने पहले-पहल 'ऑटोमैटिक रैस्टोराँ' (Automatic restaurant) देखे। इन रैस्टोराँ में परोसने वालों की आवश्यकता नहीं पडती। वहाँ अनेक मैशीने लगी हुई हैं, जिनमें शीशों से जड़ी हुई आलमारियों मे विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ—मांस, अण्डे, सैंड्विच, डबल रोटी, फल आदि—प्लेटों में रक्खे रहते हैं। प्रत्येक मैशीन पर प्लेटों का मूल्य लिखा रहता है। वही सिक्का मैशीन मे डाल दीजिए और एक प्लेट बाहर निकल आती है। उसे लेकर पास पड़े हुए मेज़-कुर्सी पर बैठ कर आप भोजन कर लीजिए। इसी प्रकार एक ओर पीने की चीज़ें जैसे शराब, लैमनेड, सोडा, कॉफ़ी

आदि मैशीनों में भरी हुई रहती हैं और पैसे मैशीन में डाल देने पर गिलास में निकल आती हैं। गिलास धोने के लिए भी मैशीनें हैं, जिनके पेच पर लगाते ही वह आप ही आप धुल जाता है। इन वस्तुओं का मूल्य बहुत कम रक्खा जाता है। बीस सेंटीम (दो आने) से अधिक की कोई वस्तु नहीं बिकती। इस प्रकार आठ आने में अच्छा भोजन मिल जाता है। इस स्थानों में सर्वदा भीड़ लगी रहती है। बर्लिन, विएना आदि नगरों में भी मैंने इसी प्रकार के रैस्टोराँ पीछे से देखे थे।

बर्लिन

फ़्राङ्कफ़ोर्ट से चल कर रात भर की यात्रा के बाद बर्लिन आया। गाड़ी ने आनहाल्तेर बानहौफ़ (स्टेशन) पर उतारा। यह स्टेशन जिस सड़क पर था, उसका नाम अपने नक़शे में मैंने 'कनिगग्रेत्सेर स्त्रास' (Koniggratzer strasse) देखा था। बाहर आकर जब मैंने तख़्ते पर उस सड़क का नाम देखा तो मुझे आश्चर्य हुआ; क्योंकि उस पर लिखा था 'स्त्रैसमान स्त्रास'। कारण यह था कि मेरा नकशा जिस समय का था, उस समय सड़क का नाम कनिगग्रेत्सेर स्त्रास था, परन्तु पीछे से उसका नाम बदल दिया गया। कई सड़कें, जिनके नाम पहले बादशाहों के नाम पर रक्खे गए थे, अब प्रजातन्त्रवादी नेताओं के नाम से पुकारी जाती हैं।

पास ही जाकर एक होटल में चार मार्क प्रति दिन के हिसाब से कमरा मिल गया। सामान रख कर और कुछ आराम करने के बाद घूमने निकला। उस दिन रविवार था, परन्तु अजायबघर खुले हुए थे, जो बात लन्दन में कभी नहीं हो सकती। यही नहीं, उस दिन अजायबघरों में फ़ीस भी नहीं ली जाती। नक़शा साथ लेकर चला था, परन्तु एक बार एक पुलिसमैन से मार्ग पूछने का अवसर आ ही गया। मैं ज्योंही पुलिसमैन के पास पहुँचा, त्योंही उसने मिलिटरी सैल्यूट किया और बड़े प्रेम से मार्ग बता दिया। फिर कई बार मैंने पुलिस वालों का यही व्यवहार देखा। मुझे इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि भारतवर्ष में तो पुलिस का प्रत्येक सिपाही अपने को गवर्नर से भी अधिक समझता है। एक स्वतन्त्र देश के जल-वायु में यही तो प्रभाव है।

बर्लिन की जन-संख्या ४२ लाख है और इसका संसार के नगरों में तीसरा नम्बर है। बर्लिन का हृदय है वहाँ की उन्तेर देन लिन्देन (Unter den Linden) नामक सड़क। शोभा, व्यापार आदि सभी के लिहाज़ से यह सब सड़कों से बाज़ी मार ले गई है। इसके एक सिरे पर तिएर गार्तन (Tier Garten) नामक बाग़ है, और दूसरी ओर प्रायः सभी प्रसिद्ध अजायबघर तथा बादशाहों के निवास-स्थान। बाग़ में ही जर्मनी की पार्लामेण्ट, 'राइस्टा' (Reichtag) के विशाल भवन हैं। इस प्रकार उन्तेर देन लिन्देन किसी समय शाही सड़क थी।

तिएर गार्तन लन्दन के हाइड पार्क के समान है, परन्तु उससे अधिक सुन्दर है। इसमें अनेक दर्शनीय स्थान हैं। इसके एक किनारे पर बर्लिन का ज़ू है, जिसमें अनेक भाँति के पशु-पक्षी हैं। ज़ू के पास ही बर्लिन की एक विचित्र संस्था है, जिसे वहाँ प्लानेतारिउम (Planetarium) कहते हैं। इसमें मैशीनों द्वारा एक कृत्रिम आकाश बना कर सूर्य, चन्द्र और तारों की गति और उनके सम्बन्ध आदि के विषय में बड़े मनोरञ्जक दृश्य दिखाए जाते हैं। उसे और भी लोकप्रिय बनाने के लिए साथ ही सिनेमा के फ़िल्म भी दिखाए जाते हैं। प्लानेतारिउम से निकल कर कूरफ्यूरस्तेन दाम (Kurfursten damm) नामक सड़क पड़ती है। इसी सड़क पर बर्लिन के सुप्रसिद्ध सिनेमा और काफे हैं। रात्रि में बर्लिन की सैर करनी हो, तो इस सड़क और फ़्रीदरिश स्त्रास नामक सड़क के दृश्यों को अवश्य देखना चाहिए। साथ ही पास के लूनापार्क में भी एक चक्कर लगा लेना अच्छा होगा, क्योंकि यहाँ संसार के प्रायः सभी प्रकार के खेल-तमाशे और मनोरञ्जन के साधन नित्य ही उपस्थित रहते हैं। हाँ, इनका कुछ भी अनुभव करने के लिए जेब गर्म होनी चाहिए।

घूमने के लिए लन्दन और पैरिस की भाँति ही बस, ट्राम, पातालगामी रेलें आदि दौड़ती हैं। यहाँ इन सवारियों का किराया बहुत कम लगता है, परन्तु आराम उतना नहीं मिलता, जितना लन्दन की सवारियों में। यहाँ की पातालगामी रेलें पैरिस से तो अच्छी हैं, परन्तु लन्दन से मुकाबिला नहीं कर सकतीं।

उन्तेर देन लिन्देन के दूसरे सिरे पर अनेक दर्शनीय स्थान हैं। एक ओर विश्वविद्यालय तथा राष्ट्रीय पुस्तकालय (Staatsbibliothek) हैं। राष्ट्रीय पुस्तकालय संसार के सबसे बड़े पुस्तकालयों में से एक है। इसमे लगभग २५ लाख पुस्तकें है। यहाँ के विश्वविद्यालय में लगभग १३ सहस्र विद्यार्थी है, जिनमें लगभग १,५०० विदेशी है। अन्य शिक्षा-संस्थाओं का विवरण भी मनोरञ्जक है। टैकनीकल हाईस्कूल (Hochschule) में ५,२०० विद्यार्थी हैं। माध्यमिक शिक्षा के लिए १६६ शिक्षणालय हैं, जिनमे लगभग ८१ सहस्र विद्यार्थी हैं। प्राथमिक शिक्षा के लिए ५८५ विद्यालय हैं, जिनमें २,७५,२२५ विद्यार्थी हैं। म्यूनिसिपैलिटी ने विशेष विषयों की शिक्षा के लिए लगभग ६० विद्यालय खोले हैं, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या लगभग २१ सहस्र है। इस प्रकार बर्लिन शिक्षा का एक बड़ा भारी केन्द्र है।

इन संस्थाओं के पास ही प्राचीन बादशाहों के राजभवन तथा अन्य स्मारक-चिह्न हैं। इन भवनों में अब अजायबघर खुले हुए हैं। अभी तक अनेक कमरे शाही समय की दशा में ही सुरक्षित रक्खे हैं, जिन्हें देख कर यह विदित हो जाता है कि भूतपूर्व काइज़र आदि किस शान तथा विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। विलहेल्म पैलेस में गृहनिर्माण-कला का एक विचित्र नमूना दिखाई देता है। बड़े हॉल के ठीक मध्य में खड़े होने पर मनुष्य को अपने शब्द की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है, तनिक भी इधर-उधर हो जाने पर वह नही सुनाई देती। उन्तेर देन लिन्देन से ही विलहेल्मश्त्रास नामक सड़क प्रारम्भ हुई है, जिस पर यहाँ की रिपब्लिक के प्रेज़िडेण्ट तथा अन्य राजकर्मचारियों के निवास-स्थान तथा दफ़्तर हैं। यह सड़क लन्दन की 'ह्वाइट हॉल स्ट्रीट' की भाँति है।

राजभवनों के निकट ही कई अजायबघर हैं—प्राचीन अजायबघर, नूतन अजायबघर, काइज़र फ़्रीदरिश अजायबघर, नैशनल गैलरी, क़िला (Schloss) अजायबघर, टाउनहॉल (Rathaus), कैथीड्रल तथा पैरगामोन अजायबघर। पिछला अजायबघर यहाँ की एक विशेषता है। इसका इतिहास भी बहुत मनोरञ्जक है। एलेक्ज़ेण्डर महान की मृत्यु के कुछ समय बाद स्मर्ना के निकट 'पैरगामोन राष्ट्र' की स्थापना हुई। कुछ ही दिनों मे यह राष्ट्र कला, विज्ञान, वाणिज्य आदि की उन्नति के लिए प्रसिद्ध हो गया। यूनानियों ने एक बार उन पर आक्रमण किया, परन्तु विजयश्री इन्ही के हाथ में रही। उसीके उपलक्ष मे पैरगामोन बादशाह ने एक मन्दिर बनवाया। कुछ समय बाद संसार के अन्य राष्ट्रों की भाँति इसका भी सूर्य अस्त हो गया और मन्दिर आदि सब कुछ पृथ्वी के गर्भ मे समा गए। सन् १८७८ मे कुछ जर्मन अन्वेषकों के परिश्रम से इस मन्दिर के कुछ भग्नावशेष मिले। धीरे-धीरे मन्दिर के अन्य भाग भी मिलने लगे और वे उसी दशा मे बर्लिन ले जाए गए। अब उन सबको मिला कर वह मन्दिर इस अजायबघर में स्थापित कर दिया गया है। इसकी दीवालों पर चारों ओर दैत्यों आदि की मूर्तियाँ बनी हुई है।

बर्लिन में प्रायः नित्य ही एक न एक प्रदर्शिनी होती ही रहती है। अतः वहाँ पर एक ओर स्थायी रूप से कई हॉल आदि बनवा दिए गए हैं। इनके मध्य में एक ४४८ फ़ीट ऊँची मीनार है, जिसे 'फुङ्क तुर्म' (Funk Turm) कहते हैं। इसमे १७७ फ़ीट की ऊँचाई पर रैस्टोराँ है, जिसमें २०० व्यक्तियों के बैठने का स्थान है। यही मीनार रेडियो तथा 'ब्रॉडकास्टिङ्ग' के लिए प्रयोग मे लाई जाती है।

हवाई जहाज़ों का तो बर्लिन अड्डा है। संसार के अनेकों देशों के आने-जाने वाले जहाज़ यहाँ आकर ठहरते हैं। इन जहाज़ों का पोर्ट 'टैम्पल हॉफ़' कहलाता है। प्रति रविवार को यहाँ पर हवाई जहाज़ों के बड़े मनोरञ्जक खेल होते हैं, जिन्हें देखने के लिए सहस्रों व्यक्ति एकत्रित होते हैं। यही पर मैं पहले-पहल हवाई जहाज़ में चढ़ा था। लगभग ५) लेकर बर्लिन के ऊपर पौन घण्टे सैर करा दी थी। टैम्पल हॉफ़ के पास ही 'कार्सटाट-हाउस' नामक एक बहुत ऊँची तथा आधुनिक इमारत है, जो दर्शनीय है।

जिस प्रकार पैरिस के पास वैरसाई में बादशाहों के ग्रीष्म-भवन हैं, उसी प्रकार पौट्सदाम में जर्मन बादशाहों के ग्रीष्म-भवन बने हुए हैं। पौट्सदाम बर्लिन से रेल द्वारा आध घण्टे का मार्ग है। एक अत्यन्त सुन्दर वन में होकर रेल जाती है। यहाँ की जन-संख्या

६८,९०० है। यहाँ पर कई शाही भवन बने हुए हैं। यहाँ के बाग़ वैरसाई के बाग़ों से भी सुन्दर हैं और मीलों मे फैले हुए हैं।

ड्रेसडन

बर्लिन के तीन दिन के निवास के बाद ड्रेसडन की ओर चल दिया। ड्रेसडन बर्लिन और प्राहा के मार्ग में पडता है। उन दिनों वहॉ अन्तर्राष्ट्रीय हाईजीनिक प्रदर्शिनी हो रही थी। उसे देखने के ही लिए वहाँ उतरा था। नगर एल्ब नदी के किनारे बसा हुआ है। नगर की जन-संख्या लगभग ६ लाख है, परन्तु है यह जर्मनी के अत्यन्त सुन्दर नगरों में से एक। यह कला, सङ्गीत आदि के लिए इतना प्रसिद्ध है कि 'कला-नगर' (City of Arts) कहलाता है। जर्मनी के अन्य नगरों की भाँति यहाँ भी आधुनिक सभ्यता के सभी सामान उपस्थित हैं। 'प्रागेर प्लात्स' नामक सड़क पर लन्दन और बर्लिन की बढ़ी-चढी सडकों की भाँति ही शोभा और भीड़ रहती है। हाँ, यहाँ पर एक बात अद्भुत देखी वेश्याएँ यहॉ अधिकता से पाईं। साधारणतया यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि कौन वेश्या है, कान नहीं। परन्तु यहाँ की वेश्याओं मे यह विशेषता देखी कि किसी विदेशी को देखा और 'आलो' (Hallo) तथा Wollen sie kommen mit mir (क्या मेरे साथ नहीं चलोगे?) कह कर उसके पीछे चल दी। इस प्रकार मैंने अनेक वेश्याएँ 'प्रागेर प्लात्स' में घूमते हुए देखी। 'आलो'-'आलो' के मारे नाक मे दम आ गया। बर्लिन, पैरिस आदि किसी अन्य नगर मे यह बात देखने को नहीं मिली थी।

यों तो यहाँ अनेक प्रकार की देखने योग्य वस्तुएँ हैं, परन्तु दो विशेष रूप से दर्शनीय है। एक तो 'त्स्विङ्गर' तथा दूसरी 'हाईजीन-म्यूज़ियम'। त्स्विङ्गर सन् १७११ में राजकुमार ऑगस्टस ने बनवाई थी। वह फ्रेञ्च-कला का उपासक तथा प्रसिद्ध प्रेमी गिना जाता है। उसकी कला-प्रियता का नमूना है, 'जलदेवियों का स्नान-गृह' जो वहीं बना हुआ है। हाईजीन म्यूज़ियम सन् १९११ में बनी थी। इसमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी वस्तुओं का आश्चर्यजनक संग्रह है। इसी म्यूज़ियम के संरक्षण में हाईजीनिक प्रदर्शिनी हो रही थी, जिसमें संसार भर से स्वास्थ्य-सम्बन्धी वस्तुएँ लाकर रक्खी गई थीं। दर्शकों के मनोरञ्जन के लिए कई बातों का प्रबन्ध था, जिनमें से एक थी सर्वप्रिय 'सौ फ़व्वारों की सडक'। इस सडक के बीच मे ९० छोटे और १० बडे रङ्ग-बिरङ्गे फ़व्वारे लगे हुए थे। रात्रि के दस बजे ये फ़व्वारे बिजली के ज़ोर से चलाए जाते थे। उस समय अनेक रङ्गों के इन फ़व्वारों की लम्बी पंक्ति का जो मनोरम दृश्य होता था, वह अवर्णनीय है।

प्रदर्शिनी में एक चॉकलेट की दूकान थी, जिसमें लगभग एक दर्जन लडकियाँ काम करती थी। दूकान बन्द होने को थी, अतः ग्राहक दो-चार ही थे। मैं वहीं खडा होकर चॉकलेट पीने लगा। उनके प्रश्न शुरू हुए। भारतवासी हूँ, यह जान कर सभी वहाँ एकत्रित हो गईं। कुछ देर तक भारत के सम्बन्ध में वार्तालाप होता रहा। न जाने क्यों, वे भारत को स्वर्ग समझती थीं। शायद किसी ने उनको यह बताया हो कि भारत मे रहने वाले यूरोपियनों का जीवन बड़े आनन्द से बीतता है। उनमें—और पीछे से अन्य नगरों की युवतियों में भी—मैंने यह देखा कि ये किसी विदेशी से पत्र-व्यवहार करना बहुत पसन्द करती हैं। उन सभी युवतियों ने लिख-लिख कर मुझे अपने पते दे दिए और चलते-चलते पत्र-व्यवहार करने की याद दिलाई। परन्तु पारस्परिक स्पर्द्धा भी सर्वत्र होती है। एक युवती, जो मुझे स्टेशन का मार्ग दिखाने के लिए साथ भेजी गई थी, मार्ग में मुझसे बोली—'वे पते कहॉ हैं?'

मैंने काग़ज़ उसके हाथ में दे दिया। उसने केवल अपना पता फाड़ कर मुझे दे दिया और काग़ज़ को एक ओर फेंक दिया। कारण पूछने पर उसने कहा—यह मैंने इसलिए किया है कि तुम केवल मुझको ही पत्र लिखो।

प्राहा

ड्रेसडन से चल कर प्राहा (Praha) आया। यह नई रिपब्लिक शेकोस्लोवाकिया की राजधानी है और मोलदाउ (व्लतावा) नदी के किनारे बसा हुआ है। विचित्र नगर है। प्राचीन तथा अर्वाचीन का अपूर्व मिश्रण है। शताब्दियों पुरानी इमारतें और सड़के अब भी विद्यमान हैं। रहन-सहन, वेश-भूषा आदि में अभी तक बहुत-कुछ प्राचीनता है। शेक लोगों की भाषा भी विचित्र है। क्रोन यहाँ का सिक्का है, जो एक रुपए में १२ मिल

सकते हैं। यहूदियों का यहाँ पर एक सिनेगौग (गिर्जा) है। वहाँ पर जो घड़ी लगी हुई है, उसके अङ्क हीब्रू भाषा मे लिखे हुए हैं और उसकी सुइयाँ अन्य घड़ियों की सुइयों से विपरीत दिशा में चलती है।

विएना

प्राहा से विएना का मार्ग बड़ा रमणीक है। मार्ग में कहीं-कहीं पर वन पड़ते हैं, जिनके वृक्ष जाड़े में बर्फ़ के गिरने से ऐसे विदित होते हैं मानो उन्हें श्वेत पोशाक पहिना दी गई हो।

विएना पहुँचते-पहुँचते रात्रि हो गई। एक मित्र स्टेशन पर आ गए थे। उन्होंने मुझे कभी नहीं देखा था, परन्तु पूरी गाड़ी मे मैं एक ही भारतवासी था अतः कठिनता न हुई। वह एक घर में एक कमरा मेरे लिए तलाश करके रिज़र्व करा आए थे। जगह अच्छी थी। लैण्डलेडी अङ्गरेज़ी भी बोल लेती थी। किराया भी कम था। एक सप्ताह का किराया पन्द्रह ऑस्ट्रियन शिलिङ्ग था। चूंकि एक ऑस्ट्रियन शिलिङ्ग लगभग छः आने की होती है, इसलिए कमरे और चारपाई के लिए बारह आने प्रति दिन बहुत कम था।

विएना एक दर्शनीय नगर होने के अतिरिक्त ऐतिहासिक महत्ता भी रखता है। कई बार तुर्कों ने आक्रमण किए, परन्तु वे बुरी तरह हरा दिए गए। सन् १८१४ में नेपोलियन ने इसे अपने अधिकार में कर लिया। सन् १८४८ मे यहाँ का सुप्रसिद्ध बादशाह फ़्रान्सिस योज़ेफ़ सिहासन पर बैठा, जिसने ६८ वर्ष राज्य किया। उसकी मृत्यु के दो वर्ष बाद ही, यूरोपीय महायुद्ध की समाप्ति पर, यहाँ रिपब्लिक की स्थापना हो गई।

विएना में उन दिनों कड़ी धूप पड रही थी, जब इङ्गलैण्ड में ओवरकोट बिना पहने काम नही चलता था। फिर भी नगर इतना सुरम्य है और पार्कों की इतनी इफ़रात है कि नगर मे घूमने में कोई कष्ट नही होता। मुख्य दर्शनीय स्थानों मे से ओपेरा, अजायबघर, राजभवन, सन्त स्टीफ़ेन का गिर्जा, पार्लामेण्ट-भवन, प्रातर (जहाँ विविध प्रकार के खेल-तमाशे नित्य होते रहते हैं और जो नगर-निवासियों का मुख्य क्रीड़ा-स्थल है), विश्वविद्यालय, अस्पताल, श्युनब्रुनैन पैलेस, रिङ्ग डेस १२ नवम्बर (रिपब्लिक घोषित होने के दिन के नाम पर ही इस सड़क का नामकरण हुआ है) आदि हैं। सबसे आश्चर्यजनक हैं वे मकान, जो यहाँ की म्युनिसिपैलिटी ने मज़दूरों के रहने के लिए बनवाए हैं। इनका विस्तृत विवरण 'चाँद' में प्रकाशित लेख 'साम्यवादी विएना' में दिया हुआ है।

विएना के इर्द-गिर्द 'वीनेर वाल्द' नामक वन है। इसके सुन्दर दृश्यों को देखे बिना विएना देखने का आनन्द अधूरा रह जाता है। इसी वन में विएना के पास ही एक छोटी सी पर्वती है, जिसे 'कोबेन्ज़ल' (Kobenzle) कहते हैं। दिन में यहाँ से दोनाउ (Donau) या डैन्यूब नदी का तथा नगर का बड़ा अच्छा दृश्य दिखाई देता है। रात्रि मे बिजली के प्रकाश से जगमगाता हुआ विएना अत्यन्त ही रमणीक दीख पड़ता है। विएना से कुछ दूर 'बादन' नामक एक क़स्बा है, जहाँ चिकित्सा के लिए कुछ स्नान-गृह बने हुए हैं। यहाँ को ट्राम भी जाती है और रेल भी। इसके मार्ग मे एक ग्राम पड़ता है, जहाँ की बनी हुई शराब को पीने के लिए दूर-दूर से मनुष्य पहुँचते हैं।

वेनिस

विएना से वेनिस के लिए रेल-पथ आल्प्स पर्वत में होकर है। सारा मार्ग पर्वतीय है। जैसे दृश्य फ़्रेञ्च, स्विस तथा शैकोस्लोवाकियन आल्प्स मे देखे थे, वैसे ही उधर थे। अन्तर यही था कि यह मार्ग बहुत लम्बा था। प्रातःकाल चल कर वेनिस रात्रि को दस बजे पहुँचा। रास्ते मे छोटे-छोटे स्टेशनों पर अच्छा और सस्ता दूध तथा चॉकलेट बहुतायत से मिलते हैं।

वेनिस पहुँच कर पास ही के एक होटल में जाकर ठहरा। १२ लीरे प्रतिदिन के हिसाब के देने पड़े, जो लगभग १।।) के हुए। यहाँ पर होटल के बिल पर गवर्नमेण्ट का टैक्स तथा नौकरों की दस प्रतिशत टिप और जोड़ दी जाती है। कमरे में जाकर मैने घण्टी बजाई। नौकरानी के आने पर उससे पानी लाने को कहा। इटालियन मैं बिलकुल ही नही जानता था। रेलगाड़ी में कुछ शब्द उसके याद कर लिए थे। पानी भी उन्हीं में से था, परन्तु नौकरानी ने जब यह पूछा कि मैं 'काल्दो' (Caldo) पानी चाहता था या 'फ़्रेद्दो' (Freddo) तो मुझे अजीब परेशानी हुई। मैं चूँकि

ठण्डा पानी चाहता था, अतः 'काल्दो' कह दिया। क्योंकि अङ्गरेज़ी में ठण्डे को 'कोल्ड' और जर्मन मे 'काल्त' कहते हैं। परन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, जबकि नौकरानी गर्म पानी लेकर लौटी। पीछे पता चला कि 'काल्दो' का अर्थ गर्म और 'फ़्रेद्दो' का ठण्डा होता था।

प्रातःकाल नगर घूमने निकला ! वेनिस एक विचित्र नगर है और शायद ही संसार में उसके समान कोई अन्य नगर हो। अपने सौन्दर्य के लिए वह 'एड्रियाटिक की मलका' कहलाता है। पूरा नगर एक प्रकार से समुद्र के बीच मे एक चट्टान पर बसा हुआ है। पृथ्वी से पुल द्वारा मिलाया गया है, जिस पर होकर रेल आती है। यहाँ पर सडकें बहुत कम हैं, वे भी न अधिक चौडी हैं, न लम्बी। कारण यह है कि सड़कों का स्थान यहाॅ नहरों ने लिया हुआ है। टापू के एक सिरे से दूसरे तक नगर के बीच में होती हुई एक बडी नहर चली गई है। उसी मे से निकल कर इधर-उधर चारों ओर छोटी-छोटी नहरें है। भिन्न-भिन्न स्थलों पर इन नहरों के ऊपर पुल बने हुए हैं। इसी-लिए वहाॅ की सड़कें एक पुल से दूसरे पुल तक जाती हैं। छोटी-छोटी गलियाॅ तो बनारस की गलियों को भी मात करती है। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि वेनिस मे केवल दो प्रकार की सवारियाँ पाई जाती हैं, एक तो छोटी नावें, जो 'गौन्डोला' कहलाती हैं और दूसरी 'स्टीम बोटें'। इनके अतिरिक्त वहाॅ न साइकिल है, न गाड़ियाॅ हैं, न ट्राम है, न मोटर है, यहाॅ तक कि एक घोड़े के भी दर्शन नहीं होते। कारण यही है कि वहाॅ सडकें ही नही हैं। सम्पन्न व्यक्ति तो अपने गौण्डोला रखते हैं। अन्य व्यक्ति किराया देकर इधर से उधर आते-जाते हैं। किराया, वास्तव में, नाम मात्र ही होता है। पैदल नहरों के किनारे वाली पग-डण्डियों पर चल कर किसी जगह पहुँचना तो असम्भव सा हो जाता है, क्योंकि गलियाँ बड़ी पेचीली है और कहीं से कहीं निकल जाने का डर बना ही रहता है। एक बार मैं होटल से टौमसकुक के दफ़्तर की ओर पैदल चला, ताकि मार्ग के दृश्य देखता जाऊँ। फल यह हुआ कि दो घण्टे ख़ाक छान कर होटल के निकट ही लौट कर आ पहुँचा।

वेनिस की तीन-चार और विशेषताएँ हैं। जिस प्रकार काशी और मथुरा में प्रत्येक घर मन्दिर है, उसी प्रकार वेनिस में प्रत्येक घर एक प्रकार का गिर्जा है। क़दम-कदम पर विशाल गिर्जे बने हुए खड़े है। प्रत्येक का अलग नाम है और प्रत्येक किसी न किसी बात के लिए प्रसिद्ध है, कोई पच्चीकारी के लिए, कोई सोने की मीनारों के लिए, कोई घण्टों के लिए। बडी नहर के किनारे वाला सान मार्को का गिर्जा ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है। यह सन् ८३८ मे बनना शुरू हुआ था और १०७३ में समाप्त हुआ था। इसके ऊपर स्वर्ण-कलश तथा मीनारे है। इसके देखने का शुल्क चार लीरे हैं।

दूसरी विशेषता है यहाँ का सङ्गीत। छोटे-छोटे भोजन-भवन में भी सङ्गीत होता है। बड़ी नहर के किनारे वाली दूकानों पर रात्रि को सङ्गीत सुनने के लिए आए हुए व्यक्तियों की अच्छी-ख़ासी भीड लग जाती है। वेनिस वाले वायलिन बजाने में बड़े दक्ष है।

यहाँ के मकान पुराने ढर्रे के है। गलियों में जाकर देखने से पता चलता है कि मकानों की कितनी हीन दशा है। परन्तु इतना होने पर भी यह एक विशेषता है कि स्त्रियाॅ यहाँ की बहुत सुन्दर होती है। मैले-कुचैले वस्त्र पहने या तरकारी, गोश्त आदि की दूकानों पर काम करने वाली युवतियों के शरीर से भी सौन्दर्य फूटा पड़ता है। इतना होते हुए भी ड्रेसडन की भाॅति यहाँ स्त्रियाँ विदेशियों के पीछे हाथ धोकर नही पड़ जाती।

वेनिस में कई प्रकार के उद्योग-धन्धे उन्नत दशा में हैं। शीशे की विचित्र प्रकार की वस्तुएँ बनाने के लिए यहाँ अनेक कारख़ाने हैं। अधिकांश वस्तुएँ कारीगर हाथ से बनाते है। चमड़े की तथा लकड़ी की वस्तुएँ भी अच्छी बनती हैं। यहाँ के कारख़ाने वाले बड़े आग्रह से विदेशियों को अपने साथ ले जाते हैं और अपने यहाँ की प्रत्येक चीज़ बड़े आदर और प्रेम से दिखाते है।

सान मार्को के गिर्जे के बाद यहाँ के दर्शनीय स्थानों में भूतपूर्व नरेश 'डोजे' के राजभवन है। उनके समय की वस्तुओं को देखने के लिए १२ लीरे भेंट करने पड़ते हैं। राजभवन के पीछे प्राचीन बन्दीगृह है। दोनों के बीच में एक पुल है, जिस पर होकर अभागे क़ैदी अपना हुक्म सुनने आया करते थे। इसी कारण इस पुल का नाम 'आहों का पुल' (Bridge of Sighs) पड़

गया है। इसके अतिरिक्त घण्टाघर, गैलरी, अजायबघर, का दोरो का भवन, पुराना कस्टम हाउस, पार्क आदि भी दर्शनीय हैं। वेनिस के पास ही समुद्र मे एक दूसरी चट्टान पर 'लीदो' बसाया है, जहाँ अनेक स्त्री-पुरुष सूर्य तथा समुद्र-स्नान के लिए जाते हैं। कौतूहल यह देख कर होता है कि वहाँ पर आधुनिक इमारतें, सड़कें, ट्राम, मोटर, लॉरी आदि सभी कुछ दिखाई पड़ते हैं।

मातृभूमि की ओर

वेनिस से 'लॉइड ट्रीस्टीनो कम्पनी' के जहाज़ द्वारा भारत की ओर चल पड़ा। कुछ घण्टों में ही यूरोप की भूमि अन्तरिक्ष में छिप गई।

जहाज़ पर मैं 'डैक पैसेञ्जर' होकर आया था। इस जहाज़ मे चार क्लासें थी—प्रथम, द्वितीय, तृतीय और डैक। डैक के यात्रियों का भारत के तीसरे दर्जे के जीवन से भी बुरा जीवन होता है। न कहीं रहने को स्थान, न शौचादि का ठीक प्रबन्ध, न पीने के पानी का प्रबन्ध और न भोजन का ही ठीक प्रबन्ध। यदि स्टोव का ठीक प्रबन्ध न हो जाता और मैं अपना भोजन स्वयं ही न बनाता, तो बस मरण हो जाता। इन सबके ऊपर कड़ाके की धूप और गर्मी से जो कष्ट होता था, उसका उल्लेख करना ही व्यर्थ है। दिन किसी प्रकार कटे और अदन आए।

अदन मरुभूमि में बसा हुआ है। न पानी, न वृक्ष, चारों ओर ऊजड़ दिखाई देता है। ब्रिटिश सरकार तो अपने मतलब से उसे हाथ में लिए पड़ी है।

१६ दिन की समुद्र-यात्रा के बाद बम्बई दिखाई दी। मातृभूमि की झाँकी करके हृदय नाच उठा। कस्टम वालों ने डैक के यात्रियों को तो ख़ूब ही तङ्ग किया। कुली भी फिर ऐसे मिले, जो लूटने का सामान कर रहे थे। गाड़ी वाले और टैक्सी वाले भी अपनी ठग-विद्या चला रहे थे। यह सब कुछ होते हुए भी सन्तोष यह था कि अब हम मातृभूमि की गोद मे थे।

कलिका के प्रति

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

पल्लव के नव अञ्चल में—

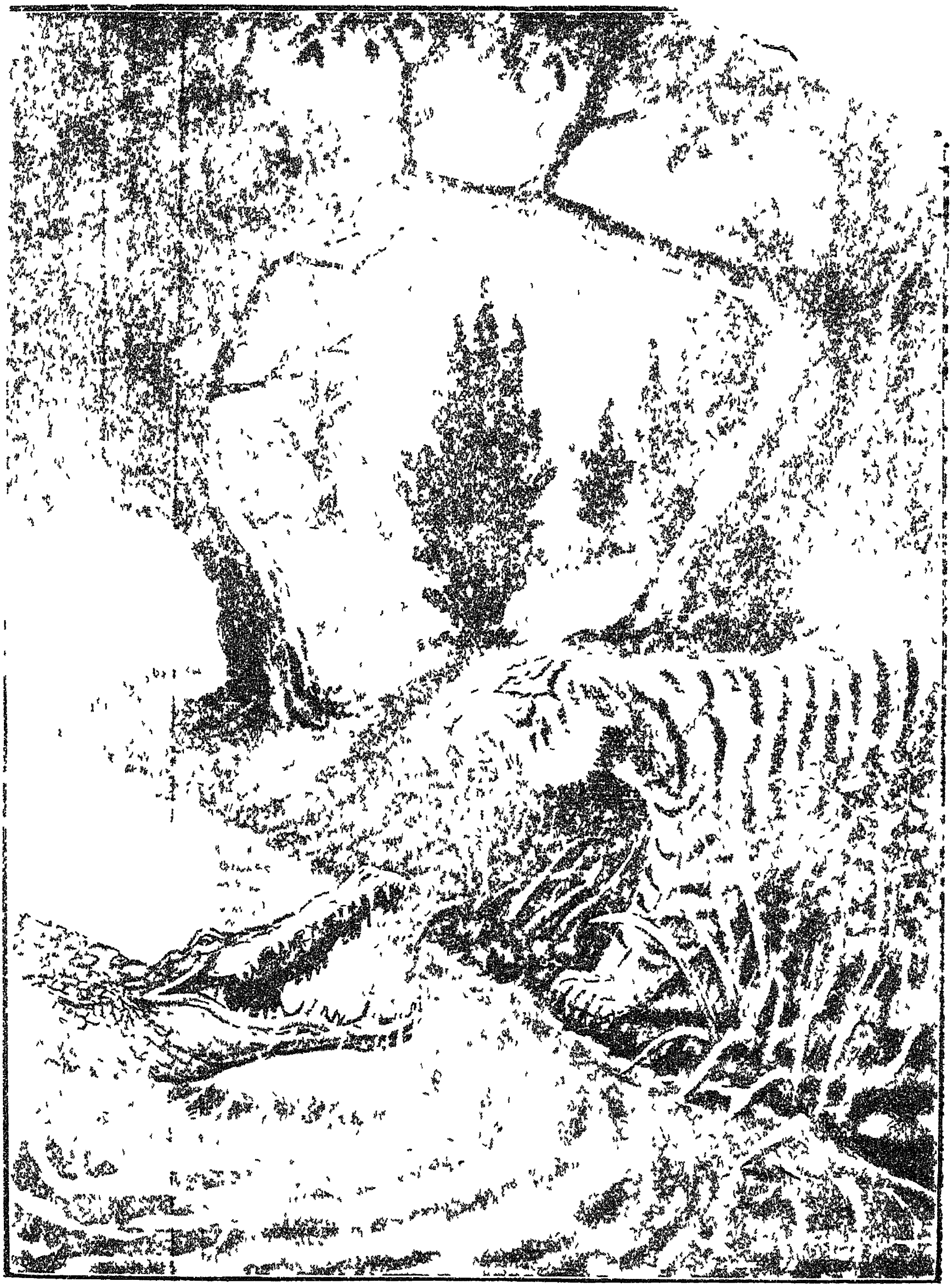
मुख न छिपा मेरी सुकुमारि !
विकल विश्व-कोलाहल में।
उषा तोड़ तारों के फूल,
खेल रही है बादल मे।

मेरे मानस में तू देवि !
उसी भाँति बिखरे पल में।
वह समीर ले सौरभ-भार
हिलता है पृथ्वीतल में।

तू भी बन माला की रेख,
सो मेरे वक्षस्थल में।
स्वप्न देख कर यह आकाश,
फैला है निर्झर-जल में।

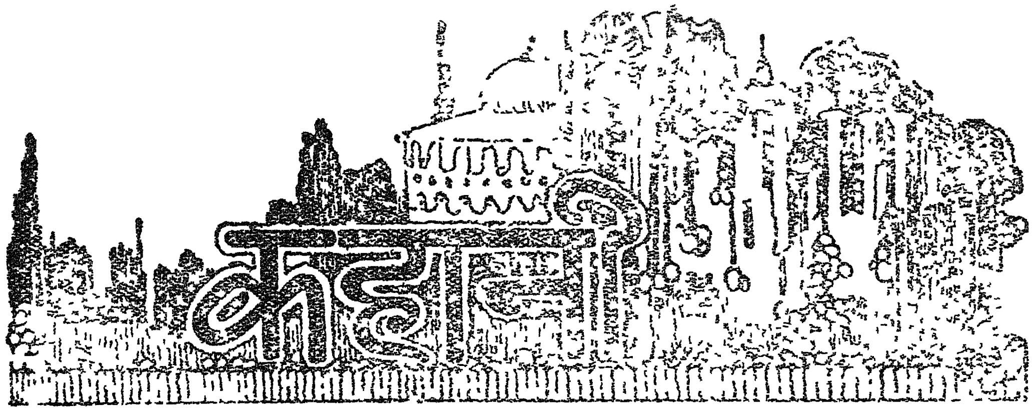
तू नाचे, नाचे इस बार,
मेरी सुख-सरि कलकल में।
मैं-तू खिल कर समुद सहास,
अब इस जड़ जग-जङ्गल में।

भूलें नियति, वियति का चक्र,
लय हों निज अन्तस्तल में।



चाँदनी रात में—

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD



प्रतिशोध

[श्री० अन्तर्वेदी]

मैं रेलगाड़ी द्वारा यात्रा करने के समय अपने सहयात्रियों से बहुत कम बोलता हूँ। आस-पास के प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन से जब जी उचटता है, तो कोई पुस्तक पढ़ने लगता हूँ या आँखे मूँद कर सो जाता हूँ। इसीलिए जब कलकत्ता से दिल्ली के लिए चलने लगा तो आलमारी से कुछ अच्छे उपन्यास और दो-तीन मासिक पत्र लेकर हैण्डबेग में रख लिए, ताकि कल सवेरे पटने से आगे की यात्रा आरम्भ होने पर साहित्य-चर्चा मे ही समय बिता दूँगा। परन्तु मेरी यह भविष्य-चिन्ता बिलकुल बेकार साबित हुई। क्योंकि पटना जङ्कशन पर गाडी के डब्बे का द्वार खोल कर अन्दर पैर रखते ही पण्डित मुरलीधर ने उच्च स्वर से 'स्वागतम् महाभाग' कहने के पश्चात् प्रश्न किया—क्यों, कहाँ चले?

मैने हाथ जोड़ कर पण्डित जी को प्रणाम करने के बाद कहा—मै तो दिल्ली जा रहा हूँ, और आप?

"मैं भी कानपुर होकर मथुरा जाऊँगा। यमद्वितीया के अवसर पर विश्रान्तघाट पर स्नान होंगे। यहाँ एक मित्र से मिलने आया था। आप ख़ूब मिले। आनन्द से यात्रा होगी।"

इसके बाद बिस्तरा खोल कर उन्होंने ख़ाली बेञ्च पर फैला दिया और इतमीनान से बैठ कर सुँघनी सूँघने लगे। तीर्थ-स्थानों का प्रसङ्ग छिड़ा, पण्डित जी ने बाबा विश्वनाथ की पुरी का वर्णन आरम्भ किया। काशी तीन लोक से न्यारी है। कहने को तो लोग प्रयाग को तीर्थराज कहते है, शास्त्रों ने उसकी महिमा का भी बहुत बखान किया है, परन्तु काशी सी चहल-पहल वहाँ कहाँ? काशी को देख लिया तो समझ लो कि सारे भारतवर्ष की सैर हो गई। क्यों, आपकी क्या राय है?

मैंने मुस्कुराते हुए कहा—इसमे क्या सन्देह!

इसके बाद, मथुरा तो आपने देखी होगी? कानपुर कैसा शहर है? लखनऊ के नवाबों ने भी ख़ूब ऐश किए, भई, सच पूछो तो नवाबी का आनन्द जैसा वाजिद-अली शाह ने लूटा वैसा शायद ही किसी बादशाह या नवाब को नसीब हुआ हो। इसके बाद—स्वराज कब मिलेगा, आन्दोलन का क्या हाल है? कलकत्ते में क्या हो रहा है? इत्यादि।

तात्पर्य यह कि पण्डित जी का प्रत्येक प्रश्न एक विस्तृत विवरण का मुहताज था। मै अपनी जानकारी के अनुसार उन प्रश्नों का उत्तर देता रहा। बीच-बीच मे जिरह भी होती रही और प्रतिवाद भी।

दिल्ली एक्सप्रेस अपनी पूरी चाल से जा रहा था। मैं प्रकृति की शोभा देखता और पण्डित जी के गूढ़ प्रश्नों का यथासाध्य उत्तर भी देता जाता था। पण्डित जी ने पटने का वर्णन आरम्भ किया। उसका ऐतिहासिक विवरण भी सुनाने लगे और एक से एक कठिन प्रश्न भी

करते जाते थे। अन्त में उनकी बातों और प्रश्नों से ऊब कर मैंने हैण्डबेग खोल कर 'विशाल भारत' की एक प्रति निकाली और पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी का लिखा हुआ 'श्रद्धेय गणेशजी' शीर्षक लेख पढ़ने लगा। अमर शहीद की पवित्र स्मृति ने हृदय मे एक विचित्र स्पन्दन पैदा कर दी। चतुर्वेदी जी के सीधे-सादे शब्दों में—आडम्बरहीन भाषा में एक गम्भीर वेदना भरी हुई थी। पढ़ते-पढ़ते मेरी आँखे छलछला उठीं। इतने मे पण्डित जी ने पास ही पड़ी हुई 'माधुरी' की प्रति खींच ली और द्विजश्याम की 'गङ्गे' शीर्षक कविता उच्च स्वर से गा-गाकर पढ़ने लगे। हमारी गाड़ी मुग़लसराय की ओर दौड़ रही थी। उसकी घड़घड़ाहट और पण्डित जी के पञ्चम स्वर ने एक विचित्र ध्वनि पैदा कर दी, और दो यात्री जो पास की बेञ्चों पर मुँह छिपाए सो रहे थे, कुलबुलाने लगे। पहले एक वृद्धा ने रज़ाई से मुँह निकाला। इसके बाद दूसरी बेञ्च में दोशाला से मुँह निकाल कर एक युवती ने चकित दृष्टि से पहले पण्डित जी की ओर फिर मेरी ओर देखा। महिला की दृष्टि मे स्वाभाविकता थी। वह अँगड़ाई लेकर उठ बैठी और मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करके बोली—बाबू जी, क्षमा कीजिएगा। क्या पटने का स्टेशन निकल गया?

मैंने उत्तर दिया—हाँ, बड़ी देर हुई।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने पण्डित जी की ओर देख कर प्रश्न किया—अब चाय कहाँ मिलेगी?

परन्तु जब पण्डित जी ने उसके प्रश्न का कुछ उत्तर देने के बदले भ्रूकुञ्चित करके उसकी ओर से अपना मुँह फेर लिया तो मैंने कहा—मुगलसराय आ गया है, वहाँ आपको चाय मिल जायगी।

उसने कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देख कर फिर पूछा—आप कहाँ जा रहे हैं?

मैंने उत्तर दिया—दिल्ली। इसके बाद और भी कई प्रश्न हुए। जैसे—वहाँ आप क्या करते है? निवास-स्थान कहाँ है? आपका शुभ नाम? इत्यादि।

मैं बहुत थोड़े शब्दों मे उसके प्रश्नों का उत्तर देता जा रहा था। इतने मे गाड़ी आकर मुग़लसराय के स्टेशन पर खड़ी हो गई। स्त्री ने एक हिन्दू चाय वाले से एक कुल्हड़ चाय लेकर पी। इसके बाद एक सिगरेट जला कर पीते-पीते बोली—पण्डित जी, आपका गाना तो बड़ा सुन्दर हो रहा था, परन्तु आपने बन्द क्यों कर दिया? गाइए!

बेचारे पण्डित जी तो पहले से ही उसकी लापरवाही और बातचीत करने का ढङ्ग देख कर नाक-भौं सिकोड़े बैठे थे। उस पर से गाने की फ़रमाइश सुनी तो और भी अप्रसन्न हुए और घृणासूचक दृष्टि से उसकी ओर देख कर मुँह फेर लिया।

पण्डित जी का यह भाव देख कर बड़ी मुश्किल से मुझे अपनी हँसी रोकनी पड़ी। थोड़ी देर के बाद मैंने पण्डित जी से पूछा—आख़िर आप नाराज़ क्यों हो रहे है?

उन्होंने क्रुद्ध होकर उत्तर दिया—चुप भी रहो। एक भ्रष्टा, कुलटा से बातें करते तुम्हें लज्जा भी नहीं आती। राम-राम !!!

पण्डित जी की इस बात पर मैं तो मुस्कुरा कर चुप हो गया। परन्तु बेचारी रमणी कुछ खिन्न सी होगई और वेदना-भरे स्वर मे बोली—हाँ पण्डित जी, मै एक कुलटा स्त्री हूँ, रण्डी हूँ। भगवान ने मुझे इस अवस्था मे डाल दिया है!

अन्तिम बात कहते-कहते उसकी आँखों से दो बूँद आँसू निकल कर उसके गुलाबी गालों पर लुढ़क गए।

मेरे लिए यह दृश्य बड़ा ही मर्मवेधी था, परन्तु पण्डित जी ने घृणाव्यञ्जक हँसी के साथ कहा—ओ हो, देखा यह ढोंग!

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने किञ्चित भर्त्सना के साथ पण्डित जी से कहा—जाने भी दीजिए, क्यों बेचारी को तङ्ग कर रहे हैं। कोई अच्छा हो या बुरा, आपका क्या लेता है?

इसके बाद स्त्री को आश्वासन देता हुआ बोला—आप नाहक दुखी हो रही हैं। यह तो संसार है। कोई किसी को अच्छा समझता है और कोई बुरा। वास्तविक अच्छाई या बुराई की परख करने वाले यहाँ बहुत थोड़े हैं।

उसने एक दीर्घ निश्वास के बाद कहा—वास्तव में मैं एक भ्रष्टा स्त्री हूँ और आबरू बेच कर पेट पालती हूँ। परन्तु मैंने क्यों इस निकृष्ट पथ का आश्रय लिया

है, यह पूछने वाला इस संसार में कोई नहीं है, मुझे यही दुःख है।

पण्डित जी एक विजयी वीर की तरह उसकी बाते सुन कर मुस्कुरा रहे थे। परन्तु मैंने उसके मनोकष्ट का अनुभव किया और इस प्रसङ्ग को यहीं समाप्त कर देने की इच्छा से बोला—आप कितना ही पथ-भ्रष्टा क्यों न हों, परन्तु आपके अन्दर एक पवित्र हृदय है।

"और नसों मे रक्त भी!"—उसने उत्तेजित स्वर से मेरे अधूरे वाक्य को पूरा किया। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा उठा था और गालों की लालिमा स्वाभाविकता की सीमा का उल्लङ्घन कर रही थी। उसने एक बार तीव्र दृष्टि से पण्डित जी की ओर देख कर कहा—मुझे भ्रष्टा कहने वाले भ्रष्ट हैं—नीच हैं। अपने को पवित्रता और भद्रता के वाह्याडम्बर में छिपाने वाले भ्रष्ट हैं। धर्म-ढोंगी—दूसरों को पवित्रता का उपदेश देने वाले नीच हैं। सारा समाज नीच है। मैंने समाज को—विशेषकर हिन्दू-समाज को, जहाँ पवित्रता की डींग मारने वालों की भरमार है—अच्छी तरह देख लिया है। सारे समाज मे 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' भी पड़े है। वे दूसरे की आँखों की फूली देखते हैं, परन्तु अपनी आँखों का शहतीर नही देखते। यहाँ पण्डित के वेष मे, धर्म-ध्वजी के वेष मे, साधु और महात्मा के वेष मे, हज़ारों नही, लाखों पापी, पाखण्डी मौजूद हैं। वे लोगों की आँखों मे धूल झोंक कर दुराचार करते हैं और मैं प्रत्यक्ष × × ×

बोलते-बोलते उसकी आवाज़ लड़खड़ाने लगी, आँखें लाल हो गईं और शरीर थरथराने लगा। मुझे भय हुआ कि कही उसे ग़श न आ जाए। मैंने उसके साथ की बुढ़िया से कहा—देखती क्या हो, एक गिलास पानी पिला कर इन्हें लिटा दो। इनका मस्तिष्क कुछ गरम हो गया है। अब अधिक बोलेंगी तो बेहोश हो जायँगी।

बुढ़िया ने मेरे आदेश का अक्षरशः पालन किया। पण्डित जी सन्नाटे में आकर मेरा मुँह ताक रहे थे। थोड़ी देर के बाद बोले—अगले स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हो तो हम लोगों को दूसरे डब्बे में चला जाना चाहिए। इस स्त्री का मस्तिष्क कुछ विकृत मालूम पड़ता है। सम्भव है, कोई उत्पात कर बैठे।

मैंने पण्डित जी की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। मन मे विचित्र प्रकार की भाव-तरङ्गें उठ रही थीं। हिन्दू-समाज पर रमणी ने जो आक्षेप किए थे, वे मानो कानों मे गूँज रहे थे। मै अपनी सामाजिक अवस्था पर विचार करने लगा। मेरी दृढ़ धारणा हो गई कि यह रमणी भी समाज की ही सताई हुई है। किसी सामाजिक रूढ़ि ने ही इसे वेश्या-जीवन व्यतीत करने के लिए विवश किया है। यह कैसे वेश्या बनी, पहले कौन थी, यह जानने के लिए मै उत्सुक होने लगा। गाड़ी बेतहाशा भागी जा रही थी और मेरे मन महाराज भी अपने ख़्याली घोड़े पर चढ़े सरपट दौड़ रहे थे। अगला स्टेशन आया और निकल भी गया।

एक घण्टा योंही गुजर गया। रमणी फिर उठ बैठी। उसके चेहरे पर स्वाभाविक शान्ति विराज रही थी। भीषण तूफ़ान के बाद मानो प्रकृति ने निस्तब्ध भाव धारण कर लिया हो। मैंने उससे पूछा—कहिए, आपकी तबीयत अब कैसी है?

उसने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—मैं बीमार थोड़े ही हूँ। मै एक अत्याचार-पीड़िता स्त्री हूँ। मेरी पवित्र भावना निर्दयतापूर्वक कुचल डाली गई है। मेरा हृदय पका फोड़ा बन गया है, इसीसे ज़रा सी ठेस लगते ही वह फूट पड़ता है।

मैंने सङ्कुचित भाव से कहा—मुझे क्षमा कीजिएगा। आपका परिचय जानने के लिए मेरा मन बहुत उत्सुक हो रहा है। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो × × ×

उसने बीच मे ही बात काट कर कहा—मैं एक साधारण वेश्या हूँ। बस, यही मेरा परिचय है।

मैंने कहा—परिचय से मेरा मतलब आपके वर्त्तमान जीवन से पूर्व की कथा से था। परन्तु मैं आपको इसके लिए विशेष कष्ट नहीं देना चाहता।

थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—मेरी रामकहानी सुनना चाहते हैं? अच्छा ठहरिए, ज़रा हाथ-मुँह धोकर पान खा लूँ तो सुनाती हूँ। परन्तु मेरी पापपूर्ण रामकहानी मे कोई रोचकता न होगी।

मैंने कुछ उत्तर नही दिया।

२

वह कहने लगी—मै कौन हूँ, किसकी लड़की हूँ और कहाँ की रहने वाली हूँ, यह न बताऊँगी। क्योंकि

अपने पूज्य पिता-माता के नाम को कलङ्कित करना मुझे स्वीकार नहीं है और न उनका नाम-धाम जानने के लिए आपको ही कोई उत्सुकता होनी चाहिए।

मैंने कहा—अच्छी बात है, आप जो कुछ सुनाएँगी, वही काफ़ी होगा। उससे अधिक कुछ जानने की मैं बिलकुल चेष्टा न करूँगा।

वह कहने लगी। अच्छा तो सुनिए! मेरे पिता संयुक्त-प्रान्त के एक शहर के प्रतिष्ठित हिन्दू थे। मैं और मेरी बड़ी बहिन के सिवा उनके और कोई सन्तान न थी। इसलिए वे हमें पुत्र की तरह मानते थे। यथा-साध्य उन्होंने हमें कुछ पढ़ाया-लिखाया भी था। मेरी माता का देहान्त मेरे बचपन में ही हो गया था। घर में पिता जी की एक वृद्धा चाची थी, वही हम दोनों बहिनों की देख-रेख किया करती थीं। साथ ही पिता जी को दूसरा विवाह कर लेने का भी परामर्श दिया करती थी। पहले तो पिता जी इसके लिए राज़ी नहीं होते थे, परन्तु अन्त में अपनी चाची तथा अन्यान्य शुभचिन्तकों के बहुत समझाने-बुझाने पर राज़ी हो गए।

विवाह हो गया, हमारी सौतेली माँ घर आ गईं। साथ ही हम लोगों के लिए दुर्भाग्य भी लेती आईं। क्योंकि उनके आने के कुछ दिन बाद से ही पिता जी के स्वभाव मे विशेष परिवर्तन दिखाई देने लगा। अब वे पहले की तरह हम लोगों से स्नेह नही करते थे। हम लोगों के भरण-पोषण आदि का भार भी सौतेली माँ पर ही छोड़ कर वे निश्चिन्त हो गए। दादी अर्थात् पिता जी की वृद्धा चाची की भी अब कुछ नहीं चलती थी। हम सभी एक तरह से नई माता जी के ग़ुलाम बन गए। उनकी आज्ञाओं का पालन करना और उनकी जली-कटी बाते बर्दाश्त करना हम लोगों का परम कर्तव्य हो गया। पिता जी उनके विरुद्ध एक शब्द भी सुनना नहीं चाहते थे। सुन कर भी कुछ प्रतिकार करने की शक्ति उनमें न थी। क्योंकि हमारी नवीना माँ समय-समय पर उन्हें भी फटकार दिया करती थीं।

अन्त में बहिन का विवाह हो गया और वह अपनी ससुराल चली गईं। बुढ़िया दादी का भी देहान्त हो गया। उस समय मेरी उम्र चौदह-पन्द्रह साल की थी। माता-पिता में कभी-कभी मेरे विवाह की भी चर्चा होने लगी। बहुधा इस विषय को लेकर दोनों में घण्टों तक तर्क-वितर्क भी हो जाता था। मैंने छिप कर कई बार उनकी बातें सुनने का प्रयत्न भी किया, पर कुछ समझ न सकी। अन्त में पता चला कि यह झगड़ा रुपए-पैसे को लेकर हुआ करता था। क्योंकि माता जी मेरे विवाह में अधिक रुपए ख़र्च करने का विरोध किया करती थीं और पिता जी को मेरे लिए ऐसा वर ढूँढ़ने का परामर्श देती थीं, जो साधारण स्थिति का हो और थोड़े तिलक-दहेज़ पर ही विवाह करने को राज़ी हो जाय।

मेरी सौतेली माता के नैहर का एक अधेड़ मनुष्य अक्सर हमारे घर आया करता था। माता जी उसे अपना भाई बताया करती थी और न जाने क्यों उससे उनकी ख़ूब बनती थी। उसके आने पर बड़ी तत्परता से उसकी आवभगत किया करती थीं। माता जी का धर्म-भाई होने के कारण मैं भी उसके सामने होती थी। सुनने में आया कि वह पुलिस का दारोग़ा है और बड़ा मालदार आदमी है।

एक दिन दाई की ज़बानी मालूम हुआ कि माता जी उसीके साथ मेरा विवाह कर देना चाहती हैं। पहले तो मुझे इस बात पर विश्वास ही नही हुआ। परन्तु अन्त में मालूम हुआ कि ख़बर सोलह आने सच थी। यद्यपि पिता जी इस बात पर राज़ी न थे। परन्तु माता जी के आदेश के विरुद्ध कुछ करना भी उनके लिए सम्भव न था।

मैंने यह हाल सुना तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि मैं उसे फूटी आँख भी देखना नही चाहती थी। उसकी सूरत-शक्ल भी अच्छी न थी। चेहरे पर और बातचीत में उद्दण्डता भरी थी। परन्तु माता जी मेरे सामने उसके रूप-रङ्ग और विद्या-बुद्धि की बड़ी प्रशंसा किया करती थीं। मानो मेरे लिए उससे बढ़ कर उप-युक्त वर संसार में दूसरा कोई था ही नहीं।

एक दिन उसी दाई की ज़बानी मालूम हुआ कि दारोग़ा जी के साथ मेरे विवाह की बातचीत पक्की हो गई। मेरे सिर पर मानो वज्रपात हो गया। कलेजा धड़-कने लगा। मैं घण्टों तक छिप कर रोती रही। अन्त में कई दिनों के बाद मैंने अपनी बहिन को एक पत्र लिखा। मुझे विश्वास था कि बहिन कदापि इस विवाह का सम-र्थन न करेगी। परन्तु मालूम नहीं, वह पत्र मेरी बहिन को मिला या नहीं। क्योंकि उसका कोई उत्तर नहीं

आया। परन्तु इस घटना के बाद से मेरी सौतेली माँ मुझसे तनी सी रहने लगीं और समय-समय पर ताने-वाने देने लगीं।

इतने मे एक दिन सुना कि विवाह का दिन निर्धारित हो चुका है और शीघ्र ही तिलक भेजा जाने वाला है। अब तो मेरी बेचैनी और भी बढ़ गई। यहाँ तक कि चिन्ता के मारे मैंने कई दिनों तक भोजन नहीं किया। दिन-रात एक कोठरी में पड़ी-पडी रोया करती थी। पिता जी को शायद यह मालूम हो गया था कि मैं इस विवाह से प्रसन्न नहीं हूँ। क्योंकि एक दिन उनमें और माता जी मे बड़ी देर तक बातें होती रहीं। यहाँ तक कि अन्त मे दोनों मे झगड़ा भी हो गया। माता रूठ बैठी और बार-बार नैहर चली जाने के लिए धमकी देने लगी। परन्तु फिर सारा झगड़ा तै हो गया और सुनने में आया कि पिता जी को कोई कठिन रोग हो गया है, इसलिए दवा कराने के लिए कलकत्ता जाने वाले हैं। मुझे विश्वास हो गया कि विवाह कम से कम इस साल के लिए तो टल गया। परन्तु पिता जी के जाने के तीसरे रोज़ ही हमारी सौतेली माँ के एक भाई आए और उन्होंने पुरोहित जी के मार्फ़त तिलक भेजवा दिया। आठ दिन के बाद ही विवाह का दिन निर्धारित हो गया। मेरे तमाम आशा-भरोसा पर पानी फिर गया। रहस्य कुछ समझ में नहीं आया। पिता जी के हठात् रोगग्रस्त होकर चले जाने पर भी बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे लिए रोने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह गया। विवाह की तैयारी ख़ूब जल्दी-जल्दी होने लगी। इधर माता जी मेरे ऊपर सतर्क दृष्टि भी रखने लगीं। कोई मेरे पास नही आने पाता था। विवाह का नेवता भी शायद किसी रिश्तेदार को नहीं दिया गया। गाँव में प्रचार कर दिया गया कि पिता जी की बीमारी के कारण विवाह में उत्सव आदि नही होगा। वर महोदय केवल पुरोहित और नाई के साथ आकर बिना आडम्बर के विवाह करके बहू को ले जायँगे। यह बातें सुन कर मेरी चिन्ताग्नि और भी धधक उठी। दिन-रात रोते-रोते मेरी आँखें सूज गईं। माता जी ने पिता की बीमारी का ज़िक्र करके मुझे बहुत समझाया-बुझाया। उनके भाई ने भी मुझे समझाने-बुझाने और वर महोदय के धन-ऐश्वर्य का बखान करने में कोई बात उठा न रक्खी। परन्तु चिन्ता बढ़ती ही गई। जी में आता था कि आत्म-हत्या कर लूँ। परन्तु माता जी सदैव सतर्क रहती थीं, अन्त मे हल्दी-तेल चढ़ने का दिन आया। आँगन में मङ्गल-घट स्थापित हुआ। मैं ज़बरदस्ती घसीट कर वहाँ लाई गई। अन्यान्य कृत्यों के बाद जब नाइन हल्दी-तेल लेकर आगे आई, मैंने उसके हाथ से पात्र लेकर दूर फेंक दिया। माता जी इस पर बहुत नाराज़ हुईं और बलपूर्वक मुझे गिरा कर हल्दी-तेल चढ़ाने की रस्म अदा की गई। इसी तरह एक दिन विवाह की रस्म भी अदा हो गई। मैंने 'गौर-गनेस' को तोड डाला, पैरों की ठोकर से मङ्गल-घट फोड़ दिया और जब वर महोदय सिन्दूर-दान करने आए तो उन्हें ऐसा धक्का दिया कि बेचारे चारो ख़ाने चित ज़मीन पर भहरा पड़े। जब मै किसी तरह क़ाबू मे न आई, तो मेरी सौतेली माँ मेरा हाथ-पैर बाँध कर मुझे एक कोठरी मे ढकेल कर किवाड़ बन्द करती हुई बोलीं—'अब रोओ चाहे गाओ, जो होना था, वह हो गया।'

मैं उस समय क्रोध, चिन्ता और ग्लानि से अधमरी सी हो रही थी। कई दिनों तक भोजन आदि न करने के कारण मेरा शरीर अवसन्न हो गया था। मैं थोड़ी देर के बाद ही बेहोश हो गई।

जब होश हुआ तो देखा कि बन्धन खुले हुए हैं। घर मे दिया जल रहा है और वर महोदय दरवाज़े की सिटकिनी बन्द कर रहे हैं। मैं उन्हें देखते ही बड़े ज़ोरों से चीख़ उठी और वहाँ से निकल भागने के लिए दरवाज़े की ओर लपकी, परन्तु उन्होंने बीच मे मुझे पकड़ कर ज़बरदस्ती घसीटते हुए ले जाकर पलङ्ग पर लिटा दिया। मैं बहुतेरा चीख़ी-चिल्लाई, अपने आबरू की रक्षा के लिए कई जगह उन्हें दाँतों से काट डाला। इस हाथापाई में मुझे भी चोटें आईं, परन्तु मैंने उनकी मनोकामना पूरी न होने दी। इसके बाद उन्होंने माता जी को बुलाया, मैं उनके पैरों पर गिर पडी और बड़ी आरज़ू-मिन्नत की कि मुझे यहाँ से निकल जाने दो, परन्तु उन्होंने एक न सुनी, मैं फिर बलपूर्वक ज़मीन पर गिरा दी गई और मेरे हाथ-पैर रस्सी से बाँध दिए गए। माता जी ने मेरे मुँह मे कपड़ा ठूँस दिया और मुझे वही छोड़ कर कमरे से बाहर चली गईं।

इसके बाद क्या हुआ, उसका वर्णन करना मेरी जैसी एक वेश्या के लिए भी सम्भव नहीं है।

यह कहते-कहते फिर उसका चेहरा तमतमा उठा। आँखों से मानो क्रोध की चिनगारियाँ निकलने लगीं। बेचारे पण्डित जी उसकी यह हालत देख कर सहम गए। मैं भी बड़े पशोपेश में पड़ गया और बुढ़िया से फिर एक गिलास पानी देने का इशारा करके बोला—बस, अब रहने दीजिए। फिर कभी आपकी कहानी सुन लूँगा। इस समय ज़रा सा लेट जाइए।

उसने एक लम्बी साँस खींच कर उत्तर दिया—आप घबराइए नहीं, मेरी तबीयत ठीक है।

इसके बाद उसने फिर एक पान खाया और मेरी ओर मुँह करके कहने लगी—जब आपने छेड़ा है तो पूरी कहानी सुना कर ही दम लूँगी। इससे अनुताप की जो भीषण ज्वाला मेरे अन्दर धधक रही है, कुछ शान्त होगी।

मैंने भी एक ठण्ढी साँस ली और एक सिगरेट जला कर अबला की करुण-कहानी सुनने को तैयार हो गया।

वह कहने लगी—उसके बाद मुझ पर क्या बीती, मुझे मालूम नहीं, क्योंकि मैं बेहोश थी और उसी दशा में छोड़ दी गई। सवेरे दरवाज़ा खुलने की आहट पाकर आँखें खुलीं तो देखा कि आगे-आगे माता जी और उनके पीछे दारोग़ा जी कमरे में प्रवेश कर रहे हैं। मैं कपड़े सँभाल कर उठ बैठी। माता जी मेरे पास बैठ कर मुझे समझाने लगीं। दारोग़ा जी विजयी वीर की तरह बैठे हुए मुस्कुरा रहे थे। उनकी ओर दृष्टि पड़ते ही मेरा सारा शरीर क्रोध से काँप गया। पास ही एक काँसे का लोटा पड़ा था, मैंने उसे उठा कर उनके मूँड़ पर दे मारा। सिर फूट गया और ख़ून बहने लगा। इसके बाद वे उठ कर वहाँ से चले गए और तब से आज तक मैंने उनकी सूरत नहीं देखी।

गाड़ी कानपुर के स्टेशन पर आकर ठहर गई। मुझे वहाँ उतर कर अपने एक मित्र से मिलना था। पण्डित जी भी कानपुर देखना चाहते थे। मैंने उठ कर बिस्तर समेटते हुए रमणी से कहा—क्षमा कीजिएगा, मैंने आपको बड़ी तकलीफ़ दी। साथ ही आपकी पूरी कहानी भी न सुन सका।

इतने में पण्डित जी बोल उठे—इन्हें भी तो दिल्ली ही जाना है, अगर कोई क्षति न हो तो हम लोगों के साथ उतर पड़ें। कल फिर एक साथ ही चले चलेंगे।

मैंने कहा—प्रस्ताव तो आपका ठीक है, बशर्ते कि एक रोज़ यहाँ ठहर जाने में इनका कोई हर्ज न हो।

रमणी ने कहा—हर्ज क्या है। एक दिन ठहर कर ज़रा कानपुर भी देख लूँगी।

यह कह कर उसने भी अपनी सङ्गिनी बुढ़िया को बिस्तर आदि उठाने का आदेश प्रदान किया।

३

दूसरे दिन गाड़ी पर सवार होकर हम लोग एक साथ ही दिल्ली के लिए रवाना हुए। कुछ आगे चल कर मेरे अनुरोध करने पर उसने फिर अपनी रामकहानी आरम्भ की :—

विवाह के पन्द्रहवें दिन पिता जी कलकत्ते से वापस आ गए। माता जी ने और शायद दारोग़ा जी ने भी उन्हें सब हाल पहले ही लिख दिया था। रात को उनसे और माता जी से बड़ी कहा-सुनी हुई। उन लोगों की बातचीत से यह भी मालूम हुआ कि दारोग़ा जी ने मुझे सदा के लिए परित्याग कर दिया है और मेरे भरण-पोषण के लिए दस रुपए मासिक देने को तैयार हैं। मैंने मन ही मन ईश्वर को धन्यवाद दिया कि किसी तरह उस पशु से पिण्ड तो छूटा। परन्तु पिता जी को इससे बड़ा दुःख हुआ। वे उसी दिन से अन्न-जल त्याग कर खाट पर पड़े तो फिर नहीं उठे। कुछ लोगों का अनुमान है, उन्होंने ज़हर खाकर आत्म-हत्या कर ली।

अस्तु, पिता जी के मरने पर माता जी अपने वैधव्य के दिन काटने के लिए अपने नैहर चली गईं। मुझे भी अपने साथ ले जाना चाहती थीं; परन्तु मैंने इन्कार कर दिया और एक दाई को साथ लेकर अपनी बहिन के यहाँ चली आई। बहिन ने सारा हाल सुना तो छाती पीट कर ज़मीन पर गिर गईं। परन्तु मुझे पिता जी की मृत्यु के सिवा और किसी बात का अफ़सोस न था। बस, दिन-रात यही सोचा करती थी कि किस तरह दारोग़ा जी से अपने अपमान का बदला लूँ। कुछ दिनों के बाद ही एक सुयोग मिला। मेरी बहिन का देवर मुझे बड़ी कुत्सित दृष्टि से देखा करता था। पहले

मई का महीना ; सख़्त गरमी पड़ रही थी। शाम को भाँग-बूटी छान कर हम लोग किले के मैदान की ओर टहलने जा रहे थे। रास्ते में एक पुराने मित्र मिल गए। जब मै बनारस रहता था तो इनसे बडी घनिष्टता थी। कुशल-प्रश्न तथा अन्यान्य बातों के बाद पण्डित मुरलीधर का ज़िक्र आया तो आश्चर्य से बोल उठे—अरे, तुम्हें मालूम नही, वह तो एक ख़ून के मामले मे गिरफ़्तार हैं!

मैंने आश्चर्य से पूछा—ख़ून के मामले मे ?

वे बोले—हाँ भई, उन्होंने पुलिस के एक दारोगा को मार डाला है।

मैंने कहा—क्या बक रहे हो ? कहाँ पण्डित मुरलीधर और कहाँ दारोग़ा का ख़ून ?

उन्होंने कहा—बक नही रहा हूँ, बिल्कुल सच्ची बात बता रहा हूँ।

मै—तो क्या किसी राजनीतिक उद्देश्य से पण्डित जी ने दारोग़ा को मार डाला है ?

वे—नहीं जी, राजनीति से उनसे क्या वास्ता।

मैं—तो आख़िर बेचारे दारोगा ने उनका बिगाड़ा क्या था ?

वे—उनका नहीं, बल्कि किसी और का ही बिगाड़ा था।

मैं—अच्छा, तो अब पूरी कथा सुना जाओ।

वे—सुना तो रहा हूँ, परन्तु तुम सुनते कहाँ हो ? बात यह है कि गत यमद्वितीया के अवसर पर पण्डित जी मथुरा जा रहे थे। रास्ते में एक वेश्या से मुलाकात हो गई, जो गाड़ी के उसी डिब्बे मे बैठी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने अपनी आत्म-कथा सुनाना आरम्भ किया, जिससे मालूम हुआ कि वह कोई साधारण वेश्या नही, वरन् किसी उच्च वंश की लड़की थी। दारोग़ा जी ने ढलती उम्र मे ज़बरदस्ती उससे विवाह कर लिया था। इसलिए पहली ही रात को पति-पत्नी में कुछ ऐसी अनबन हो गई कि दारोग़ा जी को उसे सदा के लिए परित्याग कर देना पडा। परन्तु पत्नी ने दारोगा जी से अपने सतीत्वापहरण का बदला लेने की ठान ली। यह बदला लेने की धुन यहाँ तक सिर पर सवार हो गई कि उसीके लिए अन्त में वेश्या बन जाना पड़ा। कई युवकों से इसी शर्त पर उसने दुराचार भी कराया। पण्डित मुरलीधर ने यह सारी कहानी सुनी तो एकदम आपे से बाहर हो गए। मथुरा से दिल्ली चले गए और वहाँ उसी वेश्या के पास ठहर कर उसके पति का पता लगाया। इसके बाद किसी तरह उक्त दारोग़ा के पास पहुँचे और एक दिन मौक़ा देख कर उसके पेट मे छुरी घुसेड़ दी।

पण्डित जी ने अदालत के सामने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है और बड़ी प्रसन्नता से फाँसी पर चढ़ जाने को तैयार हैं।

मैंने कहा—यह रेलगाडी वाली घटना तो मेरे सामने की है। उस समय मै दिल्ली जा रहा था और पण्डित जी यमद्वितीया नहाने मथुरा जा रहे थे। बल्कि सच पूछो तो मेरे ही अनुरोध से उस वेश्या ने अपनी रामकहानी हम लोगों को सुनाई थी। ख़ैर, तो क्या उस स्त्री को भी यह सब हाल मालूम है ?

वे—हाँ, वह भी पण्डित जी के साथ ही दिल्ली से आई थी। पहले उसने दारोग़ा जी को देख कर अच्छी तरह पहचान लिया तब यह घटना हुई। पण्डित मुरलीधर ने तो अपने बयान में उसके आने का कोई ज़िक्र नही किया था। परन्तु इनके गिरफ़्तार हो जाने पर वह ख़ुद कोतवाली मे आई और बयान दिया कि यह ख़ून मैंने कराया है। इसकी सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर है।

पुलिस ने उसे गिरफ़्तार करके हिरासत में ले लिया। परन्तु वहाँ जाने से पहले उसने ज़हर खा लिया था, इसलिए उसी रात को उसका देहान्त हो गया।

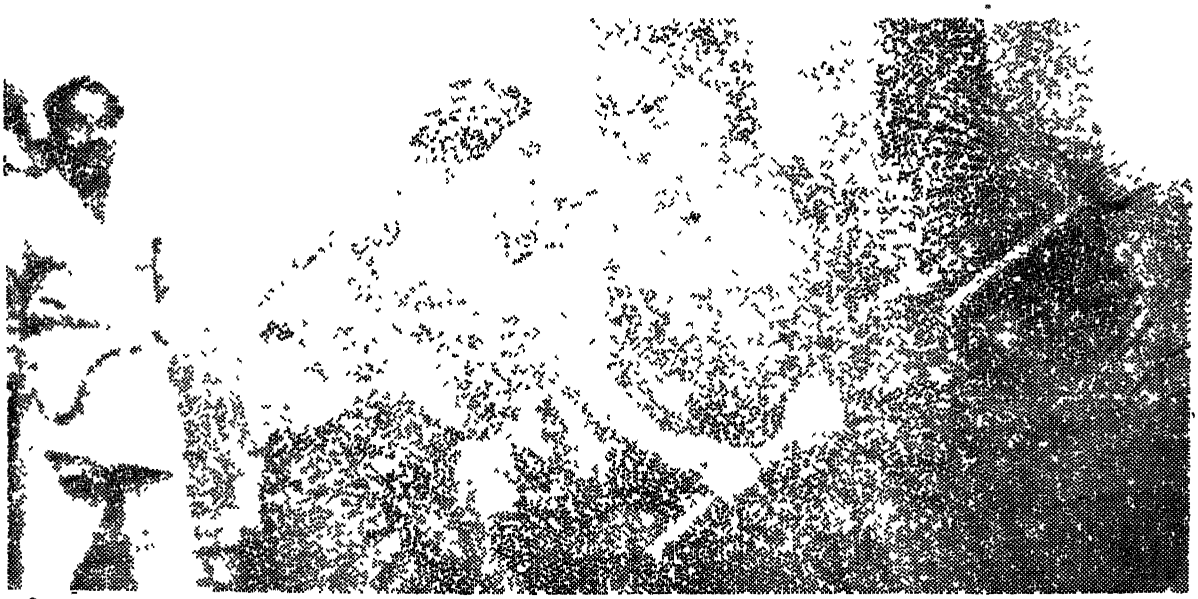
मैने कहा—परन्तु पण्डित मुरलीधर तो विचित्र मनुष्य निकले। उनके मुकदमे के सम्बन्ध मे तुम्हारा क्या अनुमान है ?

उन्होंने कहा—उन्हें फाँसी की सज़ा होगी।

'जि जित्सू'

[जिसे सीख कर अबलाएँ सबला बन रही हैं]

भारतवर्ष मे मल्लविद्या का जितना प्रचार है, उससे भी अधिक प्रचार जापान में 'जि जित्सू' का है। यह एक कला है, जिसे सीखने के बाद निर्बल व्यक्ति भी एक शक्तिशाली तथा सशस्त्र आक्रमण-कारी का सामना कर सकता है। इसकी उपयोगिता अमेरिका तथा यूरोप में भी स्वीकार कर ली गई है। यह हर्ष का विषय है कि महिलाओ का ध्यान भी अब इस कला की ओर आकर्षित हुआ है। इसमे सन्देह नही कि एशिया की स्त्रियों को इस कला के सीखने से आतताइयों के हाथो से अपनी रक्षा करने से बड़ी सहायता मिलेगी। नीचे के पाँच चित्रो में पाठक एक जापानी युवती को 'जि जित्सू' के भिन्न-भिन्न दाँव-पेंचो का अभ्यास करते हुए देखेंगे।



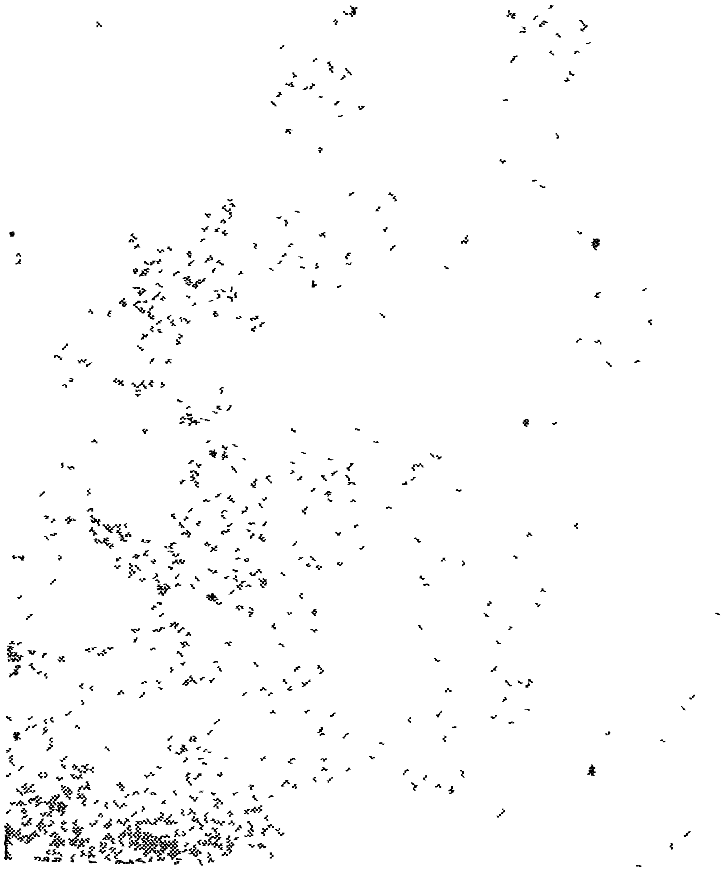
जब एक पुरुष एक महिला पर तलवार का वार करता है, तो वह एक हाथ से उस पुरुष का दाहना हाथ और दूसरे से उसका कन्धा पकड़ कर उसे घुमा देती है और इस प्रकार अपनी रक्षा करती है।



जब एक पुरुष पीछे से वार करता है, तो महिला उसकी गर्दन पकड़ लेती है और फिर उसे नीचे गिरा देती है।



पीछे से आक्रमण करने वाले का सामना करने का दूसरा दाँव।

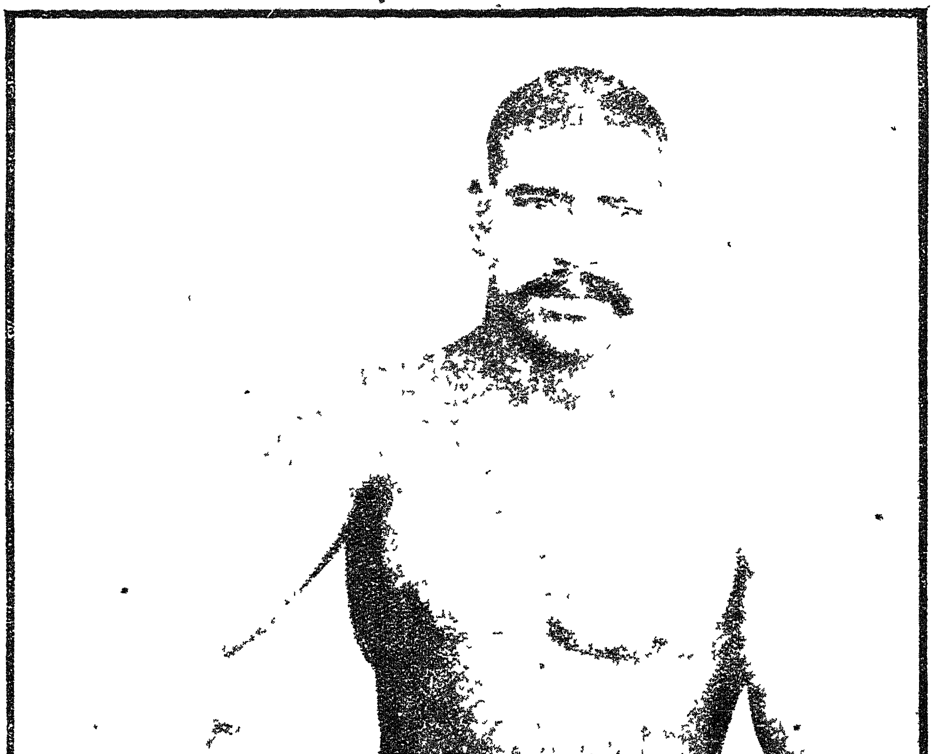


एक हाथ से आक्रमणकारी का दाहिना हाथ और दूसरे से उसकी गर्दन पकड़ कर तथा अपना पैर उसके सामने रख कर उसे अपनी ओर ज़ोर से खींचती है।



नम्बर ४ के दाँव के बाद वह उस आक्रमणकारी को पृथ्वी पर गिरा देती है और इस प्रकार केवल बुद्धि-बल से शक्ति पर विजय पाती है।

'चाँद' की दुर्लभ चित्रावली का एक पृष्ठ



सुप्रसिद्ध पहलवान श्री० इमामबख़्श (रुस्तमे हिन्द)

नवयुवकों से—

[श्री० शङ्करदयालु जी श्रीवास्तव्य, विशारद, एम० ए०]

हमारे हिन्दू-धर्म एवं हिन्दू-समाज में स्थितिपालकता (Conservatism) की एक प्रकार से अति हो गई है। सामाजिक जीवन के किसी क्षेत्र में परिवर्तन की कितनी भी अधिक आवश्यकता क्यों न हो, हिन्दू-समाज उसे स्वीकार करना नहीं चाहता। स्थितिपालकता स्वयं अनिवार्य रूप से कोई दोष नहीं है, वरन् किसी सीमा तक यह एक गुण है। किन्तु 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' के सिद्धान्तानुसार जब उसका आधिक्य हो जाता है, तब वह एक विनाशकारी दोष के रूप में परिवर्तित होकर ही रहती है। इस समय हमारे समाज में अनुदारता इसी दोष-रूप मे वर्तमान है और सामाजिक जीवन को विषाक्त बना रही है। शताब्दियों से हम इसी अवस्था में सोते रहे हैं, यद्यपि कुछ लोगों की आँखे खुली हैं और वे वास्तविक परिस्थिति को देख कर सचेत हो रहे हैं। किन्तु बहुसंख्यक लोग अभी गहरी निद्रा में पड़े सो रहे हैं, उन्हें काल-प्रगति तथा सामाजिक स्थिति का कुछ भी ज्ञान नहीं। समीचीन शिक्षा का अभाव ही उनके इस अज्ञान का प्रधान कारण है। आवश्यकता यह है कि समाज के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अब नींद से जगाएँ और उनके हृदयों में जाग्रत जीवन का भाव भर दें, ताकि वे अपनी परिस्थिति को समझ कर परम्परागत अपने धार्मिक तथा सामाजिक जीवन में यथोचित परिवर्तन करने के लिए तैयार हों। हमारी असावधानी एवं स्थितिपालकता के कारण देश तथा समाज में कौन-कौन सी कुरीतियाँ और कुप्रथाएँ चल पड़ी हैं, उनका निराकरण कैसे हो सकता है और यदि वे इसी दशा में प्रचलित रहीं तो उनसे भविष्य में क्या दुष्परिणाम हो सकेंगे, ये सब विचारणीय बातें हैं और हम इनकी उपेक्षा नहीं कर सकते।

देश एवं समाज का भविष्य अधिकांश में वर्तमान काल के युवकों पर निर्भर है। बड़े-बड़े नेताओं तथा सुधारकों ने पथ-प्रदर्शन का कार्य कर दिया है, निद्रा से जाग कर वे हमारी आँखे खोल गए हैं। वास्तव मे यह सब उन्हीं के योग्य काम था और वे उसे कर गए हैं। हम नवयुवकों का अब कर्त्तव्य यह है कि उनके दिखाए हुए पथ पर स्वयं चलें और दूसरों को चलावें। सामाजिक जीवन मे, धार्मिक नियमों मे जितना परिवर्तन आवश्यक है, जितना परिवर्तन कर हम अपने समाज की रक्षा कर सकें, धर्म की मर्यादा रख सकें उतना, बहादुरी के साथ अवश्य करें। परिवर्तन तो कई बातों मे करना है; किन्तु हम यहाँ केवल एक विषय के प्रति युवकों का ध्यान आकर्षित करते हैं और वह है हमारी विधवा बहिनों की वर्तमान दुर्दशा। राष्ट्र के कर्णधार नवयुवको, उठो! तुम्हारे ही उठने से यह दुर्दशा दूर हो सकेगी, तुम्हारे ही प्रतिज्ञा करने से इसमें उचित परिवर्तन हो सकता है। यदि तुम मातृ-शक्ति के सच्चे उपासक हो, यदि तुम अपनी विलखती हुई बहिनों की आँखों से आँसू पोंछना चाहते हो, यदि हिन्दू-धर्म एवं समाज को अकलङ्कित बना कर रखना चाहते हो और यदि चाहते हो कि तुम्हारी बहिनें जघन्य पुरुषों के प्रलोभनों में पड़ कर पथ-भ्रष्ट न होने पावें, तो उठो, उसका उपाय करो, अपनी निर्बलताओं को दूर करो, अपनी अन्तरात्मा से निकलती हुई ध्वनि पर कान दो और फिर बन जाओ दृढ़-प्रतिज्ञ। ठान लो अपने मन मे कि विधवाओं को उन यन्त्रणाओं से मुक्त करेंगे, जिनमें पड़ कर वे जीवन-पर्यन्त दुख सहा करती हैं।

हम इस लेख में वेदों, स्मृतियों तथा पुराणों की साक्षी-सम्मति अथवा युक्ति-प्रमाण देने नहीं बैठे हैं।

धर्म-ग्रन्थों का मथन करके विधवा-विवाह की प्रथा के समर्थन में पर्याप्त प्रमाण और लोग दे चुके हैं। जो लोग प्रमाण की आवश्यकता समझते हों, वे उसे देखें और पढ़ें। हमारे लिए तो विधवाओं की दर्दनाक आहें ही सबल प्रमाण हैं। उनकी विविध यातनाएँ ही उनके पुनर्विवाह की आवश्यकता को सिद्ध कर रही हैं। समाज की जो परिस्थिति हमारी आँखों के सामने है, जो रोमाञ्चकारी दृश्य दिखाई पड़ रहा है और जो वीभत्स चित्र नेत्रों के सामने झूल रहा है, उसे देख-सुन कर तो हिन्दू-जाति के जीवन-मरण का प्रश्न ही हमारे सामने उपस्थित हुआ सा प्रतीत होता है। ऐसी अवस्था में यदि थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि स्मृति-पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों मे विधवा-विवाह का कोई विधान नही मिलता, तो क्या हम चुप साध कर हाथ बाँधे बैठे रह सकते और लाखों-करोड़ों अबला स्त्रियों के करुण-क्रन्दन पर निष्ठुरता के साथ अपना कान बन्द कर लेते? नही, ऐसा हमसे कदापि न होता। हम आपद्धर्म की शरण लेकर अपने जीवन-प्रवाह मे सुधार अवश्य करते और वही अब भी करेंगे। अन्धविश्वासों तथा प्राचीन रूढ़ियों की अवहेलना कर सुधार और परिवर्तन हम अवश्य करेंगे, जिससे कि हमारी सभ्यता-संस्कृति और हमारा धर्म-समाज पूर्ण रूप से रक्षित रह सके, कलङ्कित तथा जर्जरित हो रसातल की ओर न चला जावे। आज से हज़ार दो हज़ार अथवा चार हज़ार वर्षों के पूर्व हमारे धर्मोपदेष्टा ऋषि-मुनियों ने, बिलकुल विभिन्न परिस्थिति मे बैठ कर यदि हमारे लिए ऐसे धार्मिक एवं सामाजिक नियम बनाए, जोकि नवीन परिस्थितियों के अनुकूल नही सिद्ध होते, तो क्या हमारा कर्त्तव्य यह नहीं है कि हम अपनी बुद्धि के अनुसार आवश्यकता देख कर उनमें सुधार कर लें। सम्भव हो सकता है कि आधुनिक काल के जातीय सङ्घर्षण तथा सम्पर्क-विपर्क का उन्हें सम्यक् ज्ञान न रहा हो।

संसार की कोई भी वस्तु एक ही रूप तथा एक ही अवस्था में सदा स्थिर नहीं रह सकती, यह एक साधारण प्राकृतिक सिद्धान्त है और इसकी सत्यता के साक्षी संसार के असंख्य पदार्थ हैं, जो चर-अचर जड़-जीव के रूप में नित्यशः उत्पन्न तथा नष्ट होते रहते हैं। धर्म और समाज के सम्बन्ध में भी यही विश्व-व्यापक सिद्धान्त लागू होता है। कोई धर्म अथवा कोई समाज कालचक्र द्वारा उपस्थित की हुई नवीन परिस्थितियों की उपेक्षा करके, अनेक जातियों के पारस्परिक जीवन-होड तथा सम्पर्क-विपर्क के प्रभाव की अवहेलना कर, सदा—अनन्त काल तक—एक ही अवस्था में कदापि स्थिर नहीं रह सकता। जो धार्मिक अथवा सामाजिक नियम कभी किसी काल मे निर्माण किए जाते हैं, वे उसी समय-विशेष की परिस्थितियों के अनुकूल होते हैं, उन्हीं के वातावरण मे वे रँगे रहते हैं। समय एवं परिस्थिति के बदल जाने पर, समाज-यन्त्र को सम्यक् रूप से सञ्चालित करने के लिए, पूर्व-निर्मित नियमों मे समुचित संशोधन व परिवर्तन उपस्थित करने की अनिवार्य आवश्यकता होती है, अन्यथा वही नियम जो परिस्थिति के अनुकूल होने पर कितने भी समाज-हित-साधक क्यों न रहे हों, प्रतिकूल परिस्थिति के उपस्थित होने पर हानिकर सिद्ध होते हैं।

समाज मे स्फूर्ति उत्पन्न करने वाले युवको! मुरझाए हुए जर्जर शरीर मे चेतना तथा नवजीवन भरने वाले आर्यमाता के सपूतो! और अपने गौरव तथा आदर्श पर जीवनोत्सर्ग करने वाले वीर बाँकुरो!! यदि उपरोक्त सिद्धान्त की सत्यता एवं वास्तविकता मे तुम्हें विश्वास हो, यदि सचमुच समझते हो कि हमारी अनेक अन्ध-रूढ़ियों के कारण हिन्दू-जाति एवं समाज की जीवन-शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है, तो फिर विलम्ब न लगाओ, उठो और उन रूढ़ियों को कुचल डालो, विधवाओं के प्रश्न को अपने हाथ में लो, उनके मस्तकों से दुःख का बोझा उतार कर उन्हें विश्राम दो, उनकी विपत्तियों का निवारण करो, उन्हें सधवा बनने का फिर अवसर दिलाओ, ताकि उनकी माँगों मे सौभाग्य-सूचिका सिन्दूर-रेखा फिर शोभायमान हो, वे भाग्यवती बनें और तुम भगवती शक्ति-देवी का आशीर्वाद ग्रहण करो। यदि तुमने इस कार्य का भार अपने ऊपर नहीं लिया, तो समझो कि हमारी अवस्था शनैः-शनैः और भी शोचनीय होती जायगी और यह सामाजिक रोग धीरे-धीरे बढ़ कर असाध्य हो जायगा, इस व्रण को अधिक बढ़ने देना अच्छा नहीं है। देखो समाज के चित्र को अपने सामने खींचो और तब यह विचार करो कि इस बीभत्सकारी, रोमाञ्चकारी दृश्य को कितनी देर

तक आँखें खोल कर देखते रह सकते हो। यदि तुम्हें हिन्दू-जाति तथा आर्य-सभ्यता का ममत्व हो और उसे अब अधिक अपमान से बचाना चाहते हो, तो ऐसा प्रयत्न करो कि यह दृश्य फिर न दिखाई पड़े। समाज के चित्रपट से यह दृश्य अदृश्य हो जाय तभी अच्छा है।

हिन्दू सामाजिक जीवन के अन्तराल में वैधव्य-व्याधि-वेदना का विषम आर्त्तनिनाद किस सहृदय प्राणी के हृदय में करुणा की एक लहर न उत्पन्न कर देता होगा। गुप्त-व्यभिचार, गर्भपात तथा भ्रूणहत्या जैसे अनेक जघन्य एवं राक्षसी कृत्यों के हृदय-विदारक वर्णनों को पढ़-सुन कर, हिन्दू जाति और आर्य-सभ्यता पर गर्व करने वाले किस हिन्दू के हृदय में उद्दाम उत्पीड़ा न उत्पन्न होगी। इतना होने पर भी बाल-विवाह, अनमेल विवाह तथा बहु-विवाह के पक्षपाती, सनातन-धर्म का वास्तविक अर्थ न समझने वाले 'सनातनी' हिन्दू विधवा-विवाह की चर्चा छिड़ते ही अपनी नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, क्रोध के मारे आग-बबूला हो जाते हैं और सुधारकों की ऊँच-नीच, असाधु आलोचना करने लगते हैं। विधवाओं की शोचनीय अवस्था हिन्दू-जाति, हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-सभ्यता के मस्तक पर कलङ्क का एक टीका है। जब तक हिन्दू-जाति इस कलङ्क-कालिमा को धोकर पाप-पुञ्ज से मुक्त न हो लेगी, तब तक उसका मस्तक संसार की अन्य उन्नतिशील जातियों के सामने अवनत ही रहेगा।

पति के जीवन-काल मे आर्य-रमणी के लिए संसार में सर्वत्र सुख एवं आशा का प्रकाश दिखाई देता है, किन्तु संसार से पतिदेव के प्रस्थान करते ही उस भाग्य-हीना ललना के चक्षुओं के सामने समस्त संसार अन्धकारमय प्रतीत होने लगता है, सारे सुख-स्वप्न, सारी कामनाएँ उसी निविड़ अन्धकार में विलीन हो जाती हैं और उनके स्थान में नारकीय यन्त्रणाएँ राक्षसियों का भयावह रूप धारण कर उसे पद-पद पर, पल-पल में भयाकुल बनाती रहती हैं। जीवन-सर्वस्व के अपहरण हो जाने पर वे बिलकुल निर्जीव हो जाती हैं, माता-पिता, सास-ससुर सबकी आँखों में उसका आदर कम हो जाता है, ईश्वर के अतिरिक्त संसार में उस निस्सहाया के लिए कोई नहीं रह जाता, जिसके सामने वह अपनी दुःख-गाथा इस आशा से रोवे कि ऐसा करने से हमारा दुःख दूर हो जायगा। उनकी विपत्ति की कहानी इतने में ही समाप्त नहीं है। वे ही नारियाँ जो कल तक मङ्गल-मुखी समझी जाती थीं, आज पतिदेव के देहावसान से अमङ्गल की खानि समझी जाती हैं। मरण-पर्यन्त पति-वियोग की विकराल अग्नि-ज्वाला मे तो वे ऐसे ही जला करती हैं, ऊपर से चारों ओर से उन पर अपमान और तिरस्कार की वर्षा होती है। विवाह-गवना हो अथवा कोई पर्व-उत्सव हो, वहाँ उनकी उपस्थिति दोष-कर मानी जाती है।

युवको! तनिक अपने हृदय में विचारो तो सही कि यह उनके किस अपराध का बदला है। उन बेचारी विधवाओं ने क्या पाप किया है, जो सारा समाज उनके दु.ख-विलाप पर अपना कान नहीं देता। यदि किसी पुरुष की स्त्री का देहान्त हो जाय तो उसे अधिकार है कि वह चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा, रोगी हो अथवा निर्बल; झट अपना दूसरा विवाह पन्द्रह वर्ष की कुमारी से कर ले, किन्तु किसी स्त्री को हम यह अधिकार नहीं देना चाहते कि पति की मृत्यु के पश्चात् वह अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए कोई दूसरा पति वरण कर ले। चाहे वह अबला दस-पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे ही विधवा बन बैठे अथवा २०-२५ वर्ष की आयु में, हमे इसकी कुछ भी परवाह नहीं है। उसे झख मार कर अपना शेष जीवन उसी निस्सहायावस्था में व्यतीत करना पड़ेगा। सत्य के जिज्ञासुओ और न्याय के प्रेमी नवयुवको! पुरुष-वर्ग को क्या अधिकार है जिससे कि वे अपनी साठ-सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में, पहिली-दूसरी नहीं, बल्कि पाँचवीं-छठी बार किसी षोडश वर्षीया तरुणी का पाणिपीडन करने में तनिक भी नहीं हिचकते-झिझकते। परन्तु जब एक दुधमुँही विधवा-बालिका के पुनर्विवाह की चर्चा छिड़ती है, तब हिन्दू-धर्म-मर्यादा की ओट मे—हिन्दू-जाति, हिन्दू-समाज तथा सनातन-धर्म को अकलङ्कित बना रखने के निमित्त—उसको जीवन-पर्यन्त अविवाहिता रखने का उपदेश देते हैं। पुरुष-वर्ग का स्त्री-जाति पर यह अमानुषिक अत्याचार! दानवता का यह भीषण ताण्डव नृत्य!! स्वार्थान्धता का यह वीभत्सकारी दृश्य!!!

यदि वास्तव में हमारा सनातनधर्म ६०-७० वर्ष तक के विधुर-वृद्ध को १४-१५ वर्ष की तरुणी बाला का पाणि-

ग्रहण करने की अनुमति देता है और फिर दो-चार वर्षों के अनन्तर उस तरुणी के विधवा हो जाने पर उसके पुनर्विवाह को निषिद्ध करने मे ही अपना गर्व समझता है; यदि वस्तुतः हमारा हिन्दू-समाज बाल-विवाह, अनमेल विवाह का प्रचार कर निष्कलङ्क रह सकता है तथा बहु-विवाह करने की आज्ञा दे अदोष बना रह सकता है और यदि सचमुच हमारा धर्म वृद्ध पुरुष को नव विवाह कर भोग-विलास में संलग्न रहने का विधान कर सकता है, परन्तु वैधव्य-व्याधि से पीड़ित सब बाल-तरुणियों को अनिवार्य रूप से ब्रह्मचारिणी बनी रहने, योगी-तपस्वी का जीवन व्यतीत करने का उपदेश देता है—यदि ये सब बातें सत्य हैं, तो हम निःसङ्कोच भाव से यह कह सकते हैं कि निस्सन्देह हमारा हिन्दू-धर्म अथवा हिन्दू-समाज उपहासास्पद है और पाप-भार से दब कर कभी रसातल तक पहुँच जायगा। किन्तु हमें तो विश्वास है कि हमारा सनातनधर्म इतना सङ्कुचित नहीं है। स्थितिपालक लोगों ने ही इसे सङ्कुचित समझ रक्खा है।

समाज की वर्तमान परिस्थिति मे वैधव्य-व्याधि ने जो विश्रृङ्खलता उत्पन्न कर दी है, उसको दूर करने के लिए यह अनिवार्य रूप से आवश्यक प्रतीत होता है कि विधवाओं के पुनर्विवाह की समुचित व्यवस्था कर दी जाय। जब तक समाज में धूर्त, पाखण्डी, कुचाली तथा व्यभिचारी उपस्थित हैं, हम यह आशा कैसे कर सकते हैं कि पन्द्रह-पन्द्रह सोलह-सोलह वर्ष की तरुणी विधवाएँ उनके प्रलोभनों से बच कर जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारिणी बनी रहने का कठिन व्रत लें। साधारण स्त्री-समाज के लिए ऐसा व्रत लेना और सब प्रकार की परिस्थितियों में उसे निभा जाना सहज बात नहीं है। यही कारण है कि आज समाज में अप्राकृतिक गुप्त-व्यभिचार फैल गया है और जब वे विधवा अबलाएँ इस प्रकार के गुप्त-सम्भोग द्वारा गर्भवती हो जाती हैं तो जाति-गौरव तथा कुल-मर्यादा के भय से या तो किसी अप्राकृतिक विधि से गर्भ-मुञ्चन कराती हैं अथवा उनके माता-पिता, सास-ससुर घर से बाहर निकाल देते हैं और उसके पश्चात् गुण्डों के हाथ में पड़ कर उन पर जो अत्याचार किए जाते हैं, उनका वर्णन न करना ही अच्छा है। प्रायः यह देखा जाता है कि गुप्त-सम्भोग द्वारा जब किसी विधवा के गर्भ से बच्चा उत्पन्न होता है तो वह अभागिनी माता स्वाभाविक मातृस्नेह की भावना को कुचल कर और एक दीर्घ-निश्वास छोड़ कर अपने नवजात शिशु को कहीं ले जाकर परित्याग कर आती है। कितनी मार्मिक तथा कारुणिक कहानी है। विधवाओं का पुनर्विवाह न होने से न केवल गुप्त-व्यभिचार की ही वृद्धि होती है, वरन् बहुतेरी उच्च कुल की विधवाएँ, जो घर से निकल जाती हैं अथवा निकाल दी जाती हैं, वेश्या-वृत्ति ग्रहण कर खुल्लमखुल्ला व्यभिचार फैलाती हैं और फिर समाज के लिए विष हो जाती हैं।

इसके अतिरिक्त जाति एवं साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्दिता हिन्दू-समाज की शक्ति को उत्तरोत्तर और भी अधिक क्षीण बनाती जा रही है। यदि हिन्दू-कुल में हिन्दुओं के द्वारा आज विधवाओं पर अत्याचार ढाए जा रहे हैं, उनको तिरस्कृत तथा अपमानित किया जा रहा है, उनके साथ सहानुभूति तथा समवेदना प्रकट करने वाला कोई सम्बन्धी नहीं है, तो निश्चय है कि वे अबला विधवाएँ आर्येतर जाति वालों के प्रलोभनों में पड़ कर धीरे-धीरे भारी संख्या में मुसलमानों अथवा ईसाइयों के हाथों में चली जायँगी। इस प्रकार की घटनाओं के हज़ारों उदाहरण हमारी आँखों के सामने मौजूद हैं। इसका दुष्परिणाम क्या होगा? हिन्दू-जाति की शक्ति क्षीण होती जायगी और प्रतिद्वन्दी जातियों की शक्ति बढ़ती जायगी। यदि यह क्रम जारी रहा और विधवा-विवाह की व्यवस्था न हुई तो भविष्य में, दो-चार शताब्दियों के अन्दर यह विशाल हिन्दू-जाति एक अल्पसंख्यक जाति (Minority Community) के रूप में परिवर्तित हो जायगी और विधवा-विवाह का विरोध कर हिन्दू-धर्म के गौरव-मर्यादा की रक्षा करने वाले सनातनी पण्डित तथा धार्मिक पाखण्डी अपने शास्त्र-पुराणों को बस्ते में बाँधे बुद्धू से बैठे रह जायँगे। एक ओर से मुसलमान और दूसरी ओर से ईसाइयों की मिशनरियाँ हमारी जाति से अनाथ बालकों, अबला-विधवाओं को विविध प्रकार के प्रलोभनों में फँसा कर अपने-अपने दल को सबल बनाते जाते हैं और हिन्दू माता-पिता अपनी विधवा बहू-बेटियों के पुनर्विवाह के विरोध में यह तर्क उपस्थित करते हैं कि यह तो भगवान की इच्छा ही है कि वे अभागिनी स्त्रियाँ मृत्युपर्यन्त पति-सुख से विहीन

रहे, यह सब उनके पूर्व जन्म के दुष्कर्मों का फल है। यदि उनके भाग्य मे पति-सुख लिखा होता तो विधाता उन्हें विधवा ही क्यों बनाता। कितनी थोथी दलील है! कितना लचर, कितना ज्ञान-शून्य तर्क है!! कविवर 'जोतिसी' के शब्दों मे, इस सम्बन्ध में हम इतना ही कहना चाहते है कि—

पति के मरे तैं जो पै पाप लगि जातो तौ तौ,
पापिनी प्रसिद्ध होतीं कौशलादि नारी सब।

× × ×

विधि के किए तैं होतीं जो पै पतिहीन तौ,
वे गरभ-विहीन होतीं विधवा विचारी सब॥

हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम अपने देश एवं जाति के सामने पाश्चात्य देशों की सभ्यता के आदर्श प्रस्तुत करें और उनका अनुकरण करने के लिए परामर्श दें। हम यह कदापि नहीं चाहते कि हमारी बहिनें तथा माताएँ यूरोप की सभ्यता का अनुकरण करें। हमारे विचार से पाश्चात्य सभ्यता सच्ची तथा अनुकरणीय नहीं है और न संसार के लिए वह लोक-कल्याणकारी ही हो सकती है। हमारा आदर्श, सभ्यता, संस्कृति उससे सर्वथा विभिन्न रहेगी। उस यूरोपीय समाज के आदर्श से प्रभावान्वित होकर नहीं, वरन् अपनी वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रख कर ही हम यह कहते हैं कि हिन्दू-जाति मे विधवा-विवाह का प्रचार होना चाहिए। नवयुवको! अगर सचमुच तुम्हारा हृदय साक्षी देता हो कि विधवाओं की दशा विधवा-विवाह से सुधरेगी तो फिर साहसपूर्वक इस कार्य में लग जाओ और अपनी हिन्दू-जाति की मर्यादा की रक्षा करो। हृदय खोल कर देखो कि हमारा-तुम्हारा हिन्दू-समाज परम्परागत अन्धरूढ़ियों के साङ्घातिक रोगों के कारण कितना शिथिल एवं विकृत-काय होता जा रहा है। इसमे सन्देह नही कि स्वार्थी, अन्धविश्वासी तथा अज्ञानी लोग तुम्हारे इन कार्य में अवरोध उपस्थित करेंगे; किन्तु वीरो, याद रक्खो, युवकों मे क्षत्रीत्व का बल निहित रहता है। इस अज्ञान-पूर्ण विरोधों को जीतने के लिए अपने हृदय की क्षत्रीत्व-शक्ति की सहायता लो। जब तक हम इन विरोधों से डरते रहेंगे, विरोधी और भी प्रबल होते जायँगे और पतनोन्मुख समाज अवनति करता जायगा। यदि हमने साहस कर इन विरोधों की उपेक्षा की तो सच जानिए, विरोधी शक्तियाँ भी चुप तथा शान्त हो जायँगी।

युवको! क्या तुम्हें ज्ञात है कि हिन्दू-समाज में लाखों की संख्या में ऐसी बाल-विधवाएँ हैं, जो अक्षत-योनि हैं, जिन्होंने अपने पति का दर्शन भी नही पाया, दाम्पत्य सुख का अनुभव करने की बात तो दूर रही। यदि समझते हो कि ऐसी निर्दोष बालिकाओं को जीवन-पर्यन्त वैधव्य-व्याधि में डाल रखना एक गर्हणीय कार्य है, तो फिर अपने हृदय में साहस करो और उन्हें दुःख से उबार कर अपने समाज, अपनी जाति तथा धर्म की रक्षा करो। युवको! तुमसे हमारी यही अपील है।

भेंट

[श्रीमती शान्तिदेवी]

प्रेम का परिचय देने आया।

मानस के अशान्त सागर से निर्मल मोती लाया; कमल-कटोरों में चुन-चुन कर उनको खूब सजाया।
चञ्चल चित ने इस डाली को आगे तनिक बढ़ाया; भ्रकुटी की ठोकर से तुमने नीचे उन्हें गिराया।

प्रेम मेरा इस विधि ठुकराया!

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

ख़दीव की अपव्ययता और राष्ट्रीय जागृति

जब नेपोलियन मिसिर छोड़ कर भाग गया तो अलबेनिया के एक सैनिक सरदार ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। इसका नाम था मोहम्मदअली। इसने अपनी सेना और अन्य प्रबन्ध-विभागों की यूरोपीय ढङ्ग पर व्यवस्था की। लेकिन अभी यूरोपीय सभ्यता का प्रचार मिसिर में काफ़ी नही होने पाया था, इसलिए उसके सुधार मिसिर-जीवन के अङ्ग नही बन सके। मोहम्मदअली के बाद ख़दीव इस्माइल गद्दी पर बैठा और उसने भी उसी नीति का अनुसरण करना जारी किया। इसको यूरोपीय सभ्यता तथा यूरोपीय लोगों से बड़ा अनुराग था। यूरोप की नकल करने में वह अपना गौरव समझता था और सदैव यूरोपीय मित्रों, अधिकारियों और सलाहकारों से घिरा रहता था। वह अपने देश में सुधार करने के बहाने धड़ाधड़ यूरोपीय देशों से ऋण लेता जाता था। जब यह ऋण इतना बढ़ गया कि वह चुका न सका, तो यूरोपीय देशों ने मिसिर के शासन में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इस यूरोपीय हस्तक्षेप के कारण मिसिर में राष्ट्रीय जागृति हुई। जब मिसिर-वासियों ने देखा कि यूरोपीय राष्ट्र ख़दीव इस्माइल को ऋण लेने के लिए अधिकाधिक प्रेरित करके हस्तक्षेप करने का बहाना ढूँढ रहे हैं और ख़दीव सदा ऐसे यूरोपियन लोगों से घिरा रहता है, जिनका एकमात्र अभिप्राय उसकी अपव्ययता से लाभ उठाने का है, और इन सब बातों के कारण मिसिर की दासत्व-शृङ्खलाएँ तैयार होती जाती हैं, तो उन्होंने अपने ख़दीव की अपव्ययता तथा यूरोपीय लोगों की स्वार्थमयी हस्तक्षेप-नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई। लोग कहने लगे कि मिसिर मिसिरियों के लिए है, न कि यूरोपीय लोगों के लिए। ख़दीव न्यायपूर्वक और देशहित को दृष्टि में रख कर राज्य करने के लिए है, न कि अपनी अपव्ययता द्वारा देश को परतन्त्र बनाने के लिए।

जमालुद्दीन, क्रान्ति और अङ्गरेज़ों का आधिपत्य

इस समय जमालुद्दीन अफ़ग़ानी मिसिर मे आया और उसने इस्लाम-सङ्गठन तथा राष्ट्रीयता का मन्त्र फूँकना शुरू किया। उस समय मिसिर देश के सामने इस्लाम-सङ्गठन की अपेक्षा अपना घरू प्रश्न अधिक विकट था। इसलिए मुस्लिम-सङ्गठन की ओर तो लोग अधिक नहीं झुके, पर राष्ट्रीयता का महत्व फ़ौरन उनकी समझ में आने लगा और देश मे अपूर्व जागृति दिखाई देने लगी। जमालुद्दीन अफ़ग़ान के भाषणों का प्रभाव क्या गरम, क्या नरम, सभी नेताओं पर पड़ा! सिद्धान्तरूपेण उसके मत को अरबी पाशा जैसे उग्रनेता और शेख मोहम्मद अबदाऊ जैसे नरम कार्यकर्त्ता दोनों मानते थे। राष्ट्रीयता की लहर सारे देश में फैल गई और राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की अभिलाषा दुर्दमनीय हो गई। सन् १८८२ में अरबी पाशा के नेतृत्व मे एक प्रबल सशस्त्र बलवा हुआ, जिसका ध्येय था सब विदेशियों को बाहर निकाल देना। सिकन्दरिया नगर में अनेक यूरोपीय लोगों का वध किया गया और अन्यत्र कई स्थानों में भीषण रक्तपात हुआ। यूरोप और विशेषकर इङ्गलिस्तान तो ऐसे अवसर की ताक में ही बैठा हुआ था। फ़ौरन अङ्गरेज़ी सेना मिसिर मे आ पहुँची और तेलल कबीर के युद्ध में मिसिर राष्ट्रवादियों को हरा दिया। इस एक

ही युद्ध से मिसिर को ऐसा धक्का पहुँचा कि वह वर्षों के लिए दूसरों का पराधीन बन गया था। इस्माइल की अपव्ययता के कारण सरकारी कोष तो पहले ही ख़ाली था, इस क्रान्ति और युद्ध ने उसको और भी दिवालिया बना दिया और अङ्गरेज़ सरकार के कठोर साम्राज्यवादी अफ़सर लॉर्ड क्रोमर का निरङ्कुश शासन स्वीकार करने को विवश कर दिया।

अङ्गरेज़ों का शासन

ख़दीव वंश को नाममात्र के लिए रहने दिया और शासन-प्रणाली भी वही रक्खी गई, जो परम्परा से चली आती थी, परन्तु वास्तव मे मिसिर में लॉर्ड क्रोमर का राज्य हो गया। मिसिर के राष्ट्रीय नेता या तो अङ्गरेज़ी सङ्गीनों के शिकार हो गए या उन्होंने इधर-उधर जङ्गलों मे छिप कर अपने प्राण बचाए। लॉर्ड क्रोमर ने शासन-प्रणाली की बागडोर उसी कठोरता, दृढ़ता और बुद्धि-मत्ता के साथ हाथ में ली, जैसे सन् १८४९ मे पञ्जाब को विजय करने के बाद सर हेनरी लॉरेन्स ने ली थी। राष्ट्र-वादियों को दबाया गया, देशभक्तों को नाना प्रकार की यातनाओं द्वारा त्रस्त किया गया। प्रेसों का गला घोंटा गया और निरङ्कुश शासन की दुन्दुभी बजाई गई। इसीलिए साम्राज्यवादी अङ्गरेज़ लेखक उसको बड़ा उत्तम शासक मानते हैं। श्रीयुत लोथरप स्टोडर्ड लिखते हैं कि—"लॉर्ड क्रोमर ने २५ वर्ष तक मिसिर का इतना उत्तम शासन किया कि वे आज संसार के महान शासकों मे अग्रगण्य माने जाते है।" यदि उत्तम शासन का मतलब है जनता का क्रूर दमन, और अनियन्त्रित तथा अनुत्तरदायी राज्य, तब तो लॉर्ड क्रोमर अवश्य उत्तम शासक थे, परन्तु राजनीति के लेखक आजकल उत्तम शासन की कुछ और ही व्याख्या करते है।

तेलल कबीर के युद्ध के बाद और लॉर्ड क्रोमर के राज्यकाल में प्रत्यक्ष में तो ऐसा जान पड़ता था कि राष्ट्रीय भाव लुप्त हो गए, पर वास्तव में राष्ट्रीयता शनैः-शनैः परिपुष्ट होती जाती थी, और १९वीं शताब्दी के अन्त में अनेक यूरोपीय जातियों को अनुभव होने लगा था कि राष्ट्रीयता जागृत हो रही है और लॉर्ड क्रोमर उसका दमन नहीं कर सकते। १८९९ में एक जर्मन-विद्वान ने, जो अफ़्रीका का भ्रमण करने गया था, लिखा था कि—"शनैः-शनैः मिसिर में राष्ट्रीयता पुन-र्जीवित होती जाती है। यह ठीक है कि अब तक मिसिर एक प्रबल राष्ट्र नहीं बन पाया है, पर सूत्रपात हो चुका है, यह समय की बात है कि वह कब सर उठावे।"

फ़्रान्स का रुख़

इसी समय फ़्रान्स भी इङ्गलैण्ड को सन्देह की दृष्टि से देखने लगा था। वास्तव में मिसिर में उसको अङ्गरेज़ों का निरन्तर राज्य पसन्द नही था। फ़्रान्स ही क्या, सारा यूरोप इसके विरुद्ध था। इस लोकमत की अनुकूलता से मिसिर राष्ट्रवादियों को गहरी सहा-यता मिली। मिसिर में पहले से ही अङ्गरेज़ी सभ्यता की अपेक्षा फ़्रेञ्च सभ्यता का अधिक प्रचार था। उनकी सहानुभूति देख कर मिसिर के लोग फ़्रेञ्च संस्कृति को और भी अधिक अपनाने लगे और मिसिर के नव-युवक राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए फ़्रेञ्च लोगों से पाठ पढ़ने लगे। इस बढ़ते हुए लोकमत और स्वातन्त्र्या-भिलाष को देख कर अङ्गरेज़ों ने सन् १९०४ में घोषित किया कि वे हमेशा के लिए मिसिर को अपने अधीन नहीं रखना चाहते।

जागृति और मुस्तफ़ा कमाल

राष्ट्रीय आन्दोलन क्रोमर का दबाया भी नही दबा, बल्कि दिन-दिन बढ़ने लगा। इसी समय मुस्तफ़ा कमाल नामक एक योग्य नेता कार्यक्षेत्र में आया और उसने बड़ी उत्तमता से यह आन्दोलन अपने हाथ में लिया। यह मुस्तफ़ा कमाल और है एवं तुर्की राष्ट्र का वर्तमान प्रधान और है। मुस्तफ़ा कमाल अद्भुत आन्दोलक था और उसमे आश्चर्यकारिणी कार्यक्षमता थी। अपने लेखों से पाठकों को और भाषणों से श्रोताओं को वह मन्त्र-मुग्ध कर देता था। वह अथक परिश्रमी और आकर्षक चरित्र वाला था। वह कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों का सम्पादन करता था और जब अङ्गरेज़ सरकार एक पत्र को ज़ब्त कर लेती थी, तो वह तत्काल दूसरा पत्र जारी कर दिया करता था। उसकी नीति, आन्दोलन-पद्धति और देश-प्रेम का इन शब्दों से अनु-मान किया जा सकता है, जो उसने सन् १८९६ में अपने पत्र एललेवा में लिखे थे—"यदि स्वयं हमने अपनी संस्कृति की रक्षा न की तो यह भविष्य में कुछ

समय तक भी नहीं निभ सकेगी। हमारे देश के कृषक, मज़दूर, वणिक, विद्वान् और अमीर सबको अनुभव करना चाहिए कि सुन्दर संस्कृत रूप से उनके पास एक अनमोल निधि है और उनको इसकी रक्षा करनी चाहिए। हमको जानना चाहिए कि हम स्वार्थी विदेशियों के हाथ की कठपुतलियाँ बनने को पैदा नहीं हुए हैं; बल्कि सम्मानपूर्वक साधिकार जीवन निर्वाह करने के लिए तथा अपने देश के मान की रक्षा करने के लिए उत्पन्न हुए हैं। देशानुराग मनुष्य की आत्मा को पवित्र करता है। जो जाति स्वातन्त्र्यहीन है, वह वास्तव में अस्तित्वहीन है। देशप्रेम द्वारा ही मनुष्य सभ्य, महान और सामर्थ्यशील बनता है। देश-प्रेम जातियों का जीवन है, यह उनका आधार है, यही उनका सर्वस्व है।

"आज हम नष्ट हो चुके है और लुप्त हो चुके हैं। लूटने वाले अङ्गरेज़ हैं। हम अपने जन्मसिद्ध पवित्र अधिकारों को प्राप्त करना चाहते हैं, पर ये लोग उनको दबाए बैठे हैं। हम लोग धर्म-मार्ग पर हैं और ये लोग पाप-पथ पर। इसीलिए हमको विश्वास है कि आज नहीं तो कल हमारी विजय अवश्य होगी।"

इतना उग्र नेता होते हुए भी मुस्तफ़ा कमाल मानता था कि अब भी कुछ वर्ष और मिसिर में अङ्गरेज़ों की आवश्यकता है। इसलिए अरबी पाशा की भाँति उसने सशस्त्र बलवा नहीं करवाया। केवल चौतीस वर्ष की अवस्था में सन् १६०८ में उसका देहान्त हो गया और मोहम्मद फ़रीदबेग ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया। भाषण और लेख मे यह मुस्तफ़ा कमाल से भी अधिक तेज़ था। सितम्बर १६०६ के एललेवा में उसने लिखा था कि—"अङ्गरेज़ों के सम्पर्क से हमारा देश अपवित्र होता जाता है। उन्होंने हमारे सुन्दर दस्तूर (शासन-प्रणाली) को मटियामेट कर डाला है, हमारी ज़बानों पर ताले लगा दिए है, हमारे भाइयों को ज़िन्दा जलाया है और अनेक निर्दोष देश-प्रेमियों को फाँसी पर लटकाया है। इन लोगों ने ऐसे क्रूर अत्याचार किए हैं कि उनके कारण आकाश फटने वाला है, पृथ्वी डगमगाने वाली है और पर्वत गिरने वाले हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के युद्ध मे हमको जीवन का कुछ मूल्य नही समझना चाहिए, हमारी वर्तमान अवस्था में जीवन से मृत्यु अच्छी है।"

इस उग्रता के कई कारण थे। सन् १६०७ में लॉर्ड क्रोमर के स्थान पर सर एल्डन गोर्स्ट को शासक नियत किया गया था। वर्तमान भारतीय वाइसराय लॉर्ड इरविन के समान वह उदार नीति वाला था और मिसिर के स्वतन्त्रता-संग्राम के साथ कुछ सहानुभूति रखता था। परन्तु अधिकांश अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञ उससे सहमत नहीं थे। मिसिर स्वतन्त्रता चाहता था और इङ्गलैण्ड इस पर विचार करने को तैयार नहीं था। वास्तव में उसकी भौगोलिक स्थिति के कारण मिसिर का ब्रिटिश साम्राज्य मे बड़ा महत्त्व था। मिसिर से पश्चिम में इङ्गलिस्तान और पूर्व में भारतवर्ष है। इसलिए यों कह सकते हैं कि अङ्गरेज़ी साम्राज्य का आधा भाग मिसिर से पूर्व मे और आधा पश्चिम में है और स्वेज़ नहर के सान्निध्य के कारण इसके मार्ग की कुञ्जी मिसिर के हाथ मे है। इसलिए साम्राज्यवादी अङ्गरेज़ों ने मिसिर को दबाना ही श्रेयस्कर समझा। १६०८ मे तुर्की में अङ्गरेज़ों ने राज्य-क्रान्ति कर डाली थी। उसका भी मिसिर पर गहरा प्रभाव पड़ा। अङ्गरेज़ों की नीति से देश तो पहिले ही प्रक्षुब्ध हो गया था। एक मुस्लिम देश की क्रान्ति का हाल सुन कर उसका साहस और भी बढ़ गया और स्वराज्य की माँग देशव्यापी हो गई। इसी समय फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड में मैत्री हो गई। मिसिर को फ़्रान्स से सहानुभूति मिलती थी, पर सहायता मिलने की जो आशा थी, वह अब जाती रही। मिसिर को अनुभव हुआ कि स्वाधीनता किसी की दिलाई नहीं मिलती। उसे प्राप्त करना पड़ता है। जीवन की घुड़दौड़ में देशों को स्वयं अपने पाँवों पर खड़ा होना होता है।

लॉर्ड किचनर

१६१६ के लगभग मिसिर में राष्ट्रीयता की हलकी जागृति हो उठी। जहाँ-तहाँ रक्तपात, उत्पात और बलवे होने लगे। अङ्गरेज़ों ने यह समझ कर कि सर एल्डन गोर्स्ट की नरम नीति से काम नहीं चलेगा, उसको वापस बुला लिया, और लॉर्ड किचनर को उसकी जगह नियत किया गया। लॉर्ड किचनर सैनिक शासक था। उसने लॉर्ड क्रोमर की भाँति, बल्कि उससे भी अधिक दमन-चक्र चलाया। मिसिर से साफ़ शब्दों में कह दिया गया कि वह स्वराज्य के योग्य नहीं

है, और न कभी हो सकता है। मिसिर के लोगों को राजनीति की बातें छोड़ कर अपने कृषिकार्य की ओर ध्यान देना चाहिए, क्योंकि वे इसी के योग्य हैं। लगभग सब राष्ट्रीय पत्रों को बन्द करवा दिया, राष्ट्रीय नेताओं को क़ैद मे ठूंस दिया या देश से निकाल दिया। अङ्गरेज़ी पत्रों ने लॉर्ड किचनर के शासन की ख़ूब प्रशंसा की और अङ्गरेज़ समझने लगे कि मिसिरी राष्ट्रीयता की कमर टूट गई। अब वह नही उठ सकती। वास्तव में ऊपर-ऊपर तो मिसिर मे शान्ति दिखाई देती थी, परन्तु भीतर धीरे-धीरे आग सुलग रही थी।

सिडनी लो की सम्मति

सन् १९१३ मे मिसिर की स्थिति का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के बाद प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक श्री० सिडनी लो ने कहा था कि—"मिसिर में हमको कोई नही चाहता। कुछ लोग हमसे डरते हैं, और कुछ विवश हमारा आदर करते है, पर वास्तव मे दिल से हमको कोई नहीं चाहता।" अप्रैल १९१४ के 'एशियाटिक रिव्यू' नामक पत्र मे एक दूसरे सज्जन ने लिखा था—"अङ्गरेज़ी पत्र कभी मिसिर का उल्लेख नही करते और वहाँ की राजनैतिक स्थिति को जनता से छिपाते है। यह श्रेयसूचक नही है। प्रत्यक्ष मे मिसिर मे शान्ति है, पर इसके तल मे घोर अशान्ति, अविश्वास, घृणा और क्रोध भरे पड़े हैं। आजकल की कुछ घटनाओं से मिसिर को यह विश्वास हो गया है कि हम लोग उसका कभी भी पिण्ड नहीं छोड़ना चाहते। हमारे शासन के ढङ्ग से मिसिर को अभी तक यह यक़ीन नहीं हुआ है कि हम उसका हित चाहते है। बल्कि सारा देश यह समझता है कि हम उसके शत्रु है। वास्तव मे लॉर्ड किचनर की दमन-नीति मिसिर मे सफल नहीं हुई। क्या हुआ यदि इसने लोगों को ऊपर से शान्त कर दिया। मिसिर में राष्ट्रीयता दबने नही पाई, बल्कि अधिकाधिक ज़ोर पकड़ती जाती है। राष्ट्रीय प्रेम का गला घोंट देने का परिणाम यह हुआ है कि मुसलमान मन ही मन कुढ़ रहे हैं और कोप्ट लोग भी हमारे विरुद्ध होते जाते हैं। यह सम्भव है कि मिसिर में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करवाने का सरकार के पास कोई दूसरा साधन नहीं हो और यह भी सम्भव है कि निरन्तर दमन किए बिना सरकार अपनी ख़ैर नहीं समझती हो, परन्तु यदि ऐसा है तो यह सरकारी पक्ष की निर्बलता है और इससे सिद्ध होता है कि न जाने कब उनको वहाँ से अपने बोरे-बन्धन बाँध कर भागना पड़े। अङ्गरेज़ लोग चाहे मिसिर की स्थिति को उपेक्षा की दृष्टि से देखें, परन्तु भारतीय मुसलमान तथा पश्चिमी और मध्य अफ़्रीका के मुसलमान वहाँ की प्रत्येक घटना को इकटक दृष्टि से देख रहे हैं।"

(क्रमशः)

"दोष छिपाने के लिए झूठ बोलना, एक दोष के रहते दूसरा दोष करने के बराबर है। दोष से दोष का उद्धार कभी नही हो सकता। कीचड से कोई कीचड का दाग साफ़ नही कर सकता। आग से कोई आग को नहीं बुझा सकता। जैसे आग बुझाने के लिए पानी आवश्यक है, वैसे ही दोष दूर करने के लिए सत्य की आवश्यकता है। इसे भली-भाँति याद रक्खो कि एक झूठ के छिपाने के लिए दूसरे झूठ की ज़रूरत पडती है अर्थात् जहाँ मुँह से एक बात झूठ निकली, तहाँ दूसरा झूठ आप से आप आ खडा होता है। एक झूठ के लिए न मालूम कितने झूठ बोलने पडते है, इससे उत्तरोत्तर दोषों की ही वृद्धि होती है। जिनका चरित्र बिगडा है, जो हृदय के दुर्बल हैं, वे अपने दोष छिपाने की बहुत कोशिशें करते है।"

—ज्ञानेन्द्र मोहनदास

"जिन्हें आत्मबल है, उन्हीं को मनुष्यता प्राप्त होती है। आत्म-संयम और आत्म-त्याग ये ही दो मनुष्यता के लिए प्रधान गुण हैं। चित्त और इन्द्रियों को अपने वश मे रखने ही का नाम आत्म-संयम है। परोपकार के लिए सुख-दुःख की कुछ परवा न करना ही आत्म-विसर्जन है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ये जो छः आत्मा के शत्रु है, केवल इन्ही को दबाने का नाम आत्म-संयम नही है, किन्तु इन शत्रुओं के साथ ही साथ पञ्चेन्द्रियों मे सबसे प्रबल जिह्वा है, इसलिए सबसे बढ़ कर जिह्वा का शासन करना आवश्यक है।"

—ज्ञानेन्द्र मोहनदास

"धन के विषय में कभी असावधानी न करो—धन चरित्र है।"

—बुलवर लिटन

मनोरञ्जक व्रत-कथाएँ

[श्री० जयनारायण जी कपूर, बी० ए०, एल्-एल्० बी० तथा श्री० बलखण्डीदीन जी सेठ]

शुक्रवार की कथा

एक नगर में एक दीन ब्राह्मण रहता था। वह इतना ग़रीब था कि बेचारे को सुबह से शाम तक एड़ी-चोटी का पसीना एक करने पर भी पेट भर अन्न नसीब न होता था। उसकी स्त्री दिन-रात अपनी ग़रीबी ही का रोना रोया करती थी। एक दिन वह अपनी पड़ोसिन के पास गई और उससे अपना सारा दुखड़ा सुनाने लगी। पड़ोसिन ने कहा कि बहिना, तुम शुक्र देवता की पूजा करो तो तुम्हारा सारा दुःख तुरन्त ही मिट जायगा और तुम्हारे सुख के दिन लौट आवेंगे। उसने बताया कि सावन मास भर प्रति शुक्रवार को दिन भर का व्रत रक्खो। जब शाम हो जाय तो किसी सधवा दीन ब्राह्मणी को बुला कर भरपेट भोजन कराओ, उसके चरण धोकर चरणोदक पान करो और चलती बेर उसकी गोद में धान के लावा और सुपारी भर कर उसे बहुत श्रद्धा और भक्ति के साथ विदा करो। अगर सावन भर यह करती रहोगी तो शुक्र देवता तुम्हारा घर धन-धान्य से भर देंगे और तुम किसी की मोहताज न रहने पाओगी।

पड़ोसिन की यह बात ब्राह्मणी के बहुत मन भाई और जब सावन आया तो वह बहुत विधिपूर्वक प्रति शुक्रवार को व्रत रखने लगी।

उस ब्राह्मणी के एक भाई था, जो उसी नगर में रहता था। वह बड़ा अमीर था और अपनी निर्धन बहिन से बड़ी घृणा करता था। एक दिन उसने गाँव भर के ब्राह्मणों को भोजन का नेवता दिया, परन्तु अपनी बहिन को नहीं बुलाया। बहिन बेचारी यह समझी कि काम-काज की भीड़ में मेरा भैया मुझे नेवता देना भूल गया है, मुझे उसकी भूल का भान न करना चाहिए, आख़िर वह है तो अपना ही, कोई ग़ैर थोड़े ही है, मेरे बिना बुलाए वहाँ जाने में कोई हर्ज़ नहीं है। यही सोच कर उसने अपनी रक्खी हुई पुरानी साड़ी निकाल कर पहनी और बच्चों को भी पहना-उढ़ा कर वहाँ गई। जब सब ब्राह्मण जीमने बैठे तो वह भी अपने बाल-बच्चों के साथ एक कोने में बैठ गई। जब उसका भाई घी परोसता हुआ उधर से आ निकला और ब्राह्मणों की पङ्गति में अपनी बहिन को जीमते हुए देखा, तो वह अत्यन्त कुपित हुआ और सबके सामने उसका निरादर करता हुआ बोला—अरी, तुझे यहाँ किसने बुलाया था, ऐसी नदीदिन औरत मैंने नहीं देखी। मैले-कुचैले, बदबूदार कपड़े पहन कर यहाँ मेरी नाक कटाने के लिए आ धमकी? तुझे हया-लज्जा कुछ भी नहीं छू गई? तू मेरी बहिन है, इस समय और कोई औरत होती, तो कान पकड़ कर निकलवा देता, लेकिन सारी आबरू इसी में है कि अब कल न आना।

बेचारी ब्राह्मणी लज्जा में डूबी अपना सा मुँह लेकर लौट आई और अपनी भूल पर पछताने लगी। दूसरे दिन उसका जी तो भाई के यहाँ जाने को न चाहता था, लेकिन उसके छोटे-छोटे बच्चे जो पहली दावत का स्वाद चख चुके थे, 'वहाँ' जाने के लिए रोने-धोने और ज़िद करने लगे। भोले-भाले बच्चे अबोध थे, उनका मन बहलाने के लिए ब्राह्मणी को भोज में मन मार कर जाना पड़ा। इस बार भी भाई ने उसे बहुत दुतकारा, लानत-मलामत की और कहा कि जा आज फिर छोड़े देता हूँ, अगर कल फिर आएगी तो

तुझे ज़रूर निकलवा दूँगा। तीसरे दिन उसके बच्चे हलुआ-पूड़ी के लिए फिर रोने लगे, उनकी ज़िद पर ब्राह्मणी आज फिर गई। आज भाई ने जैसे ही उसे आते देखा, वैसे ही अपने नौकरों से उसको फाटक तक पहुँचने के पहले ही ज़बरदस्ती निकलवा दिया। ब्राह्मणी अपने बच्चों को लिए रोती हुई घर आई और अपने फूटे भाग्य को दोष देने लगी। उस रोज़ तमाम दिन घर में चूल्हा नहीं जला, सब लोग भूखे ही सो गए।

इनकी इस दुर्दशा को देख कर शुक्र देवता को तरस आ गया। उनकी दृष्टि फिरते ही ऐसा हुआ कि ब्राह्मण का रोज़गार चमक उठा और वह थोड़े ही दिनों में मालामाल हो गया।

जब ब्राह्मणी के सुख के दिन लौट आए, तो उसने एक दिन अपने उसी भाई को, जिसने उसका घोर निरादर किया था, नेवता दिया। उसका भाई बहिन के इस नेवते को पाकर बड़ा लज्जित हुआ, उसका सारा घमण्ड जाता रहा, और वह अपने गए-बीते व्यवहार को याद करके बड़ा पछताने लगा। उसने सङ्कोचवश अपनी बहिन का न्योता मञ्जूर न किया। बल्कि उसके बदले में अपना पुराना पाप धोने के लिए उसने बहिन को स्वयं नेवता भेज कर बुलाया। पहले तो बहिन ने आनाकानी की, लेकिन उसके बार-बार अनुरोध और प्रार्थना करने पर वह भाई की बात को न टाल सकी। दूसरे दिन उसने बढ़िया कपड़े पहने, नई साड़ी बदली और बहुमूल्य हीरे-जवाहरात के ज़ेवर पहन कर अपने भाई के घर भोजन करने गई। बहिन के कपड़े और ज़ेवर देख कर भाई अवाक् हो गया और उसने बड़ी आवभगत के साथ उसे सोने के पीढ़े पर बैठाया और नाना भाँति के स्वादिष्ट भोजनों से भरी हुई थाली उसके आगे रक्खी। बहिन ने पहले तो शुक्र देवता को नमस्कार किया, उसके बाद उसने बढ़िया दुशाला उतार कर रक्खा और एक-एक करके सब ज़ेवर उतार-उतार कर पास ही रखने लगी। उसका भाई यह समझा कि गर्मी ज़्यादा पड़ रही है, इसीलिए बहिन ने सब कपड़े और ज़ेवर उतार डाले हैं। जब बहिन सब कपड़े वग़ैरह उतार चुकी, तो वह थाली का भोजन उठा-उठा कर उन ज़ेवर और कपड़ों पर एक-एक करके रखने लगी। इस पर भाई को बड़ा अचरज हुआ, उसने पूछा—"यह तुम क्या कर रही हो?" बहिन ने कहा—"इसमें अचरज की कौन सी बात है, मैं उन पाहुनों को ही खिला रही हूँ, जिनको तुमने बुलाया है।" भाई ने अचम्भे में होकर पूछा—"यह तुम क्या कह रही हो! तुम भोजन क्यों नहीं करती?" बहिन ने कहा—"तुमने मुझे तो नेवता दिया नहीं था, नेवता तो इन ज़ेवरों और कपड़ों को दिया गया था, इसीलिए मैं इनको ही खिला रही हूँ। मेरा भोजन तो उसी दिन हो चुका, जिस दिन तुमने गाँव भर के ब्राह्मणों को नेवता दिया था।'

इस उत्तर पर भाई अत्यन्त लज्जित हुआ, वह बहिन के पैरों पर गिर पड़ा और अपने किए की क्षमा माँगने लगा। भाई के गिड़गिड़ाने पर बहिन को दया आ गई और उसने उसे क्षमा कर दिया। तब दोनों भाई-बहिन ने बड़े प्रेम के साथ भोजन किया और तब से दोनों एक ही घर में रहने लगे। शुक्र देवता की कृपा-दृष्टि दोनों भाई-बहिन पर सदा बनी रही और उनके दिन बड़े सुख से बीतने लगे। जैसे परमात्मा ने उनके दिन बहुराए वैसे हम सबके भी बहुरें।

❁ ❁ ❁

शनिश्चर की कथा

एक नगर में एक ग़रीब ब्राह्मण रहता था। उसके तीन बहुएँ थीं। वह ब्राह्मण हर रोज़ सूरज निकलने के पहले उठता और दतून-कुल्ला से फ़राग़त हो कलेवा खाकर अपने बाल-बच्चों, लड़कों और बहुओं के साथ अपने खेतों को चला जाता और वहाँ से सूरज डूबने के बाद शाम को लौट कर आता। जब सावन का महीना आया, तो एक दिन शनीचर के रोज़ वह रोज़ाना की तरह बड़े तड़के उठा और अपनी सबसे छोटी बहू से बोला—बहू, आज शनीचर है, आज तू घर ही पर रह, और जो कुछ ढूँढ़े-ढाँढ़े घर की भरसाउन में थोड़ा-बहुत अन्न है, उसको इकट्ठा करके पीस कर रोटियाँ बना कर तैयार कर, जब हम लोग शाम को लौटें तो उन्हें ही खाकर पानी पी लेंगे। जो साग-पात मिले उसकी तरकारी बना लेना और थोड़ा सा पोदीना घर के पिछवाड़े से तोड़ कर चटनी तैयार करके रखना।

जब ससुर बहू को आज्ञा देकर कुल परिवार के साथ जङ्गल चला गया, तो बहू ने ससुर की आज्ञा के अनुसार रोटी-पानी का प्रबन्ध करना शुरू किया। ढूँढने पर भरसाउन में इतना भी अन्न न मिला कि वह एक पूरी रोटी तो बना लेती। जो कुछ नाज मिला उससे उसने छोटे-छोटे दो-चार फुलके तैयार कर लिए, घास-पात इकट्ठा करके साग बनाया और पोदीने की चटनी तैयार की। घर का सब काम-धन्धा करके वह अपने ससुर की बाट जोहने लगी। इसी समय शनीचर देवता एक कोढ़ी के वेश में उसके द्वारे आए और कहने लगे—'माई तेरा भला हो, मुझे कुछ भीख दे, मै घावों के दर्द के मारे मर रहा हूँ। थोडा सा गर्म पानी दे, जिससे मैं घावों को धो डालूँ और थोड़ा सा तेल दे जो उन पर चुपड़ लूँ! और खाने को कुछ रोटियाँ भी दे। माई! मुझ ग़रीब भिखारी को देने से तेरा भला होगा, परमात्मा तुझे बेटा-बेटी देंगे।' कोढ़ी की इस दर्दनाक हालत को देख कर बहू को दया आ गई। उससे रहा न गया, उसने घर में जो दो-चार बूँद तेल बचा था वह उसे लाकर दे दिया, गर्म पानी करके उसे नहलाया और जो रोटियाँ अपने ससुर के लिए बना कर रक्खी थीं, वे सब लाकर उसे दे दीं। शनीचर देवता ने उसे आशीर्वाद दिया कि जा बहू, तुझे कभी किसी चीज़ की कमी न रहेगी। यह कह कर शनीचर देवता ने अपनी जूठी पत्तल लपेट कर घर के एक कोने में डाल दी और वहाँ से चले गए।

जब शाम को ससुर अपने परिवार के साथ लौटा, तो देखा कि घर में बड़े-बड़े बढ़िया भोजन के पदार्थ बने तैयार हैं। उसे बड़ा अचम्भा हुआ, उसने अपने मन में कहा कि घर में तो मैं कुछ छोड़ ही नहीं गया था, ये सब सामान बहू ने कहाँ से तैयार करा लिया।

जब दूसरा शनीचर आया तो दूसरी बहू घर मे रही। चलते समय ससुर ने उसको भी वही सब आज्ञाएँ दीं, जो पिछले शनीचर को उसने छोटी बहू को दी थीं। इस दिन भी शनीचर देवता वैसा ही कोढ़ी का स्वरूप धर कर आए और इस बहू से गर्म पानी, तेल और रोटियाँ माँगीं। बहू ने बिगड़ कर दुत्कारा कि जा भाग, न जाने यह कोढ़ी कहाँ से आ गया। मेरे घर मे तेरे लिए कुछ भी नहीं है। कोढ़ी ने रिरिया कर कहा कि माई तेरे लाल जिएँ, मुझे विमुख मत लौटाल, देख घर में कुछ न कुछ निकल ही आएगा। लेकिन बहू ने कुछ सुनवाई न की। वह चिल्ला पड़ी कि कम्बख़्त! भाग, मेरे घर मे कुछ नहीं है। शनीचर देवता वहाँ से लौट पड़े। चलते हुए उन्होंने शाप दिया कि अच्छा जा तेरे घर मे कुछ भी न रहेगा। जब ससुर लौट कर आया तो उसने देखा कि घर में सब बासन ख़ाली पड़े है, चूल्हा तक नहीं जला है, खाना मिलना तो दरकिनार। यह देख कर उसे बडा गुस्सा आया और वह बहू पर बहुत नाराज़ हुआ। कहने लगा कि यह बहू बडी मनहूस और कामचोर है; अब अगर फिर कभी इसने ऐसा ही किया तो मैं डण्डे मार कर इसे निकाल दूँगा।

जब तीसरा शनीचर आया तो सबसे बड़ी बहू घर मे रही। इस रोज़ भी शनीचर देवता कोढ़ी के वेष में आए और गर्म पानी, तेल और रोटियाँ भीख में माँगीं। लेकिन इस बहू का स्वभाव भी पिछली बहू ही की तरह था, इसने भी शनीचर देवता को दुत्कार दिया और कहा कि मेरे घर मे तुझे देने को कुछ भी नहीं है। शनीचर देवता ने इसे भी वही शाप दिया और कहा कि तेरे घर में कभी कुछ नहीं रहेगा। जब घर के लोग भूख से तड़पते हुए शाम को लौटे और कुछ भी खाना न पाया तो वे सब इस बहू के ऊपर भी बहुत नाराज़ हुए और वैसे ही फटकारा, जैसे कि दूसरी बहू को फटकारा था।

चौथे शनीचर को फिर छोटी बहू की बारी आई। छोटी बहू ने जब रोटियाँ, साग और चटनी तैयार करके रक्खी, तो शनीचर देवता फिर कोढ़ी के रूप मे आए। छोटी बहू ने उनको गर्म पानी, तेल और खाना दिया। जब वह तृप्त होकर चलने लगे, तो उन्होंने आशीर्वाद दिया कि बहू, तू बडी भाग्यवती है, तू सदा आनन्द में रहेगी और तेरा भण्डार सदा भरा रहेगा। यह कह कर उन्होंने अपनी पत्तल लपेटी और उसी कोने मे डाल दी। जब शाम को घर के लोग लौटे तो घर में उनको तरह-तरह के दिव्य पदार्थ बने मिले। वे बड़े प्रसन्न हुए, उन्होंने बहू से इन सबका कारण पूछा। बहू ने कहा कि शनीचर के दिन एक कोढ़ी भिखारी आता है, मैंने

(शेष मैटर १७० पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)।

संसार के विभिन्न देशों में श्राद्ध-प्रथा

[श्री० सत्यभक्त जी]

श्राद्ध-प्रथा अथवा पितरों को जल देना हिन्दुओं मे एक मुख्य धार्मिक कार्य माना जाता है। इस प्रथा का आशय यह है कि मरे हुए व्यक्तियों की आत्माएँ वर्ष में एक बार अपने पुराने निवास-स्थानों को वापस आती हैं और लोग उनको खाना-पीना देकर सन्तुष्ट करते हैं। यह अवसर जैसा कि सब जानते है, पितर-पक्ष के नाम से प्रसिद्ध है और क्वार के महीने के आरम्भ मे पडता है। इन पन्द्रह दिनों में समस्त सनातनधर्मी हिन्दू नित्य-प्रति पितरों को जल देते हैं और जिस तिथि को उनके माता-पिता या अन्य किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु हुई हो, उस दिन ब्राह्मण-भोजन कराते हैं। इन दिनों में ये लोग हजामत नहीं बनवाते, स्त्रियाँ नई चूड़ियाँ नहीं पहनती, विदेश-यात्रा करना निषिद्ध माना जाता है, और इनके सिवाय और भी कितने ही नियमों का पालन करना आवश्यक समझा जाता है।

यद्यपि श्राद्ध-प्रथा का इस देश मे बहुत अधिक प्रचार है और थोड़े से इने-गिने नवीन विचार के सुधारकों को छोड़ कर प्रायः सभी हिन्दू उसका पालन करते हैं; तो भी खोज करने से जान पडता है कि यह प्रथा हिन्दू-धर्म के अनुसार नहीं है, वरन् प्राचीन काल मे किसी अन्य देश वालों द्वारा इसका यहाँ प्रचार हुआ है। क्योंकि हिन्दू लोग एक तरफ़ तो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते है और कहते हैं कि मरने के बाद प्रत्येक प्राणी किसी न किसी योनि में जन्म ले लेता है और अपने पूर्व जन्म में किए हुए भले या बुरे कर्मों के अनुसार सुख या दुःख भोगता है। यदि यह बात सत्य है तो फिर उसकी आत्मा श्राद्ध के समय जल या भोजन ग्रहण करने कैसे आ सकती है? इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार कितने ही लोगों का पुनर्जन्म उसी समय नहीं हो जाता, वरन् वे बहुत दिनों तक भूत-प्रेत बन कर रहते हैं। पर इस तर्क को मान लेने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का श्राद्ध करना और जल देना कैसे यथार्थ सिद्ध किया जा सकता है?

सच तो यह है कि श्राद्ध की प्रथा का प्रचार उन जातियों ने किया है, और अब भी उन्हीं जातियों में विशेष रूप से प्रचलित है, जिनका विश्वास पुनर्जन्म मे नहीं है, वरन् जो मानती हैं कि मृत्यु के बाद मनुष्य की आत्मा इधर-उधर हवा मे फिरती रहती है, या पहाड़, जङ्गल और सुनसान जगहों में रहती है, या ईश्वर द्वारा नियत किसी विशेष स्थान मे बन्द रहती है और समय-समय पर एकाध दिन के लिए मुक्त कर दी जाती है। इस प्रकार के विश्वास संसार की प्रायः सभी सभ्य और असभ्य जातियों में फैले हुए हैं और इसके अनुसार वे वर्ष में प्रायः एक बार कोई त्योहार मनाती हैं, जिसका उद्देश्य मृत व्यक्तियों की आत्माओं का आदर-सत्कार करना होता है।

ध्रुव-प्रदेश

उत्तरी ध्रुव के आस-पास के प्रदेशों मे रहने वाले ऐस्किमो लोग सभ्यता की दृष्टि से सब से पिछड़े हुए समझे जाते हैं। वह प्रदेश ही ऐसा है, जहाँ सभ्यता की कोई सामग्री मिल सकना असम्भव है। सिवाय समुद्र में पाई जाने वाली मछलियों और बर्फ़िस्तान मे रहने वाले दो-चार जानवरों के वहाँ जीवन-निर्वाह का कोई साधन ही नही है। ये ऐस्किमो मृत व्यक्तियों की आत्मा का सत्कार करने का बड़ा ध्यान रखते हैं और उनका विश्वास अनेकांश में हिन्दुओं से मिलता-जुलता ही है। ये लोग नवम्बर के अन्त या दिसम्बर के आरम्भ में एक बड़ा त्योहार मनाते हैं, जिसमे मृत-आत्माओं को भोजन, शराब और कपड़े दिए जाते हैं। यह त्योहार गाँव की चौपाल में मनाया जाता है। चौपाल में जिस स्थान पर मृत व्यक्ति बैठा करते थे, वहाँ उनके सम्बन्धी दीपक जलाते हैं। इन दीपकों में सील मछली का तेल भरा जाता है और जब तक त्योहार समाप्त नहीं हो जाता, ये रात-दिन

जलते रहते हैं। इन दीपकों की सहायता से मृत आत्माओं को आने और लौट कर जाने मे सुभीता होता है। त्योहार के आरम्भ होने पर मृत-व्यक्ति के पुरुष सम्बन्धी उसकी क़ब्र पर जाते है, और उसको निमन्त्रण देते हैं। यदि वह पुरुष होता है तो एक छोटा सा मछली मारने का भाला और यदि स्त्री हुई तो एक लाह की रकाबी वहाँ रख देते हैं। इन चीज़ों पर मृत-व्यक्ति का चिन्ह बना रहता है और विश्वास किया जाता है कि उसके स्मरण से उसकी आत्मा चलने को उद्यत हो जायगी। जब सब आत्माएँ चौपाल मे इकट्ठी हो जाती है, तो उन्ही के नाम वाले जीवित लोगों को खिलाया-पिलाया जाता है तथा कपड़े दिए जाते हैं। ऐस्किमो लोगों का विश्वास है कि उस समय उन लोगों में आत्माओं का प्रवेश हो जाता है। जिस प्रकार हमारे यहाँ ब्राह्मणों को खिलाने से उसका सार पितरों को पहुँच जाने का सिद्धान्त रचा गया है, उसी प्रकार ऐस्किमो लोग भी समझते हैं कि जीवित व्यक्तियों का खाया-पिया हुआ मृत-आत्माओं को मिल जाता है। जिन मृत-व्यक्तियों का कोई सम्बन्धी नही होता, उन बेचारों की आत्माओं को भूखा रहना पड़ता है और उनकी दुर्गति होती है। इसलिए हिन्दुओं की तरह वे लोग भी बिना पुत्र के मरने से बहुत डरते हैं और जिन लोगों के सन्तान नही होती, वे किसी दूसरे के बच्चे को गोद ले लेते हैं। जिन लोगों से जीवित अवस्था में घर वाले नाराज़ रहते हैं, उनकी आत्माओं को इस अवसर पर जान-बूझ कर छोड़ दिया जाता है और यह उनके लिए बड़ी भारी सज़ा समझी जाती है। आत्माओं को निमन्त्रित करने के लिए चौपाल में एक गाना गाया जाता है और उसके बाद भोजन कराने वाला प्रत्येक रकाबी मे से थोड़ा-थोड़ा खाना लेकर उसे मृतात्मा के नाम पर ज़मीन पर डाल देता है और उस पर थोड़ा पानी डाल दिया जाता है। इस तरह समझा जाता है कि उन पदार्थों का सूक्ष्म अंश आत्माओं को मिल जाता है। शेष खाना लोगों मे बाँट दिया जाता है। इसके बाद नाच-गाना होता है और आत्माओं को विदा कर दिया जाता है।

जापान का दीपोत्सव

जापानियों का विश्वास है कि मरे हुए लोगों की आत्माएँ साल मे एक बार अपने पुराने घर को वापस आती हैं। इस अवसर पर, जो प्रायः अगस्त महीने के अन्त में आता है, वहाँ एक त्योहार मनाया जाता है, जिसे 'दीपोत्सव' कहते हैं। लोगों का ख़्याल है कि लौटने वाली आत्माओं को रास्ता दिखलाने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। इसलिए क़ब्रों के पास बाँस गाड़ कर उन पर रङ्ग-बिरङ्गी लालटेनें लटका दी जाती हैं। घरों के सामने और बग़ीचों में भी लालटेनें और मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं। सड़कों पर जगह-जगह हमारे देश के होली के त्योहार की तरह आग जला दी जाती है। इस प्रकार तमाम शहर प्रकाशित हो जाता है और जगमगाने लगता है। शाम होते ही लोगों का एक बड़ा झुण्ड शहर के बाहर जाता है। इसमें तमाम घरों के लोग होते हैं और उनका उद्देश्य अपने-अपने घर के मृत-व्यक्तियों को निमन्त्रण देना होता है। जब वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचते हैं, जहाँ आत्माओं के मौजूद होने का विश्वास किया जाता है, तो वे अदृश्य मेहमानों का स्वागत करते हैं और उनसे विश्राम करने तथा भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करते हैं। थोड़ी देर बाद वे उन आत्माओं को मशालों की

(१६८ पृष्ठ का शेषांश)

उसे मुँहमाँगी भिक्षा दी, उसी के आशीर्वाद का यह सब फल है। बहू की बात जाँचने के लिए जब ससुर ने कोने में पडी हुई पत्तल को उठाया तो उसमें से सचमुच मोती और हीरे-जवाहरात झरने लगे, जिनसे उसका सारा घर भर गया। ससुर बड़ा तजुर्बेकार था, वह समझ गया कि हो न हो शनीचर देवता ही कोढ़ी के वेष में आते थे। यह सोच कर घर के सब लोगों ने शनीचर देवता को झुक कर प्रणाम किया और उनकी बहुत विनती की। शनीचर देवता ने प्रसन्न होकर सबको वहीं दर्शन दिए और मुँहमाँगा वरदान दिया। तब से ब्राह्मण के सारे सङ्कट दूर हो गए और उनके घर में सदा लक्ष्मी विराजती रहीं। जैसे शनीचर देवता ने उस ग़रीब ब्राह्मण के सङ्कट हरे, वैसे ही परमात्मा करे वे हमारे-तुम्हारे भी हरे।

[समाप्त]

रोशनी में उनके साथ प्रेमपूर्वक बातें करते हुए घर लाते हैं। वहाँ भी ख़ूब रोशनी होती है। शीघ्र ही मेज़ पर तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन सजा कर रक्खे जाते हैं। उस मेज़ पर मृत-व्यक्तियों के बैठने का स्थान भी रक्खा जाता है, मानो वे भी जीवित लोगों की तरह वहाँ मौजूद हों। यह विश्वास किया जाता है कि आत्माएँ भोजन के सार को अदृश्य रूप में ग्रहण कर लेती हैं। भोजन समाप्त होने के बाद जीवित लोग अपने मित्रों तथा पड़ोसियों के घर उनके मृत व्यक्तियों से भेंट करने जाते हैं और तमाम रात इसी तरह बीत जाती है। उत्सव के तीसरे दिन शाम को आत्माओं के अपने निवास-स्थान को लौटने का समय आता है, इस अवसर पर आत्माओं के लिए मार्ग दिखलाने को फिर सड़कों पर आग जलाई जाती है और लोग जुलूस बना कर उनको उसी जगह पहुँचा आते हैं, जहाँ से उनको लाए थे। कितने ही स्थानों मे लोग छोटी-छोटी नावों में आत्माओं के लिए यात्रा में खाने-पीने का सामान रख कर उन्हें समुद्र या नदियों मे प्रवाहित कर देते हैं। पर इतना करने पर भी इस बात का सन्देह बना रहता है कि शायद कोई आत्मा पीछे रह गई हो या अपने पुराने घर और सम्बन्धियों के मोह में पड़ कर किसी कोने मे छुप गई हो। इसलिए उन पिछड़ने वाली आत्माओं को वापस भेजने के लिए विशेष रूप से चेष्टा की जाती है। इसके लिए लोग अपनी छतों पर ख़ूब ढेले फेंकते हैं और छड़ियाँ लेकर कमरों के भीतर इधर से उधर चलाते फिरते हैं, जिससे वहाँ छुपी हुई आत्माएँ भाग जायँ। यह काम वे लोग अपने आराम के ख़्याल और मृत-व्यक्तियों की श्रद्धा के कारण करते हैं। क्योंकि वे समझते है कि यदि कोई आत्मा पीछे रह जायगी तो उसे भी भटकना पड़ेगा और वह लोगों की शान्ति मे विघ्न डालेगी। इसी से मिलती-जुलती प्रथा चीन और सुमात्रा आदि मे प्रचलित है।

रेड इण्डियन

कैलीफ़ोर्निया (अमेरिका) के रहने वाले रेड इण्डियन प्रायः फ़रवरी के महीने मे मृतात्माओं के लिए एक त्योहार मनाते हैं। उस अवसर पर गाँव के दस या अधिक व्यक्ति इस कार्य के लिए कई दिन तक उपवास रखते हैं और वे बहुत दिनों तक मांस खाना छोड़ देते हैं। नियत दिन आने पर वे लोग रौग़न, पक्षियों के पर और पत्ते वग़ैरह लगा कर भेष बदलते हैं और गाँव के भीतर नाचते-गाते हुए फिरते हैं; या रात के समय हाथ में मशालें लेकर दौड़ कर पास के किसी जङ्गल मे चले जाते हैं। वहाँ से लौट कर वे फिर गाँव में आते हैं और जिन लोगों के सम्बन्धियों की मृत्यु हो चुकी है, उनके दरवाज़ों पर जाते है। घर वाले उन छद्मवेषियों को अपने वास्तविक कुटुम्बी की तरह समझ लेते हैं और रोना-पीटना आरम्भ कर देते हैं। जब तक यह क्रिया चलती रहती है, गाँव के सब लोग उपवास रखते हैं। कैलीफोर्निया में कॉकस नाम की एक और जाति रहती है, जो इसी तरह का त्यौहार अगस्त मास के अन्त में मनाती है। इस कार्य के लिए वे लोग तमाम गाँव में बहुत सी भोजन-सामग्री, कपड़े, टोकरियाँ, ज़ेवर और अन्य वस्तुएँ, जिनकी परलोक मे मृतात्माओं को आवश्यकता समझी जाती है, इकट्ठी करते है। इन चीज़ों को वे चारों तरफ़ पेड़ों की डालियों में लटका देते हैं और स्वयं ज़मीन साफ़ करके बीच में बैठ जाते हैं। वहाँ पर एक बड़ा हवन-कुण्ड खोदा जाता है, जिसमें बहुत सा ईंधन डाल कर आग जलाई जाती है। पास ही मृत-व्यक्तियों की क़ब्रें होती हैं। शाम होने पर पुरुष और स्त्रियाँ वहाँ बैठ कर मृत-व्यक्तियों के लिए रोते-पीटते है और फिर आग के चारों तरफ़ नाचने लगते हैं। वे लोग कुछ गाते और मन्त्र पढ़ते जाते है और बीच-बीच मे उस सामग्री को हवन-कुण्ड में डालते जाते हैं। ऐसा नियम रक्खा गया है कि वह तमाम सामग्री सूर्योदय से पूर्व समाप्त हो जानी चाहिए।

सुम्बा

सुम्बा नामक टापू के निवासी नवीन वर्ष के आरम्भ मे मृतात्माओं का उत्सव मनाते हैं। क़ब्रें उनकी गाँव के बीच में बनाई जाती हैं, जहाँ एक नियत समय पर सब लोग पहुँच कर रोने-पीटने लगते है। इसके बाद थोड़ी देर तक कोई जातीय खेल खेल कर अपने घरों को चले जाते है। वहाँ सब लोग अपने घर के मृत-व्यक्तियों को निमन्त्रण देते हैं। उनका विश्वास है कि पितर-

गण उनकी आवाज़ को सुन लेते हैं और निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं । तब वे लोग उनके लिए पान-सुपारी उपहार-स्वरूप देते हैं। प्रत्येक घर के सामने किसी पशु-पक्षी का बलिदान किया जाता है और उसका दिल और गुर्दा चावल के साथ मृतात्मा को अर्पण किया जाता है । कुछ समय बाद ये सब चीज़ें जीवित लोगों मे बाँट दी जाती हैं, जिनको वे आनन्द-पूर्वक खाते है । इसके पश्चात् वे रात भर खेलते, नाचते और गाते रहते हैं। सुबह होने से कुछ देर पहले पितर-गणों को विदा किया जाता है। इसके लिए तमाम लोग जुलूस बना थोड़ी दूर तक उनके साथ जाते हैं। लोगों के एक हाथ में नारियल का प्याला होता है, जिसमे मृतात्मा के लिए आवश्यक सामग्री रहती है और दूसरे में जलती हुई लकड़ी का टुकडा होता है। वे लोग कुछ गाना गाते और घण्टा बजाते जाते हैं। अन्त में जब उनका सङ्गीत ख़त्म होता है, और उसका अन्तिम पद गाया जाता है, तो वे एक साथ उन नारियलों और लकडियों को पितरों की तरफ़ फेंक देते हैं और अपने घरों को वापस चले जाते है।

बर्मा

बर्मा के बघई फ़िर्के वाले अगस्त के अन्त या सितम्बर के आरम्भ में मृतात्माओं का उत्सव मनाते हैं। जिन लोगों के किसी सम्बन्धी की मृत्यु तीन साल के भीतर हुई है, वे सब उसमे भाग लेते है। मृतात्माओं के लिए खाने-पीने का सामान मेज़ पर सजा कर रख दिया जाता है और उनके लिए नवीन वस्त्र भी कमरे मे टाँग दिए जाते हैं। यह सब तैयारी हो जाने पर सब लोग घण्टा बजाने और रोने लगते है। हर एक आदमी अपने मृत-सम्बन्धी को भोजन के लिए आमन्त्रित करता है। जब यह समझ लिया जाता है कि मृतात्मा आ पहुँची, तो जीवित व्यक्ति उसे सम्बोधन करके कहते हैं—"तुम हमारे पास आए हो, तुम हमारे पास लौट कर आए हो। रास्ते में ज़ोरों का मेह बरस रहा था और तुम अवश्य ही भीग गए होगे। तुम और तुम्हारे साथ जितने मित्र है, सब इन नए कपड़ों को पहिनो। तुम अपने तमाम मित्रों, साथियों और प्राचीन समय मे मरे हुए लोगों के साथ पान खाओ और भोजन करो।" जब मृतात्माएँ खा-पी लेती है, तो अन्य लोग रोना बन्द करके उस भोजन-सामग्री को खाने के लिए बैठते हैं। इसके बाद नवीन भोजन-सामग्री तैयार की जाती है और एक टोकरी मे रख दी जाती है। दूसरे दिन सुबह होने से पहले वह तमाम सामग्री घर के बाहर फेंक दी जाती है और लोग रोते हुए पूर्ववत् अपने मृत-सम्बन्धियों से बातें करते है।

अनाम

अनाम में नवीन वर्ष आरम्भ होने पर तीन दिन तक बड़ी धूमधाम से पितरोत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपने पूर्वजों की आत्मा को उत्तम भोजन प्रदान करता है और ख़ुद भी अच्छी तरह से खाता-पीता है। इस धार्मिक कर्तव्य को पूरा करने के लिए कितने ही कुटुम्बों को क़र्ज़ मे फँस जाना पडता है, जिससे वे बहुत समय तक छुटकारा नहीं पाते। सम्माननीय मृत अतिथियों के स्वागत के लिए घर की प्रत्येक चीज़ साफ़ की जाती है, धोई जाती है और सजा कर रक्खी जाती है। प्रत्येक घर के सामने एक लम्बा बाँस गाड दिया जाता है, जो सात दिन तक नही हटाया जाता। उस बाँस मे एक टोकरी लटकाई जाती है, जिसमे पान, सुपारी और कुछ चमकीले काग़ज़ के टुकड़े रक्खे जाते हैं। बाँस गाडने का कारण यह बतलाया जाता है कि उसके द्वारा आत्माएँ अपने पुराने निवास-स्थान तक सहज में पहुँच जाती है। आत्माओं को आवाहन करने का कार्य वर्ष के अन्तिम दिन मे रात्रि के समय किया जाता है। उस समय तमाम कुटुम्बी एक कमरे मे, जो ख़ान्दानी मन्दिर की तरह होता है, इकट्ठे होते है और पितरों की पूजा के लिए बनाई गई वेदी को फूलों से ढक देते हैं। उन फूलों मे सब से मुख्य कमल का फूल होता है, जोकि अमर जीवन का चिह्न समझा जाता है। एक मेज़ पर लाल बत्तियाँ, सुगन्धित पदार्थ, हवन-सामग्री, चन्दन और केला, सन्तरा तथा अन्य प्रकार के फल रक्खे जाते हैं। सब लोग वेदी के सामने प्रणाम करते है और घर का मुखिया उसके सामने झुक कर अपने वंश का नाम लेता है। इसके पश्चात् वह गम्भीर भाव से कुछ मन्त्र पढता है और अपने पूर्वजों मे से प्रधान-प्रधान व्यक्तियों का नाम लेता है, जिन्होंने किसी तरह का स्मरणीय कार्य किया है। बीच मे ठहर-ठहर कर वह घण्टा बजाता है और उसके साथ ही बाहर

पटाख़े चलाए जाते हैं। इसके पश्चात् वह पूर्वजों से अपने वंशजों की रक्षा करने की प्रार्थना करता है और उनको भोजन के लिए आमन्त्रित करता है। वह मेज़ के चारों तरफ़ अदृश्य अतिथियों को भोजन परसता फिरता है। वह प्रत्येक पितर के नाम पर चावल का पिण्ड और थोडी सी चाय या मदिरा देता है। साथ ही वह उनका नाम लेता जाता है और उनके गुण बखानता जाता है। ठीक उसी तरह जैसे हमारे यहाँ प्रत्येक पूर्वज का नाम लेकर जल से तर्पण करते हैं। जब मृतात्माएँ अच्छी तरह खा-पी चुकती हैं, तो वही घर का प्रधान व्यक्ति फिर वेदी के पास जाता है और उनको अन्तिम बार नमस्कार करता है। इसके बाद वह पीले काग़ज़ के टुकड़े, जिन पर सुनहले और रुपहले पत्तर चिपके रहते हैं, हवन-कुण्ड में डालता है, जो वेदी के पास ही बना होता है। ये काग़ज़ सोने और चाँदी के टुकड़ों के अभिप्राय से भेंट किए जाते है। इनके साथ ही कार्डबोर्ड के बने घर, मेज़, कुर्सी, गहने, कपड़े और अन्य तमाम वस्तुएँ, जिनकी आत्माओं को परलोक मे आवश्यकता समझी जाती है, उसी कुण्ड में डाली जाती है। लोगों का विश्वास है कि अग्नि-शिखाओं द्वारा ये सब पदार्थ उनके पूर्वजों के पास पहुँच जायँगे। इसके पश्चात् घर वाले भोजन करने को बैठते हैं और आत्माओं को अर्पित की हुई सामग्री को खाते है।

अफ़्रीका

पश्चिमी अफ़्रीका के निवासी दाहोमन जाति के लोग अप्रैल मास के आरम्भ में मृतात्माओं की दावत करते हैं। उनका विश्वास है कि इसके फल-स्वरूप मृतात्माएँ साल भर तक सन्तुष्ट रहती हैं। बेरिया और कुनामा जातियों के लोग, जो गाँवों मे रह कर खेती-बारी का कार्य करते है, नवम्बर मास में एक त्योहार मनाते हैं, जिसका उद्देश्य फ़सल के सकुशल समाप्त हो जाने के उपलक्ष में कृतज्ञता ज्ञापन और पितरों की सेवा करना होता है। हर एक घर में बहुत सी जौ की मदिरा बनाई जाती है और प्रत्येक मृत व्यक्ति के लिए एक छोटा सा बर्तन उस मदिरा से भर कर रख दिया जाता है। ये बर्तन घर मे दो दिन तक रक्खे रहते हैं और उसके बाद जीवित व्यक्ति उसको पी जाते है। इस अवसर पर ये लोग एक विशेष स्थान पर एकत्रित होकर नाच और गाना भी करते हैं।

फ़्रान्स

यूरोप में यद्यपि बहुत वर्षों से बुद्धिवाद और विज्ञान का दौरदौरा है, पर अब भी वहाँ के कितने ही भागों में मृतात्माओं के सम्बन्ध मे उसी तरह के अन्ध-विश्वास पाए जाते हैं, जैसे अन्य देशों मे पाए जाते हैं। ईसाइयों मे प्राय. दूसरी नवम्बर को 'ऑल सोल्स डे' अथवा 'समस्त आत्माओं का दिन' मनाया जाता है और उस अवसर पर कितने ही लोग उसी तरह के कृत्य करते हैं, जैसे भारतवर्ष और अन्य पूर्वीय देशों में देखने में आते हैं। फ़्रान्स के लोअर ब्रिटनी नामक प्रदेश में उस दिन लोग गिर्जाघर मे प्रार्थना समाप्त हो जाने के बाद अपने घरों मे मृतात्माओं के सम्बन्ध मे बातचीत करते हैं। उसके बाद गृह-स्वामिनी भोजन के टेबिल पर एक श्वेत वस्त्र बिछा कर उस पर शर्बत, दही और गर्म पकवान (केक) रख देती है और घर के तमाम व्यक्ति सोने के लिए चले जाते हैं। अँगीठी में लकड़ी का एक बड़ा और मोटा टुकड़ा जलने को डाल दिया जाता है। थोडी देर बाद रात की निस्तब्धता को भङ्ग करता हुआ गाने वालों का एक दल निकलता है, जो सोते हुए लोगों को मृतात्माओं के लिए प्रार्थना करने की याद दिलाता है। फ़्रान्स के एक दूसरे प्रदेश में लोग मृतात्माओं के नाम पर बत्तियाँ जलाते हैं और उस दिन अपने घर मे झाड़ू नही लगाते, क्योंकि इससे आत्माओं को कष्ट पहुँचने का भय रहता है।

बेलजियम

बेलजियम के कई शहरों में 'मृतात्माओं के दिन' के अवसर पर लोग उनकी क़ब्रों पर बत्तियाँ जलाते हैं। शरपेनहुएल नामक स्थान में उस दिन घरों में दीपोत्सव किया जाता है और लोग जलती हुई बत्तियाँ लेकर जुलूस बना कर चलते हैं। बेलजियम में इस अवसर पर मृतात्माओं के नाम पर एक विशेष प्रकार का पकवान, जिसे 'सोल-केक' कहते हैं, खाने का बड़ा रिवाज है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार 'सोल-केक' खाने से परलोक मे कष्ट पाती हुई आत्माओं का उद्धार हो जाता है। एण्टवर्प के निवासी इन केकों को केसर से रँग देते

हैं। केसरिया रङ्ग का आशय नर्क में जलने वाली अग्नि से माना जाता है।

जर्मनी

जर्मनी के कितने ही भागों मे मृतात्माओं के सत्कार करने की विभिन्न प्रथाएँ प्रचलित है। लैश प्रदेश में लोग इस उत्सव को बडी धूमधाम से मनाते हैं। अक्टूबर की इक्तीसवी तारीख़ को तमाम क़ब्रिस्तान साफ़ कराया जाता है और ज़मीन पर कोयला बिछा कर उस पर लाल रङ्ग के बेरों से चित्रकारी की जाती है। इसके सिवाय गेंदे के फूलों और नारङ्गी की कलियों के हार भी क़ब्रों पर रक्खे जाते हैं। दूसरी नवम्बर को लोग क़ब्रों के पास जाते हैं और भूखी मृतात्माओं को 'सोल-केक' अर्पित करते हैं। दूसरे दिन सुबह के आठ बजे से फिर मृतात्माओं के लिए भजन-पूजन होने लगता है और लोग कब्रिस्तान जाते हैं। उस दिन हर एक गृहस्थ भोजन की एक रकाबी गिर्जाघर की वेदी पर रखता है। उस दिन शाम को शहरों में रहने वाले जिन लोगों के लिए सम्भव होता है, वे अपने मूल निवास-स्थानों को जाते हैं और अपने सम्बन्धियों की कब्रा पर 'सोल-केक' चढ़ाते हैं तथा उनकी सद्गति के लिए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं।

इसी तरह की प्रथाएँ बोहेमियाँ, ऑस्ट्रिया, रूस आदि देशों में भी प्रचलित हैं। संसार का शायद ही कोई भाग ऐसा होगा, जहाँ इस तरह की प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित न हो। आजकल कितने ही शिक्षित व्यक्ति इनको अन्धविश्वास के नाम से पुकारते हैं और इनकी हँसी उड़ाते हैं, पर तो भी असंख्य लोग उन पर विश्वास करते हैं और श्रद्धापूर्वक अपने पूर्वजों द्वारा जारी की गई रिवाजों को पालन करते जाते हैं। यद्यपि विज्ञान ने इस प्रकार के विश्वासों की जड़ को बहुत-कुछ हिला दिया है और लोगों के सामने सृष्टि की वास्तविकता खोल कर रख दी है, तो भी अब तक के नतीजे को देख कर कहना पडता है कि इन प्रथाओं का मूलोच्छेद आगामी दो-चार सौ वर्षों में भी पूर्ण रूप से हो सकेगा, इसमें सन्देह है।

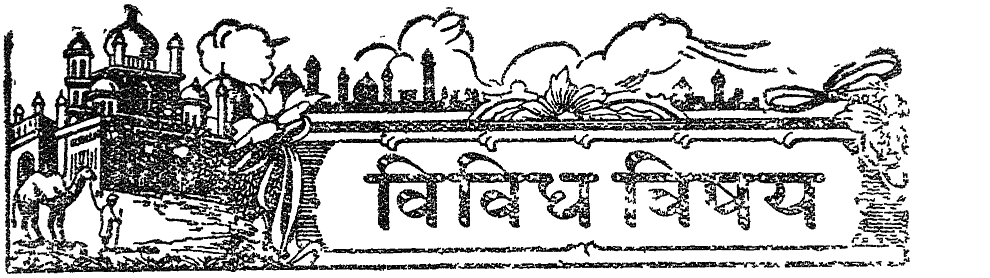
शैशव के प्रति

[श्री० नरेन्द्र]

प्रथम मार्ग जीवन-सरिता के,
चञ्चल, क्रीड़ामय शैशव !
नभ-से स्वच्छ, सदय करुणा-से,
कोमल पल्लव के वैभव !!

शरद्-चन्द्र-से, दुग्ध-फेन-से,
सहज स्वभाव सलिल जैसे,
मृग-शावक-से भोले शैशव,
तुझे कहाँ पाऊँ, कैसे ?

बीती बातों की सुस्मृति-से,
जीवन के भूले-से राग !
यौवन के सपने सुन जा, आ,
ऊषा-सस्मित-प्रमुदित-प्रात !!



नौशेरवाँ की क़ब्र

ईरान का सम्राट नौशेरवाँ अपनी न्यायपरायणता और विचारशीलता के लिए इतिहास-प्रसिद्ध है। इस्लाम के प्रतिष्ठाता हज़रत मोहम्मद बड़े गर्व से कहा करते थे, कि मेरा जन्म ऐसे सम्राट के राजत्व-काल में हुआ है, जो अपनी न्याय-निपुणता के लिए विश्व-विख्यात है। फ़ारसी साहित्य में यह सम्राट 'नौशेरवाँ आदिल' अर्थात् न्यायी नौशेरवाँ के नाम से विख्यात है। ईरान में इसके 'अदल-व-इन्साफ़' के सम्बन्ध में हज़ारों मज़ेदार किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। ईरानी कहानी-लेखकों ने इसकी विचित्र न्याय-प्रणाली के सम्बन्ध में बहुत से मनोहर किस्से रच डाले हैं। फ़ारसी भाषा की बदौलत हमारे देश की उर्दू भाषा में नौशेरवाँ की कहानियों का अभाव नहीं है। इनमें कितनी ही कहानियाँ बड़ी ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद हैं। ईरान के सिद्धहस्त कहानी-लेखकों ने कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओं को भी कल्पना के मनोहर आवरण में छिपा कर लोक-प्रसिद्ध किया है।

ईरान में किम्वदन्ती प्रचलित है कि एक बार बग़दाद नगर के प्रसिद्ध नरेश ख़लीफ़ा हारूँरशीद ने नौशेरवाँ की कब्र देखने का विचार किया। यह क़ब्र एक दुर्गम पहाड़ की कन्दरा मे बनी थी। बादशाह अपने सहयात्रियों और पार्श्ववर्त्तियों को लेकर बडे कष्ट से वहाँ तक पहुँचा। नौशेरवाँ का शव जीवित मनुष्य की भाँति एक मूल्यवान सिहासन पर विराजमान था। शव को रखने वालों ने कोई ऐसी चीज़ उस पर लगा दी थी, जिसके कारण उसमें तनिक भी विकार नही आया था। परन्तु उसके दोनों कान सफ़ेद हो गए थे। नौशेरवाँ की मृत्यु ५७१ ईस्वी में हुई थी, और हारूँरशीद तख़्तनशीं हुआ था, सन् ७८६ ईस्वी में। इन दो सौ वर्षों में नौशेरवाँ का शव विकृत नही हुआ था। हारूँरशीद को इससे अतीव आश्चर्य हुआ।

पर्वत के अन्धकारपूर्ण गह्वर मे यह क़ब्र बनी थी और उसके ऊपर एक कारचोवी के काम का मूल्यवान आवरण पडा था। हारूँरशीद ने बहुत धीरे से उसे उठाया। परन्तु वह इतना पुराना हो गया था कि हाथ लगते ही चूर-चूर होकर रह गया। जिस गिरि-गह्वर में यह समाधि बनी थी, उसकी दीवारों में बेशक़ीमती जवाहरात जड़े थे। इसलिए वह घोर अन्धकारपूर्ण स्थान भी प्रकाशमान हो रहा था। सिहासन से भी प्रकाश आ रहा था। हारूँरशीद ने पहले तो समझा नहीं कि यह शव है, क्योंकि उसकी आकृति ठीक जीवित मनुष्य की तरह थी। इसलिए उसने बड़े अदब से झुक कर नौशेरवाँ को सलाम किया। परन्तु थोड़ी देर के बाद ही उसे मालूम हो गया कि वह बादशाह नौशेरवाँ की क़ब्र देखने आया है। उसने उसके तमाम वस्त्रों को छू-छूकर मुलाहिज़ा किया। सभी सड़ गए थे। हारू ने तुरन्त अपना मूल्यवान शाल उतार कर शव को ओढ़ाया और बाक़ी वस्त्रों को भी फ़ौरन बदल देने की आज्ञा दी। क़ब्र को ढकने के लिए मूल्यवान आवरण तैयार किया गया। दूसरे प्रकार के सामान, जो बहुत पुराने हो गए थे, वे भी बदल दिए गए। प्रचुर कस्तूरी और कपूर आदि जला कर सुगन्ध की व्यवस्था की गई।

ऊँचे शवाधार या सिहासन की दीवारों पर अत्यन्त सुडौल और सुनहरे अक्षरों में कुछ अङ्कित था। नौशेरवाँ के ज़माने में ईरान में पहलवी भाषा और लिपि प्रचलित थी। ६३५ ईस्वी मे अरबों ने ईरान को विजय किया, तब से यहाँ फ़ारसी भाषा और लिपि का प्रचलन हुआ था। इसलिए अङ्कित लिपि को पढ़ कर उसका अर्थ बादशाह को समझाने के लिए पहलवी भाषा के ज्ञाता बुलाए गए। उन्होंने आकर तत्काल उन वाक्यों का अनुवाद करके बादशाह को सुनाया। वे वाक्य इस प्रकार थे:—

१—यह संसार क्षणभङ्गुर है, जो इसके सम्बन्ध में कम चिन्ता करता है, वह सब से बढ़ कर बुद्धिमान है।

२—संसार द्वारा निहत होने से पहले ही उसके सुखों का उपभोग कर लो।

३—अपने अधीनस्थों पर ऐसा ही अनुग्रह करो, जैसे अनुग्रह की आशा तुम अपने से बड़ों से करते हो।

४—याद रहे, समस्त संसार को विजय कर लेने पर भी एक दिन मृत्यु तुम्हें पराजित करेगी।

५—सावधान, अपने सुखों-ऐश्वर्यों द्वारा ठगे जाने से बचे रहो।

६—तुम जो कुछ करोगे, उस कर्म का ही प्रतिफल तुम्हें भोगना पड़ेगा, उससे कम या बेशी की कोई आशा न रखना।

नौशेरवाँ का शव विविध प्रकार के मूल्यवान आभूषणों से सुशोभित था। हारूँरशीद की दृष्टि एक अँगूठी पर पड़ी। उस पर एक अत्यन्त मूल्यवान पद्मराग मणि का नगीना जड़ा था। बादशाह उसे बड़े ग़ौर से देखने लगा। ध्यान देने पर उसे मालूम हुआ कि निहायत छोटे अक्षरों में अँगूठी पर भी कुछ खुदा हुआ है। बादशाह ने उसे भी पढ़ कर बताने की आज्ञा दी। उस पर नीचे लिखे उपदेश-वाक्य अङ्कित थे :—

१—निष्ठुरता कभी मत करना। अच्छे कार्य करने की आदत डालो। कभी किसी काम में जल्दी न करना।

२—अगर तुम एक सौ वर्ष तक जीवित रहो, तथापि एक क्षण के लिए भी मृत्यु को न भूलना।

३—बुद्धिमानों के सत्सङ्ग को सब से बढ़ कर मूल्यवान समझना।

इसके बाद बादशाह ने अन्यान्य आभूषणों को देखना आरम्भ किया। एक जड़ाऊ बाज़ूबन्द पर अङ्कित था—"वर्ष के दूसरे महीने के दसवें दिन इस्लाम-धर्मावलम्बी एक बड़ा बादशाह अपने पाँच पारिषदों के साथ मेरी क़ब्र देखने आएगा। उसके पारिषदों में चार भले आदमी और एक ख़राब आदमी होगा।"

बादशाह को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सचमुच उसके पाँच पारिषद वहाँ मौजूद थे, परन्तु उनमें ख़राब कौन था, इस बात का पता कैसे लगे?

सिंहासन के नीचे एक जगह अङ्कित था—"जो बादशाह मेरी क़ब्र देखने आएगा, वह मेरा बड़ा सम्मान करेगा। परन्तु उसकी श्रद्धा और सम्मान पर मेरा कोई हक नहीं है। वह नेकदिल बादशाह मेरी कब्र पर नवीन आवरण चढ़ा देगा। मेरे तमाम वस्त्रों को बदलवा देगा। ख़ुशबूदार चीज़ों का छिड़काव करा कर मेरे इस गुहा-गृह को सुगन्धित कर जाएगा। परन्तु जो असद् व्यक्ति उसके साथ आएगा, वह मेरे प्रति असद् व्यवहार करेगा। मेरे सिंहासन के नीचे एक वाक्य अङ्कित है। आने वाले बादशाह को चाहिए कि उसे पढ़ कर अपना कर्तव्य निश्चित कर ले। इस अङ्कित वाक्य द्वारा वह मुझे याद रक्खेगा। और इससे अधिक मैं उसे कुछ नहीं दे सका, इस अक्षमता के लिए वह मुझे क्षमा प्रदान करेगा।

ख़लीफ़ा हारूँरशीद ने बड़ी ढूँढ़-खोज के बाद सिंहासन के नीचे का वाक्य पाया। मोबिदों ने बताया कि अमुक स्थान पर नौशेरवाँ ने बहुत सी सम्पत्ति रक्खी है। इसके सिवा यह भी लिखा है कि ख़लीफ़ा ने मेरे प्रति जो सम्मान प्रदर्शित किया है, उसके बदले में मैं उसे यह धनराशि उपहार देता हूँ। वे अपनी इच्छानुसार इसका व्यवहार कर सकते हैं।

क़ब्रिस्तान से वापस आने के समय रास्ते में एक पारिषद ने ख़लीफ़ा से निवेदन किया कि एक मुर्दे के पास इतने मूल्यवान जवाहिरात और बेशक़ीमती गहने छोड़ रखने की कोई आवश्यकता नहीं। ख़लीफ़ा को ऐसा करना चाहिए, जिसमे जीवित व्यक्ति इसका उपयोग कर सके।

यह सुन कर ख़लीफ़ा अत्यन्त असन्तुष्ट हुआ और उपर्युक्त पारिषद से कटूक्तिपूर्वक कहा—"अर्थात् तुम्हारे जैसे नीच मनुष्य के मतानुसार मुझे चाहिए कि मुर्दे की चीज़ें चोरी कर लूँ। वास्तव मे तुम दरबार में रहने के क़ाबिल नही हो।"

बाहर आकर उसने एक कर्मचारी को आज्ञा दी कि मेरे यहाँ से प्रस्थान करने से पहले मृत सम्राट के प्रति मेरा अन्तिम सम्मान प्रदर्शित करो। ख़लीफ़ा के आदेशानुसार उक्त कर्मचारी मृत सम्राट की क़ब्र के पास गया। उस समय वहाँ एकान्त था। मूल्यवान जवाहिरातों की ज्योति से गिरिकन्दरा जगमगा रही थी। दरिद्र राजकर्मचारी ने इतने मूल्यवान जवाहिरात कभी नहीं देखे थे। लोभवश उसने एक अँगूठी उतार

ली और उसे बड़ी सावधानी से अपने वस्त्र में छिपा लिया। परन्तु जब वह ख़लीफ़ा के सामने वापस आया तो, उसके मुख के भाव बदले हुए थे। इससे ख़लीफ़ा को भी सन्देह हुआ। उसने सोचा, अवश्य इसने मृत सम्राट का असम्मान किया है। ख़लीफ़ा ने उसे अपने पास बुला कर धमकी दी। बेचारा काँप गया और अन्त मे अपना अपराध भी स्वीकार कर लिया।

इसके बाद ख़लीफ़ा ने अँगूठी उससे ले ली और ख़ुद जाकर उसे मृत सम्राट के हाथ में पहना दिया। साथ ही उसे यह भी मालूम हो गया कि पूर्वोक्त अङ्कित वाक्य के अनुसार उसके पारिषदों में असद् व्यक्ति कौन है।

कहते हैं, सिहासन के नीचे लिखे हुए वाक्य के अनुचार ख़लीफ़ा हाँरूरशीद ने जो रत्नराशि पाई थी, उसमे अन्यान्य चीज़ों के सिवा एक महामूल्यवान राजमुकुट था। इसके पाँच पहलू थे और प्रत्येक पहलू पर निम्न-लिखित वाक्य अङ्कित थे :—

पहला पहलू

१—आत्मज्ञानियों के प्रति मेरा सम्मान जताना।

२—परिणाम सोच कर कार्यारम्भ करना। भागने का रास्ता सोच कर आगे बढना उचित होता है।

३—किसी को व्यर्थ कदापि मत सताना, सबके सुख-स्वच्छन्दता का ख़्याल रखना।

४—दूसरे को सताने वाली शक्ति को अपना अधिकार न समझना।

दूसरा पहलू

१—किसी कार्य को आरम्भ करने से पहले उपयुक्त व्यक्ति से परामर्श कर लेना। जो बहुदर्शी न हो, उसके भरोसे पर कोई कार्य न करना।

२—जीवन के लिए धन और धर्म के लिए जीवन उत्सर्ग कर देना।

३—सुनाम हासिल करने में अपना समय लगाना और अगर वास्तविक ऐश्वर्यशाली बनने की इच्छा हो तो सन्तोषी और त्यागी बनो।

तीसरा पहलू

१—जो टूट गया, खो गया, चोरी चला गया, नष्ट हो गया, या जल गया, उसके लिए दुखी न होना।

२—दूसरे के घर बैठ कर आज्ञा मत देना। अपने घर मे बैठ कर खाने का अभ्यास करना।

३—स्त्रियों के वशीभूत न होना।

चौथा पहलू

१—ख़राब और नीच कुल की स्त्री का पाणिग्रहण न करना। लज्जाहीन व्यक्ति के पास मत बैठना।

२—चरित्रहीन लोगों से अलग ही रहना। जो अनुग्रह की मर्यादा को नही समझ सकता, उसके साथ सद्भाव न रखना।

३—दूसरे की चीज़ देख कर लोभ मत करना।

४—राजाओं से डरते रहना, क्योंकि वे आग की तरह बल कर जला देते है।

५—अपना मूल्य समझने की चेष्टा करना। दूसरे के मूल्य का उचित सम्मान करना। तुम्हारी अपेक्षा जो ऊँचे दर्जे पर हों, उनके साथ विवाद मत करना।

पाँचवाँ पहलू

१—राजा, रमणी और कवियों से डरते रहना।

२—किसी व्यक्ति से द्वेष मत करना। दूसरे का दोष ढूँढने की आदत छोड़ दो।

३—प्रसन्न रहने का अभ्यास करना। सब समय उदास रहना ठीक नहीं। ऐसा करने से तुम्हारा जीवन दुःसह हो जाएगा।

४—अपने वंश की स्त्रियों का सम्मान करना और सदैव उनकी रक्षा करना।

५—क्रोध के वशीभूत न होना। विवाद के समय सदैव शान्ति स्वीकार करने के लिए तैयार रहना।

६—आमदनी की अपेक्षा अपना ख़र्च कदापि बढ़ने न देना।

७—पहले नया पेड़ रोप कर तब पुराना काटना।

८—अपने बिस्तरे से अधिक पैर मत फैलाना।

कही ऐसा न हो कि इस सम्माननीय स्थान के प्रति कोई असम्मान प्रदर्शित कर दे या वहाँ के जवाहरात चुरा ले, इसलिए ख़लीफ़ा ने उक्त क़ब्रिस्तान का रास्ता सदा के लिए बन्द करा दिया। उसके चारों ओर का दुर्गम पथ और भी दुर्गम बना दिया गया। अब तो किसी को पता भी नही कि वह क़ब्र कहाँ है।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

अन्याय

पौष मास की 'माधुरी' मे एक लेख 'स्त्री-जाति के सम्बन्ध मे' शीर्षक प्रकाशित हुआ है। उस लेख में श्री० इलाचन्द्र जी जोशी ने कुमारी सत्यवती देवी के श्रावण मास की 'माधुरी' मे निकले हुए 'महिला-महत्व' नामक लेख की समालोचना की है।

लेख के आरम्भ मे जोशी जी ने बिना किसी बाधा के इस बात को स्वीकार किया है कि "वर्तमान पुरुष-समाज अत्यन्त पतित और मृत है, इसलिए हमारी देवियाँ उनसे कई अंशों में उन्नत होंगी", पर उनकी सम्मति में यथार्थ तुलना 'वास्तविक स्त्री और वास्तविक पुरुष' को लेकर होनी चाहिए। पाठक महाशयों को अब 'वास्तविक स्त्री और वास्तविक पुरुष' को खोजने के लिए वर्तमान स्त्री-समाज को (इसी देश के नहीं, वरन् सारे संसार के) छोड कर किसी दूसरे युग के स्त्री-पुरुषों में प्रवेश करना चाहिए। क्योंकि जोशी जी ने आगे चल कर इस बात को दिखलाने का भगीरथ-परिश्रम किया है कि स्त्री-जाति अति ही नीच है, उसमे दूरदर्शिता, बुद्धि, प्रतिभा, वीरता तथा त्याग का नाम भी नहीं है; परन्तु पुरुष उससे बहुत ही श्रेष्ठ है, उसकी प्रतिभा त्याग की ओर है। वह स्त्रियों का सर्वस्व है और मनुष्यता के सारे गुण उसी मे विद्यमान हैं। इस अपूर्व फल के निकालने में उन्होंने किस प्रचण्ड तर्क-शक्ति का परिचय दिया है और किन-किन स्वयंसिद्धियों का आश्रय लिया है, इसको या तो जोशी जी स्वयं समझ सकते हैं या वे महाशय समझ सकते हैं, जिन्होंने उनके लेख को ध्यानपूर्वक पढा है।

आप लिखते हैं कि "किसी विशेष देश और जाति की बात छोड कर मैं मूल-स्त्री-प्रकृति और पुरुषात्मा के सम्बन्ध में दृढतापूर्वक कह सकता हूँ कि पुरुष स्त्री से उतना ही श्रेष्ठ है, जितना आकाश पृथ्वी से।" उनका यह वाक्य उनकी प्रचण्ड प्रतिभा का परिचय देता है। वह विचार कर रहे हैं मूल-स्त्री-प्रकृति और पुरुषात्मा का और फल निकाल रहे हैं स्त्री के ऊपर पुरुष की श्रेष्ठता का। यदि पुरुषात्मा की श्रेष्ठता मूल-स्त्री-प्रकृति के ऊपर दिखलाते तो न्यायसङ्गत भी था, परन्तु जोशी जी तो बडी लम्बी छलाँग मारते हैं। वह 'मूल-स्त्री-प्रकृति' शब्द से केवल स्त्री लेकर और 'पुरुषात्मा' शब्द से केवल पुरुष लेकर अपना मनमाना फल निकालते है। यह न्याय के किस नियमानुकूल है, क्या जोशी जी बतलाने की कृपा करेंगे? इस सम्बन्ध मे एक बात और ध्यान देने योग्य है। 'मूल-स्त्री-प्रकृति' समासित शब्द है, इसका अर्थ या तो 'मूल-स्त्री ही है प्रकृति' होगा, यानी जोशी जी ने प्रकृति को मूल-स्त्री मान लिया है, अथवा 'मूल-स्त्री की प्रकृति (स्वभाव)' होगा। यदि जोशी जी ने पहला अर्थ माना है तो यह सन्देह होता है कि उन्होंने प्रकृति को मूल-स्त्री किस वेदान्त के अनुसार मान लिया है। और फिर प्रकृति की पुरुषात्मा से समानता कैसी? यदि उन्होंने दूसरे अर्थ के अनुसार फल निकाला है तो यह प्रश्न हो सकता है कि मूल-स्त्री की प्रकृति (स्वभाव) की पुरुषात्मा (पुरुष की आत्मा) से समानता कैसी और यदि कोई मूल-स्त्री की प्रकृति से पुरुषात्मा की समानता भी करे, तो इस तुलना से 'पुरुष स्त्री से उतना ही श्रेष्ठ है, जितना आकाश पृथ्वी से' इस फल पर कैसे पहुँच सकता है। विचार तो किया जा रहा है प्रकृति और आत्मा के सम्बन्ध में और फल निकाला जा रहा है स्त्री और पुरुष के विषय मे। यह कौन सा नियम है। क्या जोशी जी के विचार मे स्त्री में आत्मा नही होती या पुरुष प्रकृतिहीन होता है? उनको प्रकृति की (स्त्री की) प्रकृति से (पुरुष की) तुलना करनी चाहिए। यह तो हुई जोशी जी की न्याय-प्रियता की बात। अब मै पाठकों के सामने उनकी मौलिकता, दूरदर्शिता, बुद्धि और प्रतिभा की बानगी रखता हूँ।

यों तो जोशी जी ने पुरुषों को स्त्रियों से श्रेष्ठ बनाने के लिए रामायण, महाभारत, सांख्य-शास्त्र तथा वेद इत्यादि के पन्ने उलट डाले हैं, पूर्वजों की बुद्धि और विश्वास की शरण ली है, तथा 'सास ननद मोरी नान्हे की बैरिन' आदि कहावत का उल्लेख किया है और इतना परिश्रम करने पर आपने यह फल निकाला है कि स्त्री में बुद्धि का अभाव है और उसमें दूरदर्शिता नाम-मात्र को भी नहीं है। जोशी जी लिखते हैं कि "स्त्री की आत्मा मोह और स्वार्थ से जकडी है।

केवल प्रजनन और वंश-रक्षा का ही उसे ख़्याल है। बाहरी दृष्टि से हम स्त्री को महत् त्याग स्वीकार किए हुए देखते हैं। पर वास्तव में वह त्याग या तो निर्बुद्धि द्वारा प्रेरित है या स्वार्थ द्वारा।" प्रश्न होता है कि स्त्री का त्याग स्वार्थ द्वारा कैसे प्रेरित है? जोशी जी उत्तर देते हैं कि "प्रजा-विस्तार ही उसका चरम स्वार्थ है और यह वह पुरुष के सहारे ही से कर सकती है। इस स्वार्थ के लिए कोई भी त्याग तुच्छ है।" पाठक स्वयं इस उत्तर की गम्भीरता को समझें! जोशी जी कहते हैं कि "वंश-वृद्धि का यह Instinct कीटाणु कीट में भी पाया जाता है। इसलिए पुत्रोत्पत्ति के लिए स्त्री की उत्कट लालसा किसी विशेष बुद्धि का परिचायक नहीं।" जोशी जी बिलकुल ठीक लिखते है कि वंश-वृद्धि का Instinct होना स्त्री की बुद्धि का परिमाण नही है। परन्तु जोशी जी यह कैसे कहते हैं कि स्त्री का जो त्याग है, वह केवल निर्बुद्धि से प्रेरित है। स्त्री किस प्रकार कष्ट-सहन करके अपने पति की सेवा करती है और अपने बच्चों का लालन-पालन करती है, इसको वही समझ सकती है। परन्तु इस पर भी यह कहा जाता है कि उसका यह सारा काम स्वार्थ-मूलक है। क्या इससे भी बढ़ कर कृतघ्नता का कोई उदाहरण होगा? यह बात वैसी ही है जैसे कि आजकल के कुछ उठल्लू मित्र किसी के यहाँ भरपेट भोजन करके उसके पीठ-पीछे कहते हैं—'वाह, इसको क्या अच्छा बेवकूफ़ बनाया है' (Fools make feast and wisemen eat them)। हमारे ग्रन्थों ने स्त्रियों के पतिव्रत-धर्म की महिमा गाई है और माता के प्रेम की मुक्तकण्ठ से भूरि-भूरि प्रशंसा की है, परन्तु जोशी जी की कसौटी ने दोनों को स्वार्थमूलक बना कर असत्य कर डाला है। क्या जोशी जी इतिहास के उन सुनहरे पन्नों को नहीं पढ़ सके, जिनमें राजपूताने की उन वीराङ्गनाओं का वर्णन है, जिन्होंने अपने पतियों के युद्धस्थल में वीर-गति पा जाने के अनन्तर अपना धर्म बचाने के लिए या तो तलवार हाथ में लेकर शत्रु से युद्ध करते हुए प्राण समर्पण कर दिया था या चिता जला कर भस्म हो गई थीं? क्या उनका यह त्याग और साहस स्वार्थमूलक था? क्या स्त्रियों का ऐसा त्याग और साहस किसी भी सज्जन की दृष्टि में उनकी निर्बुद्धि का कारण कहा जा सकता है? आज हमारे देश के किसी भी पुरुष से यह बात छिपी नहीं है कि वर्तमान अहिंसात्मक क्रान्ति में हमारी देवियाँ किस तत्परता से कार्य कर रही हैं। वे देश-प्रेम के सामने आज अपने चिर-प्रसिद्ध वात्सल्य-प्रेम को भी भूल कर अपने देश के उद्धार के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहन कर रही है। क्या हमारे राष्ट्र के इतिहास में इनका यह कार्य स्वार्थ-मूलक बतलाया जायगा? क्या इनके इस त्याग, साहस तथा सहिष्णुता में किसी को लेश-मात्र भी सन्देह है? यह बात अवश्य है कि हमारा प्राचीन इतिहास पुरुषों की वीरता का अधिक वर्णन करता है। इसका यह अर्थ नहीं हो सकता कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ वीरा नहीं होती थीं। इसका यह कारण है कि पुरुष ही संग्राम-क्षेत्र मे जाते थे और विशेषकर क्षत्री, इसी कारण उनकी प्रशंसा हुई है। हमारी पुरानी सभ्यता ने स्त्रियों के लिए दूसरा ही कार्य सौंपा था। हमारा पुराना इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब दैववश स्त्रियों को मौका मिला है, तब-तब उन्होंने अपनी बुद्धि का परिचय वीरता, राजनीति, शासन तथा भक्ति इत्यादि के क्षेत्रों में अति कुशलता के साथ दिया है। अहिल्याबाई, चाँदबीबी, झाँसी की रानी तथा मीराबाई इस बात का उदाहरण हैं। संसार के इतिहास में तो ऐसे अनेकों उदाहरण हैं।

यह सभी जानते हैं कि स्त्री का हृदय कोमल होता है और वह करुणामयी कही जाती है। परन्तु जोशी जी कहते हैं कि "उसकी करुणा दुर्बलता-जन्य है, स्वतः स्फूर्त नहीं।" जोशी जी एक भिखारी लड़के का उदाहरण देकर बतलाते हैं कि उसकी बातें सुन कर स्त्री का हृदय पिघल जाता है और वह उसको मुट्ठी भर आटा या एक पैसा दे देती है। आप इसी सम्बन्ध में पुरुष के कार्य की तुलना करते हुए कहते है कि "यथार्थ पुरुष (सब पुरुषों की बात मैं नही कह रहा हूँ) ××× उसका मूलगत सुधार चाहेगा।" जोशी जी की निष्पक्षता देखिए। जब पुरुषों की बात आती है तो आप यथार्थ पुरुषों (सामान्य पुरुषों की नही) की बात करते हैं और जब स्त्रियों की बात आती है, तो आपको 'यथार्थ' विशेषण सूझता ही नहीं। स्त्री की करुणा दुर्बलता-जन्य है, यह कहना अपने हृदय की दुर्बलता का

द्योतक है। स्त्री करुणा की मूर्ति है। जोशी जी ने एक सत्य की खोज की है, उसको भी ज़रा आप लोग सुनिए। जोशी जी का कथन है कि "इस युग मे जब लाखों आदमी बेकार पड़े भूखों मर रहे है और सन्तति-निरोध की ओर लोगों का ध्यान गया है, यह चिर-सत्य जतलाने का उपयुक्त समय आ गया है कि स्त्री के मातृत्व की महत्ता झूठी है।" जोशी जी को यह चिर-सत्य जतलाने का उपयुक्त समय यही मिला है। शायद इससे पहले वह इस सत्य का दिग्दर्शन कराते, तो जनता उसे सत्य न मानती। अब सन्तति-निरोध का प्रश्न इसकी सत्यता का प्रमाण है। जोशी जी लाखों मनुष्यों की बेकारी का उत्तरदायित्व, जिसका कारण अधिकाधिक जनवृद्धि है, स्त्रियों पर ही समझते है, पुरुषों पर कुछ भी नही। जोशी जी को मानना पड़ेगा कि अधिकाधिक जनवृद्धि का उत्तरदायित्व उन पुरुषों पर है, जिन्होंने स्त्रियों को अपनी वासना का शिकार बना रक्खा है और सन्तति-निरोध का पाठ पढ़ाने की अधिक आवश्यकता भी उन्हीं वासनात्मक पुरुषों को है, स्त्रियों को नहीं। यदि पुरुष अपनी वासना पर निरोध करने का निश्चय कर ले, तो स्त्री उसके मार्ग में बाधा नही डाल सकती।

जोशी जी ने रूस की स्त्रियों की उत्तरोत्तर उन्नति पर सन्तोष प्रकट करते हुए लिखा है कि "वास्तविक स्त्री के सम्बन्ध में मेरा आदर्श इससे भी बहुत आगे बढ़ा हुआ है। मैं चाहता हूँ कि स्त्रियाँ अपना हृदय और गर्भशक्ति निर्बीज कर दें।" इसके अनन्तर आप कहते हैं कि "स्त्री जब निर्बीज हो जायगी तो सृष्टि की रक्षा कैसे होगी—यह प्रश्न कई लोग करेंगे? पर सृष्टि की रक्षा होना क्या ज़रूरी है? निर्वाण-विनाश क्या उतना ही सत्य नही है, जितनी सृष्टि × × सृष्टि को निर्बीज करने का Ideal अत्यन्त महत् है।" जोशी जी की उत्कण्ठा है कि स्त्रियाँ अपना हृदय निर्बीज कर दें। क्या हृदयहीन स्त्री वास्तव मे स्त्री कही जाने योग्य होगी? जिसमे हृदय नहीं वह मनुष्यत्व के गुण से वञ्चित है। हृदय-शक्ति की सहायता के बिना मस्तिष्क-शक्ति कभी-कभी शैतान के कार्य कर बैठती है और उससे समाज को भारी हानि होती है। यह बात ज्ञात नहीं होती कि स्त्रियों के हृदय ने जोशी जी के चित्त में कौन सी खलबली उत्पन्न कर दी है, जिससे वह कहते हैं कि स्त्रियों को चाहिए कि वह अपना हृदय निर्बीज कर दे। जोशी जी की सम्मति है कि स्त्रियाँ अपनी गर्भशक्ति निर्बीज कर दे। ठीक है, जोशी जी संहार के उपदेष्टा हैं और विनाश के उपासक; उनको सृष्टि और रचना से काम? उनको तो सृष्टि के निर्बीज करने का Ideal अत्यन्त महत् है। ऐसा उपदेश यदि वह स्वयं लँगोटी लगा कर देते तो अधिक सफल होता। जोशी जी को समझना चाहिए कि सृष्टि सदा से चली आई है और चलती रहेगी। न तो स्त्रियों की गर्भ-शक्ति निर्बीज करना ही सम्भव है, न सृष्टि का नितान्त विनाश ही।

वर्तमान परिस्थिति मे, जबकि संसार की सारी बातों में यथार्थ क्रान्ति हो रही है, हिन्दी-भाषा में, जो कि भविष्य में राष्ट्र-भाषा होगी, ऐसा लेख पाया जाना, जोकि स्त्रियों के प्रत्येक कार्य में स्वार्थ की झलक बतलावे और उनमें अवगुण ही अवगुण देखे, अनुचित ही नहीं, अन्याय है।

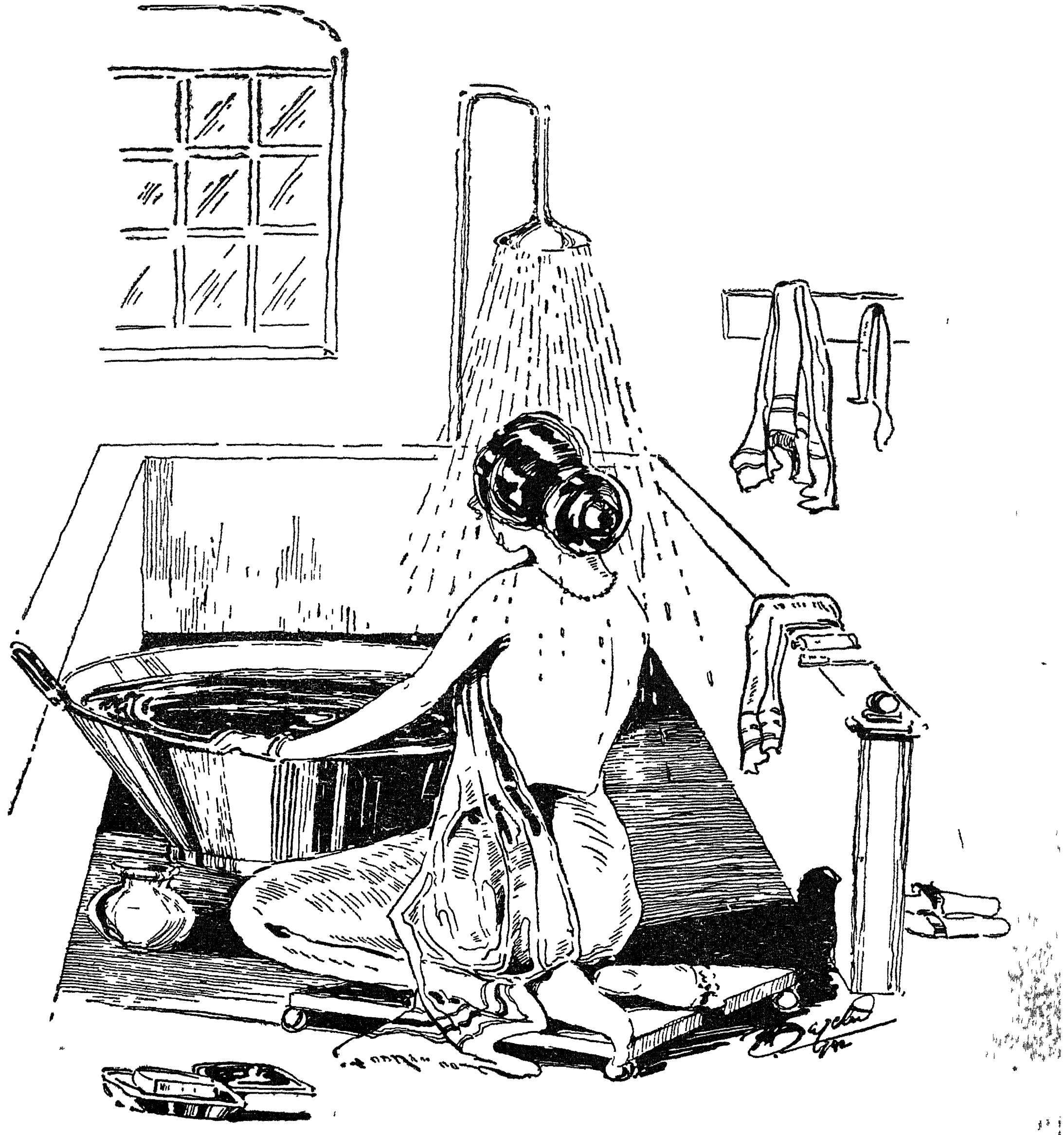
स्त्री और पुरुष दोनों संसार-जीवन के प्रधान अङ्ग है। एक के बिना दूसरे का जीवन अर्थहीन हो जाता है। दोनों में गुण-दोष विद्यमान हैं। किसी का दूसरे मे अवगुण ही अवगुण देखना अन्याय है। दोनों में से किसी एक को दूसरे से बढ़ कर बतलाने का प्रयत्न करना मूर्खता है। दोनों संसार में अपना-अपना स्थान रखते हैं। कोई किसी प्रकार के कार्यों के लिए अधिक योग्य है और कोई किसी प्रकार के कार्यों के लिए। दोनों बुद्धिमान, प्रतिभाशाली और योग्य होते है। स्त्री भी निर्वाण अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर सकती है और पुरुष भी। जिस प्रकार स्त्री पुरुष की आत्मोन्नति का अपरिहार्य अङ्ग नहीं कही जा सकती, उसी प्रकार पुरुष भी स्त्री की आत्मोन्नति का अपरिहार्य अङ्ग नही कहा जा सकता। स्त्रियों मे त्याग है, सौन्दर्य है, करुणा है। उनके त्याग मे स्वार्थ की झलक पाना अपनी स्वार्थपरता है। उनके सौन्दर्य में आकांक्षा देखना अपनी ही प्रवृत्ति और भावना का फल है। उनकी करुणा मे दुर्बलता समझना अपनी विचार-शक्ति की निर्बलता है।

—बलदेवप्रसाद शुक्ल, बी० ए०, विशारद

देश का चिन्तन कब करें ??

8-30 A. M.—TUB AND SHOWER BATH

१



८।। बजे प्रातःकाल (टब और 'शावर' बाथ)

मेरे मनसूबे-तरक़्क़ी के[1] हुए सब पायमाल !
बीज मग़रिब[2] ने जो बोया ; वह लगा और फल गया !!

—अकबर इलाहाबादी

9 A. M.—TOILET—HAIR DRESSING

२



९ बजे प्रातःकाल (टॉयलेट—हेयर ड्रेसिङ्ग)

उनसे बीबी ने फकत स्कूल ही की बात की;
ये न बतलाया कहाँ रक्खी है रोटी रात की।

—अकबर इलाहाबादी

10 A. M.—READY FOR THE COLLEGE

३



१० बजे दिन (कॉलेज के लिए)

तालीम हमें जो दी जाती है, वह क्या है ? फ़क़त बाजारी है !
जो अक़्ल सिखाई जाती है; वह क्या है ? फ़क़त सरकारी है ॥

—अकबर इलाहाबादी

5 P. M.—FINISHING TOUCH

४



५ बजे शाम (फ़िनिशिङ्ग टच)

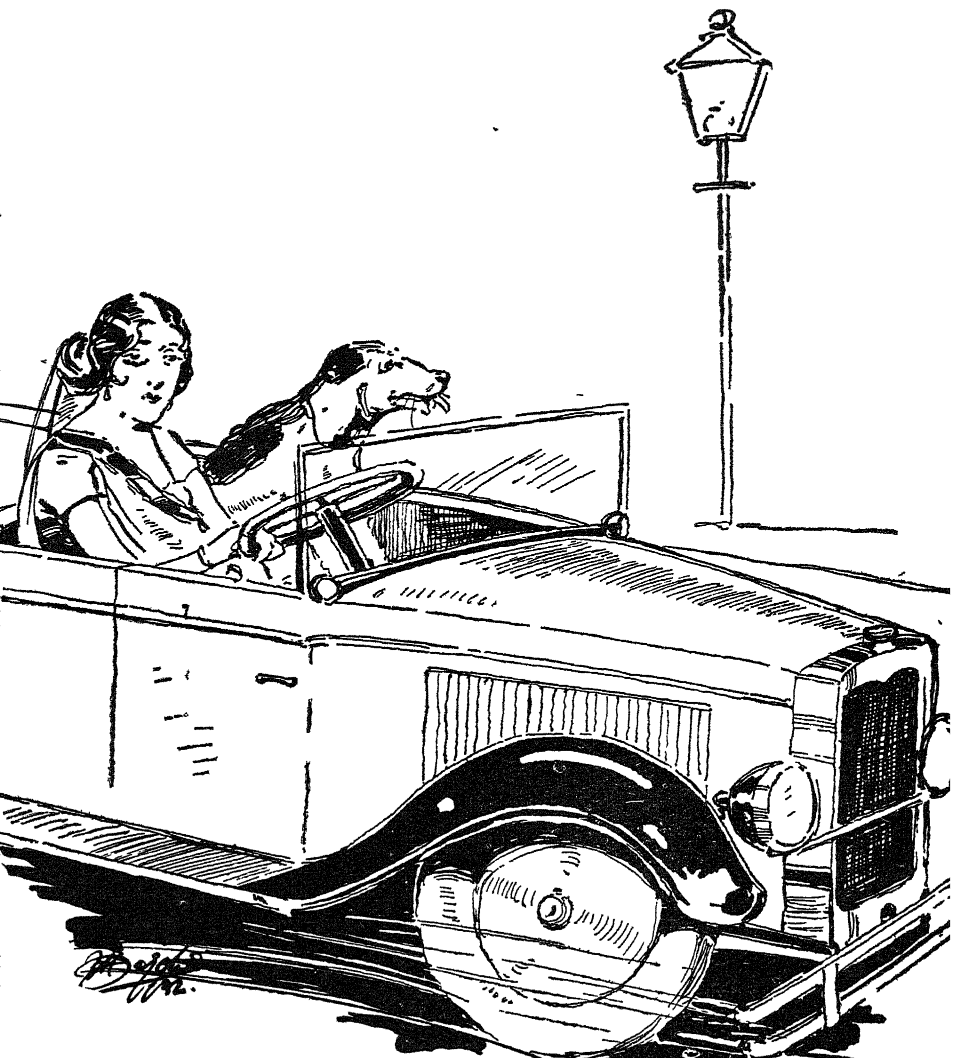
तालीम लड़कियों की ज़रूरी तो है मगर ;
ख़ातूने ख़ाना[1] हों, वो सभा की परी न हों !

—अकबर इलाहाबादी

१—गृह-देवियाँ

6 P. M.—MERRY-MAKING

५

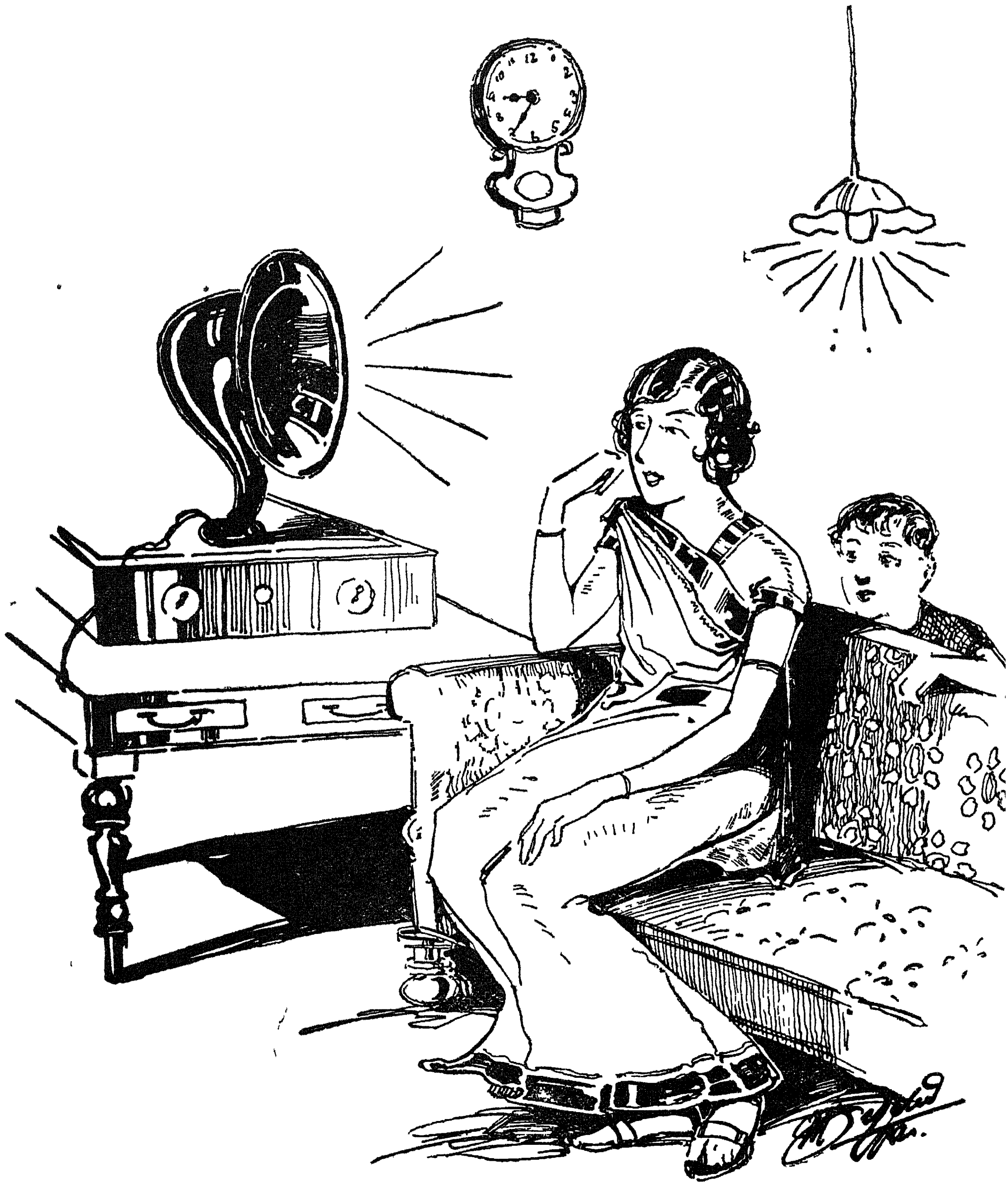


६ बजे शाम (सैर-सपाटे के लिए)

कुल स्टेशन को उसने मेरे घर से कर दिया वाकिफ !
ये देखो बरकते-तालीम; बीबी इसको कहते हैं !

—अकबर इलाहाबादी

8-30 P. M.—RECREATION THROUGH RADIO



८॥ बजे शाम (रेडियो द्वारा 'रिक्रिऐशन')

उन्हें शौक़े इबादत भी है और गाने की आदत भी !
निकलती हैं दुआएँ उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर !!

—अकबर इलाहाबादी

1 A. M.—NOVEL—THE 'LIGHT READING'

७



१ बजे रात तक—अध्ययन (उपन्यास)

नई तहज़ीब[१] में दिक़्क़त ज़ियादा तो नहीं होती ।
मज़ाहब[२] रहते हैं क़ायम ; फ़क़त ईमान जाता है !!

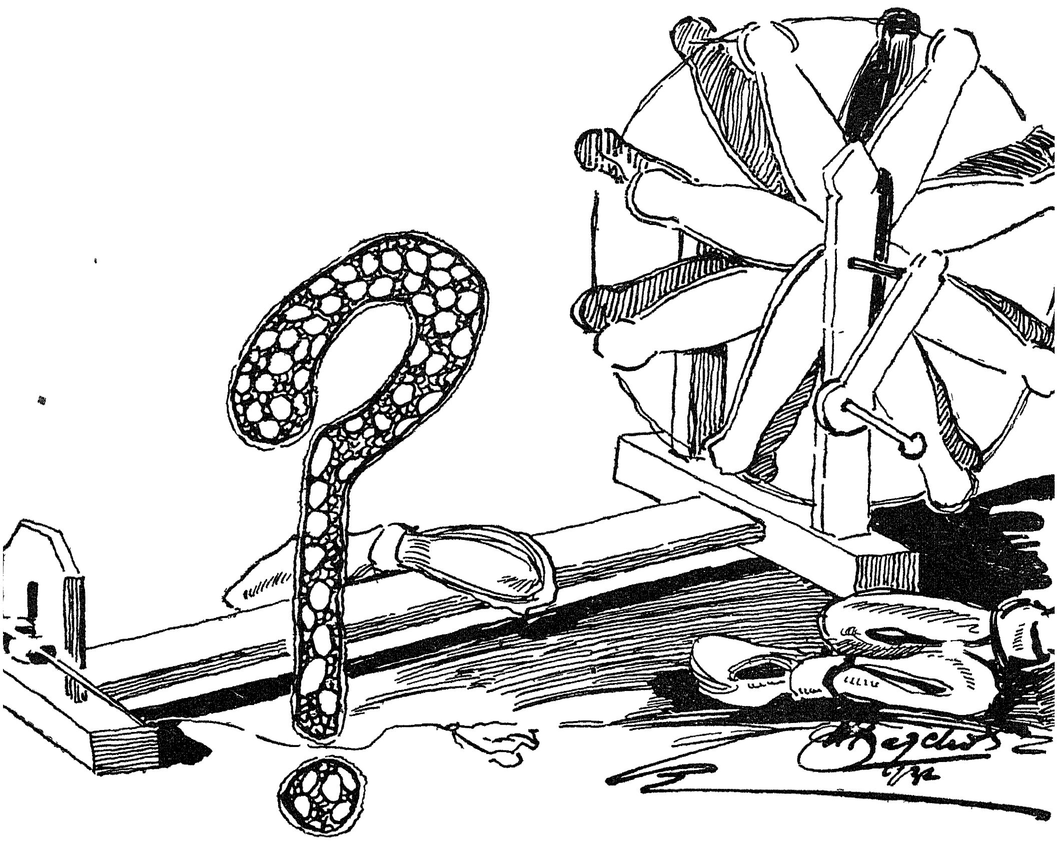
—अकबर इलाहाबादी

१—सभ्यता २—धर्म्म,

बतलाइए चर्ख़ा कब चलाएँ ??

THE PROBLEM—WHEN TO SPIN ??

८



बाप माँ से, शेख़ से, अल्लाह से क्या उनको काम ?
डॉक्टर जनवा गए; तालीम दी सरकार ने !

❀

वो चिराग़ों से हैं जलते ; ऐसे हैं रौशन ज़मीर[1] !
कहते हैं, रखिए पुरानी रौशनी बालाए ताक़ !!

❀

शबों को कोर्स, दिन में फ़ॉरमूला वर्क करते हैं !
अदीमुल्फ़ुरसती[2] से उसकी उल्फ़त तर्क करते हैं !!

—अकबर इलाहाबादी

१—दिव्य दृष्टि रखने वाले । २—छुट्टी न मिलने के कारण ।

Special for the CHAND] [चित्रकार—श्री० एच० बागची

फाँसी का दण्ड

फाँसी के दण्ड के विषय में आजकल संसार के समस्त देशों में आन्दोलन हो रहा है और अनेक महान विचारक तथा उदार सिद्धान्तों के अनुयायी उसे मिटाने का उद्योग कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' में एक सम्पादकीय लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें भारत के प्राचीन स्मृतिकारों के मत का दिग्दर्शन कराते हुए इस अमानुषी प्रथा को दूर करने का समर्थन किया है। पाठकों के लाभार्थ हम उसका भावानुवाद देते हैं :—

भारतीय स्मृतिकारों या क़ानून बनाने वालों ने दण्ड और अपराधियों के प्रति व्यवहार के विषय में जो नियम लिखे हैं, उनसे यह प्रकट नहीं होता कि वे फाँसी की सज़ा के सर्वथा विरुद्ध थे। उनके सिद्धान्त का आशय संक्षेप में इन शब्दों में प्रकट किया जा सकता है कि "राजा हमेशा दण्ड को उठाए रखता है, पर उसका प्रहार कभी-कभी करता है।" पर जब आवश्यकता पड़ती थी तो मृत्यु-दण्ड अवश्य दिया जाता था। केवल थोड़े से बौद्ध-धर्मावलम्बी शासकों ने इस प्रथा का सर्वथा बहिष्कार किया था। संसार अभी तक यह नहीं समझ सका है कि मृत्यु-दण्ड के बिना काम चल सकता है या नहीं? प्राचीन काल में कितनी ही बार भारत अन्य देशों के समान मृत्यु-दण्ड को मिटाने की चेष्टा कर चुका है, और यहाँ सदैव यह विचार मौजूद रहा है कि अपराध के बदले में किसी व्यक्ति की जान लेना अन्याययुक्त और हानिकारक है। महाभारत में लिखा है कि "यह असम्भव है कि किसी व्यक्ति का प्राणनाश करना कभी भी श्रेष्ठ समझा जा सके।" "अपराधी का प्राणनाश किए बिना राजा को उसे शास्त्रों के मतानुसार दण्ड देना चाहिए।" "एक डाकू को मृत्यु-दण्ड देने से उसकी पत्नी, माता, पिता और बच्चे सब मारे जाते हैं। इसलिए जब कोई दुष्ट व्यक्ति अपराध करे तो राजा को उसे दण्ड देने के सम्बन्ध में भली प्रकार विचार करना चाहिए। अपराधियों को नर्मी के साथ दण्ड देना चाहिए, उनकी सम्पत्ति अपहरण कर लेनी चाहिए, जेल भेज देना चाहिए या अङ्ग-भङ्ग करके कुरूप बना देना चाहिए, जिससे वे अपने किए पर पश्चात्ताप कर सकें। और यदि कोई अपराधी कहे कि 'हे परमपिता, अब मैं कोई भी पाप-कार्य नहीं करूँगा' तो उसे बिना दण्ड दिए छोड़ देना चाहिए।" इन और इसी प्रकार के अन्य प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यद्यपि भारतीय विचारक आवश्यकता पड़ने पर किसी-किसी मामले में मृत्यु-दण्ड दिया जाना स्वीकार करते थे, पर उनके हृदय में यह भाव सदा बना रहता था कि यह कार्य ईश्वरीय इच्छा के प्रति मनुष्य की अज्ञानता का द्योतक है।

इस सम्बन्ध में हम यह बतलाना चाहते हैं कि ये बातें दण्ड के सम्बन्ध में आधुनिक से आधुनिक विचारों के अनुकूल हैं। इतना तो सब कोई स्वीकार करते हैं कि मृत्यु-दण्ड हद दर्जे की आवश्यकता पड़ने पर ही दिया जाना चाहिए। पर इस तरह की आवश्यकता है या नहीं और उसकी सीमा कहाँ तक रक्खी जाय, इस विषय में बड़ा मतभेद है। एक तरफ़ मानव-जीवन की पवित्रता का भाव दिन पर दिन ज़ोर पकड़ता जाता है। दूसरी तरफ़ इस बात को भी लोग मानते जाते हैं कि मनुष्य के कामों को पाप और पुण्य इन दो भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता। क्योंकि अपराध मानसिक अव्यवस्था का फल है और मानसिक अव्यवस्था भिन्न-भिन्न श्रेणी की होती है। अगर मनुष्य का जीवन पवित्र है, तो मृत्यु-दण्ड नीति-विरुद्ध समझा

जाना चाहिए। यदि दण्ड का उद्देश्य लोगों को चेतावनी देना या उनकी आँखें खोलना है, और मृत्यु-दण्ड सबसे अधिक चेतावनी देने वाला है, तो प्रश्न होता है कि अभी तक संसार में हत्याएँ क्यों होती हैं? इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि मृत्यु-दण्ड की आवश्यकता और क्षमता पर से लोगों का विश्वास दिन पर दिन हटता जाता है और इसके विरुद्ध जो आवाज़ उठाई जाती है, उसका कारण अब केवल भावुकता नहीं है, वरन् वह एक विज्ञान-सम्मत बात है। यह प्रथा नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क, हॉलैण्ड, बेलजियम, ऑस्ट्रिया, रूमानिया, इटली, पुर्तगाल, लैटविया, लिथूनियाँ, फ़िनलैण्ड, उरगुए, स्वीज़रलैण्ड के अधिकांश भाग और अमेरिका की बारह रियासतों में से उठाई जा चुकी है। अमेरिका की बीस अन्य रियासतों में जूरियों को मृत्यु-दण्ड को आजीवन कारावास में बदल देने का अधिकार है। इङ्गलैण्ड में हवार्ड लीग और "National Council for the Abolition of the Death Penalty" जनमत पर काफ़ी प्रभाव डाल रही हैं।

मानव-चरित्र ऐसा दुरूह है कि उसमें कारण और फल का जान सकना सहज नहीं है। मृत्यु-दण्ड के पक्षपाती साधारणतया यह दलील दिया करते हैं कि यदि ऐसा न होता तो हत्याओं की संख्या बहुत बढ़ जाती। पर इस प्रथा के विरोधी आँकड़ों द्वारा इस दलील का खण्डन करते हैं। उनका कहना है कि आँकड़ों से इस कथन की सत्यता सिद्ध नहीं होती। उदाहरणार्थ नार्वे में मृत्यु-दण्ड सन् १९०५ में उठा दिया गया था और वहाँ की सरकार द्वारा प्रकाशित हिसाब से मालूम होता है कि सन् १९०५ और १९२४ के बीच में हत्याओं की संख्या बहुत घट गई थी। स्वीडन के जेल-अधिकारियों का कहना है कि मृत्यु-दण्ड में कमी होने और अन्त में उसके उठा दिए जाने से हत्याओं की संख्या में बहुत कमी पड़ गई है। अन्य देशों के सम्बन्ध में भी इसी तरह के प्रमाण मौजूद हैं। यह प्रायः कहा जाता है कि अमेरिका की रियासतों में मृत्यु-दण्ड उठने के बाद हत्याओं की संख्या बहुत बढ़ी है, पर मि० पी० के० सेन नामक सज्जन की लिखी पुस्तक से विदित होता है कि जिन रियासतों मे मृत्यु-दण्ड नही दिया जाता, उनमें अन्य रियासतों की अपेक्षा अब भी बहुत कम हत्याएँ होती हैं। एक सौ वर्ष पहले लॉर्ड एलनबरा ने लिखा था कि "न्याय की ख़ातिर और जनता की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि चोरी के सम्बन्ध मे मृत्यु-दण्ड का नियम रद्द न किया जाय।" पर यदि इस समय चोरी के अभियोग में किसी पुरुष, स्त्री या बच्चे को फाँसी पर नही चढाया जाता, तो उसके कारण समाज नष्ट-भ्रष्ट नही हो गया है। भविष्य में ऐसा समय आएगा, जब कि हत्या और राजद्रोह के सम्बन्ध में फाँसी की सज़ा देना लोगों को उसी प्रकार अनोखा जान पड़ेगा जैसे आजकल चोरी के लिए मृत्यु-दण्ड दिए जाने का सौ वर्ष पुराना क़ानून जान पड़ता है।

❀ ❀ ❀

पारसियों का श्मशान

मृत-व्यक्ति के शव का अन्तिम संस्कार किस प्रकार किया जाय—इस प्रश्न का सम्बन्ध आजकल धर्म से समझा जाता है। प्रत्येक मज़हब ने इस कार्य के लिए एक विशेष प्रथा निर्माण कर दी है, जिसके अनुसार चलना उसके अनुयायियों के लिए अनिवार्य माना जाता है। इससे लोगों की बड़ी हानि होती है और अनावश्यक कष्ट उठाना पड़ता है। यदि लोग परिस्थिति के अनुसार इस प्रथा में परिवर्तन कर सकें तो बहुत सी दिक्क़तों से बच सकते हैं। इस सम्बन्ध में कराची से प्रकाशित होने वाले 'यङ्ग-बिल्डर' नामक मासिक पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें पारसियों मे प्रचलित अन्तिम संस्कार की विधि को उपयोगी और समयानुकूल सिद्ध किया गया है। उसका लेखक यद्यपि एक पारसी ही है, पर वह स्वतन्त्र विचारों का व्यक्ति जान पड़ता है, और उसने धार्मिक सिद्धान्तों के बजाय केवल उपयोगिता की ही दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार किया है। वह लिखता है :—

मेरा ख़्याल है कि 'टावर ऑफ़ साइलेन्स' (पारसी श्मशान-भूमि) में शव के संस्कार की विधि किसी बहुत

बड़े बुद्धिमान ने चलाई है। इसका आधार मितव्ययता, स्वच्छता और प्राकृतिक नियमों पर है। इसमें सबसे अधिक ध्यान इस बात का रक्खा गया है कि शव का संस्कार करने में कुछ भी ख़र्च न करना पड़े। यह खेद का विषय है कि जो प्रथा सबसे अधिक कम ख़र्च की निगाह से चलाई गई थी, उसे धार्मिक आडम्बर द्वारा सबसे अधिक खर्चीला बना दिया गया है। जोरास्थियन अथवा पारसी मज़हब में कहीं भी उन ख़र्चीली प्रथाओं का उल्लेख नहीं मिलता, जो आजकल उस जाति में मृत व्यक्ति के लिए की जाती है। जैसे ही किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, वैसे ही उसका प्राण या आत्मा देह से बाहर हो जाता है। उसके पश्चात् जो कुछ बचता है वह केवल चमड़ा, मांस और हड्डियाँ आदि होती है, जो किसी काम का नहीं होता और उसे किसी तरह ठिकाने लगा देना आवश्यक है। जबकि मनुष्य के शरीर से आत्मा पृथक् हो जाती है, तो वह संसार के लिए ठीक उतना ही महत्वपूर्ण या महत्वहीन होता है, जितना कि किसी पक्षी या कीड़े या पशु का मरा हुआ शरीर। विवेक द्वारा यही प्रतीत होता है कि जिस तरह किसी पक्षी या पशु के शरीर को जल्दी से जल्दी ठिकाने लगा देने की चेष्टा की जाती है, ताकि वह सड़े-गले नहीं, उससे बदबू न फैले और उससे रोगों के जीवाणु उत्पन्न न हों। उसी प्रकार किसी मनुष्य के शरीर को भी मर जाने के बाद जल्दी से जल्दी ठिकाने लगाने की चेष्टा की जानी चाहिए, अन्यथा उससे भी उपरोक्त हानियाँ होने की सम्भावना है।

इस प्रकार यह स्पष्ट जान पड़ता है कि यद्यपि अपने प्रिय सम्बन्धी के स्नेह के कारण उसके मृत शरीर को देख कर शोक और दुःख का होना स्वाभाविक है, पर मरे हुए शरीर के लिए तरह-तरह की धार्मिक क्रियाएँ और रस्में करना निरर्थक है और उससे किसी प्रकार का लाभ नहीं। इसलिए उस समय हमको यही उचित है कि हम देश और नगर की परिस्थिति के अनुसार शव को ठिकाने लगाने का अच्छे से अच्छा उपाय सोचे।

इस सम्बन्ध में संसार में जो मुख्य-मुख्य प्रथाएँ प्रचलित हैं, वे चार भागों में विभाजित की जा सकती हैं। शव को ज़मीन में गाड़ देना, आग या बिजली द्वारा जला देना, समुद्र या नदी में डुबा देना और पक्षियों तथा सूर्य द्वारा उसे ख़त्म कर देना। यहाँ पर मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि ये विचार बिना किसी तरह के धार्मिक भाव के प्रकट किए गए हैं और उनका उद्देश्य किसी विशेष धर्म के अनुयायी के भावों को चोट पहुँचाना नहीं है।

हम देखते हैं कि संसार के उन शहरों में, जो पुराने ज़माने में बनाए गए थे और जिनका महत्व तथा जन-संख्या अब बहुत बढ़ गई है, क़ब्रिस्तान की समस्या विकट रूप धारण कर रही है। कब्रिस्तानों के कारण उन शहरों की बहुत सी ज़मीन रुकी हुई है। किसी-किसी शहर में तो कब्रिस्तानों का विस्तार लोगों के निवास-स्थान के विस्तार से भी अधिक है। आजकल ज़मीन का दाम महँगा हो रहा है और लोगों को निवास-स्थान की तङ्गी अनुभव होती है। यद्यपि कितने ही सुप्रसिद्ध धार्मिक आचार्यों ने यह व्यवस्था दी है कि कुछ नियत वर्षों के बाद इस तरह की ज़मीन को काम में लाया जा सकता है, पर लोगों का विश्वास इस सम्बन्ध में ऐसा दृढ़ है कि वे किसी हालत में किसी क़ब्र को खोदने के लिए राज़ी नहीं होते।

जब हम शव को जलाने के सम्बन्ध में विचार करते हैं, चाहे वह लकड़ी द्वारा हो और चाहे बिजली द्वारा, तो जान पड़ता है कि इसमें बड़ा ख़र्च होता है। केवल एक शव के लिए किसी जगह में १५) की और किसी जगह ४५) तक की लकड़ियाँ ख़र्च हो जाती हैं। चिता का दृश्य भी कितनी ही बार बड़ा दुःखदाई होता है। कितने ही लोग शव को जलाने में घी, गुलाब-जल और कीमती वस्त्रों का उपयोग करते हैं।

पानी में शव को बहा देने की प्रथा कम ख़र्च की है, अगर वह किनारे पर की जा सके। पर इससे पानी गन्दा होता है और स्वास्थ्य की दृष्टि से यह बहुत ख़तरनाक है। इसके लिए शव को बीच समुद्र में ले जाना उचित है और इसमें बहुत ख़र्च पड़ेगा।

अब अन्तिम विधि शव को पक्षियों तथा सूर्य द्वारा ख़त्म करने की है और निस्सन्देह उसमें बड़ा सुभीता है। अगर इच्छा की जाय तो उसमें किसी तरह का ख़र्च नहीं है। मृत्यु के कुछ देर बाद मृत देह को जैसे का तैसा इस स्थान तक ले जाना ही आवश्यक है। चाहे उसे गाड़ी में ले जाया जाय अथवा लोगों के कन्धों पर। उसे

एक छोटी जगह में, जो चारों तरफ़ दीवाल से घिरी हो और आसमान की तरफ़ खुली हो, रख देना चाहिए। शव पर से कपड़े हटा देने चाहिए और उसे नङ्गी हालत में छोड़ देना चाहिए। कुछ ही देर में अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिवश कुछ पक्षी वहाँ आ पहुँचेंगे। कुछ घण्टों में वे मांस को खा जायँगे और केवल हड्डियाँ तथा थोड़ा सा द्रव पदार्थ बच रहेगा। ये चीज़ें सूर्य की गर्मी से जलती रहेंगी और अन्त में थोड़ी सी राख के सिवाय कुछ भी शेष न रहेगा। इस विधि से कोई भी तत्व अस्वच्छ न होगा। इस विधि में अग्नि-पानी या ज़मीन की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। इसमें न ईंधन की ज़रूरत है, न क़ीमती कपड़ों की, न सुगन्धियों की, न गुलाब-जल की। देह गर्भाशय से नङ्गी ही निकलती है और अन्त में नङ्गी ही उसे प्रकृति की गोद में सौंप देना उचित है। अन्त में वह जिस मिट्टी की बनी है, उसी के रूप में परिणत हो जाती है। वह जब आती है तो उसका कोई नाम नहीं होता और मरने के बाद भी उसका नाम नहीं रहता। मिट्टी दूसरे शरीरों की मिट्टी के साथ मिल जाती है और किसी तरह का भेद नहीं रहता।

कुछ लोगों को इस विधि में यह बात बड़ी कष्ट-दायक जान पड़ती है कि शव को पक्षी खाते हैं। पर यदि यह विचार किया जाय कि शव को ज़मीन में गाड़ने से उसे कीड़े-मकोड़े खाते हैं, आग में डालने से वह जलता है और जल में उसे मछलियाँ खाती हैं, तो उपर्युक्त आक्षेप का कुछ भी महत्व नहीं रहता। इसमें एक लाभ और भी है, और वह यह कि कभी-कभी कोई व्यक्ति अचेत हो जाता है और वह ग़लती से जला दिया जाता है या गाड़ दिया जाता है। पर सूर्य-दाह की विधि में यह भय नहीं है।

अन्त में मैं यही कहना चाहता हूँ कि शव के अन्तिम संस्कार का किसी ख़ास मज़हब या धर्म-प्रचारक से कुछ सम्बन्ध नहीं है। इतिहास से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये चारों प्रथाएँ उस समय भी मौजूद थीं, जब कि किसी धर्म-प्रचारक का आविर्भाव नहीं हुआ था। इनकी शिक्षा किसी ख़ास धर्म-प्रचारक ने नहीं दी है। हर एक स्थान और देश के निवासियों ने अपनी परिस्थिति के अनुसार किसी एक विधि को अङ्गीकार कर लिया है। इसलिए इनके लाभ और हानि पर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वाभाविक बुद्धि और आन्तरिक ज्ञान से विचार करना चाहिए। पर शव के अन्तिम संस्कार की किसी भी विधि के साथ किसी मज़हब का सम्बन्ध जोड़ना ग़लती है।

❀ ❀ ❀

पति कैसा हो ?

"पति कैसा हो ?" इस विषय पर एक अमेरिकन पत्र ने अविवाहिता, विवाहिता, वृद्धा, विधवा—सभी तरह की स्त्रियों से सम्मति माँगी थी। 'चाँद' की पाठिकाओं के मनोरञ्जनार्थ कुछ सम्मतियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

मिस ई० एन० कहती हैं कि पति अत्यन्त सुन्दर, ऊँचा शरीर, सौष्ठवयुक्त, चतुर, मितभाषी, मित धूम्र-पानी, सुखी, सुविचारी और शान से रहने वाला तथा पत्नी का कहा मानने वाला होना चाहिए। मिस व्ही० एम० ने कहा कि पति श्वानवत् आज्ञाकारी, ऊँचा, सुन्दर, अपनी स्त्री के लिए परपुरुष विषयक असंशयी, अपने बूढ़े-बुज़ुर्गों का प्रेमी, मर्दाने खेलों का शौकीन, पत्नी को नाचने को न कहने वाला, तथा घरेलू कामों में निगाह न रखने वाला अर्थात् विश्वासी होना चाहिए। एक तीसरी महिला का मत है कि पति खेलाड़ू, उद्योगी, महिलाकांक्षी, सुरेख (सथर), सहानुभूति-गुण-युक्त, धूम्रपानी, अपने बड़े-बूढ़ों का प्रेमी, व बालकों तथा अन्य जनों का प्रिय होने वाला होना चाहिए। चौथी महिला के मतानुसार पति प्रेमी, कञ्जूस यानी गृहस्थी के कार्यों में अत्यन्त संयमी, ख़ुश-मिज़ाज, बहुभक्षी, सर्वभक्षी, सुख-चैन से दिन बिताने की आदत रखने वाला, मितभाषी, धूम्रपान न करने वाला, स्त्री को कष्ट न देने वाला, शक्तिमान, खेल-कूद में निपुण, आतिथ्य-सत्कार करने वाला, पत्नी की इच्छा से सारे गृहकार्य करने वाला और शक्ति का अपव्यय (दुरुपयोग) न करने वाला होना चाहिए। इसी प्रकार अन्य एक स्त्री का कहना है कि सदय, प्रेमी, असत्य व अप्रमाणित बात न कहने वाला, स्त्री के अन्तःकरण को पहिचानने व उसके मुताबिक़ चलने वाला, पत्नी का आदर करने

वाला और स्त्री को बराबरी का दर्जा देने, आदर करने, व समान-दृष्टि रखने वाला, भोक्ता, इन गुणों से युक्त ही पुरुष को पति कहना चाहिए।

❀ ❀ ❀

जापानी समाज की एक झलक

सहयोगी 'भारत' में श्री० मनोरञ्जनप्रसाद जी, बी० ए० ने एक बड़ा रोचक लेख लिखा था। यहाँ हम उसे पाठिकाओं के मनोरञ्जनार्थ दे रहे हैं :—

जापानी स्त्री अतिथि-सत्कार का मूर्त्तिमान आदर्श है। उसके घर मे कुछ नही है। वह विपत्ति में है। उसके यहाँ एक अतिथि आ जाता है। वह समझती है कि मेरे घर देवता आ गया। जहाँ तक उससे बन पड़ता है, वह उसकी सेवा के लिए तैयार हो जाती है। जापान में अतिथि-सत्कार का एक और भी अनोखा ढङ्ग है। बड़ा सत्कार और सम्मान इसमे आ जाता है कि घर की सुन्दर स्त्री अतिथि की सेवा के लिए उपस्थित रहे। घटिया आचार के विदेशी लोग इस सत्कार का कुछ और ही अर्थ समझ कर इसका दुरुपयोग करने का विचार करते हैं। जापानी स्त्रियाँ और कन्याएँ परदे का विचार तक नही ला सकती, वरन् उन्हें पुरुषों के सामने नग्न हो जाने मे भी कोई झिझक मालूम नही होती थी। अभी तक स्नान करने के तालावों में स्त्री और पुरुष इकट्ठे नहाया करते थे। इसमें उन्हें कोई दोष दिखाई नहीं पड़ता था। परन्तु अब विदेशियों के उन पर टीका-टिप्पणी करने के कारण स्नान करने के तालावों में स्त्रियों और पुरुषों के बीच परदा सा लगा दिया जाता है।

जापानी कन्याओं को मन पर क़ाबू पाना विशेष रूप से सिखाया जाता है। एक स्त्री का अपना बच्चा मर गया हो, वह भीतर बैठी फूट-फूट कर रो रही हो, ज्यों ही कोई दूसरा मनुष्य शोक प्रकट करने के लिए आएगा, वह तुरन्त चेहरा बदल कर उसके सामने आ जायगी और हँसती हुई उससे बातें करने लगेगी। मानो उसे बच्चे की मृत्यु का कुछ शोक ही नही हुआ। यही कारण है कि कोई मृत्यु हो जाने पर वहाँ की स्त्रियाँ बिल्कुल रोया-पीटा नहीं करतीं। सब चुपचाप जाते हैं और मृतक को जला कर वापस चले आते हैं। जापानी स्त्री को अपने ऊपर इतना काबू होता है कि चाहे वह अपने घर में पति के साथ कैसी ही नाराज़ क्यों न हो, दूसरे मनुष्य के आ जाने पर उसे इस नाराज़गी का कोई चिन्ह नही मिलता। वह उसे हँसती हुई तथा अपना काम करती हुई देखता है।

जापानी स्त्री का नैतिक आदर्श भी सारे संसार से बिल्कुल निराला है। वह अपने आचार की पवित्रता की बड़ी क़दर करती है। इसी प्रकार यदि उसके देश को उसकी आवश्यकता हो तो देश की सेवा में अपने आचरण को वह बेच देगी और बुरे से बुरा काम भी कर लेगी। रूस-जापान-युद्ध मे बडे उच्च घरों की असंख्य स्त्रियों ने वेश्या-वृत्ति ग्रहण कर लाखों रुपए जमा किए और देश की सेवा में अर्पण कर दिए। बहुतेरी स्त्रियों ने गुप्तचर बन कर रूसी अफ़सरों के यहाँ नौकरी कर ली, उनके साथ अच्छा-बुरा सम्बन्ध पैदा कर लिया और उनसे महत्वपूर्ण नक्शे और दूसरी सूचनाएँ प्राप्त करके अपने देश को पहुँचा दीं। इन लडकियों के लौट आने पर बड़े-बड़े माननीय पुरुषों ने उनके साथ विवाह करके उनकी सम्मान-वृद्धि की।

जापान में मुर्दा जलाने की रीति हिन्दुओं की सी है। बाद को जापानी लोग मुर्दे की भस्म लेकर समाधि सी बना देते हैं। इसी प्रकार विवाह की रीति भी हिन्दुओं की सी थी, पर उसे पाश्चात्य ढङ्ग पर बदला जा रहा है। लड़के वाले अपने कुटुम्बियों को लेकर आते थे। वेदी बनाई जाती थी। मन्त्रों से और फेरे देकर विवाह किया जाता था। अब मन्दिर में जाकर पुरोहित के सामने पाँच-दस मिनट में प्रतिज्ञा करा दी जाती है और विवाह समाप्त हो जाता है। यदि कुछ भोजनादि करना हो तो वह होटल में कर दिया जाता है। विवाह के लिए पुरोहित को पाँच-दस रुपए फ़ीस के अतिरिक्त तीन सौ रुपए व्यय के लिए नियत हैं। कोई व्यक्ति चाहे कितना ही अमीर हो या ग़रीब हो, ३००) रुपए से अधिक व्यय नहीं कर सकता। यह राशि लड़के या लड़की को पहुँचा दी जाती है, ताकि वे उससे अपने इच्छानुसार अपने लिए वस्त्र और गहने

आदि मोल ले लें। विवाह हो जाने पर कन्या अपने ससुराल में दो मास तक रहती है, ताकि वह अपने सम्बन्धियों तथा बच्चों से स्नेह करना सीख ले। इस समय में उनके लिए एक नया मकान तलाश कर लिया जाता है और इस मकान को सामान से सुसज्जित करके दो मास पश्चात् वहाँ बदल दिया जाता है। इसके बाद वे अपने घर कभी-कभी आते-जाते हैं। परन्तु सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा बिलकुल नहीं पाई जाती।

पहले-पहल जापान में सहस्रों जात-पाँत पाई जाती थीं और शादी-विवाह, हिन्दुओं की भाँति उनकी जातियों के भीतर ही हुआ करते थे। सम्राट मलेगी ने जाति-बन्धन को हटा कर समानता का नियम स्थापित कर दिया। तब से जातियाँ मिट गईं। जातियों के नाम अब केवल पारिवारिक नाम रह गए हैं। जापान की बड़ी विशेषता यह है कि वहाँ के अमीर और सभ्य मनुष्य कन्याओं के उत्पन्न होने पर बहुत ख़ुश होते हैं। धारणा यह पाई जाती है कि अमीरों के लड़के निकम्मे और बदचलन होते हैं। वे परिवार के नाम को बट्टा लगाते हैं। लड़की के लिए सबसे अच्छा और होनहार नवयुवक ढूँढ़ कर उसे दत्तक बना लिया जाता है। वह नवीन परिवार का नाम धारण कर लेता है और उसी का बेटा समझा जाता है।

दत्तक का रिवाज जापान में बहुत है। कभी-कभी लड़का होने पर भी जमाई को दत्तक बना लिया जाता है और उसे ही सब जायदाद का मालिक बना दिया जाता है। असली पुत्र पिता की इस कार्यवाही पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता, वरन् वह अपनी अयोग्यता पर लज्जित होकर इस प्रयत्न में लग जाता है कि स्वतन्त्रतापूर्वक कोई विशेष योग्यता दिखा कर अपने कुटुम्ब का नाम उज्ज्वल करे। साधारण अवस्था में सबसे बड़ा पुत्र पैतृक सम्पत्ति का स्वामी होता है और बाक़ी के भाई और बहिनें उसे ही पिता के स्थान पर मान कर उससे विद्या आदि का अधिकार रखते हैं।

जापान की लड़कियों का विवाह पचीस वर्ष की आयु तक हो जाता है। इस समय में वे न केवल विद्या पढ़ती हैं, वरन् प्रयत्न करती हैं कि कोई न कोई काम करके रुपया बचा लें, ताकि वे माता-पिता पर बोझ सिद्ध न हों। हलके-हलके सभी काम आजकल लड़कियाँ ही करती हैं। ठोस और परिश्रम के काम पुरुषों के लिए रह गए हैं। इन्हीं लड़कियों में कई अद्वितीय स्त्रियाँ जापान ने पैदा की हैं। इनमे से एक का नाम सुज़की है। इस शताब्दी के आरम्भ में सुज़की विधवा हो गई। वह युवती थी। उसके पास चार-पाँच हज़ार रुपया था। इससे उसने साबुन आदि स्त्रियों की शृङ्गार-सामग्री की दूकान खोल ली और उसे बड़ी सफलता से चलाया। दस-बारह वर्ष के पश्चात् उसने अपने नाम से एक कम्पनी स्थापित की। उसने माल मँगाने और भेजने का व्यापार आरम्भ कर दिया। वह स्त्री अभी जीती है। सुज़की-कम्पनी जापान मे सबसे बड़ी कम्पनी है। इसके दो-तीन सौ बैङ्क है। कई जहाज़ चलते हैं। कई डाक यार्ड हैं। कई खाने उसकी मिलकियत हैं। इस कम्पनी से सम्बन्ध रखने वाली तीन-चार सौ और औद्योगिक कम्पनियाँ हैं। इनमें से एक-एक की पूँजी पचास लाख के लगभग है। इसकी भिन्न-भिन्न शाखाओं में हर जगह सैकड़ों और कई जगह हज़ारों जापानी काम करते हैं। इस बात का अनुमान लगाना कठिन है कि इस कम्पनी की भिन्न-भिन्न शाखाओं में दैनिक कितनी आय है। जापान की सरकार में इसका बड़ा हाथ है। एक बार इस कम्पनी ने जापान का सारा चावल ख़रीद लिया। चावल की कीमत बहुत मँहगी हो गई। इस पर जापान मे बहुत हाहाकार मचा। सहस्रों स्त्रियाँ सुज़की के मकान के गिर्द जमा हो गईं और उसका सियापा करने लगी। परिणाम यह हुआ कि उसने शपथ खा ली कि वह जापान के अन्दर इस प्रकार का सट्टा कभी न करेगी। सात-आठ वर्ष की बात है कि उसका एक नौकर लण्डन के बैङ्क में असिस्टेण्ट मैनेजर होकर गया। उसके मैनेजर को किसी कारण से जापान आना पड़ा। उसकी अनुपस्थिति में उस जापानी नवयुवक ने ऐसी युक्ति की कि सारी दुनिया की चीनी की उपज ख़रीद ली और उसका मूल्य अपने हाथ में कर लिया। उस नवयुवक की प्रतिष्ठा इतनी फैली कि जापान के बड़े-बड़े रईसों ने उसे अपनी लड़कियाँ विवाह के लिए पेश कीं। सुज़की स्वयम् अपनी लड़की को लेकर लण्डन में गई और उस नवयुवक से विवाह करके उसे दत्तक बना लिया।

❀ ❀ ❀

कलदार रुपया कब से चला ?

यह मनोरञ्जक लेख बम्बई के सहयोगी 'विविध वृत्त' में छपा था। उसका अनुवाद हम सहयोगी 'स्वराज' से यहाँ उद्धृत करते हैं :—

रुपया शब्द की उत्पत्ति संस्कृत 'रौप्य' या हिन्दी रूपा (चाँदी) शब्द पर से हुई और मुसलमान-सल्तनत के समय से इसका चलन शुरू हुआ है। इसके पूर्व भारतीय सिक्कों के कई नाम मुद्रा, पण आदि थे।

जब भारत के राजनैतिक क्षेत्र में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का पैर जम गया, तो उसने अपनी अधिकृत भूमि पर रुपए का सिक्का चलाना चाहा। उस वक्त कम्पनी की तीन राजधानियाँ थीं। किन्तु सब जगह चलन एक सा नहीं था। सन् १७९३ में कम्पनी ने बङ्गाल में अपना 'चाँदी' का सिक्का चलाया ; और उस पर 'शाहआलमी सन् १९' छापा गया। यही सब से पहला कलदार रुपया था। कल (मैशीन) से ढाले जाने के कारण ही इसका नाम 'कलदार' हो गया और कई जगह आज भी केवल अङ्गरेज़ी रुपया ही 'कलदार' के नाम से सम्बोधित होता है। प्रारम्भ में इसकी कोई नकल न कर सके, इसलिए सिक्के पर पूरा चित्र रक्खा जाता था। एक सूत भर भी जगह ख़ाली नहीं छोड़ी जाती थी और सब सिक्के एक ही आकार के होते थे।

सन् १८०६ में कम्पनी ने देश भर में एक सा चलन जारी करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु सन् १८३४ तक वह सफल न हो सकी। इसी वर्ष गवर्नर-जनरल के पास मञ्ज़ूरी के लिए रुपए का एक नमूना भेजा गया। उसके एक तरफ़ William IV and the Legend Gulliemus IIII D G Britt, Ind Res. छपा हुआ था, और उसके आस पास लहरियादार रेखा बनी हुई थी। पीछे की ओर बीच में One Rupee खुदा हुआ था और ऊपर कमल का फूल तथा नीचे सन् १८३४ के अङ्गरेज़ी अङ्क थे। इसके आस-पास The East India Company और गोल आकार में माला सी बनी रहती थी, साथ ही 'एक रुपया' के अर्थ-सूचक उर्दू, नागरी और बँगला शब्द भी लिखे रहते थे। सन् १८३५ में दूसरा एक नमूना गवर्नर साहब ने मञ्ज़ूर किया। इसमें एक ओर सिर्फ़ चतुर्थ विलियम का चेहरा था, और दूसरी तरफ़ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' तथा 'एक रुपया' के अर्थ-सूचक अङ्गरेज़ी उर्दू, नागरी और बँगला शब्द थे। इसमें कमल का फूल और माला भी कायम रक्खी गई थी। किन्तु इस बार टकसाल को हुक्म दिया गया कि रुपए की कीमत सिर्फ़ अङ्गरेज़ी और उर्दू अक्षरों में ही रक्खी जाय ; नागरी और बँगला शब्द हटा दिए जाएँ। साथ ही ऊपर चतुर्थ विलियम का चेहरा बना कर उसके आस-पास Sovereign William IV लिखा जाय। King शब्द निकाल दिया जाय। किन्तु सारे इलाके के लिए एक-सा सिक्का चलाने का निश्चय हो जाने पर King शब्द क़ायम रक्खा गया और जिन नमूनों में यह शब्द नहीं था, वे नापसन्द कर दिए गए। इस तरह कम्पनी का सिक्का शुरू हुआ। सन् १८३५ के नए कानून के अनुसार पुराना 'सिक्का रुपया' रद्द करके नया रुपया क़ानूनी चलन के रूप में अमल में लाया गया। इसको लोग 'कम्पनी-रुपया' कहते थे और इसका वज़न १८० ग्रेन (Troy) था।

सन् १८४० में रुपए के सिक्के में फिर कुछ रद्दोबदल हुई। इसमें एक तरफ़ विक्टोरिया रानी का चेहरा और Queen शब्द रक्खा गया और दूसरी ओर सिक्के की कीमत अङ्गरेज़ी और फ़ारसी में बीचोंबीच एक माला के साथ और आस-पास East India Company 1840 लिखा रहता था। सन् १८३५ या १८४० के सिक्कों पर विलियम चतुर्थ अथवा विक्टोरिया के सिर पर मुकुट नहीं था। किन्तु सन् १८५८ में हिन्दुस्तान का कारोबार विक्टोरिया रानी के हाथ में चले जाने की बात लॉर्ड केनिङ्ग ने प्रकट की ; और इसीलिए सन् १८६२ में फिर रद्दोबदल करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बदले सिर्फ़ India शब्द रक्खा गया और रानी के सिर पर मुकुट बनाया गया। इस रुपए का नाम सरकारी रुपया रक्खा गया। सन् १८७६ में विक्टोरिया रानी के भारत की सम्राज्ञी बन जाने पर रुपए में 'क्वीन' के बदले Empress शब्द हो गया। यह सिक्का महारानी विक्टोरिया की मृत्यु सन् १९०१ तक ज्यों का त्यों क़ायम रहा।

सन् १९०२ में टकसाल में कोई सिक्का न ढाल कर सन् १९०३ में एडवर्ड बादशाह के नाम का सिक्का

आवश्यक फेर-फार के साथ प्रचलित किया गया। इसमें भी सप्तम् एडवर्ड के सिर पर मुकुट नहीं था। यह सिक्का सन् १९१० (यानी सप्तम् एडवर्ड की मृत्यु) तक बिना मुकुट के ही प्रचलित रहा। इसी वर्ष मुकुट-सहित सप्तम् एडवर्ड का सिक्का ढाला जाने को था, और उसका साँचा भी तैयार हो गया था, किन्तु उसी वर्ष उनकी मृत्यु हो जाने से वह साँचा आज भी कलकत्ते की टकसाल में ज्यों का त्यों पड़ा हुआ है।

सन् १९११ के नवम्बर-दिसम्बर के महीनों में सम्राट पञ्चम् जॉर्ज के चेहरे वाला रुपया और अन्य छोटे सिक्के ढाल कर सब ख़ज़ानों में पहुँचा दिए गए। इसका उद्देश्य यह था कि १२ दिसम्बर को सम्राट के राज्यारोहण के अवसर पर उनके नाम का सिक्का लोगों के हाथ में पहुँच सके। किन्तु कुछ दिनों बाद रुपए पर बने हुए हाथी की अस्पष्टता के लिए झगड़ा हुआ। अतः सन् १९१२ में उसे ठीक करके फिर नया सिक्का ढाला गया। इसमें हाथी का आकार स्पष्ट और उभरा हुआ था।

सम्राट जॉर्ज का रुपया १९२३-२४ तक ढलता रहा और उस वक्त तक उनके सिक्के २,१०,००० निकल चुके थे। सन् १८३५ में जब पहिली बार कलदार रुपया जारी हुआ तब उसका वज़न १८० ग्रेन था। उसमें १६५ ग्रेन चाँदी होती थी। सन् १८७३ तक रुपए की कीमत सोने के सिक्के में दो शिलिङ्ग थी और पौण्ड का मूल्य था १०) रुपया। इसके बाद चाँदी का भाव घट कर रुपए की कीमत कम होते-होते जब एक शिलिङ्ग तक आ गई, तब इसकी रोक के लिए सन् १८९३ में टकसाल बन्द कर देने का निश्चय हुआ और सन् १८९९ में कानून द्वारा एक पौण्ड की कीमत १५) रु० निश्चित कर दी गई। किन्तु अभी कुछ समय पहले हिल्टन यङ्ग कमिटी ने रुपए की कीमत १ शिलिङ्ग ६ पेन्स निश्चित करके कैसी गड़बड़ पैदा कर दी है, वह सबको विदित है। इस तरह कलदार रुपए का लगातार कायापलट होता रहा।

पति—(धर्मपत्नी से) गर्मी के मौसम में खटमलों का तो तुमने ऐसा सफ़ाया किया था जैसे तीतर दीमक का कर देता है। परन्तु अब मेरे कपड़ों में भी जुएँ पड़ गई हैं, उनकी भी उसी तरह सफ़ाई कर दो।

धर्मपत्नी—अच्छा! कल दिन को याद दिलाना, पानी खौला कर तुम्हारे ऊपर डाल दूँगी।

सरदार साहब—तुमसे जो घड़ी पेश्तर ख़रीदी थी, वह हमेशा तेज़ जाती है।

घड़ीवाला—अपनी तमाम घड़ियों से हुज़ूर मुकाबला फ़रमा लें, अगर सब से अव्वल चलने में न रहे तो दाम वापस।

एक भिखारी ने किसी धनी से कहा कि रात को मुझे स्वप्न में आपके पिता जी ने आज्ञा दी है कि जाओ, मेरे योग्य पुत्र से सौ रुपए ले लो। यह सुन कर वह धनी बोला—अच्छा, आप कल पधारें, मैं रात को पिता जी से पूछ लूँगा।

थानेदार—(डॉक्टर-मित्र से) भाई! तुम्हारे पास यदि कोई आए तो कुछ ख़ातिर तो किया करो।

डॉक्टर—लीजिए, अभी लीजिए। डॉक्टर साहब ने कम्पाउण्डर साहब को बुला कर कहा—भाई! ज़रा वह बुख़ार वाली दवा तो लेते आना, इन्स्पेक्टर साहब को दे दूँ।

थानेदार—भाई! इतनी ख़ातिर ही बहुत है।

डॉक्टर—यहाँ तो यही है। और आपकी ख़ातिर क्या करूँ?

एक दिन डॉक्टर साहब थानेदार साहब के थाने पर गए। थानेदार साहब बोले—ओहो! डॉक्टर साहब, आइए। चलिए न (एक सिपाही को डॉक्टर के हवालात में रखने का इशारा करके)!

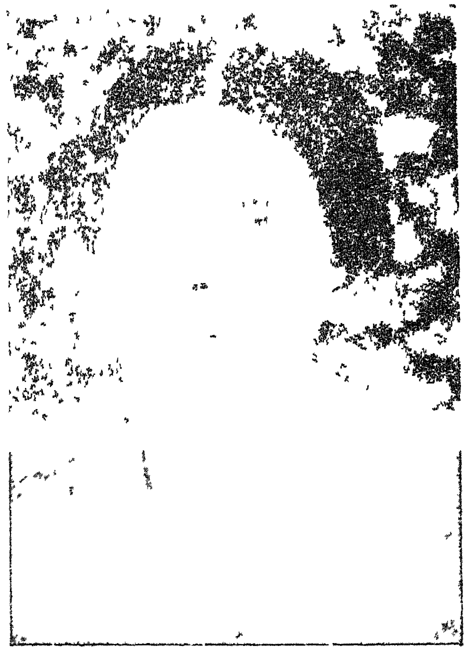
डॉक्टर—क्या मैं चोर हूँ?

थानेदार—फिर मैं आपकी और क्या ख़ातिर करूँ? यहाँ तो यही है।

डॉक्टर साहब यह सुन कर चुप हो गए।



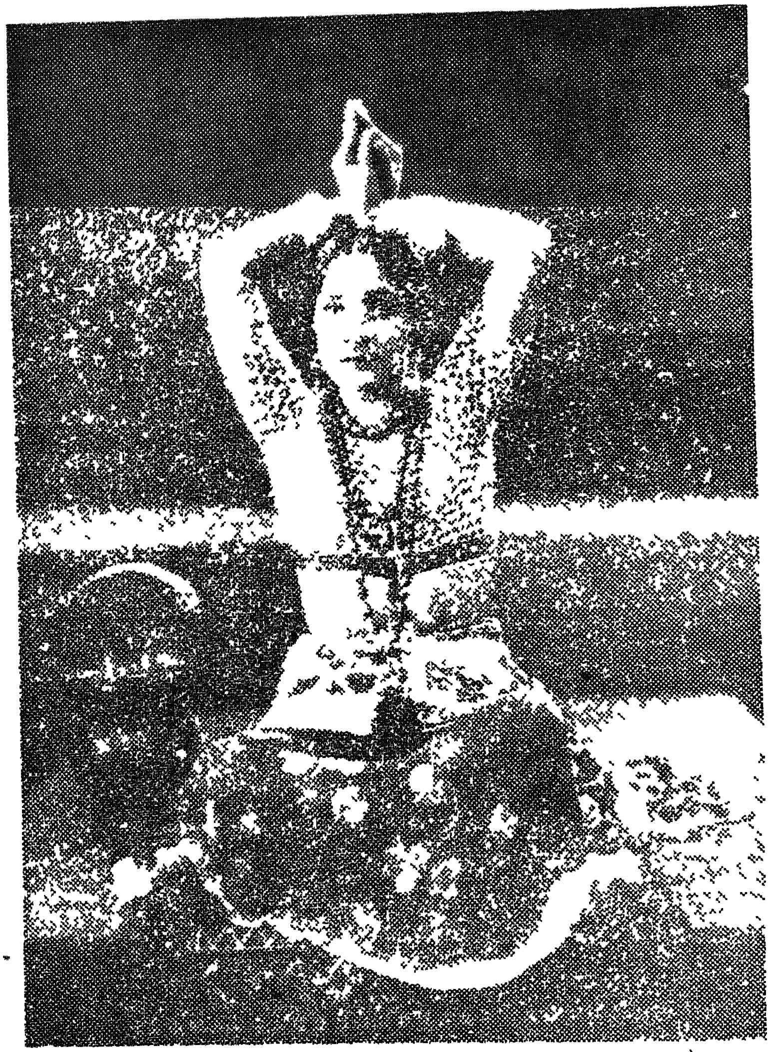
श्रीमती एन० शिवराज, जो मद्रास की अवैतनिक प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।



श्रीमती अन्नपूर्णा बाई भण्डारकर, जो पश्चिमी खानदेश के ज़िला स्कूल-बोर्ड की अध्यक्षा निर्वाचित हुई हैं।



डॉ० परमानन्द बाहुल, जो हाल ही में प्राग (ज़ेकोस्लेवेकिया) यूनीवर्सिटी से पी-एच० डी० की डिग्री लेकर आए हैं। आप मोटर साइकिल पर सारे यूरोप का भ्रमण कर चुके हैं, प्रस्तुत चित्र में प्रागनिवासी आपको यात्रा प्रारम्भ करते समय विदाई दे रहे हैं।

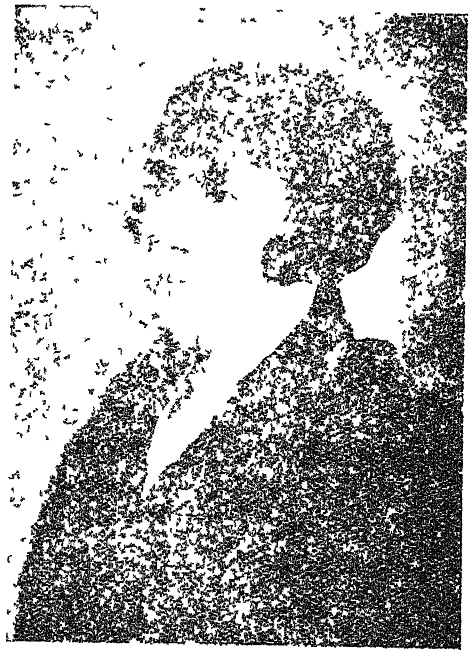


रञ्जीत फ़िल्म कम्पनी की सुप्रसिद्ध सिनेमा-स्टार

मिस शान्ता



'कर्मवीर'-सम्पादक पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी की भगिनी, श्रीमती कस्तूरीबाई, जो खण्डवा की 'डिक्टेटर' होने के कारण आजकल जेल में हैं।



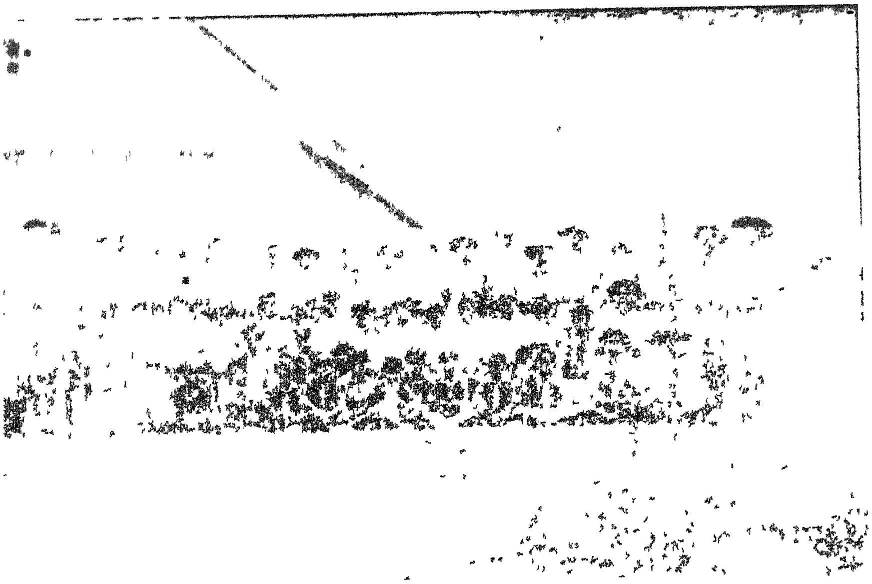
श्रीमती याकूब हसन। आप अपनी जाति की सर्व-प्रथम महिला हैं, जो मदरास नगर की अवैतनिक प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।



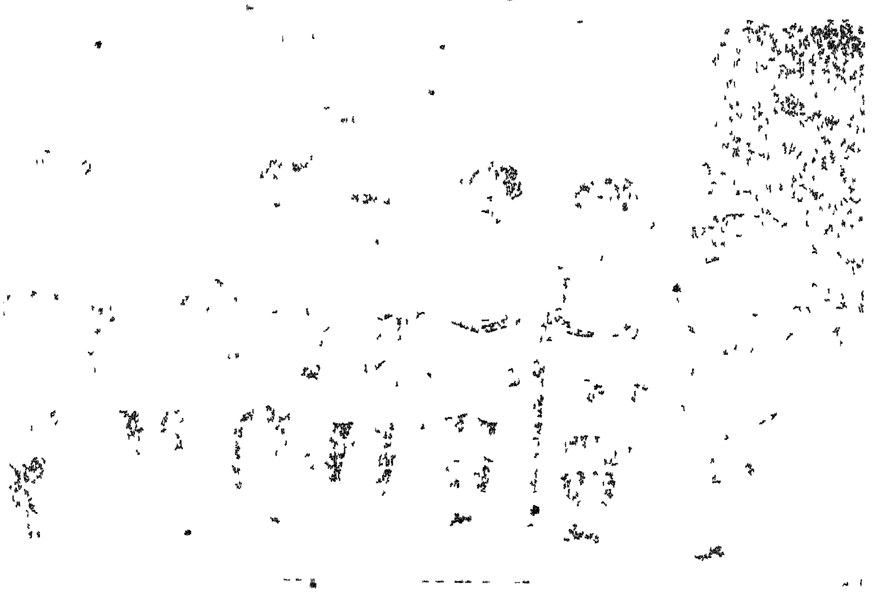
एक विचित्र चूहा

यह चूहा कुछ समय पूर्व पेंडे (ब्रह्मा) के जेल में पकड़ा गया था। इसके नीचे के दो दाँत इतने बढ़ गए हैं कि सींग मालूम होते हैं।

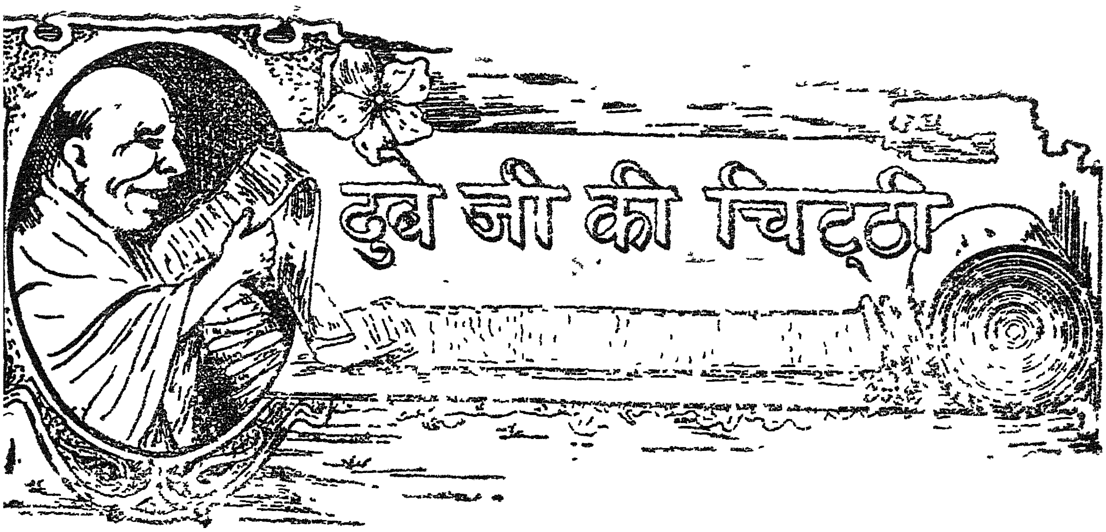
फ़ीजी के भारतीय स्काउट



फ़ीजी की आर्य-ट्रूप्स के कुछ स्काउट तथा कब्स



फ़ीजी की आर्य-ट्रूप्स के कुछ स्काउट-मास्टर



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने हिन्दी को हिन्दुस्थानी बनाने पर कमर बाँधी है, यह जान कर अपने राम को अत्यन्त हर्ष तथा आनन्द होता भया। और इस काम में त्रिपाठी जी को उसी प्रकार सफलता मिलनी चाहिए, जिस भाँति ग्राम्य गीतों का प्रचार करने में उन्हें सफलता मिली है। ग्राम्य गीतों का प्रचार तो अब शहरों तक में हो गया है। शहरों की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ जब हार-मोनियम लेकर गाने बैठती हैं, तो ग्राम्य गीत ही गाती हैं—उनके सामने उन्हें और कोई गीत अच्छे ही नहीं लगते। वाक़ई ग्राम्य गीतों में जो कोमलता, जो माधुर्य है और जैसे-जैसे ऊँचे भाव उनमें बेभाव परिमाण में मुँह छिपाए बैठे हैं, वैसे अन्य गीतों में चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिल सकते।

अब त्रिपाठी जी ने हिन्दी को हिन्दुस्थानी बनाने का जो मौलिक प्रयत्न आरम्भ किया है, वह भी सफलता की चोटी पर उसी प्रकार चढ़ जायगा, जैसे शिमला पहाड़ पर रेल चढ़ती है। अभी तक अपने राम का यह ख़याल था कि अपने राम जैसी सूझ और किसी प्राणी में है ही नहीं, परन्तु त्रिपाठी जी ने अपने राम की यह धारणा ग़लत सिद्ध कर दी। अपने राम को भी यह जान कर परम सन्तोष हुआ कि अपने राम का दुसरिहा भी कोई है। अपने राम का पहला सिद्धान्त यह है कि "जहाँ देखो तवा परात, वहाँ बिताओ सारी रात।" दूसरा सिद्धान्त अपने राम का यह है कि "दमड़ी की खुटियों के लिए मसजिद ढा देना चाहिए।" सो ऐसा ही कुछ सिद्धान्त त्रिपाठी जी का भी मालूम पड़ता है। इसलिए अपने राम को झख मार कर उन्हें प्यार-भरी दृष्टि से देखना ही पड़ता है।

त्रिपाठी जी के इस कठिन कार्य में अपने राम भी कुछ सहायता करना चाहते हैं; क्योंकि बिना अपने राम की सहायता के त्रिपाठी जी हिन्दी की हुलिया भली-भाँति न बदल सकेंगे।

पहली सलाह तो हम त्रिपाठी जी को यह देंगे कि ख़ैरात घर से शुरू होती है। जब कोई बड़ा काम करना हो—विशेषतः ऐसा काम, जिसका लोग विरोध करते हों—तो उसे अपने ही घर से आरम्भ करना चाहिए। चेचक के टीके के आविष्कारक डॉ० जेनर ने जब टीके का आविष्कार किया तो उसका इतना बड़ा विरोध हुआ कि उन्हें अपने आविष्कार की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए किसी ने अपना बच्चा न दिया। तब डॉ० जेनर ने अपने ही बच्चों के टीका लगा कर उसकी उपयोगिता सिद्ध की। इसी प्रकार त्रिपाठी जी को भी करना चाहिए। पहली बात जो उन्हें करना चाहिए वह यह है कि अपने ठेठ हिन्दी नाम को हिन्दुस्थानी बना देना चाहिए। मुसलमान भाई रामपरशाद, रामलाल, राम-सिंह नाम तो भली-भाँति समझ लेते हैं और याद रख सकते हैं, परन्तु "रामनरेश", यह नाम उनकी समझ में ख़ाक भी नहीं आता और जब तक उन्हें घण्टे-दो

घण्टे यह नाम रटाया न जाय, तब तक वह इसे याद तो रख ही नहीं सकते। अतएव इसको हिन्दुस्थानी बनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए अपने राम की सलाह तो यह है कि त्रिपाठी जी अपना नाम "रामशाह सहपाठी" रख लें। रामशाह (नरेश) सह (त्रि) पाठी। मुसलमान भाई नरेश की जगह शाह और 'त्रि' के स्थान पर 'सह' भली-भाँति समझ लेंगे। रामशाह सहपाठी ! कितना अच्छा नाम है। परन्तु ज़रा ठहरिए ! 'सहपाठी' शब्द कुछ गड़बड़ पैदा करता है। इस कम्बख़्त की सुन्नत हो जाने पर भी यह ठेठ हिन्दू दिखाई पड़ता है, हिन्दुस्थानी नहीं। इसलिए 'त्रि' के बजाय 'पाठी' को बदलना चाहिए। उर्दू में पाठ को मुताला कहते हैं, इसलिए इसका रूप "त्रिमुतालई" कर देना चाहिए। अब ठीक हो गया। "रामशाह त्रिमुतालई !" कितना प्यारा नाम है ! अब अपने राम मुसलमानों को चैलेञ्ज देते हैं कि वह इसको न समझने की कोशिश करें। साथ ही अब त्रिमुतालई जी का विरोध करने वालों के भी ताज़िए ठण्ढे समझिए। जब त्रिपाठी जी स्वयं हिन्दू से हिन्दुस्थानी बन गए, तो फिर रह क्या गया। अब उनकी ओर कोई उँगली नहीं उठा सकता।

अब तो त्रिपाठी जी को विश्वास हो जाना चाहिए कि अपने राम की सूझ-बूझ भी उनसे कुछ कम नहीं है। वह तो कहिए यह यश त्रिपाठी जी के भाग्य में ही बदा था, अन्यथा अपने राम भी हिन्दी से ऊब उठे थे और "भारतवर्षानी" नाम की एक भाषा का प्रचार करने वाले थे। भारतवर्षानी भाषा के प्रचार करने का अपना लक्ष्य भी बड़ा पवित्र था। पहला कारण तो यह था कि हिन्दी में जो कुछ क़द्र होनी थी वह हो चुकी, परन्तु अपने राम का अभी पेट नहीं भरा। अतएव अब कोई नया स्वाँग लाना चाहिए, जिससे लोगों का ध्यान अपने राम की ओर आकर्षित हो। पत्रों में अपने राम का नाम निकले—कुछ टीका-टिप्पणी हो और इस प्रकार अपने राम का नाम कोकशास्त्र के विज्ञापन की भाँति लोगों के सम्मुख आता रहे। दूसरे इस सम्बन्ध की पुस्तकें निकाल कर कुछ नक़्दनारायण पैदा करने का डौल हो जाय। सम्भव है, एक नई भाषा का प्रचार करने के उपलक्ष में नोबेल प्राइज़ या हारे दर्जे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का ही पुरस्कार मिल जाए। यदि कोई 'भारतवर्षानी एकेडेमी' होती, तब तो अपने राम की पाँचों घी में, सिर कढ़ाई में और टाँगें चूल्हे में होतीं। उसे झख मार कर अपने राम की पुस्तकें प्रकाशित करनी पड़तीं। परन्तु आजकल अपने राम का भाग्य कुछ पिलपिलाया हुआ है, इस कारण इतनी कसर रह गई। तीसरा लाभ, जो सब से उत्तम है, यह होता कि अपने राम 'भारतवर्षानी' भाषा के आविष्कारक तथा प्रचारक होने के कारण चौरासी की योनि से मुक्ति पाकर अमर हो जाते। परन्तु यह सब अपने भाग्य में नहीं था।
"सकल पदारथ हैं जग माँहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं।"
सो अपने राम तो कर्महीन ठहरे। परन्तु साथ ही इस बात की प्रसन्नता है कि यह कार्य किसी ने उठाया तो। और जिसने उठाया है वह ऐसा व्यक्ति है कि लोग लाख बका करें, परन्तु वह किसी की नहीं मानेगा, अपना काम किए जायगा। धुन का पक्का है। और सच बात तो यह है कि ऐसे ही आदमी कुछ कर भी सकते हैं। अपना काम करते रहना चाहिए—चुप न बैठना चाहिए, चाहे तुक मिले या न मिले। तुक न मिलेगी तो न सही, बोझों तो मरेगा। हालाँकि बेसुरी है, मगर चीख़ती तो है। मतलब तो एक बार गुल-गपाड़ा मचा देने से है। हिन्दी रहे या हिन्दुस्थानी आवे—हमारी बला से, परन्तु थोड़े दिनों चहल-पहल तो रहेगी। हिन्दुस्थानी भाषा की आवश्यकता फ़िलहाल इसलिए और भी अधिक बढ़ गई है कि बेचारी हिन्दी में तो केवल तीन सौ ही शब्द हैं और इनमें भी दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है। यदि यही दशा रही तो एक दिन वह आवेगा, जब बच्चों का नामकरण करने के लिए हिन्दी नाम ढूँढ़े न मिलेंगे। इस समय भी नाम ढूँढ़ने में ज़रा दिक़्क़त ही पड़ती है। राम के साथ, दयाल, लाल, आधीन, प्रसाद, अवतार, सिंह, नाथ, नारायण, चरण, शरण इत्यादि की तालिका जब समाप्त हो चुकी, तब मजबूरी से लोगों ने राम का गँठ-जोड़ा, समुझ, आसरे, आज्ञा, अवध, आयोध्या, खिलावन, हरख, नरेश, सुरेश, महेश इत्यादि से मिला कर किसी न किसी प्रकार काम चलाया। अब यह युक्ति भी हिन्दी-कोष के बाहर पैर पसार रही है, तब क्या होगा ? तब फिर यही हो सकता है कि हिन्दी को नमस्कार करके हिन्दुस्थानी की शरण ली जाय और रामाधीन की जगह 'राममातहत', राम-

दयाल की जगह 'राममेहरबान', रामसिंह के बजाय 'रामशेर', रामचरण की जगह 'रामक़दम', रामनाथ के स्थान पर 'रामआक़ा', रामप्रसाद के बजाय 'रामतबर्रुक' इत्यादि-इत्यादि नाम आनन्दपूर्वक रक्खे जावें । इस प्रकार हिन्दी के तीन सौ शब्दों में उर्दू, बँगला, गुजराती, मराठी, पञ्जाबी, पश्तो, तामिल, तेलेगू इत्यादि भाषाओं के शब्द मिला कर इनकी संख्या बरसाती कीड़ों की तरह बढ़ा देनी चाहिए। उस समय हिन्दुस्थानी की समानता संसार की कोई भाषा न कर सकेगी। और क़ायदे से करना भी न चाहिए। हिन्दुस्थानी की समानता करना मज़ाक़ भी नहीं है—बड़ा कठिन कार्य है। इस कार्य को प्रत्येक व्यक्ति कर भी तो नहीं सकता। अपने राम ने अलबत्ता हिन्दुस्थानी की समानता करने वाली भाषा का आविष्कार किया था। और इसीका नाम अपने राम भारतवर्षानी भाषा रखने वाले थे। एकाध नमूना पेश करता हूँ। ज़रा गौर से देखिएगा—"यदि तोमार तबीयत चङ्गी आहे तो तमे खड़बड खड़खड़ जोइए।"

यदि (हिन्दी) तोमार (बँगला) तबीयत (उर्दू) चङ्गी (पञ्जाबी) आहे (मराठी) तो (हिन्दी) तमे (गुजराती) खड़बड़ (तामिल) खड़खड (तेलेगू) जोइए (गुजराती)। इसका अर्थ यह हुआ—"यदि तुम्हारी तबीयत ठीक है तो तुम्हें स्कूल जाना चाहिए।"

तामिल तथा तेलेगू के शब्द कुछ आवश्यकता से अधिक पच गए हैं, इसलिए पहचाने नहीं जाते। ख़ैर आयन्दा ख्याल रक्खूँगा कि अधिक न पचने पावे। अब इस वाक्य को देखिए, पूरा हिन्दुस्थानी वाक्य है; क्योंकि इसमें हिन्दुस्थान की प्रायः सब भाषाओं के शब्द मौजूद हैं। अपने राम की यह सलाह है और यह सलाह अत्यन्त नेक है कि हिन्दुस्थानी भाषा ऐसी ही भाषा होनी चाहिए। अन्यथा वह हिन्दुस्थानी भाषा कहलाने की अधिकारिणी न रहेगी। हिन्दुस्थान मे जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, जब तक उन सबका समावेश हिन्दुस्थानी भाषा में न रहेगा, तब तक हिन्दुस्थानी भाषा नहीं बन सकेगी। ऐसा अपने राम का विचार है, आगे जो कुछ ईश्वर की इच्छा होगी वह तो होगा ही।

हाँ, एक बात और है, और वह यह कि हिन्दुस्थानी भाषा में किस भाषा के कितने शब्द रहने चाहिएँ, इसका निर्णय कैसे होगा? इसके निर्णय की बड़ी सरल युक्ति यह है कि प्रत्येक भाषा बोलने वाली जाति की जन-संख्या के अनुसार उतने ही शब्द रक्खे जाने चाहिएँ। यदि इसमें कुछ झगड़ा उठे तो इसका निर्णय करने के पहले एक कमीशन नियुक्त किया जाय, जो इस बात की जाँच करे कि कितने व्यक्ति कौन सी भाषा बोलते हैं। इस कमीशन की रिपोर्ट तथा सिफ़ारिशों के अनुसार हिन्दुस्थानी भाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को स्थान दिया जाय। बस फिर कुछ झगड़ा नहीं रहेगा।

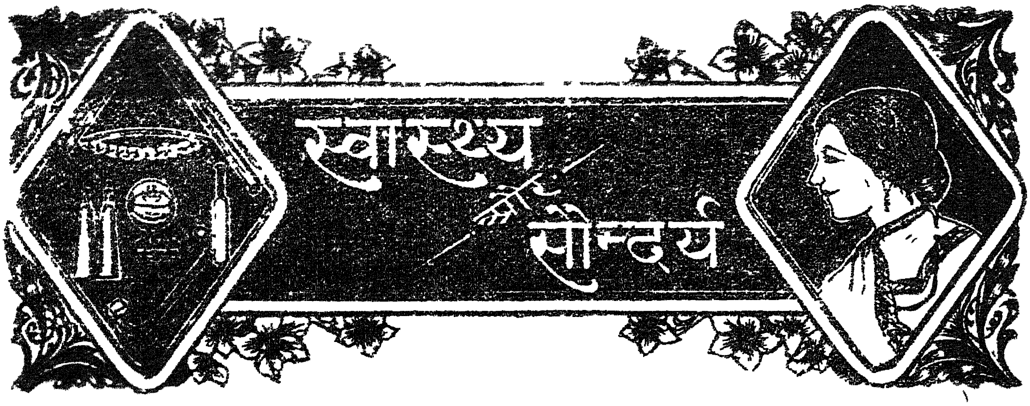
सम्पादक जी, हिन्दुस्थानी भाषा बन जाने से सब प्रान्त के लोगों को आराम रहेगा। किसी भी प्रान्त का आदमी कहीं चला जाय, उसे प्रत्येक वाक्य में अपनी भाषा के दो-चार शब्द सुनाई ही पड़ेंगे। बस इन्हीं शब्दों से वह प्रसङ्गानुसार वाक्य के अर्थ समझ लेगा।

क्यों, है न ठीक? यदि त्रिपाठी जी इस कार्य को ज़ोरों के साथ उठावें तो अपने राम भी उनकी सहायता करने को प्रस्तुत हैं। पहली सहायता तो यह करेंगे कि जो कमीशन नियुक्त होगा, अपने राम उसके चेयरमेन बनने का घोर कष्ट उठावेंगे। चेयरमेन के ऊपर सब से अधिक ज़िम्मेवारी रहती है, इसलिए चेयरमेन बनना ही सब से बड़ी सहायता है। दूसरी सहायता यह करेंगे कि यदि त्रिपाठी जी हिन्दुस्थानी भाषा का कोई कोष तैयार कर डालें तो अपने राम उसे अपने नाम से छपा डालेंगे, बशर्ते कि कोई प्रकाशक अपने राम को पुरस्कार देकर उसे प्रकाशित करना स्वीकार कर लेगा। यदि पुरस्कार देकर छापना स्वीकार नहीं करेगा, तो फिर कोष की आवश्यकता ही न रहेगी, इसलिए वह छपाया भी न जायगा।

अपने राम की त्रिपाठी जी से यही प्रार्थना है कि इस शुभ कार्य को जितना जल्दी आरम्भ कर सकें कर डालें; क्योंकि यह कार्य इस जन्म में नहीं हो सकेगा, इसके लिए अनेक जन्म धारण करने की आवश्यकता पड़ेगी। हालाँकि अपने राम अपना कार्य इसी जन्म में कर डालेंगे, अगले जन्म के लिए कुछ नहीं उठा रक्खेंगे। क्योंकि अपने राम का अगला जन्म होगा भी या नहीं, इसमें अपने राम को रोज़ सन्देह रहता है।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)



स्त्रियों के बाल और उनकी रक्षा के कुछ उपाय

बाल कटाना

प्रत्येक बाल की जड़ में रगें और नसें होती हैं, जो बाल का पोषण करती हैं। यद्यपि बालों के अन्दर रुधिर नहीं होता, किन्तु रुधिर का एक रङ्गविहीन भाग, जिसे प्लाज़्मा (Plasma) कहते हैं, उनके पालन-पोषण का भार लेता है। यदि बाल को काटा जाय और अत्यन्त ही सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा कटे हुए भाग को देखा जाय, तो उसमें से श्वेत वर्ण का पानी सा निकलता हुआ दिखाई देगा। कुछ लोगों का अनुमान है कि कटवाने से बाल कमज़ोर हो जाते हैं। इसके समर्थन में वे कहते हैं कि बाल अधिक कटवाने के कारण ही पुरुष खल्वाट हो जाते हैं। यदि पुरुष १०० में ८० खल्वाट मिलेंगे, तो स्त्रियाँ कठिनाई से १० मिलेंगी। कारण यह है कि पुरुष अपने बाल कटवाते रहते हैं, अतः वे निर्बल होकर गिर पड़ते हैं। इसके विपरीत स्त्रियाँ अपने बाल कटवाती नहीं, बल्कि उनकी सफ़ाई का अधिक ध्यान रखती हैं और लगभग प्रति-दिन कङ्घी करती रहती हैं; अतः वे खल्वाट नहीं होतीं। यही बात सिक्खों के बालों के लिए भी कही जा सकती है।

स्याम देश की स्त्रियाँ बाल कटवाना पसन्द करती हैं। उनके शिर पर कभी आध इञ्च से अधिक लम्बे बाल नहीं देखे जाते। अफ़ग़ानी स्त्रियों के बाल पीछे से भारतीय महिलाओं की भाँति गुँथे हुए रहते हैं, किन्तु आगे के जुल्फ़ों के बाल काट कर एक झालर की शक्ल में मत्थे पर फैला दिए जाते हैं। बाल कटाने का यह प्रयोग समय-समय पर होता रहता है कि बाल अधिक लम्बे न हो जायँ; किन्तु भारतीय महिलाओं में बाल कटवाने का रिवाज नहीं है। कहीं-कहीं विधवाएँ तथा तीर्थयात्रा करने वाली बूढ़ियाँ तो अवश्य कटवा डालती हैं। पाश्चात्य महिलाओं में बाल कटवाने का रिवाज़ चल पड़ा है। वे इसे फ़ैशन समझने लगी हैं। उन्हीं की देखा-देखी कुछ भारतीय शौकीन ईसाई महिलाएँ भी बाल कटवाने लगी हैं, किन्तु भारतीय दृष्टि से इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता।

व्यायाम

सदा स्मरण रखना चाहिए कि शरीर का कोई भी अङ्ग व्यायाम के बिना पुष्ट एवं सुन्दर नहीं रह सकता। बालों का व्यायाम ब्रश या कङ्घी करना है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में स्त्रियाँ बालों की लटें हाथ से मला करती थीं। यह भी एक प्रकार का व्यायाम ही है। बालों में उँगलियाँ डाल कर फेरना भी अच्छा व्यायाम है। इससे बिजली उत्पन्न होती है। शिर धोना और बाल मलना भी बालों के लिए एक प्रकार का व्यायाम है।

साधारण उपचार

जिन स्त्रियों को अपनी आकृति एवं सौन्दर्य की प्रतिष्ठा अभीष्ट हो, उन्हें सदा बाल बने और चमकदार रखने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। अच्छी वेसलीन या क्रीम लगा कर सँवारने से बालों में एक विचित्र

चमक आ जाती है। धनी-मानी महिलाएँ इसका प्रयोग बेखटके कर सकती हैं। यह विचार भ्रममूलक है कि इसमें चरबी पड़ती है। शुद्ध वेसलीन मे कोई चीज़ अशुद्ध नहीं होती। थोड़े और भद्दे बाल वास्तविक सौन्दर्य को दबा देते हैं। यदि एक बार किसी कारण-वश बाल गिर जायँ, तो यह कमी बहुत दिनों में कठिनता से पूरी होती है। स्त्रियों के बाल प्रायः असावधानी से ही गिरते हैं। किन्तु मस्तिष्क की निर्बलता, त्वचा की ख़राबी, मस्तिष्क से अधिक काम लेना, शोक, सन्ताप, मानसिक दुःख, क्रोध, चिन्ता आदि-आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे बाल शीघ्र सफ़ेद और निर्बल हो जाते हैं, पटियों और पलेटों में अधिक बल डालने और उन्हें ख़ूब कस कर बाँधने से बालों की जड़ें निर्बल पड़ जाती हैं। कम और छिदरे बालों के लिए नीचे लिखा प्रयोग उत्तम है—पहिले शिर धोकर किसी मोटे और खुरदरे तौलिए से ख़ूब रगड़ो कि शिर कड़ा उठे। पश्चात् बाल बढ़ाने वाले किसी तैल-विशेष को मल कर लगा दो। कुछ दिन ऐसा करने से बहुत-कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। कोका पण्डित का मत है कि मीठे तैल में मक्खियों की बीट और हाथी-दाँत का बुरादा मिला कर पकावे और छान कर रख ले। रात्रि में लगा कर प्रातः शिर धो डाले। इस प्रकार एक मास के भीतर केश दूने लम्बे हो जायँगे। यथाशक्ति बालों को उलझने न दिया जाय, नहीं तो सुलझाने में कुछ बाल अवश्य ही टूटेंगे। बाल पकड़ने वाली कङ्घियों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। बालों को खोल कर घण्टे-दो घण्टे बिखरे रहने दो, ताकि उनमें अच्छी तरह हवा लग सके। बालों की रक्षा के लिए यह भी आवश्यक है कि उनमें ख़राब तैल न लगाए जायँ।

रोग

यदि शिर में कोई रोग हो तो उसका उपचार शीघ्र किसी अच्छे वैद्य अथवा डॉक्टर से कराना चाहिए।

साधारण शिर के रोगों में सेहुँआ एक रोग है। यह प्रायः निर्बलता के कारण हो जाता है। किसी भयङ्कर रोग अथवा ज्वरादि के पश्चात् भी हो जाता है। इसका उपाय यही है कि सर्व-प्रथम अपने स्वास्थ्य को पूर्ण रूप से ठीक किया जाय। पुष्टिकारक पदार्थों और औषधियों का सेवन किया जाय। कॉडलिवर ऑयल (Codliver Oil) का सेवन ऐसी दशा में विशेष गुण करता है। बादाम एवं आमले का तैल लगाना भी हितकर है।

किन्हीं-किन्हीं स्त्रियों के शिर में फ़ेयास बहुत पड़ती है। उन्हें शिर सदा शीघ्र-शीघ्र मलते रहना चाहिए। साथ ही अभक्ष्य एवं सड़े-गले पदार्थों का भोजन कदापि न करना चाहिए। शिर पर ऐसी वस्तु नहीं पहनना चाहिए, जिससे अधिक उष्णता उत्पन्न होकर फ़ेयास पड़ जाय। बनावटी बाल पहने रहना हानिकर है। रात्रि में नित्य शिर पर अँगुलियों से मालिश करके अच्छी तरह कङ्घी कर डाली जाय तो फ़ेयास निकल जाती है, और बाल नरम एवं चमकीले होकर शीघ्र पकने नहीं पाते; क्योंकि जब बाल और शिर की त्वचा स्वस्थ रहेगी, तो बालों का रङ्ग-रूप भी स्थिर रह सकेगा। फ़ेयास दूर करने का एक सरल उपाय बथुआ को पानी मे पका कर उससे शिर धोना है।

गञ्जापन भी एक रोग है। इसमें प्रायः सारे बाल धीरे-धीरे गिर जाते हैं। स्त्रियों के लिए तो यह बड़ी ही आपत्ति का विषय है; क्योंकि उनकी सारी सुन्दरता एवं लावण्यता पर पानी फिर जाता है। वृद्धावस्था में उत्पन्न हुआ तथा पैतृक गञ्जापन असाध्य कहा जाता है, किन्तु प्रारम्भिक दशाओं में उपाय हो सकता है। एक फ़्रेञ्च महिला की राय है कि उस स्थान पर इर्द-गिर्द के कुल बाल मुँडवा डाले जायँ और किसी नरम ब्रश से कोई अच्छी औषधि नियम से लगाई जाय तो विशेष लाभ हो सकता है। उस स्थान पर कई दिन तक मिट्टी का तैल मलवाना भी हितकर है। कैंथेरीडीन का टिङ्चर (Tincture of Cantharidin), 'रोज़मेरी' की स्पिरिट मलने से भी लाभ होता है। ह्रिस्की शराब की मालिश भी उत्तम है। लौंग का तैल, स्पिरिट, जैतून का तैल, अण्डी का तैल, गन्धक तथा सुगन्धित तैलों का लगाना भी लाभदायक है।

किन्हीं स्त्रियों का मस्तिष्क बहुत निर्बल होता है। ऐसी दशा में कङ्घी करते समय उनके बालों की जड़ों में पीड़ा होने लगती है। इसका उपचार पकाई हुई चाय की खोजी से बाल मलना है, किन्तु साथ ही किसी बलवर्धिनी औषधि का सेवन भी आवश्यक है। बालों का टूटना भी निर्बलता के कारण ही होता है।

नज़ला गिरने से बाल नई उमर मे ही सफ़ेद होने लगते हैं। अतः नज़ला के कारणों को पहले दूर करना चाहिए। आमले का सेवन जिस प्रकार और जिस रूप में हो सके, ख़ूब करना चाहिए। च्यवनप्रास अवलेह का सेवन बड़ा गुणकारी है। यह एक बड़ी उत्तम रसायन है। यूकेलिप्टस ऑयल नज़ला की ख़ास औषधि है। इसे रूमाल में डाल कर सूँघने के अतिरिक्त अन्य तैलों में मिला कर भी लगा सकते हैं।

बहुधा शिर में रोग-विशेष के कारण बाल गिर कर कहीं-कहीं चट्टे से पड़ जाते हैं। उन स्थानों पर पुनः बाल जमाने का उपाय यह है—हाथी-दाँत जला कर उसकी राख मे समभाग रसौत मिला कर बकरी के दूध में महीन पीस लिया जाय। रात्रि में लेप कर प्रात- धो दिया जाय। इस प्रयोग को लगातार कुछ दिनों करना चाहिए। यह बड़ी उत्तम औषधि है। इसके अतिरिक्त केशहीन स्थान पर ताज़ा प्याज़ ख़ूब मल कर थोड़ा शहद लगा दिया जाय और एक घण्टा बाद पानी से धोकर अच्छा कैस्ट्रॉयल लगा दिया जाय तो भी १०-१२ दिन में बाल उत्पन्न होने लगते हैं।

मस्तिष्क की निर्बलता की दशा में, जैसा कि कहा जा चुका है, प्रायः बाल गिरने लगते हैं और इस प्रकार कुछ दिनों में वे छिदरे और छोटे होकर सौन्दर्यविहीन हो जाते हैं। इसके भी उपाय हैं। बेर की पत्ती, भैंस के दूध का झाग और आमला तीनों को पीस कर रात्रि में लगा कर सो रहे। प्रातः किञ्चित उष्ण जल से धो कर साफ़ कर ले। इस प्रयोग से बाल ख़ूब बढ़ते हैं। शिर को यदा-कदा नमकीन पानी से धोते रहना भी बालों को गिरने से रोकता है। नींबू के अर्क़ मे आमला पीस कर बालों की जड़ों मे मलने से भी बाल बढ़ते हैं। नींबू का टुकड़ा खोपड़ी पर मलने से भी बालों का गिरना रुक जाता है।

बालों का सफ़ेद होना

चूँकि प्रचीन-काल में लोग अधिकतर नियमित जीवन व्यतीत करते थे, इसलिए उनकी जीवन-अवधि भी हम लोगों की अपेक्षा अधिक हुआ करती थी। उनके बाल उसी समय सफ़ेद होते थे, जब वास्तव में वृद्धावस्था आती थी। शायद इसीलिए वे सफ़ेद बालों को मृत्यु-सूचक समझते थे। किन्तु आजकल का अनियमित तथा विलासितापूर्ण जीवन समय से पूर्व ही बाल पका देता है। सुना है, पेरिस मे आजकल सफ़ेद बाल फ़ैशन की वस्तु समझे जाते हैं। और वहाँ की महिलाएँ अपने बाल सफ़ेद करने के ढङ्ग खोज रही हैं। इस फ़ैशन की भी बलिहारी है। किन्तु भारतीय दृष्टि से सफ़ेद बाल निस्सन्देह जवानी और सौन्दर्य के शत्रु हैं।

बालों पर एक स्याह रङ्ग का रोगन सा चढ़ा होता है। जब वह रोगन उतर जाता है, बाल सफ़ेद निकल आते हैं। यदि किसी युवती या युवक के काले बालों को खरल में डाल कर थोडी देर रगडा जाय तो वह बिलकुल सफ़ेद हो जाते हैं। इस परीक्षण से यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि अधिक खार और तेज़ साबुन आदि से ख़ूब रगड-रगड कर बालों को धोने से वे शीघ्र सफ़ेद हो सकते हैं और तैल लगाने तथा साफ़ रखने से उनका रोगन पक्का होता है और वह बहुत समय तक काले रहते हैं।

जब ४० वर्ष से पूर्व बाल सफ़ेद होने लगे तो कफ़ उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन, जहाँ तक हो, बहुत ही कम किया जाय। भोजन पौष्टिक, सादा और शीघ्र पचने वाला होना चाहिए। मैथुनाधिक्य से बचना तो आवश्यक है ही, चिन्ताओं का भी बहुत बुरा असर पड़ता है। जिन्हें दिन-रात चिन्ताएँ घेरे रहती हैं, उनके बाल शीघ्र पकते हैं। काफ़ूर, खट्टे पदार्थ एवं मादक द्रव्यों का अधिक सेवन बालों को शीघ्र पका देता है। तिलों का सेवन बालों के लिए हितकारी है। भँगरा बूटी को चाय के तौर पर दूध में पका कर पीने से बाल शीघ्र सफ़ेद नहीं होते। शीत और निर्बल प्रकृति वाली महिलाओं को काफ़ूर नहीं सूँघना चाहिए।

—बुद्धिसागर वर्मा, विशारद, बी० ए०, एल० टी०



गृह-विज्ञान

फूल-पत्तियों के रङ्ग

लाल रङ्ग

सूत को पक्का लाल रँगने के लिए आल की लकड़ी इस्तेमाल में लाई जाती है। आल की लकड़ी से सूत को रँगने के दो मुख्य तरीक़े हैं :—

(१) सौ पौण्ड सूत के लिए १० पौण्ड टर्की रैड तैल लेकर १० पौण्ड पानी मे घोल देना चाहिए। जब यह तैल पानी में घुल कर पतले दूध के समान आकार धारण कर ले, तब इसमें २५ पौण्ड शुद्ध पानी मिला दिया जाय, फिर इसके अन्दर सौ पौण्ड सूत ख़ूब अच्छी तरह भिगो कर डुबो दिया जाय। छः घण्टे तक सूत इसी के अन्दर पड़ा रहने दिया जाय, फिर उसे निचोड़ कर धूप मे ख़ूब अच्छी तरह सुखा देना चाहिए। इसके बाद सूत को नीचे लिखे मसाले मे भिगोना चाहिए।

६ से १० पौण्ड तक आल की जड का बुरादा, २० पौण्ड धव के फूल तथा १५० पौण्ड ताज़ा पानी में ख़ूब गर्म करके सूत रँग लिया जाय, तो पक्का लाल रङ्ग आ जावेगा।

(२) २५ पौण्ड हर्रे के अर्क में रँगा हुआ १०० पौण्ड सूत आल की जड़, फिटकिरी और धव के फूल में रँगने से पक्का लाल रङ्ग अख़्तियार कर लेता है।

आल से ऊनी कपड़ा फिटकिरी तथा क्रीम ऑफ़ टारटर के साथ रँगा जा सकता है। अथवा ३ फ़ी सदी लाल कसीस (Potassium bichromate), ३ फ़ी सदी क्रीम ऑफ़ टारटर तथा ५ फ़ी सदी ऐसीटिक ऐसिड में दो घण्टे डाल कर १४ फ़ी सदी आल की जड़ का बुरादा गर्म करने के बाद ऊन को रँगा जाय तो पक्का रङ्ग आ जायगा।

ऊन को लाख से रँगने के लिए साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिए, फिर १०० पौण्ड रँगने के लिए ६ फ़ी सदी फिटकिरी, ४ फ़ी सदी इमली, तथा १० फ़ी सदी लाख को ख़ूब गर्म करके ऊनी रेशे को एक घण्टा ख़ूब जोश देने से पक्का किसमिसी रङ्ग आ जावेगा।

आजकल जो रङ्ग सूती, ऊनी, रेशमी, सनी इत्यादि वस्त्रों को रँगने में काम आते हैं, उनके नाम तथा किस्म इस प्रकार हैं :—

(१) वनस्पति के रङ्ग Indigenous Dyes, (२) कच्चे रङ्ग Basic Colours, (३) खनिज रङ्ग Mineral Colours, (४) नमक के रङ्ग Direct or Substantive or Salt Colour, (Direct Colours) (५) कास्टिक सोडा वाले रङ्ग Indanthrene Vat Colours,(Duran Hydro) Mordant Colours, Aniline Colours, Naphthol Colours (६) विविध प्रकार के आधुनिक रङ्ग, जैसे एलीन, नैफ़थौल आदि।

कच्चे रङ्ग (Basic Colours) से रँगने की विधि

पहले सूत को हर्रे से रँगो और फिर फिटकिरी के पानी में २० मिनट तक डाल रक्खो। फिर जिस रङ्ग में रँगना हो, उसमें डुबा दो। ऊन तथा रेशम रँगने के लिए रङ्ग में एसीटिक ऐसिड डालना आवश्यक है।

डाइरेक्ट रङ्गों से सूत रँगने की विधि

४०० पौण्ड शुद्ध ताज़े जल को एक बर्तन में थोड़ा गर्म करके २ पौण्ड सोडा डालो, घुलने पर २ पौण्ड कोई सा डाइरेक्ट या नमक का रङ्ग मिला दो। फिर २० पौण्ड नमक डालो। सब चीज़ों के ख़ूब घुल जाने पर थोड़ा सा गर्म करो। उपरान्त सूत को एक घण्टे तक उसी में रँगो, पानी काफ़ी गर्म रहे। रङ्ग ठण्डा होने पर निचोड़ो।

—भूदेव शर्मा, 'उद्योगी'

❀ ❀ ❀

घरेलू दवाइयाँ

बहुमूत्र की अचूक दवा

अखबार ६ माशे, बेल का गूदा ६ माशे, बबूल की छाल ६ माशे, मौलसिरी की छाल १ तोला, धनिया १ तोला, आँवला २ तोले, आम की गुठली का गूदा १ तोला, जामुन की गुठली का गूदा १ तोला, केंवाच के बीज का गूदा १ तोला, जुफ्त बालूत डेढ़ तोला, इन सब चीज़ों को, जो किसी भी हकीम या अत्तार के यहाँ मिल सकती हैं, लेकर ख़ूब बारीक पीस डालना चाहिए और ६ माशे के हिसाब से पुड़िया बना लेना चाहिए। एक पुड़िया (अर्थात् ६ माशे) प्रातः-काल और एक ख़ूराक सन्ध्या-समय साठी नामक चावल के धोवन के साथ पी लेना चाहिए। अर्थात् दो तोला के क़रीब साठी नामक चावल को लेकर क़रीब ३ घूँट पानी में छोड़ देना चाहिए। जब चावल पानी में बैठ जाय और उसका मैल ऊपर तैरने लगे, तो दवा मुँह में रख कर केवल ऊपर का पानी पी ले। इस दवा से अब तक सैकड़ों पुराने मरीज़ अच्छे हो चुके हैं, लेकिन परहेज का ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो दवा असर नहीं करेगी।

ख़ूराक—मरीज़ को (जब तक दवा का सेवन करना आवश्यक प्रतीत हो) केवल ख़ुश्क रोटी (बिना घी से चुपड़ी) लौकी, तरोई, नेनुआ अथवा परवल के साथ खाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ भी न खाना चाहिए। सुर्ती, पान, तम्बाकू, शराब आदि चीज़ों का भूल कर भी प्रयोग न करना चाहिए। ख़ूराक मामूली होते हुए भी रोगी दिनोदिन पुष्ट होता जायगा और कमज़ोरी की जगह वह अपने को पुष्ट पाएगा।

—वेदवती सेठ, बी० ए०

❀ ❀ ❀

बिच्छू काटने की दवाएँ

(सङ्कलित)

१—ताड़ की छाल लेकर उसका भीतर का सख़्त लाल भाग निकाल लेना चाहिए। इसे पानी के साथ पीस कर डङ्क लगने के स्थान पर लगाया जाय।

२—'त्रिपक' औषधि भी इसके लिए लाभदायक है, यह डॉ० एच० जे० लारबीर, लाहौर से मिल सकती है।

३—श्री० राधाकान्त मिश्र, कुली बाज़ार कानपुर, पाँच आने डाक-व्यय के लिए पाने पर एक जड़ी भेजते हैं, जिसे वे परीक्षित दवा कहते हैं।

४—एक बिच्छू, मृत या जीवित, का अल्कोहल या राई के तेल में रक्खा जाय। बिच्छू काटे के स्थान पर इस अल्कोहल या राई के तेल को लगाने से लाभ होता है।

५—एक पुड़िया में पिसा हुआ पोटाश परमैंगनेट तथा दूसरी में पिसा हुआ सिटरिक एसिड लो। काटने के स्थान पर पहले आधी रत्ती सिटरिक एसिड रक्खो, फिर उसके ऊपर उतना ही पोटाश परमैंगनेट, फिर एक बूँद पानी डाल दो। कुछ सेकण्ड में झाग उठने लगेंगे। उसे पोंछ दो और इसी प्रकार तीन-चार बार दवाएँ लगाओ। ऊपर से नमक-पानी में भीगी हुई पट्टी बाँध दो।

(६) इसके लिए 'निर्मली' भी लाभदायक है। इसकी ७-८ गोलियाँ १ पैसे में पसारी के यहाँ मिलती हैं। पहले गोली को थोड़ा घिस कर घाव पर लगा दो, फिर घिसी हुई गोली घाव पर रख कर बाँध दो। वह गोली अन्य व्यक्तियों के लिए फिर काम में लाई जा सकती है।



लॉर्ड विलिङ्गडन की पुत्र-वधू की व्यभिचार-लीला

भारत के वर्तमान वायसरॉय और गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलिङ्गडन के साहबज़ादे और उत्तराधिकारी वायकाउण्ट रैटेण्डन (मि० यूनीगो ब्रैसीफ़्रीमैन टॉमस) ने अपनी विवाहिता पत्नी लेडी रैटेण्डन के विरुद्ध तलाक़ देने की अदालत में एक अर्ज़ी पेश करते हुए अपनी पत्नी से सम्बन्ध-विच्छेद की र्थना की है।

लॉर्ड विलिङ्गडन के सुपुत्र का कहना था कि उनकी विवाहिता पत्नी ने शोरहैम (ससेक्स) के ऐरोड्रोम (हवाई जहाज़ के अड्डे) के वायुयान-शिक्षक मि० फ़्रेडरिक जॉर्ज माइल्स के साथ संयोग किया है तथा उसके साथ उसका अनुचित सम्बन्ध रहा है।

तलाक़ अदालत (डाइवोर्स कोर्ट) के विचारपति लॉर्ड मेरीवेल ने वायकाउण्ट रैटेण्डन के आरोपों को उचित और प्रामाणिक पाकर उनकी तलाक़ की अर्ज़ी को मञ्जूर कर लिया और उनकी पत्नी के साथ उनका सम्बन्ध-विच्छेद करके उन्हें उससे ख़र्चा पाने की डिक्री दी है।

वॉयसरॉय महोदय की यह तलाक़शुदा पुत्र-वधू सर जॉनस्टन फ़ॉर्ब्स रॉबर्टसन की सबसे बड़ी लडकी हैं और इनका घर का नाम मिस मैक्सिन फ़्रान्सिस मेरी फ़ॉर्ब्स रॉबर्टसन है तथा सन् १९२४ ईस्वी में इनका वायकाउण्ट रैटेण्डन के साथ लन्दन के सेण्ट मार्क्स गिर्जाघर में विवाह हुआ था। और तब से यह दोनों पति-पत्नी के रूप में, एवेरोड, सेण्ट जॉनवुड में रहा करते थे।

इन दोनों के बीच में अभी तक एक भी सन्तान नहीं पैदा हुई है।

रङ्गभङ्ग

लॉर्ड रैटेण्डन पर वॉयसरॉय के सुपुत्र ने अपनी तलाक़ की अर्ज़ी को पेश करते हुए उसकी पुष्टि में बतलाया कि गत वर्ष के जुलाई मास तक उनका गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त सुखद, मनोहर और प्रिय रहा है।

सन् १९३० ईस्वी मे हम दोनों हवाई जहाज़ को चलाने की कला सीखने की ग़रज़ से शोरहेम के ऐरोड्रोम मे गए थे और वहीं पर मेरा तथा मेरी पत्नी का मि० माइल्स से परिचय हुआ था। हम लोगों का यह परिचय बराबर बना ही रहा। पहले-पहल तारीख़ २९ जुलाई, सन् १९३१ ईस्वी को मेरी स्त्री ने मुझे बतलाया कि वह मि० माइल्स को प्यार करती है। मैंने उसके मुँह से इस बात को सुन कर उसके इस प्रेमावेश को हर तरह से रोकने की चेष्टा की; किन्तु उसमें मुझे सफलता नहीं मिल सकी। मेरी स्त्री बराबर यही कहती रही कि उसने मि० माइल्स के साथ रहने का पक्का निश्चय कर लिया है। इसके पश्चात् लॉर्ड रैटेण्डन ने अपनी पत्नी की मि० माइल्स के साथ व्यभिचार-लीला का वर्णन करते हुए कहा कि गत नवम्बर मास में मेरी पत्नी ने चैरिङ्ग क्रॉस होटल मे मि० माइल्स के साथ व्यभिचार कराया। आपने अपने इस कथन की पुष्टि में उपर्युक्त होटल के मि० क्लिफ़र्डहोथ नामक एक वेटर को भी अदालत के सामने पेश किया और उसने भी नवम्बर सन् १९३१ वाली घटना को दोहराया।

अदालत ने इन सब बातों को सुन कर उपर्युक्त फ़ैसला सुना दिया।

लेडी रैटेण्डन ने इस मामले में अपनी ओर से किसी भी प्रकार की पैरवी नहीं की थी, न कोई सफ़ाई ही पेश की थी।

—'लोकमत'

❀

स्त्रियों की बिक्री

कभी-कभी, राजनीति के क्षेत्र में कष्ट सहन करने वाले के नाते, जनता की सहानुभूति प्राप्त कर कुछ लोग धनोपार्जन का व्यवसाय किस तरह करते हैं, और किस तरह स्त्रियों को बेचते हैं, इसका एक उदाहरण इलाहाबाद के रेलवे मैजिस्ट्रेट की अदालत में उपस्थित हुआ था। सरजूप्रसाद नाम के एक महाशय कटरा (प्रयाग) शुद्धि-सभा के मन्त्री बताए जाते थे। शुद्धि-सभा का दफ़्तर पं० सरजूप्रसाद के मकान पर था; और उनकी बहिन उक्त सभा की 'निरीक्षिका' थी। सरजूप्रसाद का भानजा अम्बिकाप्रसाद और प्यारेलाल उक्त सभा के सदस्य थे। अम्बिकाप्रसाद को राजनैतिक आन्दोलन में सज़ा हो चुकी थी। इस तरह सरजूप्रसाद महाशय ने अपने घर पर ही सारी सभा बना कर तथा अपने एक आदमी को राजनैतिक कार्यों के लिए 'कष्ट' सहन करने जेल भेज कर लोक-सहानुभूति प्राप्त कर ली थी।

इन्हीं सरजूप्रसाद महाशय पर ताराचन्द नाम के एक पञ्जाबी ने धोखा देने के इल्ज़ाम में रेलवे मैजिस्ट्रेट इलाहाबाद की अदालत में दावा दायर किया था। ताराचन्द पञ्जाबी का कहना था कि सरजूप्रसाद ने २००) रुपए लेकर मुसम्मात गुलबी नाम की एक विवाहिता कहारिन को विधवा खत्री स्त्री बतला कर, ताराचन्द से 'विवाह' दी थी। ताराचन्द ने १०९) रुपए नक़द दिए और सत्यनारायण एवं गिरजाशङ्कर नाम के दो शुद्धि-सभा-कर्मचारियों के नाम के प्रॉमिसरी नोट्स लिख दिए। गुलबी ताराचन्द के साथ पञ्जाब गई, परन्तु कुछ दिनों बाद वापस इलाहाबाद आ गई। ताराचन्द अपने रुपए वापस चाहता था और इसीलिए उसने दावा दायर किया था।

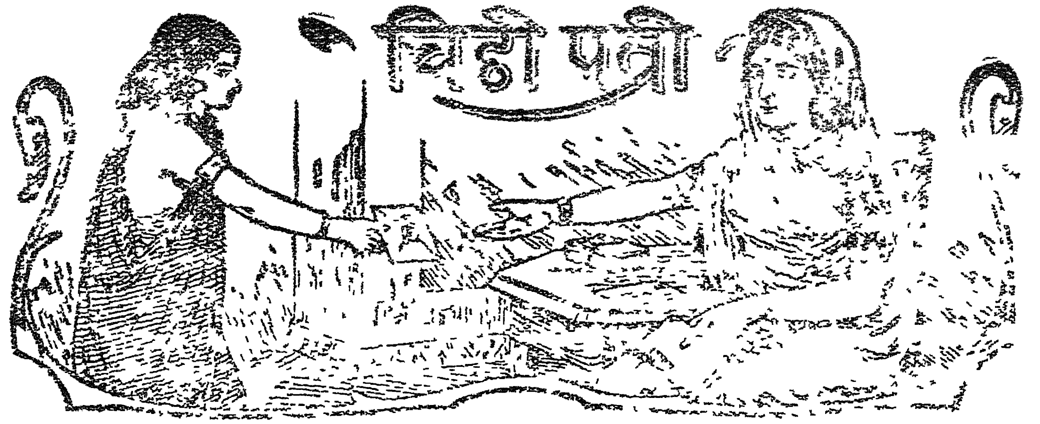
मुक़दमे के दौरान में मालूम हुआ कि ताराचन्द इसके पहले भी एक स्त्री को विवाह कर पञ्जाब ले गया था। सरजूप्रसाद को क़ानूनन् दोषी न पाकर अदालत ने अपने फ़ैसले में लिखा है—'दुःख की बात है कि सरजूप्रसाद जैसे लोग समाज-सुधारक बन सकते हैं और राजनैतिक कष्ट-सहन के बहाने लोगों को धोखा देते हैं! बहुत सम्भव है कि समाज-सुधार के आवरण के नीचे स्त्रियों की बिक्री का धन्धा किया जा रहा हो! मालूम होता है कि मुसम्मात गुलबी सरजूप्रसाद के हाथ की कठपुतली है! सभी मामला इस ढङ्ग से रचा गया है कि अभियुक्त सरजूप्रसाद पर कोई गुनाह लगाना कठिन है।'

❀

गोरे को सज़ा

कलकत्ते की बैली जूट कं० लि०-के गोरे मैनेजर एच० सी० विल्की महाशय एक दिन मिल के कार्य पर निगाह डालते-डालते बुनाई-विभाग में पहुँचे। कनामा सोनारिया नाम की मज़दूरिन अपनी मैशीन के पास खड़ी-खड़ी काम कर रही थी। विल्की महाशय की नीयत में न मालूम क्यों फ़र्क़ आया। उन्होंने उक्त स्त्री के वक्षस्थल का वस्त्र हटा दिया और अन्तस्थ शरीरावयवों पर हाथ डाला। उक्त स्त्री ने हल्ला किया, अतएव वह 'साहब' के आक्रमण से बच गई।

अदालत मे मामला पहुँचा। साहब ने कहा—"मैंने उक्त स्त्री को जुर्माने की सज़ा दी थी और उसके दो गवाहों को घटना के पहले ही बर्ख़ास्त कर दिया था। इसी बात से चिढ़ कर इन लोगों ने मुझ पर यह इलज़ाम लगाया है।" परन्तु हवड़ा के मैजिस्ट्रेट मि० दत्त ने आपको दोषी क़रार दिया और १००) का जुर्माना किया। अपील में सेशन्स जज मि० सेन ने भी सज़ा बहाल रक्खी। हाईकोर्ट के जस्टिस कास्टेलो ने भी सज़ा बहाल रक्खी और अपने फ़ैसले में लिखा—"मैं नहीं समझता कि अभियुक्त विल्की के साथ कोई अन्याय हुआ है। यह बड़े अफ़सोस की बात होगी, अगर यह अथवा दूसरी कोई अदालत कोई ऐसा कार्य करे, जिससे इस बात पर अविश्वास हो जाय कि 'क़ानून व्यक्तित्व को नहीं मानता।' इन्साफ़ की कुर्सी पर बैठने वालों को व्यक्तियों की प्रतिष्ठापूर्ण हैसियत से कोई ताल्लुक़ नहीं है।"



सूचना

मई के 'चाँद' में 'स्त्रियों के अधिकार' शीर्षक चिट्ठी के उत्तर में कई ऐसे महाशयों के पत्र हमें मिले हैं, जो सी० पी० की बहिन को सहायता देना चाहते हैं। वे सभी पत्र हमने उनके पास भेज दिए हैं। वह स्वयं इन उदार महाशयों से पत्र-व्यवहार कर लेंगी। अब इस विषय में कोई पाठक हमसे पत्र-व्यवहार न करें।

—स० 'चाँद'

❀ ❀ ❀

बहुविवाह

बुन्देलखण्ड के एक सज्जन लिखते हैं:—

मैं एक कूर्मिक्षत्रिय समुदाय का एक व्यक्ति हूँ। मेरी आयु इस समय लगभग ३५-३६ वर्ष की है। मेरा विवाह हुए अर्सा हो गया, मेरी स्त्री की भी आयु इतनी ही होगी। इस आयु तक हम लोग सन्तान-उत्पत्ति की इच्छा रखते हुए अपने जीवन को धर्मपूर्वक निभाते रहे, परन्तु हमारी पुत्र-इच्छा की पूर्ति न हो सकी। अब कई महीने से मेरी पत्नी ने इच्छा प्रगट की है कि तुम अपना दूसरा विवाह कर लो। इच्छा ही नहीं, बल्कि उसने इस कार्य पर कटिबद्ध होकर एक स्त्री को भी ढूँढ़ लिया है, जो आयु में १२-१३ वर्ष की है और मुझे मजबूर कर रही है कि नहीं, तुमको विवाह करना ही पड़ेगा। मैं जब ख़ुद विवाह करा रही हूँ तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। मैं इससे ख़ुश हूँगी, यदि मेरी दूसरी छोटी बहिन से कोई सन्तान हो जाय। वह मेरी ही होगी। गोकि वह सब तरह से मुझे सुखी बनाने की चेष्टा कर रही है, परन्तु मैं समझता हूँ कि शायद ऐसा सुख मुझे न मिले। और सन्तान की भी अभिलाषा है। मैं इस समय अजब कशमकश में पड़ा हूँ। मुझे अपनी पत्नी के प्रेम से उसकी बात भी नहीं टाली जाती; क्योंकि उसका आग्रह तथा प्रेमपूर्वक ज़िद करना कि मैं तुमको निस्सन्तान नहीं देखना चाहती, तुम अपने ऋण से उऋण हो जाओ, ताकि मैं सुखी बन सकूँ और यदि मैं विवाह कर लूँ तो शायद उसको किसी प्रकार का मानसिक कष्ट हो तो मेरा जीवन सुखी न बन सकेगा और विवाह भी शीघ्र होना निश्चित है। इससे सम्पादक जी, आप कृपा करके शीघ्र ही 'चाँद' द्वारा या किसी भाँति से उचित सत्परामर्श देने की कृपा अवश्य करें, ताकि मैं अपने कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय कर सकूँ। मैं बड़ी आशा से सलाह की भिक्षा माँगता हूँ, ताकि मैं सुखी बन सकूँ।

[इस आशय के कई पत्र हमारे पास आते रहते हैं। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे समाज में विवाह का अर्थ केवल सन्तानोत्पत्ति समझा जाता है। यदि विवाह के दो-चार वर्ष तक किसी स्त्री के सन्तान उत्पन्न नहीं हुई, तो चारों ओर तहलक़ा मच गया और पुरुष को दूसरा विवाह करने की शिक्षा दी जाने लगी, आग्रह किया जाने लगा या ज़ोर डाला जाने लगा। ज़ोर डालने वालों में, जैसा ऊपर के पत्र से विदित होता है, कभी-कभी स्वयं पत्नी भी होती हैं।

इस प्रकार के मामलों में हमें दो-तीन प्रश्नों पर विचार करना चाहिए। पहला तो यह है कि

क्या पुरुष को बहु-विवाह करना चाहिए? क्या सन्तान उत्पन्न करने के लिए भी ऐसा करना उचित है? हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम किसी भी दशा में बहु-विवाह के पक्ष में नहीं हैं, चाहे वह सन्तान के लिए हो, चाहे किसी अन्य कारणवश। यदि धर्मशास्त्र के अनुसार विवाह को एक पवित्र बन्धन माना जाता है और वह भी एक ऐसा बन्धन, जो पुरुष की मृत्यु के बाद भी अटूट समझा जाता है, तो फिर हमारे सामाजिक तथा गार्हस्थिक जीवन में बहु-विवाह के लिए कोई स्थान रह ही नहीं जाता।

इससे पहले कि कोई व्यक्ति सन्तान के लिए दूसरा विवाह करे, उसके लिए इस बात का जानना आवश्यक है कि उसका कारण क्या है। साथ ही यह भी निश्चय हो जाना चाहिए कि दोष स्त्री में है या पुरुष में। यदि दोष पुरुष में है, तो पुरुष का दूसरा विवाह न होकर स्त्री का दूसरा विवाह होना चाहिए। अनेक बार ऐसा देखा गया है कि पुरुष नपुंसक होते हुए भी ऐसी दशा में दूसरा विवाह कर लेता है, केवल अपने दोष पर पर्दा डालने के लिए। फल यह होता है कि जहाँ पहले एक युवती का जीवन नष्ट होता था, वहाँ अब दो का होता है और इससे समाज में भाँति-भाँति के दुराचार फैलते हैं।

यदि दोष स्त्री में ही है, तो क्या पुरुष को इस बात का विश्वास हो सकता है कि वह दूसरा विवाह करके भी सन्तान प्राप्त कर सकता है। स्त्री अपने पति की मोक्ष-प्राप्ति में सहायता देने के लिए सब कुछ कर सकती है, परन्तु अनेक बार ऐसा देखा गया है कि आगे चल कर दो स्त्रियाँ रखने वाले व्यक्ति का जीवन अत्यन्त दुःखमय हो जाता है और मोक्ष तो दूर, वह अपने सुखी पारिवारिक जीवन से भी हाथ धो बैठता है। आवश्यकता इस बात की है कि लोग समझें कि सन्तानोत्पत्ति ही विवाह का लक्ष्य या उद्देश्य नहीं है। और यदि किसी में सन्तान-प्राप्ति की इच्छा प्रबल रूप से घर कर गई है, तो उसके लिए सबसे अच्छा उपाय है किसी बच्चे को गोद ले लेना। इस प्रकार के बच्चे अनाथालयों, मातृ-मन्दिरों तथा विधवाश्रमों से मिल सकते हैं। विवाह करने से एक युवती का जीवन बिगड़ता है, गोद लेने से एक अनाथ बालक का भाग्य जागता है। पत्र-प्रेरक महाशय स्वयं समझ सकते हैं कि उनके लिए इनमें से कौन सा मार्ग अच्छा है और वाञ्छनीय है। दूसरे उपाय को ग्रहण कर लेने से वह सरपञ्च होने के कारण अपनी बिरादरी में एक आदर्श उपस्थित कर सकते हैं।

—स० 'चाँद']

* * *

नीच श्वसुर

एक सन्तप्त-हृदया बहिन लिखती हैं :—

आज बहुत हिम्मत करके, ६ वर्ष के दुखित जीवन के बाद, मै अपनी कष्ट-कथा आपको सुनाने बैठी हूँ। मेरे पिता अच्छे ब्राह्मण-कुल के स्तम्भ हैं। उन्होंने मेरे ग्यारहवें वर्ष में मेरी शादी एक धनवान पुरुष के पुत्र से कर दी। बस यहीं से मेरे दुःखी जीवन की कहानी चालू हुई। एक वर्ष बाद गौना करके ससुराल भेज कर पिता जी अपने कर्तव्य से मुक्त हो गए और मै अपने सास-ससुर के अधिकार मे आ गई वहाँ पर मेरे साथ एक लौंडी की अपेक्षा भी नीच व्यवहार होने लगा। सास थाली मे से रोटी छीन लेतीं, पतिदेव से चुगली खातीं, और फिर पतिदेव क्या करते? वह डण्डे बजाते। यही क्रम बहुत दिनों तक चालू रहा, बतलाइए मेरे सरीखी १२ वर्षीया बालिका इतने दुःख किस प्रकार सहन कर सकती थी। मैं बीमार हो गई। मेरी सेवा-शुश्रूषा कौन करता, इसलिए मेरे पिता को ख़त लिख दिया गया। चौथे दिन सबेरे भाई साहब आ पहुँचे और मुझे अपने घर ले आए। माता और भाई-भौजाई तथा डॉक्टर आदि के अटूट परिश्रम से ३ माह बाद तबीयत ठीक हुई। मैंने लज्जा से अपने बीमार होने का कारण नहीं बताया। एक माह बाद देवर आए और मुझे ले गए। वहाँ जाने पर

मुझे मालूम हो गया कि पतिदेव नपुंसक हैं और ससुर जी की कामी नज़र मेरी ओर झुकी है। बस मुझे अपने कौमार्य की फ़िक्र पड़ी; क्योंकि औरों की नज़र में मैं ब्याही हुई थी, पर अपने आपको कुँआरी ही समझती थी। अब बहुत सतर्क रहने लगी, परन्तु ससुर कब समझने लगे। वह मुझे देख कर घृणित इशारे करते और अपशब्द बोलते। उनके इस व्यवहार से और सास के अत्याचार से तथा पतिदेव की मार से तङ्ग आकर मैंने कई बार आत्म-हत्या करना चाहा, परन्तु मुझे मरने तक की स्वतन्त्रता नहीं थी। आख़िर एक रोज़ मौका पाकर मैं कड़ा दिल करके घर से भाग कर अपने नैहर जा पहुँची। पिता जी ने विशाल हृदय से मुझे घर में स्थान दिया। पर अब भाई साहब मुझे फिर ससुराल भेजने की तैयारी कर रहे हैं। उनका कहना है कि जवान लड़की अकेली आ जाने से समाज बुरे आक्षेप करता है, और मैं वहाँ जाना नहीं चाहती। मैं वहाँ जाने से मौत को कहीं अच्छा समझती हूँ। अब बतलाइए ऐसी हालत मे मै क्या करूँ? ऐसी परिस्थिति में मैं आपकी राय लेना ज़रूरी जान कर आपसे राय की भीख माँगती हूँ। मुझे योग्य सलाह दें। यह पत्र 'चाँद' में छाप दें, ताकि इसे पढ़ने वाले अपनी अबोध बच्चियों की शादी ज़रा देख-भाल कर करें।

❀ ❀ ❀

नपुंसक की पत्नी

एक युवती ने लिखा है :—

आपको स्त्री-जाति का शुभचिन्तक जान कर अपने कष्टों को इस पत्र द्वारा आपके पास भेजने की धृष्टता करती हूँ तथा उचित सलाह भी पाने की आशा करती हूँ।

मैं एक उच्च कुल की कन्या हूँ। मेरे पिता एक बड़े अफ़सर थे। उन्होंने मेरी शादी भी एक अच्छे ख़ानदान में कर दी। ब्याह में मेरी उम्र १३ साल होने के कारण तथा पति के पढ़ने के कारण मैं अपने पति से नहीं मिल सकी। गौने में मिल कर मैंने अपने को बड़ी भाग्यवान समझा; क्योंकि वह बहुत ही सुन्दर तथा सरल प्रकृति के मनुष्य हैं। परन्तु वह मुझसे दिल खोल कर बात न करते थे, बल्कि कुछ शरमाते थे। एक दिन उन्होंने अपने दिल की सब बातें कह डालीं। वह अपने विद्यार्थी-जीवन की कुटेवों के कारण बिलकुल कमज़ोर हैं। यह सब कुछ मैं पहिले ही अनुभव करती थी, परन्तु मैं किसी और को दोष न देकर अपने ही भाग्य को दोषी ठहराती हूँ। इतना सब कुछ होते हुए भी मैं उनसे बहुत ही प्रसन्न हूँ। उन्हें भी ख़ुश रखने की भरसक कोशिश करती हूँ; क्योंकि वह बहुत ज़्यादा प्यार करते हैं और मेरी दशा पर पश्चात्ताप करते हैं। कुछ भी हो, गौने के एक साल तक हमारा जीवन बहुत ही प्रसन्नता से बीता। परन्तु इसके बाद ही मेरी सास आदि कहने लगीं कि बहू के लड़का क्यों नहीं होता। कोई कहता कि वह बाँझ है, कोई कहता है गर्भ ठहरने नहीं देती। कुछ दिन बाद मुझसे साफ़ कह दिया गया कि तुम राक्षसी हो, सन्तान नहीं उत्पन्न कर सकती; इसलिए लड़के की दूसरी शादी की जायगी। इन बातों को सुन कर मैं तो ख़ून का घूँट पीकर रह गई, परन्तु मेरे पति को बहुत दुःख हुआ और कहने लगे कि—"यह सब कुछ मेरे ही कारण हो रहा है। मेरी चाहे सैकड़ों शादी हों, परन्तु सन्तान मेरे सम्बन्ध से कभी नहीं उत्पन्न हो सकती; क्योंकि मेरे वीर्य में सन्तानोत्पत्ति की शक्ति नहीं है। केवल अन्य युवतियों का जीवन नष्ट होगा, इसलिए हम आत्महत्या कर जान दे देंगे और तुम (मैं) किसी पाठशाला में नौकरी करके या पुनर्विवाह करके शेष जीवन बिताना।" सम्पादक जी, आप ही सोचिए कि उस अप्रिय विचार को सुन कर मेरी क्या दशा हुई होगी। मैंने अनेकों विनती की, उन्हें समझाया कि ऐसा करने से मैं किसी तरफ़ की न रहूँगी। वह बात तो मान गए, परन्तु मैं सदैव डरा करती हूँ। वह कैसे भी क्यों न हों, परन्तु मेरे लिए सर्वस्व हैं। अब मेरी सास मुझे प्रतिदिन अनेकों गालियाँ आदि दिया करती हैं और कभी-कभी दो-चार लात भी मुझे चुपचाप सहनी पड़ती हैं। मेरे श्वसुर ने उनकी शादी की बातचीत पक्की कर ली है। मेरे पति की बातों की कुछ भी परवाह न करके एक अन्य युवती का जीवन नष्ट करने जा रहे है। लड़की वाले के पास मेरे पति ने गुप्त रूप से अपना हाल पहुँचा दिया है, परन्तु उस दुष्ट ने सब कुछ जान कर भी शादी पक्की कर ली। परन्तु वह लड़की सब कुछ जान गई है, इसलिए यह शादी

दूसरे साल के लिए निश्चित हुई है। अगर मेरे पुत्र उत्पन्न होने की आशा हो, तो मेरे पति खुल्लमखुल्ला शादी का विरोध करने लगें, परन्तु यह आशा निर्मूल है; उन्होंने कुछ विज्ञापनों को पढ़ कर दवा मँगाई और खाई थी, परन्तु फ़ायदा किञ्चिन्मात्र भी नहीं हुआ। मेरे पति शादी किसी भी प्रकार नहीं करेंगे और उनका आत्मघात करने का प्रत्येक दिन डर है। मेरी उमर १८ साल तथा पति की २२ साल है। मैं अपनी इतनी बड़ी ज़िन्दगी किसकी शरण में बिताऊँगी। क्या मुझे उचित है कि मैं स्वयं आत्मघात कर पति से पहिले ही इस दुखमय जीवन से मुक्ति पा जाऊँ।

[ऊपर के दोनों पत्रों के पढ़ने पर समाज की एक गम्भीर समस्या सामने आ जाती है। ऐसी युवतियों की हमारे समाज में कमी नहीं है, जो नपुंसक पतियों के मत्थे मढ़ दी जाती हैं, तथा जो सन्तानहीना होने के कारण पीछे से अनेक प्रकार के दुखों का सामना करने के लिए विवश की जाती हैं। कहीं उन पर घरवालों की ही नीच दृष्टि पड़ती है, कहीं उनके पतियों का दूसरा विवाह कर दिया जाता है और कहीं वे वन्ध्या के नाम से पुकारी जाकर चारों ओर के कटाक्षों का निशाना बनती हैं। समाज के इस कोढ़ का नाश करने के दो-तीन उपाय हैं। एक तो विवाह-प्रणाली में सुधार, दूसरे तलाक़-प्रथा का प्रचार, और तीसरे नपंसकता की चिकित्सा।

विवाह-प्रणाली तथा तलाक़ के विषय में हम कई बार प्रकाश डाल चुके हैं। नपुंसकता के विषय में यहाँ हमें दो शब्द कहने हैं। नपुंसकता तीन प्रकार की होती है—(१) वास्तविक नपुंसकता, जो जन्म से होती है; (२) वास्तविक नपुंसकता, जो बाल्यकाल की कुटेवों के कारण उत्पन्न होती है; (३) अवास्तविक नपुंसकता।

वास्तविक नपुंसकता भी दो प्रकार की होती है, एक में तो वीर्य बनता ही नहीं; दूसरी में वीर्य बनता है, परन्तु पुरुष में सम्भोग करने की शक्ति नहीं होती। पहली नपुंसकता बहुत कम देखने में आती है। बाल्यकाल की कुटेवों के कारण उत्पन्न हुई नपुंसकता पूर्ण नहीं होती। अर्थात् इन्द्रिय में थोड़ी सी शिथिलता-मात्र आ जाती है। इस प्रकार के नवयुवकों में से कम से कम ६० प्रतिशत सम्भोग कर सकते हैं, यदि वे अपने मस्तिष्क से इस विचार को निकाल दें कि वे नपुंसक हैं। ३० प्रतिशत उचित चिकित्सा द्वारा ठीक हो सकते हैं। उचित चिकित्सा का अर्थ समाचार-पत्रों के विज्ञापनों की औषधियाँ नहीं हैं।

अवास्तविक नपुंसक सब प्रकार से ठीक होते हैं, परन्तु उनके अन्दर कुछ मानसिक तथा कुछ ज्ञानतन्तुओं की शिथिलता होती है, उसी कारण वे समझते हैं कि वे नपुंसक हैं। उन्हें इस बात की शङ्का, भय तथा सङ्कोच होता है। यदि वे इसको दूर करके स्त्री के साथ दो-चार बार सम्भोग करें तो उनकी नपुंसकता जाती रहती है। अधिकांश नवयुवक इन बातों पर ध्यान देने से अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सकते हैं।

—सं० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

विधवा की आह

'चाँद' के अप्रैल मास के अङ्क में उपर्युक्त शीर्षक की एक चिट्ठी प्रकाशित हुई थी, जिसमें एक विधवा युवती ने हमसे इस बात की प्रार्थना की थी कि उसके लिए विवाह का कोई प्रबन्ध करा दिया जाय। उस चिट्ठी को पढ़ कर कई महानुभावों ने हमारे पास उक्त विधवा से विवाह करने के सम्बन्ध मे पत्र भेजे हैं। हम इस युवती से प्रार्थना करते हैं कि यदि वह वास्तव में विवाह की इच्छुक हैं, तो हमें अपना अन्तिम निर्णय शीघ्र लिख भेजें।

—सं० 'चाँद'



[सम्पादक तथा स्वरकार—
श्री० नीलू बाबू]

देश मलार—३ ताल

[शब्दकार—डॉ० धनीराम प्रेम]

स्थायी—काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ !
पिय के विरह की अगिनि बढ़ी है—
मिलन-नीर सीतल बरसाओ ।
अन्तरा—मेरी पीर समुझि निरमोही,
आँसुन की दो बूँद बहाओ ।
काहे बदरवा, मोहिं तरसाओ ।

स्थायी

०				१				×				३			
								क				क			
नि	सं	नि	सं	नि	सं	निसं	रें	नि	ध	ग	म	नि	ध	प	—
का	आ	हे	ब	द	र	वा आ	आ	मो	हिं	त	र	सा	आ	ओ	—
												क			
रे	ग	रे	म	ग	रें	स	—	रे	रे	म	प	नि	ध	प	—
पि	य	के	वि	र	ह	की	—	अ	गि	नि	ब	ढ़ी	ई	है	—
							क					क			
नि	सं	नि	सं	निसं	रें	सं	नि	ध	प	ग	म	नि	ध	प	—
मि	इ	ल	न	नीई	ई	र	सी	त	ल	ब	र	सा	आ	ओ	—

अन्तरा

म	—	प	—	नि	—	नि	नि	सं	सं	सं	रें	नि	—	सं	—
मे	—	री	—	पी	—	र	स	म	झि	नि	र	मो	—	ही	—
								क				क			
नि	सं	नि	सं	निसं	रें	सं	—	नि	ध	ग	म	नि	ध	प	—
आँ	सु	अ	न	कोई	ई	दो	—	बूँ	ऊ	द	ब	हा	आ	ओ	—



फ़लसफ़ए हस्ती

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

रश्के[1] गुले तर क्यों बने दाग़े हस्ती,
हो किसलिए गरदूँ[2] पे दमाग़े हस्ती।
हो जायगा यह सूख के काँटा "बिस्मिल",
सरसब्ज़[3] नही रहने का बाग़े हस्ती।

बदमस्त न हो देख निसारे[4] हस्ती,
मैख़ानए[5] दुनिया है ग़ुबारे हस्ती।
रहने का नहीं इसका सुरूर[6] ऐ "बिस्मिल",
उतरेगा किसी रोज़ ख़ुमारे[7] हस्ती।

यह रङ्ग, यह अन्दाज़, यह तौरे हस्ती,
जब तक जियो सहते रहो जौरे[8] हस्ती।
इस फेर में भूले से न आना "बिस्मिल",
हर दौर[9] है, एक आख़िरे दौरे हस्ती।

पुरकैफ़े[10] मसर्रत[11] नहीं जामे हस्ती,
क़ायम नही रहता कभी नामे हस्ती।
मौत आए तो मिल जाय रिहाई "बिस्मिल",
कुछ दिन के लिए हम हैं ग़ुलामे हस्ती।

१—फूलों से बढ़ कर, २—आकाश, ३—हरा-भरा, ४—निछावर, ५—शराब का घर, ६—चढ़ता हुआ नशा, ७—उतरता हुआ नशा, ८—ज़ुल्म, ९—चक्कर, १०—आनन्द से भरा हुआ, ११—आनन्द।

स्वास्थ्य-रक्षा

स्वास्थ्य ही जीवन का सार, सब सुखों का आगार और आनन्द का भण्डार है; पर अपने अज्ञान से हम उसी स्वास्थ्य को खो बैठे हैं। इसका कारण है, हिन्दी-जगत् में स्वास्थ्य-रक्षा के इने-गिने ही ग्रन्थ हैं। फिर ज्ञान कहाँ से प्राप्त हो? इसीलिए हमने बड़े परिश्रम और चेष्टा से यह पुस्तक लिखवा कर प्रकाशित की है।

इसमें निरोग रहने के उपाय, किस देश में दीर्घ-जीवन प्राप्त करने के कौन-कौन उपायों का आविष्कार हुआ है, किन बातों को छोड़ देने के कारण हम अल्पायु, रोगी तथा वीर्यहीन हो रहे हैं, कितने ही रोगो का निदान, घरेलू चुटकुले, ऐसे-ऐसे सरल नुस्ख़े, जिससे घर बैठे आप हज़ारों कमा सकें, वैद्य-डॉक्टरो का मुँह न देखना पड़े, इसमें दिए गए हैं, साथ-साथ सुन्दर, कान्तिमान, नीरोग रहने के बहुत से उपाय बताए गए हैं। इसमे कोकशास्त्र की वे सभी बातें दी गई है, जिनका जानना आवश्यक है और जिनको न जानने के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक के स्थल बन रहे हैं। यह पुस्तक प्रत्येक घर में रहने की चीज़ है। हम ज़ोर देकर कहते है कि यदि आप स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक बातें और जानने योग्य विषयो का संग्रह चाहते हैं, यदि अपनी गृहस्थी को सुखमयी बनाना है तो इसे पढ़िए। मूल्य २॥।), रेशमी जिल्द ३॥)

मोरध्वज

यह पौराणिक नाटक भक्ति का आगार है, सत्य और धर्म का सुन्दर-सुघड़ आकार है, परमात्मा का प्रत्यक्ष चमत्कार है, भक्तों का शृङ्गार है। इसकी प्रत्येक घटना विचित्र है। साधु-सेवा और सत्सङ्ग का जीता-जागता चित्र है। इसमें विष्णु भगवान के परम भक्त मायापुरी (पाताल) के उसी राजा मोरध्वज का उज्ज्वल चरित्र है, जिसने अपनी धर्म-दृढ़ता के कारण अपने पुत्र का बध कर सदैव के लिए अपनी यश-पताका को संसार के सम्मुख फहरा कर अपने को अमर बना लिया है। जिसने साधु-सेवा के अटल विश्वास पर बध हुई रानी को चरणामृत से सजीवन किया है। बढ़िया एण्टिक काग़ज़ पर छपी हुई सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रुपया।

☞ चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक–इलाहाबाद

[illegible] कुछ अनमोल पुस्तकें

रुस्तम और सोहराब

इसमें संसार के सर्वश्रेष्ठ पहलवान 'रुस्तम' और उसके महा बलवान पुत्र 'सोहराब' का पूरा जीवन-चरित्र, ईरान और तूरान की बड़ी-बड़ी लड़ाइयों का हाल और बाप-बेटे का जगत्-प्रसिद्ध भीषण संग्राम बड़ी दिलचस्पी के साथ लिखा गया है। यदि आप रुस्तम पहलवान के बड़े-बड़े अनूठे और आश्चर्य-जनक कामों का हाल तथा उस ज़माने के बादशाहों का इतिहास जानना चाहते हों, तो इसे अवश्य पढ़ें। रङ्ग-बिरङ्गे सुन्दर-सुन्दर ६ चित्र भी हैं। दाम १।।), रेशमी जिल्द २) रुपया।

नादिरशाह

मुसलमान शासकों की अत्याचार-पूर्ण शासन-नीति का भीषण दृश्य! भारत के गारत होने का ज्वलन्त इतिहास! आर्य-वीरों की वीरता का जीता-जागता चित्र। यह पुस्तक नवीन युग के नवयुवकों के पढ़ने लायक सर्वोत्तम सामग्री तथा उद्योग और परिश्रम के सुन्दर परिणामों की जगमगाती हुई ज्योति है। इस यवन-वीर की विचित्र वीरता पढ़ते-पढ़ते पाठक विस्मय से अवाक् हो जाएँगे। साथ ही सुन्दर-सुन्दर रङ्ग-बिरङ्गे ६ चित्र भी दिए गए हैं। दाम २), रेशमी जिल्द २।।) रु०!

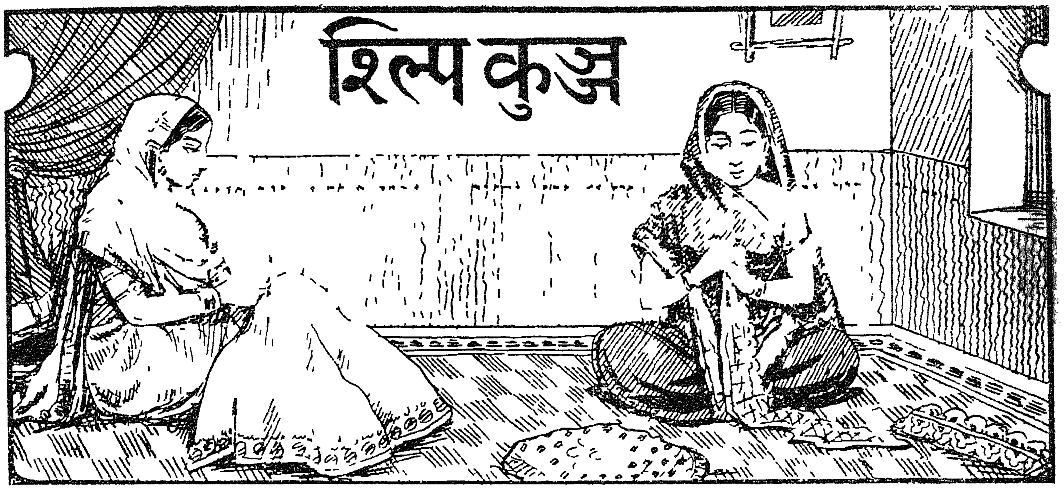
कोहेनूर

यदि आप राठौर-वीर 'दुर्गादास' और सम्राट औरङ्गज़ेब के इतिहास-प्रसिद्ध भीषण संग्राम का रसास्वादन करना चाहते हैं, "अरावली उपत्यका" मे होने वाले लक्षाधिक दुर्दान्त मुसलमानों और क्षत्रिय वीरों का घोर संग्राम देखना चाहते हैं, वीर शिरोमणि अमरसिंह, काला-पहाड़ आदि मुट्ठी भर क्षत्रिय वीरों का आश्चर्य-जनक युद्ध दृष्टिगोचर किया चाहते हैं, तो इसे जरूर पढ़िए, ५ चित्र भी दिए गए हैं। दाम १।।) और सुनहरी रेशमी जिल्द २) रुपया।

छद्मवीर

बङ्गला-भाषा के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक स्वर्गीय बाबू दामोदर मुखोपाध्याय के 'राज-भक्ति' नामक सर्वश्रेष्ठ राजनैतिक उपन्यास का यह सर्वाङ्ग सुन्दर हिन्दी-अनुवाद है। इसमे राजनैतिक षड्यन्त्र, राजकर्मचारियों के अत्याचार, प्रजा का विद्रोह, गुप्त घातकों की लीला, अबला की आह, प्रेम आदि पढ़ने ही योग्य है। एक बार इसे हाथ मे उठा लेने पर फिर छोड़ने की इच्छा ही नहीं होती! रङ्ग-बिरङ्गे ५ चित्र भी हैं। दाम सिर्फ १।।) रु०, रेशमी जिल्द २) रु०!

चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

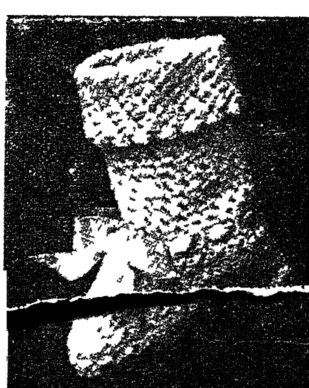


[ले० कुमारी शकुन्तला देवी गुप्ता, बी० ए० ; हिन्दी-प्रभाकर]

बच्चों का जूता

जूता बनाने के लिए १ दाँत का क्रोशिया और बारीक ऊन ३॥ औन्स चाहिए।

इसके बनाने की विधि यह है कि १० इञ्च लम्बी चेन बना कर दोनो सिरे जोड़ लो, फिर



बच्चों के जूते का नमूना

प्रत्येक चेन मे १ तेहरा बनाते जाओ, जब तक कि इसकी लम्बाई १० इञ्च न हो जाय । अब पैर बनाने के लिए सारा चक्र नही बनाना होगा, बल्कि आधा चक्र बार-बार बुनना होगा, जब तक कि २ इञ्च न हो जाय । फिर इसके चारों ओर १॥ इञ्च बुन कर पैर को दोहरा करके जोड़ दो। ऐसा करने से इसकी एड़ी और पञ्जा स्वयं ही बन जायगा, जैसा कि चित्र मे दिखाया गया है। फिर ऊपर से दो इञ्च मोड़ दो और पैर के पास १ इञ्च चौड़ा रिबन डाल दो। दूसरा भी इसी प्रकार से बनेगा।

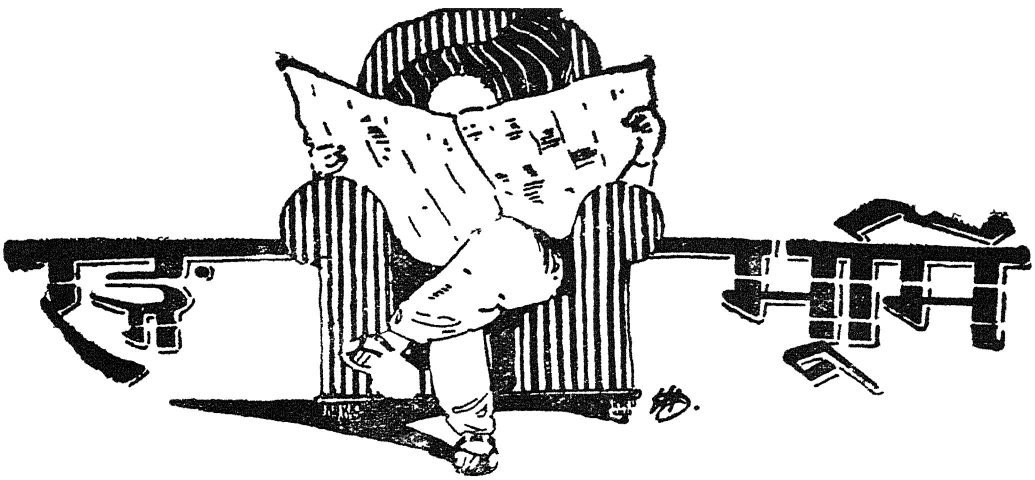
❀ ❀ ❀

सुन्दर बटुआ नं० १

यह बटुआ यथेच्छा छोटा या बड़ा बन सकता है। यहाँ पर अन्दाज से बीच के दर्जे का बटुआ बनाने की विधि बताती हूँ।

आरम्भ मे ८० फन्दे चढ़ा कर दूसरा सिरा भी वहीं जोड़ लो।

१ली ला०—❀ २ ते० २ चे० ३ तेहरे एक ही चेन मे, ३ चे० १ ते० २ चे० १ ते० उसी चेन में, ३ चे०❀ एक चिन्ह से दूसरे चिह्न तक इसी प्रकार बुनो। बाकी सब लाइनें जितनी बड़ी बनानी हों, इसी प्रकार बनेगी।



द्विवेदी-जयन्ती

गत ९ मई को हिन्दी की विभिन्न संस्थाओं द्वारा आदरणीय पण्डित महावीरप्रसाद जी द्विवेदी की ६७वी वर्षगाँठ के उपलक्ष मे उनकी जयन्ती बड़े समारोहपूर्वक मनाई गई। आचार्य द्विवेदी जी ने हिन्दी-भाषा तथा हिन्दी-साहित्य की जो सेवाएँ की है, वे अतुलनीय है। 'सरस्वती' का वर्षों तक सम्पादन करके द्विवेदी जी ने हिन्दी मे सम्पादन-कला—और विशेषकर मासिक सम्पादन-कला—को एक ऊँचा तथा गौरवमय स्थान दे दिया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उनकी कीर्ति साहित्य के एक महारथी के रूप मे कालान्तर तक स्थायी रहेगी। प्रभु से प्रार्थना है कि द्विवेदी जी को दीर्घजीवी बनावें, ताकि हिन्दी उनके सामने ही वास्तव मे राष्ट्र-भाषा हो जाय।

❀ ❀ ❀

खादी का प्रचार

कुछ समय पूर्व अखिल भारतवर्षीय चर्खा-सङ्घ की पञ्जाब-शाखा ने सङ्घ के इतिहास तथा कार्य के विषय में एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी। उसके पढने से यह देख कर बडा हर्ष होता है कि कुछ ही वर्षो में सङ्घ ने खादी के प्रचार मे तथा प्रसार मे आशातीत सफलता प्राप्त की है।

अखिल भारतवर्षीय चर्खा-सङ्घ की स्थापना महात्मा जी द्वारा सन् १९२५ मे हुई थी। इसकी स्थापना का उद्देश्य था खादी-प्रचार को राजनीति से बिलकुल अलग रखना, ताकि देश की राजनीतिक प्रगति तथा परिवर्तनों का इस पर कुछ प्रभाव न पड सके। रिपोर्ट के समय में—सन् १९२५ से ३१ तक—६०० केन्द्रों की स्थापना हो चुकी है, जिनमे से ३५९ खादी की पैदावार के लिए हैं, तथा २४१ उसके विक्रय के लिए। पाँच वर्षों के आँकड़े इस प्रकार हैं :—

वर्ष	पैदावार	विक्रय
१९२५-२६	रु० २५,७६,६७०	२८,९१,१४३
१९२६-२७	२४,०६,३७०	३३,४८,७९४
१९२७-२८	२४,१६,३८२	३३,०८,६३४
१९२८-२९	३१,५५,४८७	४९,९६,००८
१९२९-३०	५३,००,८१६	६३,४४,५५३

इन आँकडों को देखने से पता चलता है कि पाँच वर्षों मे खादी की पैदावार तथा बिक्री दूने से भी अधिक बढ़ गई है।

आजकल के समय मे खादी से हमारे ग़रीब भाइयो को कितना लाभ हो रहा है, इसका दिग्दर्शन रिपोर्ट मे इस प्रकार कराया गया है और देशवासियों से सङ्घ की प्रत्येक प्रकार से सहायता करने की अपील की गई है। खादी की बिक्री के एक रुपए में से—

≡) किसान के पास जाते हैं।
)॥ ओटने वाले ,, ,,
-)॥। धुनने वाले ,, ,,

।)॥। कातने वाले के पास जाते हैं।

।)॥ बुनने वाले ,, ,,

)॥ धोबी ,, ,,

-) खादी बेचने वाले ,,

प्रत्येक देशप्रेमी का कर्तव्य है कि अधिक से अधिक खादी का प्रयोग करके सङ्घ की सहायता करे।

❀ ❀ ❀

अनमेल विवाह का कुपरिणाम

हमारे समाज में अनमेल विवाह के सैकड़ों उदाहरण नित्य देखने को मिलते हैं। कहीं वृद्ध-बालिका विवाह, कहीं बालक-युवती विवाह, कहीं कुरूप-सुन्दरी विवाह, कही शिक्षित-अशिक्षिता विवाह, इसी प्रकार न जाने कितने प्रकार के अनमेल विवाह होते हैं। समाज के धर्माधिकारी वर्णों तथा धर्मों में अनमेल विवाह होते हुए न देख सकेंगे, परन्तु इस प्रकार के विवाहों के विषय में उनके मुँह से चूँ तक नहीं निकलती। इसका परिणाम यह होता है कि निरपराधों को ऐसे विवाहों के कुपरिणाम भोगने पड़ते हैं।

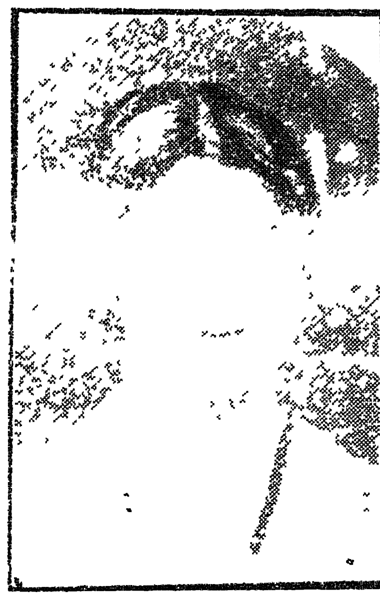
अभी ऐसा एक मामला बलिया ज़िले में हो चुका है। फूलिया नाम की एक तरुण बाला का विवाह एक अल्पायु बालक के साथ हो गया था। कुछ समय तक तो फूलिया साधारण रूप से घर में रहती रही, परन्तु एक बार जब वह एक मेला देखने गई थी, तो वहाँ से लौट कर न आई। बात यह थी कि वहाँ से वह एक मुसलमान के साथ बलिया पहुँची और वहाँ उसकी विवाहिता स्त्री होकर रहने लगी। घर वालों ने पता लगने पर पुलिस तथा अदालत की शरण ली। फूलिया ने अपने बयान में कहा कि वह मुसलमान हो गई थी। अदालत में यह बात सिद्ध न हो पाई और फूलिया तथा उसके प्रेमी दोनों को उसने कारागार भेज दिया है।

हमारे समाज में कुछ लोगों का विश्वास है कि 'बड़ी बहू बड़े भाग'। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बड़ी बहू को छोटे बालक के सिर बाँधने वालों के तो बड़े भाग्य होते नहीं, हाँ, यह सत्य है कि मुसलमान गुण्डों को 'बड़े भाग्य' की प्राप्ति अवश्य हो जाती है।

❀ ❀ ❀

महात्मा जी की नई चेली

महात्मा जी के पवित्र व्यक्तित्व तथा उनके अद्भुत सिद्धान्तों ने विदेशों में उनके अनेक भक्त पैदा कर दिए हैं। कुछ तो उनके चरणों में बैठ कर शिक्षा प्राप्त करने के लिए यहाँ आए हैं और हिन्दू होकर भारत-माता की सेवा में लग गए हैं। उन्हीं में से हैं कुमारी निला क्रैमकुक, जो अमेरिकन कवि जॉर्ज क्रैमकुक की सुपुत्री हैं। आपकी आयु इस समय २१ वर्ष की है।



कुमारी निला क्रैमकुक

अपना नाम 'नीला नागिनी' रख कर आप आबू पर्वत पर वैरागिन के रूप में निवास करती हुई महात्मा जी के छुटकारे की प्रतीक्षा कर रही हैं। ब्राह्मण-जीवन को अपनाने के लिए आपने आत्म-शुद्धि के निमित्त १४ दिन ईश्वर-वन्दना में तथा उपवास करके बिताए थे। आपका जीवन अधिकतर यूनान में बीता है, जहाँ आप चर्खे का सन्देश देती रही थीं।

आपने इस जीवन को अपनाने के विषय में लिखा है:—

"जब मैं १२ वर्ष की थी, तभी महात्मा जी के आदर्शों की ओर आकर्षित हो गई थी। इसी कारण मैंने संस्कृत ग्रन्थों की खोज भी की थी। जब मैं महात्मा जी के दर्शन करूँगी, तब उन्हे पता लग जायगा कि उनके प्रति मेरी भक्ति स्त्री-सुलभ अन्धविश्वास के आधार पर नहीं है। महात्मा जी वेद के उन अमूल्य उपदेशों का प्रचार कर रहे है, जिनके द्वारा संसार मे शताब्दियों तक सत्य तथा शान्ति का साम्राज्य रहा है। महात्मा जी के कारण मेरे अन्तर्चक्षु खुल गए हैं। मै वर्षों से एक पथदर्शक की प्यासी थी, मैंने उसे गाँधी जी के रूप मे पा लिया है। भविष्य मे वह मेरे पथ-प्रदर्शक तथा पिता होंगे, और मैं उनकी पुत्री।"

❀ ❀ ❀

अन्धविश्वास की भेंट

कुछ दिनों पूर्व लखनऊ की एक अदालत मे एक बडा मनोरञ्जक मामला सुना गया था। अभियुक्त थी उमराई नाम की एक स्त्री और उसका अपराध था एक नव वर्षीया बालिका की हत्या। हत्या का कारण यह बताया गया था कि एक दिन उमराई कई स्त्रियों के साथ अपने ग्राम में गाना गा रही थी। गाते-गाते उन्हें प्रतीत हुआ कि उनके स्वरों मे माधुर्य न था। इस माधुर्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने देवी सरस्वती पर एक बालिका का बलिदान चढ़ाने की बात सोची।

दूसरे दिन उमराई इस अभागी बालिका को अपने साथ अपने घर ले गई और फावड़े से उसे मार डाला। एक छः वर्ष के बालक ने इस पैशाचिक लीला को देखा था, उसने मृत बालिका के पिता को सारा हाल बता दिया। पुलिस की ओर से मुकदमा चलाया गया और उमराई को आजन्म कालेपानी का दण्ड मिला।

इस प्रकार के मामले, दुर्भाग्यवश, इस युग मे भी असंख्य सुनने में आते हैं। देवी-देवताओं पर निरपराध बालक-बालिकाओं का बलिदान चढ़ाने की प्रथा अब लुप्त होती जाती है, परन्तु अब भी वह इतने आधिक्य, से प्रचलित है कि प्रत्येक समाज-सुधारक को उसके नष्ट करने का घोर प्रयत्न करना चाहिए।

❀ ❀ ❀

स्काउट और स्वदेशी

पण्डित हृदयनाथ कुँजरू, चीफ़ स्काउट कमिश्नर, सेवा-समिति बॉय स्काउट एसोसिएशन ने स्काउटों के नाम निम्न आशय की एक अपील प्रकाशित की है :—



पं० हृदयनाथ कुँजरू

"अन्य देशों की भाँति यहाँ (भारत मे) भी आजकल आर्थिक सङ्कट का दौरदौरा है। देश इसके बोझ को सँभालने मे बिल्कुल असमर्थ है।

अमेरिका, ब्रिटेन आदि देशों के स्काउट (स्वयंसेवक) अपने देशों का बोझ हलका करने के लिए यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं। २६ मार्च को जो नेशनल कौन्सिल का अधिवेशन हुआ था, उसमें भी मैंने इस सम्बन्ध मे प्रकाश डाला था। जैसे कि ग्रेट-ब्रिटेन में स्काउट स्वदेशी का प्रचार कर रहे हैं, मै चाहता हूँ, उसी प्रकार भारत में भी भारतीय स्काउट स्वदेशी आन्दोलन को उन्नत करें। अतः तुम्हें इस माँग को राष्ट्रीय माँग समझ कर स्वदेशी आन्दोलन में पूर्ण योग देना चाहिए, जिससे वह अतुल सम्पत्ति, जो प्रति वर्ष विदेशों को जाती है, यहाँ से जाना बन्द हो जाय।

राष्ट्रीय हैडक्वार्टरों ने इस सम्बन्ध मे जो कार्यक्रम सोचा है, उसके सम्बन्ध मे मै तुम्हे कुछ बतलाऊँगा। क्या मैं तुमसे यह आशा करूँ कि तुम उस कार्यक्रम पर चल कर देश में स्वदेशी के प्रचार को घर-घर में पहुँचा दोगे तथा भारत को नष्ट होने से बचा लोगे? मैं जो कार्यक्रम बतलाऊँगा वह पूर्ण नहीं है। तुम्हें जहाँ भी इसमें त्रुटि दिखाई दे वहाँ संशोधन करके क्रियात्मक कार्य शुरू कर देना चाहिए। कार्यक्रम के बाहर भी तुम काम कर सकते हो—अर्थात् जो कुछ तुम्हें ठीक मालूम हो सो करो।

आजकल के ज़माने में, जबकि भारत में कॉङ्ग्रेस और सरकार मे युद्ध जारी है, हमारा स्वदेशी आन्दोलन भी सन्देह की दृष्टि से देखा जा सकता है। अतएव हमें मातृभूमि की भलाई के लिए सच्चे स्काउटों की तरह अपना काम करना चाहिए, ताकि अन्य लोग बाद में हमको उलाहना न दें। हमें किसी दल या सम्प्रदाय से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

'काम करके सीखा जाना है' यह प्रत्येक स्काउट की नीति होनी चाहिए। हमें दिखा देना चाहिए कि भारतीय सेवा-समिति के स्काउट अङ्गरेज़ स्काउटों से किसी तरह भी कम नहीं हैं। मैं तुम्हें इस कार्य में सफलीभूत होते हुए देख कर बहुत प्रसन्न हूँगा।

सेवा-समिति के स्काउट ऐसी परिस्थितियों में, जैसी कि अब देश में उत्पन्न हो रही हैं, मातृभूमि की किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?

स्वयं

(१) अपनी आवश्यकताओं को कम करने तथा किफ़ायतशारी से।

(२) केवल भारत में बनी हुई वस्तु ख़रीदने की शपथ खाने से (चाहे कितना ही बलिदान करना पड़े)।

(३) स्वयं उदाहरण बन कर दूसरों को दिखाने से।

(४) जो अपने विचारों से सहमत न हो, उस पर ज़ोर न देने तथा उससे घृणा न करने से।

घर

(५) घर में किस-किस चीज़ की आवश्यकता है और कौन-कौन सी चीज़ स्वदेशी मिल सकती है, यह सब विचार करने से।

(६) मित्रों, सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों को स्वदेशी की क़द्र समझाने तथा उन्हें अपने रङ्ग में रँग लेने से।

(७) सभी स्वदेशी वस्तु ख़रीदने से।

जाति

(८) अपने मोहल्ले वालों की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा उन्हें स्वदेशी दूकानों का पता बताने से।

(९) सप्ताह में एक बार घरों में जा-जाकर स्वदेशी का प्रचार करने, स्वदेशी माल की फेरी लगाने तथा लाभ की अपेक्षा स्वदेशी का अधिक ख्याल रखने से।

(१०) स्वदेशी सम्बन्धी पोस्टर लगाने तथा परचे बाँटने से।

(११) स्वदेशी माल की प्रदर्शनियाँ करने से।

(१२) स्वदेशी सम्बन्धी खेल खेलने तथा ड्रामा करने से।

(१३) जो संस्थाएँ स्वदेशी का कार्य कर रही हैं, उनसे सहयोग लेने से।

स्वदेशी की दुकानें

(१४) लोगों को स्वदेशी माल की दुकानें खोलने के लिए कहने तथा जो पहले ही दुकानें खुली हुई हैं, उनको योग देने से।

(१५) उन ख़ुर्दा-फ़रोशों तथा थोक-फ़रोशों के पते (जो स्वदेशी वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हों) जनता को बताने से।

(१६) स्थानीय उद्योग-धन्धों का निरीक्षण करने से।

(१७) स्वदेशी माल के सम्बन्ध में जो त्रुटियाँ बतलाई जाती हों, उनको पूरा करने से।

स्काउट-ट्रूप (दल)

(१८) स्काउटों को छोटे-छोटे धन्धे सिखाने से (जैसे बटन बनाना, होल्डर बनाना, खिलौने बनाना, इत्यादि) और उन्हें व्यापारिक आधार पर उन्नत करने से।

(१९) मेलों में तथा तमाशों में स्वदेशी-प्रचार करने से।

इसी प्रकार की अपीलें लॉर्ड बेडेन पॉवेल आदि स्काउट-नेताओं ने स्काउटों से ब्रिटेन में की हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि स्काउट कमर कस कर कार्य करने पर उतारू हो जायँ, तो स्वदेशी-प्रचार की गति बहुत-कुछ बढ़ सकती है। हमें आशा है, भारतीय स्काउट श्री कुँज़रू जी की इस अपील के अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर देंगे।

❀ ❀ ❀

आयलैंण्ड तथा शपथ-प्रश्न

पाठकों को विदित होगा कि जब से आयलैंण्ड के शासन की बाग-डोर मि० डी वेलेरा के हाथों मे आई है, तब से ब्रिटिश साम्राज्य भर में—विशेषकर इङ्गलैण्ड मे—तहलका मच गया है। बात यह है कि डी वेलेरा और उनका दल 'फिआना फ़ेल' अपने देश के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्षपाती हैं, इसीलिए वे अपने शासन-विधान से राज-भक्ति की शपथ उडा देना चाहते हैं। इस बात की घोषणा उन्होंने निर्वाचन से पूर्व ही कर दी थी, और राज्य की बागडोर जनता ने उनके हाथो मे देकर यह दिखा दिया है कि उसकी भी यही सम्मति है। शासन-विधान से शपथ को उडा देने के लिए डी वेलेरा ने जो बिल 'डेल' मे उपस्थित किया था, वह तीनो बार पास हो चुका है। अब सेनेट मे उस पर विचार हो रहा है। सेनेट में उसके मार्ग मे रुकावटे पडेगी, परन्तु डी वेलेरा और उनकी सरकार 'रेफ़रेण्डम' की शरण ले सकते हैं, जिसके द्वारा प्रजा स्वयं उस बिल को पास कर सकती है।

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को आयलैंण्ड की यह स्वातन्त्र्य-प्रियता बहुत खटकी है और 'साम्राज्य की एकता' तथा 'सिंहासन' के नाम पर वे डी वेलेरा पर भाँति-भाँति के प्रहार कर रहे हैं। मि० टॉमस ने तो यहाँ तक धमकी दे दी है कि यदि शपथ-बिल पास हो गया तो आयलैंण्ड के माल पर विदेशी माल की भाँति ही कर लगेगा।



मि० डी वेलेरा की माता, जिनकी आयु इस समय ८० वर्ष है। अपना दूसरा विवाह काकर लेने के रण आप अब श्रीमती कैथरीन व्हीलराइट कहलाती हैं।

इसका प्रभाव आयलैंण्ड पर क्या पड़ेगा, यह निम्न-लिखित अङ्कों से विदित हो जायगा।

पिछले साल इङ्गलैण्ड ने आयर्लैण्ड से क्या ख़रीदा : —

	पौण्ड-मूल्य
जीवित पशु	१,२०,४८,४६६
अण्डे	२२,६६,५६८
मक्खन	२१,११,४८ ८
मछली	३,७२,०७४
मास ...	लगभग ५०,००,०००

इसके अतिरिक्त एक बिस्कुट बनाने वाली कम्पनी ने यह घोषित कर दिया है कि शपथ-बिल पास हो जाने पर कम्पनी आयर्लैण्ड के आधे मज़दूरों को निकाल देगी। इस प्रकार पाठक अनुमान कर सकते हैं, आय-



मि० डी वेलेरा

लैण्ड को भारी क्षति उठानी पड़ेगी। परन्तु डी वेलेरा पर न तो ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का और न इन अङ्कों का कोई प्रभाव पडा। बिल पेश करते समय डी वेलेरा ने एक ज़ोरदार भाषण में अपनी स्थिति साफ़ करते हुए कहा था कि शपथ को उड़ा देने की प्रतिज्ञा वे कर चुके हैं और उसे पूर्ण करेंगे। आयर्लैण्ड की इस विकट, साथ ही मनोरञ्जक समस्या की ओर सारे संसार का ध्यान लगा हुआ है; क्योंकि इस प्रकार की घटनाएँ एक देश के ही नहीं, सारे संसार के इतिहास को परिवर्तित कर सकती हैं।

❀ ❀ ❀

अरबों के नेता

मौलाना शौकतअली आजकल बड़े लम्बे पैर फेंक रहे हैं। अभी तक तो वह भारतीय मुसलमानों के ही नेता बनते थे, अब विदेशी मुसलमानों के नेता भी बनने लगे। उन्हें इस प्रकार का नेतृत्व प्रदान करने वाली है उनकी नव-विवाहिता आङ्ग्ल-पत्नी। आपने 'इवनिङ्ग न्यूज़' के सम्वाददाता के सामने कह ही तो डाला कि मौलाना साहब अरबों के नेता हैं। परन्तु उनकी इस पतिपूजा पर बेगम इज़्ज़तपाशा नामक एक अरब रमणी ने तत्काल ही पानी डाल दिया। बेगम ने लिखा है—"यह बिलकुल असत्य है कि मौलाना अरबों के नेता हैं या कभी हो भी सकेंगे। वह केवल एक मित्र हैं। हम उन जैसे विदेशी को किस प्रकार अपना नेता समझ सकते हैं? हमारे यहाँ काफ़ी अरब-नेता है, जिनमें से प्रमुख हैं सम्राट फ़ीज़ल तथा सम्राट इब्नसऊद। यदि किसी विदेशी को हम अरब-नेता मानते हैं, तो वह हैं केवल महात्मा गाँधी।"



महात्मा गाँधी

आशा है कि बेगम इज़्ज़त-पाशा के इन सत्य भरे हुए शब्दों को पढ कर बेगम शौकतअली की आँखें खुल जायँगी। सत्य तो यह है कि यदि स्वयं भारतीय मुसलमानों का मत मौलाना के नेतृत्व के विषय में लिया जाय, तो शायद यहाँ भी वह पूरे न उतरें।

❀ ❀ ❀

चतुर्वेदी-सम्मेलन

इटावा में मुहर्रम की छुट्टियों में चतुर्वेदी महासभा का अधिवेशन हुआ था, उसके साथ ही महिला-परिषद तथा युवक-सङ्घ के अधिवेशन भी हुए थे। महासभा के सभापति पण्डित मुन्नालाल मिश्र ने अपने भाषण में सामाजिक सुधार के सम्बन्ध में दो-चार बड़ी

मार्के की बातें कहीं। आपने विवाह-संस्कार को कुछ घण्टों का मामला बता कर इस बात की निन्दा की कि विवाह में इतना समय और धन व्यर्थ ही नष्ट किया जाता है। आपने नवयुवकों से यह प्रार्थना की कि वे शारदा-एक्ट के विरोधियों और तोड़ने वालों की संख्या को कम करने का प्रयत्न करें। साथ ही आपने ब्राह्मणों में सहभोज की प्रथा का समर्थन किया। यहाँ तक समाज-सुधार का बिगुल बजा कर, दुःख है, आगे आप मैदान से पीछे हटने लगे। आपने एक साथ विधवा-विवाह का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। आपने कहा कि चाहे विधवाएँ अक्षतयोनि हों, चाहे क्षत-योनि, चाहे वे शैशवावस्था में विधवा हुई हों, चाहे दो बच्चों की माता होने के अनन्तर, उनके लिए विवाह की आज्ञा देनी ही नहीं चाहिए। अपने इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए आपने इस विषय की स्वरचित पुस्तक हाथ खोल कर बाँटी।

सभापति महोदय के इस कृत्य पर सभी को आश्चर्य होगा। इस युग में, जब विधवा-विवाह का प्रचार लग-भग सभी जातियों में हो गया है, चतुर्वेदी-समाज के एक समाज-सुधारक नेता का ऐसी अनर्गल बातें कहना समझ के बाहर है। हमें हर्ष तो यह है कि उनकी इस समाज का गला घोंटने वाली बात का समर्थन युवक-सङ्घ तथा महिला-परिषद ने नहीं किया। युवक-सङ्घ ने पिछले वर्ष विधवा-विवाह के पक्ष में एक प्रस्ताव पास किया था। इस वर्ष उसके अनुसार अधिकाधिक कार्य करने का निश्चय हुआ है। महिला-परिषद् की सभानेत्री श्रीमती इन्द्राणी देवी ने तो विधवा-विवाह का बड़े ओजपूर्ण तथा ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया। आपने अपने भाषण में एक हृदय-विदारक घटना का उदाहरण देकर विधवाओं पर होने वाले अमानुषिक अत्याचारों का वर्णन किया। हमें आशा है, देवी जी के भाषण ने सभापति महोदय तथा मथुरा के चौबों की आँखें खोल दी होंगी।

युवक-सङ्घ के अधिवेशन में पण्डित राधेलाल चतुर्वेदी ने बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। आपने यूरोप तथा भारत की महिलाओं की तुलना करते हुए कहा कि यदि यूरोप में स्त्री-स्वातन्त्र्य की अति से हानियाँ हो रही हैं तो यहाँ स्त्रियों पर अहृदय अत्याचार के अति-रिक्त और कुछ नहीं हो रहा। पुरुष ने आपकी समक्ष में दस-बीस स्त्रियों तक से विवाह करके अपनी शक्ति की अति कर दी है। विधवा-विवाह-निषेध, शिशुहत्या, कन्याविक्रय, बहु-विवाह के रहते भी, आपने आश्चर्य प्रगट

२० महिलाओं को एक साल तक 'चाँद' मुफ़्त

प्रार्थना-पत्र शीघ्र भेजिए

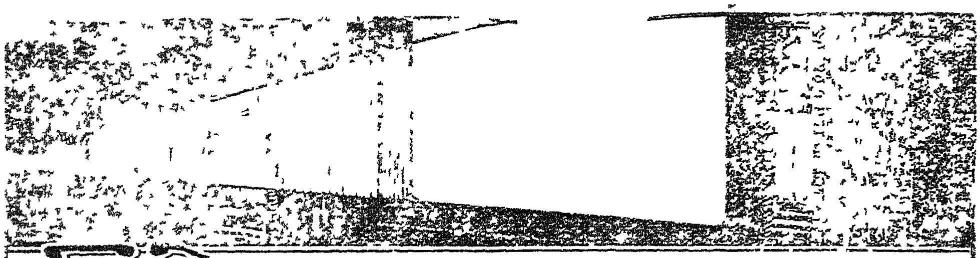
'चाँद' की सेवाओं से प्रसन्न होकर मुज़फ़्फ़र-पुर ज़िले की रतवाल रियासत के रईस श्री० ठाकुर हनुमानप्रसाद सिंह जी की विदुषी धर्म-पत्नी श्रीमती श्यामादेवी जी ने हमारे पास १००) रुपए इस आशय से भेजने की उदारता की है कि इस धन से ऐसी असहाय महिलाओं के नाम 'चाँद' जारी कर दिया जाय जो धनाभाव के कारण चन्दा देने में असमर्थ हैं। संस्था ने भी ६॥) रुपया वार्षिक चन्दे के स्थान पर केवल ५) रुपए ही स्वीकार करके २० निर्धन महिलाओं के नाम 'चाँद' एक वर्ष तक जारी करने की उदारता दिखाई है; इसलिए जो बहिनें इस आदर्श दान से लाभ उठाना चाहें, उन्हें शीघ्र से शीघ्र प्रार्थना-पत्र निम्न लिखित पते से भेजना चाहिए :—

मैनेजर, 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक—इलाहाबाद

नोटः—हमें आशा है, केवल निर्धन बहिनें ही पर-मात्मा को साक्षी देकर इस दान से लाभ उठाएँगी।

—सम्पादक 'चाँद'

किया कि कुछ व्यक्ति अपनी सभ्यता की डींग मारते फिरते हैं। हमें आशा है, पण्डित राधेलाल जैसे नेताओं के नेतृत्व में युवक-सङ्घ समाज-सुधार सम्बन्धी कार्यों को अपूर्व उत्साह से करने में सफल होगा।



सिनेमा तथा रङ्गमञ्च

जापानी चित्रपट !

जापानी चित्रपट बनाने की पद्धति अङ्गरेज़ी और अमेरिकन पद्धति से सर्वथा भिन्न है। इङ्गलैण्ड, अमेरिका—और अब तो भारत—में भी बोलते, गाते-नाचते चित्रपट बनना प्रारम्भ हो गए हैं, परन्तु 'टॉकी' से अभी जापान कोसों दूर है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह देश सिनेमा-उद्योग के विकास के युग में अन्य देशों से पिछड़ा हुआ है। अमेरिका के विशाल स्टुडियो मे तैयार किए गए चित्रपट विशेषतः सामाजिक होकर अर्वाचीन जीवन के प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब चित्रित करके नए विचारों का प्रदर्शन करते हैं। परन्तु यहाँ कुछ उलटा ही है, यहाँ के व्यवसायीगण पुरातन प्रणाली और आदर्श को जीवित रखने के लिए तीन-चार सौ वर्ष पूर्व की सभ्यतामय चित्रपट तैयार करते हैं। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि ये लोग नित्य जीवन में घटित होने वाली छोटी-छोटी बाधाओं और कठिनाइयों से मिश्रित दर्दमय हास्य को भी पसन्द नहीं करते हैं।

जापानी सिनेमाघर किस कोटि के होते हैं, इसका विचार हम वहाँ के एक सिनेमाघर का वास्तविक वर्णन करके जान सकेंगे। वहाँ के सिनेमाघरों मे जूते निकाल कर जाना पड़ता है, और विशाल गेलरी में अन्य दर्शकों के साथ बैठना पड़ता है। सिनेमा-गृह हा-हा-ही-ही करते हुए आबाल वृद्ध प्रेक्षकों से ठसाठस भरे रहते हैं। जापानी प्रजा रसिक है और परदे पर दिल को थर्रा देने वाले प्रसङ्गों को देखने के लिए उत्सुक रहती है।

हमारे यहाँ जिस प्रकार "पाथेगेज़ट" आदि प्रासङ्गिक फ़िल्में बतला कर खेल का प्रारम्भ किया जाता है, उसी प्रकार जापान में भी प्रासङ्गिक चित्रपट से खेल का प्रारम्भ किया जाता है। इसके बाद दो मुख्य चित्रपट बतलाए जाते हैं। यह पहले कह चुके हैं कि जापानियों को हास्य प्रिय नहीं है, अतः जापानी स्टुडियो हास्यमय चित्रपट नहीं निकालना चाहते हैं।

जापानी चित्रपटों में वीररस प्रधान रूप से होता है। अतः महान युद्धों के भव्य प्रसङ्ग बहुत दिखाए जाते हैं। सरदार और उसकी शत्रु-सैन्य के बीच भयङ्कर मार-काट होती है और जब बहादुर सरदार अपने शौर्य से अरि-दल को परास्त करता है, तब प्रेक्षकों के आनन्द का पारावार नहीं रहता है। यहाँ के चित्रपटों में समुद्री युद्ध की प्रधानता रहती है, और प्रत्येक चित्रपट का अन्त भी अरि-दल के नाश के साथ ही किया जाता है।

इस प्रकार जापानी चित्रपट देखने से विदेशी प्रेक्षकों का मन जापान की संस्कृति, मनोहर सृष्टि-सौन्दर्य पर बरबस खिंच जाता है। जापानी संस्कृति से सारा वातावरण इतना अधिक रँगा रहता है कि प्रेक्षकों के विचार भी जापानमय हो जाते हैं। पाइन के वृक्षों की घटाओं से दूर-दूर तक स्थित मन्दिरों की ओर दृष्टि फेरते ही विशाल मार्ग, मन्दिर के अन्तरगृह में समाधिस्थ स्थिति में माला के दाने फेरता हुआ पुजारी और पवन में प्रस्तारित धूप से पुनीत हुआ वातावरण भगवान गौतम-बुद्ध का स्मरण कराता है। और सुन्दर मणि के समान जापान के गौरव का रक्षक, पवित्र पर्वत फ़्रीजीयामा की हिमाच्छादित चोटियों के साथ स्मृति-पटल पर सदा के लिए एक ख़ास स्थान कर जाता है।

—कृष्णचन्द्र "हरित"



देशी राज्यों में व्यभिचार

ले० श्री० गोविन्द हयारण, प्रकाशक इन्द्रप्रस्थ पुस्तक-भण्डार देहली, पृष्ठ-संख्या १५७ ; मूल्य १)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने बड़ी खोज के साथ तथा साधारण किन्तु मनोरञ्जक भाषा में देशी राज्यों में होने वाले व्यभिचार का वर्णन किया है। इसके पढ़ने से पता चलता है कि आज आदर्श शासक कहलाने वाले राजाओं के घर और बाहर व्यभिचार वीभत्समय नृत्य कर रहा है। लेखक ने देशी राज्यों की प्रजा की, यह पुस्तक लिख कर, अच्छी सेवा की है। पुस्तक संग्रहणीय है।

❀ ❀ ❀

पुस्तक-मन्दिर काशी की ४ पुस्तकें :—

१—एक घूँट

यह पुस्तक हिन्दी के स्वनामधन्य नाटककार बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद' की एक छोटी-सी अनूठी रचना है। एकाङ्की नाटिका के रूप में इसकी सृष्टि हुई है। आरम्भ में पात्र-पात्रियों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है।

इस नाटिका में जो सङ्गीतमयी कविताएँ हैं, उनमें भावुक कवि का प्रकृत-प्रेम छलक रहा है। कथोपकथन कवित्वपूर्ण है। रसाल, मुकुल और आनन्द के अभिनय बड़े ही सुन्दर हैं। चँदुला का हँसोड़पन बीच-बीच में बड़ा मज़ा देता है। झाड़ूवाला और आनन्द—दोनों के सदृश कई सज्जन हिन्दी-संसार में भी मिल सकते हैं। 'वनलता' जैसी स्त्री तो किसी न किसी साहित्य-सेवी के गले ज़रूर पड़ी होगी। मूल्य ॥)

❀

२—पेरिस का कुबड़ा

यह विश्वविख्यात फ्रेञ्च उपन्यासकार 'विक्टर ह्यूगो' का सबसे प्रसिद्ध उपन्यास है, जिसका हिन्दी-अनुवाद बड़े सुन्दर ढङ्ग से प्रकाशित करके काशी के 'पुस्तक-मन्दिर' ने हिन्दी के उपन्यास-भण्डार में एक अच्छी चीज़ भेंट की है। इसकी वर्णनशैली बड़ी ही रोचक है। चरित्रों का स्वाभाविक चित्रण तथा भाषा का लालित्यपूर्ण चमत्कार इसकी मुख्य विशेषता है। अनुवाद में लेखक के भावों की ख़ूब रक्षा की गई है और अनुवाद की भाषा भी अच्छी है। पुस्तकारम्भ में मूललेखक का चरित्र भी प्रकाशित है। छपाई और वाह्यावरण सुन्दर, मूल्य ३) रु० !

❀

३—हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियाँ

इस पुस्तक में हिन्दी की सैकड़ों अच्छी कहानियों में से चुन कर केवल १३ श्रेष्ठ कहानियाँ दी गई हैं। जिन १३ लेखकों की कहानियाँ इसमें संग्रहीत हैं, वे कहानी-लेखन-कला की सिद्धि में यथेष्ट यशार्जन कर चुके हैं। प्रत्येक कहानी के साथ उसके लेखक का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। इसके संग्रहकर्त्ता पं० नन्द-दुलारे वाजपेयी, एम० ए० ('भारत'-सम्पादक) ने 'कहानी-तत्त्व'-शीर्षक एक आलोचनात्मक निबन्ध पुस्तकारम्भ में दिया है, जो वस्तुतः कहानी-लेखकों के मनन करने योग्य है। इस संग्रह में कहानी के मज़े के साथ भिन्न-भिन्न लेखकों की पृथक्-पृथक् शैली होने के कारण विविध भाँति की भाषा का चमत्कार देखने को मिलता है। कहानियों का आदर्श पवित्र और ऊँचा है। स्त्री और पुरुष निस्सङ्कोच भाव से इनका रसास्वादन

कर सकते हैं। क़रीब २५० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १॥) रुपया। छपाई साफ़ और सुन्दर है।

❀

४—बुढ़िया पुरान

इस पुस्तक के लेखक पुराने हिन्दी-शिल्पी बाबू महावीरप्रसाद गहमरी हैं। उनकी भाषा बड़ी ही सरल होती है। ठेठ देहाती भी उनकी टकसाली भाषा को बड़ी सुगमता से समझ सकता है। यह पुस्तक उन्होंने स्त्रियों के लिए लिखी है और इसमें उसी भाषा का प्रयोग किया है, जो घरों में स्त्रियाँ बोलती हैं; फिर भी प्रचलित भाषा के नियमानुसार वह शुद्ध है। इस पुस्तक में लेखक ने स्त्रियों के व्रतों से सम्बन्ध रखने वाली उन विचित्र कहानियों को लिपिबद्ध किया है, जो परम्परा से हिन्दुओं के घरों में बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों द्वारा मौखिक ही कही-सुनी जाती हैं। जिउतिया, भैया-दूज, गनेस-चौथ और करवा-चौथ के व्रतों में बहू-बेटियों की मण्डली के बीच बूढ़ी और सयानी स्त्रियाँ एक ही स्वर से एक कहानी कह डालती हैं। ऐसी कहानी में घटना-वैचित्र्य के साथ-साथ भावों की शृङ्खला भी होती है। इसी ढङ्ग की कहानियाँ इस पुस्तक में दी गई हैं। ६४ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य आठ आने है।

—चक्रधर

❀

प्राप्ति-स्वीकृति

(१) स्वर्गीय सन्देस—ले० रावत मोतीसिंह चन्देल, अजनपुर देहरादून। मूल्य ।≡)

(२) बचन प्रबोध—ले० स्वामी प्रीतमसिंह जी, ऋषिकेष। बिना मूल्य

(३) Right Breathing—प्रकाशक जे० सी० वासक, ३६२ अपरचितपुर रोड कलकत्ता। मूल्य ।≡)

(४) श्रीबदरी केदार-यात्रा—ले० पं० बलराम जी दुबे; प्रकाशक—ला० रामनारायण लाल इलाहाबाद मूल्य ≡)॥

(५) भ्रम भञ्जन—पं० पूर्णचन्द्र शर्मा, झाँसी

(६) मानस-तरङ्ग—ले० हरशरण शर्मा, माधवगढ़। मूल्य ।)॥

(७) सीताहरण—ले० राय सुरेन्द्रनाथ वली 'ग़रीब' दरियाबाद, अवध। मूल्य ≈)

(८) भजनभूषण और सङ्गीत सिद्धान्त शिरोमणि—ले० पं० ब्रह्मानन्द गान्धर्व, गली कुलियाँ देहली।

(९) एल० पी० जेन्स सङ्केत लिपि मू० १॥)

(१०) U. P. Education—मासिक पत्र।

(११) 'आरोग्य रक्षक' पशु-रक्षक'—मूल्य क्रमशः ॥) तथा ॥) संग्रह० मुन्शी नत्थू ख़ाँ क़ुरैशी कोटरा (उरई)

(१२) 'जेम्स एलन के विचार', 'निःश्वास' 'एकान्त में', 'जीवन-विज्ञान' तथा 'शान्ति के पथ पर'—इन पाँचों पुस्तकों के लेखक, ब्रह्मचारी इन्द्र, प्रकाशक-शान्तिसदन, पढीना, पो० भोगाँव (मैनपुरी)।

(१३) हिदायतनामा ख़ाविन्द (उर्दू)—लेखक कविराज हरनामदास बी० ए०, लाहौर मूल्य १)

(१४) सुरभिसङ्कीर्तन—सम्पादक पं० गुरुप्रसाद जी पाण्डेय 'गुरु'; प्रकाशक श्रीगोशाला सोसायटी, कानपुर।

(१५) तत्व-विज्ञान—लेखक तथा प्रकाशक साधु शान्तिनाथ मङ्गलभुवन, पञ्चवटी नासिक।

(१६) निरञ्जनगीता (गुजराती)—ले० सी० टी० भायाणी, बम्बई। मूल्य १)

(१७) चिकित्सा प्रकाश—सम्पादक श्री० सीताराम अग्रवाल, प्रकाश कार्यालय चाहचन्द, प्रयाग। मूल्य ~)। ग़रीबों से)।

(१८) कला-कौशल (मासिक पत्र)—सम्पादक श्री० के० ए० देसाई, भिवानी, वार्षिक मूल्य २॥)

(१९) कलकत्ता मारवाड़ी रिलीफ़ सोसायटी का पञ्चाङ्ग।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

आज का मङ्गलाचरण भी, गत वार की तरह, दूल्हा बाबा अर्थात् बाबाये ख़िलाफ़त के नामेनामी के साथ ही समाप्त करने का विचार हिज़ होलीनेस ने कर लिया है। क्योंकि अख़बारों में ख़बर छपी है कि आप 'हनीमून' के मज़े लेने की इच्छा से शीघ्र ही अमेरिका तशरीफ़ ले जाने वाले हैं और वहाँ से लौटने पर कुछ दिनों तक लण्डन में बूदोबाश अख़तियार करेंगे।

❀

यद्यपि आपका चला जाना हिन्दुस्तान की बद-क़िस्मती होगी, मगर ऐसा होना कोई अनुचित बात नहीं है; क्योंकि—"ससुरारि पियारि भई जबतें, रिपुरूप कुटुम्ब भए तबसें।" इसीलिए तो हिन्दुओं के बाबा भोलानाथ और भगवान विष्णु शादी के बाद से सदैव ससुराल में ही कयाम पज़ीर हैं। पहले हज़रत की भाँग-बूटी कैलाश-शिखर पर छना करती है और दूसरे क्षीरसागर में शेषनाग की मुलायम छाती पर विश्राम करते हैं।

❀

मगर बात यह है कि लीडरी मौलाना की मशकोपम तोंद पर जी-जान से फ़िदा हो चुकी है। उसने मौलाना को धन-ऐश्वर्य दिया है, यश और मान दिया है, आब-कारी-विभाग के एक इन्स्पेक्टर को शाहे-इङ्गलैण्ड से हाथ मिलाने का सुअवसर दिया है और साथ ही दी है तेईस वर्ष की युवती अथच गोरी (सेकेण्ड हैण्ड ही सही) बीबी, और साथ में, तुबंत पर फ़ातेहा पढ़ने के लिए, साढ़े पाँच साल का एक "नफ़्फ़ैता" भी। बत-लाइए, अब और क्या चाहिए?

❀

सो जनाब, हमारे मौलाना भी ऐसे एहसान-फ़रोश नहीं हैं कि लीडरी छोड़ कर इङ्गलैण्ड चले जाएँगे, और फिर ऐसे मौके पर, जब कि बम्बई में दाढ़ी-चोटी का मधुर मिलन हो चुका है। वल्लाह, यही तो मौक़ा है, बुढ़ौती में शादी के कारण लीडरी के उखड़े हुए क़दमों को फिर से जमा लेने का। लेहाज़ा अपने राम भरी गङ्गा में खड़े होकर कह सकते हैं कि मौलाना इस स्वर्ण-सुयोग से न चूकेंगे और लण्डन तो क्या इस वक्त बिहिश्त भी न जाएँगे।

❀

ज़रा चान्स तो देखिए, बम्बई में जिस समय और जिस स्थान पर यह मधुर सम्मेलन प्रारम्भ हुआ था, उसी समय मौलाना भी एक जुलूस के साथ वहाँ आ पहुँचे और जी-जान से शान्ति की स्थापना की चेष्टा में लग गए। इसीलिए महज़ सौ-दो सौ आदमी मरे और प्रायः हज़ार-दो हज़ार घायल होकर रह गए! वरना, क़सम ख़ुदा की ग़ज़ब हो जाता और चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी आपको बम्बई की शक्ल न दिखाई देती।

❀

कुछ 'देखि न सकहिं पराई विभूती' वाले ईर्ष्यालु जीवों को मौलाना की शादी शूल की तरह खटक रही है। कोई उनकी बुढ़ौती की दुहाई दे रहा है और कोई इसे इस्लाम के ख़िलाफ़ बता रहा है। मगर कोई कमबख़्त यह सोचने की तकलीफ़ गवारा नहीं करता कि आख़िर, इसमें मौलाना का अपराध क्या है। बेचारे इङ्गलैण्ड वालों के पास जोड़ के लिए दरख़्वास्त देने थोड़े ही गए थे। अल्लाह ने जब ख़ुद ही छप्पर फाड़ कर दे दिया है तो बेचारे लेते न तो क्या करते?

❀

और, फिर शादी की ज़रूरत जितनी बुढ़ौती में पड़ती है, उतनी जवानी में कहाँ पड़ती है? जवानों के सामने तो शैतान की अँतड़ी सी लम्बी ज़िन्दगी पड़ी

रहती है। वे संसार-सुख का उपभोग आज नहीं करते तो कल कर लेंगे ; जल्दी किस बात की है ? परन्तु बूढ़े बेचारों को तो शीघ्र ही यहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो जाना पड़ता है। फलतः स्वल्प समय में जितना भी संसार-सुख मिल सके उसका उपभोग कर लेना उनके लिए परमावश्यक है। कौन जानता है, मरने पर दोज़ख़ में जायँगे या बहिश्त में ?

❀

यही सोच-विचार कर दिल्ली के एक साठसाले ब्राह्मण ने मौलाना के क़दमों पर क़दम रख देने का इरादा कर लिया। एक षोड्शी ब्राह्मण-कन्या के साथ ब्याह की बात पक्की हो गई। बूढ़े बाबा कमर कस कर दूल्हा बने। बारात गई। मगर ऐन मौक़े पर कमबख़्त लड़की ने शादी करने से इन्कार कर दिया ! बेचारे बुढ़ऊ दादा 'हा हतोस्मि' करके रह गए ! नई नवेली के साथ आनन्दोपभोग की सारी लालसा-लता को ज्येष्ठ की लू लग गई !

हालत पे उस मुसाफ़िरे ख़स्ता के रोइए,
जो थक गया हो बैठ के मञ्ज़िल के सामने !

❀

इस नालायक़ लड़की ने बूढ़े बाबा की कमान-सी कमर पर जो ध्यांसा जमाया वह तो जमाया ही, लगे हाथ अपने धर्मशील पिता को भी एक जहाँदीदा, तजरुबेकार और विवाह-पटु दामाद का पैर पूजने से वञ्चित किया ! इसके साथ ही स्वयं भी वैधव्य जैसे पवित्र जीवन से वञ्चित हुई ! बाप रे बाप ! जब हिन्दुओं के घर ऐसी मुँहफट और बेहया लड़कियाँ पैदा होने लगीं तो दादा सनातनधर्म का ख़ुदा हाफ़िज़ ! हाय-हाय ! बूड़ा वंश कबीर का कि जन्मे पूत कमाल !

❀

इसीलिए अपने राम भङ्ग-बूटी छान कर होशो-हवास को दुरुस्त कर लेने पर बाल-विवाह-निषेध आन्दोलन की जड़ में मट्ठा डालने को सदैव तत्पर रहते हैं। बताइए, अगर छोटी उम्र में ही इस लड़की की शादी हो गई होती तो बेचारे पिता की गौरीदान करके सड़ से स्वर्ग पहुँच जाने की आशा पर पानी नहीं फिरता और न बूढ़े दूल्हाराम ही अपने जीवन के इन अन्तिम दिनों में नवनीत कोमलाङ्गी किशोरी के सुखस्पर्श से महरूम रह जाते।

❀

और सुनिए ! कन्यादान द्वारा अर्जित प्रचुर पुण्य-पाथेय लेकर जब पिता जी स्वर्ग-धाम के लिए प्रस्थान करते तो निश्चय बूढ़ा दामाद भी अपने पितृ-तुल्य ससुर का साथ देता। ऐसे लम्बे सफ़र के लिए एक साथी और वह भी अगर बफ़ज़लहु ख़ुदावन्द करीम अपना कोई निकट सम्बन्धी मिल जाए तो क्या कहना ! कौन मुसाफ़िर ऐसे साथी की आकाँक्षा न करता होगा। मगर अफ़सोस ! इस वैरिनि बिटिया ने इस सुयोग को भी झपट कर छीन लिया !!!

❀

एक ख़बर हिज़ होलीनेस के पास जयपुर राज्यान्तर्गत सीकर से आई है। दूल्हेराम की पैदाइश अभी कुल पचपन साल की है और दुलहिन है अठारह वर्ष की। सौदा अठारह हज़ार पर पक्का हो चुका है। अठारह साल की लड़की का दाम अठारह हज़ार, अपने राम की राय में बिल्कुल ठीक है। फ़ी वर्ष एक हज़ार रुपए ! इसे आप हर्गिज़ महँगा सौदा नहीं कह सकते।

❀

अजी जनाब, लड़की के खाने-पहनने और उसकी शिक्षा-दीक्षा आदि में, पिता जी के पारिश्रमिक समेत क्या एक हज़ार रुपए सालाना भी ख़र्च न हुए होंगे ! आख़िर रुपए का ब्याज भी कुछ रखिएगा या नहीं ! हाँ, कन्यादान का पुण्य अवश्य ही इस रोज़गार का 'प्रॉफ़िट' होगा और अठारह हज़ार में पिता जी की बुढ़ौती भी आनन्द से कटेगी। अब बताइए, लड़के की अपेक्षा यह लड़की ही भली ठहरी या नहीं ?

❀

कहते हैं, वर महोदय के पोते-पोतियाँ भी मौजूद हैं। वल्लाह, उनकी भी ख़ुशक़िस्मती ही समझिए। अठारह हज़ार की बेशक़ीमती 'दादी' पाकर वे भी निहाल हो जाएँगे। पोते-पोतियों के ब्याह देख कर तो बहुतों ने आँखें सार्थक की होंगी। यहाँ पोते-पोतियाँ अपने बूढ़े पितामह का ब्याह देख कर आँखें सार्थक करेंगे। पड़ोस के नौजवान पोतों की तो बाछें खिल गई होंगी।

❀

अपने राम तो ऐसे पिताओं की दूरदर्शिता पर मुग्ध हैं। ये लड़कियों के बदले रुपए लेकर इहलोक में आनन्द करते हैं और कन्यादान के पुण्य-प्रताप से स्वर्ग में चैन

की बंशी बजाते हैं। बूढ़े वर की आतुर आत्मा को तृप्त करने से पुण्य भी प्रचुर मात्रा मे मिलता ही होगा। वल्लाह, यह एक ही ढेले में दो शिकार का रिवाज निहायत ही अच्छा है। इस रिवाज के प्रचार से समाज में लड़कियों की क़दर भी बढ जाएगी और सनातनधर्म की जड़ भी दृढ हो जायगी।

❀

मगर, आक्षेप की बात तो यह है कि कुछ औंधी खोपड़ी वाले इन महोत्तम रिवाजों की जड़ों में मट्ठे उँडेलने के लिए तैयार हैं। देखिए न, बड़ौदा राज्य वाले क़ानून बनाने जा रहे हैं, कि ४५ वर्ष के ऊपर का कोई आदमी अट्ठारह वर्ष से कम उम्र की लड़की से शादी न करने पाएगा। अगर ख़ुदानाख़ास्ता कहीं यह क़ानून पास हो गया तो उपर्युक्त बिना पूँजी के रोज़गार को तो धक्का लगेगा ही, साथ ही बेचारे विवाहार्थी बूढ़े भी बेमौत मर जाएँगे।

❀

इसलिए हमारी राय है कि बड़ौदा की सरकार अपने राज्य में बन्दर की गाँठ (Monkey-Gland) द्वारा बूढ़ों को जवान बनाने वाला एक अस्पताल खोल दे। इससे राज्य को ख़ासी आमदनी होगी और बूढ़े भी चलते-चलाते कुछ दिन जवानी के मज़े लूट कर गायकवाड़ महोदय को शुभाशीर्वाद प्रदान करेंगे। साथ ही कन्याओं के पिता भी महापुण्य के साथ अपने परिश्रम का नक़दानक़द फल प्राप्त कर अपना जीवन सार्थक कर सकेंगे। आशा है, बड़ौदा की सरकार अपने राम के इस नम्र-निवेदन पर विचार करेगी।

❀

बड़ौदा की तरह ही त्रिवाङ्कुर राज्य ने भी एक अनर्थ कर डाला है। सारदा-क़ानून की तरह वहाँ भी चौदह वर्ष से कम की कन्या और अट्ठारह वर्ष से कम के वर का विवाह अपराध मान लिया गया है। परन्तु इससे गौरीदान के इच्छुकों के चिन्तित होने की कोई ज़रूरत नहीं है। क्योंकि 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' के अनुसार हमारी परम सुशीला ब्रिटिश-सरकार ने जिस प्रकार सारदा-क़ानून को अपनी क़ानूनी पोथी की शोभा के लिए बना रक्खा है, उसी तरह त्रिवाङ्कुर की सरकार भी करेगी।

❀

महामति हिज़ होलीनेस के मतानुसार प्रजारञ्जन सरकारों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। सो जनाब, ऐसे क़ानूनों को पास करके रख देने से ख़ासा प्रजारञ्जन हो जाता है। अर्थात् सुधारक-दल भी सन्तुष्ट हो जाता है, और गौरीदान वालों के पुण्यार्जन में भी कोई बाधा नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त सरकारों को जो सुख्याति मिल जाती है, वह अलग है।

❀

देखिए न हमारी ब्रिटिश-सरकार ने सारदा-एक्ट पास करके उसे खटाई में डाल रक्खा है। इससे सुधारक भी ख़ुश हैं और रूढ़िवादी भी। बाल-विवाह का भी बाल बाँका नहीं हुआ और सरकार भी सर्व-प्रिय बनी रही! आशा है, त्रिवाङ्कुर की सरकार भी इसी नीति का अनुकरण करेगी। क्योंकि ऐसा करने से, साँप भी मर जाएगा और लाठी भी न टूटेगी।

❀

मगर गोआ की पोर्च्युगीज़ सरकार ने तो, सुनते हैं, महा अनर्थ कर डाला है! कमबख़्त ने पवित्र देव-दासी-प्रथा के विरुद्ध क़ानून बना डाला है। बेचारे सनातन धर्मावलम्बी अपनी कन्याओं को देवताओं के चरणों में अर्पण कर, उसके बदले वैतरणी पार जाने का 'पासपोर्ट' आसानी से हासिल कर लेते थे। उधर देवता का प्रसाद भक्तों के काम आ जाता था। फलतः वे भी पुण्य के भागी बन जाते थे। और उन उत्सर्ग की हुई कन्याओं का तो कुछ हाल ही न पूछिए। उनके तो मानों दोनों हाथ लड्डू था।

❀

ख़ैर, कुछ लोगों ने बम्बई और मद्रास की गोरी सरकारों से भी प्रार्थना की है कि वे गोआ-सरकार का अनुकरण करें और देवदासी-प्रथा के ख़िलाफ़ क़ानून बनाएँ। मगर हम बम्बई और मद्रास की सरकारों को सावधान किए देते हैं कि वे इस बम-बखेड़े और सत्या-ग्रह के ज़माने में देवताओं के साथ छेड़छाड़ करके एक नई आफ़त मोल लेने से बाज़ आएँ। नहीं, तो बुढ़ौती में लॉर्ड विलिङ्गडन महोदय को देवताओं के विरुद्ध भी ऑर्डिनेन्स पास करने पड़ जाएँगे।

❀

इसके अतिरिक्त, यह प्राचीन पवित्र प्रथा जिस प्रकार हिन्दू-जाति और सनातनधर्म के लिए गौरव की

बात है, उसी तरह उस राज्य के लिए भी अतीव गौरव और प्रतिष्ठा की बात है, जिस राज्य में ऐसी प्रथा जीती-जागती है। हमारी तो दृढ़ धारणा है कि इस पवित्र प्रथा की बदौलत, हिन्दू-जाति और सनातन-धर्म के साथ ही हमारी सरकार भी नातीपूत समेत स्वर्ग जा सकती है।

❀

इस समय सरकार भी, चश्म बद्दूर, 'लघु जीवन सम्वत् पञ्च दशा' को पार कर मौलाना शौकतअली की उम्र को पहुँच गई है। परलोक-पथ के लिए कुछ सम्बल संग्रह कर लेना उसके लिए भी ज़रूरी ही है। ऐसी हालत में वह देवदासी-प्रथा के विरुद्ध कोई कार्यवाही करके अपना बना-बनाया आक़बत बिगाड़ डालेगी, 'को अस झूठ कहई को सुनई !'

❀

हमारी सरकार यों तो गुणों की खान ही है, जिस तरह भानमती की पिटारी में अजावान भरे रहते हैं, उसी तरह हमारी सरकार में भी विधाता ने अजीबो-ग़रीब गुण भर दिए हैं, परन्तु उसमें सबसे बड़ा गुण यह है कि वह किसी धार्मिक विषय में हस्तक्षेप नहीं करती। लेहाज़ा, देवदासी-प्रथा तो क्या अगर धर्म के नाम पर कोई कन्यावध भी कर डाले तो हमारी सरकार न बोलेगी। इसी से तो कहते हैं कि ऐसी सीधी-सादी और धर्म-भीरु सरकार, सात घर शत्रुओं को भी नसीब हो। आमीन ! आमीन !! आमीन !!!

❀

ख़ैर, लखनऊ के एक कान्यकुब्ज-वंशोद्भव सज्जन की 'सजना' अर्थात् बीबी कुछ पुरानी पड गई थी, बस, आपने 'जिमि नूतन पट पहिरि के नर परिहरइ पुरान' के अनुसार दूसरा विवाह कर डाला ! बस, इतनी सी ही बात के लिए 'पुरानी' ने किरोसिन तेल डाल कर आत्महत्या कर ली और अख़बार वाले सरकार से कहने लगे कि बहु-विवाह के विरुद्ध क़ानून बनाओ ! ख़ुदा-नाख़ास्ता, अगर यही हालत रही तो कुवाँरे लोग सरकार से जोड़ू भी माँगने लग जाएँगे।

❀

अरे भाई, अपराध तो उस अभागिनी का था, जिसने ज़रा सी बात के लिए आत्महत्या कर ली ! पति के जीते जी थोड़े दिनों तक वैधव्य का मज़ा लेती तो उसका क्या बिगड जाता ? इसलिए हमारी तो राय है कि पतियों के आनन्द में बाधा उपस्थित करने वाली ऐसी औरतों के ही विरुद्ध कोई क़ानून बने तो अच्छा है। साथ ही इस आत्महत्या करने वाली 'कान्य-कुब्जाइन' को तो अवश्य ही कुछ दण्ड मिलना चाहिए, क्योंकि इसने आत्महत्या करके पवित्र पतिव्रत धर्म की बड़ी ही तौहीन की है।

❀

हमारे पूज्यपाद बुज़ुर्गों का क़ौल है कि स्त्रियाँ पैर की जूतियाँ हैं। आप दर्जनों कुर्ते सिलवा लेते हैं, बूट, शू, पम्पशू और नागौरे जूतों के जोड़े ख़रीद कर एक साथ ही रख लेते हैं, खाने, सोने, टहलने और ऑफ़िस जाने के लिए अलग-अलग 'सूट' रखना आजकल का फ़ैशन है, तो फिर एकाधिक बीबियाँ रखने में कौन सा महा-भारत अशुद्ध हो जाता है ? इसलिए, श्रीजगद्गुरु का मत है कि प्रत्येक पुरुष के लिए कम से कम एक दर्जन बीबियाँ तो अवश्य ही होनी चाहिएँ।

❀

हमारे पूज्य पूर्व पुरुष बहु-बीबी-व्यापार में बड़े पटु थे। मनुष्य-जाति के आदि पुरुष मनु महाराज के कई बीबियाँ थीं। कश्यप जी महाराज की कद्रू और बनिता नाम्नी बीबियों का हाल तो आप जानते ही हैं, महाराज दशरथ जी के तीन बीबियाँ थी। पाण्डव भी इस सम्बन्ध में किसी से पीछे न थे। और, आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र तो परब्रह्म परमेश्वर के अवतार ही थे। आपके सोलह हज़ार एक सौ आठ बीबियाँ थीं और आज तक इस पृथिवी पर कोई माई का लाल ऐसा न जन्मा जो आपका रिकॉर्ड बीट डाउन कर सके।

❀

अस्तु, अब यह बात आपकी समझ में आ जानी चाहिए कि एकाधिक विवाह एक पवित्र धर्म-कार्य है। अनादिकाल से होता आया है, इसलिए इस प्रथा के विरुद्ध आवाज़ उठाना अधर्म है और जो स्त्रियाँ अपने पतियों के इस जन्म-सिद्ध और धर्म-सिद्ध अधिकार के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं, उसमें बाधा प्रदान करती हैं या प्रतिवाद-स्वरूप आत्महत्या करती हैं, वे क़ानूनन् और धर्मतः दण्डनीया हैं। वे पतिव्रता नहीं हैं और पति के सुख-स्वच्छन्दता में बाधा डालने वाली नरक-गामिनियाँ हैं। इन्हें जितना धिक्कार प्रदान किया जाय थोड़ा है।

बातचीत

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा हमें अप्रैल तथा मई मास में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०३३६	श्री० एन० एम० सूरतप्रसाद शर्मा, सोनबर्सा, मुज़फ़्फ़रपुर ...	६॥)
३०३३७	बा० टीकमचन्द बजोरिया, राँची ...	६॥)
३०३३८	बा० रामसेवक राम, लखीमपुर, आसाम	३॥)
३०३३९	मिसेज एस० के० अरोरा, इलाहाबाद	६॥)
३०३४०	बा० मुरलीमनोहर प्रसाद सिंह जी, नेवारी (गया)	६॥)
३०३४१	मन्त्री जी, युवराज एशोसिएशन, बिशनपुर, मुज़फ़्फ़रपूर ...	५)
३०३४२	पं० सूर्यकुमार त्रिपाठी "सुधि" जहाँगीराबाद, कानपुर	३)
३०३४३	मिसेज़ प्रेमनारायण, इटावा ...	३॥)
३०३४५	मेसर्स हीरालाल सम्पतलाल, बीड़ी मर्चेण्ट, मण्डाले (बर्मा) ...	६॥)
३०३४६	पं० कमलधारी त्रिवेदी, मण्डाले, बर्मा	६॥)
३०३४७	डॉ० एस० एन० शर्मा, एम० डी० एच० बुढाना दरवाज़ा, मेरठ ...	६॥)
३०३४८	बा० मूलचन्द जी गोयल, वाली बाज़ार, मेरठ	३॥)
३०३४९	श्रीयुत शिवनाथ जी शर्मा, श्यामीपाड़ा, मेरठ	३॥)
३०३५०	अवैतनिक मन्त्री, ई० आई० आर० इण्डियन इन्स्टीट्यूट, गया ...	६॥)
३०३५२	श्री० लक्ष्मीनारायण जी, गोविन्दगढ़ (मल्लिकपुर)	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०३५३	मेसर्स मुन्शीलाल दीपचन्द, बरौत मण्डी, मेरठ	३॥)
३०३५४	अवैतनिक मन्त्री, विसट इन्स्टीट्यूट, अजमेर	६॥)
३०३५५	बा० बृजमोहनलाल जी मेहरा, ४१ वैदवारा, मेरठ सिटी	३॥)
३०३५६	श्री० कैलाशनाथ अवस्थी, गोपालपुर, बरई (कानपुर)	३॥)
३०३५७	मेसर्स नियादरमल एण्ड सन्स, लण्डौर बाज़ार, मन्सूरी पहाड़ ...	३॥)
३०३५८	मि० जे० एन० शुक्ल, सिङ्गहारपुर, (मण्डला) सी० पी० ...	६॥)
३०३५९	बा० शङ्करलाल बापू, मगरढकस, साम्रोली, डूँगरगाँव, भण्डारा ...	६॥)
३०३६०	श्रीमती शान्ती देवी जी, भरतपुर राजपूताना	६॥)
३०३६१	पं० रामगोपाल त्रिवेदी देवलापुर (नागपुर)	६॥)
३०३६२	बा० मुरारीलाल, चरखी दादरी (झींद स्टेट)	६॥)
३०३६३	बा० आत्मानन्द मिश्रा, चिलूली (रायबरेली)	३)
३०३६४	मैनेजर महोदय, गौयरी राइस मिल्स, आरङ्ग (रायपुर)	६॥)
३०३६५	श्रीयुत गुरुदयाल जी, इतावा, कोटा राज्य	६॥)
३०३६६	बा० बंशीलाल गुप्ता, भदोही, बनारस राज्य	३॥)
३०३६७	मन्त्री महोदय, सिविल बार क्लब, देवरिया (गोरखपुर) ...	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रकम
२०३६८	श्रीमती मनमोहिनी देवी जी, C/o बा० जुगलकिशोर नारायण, किशनगञ्ज, (पूर्णिया) ई० बी० रेलवे ...	६॥)
२०३६९	पं० लालमणि जी महाब्राह्मण, शाहजहाँपुर	६॥)
२०३७०	श्रीमती धर्मपत्नि पं० गौरीशङ्कर महाब्राह्मण, शाहजहाँपुर ...	६॥)
२०३७१	श्री० द्वारकादास चुन्नीलाल, सिन्धीपुरा (बुर्हानपुर)	३)
२०३७२	बा० भगवतीप्रसाद जी, महेन्द्रू (पटना)	६॥)
२०३७३	श्रीमती शकुन्तला देवी जी, लोहिया बाज़ार, लश्कर	६॥)
२०३७४	मैनेजर महोदय, मुफ़्त वाचनालय, पो० अहावड	५)
२०३७५	हेडमास्टर साहेब, एन० डी० एकाडेमी, बगहा, (चम्पारन) ...	६॥)
२०३७६	बा० गुरुसरनसिंह सन्धई, रियासत धौलपुर	६॥)
२०३७७	श्री० आई० आर० सक्सेना, एस० आई० पुलिस, खवासा ...	६॥)
२०३७८	श्री० के० एन० कजरीवाला, नौगाछिया, भागलपुर	६॥)
२०३७९	श्री० शङ्करनारायण त्रिवेदी, शुक्लखेड़ा, (उन्नाव)	३॥)
२०३८०	श्री० आर० एस० मेहता, धामनोद, धार स्टेट	६॥)
२०३८१	श्री० पीतमचन्द चौरासिया, रावतपाड़ा, आगरा	६॥)
२०३८२	श्री० हेडमास्टर महोदय, मिडिल स्कूल नगरोठा (धर्मशाला) ..	६॥)
२०३८३	मन्त्री महोदय, हिन्दी रीडिङ्ग क्लब, शिमला	३॥)
२०३८४	बा० मोहनराव कतरी, जमशेदपुर ...	६॥)
२०३८६	श्री० रघुनन्दनप्रसाद सिन्हा, मलिकपुर (पटना)	३॥)
२०३८७	अवैतनिक मन्त्री, महारानी लाइब्रेरी, खेतिया	६॥)
२०३८८	ठा० रामचन्द्रसिंह साहेब, जलेसर, इटावा	६॥)
२०३८९	बा० राजाराम जी जैन, कुरावली, (मैनपुरी)	३॥)
२०३९४	कुँ० एस० वी० आर० निगम, फफूँद (इटावा)	६॥)
२०३९५	श्रीमती हीरासिंह, शॉपकीपर, पछाई एन० एस० वर्मा	,,
२०३९६	श्रीमती सुभद्रादेवी चत्राणी, मझगवाँ बघेलखण्ड (बरन्धु स्टेट) ...	,,
२०३९७	बा० मेहरचन्द खन्ना, खन्ना कॉटेज, सोलन (शिमला) ...	३॥)
२०३९८	बा० रामसहाय अग्रवाल, मण्डला ..	६॥)
२०३९९	बा० रामसहाय जी रईस, तिलहर, (शाहजहाँपुर)	,,
२०४००	बा० रामेश्वरप्रसाद खेतान, हाथरस	३॥)
२०४०१	बा० कृष्णदेव जी, नवाबगञ्ज (गोंडा)	६॥)
२०४०२	श्री० भूषणचन्द्र, शाहाबाद, करनाल	५)
२०४०३	बा० मथुराप्रसाद टामटा, अलमोड़ा...	६॥)
२०४०४	मेसर्स चटूराम दर्शनराम, झुमरी तिलैया (हज़ारीबाग़) ...	,,
२०४०५	डॉ० अब्दुल अज़ीज़, सबलगढ़, ग्वालियर	२)
२०४०६	मिस शकुन्तलादेवी, उन्नाव ...	६॥)
२०४०७	मन्त्री महोदय, बान्धव लाइब्रेरी झुन्झरपुर	६)
२०४०८	श्रीमती कौशल्यादेवी, डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ	३॥)
२०४०९	श्री० श्यामसिंह सेठ, तिकोनिया बाग़, शाहजहाँपुर ...	६॥)
२०४१०	बा० हरिशङ्कर कपूर, सिविल अस्पताल, नौगाँव	,,
२०४११	श्री० केदारनाथ गुप्त, गली क़ानूनगोयान, मथुरा	,,
२०४१२	श्री० अली बख़्शी कुरैशी, मकोरियन, उज्जैन	२)
२०४१३	श्री० मदनलाल बियानी, कलकत्ता	६॥)

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३०३१४	मिसेज भक्त हरकिशनलाल, नीला गुम्बद, लाहौर	६॥)
३०४१५	ला० जुगमन्दरदास जैन, बिनौली, मेरठ	,,
३०४१६	डगरु लक्ष्मण मुकति, कसरावद, होल्कर स्टेट	३॥)
३०४१७	बा० शिवपूजनराम कालिम्पाँङ्ग, (दारजिलिङ्ग) ...	३॥)
३०४१८	बा० बुलाकीदास जोशी, सिलचर (कचार)	६॥)
३०४१९	मिस शान्ति मेहता, गुरदासपुर ...	,,
३०४२०	श्री० गनपतराय शर्मा, मूलचन्द जेठा मार्केट, बम्बई	,,
३०४२१	श्री० मन्त्री, आर्यंयुवक सङ्घ, नागपुर	,,
३०४२२	बा० हनुमानबख्श राठी निम्बीजोधन	,,
३०४२३	पं० श्यामकिशोर तिवारी, जसपुर स्टेट	६॥)
३०४२४	मन्त्री महोदय, हिन्दुस्तानी सभा, बाज़ार रोड लिम्बू, अपर बर्मा ...	६॥)
३०४२५	श्री० भूरामल सरावगी, चरमुगरिया, फ़रीदपुर	३॥)
३०४२६	श्री० श्यामलाल अग्रवाल, अम्बाला सिटी	६॥)
३०४२७	बा० रामदेवसिंह जी, घाट सिला ...	६॥)
३०४२८	मैनेजर, मनोरञ्जन साप्ताहिक, अहमदाबाद	६॥)
३०४२९	अवैतनिक मन्त्री, रायगढ़ क्लब, रायगढ़, सी० पी०	६॥)
३०४३०	बा० खेमकरण चौबे, पो० नाटौर, राजशाही	३॥)
३०४३१	श्री० वृजनाथ कुमारसिंह, पथलगाँव बिलासपुर	३॥)
३०४३२	मैनेजर, हिन्दू वनिताश्रम, पूरब सराय, मुँगेर	३॥)
३०४३३	पं० रामप्रसाद द्विवेदी, शकूराबाद (उन्नाव)	३॥)
३०४३५	श्रीकृष्ण जी वर्मा, बरौड, कोटा ...	६॥)
३०४३६	बा० युधिष्ठिरलाल, शकूर-सिन्ध ...	६॥)
३०४३७	सेठ बलदेवप्रसाद शर्मा, डाकौर, जालौन	६॥)
३०४३८	श्री० बी० एन० डम्बरघाव, चाँदा ...	६॥)
३०४३९	बा० द्वारकादास खैयाल, रियासी, वाया कटरा	३॥)
३०४४०	श्री० ब्रह्मस्वरूप सूद, इङ्गलैण्ड ...	६॥)
३०४४१	श्री० बी० एम० चौधरी, इन्दौर ...	६॥)

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के पुराने ग्राहकों का चन्दा प्राप्त हुआ है।

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
२५०१९	६॥)	१२०३१	६॥)
२५८९२	३॥)	२८२९५	५)
२६७१९	६॥)	२९३७८	३॥)
२८३६६	६॥)	१३४२२	६॥)
२९८०६	३॥)	२६७००	६॥)
२८२४८	६॥)	२८२३५	,,
२८००८	,,	२५६५८	,,
२८१३८	,,	२५६५	,,
२५४१०	,,	१३११०	,,
२९२३८	,,	२९२९५	,,
२८०७३	,,	२८४६८	२)
२८०९१	,,	२९७९८	६॥)
२५५१०	,,	२९४८७	४॥)
१३१७१	,,	२२३१	६॥)
२८०३१	,,	१३७४३	६॥)
२८०७४	,,	१३३१५	,,
१३१२७	,,	१३२९८	,,
२५२४०	,,	१३२८४	,,
१७४५१	,,	१३२०३	,,
२९३५७	,,	८९४४	,,
२८३५१	,,	६३०२	,,
२८१८९	,,	५८८९	,,
२९५४६	३॥)	३८६३	,,
९१९३	६॥)	२९४३४	३॥)
७३५०	६)	२९४७२	६॥)
२८५१२	६॥)	२८३९३	,,
२८३२३	,,	९०५४	,,

ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम	ग्राहक-नं०	प्राप्त रकम
२८३०३	६॥)	९४६१	६॥)	३७६८	६॥)	२८२४२	६॥)
२८२९०	,,	११८३४	,,	६७५५	,,	२८२३४	,,
२८२२१	,,	१३५२७	,,	६३३२	,,	२८१९८	,,
२८१८३	,,	२८१७६	,,	६०५७	,,	१७६५४	,,
२८२०३	,,	१३६७४	,,	५९०५	,,	१८०३७	,,
१८०४१	,,	१४२५२	,,	४०९०	,,	१८०१४	,,
१७९३२	,,	१५२६५	,,	३९१८	,,	१७९७१	,,
१७७७४	,,	१७७०६	,,	३८०१	,,	१७८८४	,,
१७७१४	,,	२५८५६	,,	६२४	,,	१७८६९	,,
१७६९८	,,	२६७०९	,,	१८५९०	,,	११८४३	,,
१७५७६	,,	२६८३०	,,	२९७००	,,	१७७७२	,,
१७५१८	,,	२८१८४	,,	२९६००	,,	१७७६६	,,
१७४५३	,,	२८२४०	,,	१७७३८	,,	१७७४३	,,
१७४३१	,,	२८१४८	,,	१७६९६	,,	१४२९८	,,
१७२६०	,,	२८२९२	,,	१७४५५	,,	१३२४१	,,
१७१८३	,,	२८४६३	,,	१७४२४	,,	९३९६	,,
२५७१२	,,	९१६७	,,	१७२९५	,,	९१९१	५)
२५५९६	,,	२१८४	,,	२५६१८	,,	१८०२१	६॥)
२५७२५	,,	८७५५	,,	२५६३६	,,	१८०३९	,,
२५८६८	,,	२८३११	,,	२५६४६	,,	१८१०९	,,
२८३३१	,,	१७८६५	,,	२५७०४	,,	१८०९४	,,
३०२७३	१॥)	१७७४९	,,	२५७१५	,,	१८०५१	,,
३८१२	६॥)	२५९११	,,	२५७२६	,,	१८०४४	,,
२८०६६	६॥)	२९५८१	,,	२५७८७	,,	१७३५०	,,
२३९५०	३॥)	२९४९१	,,	२५८५४	,,	१७६५०	,,
३७६८	६॥)	२९२५४	,,	२६७३४	,,	१७९४४	,,
१५१२९	,,	२८४४७	,,	१५५०८	३॥)	२६०६१	,,
१४९९९	,,	२८४४४	,,	२५९४९	६॥)	२५७३९	,,
१३६३०	,,	२८३७०	,,	१८१२७	,,	१४१९४	,,
१३४७७	,,	२८३६७	,,	२२००३	,,	२८३४५	,,
१३३७२	,,	२८३५३	,,	१३२००	,,	२५८१६	,,
१३३६२	,,	२८३१९	,,	१७७५९	,,	१३१९१	,,
९३८८	,,	२८३१७	,,	२६१६४	,,	६०५२	,,
९३२६	,,	२८३१३	,,	२५९१७	,,	५८४१	,,
९३२५	,,	२८२९३	,,	२९३६४	,,	२८२९८	,,
९३०९	,,	२८२७३	,,	१७७९०	,,	२८२७७	,,
९२७३	,,	२८२६४	,,	२९५७५	,,	२८०४०	,,

ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक-नं०	प्राप्त रक़म
२८२४३	६॥)	१७८६१	६॥)
६७७०	,,	१७७३९	,,
१३५२४	,,	१७३६२	५)
१२५१६	,,	१३२९९	६॥)
३८६६	,,	२८३३६	,,
२८३९२	६॥)	८५७६	६॥)
१७७६१	,,	१७५८५	,,
१७१२९	,,	१३३०७	,,
२५७१३	,,	१८२६३	,,
२८२४६	,,	१८०२४	,,
५९६८	,,	२५९६७	,,
२८२१८	,,	१३३५१	,,
२७२९१	,,	५७८७	,,
२९४४९	,,	२५६६९	,,
[illegible]	[illegible]	[illegible]	,,
२५८३७	,,	२५९८२	,,
२८३९४	,,	२८३३४	,,
१४८७४	,,	२८६८४	,,
२९९१६	,,	२९४९२	,,
२८५६६	,,	१८२४९	,,
१७५९१	,,		

निम्नि-लिखित ग्राहकों के पते बदले गए हैं :—

२२७३९, २७९०३, ८५०३, ८८८१, २८६९३, २९८४५, २६८०८, २९८००, २५२३९, २१५२७, २७७४२, ३०२७८, २९८७२, २८७७२, २९२१७, २९५४९, २९०००, ५७९९, २९४१८, २५९६९, २८६८३, ३०१२०, २९५२९, १८०९६, ६३८९, १६३७, २९७५५, ४७११, २७२१५, २४३३५, २३५७९, २९९६६, १२१९१, ४८९१, ११८८४, २८२७७, ३०३४३, १४१६९ ।

निम्न-लिखित अङ्क ग्राहकों को दुबारा भेजे गए हैं :—

अप्रैल १९३२ :—

२९५०६, २७३१८, २६१३०, १२३८१, २००७४, २५६४६, २६९३९, २९०७१, ७६७४, २४७५५, ३०१३८, २९६२९, २९८५५, १३२५०, २११३५, २७८९३, २८२४१, ४६५९, २७६८२, १९१६६, १५५३०, २६९५६, २९१५३, २८६५८, २४४७४, २३३४९, २३८५६, २१४०८, २९७००, २९६०४, २९१९१, २९१०६ ।

मई १९३२ :—

२८२८३, २८४३१, १३२६३, [illegible]३३३, २४४७४, १३०६८, २८७७७, २८९४, २२८८, ३१९५, २०९३१, ५२७९, ५१७७ ।

मार्च १९३२ :—

२८२४७, ३०१६०, २००३८, २३३४९, २१४३७, २९८८ ।

सन्तान-निग्रह का सामान

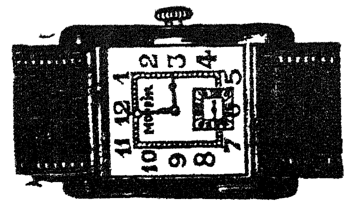
जो स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्य का पालन करना नहीं चाहते और सन्तान उत्पन्न करना भी नहीं चाहते, उन्हीं के लिए नए से नया वैज्ञानिक सामान-यन्त्र, दवा आदि हमारे पास मौजूद है। पत्र लिख कर मँगाइए !

लाल एण्ड कम्पनी,

११ मल्लिक स्ट्रीट, कलकत्ता

फ्रेन्सी रिस्टवाच ३) में

यह हाथ-घड़ी अभी विलायत से बन कर आई है। देखने में अति सुन्दर और चलने में मज़बूत,



क़ीमत में कम, दूसरी घड़ी आपको न मिलेगी, मौक़ा न चूकें, वरना पछताना पड़ेगा। क़ीमत ३), बढ़िया क्वालिटी ३।), एक साथ तीन मँगाने से पो० पै० माफ़, ६ लेने से एक टेबुल टाइमपीस और १२ लेने से एक यही रिस्टवाच इनाम मिलेगी। हर घड़ी की गारण्टी १० साल और रेशमी बैण्ड मुफ़्त दिया जायगा।

भारत यूनियन ट्रेडिङ्ग को०

पो० ब०-२३२४, सेक्शन ए, कलकत्ता

गरीबों का हितसाधन; अमीरों का मनबहलाव!

"गुप्त प्रकाश" यानी छिपा उजाला



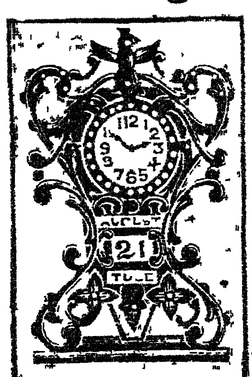
मित्रों को हँसाइए, धन को कमाइए, अविश्वास दूर हटा, विश्वास दिखलाइए। इस विचित्र वस्तु यानी गुप्त प्रकाश के काम को देख आप दङ्ग हो जायँगे। यह बिल्कुल अपने ढङ्ग की निराली है—अपूर्व गुण तो यह है कि लुप्त को प्रकट करती है। इस बेकारी के दिनों में पैसा कमाने का बढ़िया साधन है। इसके द्वारा व्यापारी भाई मनमाना पैसा पैदा करते हैं। अमीर, राजा, सेठ, साहूकार लोग अपना दिलबहलाव और इष्ट-मित्रों के द्वारा कार्य का साधन करते हैं। इसका दाम एकमात्र १॥), पै० पो० ॥)

नोट—१॥≡) अग्रिम पाने पर मुफ़्त भेजा जाता है। झूठा साबित करने वाले सज्जन को २०) इनाम !

पता—दि सी० बी० म्याजिक स्टोर,

श्याम बाज़ार, कलकत्ता

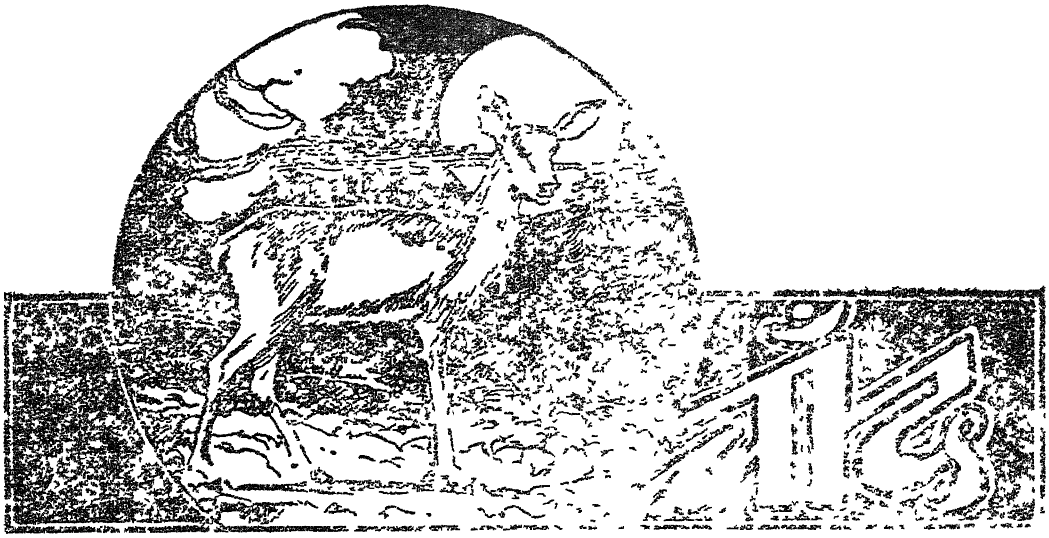
सिर्फ़ ३॥) में दिवाल-घड़ी



हमारी मशहूर दाद की दवा कैसा ही दाद हो २४घण्टे में शर्तिया जड़ से आराम करती है। १ डिब्बी का ।=) इकट्ठा १ दर्जन ३॥) में मँगाने से यह "डायमण्ड माडेल क्लाक"—जो कि २०) की दिवाल-घड़ी को अपनी सुन्दरता और फ्रेम के सजावट से मात करती है; साइज़ ४॥ × ६॥, ठीक टाइम देने और मज़बूती की गारण्टी ३ साल है—इनाम में दी जाएगी। नापसन्द होने पर पूरी क़ीमत वापस। डाक-ख़र्च तथा पैकिङ्ग अलग।

पता—आर० एन० ब्रादर्स एण्ड कम्पनी,

पो० ब० नं० ६७१२, डि० ५, कलकत्ता



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक
इस पावन अनुष्ठान मे हम अविचल है, तब तक हमे इसका भय नहीं, कि
हमारे विरोधियो की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०
खण्ड २

जुलाई, १९३२

संख्या ३
पूर्ण संख्या ११७

साक़ी

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

अरे ! ढाल दे, पी लेने दे ! दिल भर कर प्यारे साक़ी ।
साध न रह जाए कुछ इस छोटे से जीवन की बाक़ी ॥
ऐसी गहरी पिला कि जिससे रङ्ग नया ही छा जावे ।
अपना और पराया भूलूँ; तू ही एक नज़र आवे ॥
ढाल-ढाल कर पिला, कि जिससे मतवाला होवे संसार ।
साक़ी ! इसी नशे में कर लेंगे भारत-माँ का उद्धार ॥





जुलाई, १९३२

सामाजिक क्रान्ति

संसार के अधिकांश व्यक्तियों का और विशेष कर हमारे हिन्दू भाइयों का यह ख़्याल है कि यह जगत और मनुष्य-समाज जैसा आजकल दिखाई दे रहा है, वह अनादि काल से अथवा सृष्टि के आरम्भ से ऐसा ही चला आया है; और इसमें जो कुछ पुण्य-पाप, न्याय-अन्याय, छुटाई-बड़ाई, ग़रीबी-अमीरी आदि दिखलाई देती हैं, वे सब जगन्नियन्ता परमात्मा की इच्छानुसार हैं। ऐसे लोग क्रूर से क्रूर सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक प्रथा का समर्थन इसी आधार पर करते हैं कि संसार में जो कुछ भला-बुरा होता है, उसका कर्ता अथवा प्रेरक ईश्वर है और उसके कामों में दख़ल देना या उन पर आक्षेप करना पाप है। पर जब से विज्ञान की उन्नति होने लगी है और विद्वान लोग प्रकृति के नियमों की जाँच-पड़ताल में दत्तचित्त हुए हैं, तब से इस विश्वास की जड़ पर आघात होने लगा है और वह दिन पर दिन क्षीण होता जाता है। अब विज्ञान द्वारा यह भली-भाँति सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्य-समाज किसी विशेष प्रकार के साँचे में ढाल कर नहीं बनाया गया है; वरन् जिस प्रकार संसार की प्राकृतिक अवस्था के अनुसार सब प्रकार के जीवों का विकास हुआ है, उसी प्रकार दुनिया की आर्थिक परिस्थिति के अनुसार मनुष्य-समाज में भी परिवर्तन होता आया है।

मनुष्य-समाज में प्रचलित किसी भी प्रथा को अनादि या अमिट समझ लेना बिलकुल भूल है। इस समय हम जितनी प्रथाएँ देख रहे हैं, उनमें से कोई दो-चार सौ वर्ष पुरानी और कोई दो-चार हज़ार वर्ष पुरानी होंगी। अनेक प्रथाएँ जो प्राचीन काल में हमारे देश और समाज में प्रचलित थीं, आज उनका नाम-निशान भी नहीं है, और उनमें से कितनी ही प्रथाएँ तो अत्यन्त घृणित समझी जाने लगी हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन काल में हमारे यहाँ गान्धर्व विवाह अथवा राक्षस-विवाह (कन्या को बलपूर्वक हर ले जाना) का ज़ोर था, पर आजकल ये दोनों निन्दनीय समझे जाते हैं, और राक्षस-विवाह की चेष्टा करने वाला तो क़ानून के

अनुसार भी दण्डनीय माना गया है। इसी तरह पुराने ज़माने में विधवा-विवाह में भी किसी तरह की रोक न थी, पर अब अधिकांश उच्च कहलाने वाली जातियाँ उसे नीच-कर्म समझती हैं। कितनी ही प्राचीन पुस्तकों से यह पता चलता है कि अति प्राचीन काल के आर्य ऋषि-मुनि गाय-बैल आदि का मांस खाते थे, पर अब यह कार्य हिन्दू-मात्र की दृष्टि से ऐसा पाप-कार्य है कि लोग ऐसी बात का ज़िक्र करने वाले का मुँह देखना भी बुरा समझते हैं। इसी प्रकार और भी कितने ही रीति-रिवाजों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनका इस समय सर्वथा लोप हो गया है। यह बात केवल हमारे समाज के लिए ही नहीं कही जा सकती, वरन् संसार के सभी देशों तथा सभी जातियों के सम्बन्ध में यही नियम लागू होता है।

पर खेद है कि इस स्वाभाविक तथा सीधे-साधे नियम का ज्ञान हमारे देशवासियों को बिल्कुल नहीं है और समझाने पर भी वे इसे मानने को तैयार नहीं होते। इन लोगों ने तमाम सामाजिक प्रथाओं का सम्बन्ध धर्म से जोड़ दिया है और उनमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन के प्रस्ताव को वे अनुचित और धर्म-विरुद्ध समझते हैं। नहाने-धोने और खाने-पीने से लेकर जन्म और मरण तक के तमाम कार्यों के जो नियम इस समय प्रचलित हैं, उन सब को वे अमिट और अपरिवर्तनीय मानते हैं। चाहे उनसे लाभ हो रहा हो या हानि; चाहे वे वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल हों या प्रतिकूल, इस बात से उनको कोई सरोकार नहीं। वे जानते हैं कि बाल-विवाह के कारण हिन्दू-जाति निर्बल और क्षीणकाय होती जा रही है; वे देख रहे हैं कि पर्दे की प्रथा के कारण यहाँ की स्त्रियों का स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है; उनको पता है कि अछूतों की समस्या के कारण हिन्दू-समाज में हलचल मची हुई है और उस पर तरह-तरह के सङ्कट आ रहे हैं, पर वे इनमें से किसी बात का सुधार करने को तैयार नहीं!

जिस जाति की ऐसी मानसिक दशा है और जिसके विचार इतने सङ्कीर्ण तथा बन्धनयुक्त हो गए हैं, उसका पतन अनिवार्य और अवश्यम्भावी है।' यही कारण है कि हिन्दू-जाति को सैकड़ों नहीं, वरन् हज़ारों वर्षों से ठोकरों पर ठोकरें खानी पड़ रही हैं, और संसार में उसका प्रभाव तथा महत्व कुछ भी शेष नहीं रह गया है। सिकन्दर के समय से लेकर आज तक न मालूम कितने विदेशियों ने इस देश पर आक्रमण करके यहाँ वालों की दुर्गति की, पर इनकी आँखें न खुलीं। मुसलमान आक्रमणकारियों ने तो इनको मनमाना लूटा और मारा, स्त्रियों की हद दर्जे की बेइज़्ज़ती की, लाखों पुरुष-स्त्रियों को वे ग़ुलाम बना कर ले गए, पर ये लोग मूक पशुओं की तरह उनके अत्याचारों को सहने के सिवाय प्रतिकार का कोई उपाय नहीं कर सके। प्रतिकार का उपाय ही क्या करते, जबकि रूढ़ियों और प्रथाओं की ग़ुलामी ने इनको खोखला कर दिया था और किसी आकस्मिक आवश्यकता का मुक़ाबला करने के लिए सोचने-विचारने लायक़ ही न रक्खा था। इसके बाद मुसलमानी शासन कमज़ोर होकर उसका अन्त हुआ, पर उस अवसर पर भी ये उससे लाभ न उठा सके और मुट्ठी भर अङ्गरेज़ों ने इनको अपना ग़ुलाम बना लिया। यों तो कहने के लिए ये अपनी सभ्यता, संस्कृति, विद्या, कला और बल की भी बड़ी डींग मारते हैं, पर इन्होंने कभी इस बात पर विचार नहीं किया कि यदि उनकी जाति ऐसी उन्नतिशील थी, तो बाहर के आक्रमणकारी, जिनकी संख्या अवश्य ही यहाँ के निवासियों के मुकाबले में नगण्य थी, उनको इस तरह कुचल क्यों सके? सच बात यह है कि जब यहाँ की सभ्यता में तरह-तरह के दोष आ घुसे और यहाँ के निवासी सामाजिक रीति-रिवाजों के ग़ुलाम होने के कारण उनका सुधार या प्रतिकार न कर सके, तो यह जाति जर्जर हो गई और विदेशियों के धक्के से फ़ौरन् बिना नींव के मकान या बिना जड़ के पेड़ की तरह गिर पड़ी। यदि ऐसा न होता तो बख़्तियार ख़िलजी का ४० सवार लेकर बङ्गाल को फ़तह कर लेना और क्लाइव का सिपाहियों की एक छोटी सी टुकड़ी के साथ आरकट जैसे बड़े शहर पर आधिपत्य जमा लेना किस प्रकार सम्भव था। बात यही थी कि जाति-पाँति के बन्धनों ने, भाग्यवाद ने, त्याग और वैराग्य के दिखावटी सिद्धान्तों ने यहाँ के लोगों को ऐसा सङ्गठन-शक्ति-हीन, आलसी और उदासीन वृत्ति का बना दिया था कि वे न तो देश और समाज के महत्व को समझते थे और न उनमें इनकी रक्षा करने की योग्यता थी।

पर अब युग-परिवर्तन का काल आ पहुँचा है। संसार में जागृति और उन्नति की एक ऐसी ज़ोरदार लहर पैदा हुई है, जो पिछड़े से पिछड़े देश की काया-पलट कर रही है। एशिया के अधिकांश देशों की दशा सैकड़ों वर्षों से गिरती जाती थी और यद्यपि वे भारत की तरह पूर्ण रीति से विदेशियों के ग़ुलाम नहीं बन गए थे, पर कोई ऐसा भी न था, जो यूरोप, अमेरिका वालों के सामने मस्तक उठा सके। उन सब में सामाजिक बन्धन ढीले पड़ गए थे, लोगों में भ्रष्टता फैल गई थी और इस कारण वे शक्तिशाली तथा उन्नतिशील विदेशियों के भक्ष्य-स्वरूप बन गए थे। पर इस नई लहर ने उन सब में एक नई स्फूर्ति उत्पन्न कर दी है और वे पुराने निकम्मे तथा हानिकारक बन्धनों को तोड़ कर अपने को नवीन साँचे में ढाल रहे हैं। चीन जैसा देश भी, जहाँ के लोग अफ़ीमची समझे जाते थे और संसार जिनको उसी अवहेलना तथा तिरस्कार की दृष्टि से देखता था, जिससे भारतीय देखे जाते हैं, गहरी नींद को त्याग कर जाग्रत हो गया है और संसार में उसी पद को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है, जो अन्य उन्नतिशील देशों को प्राप्त है। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान-जैसे छोटे देश भी उन्नति की तरफ़ दौड़ लगा रहे हैं।

ऐसी दशा मे भारतवर्ष इस लहर के प्रभाव से किस प्रकार बच सकता है। यद्यपि इस देश वाले यहाँ की भूमि को तीन लोक से न्यारी समझते हैं और उनका गुमान है कि चाहे सारा संसार बदल जाय, पर भारतवर्ष और हिन्दू-जाति अपने पूर्वजों द्वारा निर्मित मार्ग से च्युत नहीं हो सकती। पर परिवर्तन की लहर के सामने उनकी बातें कोरी डींग सिद्ध हो रही हैं और नित्य ऐसे लक्षण उत्पन्न होते जाते हैं, जिनसे पता चलता है कि अब यहाँ भी सामाजिक क्रान्ति का श्रीगणेश हो गया है और उसके रुकने की कोई सम्भावना नहीं है। यह ठीक है कि अभी तक इस परिवर्तन का प्रभाव शहरों तक ही परिमित है और गाँव वाले, जिनकी संख्या बहुत अधिक है, उससे पृथक् हैं। पर एक बात स्पष्ट दिखलाई पड़ रही है कि इस लहर का ज़ोर बराबर बढ़ता जाता है और उसका विरोध दिन पर दिन घट रहा है। उदाहरणार्थ हम विधवा-विवाह के सम्बन्ध में देखते हैं कि दस-पन्द्रह वर्ष पहले उसकी चर्चा केवल आर्य-समाजियों और ब्रह्म-समाजियों आदि में थी और जो कोई व्यक्ति उसका समर्थन करता था, वह इन्हीं मतों का अनुयायी समझ लिया जाता था। पर अब इधर कई वर्षों से अपने को सनातनी हिन्दू कहने वाले और उसके अनुसार आचरण भी करने वाले लोग उसका समर्थन करने लगे हैं और उसे व्यवहार-रूप में काम में लाने लगे हैं। अब क्या शहरों में और क्या देहातों में, ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम रह गई है, जो यह जान कर भी कि यदि अमुक विधवा का विवाह न कर दिया जायगा तो वह निकल जायगी या विधर्मी हो जायगी, इस कार्य का विरोध करें। हमने ऐसे अवसरों पर बिल्कुल बूढ़े, पुराने ख़्यालात के और पौराणिक विचारों के पण्डितों को इस कार्य का समर्थन करते देखा है। और यदि वे खुले तौर पर समर्थन न भी करें तो कम से कम उसका विरोध तो नहीं करते और इस प्रकार 'मौनम् सम्मति लक्षणम्' वाली उक्ति के अनुसार अपनी सम्मति प्रकट कर देते हैं। इसी प्रकार जो समुद्र-यात्रा अब से पचीस-तीस वर्ष पहले जातिच्युत किए जाने का पर्याप्त कारण मानी जाती थी और जिसके कारण अदालतों मे बीसियों बार भारी-भारी मुक़दमे चले थे, अब सर्वसाधारण की दृष्टि मे कुछ भी अनुचित तथा धर्म-विरुद्ध बात नहीं रह गई है। अब दरभङ्गा के महाराज और मालवीय जी जैसे सनातन-धर्म के स्तम्भ और धार्मिक समझे जाने वाले व्यक्तियों के समुद्र-यात्रा करने पर भी दस-पाँच महत्वहीन लोगों के सिवाय कोई कुछ ख़्याल नहीं करता। अब शायद ही कोई ऐसी जाति शेष रही होगी, जो समुद्र-यात्रा के कारण किसी व्यक्ति को जातिच्युत करे।

इस लहर का सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा है। भारत का स्त्री-समाज, जो हज़ारों वर्षों से अवनति और अन्धकार के गढ़े में पड़ा था, इस समय आश्चर्यजनक जागृति का परिचय दे रहा है। यहाँ की स्त्रियाँ जो अब तक केवल पति को परमेश्वर समझ कर उसका उच्छिष्ट ग्रहण करने, पति के घोर दुर्गुणी होने पर भी उसकी सेवा मे दत्तचित्त रहने आदि बातों में अपने जीवन की सफलता मानती थीं, वे अब अपने व्यक्तित्व को पहिचानने लगी हैं और नागरिकता के अधिकारों का दावा पेश करने लगी हैं। अब से कुछ समय पहले तक स्त्रियों

को कुछ पढ़ा-लिखा देना या उनके पर्दे को कुछ अंशों में शिथिल कर देना ही समाज-सुधार का बड़ा लक्षण माना जाता था, पर अब स्त्रियाँ उन तमाम अधिकारों की तरफ़ दृष्टिपात कर रही हैं, जो पुरुषों को प्राप्त हैं। यद्यपि अभी ये सब लक्षण आरम्भिक दशा में हैं और यूरोप, अमेरिका की तरह यहाँ की अधिकांश स्त्रियाँ इस रङ्ग में नहीं रँग गई हैं, तो भी इस तरह के विचार समय-समय पर बराबर सुनने में आते रहते हैं। हाल में स्त्री-पुरुष के विवाह-बन्धन पर विचार करते हुए एक गुजराती मासिक-पत्र में एक महिला ने निम्न-लिखित विचार प्रकट किए थे :—

"विलायत में स्त्री और पुरुष दोनों को तलाक़ देने का अधिकार है। पति या पत्नी दोनों में से अगर कोई एक-दूसरे को दग़ा दे, परस्त्री या परपुरुष के साथ व्यभिचार करे, तो यह कार्य फ़ौजदारी क़ानून के अनुसार अपराध समझा जाता है और उसके आधार पर पति या पत्नी को तलाक दे सकने की सुविधा क़ानून द्वारा प्राप्त है।

"परन्तु हिन्दू-समाज में तो केवल पुरुष को ही सब तरह की सुविधाएँ और स्वतन्त्रता प्राप्त हैं। वह बिना तलाक़ के भय के एक स्त्री पर दूसरी, उस पर तीसरी, या इससे भी अधिक स्त्रियाँ कर सकता है, वह जितनी बार विधुर हो उतनी बार पुनर्विवाह करने का उसे अधिकार है; अपनी स्त्री के प्रेम को लात मार कर वह समाज की किसी अन्य स्त्री अथवा किसी वेश्या से प्रेम कर सकता है। इससे बढ़ कर अगर वह चाहे तो अपनी स्त्री से उस 'रखेली' की सेवा करा सकता है। पर स्त्री को क्या अधिकार हैं? उस बेचारी को तो सिवाय देखते रहने और अपनी असहाय अवस्था के लिए रोने के कोई चारा नहीं है!

"क्या यह स्थिति क़ायम रखने लायक़ है? अगर विवाह कोई 'संस्कार' है, तो इसकी ज़िम्मेदारी दोनों पक्षों पर एक बराबर होनी चाहिए। विवाह के सामाजिक बन्धन का अगर कोई मूल्य है तो वह दोनों पक्षों के लिए समान रूप से होना चाहिए। पर हिन्दू-जाति में तो विवाह का अर्थ यही है कि स्त्री के पैरों में बेड़ी डाल दी जाय और पति को व्यभिचार का खुला परवाना मिल जाय।"

इसके बाद उक्त लेखिका ने यह प्रश्न उठाया है कि स्त्रियों को पर-पुरुष से मित्रता करने का अधिकार है या नहीं, और इसमें क्या हानि-लाभ है। इस सम्बन्ध में उसकी सम्मति है :—

"पुरुष अपनी पत्नी से बिना पूछे और बाद में पत्नी को मालूम हो जाने पर भी उसकी इच्छा के विरुद्ध अन्य स्त्रियों से मित्रता करते हैं और पत्नी की मर्ज़ी का बिना ख़्याल किए उसे क़ायम रखते हैं।

"पर समाज स्त्री को इस प्रकार का आचरण करने की आज्ञा नहीं देता। क्योंकि उसकी 'पीलिया' रोग वाली आँखों से सर्वत्र पीला ही दिखाई देता है। इसीलिए उसने स्त्री और पुरुष की निर्दोष मित्रता को घी और अग्नि की उपमा दी है और वह उसे बिना कारण विकारयुक्त समझ कर उसका विरोध करता है। इतने पर भी अगर कोई साहसी स्त्री इसकी परवाह न करे तो उसे स्वच्छन्द कह कर तिरस्कृत किया जाता है।

"यह स्पष्ट है कि विवाह के पहले स्त्री का परिचय अपने सहपाठियों अथवा पड़ोसियों से होता है। यदि यह परिचय निर्दोष मैत्री के रूप में हो तो क्या पति के लिए उचित है कि वह उसे भङ्ग करा दे? इस तरह की मित्रता से पति-पत्नी के प्रेम में किसी तरह का विघ्न पड़ेगा, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। इसलिए यदि पति सङ्कीर्ण विचारों का और स्त्री पर स्वामित्व दिखलाने में ही मर्दानगी मानने वाला न हो तो उसे इस तरह की मित्रता में कदापि हस्तक्षेप न करना चाहिए। परन्तु आजकल तो राजनीतिक स्वतन्त्रता में जिस प्रकार ग़रीबों की, मज़दूरों की, किसानों की कोई गिनती नहीं की जाती, उसी प्रकार स्त्रियों के व्यक्तित्व को स्वतन्त्र मानने को भी लोग तैयार नहीं हैं। ऐसी दशा में यह स्त्रियों का ही काम है कि वे इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए आन्दोलन उठावें।"

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-जाति में विवाहित जीवन बहुत दोषपूर्ण हो गया है और उसने स्त्री के व्यक्तित्व का सर्वथा नाश कर दिया है। इतना ही नहीं, इसके कारण स्त्री ऐसी असमर्थ और पङ्गु बन गई है कि वह अपने दुःख-सुख का कुछ भी उपाय नहीं कर सकती। पति और घर के अन्य पुरुष उसे जैसे रक्खें उसी प्रकार उसे रहना होता है। इस दुरवस्था

का वर्णन करते हुए एक महान् भारतीय लेखक ने लिखा है कि—"इस देश की स्त्रियाँ पिंजड़ों में बन्द चिड़ियाँ हैं। जो बोली उन्हें पढ़ाओगे वही बोली वे पढ़ेंगी, भोजन दे दोगे तो खा लेंगी नहीं तो एकादशी कर जाएँगी।" यह दशा घोर अन्यायपूर्ण और अस्वाभाविक है और सदैव स्थिर नहीं रह सकती। इसमें परिवर्तन होना अनिवार्य है। जब ऐसा परिवर्तन होगा, तो उसका स्वरूप अवश्य ही बड़ा विकराल हो जायगा। स्त्रियों को जितना दबाया और पीसा गया है, उसकी प्रतिक्रिया भी वैसी ही भयङ्कर होगी। अभी तक तो यहाँ के ढोंगी, सभ्यताभिमानी बगले बजा कर कहा करते थे कि भारत की स्त्रियाँ सती-शिरोमणि और पातिव्रत-धर्म की आदर्श हैं; चाहे संसार लौट जाय, पर वे कभी अपने धर्म को न छोड़ेंगी। दूसरे शब्दों में उनका आशय यह था कि यहाँ की स्त्रियाँ एकदम भेड़ बना दी गई हैं और हम उनको चाहे जैसे रक्खें, उनके साथ चाहे जैसा व्यवहार करें, वे हमारी दासी बनी रहेंगी। पर अब यह परिवर्तन-काल आरम्भ हो गया है और आरम्भ में ही जो लक्षण दिखलाई दे रहे हैं, उनसे प्रतीत होता है कि कुछ ही समय में यहाँ की स्त्रियों की ऐसी कायापलट होगी कि समस्त संसार चौंक पड़ेगा और उपरोक्त प्रकार के सभ्यताभिमानियों को तो मुँह दिखाने की भी जगह न रहेगी। इसी सम्भावना पर विचार करके कुछ महीने पहले एक हिन्दी-लेखक ने लिखा था—

"कुछ भी हो, यह साफ़ दिखलाई देता है कि हमारी स्त्री-जाति की कायापलट अत्यन्त शीघ्र होती चली जाती है। घर-घर में घोर अनपढ़ तथा प्राप्तावस्था स्त्रियाँ भी राजनीतिक तथा सामाजिक प्रगति में जैसी दिलचस्पी लेने लगी हैं, वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। पिछले दस वर्षों में यह उन्नति हुई है। अगले दस वर्षों में क्या होगा, कौन कह सकता है? फिर भी यह निश्चित है कि हमारी बहिनें अब सीता, सावित्री, दमयन्ती का अनुकरण करने नहीं चली हैं। × × × सीता, सावित्री, दमयन्ती का चरित्र आधुनिक साम्यवाद के प्रकाश में घोर नृशंस दासता को व्यक्त करता है; और साम्यवाद दासता का, चाहे वह किसी भी रूप में हो, घोर विरोधी है। × × × साम्यवाद की कट्टर अनुयायिनी होकर हमारी देवियाँ पूजार्चन, देवभक्ति, पतिभक्ति आदि 'दुर्बल भावुकताओं' को पैरों तले ठुकराने जा रही हैं। 'भक्ति' शब्द को ही वे अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखने लगी हैं। मीराबाई उनके लिए घोर हास्य की पात्री बनने लगी है। आज तक पुरुषों के लाख सिर पटकने पर भी जिस धर्माडम्बर को वे छोड़ नहीं सकती थीं, अब कोटि चेष्टा करने पर भी वे उस मार्ग में नहीं लाई जा सकेंगी, और पुरुषों के सच्चे धार्मिक भाव को जड़ से उखाड़ फेंकने की चेष्टा करेंगी।"

जो दशा स्त्रियों की है वही अछूतों की भी है। उन्होंने भी अब दास और नीच बन कर न रहने का निश्चय कर लिया है। नासिक और गुरुवायूर के मन्दिर-सत्याग्रह इसके प्रमाण हैं। नवीन राजनीतिक सुधारों में अछूतों का एक दल जिस प्रकार पृथक् निर्वाचन पर ज़ोर दे रहा है और अपने को हिन्दुओं से अलग करने की चेष्टा कर रहा है, उससे भी सिद्ध होता है कि उन लोगों में ऊँची जाति के हिन्दुओं के अन्यायों के प्रति अवश्य ही घृणा और रोष का भाव जाग्रत हो गया है। यह दशा देख कर हिन्दू सँभलने लगे हैं और अछूतों के अलग होने की हानियों को समझ कर उनसे समझौता करने की चेष्टा करने लगे हैं। इस सम्बन्ध में उनके एक प्रधान नेता रावबहादुर एम० सी० राजा ने जो विचार प्रकट किए हैं, उनसे पता चलता है कि अब अछूत लोग अधिक दिनों तक इस दुर्गति के गढ़े में पड़े न रहेंगे। श्री० राजा को पूरी आशा है कि अछूतों के लिए व्यवस्थापक सभाओं में स्थान सुरक्षित रखने की आवश्यकता थोड़े दिनों के लिए ही है। इसके बाद वे स्वयं इतने सङ्गठित और जाग्रत हो जायँगे कि ऊँची जाति वालों की प्रतियोगिता में अपनी रक्षा कर सकेंगे और सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

स्त्रियों और अछूतों के सिवा अन्य सामाजिक विषयों में भी क्रान्ति का आगमन हो रहा है और लोग तमाम पुरानी हानिकारक प्रथाओं को लौटने का उद्योग कर रहे हैं। उदाहरणार्थ हिन्दुओं की उच्च जातियों में प्रायः प्रत्येक वयस्क व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् भोज देने का नियम है। वैश्यों की कई जातियों में यह प्रथा इतनी बढ़ गई है कि लोगों को इसके कारण अपना सर्वस्व तक खो देना पड़ता है अथवा वे बहुत समय के लिए ऋणी

बन जाते हैं। अब लोगों की आँखें इस सम्बन्ध में खुली हैं और कितने ही स्थानों में इस तरह के भोजों को युवकों ने सत्याग्रह द्वारा बन्द करा दिया है। इसी प्रकार कितने ही वृद्ध-विवाह, जो प्रत्येक दृष्टि से एक घोर जघन्य और हेय कार्य हैं, सत्याग्रह करके अथवा बल-पूर्वक हस्तक्षेप करके बन्द कराए गए हैं। अब तक लोग इन कार्यों को व्यक्तिगत समझते थे और कहते थे कि हम चाहे जो कुछ करें, इसमें किसी का क्या इजारा? पर अब वे समझते जाते हैं कि समस्त समाज एक शरीर के समान है और उसके किसी अङ्ग को यह अधिकार नहीं कि अनुचित मार्ग से चल कर तमाम शरीर को क्षति पहुँचावे।

लोग इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हो रहे हैं। वे देखते हैं कि इन हानिकारक प्रथाओं और कार्यों का मूल कारण धर्मशास्त्र या रूढ़ियाँ हैं। इस कारण वे इन दोनों को तोड़ डालना चाहते हैं। धर्मशास्त्रों का आदर और श्रद्धा तो लोगों में बहुत दिनों से घट रही है, अब कितने ही लोग उनको उठा कर दूर फेंक देने की आवाज़ उठा रहे हैं। चाहे ऐसा अभी न हो सके, पर क्रान्ति के अच्छी तरह फैल जाने पर वर्तमान धर्मशास्त्रों और ऐसे ग्रन्थों का, जिन्होंने जनता में कुरीतियाँ फैलाने में सहायता पहुँचाई है, उपेक्षणीय हो जाना स्वाभाविक है।

इस प्रकार बड़े भीषण वेग से और विकराल स्वरूप में क्रान्ति का आगमन इस देश में हो रहा है। यद्यपि उसकी आरम्भिक लहर ही अभी हम तक पहुँची है, पर उसी से उसकी शक्ति का अनुमान हो जाता है। जब यह अपनी प्रौढ़ावस्था पर पहुँचेगी, तो इसकी पर्वताकार प्रचण्ड लहरें समस्त समाज और देश को व्याप्त कर देंगी और उनके सम्मुख पड़ कर अधिकांश वर्तमान सामाजिक प्रथाएँ और धर्म-कर्म के सिद्धान्त इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो जायँगे, जैसे किसी प्रचण्ड तूफ़ान में पड़ कर जहाज़ों और नावों के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

❀ ❀ ❀

विधवा-आश्रम

सामाजिक सुधारों में विधवा-विवाह का स्थान बहुत ऊँचा है। एक दिन था, जब 'विधवा-विवाह', 'पुनर्विवाह' आदि शब्द घृणित तथा पाप के चिह्न समझे जाते थे। यदि कोई विधवा से विवाह करने की धृष्टता करता था, तो वह समाज का एक अपराधी तथा घोर पातकी समझा जाता था और उसकी जाति के सरपञ्च उसका जातीय बहिष्कार कर देते थे।

आन्दोलन तथा प्रचार के परिणाम-स्वरूप 'विधवा-विवाह' अब उतना घृणित शब्द नहीं रहा। प्रतिवर्ष सहस्रों विधवाओं के पुनर्विवाह होते हैं। जो विधवा-विवाह के पक्ष में नहीं हैं, वे भी स्पष्ट रूप से उसका विरोध नहीं करते।

यह तसवीर का एक पहलू है; सुन्दर, वाञ्छनीय, हितकर। तसवीर का दूसरा पहलू भी है; घृणित, जघन्य, समाज के भाल पर कलङ्क का टीका लगाने वाला। जहाँ विधवाओं के हितकारियों तथा सहायकों की संख्या बढ़ रही है, वहीं सुधार के नाम पर उन पर अत्याचार करने वालों की संख्या भी वृद्धि पा रही है। ऐसे पतित व्यक्तियों में हैं वे, जो झूठे नामधारी विधवा-आश्रम आदि खोल कर विधवाओं का तथा उनका, जो विधवा-विवाह करना चाहते हैं, सर्वनाश करते फिरते हैं।

हाल ही में इस प्रकार के कई आश्रमों का भण्डा-फोड़ हुआ है। गताङ्क में हम 'दिलचस्प मुक़दमे' स्तम्भ में 'स्त्रियों की बिक्री' शीर्षक एक मुक़दमे का विवरण दे चुके हैं। इसमें प्रयाग के कुछ व्यक्तियों ने एक विवाहिता स्त्री को रुपए लेकर बेच दिया था, पीछे से वह स्त्री अपने 'पति' के पास से भाग आई और 'पति' को पता चला कि उसकी 'स्त्री' का एक और पति पहले ही विद्यमान था। इसके बाद कई पत्र हमें मिले हैं, जिनसे ऐसे आश्रमों के रहस्यों पर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ा है। कुछ नीच व्यक्ति रुपया कमाने का और कोई साधन न देख कर 'विधवा-आश्रम' या अन्य नामों से कोई संस्था खोल लेते हैं। इधर-उधर से विधवाओं, कुमारियों तथा विवाहिताओं को भी बहका कर वे 'आश्रम' में रख लेते हैं। पीछे से रुपया लेकर वे स्त्रियाँ धनी व्यक्तियों को बेच दी जाती हैं। बहुधा इनके चङ्गुल में ऐसे व्यक्ति भी फँस जाते हैं, जो समाज-सुधार के लिए विधवाओं से विवाह करना चाहते हैं। इन युवतियों में से कुछ इस प्रकार सिखाई-पढ़ाई हुई होती हैं कि वे अपने पतियों के यहाँ से बार-बार भाग आती हैं और फिर बार-बार बेची जाती हैं।

फ़र्रुख़ाबाद के एक महाशय ने एक विधवा-आश्रम-निवासिनी से विवाह किया था। उस विवाह के लिए उन्हें 'आश्रम' के अधिकारियों को एक मोटी दक्षिणा भी देनी पड़ी थी। कुछ दिनों वहाँ रह कर वह स्त्री घर से भाग गई और आश्रम के अधिकारियों के पास पहुँच गई।

स्त्री-विक्रय ही इन व्यक्तियों का व्यवसाय हो, सो बात नहीं है। अनेक आश्रम तो व्यभिचार के लिए भी अड्डे बने हुए हैं और इनमें सैकड़ों निरीह बालिकाओं का सतीत्व आए-दिन नष्ट होता रहता है। इस प्रकार इन आश्रमों की आड़ में भिन्न-भिन्न प्रकार की पाप-लीला होती है।

इन पंक्तियों के लिखने से हमारा यह उद्देश्य नहीं है कि सभी विधवा-आश्रम ऐसे होते हैं या इन आश्रमों की आवश्यकता ही नहीं है। हमारा उद्देश्य यही है कि जनता यह जान जाय कि जहाँ वास्तविक आश्रम समाज के लिए उपयोगी कार्य कर रहे हैं, वहाँ कुछ आश्रम ऐसे भी हैं, जो केवल स्त्री-विक्रय के अड्डे बने हुए हैं। ये आश्रम हैं, जिनका समूल नाश करने का प्रयत्न जनता को तथा समाज-सुधारकों को करना चाहिए। हिन्दू-महासभा तथा आर्य-समाज यह कार्य आश्रमों का नियन्त्रण अपने हाथों में लेकर कर सकती हैं तथा हिन्दू-युवक सङ्गठन करके निरपराध युवतियों को इन नर-राक्षसों के चङ्गुल से बचा सकते हैं।

卐 卐 卐

बहिन सुभद्रा!

[श्री० नर्मदाप्रसाद जी खरे]

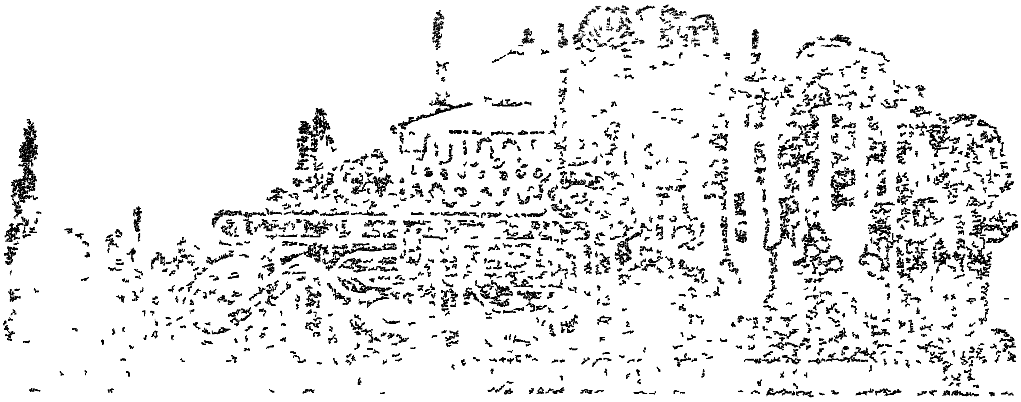
नवल कलिका सी अति सुकुमार,
मधुप-बाला सी तुम स्वच्छन्द।
उर्मिला सी हो दीन-मलीन,
रचा करती हो किस पर छन्द?

कल्पना-सागर में हो लीन,
बहिन, तुम हंसिनि सी छविमान।
न जाने होकर क्यों कुछ म्लान,
किया करती हो किसका ध्यान?

झरा करते बातों से फूल,
बसी रहती मुख पर मुस्कान।
हँसी में रहता है उन्माद,
मधुर जीवन के मधु आख्यान॥

तुम्हारी रम्य कुटी में बहिन,
'सुधा' करती है सरस सुवास।
सलोने 'अजय', 'विजय' दो लाल,
बिखेरा करते हैं उल्लास॥

तुम्हारा सोने का संसार,
लुटाता है मलिन्द सा प्यार।
प्रेममय रहता मृदु व्यवहार,
प्रेम ही है जीवन का सार॥



निरपराध बन्दी

[मूल लेखक—महर्षि टॉल्स्टॉय; अनुवादक—श्री० अन्तर्वेदी]

आनन्दपुर में विनोद की कई दूकानें थीं। व्यापार खासा चल रहा था और वह एक धनवान सौदागर समझा जाता था। वह नवयुवक था। उसके रूप-रङ्ग और चाल-चलन से भलमन-साहत टपकती थी। जुआ, शराब और दूसरे बुरे कामों से वह सदैव दूर रहता था। दो साल पहले उसने एक रूपवती लड़की से व्याह कर लिया था और अब वह एक नन्हें-से बच्चे का बाप भी था।

एक दिन वह मेला जाने के लिए अपनी धर्मपत्नी से विदा ले रहा था।

"आज मेला न जाओ"—उसकी पत्नी ने कहा—"गत रात को मैंने एक बड़ा ही भयानक सपना देखा है।"

विनोद एक ठहाका मार कर हँस पड़ा और बोला—राम-राम, सपने से डर गईं ? मेले से तुम्हारे लिए ऐसी बढ़िया चीज़ लाऊँगा कि देख कर ख़ुश हो जाओगी।

"मैंने स्वप्न में देखा है"—उसकी पत्नी कहने लगी कि "तुम गाँव से वापस लौट रहे हो, परन्तु तुम्हारी बाहरी दशा बिलकुल बदली हुई है। तुम जब निकट आए तो देखा कि तुम्हारे सिर के बाल श्वेत हो गए हैं।"

विनोद फिर हँसा और कहने लगा—ऊँह ! यह भी कोई डरने की बात है। बल्कि यह तो एक शुभ-शकुन है। इससे कम से कम इतना तो मालूम हुआ कि मैं उस समय तक जीवित रहूँगा, जब तक मेरे सिर के बाल सफ़ेद न हो जायँ।

उसने एक बार बच्चे को उठा कर प्यार किया और चल दिया।

तीसरे पहर विनोद को रास्ते में एक व्यापारी मिला। दोनों ने निकट के सराय में रात बिताने का प्रबन्ध किया। कुछ खा-पीकर दोनों अपने-अपने कमरों मे जाकर सो रहे। कुछ काल के बाद जब विनोद की आँख खुली तो रात आधी बीत चुकी थी। उसने सोचा, क्या यह अच्छा न होगा कि मैं रात की ठण्डक में ही अधिक रास्ता तय कर दूँ। मुझे अब अधिक आराम की आवश्यकता नहीं। सवेरे जब धूप तेज़ हो जायगी तो किसी सराय में ठहर कर दिन ढलने तक विश्राम कर लूँगा।

उसने अपना सामान बाँधा। घोड़े पर ज़ीन कसी और चलता बना। कुछ दिन चढ़े वह एक सराय में पहुँचा। अभी आग को जलाया ही था कि तीन सवारों को सराय मे प्रवेश करते देखा। ये राही न थे। इनमें एक जो सरदार की तरह मालूम पड़ता था, विनोद के कमरे में चला आया और उससे पूछा—"तुम रात को कहाँ ठहरे थे ? तुम्हारे साथ कोई और सौदागर था ? क्या तुमने

वहाँ से निकलने से पहले उनसे भेंट की थी?" उसने मानो प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

विनोद ने उसके प्रश्नों का साफ़-साफ़ उत्तर दिया। उसने कहा—परन्तु आप मुझसे इस तरह के प्रश्न क्यों कर रहे हैं? मैं कोई चोर या उचक्का, डाकू या ख़ूनी नहीं हूँ। मेले में कुछ आवश्यक सौदा ख़रीदने जा रहा हूँ। फिर आपको क्या अधिकार है कि एक सौदागर से इस प्रकार के प्रश्न करें।

"मैं पुलिस-इन्स्पेक्टर हूँ।" आगन्तुक ने कहा—"और आपसे इस तरह प्रश्न करने का कारण यह है कि वह सौदागर, जो आपके साथ सराय में ठहरा था, आज सबेरे मरा हुआ पाया गया है। किसी ने उसकी हत्या कर डाली है।"

इसके बाद उसने सिपाहियों को आज्ञा दी कि इनके सामान की तलाशी ले लो।

विनोद ने अपना छोटा सा बक्स और बिस्तरा उनके सामने रख दिया। बक्स को इधर-उधर टटोलने के बाद सिपाही ने एक ख़ून लगा हुआ छुरा बरामद किया, जो कपड़े में लपेटा हुआ था।

"क्या यह तुम्हारा नहीं है?"—इन्स्पेक्टर ने विनोद से पूछा।

विनोद आँखें फाड़ कर छुरे को देख रहा था, उसके पैरों के नीचे से मानो धरती निकल गई। हा भगवान! यह मैं क्या देख रहा हूँ? उसने मन ही मन कहा।

"और इसमें ख़ून कैसे लग गया?"—इन्स्पेक्टर ने व्यंग्यपूर्ण स्वर मे पूछा?

विनोद के शरीर मे काटो तो ख़ून नहीं था। वह कुछ कहना चाहता था, परन्तु उसकी ज़बान क़ाबू में न थी। उसने साहस करके कहा—"मैं नहीं जानता, यह छुरा—छुरा मेरा नहीं है।" उसने लड़खड़ाती ज़बान से कहा।

"सुनो"—इन्स्पेक्टर कहने लगा—"मृत सौदागर जिस कमरे में ठहरा था, उसमें दो द्वार थे। एक बाहर की ओर खुलता था और दूसरा तुम्हारे घर में। बाहर से ताला लगा था, परन्तु भीतर वाला द्वार खुला था। तुम सबेरा होने से पहले ही, बिना किसी से कुछ कहे-सुने असाधारण चाल से भाग निकले। तुम्हारी पिटारी के भीतर ख़ून लगा हुआ छुरा पाया गया। इसके अलावा तुम्हारी घबराई हुई सूरत बता रही है कि तुम्हीं ने हत्या की है। बस, अब साफ़-साफ़ बता दो कि तुमने क्यों उसकी हत्या की और कितनी रकम चुराई?"

विनोद ने शपथपूर्वक कहा—मैंने न तो उसकी हत्या की और न मैंने उसकी कुछ रक़म चुराई। निहत व्यक्ति से मेरी जान-पहचान थी, इसलिए हम दोनों पास ही पास ठहर गए थे। शायद इसी कारणवश उसने ताला भी न लगाया हो। और कुछ रात रहते चले आने का कारण यह था कि मैं ठण्डे-ठण्डे कुछ रास्ता तै कर लेना चाहता था।

विनोद बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, परन्तु इन्स्पेक्टर ने एक न सुनी। विनोद के ८००) भी चोरी का माल समझ कर ज़ब्त कर लिए। पुलिस के सिपाही उसे घसीटते हुए थाने में ले गए। वहाँ ले जाकर पुलिस ने अपराध स्वीकार कराने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु विनोद ने स्वीकार न किया। अन्त मे विनोद अदालत के सामने उपस्थित किया गया। वहाँ बड़े ग़ौर से उसके मामले का विचार हुआ और न्यायाधीश ने उसे आजन्म द्वीपान्तर भेजने की सज़ा दी।

विनोद की पत्नी ने यह ख़बर सुनी तो छाती पीट कर गिर पड़ी। अन्त में वह बच्चे को गोद में लेकर अपने पति से अन्तिम बार मिलने को गई। पहले तो चौकीदार ने उसे मिलने की आज्ञा न दी, परन्तु अन्त में उसके अनुनय-विनय करने पर उसे दया आ गई। वह विनोद के चरणों पर गिर गई और ढाढ़ें मार कर रोने लगी। जब रो-धोकर कुछ शान्त हुई तो वास्तविक घटना के बारे मे बातचीत होने लगी। विनोद ने आदि से अन्त तक सब हाल उससे कहा।

"तो अब हमे क्या करना चाहिए?"—पत्नी ने पूछा।

"एक बार हाईकोर्ट में अपील क्यों न की जाए।"—विनोद ने कहा।

उसकी स्त्री ने कहा—मैं हाईकोर्ट का द्वार पहले ही खटखटा चुकी हूँ। वहाँ के अधिकारियों ने मेरे प्रार्थना-पत्र पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, तब लाचार होकर मैं यहाँ चली आई।

विनोद की रही-सही आशा पर भी पानी फिर गया। वह हताश भाव से ज़मीन की ओर ताकने लगा।

"आह ! मेरा सपना कितना भयानक था। तुमने मेरी बात न सुनी। मैं देखती हूँ, जेल की दीर्घकालीनता ने तुम्हारे बालों को सफ़ेद कर दिया है।"—उसकी पत्नी ने कहा।

"प्राणनाथ ! प्रियतम ! मैं प्रार्थना करती हूँ। तुम मुझसे कुछ मत छिपाओ। असल घटना क्या है, सच-सच बता दो। क्या तुमने सौदागर का ख़ून किया था ?"—पत्नी ने गिड़गिड़ा कर पूछा।

विनोद की आँखों में आँसू भर आए और वह फूट-फूट कर रोने लगा। ठीक इसी समय जेल के चौकीदार ने आकर कहा—बस, अब समय हो गया। अब तुम्हें अलग होना होगा ?

जब विनोद की स्त्री चली गई तो विनोद अपने दिल में सोचने लगा—क्या वास्तव में संसार मुझे अपराधी समझ रहा है ? बस, अब मुझे ईश्वर से ही प्रार्थना करनी चाहिए, वही जानता है कि मैं निरपराध हूँ।

इस समय विनोद निराश हो गया और शान्तभाव से ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

इसी तरह ईश्वर पर भरोसा करके उसने २६ साल जेलख़ाने मे बिता दिए। उसके बाल सफ़ेद हो गए। दाढ़ी बढ़ कर छाती को चूमने लगी। और कमर कमान की तरह झुक गई।

जेल के अधिकारियों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि विनोद का ढङ्ग अन्यान्य क़ैदियों से पृथक् है। वह शान्त, एकान्त-प्रेमी, चुपचाप रहने वाला है। दूसरे क़ैदी आपस में लड़ते-झगड़ते, खाने-पीने की शिकायत करते और काम से जी चुराते हैं, परन्तु विनोद सबसे अलग ही रहता है। न तो वह किसी शरारत में शामिल, न किसी बुराई से कोई सम्बन्ध। उसने अपना जीवन ही निराला बना लिया था। उसे किसी से कोई वास्ता-सरोकार न था। इसलिए अधिकारी उस पर दया और दूसरे क़ैदी उसका सम्मान करने लगे।

इस दीर्घकाल में न विनोद को कोई पत्र मिला, और न स्त्री और बच्चे का कोई समाचार मिला। जब उसे कभी घर का ख़्याल आता तो वह विह्वल हो जाता और दिल बहलाने की इच्छा से अपनी विचार-धारा को बदल देता।

कुछ नए क़ैदियों का एक दल जेलख़ाने में आया। सदैव के अनुसार सभी क़ैदी उनकी रामकहानी सुनने के लिए जेल के आँगन में एकत्र हुए। विनोद भी एक कोने में बैठा हुआ उनकी बातें सुनता और उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखा रहा था। अन्त मे एक लम्बे और दुबले-पतले कैदी की बारी आई। उसकी सफ़ेद और लम्बी दाढ़ी बता रही थी कि वह एक धूर्त है।

"मित्रो !"—वह कहने लगा—"विश्वास करो कि मैं बेगुनाह हूँ। मेरा अपराध केवल इतना ही था कि मैं बिना पूछे ही अपने पड़ोसी का घोड़ा बाज़ार तक लेकर चला गया। मेरा मतलब सौदा लेकर शीघ्र ही वापस आने का था। परन्तु पुलिस को किस तरह समझाया जाय कि मेरी नीयत चोरी करने की न थी। केवल एक घण्टे के लिए मैंने घोड़ा लिया था। और उसे वापस कर देने को तैयार था, मगर सुनता कौन है ? पुलिस वालों ने ख़्वामख़्वाह अपराधी बना कर मेरा चालान कर दिया। मुझे आशा थी कि मेरे साथ न्याय होगा। परन्तु अदालत ने बिना कुछ कहे-सुने ही सज़ा सुना दी। मित्रो, मैं छिपाना नहीं चाहता कि इससे पहले भी मैं यहाँ एक क़ैदी के रूप में रह चुका हूँ।"

यह कह कर वह आँखें मल कर रोने की कोशिश करने लगा।

"तुम कहाँ के रहने वाले हो ?"—एक ने प्रश्न किया।

"मैं आनन्दपुर में रहता था"—उसने उत्तर दिया—"न मालूम पुलिस वालों से मुझसे कौन सा ख़ार है। नाहक़ मुझे दो बार फँसा चुके हैं।"

विनोद आनन्दपुर का नाम सुन कर चौंक पड़ा। "क्या तुमने कभी विनोद का नाम भी सुना है ?" उसने पूछा।

"क्यों नहीं।" उसने उत्तर में कहा—"आनन्दपुर में उसकी दूकानें ख़ूब चलती थीं और एक प्रतिष्ठित दूकान-दार समझा जाता था। परन्तु कई साल पहले उसे आजन्म क़ैद की सज़ा मिल चुकी है। वह भी मेरे जैसा ही अभागा था। ××× ख़ैर, मेरी कहानी तो हो चुकी, अब तुम अपनी सुनाओ।" उसने फ़रमाइश की।

विनोद अपना हाल किसी को बताना नहीं चाहता था। उसने एक ठण्डी साँस खींची और कहा—मैं छत्तीस साल से अपने कर्मों का फल भोग रहा हूँ।

"तुम्हारा क्या अपराध था?"—उसने प्रश्न किया।

"ऐसा अपराध था, जिसकी सज़ा आजीवन क़ैद हो सकती है।" विनोद ने कहा और मुँह फेर कर चुप हो गया। उसके साथियों ने सारा क़िस्सा कह सुनाया कि किस तरह बेचारे पर एक सौदागर की हत्या करने का अपराध लगाया गया।

"आश्चर्य! तुम बहुत बूढ़े हो गए हो।"—उसके मुँह से एकाएक निकल पड़ा।

लोगों ने आश्चर्य का कारण पूछा और जानना चाहा कि क्या तुम विनोद को जानते हो? उसने लोगों के प्रश्नों का कुछ उत्तर न देकर कहा, संयोग है, होनहार है!

विनोद के दिल में एकाएक यह ख़्याल पैदा हुआ कि क्या यह असली हत्याकारी को जानता तो नहीं है, इसलिए उसने पूछा—क्या तुमने इस घटना का हाल कभी पहले भी सुना है?

"सुना है।"—उसने कहा—"एक समय यह हाल आनन्दपुर के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर था। परन्तु बहुत दिनों की है, इसलिए मुझे पूरी घटना याद नहीं है।"

"अच्छा, क्या यह भी सुना था कि वास्तविक अपराधी कौन था?"—उसने फिर प्रश्न किया।

उसने मुस्कुराते हुए कहा—असली अपराधी उसी को होना चाहिए, जिसकी पिटारी से ख़ून लगा हुआ छुरा निकले। अगर कोई दूसरा आदमी तुम्हारी पिटारी में छुरा छिपा देता तो तुम चोरी के अपराध में पकड़े जाते। अगर मान लो कि ऐसा होता भी तो पिटारी तुम्हारी चारपाई के नीचे थी, उसको खोलने में आवाज़ होती और तुम अवश्य जग जाते।

इस बातचीत से विनोद को नए क़ैदी पर सन्देह होने लगा। उसने सोचा, सम्भव है, यही वास्तविक अपराधी हो।

जी बहलाने के लिए वह दूसरी बातें सोचने लगा। रात्रि की निस्तब्धता में उसके मानस-पट पर उसके पुराने जीवन का एक चित्र अङ्कित हो गया। सिनेमा के चित्रों की तरह एक के बाद दूसरे ख़्याली चित्र उसके सामने आने लगे। स्त्री से विदा होना, स्वप्न की बात कह कर उसका उसे रोकना, उसकी लापरवाही, उसकी बात न मानना और बच्चे को प्यार करके चल देना। फिर रास्ते में दूसरे सौदागर से मिलना, सराय में ठहरना, और पिछली रात को उठ कर चलने लगना। फिर दूसरे दिन सराय में ठहरना, पुलिस का ख़ून लगा हुआ छुरा उसकी पिटारी से बरामद करना, मुक़दमा, फ़ैसला, सज़ा, क़ैद की छत्तीस-साला ज़िन्दगी और आज इस नए क़ैदी का ढङ्ग × × × ।

"निश्चय इसी ने हत्या की है।" विनोद एकाएक चिल्ला उठा। सब क़ैदी घोर निद्रा में अभिभूत थे। किसी ने उसकी आवाज़ नहीं सुनी। परन्तु एक ने उसकी चीख़ सुन कर करवट बदली। विनोद उसकी ओर घूरने लगा, परन्तु उसने फिर कोई हरकत नहीं की।

जब सवेरा हुआ तो विनोद ने प्रतिज्ञा की कि इस नए क़ैदी से बोलना तो दूर रहा, उसका मुँह भी न देखूँगा। दिन तो किसी तरह कट जाता, परन्तु रात काटे नहीं कटती थी। एक रात को जी बहलाने की इच्छा से विनोद अपने बैरक के सामने टहल रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि एक आदमी पर पड़ी, जो बड़ी मेहनत से ज़मीन खोद रहा था। निकट जाने पर देखा कि यह वही नया क़ैदी है। विनोद उसकी ओर देखना नहीं चाहता था। इसलिए पीछे हटा और बैरक की ओर जाने लगा। परन्तु क़ैदी ने लपक कर उसका हाथ थाम लिया और कहने लगा। सुनो, मैं कई रात से सुरङ्ग तैयार कर रहा हूँ। शायद यह कल रात तक तैयार हो जायगी। परन्तु सावधान, किसी से कहना मत। तुम्हें भी अपने साथ ले चलूँगा। परन्तु अगर तुमने यह बात प्रगट कर दी तो बस, समझ लो कि मेरे फ़ौलादी पञ्जे से तुम्हारा निस्तार नहीं।

लापरवाही से हाथ झिटक कर विनोद ने कहा—छुटकारे से मुझे कोई लाभ नहीं है और तुम दोबारा मुझे अपनी धूर्तता से हानि पहुँचा सकते हो। रहा यह कि मैं तुम्हारा भेद खोल दूँ, सो यह बिल्कुल मेरी इच्छा पर है।

दूसरे दिन अप्रत्याशित भाव से कुछ श्रमिक और सिपाही मैदान साफ़ करने आए। दीवार के निकट का पत्थर हटाया गया तो एक सुरङ्ग दिखाई पड़ी।

सिपाहियों ने जेलर साहब को ख़बर दी। उसने तमाम क़ैदियों को बुलाया और बारी-बारी से सब से प्रश्न किया—"सच-सच बताओ, यह किसका काम है?" परन्तु सबने अपनी अजानकारी प्रगट की। जब विनोद की बारी आई, तो जेलर ने कहा—"बूढ़े आदमी, मैं तुम्हें ईमानदार और सच्चा समझता हूँ। साफ़-साफ़ बता दो कि यह सुरङ्ग किसने खोदी?"

नया क़ैदी भी पास ही खड़ा था। वह अपने को बेपरवाह प्रगट करना चाहता था। परन्तु रह-रह कर उसकी आँखें जेलर के चेहरे पर गड़ जाती थीं। बेचारा विनोद विचित्र असमञ्जस में पड़ गया था। उसने सोचा, क्या मैं इसको बचा लूँ? परन्तु क्यों? इसने मुझको तबाह किया, बस, अब इसे भी बरबाद होने दो × ×। परन्तु × × परन्तु इसे बरबाद करने में मेरा क्या लाभ है?

जेलर ने फिर पूछा—बोलो बूढ़े, किसने यह बदमाशी की है?

विनोद ने क्षण भर के लिए नए क़ैदी की ओर दृष्टि की और बोला—सरकार, मुझे क्षमा कीजिए। मैं नहीं कह सकता। आपको अधिकार है, जो चाहें दण्ड दें।

जेलर ने बहुत धमकाया-डराया, परन्तु कोई नतीजा न निकला। इसलिए यह पता न चल सका कि सुरङ्ग किसने खोदी।

उसी रात को विनोद अपने बिछौने पर अर्द्ध-निद्रितावस्था में पड़ा था। कोई व्यक्ति धीरे-धीरे उसकी ओर खिसक रहा था। विनोद चौंक पड़ा और आँखें फाड़ कर देखने लगा। नया क़ैदी घुटनों के बल उसके पास खड़ा था।

"अब तुम किस दुरभि-सन्धि के लिए मेरे पास खड़े हो?"—विनोद ने प्रश्न किया।

नए क़ैदी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु वह विनोद के बिलकुल पास आ गया।

"तुम्हारी क्या इच्छा है? जाते हो या सिपाही को पुकारूँ?"—विनोद ने झल्ला कर कहा।

"भाई विनोद, मुझे क्षमा करो।"—नए क़ैदी ने गिड़गिड़ा कर कहा।

विनोद चुप था।

"मैं वही बदमाश हूँ, जिसने सौदागर की हत्या की और तुम्हारी पिटारी में छुरा छिपा दिया। मैं तुम्हें भी मार डालना चाहता था। परन्तु बाहर के एक शब्द ने मुझे भाग जाने के लिए विवश किया और छुरे को तुम्हारी पिटारी में रख कर निकल भागा।"

विनोद ने कुछ नहीं कहा, और कहता ही क्या?

"भाई विनोद, मुझे क्षमा करो, ईश्वर के लिए क्षमा करो। मैं सवेरे अपना अपराध स्वीकार कर लूँगा और जेलर साहब तुम्हें छोड़ देंगे।"—उसने प्रार्थना के स्वर में कहा।

"तुम अपना अपराध स्वीकार कर लोगे और जेलर साहब मुझे छोड़ देंगे।"—विनोद कहने लगा—"परन्तु यह तो बताओ कि मैं अब कहाँ जाऊँ? छत्तीस साल बाद, उफ़! मेरी स्त्री मर गई होगी और मेरा प्यारा लड़का मुझे पहचान भी न सकेगा, × × × बताओ, मैं छूट कर क्या करूँगा।"

"मेरे भाई! मेरे प्यारे विनोद, मुझे क्षमा कर दो। ईश्वर के लिए मुझे क्षमादान दे दो।"—उसने फिर गिड़गिड़ाना आरम्भ किया—"अगर मेरी पीठ पर कोड़े लगते तो मुझे इतना कष्ट न होता, जितना तुम्हारी निरपराध सूरत देख कर हो रहा है। कल तुमने मुझे बचा लिया। भाई देखो, मेरा दिल न तोड़ो। मुझे क्षमा कर दो। बस, यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है।" उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू निकल रहे थे।

सहृदय विनोद यह दृश्य देख न सका। उसकी आँखों में आँसू भर आए। कहने लगा, मैं कौन हूँ क्षमा करने वाला। ईश्वर से प्रार्थना करो, वही तुम्हें क्षमा करेगा। अन्तःकरण से पश्चात्ताप करो। तुम्हारे पश्चात्ताप के आँसू ही तुम्हें क्षमा दिलवा सकते हैं।

सवेरे नए क़ैदी ने जेलर के पास जाकर सौदागर की हत्या का अपराध स्वीकार किया और कहा कि विनोद निरपराध है, उसे छोड़ दिया जाय।

परन्तु जिस समय सिपाही छुटकारे का परवाना लेकर विनोद के कमरे में आया, उस समय विनोद का प्राण-पखेरू उसके देह-पिञ्जर को छोड़ कर उड़ चुका था।

परिचय

[प्रो० रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

मेरी गति है वहाँ, जहाँ पर करुणा का है नाम नहीं !
मैं रहता हूँ वहाँ, जहाँ रहने का कोई धाम नहीं !!
मेरे कार्यों का होता है, कोई भी परिणाम नहीं !
मेरे व्रज में गोप नहीं, गोपियाँ नहीं, घनश्याम नहीं !!
मैं जाता हूँ कहाँ, इसी का मुझको बिलकुल ज्ञान नहीं !
मुझे छोड़ कर अन्य किसी से मेरी है पहिचान नहीं !!

सूक्ष्म और अन्तर्यामिन का मुझमें होता है अवतार !
मूर्ति कहाँ है, विभव-व्यूह का सजा रहा हूँ मैं संसार !!
जाग रहा है चित, सोता है अचित प्रकृति बन बारम्बार !
आता कौन, कौन जाता है सृष्टि-महासागर के पार !!
बद्ध, मुक्त से सजा रहा हूँ, चित का मैं अस्तित्व अनन्त !
सत, रज, तम की वृत्ति चली जाती है महा-प्रलय पर्यन्त !!

परिवर्तन की चाल, एक कण घूम-घूम कर सौ-सौ बार !
बना रहा है प्रलय, विश्व के बना रहा अगणित संसार !!
रात्रि और दिन के परदो पर खेल रहा जीवन बन व्यस्त !
अन्धकार के काल-सर्प जब ढक लेते हैं विश्व समस्त !!
और सर्प-दंशित-सम, जग जब हो जाता है तमसाकार !
मैं जाता हूँ पुरुष-रूप से, करने महा-प्रकृति से प्यार !!

कैसा है वह प्यार वासना का जिसमें विस्तार नहीं !
मेरी उसमें जीत नहीं है और प्रकृति की हार नही !!
निर्मित है ब्रह्माण्ड, महा-कण का कोई है पार नहीं !
क्रीड़ास्थल है महा विश्व, यह छोटा-सा ससार नहीं !!
मेरा है यह मिलन, हुआ है जिसमें कभी वियोग नहीं !
कण, कण मे है शान्ति, शान्ति में शान्ति, अशान्ति प्रयोग नहीं !!

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

उत्तरी अफ़्रीका के अन्य मुस्लिम देश

उत्तरी अफ़्रीका के अन्य मुस्लिम देशों की स्थिति तुर्की और मिसिर से भिन्न थी। वहाँ वास्तव मे राष्ट्रीयता की तो जागृति नही थी, परन्तु स्वतन्त्रता की माँग अवश्य होने लग गई थी। इस माँग के नेता थे वे लोग, जिन्होंने यूरोप के ढङ्ग की शिक्षा पाई थी। ये लोग मोरक्को, ट्यूनिस, अलजीयर्स या त्रिपोली को स्वतन्त्र राष्ट्र नही बनाना चाहते थे; बल्कि सब देशों के मुसलमानों को सङ्गठित करके उत्तर अफ़्रीका मे एक छोटा सा मुस्लिम साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे। उत्तरी अफ़्रीका मे जो सेनूसिया सङ्घ स्थापित हुआ था और आश्रमों द्वारा जो कार्य वह कर रहा था, उसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

१९वीं शताब्दी के अन्त मे जब मोरक्को के सुलतान निर्बल और निकम्मे होने लगे, तो फ़्रान्स ने उस देश पर अपना आधिपत्य जमा लिया और सुलतान को नाम-मात्र का शासक रहने दिया। इससे इङ्गलिस्तान बहुत चिढ़ा और गुप्त रूप से आर्थिक सहायता देकर सुलतान को फ़्रान्स के विरुद्ध उकसाने लगा। इस प्रकार की चालें कई साल तक चलती रहीं। अन्त को सन् १९०४ मे फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान ने आपस में समझौता कर लिया। इसके अनुकूल मोरक्को, अलजीयर्स आदि फ़्रान्स के हिस्से में और मिसिर अङ्गरेज़ों के हिस्से मे आए। सन्धि में तय पाया कि अङ्गरेज़ लोग मिसिर की तथा फ़्रान्स उत्तरी अफ़्रीका के अन्य मुस्लिम देशों की उन्नति करेगा। वास्तव में मतलब यह था कि अपने-अपने स्वार्थों की सिद्धि करने के लिए दोनों देशों ने इस सन्धि द्वारा मुस्लिम देशों का बटवारा कर लिया था। मिसिर भारत के मार्ग की कुञ्जी है, इसलिए अङ्गरेज़ों ने उसे अपने हिस्से मे ले लिया और मोरक्को आदि फ़्रान्स के निकट है, इसलिए उन देशों पर उसने हाथ साफ़ किया। स्पेन के साथ एक अलग सन्धि हुई, जिसके अनुकूल इन देशों का उत्तरी भाग स्पेन का और दक्षिणी फ़्रान्स का ठहराया गया। नवशिक्षित मुसलमान, जो विदेशियों के प्रति आन्दोलन कर रहे थे, वे फ़्रान्स और स्पेन के विरुद्ध थे।

ईरान

ईरान में जमालुद्दीन अफ़ग़ानी के आन्दोलन से १९वीं शताब्दी के अन्त मे मुस्लिम सङ्गठन के साथ ही साथ राष्ट्रीय भावों की भी काफ़ी जागृति हो गई थी। जमालुद्दीन केवल दो वर्ष ईरान मे काम करके मिसिर चला गया था और वहाँ से तुर्की पहुँच कर सुल्तान अब्दुल हमीद की दी हुई पेन्शन पर अपना जीवन-निर्वाह किया करता था। परन्तु इस अवस्था मे भी वह अपनी शिष्य-मण्डली से घिरा रहता था। उसके शिष्यों मे फ़ारस के कई देशभक्त युवक भी थे। ये लोग विदेश मे बैठे हुए कई प्रकार से स्वदेश मे राष्ट्रीय भावों का प्रचार किया करते थे। एक ज़ोरदार आन्दोलक था मलकम ख़ाँ। ये सज्जन लन्दन से एक पत्र का सम्पादन करते थे, जिसका नाम क़ानून था। इस पत्र का ध्येय था ईरान मे निरङ्कुश सत्ता का अन्त करके उत्तरदायी शासन की स्थापना करना और देश में राष्ट्रीयता का प्रचार करना। इस पत्र की अनेक प्रतियाँ चुपके-चुपके ईरान में पहुँच जाती थीं। इस प्रकार के आन्दोलन से ईरान की राष्ट्रीयता दिन-दिन ज़ोरदार बनती जाती थी। सन् १८९६ में राष्ट्रीय आन्दोलन अत्यन्त प्रबल हो गया और निरङ्कुश शासक शाह

नासिरुद्दीन के विरुद्ध सारे देश का क्रोध उमड़ पड़ा। एक क्रान्तिकारी देशभक्त मिर्ज़ा रेज़ा ने शाह की हत्या कर डाली; लेकिन नया शाह मुज़फ्फ़रउद्दीन भी वैसा ही निकम्मा साबित हुआ। उसके शासन-काल में अत्याचार और भी बढ़ने लगा और विदेशी अपने पैर अधिक दृढ़ता से जमाने लगे।

तम्बाकू-बहिष्कार

मुज़फ़्फ़रउद्दीन पाशविक विलासिता में डूबा हुआ देश को विदेशियों के हाथ बेचता जाता था और उसके देशघातक कार्यों के कारण जनता में असन्तोष उमड़ता जाता था तथा राष्ट्रीय भावों की जागृति होती जाती थी। यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि उत्तरी ईरान में उस समय रूसियों का अधिकार प्रबल हो रहा था और दक्षिण की तरफ़ अङ्गरेज़ अपने पैर बढ़ाते जाते थे। मुज़फ़्फ़रउद्दीन में न देशप्रेम था और न कूटनीतिज्ञ विदेशियों की चाल समझने की बुद्धि। देश के समझदार नेता रूस और इङ्गलैण्ड दोनों के ध्येय को समझ चुके थे, इसलिए वे इनके बढ़ते हुए बल का विरोध करते थे। शाह नासिरुद्दीन के शासन-काल में ईरान-सरकार ने एक अङ्गरेज़ी कम्पनी को एक बार तम्बाकू के व्यापार का ठेका दे दिया था। इसके अनुकूल तम्बाकू की उत्पत्ति, व्यापार, निकास आदि सब उस कम्पनी के अधीन कर दिए गए थे। कम्पनी का अनुमान था कि इसमें लगभग एक करोड़ रुपए की पूँजी लगेगी और उस पर पचास प्रतिशत लाभ होगा। इससे ईरान के आबाल-वृद्ध सब लोगों के दैनिक जीवन में बड़ी कठिनता उपस्थित होने लगी और इङ्गलैण्ड की रक्त-शोषक नीति सब पर प्रकट हो गई। कृषक, मुल्ला, व्यापारी तथा अन्य सब लोगों ने इसका घोर विरोध किया और जब सरकार ने लोकमत की उपेक्षा की तो तबरेज़ आदि कई नगरों में बलवे हो गए और दिसम्बर सन् १८९१ में एक धार्मिक नेता के आदेश से तम्बाकू के बहिष्कार की घोषणा कर दी गई। ईरान-निवासी तम्बाकू पीने के बड़े आदी हैं, परन्तु तो भी सम्पूर्ण ईरान ने इस आदेश का पालन किया। ईरान की सजीव राष्ट्रीयता का सरकार और विदेशी लोगों को परिचय मिला। सरकार ने हार मान कर ठेका रद्द किया, तब ईरान के लोगों ने तम्बाकू पीना आरम्भ किया।

बस्त

राष्ट्रीय जागृति का ऐसा भयङ्कर प्रमाण मिल चुकने पर भी ईरान-सरकार और विदेशी आततायियों ने अपनी चालें नहीं छोड़ीं। रूस ने मुज़फ़्फ़रउद्दीन शाह से अनेक रेलवे लाइनों के ठेके ले लिए, और उसको विदेशी राष्ट्रों से ऋण लेने के लिए उत्साहित किया। उस समय ईरान में इम्पीरियल बैङ्क भी स्थापित हो चुका था, लेकिन शाह ने एक रूसी बैङ्क से कर्ज़ लिया। ईरान का भूमि-कर और दूसरे कर भी बेलजियम के अफ़सरों द्वारा वसूल किए जाते थे। ये लोग भी रूस के मित्र बन गए और रूसी और बेलजियन दोनों क़ौमों के लोग ईरान में मालामाल होने लगे। इस कारण अङ्गरेज़ सरकार और रूस में कुछ अनबन रहने लगी। भारत के तत्कालीन वायसरॉय लॉर्ड कर्ज़न ने बहुत प्रयत्न किया था कि ईरान में अङ्गरेज़ों की प्रधानता हो जावे और ईरान की खाड़ी में कुछ दख़ल प्राप्त हो जावे, परन्तु उसके प्रयत्न सफल नहीं हुए। १९०५ में रूस में ज़ार की निरङ्कुशता के विरुद्ध एक भारी बलवा हुआ। इसका प्रभाव ईरान में भी पहुँचा और यहाँ भी सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय उत्पात होने लगे। लेकिन रूस में ज़ार ने अपने प्रभूत सैनिक बल के द्वारा उस बलवे को दबा दिया और रूस की सहायता से फ़ारस का आन्दोलन भी शान्त सा हो गया। फिर भी तम्बाकू-बहिष्कार के बाद यह दूसरा अवसर था जब सङ्गठित राष्ट्रीयता का बल प्रकट हुआ। शाह के अत्याचार को बन्द करने के लिए और शासन-ढङ्ग को व्यवस्थित करने के लिए सम्पूर्ण फ़ारस में आवाज़ें उठने लगीं। दिसम्बर १९०५ में तेहरान के मुल्ला और व्यापारी नगर को छोड़ कर बाहर एक मसजिद के पास जा बसे और नगर में एक प्रकार की हड़ताल कर दी। उन्होंने सरकार से कहलाया कि जब तक राज्य के आमात्य आइनुद्दौला को हटा न दिया जाएगा, वे नगर में वापस नहीं लौटेंगे। शाह ने उनकी माँग को पूरा करने का वचन दिया और राष्ट्रीय आन्दोलक नगर में लौट आए। पर ज्योंही आन्दोलन का जोश हल्का पड़ा तो शाह ने अपने वचनों का पालन करने से

इन्कार कर दिया। इसलिए जुलाई १९०६ में पुनः इस प्रकार के ढङ्ग से जनता ने काम लिया। तेहरान के बाज़ारों में हड़ताल कर दी गई और विद्यार्थी, अध्यापक, व्यापारी आदि असंख्य लोग नगर को छोड़ कर बाहर एक मसजिद के पास रहने लगे। आन्दोलन के इस ढङ्ग को फ़ारस में 'बस्त' कहा जाता है। इस बार सब नगर-निवासियों ने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि जब तक तेहरान में पार्लामेण्ट की स्थापना न हो जावेगी, तब तक 'बस्त' जारी रहेगा। यही आवाज़ सम्पूर्ण देश से आने लगी। लाचार होकर सरकार ने मजलिसे मिल्ली अर्थात् प्रजा-प्रतिनिधि-सङ्घ की स्थापना की घोषणा की। ७ अक्टूबर, १९०६ में प्रथम पार्लामेण्ट की स्थापना हुई, जिसने ३० दिसम्बर, सन् १९०६ में नया शासन-विधान निर्मित किया और शाह के उस पर हस्ताक्षर करवाए। इस शासन-विधान के अनुकूल शाह के अधिकारों को सङ्कुचित कर दिया। जनता के जान और माल पर उसका कोई अधिकार न रहा, राष्ट्रीय बजट शाह के निजी ख़र्च से अलग कर दिया गया और प्रेस तथा भाषण की स्वतन्त्रता हो गई। राजमन्त्री पार्लामेण्ट के प्रति उत्तरदायी बना दिए गए। इस प्रकार शासन-सुधार होते ही फ़ारस मे सर्वाङ्गीण उन्नति होने लगी। फ़ारस की राष्ट्रीय समिति ने एक राष्ट्रीय बैङ्क की स्थापना करने की योजना की, परन्तु अङ्गरेज़ और रूसी लोगों ने उसको सफल नहीं होने दिया।

प्रथम पार्लामेण्ट

प्रथम शासन-विधान पर हस्ताक्षर करने के ९ दिन बाद शाह मुज़फ़्फ़रउद्दीन की मृत्यु हो गई। और शाह मोहम्मदअली गद्दी पर बैठा। यह रूसियों के हाथ की कठपुतली था और पार्लामेण्ट को नहीं चाहता था। परन्तु पार्लामेण्ट दिन-प्रतिदिन शासन का अनुभव प्राप्त करती जाती थी और प्रबल होती जाती थी। इसने अनेक सुधारों की योजना पेश की और विदेशी लोगों के बढ़ते हुए प्रभाव का विरोध किया। शाह ने रूसियों की सहायता से जहाँ तक हो सका, पार्लामेण्ट के कार्यों में विघ्न डाले। सन् १९०७ में रूस और इङ्गलैण्ड में सन्धि हुई, जिसके अनुकूल उन्होंने फ़ारस को तीन भागों में बाँट दिया। उत्तर में कास्पियन सागर से इस्फ़हान और यज़्द तक का भाग रूसियों के सुपुर्द कर दिया गया और पूर्व-दक्षिण का भाग, जो बरजल्द, करमन और बन्दर अब्बास से पूर्व की ओर है, वह अङ्गरेज़ों ने अपने अधीन कर लिया। फ़ारस की खाड़ी के उत्तर का थोड़ा सा हिस्सा इस बँटवारे से बचने पाया। हम पहिले बतला चुके हैं कि उत्तर में रूसियों के और दक्षिण में अङ्गरेज़ों के हस्तक्षेप तथा उधर कौशल के कारण कर-वसूली में अनेक आपदाएँ खड़ी होने लगीं और पार्लामेण्ट के शासन में विघ्न उपस्थित होने लगे। इससे एक बार तो सम्पूर्ण देश में अपूर्व जाग्रति हुई। शाह के सलाहकार अली असग़र ख़ाँ को एक क्रान्तिवादी युवक ने क़त्ल कर दिया और स्वयं आत्मघात कर लिया। उसका चहल्लुम सम्पूर्ण देश में बड़ी धूमधाम के साथ निर्भयता-पूर्वक मनाया गया। इससे पार्लामेण्ट और शाह की पारस्परिक शत्रुता और भी प्रत्यक्ष होकर बढ़ने लगी। पर लोकमत इस समय इतना प्रबल हो गया था कि शाह ने विवश होकर अक्टूबर सन् १९०७ में पार्लामेण्ट द्वारा उपस्थित किए गए नए शासन-विधान पर अपने हस्ताक्षर कर दिए और उसका सम्मान तथा रक्षण करने की सबके समक्ष शपथ खाई। परन्तु उसके हृदय में से द्वेष नहीं निकला और दूसरे मास में ही उसने पार्लामेण्ट को अल्टीमेटम दे दिया कि ईरान देश में जो अनेक गुप्त समितियाँ हैं, उनको फ़ौरन बन्द किया जावे। पार्लामेण्ट इस प्रकार की धमकियों से किञ्चित भी भयभीत न हुई, बल्कि उसने शाह के सामने और भी कई ऐसी माँग पेश की, जिससे उसके अधिकारादि और भी सङ्कुचित होते थे। इसलिए शाह ने पार्लामेण्ट को नष्ट करने की ठान ली। उसके सहायकों ने तथा सुधार-विरोधी मुल्लाओं ने गुण्डों को भड़काया और उनसे पार्लामेण्ट-भवन पर हमला करवा कर नष्ट करवा दिया। पर इस प्रकार के निन्दनीय कार्यों से पार्लामेण्ट नष्ट नहीं हो सकी। इस घटना के बाद ही एक मस्जिद में पार्लामेण्ट की बैठक हुई और सुधार-पक्ष के एक सहस्र सैनिक उसकी रक्षा करते रहे। देश के प्रान्तों से सैनिक सहायता के वचन आए और शाह की रही-सही शक्ति को भी नष्ट कर देने की माँग देशव्यापी हो गई। इस लोकशक्ति के सामने शाह को

सिर झुकाना पड़ा और विवश होकर नए शासन-विधान पर हस्ताक्षर कर दिए।

शाह और पार्लामेण्ट का युद्ध तथा शाह की विजय

फिर भी शाह और पार्लामेण्ट का वैमनस्य दूर नहीं हुआ। शाह ने रूस की सहायता मांगी। रूस ने इङ्गलैण्ड से परामर्श किया और दोनों देशों की सरकार ने आपस में तय कर लिया कि पार्लामेण्ट की बढ़ती हुई स्वच्छन्दता को रोका जावे, और शाह की रक्षा की जावे। थोड़े दिन बाद ही शाह रूसी सेना की सहायता से राजधानी छोड़ कर भाग गया और पास ही पड़ाव डाल कर उसने फ़ौजी क़ानून की घोषणा कर दी, और पार्लामेण्ट को आदेश किया कि मुख्य राष्ट्रीय नेता देश-निर्वासित किए जावें। अञ्जुमनें (षड्यन्त्र समितियाँ) बन्द की जावें, प्रेस पर सेन्सर बिठाया जावे और भाषण-स्वातन्त्र्य का नियमित किया जावे। जब शाह के आदेश का पालन नहीं हुआ तो उसने राजधानी को एक रूसी फ़ौजी अफ़सर के सुपुर्द कर दिया और उसने पार्लामेण्ट पर अचानक आक्रमण कर दिया। चार घण्टे तक भारी युद्ध होता रहा, जिसमे सुधार-पार्टी के सब प्रमुख नेता काम आए। जो पार्लामेण्ट-भवन पिछले दो साल में राष्ट्रीय आशाओं का केन्द्र बना हुआ था, उसको नष्ट कर डाला। फिर प्रेस का दमन किया गया और उन्नत शासन-विधान को मटियामेट कर डाला। यह सब पुण्य कार्य स्वतन्त्रता-प्रेमी इङ्गलैण्ड और रूस की सलाह तथा सहायता से हुआ। २१ जून, सन् १९०८ के 'लण्डन टाइम्स' ने इस घटना के सम्बन्ध में यह मत प्रकट किया कि फ़ारस की असफल पार्लामेण्ट इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि एशिया के लोग स्वराज्य के योग्य नहीं।

फिर हार

फ़ारस के लोग 'लण्डन टाइम्स' के उपदेश को मान कर शान्त नहीं हुए और राष्ट्रीय संग्राम शिथिल नहीं हुआ। बक़ीर ख़ाँ और सत्तार ख़ाँ नामक दो वीर सैनिक नेताओं के नेतृत्व में तबरेज़ की अञ्जुमनों ने लगभग १० मास तक शाह की सेना के साथ ही नहीं, बल्कि रूसी सेना के साथ भी युद्ध जारी रक्खा। परन्तु उत्तर फ़ारस पर तो रूसियों ने अपना अधिकार जमा ही लिया। सन् १९०८ की रूसी क्रान्ति ने फ़ारस को पुनः उत्साहित किया और राष्ट्रीय सेना ने सन् १९०९ के जून में तेहरान पर कब्ज़ा कर लिया। शाह और उसके अनुयायियों ने रूसी राजदूत के मकान में शरण ली। उसके तीन दिन बाद ही मजलिस के शाह को गद्दी से उतार दिया और उसके ग्यारह वर्षीय पुत्र अहमदशाह को सिंहासन पर बैठा दिया। फ़ारस की पार्लामेण्ट के इस पराक्रम को देख कर फिर 'लन्दन टाइम्स' ने लिखा कि "फ़ारस का भविष्य आज से फ़ारसवासियों के हाथ मे होगा। उसने अद्भुत और चमत्कारी कार्य कर दिखाया है और विजयोल्लास तथा आवेश के समय मे भी गम्भीर, सहिष्णुता और दूरदर्शिता से काम लिया गया है।" इस प्रकार तेरह मास पश्चात् ही 'लन्दन टाइम्स' ने अपना मत बदल दिया और वह मानने लगा कि एशियावासी भी स्वराज्य के योग्य हो सकते हैं। (क्रमशः)

卐 卐 卐

क्यों ?

[श्री० अवन्तबिहारी माथुर "अवन्त"]

सुख का सन्देश सुनाना भुला, क्यों अशान्ति का राग सुनाया मुझे ?
दुख-डूबतों की तुम बाँह गही, अति दुःख की धार बहाया मुझे ?
प्रभु ! दृष्टि दया की बिसारि के क्यो, यहाँ आपने है बिसराया मुझे ?
सबको अपनाकर तार दिया, किस कारण नाथ भुलाया मुझे ?

[मेजर एम० एल० भार्गव, आई० एम० एस०]

मार्च १९३२ के 'चाँद' मे रजनीकान्त जी की 'परीक्षा' पढ़ी। आश्चर्य है कि अभी तक उन्होंने अपने व्यर्थ पक्षपात को नहीं छोड़ा।

१- राम और विश्वामित्र

शोक है कि या तो रजनीकान्त जी ने वाल्मीक रामायण आदि काण्ड के ३४, ६, ७ और १३ श्लोकों को नही पढ़ा या जान-बूझ कर उनकी ओर ध्यान नही दे रहे हैं। उनमें राम-दाशरथि से सम्वाद करने वाले विश्वामित्र के मुख से ही कहलाया गया है कि राजा कुश का पौत्र और कुशनाभ का पुत्र गाधि उसका पिता था और सत्यवती उसकी बड़ी बहिन थी, जो ऋचीक भार्गव को व्याही थी। अतः उस कथा का, जिसमें महोदय नगर के कान्यकुब्ज नाम पड़ने का वर्णन है, विश्वामित्र केवल आदि विश्वामित्र ही माना जा सकता है। वहाँ वैश्वामित्रों के पैत्रिक नामों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वहाँ तो राम का समकालीन विश्वामित्र अपनी वंशावली और उत्पति का वर्णन करता है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कवि का आशय आदि विश्वामित्र ऋषि से है, उनके किसी वंशज से नहीं है। अतः वह सर्ग आदि कवि की रचना न होकर पाँचवीं शताब्दी ईसा मे कान्यकुब्ज नगर के विख्यात होने के पश्चात् काल के किसी कवि के बनाए हुए हैं। इन सर्गों के क्षेपक होने का दूसरा प्रमाण यह भी है कि इनके रचने वाले को विश्वामित्र की वंशावली का शुद्ध ज्ञान नहीं था। उसने विश्वामित्र के प्रपितामह कुश को ब्रह्मा का पुत्र बताया है, जिसका अर्थ केवल यही हो सकता है कि वह मनु, भृगु, अङ्गिरा आदि का समकालीन था, जो सर्वथा असम्भव है।

इसी विश्वामित्र की कथा सतानन्द के मुख से आदि काण्ड ५१ से ६८ तक के सर्गों में कहलाई गई है, जिससे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि कवि का आशय आदि विश्वामित्र ऋषि से है।

अन्त में यह भी विचारणीय है कि रजनीकान्त जी का दिया १७वाँ श्लोक रामायण के सभी संस्करणों में नहीं पाया जाता। उदाहरणार्थ रजनीकान्त जी श्री० रामनारायण लाल की प्रकाशित और श्री० द्वारकाप्रसाद जी चतुर्वेदी की अनुवादित रामायण देखें। इससे सिद्ध होता है कि वह श्लोक और भी परचात् काल का जोड़ा हुआ है।

ऐतिहासिक खोज में यह नहीं विचार किया जाता कि सत्य के निर्णय से किसी के मनमाने धर्म-ग्रन्थ कपोल-कल्पनाओं के झूठे भण्डार सिद्ध होंगे या सत्य के भण्डार। वहाँ तो जो सत्य प्रतीत होता हो, वही सत्य माना जाता है। रामायण वास्तव मे धर्मग्रन्थ नहीं है। वह एक महाकाव्य (Epic Poem) है, जिसको ईसा के जन्म से लगभग एक शताब्दी पूर्व कुछ कारणों से, जिनका इस बहस से कोई सम्बन्ध नहीं है, धार्मिक ग्रन्थ बनाने का प्रयत्न किया गया था और पश्चात् काल मे उसमें अनेकों क्षेपक जोड़े गए। कुछ भी क्यों न हो, परन्तु बिना किसी आधार के रजनीकान्त जी की कपोल कल्पित सङ्गति नही लगाई जा सकती।

रजनीकान्त जी ने राम और सीता की समकालीनता का उदाहरण दिया है। परन्तु कोई भी इतिहासज्ञ यह नहीं मानता कि पुराणों की वंशावलियाँ पूर्णतया शुद्ध हैं। यह सब कोई जानता है कि रामायण और महाभारत की अपेक्षा पुराणों के साथ अर्धशिक्षित पौराणिकों ने कहीं अधिक दुर्व्यवहार किया है, जिससे वह बहुत अशुद्ध हो गए है। पहले तो यही प्रमाणित नहीं होता कि जनक-वंश का पूर्वज निमि इक्ष्वाकु का पुत्र

था। रामायण आदि काण्ड ७१ में स्वयं सीता के पिता के ही मुख से उसकी वंशावली कहलाई गई है। उसमें निमि को इक्ष्वाकु का पुत्र नहीं बताया गया। केवल यही कहा गया है कि निमि नाम का एक राजा था। दूसरे शतपथ ब्राह्मण १-४-१-१४ से १७ तक से विदित होता है कि मिथिला राज्यवंश का प्रथम पूर्वज विदेघ माथव था, जिससे उस जनपद के नाम विदेह और मिथिला पड़े होंगे। रामायण और पुराणों में विदेघ को जनक और उसके पिता को मिथि कहा गया है। यदि मिथि के पिता और विदेघ के पितामह का नाम निमि था तो वह अवश्य ही रजनीकान्त जी के निर्णयानुसार इक्ष्वाकु का पुत्र न होकर कोई और व्यक्ति था। कारण कि इक्ष्वाकु ऋग्वैदिक काल में हुआ था और विदेघ माथव का वर्णन पहले-पहल शतपथ ब्राह्मण में आता है। परन्तु रजनीकान्त जी को ध्यान रहे कि उनके ऐसा मानने से पुराणों की, जो पश्चात् काल में रामायण की अपेक्षा "हिन्दू-धर्म" के कहीं अधिक मुख्य स्तम्भ माने गए हैं, जड़ खुद जावेगी और उनका माना 'हिन्दूधर्म' एकाएक धड़ाम से धराशायी होकर चूर-चूर हो जावेगा।

२—द्राविड़ ब्राह्मणों की जाति

नृशंस विद्या के नियमानुसार केवल पञ्चद्राविड़ ब्राह्मण ही मिश्रित नस्ल के नहीं हैं। सारस्वतों के कुछ अंशों को छोड़कर शेष पञ्चगौड़ भी मिश्रित नस्ल के हैं। गौड़ों, कान्यकुब्जों, मैथिलों और उत्कलों में भी द्राविड़ और कौल नस्लों के रक्त का बहुत-कुछ असर है, जो उनके रूप-रङ्ग से स्पष्ट विदित हो जाता है। नस्ल के विचार से शुद्ध आर्य जनता उत्तर-पश्चिमीय भाग के कुछ लोगों को छोड़ कर भारत में कहीं नहीं रही। मध्यदेश के ब्राह्मण (गौड़, कान्यकुब्ज और मैथिल) भी पञ्चद्राविड़ों की तरह आर्य और द्राविड़ जाति के मिश्रण हैं। सर हर्बर्ट रिज़्ले ने मध्यदेश की जनता को Aryo-Dravidian बताया है और जहाँ तक मुझे ज्ञान है, किसी ने उसका खण्डन नहीं किया। अतः पञ्चगौड़ों और विशेष करके कान्यकुब्जों को, पञ्चद्राविड़ों को उसी हेय दृष्टि से देखने का कोई अधिकार नहीं है, जिससे अङ्गरेज़ भारतीय अर्ध-गोरों को देखते हैं।

यूरोपीय जातियों के विषय में रजनीकान्त जी को भ्रम हो रहा है। मेरा आशय पश्चात् काल की जातियों के सम्मिश्रण से नहीं था। सैक्सन, जूट, एङ्गल और नॉरमन जातियाँ इङ्गलैण्ड में बहुत काल पश्चात् गई थीं। उनके पहले वहाँ सैलटिक (Celtic) और आईबेरियन (Iberian) जातियों के मिश्रण से उत्पन्न ब्रिटन लोग रहते थे। यदि रजनीकान्त जी की इच्छा हो तो प्रो० ए० सी० दास के ऋग्वैदिक भारत के १९वें अध्याय को पढ़ लें। उनको विदित हो जायगा कि वर्तमान यूरोपीय जातियाँ उत्तर अफ़्रिकन, मङ्गोलियन और आर्य नस्लों का मिश्रण हैं और ब्रिटन लोग उत्तर अफ़्रिका की आईबेरियन तथा एशिया की सैलटिक जाति के मिश्रण थे। आईबेरियन जाति का रङ्ग साँवला और बाल तथा आँखें काली थीं। सैलटिक लोगों का रङ्ग गौर और बाल लाल बताए गए हैं और उनको तुरानी (मङ्गोलियन) और आर्य नस्लों का मिश्रण माना जाता है। इसी तरह यूरोप के अन्य भागों के आईबेरियन (Iberian) और केन्सटाट (Canstadt) लोग उत्तर अफ़्रिका के आदि निवासी थे और उनका रङ्ग साँवला था। सैल्ट (Celts), स्लव (Slavs), लिथुएनियन (Lithuanians), हैलेन (Hellenes) और लैटिन (Latins) जो एशिया से जाकर वहाँ बसे, मङ्गोल और आर्य जातियों के मिश्रण थे और उनका रङ्ग गौर था। अतः रजनीकान्त जी की यह धारणा कि यूरोप में केवल गौर जातियों का ही सम्मिश्रण हुआ, जो सब एक ही गौर जाति आर्य के विविध उपभेद मात्र और सहवर्गी थीं, निराधार है।

इसके उपरान्त अङ्गरेज़ों और भारतीय अर्ध-गोरों में देश और जातीयता का वह नाता नहीं है, जो पञ्चगौड़ों और पञ्चद्राविड़ों में सहस्रों वर्षों से चला आता है। अतः हमको अङ्गरेज़ों की नक़ल करके अपने ही भाइयों को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

खोपड़ियों में विभिन्नता का प्रश्न रजनीकान्त जी ने ही छेड़ा था। इस कारण मुझे उस पर बहस करनी पड़ी थी। आप भले ही उनको निरर्थक और भ्रान्तिकारक समझें, परन्तु जो उस विषय को समझते हैं वह उस कोष्ठक से बहुत-कुछ लाभ उठा सकते हैं। सभी जातियों को 'आर्य' इसलिए नहीं माना जा सकता कि उनके अन्य

जातिबोधक लक्षणों में विभिन्नता है। जब रजनीकान्त जी मानते हैं कि ब्राह्मणों के दोनों वर्गों में रक्त-मिश्रण अवश्य है और दोनों ही आर्य और द्राविड़ (और पूर्व भारत के ब्राह्मणों मे कोल) जातियों का सम्मिश्रण हैं, तो बताइए कि नस्लों के लक्षणों की केवल कपोल-कल्पित अधिकता के आधार पर आपको उनको दो भिन्न-भिन्न जातियाँ मान लेने का क्या अधिकार है? मिश्रित नस्ल की जातियों के जनों में किसी में एक नस्ल के और किसी में दूसरी के चिन्ह सदैव ही अधिक पाए जाते हैं। क्या आप इसी आधार पर एक मध्यदेशीय या बङ्गाली कान्यकुब्ज को, जिसका रङ्ग काला हो, आकार मध्यम या छोटा हो, नाक बड़ी और चौडी या छोटी और चपटी हो, कान्यकुब्ज या पञ्चगौड़ ब्राह्मण न मान कर द्राविड या कोल मानते हैं? यदि नहीं तो आपको पञ्चद्राविडों और विशेष करके गुर्जरों, चित्तपावनों तथा नम्बूद्रियों को, जिनमें आर्य-जाति के चिन्ह उत्कलों, बङ्गालियों, मैथिलों, कान्यकुब्जों और गौडों की अपेक्षा अधिक पाए जाते हैं, द्राविड़ जाति का समझने का कोई अधिकार नहीं है। आपके नियम के अनुसार तो गुर्जर, चित्तपावन और नम्बूद्री ब्राह्मण आर्य माने जाने चाहिए और मध्यदेश के गौड़, कान्यकुब्ज और मैथिल द्राविड़ तथा बङ्गाल के गौड और कान्यकुब्ज और उड़ीसा के उत्कल कौल। यह तो आप भी जानते हैं कि इतनी प्रचुर संख्या में, जिससे कुछ निर्णय हो सके, समस्त देश के ब्राह्मणों को इस हेतु एकत्र करना असम्भव है। इसी कारण आपने इस युक्ति का प्रयोग किया है। परन्तु खुली आँखें रखने वाला प्रत्येक जिज्ञासु जानता है कि पश्चिमोत्तर और पूर्व भारत के ब्राह्मणों की आकृति में उतना ही भेद है, जितना कि पञ्जाब के सारस्वतों और तामिलनाडु के द्राविड़ों में।

३—कृत्रिम गोत्र-प्रवर

रजनीकान्त जी की यह धारणा कि क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों तथा वर्णसङ्करों के भी गोत्र-प्रवर उनके पुरोहितों के गोत्र-प्रवर होते हैं, पूर्णतया निराधार है और उनका उद्धरित अग्निपुराण का वह श्लोक किसी ऐसे पुरुष का बनाया हुआ है, जिसको इस विषय का तनिक भी ज्ञान नहीं था। मैंने इस विषय पर एक निबन्ध १९२९ के अखिल भारतवर्षीय ऐतिहासिक सम्मेलन में भेजा था, जो उसकी कार्यवाही में छप रहा है। रजनीकान्त जी को शौक हो तो उसे पढ़ें। "पुरोहित प्रवरो-राज्ञाम्" का यह अर्थ नहीं है कि यजमानों के गोत्र-प्रवर उनके पुरोहितों के गोत्र-प्रवर होने चाहिए। सूत्र-कारों के मतानुसार इसका अर्थ केवल यह है कि यज्ञों के समय यजमानों की ओर से, जिनके वंशों में प्रवर माने जाने योग्य मन्त्रर्षि नहीं उत्पन्न हुए, अग्नि का आवाहन उनके पुरोहितों के प्रवर ऋषियों के नामों से किया जावे। यह नियम केवल राजन्यों और वैश्यों पर ही लागू हो सकता है, शूद्रों और वर्णसङ्करों पर नहीं, जिनको श्रौत यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। इस सूत्र का अर्थ यह नहीं है कि पुरोहितों के प्रवर यजमानों के भी प्रवर हैं। कारण कि सूत्रकारों के मतानुसार प्रवर केवल अपने ही वंश के पूर्वज हो सकते हैं और इस नियम के अनुसार कुछ क्षत्रियों के आत्मीय प्रवर मानव, ऐल और पौरुरवा और कुछ वैश्यों के भालन्दन, वात्सप्रि और मौङ्कल हैं।

विज्ञानेश्वर के यह वाक्य कि "क्षत्रियों और वैश्यों के आत्मीय गोत्र और इस कारण प्रवर भी न होने से उनके पुरोहितों के गोत्र-प्रवर समझने चाहिए।" पूर्ण-तया निराधार है। उसके उद्धरण (आश्वलायनों के सूत्र) में गोत्र शब्द तक नहीं है। उसका अर्थ केवल यही है कि क्षत्रिय और वैश्य यज्ञ के समय अपने पुरो-हितों के प्रवरों का वरण करें। आपस्तम्ब के आधार पर प्रवर-दर्पण में क्षत्रिय और वैश्यों के गोत्र मनु, भालन्दन, वत्सप्रि आदि बताए गए हैं। आजकल भी क्षत्रियों के चौहान, राठौड़, सीसोदिया आदि और वैश्यों के कंसल, वंसल, मित्तल आदि आत्मीय गोत्र हैं, जिनका उनके पुरोहितों से कोई सम्बन्ध नहीं है। साधारण क्षत्रिय और वैश्य सदा से इन्हीं गोत्रों को अपने गोत्र मानते आए हैं और इन्हीं को विवाह सम्बन्धों में बचाते हैं। ब्राह्मणिक गोत्र-प्रवर (अर्थात् उनके पुरोहितों के गोत्र) केवल थोड़े से राज्यवंशों में बतलाए जाते हैं, परन्तु उनका विवाह सम्बन्ध में विचार नहीं होता। अनार्य राजपूतों के तक्षक, जर्ट, हूण आदि गोत्रों के नाम टाड की दी हुई सूची में वर्तमान हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि यद्यपि अनार्य वंशों ने उस काल की भ्रान्तिपूर्वक प्रथा

के अनुसार अपने पुरोहितों के गोत्र-प्रवरों को अपना लिया था, परन्तु अपने आत्मीय और वास्तविक गोत्रों को नहीं भुलाया था। अतः रजनीकान्त जी की कल्पित धारणा को सत्य मानने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

ऐतिहासिक खोज में केवल अनुमानों से काम नहीं चलता। सम्भावना कुछ भी मानी जा सकती है। परन्तु जब तक पुष्ट प्रमाण न मिले, कोई भी ज्ञानवान पुरुष उसको सत्य ऐतिहासिक घटना नहीं मानेगा। यदि रजनीकान्त जी पञ्चद्राविडों के गोत्र-प्रवरों को कृत्रिम सिद्ध करना चाहते हैं, तो उसके प्रमाण दें। निराधार कपोल-कल्पना व्यर्थ है।

४—भाषा और लिपि की समता

यदि रजनीकान्त जी खोज करें तो उन्हें महाभारत, हरिवंश और पुराणों में श्रीकृष्ण और मथुरा के यादवों से सैकड़ों वर्ष पहले पश्चिम भारत मे जाकर बसने वाले बहुत से क्षत्रिय वंशों के नाम मिल जावेंगे, जो न तो प्रभासक्षेत्र मे लड कर मरे और न अर्जुन के साथ कुरु देश को आए। उदाहरणार्थ मैंने कुछ नाम दिए थे और फिर देता हूँ। आनूप, आनर्त, सौवीर, हयहय (या तालजङ्घ), वैदर्भ, भोज, भैम, कक्कुर, दासाढ़ आदि श्रीकृष्ण के जन्म से बहुत पहिले पश्चिम भारत में ही बसते थे। वास्तव मे तो हरिवंश के अनुसार शत्रुघ्न की मृत्यु से पूर्व श्रीकृष्ण के पूर्वज यादव आनर्त (गुजरात का मध्य भाग) और सौराष्ट्र (काठियावाड) मे राज्य करते थे। शत्रुघ्न के मथुरा को विजय करने के समय भीम सात्वत सौराष्ट्र का राजा था। शत्रुघ्न की मृत्यु के पश्चात् भीम का पुत्र अन्धक मथुरा का प्रथम यादववंशी राजा हुआ था। अतः न तो मेरी दलील खण्डित हुई है और न भाषा और लिपि की समानता वाली दलील। पक्षपातवश सत्य से मुँह मोड कर हठधर्मी करना और बात है।

सर हर्बर्ट रिज़्ले ने पश्चिम भारत के निवासियों को शक-द्राविड़ अवश्य बताया था, परन्तु जैसा कि मैंने लिखा था, वैद्य जी ने उसका सतर्क खण्डन करके सिद्ध कर दिया है कि पश्चिम भारत के निवासी शक-द्राविड नहीं, आर्य-द्राविड हैं। मेरी युक्तियों से भी वैद्य जी का ही पक्ष पुष्ट होता है। परन्तु आश्चर्य है कि रजनीकान्त जी ने उनकी ओर ध्यान तक नहीं दिया। यदि आज भी रजनीकान्त जी नृशंस विद्या और इतिहास द्वारा खोज करें, तो उनको ज्ञात हो जावेगा कि पश्चिम भारत के ब्राह्मण आर्य-पिताओं की सन्तान हैं और उनमें द्राविड़ माताओं का प्रभाव कान्यकुब्जों की अपेक्षा अधिक नहीं है।

५—इन आवान्तर भेदों की प्राचीनता

रजनीकान्त जी ने इन भेदों के प्राचीन होने के प्रमाण किसी भी ग्रन्थ से नहीं दिए और उस युक्ति को छोड कर नवीन युक्ति का प्रयोग किया है। परन्तु वह भी उनकी पुरानी युक्तियों की तरह अत्यन्त निर्बल है। उन्होंने यह नहीं विचारा कि प्रथम तो सारस्वत, गौड, कान्यकुब्ज आदि या समस्त ब्राह्मण वर्ण वास्तव में एङ्गल, नॉरमन आदि की तरह जातियाँ (Nations) नहीं हैं। उन अर्थों में हमारी जाति आर्य-हिन्दू है। ब्राह्मण वर्ण आर्य-हिन्दू जाति की केवल एक श्रेणी (Class) है, जिसकी उत्पत्ति कुछ विशेष कर्मों का पालन करने के लिए हुई थी। सारस्वत, गौड, कान्यकुब्ज आदि उस वर्ण के आवान्तर-भेद मात्र हैं, जिनके नाम पर किसी भी जनपद, राज्य या देश का नाम नहीं पड़ सकता। बाहर क्यों जाइए। हमारे भारतवर्ष में ही सैकड़ों जनपदों और राज्यों के नाम उनके राजवंशों के नाम पर पड़े। सबसे प्रथम उदाहरण तो मानव भरत का भारतवंश ही है, जिसके नाम से पहले उनका जनपद भारत और फिर समस्त देश भारतवर्ष कहलाया। यदु, तुर्वश, अनु, द्रुह्यु, पुरु, कुरु, पाञ्चाल, कोशल, काशि, मत्स्य, चेद्य आदि सैकड़ों अन्य उदाहरण हैं। आर्यवर्त, द्राविड़, गौण्डवाना, भीलवाड़ा इत्यादि जातियों पर पड़े नाम भी इस देश में पाए जाते हैं। परन्तु आप इस या अन्य किसी देश मे एक भी ऐसा उदाहरण नहीं पावेंगे, जिसमें किसी जनपद, राज्य या देश का नाम उसमें बसने वाले लोगों के पुरोहितों के नाम पर पड़ा हो। वर्तमान गुर्जरात का यह नाम वहाँ के ब्राह्मणों के नाम पर नहीं पड़ा। वर्तमान पश्चिम राजपूताना के गुर्जर जनपद के राजवंश के राजपूताना से निकाले जाने पर और उनके वर्तमान गुर्जरात को विजय करके वहाँ अपना राज्य स्थापित करने पर वह नाम पड़ा था। यह घटना

कन्नौज के राठौड़ों के मोहम्मद गोरी द्वारा पराजित होने के पश्चात् की है। उससे पहिले वर्तमान पश्चिम राजपूताना गुर्जरात कहलाता था और उसकी राजधानी भिनमाल थी।

इसी तरह तिलङ्गाना भी पहिले आन्ध्र कहलाता था। संस्कृत ग्रन्थों में उसका यही नाम बताया गया है और वहाँ के शिक्षित निवासी आज भी उसे आन्ध्र ही कहते हैं। तिलङ्गाना त्रिकलिङ्गाना का अपभ्रंश माना जाता है। इससे जान पड़ता है कि अनुवंशी राजा बलि के पञ्चम पुत्र कलिङ्ग की सन्तान, जो पहिले उत्कल और आन्ध्र जनपदों के बीच में राज्य करती थी और जिनके नाम से उनका जनपद कलिङ्ग कहलाया था, आन्ध्र राज्यवंश के पतन के पश्चात् इतनी बलिष्ठ हो गई कि उन्होंने आन्ध्र जनपद को विजय करके उसमें दो राज्य स्थापित कर दिए; जिससे आदि कलिङ्ग सहित तीन कलिङ्ग राज्य हो गए और आन्ध्र और कलिङ्ग मिल कर त्रिकलिङ्गाना कहलाए। कलिङ्ग के आनववंशी क्षत्रिय राजा होने से यह स्पष्ट है कि तिलङ्गाना नाम वहाँ के ब्राह्मणों के नाम पर नहीं पड़ा। गुर्जरात, महाराष्ट्र, गौड़, मिथिला, उत्कल, आदि की तरह वहाँ के राज्य करने वाले क्षत्रियों के नाम पर पड़ा था।

स्पष्ट है कि जिस प्रकार सारस्वतों का नाम सरस्वती नदी या उसके पश्चिमोत्तरी किनारे के देश के सारस्वत नाम पर, गौडों का नाम स्थानेश्वर राज्य या प्राचीन कुरु जनपद के गुड़ या गौड नाम पर, कान्यकुब्जों का नाम इसी नाम के राज्य पर, मैथिलों, उत्कलों, द्राविड़ों, कर्णाटकों और महाराष्ट्रों के नाम उन्हीं नामों के जनपदों और प्रदेशों के नामों पर पड़े; उसी प्रकार गुर्जरों और तैलङ्गों के नाम, गुर्जरात और तिलङ्गाना प्रदेशों पर पड़े थे। इसके विपरीत होना असम्भव है। इनमें से कुरु देश का गुड़ या गौड़ नाम, पाञ्चाल देश का कान्यकुब्ज नाम, आन्ध्र देश का तिलङ्गाना नाम, किष्किन्धा के आसपास के देश का कर्णाटक नाम, दक्षिण विशेष का महाराष्ट्र नाम और परान्त (लाट या लार) आनर्त, आनूप और सौराष्ट्र का मिल कर गुर्जरात नाम ईसा के जन्म से कई शताब्दियों पश्चात् के पड़े हुए हैं। अतः ब्राह्मणों के यह दश आवान्तर भेद प्राचीन नहीं कहे जा सकते। इनमें से दो अर्थात् गुर्जरात और तिलङ्गाना १२वीं शताब्दी ईसा के पश्चात् पड़े हुए हैं। अतः वह श्लोक, जिनमें उन दोनों नामों का वर्णन है, १२वीं शताब्दी ईसा पश्चात् के बाद के बने हुए हैं।

दूसरे जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, ११वीं शताब्दी ईसा पश्चात् तक के दानपत्रों में इन भेदों का वर्णन नहीं है। पश्चात् काल में आरम्भ होता है।

तीसरे स्कन्दपुराण के इन दोनों श्लोकों के अतिरिक्त किसी भी प्राचीन वैदिक या संस्कृत ग्रन्थ में इसका वर्णन नहीं है।

चौथे किसी भी धर्मसूत्र, धर्मशास्त्र, टीका, भाष्य या धर्मनिबन्ध में, ब्राह्मण वर्ण में कोई जाति-भेद मान कर उनका परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषेध नहीं बताया गया।

अतः न तो यह आवान्तर-भेद १२वीं शताब्दी ईसा पश्चात् से पूर्व के हैं और न इनमें कोई जाति-भेद है। इस तरह रजनीकान्त जी की मनमानी धारणाओं का सहज में खण्डन होता जाता है।

६—गौड़ देश-निर्णय

अमरनाथ के विषय में भी रजनीकान्त जी ने केवल अनुमान से काम लिया है, जो सर्वथा व्यर्थ है। प्रश्न तो यह है कि वह कौन सा समय था कि जब अमरनाथ काश्मीर में न होकर पञ्जाब में था और उसके क्या प्रमाण हैं। फिर जैसा कि मैं पहिले लिख चुका हूँ, यदि थोड़ी देर के लिए उसको सत्य भी मान लिया जावे तो भी कुछ लाभ नहीं होता। शक्ति-सङ्गम तन्त्र का आशय स्पष्ट बङ्गाल के गौड़ देश से है।

कुरुदेश या स्थानेश्वर राज्य का नाम गुड या गौड़ देश होना तो वराह मिहर और अलबेरूनी के लेखों से सिद्ध है। परन्तु रजनीकान्त जी की इस निराधार धारणा का कि जन्मेजय के समय में कोई ब्राह्मण कौशल राज्य के अन्तर्गत गौड़ देश (वास्तव में गौण्डा) से आकर कुरु देश में बसे, इसका एक भी प्रमाण नहीं है। यह भी विचारणीय है कि सिवाय कुछ पुराणों के रामायण या महाभारत में, जिनके वर्तमान संस्करण क्रमशः ईसा पूर्व पहली और तीसरी शताब्दी में बने माने जाते हैं और जिनमें बहुत पश्चात्काल तक क्षेपक जुड़ते रहे या अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस देश के गौड़ नाम का वर्णन नहीं है। उनमें यह सदैव ही कौशल देश

कहा गया है। वर्तमान पुराणों को सभी ऐतिहासिक गुप्त सम्राटों के काल या उसके पश्चात् की रचना मानते हैं। अतः यह असम्भव है कि जन्मेजय के समय में उत्तर कौशल का एक भाग गौड़ देश कहलाता हो। फिर जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, यदि गौड़ ब्राह्मणों का नाम श्रावस्ती वाले गौड़ (या गोण्डा) देश पर पड़ा तो क्या कारण है कि आजकल वहाँ के अधिवासी (निवासी) ब्राह्मण गौड़ न कहला कर सरयूपारीण कहलाते हैं, जो कान्यकुब्ज आवान्तर-भेद का एक उपभेद माना जाता है।

अन्धविश्वासियों को छोड़ प्रत्येक सत्य का खोजी विद्वान जानता है कि वर्तमान पुराणों में भाषा, व्याकरण और विषय-सम्बन्धी अनेक भूलें पाई जाती हैं। बौद्ध आदि अब्राह्मणिक मतों के ह्रास के पश्चात् दुर्भाग्यवश पुराणों का पुनः संस्करण अर्धशिक्षित तथा अज्ञानी पुरुषों द्वारा हुआ, जिनको इतना भी ज्ञान नहीं था कि पहिले क्या कह आए हैं और अब क्या कह रहे हैं। उनको तो तुकबन्दी और अपनी कथाओं को अपने मतानुसार रोचक बनाने से मतलब था। अतः उनके आधार पर व्याकरण के नियमों द्वारा किसी विषय का निर्णय करना व्यर्थ है।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ, उत्तर कौशल अवध प्रान्त का ही प्राचीन नाम है, जो दक्षिण में एक कौशल या महाकौशल नाम के जनपद के स्थापित हो जाने पर पड़ा था। इसके प्रमाण-रूप मैंने उद्धरण भी दिए थे, परन्तु सम्पादक महोदय ने दिसम्बर १९३१ में छपे लेख में से अन्य उद्धरणों की तरह उसे भी उड़ा दिया। वास्तव में पौराणिकों का आशय उत्तर कौशल राज्य से ही है। स्वयं रामायण उत्तरकाण्ड १०७–७ वा १७ में टीकाकारों ने 'कोशल' का अर्थ दक्षिण कौशल और 'उत्तर' का अर्थ उत्तर कौशल दिया है और १०८–४ वा ५ में कुश की राजधानी कुशवती का विन्ध्याचल से सम्बन्ध बताए जाने और लव की राजधानी श्रावस्ती बताए जाने से उनका भाष्य सत्य प्रतीत होता है।

रजनीकान्त जी ने यह नहीं विचारा कि शत्रुघ्न या कौशलों का राज्य मथुरा में कितने दिनों रहा था। पुराणों के अनुसार मधु की ६वीं पीढ़ी में या पारजिटर के निर्णय के अनुसार ६वीं पीढ़ी में उत्पन्न राम के समकालीन भीम सात्वत का पुत्र अन्धक यादव मथुरा का राजा हुआ था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मथुरा में कौशलों का राज्य केवल एक पीढ़ी रहा था। अतः मथुरा राज्य का किसी ग्रन्थ में कौशल देश या वास्तव में उसके अन्तर्गत न कहा जाना आश्चर्यजनक नहीं है। परन्तु समस्त वर्तमान अवध तथा गोंडवाना के कौशल देश कहलाने से मेरी धारणा सत्य सिद्ध होती है।

पुराणों में श्रावस्ती नगर के लव के पूर्वजों अर्थात् श्रावस्त या उसके पुत्र वत्स द्वारा बसाया जाना माने जाने से यह विदित होता है कि श्रावस्ती वाला गौड़ या गोण्ड देश बहुत समय से कौशल राज्य के अन्तर्गत था। उससे पृथक् और उसके उत्तर में नहीं था। तात्पर्य यह है कि बङ्गाल और पञ्जाब तथा अवध और नैपाल के बीच में रजनीकान्त जी का कल्पित गौड़ नाम का कोई देश नहीं था, जिसके कारण उत्तर भारत के ब्राह्मण पञ्चगौड़ या कुरु, मत्स्य, शौर सैनक जनपदों के ब्राह्मण गौड़ कहलाए हों।

३—गोत्र-प्रवरादि

रजनीकान्त जी और मैं एक हद तक ही सहमत हैं। मेरी खोज के अनुसार ब्राह्मणों में केवल ७ मूल गोत्र और शुद्ध विवाह सम्बन्ध के विचार से १८ या (यदि शाठर-माठर और वैदविश्व ज्योति को, जिनके अस्तित्व का सिवाय धर्मसिन्धु तथा निर्णयसिन्धु के लेखों के मुझे ज्ञान नहीं है, सम्मिलित किया जावे तो) २० गण गोत्र हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई गोत्र नहीं है, केवल इन गोत्रों के वर्ग हैं, जिनका अपने ही गण गोत्र के अन्य वर्गों के साथ विवाह सम्बन्ध अधर्म है। उदाहरणार्थ मेरे मतानुसार कान्यकुब्जों के कश्यप, काश्यप और शाण्डिल्य भिन्न-भिन्न गोत्र नहीं हैं। तीनों एक काश्यप गोत्र के वर्ग हैं, जिनको गोत्र और प्रवरों की समानता के कारण परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। यदि अब रजनीकान्त जी मुझसे सहमत हो गए हों तो बड़ी प्रसन्नता की बात है।

अत्रि और विश्वामित्र के सम्बन्ध में रजनीकान्त जी ने मेरे तर्क को नहीं समझा। मेरे कहने का आशय यह था कि समस्त ब्राह्मणों में अपने प्रथम मन्त्रकर्ता पूर्वज को ही प्रथम प्रवर ऋषि मानने का रिवाज आदि काल

से चला आया है। इसी नियमानुसार जब जामदग्न्य, शौनक इत्यादि पञ्च या सप्त भार्गवों और गौतम, भारद्वाज आदि अष्ट आङ्गिरसों के गोत्रकारक ऋषि जमदग्नि, शुनक, गोतम, भरद्वाज आदि भृगु और अङ्गिरस के वंशज या आश्रित अन्य ऋषि होने पर भी भृगु और आङ्गिरस ही प्रथम प्रवर-ऋषि माने गए, तब यदि विश्वामित्र अत्रि के वंशज होते तो वैश्वामित्र भी अत्रि को ही अपना प्रथम प्रवर मानते। उनके ऐसा न करने वा विश्वामित्र को ही अपना प्रथम प्रवर ऋषि मानने से विदित होता है कि वह विश्वामित्र से पूर्व अपने किसी अन्य पूर्वज को मन्त्रकर्ता ऋषि नहीं जानते और मानते थे। यदि विश्वामित्र अत्रि की सन्तान होते तो प्राचीनकाल मे उनके वंशजों को इसका ज्ञान अवश्य होना।

आपने इसका उत्तर विचित्र युक्ति से दिया है। विश्वामित्र ने अपना मूल गोत्र पृथक् अवश्य स्थापित किया था। परन्तु उनको ऐसा करने की तभी इच्छा हुई होगी, जब कि उनके पूर्वज पहले से ही ब्राह्मण न होकर क्षत्रिय हों और उनका किसी ब्राह्मण-वंश से रक्त-सम्बन्ध न हो। यह तो सभी जानते हैं कि ब्राह्मण गोत्र-प्रवर्तक अत्रि ऋषि विश्वामित्र से कई पीढ़ियों पूर्व हुए थे और उनका वंश विश्वामित्र के जन्म से बहुत पहले ही ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित हो चुका था। अतः यदि विश्वामित्र अत्रि के वंशज होते तो न तो उनको ब्राह्मण वर्ण में स्वयं सम्मिलित होने की आवश्यकता थी और न पृथक् मूल-गोत्र स्थापित करने की। उस दशा मे वैश्वामित्र वंश उसी प्रकार आत्रेय गोत्र का एक पक्ष होता, जैसे कि पाराशर्य वंश वाशिष्ठ गोत्र का है। फिर यदि विश्वामित्र आत्रेय गोत्री होते तो वाशिष्ठों को उनके ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित होने पर आपत्ति उठाने का क्या अवसर था। विश्वामित्र का एक मूलगोत्र का प्रवर्तक होना ही इस बात का प्रमाण है कि वह आत्रेय वंशी न होकर किसी अन्य वंश के थे।

ऐसे ही आत्रेयों और वैश्वामित्रों के परस्पर विवाह सम्बन्ध के विषय में रजनीकान्त जी भ्रम में पड़ गए हैं। गोतम और भरद्वाज विश्वामित्र के जन्म से बहुत पीढ़ियों पहले और हमारी सभ्यता के आदि काल में उत्पन्न हुए थे। उनके समय में हमारी सभ्यता बहुत निम्न श्रेणी की थी और विवाह सम्बन्ध के विषय में हम लोग पशुओं से अधिक भिन्न नहीं थे। मेरे इस कथन के प्रमाण महाभारत आदि पर्व अध्याय १०४ में भीष्म-सत्यवती सम्वाद में कही गई, दीर्घतमस गोतम और भारद्वाज की, अङ्गिरा के दो पुत्रों उतथ्य और वृहस्पति ऋषियों के वीर्य द्वारा उतथ्य की पत्नी ममता के गर्भ से उत्पत्ति तथा दीर्घतमस गोतम की कथा हैं। इन दोनों ऋषियों की इस प्रकार से उत्पत्ति की कथा तथा दीर्घतमस गोतम ऋषि के "गोधर्म" का वर्णन मत्स्य-पुराण अध्याय ४८-३२ से ८७वें श्लोकों वा अन्य पुराणों में भी है। ऐसी ही दशा के प्रमाण महाभारत आदि १२२ मे पाण्डु-कुन्ती सम्वाद मे पाए जाते हैं। देवताओं के पुरोहित और आचार्य महर्षि वृहस्पति की पत्नी तारा के साथ राजा अत्रि के पुत्र चन्द्र से अनुचित सम्बन्ध और बुध की उत्पत्ति की कथा भी ऐसी ही दशा दर्शाती है। पश्चात् काल मे जब हमारी सभ्यता को उन्नति प्राप्त हुई तो 'गोधर्म' और अपने वंश की कन्याओं से विवाह सम्बन्ध महापाप समझे जाने लगे। अतः वैश्वामित्रों और आत्रेयों के विवाह सम्बन्ध के विषय में गौतमों और भारद्वाजों का उदाहरण देना व्यर्थ है।

दूसरे आङ्गिरसों मे रथीतर मुद्गल आदि छः वंशों के आश्रित होने के कारण भार्गवों की तरह प्रवरों में समानता माने जाने का नियम अन्य ब्राह्मणों से भिन्न है। अर्थात् भार्गवों, आङ्गिरसों और पञ्चप्रवरों में तीन और त्रिप्रवरों मे दो प्रवरों से कम की समानता होने पर प्रवरों की समानता नहीं मानी जाती। दैववश उच (त) थ्य और वृहस्पति अङ्गिरस के दोनों पुत्रों से वंश चले, जिसके कारण गौतमों और भारद्वाजों में केवल एक प्रवर की समानता हुई, जो धर्मानुसार समानता नहीं समझी जाती। अतः सम्भव है कि गौतमों और भारद्वाजों में एक आदि पुरुष की औरस सन्तान होते हुए भी परस्पर विवाह सम्बन्ध का कारण तत्व को भूल कर प्रवरों की असमानता का अन्धाधुन्ध अनुसरण हो।

परन्तु आत्रेयों में कोई भी अन्य वंशी गणरूप से आश्रित नहीं हुए। अतः उनमें एक प्रवर ही समान होने पर धर्मानुसार प्रवरों की समानता मानी जाती है। जैसा कि ऊपर सिद्ध किया जा चुका है, यदि विश्वामित्र ब्राह्मण गोत्र-प्रवर्तक ऋषि अत्रि की सन्तान

होते, तो अवश्य ही वैश्वामित्रों का प्रथम प्रवर आत्रेय होता; जैसा कि उनके समान गोत्र-प्रवर्तक माने जाने वाले गोतम और भरद्वाज की सन्तानों का आङ्गिरस है। और नियमानुसार उनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध का निषेध होता।

यदि रजनीकान्त जी ऋग्वेद की ऋष्यनुक्रमणिका या सायण-भाष्य में आत्रेयों के मण्डल (पञ्चम) में अत्रि ऋषि के सूक्तों की भूमिका पढ़ने का कष्ट उठाते, तो उन्हें पता लग जाता कि ब्राह्मण गोत्र-प्रवर्तक और आत्रेयों के प्रथम प्रवर ऋषि अत्रि को भौम अर्थात् भूम (या भोम ?) का पुत्र या वंशज बताया गया है। जहाँ तक मुझे ज्ञान है, चन्द्र के पिता अत्रि को किसी ने भौम नहीं कहा।

रजनीकान्त जी लिखते हैं कि ऐतरेय ब्राह्मण के भरतर्षभ विश्वामित्र, ब्राह्मण गोत्रकारक विश्वामित्र से भिन्न व्यक्ति थे। मुझे आश्चर्य है कि एक शास्त्री और वकील की लेखनी से ऐसे भ्रान्तिपूर्ण शब्द कैसे निकले। या तो उनको पूर्णतया विचार करके लिखने का अभ्यास नहीं है या वह जान-बूझ कर पाठकों को भ्रम में डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्रथम तो ऐतरेय ब्राह्मण तथा रजनीकान्त जी के उद्धरित भागवत १,७,२२ में उस विश्वामित्र को राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में 'होता' बताया गया है। उसी यज्ञ में वशिष्ठ को 'ब्रह्मा' कहा गया है। यह कैसे सम्भव है कि सुदासत्रत्सु के यज्ञ में वाशिष्ठों के विश्वामित्र और उसके भाई-बन्धु कौशिकों के साथ झगड़ा करके उनको निकलवा देने पर भी वशिष्ठ (या वाशिष्ठ) विश्वामित्र के ब्राह्मण माने जाने बिना उसके साथ एक ही यज्ञ में ऋत्विज होते। दूसरे उस यज्ञ के पश्चात् शुनः शेफ आजिगर्त के देवरात नाम से उस भरतर्षभ और राजपुत्र विश्वामित्र का ज्येष्ठ पुत्र बनने का वर्णन है। आज तक भी दैवरात या औदल पक्ष वालों को, जिनका प्रथम प्रवर वैश्वामित्र और द्वितीय दैवरात है, वैश्वामित्र गोत्र का प्रथम पक्ष माना जाता है। तीसरे ऐतरेय ब्राह्मण में उस भरतर्षभ विश्वामित्रों के पुत्रों के नाम मधुच्छन्दस, ऋषभ, रेणु, अष्टक आदि बताए गए हैं। यदि रजनीकान्त जी ऋग्वेद की ऋष्यनुक्रमणि या श्रौत सूत्रों में दी हुई वैश्वामित्रों की गोत्रावलियों और प्रवराध्यायों तथा महाभारत और पुराणों में खोजें तो उनको पता लग जावेगा कि मधुछन्दस आदि ब्राह्मण गोत्रकारक विश्वामित्र ऋषि की ही सन्तान थे। चौथे स्वयं ऋग्वेद में ही वैश्वामित्रों के भारतवंशी होने के प्रमाण पाए जाते हैं। वैश्वामित्रों के मण्डल (तृतीय) के २३वें सूक्त के ऋषिदेव श्रवस और देवरात माने गए हैं। इस सूक्त के दूसरे मन्त्र में उन दोनों को भारत कहा गया है। चौथे मन्त्र में देववात के आपया दृषद्वती और सरस्वती नदियों के देश में अग्नि-स्थापन करने का वर्णन है। इससे सिद्ध होता है कि उसने अग्नि भारत जनपद अर्थात् भारतों के राज्य में स्थापित की थी अर्थात् वह वहीं रहता होगा और भारतवंशी होगा। इधर वैश्वामित्रों के दूसरे पक्ष का नाम दैवतरस है और उसके प्रवर वैश्वामित्र दैव श्रवस और दैवतरस है। रजनीकान्त जी देववात और देवतरस नामों में कुछ भेद होने पर शङ्का न करें। वैदिक और पश्चात् काल की संस्कृत भाषाओं में एक ही पुरुष के नामों में ऐसा भेद साधारण बात है। उचथ्य का उतथ्य, सवेदस का सवेतस, विदेघ का विदेह इत्यादि इसके उदाहरण हैं। फिर प्रवर ऋषियों का स्ववंशी और मन्त्रकर्ता होना आवश्यक है। ऋग्वेद में देवतरस नाम का कोई मन्त्रर्षि न तो वैश्वामित्रों में है न अन्य किसी वंश में। अतः शुद्ध नाम देववात है, जिसको पश्चात् काल में सम्भवतः देवश्रवस के साथ तुक मिलाने के लिए देवतरस बना लिया गया। इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण के राजपुत्र और भरतर्षभ विश्वामित्र के ब्राह्मण गोत्र-प्रवर्तक ऋषि होने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता और यह भी सिद्ध हो जाता है कि वह आत्रेय वंशी न होकर मानव-भारतवंशी थे।

मैं यहाँ सम्पादक महोदय से क्षमा माँग कर यह भी लिख देना उचित समझता हूँ कि दिसम्बर के लेख में मैंने अपने दिए कान्यकुब्जों के शुद्ध प्रवरों के शुद्ध होने के प्रमाण दिए थे। परन्तु सम्पादक महोदय ने उन उद्धरणों को नहीं छापा। यदि रजनीकान्त जी या अन्य किसी को सन्देह हो तो श्रौत सूत्रों के प्रवराध्याय देख लें!

मैंने उस लेख में यह भी लिखा था कि विढ़वाई, गोहे, चपलूणकर, फाफेकर आदि उपाधियाँ नहीं हैं।

(शेष मैटर २६१ पृष्ट के पहले कॉलम में देखिए)

अफ़ग़ानिस्तान की कुछ बातें

[श्री० मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव]

आज से दो सौ वर्ष पूर्व अफ़ग़ानिस्तान नाम का कोई देश न था। अथवा यों कहना चाहिए कि 'अफ़ग़ानिस्तान' शब्द से आजकल जिस अर्थ का बोध होता है, अठारहवीं शताब्दी से पहले उस अर्थ का बोध नहीं होता था। बल्कि, अठारहवीं शताब्दी के मध्य में, जब अफ़ग़ानिस्तान ने स्वतन्त्रता प्राप्त की, तभी से वह इस नाम से पुकारा जाने लगा। इससे पहले वर्तमान अफ़ग़ानिस्तान के भिन्न-भिन्न अंशों के भिन्न-भिन्न नाम प्रचलित थे। सारा देश किसी एक निर्दिष्ट राष्ट्र के रूप में न था और न सारे देश में कोई एक भाषा ही बोली जाती थी। यहाँ तक कि उसके किसी अंश-विशेष में भी किसी एक जाति का निवास न था और न कोई ख़ास भाषा ही थी। उस समय अफ़ग़ानिस्तान शब्द से केवल उस स्थान का बोध होता था, जहाँ अफ़ग़ान जाति के लोग निवास करते थे। इसके सिवा वहाँ और भी कई ऐसे प्रदेश थे, जो आजकल स्वतन्त्र हैं या ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत हैं। आज भी अफ़ग़ानिस्तान की प्रायः एक करोड़ जन-संख्या विभिन्न जातियों में बँटी हुई है। इस देश के पूर्व-दक्षिण भाग में अफ़ग़ान और पठान जाति के लोगों का निवास है। मध्य भाग में तातार और हज़ारा जाति के मनुष्य रहते हैं। पश्चिम अफ़ग़ानिस्तान में पर्शिटान्स की भी बस्तियाँ हैं। उत्तरीय प्रदेश में रूसी सीमान्त तक ताजिक, अजबेग और तुर्कों का निवास है। इन विभिन्न जातियों में पारस्परिक एकता का भाव किसी बाहरी शत्रु के अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण करने के समय ही परिलक्षित होता है, अन्यथा वे सदैव एक-दूसरे से अलग रहती हैं। हज़ारा और दुर्रानी (अफ़ग़ान) जाति के लोगों में बड़ी पुरानी दुश्मनी है, जो आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। वहाँ के तुर्क जाति के प्रत्येक लोग उस जाति के शत्रु बन जाते हैं, जो उन पर शासन करना चाहती है। ताजिक जाति वाले कुछ कम उद्दण्ड समझे जाते हैं, परन्तु अफ़ग़ान इन्हें अपने से नीच मानते हैं। अफ़ग़ानिस्तान का भूतपूर्व क्षणकालिक अमीर बच्चए-सक्का इसी ताजिक जाति का था और कुछ लोगों का विचार है कि इसी कारण उसे सफलता भी नहीं मिली। क्योंकि उच्च जाति वाले उसके विरुद्ध थे। ख़ैर, सुनने में आया है कि अफ़ग़ानिस्तान के वर्तमान शासक शाह नादिर ख़ाँ इन विभिन्न जातियों को सङ्गठित करके अफ़ग़ानिस्तान को एक राष्ट्र के रूप में परिणत करना चाहते हैं। यही उद्देश्य शाह अमानुल्लाह का भी था, परन्तु वे कृतकार्य न हो सके।

भारत से अफ़ग़ानिस्तान और काश्मीर की ओर जाने के समय रास्ते में जो कई पहाड़ी प्रदेश पड़ते हैं, वहाँ भी कई ऐसी जातियों का निवास है, जो एक दूसरे से भिन्न हैं, यद्यपि इन जातियों का धर्म इस्लाम है, परन्तु इनकी सभ्यता, रहन-सहन और रीति-रिवाज सभी विभिन्न प्रकार के हैं। इनमें कुछ तो असभ्य और कुछ अर्द्धसभ्य जातियाँ हैं। इन्हें अपने भद्दे रीति-रिवाजों और जङ्गलीपन से बड़ा प्रेम है, इसलिए वे आजकल की सभ्यता की छाया से दूर ही रहना पसन्द करती हैं।

परन्तु एक दिन ऐसा भी था, जबकि अफ़ग़ानिस्तान तथा उसके पार्श्ववर्त्ती प्रदेशों पर हिन्दू-सभ्यता और प्राचीन वैदिक धर्म का विशेष प्रभाव था। उस समय गोमल नदी के किनारे से लेकर तख़्ते-सुलतान नामक पर्वत तक आर्यों के यज्ञ-धूम से आच्छादित था। तख़्ते-सुलतान की कन्दराएँ आर्यों के सामगान से गूँजा करती

थीं। रेपसन साहब ने अपनी 'प्राचीन भारत' नाम की पुस्तक में लिखा है कि तत्कालीन आर्यगण अफ़गानिस्तान के 'रोह' नामक स्थान को पितरों का निवास-स्थान मानते थे। महाभारत के समय भी वाह्लीक (बलख़) और गान्धार (पेशावर) आदि स्थानों में आर्यों का निवास था। सिकन्दर ने जिस समय भारत पर आक्रमण किया था, उस समय अफ़गानिस्तान, सिस्तान और बलूचिस्तान आदि देशों में आर्यों की तूती बोलती थी। मगध के मौर्यवंशीय नरेशों ने अफ़ग़ानिस्तान के हिरात नगर तक अपने राज्य का विस्तार किया था। क़ाबुल नगर 'तुर्कीशाही' हिन्दू (अथवा बौद्ध) नरेशों के अधिकार में था ! कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि ये लोग कुषाण-सम्राट कनिष्क के वंशज रहे होंगे। अटक के उत्तर सिन्धु नदी के किनारे 'उन्द' या 'ओहिन्द' नाम का नगर इन शाह उपाधिधारी हिन्दू-नरेशों की राजधानी था। ईसा की दसवीं शताब्दी तक अफ़गानिस्तान के बहुत से अधिवासी बौद्ध तथा अग्नि-उपासक थे। जलालाबाद और पेशावर की समतल भूमि पर आज भी बौद्ध-धर्म के बहुत से चिह्न पाए जाते हैं। अफ़ग़ानिस्तान की वर्त्तमान राजधानी काबुल नगर के पास भी बौद्ध-काल के ऐसे निदर्शनों का अभाव नहीं है। अफ़ग़ानिस्तान की उत्तरी सीमा पर बामियान नाम का एक विशाल पर्वत है। इस पर कितनी ही बौद्ध मूर्त्तियाँ खुदी हुई हैं, जिनसे पता चलता है कि भारतवर्ष की तरह यहाँ भी बौद्ध-धर्म और बौद्ध सभ्यता का काफ़ी प्रभाव था। हिन्दू और बौद्ध-काल में काबुल नदी का नाम 'कुभा' और उसके पार्श्ववर्ती प्रदेश का नाम उद्यान था। कुरम उपत्यका का नाम 'क्रूमू' और गोमल नदी का गोमती था। ये सभी नाम वैदिक हैं। अफ़ग़ानिस्तान के कितने ही भौगोलिक स्थानों के नामों में भी वैदिक शब्दों का आभास मिलता है।

ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी में महमूद ग़ज़नवी के मुन्शी-उल-उतबी ने 'तारीख़े-यामिनी' नाम के एक इतिहास-ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में अफ़ग़ानिस्तान का ज़िक्र पाया जाता है। फलतः ऐतिहासिकों की धारणा है कि इससे पहले अफ़गानिस्तान बिलकुल अज्ञात देश था और यहाँ के अधिवासी असभ्य और जङ्गली समझे जाते थे। ग़ज़नवी वंशवालों के राजत्व-काल में अफ़गान जाति के लोग सुलेमान पर्वत की कन्दराओं में निवास करते थे और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त के अफ़रीदियों की तरह गज़नवी सुलतानों के राज्य में घुस कर लूट-पाट किया करते थे। इन सुलतानों ने उन्हें सर करने के लिए कई बार उन पर चढ़ाइयाँ भी की थीं। उस समय अफ़ग़ानों ने इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया था। क्योंकि सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक वैहाकी ने उन्हें 'क़ाफ़िर' कहा है। इसके बाद उन्होंने इस्लाम-धर्म स्वीकार किया। परन्तु इस नए धर्म के कारण इनमें किसी प्रकार का नैतिक परिवर्त्तन नहीं हुआ और न मुसलमानी सभ्यता का कोई विशेष प्रभाव ही उन पर पड़ा। उनकी भाषा और उनकी लूट-पाट की प्रवृत्ति भी ज्यों की त्यों बनी रही। अङ्गरेज़ ऐतिहासिकों का अनुमान है कि सम्भवतः ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में अफ़गान जाति के कुछ लोग घूमते-फिरते काबुल आए थे और कुछ दिनों के बाद धीरे-धीरे उस पर अधिकार भी कर लिया था।

'अफ़ग़ान' नाम की उत्पत्ति और अफ़ग़ानों के जाति-तत्व के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों में काफ़ी मत-भेद है। अफ़ग़ान अपने को 'इब्ने-इस्राईल' अथवा इस्राईल के वंशधर बतलाते हैं। परन्तु अगर कोई उन्हें यहूदी कह दे तो उसका मुँह नोच लेने को तैयार हो जाते हैं। सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ ऐतिहासिक मि० डेम्स ने विभिन्न इतिहासकारों के मतों की आलोचना करके बतलाया है कि तुर्की और ईरानी जातियों के सम्मिश्रण से अफ़ग़ान जाति बनी है। आजकल यही मत सर्व-मान्य माना जाता है।

अफ़ग़ानों की वीरता का इतिहास ग़ज़नी के तुर्क-वंशीय अमीर सबुकतिगिन के राजत्व-काल से आरम्भ होता है। इतिहासकारों ने पता लगाया है कि सबसे पहले इसी अमीर की सेना में कुछ अफ़ग़ान सिपाही नौकर थे। सबुकतिगिन के पुत्र सुल्तान महमूद ने तुर्किस्तान पर चढ़ाई की थी। उस समय उसकी सेना में बहुत से अफ़ग़ान सिपाही थे। परन्तु उस समय भी वे असभ्य और जङ्गली ही समझे जाते थे। मुहम्मद

* Rapson's 'Ancient India'

गोरी के ज़माने में उन्होंने थोड़ी सी उन्नति की थी। यद्यपि उस समय भी वे सभ्य या प्रतिष्ठित नहीं समझे जाते थे, परन्तु लड़ने-भिड़ने के काम के लिए अच्छे समझे जाते थे। सन् ११६१ मे मुहम्मद ग़ोरी और पृथ्वीराज में लड़ाई हुई थी। इस लड़ाई के समय उभय पक्ष की सेनाओं में अफ़ग़ान सिपाही थे। इससे ऐतिहासिकों ने यह भी अनुमान लगाया है कि उस समय तक अफ़ग़ानों पर इस्लाम धर्म का प्रभाव नहीं था, अन्यथा वे हिन्दुओं की ओर से मुहम्मद ग़ोरी की सेना से लड़ाई नहीं करते।

ईसा की बारहवीं शताब्दी में मुसलमानों ने हिन्दुओं को जीतने में सफलता प्राप्त की थी। उसके बाद की दो शताब्दियों में अफ़ग़ानों ने भी अपनी थोड़ी सी उन्नति की। क्योंकि इन शताब्दियों के मुसलमान विजेताओं ने भारत में अफ़ग़ान सरदारों को जागीरें प्रदान की थीं। ग़ुलाम वंश के राजत्वकाल में दिल्ली के बादशाह की सेना में कुछ अफ़ग़ान सिपाही थे। बलबन ने जिस सेना द्वारा मेवाड़ पर आक्रमण किया था, उसमें हज़ारों अफ़ग़ान सैनिक और घुड़सवार थे। इस आक्रमण में उन्होंने अपने बल-विक्रम का भी अच्छा परिचय दिया था। परन्तु प्रतिष्ठा के लिहाज़ से उस समय भी वे असभ्य और नगण्य समझे जाते थे। यहाँ तक कि अमीर तैमूर के भारत पर आक्रमण करने के समय भी अफ़ग़ानों की वही दशा रही। उस समय भी लोग उन्हें पहाड़ी डाकू ही समझा करते थे। इसके बाद सन् १४०० में, दिल्ली के बादशाह का प्रभाव कुछ कम हो चला था, उस समय लोदी वंश के कई अफ़ग़ान सरदारों ने पञ्जाब मे ख़ासी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। सय्यद वंश के अन्तिम बादशाह को सिंहासनच्युत करके बहलोल लोदी ने पञ्जाब पर अपना अधिकार जमाया। उसी समय से अफ़ग़ान-राजत्व का भी सूत्रपात हुआ। बहलोल ने दीर्घकालीन संग्राम के बाद जौनपुर राज्य दख़ल किया। यही मानो अफ़ग़ानों की पहली जातीय कीर्ति थी। रोहवासी अफ़ग़ानों को भारत की ओर आकृष्ट करने के लिए बहलोल ने रुपए भी ख़ूब ख़र्च किए थे। इसलिए बहुत से अफ़ग़ान अपने बाल-बच्चों को लेकर भारत में बसने के लिए चले आए। इनमें लोदी वंश वालों ने पञ्जाब और दिल्ली के आस-पास, फ़ारमूली-वंशीय अवध प्रान्त में, लोहानी वंश वाले ग़ाज़ीपुर और दक्षिण-बिहार में जा बसे। इनके अतिरिक्त कुछ कानपुर और बिहार के शाहाबाद आदि स्थानों में भी जाकर रहने लगे। बहलोल लोदी की मृत्यु के बाद उसका पुत्र सिकन्दर लोदी सिंहासनारूढ़ हुआ। यह एक सुनारिन के पेट से पैदा हुआ था। परन्तु अफ़ग़ान इससे बहुत प्रसन्न रहते थे। दिल्ली के अव्यवस्थित शासन को इसने कुछ सुव्यवस्थित भी किया था। परन्तु अफ़ग़ान राज्य चिरस्थायी न हो सका। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद, सन् १५१७ में, सुलतान इब्राहीम तख़्तनशीन हुआ। परन्तु यह अतीव क्रूर स्वभाव, सन्दिग्ध चित्त, कपटी और नीतिज्ञान-हीन मनुष्य था। इसलिए इसके सिंहासन पाने के कुछ दिन बाद ही अन्तर्विद्रोह प्रारम्भ हुआ। आत्मसम्मान पर आघात लगने के कारण प्रायः सभी अफ़-

---

(२५८ पृष्ठ का शेषांश)

वह अल्ह या शासन नाम हैं, जो उपाधियों से भिन्न हैं और जो गौड़ों (जैसे अडीचवाल, पालीवाल, वधूसर, कानौडिया इत्यादि) और कान्यकुब्जों (जैसे हफ़ीज़ाबादी, शिवराजपुरिये, जहाँगीराबादी इत्यादि) में भी पाए जाते हैं। आपने अल्ह या शासनों का नहीं, उपाधियों का प्रश्न छेड़ा था। कृपया बतावें कि पञ्चद्राविडों की वह कौन सी उपाधियाँ हैं, जिनमें अनार्य भाषा के शब्द भरे पड़े हैं। यदि शासनों या अल्हों को ही उपाधियाँ मान कर शङ्का उठाई जावे, तो हफ़ीज़ाबादी और जहाँगीराबादी जैसी उपाधियों मे फ़ारसी भाषा के शब्द होने से इन उपाधियों वाले कान्यकुब्ज पार्सी सिद्ध होंगे।

आशा है कि अब की बार उत्तर लिखने से पूर्व रजनीकान्त जी इस सम्बन्ध में पूर्णतया खोज कर लेंगे और साथ ही मेरे लेखों को भी ध्यानपूर्वक पढ़ लेंगे; जिससे उनसे ऐसी भूलें न हों। पाठकों का, मेरा तथा उनका समय वृथा नष्ट न हो और 'चाँद' के पृष्ठ व्यर्थ काले न किए जायँ।

❀ ❀ ❀

ग़ान सरदार इसके विरुद्ध हो गए। पञ्जाब के दौलत ख़ाँ लोदी ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने की सलाह देने के लिए अपना एक दूत काबुल भेजा।

बाबर ने भी इस सुयोग से लाभ उठाया और अफ़ग़ानों की मदद से उसने यथेष्ट सफलता भी प्राप्त की। परन्तु विद्रोहियों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ। वरन् उनके षड्यन्त्र के कारण सदा के लिए अफ़ग़ान-राजत्व का पतन हो गया। उन लोगों ने सोचा था कि तैमूर की तरह बाबर भी कुछ धन-सम्पत्ति लूट-पाट कर चलता बनेगा। परन्तु परिणाम कुछ और ही हुआ। बाबर ने लोदी-राजत्व को नष्ट करके मुग़ल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा की, तब उनकी आँखें खुलीं और अपनी प्रतिष्ठा तथा प्रतिपत्ति की रक्षा के लिए उन्होंने दूसरा षड्यन्त्र आरम्भ किया। कुछ दिनों के लिए मुग़ल भारत से हटा दिए गए और शूरवंशीय अफ़ग़ान शेरशाह ने फिर से अफ़ग़ान-राजत्व की स्थापना की। परन्तु उसका कोई योग्य उत्तराधिकारी न था, इसलिए शेरशाह की मृत्यु के बाद मुग़लों ने दिल्ली के सिंहासन पर फिर अधिकार कर लिया।

भारत से पठान-शासन सदा के लिए विदा हो गया, परन्तु पठानों ने मुग़लों को चैन लेने नहीं दिया। भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त पर वे भयानक उत्पात मचाने लगे। परन्तु मुग़लों ने इसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं किया। सम्राट अकबर ने एक बार थोड़ी सी सेना भी भेजी थी, परन्तु कोई फल न हुआ। अफ़ग़ानों ने शीघ्र ही उन्हें मार भगाया। मुग़ल बादशाहों की धारणा थी कि काबुल और भारत के बीच के रास्ते को निरापद रखने के लिए पठानों के साथ लोहा लेने की अपेक्षा उन्हें कुछ दे-लेकर प्रसन्न रखना कहीं अच्छा होगा, इसलिए उन्होंने सीमाप्रान्त के अफ़्रीदियों, शिनवारियों, युसुफ़जइयों और खटकों को यह अधिकार दे दिया कि वे काबुल जाने वाले भारतीय व्यापारियों से कर लिया करें। इसके सिवा उन्हें कुछ नियमित वृत्ति देने की भी व्यवस्था की गई। परन्तु यह सब कुछ होने पर पठानों ने मुग़लों की वश्यता नहीं स्वीकार की और न अपनी लूट-तराज़ की आदत से बाज़ आए। अकबर की तरह औरङ्गज़ेब ने भी उन्हें क़ाबू में रखने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु प्रत्येक चढ़ाई में पराजय की कलङ्क-कालिमा के अतिरिक्त और कुछ हाथ न लगा।

अठारहवीं शताब्दी में मुग़लों का रङ्ग कुछ फीका पड़ गया था। दिल्ली मानो काबुल को भूल गई थी। शासन-कार्य में काफ़ी शिथिलता आ गई थी। इसी समय सुयोग पाकर फ़ारस के नादिरशाह ने अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार प्राप्त कर लिया। दिल्ली के बादशाह को अफ़ग़ान की बादशाहत की ममता छोड़ कर नादिरशाह के साथ सुलह कर लेनी पड़ी। सन् १७४७ में नादिरशाह की मृत्यु के बाद उसका सेनापति अहमदशाह अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान का बादशाह बना। यह अफ़ग़ान था और क़न्धार के पास ही इसका जन्मस्थान था। इसने अन्त में पञ्जाब पर भी दख़ल जमाया और अपने विजय-गौरव की घोषणा-स्वरूप स्वयं दुर्रानी की पदवी ग्रहण की। इसीसे इसके वंशधर भी दुर्रानी कहलाए।

अब तक तो अफ़ग़ानिस्तान वाले कभी फ़ारस और कभी भारत साम्राज्य के अधीन रहे, परन्तु अब उन्होंने स्वयं अपने देश का शासनाधिकार प्राप्त किया और अपने एक सजातीय नरेश की छत्र-छाया में आ गए। इसी समय उन्होंने विभिन्न प्रान्तों में बटे हुए अपने देश का नाम भी अफ़ग़ानिस्तान रक्खा।

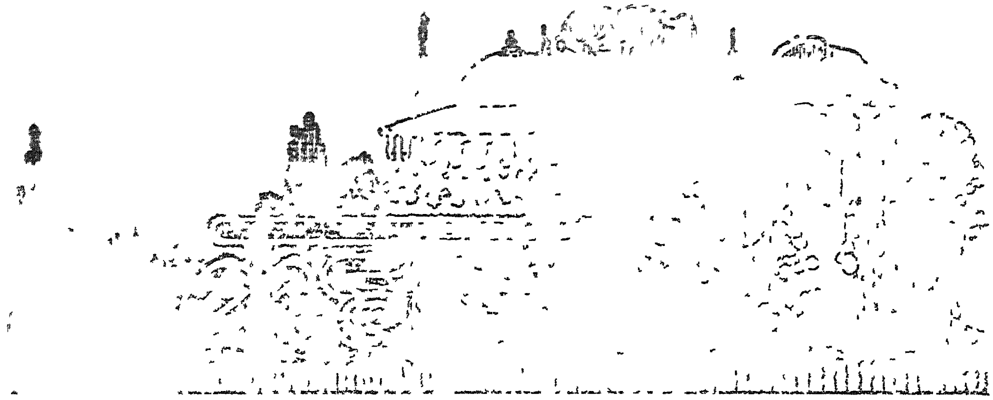
हमारे देश की तरह अफ़ग़ानिस्तान की भूमि समतल नहीं है, सारा देश कई छोटी-छोटी पहाड़ी तराइयों के रूप में विभक्त है। विभिन्न तराइयों में विभिन्न वंशों के लोग निवास करते हैं। लोगों का विश्वास है कि किसी भी समतल देश के अधिवासी की अपेक्षा अफ़ग़ान बलवान, साहसी और कर्मठ होते हैं, परन्तु उनमें पारस्परिक द्वेष-भाव की मात्रा अधिक है। एक वंश के लोग दूसरे वंश वालों से सदैव लड़ा करते हैं। इसलिए अब तक एक समवेत राष्ट्र के रूप में उनका सङ्गठन नहीं हो सका है। शाह अमानुल्लाह ने अफ़ग़ानों को सङ्गठित करने की चेष्टा की थी, परन्तु असफल रहे। अध्यापक यदुनाथ सरकार ने अपनी 'औरङ्गज़ेब' नाम की पुस्तक में लिखा है कि युसुफ़जई जाति के अफ़ग़ानों को एक फ़क़ीर ने अभिशाप दिया था कि तुम लोगों में कभी पारस्परिक सद्भाव न स्थापित होगा और न तुम कभी सङ्घबद्ध हो सकोगे।

अफ़ग़ानों को अपनी वंश-मर्यादा का बड़ा गर्व होता है। विवाद और लड़ाई-भिड़ाई में इन्हें विशेष आनन्द प्राप्त होता है। युद्धक्षेत्र ही मानो इनका क्रीड़ा-स्थल है। वे मृत्यु से नहीं डरते। खेती-बारी और डकैती उनका प्रधान पेशा है। इनकी प्रतिहिंसा वृत्ति बड़ी ही भीषण होती है। धार्मिक कट्टरपन भी इनमें ख़ूब होता है। धर्म के नाम पर रक्तपात करने में इन्हें तनिक भी सङ्कोच नहीं होता। अफ़ग़ान अपराधी को क्षमा करना नहीं जानते। भारत के पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के अधिवासी पठानों से बहुत घबराते हैं। उन लोगों में कहावत प्रचलित है कि पागल हाथी और विषधर सर्प के आक्रमण से मनुष्य बच सकता है, परन्तु पठानों की प्रतिहिंसा से बचना कठिन है। अफ़ग़ानों के जातीय चरित्र का विश्लेषण करके विद्वानों ने पता लगाया है कि उनका स्वभाव और चरित्र तथा उनके गुण-दोष तूरानियों और ईरानियों से बहुत मिलते-जुलते हैं। शौर्य के साथ धूर्तता का अपूर्व सम्मिश्रण अफ़ग़ान-चरित्र की विशेषता है। इतिहास में अफ़ग़ानों की वीरता और उनके साहस के जितने उज्ज्वल दृष्टान्त पाए जाते हैं, उतनी ही उनकी क्रूरता की काली कहानियाँ भी मिलती हैं। इतिहास में कई ऐसी लड़ाइयों का ज़िक्र है, जिनसे पता लगता है कि शत्रु द्वारा परास्त न होने पर भी काल्पनिक भय से विह्वल होकर अफ़ग़ानों ने मैदान छोड़ दिया है। जिस तरह हमारे देश के राजपूत और सिक्ख समर-क्षेत्र में पीठ दिखाना पाप समझते हैं, उस तरह पठान नहीं समझते। वे वीर होते हैं, परन्तु वीरता का अन्ध-आवेग उनमें नहीं होता। अफ़ग़ान कापुरुष नहीं होते, परन्तु आत्म-रक्षा के लिए कपट-युद्ध करने में उन्हें ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता।

अफ़ग़ानों में जाति-प्रेम न होने पर भी स्वदेश-प्रेम की उनमें कमी नहीं होती। अफ़ग़ान अक्लान्त परिश्रमी होते हैं, अचूक निशाना लगाना जानते हैं, लड़ना तो उनका विशेष गुण है। इसके सिवा वे मिताहारी भी होते हैं, किन्तु किसी नियम की पाबन्दी में वे सदैव अक्षम होते हैं। वे सङ्घबद्ध होकर कुछ करना नहीं जानते और न किसी को अपने से श्रेष्ठ स्वीकार करना चाहते हैं। एक अङ्गरेज़ इतिहासकार ने लिखा है कि अफ़ग़ानों को परास्त करना उतना कठिन नहीं, परन्तु उन्हें वशीभूत कर लेना बड़ा ही कठिन काम है। सन्दिग्धता सदैव उनके मन में रहती है, इसलिए वे किसी पर विश्वास करना नहीं जानते। ज़बरदस्त से पाला पड़ने पर वे थोड़ी देर के लिए उसकी वश्यता स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु फिर सुयोग पाते ही सीना तान कर खड़े हो जाते हैं। डोर्न साहब ने अपने अफ़ग़ानिस्तान के इतिहास में एक जगह लिखा है कि अफ़ग़ानों ने अपने देश में भी बहुत दिनों तक किसी स्वेच्छाचारी शासन-तन्त्र को नहीं टिकने दिया है। उन्हें अपने ख़ानदानी अधिकारों और स्वाधीनता की बड़ी चिन्ता रहती है। मि० एल० फ्रिनिस्टोन को एक अफ़ग़ान ने बताया था कि विवाद और अशान्ति की हमें कोई परवाह नहीं, ख़ूनख़राबी से भी हम घबराने वाले नहीं, परन्तु किसी का प्रभुत्व स्वीकार करना हमारे लिए असम्भव है। हम सब कुछ सह सकते हैं, परन्तु किसी के प्रभुत्व की पीड़ा नहीं बरदाश्त कर सकते।

अफ़ग़ानों ने कई विख्यात युद्धों में विजय प्राप्त की परन्तु कभी भी दीर्घकाल तक युद्ध की परिचालना, अथवा किसी देश पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा उन्होंने कभी नहीं की। वे अपने ही देश में अजेय हैं, किसी दूसरे देश में जाकर कभी उन्होंने विजय प्राप्त नहीं की। स्वास्थ्य और शक्ति के विचार से वे अद्वितीय और अतुलनीय हैं। वंश-वृद्धि करने में कोई जाति उनकी समता नहीं कर सकती। कभी-कभी तो उनकी वंश-वृद्धि दूसरी समतलवासिनी दुर्बल जातियों के लिए आशङ्का की बात हो जाती है।

हम ऊपर बता चुके हैं कि अफ़ग़ान इस्लाम धर्मावलम्बी हैं, परन्तु बहुत सी बातों में वे क़ुरान का आदेश नहीं मानते। जैसे, स्वधर्मी के साथ युद्ध करना, रुपए का सूद लेना आदि। मुसलमानों के अन्यान्य बहुत से गुणों से अफ़ग़ान जाति वञ्चित है। अपने धर्म की उन्नति और विस्तार में भी उसने कभी कुछ नहीं किया है। इस्लाम के ज्ञान-भाण्डार में अफ़ग़ानों का दान एक पाई भी नहीं है।



द्वन्द्व

[श्रीयुत गौतमचन्द्र जी त्रिवेदी, 'नीरस']

उसका एक देश था। बीसवीं सदी के 'एजुकेटेड' साम्राज्यों की दृष्टि में 'अछूतों' के समान घृणित, मूँघे हुए फूलों के समान मलिन, 'कोबरा बूट पॉलिश' के समान केवल अङ्गरेज़ी बूटों की शोभा, प्राचीन बङ्गालियों के समान भूखा, बैलगाड़ियों के समान 'आउट ऑफ़ फ़ैशन', पशुओं के समान 'सिविलाईजेशन' में सब से पीछे, और जेलख़ाने के क़ैदियों के समान परतन्त्र, गुलाम—उसका नाम था भारतवर्ष ! हिन्दुस्तान !!

उसकी एक जन्मभूमि थी। सड़े हुए फलों के समान दूषित, शुष्क वृक्ष के समान उजाड, 'अरब' के समान बालू-रेता-युत, 'सहारा' के समान शुष्क, जलहीन और जन्म के अन्धे के समान प्रकृति की क्रूरता का शिकार। वह मरुस्थली थी ! उसका नाम था मारवाड !!

उसका एक समाज था। पाप की तरह बदनाम, यहूदियों के समान प्रसिद्ध, कुबेर के समान धनवान, परिश्रम के समान उद्यमी, अमावस्या की रात्रि के समान अन्धकार में लीन, इन्द्र के वज्र के समान रूढ़ि पर अचल और मूर्ख के समान अपने हाथ-पैरों पर कुल्हाडी चलाने वाला। उसका नाम था मारवाड़ी-समाज !

उसका एक व्यापार था। वह चन्द्रमा के समान चमकता था। तारों के समान इठलाता था। सूर्य के समान आँखों को चकाचौंध करता था। 'स्कॉटलैण्ड' के 'ह्वाइट हॉर्स' के समान अपनी ओर आकर्षित करता था। 'मैनचेस्टर' के जुलाहों की नाईं भोले-भालों को लूटना था। नदियों के समान वह चिट्टे-चिट्टे का, काग़ज़ के पुलन्दों का समुद्र उसके लिए जुटाता था। उस व्यापार का नाम था, कपड़े की दूकान !

उसकी एक आदत थी। नरक के समान कुत्सित, श्वपच के समान दुर्गन्धियुक्त, नीम के समान कड़वी, भयङ्कर फोड़े के समान शरीर-नाशक, घासलेटी साहित्य के समान नग्न, सर्वत्र प्रसिद्ध। वह उसे जानता था, फिर भी छोड़ता नहीं था, मोहवश, कामवश। उसका नाम था शराब ! जुआ !! वेश्या-सेवन !!!

वह कमाता था मधुमक्खी के समान, मेहनत करके, मन लगा करके, दोनों हाथ भर। पर ? पर वह लुटाता था, पागल होकर, अन्धा होकर देश के नाम पर दीन-दुखियों के नाम पर, अपनी ग़रीब, भोली स्त्री के नाम पर। उसके पास फूटी कौड़ी भी न थी। वेश्या के लिए, उसको नचाने के लिए, एक बोतल अङ्गरेज़ी शराब के लिए, समाज के नरक, गुण्डों, पण्डों, ढोंगी साधुओं के लिए उसका हृदय उदार था।

उसका नाम था सेठ लक्ष्मीचन्द !

२

वह रूढ़ि के समान बूढ़ी थी, अधेड़ थी। गूलर के वृक्ष के समान निष्फल झुकी हुई थी, कुबड़ी थी। शैतान

की नाईं शैतान थी, अमानुषी थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उपासक के समान ऊपर से मीठी थी, कटुता-रहित थी। 'शुगर कोटेड' कुनैन के समान भीतर से कड़वी थी, विषाक्त थी। सङ्खिया के समान विषैली थी, आफ़त की परकाला थी।

उसका एक ईमान था। दुनिया के प्रत्येक मज़हब से जुदा। दुनिया के प्रत्येक आश्चर्य से अनूठा। दुनिया की प्रत्येक वस्तु से ज़्यादा आवश्यक। दुनिया की प्रत्येक बात से बड़ा। दुनिया के असम्भव शब्द से दूर। प्रत्येक बात को सिद्ध करने वाला। असम्भव को सम्भव कर दिखाने वाला।

वह ईमान गोल-गोल था, 'ब्ल्यू इङ्क' की गोलियों के समान। वह ईमान चिट्टा-चिट्टा था, गोरी चमड़ी वालों के समान। उसका नाम था 'रुपया'!

उसके नाम पर, उसके लिए, वह दुनिया का घृणित से घृणित कार्य कर सकती थी। राक्षस भी जिस काम को न कर सकें, करते हुए डरें, काँपें, उस काम को भी वह उसके लिए, उस ईमान के लिए, कर डालती थी।

दुनिया के भोले-भाले स्वर्ग में एक नरक था, उसके लिए! कीचड़मय, कलुषित, भयङ्कर, डरावना, ख़ौफ़नाक और काला-काला!! वह नरक दुनिया की सफ़ेद चादर पर एक काला दाग़ था!

उसका नाम था कलकत्ता! बीसवीं सदी के ग़ुलाम देश की विधवा राजधानी, कलकत्ता!!

नगर की चक्करदार गलियों में से वह भी एक थी। तङ्ग और बदबूदार, अँधेरी और ऊबड़-खाबड़, पथरीली और सँकरी, पुरानी और मैली, काली और घिनौनी।

दुनिया का नरक, (गुण्डों के शब्दों में स्वर्ग) उसी गली में था। भलेमानसों की निगाह से सुरक्षित था। अपरिचित था। ऊपर से काला था। अन्दर से लाल था—खटमल के ख़ून की तरह।

शहर के गुण्डों, शोहदों, दिलचलों, उजले-पोश बदमाशों और पुलिस के अधिकारियों का वह क्रीड़ा-स्थल था।

वह उस नरक-कुण्ड के एक भाग की मालकिन थी। उसका नाम प्रसिद्ध था, 'बड़ी बी'!

३

"बाबू जी! बाबू जी!!"—वह हिचकिचाई।

"क्यों? क्या है?"—उसने उसे देखा और फिर मुस्कराया।

वह अनिन्द्य सुन्दरी थी। गोरी और सुडौल। मुँह पर, कपोल के नीचे, तिल के बराबर एक तिल था। होठों पर हलकी विषाद की छाया थी। आँखों में न जाने क्या था?

उसके हाथों में लाल-लाल हाथी-दाँत के चूड़े थे। माथे पर सिन्दूर का टीका लगा था। गुलाब-सा गुलाबी घाघरा था। नीले कमल सी नीली चोली थी। उस पर पीली, बसन्ती, ओढ़नी थी, सरसों के फूल-सी।

वह सुन्दरी थी! अत्यन्त सुन्दरी थी!

"बाबू जी! बाबू जी!!"—उसने फिर देखा, आँसू लाकर।

"क्यों? क्या है? बहिन?"—उसने बनावटी नम्र होकर, मीठा होकर, बन कर, कहा और सोचा—"अच्छी चिड़िया है। सोने की है, महँगी है, बेश-क़ीमत है।"

"सेठ× × ×का घर× × ×?"—उसके मुँह से शब्द न निकल सके।

"बहिन!" वह चुपचाप हँसा, एक क्रूर हँसी, मैली और कमीनी—"बहिन तुम× ×की पुत्र-वधू हो?"

"जी हाँ।"—उसने सिकुड़ कर कहा।

"तुम पति के साथ थीं, न? वह रह कहाँ गए? ख़ैर, मैं उनका मित्र हूँ। मेरा नाम दयाशङ्कर है। उन्हीं को लेने तो मैं स्टेशन पर आया था। कहाँ हैं वह?"—उसने व्यग्रता से पूछा।

"वह-वह स्टेशन पर खाना लेने गए थे। गाड़ी चल दी, वह रह गए। मैं उतर भी न सकी।"—वह रोने लगी।

"ओह! ऐसी बात है? अब चिन्ता न करो। ख़ैर हुई, मैं आ गया, ठहरो, तार दिए देता हूँ; फिर तुम्हें घर पहुँचा दूँगा।"—उसके हृदय में हँसी थी, गुदगुदी थी। कहने में सहानुभूति थी।

उसकी आँखों में कृतज्ञता के भाव थे। वह मौन भाषा में कह रही थी—

"मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।"

× × ×

"सामान? आपका सामान?? उतार लिया न???"—उसने पूछा।

"वह सामने है!"—उसने अँगुली उठाई, पतली, कोमल।

"कुली! कुली!!"—उसने पुकारा—"सामान ले चल।"

स्टेशन से बाहर आ उसने पुकारा—बीरू! बीरू!! गाड़ी लाना।

"कहाँ जाना होगा? बाबू जी!"—बीरू ने पूछा, एक तीखा गोपनीय तीर आँख से मार कर।

"सेठ××× के घर।"—उसने मुँह से कहा और आँख मार दी।

४

चमचमाती हुई कलकतिया जूतियों को 'ब्रश' करते हुए, उसने ख़ुशामद के स्वर में कहा—सेठ जी! सेठ जी!!

"क्या है?"—अपनी बेत को झुलाते हुए, एक अँगड़ाई लेकर, कठोर स्वर में, सेठ जी ने पूछा।

जूतों को कपड़े से, सावधानी से, चमकाते हुए, उसने दीन होकर, फिर दोहराया—

"सेठ जी! सेठ जी!!"

"अरे! है क्या? सुअर बकता ही चला जा रहा है। बोल, क्या कहना है?"—सेठ जी बिगड़ उठे, झुँझलाए।

"मेरा इनाम! आपने देने को कहा था जो।"—उसने अन्त में, डरते-डरते, कह ही डाला।

"इसीके लिए इतनी बाते बना रहा था, चापलूसी कर रहा था।" सेठ जी ने नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—"अच्छा! अब समझा।"

"नहीं! नहीं!! सेठ जी!!!"—वह गिड़गिड़ाया।

सेठ जी हँस पड़े।

"ले पकड़!"—उन्होंने कहा और पाँच का एक नोट उसके हाथ पर रख दिया।

वह मन ही मन मुस्कराया। अपनी दृढ़ मुट्ठी में कस कर उसने उसे अण्टी में लगा लिया।

× × ×

"लालू! लालू!!"—सेठ जी ने ठहर कर उसे पुकारा—"इधर, आ!"

"क्या आज्ञा सेठ जी?" जूतों को धीरे से एक कोने में रख, वह सामने आकर खड़ा हो गया।

"लालू!"—सेठ जी ने कहा—"वह तो कुछ रही नहीं।"

"क्या सेठ जी?"—उसने बनते हुए पूछा।

"वही, बाँसतल्ले वाली।"

"हुज़ूर! वह तो कलकत्ते की सबसे पुरानी दूकान है।" उसने चौंकते हुए उस्तादी से कहा—"आज भी सारे शहर में वहाँ के जूते बिकते हैं। 'चमचम बूट हाउस', 'विण्डसर बूट एण्ड शू स्टोर' और 'केपीटल बूट एण्ड शू पैलेस', सभी जगह उसके जूते मिलते हैं। इनकी माँग भी बड़ी है। बड़ी मुश्किल से सरकार एक मिला था, दूसरा था ही नहीं।"

"अरे, गधे! मैं जूतों की बात थोड़े ही पूछता हूँ!!"—बीच में ही बात काट कर सेठ जी ने कहा।

"तो क्या सेठ जी?" भोलेपन से, हृदय में, आँखो में, मुस्कराते हुए, उसने पूछा—"मैंने तो वही समझा था।"

"नहीं रे नहीं! बाँसतल्ले की उस गली की बात। वही पान वाले के सामने की गली।"

"अब समझा!" मुस्कराते हुए लालू ने कहा—"उसी गली की बात? वह भी मशहूर है। वहाँ भी अच्छे-अच्छे माल हैं। झूठ नहीं, सेठ जी, यह आँखें भी पहचानती हैं। एक से एक अच्छा है।"

"तेरा सिर अच्छा है। ख़ाक धरा है वहाँ? किसी काम की नहीं।"—सेठ जी ने नाक सिकोड़ी—"कोई दूसरी जगह तलाश कर, बढ़िया। अब यहाँ से जी उकता गया।"

५

"कितनी दूर और है?"—सेठ जी ने धीरे-धीरे डरते-डरते पूछा।

आगे-आगे लालू था और पीछे-पीछे थे वह।

"वही ! सामने !! इस गली के नुक्कड़ पर जो पीला-पीला मकान दिखाई देता है, उसके सामने। वह सफ़ेद !"—लालू ने उँगली से सङ्केत करते हुए बताया।

कुछ दूर पर वह रुक गया।

"बड़ी बी ! बड़ी बी !!"—उसने धीरे से कुण्डा खड़खड़ाया।

"बड़ी देर से आए। वाह ! वाह !! मैं तो बड़ी देर से आपके इन्तिज़ार में थी। आइए, ऊपर तशरीफ़ लाइए।"—शैतानी बुढ़िया ने आँख मटका कर, लचक कर, कहा।

सेठ जी ने इधर-उधर देखा, चौकन्ने हुए। धीरे-धीरे सीढ़ियों पर पैर रक्खा। चढ़ गए।

× × ×

एक, दो, तीन × × × ग्यारह, बारह। पूरी एक दर्जन थीं वह। पीली, नीली, लाल, गुलाबी, हरी, बसन्ती और गङ्गा-जमुनी।

सेठ जी ने आँखें फाड़ कर, विस्मित होकर, अवाक् होकर तथा निर्लज्ज होकर, उनकी ओर देखा।

देखा, सब सुन्दरी थी, चञ्चल थीं, युवती थी, कोमलाङ्गी थीं, और थीं सजी हुई, बनी हुई, रङ्गी हुई। उफ़् ! ग़ज़ब का रूप इकट्ठा किया था उसने !!

सेठ जी उछल पड़े, मुस्करा दिए।

"कौन सी ??"—बुढ़िया ने मुसकरा कर पूछा, आँखों के इशारे से, उन्हें नचा कर—"आपको कौन सी पसन्द है ?"

"वह !"—नाच कर, प्रसन्न होकर, उछल कर, सेठ जी ने अँगुली उठाई, नीली की ओर।

बुढ़िया ने इशारा किया। वह सुन्दरी-दल हवा हो गया। केवल वह रह गई। सकुची हुई, लजित हुई, गुलाब की पङ्खड़ियों के समान।

"शराब की बोतल"—सेठ ने दस का नोट निकालते हुए कहा—"देखना लालू ! बढ़िया हो !! ज़रा जल्दी लाना !!!"

चार अपनी अण्टी में लगा भोला-भाला लालू ले आया एक बोतल।

"पिलाओ, एक-आध जाम तो पिलाओ।"—उन्होंने उसे गोद में खींचते हुए कहा।

उसने एक 'पैक' बोतल में से उलटा, अदा से, शोख़ी से। सेठ जी के होठों से छुआया, मस्त होकर, निस्सङ्कोच होकर, जबरन लज्जा त्याग कर। आँख मींच कर वह उसे पी गए। समाप्त !

उसने दूसरी बार बोतल उँड़ेली। इठलाती हुई लाई।

"छिः ! छिः !!"—सेठ जी ने कहा, पागल होकर, मस्त होकर—"तुम्हारे होठों से पवित्र हुए बिना इसमें मिठास कहाँ ?"

"लो इसे पवित्र कर दो।" उन्होंने उसके हाथ से 'पैक' छीनते हुए कहा और उसके होठों से छुआ दिया। पवित्र कर लिया।

एक घूँट में पी गए वह उसे। 'दौर में सागिर रहे, गरदिश में पैमाना रहे' का दौर-दौरा शुरू हो गया। वह पागल हो उठे। मतवाले हो, अपने मोटे-मोटे, असुन्दर होठों से उसके पतले-पतले, गुलाबी-गुलाबी होठों को उन्होंने छू दिया।

६

"बाबू जी, उतरिए !"—एक तङ्ग गली के सामने बीरू ने गाड़ी रोक लिया, असबाब उतारने लगा।

वह उतर पड़ी। 'छन-छन' करती हुई वह भी उतर पड़ी, धीरे से।

जेब से चाँदी के दो टुकड़े निकाल कर मुस्कराते हुए 'बाबू जी' ने उसकी मुट्ठी में रख दिए, चुपचाप। अपनी अण्टी में उन्हें लगा, उसने गाड़ी हाँकी, घोड़े को शाबाशी देते हुए, हँसते हुए, प्रसन्न होकर।

"पैदल चल सकोगी ?"—उसने पूछा—"घर सामने है। उस गली में।" और बताया, मूक शब्दों में, लाचारी को कि गाड़ी वहाँ तक जा नहीं सकती।

"चली चलूँगी।"—उसने इशारे से कहा—"आप चिन्ता न कीजिए। पास ही तो है।"

"चाची ! चाची !!"—उसने पुकारा, दोनों हाथों में सामान लिए हुए, उसी शैतानी के दरवाज़े पर पहुँच कर।

"कौन है ! कौन है ??"—अन्दर से बुढ़िया गुर्राई।

"मैं हूँ ! मैं !! बाहर तो आओ, चाची !!"

"कौन है यह ? कहाँ से उड़ा लाया ??"—उसने अपनी आँख नचा कर पूछा।

"तुम्हें इससे क्या मतलब ? होगी कोई ! माल देखो, खरा है, एकदम पक्का सोना। बस !" उसने उसी प्रकार उसे फटकार बताई, आँखों में, इशारों में, भृकुटी में।

बुढ़िया चुप हो गई। युवती की तरफ़ मुड़ कर उसने कहा—आओ बेटी ! ऊपर चलो !!

बुढ़िया को देख वह चौंकी, घबड़ाई।

"मेरी सास ? वह तो यह नहीं हैं। ससुराल तो पहली ही बार आई हूँ। पर सास को कई बेर देख चुकी हूँ, यह वह नहीं हैं। कैसे मुसलमानी ढङ्ग के कपड़े हैं इसके ?"—उसने सोचा। उसे सन्देह हुआ।

"विश्वासघाती ! नर-पिशाच !!"—वह लाल हो गई। उस राक्षस की ओर उसने रोष से देखा, वह रो पड़ी।

वह हँसा, क्रूर हँसी। "इतनी नज़ाकत न दिखाओ। यहाँ शरम का कुछ काम नहीं।"—उसने कहा।

"दूर हट ! यहाँ से दूर हो जा।"—उसने आँखों में आग उछालते हुए कहा—"पापी ! दुरात्मा !! नीच !!!"

"सीधी तरह ऊपर चली चलो।"—उसने कहा, आज्ञा भरे स्वर में—"यहाँ से बच कर निकल जाना बड़ा कठिन है।"

वह अपनी जगह से न हिली। उसके दोनों हाथों को ज़बरदस्ती पकड़, उसने उसे गोद में उठा लिया, ऊपर ले चला। वह छटपटाती रही।

"ऊधर बैठ जाओ, चुपचाप। यहाँ तेज़ी से काम न चलेगा।"—बुढ़िया ने ऊपर पहुँच कर डाँटा। कहा—"हमने तुम्हारी सरीखी बहुत देखी हैं। रात-दिन का यही काम है। न मानोगी तो कोठरी में क़ैद कर दी जाओगी।"

७

खूसट, शैतान, आफ़त की परकाला, बुढ़िया ने शैतानी से हाथ नवा कर बताया—

"ताज़ा फूल है वह ! कोरा है, एकदम !! अछूता है !!! दुनिया की नज़र अभी उस पर, उसकी रूप-राशि पर पड़ी नहीं है। पागल हो जाओगे, राजा, पागल !! उसकी सुन्दरता को, मीठेपन को देख कर।"

"सचमुच ?"—सेठ जी ने अपना रुई के समान पिलपिला मुँह फाड़ा।

"मानो भी, एतबार करो मेरी बात का।"—बुढ़िया ने अपने पोले-पोले मुँह से मटक कर कहा—"पागल हो जाओगे, सच कहती हूँ।"

"कहाँ ? कहाँ है वह ??"—सेठ जी की आँखें घूमीं, इधर-उधर, आगे-पीछे, चारों ओर। उत्सुकतापूर्वक, विस्मय के साथ, खोजने के लिए।

"मगर है वह बड़ी शैतान ! अभी तक ढङ्ग पर आई नहीं। हिन्दुओं के ढोंग, कवियों के काल्पनिक स्वर्ग, तथा पति की इज़्ज़त करती है, वह। उस बूढ़े शैतान से, ख़ुदा से, डरती है।"—बुढ़िया ने दाँत किटकिटा कर कहा।

"ऐसा ?"—सेठ जी ने आँखें फाड़ते हुए कहा—"ऐसा ?? देखूँ तो सही, कैसी है वह ???"

"वहाँ, उसमें !"—बुढ़िया ने सङ्केत किया, कोठरी की ओर—"उसी कोठरी में क़ैद है वह, कल से। भूखी है ! खाना देने गई थी, पर उसने खाया नहीं, पड़ा है उसी तरह। उससे मुझे डर लगता है। भाग न जावे, इसीलिए ताला लगा दिया है कोठरी में। देखोगे ? कुञ्जी मेरे पास है।"

"लाओ !"—सेठ जी ने उछलते हृदय से कहा—"लाओ देखूँ।"

सेठ जी ने ताली ले कुण्डा खोल डाला, काँपते हृदय से, थरथराते हुए और नाच कर, उछल कर, मतवाला होकर, उसको, उसकी स्वर्गीय सुन्दरता को, मिठास को, भोलेपन को।

"इतना रूप, इतना सौन्दर्य, इतना भोलापन, मेरे लिए। वाह ! वाह !!"—उन्होंने सोचा अधीर होकर।

"बेचती हो इसे ? इस रूप-राशि को ?"—किवाड़ बन्द कर उन्होंने ललचाते हुए, ख़ुशामद भरे नेत्रों से बुढ़िया की ओर ताक कर पूछा—"बोलो, क्या लोगी ?"

"दस हज़ार !" बुढ़िया ने हाथ फैलाते हुए कहा—"दस हज़ार !!"

"ओह ! इतना ? यह बहुत है।"

"पर तुम जानते हो कि यह है कौन ? (कान में) समझे ? इतना तो इसकी मुँह-दिखाई लगती है।"

"ओह ! क्या सचमुच यह × × × ?"

"और क्या ? मैं झूठ थोड़े ही कह रही हूँ ?"

८

बुढ़िया ने उछालते हुए, ठनकाते हुए, छनछनाते हुए, गिने पूरे दस हज़ार थे वह, चिट्टे-चिट्टे, सुन्दर-सुन्दर। अपने देवता के प्रसन्न होने पर जैसे भक्त इठला पड़ता है, मुस्कराता है, वैसे ही वह मुस्कराने लगी।

अधीर होकर, अनिच्छापूर्वक, लड़-झगड़ कर, उसने लालू को प्रसन्न किया, मनाया, चार सौ पचपन लुटा कर।

× × ×

उस अनुपम रूप-राशि का नाम था × × ×।

उसकी करुण-कथा का, निर्दय जीवन का, अन्तिम भाग 'चाँद' मे इस प्रकार लिखा था, उसके ही शब्दों में :—

"मैं भ्रष्ट हो गई। पर स्वयं नहीं, अनिच्छापूर्वक, पुरुष-जाति के उस दारुण बल द्वारा। सेठ जी ने मुझे भ्रष्ट कर दिया। 'बलात्कार' की छाप अब भी मेरे मुँह पर है।

"बड़ी कठिनता से मैं वहाँ से निकल भागी। परिश्रम करने के बाद मैंने उसका, अपने कायर पति का, घर ढूँढ़ा। मुझे देखते ही उसकी त्योरी चढ़ गई। वीरता हृदय में मँडराने लगी, गूँज उठी।

"डरते-डरते मैंने उसे अपनी घटना सुनाई। बदला लेने को नीच सेठ से, पापी से, प्रार्थना की। पर? पर उसने मेरी बात भी न सुनी, बोला :—

"तू स्वयं पतित थी। नहीं तो उसकी क्या मजाल जो कुछ कर सकता? यह त्रिया-चरित्र किसी दूसरे को दिखाना। जा, मेरे घर से अपना मुँह काला कर। निकल।

"मेरी आँखों में आँसू आ गए। पर कुछ बोली नहीं। चुपचाप हताश होकर उसके दरवाज़े पर से लौट आई।

"आग? बदले की आग, अब भी मेरे दिल में है। बदला उससे, जिसने मुझे भ्रष्ट किया है, जिसने मेरे सतीत्व को लूट लिया है, उससे बदला! बदला!! बदला!!!

"क्या कोई माई का लाल है? क्या कोई सच्चा पुरुष है, जो अपनी बहिन पर किए गए अत्याचारों का बदला उस दुष्ट से ले सके? आज इस विशाल विश्व के अनन्त मनुष्यों को भाई बना कर मैं उनके हाथ में राखी बाँध रही हूँ। देखें! कौन इसे सफल बनाता है?"

घनश्याम ने उसकी जीवनी को पढ़ा, एक बार, दो बार, इच्छापूर्वक, कौतूहलवश, जोश खाकर, लाल होकर। उसने मन ही मन उबलते हुए कहा—

"× × × बहिन! मैं तेरे अपमान का, नीचता-पूर्ण कार्य का, बदला लूँगा, उससे, नीच से, पापी से, कलङ्की से।"

और उसकी करुण-कथा ने, प्रार्थना ने, स्त्रियों के आदर्श ने, बहिन की लाज ने, उसे दण्ड देने की ओर झुका दिया। उसने लाल-लाल मुँह कर, आग बरसाते हुए, सोचा—

"पापी! पुरुष-जाति, तू इस प्रकार बिना दण्ड पाए स्त्रियों पर अत्याचार करना न छोड़ेगी। बहिन, तेरा अपमान पुरुष-जाति की नीचता की पराकाष्ठा का उदाहरण है। आज मैं उस पापी को, पुरुष-जाति के कलङ्क को, दुनिया के एक काले दाग़ को मिटा दूँगा।

"पापी को प्राण-दण्ड देना हिंसा नहीं। जब तक-क़ानून अपूर्ण हैं, हमारा पौरुष असहाय बहिनों के मान की, लाज की, रक्षा करेगा।"

× × ×

ख़ून! ख़ून!! ख़ून!!!

कोई चिल्लाया, चीख़ कर, उच्च स्वर में—गली में ख़ून हो गया।

"किस का?"—किसी ने पूछा।

"सेठ लखमीचन्द का।"

सेठ जी के घर के चारों ओर भीड़ थी। पुलिस वाले बैठे थे, एक नवयुवक को घेर कर।

वह सुन्दर था। भोला था। शान्त था। बदन पर ख़ून के दाग़ थे। कुछ कपड़ों पर बिखरे हुए थे, कुछ मुँह पर। हाथ में एक भुजाली थी। इतनी भयङ्कर परिस्थिति होते हुए भी वह निर्दोष दीख पड़ता था, वह सबके बीच निर्भय खड़ा था।

हँसती हुई उज्ज्वल जवानी थी उसके सामने। भोला-भाला, निर्दोष, उज्ज्वल संसार था, सुखों से भरा हुआ। मीठी-मीठी वस्तुएँ थीं, उसे लुभाने के

लिए। वह शान्त था। लोग भय-आश्चर्य से उसे देख रहे थे। वह धीमा-धीमा मुस्करा रहा था।

९

मैजिस्ट्रेट ने पूछा—तुम्हारा नाम ?

"घनश्याम !"

"जाति ?"

"मनुष्य !"

"मनुष्य ?"

"मनुष्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।"—उसने उत्तर दिया।

"तुमने इसका ख़ून किया है ?"

"हाँ !"

"क्यों ?"

"क्यों ? क्योंकि वह गिरा हुआ था, मनुष्यता से, सभ्यता से उसने बदनाम किया था, काला कर डाला था, पुरुष-जाति के नाम को। क्योंकि उसने नष्ट कर डाला था एक फूल। क्योंकि उसने अपमान किया था एक अबला का। जिसका भार हमने और तुमने अपने कन्धों पर लिया है। जो हमारी, तुम्हारी और सारे जगत की आदरणीया हैं, माँ हैं, वन्दनीया हैं, पूज्या हैं।"

"इसी भुजाली से"—उसने मेज पर रक्खी हुई वह भुजाली दिखाते हुए, भयङ्कर शब्दों मे क़त्ल का वर्णन करते हुए, कहा—"इसी भुजाली से मैंने उसका ख़ून किया। उस कलङ्क को दूर किया। ठीक उसी भाव को लेकर, जिसे लेकर आप उसे फाँसी का दण्ड देते—यदि क़ानून सम्पूर्ण होता।"

"तुम्हें कुछ और कहना है ?"

"मेरा विश्वास है"—उसने कहा—"कि मैं निर्दोष हूँ। मैंने सेठ लक्ष्मीचन्द का ख़ून किया है, किन्तु फिर भी मैं निर्दोष हूँ। अगर बहिन की रक्षा करना दोष है, अगर दुनिया से शैतानियत मिटाना दोष है, अगर पापियों के पापाचार को न देख सकना दोष है, तो मैं दोषी हूँ, अवश्य दोषी हूँ। उसके दण्ड के लिए मैं तैयार हूँ।" उसे दस बरस की क़ैद का हुक्म हुआ।

उसके चेहरे से साहस और त्याग की ज्योति टपक रही थी, अभूत और अद्भुत। वह मुस्करा रहा था।

दर्शकगण मुग्ध थे उसकी आदर्शवादिता पर। देख रहे थे उसकी ओर आदरपूर्वक, गर्वपूर्ण नेत्रों से।

क्यों !

[श्री० 'कृष्ण']

माँ, मैंने देखा छविवान,
खोज रहा था वह नभ-वन मे
छिपने का स्थान।
न जानें क्यों था आज मलीन,
दिखाई देता ज्योति-विहीन ॥ १ ॥

ऊषा की मञ्जुल मुसुकान
जिसमें छलक रहा था उसका
क्षणभङ्गुर अभिमान ;
बुझ चुके थे तारों के दीप,
ढुलकते हिम सीकर बन सीप ॥ २ ॥

कैरव का निष्ठुर सङ्कोच
छीन रहा था शशि के मुख से
सुधा विसिञ्चित हास ;
विहग-कुल-कलरव निर्दय व्यङ्ग
कर रहा छवि-विहीन प्रत्यङ्ग ॥ ३ ॥

लेकर वह अपना दुख-शोच
खोज रहा था सूनी कुटिया
कर एकान्त निवास ;
नियति का यह अकरुण व्यवहार
छिपा कर रख ले निज उद्गार ॥ ४ ॥

भारतीय आचार-नीति

[श्री० चन्द्रराज जी भण्डारी, विशारद]

मनुष्य ने जब से संसार में सामाजिक जीवन के अन्तर्गत क़दम बढ़ाया है, जब से उसने सामूहिक रूप मे रहने की पद्धति को अङ्गीकार किया है, या यों कहिए कि जब से उसके हृदय में सभ्यता का बीजारोपण हुआ है, तभी से उसकी आचार-नीति का इतिहास प्रारम्भ होता है। एक ओर तो मनुष्य ने अपनी स्वाभाविक सामाजिक प्रवृत्ति के वशवर्त्ती होकर सामूहिक रूप मे रहने की पद्धति का आविष्कार किया, लेकिन इसके साथ ही दूसरी ओर उसकी निरङ्कुश स्वार्थी प्रवृत्ति (The Might is Right) ने उसके सामूहिक जीवन में व्याघात डालना प्रारम्भ किया। इसी अशान्ति तथा व्याघात को मिटा कर अपने सामूहिक जीवन में शान्ति का प्रादुर्भाव करने के लिए, तत्कालीन मनुष्यों ने कुछ ऐसे नियम, कुछ ऐसे कायदे बनाए, जिनके अनुसार चलने से वे शान्तिपूर्वक एक-दूसरे के साथ रह सकते थे। इन्ही साधारण नियमों में, इन्ही क़ायदों मे, आचार-नीति का सूक्ष्म बीज छिपा हुआ था, जिनमें से आगे जाकर आचार-नीति का सुव्यवस्थित और सुन्दर पौधा उत्पन्न हुआ, और जिसकी भिन्न-भिन्न डालियाँ समाज-नीति, राजनीति, धर्मनीति, अर्थनीति इत्यादि के रूप मे प्रस्फुटित हुई। इस प्रकार यों कहा जा सकता है कि जितने भी प्रकार की नीतियाँ हैं, वे सब आचार-नीति के पौधे में से ही उत्पन्न हुई हैं। आचार-नीति उन सबकी जननी है।

संसार के सभी देशों में—मनुष्य-समाज के सभी अङ्गों में आचार-नीति का इतिहास इसी प्रकार प्रारम्भ होता है। मगर देश-काल और परिस्थिति की भिन्नता से—आबोहवा की तफ़ावत से—इस प्रकार के नियमों में कुछ सैद्धान्तिक और कुछ व्यावहारिक भिन्नता अवश्य हो जाती है। जिस प्रकार एक ही पौधे का बीज भिन्न-भिन्न प्रकार की ज़मीनों में पड कर, आकार-प्रकार या ज़ायके में भिन्न प्रकार के फल प्रदान करता है, उसी प्रकार एक ही सिद्धान्त भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों के साथ मिल कर अनेक रूपों में प्रतिफलित होता है।

यही कारण है कि एक ही मूल कारण से उत्पन्न होने पर भी भिन्न-भिन्न देशों की आचार-नीति के आदर्श, कई बातों में एक-दूसरे से भिन्न दृष्टिगोचर होते है। कई आदर्श तो ऐसे हैं, जिनमे परस्पर भयङ्कर विरोध भी दृष्टिगोचर होता है। पर यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

विज्ञान की उत्पत्ति के पूर्व, जब कि मनुष्य का ज्ञान इतना विस्तीर्ण और व्यापक नही था, जब कि मनुष्य को यह भी मालूम नहीं था कि उसके समाज और उसके राष्ट्र के अतिरिक्त भी संसार मे दूसरी जातियाँ और दूसरे राष्ट्र विद्यमान हैं और उनके अन्तर्गत भी सभ्यता और आचार-नीति के सिद्धान्त विद्यमान हैं, तब तक मनुष्य के अन्तर्गत सभ्यता व आचार-नीति के एकीकरण के सिद्धान्त की कल्पना का भी उदय नहीं हुआ था। उस समय वह अपने ही समाज और अपने ही देश में सभ्यता के सर्वोत्तम रूप की कल्पना करने मे तल्लीन था। कहने को "वसुधैव कुटुम्बकम्" और "यूनिवर्सल ब्रदरहुड" के शब्द उस समय के साहित्य में भी पाए जाते है, पर वह "वसुधा" कितनी विशाल और कितने भिन्न-भिन्न रङ्गों की है, तथा उस "यूनिवर्सल" शब्द की एरिया कितनी व्यापक है, इसका पूरा-पूरा ज्ञान मनुष्य को नहीं था। इसलिए मनुष्य की इस प्रकार की भावनाएँ केवल उसकी कल्पना तक ही परिमित रहीं, उनका व्यावहारिक उपयोग कुछ भी न हो सका।

मगर विज्ञान के सूर्योदय ने मनुष्य के ज्ञान के कपाटों को खोल दिया। विज्ञान के इस दिव्य आलोक

में उसने देख लिया कि संसार में भिन्न प्रकार की अनेक जातियाँ, अनेक देश और अनेक सभ्यताएँ हैं, जो तत्त्वतः एक समान होने पर भी देश, काल और परिस्थिति के भेद से अनेक भागों में बँट गई हैं। जिससे मनुष्य और मनुष्य के बीच भेद-भाव की प्रचण्ड दीवार खड़ी हो गई है, जिसमें उसकी आचार-नीति, राजनीति, धर्मनीति व समाज-नीति में या यों कहिए कि उसकी सभ्यता के सारे स्वरूप में एक अशान्ति-कारक भिन्नता उत्पन्न हो गई है और जब तक यह भिन्नता नष्ट न होगी और जब तक ऐसी सभ्यता या ऐसी आचार-नीति का आविष्कार न होगा, जो देश-काल की भिन्नता पर कण्ट्रोल करके सारी मानव-जाति को सभ्यता के एक व्यापक सिद्धान्त पर आरूढ़ न कर दे, तब तक मानव-जाति में स्थायी शान्ति का प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।

मतलब यह कि विकास-क्रम के सिद्धान्तानुसार आचार-नीति के सिद्धान्त में भी बहुत ज़बर्दस्त विकास हुआ है। सबसे पहले व्यक्ति ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की तृप्ति के लिए इन प्रकार के सिद्धान्त बनाए, उसके पश्चात् जब उसके जातीय जीवन का प्रारम्भ हुआ तब व्यक्तिगत स्वार्थों को जातीय स्वार्थों में सम्मिलित कर, उसने अपने जातीय जीवन में शान्ति स्थापित करने के लिए इन सिद्धान्तों को विकसित किया, मगर मनुष्य एक स्थान पर ठहरने वाला प्राणी नहीं है, समय पाकर उसका जातीय जीवन, राष्ट्रीयता के रूप में विकसित हुआ, और आज उसकी आचार-नीति के सिद्धान्त जातीय जीवन की क्षुद्र सीमा से निकल कर राष्ट्रीयता के विस्तृत सिद्धान्त पर आरूढ़ हो गए हैं। इस समय संसार की आचार-नीति के सिद्धान्त राष्ट्रीयता का पोषण कर रहे हैं। मगर क्या मनुष्य को इससे सन्तोष हो जायगा, क्या राष्ट्रीयता ही मानव-जाति का अन्तिम लक्ष्य सिद्ध होगी? आज का ज़माना इसके लिए चाहे जो कहे, मगर मनुष्य का प्रकाशमान भविष्य साफ़ कह रहा है कि नहीं। मानवीय विकास का अन्त राष्ट्रीयता में ही नहीं है। जिस प्रकार आज राष्ट्रीयता के सम्मुख जातीयता क्षुद्र दिखलाई देती है, उसी प्रकार आने वाले कल में, अखिल मानवीयता के सम्मुख यह राष्ट्रीयता भी तुच्छ और क्षुद्र दिखलाई देगी। भविष्य में मनुष्य-जाति की आचार-नीति के सिद्धान्त व्यक्तित्व, जातीयता और राष्ट्रीयता की कसौटी पर नहीं कसे जाएँगे। प्रत्युत अखिल मानवीयता की सुन्दर कसौटी पर जाँच कर उनका निर्माण किया जावेगा।

आचार-नीति के इस प्रकार के व्यापक सिद्धान्तों की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए संसार के दूरदर्शी मनोवैज्ञानिक अभी से ही संलग्न हैं। संसार के भिन्न-भिन्न देश अपनी-अपनी आचार-नीति को देख कर उसमें योग्य और परिस्थिति के अनुकूल सुधार करने में लगे हुए हैं। और अपनी-अपनी आचार-नीति को ऐसी बनाने में प्रयत्नशील है कि भविष्य में यदि कभी संसार की तमाम आचार-नीतियों का एकीकरण हो, तो उन्हें किसी दिक़्क़त का सामना न करना पड़े।

ऐसी स्थिति में हम लोगों का भी कर्तव्य है कि हम अपने देश में प्रचलित आचार-नीति का भी सिंहावलोकन करें और यदि उसमें उपयुक्त सुधारों की आवश्यकता हो तो उनके करने में प्रयत्नशील हों।

इतिहास को देखने से पता लगता है कि भारतीय आचार-नीति का इतिहास संसार की सभी आचार-नीतियों से अधिक पुराना है। अतीव प्रचीन काल से—जबकि संसार के दूसरे देशों की सभ्यता बीज-रूप में ही थी—भारतीय तत्वज्ञानियों ने आचार-नीति का वैज्ञानिक विवेचन अपने ग्रन्थों में किया है। वे जानते थे कि बिना आचार-नीति की नींव मज़बूत हुए किसी भी सभ्यता की दीवार चिरस्थायी नहीं हो सकती और यही कारण था कि उन्होंने आचार-नीति का एक सुव्यवस्थित लक्ष्य स्थिर करने के लिए अनेकों विधान और शास्त्रों की रचना कर डाली। उनका ध्येय ऊँचा था। वे ऐसी आचार-नीति का आविष्कार करना चाहते थे, जो धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से ग्राह्य हो। इसके लिए उन्होंने प्रयत्न भी काफ़ी किया।

मगर यह कहना ही पड़ेगा कि परिस्थिति की प्रतिकूलता से कहिए या और किसी कारण से, उन्हें अपने ध्येय में सफलता नहीं मिली। इसका प्रधान कारण यही था कि इतनी महान नीति की व्यवस्था देते समय भी वे अपने व्यक्तिगत और जातीय स्वार्थों की उपेक्षा नहीं कर सके। फल यह हुआ कि इस निर्धारित आचार-नीति का ध्येय मनुष्यत्व की कसौटी पर खरा नहीं उतर

सका। और कुछ ही समय के पश्चात् इस नीति की वजह से समाज में शान्ति के बजाय अशान्ति के घनघोर बादल छा गए। जिसकी वजह से बहुत ही निकट-भविष्य में सारा देश राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक ग़ुलामी के दलदल में फँस गया।

इस आचार-नीति के विधान में जो सबसे भयङ्कर कमज़ोरी थी, वह यह कि इसके नियम भिन्न-भिन्न वर्णों पर भिन्न-भिन्न रूप में लागू होते थे। यह बात इतिहास से प्रमाणित है कि आचार-नीति के इन विधायकों में बहुमत ब्राह्मण विद्वानों का था, क्योंकि उस समय समाज-सभा और राज-सभा में इसी वर्ग की प्रधानता थी। इसी प्रकार यह सत्य भी नहीं छिपाया जा सकता कि ये विधायक प्रायः सभी पुरुष थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन विद्वानों की विद्वत्ता बहुत उच्च कोटि की थी; मगर इसके साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि इन विधानों की रचना करते समय ये लोग अपने जातीय स्वार्थ और जातीय अभिमान की उपेक्षा नहीं कर सके। क्या ही अच्छा होता यदि ये लोग जिस प्रकार व्यक्तित्व से ऊपर उठ कर जातीयता की सीमा तक पहुँच गए थे, उसी प्रकार जातीयता से भी कुछ ऊपर उठते और मानवीयता की उस सीमा पर पहुँच जाते, जहाँ से मनुष्य-मात्र समान दिखाई पड़ते हैं। यदि ऐसा हो जाता तो उनके द्वारा जिस सभ्यता या जिस आचार-नीति का जन्म होता, वह सारे मानव-समाज को सङ्गठित और आलोकित कर देती, और भारतवर्ष को वह दुर्दिन न देखना पड़ता, जो उसे आज दिखाई दे रहा है।

इस आचार-नीति के विधान की व्यवस्था देने में उन्होंने ब्राह्मण जाति के स्वार्थों का इतना अधिक ख़्याल रक्खा कि जो अनौचित्य की सीमा को भी पार कर भयङ्करता की सीमा में जा पहुँचा। सारे समाज में ब्राह्मणों का प्राधान्य रक्खा गया और बाकी तीन वर्णों को उनके आज्ञानुवर्त्ती होने का आदेश किया गया। कहने को राजदण्ड क्षत्रियों के हाथ में था, मगर उसका परिचालन ब्राह्मणों के द्वारा होता था। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार इस समय देशी रियासतों का राजदण्ड तो देशी राजाओं के हाथ में है, मगर उसका परिचालन ब्रिटिश क़ानून के अनुसार होता है, इसी प्रकार आचार-नीति के जो नियम निर्दिष्ट किए गए, उन नियमों को तोड़ने की सज़ा भी ब्राह्मण वर्ण के लिए और, तथा दूसरे वर्णों के लिए और रक्खी गई। एक ही अपराध के अन्तर्गत जहाँ शूद्र को मृत्यु-दण्ड तक दिया जा सकता था, वहाँ ब्राह्मण थोड़ा-बहुत जुर्माना देकर ही छूट सकता था। और ब्रह्म-हत्या तो प्रत्येक परिस्थिति में निन्दनीय ठहराई गई।

विधायकों के द्वारा बनाई हुई ग़ुलामी की इस चक्की में—अत्याचार की इस धधकती हुई भट्टी में—जो लोग पीसे गए, उनमें यहाँ का स्त्री-समाज और शूद्र-समाज मुख्य हैं। इन दोनों जातियों के साथ भारतीय समाज ने चरित्र, सदाचार और आचार-नीति के पवित्र नाम पर जो दारुण अत्याचार किए, वे आज भी इतिहास के पृष्ठों पर अपनी अनन्त कालिमा के साथ अङ्कित हैं। वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञ तथा शास्त्र-विधायक, परम पुनीत निस्वार्थ ब्राह्मणों के द्वारा, इन दोनों जातियों के पैरों में ग़ुलामी की जो भयङ्कर ज़ञ्जीरें डाली गईं, वे कई सहस्राब्दियाँ बीतने पर भी आज तक तोड़ी न जा सकीं।

शूद्र-समाज—शूद्र जाति के लिए भारतीय आचार-नीति में कहा गया है कि शूद्रों का प्रधान धर्म ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, इन तीनों वर्णों की सेवा करना है। ये तीनों वर्ण जो आज्ञा करें उन्हीं का पालन करना इनका परम धर्म ठहराया गया। इसके सिवा वेदों का पठन-पाठन, ज्ञान-सम्पादन, तपस्या, व्रत, उपवास, यम, नियम, व्यवसाय, वाणिज्य इत्यादि सब कर्म इनके लिए वर्ज्य ठहराए गए। जो शूद्र अपने इस परम ग़ुलामीमय वर्ण-धर्म को छोड़ कर पठन-पाठन, तपस्या, स्वाध्याय इत्यादि करता हुआ पाया जाय, उसके लिए मृत्यु-दण्ड तक की व्यवस्था दी गई। इसी व्यवस्था के अनुसार परम तपस्वी, परम निर्लेप, अत्यन्त शुद्ध-हृदय, सांसारिक वासनाओं से बिलकुल उदासीन शूद्रक का गला केवल इसलिए काट डाला गया कि वे बस्ती से बहुत दूर जङ्गल में जाकर अपने आत्मचिन्तन में लगे हुए थे। जिस काल में यह घटना हुई, वह परम प्रसिद्ध राम-राज्य का काल था और जिनके हाथों से यह घटना हुई, वे स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र थे। इसी प्रकार वीर-शिरोमणि एकलव्य का अँगूठा गुरु द्रोण ने केवल इसलिए कटवा डाला था कि वह एक शूद्र था और उसने एकान्त में

अनवरत साधना से ऐसी शस्त्र-विद्या सीख ली थी कि जो द्रोणाचार्य के परम प्रिय शिष्य अर्जुन को भी दुर्लभ थी। जिस काल की यह घटना है, वह परम प्रसिद्ध महाभारत-काल था और जिनके हाथों यह घटना हुई वे द्रोणाचार्य थे, जिन्होंने स्वयं ब्राह्मण-धर्म को छोड़ कर क्षत्रिय-धर्म का ग्रहण किया था और इतना करने पर भी जो समाज में उतने उन्नत मस्तक के साथ स्थित थे। इससे पता चलता है कि उस समय की आचार-नीति में अपने वर्ण-धर्म से एक सीढ़ी ऊपर चढ़ना पाप माना जाता था, नीचे उतरना नहीं। उस समय पतन पाप नहीं था, विकास पाप था। कितनी अद्भुत व्यवस्था है।

स्त्री-समाज—स्त्री-समाज के लिए भारतीय आचार-नीति में पातिव्रत्य ही सर्वोत्कृष्ट धर्म ठहराया गया है। जिसकी व्यवस्था के अनुसार पति चाहे कैसा ही काना, खोड़ा, लँगड़ा, नपुसक, दुराचारी, दुर्व्यसनी, शराबी, कबाबी, पर-स्त्री-रत हो, स्त्री का कर्तव्य है कि वह उसे ईश्वर तुल्य समझे। वह उसकी उचित या अनुचित आज्ञाओं को बिना किसी बहस-मुबाहिसे के स्वीकार करे। जो स्त्री पति को ही जप, तप, यम, नियम, वेद, शास्त्र या ईश्वर समझती है, जो उसके जीते जी उसकी आज्ञा को मानने के लिए चौबीसों घण्टे प्रस्तुत रहती है, और उसके मरने पर जीवन के सब सुख, अच्छा खाना, पहनना, आमोद-प्रमोद, राग-रङ्ग, छोड़ कर, उसकी स्मृति में मोहर्रमी सूरत बनाए हुए, ज़िन्दगी के शेष दिनों को पूर्ण कर देती है, वह अनन्त स्वर्ग की अधिकारिणी होती है। इसके ख़िलाफ़ जो स्त्री, पति की इच्छा के विरुद्ध अपनी स्वतन्त्र इच्छाएँ या अस्तित्व रखती है, जो उसके साथ शङ्का-समाधान करती है, जो पति के खाने के पहले खा लेती है, तथा उसकी काम-वासना की तृप्त करने के पूर्व ही सो जाती है, वह अनन्त नरक की अधिकारिणी होती है। कहना नहीं होगा कि जिस प्रकार भारतीय आचार-नीति में शूद्रों के लिए वेदपाठ मना है, उसी प्रकार स्त्री-समाज भी इस अधिकार से वञ्चित रक्खा गया है। और दोनों को वञ्चित रखने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि ज्ञान-सम्पादन करके कहीं ये अपनी ग़ुलामी के ख़िलाफ़ आवाज़ न उठाने लग जायँ।

हमारे देश के कई मनोनीत विद्वान, कई समाज-शास्त्री आज भी इस पातिव्रत्य और वैधव्य-धर्म की महिमा का बड़े गौरव के साथ एहलान करते हैं और दूसरे देशों के साथ उसकी तुलना कर अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनते हैं। पर वास्तव मे देखा जाय तो यह पातिव्रत्य या यह वैधव्य स्त्री-जाति के लिए उस अमर ग़ुलामी की सनद है, जो स्वार्थी पुरुषों ने अपनी स्वार्थ-लिप्सा और अपनी वासना-पूर्त्ति के मार्ग को निष्कण्टक बनाए रखने के लिए स्त्री-जाति के पैरों मे अनन्त काल के लिए डाल दी है और जिसकी मज़बूती के लिए उस पर शास्त्र और धर्म की सील लगा दी है।

हम इस बात को ज़रूर मानते हैं कि पातिव्रत्य और वैधव्य की यही व्यवस्था यदि किसी स्वार्थ-बुद्धि से प्रेरित होकर नहीं, प्रत्युत न्याय-बुद्धि से प्रेरित होकर केवल व्यक्तिगत और सामाजिक सदाचार को मद्देनज़र रख कर दी जाती, यदि इसके साथ ही पुरुषों के लिए भी पातिव्रत्य-धर्म ही की तरह कठोर पत्नीव्रत-धर्म की और वैधव्य ही की तरह दृढ़ विधुरत्व की व्यवस्था दी जाती, तो उस हालत में इस पातिव्रत्य-धर्म को नैतिक समर्थन भी मिलता और वह मानवीय न्याय की कसौटी पर खरा भी उतरता। मगर पुरुषों की स्वार्थ-बुद्धि ने ऐसा नहीं होने दिया। उन्होंने इस प्रकार के कठोर नैतिक नियम में पुरुषों को फँसा देने में कोई भलाई नहीं सोची। उन्होंने समझ लिया कि इस प्रकार की व्यवस्था से पुरुषों के पैरों में भी हमेशा के लिए नियम की बेड़ियाँ पड़ जायँगी, जोकि उन्हे किसी भी हालत मे मञ्ज़ूर नही था। वे पुरुषो का स्वतन्त्र अस्तित्व रखना चाहते थे, मगर स्त्रियों का भी स्वतन्त्र अस्तित्व हो सकता है, यह कल्पना भी उनके दिमाग़ मे शायद नहीं थी। यही कारण था कि पुरुष के लिए उन्होंने एक पत्नीव्रत का कोई महत्व नहीं रक्खा। उनकी व्यवस्था के अनुसार एक स्त्री के मर जाने पर, पुंश्चली निकल जाने पर, सन्तानहीन रह जाने पर, पुरुष दूसरी स्त्री के साथ विवाह कर सकता है। इतना ही नहीं, स्त्री में यदि कोई ऐब न भी हो, यदि वह सब तरह से पत्नी-धर्म के अनुकूल भी हो, तो भी यदि पुरुष सौन्दर्य-लिप्सा, अधिकार-लिप्सा या काम-लिप्सा से प्रेरित होकर और स्त्रियाँ करना चाहे तो एक, दस, सौ या हज़ार स्त्रियाँ भी वह कर ले

तो किसी प्रकार के नैतिक पाप का भागी नहीं हो सकता। व्यवस्था की कैसी विडम्बना है? न्याय-शीलता की कैसी दुर्गति है? भारतीय व्यवस्थापकों की न्याय-बुद्धि इसके सम्मुख क्या सफ़ाई पेश कर सकती है?

इस कठोर पक्षपात का, इस भयङ्कर भेद-नीति का, इस जटिल नैतिकता का परिणाम यह हुआ कि ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया, त्यों-त्यों यहाँ का शूद्र-समाज और यहाँ का स्त्री-समाज दिन प्रति-दिन कमज़ोर, जड और निस्तेज होते गए। शूद्र-समाज पर अछूतत्व और स्त्री-समाज पर वैधव्य की भयङ्कर गाज गिर पड़ी। उच्च जातियों मे थोडे-थोड़े भेद पर अनेक उपजातियों की सृष्टि होने लगी, और बढ़ते-बढ़ते वह हज़ारों तक पहुँच गई। फल-स्वरूप यहाँ की सामाजिक और राजकीय शक्ति दिन-प्रतिदिन क्षीण होती गई। और जिस प्रकार मनुष्य-शरीर की जीवनी-शक्ति क्षीण होने पर वह बाहरी कीटाणुओं को अपने अन्दर घुसने और बढ़ने का अवसर देता है, उसी प्रकार यहाँ की सामाजिक क्षीणता ने भी दुनिया की बाहरी जातियों को आमन्त्रित किया, जिसके परिणाम-स्वरूप भारत के राजनैतिक गगन में भी घनघोर बादल मँडराने लगे और यह शस्य-श्यामला पवित्र भूमि विदेशियों के पदाघात से कम्पित हो उठी।

भारतीय इतिहास के निर्माता, इस देश मे बाहरी जातियों के आक्रमण को एक आकस्मिक घटना समझते हैं। मगर वास्तव में देखा जाय तो इस प्रकार के आक्रमणों के लिए यहाँ की भूमि पहिले ही से तैयार हो चुकी थी। बात असल मे यह है कि "किसी भी समाज के आत्म-सम्मानपूर्ण जीवन के लिए उस समाज की नारी-शक्ति—पत्नीत्व और मातृत्व—का स्वाधीन और सुव्यवस्थित रहना अत्यन्त आवश्यक है। जिस समाज की नारी-शक्ति जीवित नही रहती, जिस देश का मातृत्व और पत्नीत्व वैधव्य, परदा और ग़ुलामी की भयङ्कर यन्त्रणाओं में मुरझा जाता है, वह देश कभी स्वाधीन, सुव्यवस्थित और जीवित नही रह सकता।"

यह सिद्धान्त इतना एकान्त सत्य है कि इसका जितना ज़ोरदार समर्थन हमारे भूतकाल ने किया, उससे भी अधिक हमारा भविष्य करेगा। इसका ताज़ा उदाहरण इसी आन्दोलन में देखने को मिलता है। सन् १९२१ का आन्दोलन नदी की बाढ की तरह ज़ोर-शोर से प्रारम्भ हुआ, चला, मगर अत्यन्त शीघ्र पानी के बुलबुले की तरह विलीन हो गया। मगर सन् १९३१ का आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, चला और गवर्नमेण्ट के इतने भीषण दमन करने पर भी उतनी ही मज़बूती के साथ चल रहा है। इसका एकमात्र कारण यही है कि सन् १९२१ में हमारे देश की नारी-शक्ति बिलकुल सोई हुई थी, मगर सन् १९३१ में वह कुछ-कुछ जाग्रत हो गई है। आज के आन्दोलन में से आप देश की नारी-शक्ति को निकाल दीजिए, तब आपको मालूम होगा कि नारी-शक्ति-विहीन आन्दोलन का स्वरूप कितना फ़ीका हो जाता है।

इतना विचार करने के पश्चात् हम सहज ही इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि प्राचीन भारतीय आचार-नीति—चाहे वह कितने ही परिष्कृत मस्तिष्कों से निकली हुई क्यों न हो—एकाङ्गी, अपूर्ण और पक्षपात-पूर्ण है। ख़ास कर शूद्रों और नारियों के सम्बन्ध में दिए हुए विधान तो इतने भयङ्कर और मनुष्यत्व से गिरे हुए हैं कि जब तक उनको एकान्त रूप से त्याग न दिया जाय, तब तक समाज में जीवनी-शक्ति-सञ्चार ही नही हो सकता। इन्ही विधानों की वजह से हमारे समाज में जाति-पाँति, छुआछूत और वैधव्य के महान भीषण रोग लगे हुए हैं। सामाजिक सदाचार की दृष्टि से भी उस पातिव्रत्य और उस वैधव्य-धर्म का कोई महत्त्व नहीं हो सकता, जो पत्नीव्रत और विधुरत्व के बिना ही एकाङ्गी रूप से समाज में प्रचलित है। न्याय की दृष्टि से सामाजिक सदाचार के लिए जितना पातिव्रत्य आवश्यक है उतना ही पत्नीव्रत भी, और जितना वैधव्य उतना ही विधुरत्व भी! यदि आवश्यकता है तो दोनों की, यदि नही तो एक की भी नही! तभी सामाजिक न्याय और सदाचार की रक्षा हो सकती है।

मानव-जाति की सभ्यता दिन-प्रतिदिन अत्यन्त द्रुत गति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है। व्यक्तित्व से जातीयता, जातीयता से धार्मिकता, और धार्मिकता से भी आगे बढ कर राष्ट्रीयता की सीमा में वह जा पहुँची है। मगर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है

कि राष्ट्रीयता से भी वह अब बहुत शीघ्र ऊपर उठना चाहती है। संसार-प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान "रोमाँ रोलाँ" ने आत्मा के स्वातन्त्र्य की घोषणा ("Declaration of the Independence of the Spirit") करते हुए कहा है कि—"मनुष्य की आत्मा ने अब तक अनेक दासताओं से स्वतन्त्रता पाई है, परन्तु अब उसे राष्ट्रीयता की दासता से मुक्ति पाना है। यह असम्भव है कि एक जाति और एक राष्ट्र के नाम पर मनुष्य की आत्मा राष्ट्र की बुरी-भली आज्ञाओं के सामने विवेकशून्य होकर गुलाम बनी रहे।" जब सारी मानवीय सभ्यता इतनी द्रुत गति से आगे बढ़ रही है, तो यह भारतवर्ष के लिए अत्यन्त लज्जा की बात है, कि वह अब जातीयता और धार्मिकता की उन्हीं सड़ी-गली इमारतों की ग़ुलामी में अपने को फँसाए रहे, जिसने उसको हर तरह से बर्बाद करने मे कोई कसर नहीं रक्खी है। यदि यही स्थिति रही तो किस प्रकार उन्नतिशील मानवीय सभ्यता के साथ हम लोग आत्म-सम्मानपूर्ण समझौता कर सकेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि हम भी अपनी आचार-नीति और सभ्यता में शीघ्रता के साथ समयानुसार परिवर्तन करें। और समय की प्रबल बाढ़ में अपने सब सड़े-गले रिवाजों को—छुआछूत, जाति-पाँति और वैधव्य को—एक साथ बहा दें और मानवीयता के विशाल मैदान मे एक सुन्दर, स्वस्थ और स्वाधीन जाति के रूप में खड़े होकर, संसार की बढ़ती हुई सभ्यता मे सहयोग प्रदान करें। विश्वास रखिए, इस महान अनुष्ठान में प्रकृति आपका पूर्ण सहयोग करेगी।

बहुत से विद्वान जो अपने आपको अग्रसोची होने का दावा रखते हैं, सभ्यता के इस नवीन रूप से बड़े भयभीत होते हैं। वे कहते हैं कि जब स्त्रियाँ पुरुषों ही की तरह स्वाधीन हो जावेंगी, तब समाज के अन्तर्गत गार्हस्थ्य जीवन की क्या स्थिति हो जावेगी। उस स्थिति में घर श्मशान तुल्य हो जाएँगे। समाज में सदाचार की चिता धधकती हुई नज़र आवेगी। इसी प्रकार यदि अछूत लोग न रहेंगे, तो समाज में सफ़ाई का ज़िम्मा किस पर रहेगा, गन्दगी कौन साफ़ करेगा? इत्यादि इस प्रकार के प्रश्नों का पूरा-पूरा उत्तर तो हम शीघ्र ही एक स्वतन्त्र लेख में देंगे। मगर ऐसे अग्रसोची विद्वानों को घबराने की हमारे ख़्याल से कोई आवश्यकता नहीं है। गार्हस्थ्य जीवन की जो स्थिति आज है, नारी-जाति के पूर्ण-रूपेण स्वाधीन हो जाने पर उससे कई गुना अच्छा स्वर्गीय गार्हस्थ्य जीवन देखने को मिलेगा। आज जो हिन्दू-समाज के प्रत्येक घर से बाल-वैधव्य की नारकीय ज्वाला धधकती हुई नज़र आती है, वह उस स्थिति में नहीं आवेगी। आज जो असंख्य पत्नियाँ अपने अयोग्य पतियों और सासों के अत्याचार से हाहाकार कर रही हैं, वह उस स्थिति में नहीं होगा। हाँ, इतना अवश्य है कि उस हालत में किसी भी पुरुष को कोई स्त्री दासी के रूप में नहीं, प्रत्युत एक सहयोगिनी के रूप में—एक पत्नी के रूप में प्राप्त होगी। उस समय समाज में ऐसे स्वस्थ, ऐसे आनन्दमय, और ऐसे श्रीसम्पन्न जोड़े दृष्टिगोचर होंगे, जिनकी हमारे शास्त्रकारों ने कल्पना भी न की होगी। क्या सभ्यता का वह रूप अभिनन्दनीय न होगा?

विगत-गौरव

[श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय, "वारीश"]

विश्व की विभूतियाँ सदैव भरी रहती थीं,
आज हाय ! घर में भभूत भी बची नहीं।
बिरच-बिरच वह विश्व को दिखाया चारु,
रमा के रचक ने जो रचना रची नहीं॥

जाँचते थे परख-कसौटी रख रत्न-राशि,
कीर्त्ति-मणि की सी मणि-खान भी जँची नहीं।
नाट्य रचे हमने जो रङ्ग-मञ्च पर चारु,
विश्व-मञ्च प्रकृति-नटी भी त्यों नची नहीं॥



श्रीमती श्यामादेवी जी

(जिन्होंने २० निर्धन महिलाओं को एक वर्ष तक 'चाँद' मुफ्त भेजने के लिए १००) रु० का दान किया है। आपका विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए।)

[illegible]

अनुभूति [illegible] सबसे
जाती विषया की [illegible] प्रकार [illegible]
विषय [illegible] है [illegible] की [illegible]
आत्मिक [illegible]
अब आयें। [illegible]
तक कहानी [illegible]
[illegible]
[illegible] गोविन्द : [illegible]

[illegible] सिंह, [illegible]

सन्तति-निग्रह और उसके साधन

श्री० बुद्धिसागर जी वर्मा, विशारद, बी० ए०, एल० टी०



यह तो प्रत्यक्ष ही है कि मनुष्य के हृदय में कामवासना उत्पन्न करने तथा स्त्री-पुरुष में पारस्परिक आकर्षण रखने में ईश्वर अथवा प्रकृति का यही उद्देश्य है कि लोग मानव-वंश की वृद्धि करें। किन्तु प्राकृतिक नियमों के पालन करने का उपदेश देना एक बात है और उनके अनुसार कार्य करना दूसरी बात। सभी लोग प्राकृतिक नियमों का पालन करने में असमर्थ हैं। कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो ऋतुकाल के अतिरिक्त स्त्री-सहवास नहीं करते हैं? कितने व्यक्ति ऐसे हैं, जो आधुनिक दूषित वातावरण में पल कर कायिक तथा मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन पूर्णतया कर पाते हैं? इसका दूषित परिणाम यह होता है कि प्रायः अधिक और शीघ्र-शीघ्र सन्तानोत्पत्ति के कारण स्त्रियों का स्वास्थ्य और सौन्दर्य अकाल में ही धूल-धूसरित हो जाता है। निर्धनों का तो और भी बुरा हाल होता है। एक तो कुटुम्ब का निर्वाह वैसे ही कठिनता से होता है, तिस पर प्रतिवर्ष या प्रति दूसरे वर्ष एक प्राणी की और वृद्धि होती रहती है। जिससे उनका न तो उचित लालन-पालन ही हो पाता है और न काफ़ी देख-रेख ही। जीवन दूभर हो जाता है।

शीघ्र-शीघ्र गर्भ धारण करने से स्त्रियों में स्नायु सम्बन्धी दुर्बलता बढ़ती है, गर्भाशय भी कमज़ोर हो जाता है। स्त्री को अपनी वह शक्ति, जिसे वह १० मास गर्भ धारण करने में तथा बालक को दूध पिलाने में ख़र्च करती है, पुनः प्राप्त करने का अवसर नहीं मिलता। अवस्था से बहुत पहले ही उसे बुढ़ापा आ घेरता है या बीच ही में किसी भयङ्कर रोग के आक्रमण से उसकी मृत्यु हो जाती है। अतः प्रत्येक दम्पति के हाथों में सन्तान-निग्रह के साधन देना समाज-पतियों तथा वैज्ञानिकों का कर्तव्य होना चाहिए। इसी विषय का इस लेख में स्थूल रूप से विवेचन किया जाता है।

गर्भ-निरोध के लिए अनेक साधनों का उपयोग किया जाता है, किन्तु इसके वास्तविक साधनों में उन्हीं उपायों का समावेश हो सकता है, जिनसे स्त्री और पुरुष में उत्पादक शक्ति तो बराबर बनी रहे, किन्तु संयोग होते हुए भी गर्भ का होने देना अथवा न होने देना अपने वश में रहे।

इन उपायों का अवलम्बन प्रायः तीन ही प्रकार के व्यक्ति करते हैं—(१) जो महात्मा गाँधी के मतानुयायी तथा उच्च विचारों के व्यक्ति हैं, जिनका सिद्धान्त है कि भारत की वर्तमान नैतिक पतितावस्था में अधिक सन्तान-वृद्धि पाप है। वे पूर्ण ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-दमन के पक्षपाती हैं। किन्तु इस प्रकार के व्यक्ति मनुष्य की साधारण निर्बलताओं को एकदम भूल जाते हैं। (२) साधारण स्थिति के समझदार व्यक्ति—जो अधिक बच्चे उत्पन्न करना आर्थिक सङ्कट तथा पत्नी के स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य विनष्ट होने की दृष्टि से आपत्तिजनक समझते हैं। उनका यह विचार युक्तिसङ्गत, न्यायानुमोदित तथा प्रशंसनीय है। (३) विलासी तथा इन्द्रिय-लोलुप पुरुष, जो स्त्री का गर्भवती होना इसलिए पसन्द नहीं करते कि संयोग के लिए उन्हें सुविधा नहीं रहेगी। ऐसे हीन प्रवृत्ति के पुरुष भ्रूण-हत्या तथा गर्भपात तक कर डालते हैं। यह कितनी जघन्य कुप्रवृत्ति है। समझदार महिलाओं को सदा इसका घोर विरोध करना चाहिए।

कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी हैं, जो विलासप्रियता के कारण अथवा अपनी ज़िम्मेदारी से बचने के लिए गर्भ

धारण करने से घबड़ाती हैं। अतः उन्हें गर्भ-निवारण के उपायों का अवलम्बन करना पड़ता है।

गर्भ-निरोध के प्रचलित उपायों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है :—

१ स्त्री-पुरुष के सम्भोग की वे रीतियाँ या क्रियाएँ, जिनमें किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थों या यन्त्रों का प्रयोग न किया जाय, और कृत्रिम उपायों की अपेक्षा ब्रह्मचर्य का ही पालन, सात्त्विक भोजन और धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया जाय, विचारों को पवित्र और इन्द्रियों का दमन किया जाय। यह कहीं अच्छा है। ऐसे विचार वालों को सदा किसी न किसी काम में संलग्न रहना चाहिए। निकम्मे पुरुष और निकम्मी स्त्रियों के लिए ब्रह्मचर्य रखना कठिन है। फिर भी मनुष्य में निर्बलताएँ है। इन्द्रिय-दमन हँसी-खेल नहीं है। "बलवानिन्द्रिय ग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।" "तेषां इन्द्रियनिग्रहो यदि भवेन विन्ध्यस्तरेत् सागरम्।" अस्तु।

ऋतु आरम्भ होने के पहले चार दिन, और रज बन्द होने के बाद १४ दिन छोड़ कर शेष दिनों में कभी-कभी सम्भोग किया जाय तो १०० पीछे केवल ६-७ स्त्रियाँ ही गर्भवती होती हैं; क्योंकि स्त्री ऋतुमती होने के पश्चात् ही और रजोदर्शन के दो-तीन दिन पहले जितनी सुगमता से गर्भवती होती है उतनी और किसी समय नहीं। अतः इस उपाय का अवलम्बन किया जा सकता है। अनेक स्त्रियाँ गर्भवती होने से बचने के लिए बच्चों को २-३ वर्ष पर्यन्त दूध पिलाती रहती हैं। उनका विचार है कि जब तक बच्चा स्तनों से दूध चूसता रहेगा, तब तक दूसरा गर्भ नहीं रहता। किन्तु यह कोई निश्चित और अचूक उपाय नहीं है। दूसरे इससे माता और सन्तान दोनों को भारी हानि भी हो सकती है।

कई स्त्रियाँ अनुभव से ठीक-ठीक और आसानी से जान लेती हैं कि गर्भ-स्थिति हो गई है। ऐसा ज्ञान हो जाने पर यदि स्त्री चटपट उठ कर सीधी बैठ जाय या कोई भारी बोझ उठा ले, लगातार १०-१५ बैठकें कर ले अथवा ३-४ बार ज़ोर से छींके या खाँसे तो गर्भाशय बड़े वेग से सिकुड़ता है और वीर्य बाहर निकल जाता है और गर्भ नहीं रहने पाता। ये विधियाँ बहुत पुरानी हैं। न्यूगायना और इटली में बहुत सी स्त्रियाँ गर्भ-निरोध के लिए यही उपाय करती हैं। सामान्यतः ये गर्भ-निरोध की अमोघ विधियाँ नहीं कही जा सकतीं। किन्तु विशेष अवस्थाओं में सफल हो भी जाती हैं। सम्भवतः ये विधियाँ उसी दशा में सफल सिद्ध हो सकती हैं, जब गर्भाशय की गर्दन निश्चेष्ट तथा पुरुष का वीर्य दृढ़ हो। स्त्री-शरीर भी मज़बूत होना चाहिए, तभी गर्भाशय की नाली स्वेच्छापूर्वक हिलाई जा सकेगी। इस प्रकार वीर्य एक पिण्ड-रूप में सारा का सारा बाहर निकल जाता है। 'Birth Control' की सिद्धहस्त लेखिका मेरी स्टोप्स महोदया की राय है कि विशेष आवश्यकता के अवसरों को छोड़ कर इन विधियों की सिफ़ारिश नहीं की जा सकती। उनकी राय में सम्भोग के पश्चात् तुरन्त पट्ठों के सङ्कोचन के लिए प्रचण्ड परिश्रम करने से वह उचित मानसिक वायु-मण्डल नष्ट हो जाता है, जिसके बिना सम्भोग की क्रिया कभी पूर्ण रूप से लाभदायक नहीं हो सकती।

(२) सम्भोग की ऐसी रीतियाँ या क्रियाएँ, जिनमें रासायनिक पदार्थों का प्रयोग इस उद्देश्य से किया जाता है कि वीर्य के कीटाणु रज के अण्डे से मिल कर गर्भ बनाने में असमर्थ हो जायँ।

(अ) इसके लिए अधिकतर कुनैन का ही प्रयोग किया जाता है। कुनैन पैसरीज़ (Soluble Quinine Pessaries) एक प्रकार की टोपियाँ सी होती हैं। इनके बनाने में अधिकांश कुनैन ही काम आती है। उक्त पैसेरी ¾ इञ्च लम्बी, ½ इञ्च चौड़ी और ¼ इञ्च मोटी होती है। संयोग के १५-२० मिनट पहिले यह योनि में जितनी दूर तक सम्भव हो, प्रवेश कर दी जाती है। इसी बीच में टोपी पिघल कर योनि-द्वार की दीवारों में फैल जाती है। अतः जब वीर्यपात होता है, तब उसके कीटाणु इन औषधियों के प्रभाव से मर जाते हैं और गर्भ नहीं बनने पाता। किन्तु इसमें झगड़ा यह है कि इस प्रयोग के बाद जननेन्द्रिय को पिचकारी* से धो डालना आवश्यक है। परन्तु किन्हीं-किन्हीं दशाओं

---

* पिचकारी के लिए सदा गरम पानी का प्रयोग करना चाहिए। ऽ॥ पानी में ४ माशा पिसी फिटकिरी घोल लेना चाहिए। ठण्डा पानी हानिकारक है।

में वीर्यपात सीधा गर्भाशय में ही होता है, उस समय यह प्रयोग लाभदायक नहीं होगा। इसके अतिरिक्त कुनैन की कुछ हानियाँ भी हैं। पुरुष की अवस्था में प्रायः देखा गया है कि जिन पुरुषों के लिङ्ग-मुख की त्वचा विशेष रूप से शीघ्रग्राही होती है, उनको कुनैन* की पैसेरी आदि से अशान्ति और जलन होने लगती है। इसके अतिरिक्त यदि पुरुष छोटा और स्त्री या तो स्वभावतः बड़ी है या अनेक बार बच्चा होने से उसकी जननेन्द्रिय बहुत फैल गई है, तो चिकनाईदार पैसेरी द्वारा अधिक स्निग्ध कर देने से स्वाभाविक संसर्ग और रगड़ के कम हो जाने के कारण सम्भोग-क्रिया की क्षमता घट जाती है। स्त्री की अवस्था में भी यही बात कही जा सकती है। जननेन्द्रिय में जलन या उष्णता उत्पन्न हो सकती है। कुनैन बहुत सी स्त्रियों की प्रकृति के अनुकूल नहीं होती। निस्सन्देह योनि की दीवारों द्वारा कुछ न कुछ कुनैन जज़्ब होकर शरीर के भीतर चली जाती है। कुनैन के इस प्रयोग के कारण कई स्त्रियों मे नींद कम आने का रोग और कुछ में इससे भी अधिक दुःखदायक कष्ट उत्पन्न हो जाते हैं।

(ब) कामशास्त्र पर एक पुरानी संस्कृत की पुस्तक में फिटकिरी और विविध प्रकार की बूटियों के काढ़ों के प्रयोग का परामर्श दिया गया है। किन्तु जो कुछ ऊपर कुनैन के विषय में कहा गया है, वही फिटकिरी के चूर्ण पर भी लागू है। यह एक प्राचीनतम शुक्रकीट-नाशक पदार्थ है। जब प्रसव के द्वारा योनि की नाली अयुक्त रूप से फैल जाती है, तो सम्भोग-क्रिया की स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं में भी कभी-कभी ऐसी बाधा पड़ती है कि पति को सम्भोग करने में आनन्द बहुत कम आता है। फिटकिरी मे योनि की मेदमय झिल्ली को सिकोड़ देने का गुण होता है। अतः इस सङ्कोचन से प्रायः योनि अपनी पूर्वावस्था मे आ जाती है। किन्तु इसका प्रयोग भी सोच-समझ कर ही करना चाहिए, क्योंकि बार-बार और अधिक बर्तने से भय रहता है कि सङ्कोचन आवश्यकता से अधिक न हो जाय।

(स) सम्भोग कर चुकने के तत्काल पश्चात् किसी एक घोल (Solution) से, जो इसीलिए बनाए जाते हैं, पिचकारी द्वारा गर्भाशय को धो डाला जाता है। घोल वीर्य पर रासायनिक क्रिया करता है और कहा जाता है कि स्त्री के लिए कोई हानिकारक परिणाम नहीं होता। पिचकारी की नली जहाँ तक जा सके, भीतर प्रविष्ट कर दी जाती है। कहते हैं, इस प्रकार धोने से गर्भ होने का संयोग बहुत कम रहता है। इस काम के लिए नाना प्रकार के डूश भी इस्तेमाल किए जाते हैं, किन्तु कुछ विशेष दशाओं को छोड़ कर, जिनमें डूश करना चिकित्सा का एक प्रधान अङ्ग होता है, बार-बार डूशिङ्ग करना भी हानिकारक है।

मेरी स्टोप्स ने इस क्रिया का घोर विरोध किया है। उनकी राय मे निरोग व साधारण स्त्रियों के लिए 'डूश' बुरा है। वे कहती हैं कि योनि में जो पदार्थ स्वाभाविक रूप मे विद्यमान हैं, उनमे इस प्रकार व्यर्थ और पदार्थ घुसेड़ना अनुचित है। बहुत बार डूशिङ्ग करने से स्वाभाविक स्रावों और इन्द्रिय में स्वाभाविक रूप से निवास करने वाले लाभकारी Bacteria (कीटाणुओं) का भी नाश होने लगता है। इसके अतिरिक्त, 'डूश' के साथ जिन घोलों का प्रयोग किया जाता है, उनमें प्रायः तेज़, विषैले और हानिकारक पदार्थों का समावेश होता है। अतः इस काम के लिए पानी मिला हुआ सिरका, नमक या फिटकिरी का हलका घोल आवश्यकता पड़ने पर इस्तेमाल करना चाहिए। इस विषय में, मेरी स्टोप्स महोदया की राय उल्लेखनीय है :—"रोग की चिकित्सा के निश्चित रूप या किसी विशेष तथा नैमित्तिक प्रयोग को छोड़ कर मैं 'डूश' करने को सर्वथा बुरा समझती हूँ। गर्भ न होने देने के साधन के रूप में सब प्रकार के डूश अविश्वास्य, अहितकर और मनोविज्ञान की दृष्टि से हानिकारक हैं।"

(द) श्रीमान मुकर्जी महोदय लिखते हैं कि कुछ स्त्रियाँ गर्भ-निरोध के लिए बग़ैर साफ़ किए हुए

---

* बोरिक एसिड, कुनैन और सिटरिक एसिड आदि की बनी हुई अनेक प्रकार की गोलियाँ कई नामों से इश्तिहारबाज़ों के यहाँ बिका करती हैं। उनमें शुद्ध कुनैन या फिटकिरी से अधिक कुछ भी गुण नहीं होता, ऐसी औषधियों से तो जननेन्द्रिय में उल्टी हानि होने की सम्भावना है। अतः इनके फेर में कभी न पड़ना चाहिए।

—लेखक

Mellowa Oil (मेलोवा तैल) और चीना नामक पौधे की जड़ प्रयोग करती है। तैल बाहर लगाने के लिए और जड़ खाने के लिए। श्री० मुकर्जी ने इस मूल की परीक्षा की, परन्तु उन्होंने इसे व्यर्थ और हानिकारक पाया। ३ दिन तक १ तोला से अधिक मात्रा में खाने से यह पेट को ख़राब कर देती है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में और भी औषधियों का वर्णन पाया जाता है, परन्तु सद्वैद्यों का मत है कि वे न तो उपयोगी हैं और न निर्दोष ही। उनके सेवन से स्वास्थ्य की घोर हानि होने की सम्भावना है।

(३) वीर्य के कीटाणुओं को रज के अण्डे के साथ मिलने से रोकने के लिए स्त्री-पुरुष द्वारा यन्त्रों का प्रयोग। यन्त्रों द्वारा कुछेक कृत्रिम उपाय, जिनका प्रयोग किया जाता है, इस प्रकार हैं :—

(१) स्पञ्ज का प्रयोग—एक बहुत बारीक नरम स्पञ्ज के बड़े अखरोट के बराबर टुकड़े को फिटकिरी या Palfrey's powder के पानी में भिगो कर गर्भाशय के मार्ग में जितनी भी दूर तक जा सके, भीतर प्रविष्ट कर दिया जाता है। और सवेरे तक उसे भीतर ही रहने दिया जाता है। बाहर निकलने के लिए उसके गिर्द रेशम का एक धागा बाँध दिया जाता है। किन्तु यह विधि अमोघ नहीं कही जा सकती, क्योंकि रति-क्रिया में स्पञ्ज के इधर-उधर हिल जाने से वीर्य के कीटाणु गर्भाशय में पहुँच जाते हैं और गर्भ रह जाता है। कुछ डॉक्टर इस प्रयोग की बहुत निन्दा करते हैं, क्योंकि इसका पूर्ण रूप से साफ़ किया जाना असम्भव है। कुछ की राय में रबड़ के तारों का बना हुआ आधुनिक स्पञ्ज नैसर्गिक स्पञ्ज से अच्छा होता है, क्योंकि इसमें सड़ने वाली चीज़ों के लगे रहने की सम्भावना कम रहती है। कतिपय पाश्चात्य डॉक्टर इस प्रयोग को हानि से मुक्त और उपयोगी बताते हुए कहते हैं कि इसका लगाना अत्यन्त सरल और उपाय सस्ता है। किन्तु इस क्रिया के ठीक न बनने की दशा में इन्द्रिय अथवा गर्भाशय में ख़राश और दूसरे उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं।

(२) मेलोवा तैल (Mellowa Oil)—यह तैल किञ्चित रूक्ष, सङ्कोचनशील और निर्दोष होता है। यह कृमिनाशक भी है। अखरोट के बराबर एक महीन सूखा स्पञ्ज पानी में भिगो कर निचोड़ डाला जाता है, फिर एक तश्तरी में इस तैल की ६०-७० बूँदें डाल कर उसमें स्पञ्ज को लपेट लिया जाता है। सम्भोग के पश्चात गुह्येन्द्रिय को साफ़ करके इसे गर्भाशय के भीतर जहाँ तक जा सके, प्रविष्ट कर दिया जाता है और लगभग ३० मिनट पश्चात् निकाल डाला जाता है। कहते हैं, इस क्रिया से कोई बेचैनी या हानि नहीं होती, चाहे स्पञ्ज सारी रात रक्खा रहे। उक्त स्पञ्ज सारे वीर्य को चूस लेता है और ज्योंही उसके कीटाणु तैल से स्पर्श करते हैं, उनकी गति रुक जाती है, जिससे गर्भ का होना असम्भव हो जाता है। कोई भी चिकनाई या तैल गर्भ-निरोध के लिए उपयोगी है, विशेषकर कड़ुआ तैल, नीम का तैल या नारियल का तैल। किन्तु यह उपाय भी अमोघ नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त रति-क्रिया के पश्चात् पर्याप्त विश्राम में बाधा पड़ती है, जो अत्यन्त आवश्यक है।

(३) फ्रेञ्च कैप या लैटर (लैदर)—यह रबड़ का बना हुआ एक लम्बा और गोल खोल होता है। संयोग के समय पुरुष इसे पहन लेता है, ताकि वीर्य गर्भाशय में न जाय। यदि संयोग-क्रिया में फट न जाय तो यह गर्भ बिल्कुल नहीं होने देता। कुछ लोग कहते हैं कि इस प्रयोग से कोई विशेष हानि नहीं होती, किन्तु कुछ दूसरों की राय में इससे अनेक रोगों का भी भय है।

श्री० रिचर्ड महोदय लिखते हैं—"यह क्रिया भय के रोकने के लिए तो मकड़ी के जाले के समान और रति-सुख को रोकने के लिए दृढ़ कवच है।" निस्सन्देह एक बड़ी भारी हानि यह है कि स्त्री-पुरुष की चुम्बकीय शक्ति एक-दूसरे में नहीं जा सकती, जिससे स्वास्थ्य की भारी हानि होती है। रोग और भय के सम्बन्ध में तथा अन्य

चीते का पेड़ दो प्रकार का होता है। एक लाल फूल का, दूसरा सफ़ेद फूल का। लाल फूल वाले पौधे की जड़ गर्भ-निरोध के लिए काम में लाई जाती है।

पुराने जोड़ों के दर्द और त्वचा की बीमारियों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह खुजली की बहुमूल्य औषधि है।

विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर व्यापक रूप से इसका प्रयोग अनुचित है।"

(४) रबड़ की अवरोध-टोपी (Rubber Check Pessary)—यह रबड की बनी हुई गाजर की शक्ल की टोपी* सी होती है। इसे स्त्री पहन लेती है। इसका किनारा गर्भाशय के साथ ख़ूब सट कर लग जाता है † और वीर्य को गर्भाशय में प्रवेश करने से रोक देता है। कहते हैं, इससे न तो कोई बिगाड़ होता है, न कोई कष्ट। किन्तु कुछ डॉक्टरों का मत इससे विपरीत भी है। वे कहते हैं कि यह टोपी बहुत मोटी स्त्रियों के लिए उपयुक्त हो सकती है, किन्तु नाज़ुक, दुबली-पतली स्त्रियों को योनि की नाली के स्वाभाविक आकार से इसका आकार बड़ा होने से प्रायः नाली अनुचित रूप से फैल जाती है। कभी-कभी स्त्री और पुरुष की इन्द्रिय को हानि पहुँचने का भी डर रहता है।

एक और प्रकार की टोपी का भी वर्णन किया जाता है, जो Prorace make Check Pessary के नाम से प्रसिद्ध है। इसका मध्य या चोटी का भाग पतली रबर का होता है या हवा भर कर फुलाया भी जा सकता है। इस सम्बन्ध में मेरी स्टोप्स की राय है कि हवा से फूली हुई किनारे वाली और विविध धातुओं की कमानीदार किनारे वाली टोपियाँ अच्छी नहीं होतीं। प्रोरेस टोपी के किनारे पर कोमल रबड़ का छल्ला सदा अच्छा होता है।

बाज़ार में कई प्रकार की टोपियाँ बिकती हैं। प्रत्येक समझदार स्त्री को अपने अनुकूल आकृति की टोपी बड़ी सावधानी से पसन्द कर लेनी चाहिए। छोटे गुम्बद वाली टोपी हानिकारक होती है। यह सारी टोपी इतनी कोमल होती है कि भीतर प्रविष्ट करने में कोई कठिनाई नहीं होती। टोपी की पीठ पर उँगली जमा कर उसे धीरे-धीरे गर्भाशय की गर्दन की नली तक भीतर ठेल दिया जाता है। गर्भाशय का मुँह U आकार का होता है और यह टोपी उस पर ठीक बैठने योग्य आकार की होती है। अतः यह गर्भाशय के मुँह पर चटपट अपने आप ठीक इस प्रकार बैठ जाती है कि पुरुष-वीर्य गर्भाशय में प्रवेश नहीं कर पाता। टोपी की पीठ पर एक धागा लगा रहता है, उसे बाहर पड़ा रहने दिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर इस धागे या फ़ीते को खींच कर टोपी बाहर निकाली जाती है। किन्तु इसमें एक बड़ा दोष यह है कि इसके ज़ोर से गर्भाशय के खिंच कर नीचे चले आने का भय रहता है। इस प्रकार की टोपियाँ बग़ैर फ़ीते की भी बिकती हैं। उन्हें केवल किनारे के नीचे उँगली से झटका देकर बाहर निकाला जा सकता है, किन्तु योनि-मार्ग के अस्वाभाविक रूप से लम्बा होने और स्त्री की उँगलियाँ असाधारण रूप से छोटी होने की दशा में बड़ी कठिनाई होती है। परन्तु बहुधा स्त्रियों की मध्यमा उँगली की लम्बाई इस परिमाण से होती है कि वे स्वयं बड़ी सुगमता से टोपी को उतार और लगा सकती हैं।

अन्य कृत्रिम उपायों की अपेक्षा इसे किसी अंश में उत्तम कहा जा सकता है; क्योंकि इससे मैथुन-क्रिया में विघ्न नहीं पड़ता और न पारस्परिक चुम्बकीय शक्ति के आदान-प्रदान में ही बाधा पड़ती है। इसे २४ या ४८ घण्टों तक भी ज्यों का त्यों भीतर रक्खा जा सकता है। दूसरे-तीसरे दिन धोने या बदलने के लिए किसी समय निकाली जा सकती है। इस प्रकार स्त्री अपने साधारण शृङ्गार के समय या स्नान करते समय (जब इसके प्रयोग का प्रयोजन हो, उससे कई घण्टे पहले) गर्भ से बचने का पूर्वोपाय कर सकती है। सम्भोग-समय में मनोविज्ञान सम्बन्धी कोई भी हानि नहीं होती।

टोपी को सम्भोग के पश्चात् तुरन्त नहीं निकाल देना चाहिए। अच्छा हो, यदि इसे प्रातःकाल तक रहने दिया जाय। सबेरे पिचकारी द्वारा गरम पानी और साबुन से ख़ूब धोने* के पश्चात् निकालना चाहिए। सम्भोग के बाद तुरन्त बिस्तर छोड़ना या

---

* आकार और बनावट की दृष्टि से ये कई प्रकार की होती हैं। इनके नाम भी कई प्रकार के होते हैं, जैसे—डचकैप, रबर-कैप, मिज़पाह, इत्यादि।

† पैसेरी को लगाने से पूर्व उसे ग्लेसरीन, तैल अथवा वैस्लीन से चुपड़ लेना चाहिए।

* योनि को न धोने से सम्भव है, दो-एक कीटाणु भीतर घुस जायँ।

धोना-धाना हानिकारक है। इस समय तो आराम करने में ही सुख है।

कहा जाता है कि सन्तान-निग्रह की उपरोक्त कृत्रिम विधियाँ स्त्री के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। यहाँ तक भी कहा जाता है कि इनसे नासूर आदि भयङ्कर रोग हो जाते हैं और कालान्तर में स्त्रियाँ सदा के लिए बाँझ हो जाती हैं। किन्तु ये बातें निर्मूल हैं। इस प्रकार का मत बहुधा उन्हीं लोगों का होता है, जो या तो इस विषय में कुछ भी जानकारी नहीं रखते अथवा पक्षपात में डूबे हुए हैं। पाश्चात्य महिलाएँ तथा मिशनरीज़ धड़ाधड़ पैसरीज़ और रबड़-कैप आदि का प्रयोग किया करते हैं और उन्हें कोई भी इस प्रकार का भयङ्कर रोग नहीं होता। प्रो० सन्तराम जी बी० ए० अपनी 'Birth Control' नामक पुस्तक में लिखते हैं—"आधुनिक चिकित्सा-शास्त्री इस बात पर सहमत हैं कि केवल सन्तान-संख्या को वश में रखने की वैज्ञानिक विधियाँ न केवल हानिकारक ही नहीं, परन्तु सहस्रों अवस्थाओं में प्रदर, कर्विक्स (Cervix) की सूजन और अन्य स्थानीय ख़राबियों से पीड़ित स्त्रियों के लिए बहुत ही लाभदायक हैं।"

इसके विपरीत कुछ विद्वानों की यह भी राय है कि इन कृत्रिम उपायों द्वारा कुछ न कुछ शारीरिक हानि तो अवश्य ही होती है, भले ही किसी उपाय-विशेष से गर्भ न रहे। प्राकृतिक साधनों की अपेक्षा कृत्रिम उपायों का अवलम्बन कभी श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता। कृत्रिम उपायों की ज़रा भी गड़बड़ी या असावधानी दोष उत्पन्न कर सकती है। सच तो यह है कि गर्भ-निरोध की ऐसी कोई भी कृत्रिम विधि नहीं, जो मूर्खा स्त्री के हाथ में सुरक्षित हो। दूसरे कृत्रिम उपायों द्वारा रति-क्रिया में वह अनूठा आनन्द नहीं आ सकता, जो क़ुदरती तौर पर आता है। फ्रेञ्च लैदर और रबर कैप तथा चेक-पैसरी आदि द्वारा मैथुन करने में स्त्री-पुरुष की त्वचा का पारस्परिक सङ्घर्षण नहीं हो पाता, अतः एक-दूसरे की चुम्बकीय शक्ति के लाभ से वञ्चित रह जाते हैं, और यह स्वास्थ्य के लिए विशेष हानिकर है।

मिस्टर किश महोदय कहते हैं—"मैथुन में तृप्ति न होने से स्त्रियों में हिस्टीरिया आदि वात और स्नायु सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, परन्तु योग्य रीति से सुव्यवस्थित सम्भोग का परिणाम, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों की तृप्ति हो जाय, बहुत ही हितकर होता है।" इसके अतिरिक्त सम्भोग के पश्चात् स्त्री-शरीर पुरुष-वीर्य को शोषण करता है और पुरुष-शरीर स्त्री-रज का। इस प्रकार दोनों ही को चर्म-घर्षण तथा शोषण से बहुत लाभ होता है और आनन्द मिलता है। अस्तु, इन रबर की थैलियों से ये लाभ नहीं हो सकते और सम्भोग हस्त-मैथुन या स्वप्नदोष की भाँति नीरस एवं हानिकर हो जाता है। फिर भी सामर्थ्य से बढ़ कर सन्तान उत्पन्न करके दुःख बढ़ाने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है। एक लाभ निस्सन्देह अवश्य है, इन यन्त्रों के प्रयोग से प्रदर, उपदंश तथा अन्य छूत के जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोगों का प्रभाव दूसरे की स्वस्थ जननेन्द्रिय पर नहीं पड़ सकता।

सारांश यह है कि उपरोक्त विधियों को गर्भ-निरोध के लिए अमोघ कवच अथवा सर्वथा हानिरहित न समझ लेना चाहिए। और इनमें से सबसे कम हानिकारक उपाय का अवलम्बन उसी दशा में किया जाय, जब गर्भ का रोकना अत्यन्त आवश्यक हो।

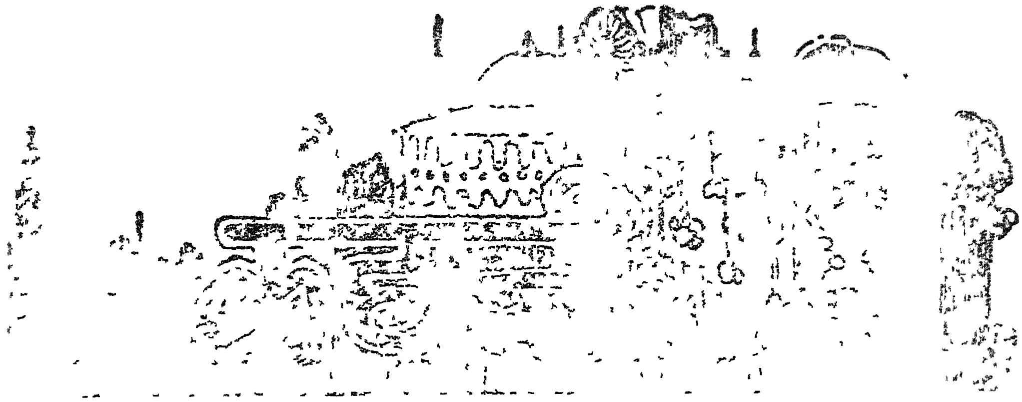
卐 卐 卐

एक जेण्टिलमैन की स्त्री ने अपने पति से कहा—क्या अच्छा होता, जो मैं किताब होती, जिससे हर समय तुम्हारी आँखों के आगे रहा करती।

पति महाशय जल कर बोले—किताब के बदले अगर तुम जन्त्री होतीं तो ठीक होता। हर साल बदल तक भी दिया करता।

एक काना आदमी नुमाइश देखने गया। बुकिङ्ग-क्लर्क से उसने नुमाइश देखने का आधा टिकट माँगा। क्लर्क ने आश्चर्य से पूछा—पूरे आदमी होकर आधा टिकट माँगते हो?

दर्शक ने जवाब दिया भाई, इन्साफ़ से देखो। और लोग दो आँखों से देखेंगे और मैं एक आँख से।



विच्छेद

[एक गल्प-प्रेमी, डबल ग्रेजुएट]

“हाँ, हो चुकी बहुत बड़ाई। उसकी पतिभक्ति उसी को मुबारक हो!”—राधा ने ताने के साथ मुरारी बाबू से कहा।

“पतिभक्ति न सही, कम से कम देशभक्ति के लिए तो सबको स्वदेशी चीज़ों का व्यवहार करना चाहिए!”—मुरारी बाबू ने तुरन्त जवाब दिया।

“हाथी के दो दाँत होते हैं, एक खाने का और दूसरा दिखाने का। यह देशभक्ति भी वैसी ही है।”

“तो मतलब यह कि स्त्री को अपने पति का अनुकरण नहीं करना चाहिए, यहाँ तक कि वह उसके गुणों को भी न सीखे।”

“वाह-वाह, आपने तो बिलकुल उलटा ही समझ लिया। मैं तो यह कहती हूँ कि केवल अनुकरण ही नहीं करना चाहिए, बल्कि पति को पूरा सहयोग भी देना चाहिए।”

“इसीलिए तो कहता हूँ कि छोटी बहू एक आदर्श पत्नी होगी। वह हम लोगों के अँधेरे घर में दीपशिखा के समान सबको आलोकित करेगी।”

“तुम्हें मनुष्य को पहचानने की शक्ति नहीं है। बस खद्दर पहनने लगी और जब-तब चरखा चला दिया, इसी में पतिभक्ति और देशभक्ति दोनों की हद हो गई। तुम मेरी बातों को गाँठ बाँध लो, वह शङ्कर को कान पकड़ कर उठाएगी और बैठाएगी। अभी तो वह पढ़ ही रहा है। न उसको आश्रम की चिन्ता है और न इसी के ऊपर कुछ भार है; किन्तु समय आने पर इसकी परीक्षा आप से आप हो जायगी।”

मुरारी बाबू कुछ देर तक गुम रह गए, फिर बोले—जाने दो, इन बातों को। कब क्या होगा, कौन जानता है? मैं तो इसका भरोसा भी नहीं रखता कि शङ्कर मुझे कमा कर खिलावे। हाँ, वह योग्य हो जाय, ताकि उसकी कोई चिन्ता मुझे न रहे, इतना अवश्य चाहता हूँ। किन्तु देखता हूँ, शङ्कर भी इस आन्दोलन से बचा नहीं रहेगा। धड़ाधड़ स्कूल-कॉलेज ख़ाली होते जा रहे हैं और असहयोग आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है। मैं तो तुम्हारा ध्यान केवल इसी बात पर दिलाने आया था कि तुम भी कम से कम छुट्टी पाकर चरख़ा चलाया करो।

“मैं भी चरख़ा चलाना अच्छा समझती हूँ; किन्तु जब बहू को चलाती देखती हूँ तो उससे मुझे न मालूम क्यों घृणा सी हो जाती है।”

“ऐसी क्या बात है कि तुम्हें बहू के अच्छे काम से भी घृणा हो रही है? अच्छी स्त्री को ऐसा नहीं करना चाहिए। फिर अभी बहू की उम्र भी छोटी है, यदि उससे कोई भूल ही होती है, तो तुम्हें क्षमा करना चाहिए।”

"क्षमा तो अवश्य करना चाहिए; किन्तु उसकी योग्यता भी होनी चाहिए। बहू हम देहाती स्त्रियों को निपट गँवार समझती है और अपने को पूरी पण्डिता। अभी दो दिन भी आए नहीं बीते हैं, उसने अपने पिता को यहाँ की कुल शिकायत ही शिकायत लिख भेजी है, मानो यहाँ मनुष्यों का वास ही नहीं है। आज तो भला रहने को काफ़ी घर और खाने-पहनने के लिए अन्न-वस्त्र भी मौजूद हैं; किन्तु जिस दिन मैं आई थी, उस समय तो इतना भी नहीं था। मैं भी अपने पिता की इकलौती बेटी थी और मेरे पिता भी धनी थे, इतने धनी कि बहू के पिता को वे ख़रीद सकते थे, किन्तु कभी मैंने भी उन्हें अपनी ग़रीबी के विषय में कोई पत्र लिखा? मैंने भी क्या इस समाज को हैवान समझा? हरेक स्त्री यह जानती है कि उसके माता-पिता का धन उसे अधिक दिनों तक काम नहीं देगा, इसलिए पहिली बात तो उसे अपने पति की अवस्था को अपनी मानने की है; किन्तु बहू से यह होना असम्भव देखती हूँ। मान लो, बच्चू डॉक्टरी पास कर लेने पर भी काफ़ी रुपया न कमावे, तब तो यह उसे भीख मँगवा देगी? उसमें और चाहे जितने भी गुण हों, किन्तु यदि यह आत्मीयता नहीं है, तो मैं सब बेकार समझती हूँ। इसीलिए मुझे उसके इन कामों से भी घृणा होती है।"

मुरारी बाबू एक बार फिर गुम होकर बोले—बहू को समाज में रहने की आदत नहीं है, वह अपने पिता के साथ परदेश में रहती आई; किन्तु जब अपने कन्धों पर आश्रम का भार पड़ेगा तो आप से आप सँभल जायगी। फिर बच्चू भी उसे सुधारने का भरसक यत्न करेगा। इन बातों की चिन्ता अभी क्या पड़ी है? अभी उसके खाने-खेलने का समय है, न कि प्रौढ़ा या वृद्धा के समान किसी बात के तारतम्य का।

"हाँ-हाँ, मैं भी तो यही चाहती हूँ कि वह अभी ख़ूब खाय और ख़ूब खेले, लेकिन प्रौढ़ा या वृद्धा तो वह स्वयं बनती है, जब वह हम लोगों के सामाजिक व्यवहारों की खिल्ली उड़ाती है और आप बैठ कर दिन-रात केवल चिट्ठी लिखती रहती है, न मालूम कहाँ-कहाँ? उस दिन बच्चू जब कॉलेज जा रहा था, वह रो-रोकर उससे कह रही थी कि मुझे या तो अपने साथ ले चलिए, नहीं तो मायके भेज दीजिए। अब आप ही बताइए, क्या हम लोग उसे खा लेंगे? इतना रोना-धोना तो हम लोगों को अपने पतिदेव से ख़ूब परिचित होने पर भी कभी नहीं हुआ, और हो भी क्यों? जब आप किसी काम से बाहर जाते हैं और मेरी सम्मति से जाते हैं, तो मैं व्यर्थ रोकर इस बात की विज्ञापनबाज़ी क्यों करूँ कि मुझे पति-विरह एक क्षण के लिए भी असह्य है? पति को सौ-सौ प्रणाम, यहाँ तक कि अभी से उसका चरणामृत-पान और समाज की माता-बहिनों के लिए उठ कर एक आसन भी प्रदान करना महापाप! ठीक है, उच्च कोटि की पतिव्रता के लिए पति के अतिरिक्त दुनिया में और कोई कुछ है ही नहीं। सच कहती हूँ, अभी बहू को आए हुए बहुत थोड़े दिन हुए हैं, उसने यथार्थ में हम लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ा है; किन्तु उसके विचित्र व्यवहारों से मैं तो बहुत ऊब गई हूँ। उसे मायके भेज देना ही ठीक होगा, फिर आप चरख़ा या करघा मुझसे जो कुछ चलाने कहिएगा, वही करूँगी।"

"बहू के पिता ने फिर भी एक पत्र रुख़सती के लिए लिखा है। बेचारे को यही एक लड़की है, यदि तुम्हारा विचार है तो मैं उन्हें मन्ज़ूरी लिख देता हूँ।"

"ज़रूर लिख दीजिए। वह जिस दिन से बच्चू पटने गया है, कुछ न खाती है, न पीती है; दिन-रात रोती रहती है। मैं यत्न करके हार गई कि वह किसी तरह ख़ुश रहे, किन्तु कोई फल नहीं हुआ।"

अस्तु, मीरा की रुख़सती हो गई। दो महीने की उपस्थिति से विष्णुपुर के लोग उसके विषय में कुछ-कुछ परिचित हो चले थे। राधा को प्रायः पूर्ण परिचय मिल चुका था। वह तभी से निराश रहने लगी। घर में और कोई नहीं है, बस राधा उसकी जेठानी और मुरारी बाबू उसके जेठ। मुरारी बाबू ने अपने छोटे भाई शङ्कर की शादी के पहले मीरा के विषय में बहुत-कुछ पता लगाया था। विदित हुआ कि वह ख़ूब पढ़ी-लिखी, स्वस्थ और गृह-कुशल है। मीरा के पिता सरकारी दफ़्तर में सिरिस्तेदारी का काम करते थे और वह बराबर अपने माता-पिता के साथ रहती थी। उसके पिता ने स्वयं उसे पढ़ाया था और माता ने घर के काम-काज की शिक्षा दी थी। सारांश यह कि मुरारी

शङ्कर के चिर-विवाद का अन्तिम निर्णय हो गया। सास-ससुर या घर की कोई अपील उसके निश्चय को बदल नहीं सकी। उसने उसी दिन पढ़ना छोड़ दिया। होस्टल आकर उसने अपने सामानों को बाँध कर उसी गाड़ी से प्रस्थान कर दिया। मन ही मन मीरा की प्रशंसा करता और अनेक विचारों में डुबकी लगाता हुआ वह सीधे अपने ज़िले की कॉङ्ग्रेस कमिटी में दाख़िल हुआ। उसे आश्चर्य हो रहा था कि मीरा के विचार सहसा इतने उन्नत क्योंकर हुए। किन्तु उसके आश्चर्य का उस समय और भी कोई ठिकाना न रहा, जब उसने आज की ज़िला-सभा में एकाएक मीरा को राष्ट्रीय गाना गाते हुए देखा। उन दिनों बिहार की स्त्रियों में पर्दा-प्रथा तोड़ने की चर्चा भी नहीं थी, बल्कि यह पहला ही अवसर था, जब कि ज़िला-सभा का आरम्भ एक स्त्री के राष्ट्रीय गाने से हुआ था। शङ्कर के मन में क्षोभ और आनन्द दोनों हुआ। सभा समाप्त होने पर उसने मीरा से पूछा—

"प्रिये! तुम तो सचमुच मेरी पुरोगामिनी हो रही हो। किन्तु बाबू जी ने तुम्हे क्योंकर आने दिया?"

मीरा ने प्रणाम करते हुए उत्तर दिया—प्राणनाथ! मैं वास्तव में आपकी तुच्छ अनुगामिनी हूँ। मुझ स्त्री को पर्दे के महाजाल से तो पहले छुटकारा मिले, तब कहीं हम लोगों के काम का पता लगेगा; किन्तु देखती हूँ, नेता लोग भी पर्दा हटाने का कुछ उद्योग नहीं कर रहे हैं। मुझे एक भयानक फोड़ा हो गया था, जिसका ऑपरेशन करवाने के लिए मैं यहाँ लाई गई। आज बाबू जी से छिपा कर यहाँ आ गई। आप जानते ही हैं कि बिसुनदेव कैसा ज़िद्दी है। उसी ने मुझे राष्ट्रीय गाना गाने को विवश किया।

"तो अब क्या विचार हैं?"

"बस, पिता जी के साथ घर लौट जाऊँगी। और क्या? मैं मर्द थोड़े ही हूँ कि बाहर जाकर कोई काम कर सकूँ? हाँ, घर के अन्दर आप जो कुछ कहें, करने को तैयार हूँ।"

"प्रिये, ऐसा मत सोचो। समय आ रहा है, जब कि स्त्रियाँ भी राष्ट्रीय यज्ञ में भाग लेंगी और काफ़ी तादाद में भाग लेंगी। यह तो निश्चय है कि बिना स्त्री के किसी पुरुष का यज्ञ पूरा नहीं होता है। यदि तुम्हारी जैसी स्त्री प्रत्येक घर के अन्दर मौजूद हो, तो उस देश के मर्द भी बहुत-कुछ कर सकते हैं, किन्तु चलो इस समय तुम्हें डेरे पर पहुँचा आऊँ और बाबू जी से भी मिल लूँ।"

यही था उन दोनों का वीरोचित मिलन। मीरा के मधुर गान के कारण भी शङ्कर की बहुत-कुछ ख्याति हुई। मित्रों ने उन्हे Accomplished wife पाने पर Congratulations दिए और वे भी फूले नहीं समाए। उन्होंने बड़े मनोयोगपूर्वक राष्ट्रीय कार्य करना प्रारम्भ किया। फलतः शङ्कर शीघ्र ही वीर-गति को प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें एक वर्ष का कठिन कारावास मिला और यही था उनके जीवन का प्रथम पटाक्षेप।

३

भाग्यचक्र चाहे मानो या नहीं, वह होता है बड़ा प्रबल। कौन जानता था कि जिस समय बारडोली सविनय आज्ञा-भङ्ग के लिए तैयार हो रही थी, उस समय चौरी-चौरा का अकाण्ड ताण्डव होगा और असहयोग आन्दोलन की इतिश्री हो जाएगी? किन्तु शङ्कर बाबू के जीवन में इस घटना की एक अजीब समता देखी गई। जेल से छूटने पर आन्दोलन को जैसे-तैसे जीवित रखने के लिए उन्होंने तब तक के लिए राष्ट्रीय पाठशाले में एक शिक्षक का पद स्वीकार कर लिया था और उसी जगह वे राष्ट्रीय कार्य कर रहे थे। वे जब-जब ससुराल जाते थे, उनके श्वसुर उन्हें फिर से कॉलेज ज्वाइन करने को कहते थे, किन्तु उन्होंने पक्का इरादा कर लिया था कि सरकारी नौकरी नहीं करूँगा, इसलिए उन्होंने ऐसा नहीं किया। अस्तु, एक बार जब वे अपने ससुराल गए तो विदित हुआ कि मीरा गर्भवती है। रात दिन राष्ट्रीय कार्यों में लगे रहने के कारण वे हर बात को उसी प्रकार सोचने के आदी हो गए थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक मीरा से पूछा—प्रिये! विदित होता है, जिस प्रकार भारत-भूमि कुछ दिनों में स्वतन्त्रता-रूपी सन्तान को प्रसव करने जा रही है, उसी प्रकार तुम भी मुझे पितृ-ऋण से मुक्त करने के लिए इन लक्षणों से युक्त हुई हो।

"क्या आप यह सोच कर प्रसन्न हैं कि भारतवर्ष अभी स्वतन्त्र हो जाय?"

"अजी, कौन ऐसा भारतवासी होगा, जो इस बात से प्रसन्न न हो?"

"कम से कम मैं तो इससे प्रसन्न नहीं हूँ।"

"आश्चर्य! आश्चर्य!! तुम मज़ाक करती हो। सच कहो, तुम्हारे कहने का क्या अर्थ है मीरा?"

"सच कहती हूँ, मैं इससे प्रसन्न नहीं हूँ।"

"तो यह हो सकता है कि हम लोग ग़ुलामी के इतने आदी हो गए हैं कि स्वतन्त्रता से सहसा डरते हैं, वरना डरने की इसमें क्या बात है?"

"डरने की बात? मैं तो कहती हूँ, यह जीने-मरने की बात है। आप तो स्वयं डॉक्टर हैं, असमय का गर्भाधान कितना घातक होता है, कहने की ज़रूरत नहीं।"

"प्रिये, तुम्हारा भय निराधार है। यह सही है कि प्रसव-कार्य हर अवस्था के लिए और विशेषतः प्रथम बार तो अवश्य ही भयानक होता है; किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है, जिसमें तुम्हारी उम्र के कारण कोई विशेष भय उपस्थित हो। यों तो परमात्मा को जो मञ्ज़ूर होगा वही होगा, किन्तु हम लोगों के अधीन जो कुछ भी उपाय तुम्हारे और बच्चे के हित का होगा, वह सब अवश्य किया जायगा।"

"किन्तु मेरी तो यही धारणा है कि न तो भारत ही इस योग्य है और न मैं ही इस योग्य हूँ। पहले तो इस शिशु का जन्म ही होना असम्भव है और यदि हो भी गया तो इसका पालन और भी असम्भव है?"

"तो तुम्हारा विचार क्या है?"

"यही कि इसको नष्ट कर दिया जाय।"

"छी-छी! माता के हृदय में ऐसा दुर्विचार? क्या यह कलङ्क का भार है या वेश्याओं का व्यापार? स्वाभाविक रूप से बच्चा जनने में जितनी क्षति प्रसूती को उठानी पड़ती है, उससे कहीं अधिक क्षति कृत्रिम उपायों से गर्भपात करने में होती है। समूचे शरीर में विष का असर पैदा हो सकता है या रक्ताल्पता की बीमारी हो सकती है। फिर यह काम धर्म और क़ानून दोनों के विरुद्ध है। मैं तो कभी तुम्हारे इस दुर्विचार का समर्थन नहीं कर सकता। क्या तुमने माता जी से पूछा है?"

"हाँ, मैंने पूछा है, वह भी यही राय देती हैं।"

"और पिता जी से?"

"उनकी कोई राय नहीं है।"

"तो फिर मेरी सम्मति व्यर्थ है? देखो, कर्तव्य के समय में समझदार आदमी को हर्गिज़ ऐसी ग़लती नहीं करनी चाहिए। सारी गीता में भगवान ने अर्जुन को यही आदेश दिया है कि प्राण जाने पर भी अपने कर्तव्य से च्युत नहीं होना चाहिए। क्या तुम इससे चूक जाओगी?"

"प्राणनाथ! यदि आप कृष्ण बनिए तो मैं भी अर्जुन बनने के लिए तैयार हूँ, अन्यथा मुझसे इस कर्तव्य का निर्वाह नहीं होगा। मैंने यह सब बात केवल आपके हृदय की परीक्षा के लिए कही है, अन्यथा मुझे भी ऐसी इच्छा नहीं है। अस्तु, तो आप निश्चिन्त रहिए।"

शङ्कर कुछ प्रसन्न हुए और उन्होंने मीरा को भरसक प्रोत्साहित भी किया। दो-चार दिनों के बाद वे कुछ सन्दिग्ध चित्त से बिदा हुए। मीरा कहीं अपने कर्तव्य से च्युत न हो जाय, इसलिए वे पत्र में भी उसे उचित शिक्षा देते रहे। किन्तु चित्त को शान्ति नहीं थी, इसलिए फिर लौट कर वे ससुराल आए। मीरा स्वभाव की ज़िद्दी थी। उसने यद्यपि शङ्कर से प्रतिज्ञा की थी कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करेगी, तथापि उसे अपने प्राणों की आशङ्का बनी रहती थी। उसे उनके इतना शीघ्र लौटने की कोई आशङ्का नहीं थी। संयोगवश उनके आने के एक दिन पहले ही वह एक दवाई खा चुकी थी। शङ्कर ने जिस समय घर में पदार्पण किया, उस समय मीरा दर्द के मारे छटपटा रही थी और भयानक रक्तपात में आलिप्त थी। इस अकाण्ड ताण्डव का कारण वह स्वयं थी, इसलिए उनके चित्त में दया और सहानुभूति के बदले घृणा एवं क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने तुरन्त वहाँ से चल दिया। दूसरे दिन समाचार-पत्रों में देखा कि चौरी-चौरा में भयानक हत्याकाण्ड उपस्थित हुआ है, फल-स्वरूप महात्मा जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया है। उनका विचार मीरा के प्रति बहुत बदल गया और वे हृदय से उदास रहने लगे। इसी बीच में देश भी ठण्डा पड़ गया। यह था उनके जीवन का दूसरा दृश्य।

४

बिखरी हुई शक्तियों को समेट कर जिस प्रकार कोई साहसी योद्धा अपनी धुन में आगे बढ़ता है, उसी प्रकार

शङ्कर भी कई वर्षों तक अपने कर्तव्य-पथ का निश्चय करते रहे। मीरा ने इस समय यदि उनके बढ़ते हुए वेगों को अपनी विशेष नम्रता से शान्त नहीं किया होता तो पत्थर पर टकराए हुए जहाज़ के समान उनका हृदय टूक-टूक हो गया होता। दोष स्वीकार, क्षमा-प्रार्थना, और भविष्य की प्रतिज्ञा आदि ऐसी चीजें हैं, जिनसे पत्थर भी पसीज सकता है। शङ्कर भी लाचार अपनी स्त्री पर प्रसन्न हुए और उन्होंने अपराध भी क्षमा कर दिया; किन्तु इस समय समस्या थी गार्हस्थ्य जीवन की। शङ्कर ने स्वतन्त्र-रूप से एक डिस्पेन्सरी खोल रक्खी थी। इस समय उनकी आय उतनी नहीं थी कि वे अपने परिवार को भी चला सकें। जिस बड़े भाई ने इतने दिनों से शङ्कर को पढ़ाया था और जिस भाभी ने उन्हें माता के समान पाला था, उनके प्रति शङ्कर का बहुत-कुछ कर्तव्य था। सगे-सम्बन्धी और समाज वाले भी उनसे बहुत-कुछ आशा बाँधे बैठे थे। किन्तु शङ्कर से किसी का उपकार नहीं हो सका। हाँ, जब-जब वे घर जाते थे, धनी-गरीब सबको समान भाव से देखते थे और उनकी बीमारी में कुछ न कुछ दवाई दिया करते थे। डिस्पेन्सरी का भी विचित्र हाल था। कहने को तो वे करते थे डॉक्टरी, किन्तु दवाई देते थे आयुर्वेदी। बहुत हुआ तो बङ्गाल फ़र्मेस्युटिकल ऐण्ड केमिकल वर्क्स की पेटेन्ट दवाइयाँ या ऐसी ही स्वदेशी दवाइयों का नाम बतला देते थे। जिस प्रकार कोई वकील अपने मवक्किलों को मामले की राय न देकर, सुलह करने की राय देकर अपनी आमदनी से हाथ धो बैठता है, वही हालत शङ्कर के पेशे की थी। पूँजी न रहने पर भी ग़रीबों को मुफ़्त में दवा दिया करते थे। तिस पर तुर्रा यह था कि जम कर डॉक्टरी भी नहीं करते थे। उनका बहुत सा समय कॉङ्ग्रेस के कार्यों या अन्य प्रकार की सभा-समितियों में बीतता था। ऐसी स्थिति में आमदनी हो भी तो कैसे। उन्होंने फिर भी मीरा को आज़माना चाहा। वे चाहते थे कि यदि रुपए-पैसे की मदद भाई-भाभी को नहीं कर सकता हूँ, तो कम से कम मीरा उनके पास जाकर कुछ दिनों के लिए ठहरे और उन लोगों को अपनी सेवा से प्रसन्न करे, किन्तु मीरा को यह बात पसन्द न थी। उसने देहात की अनेक कठिनाइयों का दिग्दर्शन करा कर अपनी इच्छा उनके साथ ही रहने की प्रगट की। शङ्कर इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। निदान वे उसी शहर में रहने लगे और उसी डॉक्टरी की थोड़ी आय से अपनी जीविका चलाने लगे। इस जीवन की एक विशेषता यह थी कि मीरा के ऊपर ही परिवार का सारा भार था।

शङ्कर ने आशा की थी कि यदि मेरी आय कम है, तो परिवार भी बहुत छोटा है। यदि मैं कुछ लापरवाह हूँ तो मीरा चतुर है। पारस्परिक सहयोग से अवश्य ही उनकी दशा सुधर जायगी; किन्तु दुर्भाग्य-वश उनकी यह भी धारणा व्यर्थ निकली। मीरा गृह-कार्य में कुशल थी, किन्तु शरीर से निकम्मी थी। वह तीक्ष्ण-बुद्धि थी; किन्तु अच्छी चीज़ों को भी बुरे ही अर्थ में ग्रहण करती थी। वह उन्नत विचारों की थी, किन्तु बहुत दलील करने वाली थी। वह संग्रह करने वाली थी; किन्तु रक्षा करने वाली नहीं। अनेकानेक परस्पर विरोधी गुणों की उसमें भरमार थी। शङ्कर बाबू अपने घर की बिखरी हुई दशा देख कर बहुत ही खिन्न रहा करते थे; किन्तु गले में ढोल पड़ गया था, बजाने के सिवाय दूसरा उपाय नहीं था। जैसे-तैसे उन दोनों की अनमेल जोड़ी जीवन को आगे घसीटे जा रही थी।

आज सवेरे रसोई न हो सकने के कारण डॉक्टर साहब को बिना कुछ खाए ही काल में बाहर जाना पड़ा। मीरा ने न तो स्वयं कुछ खाया और न डॉक्टर साहब के लिए ही बना कर कुछ रक्खा। घर लौटने पर उन्होंने कुछ बाज़ार से मँगा कर खा लिया। मीरा से बिना कुछ कहे-सुने वे काल में फिर बाहर चले गए। शाम हुई, घर लौटे। पड़ोस के एक बाबू का नौकर थर्मोमीटर के लिए खड़ा था। इधर-उधर काम के लिए एक-दो थर्मोमीटर योंही रक्खे रहते थे। डॉक्टर साहब ने अपने नौकर को घर से थर्मोमीटर लाने को कहा। उत्तर मिला, नहीं मिलता है। वे स्वयं आकर मीरा से पूछने लगे—थर्मोमीटर क्या हुआ?

मीरा ने झुँझला कर उत्तर दिया—मैं नहीं जानती।

"अक्सर तुम उससे काम लेती हो, जानती क्यों नहीं?"

मीरा ने क्रोध से उत्तर दिया—नहीं, मैं नहीं जानती।

"भई, दिन-रात तुम्हें उसका काम पड़ता है, कहीं इसी जगह होगा। ज़रा खोज तो देखो ?"

"है तो ख़ुद खोज लीजिए।"

"ज़रा मनुष्यता से काम लो। पड़ोस के एक मित्र को उसकी आवश्यकता है। उसका नौकर बाहर खड़ा है।"—कह कर डॉक्टर साहब ख़ुद खोजने लगे।

"सारी मनुष्यता तो आप ही में भरी पड़ी है।"—कह कर मीरा ने घाव पर नमक छिड़क दिया।

डॉक्टर साहब ने भी तमक कर उत्तर दिया—बेशर्म, बेहया! ज़रा उठ कर तलाश कर देगी तो क्या कमर टूट जायगी ?

"साहब रहने दीजिए अपनी हया और शर्म। मुँह सँभाल कर बोलिए, मैं नहीं उठती।"

"ख़बरदार!"

"ख़बरदार!"

डॉक्टर साहब मारने पर उद्यत हुए। मीरा भी सामना करने के लिए उठ खड़ी हुई। वह 'चाँद' इत्यादि बराबर पढ़ा करती थी और दुष्ट पतियों से स्त्रियों को अपनी आत्मरक्षा के लिए किस प्रकार तैयार रहना चाहिए, यह बात वह भली-भाँति जानती थी। डॉक्टर साहब दुष्ट हों या नहीं, किन्तु मीरा ने कम से कम उस समय उन्हें वैसा ही समझ लिया था। डॉक्टर साहब रुक गए। उन्होंने सोचा—मारा तो भी ख़राब और मार खाया तो भी ख़राब। वे झटपट बाहर चले आए। वह आदमी देर होते देख कर लौट गया था।

शङ्कर अपने कमरे में अकेले बैठ कर सोचने लगे—ज़रूर मीरा का संयोग मेरे साथ ख़राब लग्न में हुआ है। इसने जब भ्रूण-हत्या की थी, उसी समय मैंने समझा था कि यह सब कुछ कर सकती है और आज यह बात प्रत्यक्ष भी हो गई। मैं उसे स्वतन्त्रता देता जाता हूँ और वह उसका दुरुपयोग करती जाती है। इससे गृहस्थी चलना असम्भव है। यदि हिन्दू-लॉ में Divorce की प्रथा रहती, तो सम्बन्ध-विच्छेद ही इस गृह-कलह की एकमात्र दवा थी; किन्तु ऐसा होना असम्भव है। फिर समझाना-बुझाना या शासन करना भी असम्भव है।

इतने में मीरा कमरे में आकर रोने लगी और कहने लगी कि आपको मेरा तनिक भी ख़याल नहीं है। मैं दिन भर आपके लिए निराहार हूँ, किन्तु आपने पूछा तक नहीं कि कैसी हो ?

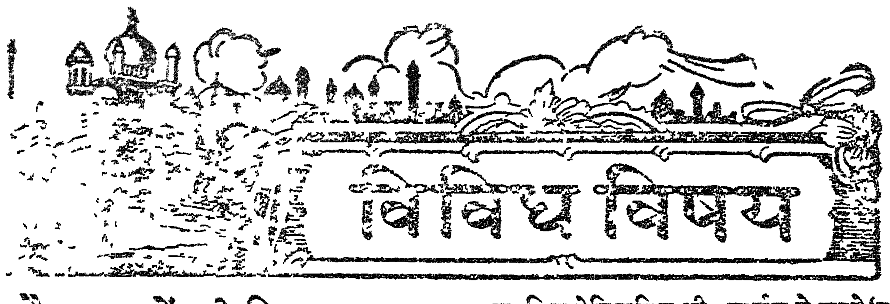
"क्या ख़ूब ? यदि ऐसी ही बात थी तो मुझे पहले ही क्यों न कह दिया ? और मेरे लिए निराहार रहने की ज़रूरत ही क्या थी। फिर यदि निराहार ही रही तो कुछ खाने का भी प्रबन्ध तो करना चाहिए था ?"

"दिन-रात की यह तकरार मुझे असह्य हो रही है, मुझे मायके जाने दीजिए।"

"आख़िर तकरार करने वाला है कौन ? घर में तो मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। तब यह क्यों नहीं कहती हो कि तुम्हें मेरे साथ रहना अस्वीकार है। तब एक बात क्यों न करो। संयोगवश आज मैंने स्थानीय कन्या-पाठशाला की शिक्षिका के लिए उसके मन्त्री को तुम्हारा नाम बताया है और वे तुम्हें वह पद देने के लिए तैयार भी हैं। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसे स्वीकार कर स्वतन्त्र रह सकती हो। ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ हैं, जो गृहस्थी में सफल न होती हुई भी दूसरे मार्ग में सफल हैं। सम्भवतः तुम्हारी भी यही दशा हो।"

"परिणाम तो परमात्मा के हाथ में है, किन्तु मैं शिक्षिका होना चाहती हूँ।"

तब से मीरा स्कूल की शिक्षिका है और वह अपने पति से विमुक्त रहती है। इसी से उसे शान्ति है और डॉक्टर साहब भी इस विच्छेद से ख़ुश हैं। न मालूम आगे इन दोनों की क्या गति होगी।



बौद्धकाल में स्त्री-शिक्षा

बौद्ध-युग भारत की सर्वाङ्गीन उन्नति का युग था। वैदिक काल के बाद, धर्मचर्चा, राजनीति, साहित्य, कलाकौशल, ज्योतिष, आयुर्वेद और व्यवसाय-वाणिज्य आदि में भारत ने जैसी उन्नति इस युग में की थी, वैसी और किसी युग में नहीं की। इतिहास के पृष्ठों में बौद्धकाल के तक्षशिला, नालन्दा, अजन्ता, सारनाथ, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालयों का वर्णन पढ़ कर हमें चकित रह जाना पड़ता है। इन विश्वविद्यालयों में केवल भारतवर्ष ही नहीं, वरन् एशिया के अन्यान्य देशों और यूरोप के विद्यार्थी भी आकर ज्ञानार्जन किया करते थे। भारत उस समय संसार का सर्वप्रधान विद्या-केन्द्र था। चीनी पर्यटकों ने अपने यात्रा-विवरणों में तक्षशिला तथा नालन्दा आदि के विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त और भी कितने ही विद्यालयों और महाविद्यालयो का उल्लेख किया है। देश के धनवान और राजे-महाराजे इन विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों का ख़र्च चलाया करते थे। इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क या फ़ीस नहीं ली जाती थी, प्रत्युत विद्यार्थियों को भोजन आदि भी उन्हीं शिक्षा-संस्थाओं द्वारा प्राप्त होता था। सैकड़ों विद्वान वहाँ शिक्षा-दान के लिए नियुक्त थे। ज्योतिष, व्याकरण और दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्रदान करने वाले महाविद्यालयों के अलावा चित्रकला और हस्त-शिल्प की शिक्षा के लिए भी बहुत से विद्यालय और महाविद्यालय मौजूद थे। तत्कालीन ब्राह्मण और बौद्धभिक्षु सङ्गतराशी, मन्दिर-निर्माण और चित्रकला आदि में बड़े ही निपुण होते थे। ईसा की पाँचवीं और छठवीं शताब्दी में बौद्धों के सभी विहार और चैत्य शिक्षा के केन्द्र थे।

सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक श्री० मार्शल ने अपने 'ए गाइड-टू टेक्सिला' (A Guide to Taxila) नामक ग्रन्थ में तक्षशिला के विश्वविद्यालय का वर्णन करते हुए लिखा है कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों के सब श्रेणी के छात्र इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते थे। यहाँ कोशलराज प्रसेनजित और जीवक जैसे साधारण मनुष्य एक साथ बैठ कर विद्याध्ययन करते थे। भारतवर्ष के बहुत से राज्यों के राजकुमार यहाँ साधारण श्रेणी के विद्यार्थियों के साथ शस्त्र विद्या की शिक्षा प्राप्त करते थे। तक्षशिला के विश्वविद्यालय में धनुर्वेद, आयुर्वेद, गान्धर्व-विद्या, अर्थशास्त्र, व्याकरण और वेद-वेदान्त आदि विविध विषयों को शिक्षा दी जाती थी। बौद्धों के महा सुतसोम नामक जातक-ग्रन्थ मे लिखा है कि तक्षशिला में सैकड़ों राजकुमार अस्त्र-विद्या सीखते थे। क्योंकि वहाँ की शिक्षा से उनमें समानता और कष्टसहिष्णुता के भावों का उदय होता था। साधारण छात्रों के साथ साधारण जीवन व्यतीत करने के कारण वे अपने राजकुमार होने के अहङ्कारों को भूल जाते थे। इसके सिवा वहाँ उन्हें सव-साधारण के आचार-व्यवहार से भी परिचित होने का अवसर मिलता था। इन वर्णनों से मालूम होता है कि बौद्ध-काल में यहाँ शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध था और देश के अधिवासी शिक्षा का महत्व भी समझते थे। परन्तु इन वर्णनों से यह पता नहीं चलता कि विद्या-शिक्षा का यह विराट आयोजन केवल पुरुष-छात्रों के लिए ही था या स्त्रियों के लिए भी? किसी भी इतिहासकार ने इस प्रश्न पर प्रकाश नहीं डाला है कि बौद्ध-युग में स्त्रियों की शिक्षा का कोई विशेष प्रबन्ध था अथवा उपर्युक्त विश्वविद्यालयों में छात्रों के साथ ही छात्रियो की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। परन्तु बौद्ध-ग्रन्थों के पढ़ने से यह मालूम होता है कि बौद्ध-धर्म से प्रभावान्वित होकर जिन रमणियों ने सर्वस्व परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर

लिया था और अपने भिक्षु-भ्राताओं के साथ देश-विदेशों में भ्रमण करती हुई बौद्ध-धर्म का प्रचार किया करती थीं, वे केवल सामान्य शिक्षिता ही नहीं, वरन् परम विदुषी होती थीं। धर्मोपदेशों को समझने और दूसरों को धर्मोपदेश प्रदान की योग्यता के सिवा साधारण शिक्षा-व्यापार की जानकारी भी उन्हें होती थी। इनके अपूर्व त्याग, कष्टसहिष्णुता और बौद्ध भिक्षु-सङ्घ के कठोर नियमों के पालन करने का जो वर्णन इतिहास में मिलता है, उससे यह अनुमान करना असङ्गत न होगा कि बौद्ध-युग की बहुत सी स्त्रियाँ शिक्षा-दीक्षा में पुरुषों के बराबर थीं। आजकल की तरह अविवाहिता बालिकाओं को विद्यालयों में भेज कर शिक्षा दी जाती थी अथवा गृहस्थों ने अपने घरों में ही अपनी कन्याओं की शिक्षा का कोई प्रबन्ध कर रक्खा था, इस बात का कोई उल्लेख बौद्ध-ग्रन्थों में नहीं मिलता। परन्तु शिक्षिता स्त्रियों का उल्लेख प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। पाली धर्म-ग्रन्थों के मतानुसार 'थेरीगाथा' नामक ग्रन्थ के श्लोकों की रचना ऋषिकल्पा विदुषियों द्वारा ही हुई थी। सुक्का नाम की भिक्षुनी के धर्मोपदेश तथा क्षेमा और धर्मदिन्ना की दार्शनिक आलोचना के उल्लेखों से पता चलता है कि इन पण्डिताओं ने दर्शनशास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया था। इससे मालूम होता है कि बौद्ध-युग में लड़कों की तरह ही लड़कियों के पढ़ने-लिखने का भी अवश्य ही कोई समुचित प्रबन्ध था। यद्यपि बहुत से अङ्गरेज़ ऐतिहासिक यह मानने को तैयार नहीं हैं कि जो स्त्रियाँ थेरीगाथा का गान किया करती थीं, उन्होंने ही उसकी रचना भी की थी; परन्तु अपने मत की पुष्टि के लिए वे कोई प्रमाण भी नहीं उपस्थित कर सकते। इसलिए भारतीय विद्वान इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, कि थेरीगाथा की रचना पुरुषों द्वारा हुई होगी। इनका कहना है कि भगवान गौतम बुद्ध के समय जो लोग गृहस्थाश्रम छोड़ कर अतीन्द्रिय-आनन्द का उपभोग करने से सक्षम हुए थे, उन्हें जब उनके अभिभावक गार्हस्थ्य-सुख के प्रलोभन में फँसा कर पुनः संसारी बनाने की चेष्टा करते थे और इन्द्रिय-सुख के विशद वर्णन द्वारा उन्हें विपथगामी बनाते थे, तो वे उस समय उन पाण्डित्यपूर्ण तथा त्यागमय भावों से भरे श्लोकों की रचना करके उन्हें गाया करते थे। विद्वानों को इस बात में सन्देह नहीं है कि ये गाथाएँ स्त्रियों द्वारा ही गाई जाती थीं, पुरुष इन्हें नहीं गाया करते थे। इसके सिवा बौद्ध-युग में ऐसी बहुत सी स्त्रियाँ थीं, जिनका जीवनोद्देश्य लोगों को शिक्षा देना था। अध्यापकों की तरह ये विदुषी अध्यापिकाएँ भी सांसारिक सुखों को छोड़ कर लोगों को शिक्षा प्रदान किया करती थीं। जो भिक्षुनी बन कर धर्मोपदेश प्रदान करते फिरना पसन्द नहीं करती थीं, उन्होंने शिक्षा-दान को ही अपना जीवन-व्रत बना लिया था। बौद्ध-ग्रन्थों में ऐसी कितनी ही पण्डिताओं का उल्लेख पाया जाता है।

संयुक्त-निकाय नामक जातक-ग्रन्थ में सुक्का नाम्नी एक विदुषी का उल्लेख है। यह एक भिक्षुनी थी और इसने राजगृह की एक महती सभा में हज़ारों श्रोताओं के सामने भाषण किया था। पण्डिता सुक्का के भाषणों का जनता पर यहाँ तक प्रभाव पड़ा कि यक्ष जाति का एक मनुष्य राजगृह की गलियों में घूम-घूम कर कहा करता था कि देवी सुक्का सुधा बरसा रही हैं, बुद्धिमानों को चाहिए कि वे अवश्य जाकर सुधा-पान कर आएँ। क्षेमा नाम की भिक्षुनी विनय-गान के लिए विख्यात थी। समस्त विनय-ग्रन्थों को इसने अच्छी तरह रट डाला था और बड़े ही मधुर स्वर से गान किया करती थी। क्षेमा शिक्षिता और बुद्धिमती रमणी थी। इसने बहुत पढ़ा था और बड़ी अच्छी वक्तृता भी दे सकती थी। एक बार राजा प्रसेनजित ने विदुषी क्षेमा के पास जाकर पूछा—मृत्यु के बाद जीव पुनर्जन्म प्राप्त करता है या नहीं?

क्षेमा ने कहा—भगवान बुद्ध ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया है?

राजा ने फिर पूछा—भगवान तथागत ने इस प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया है?

क्षेमा ने राजा से पूछा—क्या आप ऐसे किसी व्यक्ति को जानते हैं, जो गङ्गा की बालुका और समुद्र के जल-बिन्दुओं की गणना कर सके?

राजा ने उत्तर दिया—नहीं, मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता।

खेमा ने कहा—यदि कोई पञ्चतत्वों के आकर्षण से अपने को मुक्त कर सके, तो वह असीम अतलस्पर्श समुद्र का रूप धारण कर सकता है। फलतः मृत्यु के बाद ऐसे जीव का पुनर्जन्म धारणातीत वस्तु है।

खेमा का यह उत्तर सुन कर राजा को परम सन्तोष हुआ और वह उसके चरणों में प्रणाम करके चला गया।

भद्रा कुन्तलकेशा नाम की एक विदुषी ने संसार छोड़ कर 'निगण्ठ' नामक सम्प्रदाय में प्रवेश किया था। निगण्ठों के मतवाद का अच्छी तरह अध्ययन करने के बाद उसने उक्त सम्प्रदाय के पण्डितों का सत्सङ्ग किया था। तर्क में एक सारिपुत्र के सिवा दूसरा कोई विद्वान कुन्तलकेशा का मुक़ाबला नहीं कर सकता था। इसी सारिपुत्र ने केवल एक बार कुन्तलकेशा को परास्त किया था। तत्कालीन पण्डितों में कुन्तलकेशा की विद्वत्ता की धाक जमी हुई थी।

बौद्धों के मज्झिमनिकाय नामक ग्रन्थ में धम्मदिन्ना नामी एक विदुषी महिला का उल्लेख पाया जाता है। मज्झिमनिकाय में लिखा है कि एक दिन धम्मदिन्ना के पति ने अपनी विदुषी पत्नी से बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में कई कठिन प्रश्न किए थे। धम्मदिन्ना ने अपने पति के सभी प्रश्नों का यथार्थ उत्तर प्रदान करके उसकी शङ्का की निवृत्ति की। धम्मदिन्ना के प्रदान किए हुए उत्तरों से बौद्ध-धर्मशास्त्र सम्बन्धी कई जटिलताओं पर विशेष प्रकाश पड़ा था। धम्मदिन्ना ने बौद्धों के विनय-ग्रन्थों का भी ख़ूब अध्ययन किया था। वह धर्मशास्त्र के कठिन से कठिन प्रश्नों का बड़ी सरलता से उत्तर प्रदान कर सकती थी।

एक और बौद्ध विदुषी का ज़िक्र 'विमानवत्थु' नामक बौद्ध-ग्रन्थ में पाया जाता है। यह श्रावस्ती के किसी उपासक की कन्या थी और नाम था लता। यह देवी शिक्षिता, ज्ञानी और बुद्धिमती रमणी थी। इसके सिवा वह जादू-विद्या भी जानती थी। बौद्धों के विनय-पिटक नामक ग्रन्थ को इसने बहुत अच्छी तरह पढ़ा था और लोगों को उसकी शिक्षा दिया करती थी। दीपवंश नामक बौद्ध-ग्रन्थ में लिखा है कि अनुराधापुर में यह बहुत दिनों तक बौद्ध-भिक्षुओं और अन्य जिज्ञासुओं को पिटकों की शिक्षा देती रही। यही नहीं, कई पिटक ग्रन्थों का इस विदुषी ने सम्पादन भी किया था।

अञ्जलि नाम की एक विदुषी में कितने ही अलौकिक गुण थे। इसके सिवा यह महान दैवी शक्ति की अधिकारिणी मानी जाती थी। सङ्घमित्ता की तरह इसने भी विनय-पिटक में अपूर्व पारदर्शिता प्राप्त की थी और शिक्षार्थियों को पिटक की शिक्षा प्रदान किया करती थी। अञ्जलि अपने सोलह हज़ार भिक्षुओं को लेकर अनुराधापुर गई थी और बहुत दिनों तक रह कर लोगों को पिटक की शिक्षा प्रदान की थी।

उत्तरा नाम की पण्डिता त्रिविध विज्ञान की ज्ञाता थी और जादू विद्या भी जानती थी। इसने बहुत से ग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया था। अनुराधापुर के महाविद्यालय में इसने विद्यार्थियों को विनय-पिटक, सुत्तपिटक तथा अभिधर्म सम्बन्धी सात ग्रन्थों के पढ़ाने का भार लिया था।

काली एक चरित्रहीन पिता की पुत्री थी। परन्तु स्वयं अत्यन्त पवित्र चरित्र वाली और परम पण्डिता थी। इसने समस्त बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों का पाठ किया था। अनुराधापुर में इसने भी विनय-पिटक सम्बन्धी शिक्षा दी थी। इसके उपदेशों का जनता पर बहुत जल्द प्रभाव पड़ता था।

उपर्युक्त शिक्षिता रमणियों के अतिरिक्त सयत्ता, हुला, उपालि, रेवती आदि और भी कई स्त्रियों ने विनय-पिटक आदि बौद्ध-ग्रन्थों का अध्ययन किया था तथा आजीवन बौद्ध-धर्म का प्रचार करती रहीं। सीवला और महारुहा नाम की पण्डिताओं ने भी अनुराधापुर तथा अन्य स्थानों में लोगों को पिटकों की शिक्षा दी थी।

हेमा त्रिविध विज्ञान की जानने वाली पिटकों की पण्डिता और अत्यन्त पवित्र आचरण वाली भिक्षुनी थी। इसने साधना द्वारा अलौकिक दैवी शक्ति अर्जित की थी। चूलभागा, धन्ना, सोना, महातिस्सा, चूलसुमना, और महासुमना आदि स्त्रियाँ भी हेमा की भाँति ही सुपण्डिता, शास्त्राज्ञा और प्रतिभा वाली थीं। इन्होंने भी ख़ूब बौद्ध-धर्म का प्रचार किया था। नन्दुत्तरा और विद्या शिल्पकला में पारदर्शिनी थीं। विनय-पिटक की पण्डिताओं में पटाचारा

नाम की एक विदुषी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। अङ्गुत्तरनिकाय नामक ग्रन्थ में इस विदुषी का विशद वर्णन पाया जाता है। उप्पलवन्ना, शोभिता, इसिदासिका, विशाखा, सुबला, सङ्घदासी और नन्दा आदि और बहुत सी शिक्षित स्त्रियों का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में पाया जाता है। अनुराधापुर की अध्यापिकाओं की सूची बड़ी ही लम्बी है। धर्मोपदेश के अतिरिक्त अन्यान्य क्षेत्रों में बौद्धकालीन स्त्रियों ने यथेष्ट ख्याति लाभ की था।

इन वर्णनों से मालूम होता है कि बौद्धकाल में लड़कों की तरह ही लड़कियों को भी शिक्षा दी जाती थी। सम्भव है, इसके लिए विद्यालयों और महाविद्यालयों की व्यवस्था रही हो अथवा उन्हीं विद्यालयों और महाविद्यालयों में बालकों के साथ ही बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध रहा हो।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

* * *

स्वर्गीय 'मुनीम जी'

'चाँद' के सङ्गीत-प्रेमी पाठक यह जान कर स्तम्भित रह जाएँगे कि सङ्गीत के सहृदय विद्वान एवं मर्मज्ञ तथा प्रख्यात शिक्षक मुनीम लक्ष्मणदास 'मुनीम जी' अब इस लोक में नहीं। गत शनिवार (४ जून) को वे अचानक चल बसे! उस दिन प्रातःकाल से उन्हें अतिसार आरम्भ हुआ, जिसका अवसान उनके जीवन के साथ हुआ। क्या कहा जाय। कहाँ ऐसा निरभिमानी, गुणी और सन्मित्र मिलेगा। वे अपनी कच्ची गृहस्थी को तो निराश्रय छोड़ ही गए—उनका एक बहुत बड़ा परिवार उनके मित्रों और शिष्यों का है, जो कलकत्ते से दिल्ली तक, हिमालय प्रदेश से जबलपुर तक फैला हुआ है। इस मण्डल को यह समाचार वज्राघात सा लगेगा। पर क्या किया जाय? ईश्वरेच्छा! 'जिसमें कल्याण है वही प्रभु करते हैं'—इस सिद्धान्त से सन्तोष के सिवा अन्य अवलम्ब नहीं।

'मुनीम जी' हारमोनियम जैसे सूखे नीरस काठ को हाथ में लेते ही सुधा का सरोवर बना देते और उसके बड़े से बड़े विरोधी के मुँह से भी वाह-वाह करा कर ही छोड़ते। वे हारमोनियम पर सरोद की गतें बजाते थे, जिनकी शिक्षा उन्होंने उस्ताद करामतुल्ला ख़ाँ से पाई थी। ख़ाँ साहब सरोद वादन में ज़माना-नायक थे, उसी प्रकार उनकी रङ्गत हारमोनियम पर उतारने में मुनीम जी भी एक थे। खेदपूर्ण आश्चर्य है कि एक ही पखवारे में ये दोनों कलाधर भारतीय सङ्गीत-गगन को अन्धकारमय कर गए।

एक बार मुनीम जी को अपना वादन कविवर रवीन्द्रनाथ को सुनाने का सुयोग प्राप्त हुआ था। उस समय मैं भी वहाँ उपस्थित था। रवि बाबू मस्त हो गए थे और अन्त में खुले जी से उन्होंने जो कुछ कहा था उसका आशय यही था कि—"हारमोनियम से भी इतना रस प्रवाहित किया जा सकता है, इसकी कल्पना मुझे न थी।"

भारतीय सङ्गीत के उद्धार एवं प्रचार में वे आजीवन प्रयत्नशील रहे। प्रयाग में बारह वर्ष तक पैसे-पैसे की याचना करके उन्होंने सङ्गीत-पाठशाला चलाई, और ख़ूब चलाई। फिर १९२१ से, जब वे भाई शिवप्रसाद गुप्त के आग्रह से काशी आए, उस दिन से मरने के दिन तक इसी काम में लगे रहे। निःसन्देह यह उनका धर्म, कर्म एवं तप था, जिसके फल-स्वरूप आज हम अपने सद्गृहस्थों में सङ्गीत का इतना समादर और प्रचार देख रहे हैं। ईश्वर अवश्य उनके इस पुण्य सङ्कल्प को पूर्ण करेगा।

मुनीम जी का ध्यान सङ्गीत-विषयक ग्रन्थ-प्रणयन की ओर भी था। 'भैरवी संग्रह' तथा 'सङ्गीत समुच्चय' तो उन्होंने पहले निकाला ही था। इधर सूर, तुलसी आदि के चुने हुए सैकड़ों पदों की सुन्दर स्वरलिपि तैयार की थी। सङ्गीत-शिक्षा की क्रमिक पुस्तक, राग-रागिनी पर एक विशद ग्रन्थ, भारतीय सङ्गीत का इतिहास और भी कितने ही निबन्ध आदि उन्होंने हाथ में ले रक्खे थे। वे अभी केवल सैंतालीस वर्ष के थे। अब उनकी परिपक्व प्रतिभा के रसास्वाद का समय आया था, किन्तु भारत ही एक ऐसा कर्महीन देश है, जहाँ जीवन प्रारम्भ करने के समय जीवन का अन्त हो जाता है।

कौटुम्बिक कर्तव्यनिष्ठा ही उनके विद्या-प्रकाश मे बाधक थीं, तो भी यह बात साभिमान कही जा सकती है कि अपने इस दायित्व को उन्होंने अपने अन्तिम स्वाँस तक कर्तव्यनिष्ठ की तरह निबाहा। वे पक्के सिद्धान्तवादी थे और गार्हस्थ्य जीवन के सम्बन्ध मे उनके जो सिद्धान्त थे, उनके पालन में वे किसी भी विरोध या आक्षेप की परवाह न करते थे।

उदारतापूर्वक विद्यादान, अकृत्रिम निरभिमान, सङ्गीत के प्रति अगाध सहृदय और व्यापक श्रद्धा एवं सिद्धान्त, अन्य गुणियों का हार्दिक समादर, मैत्री का पूर्ण निर्वाह, कृतज्ञता, अजातशत्रुता आदि ऐसे सात्विक गुणों का समावेश उनमें था कि याद आते ही हृदय में एक हूक उठ खड़ी होती है। उनके इन गुणों का विस्तृत रूप में कीर्तन करने की इच्छा है। उनका एक उपयुक्त स्मारक बनाने का विचार भी हो रहा है। ईश्वर इन प्रस्तावों को पूर्ण करे।

उनकी मुस्कराती हुई मूर्ति आँखों में नाच रही है। परन्तु—'मरणान्तंहि जीवितम्।' ईश्वर उन्हें सद्गति तथा उनके कुटुम्ब एवं मित्र शिष्य-वर्ग को यह आघात सहने की शक्ति प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

—कृष्णदास

❀ ❀ ❀

श्रीभैरवरत्न मातृ-पाठशाला, बीकानेर

हमारे शास्त्रकारों ने स्त्रियों के जीवन में मातृत्व को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है। उनके मतानुसार आदर्श माता होना ही स्त्री-जीवन का सर्व-प्रधान और महान उद्देश्य है और विश्व-विधाता ने इसीलिए स्त्री-जाति की सृष्टि की है। यद्यपि संसार के सभी क्षेत्रों में आदर्श स्थान प्राप्त करने का स्त्रियों को अधिकार है, परन्तु मातृत्व की तो वे एकमात्र अधिकारिणी हैं। फलतः आदर्श नारी होने के लिए उन्हें आदर्श जननी होना चाहिए। इसका प्रधान कारण यह माना है कि किसी राष्ट्र के भावी जीवन का सारा दारोमदार आदर्श माताओं पर है। क्योंकि शिशु के कोमल हृदय पर जननी की दी हुई शिक्षा का जो प्रभाव पड़ता है, वह दूसरी किसी प्रकार की शिक्षा का नहीं पड़ सकता। माताएँ जो चाहे अपने पुत्र को बना सकती हैं। इसीलिए अन्यान्य क्षेत्रों में आदर्श स्थान प्राप्त करने की अपेक्षा स्त्रियों के लिए आदर्श माता होना अत्यन्त आवश्यक माना गया है और इस महान आदर्श तक वे तभी पहुँच सकती हैं, जबकि उन्हें आदर्श शिक्षा प्राप्त हो; क्योंकि यह मानी हुई बात है कि जो माता स्वयं शिक्षिता न होगी, वह अपनी सन्तान को भी शिक्षिता नहीं बना सकती।

कालचक्र के कुटिल आवर्त्त में पड़ कर हिन्दू-जाति राष्ट्र-गठन के इस महान तत्व को भूल गई थी। स्त्रियों को उसने अपने भोग-विलास की सामग्री मान लिया था, इसलिए स्त्री-शिक्षा का नाम सुनते ही लोग नाक-भौं सिकोड़ लिया करते थे। यद्यपि अभी तक पूर्णरूप से इस कुत्सित भाव का तिरोभाव नहीं हुआ है, तथापि युग-धर्म के अनुसार धीरे-धीरे लोग इस तत्व को हृदयङ्गम करने लगे हैं और अब तो देहाती मदरसों में भी लड़कों के साथ दो-चार लड़कियाँ काठ की काली तख़्ती और खली मिट्टी की 'बोरिका' लिए बैठी दिखाई देने लगी हैं। तात्पर्य यह कि लड़कियों की शिक्षा को जो लोग अनावश्यक और उन्हें विपथगामिनी बनने का साधन मान बैठे थे, वे भी अब अपनी लड़कियों को मदरसे भेजने लगे हैं। नागरिकों ने तो इस विषय में ख़ासी उन्नति की है। आज से दस वर्ष पहले जिस नगर में पढ़ी-लिखी लड़कियों का सम्पूर्ण अभाव था; वहाँ अब एकाधिक कन्या-पाठशालाएँ सुचारु रूप से चल रही हैं। वास्तव में यह जाति की जागृति के लक्षण हैं।

हमें यह लिखते हुए हर्ष होता है कि व्यवसाय और धनार्जन में आगे बढ़ी हुई तथा शिक्षा में पिछड़ी हुई मारवाड़ी जाति ने भी इस विषय में आशातीत उन्नति की है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और रङ्गून आदि नगरों में उन्होंने अपने लड़कों के साथ ही लड़कियों के पढ़ने-लिखने के लिए भी कई पाठशालाएँ खोल रक्खी हैं। इनमें कई कन्या-पाठशालाएँ तो निहायत ही अच्छे ढङ्ग से चल रही हैं। यहाँ लड़कियों को पढ़ाने-लिखाने और

गृहशिल्प की शिक्षा के साथ ही उनके मानसिक और शारीरिक उत्कर्ष-साधन का भी प्रबन्ध है। ब्रिटिश भारत के सिवा राजपूताना की कई रियासतों में मारवाड़ी व्यवसायियों द्वारा परिचालित ऐसी कन्या-पाठशालाएँ मौजूद हैं। इन्हीं में बीकानेर की 'श्रीभैरवरत्न मातृ-पाठशाला' है, जिसका कुछ हाल हम 'चाँद' के पाठकों और पाठिकाओं को बताना चाहते हैं।

राजपूताने की इस आदर्श मातृ-पाठशाला की स्थापना, आज से चार वर्ष पूर्व, बीकानेर-निवासी सेठ चाँदरत्न बागड़ी ने अपने स्वर्गवासी पुत्र श्री० भैरवरत्न बागड़ी और अपनी स्वर्गवासिनी धर्मपत्नी की स्मृति में की थी। श्रायुत चाँदरत्न जी स्वयं ही इस पाठशाला के प्रधान सञ्चालक या मन्त्री हैं और गत चार वर्षों के स्वल्प समय में अपने प्रिय स्वजनों की इस पवित्र स्मृति को स्थायी बनाने मे आपने जो तत्परता दिखाई है, वह सर्वथा स्तुत्य और प्रशसनीय है। बागड़ी जी ने इस स्मारक की स्थापना में जिस विवेक-बुद्धि से काम लिया है, उसकी प्रशसा किए बिना हम नहीं रह सकते। क्योंकि साधारणतया हमारे देश के धनवान धर्मशालाओं और मन्दिरों द्वारा ही अपने प्रिय परिजनों की स्मृति-रक्षा किया करते हैं। परन्तु हमारा ख़्याल है कि धर्मशालाओं और मन्दिरों की अपेक्षा ऐसे स्मारक विशेष महत्वपूर्ण हैं, जिनसे एक अभाव की पूर्त्ति हो सके और जन-साधारण का कल्याण हो। बीकानेर में कन्याओं की शिक्षा के लिए एक ऐसी मातृ-पाठशाला की नितान्त आवश्यकता थी, जहाँ उन्हें भाषा-शिक्षा और शिल्प-शिक्षा के साथ ही उनके शारीरिक और मानसिक उत्कर्ष-साधन की भी व्यवस्था होती। फलतः बागड़ी जी ने इस संस्था की स्थापना द्वारा बीकानेर-वासियों का जो उपकार किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

स्थापना और क्रमोन्नति

प्रारम्भ में यह पाठशाला 'बागड़ियों की गवाड़' नामक स्थान के एक छोटे से मकान में स्थापित हुई थी। यद्यपि उस समय किसी को यह आशा नहीं थी, कि चार वर्षों के अन्दर ही इसकी इतनी उन्नति हो जायगी, परन्तु बागड़ी जी तथा उनके साथी कार्यकर्त्ताओं में उत्साह था। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के अनुसार उन्होंने कार्यारम्भ किया। बालिकाओं की शिक्षा के लिए एक अध्यापिका तथा उन्हें घर से पाठशाला तक लाने और पहुँचाने के लिए एक सेविका रक्खी गई। ख़र्च का भार बागड़ी जी पर था। कार्यकर्त्तागण लोगों को उत्साह प्रदान करने लगे। देखते-देखते तीस छात्राओं ने आकर नाम लिखाया। परन्तु यह संख्या शीघ्र ही पचास तक पहुँच गई। शिक्षा के मरुस्थल में छात्राओं की यह संख्या कुछ कम न थी। तुरन्त ही एक और अध्यापिका नियुक्त की गई। लड़कियों को सिलाई का काम सिखाने के लिए भी प्रबन्ध किया गया। धीरे-धीरे लोगों का उत्साह बढ़ने लगा। शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था देख कर तथा पाठशाला के कार्यकर्ताओं के उत्साहदान से प्रोत्साहित होकर और भी कई सज्जनों ने अपनी-अपनी कन्याओं को पाठशाला मे भर्ती कराया। फलतः छात्राओं की संख्या जो पहले पचास थी, अब सौ से अधिक तक पहुँच गई। कार्यकर्ताओं का उत्साह बढ़ा और पाठशाला के लिए स्वतन्त्र भवन बनवाने की चर्चा होने लगी। सेठ चाँदरत्न जी ने दो हज़ार गज़ ज़मीन, जिसकी क़ीमत ७,२००) थी, पाठशाला के भवन निर्माणार्थ मुफ़्त प्रदान किया। बीकानेर के विख्यात दानशील सेठ रामगोपाल जी मोहता ने भवन-निर्माण तथा आवश्यक सामान के लिए १२,०००) प्रदान किया। पाठशाला के लिए अपना भवन तैयार हो गया। शिक्षा-दान के लिए कई कमरों के अतिरिक्त एक बड़ा सा कमरा 'सभा-भवन' नाम से भी बनवाया गया। धीरे-धीरे पाठशाला उन्नति की ओर अग्रसर होने लगी।

पाठशाला की वर्तमान अवस्था

गत २८ अप्रैल को बड़े समारोह के साथ, पाठशाला का चतुर्थ वार्षिक उत्सव मनाया गया था। बीकानेर राज्य के प्रधान मन्त्री श्रीमान सर मन्नूभाई मेहता महोदय ने सभापति का आसन सुशोभित किया था। अन्यान्य गण्यमान्य सज्जनों और महिलाओं के अतिरिक्त श्रीमती लेडी मेहता, उनकी दो कुमारियाँ और स्वनामधन्या श्रीमती हंसा मेहता ने भी इस शुभ अवसर पर पधारने की कृपा की थी। परीक्षोत्तीर्ण बालिकाओं को

स्वयं श्रीमती मेहता महोदया ने अपने कर-कमलों द्वारा पारितोषिक प्रदान किया था। इस अवसर पर पाठशाला की छात्राओं ने स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-विज्ञान सम्बन्धी एक मनोरञ्जक अभिनय भी किया था।

इस अवसर पर प्रधान मन्त्री महोदय ने संस्था का जो वार्षिक विवरण पढ़ा था, उससे मालूम होता है कि पाठशाला बड़ी तीव्र गति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रही है और उसके कार्यकर्त्तागण बड़े उत्साह से उसकी उन्नति में लगे हैं। इस समय इस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करने वाली छात्राओं की संख्या १७५ है, जिनमें ब्राह्मण कन्याएँ ३०, क्षत्रिय ५, वैश्य ५५ और अन्यान्य वर्णों की लड़कियाँ ८५ हैं। कुमारियों के अतिरिक्त कई विवाहिताएँ और विधवाएँ भी इस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करने के लिए आती हैं। पढ़ाई का कोर्स यहाँ की परिस्थिति के अनुकूल रुचिकर बनाने का यथेष्ट प्रबन्ध किया गया है। प्रायः सभी उपयोगी विषयों की शिक्षा बालिकाओं को दी जाती है। पाँचवीं और छठवीं कक्षाओं की छात्राओं के लिए प्रयाग-विश्वविद्यालय के कोर्स के अनुसार लोअर मिडिल की पढ़ाई का कोर्स रक्खा गया है। धार्मिक शिक्षा के सिवा बालिकाओं को सदाचार की भी शिक्षा प्रदान की जाती है। शारीरिक उन्नति के लिए उपयुक्त व्यायाम और खेलों की भी व्यवस्था है। भाषा-शिक्षा के अतिरिक्त बालिकाओं को सिलाई और दस्तकारी की भी शिक्षा दी जाती है। उपयुक्त छात्रियों को छात्रवृत्ति देकर प्रोत्साहित किया जाता है। इस समय छात्रवृत्ति पाने वाली छात्रियों की संख्या बारह है। ऐसी छात्राओं को सिलाई, क़सीदे काढ़ना, ग़लीचा बुनना और सूत कातने का काम भी सिखलाया जाता है।

आजकल पाठशाला में कुल आठ अध्यापिकाएँ कार्य करती हैं, जिनमें छः तो लड़कियों को पढ़ाती और दो उन्हें दस्तकारी आदि की शिक्षा देती हैं। छात्रियों को घर से लाने और फिर घर पहुँचाने के लिए चपरासिनें नियुक्त हैं।

पाठशाला के सभा-भवन में प्रति मास स्त्रियों की एक मासिक सभा होती है। यह बीकानेर शहर में बिल्कुल नया काम है। इस सभा में उपस्थिति काफ़ी होती है। इस सभा में आकर उन्हें अपनी गिरी दशा पर विचार करने और उसे सुधारने का अवसर प्राप्त होता है। इस कार्य में लेडी मेहता महोदया अच्छा उत्साह दिखलाती हैं। इस सभा द्वारा बीकानेर के स्त्री-समाज का प्रभूत कल्याण होने वाला है।

छात्रियों की ज्ञानवृद्धि के लिए पाठशाला की ओर से कई स्त्रियोपयोगी मासिक पत्र भी मँगाए जाते हैं, जिससे उन्हें देश-काल का भी ज्ञान प्राप्त होता है।

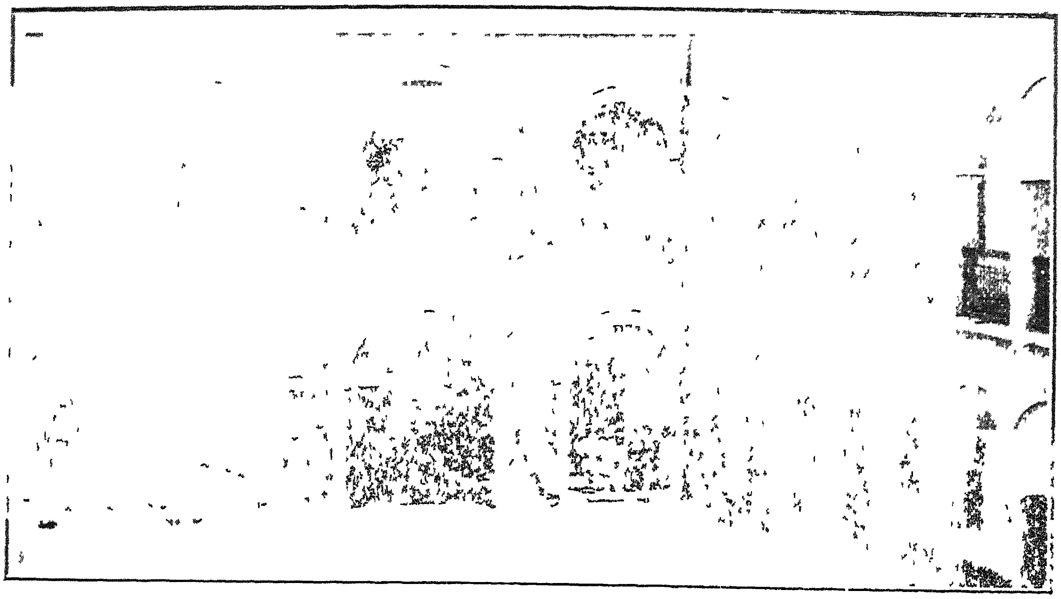
आय-व्यय आदि

पाठशाला के पहले साल ८००) ख़र्च हुए थे। दूसरे साल में क़रीब १,४००), तीसरे साल में २,२००) और चौथे साल में ३,५००) ख़र्च हुए। नए साल के ख़र्च के लिए ४,५००) का बजट बनाया गया है। आय इस समय प्रायः ५००) मासिक की है। श्री० चाँदरतन जी बागड़ी महोदय पहले पाठशाला के ख़र्च के लिए १००) मासिक देते थे, परन्तु अब १५०) प्रति मास देते हैं। सेठ रामगोपाल जी मोहता महोदय भी पहले १००) मासिक दिया करते थे, परन्तु आजकल आपने इस रक़म को बढ़ा कर २५०) मासिक कर दिया है। पाठशाला के स्थायी कोष में प्रायः १०,०००) एकत्र है, जिसके ब्याज से मासिक ५०) आता है। इसके अतिरिक्त नगर के अन्यान्य दानशील महानुभावों की अनुकम्पा से भी ५०) मासिक की आमदनी हो जाती है। छात्रवृत्ति के लिए जो रक़म ख़र्च की जाती है, वह भी बाहरी दानशीलों के यहाँ से ही आ जाती है। इसके लिए पाठशाला के स्थायी कोष या नियमित रक़म से कुछ नहीं लिया जाता।

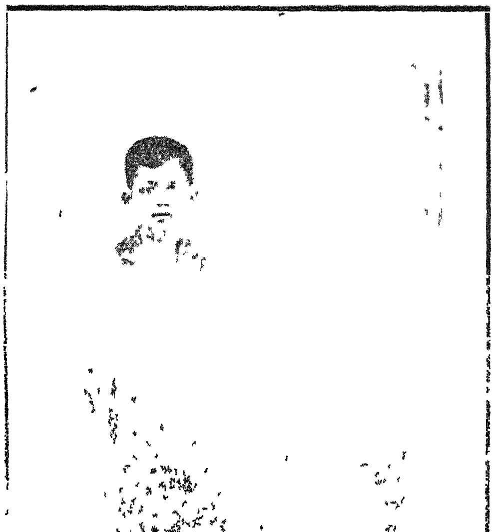
हमें इस पाठशाला का भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल और आशाप्रद दृष्टिगोचर होता है। मातृ-जाति के जिन सच्चे सेवकों ने यह महान कार्य आरम्भ किया है, वे उसे अवश्य ही उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचा देंगे और इसके द्वारा बीकानेरी महिला-समाज का प्रभूत कल्याण होगा।

—'एक जानकार'

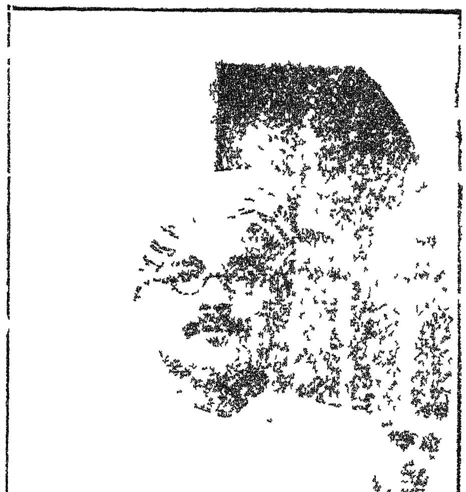
❀ ❀ ❀



श्रीभैरवरत्न मातृ-पाठशाला, बीकानेर का भीतरी दृश्य



स्वर्गवासी भैरवरत्न
(आप ही की स्मृति में संस्था निर्मित हुई है)



श्री० सेठ चाँदरत्न जी बागड़ी
(स्वर्गवासी भैरवरत्न के पिता तथा
सेठ रामगोपाल जी मोहता के जामाता)

(संस्था का विस्तृत विवरण अन्यत्र देखिए)



सुप्रसिद्ध समाज-सेवी तथा श्रीभैरवरत्न मातृ-पाठशाला के आधार-स्तम्भ

श्री० सेठ रामगोपाल जी मोहता



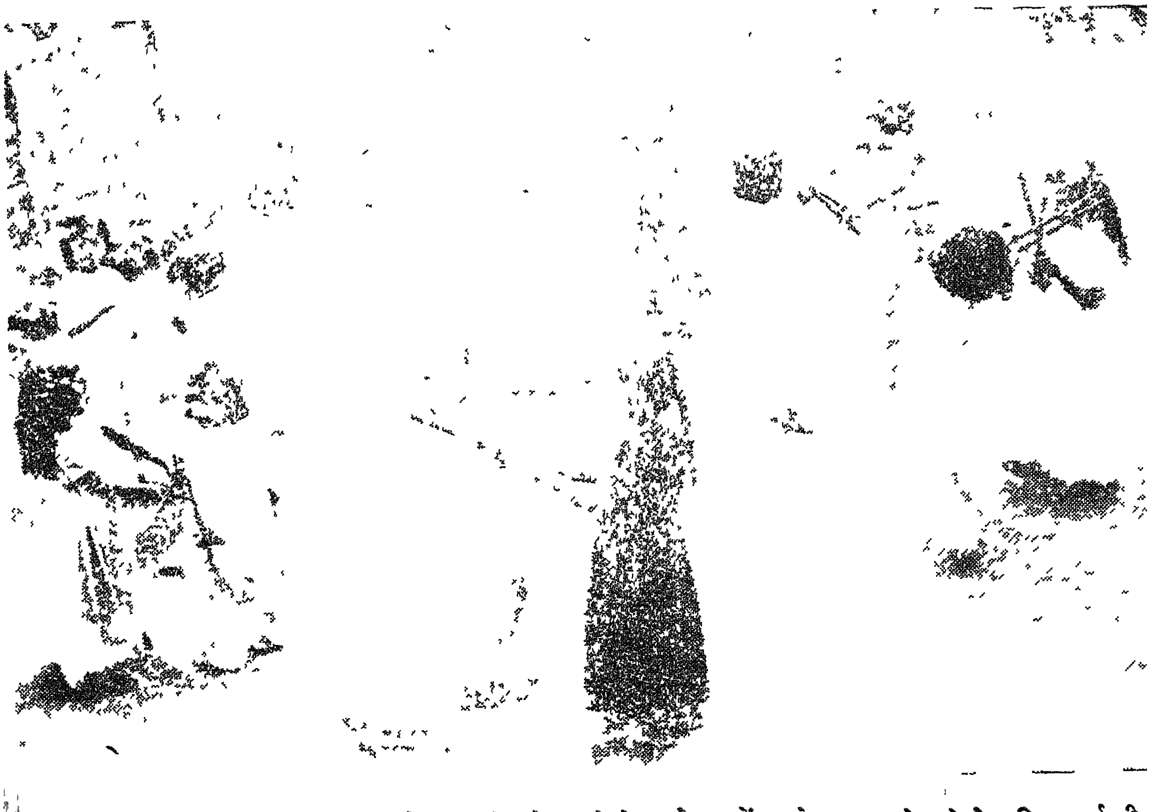
आधुनिक बालक जिस गति से ससार के सभी कार्यों में दिलचस्पी लेना सीख रहा है, वह आश्चर्यजनक है। इस बालक को ही देखिए,



ये भाई-बहिन तैरने की कला में सिद्धहस्त हैं और कई बार पारितोषिक भी पा चुके हैं। सच तो यह है कि यदि अवसर दिया जाय तो स्त्रियाँ



घुड़दौड़ का अभ्यास करने में संलग्न एक ११ वर्षीय यूरोपियन बालिका



भारतवर्ष में नृत्य-कला का इतना पतन हो गया, कि लोग उसे केवल वेश्याओं का पेशा समझने लगे थे, किन्तु हर्ष की बात है कि कुछ प्रान्तों में अब इस कला का प्रचार सभ्य घरानों में होने लगा है। इस चित्र में पाठक कुछ

अबला

आकाश में चन्द्रदेव हँसते थे। तारे कुछ मन्द थे। समस्त संसार निद्रादेवी का अङ्कशायी था। शान्ति का साम्राज्य था—प्रकृति निस्तब्ध थी। रात्रि का द्वितीय प्रहर था। शान्ति भङ्ग करती, एक मूर्ति दिखाई दी। बाल खुले थे, समीर उन्हें बिखरा रहा था। शरीर पर एक सफ़ेद साड़ी उड़ रही थी। हाथों में केवल एक-एक पतला चाँदी का कड़ा था। चिन्ता और दुःख ने उसका शरीर जर्जरित कर दिया था। समय की विचित्र लीला! जो चन्द्र कभी प्रसन्न दीख पड़ते, उनको भी आज उस पर दया न आई और उत्तरोत्तर अपनी प्रभा बढ़ाते गए। अमृत-वर्षा करने वाले शशि उसे विष-तुल्य प्रतीत होते थे।

सीता पगली सी थी। केवल उसे संसार में जीवन के सहचर मदन की मनोहर मूर्ति दिखाई देती थी। रो रही थी। न कहीं जाना था, न जाने का निश्चय किया था, यहाँ-वहाँ आफ़त की मारी भटक रही थी। अपने भाग्य को कोसती, ब्रह्मा का परिहास करती, जङ्गल के बीहड़ पथ में लड़खड़ाती, अपने प्यारे की याद में रोती। उसकी यह दशा देख पत्थर रो पड़े, वृक्ष सिसक उठे और वायु मन्द पड़ गई। एक बार चन्द्रमा को भी रहम आया और बादलों की ओट में हो गए। परन्तु उसे मदन न मिला। वह रात्रि भर जङ्गल—भयानक जङ्गल की ख़ाक छानती रही, परन्तु उसे तनिक भी शान्ति न मिली।

सीता तीन दिन तक इस प्रकार रोती-कलपती, भूखी-प्यासी गङ्गा के किनारे पहुँची। सुना था, भगवती भागीरथी सबको शान्ति प्रदान करती हैं, परन्तु सीता को यहाँ भी शान्ति न मिली।

तीन दिन की थकी-माँदी सीता फिर भी दिन भर बिना कुछ खाए वृक्षों की छाया तले, मृत बन पड़ी रही। सोते-जागते केवल ध्यान उसी प्यारी प्रतिमा का था।

गङ्गा की दिन भर की कठिन तपस्या के बाद शान्ति मिली, उसे मार्ग मालूम हो गया। गङ्गा ने अपना प्रभाव डाला। सन्ध्या-समय उसने सोचा—क्या जहाँ वे हैं, मैं वहाँ नहीं जा सकती? उठी, चल पड़ी, सदैव के लिए गङ्गा की गोद में शान्ति पाने की चाह से। उत्तुङ्ग घाट पर खड़ी हो गई। गङ्गा की अविरल धारा देखी। कूदना चाहती थी, मरना चाहती, सचमुच मुक्त हो जाती। मरते-मरते उन्हीं का ध्यान था, उनकी पुण्य स्मृति, जीवन-चर्या पुनः एक बार आँखों में झूलने लगी। इतने में बुढ़िया दिखाई दी। मुँह पर झुर्रियाँ पड़ चुकी थीं। कमर झुक गई थी।

वृद्धा—बेटी, क्यों रोती है? रात्रि के समय यहाँ क्यों?

सीता सिसकती रही, परन्तु कुछ न बोली।

वृद्धा ने फिर वही प्रश्न किया।

सीता अब भी कुछ न कह सकी, रोती ही रही। वृद्धा ने उसे धीरज बँधाया। तब उसने रोते हुए अपना विचार बताया।

"चिर शान्ति—यह क्यों?"—वृद्धा ने पूछा।

सीता के कण्ठ से कुछ अस्फुट शब्द निकले। वृद्धा समझ गई।

वह सीता को अपने साथ ले गई।

२

वृद्धा के चार पुत्रों में से एक ही पुत्र बचा था। वह भी दुखी रहा करता था। भगवान ने सम्पत्ति दी थी, परन्तु उसका सुखोपभोग करने वाला कोई न था। उसका पचीस वर्षीय पुत्र रामगोपाल भी दुखी, चिन्तित और उदास रहता था। भगवान ने जब खाने-खेलने के दिन दिए, तब उसकी जीवन-सहचरी इस संसार से चली गई।

रामगोपाल की वृद्धा माता भी दुखी रहती थी। बच्चे को दिन भर खेलाया करती थी। परन्तु रामगोपाल अपनी वृद्धा माता को कष्ट नहीं देना चाहता था। वृद्धा माता को किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे, इसका ध्यान रखता था।

सीता के ऊपर घर का सब भार सौंपा गया। उसने भी तन, मन, धन से रामगोपाल के घर का काम सँभाला। सब लोग उसके चातुर्य की प्रशंसा करने लगे, वृद्धा माता तो उसे बिलकुल अपनी पुत्री समझ बैठी थी। उसे अब बहू के मरने की चिन्ता न थी। घर

साफ़-सुथरा रहना, अन्धाधुन्धी ख़र्च भी न होता और बच्चा भी प्रसन्न रहता था। वह सीता को अम्मा कह कर ही पुकारता था, सीता भी उससे पुत्रवत् स्नेह करती, उसे रोज़ अपने हाथों से स्नान कराती, भोजन कराती। कपड़े पहनाती।

कुछ दिनों बाद एकाएक वृद्धा भी संसार से चल दी। सीता ने रामगोपाल को कोई कष्ट न हो, इसका उद्योग किया। खाने-पीने का सब प्रबन्ध रखती थी। प्रतिदिन ठीक समय पर भोजन मिलता, इसका भी ध्यान रखती थी।

परन्तु एक नवयुवक के पास सीता का इस प्रकार रहना जाति के लोगों को पसन्द न आया। भले ही सीता और रामगोपाल में भाई-बहिन का व्यवहार था। परन्तु समाज उसे किस प्रकार सहन कर सकता था।

स्त्रियाँ कहने लगीं—"अब तो रामगोपाल जी के यहाँ हम भोजन न करेंगे। एक स्त्री को अपने घर में रक्खे हैं। इतना अधिक प्रेम और परिचय। इसमें अवश्य कुछ बात है।" सीता ने जब से यह काना-फूसी सुनी थी, तब से पुनः वही चिन्ता, दुःख और ग्लानि उत्पन्न होती थी। अब उसके मुख पर उदासी रहने लगी थी।

एक दिन रामगोपाल ने सीता को उदास देख कर कहा—बहिन सीता, आज तुम उदास क्यों हो?

"योंही।"

"कुछ भी तो बताओ।"

"यह कलुषित संसार है। मैं आपकी सेवा करती हूँ। बच्चे को वात्सल्य-प्रेम से खिलाती हूँ। उसे और आपको स्वयं भोजन बना कर खिलाती हूँ। यह लोगों को अच्छा नहीं लगता। वे हममें और आप में कलुषित प्रेम समझते हैं। मेरा अब इस घर मे रहना ठीक नहीं।" यह कहते उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

रामगोपाल धैर्य बँधाते हुए बोला—संसार के इस प्रकार कहने से कोई हानि नहीं। जब हममें और तुममें कोई बात नहीं, तो किसी के कहने से क्या होता है। यदि तुम यहाँ से चली जाओगी तो बच्चे का क्या होगा?

"समाज का विचार करना ही पड़ता है।"

रामगोपाल से न रहा गया, बोला—व्यर्थ है जातीय बन्धन। मैं अब किसी से अपना सम्बन्ध न रक्खूँगा। मैं अकेला ही भला हूँ।

सीता ने उन्हें शान्त कराया।

३

सीता रात्रि को चन्द्रदेव के राज्य मे घर से निकल पड़ी। शरीर पर केवल एक सफ़ेद साड़ी थी। बाल खुले थे। आज फिर उसे अपने प्रियतम का अधिक स्मरण हो रहा था।

शान्ति की मूर्ति की भाँति वह उसी स्थान पर, उसी घाट पर जाकर खड़ी हो गई।

कहने लगी—गङ्गा मैया, मैं अब आपकी गोद के सिवा कहीं आश्रय नहीं पा सकती। मुझे आश्रय दे।

गङ्गा की निस्तब्धता भङ्ग हुई। एक शब्द हुआ। थोड़ी देर मे वहाँ कुछ भी न था। देखते-देखते वह 'अबला' गङ्गा की गोद मे समा गई।

—नर्मदाप्रसाद खरे

❀ ❀ ❀

श्रीमती श्यामादेवी

उत्तर बिहार के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में रतवारा नाम की एक छोटी सी रियासत है। आदर्श महिला श्रीमती श्यामादेवी यहीं के रईस और ज़मींदार श्रीमान ठाकुर हनुमानप्रसाद सिंह की धर्मपत्नी हैं और टिकारी राज्यान्तर्गत अमावाँ के राजा श्री० हरिहरप्रसाद सिंह आपके मामा हैं। एक प्रतिष्ठित और प्राचीन राजघराने से सम्बन्ध रहने के कारण श्रीमती श्यामादेवी का पालन-पोषण राज्योचित ढङ्ग से हुआ है। ऐश्वर्य आपका सहचर तथा विलासिता आपकी दासी है। परन्तु देवी जी इन आडम्बरों से दूर रहती हैं। सादगी, स्वदेश-सेवा और लोक-सेवा आपके जीवन के आदर्श हैं। लोकोपकारी सार्वजनिक संस्थाओं से आपको बड़ा प्रेम है। दरिद्रनारायण की सेवा आपका जीवनव्रत है। देश के दरिद्रों और अनाथों की दशा देख कर आपका दयार्द्र चित्त पिघल जाता है, आँखें अश्रुपूर्ण हो जाती हैं। आप सदैव समय-समय पर अन्न-वस्त्रों द्वारा उनकी सेवा किया

करती हैं। दरिद्रों की सेवा और उन्हें सहायता देने में आपको बड़ा सुख मिलता है। अन्न-वस्त्र का भूखा कोई आतुर आपकी देवढ़ी से विमुख नहीं जाने पाता। आप बहुधा रियासत के दरिद्रों को निमन्त्रण देकर उन्हें अन्न और वस्त्र प्रदान किया करती हैं। आप अपनी वदान्यता और दानशीलता के लिए विशेष विख्यात हैं। कितने ही ब्रह्मचर्याश्रमों और अनाथालयों को आपने अर्थदान द्वारा सहायता दी है। इसके सिवा हिन्दी भाषा से भी आपको बहुत प्रेम है। अपने घर में आपने एक सुन्दर पुस्तकालय स्थापित कर रक्खा है, जिसमें आदर्श पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं का अच्छा संग्रह है। हिन्दी-संस्थाओं को भी आप समय-समय पर साहाय्य प्रदान किया करती हैं। हिन्दी-भाषा की सेवा के लिए आप सदैव लोगों को उत्साहित किया करती हैं। अभी हाल में ही आपने चाँद प्रेस, लिमिटेड को १००) प्रदान करके लिखा है कि इसके द्वारा साल भर तक 'चाँद' उन विद्याप्रेमिनी स्त्रियों को प्रदान किया जाय, जो अर्थाभाव के कारण उसे ख़रीद कर नहीं पढ़ सकतीं। 'चाँद' के शैशवावस्था से ही आप उसे बराबर पढ़ती हैं और चाँद प्रेस, लिमिटेड के हिस्से बिकवाने की चेष्टा कर रही हैं। साथ ही स्वयं भी उसके हिस्से ख़रीदने वाली हैं।

श्रीमती श्यामादेवी को अपनी ख्याति और नामवरी से बड़ी चिढ़ है। इन पंक्तियों के लेखक ने कई बार इस बात की चेष्टा की कि श्रीमती जी का चित्र और चरित्र कहीं प्रकाशित करा दिया जाय, परन्तु श्रीमती जी ने अपना चित्र देना किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया।

सामाजिक सुधारों तथा स्त्रियोन्नति सम्बन्धी कार्यों से भी श्रीमती जी को बड़ी सहानुभूति है। आपने अपनी कन्या को शिक्षिता बना कर सोलह वर्ष की अवस्था में उसकी शादी एक सुशिक्षित वर के साथ किया है। सुधार-विरोधी रूढ़िवादियों के विरोधों की आप ज़रा भी परवाह नहीं करतीं। आप मिथिला प्रान्त की उन थोड़ी सी स्त्रियों में है, जो स्त्रियों के अधिकारों के लिए आन्दोलन कर रही हैं और परदे की प्रथा को तोड़ रही हैं। श्रीमती श्यामादेवी ने इस दिशा में भी अच्छा उत्साह दिखाया है। हमें आशा है कि आप अपने प्रान्त की पिछड़ी हुई स्त्रियों की दशा सुधारने में अवश्य ही सफलता प्राप्त करेंगी।

—एक आदर्शवादी

❀ ❀ ❀

छायावाद

प्रस्तुत विषय का विश्लेषण दो कारणों से मनोरञ्जक दीख पड़ता है। पहला तो यह कि छायावाद भारतीय तत्व-विचार और धर्म का जीवन-रक्त है, और दूसरा यह कि यह आत्मिक सभ्यता और आत्म-दिग्दर्शन के सिद्धान्तों की भित्ति है। यही भारतीय जीवन का एकान्त लक्ष्य है।

यहाँ मेरा मुख्य तात्पर्य यह है कि भारतीय छायावाद के विषय में जितने भ्रमात्मक विचार हैं (जो भारतीय जीवन और सभ्यता की आलोचना के लिए उत्तरदायी है) वे निकाल दिए जायँ। भारतवर्ष बहुधा छायावादियों का देश कहलाता है और भारतवासियों की काल्पनिक मनोवृत्ति ही उनके वैज्ञानिक विकास की न्यूनता का कारण समझी जाती है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तव में हम लोग उस पथिक के ऐसे हैं, जो राह चलते हुए आकाश की ओर देखता है और किसी कुएँ में गिर पड़ता है या हम लोगों के आत्मिक अन्वेषण के आधार पर वैज्ञानिक सत्यता का निवास भी है?

प्रथमतः वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से छायावाद के प्राकृतिक तत्वों की जाँच करनी चाहिए। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने, यह प्रश्न पूछे जाने पर कि छायावाद क्या है, कहा था कि जिस प्रकार सारे पृथ्वी के नीचे जल की धारा परिव्याप्त है, उसी प्रकार व्यक्तिगत हृदय के अभ्यन्तर में भी चैतन्य-ज्ञान की धारा व्याप्त है। और यही मनुष्यों की बुद्धि के द्वारा प्रकाश पाता है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि "मानव आत्म-प्रकृति का वास्तविक ज्ञान ही छायावाद है।" अनेक विचारवेत्ताओं ने एक ही तरह से अपनी सम्मति प्रकट की है। मि० अण्डरहिल (Mr. Underhill) कहते हैं—"Mysticism consists in the expression

of the innate tendency of the human spirit towards complete harmony with the transcendental order" माननीय बर्ट्रेंड रसेल (Hon'ble Bertrand Russell) कहते हैं कि—"The mystic life is a life free from struggles, a life in harmony with the whole, outside the prison walls built by the instinctive desires of the finite self"

यहाँ यह कह देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने छायावाद को आत्म-प्रवञ्चना का स्वरूप मान कर अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखा है। मि० सेठ (Mr Seth) अपने नीतिशास्त्रों (Ethical) के वर्णन में लिखते हैं कि छायावाद का सार विश्व की वास्तविकता का विरोध करने में है। प्रो० प्रिङ्गिल पैटीसन (Prof Pringle Pattison) का कहना है कि एक पक्का छायावादी ईश्वर की सत्ता को ही शून्य कर देता है; क्योंकि वास्तविकता के अन्वेषण में वह (छायावादी) उससे भी अधिक दूर जा पड़ता है और अन्त में उसे शून्य में विश्राम करना पड़ता है।

भारतवर्ष में छायावाद को आत्मिक उन्नति का आधार माना जाता है। छायावाद के दो विभाग किए जा सकते हैं—(१) मानसिक या काल्पनिक (२) व्यावहारिक। वस्तुओं के वास्तविक तत्वों के अन्वेषण को मानसिक या काल्पनिक छायावाद और अपनी इच्छाओं और विचारों को वश में रखते हुए विश्वात्मा को अपने आत्मा के साथ मिला देने को व्यावहारिक छायावाद कहते हैं।

छायावाद का लक्ष्य परमात्मा में लीन हो जाने का है। इसमें सांसारिक भोग-विलास का स्थान नहीं। छायावादी केवल ईश्वर को जानता है और उसके आगे और कुछ नहीं चाहता। प्रेम के दार्शनिक विकास का दूसरा नाम ही छायावाद है। यह भगवान कृष्ण की वह वंशी-ध्वनि है, जिससे अनन्त प्रेम-सङ्गीत-धारा विचित्र सुख-शान्ति के साथ कलकल करती हुई (मोक्ष-सागर में) विलीन होती है।

भिन्न-भिन्न धर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के छायावाद हैं; यथा—ईसाई धर्म का छायावाद, मुस्लिम छायावाद और भारतीय छायावाद। ईसाई मत के छायावाद में भी कई प्रशाखाएँ हैं। जैसे एकार्ट (Eckhart) का काल्पनिक छायावाद, सूसो और टॉलर (Suso and Tauler) का भक्तिमय छायावाद, वर्ड्सवर्थ और शेली (Wordsworth & Shelly) का प्राकृतिक छायावाद। ईसाई मत के छायावाद के अनुसार ईश्वर नित्य है और मनुष्य जाति की उत्पत्ति का उद्गम-स्थान है। मानव-जाति में उसकी छाया विराजती है। इसी मत के अनुसार किसी ने कहा है—"God made man after his own image" मनुष्य पहले तीन पदार्थों के सम्मिश्रण से अपने अस्तित्व को प्राप्त होता है। यथा—शरीर, आत्मा और भूतात्मा। लेकिन अन्त में मृत्यु के उपरान्त ईश्वर में मिल जाता है।

अब मुस्लिम छायावाद को लीजिए, जो सूफ़ी मत के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इसका प्रधान लक्ष्य परमात्मा में लीन हो जाना है। इनका कहना है कि चूँकि ईश्वर एक है और उसका वास सभी आत्माओं में है, इसलिए अपने को उससे भिन्न समझना भूल है। परन्तु उसी अवस्था में कोई ईश्वर तक पहुँच सकता है, जब वह अपने को उससे अलग एक भिन्न प्राणी समझता है।

अब भारतीय छायावाद का स्थान आता है। इसके भी कई स्वरूप हैं। जिनमें निम्न-लिखित प्रमुख हैं—वैदिक, उपनिषद्, यौगिक, तान्त्रिक और भक्ति। भारतवर्ष में छायावाद का एक अङ्ग और विद्यमान है, जिसे बौद्धिक छायावाद कहते हैं। इसका लक्ष्य निर्वाण है। इन सबों का आधार एक ही है। वह यह कि एक नित्य परमात्मा है, जिसमें सभी आत्माएँ अन्त में विलीन हो जाती हैं। यह संसार बुराइयों से भरा हुआ है और जिस मौलिकता के साम्राज्य में हम निवास करते है, उससे भी अधिक वास्तविकता की एक श्रेणी है, जो हमारी साधारण चेतना से परे है और हम लोगों का मुख्य उद्देश्य उसी असाधारण चेतनावस्था को प्राप्त होना है और ऐसे अस्तित्व को प्राप्त हो जाना है कि जिसमें अक्षय सुख-शान्ति की प्राप्ति हो।

अब हम भारतीय और ईसाई छायावाद के परस्पर समानता की ओर दृष्टिपात करते हैं। दोनों की भक्ति के रूप, अनुभव की उत्तमता दिखलाने में एक-दूसरे से

मिलते हैं। सेण्ट इगनेशियस (St Ignatius) के आत्माभ्यास योग के नियमों से मिलते-जुलते हैं। परन्तु मुक्ति के सम्बन्ध में जो अन्तिम लक्ष्य है, उसमें कठिनता जान पड़ती है। सेण्ट टेरेसा (St. Teresa) कहते हैं—"You may think that the soul in this state of union should be so absorbed that she can occupy herself with nothing" क्रिश्चियन लोगों का कहना है कि उस अवस्था में मनुष्य एकान्त आत्म-विस्मृत नहीं होता, लेकिन आत्मा और परमात्मा में मौलिक ऐक्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जब मनुष्य तल्लीनता के उच्चतम शिखर पर पहुँच जाता है, तो कुछ समय के लिए उसकी बाह्य चैतन्यता रुक जाती है और वह परमात्मा का दर्शन कर सकता है।

कविता और कला आत्मा की निर्माण-रचना-शक्ति के जीवित उदाहरण हैं सीलर (Schiller) कहते हैं—"Life is serious, Art is Joyous" वर्ड्सवर्थ और शेली इत्यादि ने बाह्य जगत के झमेलों से उद्विग्न होकर कविता की शरण ली थी। कला, जो नित्य सत्य है उसका एक चिह्न है। यह हमारी सौन्दर्य-विचार-शक्ति को बढ़ाता है। लेकिन कीट्स (Keats) कहता है :—

Beauty is truth, and truth beauty—
that is all
Ye know on earth and all ye need
to know ?

छायावाद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वास्तविकता या मौलिकता के सिद्धान्तों को शब्दों में प्रकट करना कठिन है। इसमें तीनों गुणों का सम्मिश्रण है। सत्य, सौन्दर्य और धर्म। पर इन तीनों को व्यावहारिक अर्थ में समझना भूल है।

धर्म सम्बन्धी जो छायावाद है, वह प्रेम की धुरी पर अवस्थित है। इसी प्रेम ने राधा के हृदय को कृष्ण-प्रेम में पागल बना दिया था। इसी स्वर्गीय प्रेम-वारुणी के नशे में उन्मत्त चैतन्य, कबीर और नानक इत्यादि मस्त हो झूमते थे। यही अक्षय एवं अनन्त प्रेम है, जो विनाश की नाश-लीला से अतीत है। यह प्रेमानल कभी बुझता नहीं। इसकी प्रज्ज्वलित ज्वाला कभी मन्द नहीं होती। इसी प्रेम से पागल होकर सूसो (Suso) चिल्ला उठता है कि मुझे कोई ऐसी युक्ति बताओ कि जिससे तेरे प्रेम के चिह्न मेरे शरीर में सदा वर्तमान रहें। सच्चा ईश्वर-भक्त अपने आस-पास की सभी वस्तुओं में अपने प्रति ईश्वर के प्रेम को दृष्टिगत करता है। जिस प्रकार वह अपने हृदय के अभ्यन्तर में उस प्रेम के प्रकाश को देखता है, उसी प्रकार अपने चारों तरफ़ के भौतिक पदार्थों में भी वह उसी प्रेम का विकास पाता है। ऐसे ही एक प्रेमी-पागल-कवि कहता है :—

Have you not heard his silent steps ?
He comes, comes, ever comes.
Every moment and every age, every
day and night,
He comes, comes, ever comes.

पर हमें सदा यह ख्याल रखना चाहिए कि छायावादी एक प्रेमी है, जो बाह्य जगत से अतीत है। पर वह केवल आत्मानन्द की अनुभूति और ईश्वर प्रेम ही में तल्लीन नहीं रहता, वरन् उसमें प्रज्ज्वलित अग्नि की शक्ति है। उसका सदा शङ्काओं से युद्ध होता रहता है, वह प्रेम और सत्यता के सिद्धान्तों का प्रचार करता है और मनुष्यों के चरित्र को सुन्दर साँचे में ढाल देता है। उदाहरण के लिए महात्मा शङ्कर, बुद्ध, चैतन्य, कबीर और विवेकानन्द इत्यादि को लीजिए और ध्यानपूर्वक विचारिए कि उनके सत् सिद्धान्तों का प्रभाव भारत-वासियों के जीवन पर किस प्रकार पड़ा है। समाज और धर्म, कला और साहित्य सभी विभागों पर उनका प्रभाव पड़ा है। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारवेत्ता छायावादियों के विषय में कहते हैं :—

"When science, politics, literature and arts have risen to their height and produced their greatest works, the mystic comes to the front, snatches the torch and carries it on. It is almost as if he were humanity's finest flower, the product at which each great creative period of the race had aimed."

(शेष मैटर ३०७ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

विश्व वीणा

व्यक्ति-स्वातन्त्र्य और पूँजीवाद

मैक्सिम गोर्की वर्तमान युग में रूस का सर्व-श्रेष्ठ उपन्यास और कहानी-लेखक माना जाता है। वह पूँजीवाद का बड़ा विरोधी है और श्रमजीवियों के पक्ष मे उसने कितने ही महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं। कुछ समय पूर्व उसके लेखो का एक संग्रह 'ओन-गार्ड' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था, जिसमे उसने पूँजीवाद का पर्दा-फ़ाश करते हुए सिद्ध किया था कि उससे मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होने के बदले नाश हो जाता है। उस पुस्तक की आलोचना करते हुए जगत-प्रसिद्ध विचारक रोमाँरोलाँ ने एक लेख प्रकाशित कराया है, जिसमे वह कहता है :—

नवीन जगत के निर्माण में मैक्सिम गोर्की ने साहित्य का स्तुत्य उपयोग किया है। गोर्की ने यूरोप के पूँजीवाद की अपनी क़लम द्वारा ख़ूब ख़बर ली है। गोर्की को कला के कोमल से कोमल तत्वों का ज्ञान है, इसलिए कला-रसिक भी उसकी पुस्तक को अलग नही रख सकते। गोर्की के लेखों से खास कर पूँजीवाद के साहित्य का अध्ययन करने वालों को एक झटका लगता है। मैं दो वर्षों से गोर्की के ग्रन्थों का अध्ययन कर रहा हूँ और उसके आधार पर छाती ठोंक कर कह सकता हूँ कि अभी पश्चिम ने गोर्की के रङ्ग को नही पहचाना है। उसके तृषातुर वर्णन, नवीन जगत की झलक दिखलाने वाला गद्य अभी तक लोगों के लिए अपरिचित है। गोर्की के जलते हुए हृदय की गर्मी उसमें भरी रहती है। अभी तक यह गर्मी पश्चिमी पाठकों ने अनुभव नहीं की है। उसकी 'ओन-गार्ड' नामक पुस्तक में उपरोक्त विशेषताएँ भरी पड़ी हैं। मुझ पर तो उसने अपना रङ्ग जमा दिया है।

आलोचकों को उत्तर

'ओन-गार्ड' में गोर्की के स्फुट लेखों का संग्रह है। रूस के सोवियट शासन पर ज़हरीली आलोचनाएँ करने वालों को इसमें मुँहतोड़ उत्तर दिया गया है। इसमे संग्राम की उष्णता व्याप्त है। अन्य लेखों में गोर्की ने सोवियट के कर्मचारियों को कितनी ही जानने लायक बातें समझाई हैं। निराश हुए व्यक्तियों को यह नवीन जगत का उत्साहमय वर्णन सुना कर बहादुर बनाती है। यह आने वाले युग के सुखी जीवन का चित्र खींचती है—इस चित्र मे नए ही मनुष्यों की सूरतें दिखलाई पड़ती हैं। जो लोग इस तरह की पुकार मचाते हैं कि अगर सोवियटवाद सर्वत्र फैल जायगा तो व्यक्तिवाद नष्ट हो जायगा, ऐसे लोगों को गोर्की बतलाता है कि व्यक्ति क्या है और स्वतन्त्रावस्था में व्यक्ति का विकास किस तरह सफल होता है। वह इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक प्रमाण पेश करता है। गर्जना-युक्त भाषा द्वारा वह पूँजीवादियों की निर्मित इस सृष्टि को छिन्न भिन्न कर देता है। पश्चिम में व्यक्तिवाद के पुजारियों की संख्या काफ़ी है और वे इस सम्बन्ध में बहुत भयभीत रहते है। उनके भय को दूर करने को मैं गोर्की के शब्दों को ही यहाँ देता हूँ :—

"पूँजीवादी समाज अपना ही स्वार्थ साधने के लिए व्यक्ति को अपने हाथ का खिलौना बनाता है। यह इसी वर्ग का स्वार्थ है, जो कितने ही लोगों के पसीने द्वारा पुष्ट होता है। इसलिए पूँजीवादी देशों में व्यक्ति का विकास नहीं होता, वरन् नाश होता है।

"जिनके पास पूँजी होती है, वे धर्म के बहाने, देश-भक्ति के नाम पर, संस्कृति के नाम पर अपनी

ही उन्नति की चेष्टा सब से पहले करते हैं। फल-स्वरूप समस्त जन-समूह को 'व्यक्तिवाद' की एक भी झलक दिखलाई नहीं देती और वह केवल मालदारों का शिकार बनता है। पर सोवियट शासन की रचना समाजवाद के सिद्धान्त के आधार पर हुई है, इसलिए इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने रुचिकर विषयों को विकसित करने का मौक़ा मिलता है। कितने ही लोग कहते हैं कि ये तमाम बातें कोरी गप्पें हैं, क्योंकि सोवियट सरकार वाणी-स्वातन्त्र्य की विरोधी है, प्रेस की स्वाधीनता का भी वह अपहरण करती है। जो पूँजीवाद के पक्षपाती ऐसी दलीलें करते हैं, उनके मतानुसार पूँजीवादी देशों में इस प्रकार की स्वतन्त्रता पूर्ण रूप में पाई जाती है। पर विचारपूर्वक देखने से जान पड़ता है कि पूँजीवादी देश ही स्वतन्त्रता को ग़ुलाम बनाते हैं। मैं बतलाना चाहता हूँ कि सोवियट में स्वतन्त्रता का क्षेत्र सब से अधिक विस्तृत है। जो विचार उत्क्रान्ति करने वाले हैं, उनको सैकड़ों वर्षों से दबा कर रक्खा गया है। सोवियट ने इस तरह के विचारों को सर्वथा मुक्त कर दिया है। पर जो कोई विचार जनसमूह की प्रगति में बाधा डालने वाला होता है, व्यक्तियों के विकास में विघ्न डालता है, पूँजीवाद का अनुयायी होता है, तो ऐसे विचार को ठोकर मार दी जाती है। धर्म, जाति, राष्ट्रीयता—इन्हीं शब्दों के आधार पर तो पूँजीवाद जीवित है। इसलिए इन शब्दों का आभास भी विचारों में न आना चाहिए। मज़दूरों और किसानों के मार्ग में कण्टक-रूप तमाम विचार यहाँ अस्पृश्य समझे जाते हैं।"

निष्फलता का परिचय

इसके पश्चात् गोर्की एक दूसरे लेख में वैज्ञानिक दृष्टि से झूठे व्यक्तिवाद के प्रेमियों को उनकी निष्फलता का परिचय इस प्रकार कराता है:—

"पूँजीवाद के आश्रय में व्यक्ति अपनी दिखावटी स्वतन्त्रता की पिंजरे मे रह कर रक्षा करता है। इस पिंजरे मे पत्र-सम्पादक, साहित्यिक, दार्शनिक, सरकारी कर्मचारी और पूँजीवाद के अन्य ग़ुलाम निवास करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह पिंजरा चिड़ियों के पिंजरे से अधिक सुखदायक है। व्यक्तिवाद दरअसल बाहरी दबाव के कारण ही उत्पन्न होता है। मनुष्य पर यह दबाव वर्गीय (श्रेणियों में विभक्त) समाज के द्वारा पड़ता है। यह व्यक्तिवाद हिंसा के मुक़ाबले में व्यक्ति की रक्षा करने का एक नपुंसक उपाय है। आत्मरक्षण दरअसल आत्महत्या है, क्योंकि आत्मरक्षण की चेष्टा में फँस कर मनुष्य अपना विकास नहीं कर सकता। यह परिस्थिति समाज और व्यक्ति के लिए हानिकारक है। आजकल विभिन्न राष्ट्र अपने पड़ोसियों का मुक़ाबला करने के लिए करोड़ों रुपए के हथियार रखते हैं। जीवन क्या संग्राम है? हाँ, प्रकृति के दबाव के सामने मनुष्य को लड़ते ही रहना चाहिए। प्रकृति को अपने अधिकार में करके उससे मनुष्य-समाज का हित-साधन करना हमारा कर्तव्य है। पूँजीवादी समाज ने यद्यपि प्रकृति से संग्राम किया है, पर इसके द्वारा उसने ग़ुलामी की सृष्टि की है। इस समाज ने मनुष्य की शारीरिक शक्ति के ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करके उपरोक्त संग्राम को अपने स्वार्थ के अनुकूल स्वरूप दे दिया है। बीसवीं सदी का व्यक्तिवाद भले ही चमकीला और शानदार दिखाई पड़ता हो, पर उसका आन्तरिक रूप तो ज्यों का त्यों है। इसके आस-पास की दशा ऐसी दुखद होती है कि उससे निराशा फैलती है। इसलिए अपने निन्दनीय जीवन का दोष दुनिया पर डाल देता है और फल-स्वरूप मनुष्य का तिरस्कार करने वाले के स्वरूप में प्रकट होता है।"

(३०५वे पृष्ठ का शेषांश)

भारतवर्ष अपनी आध्यात्मिक उन्नति को नहीं भूल सकता। वह वैज्ञानिक सभ्यता की भड़कीली छटाओं के सामने नत-मस्तक नहीं हो सकता। यद्यपि "स्टेट्समैन" ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सभ्यता ही मानव-जाति को ऊँचा उठा सकती है। भारतीय सभ्यता आत्मिक भित्ति पर स्थित रहनी चाहिए। उसे संसार-क्षेत्र में आगे बढ़ कर, मानव-जाति के ज्ञान-चक्षुओं को खोल कर यह सिद्ध कर देना चाहिए कि जो सभ्यता आत्मिक उन्नति के विकास के आधार पर स्थित नहीं है, वह उत्ताल उदधि में जल-बुदबुद की नाईं क्षणिक और नाशवान है।

—लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

जीवन

मैंने यहाँ जो उद्धरण पेश किए हैं, इसका मुख्य कारण यह है कि गोर्की के मत से मेरा मत बिल्कुल मिलता हुआ है। जीवन के अनुभवों से मैं भी इस परिणाम पर पहुँचा हूँ।

अपने ही क़ैदख़ाने में पड़े हुए व्यक्तिवाद के कितने ही क़ैदी हृदय को सन्तोष देने के लिए अध्यात्मवाद का आश्रय लेते हैं। ऐसे लोगों के घमण्ड को गोर्की धूल में मिला देता है। × × × विप्लववादी जन-समूह जो शक्ति उत्पन्न करता है, वह व्यक्ति को प्राप्त होती है और व्यक्ति फिर उसे जन-समूह को प्रदान कर देता है। इसके फल से सामुदायिक उत्साह उत्पन्न होता है। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा अनुभव होता है कि मैं जन-समूह के लिए जीवित रहता हूँ और इस प्रकार के भाव से उसकी आत्मा में उल्लास का स्रोत उत्पन्न होता है। पूँजीवाद के रङ्ग में रँगे कायर मनुष्यों—कवियों—साहित्यिकों के रोने की अपेक्षा यह उल्लास हज़ार गुना प्रभावशाली होता है। जीवन से उकताए हुए युवकों को ललकार कर गोर्की कहता है :—

"मेरे प्यारे युवको, मैं दिल से चाहता हूँ कि जीवन में तुमको अच्छी शिक्षा प्राप्त हो। जीवन के विरुद्ध तुम जो शिकायतें करते हो वे बुद्धिहीनता की परिचायक हैं। इस समय केवल आँसू बहाना और शिकायत करना लज्जाजनक है। जब कि मनुष्य नवीन इतिहास का निर्माण कर रहे हैं, उस समय निश्वास लेना नामर्द का लक्षण है। जब कि पूँजीवाद का महल गिरता हुआ दिखाई दे रहा है, जब कि संसार के मनुष्य जाति-रहित साम्यवादी समाज का निर्माण कर रहे हैं, ऐसे समय में तुम धीरज क्यों खोते हो? अगर तुम आनन्दमय जीवन बिताना चाहते हो, तो ऐसे ही समाज के निर्माण की चेष्टा करो।"

❀ ❀ ❀

एक भारतीय नरेश का कुत्ता-प्रेम

हमारे राजा-महाराजा प्रजा की गाढ़ी कमाई के पैसे किस प्रकार के व्यर्थ तथा मूर्खता-पूर्ण व्यसनों में व्यय कर देते हैं, इसका चित्र 'मैनचेस्टर गार्जियन' के एक सम्वाददाता ने अपने निम्न-लिखित लेख में बड़ी ख़ूबी के साथ खींचा है :—

भारत में ऐसे भी बहुत से नरेश हैं, जो प्रति वर्ष विदेशों में अपने राज्य की आमदनी को स्वाहा करके अपने राज्य में असन्तोष और क्षोभ उत्पन्न किया करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो नई दिल्ली में अपने ही यहाँ महल पर महल खड़े करके प्रजा की गाढ़ी कमाई का सद्व्यय (?) किया करते हैं। परन्तु भारत में एक ऐसे भी नरेश हैं, जिन्हें कुत्तों का बेहद शौक़ है और कुत्ते ही जिनकी आराधना की वस्तु हो रहे हैं। यह राजन महोदय कुत्तों के पीछे बेशुमार दौलत ख़र्च किया करते हैं। आपके पास ७०० कुत्ते हैं। प्रत्येक कुत्ते की ख़बरदारी करने के लिए एक-एक आदमी तैनात है। प्रत्येक २० आदमियों पर एक कप्तान (जमादार) है और इन जमादारों के ऊपर एक-एक पशु-चिकित्सक (वेटेरिनरी सर्जन) हैं। इस सर्जन को सबका जनरल कहा जाता है।

इन कुत्तों के शरीर पर कहीं मक्खी न बैठने पाए, इसलिए प्रत्येक कुत्ते के ऊपर रात-दिन एक बिजली का पङ्खा चला करता है और इस प्रकार आपकी कुत्ता-शाला में बिजली के ७०० पङ्खे अहर्निश चला करते हैं। इसके अलावा उत्तम श्रेणी के कुत्तों को गिलट, साधारण श्रेणी के कुत्तों को पीतल और निम्न श्रेणी के कुत्तों को लोहे की तश्तरियों में खाने के लिए परोसा जाता है।

कुत्तों के लिए इतना अधिक ठाट-बाट देखने के बाद मुझे इन्हीं नरेश के एक कुत्ते की समाधि भी देखने को मिली। समाधि पर कुछ लिखा हुआ भी था।

इन कुत्ता-प्रेमी नरेश को कुत्तों की शादी कराने का भी शौक़ है। मैंने अभी उस दिन बम्बई के एक पत्र में आप ही के यहाँ के एक श्वान-दम्पति के चित्र को देखा था। श्वान-बधू के शरीर पर कम से कम १० हज़ार रुपए के आभूषण दिखलाई पड़ते थे।

सन् १९३० का ज़िक्र है। गर्मी के दिन थे। एक अङ्गरेज़ इन कुत्ता-प्रेमी महाराजा के पास मारे गर्मी के अपनी भौंहों और ललाट का पसीना पोंछते हुए आया। उसे आशा थी कि श्रीमान महोदय उसे कम से कम एक

गिलास ठण्डा पानी तो पिला कर सन्तुष्ट करेंगे, परन्तु उसकी वह आशा व्यर्थ हुई। अन्त में जब उससे नहीं रह गया, तब वह कह ही उठा कि श्रीमान, आजकल तो बड़ी गर्मी पड़ने लगी है।

श्रीमान महोदय इस बात को सुन कर चौंक से पड़े और कहने लगे—क्या यह सच है? आपने फ़ौरन ही घण्टी का बटन दबा कर अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को हाज़िर होने के लिए कहा और उसके हाज़िर होते ही आपने फ़र्माया कि यह महाशय कहते हैं कि गर्मी बहुत अधिक पड़ने लगी है, इसलिए तुम कल ही इन कुत्तों को समुद्र के किनारे ले जाने के लिए एक स्पेशल ट्रेन तैयार करने के लिए कह दो। बेचारा अङ्गरेज़ दर्शक इस ठाट को देख कर दङ्ग रह गया और शर्बत पीने की लालसा को भूल गया!

❀ ❀ ❀

अमेरिकन माताओं का व्यवहार

अमेरिका की माताएँ शिशुपालन में किन बातों का ध्यान रखती है, इसका दिग्दर्शन सहयोगी 'आज' ने एक नोट में इस प्रकार किया है:—

स्त्रियों के लिए शिशुपालन का प्रश्न बड़े महत्व का है। इसमें बच्चे के लालन-पालन के साथ उसकी प्रारम्भिक शिक्षा का भी प्रश्न आ जाता है और इस समय की शिक्षा-दीक्षा का उसके भावी जीवन पर जितना प्रभाव पड़ता है, उतना और किसी का नहीं। यही कारण है कि सदा से विद्वान इस प्रश्न को अत्यधिक महत्व देते और अपने विचारानुसार इसे हल करने की चेष्टा करते आए हैं।

हमारे यहाँ के प्राचीन विद्वानों ने हममें यह भाव भर दिया है कि बच्चों को आँख बन्द कर माँ-बाप की आज्ञा माननी चाहिए। इसका उद्देश्य अवश्य ही बच्चों का हित है। कारण, उनका सिद्धान्त यह है कि बच्चा स्वयं सोचने का काम नहीं कर सकता, इसलिए उसके माता-पिता उसके लिए यह काम करें और वह श्रद्धापूर्वक उनकी आज्ञाओं का पालन करता रहे। पर वर्तमान युग के विद्वान इस सिद्धान्त को शिशु के विकास के लिए बाधक समझते हैं और उनका मत यह हो रहा है कि यदि माँ-बाप बच्चे के मित्र बन कर उन्हें केवल सलाह दिया करें—इस सलाह के अनुसार कार्य करने या न करने की स्वतन्त्रता बच्चे को दे दें—तो बच्चे का अधिक उपकार हो।

पश्चिमी देशों में इस मत का बहुत प्रचार हो गया है और अमेरिकन माताएँ तो आजकल अपने बच्चों से बिलकुल मित्र जैसा बर्ताव करने लगी हैं—वे बच्चे से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक विषय में सलाह देतीं और दूसरे सब विषयों में उसकी सम्मति माँगती हैं, जिससे बच्चे में स्वयं विचार करने की शक्ति आवे।

इस सम्बन्ध में अमेरिकन माताएँ जिन १० बातों को विशेष रूप से ध्यान में रखती हैं, वे भारतीय माताओं की जानकारी के लिए नीचे दी जाती हैं:—

(१) बच्चे किसी समय धमकाए न जायँ। उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने दिया जाय और सब विषयों में आत्मविकास के लिए अवसर दिया जाय। (२) कष्ट में बच्चे को अत्यन्त हताश न होने दिया जाय, गिरने से चोट लग जाने पर भी हँसते रहने की शिक्षा दी जाय। (३) सन्तान के खेल-कूद तथा अध्ययन दोनों में माताएँ बच्चों की सङ्गिनी बनें, किसी में भी शासिका नहीं। (४) बच्चों को सत्यवक्ता, देशभक्त, साहसी, आत्मसम्मान रखने वाला, दूसरे के अधिकारों का भाव करने वाला और धन का सद्व्यय करने वाला बनने की शिक्षा दी जाय। (५) घर के बाहर का संसार, प्रकृति का सौन्दर्य, पशु-पक्षी, वनस्पतिशास्त्र आदि से बच्चों को परिचित कराया जाय। (६) ऐतिहासिक गाथाओं का श्रवण और पाठ तथा साहित्य का ज्ञान बच्चों को अवश्य कराया जाय। (७) शरीर को बलिष्ठ बनाने के लिए तैरना, घोड़े पर चढ़ना, शस्त्र-सञ्चालन, मल्ल-युद्ध, गद खेलना आदि के लिए बच्चे प्रोत्साहित किए जायँ। (८) बच्चों को काम के समय जी लगा कर काम करने और छुट्टी के समय ख़ूब जी भर कर खेलने, कूदने, धूम मचाने की शिक्षा दी जाय। (९) नियम-उल्लङ्घन के दण्ड को सहर्ष स्वीकार करने का बच्चों को आदी बनाया जाय और उन्हें उच्छृङ्खल या उद्दण्ड न होने दिया जाय। (१०) बच्चों को न्यायपरायणता और मातृ-पितृ-प्रेम सिखाया जाय।

❀ ❀ ❀

चर्खा-भक्त कैसे बने ?

कुछ समय पूर्व 'बाई इण्डिया लीग' (स्वदेशी प्रचारक-मण्डल) की ओर से नागपुर के टाउन-हॉल के मैदान में श्रीयुत देशमुख बैरिस्टर की अध्यक्षता मे एक विराट सार्वजनिक सभा की गई थी। उस अवसर पर विज्ञानाचार्य डॉक्टर सर प्रफुल्लचन्द्र राय का चर्खे की उपयोगिता के सम्बन्ध में एक प्रभावशाली भाषण हुआ था, जिसका सार यहाँ दिया जाता है :—

आज से लगभग १० वर्ष पूर्व महात्मा वासुदेव गणेश जोशी ने यहाँ पर स्वदेशी की आवाज़ उठाई थी और ऐसे स्थान मे, जहाँ पर इसकी आवाज़ एक बार गूँज चुकी है, वहाँ पर फिर से उसी के गीत गाना ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार लङ्का में सोने का ले जाना। मैं यहाँ पर आप लोगों के नगर में एक विद्यार्थी की तरह उन्मुक्त हृदय से कुछ सीखने के लिए आया हूँ, न कि गुरु की तरह आप लोगों को कुछ सिखाने व उपदेश देने के लिए। मुझे इस बात का हार्दिक खेद है कि मैं आप लोगों के सामने राष्ट्र-भाषा हिन्दी में भाषण नहीं दे रहा हूँ। आशा है कि मेरी इस अज्ञता और विवशता के लिए आप सब लोग मुझे क्षमा करेंगे।

पहले-पहल जब महात्मा जी ने चरख़े का प्रचार करने की आवाज़ उठाई थी, तब मैं अपने विज्ञान के अध्ययन की धुन में था और उसी धुन के आगे मैंने महात्मा जी की इस आवाज़ को दिल्लगी समझा था और उनके विचारों की हँसी भी उड़ाई थी, परन्तु जब बङ्गाल में बारम्बार बाढ़ के आने और दुर्भिक्षों के पड़ने के कारण मुझे अकाल और बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए भिक्षा-वृत्ति धारण करनी पड़ी और उनके लिए जगह-जगह घूम कर २० लाख रुपए इकट्ठे करके उनकी सहायता की, तब पता चला कि चरख़े का क्या महत्व है और वह कितनी उपयोगी वस्तु है और तभी से मैं इसके पीछे दीवाना हो गया हूँ।

यन्त्रों के ज़रिए थोड़े समय और परिश्रम से एक साथ बहुत सा सामान प्रचुर मात्रा में तैयार कर लिया जाता है और इसका यह नतीजा होता है कि चीज़ों की उत्पादन शक्ति बढ़ जाने के कारण बहुत से लोगों की रोज़ी छिन जाती है और देश में बेकारी फैल जाती है। यह कल और कारख़ाने देश के लिए किस प्रकार हितकर अथवा अहितकर हैं, इसका यूरोप और अमेरिका को ख़ासा अनुभव हो चुका है और हो रहा है। आज उपर्युक्त देशों में इन्हीं कल और कारख़ानों की बदौलत बेकारी बढ़ती जा रही है और बेकारी की यह समस्या उनके लिए जटिल तथा चिन्ताजनक हो रही है।

इसलिए मेरी समझ में इन कल और कारख़ानों के बजाय हाथ की कारीगरी (हस्त-कौशल) देश के लिए अधिक हितकर और लाभप्रद है। आज से लगभग २॥ साल पहले की बात है। उस समय बङ्गाल में लोगों को सिगरेट और सिगार पीने का बड़ा शौक़ था, परन्तु उसके बाद ही न जाने देश में किस प्रकार की लहर उठी कि लोगों ने बिना किसी के कुछ कहे-सुने अथवा पिकेटिङ्ग किए ही एकदम से सिगरेट का पीना छोड़ दिया और उसके बजाय बीड़ी को काम में लाने लगे। लोगों के हृदयों में यह परिवर्तन एक जादू के खेल की तरह हुआ। मैं बङ्गाल में बीड़ी के प्रचार को इस बात का सूचक समझता हूँ कि बङ्गाल ने स्वदेशी को अपना लिया है और वहाँ के निवासियों में एकता स्थापित हो चली है। सिगरेट के स्थान पर आज बङ्गाल में बीड़ी का प्रचार हो जाने के कारण देश का प्रति वर्ष २ करोड़ रुपया जो सिगरेट के पीछे विदेश जाया करता था, उसका जाना बच गया है।

चरख़े पर हँसना भूल है। कलों के कारण आज सारा पाश्चात्य जगत दुखी हो रहा है, हमारा और हमारे देश का उद्धार यदि किसी से हो सकता है, तो वह एकमात्र चरख़े से ही हो सकता है। चर्ख़ा ही हमारा मुक्तिदाता और उद्धार-कर्ता है।

❀ ❀ ❀

मालवीय जी की अपील

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय ने स्वदेशी-प्रचार के सम्बन्ध मे निम्न-लिखित वक्तव्य प्रकाशित कराया है :—

स्वदेशी आन्दोलन को अधिक विस्तृत और दृढ़ बनाने के विचार से स्वदेशी-दिवस मनाने की जो अपील मैंने देश से की थी, उस पर जो उत्साह दिखाया गया है, उसके लिए मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। निजी तौर पर तथा समाचार-पत्रों से जहाँ तक मालूम हो सका है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ब्रिटिश भारत में सर्वत्र ही स्वदेशी-दिवस मनाया जायगा।

मैंने अब तक देशी रियासतों के राजाओं, सरकारों और प्रजा से स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेने की विशेष अपील नहीं की है, पर अब मैं वैसा करता हूँ। स्वदेश का अर्थ है अपना देश और स्वदेशी का मतलब है अपने देश के लोग और अपने देश की चीज़ें। भारत जैसे ब्रिटिश भारत के लोगों का देश है, उसी प्रकार देशी रियासतों के लोगों और राजाओं का भी देश है, और मातृभूमि की भलाई के लिए



श्री० मालवीय जी

स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहित करना देशी रियासतों के राजा-प्रजा का उसी प्रकार कर्त्तव्य है, जिस प्रकार ब्रिटिश भारत के लोगों का। मुझे आशा है कि देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत दोनों ही के प्रत्येक नगर, तहसील और तालुके में, जहाँ अब तक स्वदेशी या 'देशी ख़रीदो' सङ्घ स्थापित नहीं हुए हैं, बिना विलम्ब ऐसा किया जाएगा।

आन्दोलन के उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक ज़िले में एक स्थायी स्वदेशी प्रदर्शिनी खोली जाय, जिसमें एक विभाग लोगों को स्वदेशी चीज़ों की सूची, उनके मिलने का पता तथा दूसरी काम की जानकारी देने के लिए हो और उद्योग-धन्धों तथा व्यवसाय-वाणिज्य सम्बन्धी एक छोटा पुस्तकालय भी प्रदर्शिनी से सम्बद्ध हो।

प्रजा का आर्थिक सुधार किसान और कारख़ानेदार दोनों के उद्योग-धन्धों की उन्नति पर निर्भर है। स्वदेशी आन्दोलन वालों को यह दुहरा उद्देश्य ध्यान में रखना चाहिए। इसलिए प्रदर्शिनी में दो मुख्य विभाग होने चाहिए, एक कृषि सम्बन्धी और दूसरा उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में। उद्देश्य यह होना चाहिए कि यह संस्था कृषि और उद्योग-धन्धों की उन्नति में सहायता करने वाला ज़िले का महत्वपूर्ण केन्द्र बन जाय।

महात्मा गाँधी के ये शब्द स्मरण रखना चाहिए कि बिना घरेलू उद्योग-धन्धे के भारतीय कृषक की कुशल नहीं। केवल कृषि से वह अपना निर्वाह नहीं कर सकता। उसे एक सहायक उद्योग की आवश्यकता है और सूत कातना सबसे आसान, सबसे सस्ता और सबसे अच्छा उद्योग है। यह कृषि के लिए सहायक उद्योग का काम देता है और इसलिए बढ़ती हुई निर्धनता का प्रश्न हल करने में अच्छी सहायता देता है।

महात्मा गाँधी ने देश की जो सेवाएँ की हैं, उनमें सबसे बड़ी सेवा चर्खे और खद्दर का पुनरुद्धार है, जिससे लोगों के—स्त्री-पुरुष दोनों के पहनावे में शुभ परिवर्तन हुआ है। इससे ब्रिटिश भारत के प्रत्येक भाग में हज़ारों आदमियों को काम मिल गया है। मैं अपील करूँगा कि वे सब, जो ऐसा कर सकें, केवल हाथ का कता, हाथ का बुना कपड़ा ही काम में लावें और अपनी भारतीय मिलों का सारा कपड़ा उन भाइयों के लिए छोड़ दें, जिन्हें खद्दर न मिल सकता हो।

पर यह उन घरेलू धन्धों में से केवल एक ही हुआ, जिनका स्वदेशी आन्दोलन से सम्बन्ध है। इसके अलावा दूसरे हज़ारों उद्योग-धन्धे हैं, जिनकी उन्नति करना हमारा कर्तव्य है, जो हमारे लिए हितकर है। मैं अपने देश के सब धर्मों, सम्प्रदायों और श्रेणियों के स्त्री-पुरुषों से—सरकारी नौकरों से भी—अपील करता हूँ कि इस कर्त्तव्य को पूरा करने के देशभक्तिपूर्ण तथा मनुष्योपकारी प्रयत्न में सम्मिलित हों और इस प्रकार अपने देशवासियों की आर्थिक स्थिति सुधारें।

❀ ❀ ❀

भारतीय सभ्यता और स्त्रियाँ

प्रयाग महिला-विद्यापीठ के वार्षिकोत्सव के अवसर पर महात्मा नारायण स्वामी जी ने एक बड़ा महत्वपूर्ण भाषण दिया था। पाठकों के लाभार्थ यहाँ हम उसे उद्धृत कर रहे हैं :—

बृहदारण्यकोपनिषद् में एक जगह कहा गया है कि प्रारम्भ में पुरुष रूप से आत्मा था। वह अकेला होने से सन्तुष्ट नहीं था। उसने इच्छा की कि उसका एक साथी हो। वह आत्मा विस्तार से इतना था जितना स्त्री और पुरुष दोनों मिल कर होते हैं। उस (आत्मा) ने अपने को दो भाग करके गिराया। इस (विभक्त होने) से वे दोनों भाग पति और पत्नी हुए और इस प्रकार विभक्त होने से वे आधे दाने (दाल) के सदृश हुए। उपनिषद् के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि गार्हस्थ्य (पति और पत्नी का संयुक्त) शरीर एक दाने के सदृश था। उसकी बराबर-बराबर दो दालें होकर पुरुष और स्त्री हुईं, इसलिए स्पष्ट है कि उन दोनों में समता होनी चाहिए। वैदिक साहित्य में जगह-जगह इस समता के चिन्ह पाए जाते हैं।

वेद और स्त्री-जाति

अथर्ववेद में कन्याओं को, ब्रह्मचर्य का पालन करके, युवा पति के साथ विवाह करने की शिक्षा दी गई है। स्वामी दयानन्द ने अपने पूना के एक व्याख्यान में कहा था—"स्त्रियाँ आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करती थीं (सुलभा) और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरु-गृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे।" (उपदेश-मञ्जरी पृष्ठ २०)

अथर्ववेद में स्त्रियों में इन गुणों के होने का विधान किया गया है—मृदु, विमन्यु (क्रोधरहित), प्रियवादिनी, अनुव्रता (पति के व्रत में सम्मिलित होने वाली), क्रतौ असः (पति के कार्यों में सहायता देने वाली)।

अथर्ववेद में उन्हें कन्या (कमनीया) कुलपा, से (पत्युः) भगम् (अर्थात् पति का ऐश्वर्य) कहा है।

अथर्ववेद में स्त्रियों के नेतृत्व का इस प्रकार वर्णन है :—

जिसे कोई जीत न सके, न कोई लूट सके, ऐसी इन्द्राणी आगे बढ़े। तै० सं० २।२।८।१ में, "इन्द्राणी वैसेनायै देवता" कह कर इन्द्राणी का अर्थ सेनापत्नी किया गया है। अर्थात् उन्हें युद्ध में सेना के नेतृत्व का भी अधिकार वेद ने दिया है।

अथर्व ३।८।२ में स्त्रियों को शूर पुत्रों की देने वाली कह कर आवाहन किया गया है।

ऋग्वेद १०।८५।४६ में नवागता वधू को गृह की सम्राज्ञी कहा गया है।

यजुर्वेद में कन्या को अधिकार ही नहीं दिया गया, बल्कि आवश्यक ठहराया गया है कि वह उस युवक से विवाह न करे, जो एक से अधिक पत्नी रखने का इच्छुक हो।

यजुर्वेद १२।६२ में उन्हें यह भी अधिकार दिया गया है कि दान धर्म-रहित और दूसरे अवगुण रखने वाले युवकों से विवाह न करें।

यजुर्वेद १२।६१ में स्त्री को "निऋते" (सत्याचरण करने वाली) कह कर, विधान किया गया है कि नियन्ता पुरुष और न्याय करने वाली स्त्री के साथ पृथ्वी पर आरूढ़ हो, जिसका भाव यह है कि प्रबन्ध और न्याय दोनों विभागों में उन्हें भाग लेने का आदेश है।

लोपामुद्रा आदि अनेक स्त्रियाँ वेद की ऋषिकाएँ थीं, उन्होंने वेद-मन्त्रों के अर्थों का प्रकाश किया और उनकी शिक्षा, स्त्री-पुरुष, सभी को दी।

वाल्मीकीय रामायण और स्त्री-जाति

लगभग वाल्मीकीय रामायण के रचना-काल तक स्त्रियों का मान इसी प्रकार बना रहा। वाल्मीकीय रामायण में जगह-जगह इसके प्रमाण मिलते हैं। उनमें से कुछ का यहाँ उल्लेख किया जाता है :—

(१) रामचन्द्र के युवराज होने की ख़बर सुन कर कौशिल्या ने प्राणायाम करते हुए ईश्वर का ध्यान किया।

(२) रामचन्द्र जब कौशिल्या के गृह में गए तो उनको हवन करते हुए देखा।

(३) रामचन्द्र के वन जाने पर उनकी मङ्गल-कामना से कौशिल्या ने घृतादि से हवन किया।

(४) जब रामचन्द्र सीता के गृह में वन जाने की अनुमति लेने के लिए आए, तब सीता ने रामचन्द्र के निषेध करने पर भी उनसे कहा कि "यदि आप वन जावेंगे तो मैं तुम्हारे आगे चल कर रास्ते में जो झाड़ी और काँटे होंगे, उन्हें साफ़ करती चलूँगी।" उस (सीता) ने यह भी कहा कि "मुझे माता और पिता ने सब प्रकार की शिक्षा दी है, इसलिए आपको 'किन्तु-

परन्तु' न करके, जो मैं कहती हूँ उसे मानना चाहिए।" तब फिर भी रामचन्द्र ने सीता को अपने इरादे को छोड़ने का आग्रह करते हुए अवध ही में रहने की बात कही और कहा कि जब मेरे पीछे भरत तुम्हें नमस्कार करने के लिए आया करे, तो उनके सामने तुम मेरी बड़ाई न करना, क्योंकि राजा लोग दूसरों की प्रशंसा नहीं सुना करते हैं। तब सीता ने बड़ी तेजस्विता प्रदर्शित करते हुए, रामचन्द्र से कहा कि आप क्यों इस प्रकार की बातें करते हैं, जो आप जैसे राजकुमारों को शोभा नहीं देतीं। उसने यह भी कहा कि "यदि मेरे पिता (जनक) यह जानते कि रामचन्द्र पुरुष के रूप में स्त्री ही है, तो वे तुम्हारे साथ मेरा विवाह कभी नहीं करते।" इससे स्पष्ट है कि समय पड़ने पर स्त्रियाँ पुरुषों की ताड़ना भी कर सकती थीं।

रामायण के उपर्युक्त उद्धरणों से यह बात अच्छी तरह प्रमाणित होती है कि उस समय तक वेदों के शिक्षानुसार स्त्रियों को सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे और उनका समाज में समुचित मान था। महाभारत-काल में इस मान में कमी हुई। द्रौपदी का जो अपमान भीष्मपितामह आदि के होते हुए, भरी सभा में हुआ, वह इसका प्रमाण है। दुर्भाग्य से यह कमी उत्तरोत्तर बढ़ती गई और स्वामी शङ्कराचार्य जी के काल में यह अधोगति, पराकाष्ठा की सीमा को पहुँच चुकी थी।

स्वामी शङ्कराचार्य और स्त्री-जाति

श्रीमद्शङ्कराचार्य के नाम से उनकी लिखी हुई वर्णित एक लघु पुस्तिका प्रश्नोत्तरी के नाम से प्रसिद्ध है। उसमें स्त्रियों के सम्बन्ध में कुछ के उत्तर अत्यन्त आपत्तिजनक हैं। एक प्रश्न है कि "नरक का द्वार कौन है?" उत्तर दिया गया है कि "स्त्री"। फिर एक दूसरा प्रश्न है कि "विश्वासपात्र कौन नहीं है?" इसका भी "स्त्री" ही उत्तर दिया गया है। फिर एक प्रश्न है कि "कौन सा वह विष है, जो अमृत के समान प्रतीत होता है।" उत्तर में वह विष "स्त्री" ही को बतलाया गया है। इस प्रकार के और ऐसे ही अत्यन्त आपत्तिजनक प्रश्नोत्तर एक दर्जन से भी अधिक हैं, जो इस पुस्तक में दिए गए हैं। स्त्री-जाति के अपमान की यह प्रवृत्ति कम नहीं हुई, किन्तु बराबर बढ़ती ही गई। श्रीतुलसीदास जी ने भी "ढोल-गँवार" वाली चौपाई का ढोल पीट कर इसमें भाग लिया।

स्वामी दयानन्द और स्त्री-जाति

आर्य-समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती का ध्येय केवल वेदों का प्रचार करना था। इसलिए उनके लिए अनिवार्य था कि वे स्त्री-जाति की मान-वृद्धि करते। उन्होंने उदयपुर में एक ८-९ वर्ष की बालिका के सामने नतमस्तक होकर देशवासियों को बतला दिया कि वे एक छोटी सी बालिका को भी मातृ-शक्ति के रूप में देखते हैं और चाहते हैं कि देश और जाति में "मातृवत्परदारेषु" की शिक्षा का फिर से मान होने लगे। श्रीयुत रङ्गा अय्यर एम० एल० ए० ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'Father India' में उचित रीति से लिखा है कि—"In the 19th century Rishi Dayananda Saraswati came as a Massiah to preach the restoration of women to their ancient glory" यह बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष की बात है कि स्त्री-जाति के सम्बन्ध में अब जाति का दृष्टिकोण बदला हुआ है। अब प्रत्येक माता और पिता अपनी कन्या को सुशिक्षिता देखना चाहता है और प्रत्येक युवक, पढ़ी-लिखी कन्या ही से विवाह करने का इच्छुक है। परिवर्तन-काल जाति के लिए बड़ा कठिन काल हुआ करता है। ऐसे समय की कुछ भी भूल विनाशक हो जाया करती है।

स्त्री-जाति में परिवर्तन

स्त्री-जाति को भी इस परिवर्तन-काल में बड़ी सावधानी अपेक्षित है। कुछेक ध्यान में रखने योग्य सावधानियों का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

(१) स्त्री और पुरुष मनुष्य-जाति के दो भाग हैं और दोनों की लोक सम्बन्धी आवश्यकताएँ और कर्तव्य भी पृथक् हैं। इसलिए उनकी शिक्षा-पद्धति भी पृथक-पृथक् होनी चाहिए। जो लोग कन्याओं को शिक्षा दिलाने के उत्साह में, उन्हें वही शिक्षा जो पुत्रों को दी जाती है, दिलाने लगते हैं, बड़ी भूल करते हैं। सच तो यह है कि प्रचलित शिक्षा-पद्धति में देश की परिस्थिति और जाति की आवश्यकताओं पर दृष्टि डाल

कर मौलिक परिवर्तन करने की ज़रूरत है। तब वह पुत्रों के लिए भी उपयोगी बन सकती है और पुत्रियों के लिए तो उसे एकदम बदल देना पड़ेगा।

(२) दूसरी बात "सम्मिलित शिक्षा" (Co-education) है। प्राचीन काल से इस देश में यही सिद्धान्त बराबर माना और काम मे लाया जाता रहा है कि बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक्-पृथक् होनी चाहिए। पश्चिमीय देशों की नक़ल करके इस देश में कई जगह कन्या और पुत्रों को आश्रमों में इकट्ठा रक्खा गया और उन्हे एक ही शिक्षालय में एक ही पाठ्य-विधि से शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। मुझे जहाँ तक मालूम हो सका है, प्रत्येक जगह इस परीक्षण में असफलता हुई। इसलिए इस सम्बन्ध में भी यही नियम प्रतिष्ठित रहना चाहिए कि दोनों बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक्-पृथक् होनी चाहिए। कुछ समय बीता, जब अमेरिका की एक शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट में यह शिकायत की गई थी कि अधिकतर-स्त्री अध्यापिकाओं से शिक्षा पाकर और उनकी अनेक बातों का अनुकरण करने से लड़के Womanised हो रहे हैं।

(३) तीसरी बात यह है कि इस समय शिक्षा पाने वाली कन्याओं में, शारीरिक उन्नति की ओर से उदासीनता आ रही है। इस कुटेव का फल यह है कि अनेक स्त्रियाँ पहले ही प्रसव-काल में मौत के गाल में समा जाती हैं। पुराना तरीक़ा, गृह-सम्बन्धी सभी काम स्वयं करने का फल बहुत अच्छा था, परन्तु उन्हें तो अब पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ छोड़ रही हैं और उसके स्थान पर और ही कोई व्यायाम करतीं, ऐसा भी प्रायः नहीं देखा जाता। इसलिए आवश्यक है कि कन्याओं को, विवाह से पहले और विवाह के बाद भी किसी न किसी प्रकार का व्यायाम, चाहे वह गृह-कार्य के रूप में हो, चाहे और किसी प्रकार का, अवश्यमेव करना चाहिए। माता का सबसे बड़ा काम, जैसा कि इटली के भाग्य-विधाता मुसोलनी ने भी कुछ समय बीता कहा था—"बलवान पुत्र और बलवती पुत्रियों का पैदा करना है।" यदि माता स्वयं निर्बला है, तो वह किस प्रकार बलवती सन्तान पैदा कर सकती है? एक बार मुझे भ्रमण करते हुए, एक ग्राम के निकट, एक जङ्गली जाति (हाबूड़ा) की एक माता को बच्चा जनते हुए देखने का अनायास अवसर मिल गया। मुझे एक बड़े घने वृक्ष की छाया में, सड़क के किनारे, ग्रीष्म-ऋतु की दुपहरी में एक दिन विश्राम करने के लिए बाधित होना पड़ा। उस समय (हाबूड़ा) जाति का एक जत्था वहाँ आया और उस वृक्ष की छाया में वह भी ठहर गया। वहाँ आते ही, उस जत्थे के साथ वाली एक माता के बच्चा पैदा हुआ। नाम-मात्र की सहायता एक दूसरी स्त्री ने दी थी, अन्यथा सारे काम स्वयं उसी बच्चा पैदा करने वाली माता ने कर लिए। थोड़ी देर के बाद यह माता उस बच्चे को एक टोकरे में लिटा कर और उस टोकरे को अपने सिर पर रख कर चल दी। कठिनता से इस सब काम में ३ घण्टे लगे होंगे। परन्तु पढ़ी-लिखी माताएँ ३ घण्टे नहीं, किन्तु ३ सप्ताह में मुश्किल से काम करने के योग्य होती हैं। यह अन्तर शारीरिक परिश्रम से उदासीनता ही का फल है।

(४) शारीरिक उन्नति के लिए यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि कन्याओं के विवाह की आयु, सोलह वर्ष से किसी हालत में भी कम न हो। अल्पायु में विवाह होने का यही दुष्परिणाम नहीं होता कि स्त्रियाँ और उनकी सन्तान निर्बल होती हैं; बल्कि इसका इससे भी अधिक भयङ्कर परिणाम, बाल-विधवाओं की संख्या-वृद्धि है। भला जिस देश में एक-एक, दो-दो वर्ष की आयु वाली कन्याएँ एक-दो नहीं, अपितु हज़ारों की संख्या में विधवा हों, क्या उस देश के पुरुष और स्त्रियों को भी पढ़ा-लिखा कहा जा सकता है? इन दुर्भाग्य वाली विधवाओं के कष्टों की कहानी बड़ी लम्बी है। अवकाश नहीं कि उसे यहाँ सुनाया जावे, परन्तु इतना तो कह ही देना चाहिए कि अपने को बड़े दयालु कहने वाले हिन्दू, इन (विधवाओं) पर दया नहीं करते। यदि बाल-विधवाओं की भोली और निर्दोष आँखों से बहते हुए आँसुओं को देख कर तुम्हें दया नहीं आती, तो तुम कैसे दयालु हो? यदि सोलह वर्ष से कम आयु वाली कन्याओं का विवाह न होता, तो यह साढ़े तीन लाख के लगभग विधवाएँ तो देश में न होतीं।



राजा गुमण

प्राचीन काल में किसी देश में गुमण नाम का एक राजा राज्य करता था। वह बहुत उदार और सज्जनों की सङ्गति तथा विद्या का प्रेमी था। उसकी सभा में हमेशा विद्वान लोग मौजूद रहते थे और उनको बहुत से इनाम-सम्मान मिलते थे।

पर, ज़्यादा ख़र्च होने के कारण, दुर्जनों की सङ्गति करने वाले अमण को, जो गुमण के भाई थे, यह बात पसन्द न थी। उसे अपने भाई से द्वेष उत्पन्न हो गया। उसने अपने दुराचारी साथियों की सहायता से गुमण को हरा कर देश से निकाल दिया। गुमण कुछ मित्रों के साथ वन में रहने लगा।

स्वभाव से मूर्ख, दुर्जनों का साथ, तिस पर राजगद्दी की प्राप्ति भी हो गई। इसलिए अमण के घमण्ड और अत्याचारों की सीमा न रही। वह गुमण से इतना जलता था कि उसने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो गुमण का सिर काटेगा, उसको हज़ार रुपए इनाम मिलेगा। पर लोगों का गुमण पर इतना प्यार, आदर और विश्वास था कि किसी को इस इनाम का लोभ न हुआ।

गुमण से कुछ इनाम पाने के विश्वास से आने वाले एक कवि को राजधानी में यह परिवर्तन बहुत बुरा लगा। गुमण से भेंट होने का कोई भी चिन्ह न था; पर कवि उस भेंट को पारितोषिक से भी अमूल्य मानता था। वह वन की ओर रवाना हुआ। उधर राजा से बातचीत करते समय कवि ने एक छन्द बनाया, जिसमें यह बतलाया कि गर्मी में नदी पानी-रहित होते हुए भी लोगों को पानी पिला देती है, वैसे ही सज्जन मुसीबत पड़ने पर भी सबकी मदद करते हैं। गुमण तो बहुत प्रसन्न हुए, हार्दिक इच्छा भी थी, पर क्या करें, उनके पास एक फूटी कौड़ी भी न रही। वे जानते थे कि अपने सिर के ऊपर एक भारी इनाम लगा है, इसलिए कवि से कहा कि मेरा सिर लेकर अमण के पास जाइए, इनाम मिलेगा और मेरा जीवन भी सफल हो जायगा। पर इस बात को कवि ने पसन्द न किया।

कवि ने एक शिल्पी की सहायता से गुमण के सिर-जैसी एक प्रतिमा बनवाई और उस पर रङ्ग चढ़ा कर अमण के पास ले गया। उस प्रतिमा को देखते ही अमण का मुख बदल गया और फीका पड़ गया। सच है, ख़ून पानी से भारी होता है। सहोदर होने के कारण अपना मांस आप ही आप तलतलाने लगा। अपने चलन का नतीजा अब उसके मन में तीर की तरह लगा। खेदित होकर वह बोला—"हे कवि, आपको हज़ार रुपए इनाम देने चाहिए, अतः ज़रूर देने की आज्ञा देता हूँ। आप अगर मेरे भाई को ला सकते, तो आपको पाँच हज़ार इनाम देता, पर अब क्या हो सकता है।" यह देखते ही कवि अपना उपाय सफल होने के कारण बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—"हे अमण, घबराओ मत, यह केवल एक प्रतिमा है। तुम्हारा भाई गुमण जीवित है, तुम्हारे मन की परीक्षा के लिए और तुम्हें शिक्षा देने के लिए मैंने ऐसा उपाय किया है।"

थोड़े ही दिनों में गुमण भी राजधानी में आ गया। अमण ने अपनी भूल के लिए उससे क्षमा माँगी। प्रजा भी सन्तुष्ट हो गई। सब लोगों ने कवि की बहुत प्रशंसा की।

—रा० शङ्करन

काले-काले बादल आजा

[श्री० अवधकिशोर प्रसाद 'कुश्ता', वकील, गयावी]

भोले-भाले बादल आजा, नाज़ के पाले बादल आजा।
ओ मतवाले बादल आजा, पानी वाले बादल आजा॥
काले-काले बादल आजा।

गुलशन वाले हैं मुरझाए, खेती वाले हैं घबराए।
गरमी से कितने कुम्हलाए, सब हैं तुझ पर आस लगाए॥
काले काले बादल आजा।

बिजली चमके—चमके किस्मत, पानी बरसे—बरसे रहमत।
पौदा निकले—निकले हसरत, आए इशरत, भागे उसरत॥
काले-काले बादल आजा।

आजा काले-काले बादल, आकर जल से भर दे जल-थल।
निकले ताज़ा-ताज़ा कोंपल, जङ्गल में हो जाए मङ्गल॥
काले-काले बादल आजा।

बिजली चमके चम-चम, चम-चम, पानी बरसे रिमझिम-रिमझिम।
हर इक दिल हो शाद व खुर्रम, आलम का कुछ और हो आलम॥
काले-काले बादल आजा।

आकर सबको मस्त बना दे, मैख़ाने में जाम पिला दे।
एक-एक फूल पे रङ्ग जमा दे, बुलबुल का कुछ राग सुना दे॥
काले-काले बादल आजा।

आए घटा जो काली-काली, मस्ती मे झूमे हर डाली।
फ़र्शे-ज़मीं पर हो हरियाली, जग में छा जाए खुशहाली॥
काले-काले बादल आजा।

हर गुलशन मे हो रानाई, कुहसारों में हो ज़ेबाई।
घर-घर में हो बज़्म आराई, हर जानिब हो नग्मा सराई॥
काले-काले बादल आजा।

उड़ते हैं गुलशन में गरदे, आकर इन पर डाल दे परदे।
किश्तों को पानी से भर दे, और 'कुश्ता' को ज़िन्दा करदे॥
काले-काले बादल आजा।



विज्ञान तथा वैचित्र्य

भूत-लीला का एक दृश्य !

बिचला चौकोट (अलमोड़ा) में जुनियाँगढी नामक एक ढालू पहाड है। इस पहाड की चोटी पर पहाड़ को काट कर पुराने ज़माने का एक विशाल क़िला बना हुआ है। क़िले के पूर्व की ओर जुनियाँ नामक एक छोटा सा गाँव है। यहाँ पदमू पैलू नाम के एक किसान की पुत्र-वधू कँवलीदेवी के ऊपर विगत गर्मियों से एक अदृश्य प्राणी का कोप हो रहा है। अपने रिवाज के मुताबिक़ यह गोरिल देवता का दोष समझा गया और छः बकरों से पूजा की गई, किन्तु परिणाम विपरीत हुआ। कई ओझाओं ने भी झाड़-फूँक की, पर कुछ नहीं। समझ में नहीं आता कि वास्तव में यह क्या बला है। अब तक तो इस अदृश्य प्राणी का यह मतलब रहा कि कँवलीदेवी जुनियाँ में न रहने दी जाय।

कँवलीदेवी को घास काटते समय प्रथम वह अदृश्य प्राणी लाल-पीले वस्त्र पहिने, साफ़ा बाँधे हुए सामने खड़ा नज़र आया। जब अपनी सहेली के साथ कँवली भागने लगी, तो कुछ पत्थर गिरने लगे। दूसरे दिन अपनी सास के साथ कँवली फिर जुनियाँ के क़िले में परीक्षार्थ भेजी गई। वहाँ पहुँचते ही पत्थर पडने लगे। इन लोगों ने आदमी समझ कर गालियाँ सुनाईं। फलस्वरूप ज़ोर से पत्थर-वर्षा होने लगी। जब ये लोग दौड़ कर घर के लिए भाग निकले तो वह प्राणी भी पत्थर फेंकता हुआ क़िले से घर तक आ पहुँचा। घर आकर इन लोगों को विश्वास हो गया कि यह देवता का प्रकोप है। तब से अब तक कँवली के आस-पास इसका पत्थर फेंकना लगातार जारी है। पहिले पत्थर इधर-उधर गिरते थे और चोट नहीं आती थी, अब कभी-कभी चोट भी आने लगी। इस आतङ्क से कँवली कमज़ोर भी हो गई है। रात को वह भारी कष्ट पहुँचाता है। रात भर कँवली के चारों ओर शब्द करता फिरता है। कभी उसके कमरबन्द से उसका गला बाँध लेता है। यदि उसने खोलने की चेष्टा की तो और भी ज़ोर से कस देता है। पानी की गागर को शिर से धक्के के साथ गिरा देता है। कँवली चक्की पीसती है तो वह चक्की को उलट कर अलग फेंक देता है। आटा और अनाज को भी इकट्ठा कर जाता है। खाना खाती है तो थाली अपने आप सामने से हट कर दूसरे कोने की ओर सरक जाती है या उलट कर गिर जाती है। घास का गट्ठा शिर में रखते ही हिल-डुल कर ज़मीन पर गिर जाता है, या इतना भारी कर देता है कि कँवली उसको उठा नहीं सकती। कभी शिर में चादर नहीं रखने देता। जब कँवली अपने पितृ-गृह (जो जुनियाँ से तीन मील की दूरी पर एक छोटी सी नदी के पार है) मसमोली को जाती है, तो वह भी सारा मार्ग पत्थर फेंकता हुआ नदी के किनारे तक कँवली को पहुँचा जाता है। इतनी ही कुशल है कि नदी पार मसमोली नहीं जाता।

अब उसने एक काम और करना प्रारम्भ कर दिया है। जुनियाँ में जब कँवली के सामने कोई उस प्राणी को भला-बुरा कहे, तो कहने वाले व्यक्ति के शिर में भी पत्थर मारने लग गया है।

—नाथसिंह वर्मा

❀ ❀ ❀

मालदार लेखक

एडगर वालेस ने अपने जीवन में १० लाख पौण्ड कमाए थे, अतः अब तक वही सब से धनाढ्य लेखक माने गए। परन्तु अब ज्ञात हुआ है कि सभी स्थानों के लेखकों की अपेक्षा ब्रिटिश लेखक अधिक धनवान हैं।

'नीयल कवर्ड' इस धनवान लेखक का नाम है। इसकी आयु केवल ३२ वर्ष और आय ५० हज़ार पौण्ड वार्षिक है। इस ब्रिटिश लेखक का यह दावा है कि मेरी आगामी १० वर्ष पर्यन्त की आय ५० हज़ार पौण्ड वार्षिक से कदापि कम न होगी।

४ वर्ष पूर्व सब से अधिक आमदनी मि० शा की थी, उनसे कम किपिलिङ्ग की और उनसे कम से कम सर जेम्सबेरी की। मगर अब तो यह क्रम बिल्कुल ही बदल गया। देखिए :—

नीयल कवर्ड ...	... ५०	हज़ार पौण्ड
बर्नार्ड शा ...	... ३५	,, ,,
ए० ए० मिलनी ...	... ३०	,, ,,
रुडयाड किपलिङ्ग ..	... २५	,, ,,
सर जेम्सबेरी ...	.. २५	,, ,,

ए० ए० मिलनी की पुस्तकें, जो साधारणतः बच्चों को पढ़ाई जाती हैं, अमेरिका मे खूब खप रही हैं।

उपरोक्त लेखकों के अतिरिक्त ५ अन्य विख्यात लेखक भी विद्यमान हैं, जिनकी वार्षिक आय केबिनेट के मिनिस्टरों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। वे भी १५-२० हज़ार पौण्ड सालाना कमाते हैं। उनके नाम ये है—सोमरसट मौघम, पी० जी० वीडहाउस, ए० एस० एम० हचिन्सन, वार्विक डीपिङ्ग, फ़िलिप्स ओपनहम।

जौन, ग्लासवरदी, गिलवर्ड, फ़्रेङ्को, बेन ट्रावर्स, सर फ़िलिप गिब्स इत्यादि को भी १०,००० पौण्ड वार्षिक से कम आय नहीं है।

आर० सी० शैरिफ़ को 'Journey's End' नामक पुस्तक लिखने के बदले ५० हज़ार पौण्ड मिले हैं।

नीयल कवर्ड को 'Bitter Sweat' नामक पुस्तक लिखने का इनाम पहली बार ३० हज़ार पौण्ड मिला। परन्तु जब अमेरिका ने इस पुस्तक को अपना लिया, तो उन्हें १ लाख पौण्ड मिला।

'बेनहूर' नाम की पुस्तक लिखने की क़ीमत डब्ल्यू वैलेस को ८० हज़ार पौण्ड मिले हैं।

चित्र-पट के लिए 'All quiet on the western Front' नामक पुस्तक लिखने का मूल्य रिमार्क को ६ हज़ार पौण्ड मिले है।

स्त्री-लेखकों की आय कुछ बहुत ज़्यादा नहीं है। उनके पाठक वहमी हैं। इङ्गलैण्ड में आज दिन सबसे बढ़ी-चढ़ी लेखिकाओं के नाम रोज़ मेकोले, शीलिया केस्मिन्थ, एनी एस० स्वान, ईथल मनिङ्ग और विल्लमन्स डेन हैं। इन लेखिकाओं में से किसी की भी आय अमेरिका की फ़ेनी हर्स्ट के बराबर नहीं है।

* * *

संसार का लघुत्तम बच्चा

बर्लिन में एक अस्पताल है, जिसमें एक बच्चा है, जो संसार का सबसे छोटा बच्चा कहा जाता है। इस बच्चे का जन्म कुछ दिन पूर्व इसी अस्पताल में हुआ था और अन्य बच्चों की माता के समान उसकी भी माता है। इस बच्चे का कुल वज़न ५४० ग्राम है और सिर से पैर तक की लम्बाई ३२ सेण्टीमीटर है। बच्चे की लम्बाई का अनुमान करने के लिए आप मामूली बिअर शराब की बोतल की कल्पना कीजिए और आपको मालूम हो जायगा कि बच्चा कितना लम्बा है।

अभी तक संसार में इतने थोड़े वज़न और इतने छोटे आकार का बच्चा पैदा ही नहीं हुआ। सन् १६०० में अलबत्ता एक बच्चा पैदा हुआ था, जिसका वज़न ६०० ग्राम था, परन्तु वह चन्द घण्टों तक ही जीवित रहा था। परन्तु यह बालक अभी तक जीवित है और बढ़ता तथा खेलता-हँसता है। एलबर्ट अस्पताल के डॉक्टरों का अनुमान है कि यह बच्चा अवश्य ही जीवित रहेगा।



प्रणय—लेखक श्री० देवनारायण द्विवेदी, प्रकाशक साहित्याश्रम, पो० कछवा (मिर्ज़ापुर), पृष्ठ-सं० ३७८ ; आकार क्राउन आठपेजी , मूल्य आवरण पृष्ठ पर २) और मुख्य पृष्ठ पर २॥) छपा है । सम्भवतः २। ही ठीक है ।

यह मौलिक उपन्यास द्विवेदी जी ने एक सत्य घटना के आधार पर लिखा है । इसमें एक स्वाभाविक गार्हस्थ्य चित्र अङ्कित है । कथानक हृदयग्राही और वर्णनशैली मज़ेदार है । साथ ही लेखक महोदय ने देश और समाज की परिस्थिति सुधारने के लिए 'स्वरुचिपूर्ण कल्पना-शक्ति' से भी काम लिया है । फलतः यह उपन्यास भी है और परिस्थिति सुधारने के लिए प्रोपेगण्डा भी । अर्थात् एक ही ढेले में दो शिकार किया गया है । इस सफलता के लिए लेखक महोदय को बधाई है ।

❀ ❀ ❀

ज्वालामुखी—लेखक श्रीमन्महाराज कुमार बाबू दुर्गाशङ्करप्रसाद सिंह, प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, पृष्ठ-सं० १०४+१८=१२२; मूल्य ॥।)

इस पुस्तक की भूमिका श्री० शिवपूजनसहाय ने लिखी है और श्री० कृष्णकान्त मालवीय, पण्डित रामगोविन्द त्रिवेदी और श्री० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी आदि हिन्दी-शिल्पियों ने इसकी प्रशंसा करके लेखक को उत्साहित किया है । यह पुस्तक एक हताश हृदय के आवेशपूर्ण उच्छ्वासों का संग्रह है । लेखक के प्रत्येक शब्द में दारुण-करुण वेदना निहित है । थोड़े शब्दों में यह एक कारुणिक गद्य-काव्य है । पुस्तक की भाषा कवित्वपूर्ण और रोचक है ।

❀ ❀ ❀

कनौजिया समाज में भयानक अत्याचार—लेखक श्री० कान्तिकृष्ण शुक्ल, प्रकाशक इन्द्रप्रस्थ पुस्तक भण्डार, दरीबा कलाँ, देहली पृष्ठ २६७, दाम १॥)

इस पुस्तक में लेखक ने कहानियों के रूप में, कान्यकुब्ज-समाज में प्रचलित कतिपय कुरीतियों का नग्न चित्र अङ्कित किया है । लेखक के कथनानुसार इस पुस्तक में वर्णित सभी घटनाएँ सच्ची और उनकी आँखों देखी हैं ; किसी का जी न दुखे, इसलिए केवल नाम-धाम बदल दिया गया है । हम लेखक के इस प्रयत्न की प्रशंसा करते हैं और चाहते हैं कि इस पुस्तक का कान्यकुब्ज-समाज में ख़ूब प्रचार हो, ताकि 'कान्यकुब्जा द्विजा श्रेष्ठा' की डींग मारने वालों की आँखें खुलें और वे अपनी सामाजिक दशा पर विचार कर सकें ! कहानियों की भाषा प्राञ्जल और वर्णन-शैली रोचक है ।

❀ ❀ ❀

गद्य-संग्रह—संग्रहकर्ता श्री० मन्महाराज कुमार बाबू दुर्गाशङ्करप्रसाद सिंह, प्रकाशक भी शायद स्वयं संग्रहकर्ता महोदय ही हैं । मिलने का पता, दिलीपपुर, आरा । मूल्य १।); पृष्ठ-सं० २७७ ।

यह संग्रह पटना-विश्वविद्यालय की दसवीं और ग्यारहवीं (?) कक्षाओं के लिए किया गया है । इसमें हिन्दी के नए और पुराने प्रसिद्ध लेखकों के कुल ३० लेख संग्रहीत हैं । सभी लेख विभिन्न विषयों पर लिखे गए हैं । इस संग्रह द्वारा शिक्षार्थियों को विषय के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की भाषा-शैली का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता है । संग्रह उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के काम का है । छपाई और काग़ज़ साधारण हैं ।

❀ ❀ ❀

वीर-भूमि चित्तौरगढ़—लेखक बाबू रामनारायण दूगड़, प्रकाशक श्री० क्षेमराज दूगड़ आर्टिस्ट, उदयपुर (मेवाड़); पृष्ठ-सं० १७४+६; आरम्भ में चित्तौरगढ़ का एक मानचित्र तथा स्वर्गवासी महाराणा फतहसिंह और वर्तमान मेवाड़-नरेश के रङ्गीन चित्रों के साथ लेखक महोदय का भी चित्र है। छपाई और कागज़ साफ, मूल्य १॥) और सजिल्द का मूल्य २) है। परन्तु सजिल्द पुस्तक शायद समालोचकों के लिए भेजना उचित नहीं समझा गया।

इस पुस्तक के लेखक श्री० दूगड़ जी हिन्दी के वयोवृद्ध लेखकों में थे। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं। यह पुस्तक आपकी अन्यतम रचना है। इसमें चित्तौरगढ़ का भौगोलिक और ऐतिहासिक विवरण बड़े ही अच्छे ढङ्ग से दिया गया है। लेखक ने यथेष्ट अध्ययन के बाद इस पुस्तक की रचना की है। चित्तौरगढ़ के प्रमुख स्थानों तथा विजयी वीरों के कीर्त्ति-स्तम्भों का चित्र भी पुस्तक में दे दिया गया है, इससे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। छपाई आदि साफ़ है, परन्तु यत्र-तत्र छापे की भूलें रह गई हैं, जिन्हें प्रकाशक महोदय ने अगले संस्करण में सुधार देने की प्रतिज्ञा की है। पुस्तक इतिहास-प्रेमी पाठकों के काम की है।

❀ ❀ ❀

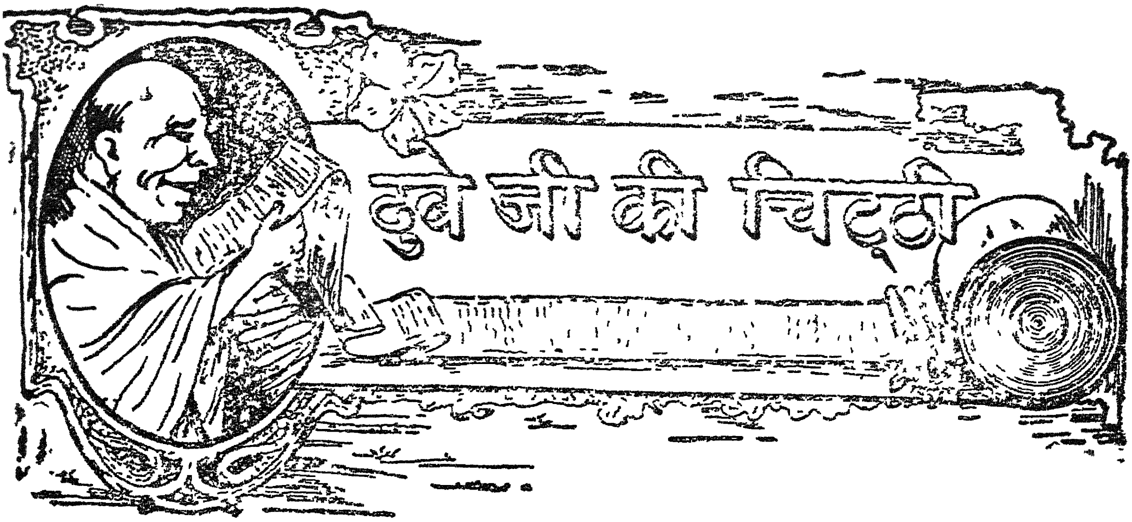
सैनिक क़वायद—लेखक श्री० रणेन्द्रनाथ राय चौधरी, बी० एल०, भूतपूर्व कम्पनी सार्जेण्ट मेजर, और प्रकाशक अध्यापक ज्ञानसाहा, एम० ए०, मन्त्री, हिन्दुस्तानी सेवा-दल (बिहार शाखा), सदाक़त आश्रम, पो० दीघाघाट, पटना। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १३०, मूल्य ।॥)

इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक की प्रस्तावना भूतपूर्व राष्ट्रपति पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू ने लिखी है। पुस्तक राष्ट्रीय स्वयंसेवकों को हिन्दी-भाषा द्वारा सैनिक क़वायद सिखाने के उद्देश्य से लिखी गई है। शिक्षार्थियों और शिक्षकों की सुविधा के लिए पुस्तक के तीन भाग बना दिए गए हैं, जैसे—(१) टुकड़ी कवायद, (२) लाठी क़वायद, और (३) व्यायाम। इसके सिवा पुस्तक में ७० चित्रों का एक चार्ट भी दे दिया गया है, जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही लाभ उठा सकते हैं। पुस्तक स्वयंसेवकों के बड़े काम की है।

❀ ❀ ❀

वैदिक-धर्मी समाज—अर्थात् एक नवीन समाज की स्थापना का प्रस्ताव। प्रस्तावक हैं, स्वामी मङ्गलानन्द जी पुरी। और यह आपके मङ्गल ग्रन्थमाला का बारहवाँ पुष्प है। प्रकाशक, मेसर्स एल० एस० वर्मा एण्ड को०। १७३ अतरसुइया, इलाहाबाद; मूल्य ।) है। पृष्ठ-संख्या १२०।

पुरी जी महाराज पुराने आर्य-समाजी हैं और मध्य एशिया तथा अफ्रिका आदि कई देशों की सैर भी कर चुके हैं। इस पुस्तक द्वारा आप एक नए सम्प्रदाय की नींव डालना चाहते हैं। उसका नाम "वैदिक-धर्मी-समाज' होगा। वह वेदों का अनुयायी होगा। एक ईश्वर की उपासना करेगा। परन्तु पुरी जी के मतानुसार, चूँकि वेदों में भूत-प्रेत, श्राद्ध-तर्पण, आदि का उल्लेख पाया जाता है, इसलिए पुरी जी का भावी वैदिक-धर्मी समाज भी इन बातों को मानेगा। वेदों में हिंसा और अहिंसा दोनों का समर्थन है, इसलिए वैदिक-धर्मी समाज में मांसाहारी और निरामिष-भोजी, दोनों प्रकार के 'भोजियों' की गुञ्जाइश रहेगी। नर्क-स्वर्ग मानने वाले भी पुरी जी के समाज के सदस्य हो सकते हैं। हमें विश्वास है, सम्प्रदायवाद के इस उर्वर क्षेत्र में यह नवीन सम्प्रदाय लहलहा उठेगा और भारत के पैग़म्बरों में पुरी जी का भी नाम रह जाएगा।



अजी सम्पादक जी महाराज,

जयराम जी की !

चाहे दुनिया कुछ कहे, परन्तु मौलाना शौकतअली की शानोशौकत भी संसार से निराली ही है। जिस तरफ़ निकल जाते हैं, धूम हो जाती है। लोग उँगलियाँ उठाते हैं कि वह देखो, मौलाना शौकतअली जा रहे हैं। और आजकल तो उनका रोब और दबदबा इतना बढ़ा-चढ़ा हुआ है कि लोग "मौलाना शौकतअली आए" यह वाक्य उसी भाँति व्यवहृत करते हैं, जिस प्रकार माताएँ बच्चों को डराने के लिए कह देती हैं कि "जूजू आया।" हालाँकि अपने राम यह बात प्रमाणित करने के लिए बहुत ही व्याकुल हैं कि मौलाना में ज़रा भी जूजूपन नहीं है। यह तो लोगों ने उन्हे ख़ामख़ाह बदनाम कर रक्खा है। अन्यथा मौलाना जैसा ईमानदार, सच्चा और अल्लाहमियाँ के नाम से थर-थर काँपने वाला आदमी संसार में है या नहीं, यह बात अभी निश्चित नहीं हो सकी है। देखिए न, आख़िर विवाह कर ही डाला। हालाँकि लगभग आधा धड़ क़ब्र में जा चुका है। हज़रत इज़राईल (यमराज) इनको बुलाने के अभिप्राय से हिन्दोस्तान के सफ़र की तैयारी कर रहे हैं। मौलाना ने बुढ़ापे में विवाह क्यों किया? इसका कारण बहुतों को न मालूम होगा। यद्यपि मौलाना ने साफ़-साफ़ कह दिया है कि उन्होंने विवाह केवल इसलिए किया है कि हज़रत मुहम्मद ने भी बुढ़ापे में विवाह किया था। जो बात पैग़म्बर साहब ने की वही मौलाना ने भी की! तब फिर झगड़ा ही क्या रहा? इस हिसाब से मौलाना पक्के मुसलमान साबित हो गए। पक्का मुसलमान वही है जो अपने पैग़म्बर का अनुकरण करने में उनसे चार क़दम आगे ही रहे। मुहम्मद साहब ग़ैर-जाति की गोरी महिला से विवाह नहीं कर सके, परन्तु मौलाना ने करके दिखा दिया। फिर भी अधिकांश मुसलमान मौलाना की इज़्ज़त नहीं करते। यह एक ऐसी रञ्ज पैदा करने वाली बात है कि अगर मौलाना चाहें तो अफ़ीम खा सकते हैं। मगर अफ़ीम से उन्हें उतनी ही अरुचि हो गई है, जितनी कि हलवाई को मिठाई से हो जाती है।

कुछ लोग यह शक़ करते हैं कि मौलाना ने काम-वासना के कारण यह विवाह किया है। यह बात बिलकुल ग़लत है। मौलाना बहुत सी वासनाओं से मोक्ष पा चुके होंगे अथवा निकट भविष्य में पाने वाले होंगे—यह अपने राम का विश्वास है। ऐसी दशा में उन पर उपरोक्त वासना का शक़ करना हज़ार हाथ ग़लत ही निकलेगा। मौलाना की गोरी बेगम ने भी अपने वक्तव्य द्वारा इस मसले को बहुत-कुछ स्पष्ट कर दिया है। उसने कहा था कि उसने मौलाना से प्रेम के कारण विवाह नहीं किया; बल्कि इस कारण कि वह मौलाना को एक महान पुरुष मान कर उनकी इज़्ज़त करती है और उनमें भक्ति तथा श्रद्धा रखती है। बस!

सो जनाब उसे मौलाना से प्रेम बिलकुल नहीं है। और क़ायदे से होना भी न चाहिए। क्योंकि मौलाना की उम्र, शक्लोसूरत और डील-डौल यदि किसी युवती के हृदय में उनके प्रति प्रेम उत्पन्न कर दे, तो यह संसार का आठवाँ आश्चर्य हो जायगा। और फ़िलहाल अल्लाह-मियाँ आठवें आश्चर्य की सृष्टि करना नहीं चाहते। रही महानता की बात, सो महान तो वह हई हैं—इसमें किसी को शकोशुबह करने की गुञ्जाइश नहीं है। ऐसा महिषकाय पति भी यदि महान न होगा तो फिर और कोई हो भी नहीं सकता। यह तय समझिए। ऐसी दशा में यदि गोरी युवती मौलाना के नयन-बाणों से बिद्ध न होकर उनकी महानता के भार से दब कर उनसे विवाह कर बैठी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इधर मौलाना ने भी इस कहावत के अनुसार कि "जूठा खाय मीठे के लालच" उससे विवाह कर लिया। क्योंकि यद्यपि वह थर्ड-हैण्ड स्त्री है, परन्तु है तो श्वेताङ्ग। और कुछ नहीं तो यही क्या कम है कि उसकी बदौलत मौलाना को बहुत सी सुविधाएँ प्राप्त हो जायँगी। गोरी पत्नी की कृपा से मौलाना की पैठ दूर-दूर तक हो जायगी।

सुना जाता है कि मौलाना के इस कार्य से उनका सुपुत्र अत्यन्त रुष्ट है। अपने राम की समझ में उसे रुष्ट होने का विचार भी नहीं करना चाहिए था। बल्कि यह तो बड़े सौभाग्य की बात है कि उसे एक मेम का पुत्र कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। मौलाना ने उसके साथ ऐसी नेकी की है कि उसे अपने पिता का डबल कृतज्ञ होना चाहिए। श्वेताङ्ग माता मिलना कोई मज़ाक़ नहीं है, बड़े पुण्य से ऐसा होता है—विशेषतः उस दशा में, जब कि नौ मास तक उसके पेट में रहने का कष्ट भी नहीं उठाना पड़ा।

ख़ैर, यह तो मौलाना के प्राइवेट मामले हैं, इनसे अपने राम को कोई सरोकार नहीं। इतना भी केवल इसलिए लिख दिया कि कुछ मुसलमान इस विवाह के कारण मौलाना को बुरा-भला कहते हैं। परन्तु अपने राम अच्छी तरह जानते हैं कि वह केवल ईर्षा के कारण ऐसा कहते हैं। उनको इस बात का रञ्ज है कि उन लोगों को जवानी में भी मेम नसीब न हुई और मौलाना ने बुढ़ापे में हथिया ली। वह यह नहीं सोचते कि यह तो अपना-अपना भाग्य है। मौलाना जितने भारी-भरकम हैं, उतना ही भारी-भरकम उनका भाग्य भी है।

दूसरी बात जिससे अपने राम अभी तक सहमत होने की कोशिश नहीं कर सके हैं, यह है कि मौलाना हिन्दू-मुसलमानों को लड़वाने की चेष्टा करते रहते हैं। इस सम्बन्ध में सबसे पहला प्रश्न जो उठता है वह यह है कि इससे मौलाना को लाभ? मौलाना को इस काम के लिए कोई तनख़्वाह तो मिलती नहीं। और न यही सुनने में आया कि मौलाना को इस कार्य के लिए कहीं से कोई पदक, उपाधि या थैली मिली हो। अजी जनाब, दो आदमियों को लड़वाना ही बड़ा कठिन कार्य है—फिर दो जातियों को लड़वाना कितना कठिन है और इसमें कितना परिश्रम पड़ता है, यह मौलाना अपनी ज़बान से कभी नहीं कह सकते। हाँ, यह बात अवश्य है कि मौलाना मुसलमानों को ऐसा उपदेश देते रहते हैं कि जिससे उनकी उन्नति हो और वे हिन्दुओं से दब कर न रहें और यदि हिन्दू एक कहें तो मुसलमान चार सुनावें। यदि इसी को लड़वाना समझ लिया जाय तो मौलाना बेचारे मजबूर हैं और यदि इस उपदेश का दुरुपयोग करके मुसलमान हिन्दुओं के साथ खोपड़ी फोड़न-लीला करने लगें तो मौलाना और भी अधिक मजबूर हैं। और फिर उस पर तुर्रा यह है कि जहाँ कहीं हिन्दू-मुस्लिम दङ्गा होता है, वहाँ शुरुआत कमबख़्त हिन्दुओं ही की तरफ़ से होती है। इसलिए बेचारे मौलाना मुसलमानों को कुछ कह भी नहीं सकते। कहें तो उस दशा में, जब शुरुआत मुसलमानों की तरफ़ से हो। यदि कहीं एक भी ऐसा उदाहरण मौलाना को मिल जाय, तो मौलाना मुसलमानों को उसी भाँति चबा जायँ, जैसे वह दोनों समय पूरा एक मुर्ग़ा चबा जाते हैं। परन्तु अफ़सोस है कि शुरुआत कभी मुसलमानों की ओर से नहीं होती और जब तक मौलाना जीवित हैं, तब तक कभी न होगी। ऐसा सुना जाता है, पता नहीं कहाँ तक ठीक है, कि एक दिन हज़रत पैग़म्बर साहब मौलाना से ख़्वाब में कह गए थे कि—"तू ख़ुदा का प्यारा बन्दा है। इसलिए महज़ तेरी ख़ातिर से ऐसा इन्तज़ाम किया गया है कि जब तक तेरा क़दम-रुए ज़मीन पर

टिका रहेगा, तब तक जहाँ कहीं भी हिन्दू-मुसलमानों में दङ्गा होगा, वहाँ शुरुआत कभी मुसलमानों की तरफ़ से न होगी।" इसलिए अगर मुसलमान दङ्गे की शुरुआत करना भी चाहें, तब भी नहीं कर सकते, क्योंकि ख़ुदा का हुक्म ऐसा ही है। और इसीलिए जहाँ कहीं दङ्गा होता है, वहाँ की बाबत मौलाना को किसी प्रकार की जाँच पड़ताल करने का कष्ट उठाए बिना ही यह निश्चय हो जाता है कि शुरुआत हिन्दुओं ही की तरफ़ से हुई है। बम्बई के बारे में भी मौलाना ने उसी समय, जबकि और किसी को पता भी नहीं था, कह दिया था कि दङ्गा हिन्दुओं ने शुरू किया।

अजी जनाब, अभी तो मौलाना हिन्दुस्तान मे हैं—यदि अमेरिका में भी होते तब भी वहाँ से यही चिल्लाते कि दङ्गा हिन्दुओं ने शुरू किया। वह अल्लाह मियाँ के प्यारे बन्दे हैं, उन्हें सब पता रहता है। इसके अतिरिक्त मौलाना दङ्गा क्यों करावें, क्या वह नहीं जानते कि दङ्गे में मुसलमान भी तो मारे जाते हैं। हालाँकि यह बात पक्की है कि मुसलमान जो मरते हैं, वह शहीद होकर 'थ्रूसर्विस' द्वारा सीधे बहिश्त पहुँच जाते हैं और हिन्दू जहन्नुम मे, और मौलाना यहीं डटे हुए मुर्ग़ों की हड्डी से दाँतों की खुजली मिटाया करते हैं। परन्तु फिर भी मरना तो बुरा ही है, चाहे बिहिश्त में जायँ, चाहे जहन्नुम में। इसीलिए मौलाना को दङ्गा ज़रा कम पसन्द है। मगर क्या करें, मजबूरी है। हाँ, यदि अल्लाह मियाँ कुछ ऐसा इन्तज़ाम कर देते कि केवल हिन्दू ही मरते और मुसलमान न मरते तब तो पूरा मज़ा था। फिर तो शायद मौलाना ज़बानी जमा-ख़र्च न रख कर हाथ-पैरों से भी काम लेते। मगर जब तक ऐसा नहीं होता तब तक ज़रा ख़तरा है।

सुना था कि मौलाना अमेरिका जाने वाले हैं और वहाँ के लोगों को हिन्दुस्तान की सच्ची अवस्था का ज्ञान कराने वाले हैं। परन्तु फ़िलहाल यहीं काफ़ी काम निकल आया, इससे ठहर गए। इसमें सन्देह नहीं कि अपनी गोरी बीबी की सहायता से मौलाना अमेरिका वालों को हिन्दुस्तान की सच्ची परिस्थिति का काफ़ी ज्ञान करा सकते है और अमेरिका वालों को यह विश्वास दिला सकते है कि हिन्दुस्तान के मुसलमान हिन्दुओं के मारे तबाह हुए जा रहे है। उनकी तबाही में जो कुछ कसर बाक़ी है, वह केवल अङ्गरेज़ों की कृपा से। अतएव हिन्दुस्तान में अङ्गरेज़ों के चरण रहना बहुत ही आवश्यक है। उनकी इस बात का समर्थन-अनुमोदन उनकी गोरी बीबी कर देतीं—बस फिर क्या था, अमेरिकन लोग हिन्दुओं के कट्टर दुश्मन हो जाते। परन्तु किसी कारण से अल्लाह-तआला को अभी यह स्वीकार नहीं है, इसीसे मौलाना रुके हुए हैं। परन्तु अल्लाह को स्वीकार अवश्य करना पड़ेगा। अपने प्यारे बन्दे की बात वह टाल नहीं सकेंगे।

सम्पादक जी, दुनिया चाहे जो कहे, परन्तु अपने राम तो यही कहेंगे कि मौलाना बड़े अच्छे आदमी हैं। वह जो कुछ करते हैं, अपने प्रभु की इच्छा से और उन्हें ख़ुश करने के लिए। न उन्हे कौम से मतलब, न मुल्क से। अपने प्रभु की आज्ञा तथा इच्छा के सामने उनके लिए सब तुच्छ है। भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

एक काने ने अपने मित्र से बाज़ी लगाई कि मैं तुमसे ज़्यादा देखता हूँ। न्याय के लिए एक बड़ी-बड़ी आँखों वाला चुना गया। काना और उसका मित्र दोनों उसके यहाँ गए। काने ने पहुँचते ही शर्त बयान की और कहा कि धर्मावतार मैं जीत गया। देखिए, मैं इससे अधिक देखता हूँ। यह मेरी एक आँख देखता है और मैं इसकी दोनों आँखे देखता हूँ।

एक अमीर अपने अस्तबल में गया, उसने देखा कि उसके साईस का लड़का अपने साथियों के साथ खेल रहा है।

अमीर—(साईस के लड़के से) तुम जानते हो मैं कौन हूँ?

लड़का—हाँ, तुम वही मालूम होते हो, जो मेरे बाप की गाड़ी में सवार होकर जाया करते हो।



फ़लसफ़ए हस्ती

[कविवर "बिस्मिल" इलाहाबादी]

रक्खे हुए हैं सर पे जो ताजे हस्ती,
देना पड़ेगा उनको खिराजे हस्ती ।
वे अपने को मिट्टी में मिलाएँ "बिस्मिल",
मुमकिन नहीं मिल जाय मिज़ाजे हस्ती ॥

क्या आरज़ूए मनसबो[1] जाहे हस्ती,
क्या इज़्ज़तो तौक़ीर[2] गवाहे हस्ती ।
अक़लीमे[3] अदम[4] नाम है जिसका "बिस्मिल",
जाती है उसी सिम्त को राहे हस्ती ॥

क़ायम नहीं रहने का हिजाबे[5] हस्ती,
उठ जायगी दम भर में नक़ाबे[6] हस्ती ।
जब सर पे क़ज़ा आई तो समझे "बिस्मिल",
चौंके हैं अभी देख के ख़्वाबे हस्ती ॥

मालूम हुआ हाले अज़ाबे हस्ती,
नाहक़ थी तमन्नाए[7] सवाबे[8] हस्ती ।
हस्ती का नहीं जवाब ऐ "बिस्मिल",
है मौत हक़ीक़त में जवाबे हस्ती ॥

१—शान-शौकत, २—आदर, ३—देश, ४—परलोक, ५—लज्जा, ६—परदा, ७—इच्छा, ८—फल ।



गोंडल राज्य की एक कृषक-बाला
(बम्बई के प्रसिद्ध कलाकार श्री० करमारकर द्वारा निर्मित एक प्रस्तर-प्रतिमा)

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?



श्री० जनाबाई रोखडे जो बम्बई के 'श्री० अहिल्याबाई फ्री मैटर्निटी होम' की संस्थापिका हैं।

श्री० अनिरुद्ध-कुमार रस्तोगी, बी० ए०, जिन्होंने कुमार होते हुए भी बाल-विधवा श्रीमती निर्मल-कुमारी से विवाह किया है।





श्रीमती याज्ञिक, बी० ए०, जो हाल ही में लन्दन से 'शिक्षिका' का डिप्लोमा प्राप्त करके लौटी है।

श्रीमती कर्वे, जो पूना-महिला-विश्वविद्यालय के संस्थापक प्रो० कर्वे की धर्म-पत्नी हैं। आप अपने पति के साथ इस समय विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्रित करने के लिए विदेश-भ्रमण कर रही हैं।





मद्रास की दो प्रसिद्ध समाज-सेवी महिलाएँ
श्रीमती सोमिया, जो मद्रास में होने वाले दलित-सम्मेलन की प्रधाना थीं ;
तथा श्रीमती रामराय, जो उसकी मन्त्रिणी थीं ।



कुमारी शान्ताबाई डोडाकर, बी० ए०, जे० पी०, जो बम्बई कॉर्पोरेशन की सदस्या निर्वाचित हुई हैं



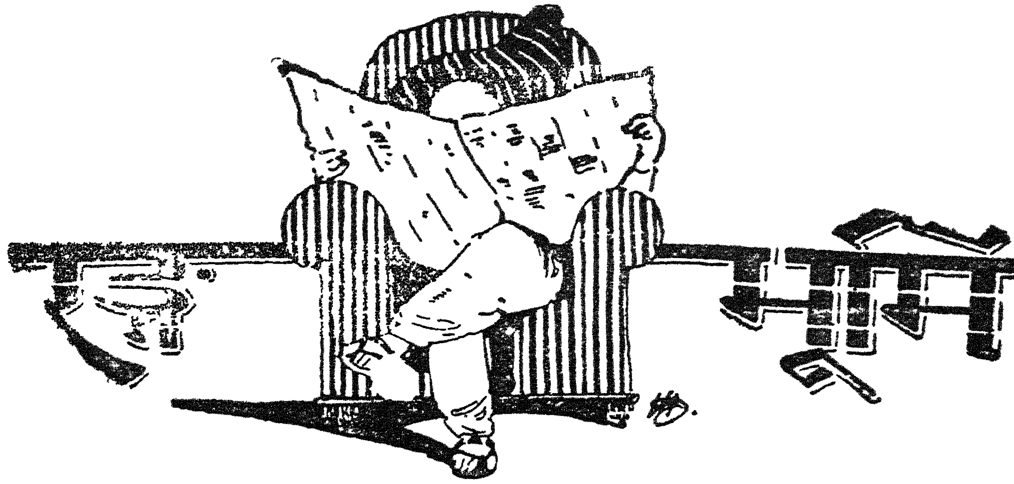
श्रीमती नलिनीबाला चौधुरी, जो 'पूर्वीय बङ्गाल ब्राह्मो-सम्मेलन' की स्वागत-समिति की प्रधाना निर्वाचित हुई थीं।



श्रीमती राजअम्मल, जो विल्लुपुरम के स्कूलों की उप-निरीक्षिका नियुक्त हुई हैं ।



मैसूर म्यूनिसिपैलिटी की सदस्या तथा अवैतनिक मैजिस्ट्रेट—श्रीमती थियोबोल्ड ।



लोथियन रिपोर्ट और वयस्क मताधिकार

राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स की मताधिकार कमिटी ने मताधिकार के प्रश्न की जाँच करने के लिए जो लोथियन कमिटी नियुक्त की थी, उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। यद्यपि थोड़े से लोग उससे बहुत प्रसन्न और आशान्वित हुए हैं, पर भारत के मुख्य-मुख्य राजनीतिक दलों में से कोई उससे सन्तुष्ट नहीं है। कॉङ्ग्रेस की तो बात ही छोड़ दीजिए, क्योंकि वह बाग़ी क़रार दी जा चुकी है और लोथियन कमिटी ने उससे किसी तरह का सरोकार नहीं रक्खा है। पर लिबरल, राष्ट्रीय मुसलमान और अन्य राजनीतिक दलों ने जो माँगें पेश की थीं, उन पर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया है। भारत के अधिकांश राजनीतिक नेता वयस्क मताधिकार के पक्ष मे थे, क्योंकि यही एक ऐसा उपाय है, जिससे साम्प्रदायिक और अछूतों की जटिल समस्याएँ सुलझ सकती हैं। पर कमिटी ने इसे 'भारत के लिए अनुपयुक्त' बतलाया है और इसके स्थान मे ऐसी योजना प्रस्तुत की है, जिसके द्वारा कठिनता से वयस्क जनता के २७ प्रति सैकड़ा और समस्त जनता के १४ प्रति सैकड़ा भाग को ही मत प्रदान करने का अधिकार प्राप्त हो सकता है। इस पर भी मज़ा यह है कि कमिटी ने वयस्क मताधिकार स्वीकार न करने का कोई विशेष कारण नहीं बतलाया है। वरन् इसके विरुद्ध जो आपत्तियाँ की जाती हैं, उनका स्वयम् ही निराकरण कर दिया है।

उदाहरण के लिए कितने ही लोग वयस्क मताधिकार के विरुद्ध यह आपत्ति करते हैं कि इस देश में शिक्षा का प्रचार बहुत कम है और अशिक्षित जनता वोट के अधिकार का उपयोग ठीक तरह से नहीं कर सकती। पर कमिटी के मत से अक्षर-ज्ञान की कमी कोई महत्वपूर्ण बाधा नहीं है, और इसमें जो कुछ बाधा थी भी, वह 'रेडियो' ने दूर कर दी है। उसका कथन है कि "रेडियो द्वारा भाषण को दूर पहुँचाना ऐसा उपाय है, जिसकी उपयोगिता निरक्षरता के कारण कुछ भी कम नहीं हो सकती।" इसके अतिरिक्त यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जिन लोगों को आजकल मताधिकार प्राप्त है अथवा कमिटी की सिफ़ारिश मान लेने पर जिनको भविष्य में प्राप्त होगा, उनमें भी एक बड़ी तादाद निरक्षरों की है। कुछ और लोग यह आपत्ति करते हैं कि इस देश में राजनीतिक सङ्गठन की कमी है और इस समय जो राजनीतिक संस्थाएँ मौजूद हैं, उनको इतने अधिक वोटरों के पास पहुँचने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी, पर इस आपत्ति में भी कोई सार नहीं है। राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तभी होती है, जबकि उनकी आवश्यकता सामने आती है और उनके

अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। जब तमाम राजनीतिक संस्थाएँ स्वयम् ही वयस्क मताधिकार के पक्ष में हैं, तो इस बात की चिन्ता करना, कि वे वोटरों तक अपना सन्देशा न पहुँचा सकेंगी, निरर्थक है।

तीसरी, और कमिटी की समझ में वास्तविक, बाधा यह है कि इतने अधिक वोटरों का प्रबन्ध सरकारी अधिकारियों से नहीं हो सकेगा और उनके सामने बड़ी कठिन समस्या खड़ी हो जायगी। पर अधिकारियों के सुभीते के ख़याल से जनता को उसके जन्मसिद्ध अधिकार से वञ्चित रखना कहाँ तक न्यायानुकूल है, यह किसी को समझाने की ज़रूरत नहीं। और भी अनेक देशों में वयस्क मताधिकार की प्रथा प्रचलित है और वहाँ के अधिकारी उसका प्रबन्ध करते ही हैं, तब भारत में वैसा क्यों नहीं हो सकता? कमिटी के कथनानुसार समस्त ब्रिटिश भारत में वयस्क स्त्री-पुरुषों की संख्या लगभग १३ करोड़ है, और उसकी राय के मुताबिक़ सरकारी अधिकारी एक दिन में ढाई करोड़ वोटरों का मत ले सकते हैं। पर यह मान लेना कि इन १३ करोड़ व्यक्तियों में से प्रत्येक व्यक्ति अपना नाम वोटरों में लिखाएगा और चुनाव के समय वोट देने जायगा, ठीक नहीं है। इस सम्बन्ध में आजकल जैसी स्थिति देखने में आ रही है, उसके अनुसार वयस्क मताधिकार प्रचलित हो जाने पर भी इन तेरह करोड़ में से आधे से भी कम लोग वोट देने पहुँचेंगे और सरकारी अधिकारी एक नहीं, तो दो दिन में उनका मत ग्रहण कर सकते हैं।

इन तमाम बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वयस्क मताधिकार ऐसी कठिन या असम्भव योजना नहीं है, जैसी कुछ लोगों ने उसे समझ रक्खा है। लोथियन कमिटी ने उसके सम्बन्ध में जो आशङ्काएँ प्रकट की हैं, वे युक्तियुक्त नहीं हैं और स्वयम् उसी की बातों से उनका खण्डन हो जाता है। सच तो यह है, कि वयस्क मताधिकार ही एक मात्र ऐसा उपाय है, जो इस सम्बन्ध की तमाम कठिनाइयों और बाधाओं को दूर कर सकता है और इस देश के विभिन्न राजनीतिक दलों में जो मतभेद तथा कलह देखने में आ रहा है उसको अनेक अंशों में मिटा सकता है।

❀ ❀ ❀

सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियाँ

संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के गत अधिवेशन में दो ऐसे बिल पास हुए हैं, जिनसे इस प्रान्त की स्त्रियों की उन्नति में बड़ी सहायता मिलेगी। इनके अनुसार भविष्य में प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और म्युनिसिपल बोर्ड में एक मनोनीत महिला सदस्य का नियुक्त



श्री० जे० पी० श्रीवास्तव (कानपूर) की धर्मपत्नी—
श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव

किया जाना अनिवार्य कर दिया गया है। इस समय यहाँ की स्त्रियों का दर्जा जैसा महत्वहीन हो गया है, उसका एक बड़ा कारण यह भी है कि बहुत काल से उनका सार्वजनिक जीवन के साथ किसी तरह का सम्पर्क नहीं रहा है। स्त्रियों की उन्नति अथवा उनके हित के जितने कार्य आजकल किए जाते हैं, उनका निर्णय प्रायः पुरुष ही करते हैं। यह स्थिति वाञ्छनीय नहीं समझी

जा सकती। स्त्रियों और पुरुषों की मनोवृत्ति और स्वभाव में एक विशेष प्रकार का अन्तर होता है, और जिस प्रकार अन्य तमाम प्राणी अपना हित स्वयं अधिक समझ सकते हैं, उसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने हित के विषय में अधिक अच्छी तरह विचार कर सकती हैं। यद्यपि बड़े-बड़े बोर्डों में केवल एक स्त्री का होना कम जान पड़ता है, पर वर्तमान स्थिति को देखते हुए, जबकि स्त्रियाँ उनसे सर्वथा पृथक् हैं, इस तरह का आरम्भ अवश्य ही शुभ-चिन्ह है। इसके कारण महिला-समाज में जागृति फैलेगी और आत्म-सम्मान का भाव भी उत्पन्न होगा। इसके फल से यह भी सम्भव है कि स्त्रियाँ बोर्डों के चुनावों में भाग लेने लगें और पुरुषों की भाँति स्वतन्त्र रूप से सदस्य चुनी जायँ। इन स्थानीय संस्थाओं द्वारा स्त्रियों के हित के कितने ही कार्य किए जा सकते हैं और यह स्वाभाविक है कि सदस्य होने वाली महिलाएँ उनके लिए चेष्टा करना अपना कर्तव्य समझेंगी। इस श्रेष्ठ कार्य के लिए हम इस बिल को पेश करने वाली श्रीमती कैलाश श्रीवास्तव को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इस प्रान्त की स्त्रियों के उत्थान के लिए आप कौन्सिल में इसी प्रकार चेष्टा करती रहेंगी।

बम्बई का दङ्गा

वर्तमान समय में, जब कि भारतवर्ष में नवीन शासन-सुधारों के लिए चेष्टा की जा रही है और समस्त देश राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए प्राणपण से प्रयत्न कर रहा है, बम्बई जैसे भारत के व्यापार-केन्द्र में हिन्दू-मुसलमानों का साम्प्रदायिक दङ्गा हो जाना बड़े ही क्षोभ और लज्जा का विषय है। हिन्दू और मुसलमानों का धार्मिक तथा राजनीतिक मतभेद कितने ही वर्षों से भयङ्कर रूप धारण किए हुए है और उसके फल-स्वरूप जो शोचनीय काण्ड घटित हुए हैं, उनसे शायद ही भारत का कोई प्रधान नगर अछूता बचा होगा। पर उस मतभेद का देश के राजनीतिक भाग्य के निर्णय के अवसर पर ऐसे स्वरूप में प्रकट होना निस्सन्देह शोक का विषय है। इसके फल से भारतीय स्वतन्त्रता के शत्रुओं को हमारे ऊपर आक्षेप करने और संसार की दृष्टि में हमको बदनाम करने का एक और बहाना मिल गया। इसके कारण ऐङ्गलो-इण्डियन पत्रों को, डूबते को तिनके के सहारे के समान कॉङ्ग्रेस को कोसने का मौक़ा मिल गया है और वे इस तमाम ख़ून-ख़राबी की ज़िम्मेदारी उसके सर मढ़ रहे हैं। उनका कहना है कि कॉङ्ग्रेस स्वराज्य के लिए जो आन्दोलन कर रही है, वह हिन्दुओं के हित के लिए है और अन्य अल्प-संख्यक सम्प्रदायों के लिए वह हानिकारक है; पर कॉङ्ग्रेस चाहती है कि अङ्गरेज़ ही नहीं, संसार उसके आन्दोलन को देश भर की तरफ़ से समझे और इसलिए वह अन्य सम्प्रदाय वालों को ज़बर्दस्ती उसमें सम्मिलित करती है। इससे मुसलमान बहुत असन्तुष्ट हैं और कहा जाता है, इसी कारण यह दङ्गा हुआ है। मौलाना शौकतअली की तो सोलहो आना यही राय है कि कॉङ्ग्रेस वालों के मुसलमानों की दुकानों पर पिकेटिङ्ग करने और अन्य गुण्डापन के कामों द्वारा मुसलमानों को हानि पहुँचाने के कारण ही ऐसी भीषण परिस्थिति उत्पन्न हुई है।

यद्यपि ऐङ्गलो-इण्डियन पत्रों और मौलाना शौकतअली जैसे लोगों का स्वार्थवश इस तरह की बातें कहना स्वाभाविक ही है, पर दरअसल सचाई कुछ और ही है। इन दङ्गों की वास्तविक ज़िम्मेदारी हिन्दू या मुसलमानों पर नहीं है, वरन् उस परिस्थिति पर है, जो विदेशी शासन के कारण इस देश में उत्पन्न हो गई है। विदेशी शासक प्रायः अपनी रक्षा के लिए ऐसी नीति का अवलम्बन किया करते हैं, जिससे देश का अल्प-संख्यक समुदाय उनके साथ मिल जाय और उसके बल पर वे बहु-संख्यक समुदाय पर मनमाने ढङ्ग से शासन कर सकें। इस देश में मूल-निवासी हिन्दुओं के पश्चात् सबसे अधिक महत्वपूर्ण अल्प-संख्यक समुदाय मुसलमानों का ही है और आज से ही नहीं, जब से इस देश में राजनीतिक जाग्रति के लक्षण उत्पन्न हुए हैं, तभी से सरकार उनको अपने साथ मिलाए रखने की चेष्टा करती आई है। इस बात की सचाई राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में भारत के गोरे व्यापारियों के प्रतिनिधि की हैसियत से जाने वाले मिस्टर बैन्थल के उस गुप्त-सर्कुलर से मालूम होती है, जो उन्होंने अपने जाति-

भाइयों के नाम भेजा था। उसमें कहा गया है कि मुसलमान-समाज सरकार को प्रिय है और इसलिए हिन्दू-समाज जैसे बहु-संख्यक समुदाय के हित का ध्यान छोड़ कर हमको 'अल्प-संख्यकों के हित की रक्षा' की नीति से ही काम लेना चाहिए। आगे चल कर मि० बेन्थल ने अपने सहयोगियों को सम्मति दी थी कि "तमाम मुसलमान एक बात पर राज़ी हो जाते हैं और इसलिए उनका पक्ष प्रबल रहता है। अली इमाम जैसे 'राष्ट्रीय' मुसलमान भी अपने जाति-भाइयों से फूट कर अलग नहीं हुए। उन्होंने हमारा समर्थन करने का जो वचन दिया था, वह उन्होंने पूरा किया। इसके बदले में उन्होंने प्रार्थना की थी कि हम बङ्गाल के मुसलमानों की आर्थिक स्थिति की तरफ़ ध्यान दें और यूरोपियन फ़र्मों में मुसलमानों को ही नौकरी दें। इस विनती पर ध्यान देना हमारे लिए अत्यावश्यक है।" इसी प्रकार हाल में कितने ही मुसलमान नेताओं ने, जिनका नाम सार्वजनिक क्षेत्र में कोई नहीं जानता, एक मैनीफ़ेस्टो निकाला है, जिसमें कहा गया है कि "पिछले दो वर्षों में जितने राजनीतिक ख़ून हुए हैं या ख़ून की चेष्टाएँ की गई हैं, उनमें से किसी में एक भी मुसलमान का हाथ नहीं रहा है। × × × इसी प्रकार किसी मुसलमानी पत्र ने इस प्रकार की राजनीतिक हत्याओं के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए एक शब्द भी नहीं लिखा है, जब कि हिन्दुओं के कॉङ्ग्रेसी अख़बार इस प्रकार के अपराधियों को सदा सम्मानित करते रहे हैं।" इस बात और महायुद्ध में मुसलमानों द्वारा की गई सेवाओं का हवाला देकर इन 'नेताओं' ने आगामी शासन-सुधारों में मुसलमानों को विशेष अधिकार दिए जाने की अपील ब्रिटिश जनता से की है।

इन दो उदाहरणों से पता चलता है कि हिन्दू-मुसलमान वैमनस्य का वास्तविक कारण क्या है और उससे वास्तव में किसका लाभ होता है। ये ही गोरे और काले स्वार्थी लोग दोनों समाजों में वैमनस्य और मतभेद का बीज बोते रहते हैं, जो अवसर पड़ने पर ऐसे भयङ्कर रूप में प्रकट होता है। यह कोई ज़रूरी बात नहीं है कि बम्बई का यह दङ्गा अथवा इस तरह के अन्य दङ्गे प्रत्यक्षतः इस तरह के लोगों द्वारा कराए जाते हैं, पर यह निश्चित है कि इन लोगों और उनके दूतों की चेष्टा से दोनों समाज वालों की मनोवृत्ति ऐसी कलुषित हो जाती है कि वे बात-बात में एक-दूसरे पर अविश्वास करने लगते हैं और थोड़ा सा भी झूठा या सच्चा बहाना मिल जाने पर दल-बद्ध रूप से एक-दूसरे का गला काटने को तैयार हो जाते हैं। इसलिए जो लोग सोचते हैं कि मुसलमानों में धार्मिक सहिष्णुता उत्पन्न करने से अथवा दोनों जाति वालों में प्रेम-भाव उत्पन्न करने से इस प्रकार की घटनाएँ बन्द हो जायँगी, वे भूल करते हैं। जब तक वर्तमान राजनीतिक परिस्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता और शासन का मुख्य सूत्र भारतवासियों के हाथों में नहीं दे दिया जाता तब तक ऐसे दङ्गे पूर्ण रूप से बन्द नहीं हो सकते। वैमनस्य का दूसरा कारण आर्थिक है। मुसलमानों में ग़रीबों की संख्या अधिक है और इसलिए वे शीघ्र ही अपने सम्पत्तिशाली पड़ोसियों को लूटने के लालच में पड़ जाते हैं। पर यह कारण भी तब तक दूर नहीं किया जा सकता, जब तक हम विदेशी-शासन के पञ्जे में जकड़े हुए हैं। क्योंकि वर्तमान शासन पूँजीवादी है और उसमें ग़रीबों की संख्या अधिक होना अनिवार्य है। अगर भारत को स्वराज्य के सच्चे अधिकार मिल जायँ और वह अपना शासन-विधान स्वयं निर्माण करने को स्वतन्त्र कर दिया जाय, तो इस अवस्था का सुधार बहुत शीघ्र किया जा सकता है।

❀ ❀ ❀

मैसूर-राज्य की अदूरदर्शिता

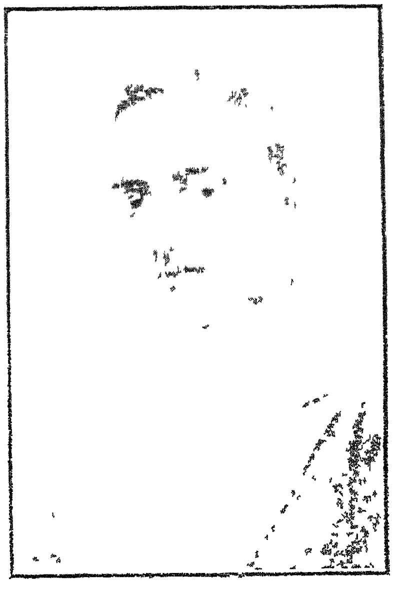
मैसूर, भारत का एक उन्नतिशील तथा सुधार-प्रिय राज्य समझा जाता है। वहाँ पर बहुत दिनों से जनता के प्रतिनिधियों की एक व्यवस्थापक-सभा कार्य कर रही है और वहाँ के लोगों को अन्य देशी रियासतों की अपेक्षा कितने ही महत्त्वपूर्ण अधिकार मिले हुए हैं। पर हाल में वहाँ की सरकार ने एक समाज-सुधार सम्बन्धी बिल के सम्बन्ध में जिस अनुदारता से काम लिया है, उससे लोगों की निगाह में उसकी प्रतिष्ठा घट जाने की

सम्भावना है। वहाँ की व्यवस्थापक-सभा में बाल-विवाह के विरुद्ध एक बिल पेश किया गया था, जिसका आशय यह था, कि लड़के और लड़कियों का विवाह क्रमशः १८ और १४ वर्ष की आयु से पूर्व न किया जाय। बहुत से लोगों ने इसका विरोध किया, पर व्यवस्थापक-सभा ने इसे पक्ष में ९८ और विपक्ष में ८७ मतों से पास कर दिया। ऐसी दशा में उचित तो यह था कि वहाँ की सरकार इस महत्त्वपूर्ण निर्णय से लाभ उठा कर इस हानिकारक प्रथा को मिटाने की चेष्टा करती, पर ऐसा न करके, उसने बिल को ही अस्वीकृत कर दिया। इसका औचित्य सिद्ध करते हुए वहाँ के दीवान ने कहा कि समाज-सुधार के वास्तविक और स्थायी होने के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयमेव उत्पन्न हो और सरकार का कर्त्तव्य है कि जब तक जनमत इस विषय में अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट न हो, तब तक जल्दबाज़ी न करे। हमें खेद है कि दीवान साहब का यह उत्तर किसी भी समझदार और न्याय-प्रिय व्यक्ति को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। बाल-विवाह की प्रथा की बुराइयाँ अब अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी हैं और देश के बड़े-बड़े नेता और प्रभावशाली संस्थाएँ वर्षों से उसके विरुद्ध आन्दोलन कर रही हैं। यह ठीक है कि इसके पक्षपातियों की संख्या भी कम नहीं है, पर उनमें से अधिकांश निरक्षर और लकीर के फ़कीर हैं। फिर यह बात भी साफ़ ज़ाहिर है कि प्रत्येक सुधार-सम्बन्धी कार्य का अपढ़ और मूर्खों द्वारा विरोध किया जाता है। यदि उनकी सम्मति को ही ठीक मान लिया जाय, तो सब प्रकार का सुधार ही असम्भव हो जाय। हम आशा करते हैं कि मैसूर-सरकार शीघ्र ही अपनी भूल को अनुभव करेगी और थोड़े से रूढ़ि-पन्थियों के दबाव में पड़ कर समाज-सुधार के कार्य में रोड़े न अटकाएगी।

❀　　❀　　❀

एक शोकजनक मृत्यु

गत १२ जून को इलाहाबाद-हाईकोर्ट के सुयोग्य एडवोकेट श्री० कृष्णचन्द्रसिंह भाटिया का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया। आपका जन्म ज़िला बुलन्दशहर में २ दिसम्बर १९०२ को हुआ था। बाल्यकाल में आपने अपने घर पर [illegible], तत्पश्चात् वे म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में [illegible] हुए। सन् १९२५ में लखनऊ-यूनिवर्सिटी से आपने एम० ए० और एल्-एल्० बी० की परीक्षाएँ पास कीं। इसके बाद आप सहारनपुर में वकालत करने लगे। जब इसमें आपको अच्छी तरह अनुभव हो गया तो आप इलाहाबाद चले आए और हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे। श्री० भाटिया का जन्म एक सम्पन्न घराने में हुआ था और बचपन से ही आपका आदर्श उच्च था।



स्वर्गीय श्री० कृष्णचन्द्रसिंह जी भाटिया, एम० ए०, एल्-एल्० बी०

आप आरम्भ से ही सत्य के बड़े प्रेमी थे और गीता की शिक्षा के अनुसार आचरण करने की चेष्टा करते थे। समाज-सुधार की तरफ़ भी आपका झुकाव बहुत अधिक था और सदैव विधवा-विवाह के प्रचार की चेष्टा करते रहते थे। मथुरा ज़िले में कई विधवा-विवाह केवल आपके प्रयत्न से हुए थे। भाटिया जी चाँद प्रेस, लिमिटेड के सात प्रवर्तकों (Promoters) में से एक थे। संस्था से आपको बहुत प्रेम था। आप श्री० सहगल जी के अभिन्न मित्र थे। इस समय श्री० सहगल जी पर जो

३ विभिन्न राजनैतिक अभियोग चल रहे हैं, इन सभों की पैरवी आप बड़े मनोयोग से कर रहे थे।

१३ तारीख़ को हाईकोर्ट की कार्यवाही आरम्भ होने से पूर्व गवर्नमेण्ट एडवोकेट ने श्री० भाटिया की शोचनीय मृत्यु का ज़िक्र करते हुए उनकी योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। हाईकोर्ट के विद्वान चीफ़ जस्टिस ने गवर्नमेंट एडवोकेट के कथन का समर्थन करते हुए इस दुःखजनक मृत्यु के लिए हार्दिक शोक प्रकट किया। ऑनरेबिल सर मुहम्मद सुलेमान ने कहा कि मुझे जितने जूनियर वकीलों से काम पड़ा, उन सब में श्री० भाटिया बड़े चतुर और मेधावी थे।

हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इस महान कष्ट को सहन करने के लिए उनके सम्बन्धियों और मित्रों को बल दे और उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

❀ ❀ ❀

वेश्यावृत्ति-निवारक बिल

संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा के पिछले अधिवेशन में ईसाई-समाज के मनोनीत प्रतिनिधि श्री० ई० अहमद शाह ने एक बिल पेश किया था, जिसका उद्देश्य सरकारी अधिकारियों को इस प्रकार का अधिकार देना था, जिसके द्वारा वे वेश्यावृत्ति का नियन्त्रण कर सकें। इसमें ऐसे तमाम व्यक्तियों को, जो वेश्यालय रखते हैं या वेश्यावृत्ति के लिए किसी स्त्री या लड़की को कहीं ले जाते हैं, दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपए तक जुर्माने की सज़ा का प्रस्ताव किया गया था। जो लोग अपने मकानों से वेश्याओं को हटाना चाहें, उनको सरकार द्वारा सहायता दिए जाने की भी तजवीज़ की गई थी।

इसमें सन्देह नहीं, कि यह बिल सदुद्देश्य से प्रेरित होकर पेश किया गया था और इसका एकमात्र लक्ष्य समाज को उस हानिकारक और घृणित परिस्थिति से मुक्त करना था, जो आजकल प्रत्येक स्थान में देखने में आ रही है। आजकल बड़े बड़े नगरों में इस कार्य के लिए सैकड़ों-हज़ारों स्त्रियों और बालिकाओं का जीवन नष्ट होता है और समाज में तरह-तरह के दुर्गुण तथा व्याधियाँ फैलती हैं। कलकत्ता और बम्बई-जैसे बड़े व्यापारिक नगरों में तो इसने एक बड़े व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया है और कितने ही लोग इसकी बदौलत हज़ारों-लाखों रुपए कमाते हैं। ये लोग इसके लिए दूर-दूर के स्थानों से सुन्दर बालिकाओं को बहका कर चुरा कर अथवा भगा कर लाते हैं और उनसे ज़बर्दस्ती वेश्यावृत्ति कराके स्वयं पाप की कमाई खाते हैं। ऐसे स्थानों में कितने खून, मारपीट के मामले, ठगी, जालसाज़ी और बदमाशी के जघन्य कार्य होते हैं, उसकी चर्चा करना व्यर्थ है। इन तमाम बातों के फल से समाज में अनाचार की वृद्धि होती है और उसके चरित्र का पतन होता जाता है।

पर इन सब बातों को जानते हुए भी कौन्सिल के कितने ही सदस्यों ने इस बिल का विरोध किया और दूसरे वाचन में पास हो जाने पर भी वह तीसरे वाचन में बहुमत से अस्वीकृत हो गया। इसके विरोधियों का कहना था कि इस प्रान्त में वेश्याओं की स्थिति वैसी नहीं है, जैसी कि बम्बई, कलकत्ता आदि में है। यहाँ पर कितनी ही जातियों की स्त्रियाँ केवल वेश्यावृत्ति द्वारा ही जीवन-निर्वाह करती हैं। इसके अतिरिक्त कितनी ही वेश्याएँ गाने-नाचने का कार्य करती हैं, और इस बिल के पास हो जाने से इन कलाओं के प्रचार तथा उन्नति में बाधा पड़ेगी। इस देश में और अन्य देशों में भी वेश्याएँ अति प्राचीन काल से पाई जाती हैं और वे समाज का एक आवश्यकीय अङ्ग हैं। अगर इस प्रथा को मिटा दिया जायगा तो वेश्यावृत्ति ऐसी जातियों में फैल जायगी, जिनकी स्त्रियाँ अभी तक पवित्रता और सतीत्व के लिए प्रसिद्ध हैं। वेश्यावृत्ति को हटाने की चेष्टा करना अव्यावहारिक है। वर्तमान समय में मनुष्यों की जैसी मानसिक प्रवृत्ति देखने में आ रही है, उसका ध्यान रखते हुए यह आशा करना, कि क़ानून बना देने से वेश्यावृत्ति का लोप हो जायगा, बिलकुल नासमझी है।

इन दोनों पहलुओं पर विचार करने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वेश्यावृत्ति हानिकारक प्रथा है और इससे समाज का बहुत अपकार होता है। उपरोक्त बिल के विरोधियों ने भी उसकी बुराई स्वीकार की है, पर उसे एक आवश्यकीय बुराई माना है। हम बिल के विरोधियों के इस कथन से सहमत नहीं हो

सकने कि वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से चली आई है और कितनी औरतें इस कार्य को ख़ान्दानी तौर पर कर रही हैं, इसलिए इसका क़ायम रखना ज़रूरी है। यदि इस दलील को ठीक मान लिया जाय तो फिर शराब, भाँग, गाँजा, अफ़ीम आदि प्रत्येक दुर्व्यसन के लिए भी यही दलील दी जा सकती है और उस दशा में उनको मिटाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। पर एक बात हम ज़रूर अनुभव करते हैं और वह यह कि कानून पास कर देने से यह बुराई नहीं मिट सकती। अमेरिका में शराब को रोकने के लिए कितने ही वर्षों से कानून बना हुआ है, और उसके पालन कराने को पुलिस और गुप्तचरों का बड़ा ज़बर्दस्त महकमा क़ायम किया गया है, पर इससे शराब का प्रचार रुक नहीं सका है। अन्तर केवल यह हुआ है कि अब लोग खुले तौर पर शराब पीने के बजाय, चुरा-छिपा कर उसे पीते हैं और इस व्यवसाय में गुण्डे-बदमाशों ने अरबों रुपए कमा लिए हैं। इस प्रकार के कानून तभी कारगर हो सकते हैं, जब कि देश की परिस्थिति भी उनके अनुसार बदल दी जाय। इस समय हमारे यहाँ जो वेश्यावृत्ति देखने में आती है, उसके दो प्रधान कारण हैं। एक आर्थिक आवश्यकताएँ और दूसरी सामाजिक कुप्रथाएँ। अधिकांश स्त्रियाँ और पुरुष जो इस काम में संलग्न हैं, धन के लालच से ऐसा करते हैं। यदि उनको पेट भरने का दूसरा कोई सुगम तथा विधि-विहित मार्ग हो तो वे शायद ही इस प्रकार के बदनाम और हेय समझे जाने वाले पेशे को अङ्गीकार करें। इसी तरह बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और जात-पाँत के भेदों के कारण अनेकों बालिकाओं को छोटी अवस्था से ही विधवा बन कर रहने को बाध्य होना पड़ता है, उनमें से कितनों को ही कुटुम्बियों के तरह-तरह के अत्याचार सहने पड़ते हैं और तब उनके सामने सिवाय वेश्या बन कर जीवन-निर्वाह करने के दूसरा रास्ता नहीं रह जाता। कितनी ही स्त्रियाँ किसी झूठे या सच्चे कारणवश दुष्ट पतियों अथवा सास-ससुर आदि द्वारा घरों से निकाल दी जाती हैं और उनको भी सिवा अपना शरीर बेच कर पेट भरने के दूसरा उपाय नहीं रहता। जब तक ऐसी परिस्थिति मौजूद है, तब तक हर तरह से बुरी होने पर भी वेश्यावृत्ति किसी न किसी रूप में जारी ही रहेगी, चाहे उसे रोकने को एक नहीं, दस क़ानून क्यों न बना दिए जायँ।

❀ ❀ ❀

हिन्दी के महारथियों का महाप्रस्थान

अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा के आकस्मिक देहावसान के बाद, हिन्दी-साहित्य के तीन और महारथी भी इस असार संसार को छोड़ कर चल बसे! इन सभी वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों ने दीर्घकाल तक मातृ-भाषा की सेवा की थी और कर रहे थे। फलतः इनके प्रायः एक साथ ही चल बसने से हिन्दी की जो महान क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कालान्तर में भी सम्भव नहीं। क्योंकि ये सभी सज्जन एक से एक बढ़ कर विद्वान, सुलेखक, उपन्यासकार और कवि थे। हिन्दी की सेवा इनका जीवन-व्रत था। फलतः साहित्य-संसार में इनका आसन भी बहुत ऊँचा था।

इनमें सबसे पहला नाम बिहार प्रान्त के वयोवृद्ध सुलेखक श्रीमान बाबू शिवनन्दनसहाय 'शिव' कवि का था। गत १९ जून को लक़वा की बीमारी से आपका शरीरान्त हो गया। मृत्यु के समय आपकी अवस्था प्रायः ७० वर्ष थी। आप स्वर्गवासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र तथा बाबू राधाकृष्णदास के समकालीन लेखकों में थे। आप एक अच्छे कवि और सुलेखक थे। आपकी कविताएँ और लेख बड़े समादर के साथ पढ़े जाते थे। भारतेन्दु-चरित्र, गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी, श्रीरूपकला की जीवनी तथा गौराङ्ग महाप्रभु आदि ग्रन्थ आपकी अमर कीर्तियाँ हैं। आपने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। बिहार प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने में भी आपने श्लाघनीय प्रयत्न किया है। आप बिहार के वर्तमान साहित्य-सेवियों में पथप्रदर्शक और गुरु माने जाते थे। आपके सुपुत्र श्री० व्रजनन्दनसहाय 'व्रजवल्लभ' भी अपने पूज्य पिता की भाँति ही हिन्दी की सेवा में लगे रहते हैं। आप हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक और उपन्यासकार हैं। स्वर्गवासी बाबू शिवनन्दन-

३ विभिन्न राजनैतिक अभियोग चल रहे हैं, इन सभों की पैरवी आप बड़े मनोयोग से कर रहे थे।

१३ तारीख़ को हाईकोर्ट की कार्यवाही आरम्भ होने से पूर्व गवर्नमेण्ट एडवोकेट ने श्री० भाटिया की शोचनीय मृत्यु का ज़िक्र करते हुए उनकी योग्यता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। हाईकोर्ट के विद्वान चीफ़ जस्टिस ने गवर्नमेण्ट एडवोकेट के कथन का समर्थन करते हुए इस दुःखजनक मृत्यु के लिए हार्दिक शोक प्रकट किया। ऑनरेबिल सर मुहम्मद सुलेमान ने कहा कि मुझे जितने जूनियर वकीलों से काम पड़ा, उन सब में श्री० भाटिया बड़े चतुर और मेधावी थे।

हमारी परमात्मा से प्रार्थना है कि वह इस महान कष्ट को सहन करने के लिए उनके सम्बन्धियों और मित्रों को बल दें और उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

❀ ❀ ❀

वेश्यावृत्ति-निवारक बिल

संयुक्त प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा के पिछले अधिवेशन में ईसाई-समाज के मनोनीत प्रतिनिधि श्री० ई० अहमद शाह ने एक बिल पेश किया था, जिसका उद्देश्य सरकारी अधिकारियों को इस प्रकार का अधिकार देना था, जिसके द्वारा वे वेश्यावृत्ति का नियन्त्रण कर सकें। इसमें ऐसे तमाम व्यक्तियों को, जो वेश्यालय रखते हैं या वेश्यावृत्ति के लिए किसी स्त्री या लड़की को कहीं ले जाते हैं, दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपए तक जुर्माने की सज़ा का प्रस्ताव किया गया था। जो लोग अपने मकानों से वेश्याओं को हटाना चाहें, उनको सरकार द्वारा सहायता दिए जाने की भी तजवीज़ की गई थी।

इसमें सन्देह नहीं, कि यह बिल सदुद्देश्य से प्रेरित होकर पेश किया गया था और इसका एकमात्र लक्ष्य समाज को उस हानिकारक और घृणित परिस्थिति से मुक्त करना था, जो आजकल प्रत्येक स्थान में देखने में आ रही है। आजकल बड़े-बड़े नगरों में इस कार्य के लिए सैकड़ों-हज़ारों स्त्रियों और बालिकाओं का जीवन नष्ट होता है और समाज में तरह-तरह के दुर्गुण तथा व्याधियाँ फैलती हैं। कलकत्ता और बम्बई-जैसे बड़े व्यापारिक नगरों में तो इसने एक बड़े व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया है और कितने ही लोग इसकी बदौलत हज़ारों-लाखों रुपए कमाते हैं। ये लोग इसके लिए दूर-दूर के स्थानों से सुन्दर बालिकाओं को बहका कर चुरा कर अथवा भगा कर लाते हैं और उनसे ज़बर्दस्ती वेश्यावृत्ति कराके स्वयं पाप की कमाई खाते हैं! ऐसे स्थानों में कितने ख़ून, मारपीट के मामले, ठगी, जालसाज़ी और बदमाशी के जघन्य कार्य होते हैं, उसकी चर्चा करना व्यर्थ है। इन तमाम बातों के फल से समाज में अनाचार की वृद्धि होती है और उसके चरित्र का पतन होता जाता है।

पर इन सब बातों को जानते हुए भी कौन्सिल के कितने ही सदस्यों ने इस बिल का विरोध किया और दूसरे वाचन में पास हो जाने पर भी वह तीसरे वाचन में बहुमत से अस्वीकृत हो गया। इसके विरोधियों का कहना था कि इस प्रान्त में वेश्याओं की स्थिति वैसी नहीं है, जैसी कि बम्बई, कलकत्ता आदि में है। यहाँ पर कितनी ही जातियों की स्त्रियाँ केवल वेश्यावृत्ति द्वारा ही जीवन-निर्वाह करती हैं। इसके अतिरिक्त कितनी ही वेश्याएँ गाने-नाचने का कार्य करती है, और इस बिल के पास हो जाने से इन कलाओं के प्रचार तथा उन्नति में बाधा पड़ेगी। इस देश मे और अन्य देशों में भी वेश्याएँ अति प्राचीन काल से पाई जाती हैं और वे समाज का एक आवश्यकीय अङ्ग है। अगर इस प्रथा को मिटा दिया जायगा तो वेश्यावृत्ति ऐसी जातियों में फैल जायगी, जिनकी स्त्रियाँ अभी तक पवित्रता और सतीत्व के लिए प्रसिद्ध हैं। वेश्यावृत्ति को हटाने की चेष्टा करना अव्यावहारिक है। वर्तमान समय में मनुष्यों की जैसी मानसिक प्रवृत्ति देखने में आ रही है, उसका ध्यान रखते हुए यह आशा करना, कि क़ानून बना देने से वेश्यावृत्ति का लोप हो जायगा, बिलकुल नासमझी है।

इन दोनों पहलुओं पर विचार करने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि वेश्यावृत्ति हानिकारक प्रथा है और इससे समाज का बहुत अपकार होता है। उपरोक्त बिल के विरोधियों ने भी उसकी बुराई स्वीकार की है, पर उसे एक आवश्यकीय बुराई माना है। हम बिल के विरोधियों के इस कथन से सहमत नहीं हो

सकते कि वेश्यावृत्ति प्राचीन काल से चली आई है और कितनी औरतें इस कार्य को ख़ान्दानी तौर पर कर रही है, इसलिए इसका कायम रखना ज़रूरी है। यदि इस दलील को ठीक मान लिया जाय तो फिर शराब, भाँग, गाँजा, अफ़ीम आदि प्रत्येक दुर्व्यसन के लिए भी यही दलील दी जा सकती है और उस दशा में उनको मिटाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। पर एक बात हम ज़रूर अनुभव करते है और वह यह कि क़ानून पास कर देने से यह बुराई नहीं मिट सकती। अमेरिका में शराब को रोकने के लिए कितने ही वर्षों से क़ानून बना हुआ है, और उसके पालन कराने को पुलिस और गुप्तचरों का बड़ा ज़बर्दस्त महकमा क़ायम किया गया है, पर इससे शराब का प्रचार रुक नहीं सका है। अन्तर केवल यह हुआ है कि अब लोग खुले तौर पर शराब पीने के बजाय, चुरा-छिपा कर उसे पीते हैं और इस व्यवसाय मे गुण्डे-बदमाशों ने अरबों रुपए कमा लिए हैं। इस प्रकार के कानून तभी कारगर हो सकते हैं, जब कि देश की परिस्थिति भी उनके अनुसार बदल दी जाय। इस समय हमारे यहाँ जो वेश्यावृत्ति देखने में आती है, उसके दो प्रधान कारण हैं। एक आर्थिक आवश्यकताएँ और दूसरी सामाजिक कुप्रथाएँ। अधिकांश स्त्रियाँ और पुरुष जो इस काम में संलग्न हैं, धन के लालच से ऐसा करते हैं। यदि उनको पेट भरने का दूसरा कोई सुगम तथा विधि-विहित मार्ग हो तो वे शायद ही इस प्रकार के बदनाम और हेय समझे जाने वाले पेशे को अङ्गीकार करें। इसी तरह बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और जात-पाँत के भेदों के कारण अनेकों बालिकाओं को छोटी अवस्था से ही विधवा बन कर रहने को बाध्य होना पड़ता है, उनमें से कितनों को ही कुटुम्बियों के तरह-तरह के अत्याचार सहने पड़ते है और तब उनके सामने सिवाय वेश्या बन कर जीवन-निर्वाह करने के दूसरा रास्ता नहीं रह जाता। कितनी ही स्त्रियाँ किसी झूठे या सच्चे कारणवश दुष्ट पतियों अथवा सास-ससुर आदि द्वारा घरों से निकाल दी जाती हैं और उनको भी सिवा अपना शरीर बेच कर पेट भरने के दूसरा उपाय नहीं रहता। जब तक ऐसी परिस्थिति मौजूद है, तब तक हर तरह से बुरी होने पर भी वेश्यावृत्ति किसी न किसी रूप में जारी ही रहेगी, चाहे उसे रोकने को एक नहीं, दस क़ानून क्यों न बना दिए जायँ।

❀ ❀ ❀

हिन्दी के महारथियों का महाप्रस्थान

अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंह जी शर्मा के आकस्मिक देहावसान के बाद, हिन्दी-साहित्य के तीन और महारथी भी इस असार संसार को छोड़ कर चल बसे! इन सभी वयोवृद्ध साहित्य-सेवियों ने दीर्घकाल तक मातृ-भाषा की सेवा की थी और कर रहे थे। फलतः इनके प्रायः एक साथ ही चल बसने से हिन्दी की जो महान क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कालान्तर में भी सम्भव नहीं। क्योंकि ये सभी सज्जन एक से एक बढ़ कर विद्वान, सुलेखक, उपन्यासकार और कवि थे। हिन्दी की सेवा इनका जीवन-व्रत था। फलतः साहित्य-संसार में इनका आसन भी बहुत ऊँचा था।

इनमें सबसे पहला नाम बिहार प्रान्त के वयोवृद्ध सुलेखक श्रीमान बाबू शिवनन्दनसहाय 'शिव' कवि का था। गत १९ जून को लक़वा की बीमारी से आपका शरीरान्त हो गया। मृत्यु के समय आपकी अवस्था प्रायः ७० वर्ष थी। आप स्वर्गवासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र तथा बाबू राधाकृष्णदास के समकालीन लेखकों में थे। आप एक अच्छे कवि और सुलेखक थे। आपकी कविताएँ और लेख बड़े समादर के साथ पढ़े जाते थे। भारतेन्दु-चरित्र, गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी, श्रीरूपकला की जीवनी तथा गौराङ्ग महाप्रभु आदि ग्रन्थ आपकी अमर कीर्तियाँ हैं। आपने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। बिहार प्रान्त में हिन्दी का प्रचार करने में भी आपने श्लाघनीय प्रयत्न किया है। आप बिहार के वर्तमान साहित्य-सेवियों मे पथप्रदर्शक और गुरु माने जाते थे। आपके सुपुत्र श्री० व्रजनन्दनसहाय 'व्रजवल्लभ' भी अपने पूज्य पिता की भाँति ही हिन्दी की सेवा में लगे रहते हैं। आप हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक और उपन्यासकार हैं। स्वर्गवासी बाबू शिवनन्दन-

सहाय जी के पौत्रों में भी हिन्दी-सेवा की विशेष रुचि प्रलक्षित होती है। हम बाबू शिवनन्दनसहाय के साहित्यिक परिवार के प्रति अपनी आन्तरिक समवेदना प्रगट करते हुए, उनकी स्वर्गवासिनी आत्मा की शान्ति की कामना करते हैं।

आपके बाद, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वर्तमान वर्ष के सभापति पण्डित किशोरीलाल जी गोस्वामी के नाम के साथ 'स्वर्गीय' शब्द जोड़ते हुए हमें महान शोक हो रहा है। गोस्वामी जी महाराज हिन्दी और संस्कृत के धुरन्धर विद्वान होने के अतिरिक्त व्रजभाषा और खड़ी



स्वर्गीय पं० किशोरीलाल जी गोस्वामी

बोली के सुकवि तथा उर्दू और फ़ारसी के भी ज्ञाता थे। जिस प्रकार व्रजभाषा में आप धारा-प्रवाह कविता लिख सकते थे, उसी प्रकार उर्दू ज़बान मे ग़ज़लें कहा करते थे। आप रसिक थे, इसलिए आपने अपना उपनाम भी 'रसिक किशोरी' रक्खा था। आपने हिन्दी की बेजोड सेवा की है, पचासों पुस्तकें और हज़ारों कविताएँ लिखी हैं। आपके अनूठे और मौलिक उपन्यासों ने जनता के हृदय में हिन्दी पढ़ने की रुचि पैदा करने मे बड़ा काम किया है।

स्वर्गवासी गोस्वामी जी वृन्दावन के रहने वाले थे और सं० १९२३ में वहीं आपका जन्म भी हुआ था। बाल्यावस्था में ही आप अपने ननिहाल बनारस चले आए और तब से बराबर यही रहे और यहीं शिक्षा आदि भी प्राप्त की। आपके नाना गोस्वामी कृष्णचैतन्य जी राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के घर के पास ही रहते थे। गोस्वामी जी बहुधा उनके घर आया-जाया करते थे। इसलिए बाल्यावस्था में ही आपकी रुचि हिन्दी की ओर आकर्षित हो गई और तभी से हिन्दी-कविता करने लगे थे। इसके सिवा आपको भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ रहने का भी अवसर प्राप्त हुआ था, इसलिए प्रसङ्ग आने पर आप भारतेन्दु-कालीन बहुत सी रोचक घटनाओं का वर्णन किया करते थे। आप भारतेन्दु का एक संस्करण भी लिखवा रहे थे। मालूम नहीं, पूरा हो सका या नहीं।

सन् १९०० में जब 'सरस्वती' निकलने लगी, तो उसके सम्पादक-मण्डल मे गोस्वामी जी का भी नाम था। इसके अतिरिक्त आप और भो कई पत्रों और पत्रिकाओं के सम्पादक रहे। आपके लिखे हुए लेखों की संख्या हज़ारों है। आपने छोटी कहानियाँ भी बहुत सी लिखी है और कई भाषाओं में आपके उपन्यासों का अनुवाद छपा है। रसिकता गोस्वामी जी का प्रधान विषय थी। वे बात-बात में लोगों को हँसाया करते थे। गोस्वामी जी ने हिन्दी की बहुत बड़ी सेवा की है। आप निस्पृह साहित्य-सेवी थे। आप हिन्दी की सेवा किसी प्रकार के पुरस्कार की प्रत्याशा से नहीं, वरन् हिन्दी के प्रेम के कारण किया करते थे। परमात्मा आपकी आत्मा को शान्त और आपके सुपुत्र पण्डित छबीलेलाल जी गोस्वामी को यह विषम पितृ-वियोग-जनित दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

तीसरे महारथी, जिन्होंने अपनी आकस्मिक और अत्यन्त शोकजनक मृत्यु द्वारा बेचारी व्रजभाषा को अनाथ कर दिया है, श्री० जगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' बी० ए० हैं। आप व्रजभाषा के आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि तथा व्याख्याकार, भाषा-तत्त्वविद तथा पुरातत्त्वान्वेषी के सिवा अङ्गरेज़ी, संस्कृत और उर्दू आदि कई भाषाओं के प्रगाढ़ विद्वान थे। आपने बहुत

सी कविताएँ और कई पुस्तकें लिखी हैं, जो हिन्दी-साहित्य-भण्डार की अक्षय सम्पत्ति हैं।

श्री० रत्नाकर जी इधर कई महीने से हृदय-व्याधि से पीड़ित रहने लगे थे और इसीलिए काशी से हरद्वार चले गए थे। वहीं, गत २१ जून को आपका देहान्त हो गया। रत्नाकर जी का जन्म भादों सुदी ५, सं० १९२३ को काशी में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री० पुरुषोत्तमदास जी था। आप अग्रवाल वैश्य थे। आपके पिता को भी फ़ारसी तथा हिन्दी कविता से बड़ा प्रेम था। आप भारतेन्दु श्री० हरिश्चन्द्र के मित्रों में थे। इसीलिए श्री० रत्नाकर जी को भी भारतेन्दु जी की सत्सङ्गति का अवसर मिला था। आपकी एक रचना देख कर भारतेन्दु जी ने कहा था कि यह बालक कभी अच्छा कवि होगा। रत्नाकर जी ने काशी में ही शिक्षा प्राप्त की थी और बी० ए० की डिग्री प्राप्त करके आवागढ़ राज्य में नौकरी कर ली। परन्तु वहाँ का जलवायु अच्छा न होने के कारण अयोध्या चले आए, और सन् १९०६ तक स्वर्गीय अयोध्या-नरेश के तथा उनके बाद उनकी विधवा रानी साहिबा के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। इसके बाद काशी आकर रहने लगे थे। विगत वर्ष कलकत्ते में होने वाले हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति का आसन भी आपने सुशोभित किया था।

रत्नाकर जी सहृदय, सज्जन और हँसमुख आदमी थे। आपका जीवन साहित्यमय था। आपकी बातों में साहित्यिक आनन्द प्राप्त होता था। कविता-पाठ करने का ढङ्ग तो बड़ा ही मनोहर था। आपने हिण्डोला, समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी नियम रत्नाकर, हरिश्चन्द्र, गङ्गावतरण, कलकाशी, अष्टक रत्नाकर, उद्धव शतक और बिहारी-रत्नाकर आदि ग्रन्थ-रत्नों की रचना की है। किसी समय 'साहित्य-सुधानिधि' नाम का एक मासिक पत्र भी निकालते थे। इधर आप सूरसागर का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित कराने की धुन में थे।

आपके एक पुत्र और कई पोते-पोतियाँ हैं। परमात्मा आपको सद्गति प्रदान करे।

साम्प्रदायिकता का विष

गत १८ जून को कलकत्ते में अखिल भारतवर्षीय पोस्टल और आर० एम० एस० कॉन्फ्रेन्स का जो अधिवेशन हुआ था, उसके प्रेज़िडेण्ट श्री० मुहम्मद अज़हरअली एम० एल० ए० के अभिभाषण से एक नई बात यह मालूम हुई, कि डाकख़ाने के कर्मचारियों में भी साम्प्रदायिकता का विष व्याप्त हो रहा है और वे अपनी साम्प्रदायिक यूनियनें बना रहे हैं! श्री० अज़हरअली ने इस प्रवृत्ति की निन्दा करते हुए सम्मति दी कि इस सम्बन्ध में एक पञ्चायती कमिटी बनाई जाय, जो लोगों की शिकायतों की जाँच करे। आपने मुसलमानों को लक्ष्य करके कहा कि—"आप लोगों को समझ लेना चाहिए कि नौकरी में सबसे अधिक विचारणीय बात योग्यता है, न कि साम्प्रदायिकता। × × × अगर तमाम व्यवस्थापक सभाओं में मुसलमानों को ४९ प्रतिशत स्थान दे दिए जायँ और हिन्दुओं को ५१ प्रतिशत, और यदि वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम-वैमनस्य का भाव इसी तरह बना रहे, तो मुसलमान हिन्दुओं के विरोध में किस तरह एक भी प्रस्ताव पास करा सकते हैं? भारतवासियों को अभी यह सीखने की आवश्यकता है कि राजनीति मानवीय कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला एक विज्ञान है और उसका आधार सुलह तथा समझौते पर है।" हम उन लोगों का ध्यान, जो साम्प्रदायिकता में पड़ कर विवेक को खो बैठे हैं, इन पंक्तियों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। साथ ही हम पोस्ट ऑफ़िस और आर० एम० एस० के कर्मचारियों को बतलाना चाहते हैं कि वैसे तो साम्प्रदायिक वैमनस्य देश के प्रत्येक व्यक्ति के लिए हानिकारक है, पर नौकरी-पेशा वालों तथा मज़दूरों का उसमें पड़ना तो घोर मूर्खता और अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है। श्रमजीवियों की जो कुछ ताक़त है, वह इसी में है कि वे सब एकमत और सङ्गठित होकर आन्दोलन करते हैं। अगर उनमें फूट पड़ जायगी और वे अपना सङ्गठन जाति और मज़हब के नाम पर करने लग जायँगे, तो उनकी यूनियनों को कोई कौड़ी का तीन भी न पूछेगा।

देशभक्ति या स्वार्थपरता ?

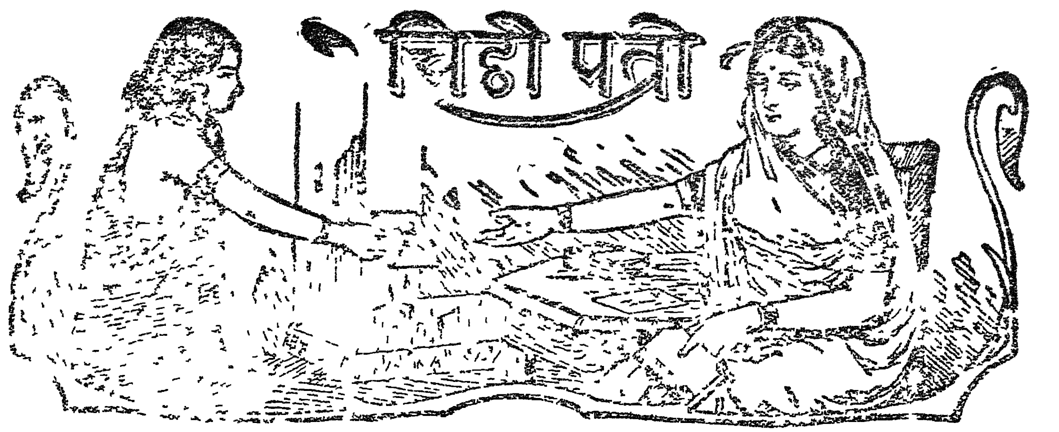
जब से भारत में स्वराज्य-आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा है, तब से स्वदेशी की तरफ़ भी जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। वर्तमान समय में जो आन्दोलन चल रहा है, उसका तो मुख्य अङ्ग स्वदेशी-प्रचार ही है और कितने ही लोगों का विश्वास है कि उसका यही अङ्ग ऐसा है, जो थोड़े या बहुत अंशों में सफल हो सकता है और जिससे देश को कुछ वास्तविक लाभ भी पहुँच सकता है। यही कारण है कि इस समय देश के समस्त नेता स्वदेशी की अपील कर रहे हैं और उसे सर्वत्र फैलाने तथा स्थायी बनाने की चेष्टा में निरत हैं। स्वदेशी-प्रचार में सबसे प्रधान वस्तु कपड़ा है और महात्मा गाँधी के कथनानुसार अगर हम इस विषय में विदेशों के मुखापेक्षी न रह कर आत्म-निर्भर बन जायँ तो देश का बहुत-कुछ आर्थिक सङ्कट दूर हो सकता है। इसके लिए उन्होंने सबसे बढ़िया और कारगर उपाय खद्दर का उपयोग करना बतलाया है। पर पिछले बारह वर्षों के अनुभव से प्रतीत होता है कि यह उपाय अभी पूर्ण रूप से सफल होने वाला नहीं है। इसलिए इस बार देशी मिलों के कपड़े के प्रचार और उपयोग की आज्ञा भी कॉङ्ग्रेस ने स्पष्ट रूप से दे दी है और इस सम्बन्ध में बहुत-कुछ चेष्टा की जा रही है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कॉङ्ग्रेस की इस प्रेरणा और चेष्टा से देशी मिलों को अभूतपूर्व सहायता प्राप्त हुई है और उनका कारबार बड़े ज़ोरों के साथ बढ़ रहा है।

ऐसी अवस्था में मिल-मालिकों का कर्तव्य तो यही था कि वे ऐसी नीति से काम लेते, जिससे स्वदेशी की सच्ची उन्नति होती और इस देश के निर्धन तथा दुर्दशा-ग्रस्त अधिवासियों का जहाँ तक सम्भव हो, अधिक से अधिक कल्याण होता। पर देखने में यह आ रहा है कि इस अवसर पर भी उन्होंने अपने लाभ और स्वार्थ का ही ध्यान रक्खा है और देश के हित-अनहित की तरफ़ उनका कुछ भी लक्ष्य नहीं है। इसका एक बड़ा प्रमाण जो हाल ही में हमारी दृष्टि से गुज़रा है, यह है कि इन मिलों में जो रुई काम में लाई जाती है, उसमें विदेशी रुई का परिमाण उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। सन् १९२९-३० में विदेशों से ३३,९८० टन रुई यहाँ आई थी, यह परिमाण सन् १९३०-३१ में ४३,७६१ टन और सन् १९३१-३२ में ७६,३२३ टन तक जा पहुँचा है! अगर इसका हिसाब रुपयों में लगाया जाय तो भारत-वर्ष ने एक साल में १२ करोड़ रुपए रुई के लिए विदेश भेजे !! इसके उत्तर में मिल-मालिक बतलाते हैं कि भारत में लम्बे रेशे की रुई उत्पन्न नहीं होती और जो रुई उत्पन्न होती है, उससे बारीक कपड़ा नहीं बनाया जा सकता। इस त्रुटि के कारण वे विदेशों से रुई मँगाने को बाध्य हैं। जब भारत-सरकार ने विदेशों से आने वाली रुई पर कर लगाने का प्रस्ताव किया था, तो इसी बुनियाद पर मिल-मालिकों ने उसका घोर विरोध किया था और कहा था कि इस कर के लगने से वे लङ्काशायर का मुक़ाबला न कर सकेंगे !!!

भारतीय मिल-मालिकों का यह कार्य कितना स्वार्थपूर्ण है, यह कुछ ही विचार करने से समझ में आ सकता है। उपरोक्त प्रस्ताव को पेश करते समय भारत-सरकार के फ़ाईनेन्स मेम्बर सर जॉर्ज शुस्टर ने यह स्वीकार किया था कि बारीक सूत तैयार करने के लिए बम्बई के मिल वालों को विदेशों से कुछ रुई मँगाना आवश्यक है। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि इस नए कर से भारत के कपास बोने वालों को बड़ा लाभ पहुँचेगा और वे लम्बे रेशे की कपास बोने के लिए उत्साहित होंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि जब देश कपड़ा बनाने के सम्बन्ध में स्वावलम्बी होने की चेष्टा कर रहा है, तो सदस्यों को ऐसे प्रस्ताव का समर्थन अवश्य करना चाहिए, जिससे देश को कपास के सम्बन्ध में भी आत्म-निर्भर होने में सहायता मिले।

जैसे लम्बे रेशे की रुई मिल वाले अमेरिका वग़ैरह से मँगाते हैं, उसी तरह की रुई अब भारतवर्ष के कितने ही स्थानों में उत्पन्न की जाने लगी है। उसका परिमाण इस आरम्भिक अवस्था में भी ३ लाख गाँठ से ऊपर है। पर मिल वाले उसे ख़रीद कर भारतीय किसानों को प्रोत्साहित करने के बजाय, विदेशी रुई मँगाना ही पसन्द करते हैं! यह ऐसी खेदजनक प्रवृत्ति है कि इसकी जितनी निन्दा की जाय थोड़ी है। एक ओर तो ये लोग

(शेष मैटर ३४० पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



महिलाओं से निवेदन

श्रीमती रिखदेई कपूर, मन्त्री, महिला-स्वदेशी-सङ्घ ने काशी से यह पत्र प्रकाशनार्थ हमारे पास भेजा है। यद्यपि इस पत्र की कुछ बातें पुरानी पड़ गई हैं, परन्तु इसका सम्बन्ध स्वदेशी-प्रचार से है, जो हमारे देश के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है, इसलिए इसका महत्व कम नहीं हो गया है। आशा है, 'चाँद' की पाठिकाएँ इसे ध्यान से पढ़ेंगी और इसके अनुसार कार्य करके स्वदेशी-प्रचार में सहायक बनेंगी।

—स० 'चाँद'

हमारे देश में भी और दूसरे अनेक देशों में भी, शान्ति के समय भी और सङ्कट के समय भी, महिलाओं ने बहुत से बड़े-बड़े काम किए हैं। देश के उद्धार के बहुत बड़े-बड़े काम तो ऐसे हुए हैं, जो केवल स्त्रियों की सहायता से ही पूरे हो सके हैं और यदि पुरुषों को स्त्रियों का सहारा न मिलता तो शायद वे काम होते ही नहीं। हमारे देश के लिए यह समय बहुत बड़े सङ्कट का है और जब तक स्त्रियाँ इस सङ्कट को दूर करने के लिए कमर कस कर तैयार न होंगी, तब तक यह सङ्कट जल्दी दूर न होगा।

हमारे देश पर इस समय सब से बड़ा सङ्कट ग़रीबी का है। दुनिया में हिन्दुस्तान से बढ़ कर ग़रीब देश और कोई नहीं है। हमारे यहाँ लाखों नहीं, करोड़ों आदमी ऐसे हैं, जिन्हें दिन-रात में एक बार पेट भरने के लिए किसी तरह का अन्न नहीं मिलता। देश की इस ग़रीबी का कारण यही है कि हम लोग स्वदेशी के प्रचार से होने वाले लाभ बिलकुल भूल गए हैं। अगर हमारे देश में स्वदेशी का पूरा-पूरा प्रचार हो जाय, तो हमारे लाखों-करोड़ों भाई किसी न किसी काम में लग जायँ और उन्हें पेट भर अन्न मिलने लगे। हमारे यहाँ स्त्रियों को अन्नपूर्णा और लक्ष्मी का रूप मानते हैं। यदि स्त्रियों में स्वदेशी का पूरा-पूरा प्रचार हो जाय, तो वही स्त्रियाँ अन्नपूर्णा और लक्ष्मी बन कर सारे देश को भरपेट भोजन देने लगें।

यही समझ कर आज मैं अपनी माताओं, बहिनों और बेटियों से हाथ जोड़ कर एक प्रार्थना करने के लिए खड़ी हुई हूँ। वह प्रार्थना यह है कि आप लोग आज से इस बात की पूरी प्रतिज्ञा कर लें और क़सम खा लें कि आप लोग सदा केवल अपने देश की बनी हुई चीज़ें ही काम में लाया करेंगी और घर के आदमियों को भी विवश करेंगी कि वे भी केवल अपने देश की बनी हुई चीज़ें ही ख़रीदा और बेचा करें। यदि सारे भारत में एक लाख स्त्रियाँ भी स्वदेशी का प्रचार करने के लिए पूरी तरह से तैयार हो जायँ, तो मेरा विश्वास है कि सारे देश में बात की बात में स्वदेशी का प्रचार हो जाय।

माननीय पण्डित मदनमोहन जी मालवीय ने सारे भारत में स्वदेशी-दिवस मनाने के लिए एक अपील प्रकाशित की है। इस दिन स्त्रियाँ, पुरुष और बच्चे सब मिल कर घर-घर स्वदेशी का प्रचार करें और लोगों से स्वदेशी चीज़ें काम में लाने की प्रतिज्ञा करावें। आशा है कि पुरुषों में यह काम बहुत ज़ोरों के

साथ होगा। पर क्या भारतवर्ष की महिलाएँ ऐसे अवसर पर चुपचाप बैठी रहेंगी? नहीं, कभी नहीं। उनका कर्त्तव्य है कि वे और भी अधिक उत्साह के साथ स्वदेशी का काम अपने हाथ मे लें और सारे संसार को दिखला दें कि भारत की स्त्रियाँ भी काम करना जानती हैं और अपने देश को सङ्कट से बचा सकती हैं। उस दिन जगह-जगह पुरुषों के तो स्वदेशी-सङ्घ स्थापित होंगे ही; पर मैं चाहती हूँ कि उनके साथ ही साथ हर छोटे-बड़े शहर और कस्बे मे महिला-स्वदेशी-सङ्घ भी स्थापित हों। उस दिन जहाँ एक ओर पुरुषों की सभाएँ हों, वहाँ दूसरी ओर साथ ही साथ स्त्रियों की भी बड़ी-बड़ी सभाएँ हों, जिनमें स्वदेशी सम्बन्धी भजन और व्याख्यान हों और स्वदेशी के प्रतिज्ञा-पत्र पर दस्तख़त कराए जायँ। साथ ही महिला-स्वदेशी-सङ्घ भी स्थापित हों, जो बराबर स्त्रियों में स्वदेशी प्रचार का काम करें। हर शहर में कुछ स्त्रियों को घर-घर घूम कर माताओं और बहिनों से स्वदेशी की प्रतिज्ञा करानी चाहिए। आशा है कि मेरी यह प्रार्थना व्यर्थ न जायगी; और स्त्रियों में स्वदेशी का इतना अधिक प्रचार हो जायगा कि मर्दों को भी ताज्जुब होने लगे।

❀ ❀ ❀

(३३८वें पृष्ठ का शेषांश)

'स्वदेशी-स्वदेशी' की पुकार मचा रहे हैं और भारतीय जनता से अनुरोध कर रहे हैं कि वह उनका माल ख़रीद कर देशी उद्योग-धन्धों की वृद्धि में सहायक हो और दूसरी ओर वे स्वयं इसके प्रतिकूल चलने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। उनको यह भी नहीं सूझता कि यदि हम भारतीय किसानों की उत्पन्न की हुई चीज़ों को नहीं ख़रीदेंगे, तो वे हमारे कपड़ों को किस प्रकार ख़रीद सकेंगे? इसलिए यदि मिल-मालिक देश का और अपना हित चाहते हैं तथा 'स्वदेशी ख़रीदो' की पुकार का वे कुछ भी महत्व समझते हैं, तो उनका कर्तव्य है कि देशी रुई ख़रीदें और उसकी खेती की उन्नति में सब प्रकार की सहायता दें, जिससे देश कपड़े के विषय में सचमुच आत्म-निर्भर हो सके। यदि वे ऐसा नहीं करते तो उन्हें राह पर लाना देशवासियों का कर्त्तव्य है!

❀ ❀ ❀

एक बहिन लिखती हैं:—

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते!

आप 'चाँद' में बार-बार यह लिखते हैं कि स्त्रियों को अधिकार मिलने चाहिए। परन्तु मिले तब न जब पुरुष-जाति दे। वे तो यह चाहते हैं कि स्त्रियाँ हमारे नीचे रहें। अपना दुःख हम किससे कहें। अगर ईश्वर कोई उपाय निकाल दे तो हमारी ज़िन्दगी सफल हो। दूसरा कौन हमारी करुण-कहानी सुनेगा। मैं अपना पता देना नहीं चाहती हूँ। मैं अपनी हृदय-वेदना को लिख कर कुछ शान्त करती हूँ। मेरे श्रीमान पति महाशय पढ़े-लिखे, होशियार और अक्लमन्द भी काफ़ी हैं। चाल-चलन भी बिलकुल ठीक है। पर न मालूम ईश्वर ने मेरे लिए ही उनके स्वभाव को ऐसा क्यों बना दिया है कि मुझसे वे ऐसा व्यवहार करते हैं कि किसी से बोलते भी देखें तो कहेंगे कि उससे क्या-क्या बातें हो रही थीं? अमुक आदमी क्यों आया था? अपने जानने वाले आते-जाते ही हैं, फिर ऐसा विचार सम्पादक जी क्यों है? क्या स्त्री-जाति को किसी से बोलने का भी अधिकार नहीं है? आप तो हरएक जगह हवा खाने, डोलने व कम्पनी-बाग़ भी जायँगे। नारी-जाति चहारदिवारी के अन्दर क़ैद रहती है, तो भी आराम नहीं। ये लोग क्या प्रचार करेंगे। किसी का किसी से मेल खाता है और किसी से नहीं। जिसका जिससे स्वभाव मिल जायगा, वह उससे अच्छी तरह से बोलेगा और जो आदमी अपने से छोटा होगा, तो उससे बोलने में क्या बुराई है?

हाय रे संसार की विचित्र माया! कोई किसी से बोले भी, तो बोलने में भी या बातचीत करने में भी पापी समझा जावेगा। यह स्त्रियों को अधिकार मिलते हैं? मेरे पति महाशय यह कहते है कि स्त्रियों को ज़रूर ताड़ना चाहिए। ऐसे शब्द कहते हैं कि जिनको लिखने में लेखनी थरथराती है। कभी-कभी मेरे दिल में ऐसा विचार उठता है कि इस संसार से छुटकारा पा जाऊँ। लेकिन मेरा दिल किताब वग़ैरह पढ़ कर शान्त हो जाता है कि ऐसा मत करो। कभी तो समझेंगे।

आपकी,

—अभागिनी

[वास्तव में ऐसी सन्दिग्ध-चित्तता अच्छी नहीं। पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध पारस्परिक प्रेम और विश्वास पर ही निर्भर करता है। अकारण ही किसी पर सन्देह करना अनुचित ही नहीं, वरन् पाप है और बहुधा मनुष्य के पतन का कारण बन जाता है। साथ ही जो लोग ऐसे सन्दिग्ध चित्त वाले होते हैं, उनके मन में सदैव अशान्ति भी बनी रहती है। इसलिए ऐसे सन्दिग्ध चित्त वाले सज्जनों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपनी धर्मपत्नियों पर विश्वास करना सीखें। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक बहिन लिखती हैं :—

महाशय, आपके 'चाँद' में बहुत रोज़ से पढ़ती हूँ कि आप दुखियों के दुःख सुनते हैं और भरसक उसके दूर करने का यत्न करते हैं। इसी आशा पर मैं भी अपना दुःख लेकर आपकी सेवा में यह ख़त डाल रही हूँ। कृपा कर आप इसका उत्तर देकर मुझे कृतार्थ कीजिएगा। दुःख मेरा बस इतना है कि मेरी कन्या विवाह-योग्य हो गई है, परन्तु कोई ऐसा पात्र नहीं पाती कि उसकी शादी कर दूँ। मैं जाति की ब्राह्मणी हूँ। सो भी कान्यकुब्ज नहीं, सरयूपारी हूँ। पूर्बिया गोरखपुर ज़िले की रहने वाली हूँ। यहाँ मेरा पीहर है। पतिदेव यहाँ नौकरी के सिलसिले से हैं। उनकी मासिक तनख़्वाह ४०) है। उसमें प्रतिपालन इतने मनुष्यों का होता है। पाँच तो लड़के हैं और एक लड़की, जिसकी शादी करनी है, एक वृद्ध ससुर, एक मैं और मेरे पतिदेव। इतने मनुष्यों की गुज़र होती है। तिस पर लड़की ब्याह-योग्य हो गई है। जहाँ लड़का देखने जाओ, लड़के के पिता चार हज़ार और पाँच हज़ार दहेज़-तिलक माँगते हैं। अब आप ही सोचिए कि जिसके इतनी देने की सामर्थ्य न हो, वह क्या लड़की को क्वाँरी रक्खे या मार डाले या स्वजाति में ब्याह न कर गैर जाति में करे! और सो भी ऐसी पढ़ी-लिखी लड़की को मैं कहाँ बलिदान कर दूँ? मैं तो चाहती हूँ कि जैसी मेरी लड़की सर्वगुण-सम्पन्ना है, वैसा ही लड़का भी मिल जाता तो ठीक था। सो मैंने आपके 'चाँद' के लेखकों का नाम देखा। विचार किया कि शायद इनमें कोई मेरे जोड़ के ब्राह्मण निकल आवें। इसीसे आपको इतना कष्ट दिया कि अगर आप इन महाशयों का ठीक-ठीक पता जानते हों, तो लिखिए। मैं खोजूँ। शायद कोई लड़का मिल जाए। वे नाम ये हैं:—१—श्रीमान पण्डित जनार्दनप्रसाद झा, २—रमाशङ्कर शुक्ल, एम० ए०, ३—रामचन्द्र शुक्ल, ४—भुवनेश्वरनाथ जी मिश्र, ५—जगन्नाथ जी मिश्र, ६—बालकृष्ण शर्मा, ये महाशय कहाँ के रहने वाले हैं! इन महाशयों में अगर किसी से हमारी जाति से मेल खा जाएगा तो मैं देखूँगी कि इनके घराने में कोई लड़का है या नहीं। या इन महाशयों में कोई अविवाहित हैं या नहीं। इतनी सहायता आप मुझको दीजिए और अगर आपको कोई लड़का नज़र पड़े तो वह भी लिखिए। लड़का पढ़ा-लिखा हो और उम्र २० वा २२ तक हद से हद २५ तक हो। मगर ख़्याल रहे कि कनौजिया न हो। इतना उपकार मेरा आप करें। ईश्वर आपका भला करेंगे।

[दुःख है कि हमें किसी पात्र का पता नहीं है, जो हमारी बहिन की कन्या के उपयुक्त हो और बिना तिलक-दहेज लिए विवाह करने को राज़ी हो जाए। इसलिए हम उनके पत्र को 'चाँद' में प्रकाशित कर देना ही उचित समझते हैं और आशा करते हैं, कि जिन सहृदय सज्जनों का नामोल्लेख उन्होंने अपने पत्र में किया है, वे अथवा अन्य कोई स्वजाति-हितैषी सज्जन इस कन्यादाय-ग्रस्ता बहिन की सहायता करेंगे।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक सज्जन लिखते हैं :—

मैंने विधवा-आश्रम फ़ैज़ाबाद से एक स्त्री के साथ विवाह किया था, जिसको गृह का सब हाल बता दिया था। स्त्री बहुत प्रसन्न थी और ६ मास रही भी। लेकिन ४ मास बाद कुछ चिन्ह भागने के दिखलाई पड़े, जिस पर निगाह रक्खी गई और उसको हर प्रकार सन्तुष्ट करने की चेष्टा की गई। मगर इस पर भी स्त्री कुछ मास बाद आने का वादा करके अपने सम्बन्धियों

से मिलने को गई और गुम हो गई, ज़ेवर भी ले गई। पता मालूम करने पर आश्रम का दिया पता ग़लत साबित हुआ। स्त्री का यह दुर्व्यवहार समझ में न आया। यह शिकायत अक्सर सुनी जाती है कि विधवा स्त्रियाँ सब कुछ होने पर भी पतियों को त्याग कर धन लेकर चली जाती हैं। विधवा-आश्रमों ने बजाय उपकार के एक प्रकार की दुकान खोल रक्खी है। उन्हें न स्त्री-पुरुष के हानि-लाभ से मतलब है, न धर्म से। पूछने से कह देते हैं कि हम स्त्री के चले जाने के उत्तरदाता नहीं। लिहाज़ा विधुर पुरुषों को बहुत सावधानी से पुनर्विवाह करना चाहिए। क्योंकि स्त्रियों में स्वतन्त्रता की बाढ़ आ जाने से सब धर्म लोप हो गए हैं और अब स्त्रियों से सुख की आशा करना भूल है। पुरुष स्त्री-व्रत पहले ही त्याग चुके थे। मगर स्त्रियों के पतिव्रत के कारण सुख था। परन्तु अब स्त्रियों ने पुरुषों के अवगुणों का अनुकरण किया, लिहाज़ा भारत के रसातल जाने में कोई सन्देह नहीं। पुरुषों को विधवा-भवन और आश्रमों से बहुत सावधान रहना चाहिए। यह धूर्तों के अड्डे हैं, जो बाज़ारी वेश्या-गृहों से किसी प्रकार कम नहीं हैं। इनके प्रबन्धकर्त्ता आम तौर पर दुश्चरित्र हैं, कोई स्त्री इनसे बच नहीं पाती। ये लोग स्त्री की कोई जाँच नहीं करते, बल्कि ख़रीद कर बेच देते हैं। बहुधा स्त्रियों ने यह पेशा कर लिया है कि आश्रम में प्रविष्ट होकर विवाह का नाटक करना और कुछ समय के बाद अँगूठा दिखा कर माल ले भागना।

❀ ❀ ❀

"नपुंसक की पत्नी"

गत जून के 'चाँद' में 'चिट्ठी-पत्री' शीर्षक स्तम्भ के नीचे उपर्युक्त शीर्षक से एक चिट्ठी प्रकाशित हुई है। उसके उत्तर में कई सहृदय सज्जनों के पत्र हमारे पास आए हैं, जिनका आशय थोड़े शब्दों में यह है कि उक्त नपुंसकता रोग-ग्रसित युवक को अपने रोग की चिकित्सा करानी चाहिए और अपने अभिभावकों पर यह बात प्रगट कर देनी चाहिए, ताकि वे उनका पुनर्विवाह करके एक और निर्दोष बालिका का सर्वनाश करने से बाज़ आवें। साथ ही दो सज्जनों ने, जो चिकित्सक हैं, हमें विश्वास दिलाया है कि अगर उक्त रोगी सन्तोषपूर्वक छः महीने तक अपने रोग की चिकित्सा कराएँ, तो वे अवश्य ही आरोग्य लाभ कर सकते हैं। इनमें पहले सज्जन ने तो यहाँ तक लिखा है कि वे दवा का मूल्य आदि कुछ भी न लेंगे। नपुंसक तथा उनकी पत्नी को चाहिए कि इन सज्जनों से पत्र-व्यवहार करें। दोनों सज्जनों के पते इस प्रकार हैं:—

(१) डॉक्टर बी० एस० टण्डन, एच० एम० डी० C/o मेसर्स मुन्नीलाल माधोराम, १६४ कालबादेवी रोड, बम्बई।

(२) खण्डेराव सखाराम प्रधान कामदार, छोटा बरखेड़ा, पोस्ट नालछा, ज़िला धार, सी० आई०।

❀ ❀ ❀

"समाज का झूठा भय"

एक सज्जन ने लिखा है :—

गत मार्च मास के 'चाँद' में 'समाज का झूठा भय' शीर्षक के नीचे जिस बेकार युवक का हाल छपा है, वह अगर अब तक बेकार है, तो मैं उसे २०) मासिक पर दो वर्ष के लिए अपने पास रख सकता हूँ। वह चाहे तो अपने वेतन में से यहाँ आने का ख़र्च भी ले सकता है। पन्नालाल व्यास, पाली (मारवाड़)।

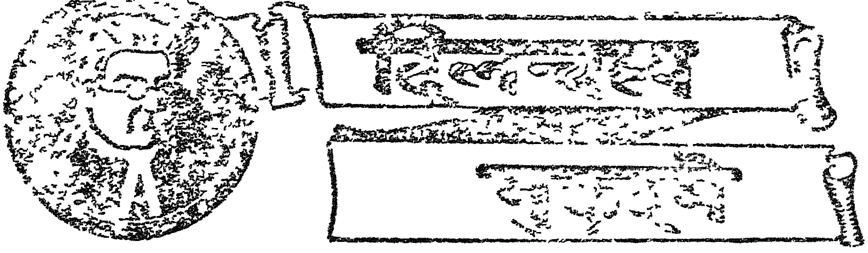
❀ ❀ ❀

एक महाशया लिखती हैं :—

सात वर्ष के पुराने नासूर की परीक्षित दवा जो भाई-बहिन जानते हों, कृपया बहुत शीघ्र लिखें। इतना ध्यान रहे कि वह दवा अपनी आज़माई हुई हो और फोड़े को शर्तिया अच्छा कर दे।

[उत्तर आने पर 'चाँद' में प्रकाशित कर दिया जावेगा।

—स० 'चाँद']



अध्यापक की लड़की के साथ गुप्त प्रेम

पटियाला का समाचार है कि इस समय वहाँ के नायब नाज़िम की अदालत में महेन्द्र कॉलेज पटियाला के बी० ए० के अन्तिम वर्ष के के० एल० बनर्जी नामक एक विद्यार्थी पर उपर्युक्त कॉलेज के मि० के० के० मुकर्जी नामक एक प्रोफ़ेसर की हत्या करने के एक कथित अपराध में मुक़दमा चलाया जा रहा है।

सबूत-पक्ष की ओर से जिन शहादतों को पेश किया जाना था, उन्हें पेश किया जा चुका है। अब तारीख़ ३० मार्च को बहस होने के बाद अदालत इस बात का निर्णय करेगी कि मुलज़िम को सेशन सिपुर्द किया जाना चाहिए या नहीं और यदि हाँ तो दण्ड-विधान की कौन सी धाराएँ उसके ख़िलाफ़ लगाई जानी चाहिए।

अभियुक्त ने दौरान मुकदमे में एक लम्बा-चौड़ा बयान दिया है। इसमें उसने बतलाया है कि जिस समय वह मृतक प्रोफ़ेसर के यहाँ रहा करता था, उस समय उसका उनकी रेगीना नामक एक लड़की के साथ प्रेम हो गया था और लड़की भी उसे बदले में प्यार करने लगी थी।

अभियुक्त ने आगे चल कर बतलाया कि जिस दिन उपर्युक्त दुर्घटना हुई थी, उस दिन वह रात के समय अपनी प्रेमिका रेगीना से मिलने तथा उससे यह कहने के लिए कि वह अपने पिता पर इस बात का ज़ोर डाले कि वे उसे कॉलेज से न निकालें, उसके मकान में गया था; परन्तु जिस समय उससे और उसकी प्रेमिका में यह बातचीत हो रही थी, उसी समय वहाँ पर दो बिल्लियाँ लड़ पड़ीं और उनके लड़ने की आवाज़ को सुन कर रेगीना के माता-पिता की नींद टूट गई और प्रोफ़ेसर मुकर्जी उसे वहाँ पर अपनी लड़की के साथ एकान्त में देख कर उसकी ओर गुस्सा में भर कर दौड़े।

मुलज़िम ने इसी प्रसङ्ग में आगे चल कर लिखाया है कि उसने प्रोफ़ेसर साहब को हर तरह से शान्त करने की चेष्टा की; किन्तु जब वे किसी तरह से ख़ामोश नहीं हुए और उसे यह मालूम पड़ने लगा कि अब ख़ैर नहीं है, तब उसने प्रोफ़ेसर साहब पर चाकू से आक्रमण किया, जिसके फल-स्वरूप उसे ६ और प्रोफ़ेसर साहब को १३ घाव लगे।

इसके पश्चात् वह किसी प्रकार जान बचाने की ग़रज़ से मकान की दूरी मञ्ज़िल से, जहाँ पर उपर्युक्त वारदात हुई थी, कूद कर निकल भागा; किन्तु ऐसा करते हुए वह फिसल कर गिर पड़ा और उसकी दोनों टाँगें टूट गईं और वह सड़क पर बेहोश हो गया। अस्पताल ले जाए जाने पर अभियुक्त की एक टाँग काट डाली गई है।

मुलज़िम ने अपने बयान की पुष्टि में अपनी प्रेमिका रेगीना द्वारा लिखे हुए १० पत्र अदालत में पेश किए, जिनको रेगीना ने शिनाख़्त करके अपने लिखे हुए बतलाया है।

❀

जेठानी के दुर्व्यवहार से आत्म-हत्या

कलकत्ते की कारोनर की अदालत में एक विवाहिता युवती के आत्म-हत्या करने की मार्मिक कथा बयान की गई। युवती का नाम सुन्दरी दासी, उम्र २१ साल थी। उसने अपने कपड़ों में केरॉसीन डाल कर आग लगा ली, जिससे वह इतनी झुलस गई कि अस्पताल भेजने पर मर गई। आत्म-हत्या का कारण जेठानी का दुर्व्यवहार तथा बहुत दिन से उसका बीमार होना है। उसके पति ने अपने बयान में कहा कि "मैं बड़ाबाज़ार की एक कपड़े की दूकान में नौकरी करता हूँ। उस दिन दुर्घटना की ख़बर सुन कर मैं दौड़ा हुआ घर गया, तो अपनी

स्त्री को माँ के पास आग से झुलसी हुई बेहोश पड़ी देखा। उसके आत्म-हत्या करने का कारण मैंने यही सुना कि उसकी मेरी भौजाई से लड़ाई रहती थी। मेरी भौजाई मेरी स्त्री सुन्दरीदासी को झिड़का करती थी। उसने मुझसे इस व्यवहार की शिकायत की तो मैंने कहा कि भौजाई बड़ी है, इसलिए मैं इस मामले में कुछ नहीं कर सकता। मैंने भौजाई के झिड़कने में बाधा न डाली। उसकी आत्म-हत्या के दिन से मैंने घर जाना छोड़ दिया।

❀

नोट से नोट बनाना

भड़ौच और पञ्चमहाल ज़िलों के दौरा जज ने हाल में एक मुकदमे का फ़ैसला सुनाया है, जिसमें गोध्रा क़सबे के कोई आधे दर्जन बनियों के गुट पर—गुजरात और काठियावाड़ के अनेक गाँठ के पूरे, पर आँख के अन्धे व्यापारियों की बड़ी-बड़ी रक़में, एक महात्मा के द्वारा एक नोट से दूसरा वैसा ही नोट बनवा देने का प्रलोभन देकर ठग लेने का अभियोग था। महात्मा सहित कुल पाँच आदमियों को भिन्न-भिन्न मुद्दतों की सज़ा मिली है।

दल का सरदार "महात्मा" उत्तर भारत के किसी रेजिमेण्ट का पेन्शनर हवलदार था। दल के और लोग उसको अपना गुरु बताते थे और उसकी दिव्य शक्तियों तथा निस्पृहता की बड़ाई हाँक-हाँक कर मालदारों को फँसाया करते थे। उन्होंने देहात के भोले-भाले लोगों के मन में यह बात बैठा दी कि उनके गुरुदेव को हिमालय में तप करने वाले किसी महान सिद्ध पुरुष ने ऐसा योग बता दिया है, जिसके द्वारा चाहे जिस दाम का सरकारी नोट उन्हें दिया जाय, वे ठीक वैसा ही दूसरा नोट तैयार कर देंगे। वे लोगों से यह भी कहते थे कि महात्मा जी संसार से इतने विरक्त हैं कि किसी पर उनकी कृपा होना बड़ा ही कठिन है। सतत सेवा-पूजा में लगे रहने से ही किसी विरले भाग्यशाली पर उनका अनुग्रह होना सम्भव है।

इन लोगों के काम का ढङ्ग यह था कि पहली बार जब कोई परीक्षा के लिए छोटी रक़मों के नोट इन्हें देता था तो ये गाँठ के रुपए लगा कर उन्हें दूसरे नोट दे देते थे। पर इसके बाद जब बड़ी रक़म के नोट उन्हें दिए जाते थे, तो देने वाला अन्त में महात्मा को अपने शिष्यों पर यह कह कर झिड़कते देखता था कि तुम लोगों ने रासायनिक द्रव्यों को ठीक अनुपात में नहीं लगाया, बेचारे ग़रीब के क़ीमती नोट जल गए। असल में होना यह था कि असली नोट तिड़ी कर दिए जाते थे और उनके बदले में उसी आकार के रद्दी काग़ज़ वहाँ रख दिए जाते थे।

एक बोहरा (मुसलमान) व्यापारी ने अपने दामाद के कहने से, जिसकी छोटी रक़म के नोट एक के दो कर दिए गए थे, ४० हज़ार के नोट महात्मा जी के हवाले कर दिए और अब खाने से मुहताज है। भावनगर राज्य के एक भूतपूर्व दीवान अपने एकमात्र मकान को गिरों रख कर ३० हज़ार रुपए से जुआ खेल गए।

सरकार को १६२६ में इस दल की कार्रवाइयों की ख़बर मिली और उसने पुलिस-इन्स्पेक्टर श्री० इस्माईल देसाई (अब डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट) को उसके सदस्यों का पूरा पता लगा कर उनका चालान कराने का काम सौंपा। श्री० देसाई को जाँच से कई मामले मालूम हुए, जिनमें लोगों की बड़ी-बड़ी रक़में ग़ायब हो गई थीं, पर महात्मा और उनके चेलों का पता न लग सका। कारण यह था कि वे लोग अपना कार्यक्षेत्र जल्दी-जल्दी बदलते रहते थे, और जहाँ से जाते थे, वहाँ के लोगों को कुछ भी मालूम न होता था कि वे कहाँ चले गए। अन्त में श्री० देसाई को दल के एक सदस्य शेखरचन्द मगनलाल का पता लगा और फिर उसके द्वारा महात्मा का भी पता चल गया। महात्मा कानपुर में गिरफ़्तार किए गए। पीछे मालूम हुआ कि महात्मा का घर कानपुर ही था। पेन्शन लेने के बाद उन्होंने यह "महात्मागिरी" का व्यवसाय करने का निश्चय किया और शीघ्र ही इसमें उन्हें सफलता भी हो गई।

अदालत ने महात्मा को दो साल कड़ी क़ैद और २००) जुर्माने की, शेखरचन्द को, जिसके ज़रिए श्री० देसाई को इसका पहले-पहल सुराग़ मिला था, १८ महीने क़ैद और १ हज़ार जुर्माने की, गोध्रा के बनिया छोटालाल को दो साल क़ैद की और दो दूसरे बनियों में से एक को एक साल कड़ी क़ैद और २००) जुर्माने तथा दूसरे को ३ महीने क़ैद की सज़ा दी।

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

यद्यपि दईमारी बुढ़ौती के मारे "दढ़िही पर बहि-बहि आवत है कवौ तमाकू जौ फाँकनु" के साथ ही "मूड़ौ सासुर हालइ लाग" परन्तु बाबा शाह मदार का हज़ार-हज़ार शुक्र है कि श्रीमती परम प्रेयसी स्मृति देवी ने अभी तक हिज़ होलीनेस के दिमाग़ का दामन नहीं छोड़ा है और इस कलिकाल में भी अपना पतिव्रत-धर्म निभाए जा रही है।

❀

लेहाज़ा जनाब अली, इन्जानिब को यह अच्छी तरह याद है कि जिस समय श्री० शारदा साहब के 'बिल' को खराद-तराश कर बी असेम्बली ने 'एक्ट' के रूप में परिणत कर दिया था, उस समय दादा सनातन-धर्म का सारा तबेला श्रुति-मधुर 'हैंपो'-ध्वनि से गूँज उठा था और भारत के विभिन्न प्रान्तों के सैकड़ों धर्म-ध्वजियों ने अपनी सद्यःजाता बच्चियों को सौभाग्य-वतियाँ बना कर उस महापाप का प्रायश्चित्त कर डाला था, अन्यथा अब तक दादा सनातन-धर्म जी या तो रौ-रौ में होते या कुम्भिपाक में!

❀

परन्तु बीकानेर राज्य के एक परम धर्म-धुरन्धर माहेश्वरी कुल-भूषण सज्जन उस पुण्यपूत अवसर से लाभ नहीं उठा सके थे। वजह यह हो गई कि उस समय आपकी कन्या गर्भ में थी और गर्भ-स्थित बालक-बालिका के विवाह का विधान, शायद शास्त्र-सम्मत न होने के कारण बेचारे को मन मसोस कर रह जाना पड़ा था।

❀

ख़ैर, धर्म-भगवान की असीम अनुकम्पा से बेचारे का नसीब जग उठा और वह कन्या पैदा हुई। आख़िर वहाँ कब तक छिपी रहती? फिर जनाब, वह दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ती हुई पूरे साढ़े तीन वर्ष की हो गई—एकदम विवाह करने के योग्य!

❀

परम धर्मात्मा पिता जी तो पुण्य लूटने की ताक में थे ही। फ़ौरन एक सुपात्र ठीक किया और अब ख़ुदा के फ़ज़लोकरम से, वह साढ़े तीन वर्षीया बालिका सौभाग्यवती माहेश्वरी-कुल-ललना है। बस, अब कसर इतनी ही रह गई है कि भगवान नारायण उसे पुत्रवती बना दें, ताकि नाना जी नाती का मुख देख कर आनन्द-पूर्वक वैकुण्ठ का सुख लूट सकें! एवमस्तु।

❀

कुछ बैठे-ठाले यारों ने आजकल एक नया शग़ल ढूँढ़ निकाला है। कहते हैं, विवाहादि उत्सवों के समय रण्डी नचाना बुरा है। इन कमबख़्तों से कोई पूछे कि आख़िर विवाहोत्सव आदि के समय नाच-मुजरा न हो तो क्या श्राद्ध के समय हुआ करे?

❀

भला बताइए, इस नहूसत का भी कोई ठिकाना है? आख़िर, अल्लाह मियाँ ने इतना परिश्रम करके रण्डियों को बनाया किस लिए है? और फिर वह विवाह ही क्या, जिसमें नाच-मुजरा न हो, बाजा न बजे! धन-दौलत की यही तो शोभा है। अन्यथा क्या कोई रुपए-पैसे लाद कर अपने साथ ले जाता है।

❀

भूपाल राज्य की घटना है। एक कन्या के विवाह में उसके भाई ने कहा कि मेरी बहिन की शादी में रण्डी नहीं आनी चाहिए। कन्जूस वर-पक्ष वालों ने

भी यह बात मान ली। परन्तु भगवान भला करे, बिरादरी वालों का। उन्होंने यह धर्मध्वंसक समाचार सुना तो अड़ गए और साफ कह दिया कि अगर नाच न होगा तो हम भोजन करने ही न आवेंगे।

❀

ठीक ही तो है। भला, नृत्यहीन नीरस नेवाला हलक से नीचे उतरता कैसे? ख्वामख्वाह अजीर्ण हो जाता; सारी बिरादरी में भयङ्कर हैज़ा फूट पड़ता और लोग बेमौत मर जाते। परोसे हुए व्यञ्जन के थालों को, आप सच मानिए, अगर बी छम्मी जान के पेशवाज़ की पवित्र हवा न लगे, तो सारा स्वाद ही नष्ट हो जाए और अगर आजीवन 'त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पते' चिल्लाते रहिए तो भी भगवान उसे ग्रहण न करें।

❀

मगर यह भूपाली छोकरा भी अजब ठर्रा निकला। उसने एक न सुनी। न भगवान के नाराज़ होने की परवा की, न बिरादरी में हैज़ा फूटने की चिन्ता। और चट कह दिया कि अगर वर-पक्ष वाले रण्डी लेकर आवेंगे तो विवाह ही न होगा, चाहे पड़ें नौ या छः!

❀

यह मङ्गलामुखी विरोध सोलह आने धर्मद्रोह है। क्योंकि शास्त्रों ने स्पष्ट घोषणा की है कि इनके दर्शन का पुण्य राज-दर्शन के बराबर होता है। अर्थात् दर्शन के लिहाज़ से ये न तो अलवरेन्द्र बहादुर से कम हैं और न बीकानेर-नरेश से। नृत्य और गीत के दर्शन और श्रवण का सुखानुभव तो बहुतों ने किया ही होगा। फलतः यह स्वयं सिद्ध है कि रण्डियाँ इहलोक और परलोक दोनों को सुधारने वाली हैं।

❀

इसीलिए तो जब उस दिन संयुक्त-प्रान्त की कौन्सिल में, मि० अहमदशाह ने वेश्यावृत्ति-निवारक बिल पेश किया तो कौन्सिल के धर्मप्राण सदस्य कानों पर हाथ धर कर 'त्राहि-त्राहि' कर उठे और जब तक कौन्सिलेश्वर ने बिल को रद्दी की टोकरी में डालने की घोषणा न कर दी, तब तक बेचारे कुकरौंछी के काटे हुए पशु-विशेष की तरह तड़पते रहे!

❀

ख़ैर, इन धर्मधुरीणों ने 'वेश्यावृत्ति-निवारक बिल' के विरुद्ध जो सद्युक्तियाँ प्रदर्शित की हैं, उन्हें पढ़ कर अपने राम को बड़ी प्रसन्नता हुई है। जब हमारे एम० एल० सी० तक इस धर्मानुमोदित पवित्र 'वृत्ति' के समर्थक हैं तो फिर 'बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय!' वास्तव में इन वेश्या-बन्धुओं ने इस अवसर पर आड़े आकर इस प्रान्त भर की वेश्याओं को कृतज्ञता-पाश में आबद्ध कर लिया है। अल्लाह ताला इन्हें चिरजीव करे।

❀

वेश्या-वृत्ति अति प्राचीन काल—सम्भवतः बाबा आदम के जन्म से भी पहले—से चली आती है। बहुत सी वेश्याएँ ख़ान्दानी हैं। यह 'क़सब' उनका मौरूसी पेशा है। फलतः जो बात सनातन काल से चली आती है, उसके विरुद्ध आवाज़ उठाना बावन तोले पाव रत्ती नादानी है। और क़ानून बना कर किसी को उसके पैतृक पेशे से वञ्चित करना क़ानूनों की अम्मीजान श्रीमती सरकार को नरक भेजना है।

❀

इस नीरसता के युग में नृत्य-कला और सङ्गीत-कला को इन्हीं बेचारी वेश्याओं (ख़ानगियों और हरजाइयों) ने ही तो जिला रक्खा है। अगर यह न रहेंगी तो मियाँ तानसेन और बैजू बावड़ा का नामलेवा भी कोई न रह जाएगा और "निगाहे यार बदमस्ती में भी हुशियार कैसी है, मेरा दिल छीन लेने के लिए तैयार कैसी है"—जैसे स्वर्गीय सङ्गीत का मज़ा ही जाता रहेगा!

❀

वेश्यावृत्ति विरोधी प्रस्ताव के प्रस्तावक महोदय ने बेचारी वेश्याओं को लावारिस माल समझ लिया था और उन्हें उल्टी छुरी से हलाल कर डालना चाहते थे। परन्तु अब उन्हें मालूम हो गया होगा कि बड़े-बड़े मोक़द्दस हज़रात तक उनके तरफ़दार और मददगार हैं। हुस्न के रोज़गारियों को भला अनुग्राहकों की क्या कमी हो सकती है?

❀

कौन्सिल के इन वेश्या-बन्धु सदस्यों में अग्रगण्य और अग्रस्मरणीय जनाब फ़ैज़मआब चौधरी मुहम्मद-

अली साहब एम० एल० सी० बहादुर हैं। क्योंकि आपने जैसे ज़ोरदार शब्दों में बिल का विरोध किया, वैसा और किसी भी वेश्या-बन्धु मेम्बर के बूते न बन पड़ा। लोग अब तक यही समझे बैठे थे कि नैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से यह वृत्ति गन्दी है, परन्तु बेटा जिए हज़रत चौधरी साहब का कि आपने लोगों की इस भ्रान्त धारणा को जड़-मूल से उखाड़ कर फेंक दिया।

❀

चौधरी साहब की राय है कि "चूँकि वेश्याएँ नाचती हैं और इस कला का धर्म (मज़हब) से निकट सम्बन्ध है।" इसलिए वेश्यावृत्ति-विरोध एकदम धर्मद्रोह और तवायफ़ नवाज़ी पुण्य है। चलो, अच्छा हुआ पुण्यार्जन का एक नया तरीका चौधरी साहब की कृपा से लोगों को मालूम हो गया।

❀

ख़ैर, धर्म और नृत्य में चोली-दामन का सम्बन्ध स्थापित करने के बाद चौधरी साहब ने और भी दूर की कौड़ी लाने की कृपा की है। आपकी शुभ-सम्मति में वेश्याओं की व्यभिचार-वृत्ति का विरोध भी दोषावह है। फलतः अपने राम तो चौधरी साहब की इस एख़लाक़ी ज़ुर्रत पर दिलोजान से मुग्ध हो गए हैं। वल्लाह, बड़ी हिम्मत की और इसी बहाने अपने को अमर बना दिया!

❀

सरकार दौलत मदार के सुयोग्य अधिकारियों ने आख़िरश ठाकुर जी को भी किसी मर्ज़ की दवा बना ही डाला। गत महीने अख़बारों में ख़बर छपी थी कि अन्तरगही नामक स्थान के मालगुज़ारी विभाग के अधिकारियों ने एक मन्दिर की मूर्ति और पूजा के बर्तन कुर्क़ कर लिए हैं। बस, अब आवश्यकता इस बात की है कि हज़रत नीलाम पर भी चढ़ा दिए जाएँ! और सरकार की ओर से वन, टू, थ्री बोल दिया जाय!!!

❀

अगर उपर्युक्त ख़बर सच है तो इसमें सन्देह नहीं कि मालगुज़ारी वसूल करने का यह अभिनव तरीक़ा निहायत ही कारगर साबित होगा। और अङ्गरेज़ी राज्य की बदौलत ठाकुर जी का जीवन भी सफल हो जाएगा। और क्या? अब तक ये हज़रत मन्दिरों के ऊँचे सिंहासनों पर बैठे-बैठे गुलछर्रे उड़ाया करते थे। अब इन्हें भी आटे-दाल का भाव मालूम हो जाएगा।

❀

महीशूर राज्य के दीवान बहादुर ने वहाँ की राजकीय कौन्सिल द्वारा स्वीकृत 'बाल-विवाह-निषेध-बिल' को अस्वीकृत करके सवा सोलह आने बुद्धिमानी ही नहीं की है, बल्कि सनातन-धर्म की जराजीर्ण नौका को भयङ्कर भँवर से बाल-बाल बचा लिया है। आज अगर ये दीवान जी न होते और यह बिल क़ानून बन जाता तो सारा महीशूर राज्य ही रसातल चला गया होता।

❀

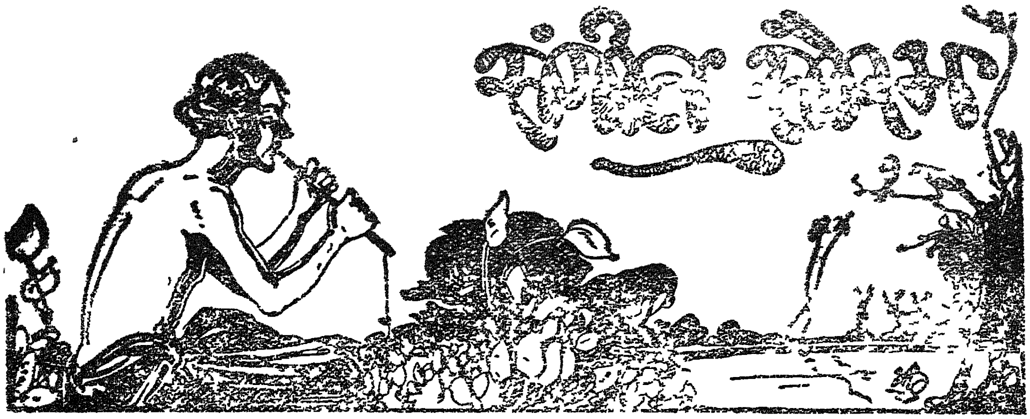
देखिए न, जब से श्री० सारदा जी का बाल-विवाह-निषेध-बिल पास हुआ है, तब से ब्रिटिश भारत पर मानो साक्षात् सनीचर की दृष्टि पड़ गई है। नित्य नए उत्पात खड़े हो रहे हैं; न बड़े लाट को चैन है, न छोटे लाट को। आर्थिक दुरवस्था का यह हाल कि मालगुज़ारी न वसूल होने के कारण ठाकुर जी तक को कुर्क़ करना पड रहा है। कहीं यही नौबत महीशूर में भी आ पहुँचती तो वाक़ई ग़ज़ब हो जाता।

❀

साथ ही, अगर दीवान जी इस बिल को स्वीकृत कर लेते और उसे क़ानून बन जाने देते, तो महीशूर राज्य की बच्चियों को चौदह वर्ष तक और बच्चों को एकदम अठारह साल तक संसार के सर्वश्रेष्ठ आनन्द से वञ्चित रह जाना पड़ता और उनके रोम-रोम से बद्दुआ का ज्वालामुखी भड़क उठता! मगर वाह रे दीवान जी की अक़्ल! बेचारों को विरहानल की ज्वाला से बाल-बाल बचा लिया!

❀

इसलिए अपने राम की राय है कि महीशूर के तमाम बच्चे और बच्चियाँ दीवान जी के जाहोजलाल की बेहबूदी और तरक़्क़ी के लिए बाबा शाह मदार की मज़ार पर तिलचौरी चढ़ा आवें और आपकी उम्रदराज़ी के लिए दुआ माँगें। क्योंकि आपने उन्हें विवाह के लिए जवानी का इन्तज़ार करने की ज़हमत से बचा लिया है।



[सम्पादक—श्री० नीलू बाबू]

[शब्दकार तथा स्वरकार—श्री० नीलू बाबू]

कान्हरा—३ ताल

स्थायी—भजो मन नारायण नारायण ।
भव-भय जगनिधि तारायण ॥
अन्तरा—नाम बिना बीति जात उमरिया ।
सोच-समझ मन बावरे ॥
यह जग रैन बसेरा जानो ।
भोर भए उठ जाना ॥ भजो० ॥

स्थायी

०				१				×				३			
क								क							
नि	स	रे	रे	स	रे	पम	प	ग	—	—	म	रे	—	स	रे
भ	जो	म	न	ना	रा	यय	ण	ना	—	—	आ	रा	—	य	ण
						क	क	क							
म	म	म	म	प	म	नि	नि	ग	—	—	म	रे	—	स	रे
भ	व	भ	य	ज	ग	नि	धि	ता	—	—	आ	रा	—	य	ण

अन्तरा

म	—	म	म	प	—	नि	नि	सां	—	सं	सं	निसं	निरें	सं	—
ना	—	म	बि	ना	—	वी	ति	जा	—	त	उ	मश्र	रिई	या	—
								क							
नि	सं	रें	रें	रें	रें	सं	रें	गं	—	—	मं	रें	—	सं	—
सो	ओ	च	स	म	झ	म	न	बा	—	—	व	रे	—	ए	—
			क					क		क	क				
म	—	म	नि	ध	—	ध	ध	नि	ध	नि	सं	नि	ध	प	—
य	ह	ज	ग	रै	—	न	व	से	ए	रा	आ	जा	आ	नो	—
						क	क	क							
म	—	म	म	प	म	नि	नि	ग	—	—	म	रे	—	स	रे
भो	—	र	भ	ए	ए	उ	ठ	जा	—	—	आ	ना	—	आ	आ



विचित्र स्त्री

कुछ दिन पूर्व एक सिक्ख युवती के बारे में प्रकाशित हुआ था कि वह आज वर्षों से बिना अन्न-जल ग्रहण किए स्वस्थ बनी हुई है। अब एक मद्रासी स्त्री के बारे में ऐसी ही आश्चर्यजनक बातें कही जा रही हैं। विज़गापटम के एक पत्र-प्रतिनिधि के तार के अनुसार आजकल गङ्गुपुडी गाँव में रहने वाली ३० वर्षीया जुलाहिन पापम्मा की ओर लोगों का ध्यान बहुत आकृष्ट हो रहा है। कारण यह कहा जाता है कि उसने पिछले १३ वर्षों से न एक दाना अन्न खाया है और न एक बूँद पानी पिया है। उसकी जाँच एक मैजिस्ट्रेट और विज़गापटम के कुछ वकीलों ने की है। एक दिन वह ससुराल से नैहर जा रही थी कि रास्ते में गिर पड़ी। वह बेहोश हो गई और उसी हालत में विज़गापटम के अस्पताल मे पहुँचाई गई। कुछ देर बाद वह होश में तो आई, पर बोल या मुँह न खोल सकी। वह दो सप्ताह अस्पताल में रक्खी गई, पर उसका मुँह नहीं खुल सका। डॉक्टरों ने उसका मुँह खोलने, उसे खिलाने-पिलाने की लाख कोशिश की, पर कोई लाभ नहीं हुआ। इस बीच इसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक रहा और ऐसी दशा में ही वह अपने घर चली गई।

पीछे दो वर्ष बाद एक दिन अकस्मात् पापम्मा का मुँह खुल गया और वह बोलने लगी, पर उसे कुछ खाने-पीने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई। वह कहती है कि मुझे न कभी भूख लगती है न प्यास। तभी से वह बिना कुछ खाए-पिए घर में पति के साथ रहती और गृहस्थी का सारा काम-काज करती है और इस बीच उसे तीन बच्चे भी हुए हैं।

❀

पक्षियों के स्थान पर ककड़ी

कोचीन में मन्दिरों में होने वाले पशु-पक्षी-वध के विरोध में कुछ समय से एक आन्दोलन हो रहा था। राज्य की ओर से अब आज्ञा हुई है कि पक्षियों का वध मन्दिरों में न किया जाय, किन्तु उनके स्थान पर ककड़ियाँ वध करके मूर्तियों पर चढ़ाई जायँ। पशु-वध की प्रथा को रोकने का भी समुचित प्रबन्ध किया गया है।

❀

हिन्दू-मुस्लिम रक्तपात

बम्बई में होने वाले हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे में अब तक लगभग २०० मरे हैं और लगभग २००० घायल हुए हैं।

❀

बैल से कन्या का विवाह

हाल ही में बङ्गाल के किसी स्थान में एक ९ वर्ष की लड़की का विवाह एक बकरे के साथ किया गया था। इसी ढङ्ग का एक और समाचार कलकत्ते से आया है। एक कायस्थ महाशय की पहिली दो कन्याएँ विवाह के पश्चात् शीघ्र ही विधवा हो गईं। जब तीसरी कन्या विवाह-योग्य हुई तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। आख़िर एक 'टोटका-पण्डित' की सलाह मान कर उक्त लाला जी ने अपनी कन्या का विवाह एक बैल के साथ कर दिया। विवाह की सभी रस्में अदा की गईं। फेरे, भोजन, हवन आदि कोई बात उठा न रक्खी गई। लाला जी के ख़याल से वह कन्या अब वैधव्य-प्रूफ़ हो गई।

❀

जल मरी

मसुलीपट्टम की एक लड़की ने विवाह से कुछ पहले चिता में प्रवेश कर प्राणत्याग कर दिया। खोज करने से मालूम हुआ है कि लड़की एक कॉन्स्टेबल की थी। अभी कल रात तक वह बिल्कुल भली-चङ्गी थी। आधी रात के लगभग कहा जाता है कि ब्याह के कपड़े पहने हुए वह मकान के पिछवाड़े की ओर चली गई और चिता में, जिसे उसने पहले से तैयार कर रक्खा था, आग लगा कर उस पर जा बैठी। जब चिता से लपटें उठने लगी, तो घर वालों का उधर ध्यान गया।

चिता के पास ही लड़की का लिखा हुआ एक पत्र पड़ा मिला है। उसमें उसने लिखा है कि मेरे भाग्य में कुमारी ही मरना लिखा है, देवी होने के कारण विवाह में मर्त्य का पाणिग्रहण नहीं कर सकती।

❀

श्मशान-यात्री की शादी

जोगेन्द्रनगर का समाचार है कि अदलेरी तहसील पालमपुर में एक ब्राह्मण ने, जिसकी उम्र ७९ वर्ष की है, एक कुँआरी कन्या के साथ विवाह किया है। लड़की का पिता बैजनाथ के निकट का रहने वाला है।

❀

बाल-विवाह करने की सज़ा

अहमदाबाद के ज़िला मैजिस्ट्रेट ने शारदा-एक्ट के विरुद्ध अपना विवाह करने के अभियोग में केसर उजमल पर २५०) और लड़की के पिता केसर कुशर पर १००) जुर्माना किया है। दोनों अभियुक्तों ने अपराध स्वीकार किया और दया के लिए प्रार्थना की, लेकिन उनकी प्रार्थना मन्ज़ूर नहीं की गई।

❀

नया सामाजिक रोग

हिन्दुओं में तलाक की प्रथा नहीं है और पति-पत्नी में मतभेद तथा कलह होने पर भी उनको साथ रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। इसका जैसा विषमय परिणाम होना सम्भव है उसके दो उदाहरण हाल में पढ़ने में आए हैं। नागपुर की रुक्मा नाम की स्त्री ने अपने पति पूनिया को, जिसके साथ उसका प्रायः झगड़ा-फ़साद हुआ करता था, जान से मरवा दिया। वह अपने अन्य सम्बन्धियों से साजिश करके पूनिया को सैर करने के लिए शहर से बाहर ले गई और वहीं सबने मिल कर उसका काम तमाम कर दिया। इसी प्रकार अहमदाबाद में ललिता नाम की एक जैन-स्त्री ने अपने पति की हत्या कर डाली। क्या हम आशा करें कि इन घटनाओं से हिन्दू-समाज की आँखें खुलेंगी।

❀

विदेश

चीनी जोन ऑफ़ आर्क

फ़्रान्स की देवी जोन के नाम से सभी परिचित हैं। अब चीन में भी एक देवी जोन का आविर्भाव हुआ है। यह पता नहीं कि यह युवती कौन है और कहाँ से आई है, परन्तु उसने शत्रुओं का सामना करने के लिए नवयुवकों और नवयुवतियों की एक बड़ी सेना एकत्रित कर ली है।

❀

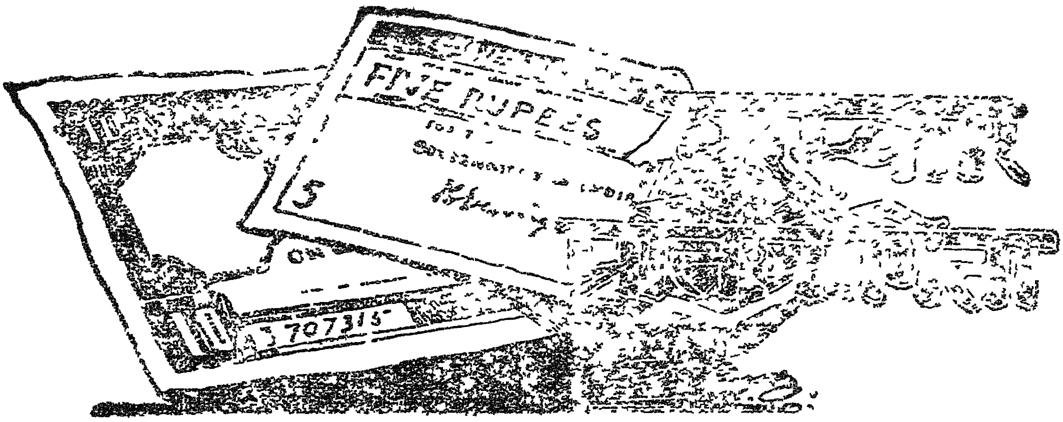
जर्मनी की सरकार

जर्मनी की सरकार ने पार्लामेण्ट भङ्ग कर दी है। इस प्रकार आगामी निर्वाचन तक, जो शीघ्र ही होगा, जर्मनी बिना पार्लामेण्ट के शासित की जायगी।

❀

अविवाहितों पर टैक्स

तुर्की पार्लामेण्ट में एक बिल पेश हुआ है, जिसमें अविवाहितों पर भारी टैक्स लगाने को कहा गया है। प्रस्तावक का कहना है कि, ६०० वर्षों के युद्धों में तुर्कों की संख्या कम हो गई है, उसको बढ़ाना है। जो तुर्क शादी न करे, या जो सन्तान उत्पन्न न करे, वह देश-द्रोही है। यह बिल एक कमिटी के सुपुर्द किया गया है, जिसके अध्यक्ष मि० हैदरअल्ला अफ़न्दी ख़ुद ही अविवाहित हैं। इस बिल के पास हो जाने पर लगभग सभी तुर्क शादी करने लगेंगे।



इस मास की पहेली

नियम

१—(जैसा 'मई' के अङ्क में है)

२—पहेली

१	—	हा	मा	—	
२	रा	—	रा	नी	
३	म	—	—	ह	—
४	—	ज	—	—	ल
५	—	ज	कि	शो	—
६	अ	—	—	का	
७	म	—	—	र	

३—इस पहेली में ७ कोष्ठक हैं। प्रत्येक कोष्ठक में एक शब्द है, जिसके कुछ अक्षर नहीं दिए गए हैं। उन अक्षरों के स्थान पर लाइनें खिची हुई हैं। पाठकों को इन अक्षरों को उनके उचित स्थान पर रख कर सातों शब्द पूरे करने हैं। नीचे कुछ शब्दों की सूची दी जाती है, उन्हीं में ये सात शब्द छिपे हैं। उत्तरों को कूपन के कोष्ठकों में नम्बरवार लिखिए।

शब्दों की सूची :—

महामाया, राधारानी, मनमोहक, मणिमोहन, अमरीका, राजरानी, मनमोहन, राजमहल, महावीर, अट्टालिका, राजकिशोर, ताजमहल, मनहर, ब्रजकिशोरी, भजनलाल।

४—उत्तर हमारे पास ता० ५ अगस्त तक निम्न-लिखित पते पर आ जाने चाहिए :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग,
चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद
CHAND Puzzle Deptt.
Chand Press, Ltd.,
Allahabad.

ता० ५ अगस्त के बाद आए हुए उत्तरों पर कोई विचार न किया जायगा, चाहे वे उत्तर ब्रह्मा या आसाम के ही क्यों न हों।

(५), (६), (७), जिस प्रकार 'मई' के (४), (५), (६) हैं।

कूपन	
१	
२	
३	
४	
५	
६	
७	

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

पिछली पहेली का परिणाम

१—पहेली के उत्तर भेजने की अवधि बढ़ा देने का परिणाम बहुत सन्तोषजनक हुआ है। हमारे पाठकों को यह योजना पसन्द आई है, इसलिए हम प्रति मास ता० ५ तक उत्तर मँगाया करेंगे, ताकि सभी पाठकों को उत्तर भेजने में सुविधा रहे।

२—इस बार फिर पहेली का बिल्कुल ठीक उत्तर हमारे पास आया है। उत्तर भेजने वाले महाशय हैं :—

सूचना

कृपया 'पुरस्कार-प्रतियोगिता' के सम्बन्ध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार न कीजिए। ऐसे पत्रों का उत्तर कार्यालय से नहीं दिया जा सकेगा।

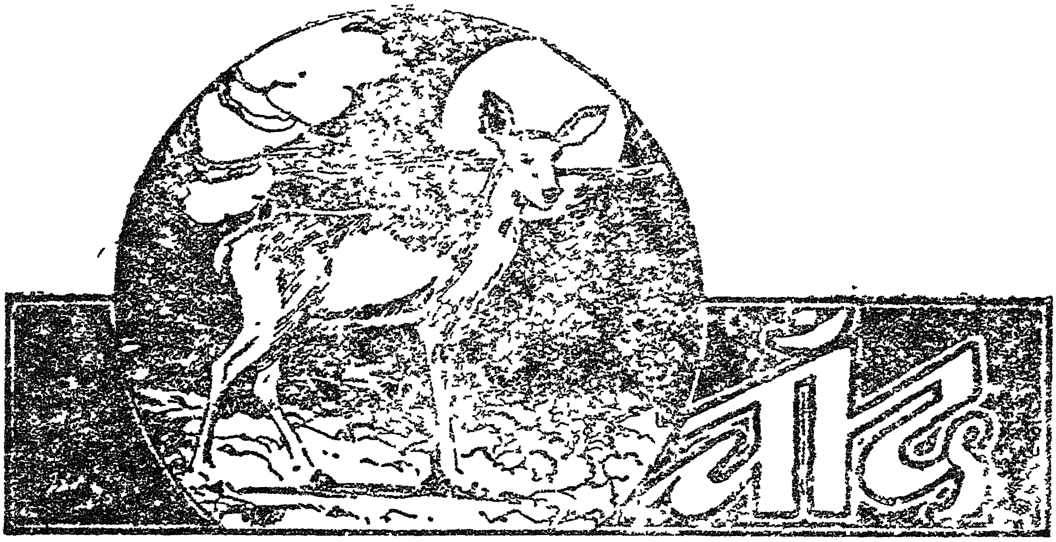
—सम्पादक 'चाँद'

श्री० सूर्यकुमार त्रिपाठी 'सुधी', जहाँगीराबाद, (कानपुर)।

आपको 'चाँद' पाँच वर्ष तक मुफ़्त भेजा जायगा।

३—ठीक उत्तर इस प्रकार है :—

१	मदनपाल	२	शरणागत
३	बलिदान	४	अभाव
५	अमर	६	पयनिधि
७	जीवनसुख	८	मायानिधान



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक
इस पावन अनुष्ठान मे हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि
हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २	अगस्त, १९३२	सं० ४, पू० सं० ११८

मालिनी

[प्रो० रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

सजाए है मैने ये हार।

उषा सम रञ्जित रुचिर प्रसून,
शरद बादल-सी कलियाँ श्वेत।
व्योम-से पल्लव कोमल श्याम,
सभी हारो में हैं समवेत।

ओस-जल में मुख धोकर मौन,
विहङ्गो का सुन कलरव गान।
कली, अलि-अवली से या प्रात,
स्वार्थ-स्वागत का मीठा मान।

प्रात की पीकर अनिल अपार,
लता की हरी-हरी सी गोद।
फूल कर झूल रहे हैं फूल,
हार में गूंथे हैं सविनोद।

और पल्लव-पल्लव हैं बाल,
सुकोमल हैं, मृदु हैं सुकुमार।
पवन ने उन्हे सरल शिशु जान,
झुलाया है कितनी ही बार।

लताओं का यह यौवन-भार,
अरी, ले आई आज उतार।
कौन है, लेगा इसको मोल,
करेगा इसमें कौन विहार ?



चाँद

अगस्त, १९३२

भारत के धर्मजीवी

जब से संसार में मानवीय सभ्यता का प्रसार हुआ है, तब से प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज में, किसी न किसी रूप में, धर्मजीवी लोगों का अस्तित्व रहा है। प्रकृति के रहस्यों को न समझ सकने के कारण मनुष्य के हृदय में आरम्भ ही से अनेक तरह की शङ्काएँ, अन्ध-विश्वास और आध्यात्मिक भावनाएँ उत्पन्न होती रही हैं और ये धर्मजीवी लोग किसी भी प्रकार उनका समाधान अथवा पूर्ति करके अपना स्वार्थ सिद्ध करते आए हैं। पारसी, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि तमाम मज़हबों में इस तरह के धर्मगुरु और पुरोहित सदा से पाए जाते है। रोम का राज्य तो सैकड़ों वर्षों तक ईसाई धर्मगुरुओं के अधिकार में ही रहा है। मुसलमानों के अनेक बादशाह भी फ़क़ीरों और औलियाओं के पक्के मुरीद हुए हैं। यूनान, मिश्र आदि पुराने देशों में पुरोहितों का अत्यधिक प्राबल्य रहा है, यह पुरातत्व-वेत्ताओं की खोज से सिद्ध हो चुका है। पर जब हम भारतीय इतिहास और हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों के पृष्ठ लौटते हैं, तो जान पड़ता है कि इनमें से किसी भी देश में धर्मजीवी लोगों का प्रभाव इतनी हद तक नहीं पहुँचा था, जितना कि भारतवर्ष में पहुँच चुका है। यहाँ पर धर्मजीवी लोगों के याचना करने पर लोगों ने अपना राज-पाट, स्त्री-पुत्र और देह तक अर्पण कर दिया है। एक-एक यज्ञ में पुरोहितों को लाखों गाएँ और करोड़ों स्वर्ण-मुद्राएँ दान दी गई हैं। धर्मजीवियों के फेर में पड़ कर हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य त्याग दिया और स्त्री-पुत्र को बेच कर स्वयं चाण्डाल का दास बना। इसी कारण मोरध्वज को अपने पुत्र की हत्या करनी पड़ी और बलि को शरीर तक नपवा देना पड़ा। इस प्रकार के उदाहरण और उपाख्यान पुराणों और काव्यों में भरे पड़े हैं, और यदि उनका दशमांश भी सत्य माना जाय तो यही कहना पड़ेगा कि इस देश के वास्तविक स्वामी और कर्ता-धर्ता सदा से धर्मजीवी ही रहे हैं और उन्होंने अन्य समस्त वर्णों और पेशे वालों को छल-बल द्वारा अपने बन्धन में रक्खा है।

सम्भवतः लोगों की उसी प्राचीन धारणा और श्रद्धा का फल है कि वर्तमान समय में भी इस देश में

धर्मजीवियों की जैसी बहुतायत और प्रबलता है, वैसी संसार के दूसरे किसी देश में नहीं पाई जाती। आप यहाँ के किसी छोटे से छोटे गाँव में पहुँच जाइए, वहाँ भी आपको ऐसी एकाध मूर्ति के दर्शन अवश्य हो जाएँगे। और कुछ न होगा तो आप देखेंगे कि गाँव के कुएँ या धर्मशाला के पास ऐसे किसी जीव ने आसन जमा रक्खा है और उसके पास सुबह-शाम धर्म-जिज्ञासु भक्तों की एक छोटी-मोटी मण्डली इकट्ठी हो जाती है। प्रत्येक साधारण दर्जे के गाँव मे एकाध मन्दिर भी ज़रूर पाया जाता है और दो-चार व्यक्ति उसके ही सहारे अपना पेट पाल लेते हैं। इसके सिवा जितने भिखमङ्गे घर-घर फिरते नज़र आते है, उनमें से अधिकांश अपने को ब्राह्मण ही कहते हैं, और इस नाते से भिक्षा माँगना अपना हक़ बतलाते हैं। उनमें से कितने ही अपने को पहुँचा हुआ साधू-महात्मा समझते हैं और जो भिक्षा नहीं देता उसे गाली-गलौज या श्राप तक देने को उद्यत हो जाते हैं। बहुत से साधू अकेले घूमने के बजाय मण्डली बना कर देश का चक्कर लगाते रहते हैं। वे प्रत्येक शहर तथा गाँव मे उस समय तक ठहरते हैं, जब तक वहाँ के निवासी उनकी भली-भाँति आवभगत करते रहते हैं। जब वे लोगों की श्रद्धा में कमी होते देखते हैं अथवा उनसे अधिक प्रभावशाली दूसरी मण्डली वहाँ आसन आ जमाती है तो वे किसी नए ठिकाने को रवाना हो जाते हैं। ये लोग प्रायः अपने साथ एक चलता-फिरता ठाकुर-मन्दिर रखते हैं, जिसकी पूजा सुबह-शाम बड़े समारोह से की जाती है। धर्मप्राण लोग ख़याल करते है कि अगर इनको कुछ न दिया जायगा तो ठाकुर जी का भोग कैसे लगेगा, और इस प्रकार उनको कुछ न कुछ मिल ही जाता है। इसके बाद उन मठधारी साधुओं और महन्तों का नम्बर आता है, जिनके पास किसी राजा, ज़मींदार या सेठ की दी हुई या साधारण जनता के चढ़ावे से ख़रीदी हुई ज़मीन-जायदाद होती है और उसके द्वारा वे सुख-पूर्वक जीवन निर्वाह करते हैं। इन्हीं लोगों में बड़े-बड़े मन्दिरों या तीर्थ-स्थानों के वे महन्त अथवा अधिकारी भी सम्मिलित हैं, जिनको श्रद्धालुओं तथा भक्तों द्वारा लाखों रुपए सालाना की आमदनी होती है और जिनका ठाट-बाट तथा ऐश्वर्य किसी बड़े अमीर या रईस से कम नहीं होता। तीर्थों के अगणित पण्डों की गणना भी धर्मजीवियों में ही है। इन लोगों को बिना हाथ-पैर हिलाए केवल गङ्गामाई अथवा पितरों के नाम पर करोड़ों की रकम प्रति वर्ष मिलती रहती है, जिसका उपयोग ये केवल गुलछर्रे उड़ाने और पारस्परिक कलह में करते हैं।

ऊपर धर्मजीवी लोगों की जिन विभिन्न श्रेणियों का ज़िक्र किया गया है, उनमें प्रधानता मठाधीशों, अखाड़ों के महन्तों, विभिन्न सम्प्रदायों के गुरुओं, बड़े-बड़े देव-मन्दिरों के अधिष्ठाताओं और तीर्थों के पण्डों की ही है, और इन्हीं के सम्बन्ध में विशेष रूप से हमको इस लेख मे विचार करना है; क्योंकि इनका समाज पर असाधारण अधिकार होता है, अनगिनती लोग उनको आदर-सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, उनके पास करोड़ों की सम्पत्ति है और इन तमाम बातों के कारण वे जो कुछ कहते या करते हैं, उसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों के एक बड़े भाग पर से उन लोगों का प्रभाव हट गया है और बहुत से लोग उनका विरोध भी करने लग गए हैं, पर ऐसे लोगों की संख्या कठिनता से एक प्रति सैकड़ा से अधिक होगी। शेष लोग, जिनमें से अधिकांश देहातों के रहने वाले हैं, अभी तक उसी अन्धकार में पड़े हुए हैं और उनको पूजनीय तथा श्रद्धेय समझते हैं। साथ ही शहरों के अनेकों बड़े-बड़े व्यवसायी तथा उच्च सरकारी पदों पर प्रतिष्ठित लोग भी उनके अनुयायी बने हुए हैं। इतना ही नहीं, जो लोग इन बातों मे श्रद्धा-विश्वास नहीं रखते वे भी समय पड़ने पर लोकलज्जा के भय से अन्य लोगों का अनुकरण करते हैं।

वर्तमान समय के धर्मजीवियों की आलोचना करने से पहले हम यह बतला देना चाहते हैं कि हमारा विरोध वास्तविक त्यागी, तपस्वी, ईश्वर-प्रेमी और भगवद्भजन में अनुरक्त साधुओं से नहीं है। सम्भव है, हमारे और उनके धार्मिक विश्वास में कुछ अन्तर हो और उनके जप-तप को हम विशेष महत्वपूर्ण न समझते हों, पर तो भी जो लोग सांसारिक सुखों को त्याग कर, लोकैषणा की भावना पर विजय प्राप्त करके, शारीरिक कष्ट सहते हुए आध्यात्मिक उन्नति की चेष्टा

में लगे हैं, वे आदर की दृष्टि से देखे जाने योग्य हैं। हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में साधुओं का जैसा चरित्र बतलाया गया है और उनके लिए जो नियम लिखे हैं, अगर आजकल के साधू उनका पालन करते होते तो किसी को उनके समाज पर आक्षेप करने का अवसर ही नहीं मिलता, और वे समाज के एक हानिकारक तथा भार-स्वरूप अङ्ग होने के बजाय लाभदायक और उपयोगी भाग सिद्ध होते। उदाहरणार्थ गरुड़-पुराण में साधुओं के जो लक्षण दिए गए हैं, उनको देखिए—

"जो सम्मान से सन्तुष्ट और अपमान से क्रुद्ध नहीं होते और यदि कभी क्रुद्ध होते हैं, तो परुष वाक्य मुँह से नहीं निकालते, वे ही साधु हैं। साधु सदा आत्म-सुख तथा भोगेच्छा से विरत होते हैं और वे सब प्राणियों के सुख के लिए चेष्टा करते रहते हैं। वे पराए दुःख से कातर होते हैं, और तो क्या, दूसरे के दुःख को देख कर अपना सारा सुख भूल जाते हैं। वृक्ष जैसे स्वयं निदारुण ताप को सहता हुआ भी दूसरे को निदारुण ताप से बचाता है, साधु भी वैसे ही आप कष्ट सह कर दूसरे का उपकार किया करते हैं।"

महानिर्वाण तन्त्र में लिखा है—"जो लोग देवायतन में वास करते हैं और देव-कल्प, दृढ़व्रत, सत्य-धर्म-परायण तथा सत्यवादी हैं, उन्हीं को साधु कहते हैं।"

यदि साधुओं के ऊपर लिखे लक्षणों की विवेचना की जाय, तो मालूम होता है कि आजकल के साधू नामधारी इस श्रेणी में कदापि नहीं आ सकते। यदि इस श्रेणी में कोई आ सकता है तो राजनीतिक और सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले कुछ ऐसे व्यक्ति ही आ सकते हैं, जो अपना सर्वस्व त्याग कर तन-मन-धन से जनता की सेवा कर रहे हैं।

यह तो हुई साधुओं के लक्षणों की बात। अब हम विष्णु-पुराण में वर्णित साधुओं के लिए आवश्यकीय नियमों का उल्लेख करेंगे। उनसे यह भी मालूम होगा कि किस तरह का व्यक्ति साधू हो सकता है और उसे कैसे त्याग और कष्ट-सहन की आवश्यकता है। आजकल जो लोग अधेले के गेरू से कपड़ा रङ्ग कर साधू बन जाते हैं अथवा किसी महन्त या गुसाईं आदि के चेले बन कर पूजनीय और वन्दनीय बन बैठते हैं वे तो उसके अनुसार नितान्त उपहासास्पद जान पड़ते हैं। विष्णु-पुराण के तीसरे खण्ड के नवम अध्याय में भिक्षुओं और संन्यासियों के कर्मों का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"भिक्षु व्यक्ति को धर्म, अर्थ और काम-रूप त्रिवर्ग साधन समुदाय तथा यागादि के अनुष्ठान का परित्याग करना चाहिए। इनको शत्रु-मित्र और छोटे-बड़े सब प्राणियों का मित्र बन जाना चाहिए। वाक्य, मन या कर्म द्वारा जरायुज, अण्डज प्रभृति किसी जीव का कदापि अनिष्टाचरण न करें। सदा योगरत रहें और सबका सङ्ग छोड़ दें। इन्हें गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात तक रहना चाहिए। इससे अधिक काल तक रहना उचित नहीं। इसके सिवा वे ऐसे स्थान में रहें, जहाँ से न प्रीति ही उपजे और न द्वेष। जिस समय गृहस्थ के पाकादि की अग्नि बुझ जाय और सबका आहार समाप्त हो जाय उसी समय भिक्षु ब्राह्मणों के घर भिक्षा माँगने को उपस्थित होवें।"

कहाँ तो साधुओं और संन्यासियों का यह आदर्श और कहाँ आजकल के पेटू, स्वार्थी और लम्पट धर्म-जीवी लोग! इन नियमों के अनुसार साधु-संन्यासियों को गाँव में एक रात और नगर में पाँच रात तक रहना चाहिए। पर आजकल के साधू एक ही स्थान में मठ-मन्दिर बना कर और ज़मीन-जायदाद इकट्ठी करके ऐसी गहरी जड़ जमा लेते हैं, मानो भयङ्कर तूफ़ान में भी वे टस से मस न होंगे। इसी प्रकार उपर्युक्त विवरण में सब लोगों के खा-पी चुकने के बाद साधुओं को गृहस्थों के यहाँ भिक्षार्थ जाने का विधान है, पर आजकल साधू लोग सबसे पहले भोग लगाना अपना अधिकार समझते हैं और कितने ही तो लोगों के खाते हुए ही छाती पर जा खड़े होते हैं।

उपर्युक्त शास्त्रीय उद्धरणों से साधुओं का जैसा स्वरूप प्रकट होता है, उसकी तुलना जब हम आजकल के महात्मा-महन्त और गुरु नामधारियों से करते हैं तो ज़मीन-आसमान का अन्तर दिखलाई देता है। शास्त्रों के अनुसार साधू का सर्वोपरि लक्षण त्याग और परोपकार है। इसके विपरीत आजकल के साधू धन-संग्रह और स्वार्थ-साधन को ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझे बैठे हैं। यह इस ज़माने की ख़ूबी है कि मेहनत करने वाले गृहस्थ लोग तो भूखों मर रहे हैं

और आलस्य में समय गँवाने वाले साधू लखपती-करोड़पती बने हुए हैं। आजकल साधू कहलाने वाले ज़मींदारी करते हैं, खेती कराते हैं, क़र्ज़ देते हैं, किराए के लिए मकान बनवाते हैं, व्यापार करते हैं। हमारे एक परिचित सज्जन को कुछ रुपए की ज़रूरत थी, पर क़र्ज़ मिलने का कोई मार्ग सामने न था। उनसे एक दूसरे व्यक्ति ने कहा कि वे अमुक अखाड़े के महन्त के पास चलें, वह पचास हज़ार तक क़र्ज़ दे सकता है। पूछने पर मालूम हुआ कि उक्त महन्त ने कितने ही व्यवसाइयों, ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों को इसी तरह लाखों रुपए क़र्ज़ में दे रक्खा है। नागा लोगों के प्रसिद्ध निरञ्जनी अखाड़े की सम्पत्ति का मूल्य एक अरब रुपए के लगभग बतलाया जाता है और उसके कोष में करोड़ों रुपए नक़द रहता है। इसी तरह मथुरा, गोवर्द्धन और नाथद्वारे के गुसाइयों और अयोध्या के महन्तों के पास अपार सम्पत्ति बतलाई जाती है। एक बार हम अयोध्या के हनुमानगढ़ी मन्दिर में गए। वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि मन्दिर की सालाना आमदनी ढाई-तीन लाख के क़रीब है और ख़र्च इससे बहुत कम है। जो रुपया बचता है, वह मन्दिर के नीचे बने विशाल तहख़ाने में रख दिया जाता है और कभी निकाला नहीं जाता। इस प्रकार अब तक वहाँ कितने ही करोड़ रुपए इकट्ठे हो चुके हैं। मध्य भारत के एक मन्दिर के बारे में, जिसमें महाराज छत्रसाल के गुरु प्राणनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठित है, पढ़ा था कि उसके अधिकांश अनुयायी जौहरी का काम करते हैं और एक-दो वर्ष पश्चात् जब वे उसकी यात्रा को आते हैं, तो एक रत्न मूर्ति को भेंट चढ़ाते हैं। वे रत्न भण्डार में इकट्ठे होते रहते हैं और उनका मूल्य अब करोड़ों तक पहुँच चुका है। इसी तरह काशी का विश्वनाथ-मन्दिर, पुरी का जगन्नाथ-मन्दिर, नासिक का कालाराम मन्दिर आदि जितने बड़े-बड़े मन्दिर हैं, सब में प्रति वर्ष लाखों रुपए भेंट-स्वरूप चढ़ता है और वह तमाम महन्तों या पुजारियों को मिलता है। ऐसा अभागा मन्दिर या महन्त तो शायद ही कोई होगा, जिसके पास लाख-पचास हज़ार या कम से कम दस-पाँच हज़ार की सम्पत्ति न हो। साधू लोग हाथी-घोड़े रखते हैं, उनके यहाँ रक्षा के लिए बन्दूकधारी रक्षक नियत रहते हैं, वे लोग सोने-चाँदी के बर्तनों में खाते हैं, ज़री और कमख़्वाब के कपड़े पहनते हैं, लाखों रुपए के मूल्य के रत्न-जड़ित आभूषण धारण करते हैं, और दुनिया की समस्त सुख-सामग्रियाँ उन्होंने अधिक से अधिक अपने पास संग्रह कर ली है।

यह तो हुआ उनके त्याग का वर्णन। जब उनकी परोपकार-वृत्ति पर नज़र डालते हैं तो मालूम होता है कि उनके समान स्वार्थी शायद ही कोई हो। देश में वर्षों से राजनीतिक आन्दोलन हो रहा है, और प्रत्येक छोटे-बड़े व्यक्ति ने उसमें यथासाध्य आर्थिक सहायता दी है, पर इन मालदार साधुओं ने शायद ही एक भी पैसा उसमें दिया हो। इसी प्रकार और भी कितने ही सार्वजनिक कार्य देश में होते रहते हैं और उनके लिए ग़रीब-अमीर गृहस्थ लोग चन्दा देते हैं, पर ये साधू लोग कभी इन फन्दों में नहीं फँसते। शायद ये लोग स्वयं दान लेते हैं और माँगते हैं, इससे इनमें दान देने की प्रवृत्ति नहीं रहती, अथवा ये समझते हैं कि सबसे अधिक पुण्य का काम तो हम लोगों को दान देना माना जाता है, अब हम किसको दान दें। कुछ साधू-महन्त सदावर्त, पाठशाला, औषधालय आदि में कुछ ख़र्च करते हैं, पर ये ही चीज़ें उनकी कमाई के ज़रिए है और इनको दिखला कर ही वे लोगों से रक़म वसूल करते हैं।

साधुओं का तीसरा बड़ा गुण सदाचार माना जाता है। इसकी जैसी मिट्टी पलीद आजकल के धर्म-जीवियों ने की है, उसका कोई ठिकाना ही नहीं। भारत का शायद ही कोई ऐसा धर्मस्थान मन्दिर या मठ होगा, जिसके अधिष्ठाताओं पर चरित्र-भ्रष्टता का इलज़ाम न लगाया जाता हो। जो धर्मगुरु या मन्दिरों के महन्त जनता के पूज्य माने जाते हैं और जिनके चरणों की रज प्राप्त करने के लिए लोग हज़ारों रुपए ख़र्च कर डालते हैं, उनके भी चरित्र और कर्मों का जब भेद खुलता है, तो दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। ये साधू या महन्त लोग नित्य बढ़िया से बढ़िया और क़ीमती भोजन करते हैं; सजे हुए सुखकर मकानों और कोठियों में रहते हैं; मख़मली गद्दे-तकियों पर सोते हैं; पचास-पचास और सौ-सौ रुपए तोले तक के इत्र लगाते हैं; पान, बीड़ी, सिगरेट, गाँजा, भाँग, शराब आदि समस्त नशीली और उत्तेजक चीज़ों का सेवन

करते हैं। कितने ही तरह-तरह की ताक़त की दवाइयाँ कस्तूरी, केसर, सोने के वर्क़, मोती का चूना और भस्मे आदि खाते हैं। ऐसी दशा में अगर उनका चित्त चलायमान होता है और वे चेले-चेलियों अथवा वेश्याओं को कृतार्थ कर देते हैं, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है। इन सब सामग्रियों का उपभोग करते हुए भी जो निर्विकार और निर्लेप रह सके उसे जीवन्मुक्त के सिवाय कुछ नहीं कहा जा सकता। अथवा सर्वथा नपुंसक व्यक्ति ऐसी परिस्थिति में निश्चल रह सकता है। पर ये साधू और महन्त न तो विदेह पदवी को पहुँच चुके हैं और न वे हिजड़े बन गए हैं, तब वे इस तमाम विलास-सामग्री और उत्तेजक पदार्थों का उपभोग करते हुए कामदेव के वाणों से व्यथित न हों, यह कैसे सम्भव है ?

इन साधू नामधारियों की काम-लीलाओं का यदि विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाय, तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो सकती है। कितने ही मन्दिर और तीर्थस्थान तो इस सम्बन्ध में ऐसे बदनाम हो चुके है कि लोग खुल्लमखुल्ला उनको दुराचार के अड्डों के नाम से पुकारते हैं। बम्बई प्रान्त के एक बड़े भारी तीर्थ मे, जिसकी जनता में बड़ी महिमा है, नित्य सैकड़ों औरतें दुराचार के लिए पहुँचती है। उनमें से अनेकों को तो महन्त जी और उनके चेला तृप्त करते हैं और शेष मन्दिर के प्रधान-प्रधान भक्तों की सेवा में भेज दी जाती है। साथ ही वहाँ पर इस बात का भी बड़ा सुभीता है कि चाहे जो आदमी किसी ग़ैर-स्त्री को लेकर चला आवे और दो-चार दिन रह कर अपनी वासना की पूर्ति कर ले। हरिद्वार और ऋषीकेश जैसे परम पवित्र तीर्थों की भी यही दशा है। वहाँ के अधिकांश साधू खीर और मालपुए—जिनको वे अपने 'कोडवर्ड' में काली रोटी धौली दाल के नाम से पुकारते हैं—उड़ाते हैं और उनसे उत्पन्न हुई मस्ती गङ्गा-स्नान को आने वाली पञ्जाबी स्त्रियों पर उतारा करते हैं। प्रयाग, काशी, गया, पुरी आदि समस्त तीर्थों के मन्दिरों और धर्म-स्थानों के सम्बन्ध में इसी तरह की शिकायतें आमतौर से सुनने में आती है। दक्षिण के मन्दिरों की दशा तो और भी पतित है। वहाँ खुल्लम-खुल्ला प्रत्येक मन्दिर में देवदासियों का एक दल रक्खा जाता है, जो ठाकुर जी के आगे नाचने-गाने के सिवाय मन्दिर मे रहने वाले पुजारियों की कामवासना की पूर्ति भी करती रहती हैं! ये देवदासियाँ बहुत छोटी उम्र में ही मन्दिरों मे भेंट चढ़ा दी जाती है और उनका समस्त जीवन वहीं कटता है। कितनी ही बार कोई कामुक पुजारी किसी अल्प-वयस्क लड़की को ही पकड़ लेता है, जिससे वह मर तक जाती है। मथुरा और वृन्दावन तो कृष्ण जी की रङ्गस्थली माने जाते है और वहाँ पर तमाम स्त्रियाँ गोपिकाएँ मान ली जाती है, जिनके साथ रास-रङ्ग करना कृष्ण-भक्तों का 'कर्तव्य' है। वहाँ के गोकुलिये तथा गुसाइयों के मन्दिर इस तरह की काली करतूतों के लिए प्रसिद्ध हैं। इस सम्बन्ध मे कितनी ही पुस्तकें छप चुकी हैं और मुक़दमे भी चले हैं, पर अभी उनकी स्थिति में विशेष अन्तर नहीं पड़ा है। इन गुसाइयों के भक्तों में, जो प्रायः बम्बई के भाटिए होते हैं, यह नियम प्रचलित हो गया है कि वे प्रत्येक नवबधू को गुसाईं जी की सेवा मे उपस्थित करते है और वह कहती है 'तन-मन-धन गुसाईं जी को समर्पण।' कोई-कोई शिक्षिता स्त्री ऐसा कहने से इनकार करती है, तो उसके सास-ससुर या अन्य बड़े-बूढ़े उसे ऐसा कहने को लाचार करते हैं। यह 'समर्पण' केवल ज़बानी नहीं होता, वरन् कार्य-रूप में होता है और इस अवसर पर गुसाईं जी अछूती कुमारी कन्या के साथ ही साथ सैकड़ों हज़ारों रुपए की रकम पा जाते हैं। पर कितनी ही बार जबकि शादी-विवाहों का ज़ोर होता है और गुसाईं जी को बार-बार यह 'ड्यूटी' पूरी करनी पड़ती है, तो बेचारों को लेने के देने पड़ जाते हैं। मथुरा के एक बड़े प्रसिद्ध गुसाईं ने एक बार ऐसे ही अवसर पर पहले से तैयार रहने के लिए कोई दवा खा ली। दवा बड़ी तीव्र थी और ठीक समय पर किसी कारणवश गुसाईं जी को शिकार हाथ न लगा। फल यह हुआ कि उनका गुप्ताङ्ग कई जगह से फट गया और जब डॉक्टरों ने उस पर तीन पट्टियाँ लगाईं तो वे फिर किसी लायक़ हो सके। इसी प्रकार एक और गुसाईं का हाल सुना था, जो इसी तरह के 'धर्म-कार्य' में बड़ा कमज़ोर हो गया था और उसका जीवन सङ्कट में था। पर भक्त लोग बराबर आते थे और प्राचीन नियम की रक्षा तथा रुपए के लालच से उस ग़रीब को यह काम

फिर करना पड़ता था। वह प्राणों के मोह से बार-बार इनकार करता था, पर भक्त लोग यह समझ कर कि गुसाईं जी भेंट की रक़म के कम होने के कारण इनकार कर रहे हैं, बराबर उस रक़म को बढ़ाते जाते थे। अधिक रक़म देख कर मन्दिर के अन्य अधिकारी भी गुसाईं जी को दबाते थे और उसे झख मार कर राज़ी होना पड़ता था। अन्त में बहुत ही थोड़ी उम्र में वह चल बसा।

इस तरह की काम-लीला सिर्फ़ बड़े-बड़े महन्त और गुसाईं ही नहीं करते, वरन् उनके मन्दिर के प्रायः सभी लोग इसी रङ्ग में रँगे होते हैं। वे भी प्रायः महन्त जी का 'प्रसाद' पाया करते हैं। और बहुत से स्थानों में तो भक्तिनों और चेलियों की इतनी भरमार रहती है कि वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति इच्छानुसार उपभोग कर सकता है। छोटे मन्दिरों की भी प्रायः यही दशा होती है। अभी पत्रों में आसाम के एक मन्दिर का हाल छपा था, जिसके पुजारी के लड़के ने एक छः-सात वर्ष की मारवाड़ी बालिका के साथ बलात्कार करने की चेष्टा की। इसके फल से लड़की को कष्ट हुआ और उसे सुज़ाक़ हो गया। उस नरपिशाच पर मुक़दमा चलाया गया, और उसे दो साल की क़ैद और २ सौ रु० जुर्माने की सज़ा दी गई। कलकत्ते के गोविन्द-भवन का नाम तो इस तरह की लीलाओं के लिए देश भर में प्रसिद्ध हो गया है और लोग उसका उदाहरण देने लगे हैं। इधर-उधर घूमने वाले साधू भी प्रायः दुराचारी होते है और मौक़ा पड़ने पर किसी भी स्त्री को ख़राब कर डालते हैं। ये लोग सन्तानहीन स्त्रियों को प्रायः बहका लेते हैं और उनका सतीत्व नष्ट कर देते हैं।

साधुओं के और भी अनेक गुण बतलाए गए हैं, पर जो कुछ ऊपर वर्णन किया गया है, उसे देखते हुए उनका ज़िक्र करना ही व्यर्थ है। जो सत्यवादिता और शान्ति-प्रियता आदि उनके प्रधान भूषण माने जाते थे, उनका अब उनमे लेश भी नहीं है। बड़े-बड़े महन्त लोग तो प्रायः ज़मींदारी और लेन-देन के मुक़दमों में लगे रहते हैं और उनमे सफलता प्राप्त करने के लिए रिश्वत देना, झूठी गवाही दिलाना, झूठा इलज़ाम लगाना आदि तमाम काम करते हैं। उन लोगों के यहाँ ज़मींदारों की तरह मुख्तार, कारिन्दे आदि कर्मचारी रहते हैं और किसानों पर उसी तरह के ज़ुल्म किए जाते है जैसे और सब ज़मींदार करते हैं। आपस की लड़ाई भी इन लोगों मे कम नहीं होती। प्राचीन समय में कुम्भ के अवसर पर पहले स्नान करने के लिए ये लोग इतना लड़ते थे कि सैकड़ों ख़ून हो जाते थे। शायद उन्हीं दिनों अखाड़ों की सृष्टि हुई थी और साधू लोग हाथी-घोड़े और हथियारों का उपयोग करने लगे थे। अङ्गरेज़ी राज्य के क़ायम हो जाने पर भी बहुत दिनों तक ये झगड़े चलते रहे। अब कुछ वर्षों से प्रत्येक अखाड़े का नम्बर नियत कर दिया गया है और स्नान के लिए नियम बना दिए हैं। फिर भी साधू लोग आपस मे सर फोड़ने न लग जायँ, इसके लिए पुलिस और सरकारी अफ़सरों का बड़ा सख़्त इन्तज़ाम रहता है।

ये धर्मजीवी लोग समाज और देश के हित की दृष्टि से बड़े हानिकारक हैं। इनके कारण आर्थिक हानि तो है ही, उसके साथ ही ये समाज में चरित्र सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न करते हैं। ये लोगों में आलस्य का भाव उत्पन्न करते हैं, जिससे कितने ही लोग काम-धन्धा करना छोड़ कर भीख से पेट भरना ही उत्तम समझ लेते है। इनके कारण नशाख़ोरी की आदत फैलती है। शहरों और देहातों में प्रायः साधुओं की धूनी गँजेड़ियों और सुलफ़चियों का अड्डा होती है। वहीं पर नए लोगों को भी इस दुर्व्यसन में फँसाया जाता है। आज से नहीं, सैकड़ों वर्षों से ये देश की इसी तरह से हानि करते आए हैं। कबीर साहब ने, जो अब से क़रीब चार सौ वर्ष पूर्व हुए हैं, इन साधुओं के बारे में जो कुछ लिखा है, उससे मालूम होता है कि उस समय भी इनकी रीति-नीति प्रायः अब के समान ही थी। कबीर के 'रैमिनि' नामक ग्रन्थ में एक स्थान पर लिखा है :—

"हमने ऐसा योगी कभी कहीं पर आज तक नहीं देखा। ये लोग अपने धर्म का पालन तो करते नहीं, केवल इधर-उधर वृथा चक्कर लगाया करते हैं। कहने को तो ये लोग शिव-भक्त और प्रधान गुरु है, पर हठ-भूमि इनके योग का स्थान है और माया-भाण्ड इनका देवता है। क्या कभी दत्तात्रेय ने लोगों के घरों को नष्ट किया था? क्या शुकदेव ने सशस्त्र सैन्य एकत्र की थी? क्या नारद मुनि ने कभी बन्दूक चलाई थी? क्या

व्यासदेव ने कभी रणसिङ्गा बजाया था ? जो धनुर्धारी हैं वे किस प्रकार अतिथि हो सकते हैं ? जिनके पास लोभ है, वे किस प्रकार साधू कहला सकते है ? कैसी लज्जा की बात है ! ये लोग स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं, घोड़े-ऊँट आदि रखते हैं, अनेक गाँवों के मालिक बने बैठे हैं और धनी कहलाते हैं। पास में यदि दावात रहेगी तो स्याही से वस्त्र अवश्य काला होगा।"

स्वामी दयानन्द ने भी इनके विषय में ऐसी ही सम्मति 'सत्यार्थ-प्रकाश' में कई स्थानों पर प्रकट की है और इन लोगों को देश तथा समाज के लिए निरर्थक बतलाया है। एक जगह ब्रह्मचारी और संन्यासियों का ज़िक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :—

"कितने ही साधू नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठमूठ जटा बढ़ा कर सिद्धाई करते है और जप-पुरश्चरणादि में फँसे रहते हैं। विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हेतु से ब्रह्मचारी नाम होता है, उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। वैसे ही संन्यासी विद्याहीन दण्ड-कमण्डल ले भिक्षा माँगते करते फिरते हैं। वे वेद-मार्ग की कुछ भी उन्नति नही करते छोटी अवस्था मे संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याभ्यास को छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी इधर-उधर, जल, स्थल, पाषाणादि मूर्तियों का दर्शन-पूजन करते-फिरते, विद्या जान कर भी मौन हो रहते, एकान्त देश में यथेष्ट खा-पीकर सोते पड़े रहते हैं और ईर्षा-द्वेष में फँस कर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते हैं। वे कषाय वस्त्र और दण्ड ग्रहण मात्र से अपने को कृतकृत्य समझने और सर्वोत्कृष्ट जान कर उत्तम काम नही करते हैं।"

शोक का विषय है कि जिन साधु-महन्तों आदि का चरित्र इस तरह भ्रष्ट हो गया है और जो नैतिक दृष्टि से साधारण व्यक्ति की अपेक्षा भी पतित हो चुके हैं, उन्हीं को हिन्दू लोग अपना गुरु मानते हैं, उनसे मन्त्र-दीक्षा लेते हैं, उनके पास अपनी स्त्रियों और कन्याओं को भी निस्सङ्कोच भाव से धर्मोपदेश श्रवण करने को भेज देते हैं। पर वे लोग आँखें खोल कर यह नहीं देखते कि उन गुरुओं का चरित्र कैसा हीन और जघन्य है और वे आदर-सम्मान तो दूर, पास बैठाने योग्य भी नहीं रहे हैं। जिस समाज के गुरु इस तरह के गर्हित काम करने वाले हों, उसका अधःपतन क्यों नहीं होगा ? गुरु की चर्चा करते हुए 'वेदान्तसार' नामक ग्रन्थ के लेखक ने बतलाया है :—

"सच्चा गुरु वह व्यक्ति है जो स्वभाव से ही समस्त सत्कर्मों को करता हो ; जिसने ज्ञान की तलवार से पाप-रूपी वृक्ष की सब शाखाओं और जड़ों को काट डाला हो और विवेक के प्रकाश द्वारा उस घोर तिमिर को नष्ट कर दिया हो, जिसमें पाप को आश्रय मिलता है ; जो आत्म-सम्मान और स्वतन्त्रता की रक्षा करता हुआ सांसारिक व्यवहार करता हो ; जो अपने तमाम शिष्यों के लिए पुत्र-भाव रखता हो ; जो अपने बर्ताव में मित्र और शत्रु के बीच किसी प्रकार का भेदभाव न रखता हो और दोनों के प्रति समान रूप से कृपा-भाव प्रदर्शित करता हो ; जो सोने और चाँदी की तरफ़ उसी भाँति उदासीनता से देखता हो; जिस प्रकार कि लोहे के टुकड़ों और ठीकरों को देखा जाता है और सोने-चाँदी का वही मूल्य समझना हो जो इन वस्तुओं का समझा जाता है; और जिसको सबसे अधिक चिन्ता उस अज्ञानान्धकार को दूर करने की हो जिसमें मनुष्य जाति डूबी हुई है।"

आजकल के गुरु इस पवित्र कर्तव्य को किस तरह पूरा करते है, इसके सम्बन्ध में एक निष्पक्ष विदेशी और दो भारतीय विद्वानों की सम्मति देखिए :—

"पर इस उत्तम श्रेणी के गुरु निश्चय ही बहुत कम देखने में आते हैं। गुरुओं का प्रभाव भी अधिक नहीं होता, क्योंकि वे अपने शिष्यों के पास साल में एक बार चक्कर लगाते हुए पहुँचते हैं। सब बातों पर विचार करने से यही जान पड़ता है कि भारतवर्ष में 'सच्चे गुरु' का प्राप्त कर सकना बड़ा कठिन है। अधिकांश गुरु का पेशा करने वाले ब्राह्मण, जो बालकों को मन्त्र-दीक्षा और धार्मिक विषयों में सम्मति देते है, उनके कल्याण का बहुत कम ख़्याल रखते हैं। इसके विपरीत अपने शिष्यों की अज्ञानता से लाभ उठा कर वे अपना उल्लू सीधा करते हैं और चरित्र की निगाह से भी वे कुछ श्रेष्ठ नहीं होते। श्री० गोविन्ददास ने लिखा है—"पौराणिक उपदेशक, अनगिनती सम्प्रदायों के साधू तथा वैरागी इत्यादि प्रायः बड़े नीच प्रकृति के और

उन्नति-विरोधी व्यक्ति होते हैं। वे जन-समूह की भावनाओं और अन्धविश्वासों के अनुकूल बातें करके लोगों को ठगा करते हैं।" एक दूसरे हिन्दू लेखक का मत है—"गुरु और पुजारी दोनों अज्ञान और अहङ्कार में एक-दूसरे से चढ़ा-ऊपरी करते रहते हैं। ये दोनों ही विषय-लोलुप, सिद्धान्त-शून्य होते हैं और ऐसा कोई दुर्गुण नहीं, जो उनमें न पाया जाता हो।"*

पुजारियों के सम्बन्ध में उपरोक्त लेखक का कथन इससे भी अधिक कटु है। वह लिखता है :—

"सारांश यही है कि ब्राह्मण पुजारी भारतवर्ष मे बहुत ही बदनाम हैं। मुझे स्मरण नहीं कि इन लोगों के सम्बन्ध में स्वयं उनको छोड़ कर मैंने और किसी के मुँह से एक भी भली बात सुनी हो। बनारस में उनका ज़िक्र बड़े बुरे शब्दों में किया जाता है। उस शहर के भारतीय सज्जनों ने मुझसे कहा था कि कोई-कोई मन्दिर तो पूरे वेश्यालय हैं। ये पुजारी बेईमान और भ्रष्टचरित्र ही नहीं होते, वरन् प्रायः वे हिन्दू स्त्रियों के साथ, जो उनमें पूरा विश्वास रखती हैं, छल-कपट का व्यवहार और विश्वासघात करते हैं।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय धर्मजीवियों की शक्ति और प्रभाव साधारण नहीं है और उनका सङ्गठन भी काफ़ी मज़बूत है। अनेक मन्दिरों और जायदादों पर उनका अधिकार सैकड़ों वर्षों से चला आया है और कितनी ही जायदादों को उन्होंने हाल में ख़रीदा है। हिन्दू-समाज पर उनका जो असीम प्रभाव है, उसमे कमी पड़ने पर भी अभी वह इतना अधिक है कि यदि उसे हटाने की कोई विशेष चेष्टा न की जाय तो वह पचासों वर्षों में पूरी तरह नष्ट नहीं हो सकता। ऐसी दशा में प्रश्न होता है कि आख़िर यह समस्या किस प्रकार हल की जाय ?

इसके उत्तर में हम कहेंगे कि इन लोगों के सुधार की एकमात्र ज़िम्मेदारी हिन्दू नवयुवकों और नवयुवतियों पर है। पुराने विचारों के और बड़े-बूढ़े लोग तो उनको मस्तक झुकाते-झुकाते इतना दब गए हैं कि उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस ही नहीं कर सकते। वे उनको 'धर्म की गाय' समझते हैं और उनको किसी भी हालत में दुःख पहुँचाना घोर पाप मानते हैं। यहाँ तक कि जब ये लोग स्पष्ट जान जाते हैं कि अमुक साधू दुराचारी, धूर्त अथवा बदमाश है तो भी वे उसके विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहते। कितने ही अवसरों पर तो ये लोग चोरी-बदमाशी करते हुए पकड़े जाने वाले व्यक्तियों का पक्ष इसी कारण ग्रहण कर लेते हैं कि वे गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए अथवा साधू के वेश में होते हैं। ऐसे दास-मनोवृत्ति वालों से इस सम्बन्ध में किसी तरह की आशा करना निरर्थक है।

पर जिन लोगों के हृदय में देश और समाज के कल्याण की भावना जाग्रत है और जो समझते हैं कि धर्म के नाम पर इस प्रकार ठगी और अनाचार को चलने देना सर्वसाधारण के हित की दृष्टि से घोर हानिकारक है, उनका कर्तव्य है कि जिस प्रकार वे समाज की जड़ को खोखला करने वाली अन्य कुरीतियों और रूढ़ियों के अन्त करने की चेष्टा करते हैं, उसी प्रकार इन धर्मजीवियों की समस्या को हल करने के लिए भी उद्योग करें। यद्यपि भारतवासियों की स्वभावगत प्राचीनप्रियता और परिवर्तनशीलता के अभाव को देखते हुए यह आशा करना कठिन है कि यह संस्था शीघ्र ही जड़-मूल से उठ जायगी ; पर उद्योग करने से इसका सुधार हो सकना असम्भव नहीं है। यदि इस दल का सुधार हो जाय और यह देश की आवश्यकताओं का ध्यान रख कर काम करना आरम्भ करे, तो निश्चय ही यह समाज का एक लाभदायक और महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन सकता है, जैसा कि शायद यह किसी समय था। ये लोग एक दृष्टि से स्वयंसेवक-दल के समान हैं और यदि चेष्टा करें तो इस कार्य को वर्तमान सेवा-समितियों से कहीं अच्छी तरह कर सकते हैं। स्वयंसेवकों को फिर भी घर का बहुत सा बन्धन होता है और कितनों ही को आर्थिक चिन्ताएँ भी रहती हैं, पर ये फक्कड़ लोग इन सब झंझटों से मुक्त होते हैं। उनको न घर-बार की चिन्ता होती है, न जोरू-बच्चों की फ़िक्र। उनके खान-पीने का प्रबन्ध अब भी समाज ने कर रक्खा है। फिर जब वे समाज को हानि पहुँचाने के बजाय उसके सच्चे सेवक बन जायँगे, तब तो यह प्रश्न बिलकुल ही न रहेगा। इतना ही नहीं, ये लोग स्वराज्य-प्राप्त भारत की सेना का कार्य भी कर सकते हैं ; और

* 'India and its Faiths'—by James Bissett Pratt, Ph. D.

जिस सेना-विभाग के लिए इस समय भारतवर्ष को अपनी आय का आधा अंश ख़र्च कर देना पड़ता है, वह इनकी सहायता से नाममात्र के ख़र्च में चल सकता है। शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि के विषय में ये जनता की बहुत-कुछ सेवा कर सकते हैं। इनके पास जो जायदादें हैं या इनको भेंट-पूजा आदि से जो लाखों रुपए की आमदनी होती है, उसका उपयोग यदि ये इन मार्गों में करें और स्वयम् उनके सञ्चालन में योग दें तो सर्वसाधारण का बहुत-कुछ उपकार हो सकता है।

पर इन लोगों की स्वार्थमय प्रवृत्ति और हठधर्मी को देख कर इस प्रकार का शुभ परिवर्तन शीघ्र ही हो सकने की आशा नहीं होती। ये लोग तीर्थों और धर्म-स्थानों के साथ लगी हुई जायदादों तथा भेंट-पूजा आदि से मिलने वाले धन को अपनी बपौती समझते हैं और उनका ख़्याल है कि वे उसका उपयोग चाहे जिस प्रकार कर सकते हैं। हिन्दू नवयुवकों का कर्तव्य है कि वे इन लोगों के इस ख़्याल को दूर कर दें। कुछ समय पूर्व सिक्खों के गुरुद्वारों की भी ठीक हिन्दुओं के मन्दिरों और मठों की सी दशा थी। उनके महन्त उनकी सम्पत्ति को निजी जायदाद मानते थे और उसका मनमाना उपयोग करते थे। अकालियों ने इस दशा को बदलने का बीड़ा उठाया और यद्यपि उनको जलते हुए तेल में अपनी देह और प्राणों को उत्सर्ग तक करना तथा लाठियों से सर फुड़वाना पड़ा, पर कुछ ही समय में बीसियों गुरुद्वारों का प्रबन्ध उन्होंने अपने हाथों में ले लिया, और शेष के इन्तज़ाम में भी बहुत-कुछ सुधार कर दिया। इसी तरह का काम हिन्दू नवयुवक भी कर सकते हैं, अगर वे इसके लिए कमर कस लें। आरम्भ में कष्टों का सामना करना अनिवार्य है, पर जहाँ उनको दस-बीस स्थानों में सफलता मिली, शेष लोग स्वयं ही परिस्थिति के सामने सर झुका देंगे। इसके लिए सबसे पहला कार्य जनमत को तैयार करना है। जब जनता इनमें फैली हुई ख़राबियों और इनसे होने वाली हानि को समझ जायगी, तथा इनका पक्ष-समर्थन करना बन्द कर देगी तो इनकी स्थिति अपने आप कमज़ोर हो जायगी। सच तो यह है कि इनके अस्तित्व और बुराइयों की ज़िम्मेवारी पूर्णतया हिन्दू-समाज पर ही है। वे लोग इनको खिला-पिला कर मस्त बनाते हैं, पर कभी आँख खोल कर यह नहीं देखते कि आख़िर ये क्या करते हैं और किस प्रकार अपना जीवन गुज़ारते हैं? यदि सर्वसाधारण इनके कार्यों और चरित्र पर ध्यान रखने लगें, तो इनका सुधार अनायास हो जाय।

परिवर्तन

[श्री० बलभद्रप्रसाद जी गुप्त, विशारद, "रसिक"]

सूख गए पाटल-प्रसून हा! उग आई है घास यहाँ।
कोकिल गए, काग पर सुख से करते हैं अब वास यहाँ॥
भ्रमर गए सब भाग, मयूरों ने भी त्यागा नाता है।
जाने क्यों मुझ हतभागिन से रूठा भाग्य-विधाता है??

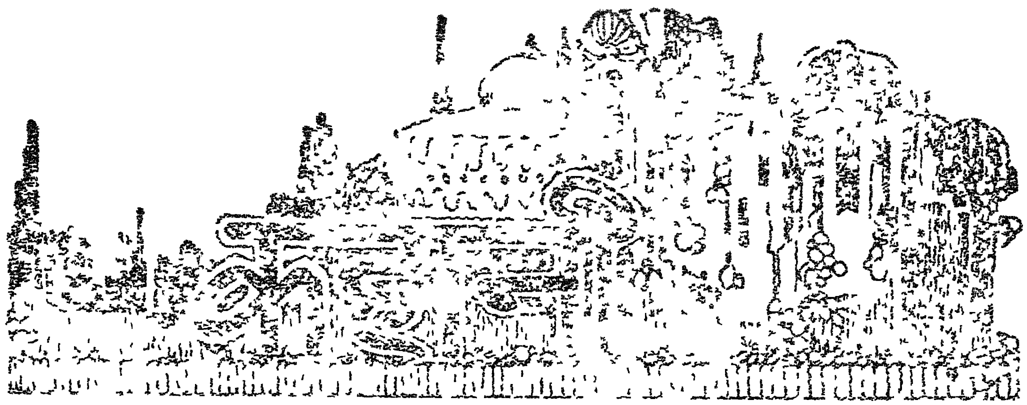
❀

आशा भी आकुल होकर बन गई निराशा की चेरी।
इस सूनी कुटिया की पर क्यों पथिक! लगाते तुम फेरी??
कैसे कहें हमारा मोहन हाय! गया है त्याग हमें?
कालकूट सा, विष सा लगता अब है जग-अनुराग हमें॥

बन्द कपाटें खोल झाड़-झङ्खाड़ यहाँ तुम पाओगे।
निज मञ्जुल मोती की लड़ियाँ व्यर्थ यहाँ बिखराओगे॥
पथिक! न पहले सा पाओगे पावन प्रेमासव-प्याला।
क्योंकि नहीं है प्रस्तुत मेरा मोहन मोहन-छवि-वाला॥

❀

स्वागत कर न सकूँगी मन दुख से सन्तप्त हमारा है।
सुख पावे वह कैसे जिससे रूठा उसका प्यारा है??
क्यों तुम चुप हो गए अरे मत निष्ठुर हो कुछ तो बोलो?
है मेरा अनुरोध मान लो व्यर्थ न यह साँकल खोलो॥



बदला

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

प्रतापगढ़ के ज़िले में एक छोटी सी ज़मींदारी थी। ज़मींदारी छोटी सी होने पर भी वहाँ का ताल्लुक़ेदार बहुत शक्तिशाली समझा जाता था। उसका कारण यह नहीं था कि वह प्रजा-वत्सल था, अथवा उसके पास कोई वास्तविक शक्ति थी। कारण यह था कि वह बड़ा अत्याचारी, नृशंस तथा प्रजापीडक था। उसके गुण नहीं, उसका आतङ्क उसे शक्तिशाली बनाए हुए था। इस आतङ्क में उसे ज़िले के अधिकारियों का सहयोग भी प्राप्त था। इसी कारण उसकी तूती भी ख़ूब बोलती थी। उसकी प्रजा चाहे उससे घृणा करती थी, परन्तु फिर भी उसके जन्म-दिन के उत्सव में किसी का यह साहस न होता था कि अपने को अनुपस्थित कर सके। इधर-उधर उसके प्रति विरोध के भाव प्रदर्शित किए जाते थे, परन्तु किसी का यह साहस न होता था कि खुल्लम-खुल्ला उसका विरोध कर सके। इस प्रकार कई वर्ष तक अत्याचार का जीवन व्यतीत करके एक दिन वह इस संसार से कूच कर गया।

राजा साहब इस संसार से कूच कर गए, यह सुन कर प्रजा को कुछ सन्तोष हुआ। सोचा, शायद कुमार इतने अत्याचारी न हों। कुमार वीरसिंह राजकुमार-कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, स्वभाव से ही उनमें कुछ प्रजा-वत्सलता थी। बाल्यकाल से ही प्रजा ने उनमें वे गुण देखे, जिनके कारण एक राजा अपनी प्रजा को परम सुखी तथा सन्तुष्ट बना सकता था। राजा की मृत्यु का समाचार पाकर जब राजकुमार घर आए, तो लोगों ने हर्षध्वनि तथा जयजयकार से उनका स्वागत किया। वे यह भूल गए थे कि अभी राज्य द्वारा मृत राजा के लिए शोक मनाया जा रहा था।

२

मोग़लसराय से लखनऊ जाने वाली रेल की लाइन उस समय ओ० आर० आर० कहलाती थी। उसी के किनारे एक छोटा-सा स्टेशन राजा साहब की ज़मींदारी मे था। उस स्टेशन से कुछ दूर हट कर एक छोटा-सा ग्राम था, जिसे महाराजपुर कहते हैं। ग्राम के बाहर एक छोटा परन्तु भली-भाँति लगाया हुआ एक बाग़ था। उस बाग़ के बीच में एक मकान बना हुआ था। बाग को सींचने के लिए दो व्यक्ति कुँए से बैलों द्वारा पानी निकाल रहे थे। एक व्यक्ति ने ज़रा ज़ोर से गाना शुरू किया—

'राजकुमरवा चढ़े सिंहासन, परजा हरष मनाई हो!'

वह व्यक्ति अभी गा ही रहा था कि मकान में से एक युवती निकली। उसका मुख क्रोध से लाल हो रहा था।

"बन्द कर दे यह गाना!"—उसने उस व्यक्ति को आदेश दिया।

वह व्यक्ति चुप हो गया। और साथ ही सामने वाले मार्ग पर घोड़े पर चढ़ा हुआ एक युवक भी घोड़े की लगाम कस कर खड़ा हो गया। उसने एक दृष्टि युवती पर डाली, फिर गाने वाले व्यक्ति की ओर देखा। फिर अपने घोड़े से उतर कर और घोड़े को एक पेड़ की छाया में खड़ा करके वह कुएँ की ओर को बढ़ा। युवती ने उसकी ओर नहीं देखा था। उसने फिर गाने वाले व्यक्ति को सम्बोधन करके कहा तुम्हें याद नहीं है, मैंने कहा था कि यहाँ कोई राजा या राजघराने के किसी व्यक्ति का नाम न ले।

"लेकिन रानी, राजकुमार का अब तिलक होने वाला है। वह राजा हो जायँगे।"

"इससे क्या हुआ? सर्प के बच्चे बड़े होकर सर्प ही होते हैं।"

"शायद सब नहीं!"—पीछे से युवक ने कहा, जो अब युवती के बिलकुल पास आ चुका था!

युवती चौंक पड़ी।

उसे यह आशा भी नहीं थी कि कोई वहाँ आ जाएगा। उसने अपनी साड़ी शीघ्रता से ठीक की और बोली—क्षमा करें!

"क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए!"

"किस बात की?"

"इस बाग़ में बिना आज्ञा चले आने के लिए!"

"परन्तु यहाँ सबको आने की आज्ञा है। वहाँ सामने उस कोने पर धर्मशाला है और उसके पास ही प्याऊ है। यहाँ सब कोई आते-जाते हैं।"

"बड़ी अच्छी बात है। परन्तु यह साँप के बच्चों की × × ×।"

"उनसे आप क्या लीजिएगा, वे अपनी बातें हैं।"

"परन्तु मैंने कुछ सुन ली थीं, इसीलिए मैंने कहा था कि शायद सब नहीं।"

"यह कैसे हो सकता है?"—युवती ने पूछा।

"यदि सर्प के बच्चों को विष-रहित कर दिया जाय?"

"यह भी हो सकता है?"

"क्यों नहीं?"

"कैसे?"

"कोई चतुर सपेरा हो, तब।"

युवती ने हँस दिया, शायद उसने युवक की बात मान ली!

"घोड़े पर हैं?"—युवती ने पूछा।

"हाँ!"

"कितनी दूर जाना है?"

"बहुत दूर! इस राज्य की राजधानी तक।"

"राजधानी तक?"—युवती के भाव बदल गए।

"हाँ, राजधानी तक! देखता हूँ, राजा और राजकुमार के साथ राजधानी के नाम से भी तुम्हें घृणा है!"

"क्या आपका सम्बन्ध राजघराने से है?"

"बिलकुल नहीं। मैं तो एक विदेशी हूँ। राजदरबार देखने के लिए ही वहाँ जा रहा हूँ। क्या तुम राजतिलक में नहीं चलोगी?"

"इन बातों को पूछ कर आप क्या करेंगे! चलिए कुछ देर बैठ कर पानी पी लीजिए।"

"बहुत अच्छा, धन्यवाद!"

दोनों चुपचाप मकान के बरामदे की ओर चल दिए।

३

पानी पी लेने के बाद युवक चारपाई पर बैठ कर बोला—तो तुम कुमार के राज्याभिषेक में नहीं जाओगी?

"नहीं"—युवती ने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया।

"क्यों?"

"बहुत बड़ा कारण है।"

"बताओगी नहीं?"

"अपना दुःख है, दूसरों को बताने से लाभ क्या?"

"शायद दूसरा उस दुःख में भागी बन जाय?"

युवती हँस पड़ी।

युवक ने भी हँस दिया।

"तो सुनोगे ही?"—युवती ने पूछा।

"यदि कोई आपत्ति न हो, तो।"

युवती का मुख गम्भीर हो गया। वह उठी और युवक को भी उठने का इशारा किया। युवक उठा और उसके पीछे हो लिया। उसने एक चबूतरे के पास

जाकर एक पत्थर की ओर इशारा करके युवक से पूछा—देखते हो ?

"हाँ !"

"यह मेरे पिता की समाधि है।"

इतना कहते ही युवती के नेत्रों में आँसू आ गए।

"क्या उनकी मृत्यु हो गई ?"

"वे मार डाले गए थे !"

"मार डाले गए थे ?"

युवती ने शिर 'हाँ' में हिला दिया।

"क्या राजा × × ×?"

"हाँ, राजा द्वारा। निर्दयता से, पशुता से मेरे निरपराध पिता का वध कर दिया गया था। कारण यही था कि मेरे पिता ने कुमार के अठारहवें जन्म-दिन के उत्सव का कर नहीं दिया था और उसका विरोध किया था। यदि कुछ था, तो यही उनका अपराध था। यही समाधि है, जो नित्यप्रति मेरे सामने उस भीषण कृत्य का चित्र खींच देती है, मेरी घृणा, मेरी बदले की भावना को जाग्रत कर देती है !"

"बदला लोगी ?"

"अवश्य। यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

"किससे ?"

"नए राजा से।"

"किस प्रकार ?"

"उसकी हत्या करके। रक्त के बदले रक्त।"

"परन्तु नए राजा का इसमें क्या दोष है ?"

"पिता के धन में, पिता की भूमि में, पिता के अधिकारों में यदि राजकुमार का अधिकार है तो पिता के दोषों में, पिता के अपराधों में, पिता के पापों में भी उसका भाग क्यों न हो ? पिता के कृत्य का बदला पुत्र से ही लेना होगा।"

युवक कुछ देर तक युवती के मुख की ओर देखता रहा। फिर बोला—क्या तुमने कभी कुमार को देखा है ?

"नहीं।"

"तो फिर कैसे बदला लोगी ?"

"जब बदला लूँगी तब उसका उपाय भी कर लूँगी।"

"मेरे साथ क्यों नहीं चलतीं ? दरबार के समय कुमार को देख लेना।"

"अभी नहीं।"

युवक विदा हुआ। चलते समय युवती उसे घोड़े तक पहुँचाने आई।

"न जाने क्यों, मैंने अपने हृदय के सारे उद्गार आपके सामने प्रगट कर दिए हैं।"

"शायद मैं कुछ सहायता कर सकूँ !"

"कभी फिर मिलेंगे ?"

"अवश्य !"

युवक चला गया। युवती कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही, और फिर आप ही आप प्रसन्न होती हुई घर की ओर चल दी।

४

कुछ दिनों के बाद युवती के पास कुँवर साहब का एक सन्देश आया। कुँवर, जो अब राजा कहलाने लगे थे, युवती के साथ विवाह करना चाहते थे। युवती ने वह पत्र, जिसमें उक्त सन्देश लिखा था एक ओर फाड़ कर फेंक दिया और उस पत्र के लाने वाले को ग्राम से बाहर निकलवा दिया। उस घटना पर युवती बार-बार अपना क्रोध प्रगट कर रही थी। कुछ व्यक्तियों ने उसे समझाया भी कि वह पागल हो गई है, जो राजा के सन्देश को इस प्रकार ठुकरा रही है। परन्तु उसने किसी की बात न सुनी। उस दिन उसे समाचार मिला कि पास के ग्राम में राजा के अधिकारियों ने एक किसान को लगान न दे सकने पर पीटा है और पुलिस द्वारा गिरफ़्तार करा लिया है। युवती पृथ्वी पर पैर पटक कर कहने लगी—यह अत्याचारी राजा है, जो मेरे साथ विवाह करना चाहता है। कितनी धृष्टता है !

वह यही विचार कर रही थी कि उसका परिचित युवक आ गया। युवती की आकृति को देख कर वह बोला—क्यों, आज यह क्या बात है ?

"वही राजा !"

"राजा ने क्या कर दिया !"

"क्या कर दिया ? कर तो नहीं दिया, करना चाहता था।"

"क्या ?"

"विवाह !"

"विवाह, तुमसे ?"

"हाँ, देखो न इस धृष्टता को !"

"धृष्टता इसमें कैसी, प्रेम है !"

"प्रेम ?" युवती हँस कर बोली "एक अत्याचारी के हृदय में प्रेम ?"

"शायद तुम नहीं समझती हो। तुम्हारे विचार में राजा जितना अत्याचार करता है, शायद वास्तव में उतना वह न करता हो !"

"तुम्हें क्या पता ?"

"मैंने राजा को देखा है।"

"हाँ ?"

"हाँ, और मैं समझता हूँ कि राजा अत्याचारी नहीं है। वह अपनी प्रजा को समझना चाहता है, उसके साथ न्याय, प्रेम तथा दया का व्यवहार करना चाहता है !"

"ओह सच ? और इसी प्रकार का व्यवहार करने के लिए मेरे साथ विवाह करना चाहता है।"

"तुम क्या समझती हो ?"

"वह इस प्रकार बदला लेना चाहता है।"

"बदला नहीं, वह तुम्हें वास्तव में प्यार करता है। तुम्हारी पूजा करता है।"

"बिना देखे ?"

"शायद इस कारण कि तुमने दरबार में न जाने का साहस दिखाया था ! यदि तुम उसे एक बार देख पाओ, उसके हृदय को समझ पाओ !"

"तो उससे अपने पिता का और अपने अपमान का बदला ले लूँ।"

"वह इतना बुरा नहीं है।"

"तुम क्या समझ सकते हो। उनसे पूछो, जो उसके लिए तबाह हो रहे हैं। उनसे पूछो, जो निरपराध कोड़ों से पीटे जाकर जेल में भेजे जा रहे हैं और जिनके घर वाले दाने-दाने को तरस रहे हैं।"

"मुझे दिखाओगी यह सब कुछ ?"

"हाँ !"

युवती के साथ युवक ने सब कुछ देखा। वह सिहर उठा।

"मैं नहीं समझता था कि राजा के अधिकारी इस प्रकार के अत्याचार कर सकते हैं।"—वह बोला।

"यह कहो, राजा कर सकता है।"

"शायद राजा का इसमें दोष नहीं है। उसे इन सब बातों का पता भी न हो। उसे अभी तक कोई इस प्रकार के दृश्य दिखाने वाला ही न मिला हो।"

"तुम ऐसा समझते हो ?"

"मैं तो यही समझता हूँ। मैं किसी प्रकार राजा के पास ये सब बातें पहुँचाऊँगा।"

"तुम पहुँचा सकते हो ?"

"हाँ !"

"तो तुम्हें राजा के महल में जाने की आज्ञा भी होगी ?"

"हाँ।"

"और तुम यह भी जानते होगे कि राजा कहाँ सोता है।"

"सब कुछ !"

युवती चुप हो गई !

"क्यों पूछ रही थीं ये सब प्रश्न ?"—युवक ने पूछा।

"यों ही।"

"यों ही नहीं, कोई कारण है।"

"कभी समय आने पर फिर बताऊँगी।"

५

वे अब घनिष्ट मित्र बन गए थे। युवक बहुधा बाग़ में आकर युवती से मिला करता था। इसी प्रकार कई मास व्यतीत हो गए। एक दिन दोनों बाग़ के उस किनारे पर बैठे थे, जहाँ एक तालाब बना हुआ था। सन्ध्या का समय था। दोनों पश्चिम में डूबते हुए सूर्य की छाया तालाब में देख रहे थे। ध्यान-मग्न युवती की ओर देख कर युवक बोला—सूर्य उदय होता है, फिर अस्त भी हो जाता है। और दूसरे दिन प्रातःकाल फिर उदय होता है। परन्तु तुम्हारा जीवन एक-सा चला जा रहा है। क्या इसमें उदय अस्त के लिए कोई स्थान नहीं है ?"

"क्यों नहीं ? परन्तु × × ×"

"परन्तु ?"

"ओ, कुछ नहीं।"

"कुछ है, बहुत कुछ है ; उसे छिपाओ मत !"

"मत पूछो !"

"जानती हो कि मैं तुम्हें × × × ?"

"जानती हूँ !"

"फिर 'हाँ' कहोगी ?"

"कहती, परन्तु × × ×।"

"ओह, इस 'परन्तु' को हमारे बीच में न आने दो !"

"मेरी एक प्रतिज्ञा है।"

"क्या ?"

"जब तक राजा से बदला न ले लूँगी, तब तक विवाह न करूँगी।"

"यह तो कुछ भी नहीं !"—कह कर युवक उछल पड़ा।

युवती उसकी ओर देखने लगी।

"तुम राजा की मृत्यु चाहती हो ?"—युवक ने पूछा।

"हाँ।"

"और जो उसमें तुम्हें सहायता देकर सफल बनावे, उसीके साथ तुम विवाह कर लोगी ?"

"हाँ।"

"मैं तैयार हूँ !"

"क्या ?"

"हाँ, मैं तैयार हूँ। मैं राजा की हत्या करूँगा ?"

"तुम × × × तुम यह क्या कह रहे हो ?"

"यह कोई नई बात नहीं है। बहुत दिनों से मेरा भी यही विचार हो रहा था कि राजा की हत्या होनी चाहिए। जो कुछ अत्याचार प्रजा पर हो रहा है, वह राजा के नाम पर। जब तक राजा है, तब तक वह चलेगा। जिस दिन राजा नहीं रहेगा, जिस दिन प्रजा के हाथ में सारी शक्ति आ जायगी, जिस दिन राज्य के कर्मचारी प्रजा के दास होंगे, उस दिन प्रजा के सारे कष्ट मिट जायँगे।"

"तो तुम मेरा साथ देने के लिए तैयार हो ?"—युवती ने प्रसन्न होकर पूछा।

"अन्त समय तक।"

"क्या सहायता दे सकते हो ?"

"जो कुछ कहो। राजा की हत्या मैं करूँ, यह तुम्हे पसन्द होगा ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यह मैं स्वयं करूँगी। बदला मेरा है, मैं ही उसे लूँगी।"

"फिर मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तुमने एक बार कहा था कि तुम्हारा प्रवेश महलों में है !"

"हाँ।"

"मुझे कल रात को राजा के शयन-भवन में पहुँचा सकते हो ?"

"बिना किसी रुकावट के।"

"कोई और न जानने पावे !"

"कोई नहीं !"

युवती ने हाथ बढ़ाया, युवक ने अपना हाथ उस पर मारा।

"उसके बाद ?"—युवक ने अभिलाषा भरी दृष्टि से युवती की ओर देख कर पूछा।

"उसके बाद मैं तुम्हारी हो जाऊँगी !"

६

युवती राजमहल के पास पहुँची। युवक ने उसे भीतर जाने का मार्ग पहले ही बता दिया था। वह उधर चली, एक द्वार मिला, दूसरा द्वार मिला। इस प्रकार कई द्वार मिले, परन्तु उसे किसी ने रोका नहीं। कोई रोकने वाला ही उसे दिखाई न दिया। वह भीतर पहुँच गई, जहाँ राजा शयन करते थे। वह वहाँ निरापद पहुँच गई, इसका श्रेय वह उस युवक को ही दे रही थी। न जाने उसने क्या किया था कि वह इतनी सरलता से और इतना शीघ्र राजा के पलँग के पास पहुँच गई।

कमरे में अँधेरा था। चारों ओर निस्तब्धता थी, राजा के श्वास लेने में भी अधिक शब्द नहीं हो रहा था। वह पलँग को धीरे से टटोलते हुए राजा के शिर की ओर चली। एक हाथ में उसने अपना छुरा ले लिया। इतने ही में कमरे में एक साथ प्रकाश हो गया। युवती का हाथ काँपने लगा। राजा उठे। उठ कर खड़े हो गए। उनका मुख युवती की ओर हुआ। युवती के मुख से एक चीख़ निकल गई।

"तुम !"—उसने सँभल कर युवक से पूछा।

"मैं राजा हूँ।"

"तुम राजा ? मैं विश्वास नहीं कर सकती।"

"अब तो करना ही पड़ेगा।"

"ओफ़, यह सब क्या हो गया!"—युवती ने निराशा से कहा।

"अब ठीक है। अपना छुरा सँभालो। यह तुम्हारा अपराधी खड़ा है। बदला ले लो!"

युवती ने कुछ देर तक युवक की ओर देखा, फिर छुरे की ओर देखा, फिर छुरा उठा कर हाथ में ले लिया।

"देख क्या रही हो? करो अपना काम!"—युवक ने कहा। युवती ने फिर युवक के नेत्रों की ओर देखा और छुरा एक ओर फेंक कर वह रोने लगी।

"क्यों रो रही हो?"

"मुझसे बदला न लिया गया। मैं तुम्हें नहीं मार सकती।"

"प्रेम?"

युवती ने स्वीकृति में शिर हिला दिया।

"तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी, घबराओ मत!"

"कैसे?"

"राजा को मैंने मार डाला है और वह भी तुम्हारे साथ रहने से जो प्रभाव पड़ा था उसके कारण!"

"राजा को तुम कैसे मार सकते थे?"

'यह पढ़ो!"—कह कर युवक ने एक काग़ज़ युवती की ओर कर दिया।

युवती ने उसे पढ़ा—

"मैं राज्य करने के लिए नहीं बनाया गया। राज्य चलाने के लिए जो अत्याचार आदि आवश्यक हैं, वे मुझसे नहीं हो सकते। मैं सारे राज्य को किसानों में विभाजित करके अपनी पत्नी के साथ किसी शान्त स्थान पर साधारण जीवन व्यतीत करने जा रहा हूँ।"

युवती की आकृति खिल गई। वह अपने प्रेमी के निकट आ गई और उसके वक्षःस्थल पर अपना शिर रख कर बोली—ओह, मेरे हृदय के राजा!

'अब राजा शब्द का प्रयोग मत करो, प्रिये, मैं इससे घृणा करने लगा हूँ।"—युवक ने कहा!

"अच्छा, मेरे हृदय के प्रेज़िडेण्ट!'—युवती ने हँस कर कहा। युवक भी इस पर ख़ूब हँसा। उनकी हँसी ऐसी थी कि उनके चले जाने पर भी वहाँ का वायुमण्डल उससे चिरकाल तक गूँजता रहा!

मनुहार

[श्री० मोहनलाल जी महतो "वियोगी"]

वह था कौन मुझे बतलाना?
हे विस्मृति! तू फिर से मेरी स्मृति की ज्योति जगाना।

यौवन की मधु-दोपहरी में
प्यार-सुरा का प्याला—
है सपने सा याद मुझे इन होठों तक ले जाना!

रजनी-गन्धा के सुमनों को
विदा दिया ऊषा ने,
दिन ने देख लिया छिप कर उनका छनभर मुस्काना।

चूम-चूम कम्पित अधरों से
मेरे नत-नयनों को,
सुला दिया था हाय! किसी ने बस इतना ही जाना।

सूनेपन ने मुझे जगाया
सब कुछ खो जाने पर,
उसे अभाव रूप में ही पाया, कुछ-कुछ पहचाना।

कौन सुखद कसकन-सा
वह था, कोई मुझे बता दे,
सिखलाया न स्वयम् ही सीखा जिसने नेह निभाना।
वह था कौन मुझे बतलाना?

ह्यूंगसांग की यात्रा की कुछ मनोरञ्जक बातें

[श्री० अन्तर्वेदी]

मि० बोलटिङ्ग नाम के एक अङ्गरेज़ लेखक ने, कुछ दिन हुए, एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने संसार के चार बड़े यात्रियों की यात्राओं की मनोरञ्जक बातें लिपिबद्ध की हैं। इन यात्रियों के नाम हैं, (१) ह्यूङ्गसाङ्ग, (२) स्यूलफ़, (३) इब्नबतूता और (४) दारतीमा किन लो बोना। इनमें ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का सम्बन्ध भारतवर्ष से है और उसकी कुछ बातें भी बड़ी ही मनोरञ्जक हैं। लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ के सात अध्यायों में ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का विशद वर्णन किया है और सब से अधिक महत्व भी इसी को प्रदान किया है।

यह चीनी यात्री सन् ६२६ से लेकर ६४५ तक अपने देश से बाहर रहा था। इसके कई महीने तो चीन से भारत तक आने में लगे थे और अवशिष्ट सारा समय उसने भारत के विभिन्न स्थानों की सैर करने में बिताया था। पामीर के रास्ते से, काशगर और ख़ुतन होता हुआ वह चीन को लौटा था, उसने चीनी भाषा में स्वयं अपनी यात्रा का हाल लिखा है। उसमें उसने तत्कालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अवस्था का विशद वर्णन किया है। ह्यूङ्गसाङ्ग ने यह लम्बी यात्रा बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा से की थी और यहाँ से बुद्ध की कई मूर्तियाँ और बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें अपने साथ ले गया था।

ह्यूङ्गसाङ्ग पैंसठ वर्ष की उमर तक जीता रहा और बौद्ध-धर्म सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। इसकी अनुवाद की हुई ७५ पुस्तकें मौजूद हैं।

ह्यूङ्गसाङ्ग का जन्म सन् ६०३ ईस्वी में हुआ था। यह एक चीनी पुरोहित का लड़का था। बाल्यावस्था से ही यह बड़ा होनहार और मेधावी था और बहुत छोटी उमर में ही इसके दिल में धार्मिक जिज्ञासा पैदा हो गई थी। बीस वर्ष की अवस्था में इसने अपने देश के बौद्ध मठों और मन्दिरों का परिदर्शन आरम्भ किया और वहाँ के अधिकारियों से बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क किया। यद्यपि उस समय चीन में बौद्ध-धर्म का प्रचार बढ़ रहा था, परन्तु धर्म के वास्तविक तत्वों को समझने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी और बहुत थोड़े से धर्म-ग्रन्थों का अनुवाद भी चीनी भाषा में हो पाया था। इसलिए कोई भी धर्माधिकारी ह्यूङ्गसाङ्ग की शङ्काओं का समाधान नहीं कर सका। बल्कि उत्तरोत्तर कुछ ऐसी उलझनें पैदा हो गईं, जिनका सुलझना कठिन था। फलतः ह्यूङ्गसाङ्ग ने भारतवर्ष में कुछ दिन रह कर बौद्ध-धर्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का इरादा किया। इसके सिवा अपने पूर्ववर्ती यात्रियों के लिखे हुए मनोरञ्जक यात्रा-विवरणों का भी उसके मन पर काफ़ी प्रभाव पड़ा।

उस समय क्यू सूवा चीन का सम्राट था। ह्यूङ्गसाङ्ग तथा उसके और कई साथियों ने उसके दरबार में उपस्थित होकर भारत की यात्रा करने के लिए आज्ञा और सहायता माँगी, परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। कारण यह था कि इससे पहले सम्राट को कई लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं, जिससे देश की अभ्यन्तरीन अवस्था बड़ी ही शोचनीय हो रही थी। साथ ही जन-संख्या भी कम हो रही थी और ऐसे लोग जो धर्म-चर्चा आदि के उद्देश्य से आजीवन अविवाहित रहना चाहते थे, गार्हस्थ्य जीवन बिताने के लिए बाध्य किए जाते थे। अस्तु, ह्यूङ्गसाङ्ग के अन्य साथी तो राजाज्ञा के कारण हताश होकर बैठ गए, परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपना विचार नहीं बदला। उस समय उसकी उम्र कुल चौबीस वर्ष की थी। हृदय में जवानी की उमङ्गें लहरा रही थीं। उसने राजाज्ञा की परवाह न करके अपने बल-बूते पर भारत की यात्रा करने का इरादा किया और एक दिन तैयारी करके चल पड़ा।

तोसन चीनी ह्यूङ्साङ्ग का सहयात्री था। उसने लिखा है कि उस समय चीन से भारत की ओर आने के लिए तीन रास्ते थे। एक रास्ता वह था, जिससे ह्यूङ्सांग आया था, दूसरा, जिससे लौटा था और तीसरा रास्ता लाबनार के झील के किनारे से था, जो तिब्बत होकर नैपाल के पास निकलता था। ह्यूङ्साङ्ग किसी ऐसे पथ से यात्रा करना चाहता था, जो अपेक्षाकृत निरापद हो और जिसमे लोग अक्सर आते-जाते हों। इसलिए वह लाङ्गजू की ओर चला, जो उन दिनों चीन के लानसू प्रान्त की राजधानी था। यहाँ तिब्बत तथा दूसरे सुदूरवर्त्ती देशों के व्यापारी एकत्र होते थे। ह्यूङ्साङ्ग ने उनसे मिल कर उनके साथ चलने की इच्छा प्रगट की और अपनी यात्रा का उद्देश्य भी उन्हें बताया। ह्यूङ्साङ्ग का साहस देख कर तथा उसकी भारत-यात्रा का उद्देश्य सुन कर व्यापारियों ने उस पर बड़ी श्रद्धा प्रगट की और अपने पास से पैसे ख़र्च करके उसके लिए यात्रा का सामान एकत्र कर दिया। परन्तु बाधाओं ने इतने पर भी उसका पिण्ड नहीं छोड़ा। लानसू प्रान्त का हाकिम एक ज़बरदस्त आदमी था, देश की राजनीतिक परिस्थिति के कारण उसने घोषणा कर रक्खी थी कि कोई आदमी प्रान्त से बाहर न जाय। ह्यूङ्साङ्ग ने अपनी भारत-यात्रा का महान उद्देश्य उसे बताया और प्रार्थना की कि उसे जाने दिया जाय, परन्तु उसने एक न सुनी। इसलिए मजबूर होकर ह्यूङ्साङ्ग ने चोरी से निकल जाने का प्रबन्ध किया और अपने दो चेलों के साथ रातों-रात शहर से निकल गया। वह रात को चलता और दिन निकलते ही किसी निर्जन स्थान में छिप जाता, इस तरह सौ मील की यात्रा पूरी करने पर उसका घोड़ा मर गया। और बेचारे के सामने एक नई समस्या उपस्थित हो गई। सामने एक क्षिप्रगामिनी नदी थी, जिसके तीव्र प्रवाह में कोई नाव भी नहीं ठहर सकती थी। उस पार लानसू प्रान्त का विशाल क़िला सिर उठाए खड़ा था। इस क़िले के चारों ओर गहरी खाई थी। खाई के उस पार आने-जाने वालों पर कड़ी नज़र रक्खी जाती थी। इस स्थान के कुछ आगे एक विशाल मरुस्थल है, जहाँ हरियाली का नाम भी नहीं। इसके आगे का देश तुर्कों के अधिकार में था, जो पश्चिमी देशों की कहानियों में 'ओगर' के नाम से विख्यात हैं। उन दिनों ये बड़े उत्पाती और डाकू समझे जाते थे।

रास्ते की इन मुसीबतों का ख़्याल करके ह्यूङ्साङ्ग कुछ हताश-सा हो गया। अगर एक ही कोई अड़चन होती तो कोई बात न थी, परन्तु यहाँ तो एक के पश्चात् एक अड़चनों का ताँता सा लगा हुआ दिखाई देता था। आगे बढने की हिम्मत न हुई। वह महीनों तक वहीं ठहरा रहा। इतने में एक दिन प्रान्त के प्रधान शासक का आज्ञापत्र भी उसे मिला। उसने उसे शीघ्र उपस्थित होने की ताकीद की थी और लिख दिया था कि बिना हमारी आज्ञा के एक कदम भी आगे न बढ़ना। ह्यूङ्साङ्ग यह आज्ञा सुन कर झुँझला उठा। वह रास्ते में आगे आने वाली विकट परिस्थितियों के सम्बन्ध मे विचार कर रहा था, उनके प्रतिकार का उपाय सोच रहा था, परन्तु उसने यात्रा स्थगित करने की बात स्वप्न में नहीं सोची थी। प्रान्त के हाकिम की आज्ञा ने उसे उत्तेजित कर दिया। उसने स्थानीय अधिकारी से मुलाक़ात की और स्पष्ट शब्दों मे कह दिया कि मैं अपना इरादा नहीं बदल सकता। वह अधिकारी उसका साहस और तेज देख कर दङ्ग रह गया। परन्तु वह राजाज्ञा का पालन करने को बाध्य था, इसलिए उसने इशारों मे ह्यूङ्साङ्ग को बता दिया कि अगर जाना है, तो शीघ्र चल दो; देर करने पर जाना कठिन हो जायगा। ह्यूङ्साङ्ग ने भी अब अधिक ठहरना उचित न समझा। उसने तुरन्त ही एक दूसरा घोड़ा ख़रीदा और यात्रा की तैयारी कर दी। परन्तु उसका एक चेला बीमार पड़ गया और दूसरा कमज़ोर था। ह्यूङ्साङ्ग ने दोनों को वापस लौट जाने की अनुमति दे दी और अकेला ही आगे बढ़ने को तैयार हो गया। परन्तु कहावत है कि विपत्ति अकेले नहीं आती। जब वह चलने को तैयार हुआ तो पथ-प्रदर्शक ही ग़ायब! ख़ैर, उसने इसकी भी परवा न की। सामान लाद कर घोड़े पर सवार हो गया। आगे चल कर संयोगवश एक जङ्गली आदमी से भेंट हो गई। बातचीत से मालूम हुआ कि वह इस प्रान्त के रास्तों का जानकार है। ह्यूङ्साङ्ग ने उसे अपने साथ चलने के लिए राज़ी कर लिया। उस जङ्गली आदमी ने उसे एक ऐसे व्यापारी से भेंट करा दी, जो ओगरों के देश में कई बार जा चुका था और उधर के

रास्तों का अच्छा जानकार था। यह व्यापारी एक बूढ़ा आदमी था। उसने रास्ते की कठिनाइयों का वर्णन करके ह्यूङ्गसाङ्ग को बताया कि यह काम कठिन है। पश्चिमी रास्ते बड़े विकट और दुर्गम हैं। कहीं बालू के मैदान, कहीं चौड़ी नदियाँ, कहीं ऊँचे पर्वत और कहीं घने जङ्गल हैं। यात्रियों के बड़े-बड़े गरोह भी रास्ता भूल जाते हैं, फिर तुम तो बिलकुल अकेले ही यात्रा करने को निकल पड़े हो। इसलिए तुम्हारा भला इसी में है कि इस विचार को छोड़ दो। घर लौट जाओ। क्यों वृथा अपनी ज़िन्दगी बर्बाद करोगे? मैं वृद्ध हूँ। युवक, मेरी बात मानो। आगे बढ़ने का इरादा छोड़ दो। ह्यूङ्गसाङ्ग ने बूढ़े को उत्तर दिया कि मैं जिस महान उद्देश्य को लेकर घर से चला हूँ, उसके सामने जीवन कोई चीज़ नहीं है। या तो मैं अपनी यात्रा सफल करके लौटूँगा या मर मिटूँगा। वृद्ध व्यापारी उसकी दृढ़ता और साहस देख कर प्रसन्न हो गया। उसने कहा, अच्छा, तुम अपना घोड़ा मुझे दे दो और मेरा ले लो। क्योंकि मेरा घोड़ा कई बार इस रास्ते से आ-जा चुका है। रास्ते की कठिनाइयों से परिचित है। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उसकी बात मान ली। उसने घोड़े को देखा तो उसे एक पुरानी बात याद आ गई। एक बार एक ज्योतिषी ने उसे बताया था कि तुम्हें एक लाल रङ्ग का घोड़ा मिलेगा, जिस पर चढ़ कर तुम बड़ी लम्बी यात्रा करोगे। अस्तु—

वृद्ध से आवश्यक उपदेश प्राप्त करके ह्यूङ्गसाङ्ग और उसका पथ-प्रदर्शक अपने-अपने घोड़ों पर सवार होकर आगे बढ़े। थोड़ी देर चलने के बाद ही वे बलङ्गर नदी के किनारे पर आ पहुँचे। यह वही क्षिप्रगामिनी नदी थी, जिसका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। इसे नाँघना बड़ा ही कठिन काम था। साथी ने एक तरकीब सोची। वह चल कर एक ऐसी जगह पहुँचा, जहाँ नदी का पाट बहुत कम था। इसके बाद वह पास के जङ्गल में घुस गया और अपने तेज़ कुल्हाड़े से वृक्ष की कई बड़ी-बड़ी डालें काट लाया और उनके द्वारा एक पुल तैयार कर लिया। उसी पर से छलाँग मार कर दोनों अपने घोड़ों समेत पार उतर गए। यह काम बड़े साहस का था और इसमें ख़तरा भी था। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग का जङ्गली साथी ऐसे कामों में बड़ा चतुर था। उसने कई बार इसी ढङ्ग से कई गहरे पहाड़ी नाले पार किए थे। कहते हैं, आजकल भी चीनी लोग ऐसे अस्थायी पुलों द्वारा नदियाँ पार कर लिया करते हैं।

नदी पार करके दोनों आगे बढ़े। सूर्यास्त का समय था। दिन भर की यात्रा और पुल आदि बनाने में मेहनत भी काफ़ी पड़ी थी। दोनों थक गए थे। इसलिए एक साफ़-सुथरा स्थान देख कर डेरा डाल दिया। कुछ खा-पीकर दोनों ने चटाइयाँ बिछा लीं। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को अपने दुस्साहसी और जङ्गली साथी पर विश्वास कम था। इसलिए उसने अपनी चटाई उससे अलग बिछाई और सतर्क भाव से विश्राम करने लगा। जब कुछ रात बीती और अन्धकार अच्छी तरह छा गया तो ह्यूङ्गसाङ्ग को किसी के पाँवों की आहट सुनाई पड़ी। वह अभी जगा ही था। चौंक कर उठ बैठा और अन्धकार में आँखें फाड़ कर देखने लगा। यह आहट उसी जङ्गली के पैरों की थी। वह हाथ में नङ्गी तलवार लेकर ह्यूङ्गसाङ्ग की ओर बढ़ा आ रहा था। ह्यूङ्गसाङ्ग सतर्क तो था ही, उच्च स्वर से ईश्वर की प्रार्थना करने लगा। यह देख कर वह छाया-मूर्त्ति जो इसकी ओर बढ़ रही थी, वापस लौट गई। सम्भवतः ह्यूङ्गसाङ्ग का साथी उसे भयभीत करके लौटाना चाहता था। अस्तु—

दूसरे दिन प्रातःकाल ही दोनों ने उठ कर यात्रा आरम्भ कर दी। अब उन्हें आगे एक भयानक जङ्गल पार करना था और उसी किले के पास से होकर जाना था, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यहाँ पानी का अत्यन्त अभाव था। मगर भाग्य से इन्हें थोड़ा सा पानी मिल गया। दोनों ने कुछ खाकर पानी पी लिया। क़िले का रास्ता उन्हें रात को पार करना था; क्योंकि अगर कहीं क़िले वालों ने देख लिया तो जान का ख़तरा था। ह्यूङ्गसाङ्ग के साथी ने उसे फिर वापस लौट जाने की सलाह दी। परन्तु वह किसी तरह अपने इरादे को छोड़ने को तैयार न था। फिर दोनों आगे बढ़े। रास्ता बड़ा ही दुर्गम था। वन में हिंसक जन्तुओं का भय था। जङ्गली ने अपनी कमान पर रोदा चढ़ा लिया और अपना तीक्ष्ण धार तीरों का तरकश भी ठीक कर लिया। इसके बाद उसने ह्यूङ्गसाङ्ग को आगे बढ़ने को कहा। परन्तु रात वाली घटना से ह्यूङ्गसाङ्ग सावधान हो गया

था। उसने आगे चलने से साफ़ इन्कार कर दिया। उसका विश्वास अपने साथी पर से उठ गया था। अन्त में साथी ने भी साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं अब आगे जाना नहीं चाहता। तुम अगर अकेले ही जाना चाहते हो तो जा सकते हो। ह्यूङ्गसाङ्ग ने उसका स्तीफ़ा मञ्जूर कर लिया और प्रचुर धन्यवाद तथा घोड़े के साथ उसे विदा कर दिया।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी दृढ़ता और साहस के भरोसे गोबी के भीषण रेगिस्तान में क़दम बढ़ाया। वह रास्ता भी नहीं पहचानता था। यह रेगिस्तान संसार के बड़े मैदानों में है। कोसों तक कहीं पौधे या घास का नाम भी नहीं। कुछ आगे बढ़ने पर उसे हथियारबन्द सिपाहियों का एक दल दिखाई पड़ा, जो उसी की ओर आ रहा था। परन्तु कुछ देर बाद ही वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया। बेचारा ह्यूङ्गसाङ्ग यह अद्भुत लीला देख कर हैरान रह गया। बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में नहीं आया कि आख़िर यह क्या बला है। ख़ैर, ईश्वर का नाम लेकर वह धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। और अभी सौ क़दम भी आगे न बढ़ा होगा कि फिर वही दल दिखाई पड़ा। यात्री फिर भयभीत होकर खड़ा हो गया और सोचने लगा। इतने में आवाज़ आई कि 'डरने की कोई बात नहीं!' वह फिर साहस करके आगे बढ़ा। कुछ दूर जाने पर उसे मालूम हो गया कि आगे क़िले वालों की चौकी है और यह सिपाहियों का एक दल है, जो बड़ी सतर्कता से क़िले की ओर आने-जाने वालों की देख-रेख किया करता है। यह दल ह्यूङ्गसाङ्ग की गति-विधि का लक्ष्य करने के लिए बालू के एक टीले के पास छिप गया था। कुछ आगे बढ़ने पर उसे क़िले के बुर्ज साफ़ दिखाई पड़ने लगे, परन्तु सन्ध्या हो गई थी। इसलिए उसने बालू के एक टीले के पास डेरा डाल दिया और अपनी चमड़े की थैली लेकर पानी की तलाश में चला। उसे यह बात मालूम थी कि क़िले के पास साफ़ पानी की एक झील है, परन्तु कोई अजनबी आदमी वहाँ तक नहीं जा सकता। वह बड़ी सावधानी से छिपता हुआ झील के किनारे तक पहुँचा और पानी भरने लगा। इतने में एक तीर सनसनाता हुआ उसके पास से निकल गया। उसने अपनी थैली भर ली और उसे लेकर झील से बाहर निकलना ही चाहता था, कि इतने में फिर एक दूसरा तीर उसे छूकर निकल गया। उसने पानी की थैली ज़मीन पर रख दी और जिस ओर से तीर आए थे, उस ओर लक्ष्य करके चिल्ला उठा—'भाई, मैं पर्यटक हूँ और सम्राट् की आज्ञा लेकर आया हूँ। मुझे मत मारो।' यह सुन कर कई सन्तरी दौड़े हुए उसके पास आए और उसे पकड़ कर अपने अफ़सर के पास ले चले। अफ़सर एक सहृदय और समझदार आदमी था। ह्यूङ्गसाङ्ग का परिचय पाकर तथा उसकी यात्रा का उद्देश्य समझ कर, उसने उसकी बड़ी ख़ातिर की। परन्तु उसे समझाया कि आगे बढ़ना भय से ख़ाली नहीं है। तुम अकेले हो। किसी आपद-विपद में फँस कर मर जाओगे, इसलिए बेहतर है कि वापस लौट जाओ। परन्तु जब उसने देखा कि यह अपने निश्चय से किसी तरह नहीं टल सकता, तो उसने आगे के क़िलेदार के नाम एक सन्देश भी दिया। परन्तु यह सन्देश ज़बानी था। इसलिए ह्यूङ्गसाङ्ग को उस पर अधिक भरोसा न हुआ। इसलिए दूसरे दिन जब वह दूसरे क़िले के पास पहुँचा तो कल की तरह छिप कर ही रहने का विचार किया। पानी का प्रश्न यहाँ भी पूर्ववत् ही था। जलाशय ठीक क़िले के नीचे बना हुआ था। ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी थैली उठाई और कल की तरह छिपता हुआ जलाशय के निकट पहुँचा। परन्तु क़िले के रक्षकों की नज़र से अपने को किसी तरह भी न बचा सका। ज्योंही वह पानी भरने की इच्छा से जलाशय में उतरा, त्योंही तीरों की भरमार आरम्भ हुई और वह चिल्लाता हुआ बाहर निकला। इसके बाद सिपाहियों ने उसे पकड़ कर क़िले के अध्यक्ष के पास पहुँचाया। क़िले के अध्यक्ष ने सारा हाल सुना तो ह्यूङ्गसाङ्ग के साहस की प्रशंसा की और आराम से ठहरने आदि का प्रबन्ध करा दिया। परन्तु साथ ही उसने यह हिदायत भी कर दी कि अगले क़िले के रक्षक बड़े उद्दण्ड और गँवार हैं, वे उसे कदापि जीवित न छोड़ेंगे। ये बातें बता कर क़िले के अफ़सर ने उसे एक और ही रास्ते से जाने की राय दी और मीठे पानी की झील का भी पता बता दिया।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही ह्यूङ्गसाङ्ग ने अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। आगे एक लकोदक़ मैदान के सिवा और कुछ दिखाई न देता था। पेड़-पौधे तो

क्या, घास का एक तिनका भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था। परन्तु कुछ आगे बढ़ते ही उसे एक नई विपद का सामना करना पड़ा। उसकी पानी की थैली गिर गई और सारा पानी बह गया। इसके सिवा वह रास्ता भी भूल गया। इसलिए बड़ी देर तक उस जनहीन मरुभूमि में इधर से उधर चक्कर काटता रहा। यहाँ तक कि अन्त में घबरा कर एक स्थान पर बैठ गया और सोचने लगा कि वापस लौट जाना चाहिए। क्योंकि जब आरम्भ में ही आपदाओं का यह हाल है तो आगे चल कर क्या होगा, कौन जाने? परन्तु थोड़ी देर के बाद ही उसने फिर साहस से काम लिया और ईश्वर पर भरोसा करके आगे बढ़ा। रात हो गई थी, इसके सिवा रास्ता भूल जाने के कारण उसे दिन भर परेशानी भी उठानी पड़ी थी। इसलिए वह और उसका घोड़ा दोनों ही बहुत थक गए थे। अगत्या लाचार होकर उसे वहीं ठहर जाना पड़ा। थैली में पानी का एक बूँद भी नहीं बचा था। प्यास के मारे कण्ठ सूख रहा था। थकावट के कारण शरीर में दर्द भी हो रहा था। उसने आँखें बन्द करके सो जाने की चेष्टा की, परन्तु ऐसी परेशानी की हालत मे नींद कहाँ से आती। घोड़ा भी थक कर ज़मीन पर बैठ गया था। भूख और प्यास के मारे उसकी भी बुरी दशा थी। परन्तु जब कुछ रात बीती तो ठण्ढी हवा के झोंकों ने कुल क्लान्ति दूर कर दी। घोड़ा जो अब तक मुमुर्षु अवस्था में पड़ा था, हिनहिनाकर खड़ा हो गया। मानो उसने अपने मालिक को सलाह दी कि यहाँ पड़े रहना ठीक नहीं, आगे बढ़ना चाहिए। बस, कुछ रात रहते ही ह्युङ्गसाङ्ग ने चलना आरम्भ कर दिया और सवेरा होते-होते जलाशय के पास पहुँच गया। यह स्थान बड़ा ही रमणीक और हरा-भरा था। यात्री ने वहाँ चौबीस घण्टे ठहर कर अच्छी तरह आराम कर लिया। तीसरे दिन वह इस मरुभूमि को पार कर एक हरे-भरे मैदान में जा पहुँचा। यहाँ से हामी नगर निकट ही था। वह जल्दी-जल्दी चल कर वहाँ पहुँचा। लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि यहाँ बौद्धों का एक मठ भी है और तीन भिक्षुक यहाँ रहते हैं। मठ में उसे ख़ूब आराम मिला। यहाँ कई दिन ठहर कर उसने आगे के रास्ते के सम्बन्ध में थोड़ी सी जानकारी भी प्राप्त कर ली। इस नगर के शासक ने जब उसके आने की ख़बर सुनी, तो बड़े आदर से उसे अपने पास बुला भेजा और ठहरने के लिए अपने महल के पास ही प्रबन्ध कर दिया। थोड़ी देर के बाद स्वयं रानी उससे मिलने आई। यह शासक बहुत दिनों से एक ऐसे विद्वान धर्मोपदेशक की खोज में था, जो उसके यहाँ रह कर उसकी प्रजा में धर्म का प्रचार करे। उसने धन आदि का प्रलोभन देकर ह्युङ्गसाङ्ग को रोकना चाहा, परन्तु वह राज़ी न हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि राजा नाराज़ हो गया। इसलिए ह्युङ्गसाङ्ग ने चुपचाप वहाँ से कूच कर जाने का इरादा किया। परन्तु राजा को इस बात का भी पता लग गया और उसने अपने सिपाहियों को उसकी देख-रेख के लिए नियुक्त कर दिया। यह झगड़ा कई दिनों तक चलता रहा। राजा कभी तो उसे डराता-धमकाता और कभी उसकी ख़ुशामद भी करता था। एक दिन उसने ह्युङ्गसाङ्ग को अपने साथ खाना खाने के लिए निमन्त्रित किया और स्वयं अपने हाथ से उसे खिलाया। परन्तु जब इतने पर ह्युङ्गसाङ्ग रहने को राज़ी न हुआ तो उसने उसे क़ैद करने की धमकी दी। इधर ह्युङ्गसाङ्ग भी उससे पल्ला छुड़ाने की तदबीर सोचता रहा और अन्त में भूख-हड़ताल आरम्भ कर दी। चार दिन तक अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया। इस बात की ख़बर राजमाता को लगी, तो उसने अपने पुत्र को बुला कर समझाया और ह्युङ्गसाङ्ग को तुरन्त छोड़ देने का आग्रह करने लगी। अन्त में बड़े तर्क-वितर्क के बाद तय हुआ कि ह्युङ्गसाङ्ग एक महीने तक यहाँ रह कर धर्मोपदेश करे और फिर जहाँ चाहे चला जाए। उपायान्तर न देख कर ह्युङ्गसाङ्ग ने यह शर्त स्वीकार कर ली और एक महीने तक उसके राज्य में रह कर धर्मोपदेशक का कार्य करता रहा।

अन्त में राजा ने बड़े आदर के साथ ह्युङ्गसाङ्ग को विदा किया। बहुत से सोने-चाँदी के सिक्के, रेशमी कपड़े, गरम कपड़े और यात्रा में काम आने वाली अन्यान्य चीज़ें दीं। आगे के राजाओं के नाम पत्र भी लिखवा दिए, ताकि रास्ते में ह्युङ्गसाङ्ग को किसी प्रकार की तकलीफ़ न हो। इसके बाद अपने दरबारियों तथा रानी के साथ उसे पहुँचाने के लिए मीलों तक गया।

यहाँ से आगे ह्यूङ्गसाङ्ग को एक दुर्गम पहाड़ी रास्ते से चलना था। रास्ते के दक्षिण ओर टारम नाम की नदी पड़ती थी, जो लावनार नाम की झील में गिरती है। यह झील साँभर की तरह नमक की झील है। यहाँ उन दिनों बड़े दुर्धर्ष डाकू रहा करते थे। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को उनका कोई भय न था, क्योंकि राजा ने उसकी रक्षा के लिए फ़ौजी सिपाहियों का एक जत्था उसके साथ कर दिया था। परन्तु इतने पर भी ह्यूङ्गसाङ्ग को डाकुओं के सरदार को कुछ नज़र-नियाज़ देकर उससे सुलह करनी पड़ी।

यहाँ से आगे चल कर वह कारा या काशार नामक शहर में पहुँचा। यहाँ के शासनकर्त्ता ने भी उनकी बड़ी ख़ातिर की। यात्रियों के घोड़े पहाड़ी-पथ में चलने के कारण बहुत थक गए थे। इसलिए ह्यूङ्गसाङ्ग ने चाहा कि उसके साथी सिपाहियों के थके घोड़े यहीं रह जायँ और उनके बदले दूसरे घोड़े मिल जायँ। परन्तु शासक ने उसकी यह प्रार्थना स्वीकार न की। बात यह थी कि हाल में ही उसे एक लड़ाई लड़नी पड़ी थी, इसलिए उसके घोड़े भी थके-माँदे थे।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने इस राज्य के राजा का एक लम्बा-चौड़ा विवरण अपनी पुस्तक में दिया है। वह कई दिनों तक राजा का अतिथि रहा और जब अच्छी तरह सुस्ता चुका तो फिर आगे बढ़ने की तैयारी की।

कई दिनों के बाद वह एक और राज्य में पहुँचा। यहाँ के राजा को उसके आने की ख़बर पहले ही मिल चुकी थी। उसने बड़ी तैयारी के साथ ह्यूङ्गसाङ्ग का स्वागत किया और दो मास तक अपने पास रक्खा। उस समय उस प्रदेश में बड़े ज़ोरों से बर्फ़ पड़ रही थी, इसलिए आगे बढ़ना मुश्किल था। दो महीने के बाद जब बर्फ़ का ज़ोर कम हुआ और रास्ता चलने के योग्य हो गया तो राजा ने विपुल समारोह सहित ह्यूङ्गसाङ्ग को विदा किया। आगे का रास्ता बड़ा ही भीषण था। तुर्की डाकू दिन-दहाड़े यात्रियों को लूट लिया करते थे। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को डाकुओं का कोई डर नहीं था। क्योंकि उसके साथ काफ़ी रक्षक थे और उनके हथियार भी तीक्ष्ण थे। कुछ आगे बढ़ने पर एक विजन वन में उसे लुटेरों का एक दल मिला, जिसने उसके आने के कुछ देर पहले ही एक बड़े व्यापारी-दल को लूटा था और लूट का माल बाँटने में व्यस्त थे। भाग-बटवारे के कारण उनमें आपस में ही कुछ झगड़ा चल पड़ा था, इसलिए उन्होंने इन यात्रियों की ओर ध्यान नहीं दिया। यात्री-दल घने वनों, ऊँचे पर्वतों और बर्फ़ के टीलों को अतिक्रम करता हुआ आगे बढ़ने लगा। इन जनमानवहीन भीषण स्थानों में उसे कई रातें बितानी पड़ीं। इस प्रकार ह्यूङ्गसाङ्ग ने सैकड़ों मीलों का रास्ता तय किया। यह यात्रा बड़ी ही विकट थी। रास्ते में कई बार भीषण तूफ़ानों का सामना करना पड़ा। कई दिनों तक कोई ऐसी सूखी जगह नहीं मिली, जहाँ ठहर कर आराम करने या कुछ खाने-पकाने का प्रबन्ध करते। कई साथी रास्ते की तकलीफ़ से बीमार पड़ गए और कई मर गए। यही हाल उनके घोड़ों का भी था। दिन-रात कड़ाके की सर्दी का मुक़ाबला और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों की चढ़ाई-उतराई के कारण सारा दल बेदम हो गया।

कई सप्ताह के बाद ह्यूङ्गसाङ्ग का दल एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ पठानों का राज्य था। इनके सरदार को जब ह्यूङ्गसाङ्ग की यात्रा का उद्देश्य मालूम हुआ तो उसने उसे बड़े आदर से अपने यहाँ टिकाया। इनके आराम से ठहरने के लिए ख़ीमे डाल दिए गए। सन्ध्या को अतिथि-सत्कार की तैयारी बड़े धूमधाम से हुई। ह्यूङ्गसाङ्ग के बैठने के लिए सरदार के तख़्त के पास ही एक लोहे की चौकी रक्खी गई। सरदार के साथ जब सब दरबारी और ह्यूङ्गसाङ्ग आदि अपने स्थानों पर बैठ गए तो शराब लाई गई और प्याले पर प्याले लुढ़कने लगे। इसके बाद नृत्य-गीत आरम्भ हुआ। यद्यपि ह्यूङ्गसाङ्ग की समझ में ये गाने नहीं आते थे, परन्तु उनमें लालित्य था। वे चीनी कानों को भी बुरे नहीं मालूम होते थे। खाने के लिए उबाले हुए मांस के टुकड़े लाए गए। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग चूँकि बौद्ध था, इसलिए उसके भोजन का प्रबन्ध अलग किया गया था और वह बिलकुल निरामिष था। उसके लिए रोटी, चावल, मलाई, दूध खाँड़, शहद और अङ्गूर आदि रक्खे गए। भोजनोपरान्त पठान सरदार ने ह्यूङ्गसाङ्ग को अपने पास बुलाया और बड़ी देर तक दुभाषिए की मार्फ़त उससे बातचीत करता रहा। अन्त में उसने ह्यूङ्गसाङ्ग को समझाया कि वह हिन्दुस्तान न जाए; क्योंकि वहाँ

के आदमी बड़े असभ्य और क्रूर होते हैं। वह देश बड़ा गरम है। वहाँ दिन-रात गरम लू चला करती है। उस देश के अधिवासी काले-कलूटे होते हैं और नङ्गे रहते हैं। लज्जा तो उनमें नाम को भी नहीं होती।

ह्यूङ्गसाङ्ग ने बड़े ध्यान से उसकी बातें सुनीं और उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करते हुए बताया कि मैं वहाँ भगवान बुद्ध की प्रेरणा से जा रहा हूँ। मेरा उद्देश्य पवित्र है। इसलिए विश्वास है कि वहाँ मुझे किसी प्रकार की तकलीफ़ न होगी।

अस्तु, कई दिनों के विश्राम के बाद ह्यूङ्गसाङ्ग ने विदा ली। सरदार स्वयं उसे कुछ दूर तक पहुँचा गया। पठान-सरदार से विदा होकर यात्री-दल आगे बढ़ा और कई दिनों की यात्रा के बाद समरक़न्द पहुँचा। यह एक समृद्धिशाली नगर था। आसपास की प्राकृतिक शोभा भी दर्शनीय थी। यहाँ का शासक एक उग्र प्रकृति का मनुष्य था और तलवार के बल पर अपने पड़ोसी देशों पर शासन किया करता था। उसने ह्यूङ्गसाङ्ग के आने की ख़बर सुनी तो ज़रा भी उत्साह न दिखाया, बल्कि नाक-भौं सिकोड़ कर कुछ घृणा के भाव प्रगट किए। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग को किसी की घृणा और आदर की कोई चिन्ता न थी। उसने यहाँ कुछ दिन ठहर कर विश्राम किया। यहाँ बौद्ध-धर्म विलुप्त हो चुका था। बौद्ध मन्दिर ख़ाली पड़े हुए थे। उसने एक ख़ाली मन्दिर में डेरा डाल दिया। परन्तु यहाँ के अधिवासियों ने जलते हुए लोहे फेंक कर उन्हें वहाँ से भगा दिया। परन्तु इस बात की ख़बर जब वहाँ के शासक को लगी तो उसने अपराधियों को कठोर दण्ड प्रदान किया। परन्तु ह्यूङ्गसाङ्ग ने उन्हें क्षमा कर देने की प्रार्थना की। उसकी इस प्रार्थना का शासक के मन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उसने अपराधियों को छोड़ दिया और ह्यूङ्गसाङ्ग के प्रति बड़ी श्रद्धा प्रगट की और आज्ञा दे दी कि जब तक इच्छा हो, यहाँ रह सकते हो। साथ ही उसने ह्यूङ्गसाङ्ग के अनुरोध करने पर शहर के सभी बौद्ध मन्दिरों को फिर से खोलवा दिया और पुजारियों को पूजा-पाठ करने की भी आज्ञा दे दी।

कई दिनों तक समरक़न्द में रह कर यात्री-दल ने आगे की ओर प्रस्थान किया। कुछ आगे बढ़ने पर उसे एक घाटी मिली, जिसके दोनों ओर ऊँचे पहाड़ थे। रास्ता बड़ा ही तङ्ग था और अन्धकारपूर्ण था। बड़ी कठिनता से घाटी को पार करके वह आक्सस के पास पहुँचा। यहाँ उसे पठानों के कई छोटे-छोटे राज्य मिले। इनमें एक पठान राज्य पूर्वोक्त पठान-सरदार के दामाद का था। परन्तु वह बहुत बीमार था। ह्यूङ्गसाङ्ग यहाँ कई रोज़ तक ठहरा रहा। इसके बाद जब उसने आगे की यात्रा आरम्भ की तो संयोगवश एक व्यक्ति से भेंट हो गई, जो बहुत दिनों तक हिन्दुस्तान में रह चुका था। यह बौद्ध-धर्म का अनुयायी और बौद्धधर्म के ग्रन्थों का जानकार भी था। दोनों साथ ही भारत की ओर चले और कुछ दिनों के बाद वह बलख़ पहुँचे। यहाँ बौद्ध-धर्म का ख़ूब प्रसार था। बहुत से बौद्ध-मठ और यादगारें थीं। मठों में हज़ारों बौद्ध संन्यासी रहते थे। इस स्थान के आसपास के शासकों तथा राजाओं को ह्यूङ्गसाङ्ग के आने की ख़बर पहले ही मिल चुकी थी और वे बड़ी उत्सुकता से उसकी राह देख रहे थे। परन्तु शीघ्र हिन्दुस्तान पहुँचने की इच्छा से उसने इन राजाओं का आतिथ्य नहीं स्वीकार किया। वह भयानक जङ्गलों, और निर्जन घाटियों को पार करता हुआ बड़े कष्ट से आगे बढ़ने लगा। रास्ते में उसे कई बार भीषण जन्तुओं का सामना करना पड़ा। कई दिनों के बाद, वह नाना प्रकार की विपत्तियों को अतिक्रम करता हुआ हिन्दूकुश पर्वत के पास एक नगर में पहुँचा। इस नगर का नाम वामियान था और उन दिनों वह बौद्धधर्म का प्रधान केन्द्र-स्थल समझा जाता था। यहाँ कई दिनों तक ठहर कर काबुल होता हुआ वह ख़ैबर घाटी के रास्ते से भारत पहुँचा।

मेवाड़ का शासन

[श्री० जमनालाल जी मेहता, बी० ए०]

चित्तौड़ और मेवाड़ भारतवर्ष के ही इतिहास में नहीं, किन्तु संसार के इतिहास में चिरस्मरणीय हैं। आठवीं शताब्दी में चित्तौड़ वर्तमान राजवंश के हाथ लगा था। तब से निरन्तर बप्पा रावल के वंशज इस पर राज्य कर रहे हैं। इतना प्राचीन राजकुल इस समय संसार में कोई दूसरा नहीं है। इस अर्से में चित्तौड़ पर अनेक विपत्तियाँ आईं, आततायियों ने तीन बार इस पर आक्रमण किए। निराश, किन्तु गौरव-धन महिलाओं ने जौहर रच कर आर्य-महिलोचित स्वाभिमान का परिचय दिया। कुछ समय के लिए चित्तौड़ मुसलमानों के हाथ में भी आ गया। उन्होंने इसका नाम ख़िज़राबाद रक्खा, परन्तु ये सब क्षणिक तूफ़ान थे। स्थिति बदली और चित्तौड़ पर पुनः सीसोदियों का अधिकार हो गया। मेवाड़ के राजकुल में जैसे योग्य, वीर, प्रजा-प्रिय, स्वाभिमानी और विद्वान शासक हुए हैं, वैसे इस संसार के किसी भी राजकुल में नहीं हुए। मेवाड़ के राजकुल ने देश और धर्म की रक्षा के लिए जितना रक्त बहाया है, उतना किसी राजपूत-कुल ने नहीं बहाया। आठवीं शताब्दी में अरब लोगों ने सिन्ध प्रान्त को जीत लिया था और अपने राज्य को पूरब की ओर बढ़ाना चाहते थे। उस समय बप्पा रावल और उनके वंशजों ने विजय-विस्तार को रोका था। सन् १५२६ में पानीपत के मैदान में इब्राहिम लोदी को परास्त करके जब बाबर राजपूताने की ओर बढ़ना चाहता था, तो महाराणा संग्रामसिंह ने कनवाह के मैदान में उससे एक भीषण रण रचा था। देश का दुर्भाग्य था कि कुछ विश्वासघातकों और देशद्रोहियों के कारण उस अप्रतिम सूरमा को विजय-लाभ नहीं हुआ, परन्तु महाराणा साँगा की शक्ति से बाबर इतना भयभीत हो गया था कि राजपूताने पर राज्य जमाने का फिर उसने प्रयत्न नहीं किया? महाराणा कुम्भ का जीवन बहमनी वंश के मुसलमानों के साथ निरन्तर युद्ध करने में बीता और कई बार उनको अपूर्व विजय-लाभ हुआ। चित्तौड़ का कीर्ति-स्तम्भ उनके विजय और वीरत्व का अमर स्मारक है। महाराणा प्रताप के नाम को कौन नहीं जानता? जिस समय अकबर की विजय-बाढ़ में बड़े-बड़े शक्तिशाली नरेश डूब चुके थे, तब प्रताप ने ही हिन्दू-गौरव की रक्षा की थी। कहाँ भारत-सम्राट अकबर की शक्ति और कहाँ महाराणा प्रताप की एक परिमित सेना। प्रताप को अपनी राजधानी छोड़नी पड़ी, अपने मान की रक्षा के लिए जङ्गलों में इधर-उधर भटकना पड़ा, कई बार जङ्गली फल खाकर अपने दिन बिताने पड़े, ज़मीन पर सोना पड़ा, पत्तों पर खाना पड़ा और अपने बच्चों तथा महाराणी को साथ लेकर छाजों पर, पहाड़ियों पर, जङ्गलों में, नदियों में और नालों में घूमना पड़ा। उनके साथी थे चेतक घोड़ा, उनका परिमित परिवार, कुछ दो-चार सरदार और भील जाति। इन दारुण कष्टों के सामने शायद नेपोलियन और जनरल हेनिबाल का भी सर झुक जाता, परन्तु महाराणा प्रताप अपने स्वाभिमान-पथ से किञ्चिन्मात्र भी विचलित न हुए। वे अकबर को तुर्क ही कहते रहे। आज मेवाड़ का बच्चा-बच्चा प्रताप का गुण-गान करता है। शायद ही कोई मेवाड़ी ऐसा हो, जिसको महाराणा प्रताप के दो-चार प्रशंसात्मक पद्य कण्ठस्थ न हों। कितने ही भील पुरानी कथाओं का स्मरण करके आँसू बहाते हैं और कितने ही चेतक के चबूतरे पर माथा टिका कर रोते हैं।

चित्तौड़ का दुर्धर्ष दुर्ग, उदयपुर के भव्य राजभवन, राजसमुद्र और जयसमुद्र जैसे विस्तृत तालाब आदि से पता लगता है कि युद्धों में निरन्तर व्यस्त रहने पर भी मेवाड़ के शासक राज-प्रबन्ध की ओर काफ़ी ध्यान दे सकते थे। आश्चर्य की बात यह है कि रात-दिन लड़ाइयाँ लड़ते हुए भी मेवाड़ के कई शासक साहित्य और कला के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर सकते थे।

महाराणा कुम्भ स्वयं बड़े विद्वान थे। काशी की विद्वन्मण्डली में उनका बड़ा आदर था। महाराणा कुम्भकर्ण (कुम्भ) ने संस्कृत भाषा मे अनेक ग्रन्थों की रचना की है। शालिहोत्र शास्त्र, गृह-निर्माण विद्या, नृत्यकला, काव्य, नाटक आदि विषयों पर उनके रचे हुए ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है और कई ग्रन्थ प्राप्त भी हो चुके हैं। कविवर जगन्नाथ के गीत-गोविन्द काव्य पर महाराणा कुम्भकर्ण ने जो टीका लिखी है, उसका विद्वत् संसार में अच्छा मान है।

जिस राजवंश ने देश और धर्म की रक्षा के लिए इस प्रकार निरन्तर प्रयत्न किए हों, जिसने अपनी जाति की मर्यादा रखने के लिए स्वयं दारुण कष्ट उठाए हों, जिसकी कुल-ललनाओं ने क्षत्रिय जाति की गौरव-रक्षा के लिए हँस-हँस कर अपने प्राण धधकती हुई अग्नि-ज्वालाओं के भेट किए हों, जिसने इस प्रकार कष्ट पाते हुए भी कला और साहित्य की उपेक्षा न की हो, वह 'हिन्दुआँ सूरज' कहलाने का अधिकारी है। अभागी हिन्दू-जाति भी अपने राजकुल का इससे अधिक और क्या आदर कर सकती थी कि उसको अपना सूर्य माने।

मेवाड़ के राजवंश के लिए और भारतवर्ष के लिए कितने सौभाग्य की बात होती, यदि आज भी हिन्दू लोग प्रेम और उल्लास के साथ महाराणा मेवाड़ को 'हिन्दुआँ सूरज' कहते होते। महाराणा प्रताप का प्रण था कि जब तक उनको चित्तौड़ पुनः प्राप्त न हो जायगा, तब तक ज़मीन पर सोएँगे, पत्तों पर खाएँगे और हजामत नही बनवाएँगे। स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह के समय तक इस प्रण का नाममात्र पालन किया गया, परन्तु कहाँ थी वह स्वातन्त्र्याभिलाषा, कुल-मर्यादा की चिन्ता और अपना मस्तक ऊँचा रखने की आकांक्षा ? किसी न किसी अंश मे महाराणा फ़तेहसिंह जी ने तो इस आन को फिर भी निभाया, परन्तु उनके देहावसान के दिन से ही मेवाड़ फिर वह मेवाड़ नही रहा, जिसका नाम उच्चारण करने से हिन्दुओं को गर्व होता था, स्वातन्त्र्य-प्रेमियों का रक्त जोश करने लगता था और आत्म-बलिदान की अनेक पुण्य स्मृतियों से शरीर मे रोमाञ्च होता था। दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान मेवाड़ न मध्यकालीन मेवाड़ है और वर्तमान प्रकाश से प्रकाशित मेवाड़।

वर्तमान महाराणा वर्षों से अपङ्ग हैं। आपके पैरों पर लक़वे का ज़ोर है। पीड़ा को शान्त रखने के वास्ते आप प्रायः मालिश करवाया करते है। आपने दो विवाह किए हैं, परन्तु दोनों महारानियों से अभी तक कोई सन्तान नही है। सुनते है कि स्वर्गीय महाराणा साहब ने आपके द्वितीय विवाह का बड़ा विरोध किया था, परन्तु सन्तान-प्राप्ति की प्रबल अभिलाषा के कारण आपने अपने पिता की आज्ञा की भी अवहेलना की। यह प्रभु की लीला है कि दूसरी रानी से भी अभी सन्तान उत्पन्न नहीं हुई। शरीर से प्रायः लाचार होते हुए भी महाराणा साहब राज-काज थोड़ा-बहुत नित्य देखते हैं। नियमानुकूल नित्य प्रातःकाल ७ बजे से पूर्व 'अपौढ़ी' हो जाती है अर्थात जग जाते हैं। ८ बजे के लगभग गढ़ में लोग सलाम करने के लिए जाते हैं। इनमें सोलह, बत्तीस उच्च कर्मचारी, पुरोहित, व्यास और हुज़ूरे होते हैं। उदयपुर रियासत में सोलह प्रमुख जागीरदार है, जिनको दीवानी, फ़ौजदारी के फ़र्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट के अख़्तियार है और सबको ताज़ीम है। अन्य रियासतों में तो ताज़ीमी सरदारों को देख कर महाराजा लोग अपने आसन से उठा करते हैं, परन्तु उदयपुर के महाराणा नहीं उठते। महाराणा साहब ताज़ीमी सरदारों को केवल हाथ उठा कर अभिवादन कर लेते है। इन सोलह प्रमुख सरदारों को केवल सोलह के नाम से पुकारा जाता है। इनसे दूसरे दर्जे के जागीरदारों की संख्या बत्तीस है। राज में इनका सोलह के समान सम्मान और रुतबा नहीं है, परन्तु फिर भी लोगों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। उदयपुर राज्य मे जागीरदारों से बड़ी कड़ी नौकरी ली जाती है और उनके रहन-सहन तथा वेष-भूषा पर सरकार का कठोर नियन्त्रण रहता है। हुज़ूरे लोगों का काम प्रातः-काल महाराणा को केवल सलाम करने का है। इन लोगों के अभिवादन का महाराणा कुछ उत्तर नही देते। एक-एक करके सलाम करते हुए ये लोग महाराणा के सामने होकर निकल जाते हैं और केवल इसी बात की जागीरी पाते हैं। हुज़ूरे लोगों के अभिवादन की विधि बड़ी उपहासजनक है। महाराणा के सामने ये लोग इतने झुकते हैं कि कमर के पास समकोण बन जाता है। तदनन्तर दोनों हाथों को दो-

उठाते और गिराते हैं। प्रातःकाल आठ बजे के लगभग राजमहल के दरवाज़े पर अनेक मोटरें और बग्गियाँ खड़ी हुई दिखाई देने लगती हैं। दरबार में जाने वालों की सबकी एक पोशाक होती है, परन्तु है यह बड़ी अजीब। चूड़ीदार पाजामा, उस पर लम्बा अँगरखा, विशेष प्रकार से बँधी हुई पगड़ी—यह सब कुछ ठीक है, परन्तु अँगरखे के ऊपर एक बड़ा कोट भी पहना जाता है, इस कोट का कॉलर खुला हुआ रहता है, परन्तु टाई कोई नहीं बाँधता, उसके बजाय एक रूमाल होता है, जिसको गले में डाल कर उसके दोनों सिरे नीचे की तरफ़ कोट मे छिपा लिए जाते हैं। सरदार, माफ़ीदार, राजकर्मचारी, साहूकार, हुज़ूरे, पुरोहित और व्यास आदि सबकी पोशाक एक ही प्रकार की होती है।

सलाम के काम से निवृत्त हो महाराणा स्नान आदि करके एक नौका में बैठ कर पिछोला तालाब के जग-मन्दिर में पधार जाते हैं। प्रातःकाल का भोजन वहीं होता है और वहीं विश्राम। जग-मन्दिर में ही आमोद-प्रमोद तथा विनोद के सब सामान जुटे रहते हैं। पिछोला एक विस्तृत तालाब है, जो शहर के बीच में स्थित है। इसके दोनों ओर शहर बसा हुआ है। इसमें ख़ूब गहरा पानी है, परन्तु बरसात के दिनों में इसका पानी एक विशेष सीमा से आगे नहीं बढ़ पाता। अवाञ्छनीय पानी एक मार्ग में से निकल कर बह जाता है। इस तालाब के बीच-बीच में महाराणा के छोटे-छोटे महल बने हुए हैं, जिनमें ग़दर के ज़माने में अङ्गरेज़ी महिलाओं और बच्चों को शरण दी गई थी। इस समय यहीं महाराणा साहब दिन का अधिकांश भाग काटते हैं। शाम के ४॥ बजे के लगभग नौका में बैठ कर एक अहलकार, एक सोने की छड़ीवाला चोबदार और एक चपरासी के साथ तालाब के तट पर, जहाँ एक पीपल का वृक्ष उगा हुआ है, आते हैं। महाराणा साहब से अपील करने वाले तथा अपनी अपीलों का नतीजा सुनने वाले कितने ही लोग वहाँ खड़े रहते हैं। पिछले दिन की अर्ज़ियों पर जो कुछ भी हुक्म होते हैं, वे क्लार्क सुना देता है और उस दिन की अर्ज़ियाँ ले लेता है। यह हर्ष की बात है कि महाराणा साहब के सामने पेश होने वाली अर्ज़ियों पर किसी भी प्रकार के टिकट लगाने की ज़रूरत नहीं है। क्या ही अच्छा हो कि छोटी अदालतों से भी कोर्ट-फ़ी बिलकुल उठा दी जावे। इन अर्ज़ियों को पढ़ने में, क़ानूनी बातों को समझाने में और हुक्म-अहकाम का स्वरूप निश्चित करने के लिए महाराणा साहब के प्राइवेट सेक्रेटरी मेहता तेजसिंह जी तत्पर रहते हैं। मेहता जी उदयपुर राज्य के एक पुराने और प्रतिष्ठित कुल के सज्जन हैं। आपके दो-तीन भाई बड़े-बड़े पदों पर हैं और ख़ुद भी उच्च शिक्षित हैं। लेकिन खेद की बात है कि लोगों का आप पर विश्वास नहीं है। घण्टा डेढ़ घण्टा इस प्रकार काम करने के बाद महाराणा साहब फिर घूमने पधार जाते हैं और प्रबन्ध विषयक कुछ काम नहीं करते। इतने विस्तृत राज्य का स्वामी केवल घण्टा-डेढ़ घण्टा प्रार्थियों की परोक्षता में विनय सुने और राज्य के अन्य विभागों को कुछ न देखे तथा उस तक प्रजा की दुख-दर्द की असली पुकार न पहुँच सके और कोई उससे रूबरू बात तक न कर सके, यह शोभा की बात नहीं है। एकतन्त्र सत्ता में अनेक बुराइयाँ होते हुए यही तो सबसे बड़ी सुन्दरता है कि वहाँ का साधारण से साधारण व्यक्ति भी बिलकुल आसानी के साथ और एक पैसा ख़र्च किए बिना ही अपनी पुकार अपने स्वामी तक पहुँचा सकता है और अपने कष्ट के तत्काल निवारण की आशा कर सकता है। वीभत्स निरङ्कुशवाद मे से राजा और प्रजा के सुगम-सम्पर्क की यह सुन्दरता और मधुरता यदि निकाल दी गई, तो फिर उसमें रहता ही क्या है।

सर शुकदेव प्रसाद जी उदयपुर के मुसाहिब आला हैं। वास्तव में ये ही उदयपुर के सब कुछ हैं। महाराणा साहब इनका ख़ूब विश्वास करते हैं और इनका बड़ा सम्मान करते हैं। आज से नहीं, वर्षों से अर्थात् जिस समय स्वर्गीय महाराणा फ़तेहसिंह जीवित थे, तब से ही सर शुकदेवप्रसाद वर्तमान महाराणा साहब के मित्र हैं। बहुत समय पहले सर शुकदेवप्रसाद उदयपुर के दीवान थे, परन्तु महाराणा फ़तेहसिंह जी ने इनको कुछ अर्से तक ही दीवान रख कर विदा कर दिया था। उसके बाद ये जोधपुर के दीवान रहे। कर्नल सर प्रताप में और इनमें जब कुछ खटपट हुई तो इन्हीं की विजय हुई। बात यह है कि सर शुकदेव प्रसाद भारत-सरकार के बड़े लाड़ले हैं। जोधपुर के स्वर्गीय महाराजा साहब ने इन्हें एक ख़ासी जागीर भी बख़्शी थी, परन्तु वर्तमान महाराजा साहब

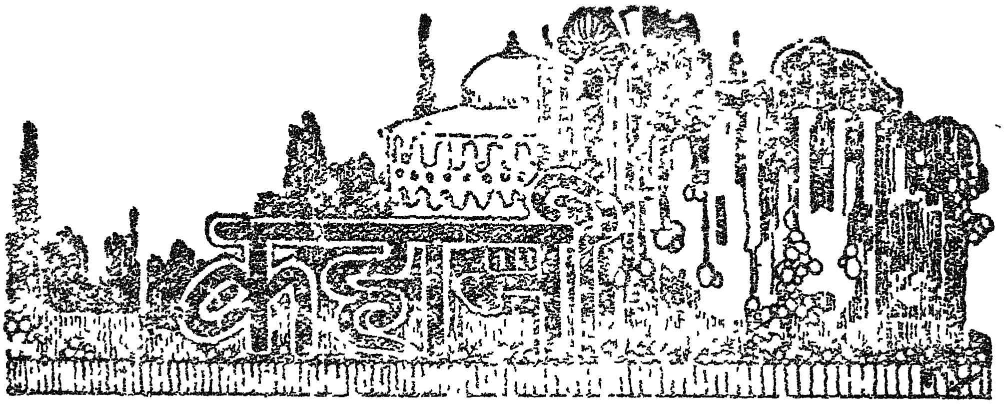
जोधपुर ने इनको राजसिंहासन पर विराजने के कुछ ही अर्से बाद विदा कर दिया। यह महाराजा साहब का सौजन्य था कि अपने पूज्य पिता की दी हुई जागीर को उन्होंने नहीं छीना। सुना जाता है कि महाराजा साहब जोधपुर सर शुकदेवप्रसाद से मिलते भी नहीं हैं। जिस समय सर शुकदेवप्रसाद जोधपुर में थे तो भारत-सरकार महाराणा उदयपुर के अधिकारों को सङ्कुचित कर महाराजकुमार को वास्तविक शासक बनाना चाहती थी। उस समय सर शुकदेवप्रसाद ने महाराणा को यह सलाह दी थी कि सरकार हिन्द की सलाह को टालना नहीं चाहिए। लोगों का ऐसा अनुमान है कि वर्तमान महाराणा साहब और सर शुकदेवप्रसाद में उन्हीं दिनों से घनिष्ट मित्रता है। इस समय मुसाहिब आला के सिपुर्द कोई ख़ास काम नहीं है। न वे यथानियम किसी दफ़्तर में बैठते हैं, न कचहरी करते हैं, परन्तु वैसे ही सम्पूर्ण उदयपुर रियासत के शासन का सञ्चालन आप ही के हाथों से होता है। महकमा ख़ास, महद राज-सभा और अन्य महकमे, सब जगह सर शुकदेवप्रसाद का आधिपत्य है। वृद्धावस्था के कारण आपसे अधिक हिला-चला नहीं जाता, परन्तु फिर भी तकते है सब आपके ही मुँह की तरफ़।

मुसाहिब आला के नीचे खास महकमा है, जिसमें कोटा राज्य की भाँति दो दीवान हैं। एक बाबू प्रभासचन्द्र मुकर्जी और दूसरे सर शुकदेवप्रसाद के बैरिस्टर पुत्र पण्डित धर्मनारायण जी। अन्य रियासतों में महकमा ख़ास सर्वोच्च महकमा माना जाता है, लेकिन उदयपुर में महकमा ख़ास के ऊपर मुसाहिब आला हैं और महाराणा साहब के पास भी अपीलें होती हैं। महद राज-सभा उदयपुर की हाईकोर्ट है। इसमें ग्यारह जज या मेम्बर हैं, जिनमें कुछ मेहता लोग और कुछ बाहर के आए हुए बाबू लोग हैं। वैसे तो महद राज-सभा का फ़ैसला अन्तिम होना चाहिए, लेकिन कभी-कभी महकमा ख़ास या सर शुकदेवप्रसाद उसको बदल देते हैं। उदयपुर के दण्ड-विधान में सबसे अधिक उल्लेखनीय और प्रशंसनीय बात यह है कि वहाँ प्राणदण्ड किसी भी अपराधी को नहीं दिया जाता। राजद्रोह और षड्यन्त्र का तो अभी तक वहाँ किसी पर मुकदमा चला ही नहीं और हम आशा करते हैं कि संसार की स्थिति को देख कर वहाँ के शासक अपनी शासन-विधि में ऐसे आवश्यक परिवर्तन कर देंगे, जिससे वहाँ कभी ऐसे अपराध होने का मौका ही न आवे और न मुक़दमा चले। हत्या के अपराध के लिए भी प्राणदण्ड नहीं दिया जाता।

प्रबन्ध के लिए सम्पूर्ण उदयपुर राज्य १२ परगनों में बँटा हुआ है। प्रत्येक परगने पर एक अफ़सर होता है, जिसको हाकिम कहते हैं। उसके नीचे एक असिस्टेण्ट होता है और एक नायब। मालगुज़ारी वसूल करना नायब का काम है और ज़मीन सम्बन्धी तथा दूसरे मुक़दमों का सुनना हाकिम का काम है। परगनों के हाकिमों के काम की जाँच-पड़ताल जितनी होनी चाहिए उतनी नहीं होती। ऐसी अवस्था मे यदि कई प्रकार के अनाचार और अन्याय होते हों तो कोई अचम्भे की बात नहीं है। यदि उच्चाधिकारी लोग यथासमय दौरा करें और स्वयं महाराणा साहब प्रत्येक परगने को साल में एक बार भी देख सकें, तो न्याय और प्रबन्ध की अनेक गड़बड़ें शान्त हो जावें।

उदयपुर मे एक इन्टरमीडियट कॉलेज है और देहातों में कुछ हिन्दी के स्कूल भी हैं। परन्तु ये संस्थाएँ पर्याप्त नहीं हैं। शिक्षा निःशुल्क अवश्य है, परन्तु यह तो हिन्दू-राज्य में होना ही चाहिए। शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर बाहर के आए हुए हैं, और उदयपुर के ही निवासी डॉक्टर मोहनलाल मेहता, जिन्होंने लन्दन यूनिवर्सिटी मे ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त की है, माल व रेवेन्यू विभाग में जकड़ रक्खे गए हैं। पाठकों को यह जान कर हर्ष होगा कि महामहोपाध्याय रायबहादुर पण्डित गौरीशङ्कर ओझा, जो राजपूताना के इतिहास के और प्राचीन लिपिशास्त्र के माने हुए विद्वान हैं, वे उदयपुर राज्य के ही निवासी हैं। क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि उक्त पण्डित जी एक विदेशी सरकार की नौकरी में अजमेर में अपने दिन काट रहे हैं। शिक्षा पर रियासत की आमदनी का पाँच प्रतिशत भी खर्च नहीं किया जाता, किन्तु महाराणा साहब के निजी खर्च में बारह प्रतिशत से भी अधिक खर्च होता है। पुरुषों में तो सौ पीछे चार-पाँच आदमी साक्षर मिलते भी हैं, परन्तु स्त्रियों की शिक्षा तो शून्य के ही बराबर है। उदयपुर ही क्या, जयपुर और कोटे के अतिरिक्त अन्य रियासतों

(शेष मैटर ३८४ पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)



न्याय

[साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ जी सिलाकारी]

उस दिन विश्वमोहन रूप की अधिकारिणी भारत-सम्राज्ञी नूरजहाँ शाही महल की छत पर मनोहारिणी वासन्ती वायु का आनन्द ले रही थी। चारों ओर हरे-भरे खेतों, वनों-उपवनों में केसरिया रङ्ग भर कर प्रकृति देवी ने शुभानन्द-दायिनी कोमलतर अनुभूति से मनोभावों को प्रेम की रँगरेलियों में निमग्न कर दिया था। सम्राज्ञी ने चारों ओर घूम कर और दूर-दूर तक नज़र दौड़ा कर अपनी धन-धान्यपूर्ण प्रजा को आनन्द-मग्न देखा। उस समय उसकी आँखों मे गर्व और सन्तोष के गहरे भाव स्पष्ट दीख पड़े।

सुविस्तृत नील-गगन में व्योम-विहारी विहङ्गम-वृन्द का स्वच्छन्द उड़ना बड़ा आह्लाददायक था। मानवी हृदय में सुन्दरता के लिए कितना गम्भीर उत्तेजनामय कौतूहल उठता है। परन्तु बेचारे सुन्दर पुष्प सुन्दर होने के कारण ही तोड़ लिए जाते हैं। वचन-माधुर्य के सौन्दर्य के कारण ही व्योमविहारी कीर पिंजड़े में बन्द होकर प्यासा मरता है। सुन्दर हरिणों का ही सब से अधिक शिकार खेला जाता है। सौन्दर्य को कौतूहलवश मसल देना ही मानो मानवीय स्वभाव बन गया है।

लहराते हुए घुँघराले बालों वाली नवयौवना बाँदियों ने मानो विहङ्गों की स्वाधीनता से ईर्ष्यान्वित होकर उन्हें मारने की ठानी। एक ने अर्ज़ की—"मल्कये-आलम! हम लोग आज हुज़ूर के हाथों से इन परिन्दों का शिकार किया जाना देखना चाहती हैं। तमञ्चे में गोलियाँ भर दी गई हैं।"

एक बार ऊपर सिर उठा कर अस्ताचलगामी सूर्य को भी पूर्ण चन्द्रोदय के भ्रम में डालने वाली मनोहारिणी प्रभा छिटकाती हुई नूरजहाँ ने नीले आकाश के अञ्चल में उड़ते हुए विहङ्गों को मण्डल बाँध कर अपने-अपने घोंसलों की ओर जाते हुए देखा। फिर बाँदी की ओर मुँह फेर कर कहा 'लाओ'। उत्तर मे 'लीजिए' कह कर बाँदी ने बड़े अदब से नूरजहाँ के अमल कमल-छवि-विनिन्दित हाथ मे तमञ्चा दे दिया। नूरजहाँ ने कलकलवाहिनी पुण्य सलिला यमुना की ओर अमराई में जाती हुई विहगावलि को लक्ष्य कर तमञ्चे का घोड़ा दबाया। 'दन्-दन्' शब्द करती हुई दो गोलियाँ छूट पड़ीं। फिर तो बाँदियों को इच्छित अवसर मिल गया। उन्होंने भी अपने लक्ष्यभेद चातुर्य द्वारा अनेक पक्षियों को निर्जीव कर छत पर गिरा दिया। कुछ देर बाद सायङ्कालीन धुँधले प्रकाश को देख कर सम्राज्ञी छत से नीचे चली गईं।

२

वासन्ती चाँदनी रात थी। शाही रङ्गमहल उर्वशी और तिलोत्तमा जैसी सुन्दरी नर्त्तकियों के हाव-भावमय नृत्यकला और उनके कोमल सुरीले कण्ठ से निकले स्वर की झङ्कार से गूँज रहा था। तबले की ठनक, झाँझों की झनक और आभूषणों की खनक ने मधुर वीणालाप से तन्मय होकर एक अनोखा समा बाँध दिया था। रूप-गुण-गर्विता नूरजहाँ अपने अनन्य प्रेमी, भारत के विलास-प्रिय सम्राट जहाँगीर की बग़ल में एक रत्न-सिंहासन पर बैठी हुई सङ्गीत की स्वर-लहरी के आनन्द में निमग्न थी।

मदिरा के नशे में झूमते हुए सम्राट जहाँगीर ने कहा—"साकी, ला शराब!" अत्यन्त सुन्दरी तरुण बाँदी ने अपनी रसीली सुन्दर आँखों से एक बार सम्राट के मुख की ओर देखा, फिर रत्नजटित सुन्दर सुराही से रत्नजटित प्याले में शराब ढाल दी। सम्राट ने ज्योंही प्याला होंठों से लगाया, त्योंही घण्टे का घोष हुआ। एक क्षण में ही समस्त वायु-मण्डल शान्त हो गया। सब जैसे के तैसे, जहाँ के तहाँ चित्र-लिखित से ठहर गए। सम्राट जहाँगीर ने मदिरा का प्याला होंठों से अलग हटाते हुए अधिकारसूचक उच्च स्वर मे कहा—"यह क्यों बजा? किसने बजाया?" दस्तबस्ता अर्ज़ करती हुई बाँदी ने सिर झुका कर कहा—"दीन दुनिया के मालिक, कोई फ़रियादी ग़रीब औरत इन्साफ़ माँगने आई है।" मदघूर्णित नेत्रों से सुन्दरी बाँदी की ओर देख कर सम्राट ने कहा—"जा, उसे समझा कर कह दे कि कल दरबार में हाज़िर हो।" "जो हुक्म, जहाँपनाह!"—कह कर बाँदी ज़मीन छूकर चली गई।

पुनः राग-रङ्ग होने लगा। सुन्दर स्वर-लहरी की मधुर झङ्कार से हृदयाह्लाद का ज्वार सा आ रहा था। नूरजहाँ के हाथ को अपने हाथों में लेकर सम्राट ने कहा—"नूरजहाँ!"

नूरजहाँ—"मेरे मालिक!"

"कितनी सुन्दर हो, तुम।"

"जहाँपनाह!"

"क़ुदरत ने सारी ख़ूबसूरती का सार मानो तुम्हीं में बन्द कर दिया है। कैसी उन्मादकारिणी सुन्दरता है, प्यारी! जी चाहता है कि तुम्हें ही देखा करें। मगर × × ×"

"मगर क्या जहाँपनाह!"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो जहाँपनाह?"

जहाँगीर—देखता हूँ कि कभी-कभी तुम बड़ी सञ्जीदा हो जाती हो। तुम्हारे चेहरे पर सञ्जीदगी और उदासी की छाप देख कर मेरा दिल दहल जाता है। तुम मानो मेरी होकर भी मुझसे बहुत दूर चली जाती हो। क्या सबब है, इसका?

नूरजहाँ—मत पूछिए मेरे मालिक! मेरी पुरानी याददाश्त जाग उठती है, उस वक़्त मानो कोई अपने ज़बर्दस्त हाथों से मेरे नरम कलेजे को मसलने लगता है।

जहाँगीर—तो क्या तुम अब भी मुझसे नफ़रत करती हो?

नूरजहाँ—मैंने आपसे कभी नफ़रत नहीं की। मैं आपसे न नफ़रत कर सकती थी और न कर सकती हूँ।

जहाँगीर—तो फिर नूर, मेरे इतने चाहने पर—सब कुछ निछावर करने पर—तुम फ़िक्रमन्द क्यों हो जाती हो? नूरजहाँ, नूरजहाँ, तुम्हारे लिए मैंने क्या नहीं किया! एक बार तुम्हीं कहो कि क्या मैंने तुम्हारे लिए अपने वालिद बादशाह मरहूम से बग़ावत नहीं की? क्या मैंने तुम्हारे लिए ही मुग़ल सल्तनत के ज़बर्दस्त पाए वज़ीरे-आज़म शेख़ अब्बुलफ़ज़ल को अपने वफ़ादार दोस्त राजा वीरसिंहदेव से बुन्देलखण्ड के घने जङ्गलों में क़त्ल नहीं कराया? और, और नूरजहाँ, क़सम ख़ुदा की, तुम्हारे लिए—सिर्फ़ तुम्हारे लिए—मैंने बादशाह होकर भी वह किया, जो मुझे हर्गिज़ न करना चाहिए था। ओफ़! उसकी कसक अभी तक कलेजे में बाक़ी है। बेचारा बेक़ुसूर शेर × × ×

नूरजहाँ—बस करो, मेरे मालिक, बस करो। उस दिल दुखाने वाली बात को ज़ुबान पर न लाना ही अच्छा है।

जहाँगीर—मगर सच तो यह है नूर! मेरी नूर!! मैं तुम्हारे बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम देवी हो नूरजहाँ, तुम्हें पाकर मैं कुछ और ही बन गया हूँ। पहले मैं बाग़ी था, ख़ूनी था, पर अब शाहन्शाह हूँ। लेकिन

नूरजहाँ, यह तो बतलाओ कि तुम क्या सचमुच मुझे उसी दिल से चाहती हो, जिस दिल से मैं तुम्हें चाहता हूँ। सच-सच बता दो, तुम्हे मेरी क़सम।

सुनते ही नूरजहाँ एक बार सिहर उठी। उसने काँपते हुए हाथों से सम्राट के हाथ को पकड़ कर क्षमा-याचना का भाव दिखाते हुए सकरुण दृष्टि से उसके मुख की ओर देखा। फिर नारी-सुलभ लज्जा का सफल अभिनय करती हुई वीणा-विनिन्दित मधुर स्वर में कहा—जहाँपनाह, कौन जानता है, किसके दिल में क्या हो रहा है? मुहब्बत करने वाला अपने दिलवर को ख़ुश रखने के लिए हमेशा अपने दिल पर ज़ब्र करता है, और अपने विचारों और लालसाओं का ख़ून करके अपनी ख़ुशी को अपने दिलवर की ख़ुशी में मिला देता है। फिर कौन किससे किसकी मर्ज़ी पूछता है। मेरे मालिक, सच तो यह है कि नूरजहाँ आपकी थी, आपकी है और आपकी ही रहेगी। दिल को दिल से कौन जुदा कर सकता है? शाहे दोजहाँ, मैंने एक स्वप्न देखा था। स्वर्गीय सम्राट की आज्ञा से मेरी शादी किसी दूसरे के साथ कर दी गई थी। मैं मानो ज़बर्दस्ती उठा कर दूसरे की गोद में डाल दी गई थी। स्वर्गीय सम्राट की आज्ञा और धर्म की पाबन्दी निहायत ज़रूरी समझ कर मैंने अपने दिल पर जो जब्र किया है, उसे मैं ही जानती हूँ। एक तरफ़ दिल की मर्ज़ी थी—दिल मचल-मचल जाता था और दूसरी तरफ़ दुनिया में अमन-आमान रखने वाले क़ानूनों और मज़हब की पाबन्दी का ख़्याल था। मेरे मालिक, आपको क्या बतलाऊँ कि मेरे दिल पर कैसी बीत रही थी।

जहाँगीर—मगर नूर, तुमने तो एक अरसे तक मेरी ओर देखा तक नहीं। उस वक़्त, जब मैं अपनी मुहब्बत का इज़हार करने तुम्हारे पास पहुँचता था, तब तुम मुझे देखते ही मुँह क्यों फेर लेती थीं? तुम्हारी उस हरकत से मेरे कलेजे में कैसा दर्द होता था, नूर!

नूरजहाँ—उससे कहीं ज़्यादा दर्द मेरे मालिक, मेरे कलेजे में होता था। हृदय में प्रेम और कर्त्तव्य का जङ्ग छिड़ जाता था। मैं, मैं उस समय विचारों की उत्ताल तरङ्गों में तैरती-उतराती, न जाने किधर बह जाती थी। बड़ी तड़पन होती थी, मुझे। मेरे मालिक, उस समय मेरा ख़्याल तो फ़र्ज़ की तरफ़ था। पर यह दिल मुहब्बत की तरफ़ था। घण्टों, दिनों, महीनों, सालों यह लड़ाई होती रही। मेरी ज़िन्दगी का जहाज़ गहरे तूफ़ान में पड़ा रहता था। मगर मेरे मालिक, आख़िरकार मुहब्बत की ही जीत रही। दिल ने अक़्ल को नीचा दिखाया। उसी दिन मैंने आपको पाया था। उस दिन मैंने देखा था कि मेरे रोएँ-रोएँ में आप ही थे। उस दिन मैंने जैसे सब कुछ पा लिया। फिर दिल में और कोई तमन्ना बाक़ी न रह गई।

जहाँगीर—तब तो नूर, तुम मुझ पर ख़फ़ा न थीं।

नूरजहाँ—कभी भी नहीं मेरे मालिक, यह ग़ैर-मुमकिन है।

जहाँगीर—मगर तुम्हारे मुँह फेर कर बैठ जाने से मैं तो यह साफ़ समझता था कि तुम मुझे नहीं चाहती।

नूरजहाँ—क्योंकि आपकी मुहब्बत बहुत ही पुर-जोश थी। आप उतावले आशिक़ थे। आपकी मुहब्बत में बेताबी थी। इश्क़ सब्रतलब और तमन्ना बेताब होती है। अगर आपने उस वक़्त मेरे मुँह की तरफ़ ग़ौर से देखने की तकलीफ़ गवारा की होती, मेरे दिल के तूफ़ान का अन्दाज़ा लगाया होता, तो मेरे मालिक, आपको यह ख़्याल न होता। आप उसी वक़्त ताड़ लेते कि मैं आपसे मुहब्बत करती थी।

जहाँगीर—जाने दो नूरजहाँ, हम तुम्हें चाहते हैं, तुम हमें चाहो, फिर कुछ न चाहिए।

नूरजहाँ—यही तो है मेरे मालिक! यही हो रहा है।

यह कह कर नूरजहाँ जहाँगीर की ओर झुकी। जहाँगीर ने अपना हाथ उसके गले में डाल दिया। यह देख कर मजलिस उठी। नाच-रङ्ग बन्द हो गया। धीरे-धीरे सब बाँदियाँ चल दीं। जहाँगीर ने नूरजहाँ को हृदय से लगाते हुए कहा—"मेरी नूर!" उसके उत्तर में जहाँगीर के गले में मृणाल-मनोहर बाहु डाल कर विश्व-सुन्दरी नूरजहाँ ने कहा—"मेरे प्यारे!"

३

सुखई धोबी की घरवाली रात से ही छाती पीटती हुई ज़ोर-ज़ोर से रोती रही थी। उसके उच्च स्वर के विलाप के मारे पड़ोसी रात भर जागते रहे थे। कल सायङ्काल के समय गोधूलि बेला में किसी ने शाही

महल की छत पर से गोली चलाई थी। उससे घायल हो उसका पति सुखई मर गया था।

सम्राट जहाँगीर के साम्राज्य में—नूरजहाँ की सल्तनत में—न्याय धन के बदले मोल नहीं लिया जाता था। दीनातिदीन को भी न्याय सुलभ था। शाही महल से स्वर्ण की एक मोटी साँकल लटकती थी, जिसका एक छोर महल के एक बड़े घण्टे से बँधा था और दूसरा छोर महल की दीवाल पर से होता हुआ नीचे के फ़र्श को छूता था। कोई भी व्यक्ति, जिसे सम्राट से न्याय पाने के हेतु प्रार्थना करनी होती थी, किसी भी समय जाकर उस साँकल को खींच सकता था। साँकल के खिचते ही घण्टा बज उठता था, जिससे सम्राट को विदित हो जाता था कि कोई न्याय का प्रार्थी है और वे प्रार्थी की प्रार्थना सुन कर उसका यथोचित न्याय कर देते थे। सुखई की घरवाली कल ही साँकल खींच आई थी और उसे आज दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा मिल चुकी थी। पतिहन्ता व्यक्ति को दण्ड दिलाने के आवेश में सुखई का दाहकर्म शीघ्र ही कर-करा के वह शाही दरबार में पहुँची।

सम्राट जहाँगीर के वैभवशाली विशाल दरबार मे, जहाँ अनेक रक्षित राजा, महाराजा, अमीर-उमराव और शूर-सामन्त एवं गुणी-कलाविद सुशोभित आसनों पर बैठे हुए थे, रत्नों की कान्ति से निराली छटा छहर रही थी, मीरमुन्शी रत्नजटित स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे भारत के मुग़ल-सम्राट जहाँगीर को ज़रूरी काग़ज़ात सुना कर उन पर हुक्म ले रहा था, एक चोबदार बड़ी विनम्रता से ज़मीन छूकर खड़ा हो गया। सम्राट ने उसकी ओर देख कर पूछा—"क्या है?"

चोबदार ने कहा—जहाँपनाह! एक धोबिन हाज़िर हुई है। वह दस्तबस्ता अर्ज़ करती हुई हुज़ूर की ख़िदमत में इन्साफ़ की फ़रियाद करने आई है। कहती है कि कल शाम को शाही महल की सोने की साँकल खींचने पर उसे दरबार मे हाज़िर होने का हुक्म हुआ था।

जहाँपनाह—जाओ, उसे फ़ौरन हाज़िर करो।

'जो हुक्म' कह कर चोबदार चला गया। शाही तख़्त के पीछे खिड़की में नूरजहाँ बैठी थी। सम्राट राजकार्य में उसकी राय लिया करता था और जो कुछ वह राय देती थी, उसी के अनुसार सम्राट निर्णय करता था। खिड़की पर मूल्यवान मोतियों की चिक पड़ी थी। चोबदार ने तुरन्त ही धोबिन को दरबार में हाज़िर किया। धोबिन वहाँ के विशाल वैभव को देख कर क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गई। फिर सँभल कर उसने धरती छूकर हाथ जोड़े और सम्राट की दीर्घायु की कामना करके वह बोली—"अन्नदाता! कल सायङ्काल मैं जमुना जी के किनारे अपने धोबी के साथ कपड़े धो रही थी। अचानक शाही महल की छत पर से किसी ने बन्दूक चलाई। गोली मेरे धोबी को लगी, जिससे ग़रीब की मौत हो गई! मैं लुट गई, अन्नदाता!" यह कह कर धोबिन फूट-फूट कर रोने लगी।

धोबिन की बात सुनते ही नूरजहाँ सिहर उठी। उसका कोमल हृदय भयङ्कर अनिष्ट की आशङ्का से काँप उठा। इसी समय सम्राट ने पूछा—"मलका, तुम्हें मालूम है, गोली किस महल से चलाई गई थी?"

कम्पित स्वर में नूरजहाँ ने उत्तर दिया—मेरे!

जहाँगीर—"तुम्हारे?" जहाँगीर के स्वर में शङ्का का भाव था।

नूरजहाँ—"हाँ जहाँपनाह, मेरे ही महल से गोली दाग़ी गई थी।" नूरजहाँ के स्वर में दृढ़ता थी।

जहाँगीर—तो फिर क्या होना चाहिए?

नूरजहाँ—ख़ूनी को उसके आमाल की सज़ा मिलनी चाहिए।

जहाँगीर—क्या सज़ा लोगी?

नूरजहाँ—मौत के बदले मौत।

जहाँगीर—बहुत कड़ी सज़ा होगी।

नूरजहाँ—जुर्म भी तो बहुत सङ्गीन है, जहाँपनाह!

जहाँगीर—जानती हो ख़ूनी कौन है?

नूरजहाँ ने दृढ़ता से उत्तर दिया—मैं।

"तुम?" कहते हुए सम्राट जहाँगीर अत्यन्त विचलित हो उठे। स्वेद की बूँदें माथे पर झलक आईं। कुछ देर तक स्तम्भित रहने के बाद उन्होंने दिल में सोचा—"इन्साफ़ तो करना ही होगा। शाही तख़्त ख़ुदा की न्यामत है। इस पर बैठ कर इन्साफ़ ही करूँगा। मै भले ही पिस जाऊँ, पर इन्साफ़ का ख़ून न होने दूँगा।" फिर धोबिन की ओर मुड़ कर सम्राट ने कहा—"ठहरो, तुम्हारा इन्साफ़ होगा। घबराओ नहीं।"

सम्राज्ञी नूरजहाँ ने चिक के पीछे से फिर कुछ कहा। जहाँगीर उच्च-स्वर में बोले—कल शाम को जो धोबी मरा है, वह नूरजहाँ बेगम की गोली का शिकार हुआ है। बेगम ने एक बाज़ पर गोली चलाई थी, पर वह उचट कर धोबी के लगी, जिससे वह बेचारा मर गया। मैं नूरजहाँ बेगम को क़त्ल के जुर्म में मुजरिम ठहराता हूँ और हुक्म देता हूँ कि नूरजहाँ मुजरिम की हैसियत से चेहरे का नक़ाब हटा कर दरबार मे खड़ी हो।

सम्राट का यह आदेश सुनते ही वज़ीर आसफ़ुद्दौला ने कहा—जहाँपनाह, बेगम के साथ हुज़ूर × × ×

जहाँगीर ने "कुछ नहीं सुन सकता"—कह कर उसे चुप कर दिया।

महावत ख़ाँ ने कहा—क्या बेगम को बेनक़ाब आना पड़ेगा?

जहाँगीर—हाँ, वह मुजरिम है।

महावत ख़ाँ—मगर शरीयत का हुक्म × × ×

जहाँगीर—शरीयत इन्साफ़ का ख़ून करने का हुक्म नहीं देती।

महावत ख़ाँ—मगर तो भी हुज़ूर, वे हिन्दोस्तान की अज़ीमुश्शान मलका हैं।

जहाँगीर—कोई भी क्यों न हों, ख़ुदा की नज़र में सब एक हैं। इन्साफ़ सबके लिए बराबर है। मैं फिर हुक्म देता हूँ कि नूरजहाँ बेगम मुजरिम की हैसियत से दरबार में खड़ी हों।

राजा वीरसिंहदेव—तो क्या आज भारत की सम्राज्ञी को सम्राट के सम्मुख अपराधिनी बन कर दरबार में आना ही पड़ेगा?

जहाँगीर—हाँ, आना ही पड़ेगा राजा साहब, मै बादशाह हूँ। कुछ भी हो, मुझे इन्साफ़ करना ही पड़ेगा।

वीरसिंहदेव—यह नहीं हो सकेगा, सम्राट!

जहाँगीर—क्यों न हो सकेगा, राजा साहब?

वीरसिंहदेव—भारत की सम्राज्ञी का अपमान भारत-सम्राट के दरबार में कभी नहीं किया जा सकता।

यह सुनते ही सम्राट जहाँगीर आवेश में बिजली के समान तड़प कर फ़ुर्ती से उठे और पलक मीचते धोबिन के पास पहुँच कर बोले—"अच्छा, यह नहीं हो सकता तो यह तो हो सकता है।" इतना कह कर सम्राट जहाँगीर ने अपनी कमर से कटार निकाली और उसे धोबिन के हाथ मे बलात् थमाते हुए वे उससे बोले—"धोबिन! तू इन्साफ़ चाहती है? अच्छा, तुझे इन्साफ़ ही मिलेगा। जिस तरह नूरजहाँ ने तेरे ख़ाविन्द को क़त्ल करके तुझे बेवा बना डाला है, उसी तरह तू भी मुझे मार कर नूरजहाँ को बेवा बना दे, ले।" यह कहते हुए सम्राट जहाँगीर ने घुटनों के बल बैठ कर सीना उघार दिया। दरबार में सन्नाटा छा गया! धोबिन ठिठक कर रह गई!

❀ ❀ ❀

(३७९ पृष्ठ का शेषांश)

की भी यही दशा है, जिनमें बूँदी, टोंक, करोली और बाँसवाड़ा की दशा तो अत्यन्त शोचनीय है।

उदयपुर बड़ा रमणीय नगर है, परन्तु सफ़ाई का इन्तज़ाम पर्याप्त नहीं है। देहातों में तो न राज्य की ओर से सफ़ाई का कोई प्रबन्ध है, न अशिक्षित किसान ही कभी सफ़ाई की आवश्यकता अनुभव करते हैं। उदयपुर मे भी भाषण की स्वतन्त्रता बिलकुल नहीं है और कई अख़बार उस राज्य में घुसने नही पाते। लगभग दस वर्ष पूर्व उदयपुर राज्यान्तर्गत ठिकाना बिजोलिया की प्रजा ने ठिकाने के अनेक अनुचित कर और कामदार के अनेक अत्याचारों से तङ्ग आकर बड़ा ज़बरदस्त सत्याग्रह छेड़ा था, जो तीन साल तक जारी रहा था। उस समय राज्य ने ठिकाने के राव को अपना प्रबन्ध सुधारने के लिए तो विवश नहीं किया, परन्तु सैकड़ों सत्याग्रही किसानों को ठिकाने की और रियासत की जेलों में सड़ाया। उदयपुर के सोलहों को विस्तृत जुडीशियल अधिकार होने के कारण ठिकानों की प्रजा बड़ी तङ्ग रहती है।

बेगार उदयपुर के शासन का ख़ास कलङ्क है और ज़कात है वहाँ की निरन्तर व्याधि। राजपूताने की कई रियासतों ने बेगार को सङ्कुचित कर दिया है और जो कुछ ली जाती है उसकी एवज़ में लोगों को कुछ दैनिक मज़दूरी दी जाती है, परन्तु उदयपुर राज्य के उच्चाधिकारियों का अभी इस ओर कुछ ध्यान नहीं गया है।

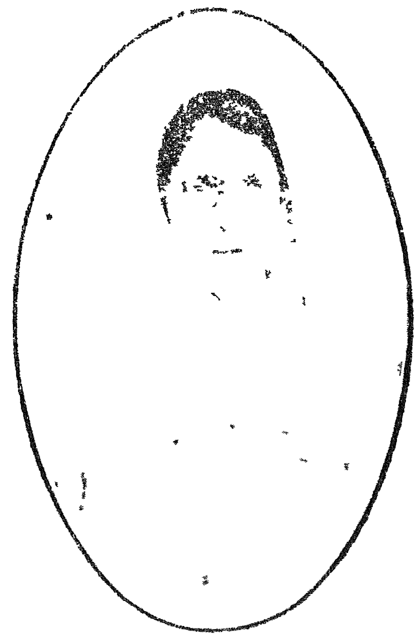
हम आशा करते हैं कि उदयपुर का शासन शीघ्र ही सुधर कर आधुनिक साँचे में ढल जायगा और उदयपुर के महाराणा वास्तव मे हिन्दुओं के सूर्य बनेंगे।



श्रीमती रामप्यारी—आप कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर की अध्यापिका हैं और अभी हाल में ही उक्त विद्यालय के लिए धन-संग्रहार्थ विद्यालय की मुख्याधिष्ठात्री के साथ अफ़्रिका गई हैं।



कुमारी राजकुमारी शिवपुरी (बैठी हुई) और कुमारी गिरिराज कुमारी (खड़ी)—जिन्होंने प्रयाग की कायस्थ-पाठशाला की भाषण-प्रतियोगिता और गायन-प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कार और रजत-पदक प्राप्त किया है।



कुमारी नारायणी देवी, मुख्य-अधिष्ठात्री कन्या-आश्रम, जालन्धर। आप कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर के लिए धन-संग्रह करने अफ़्रिका गई हैं।

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?



महिलाओं को कला-कौशल की शिक्षा देते हुए—श्रीमती ईथल लेग्निस्का—आप न्यूयॉर्क (अमेरिका) के 'वीमेन्स सिम्फ़ोनी ऑर्चेस्ट्रा' नामक सङ्गीत-विद्यालय की सञ्चालिका हैं।



अपनी राष्ट्रीय पोशाक में कुछ वैल्श लड़कियाँ, जिन्होने हाल ही मे इङ्गलैण्ड के 'माउण्ट स्नोडन' नामक पर्वत की चढ़ाई की थी।



मिस पेट्रिशिया मेण्डल, जो 'हवाई पुलिस' में प्रवेश पाने वाली प्रथम अमेरिकन महिला हैं।



रामायण या रमणी !!!

"वञ्चक भगत कहाय राम के, किङ्कर कञ्चन-कोह-काम के।"

नवयुवकों का कर्तव्य

[श्री० जगदीशचन्द्र जी]

यदि हम विद्यार्थी हैं, तो विद्यार्थी का अर्थ 'किताब का कीड़ा' कभी नहीं होता। विद्योपार्जन के अतिरिक्त भी हमारा अधिकांश कर्तव्य अवशिष्ट रह जाता है। क्या हुआ यदि हम शेक्सपीयर के ड्रामे और मिल्टन के सानेट ही चाटते रहे? नौकरी मिल जावेगी? तो अब तो वह भी असम्भव है—वह वेतन भी अलभ्य है, जो हम होस्टेल में बैठे उड़ा देते हैं। और, यदि हम बेकार हैं, तो वास्तव में हमारा जीवन ही बेकार है। क्योंकि यदि मनुष्य काम करना चाहे तो वह बेकार नहीं रह सकता; बेकार वही रहेगा जिसमें उत्साह नहीं, बल नहीं।

हमारे पढ़ने का समय लद गया। अब यदि पढ़ना है तो पाठ्य विषय भी कुछ और ही होगा। वर्तमान पाठन-प्रणाली की बड़ी तीव्र आलोचनाएँ हो चुकी हैं। महात्मा गाँधी का कहना है कि स्वराज्य-प्राप्ति के पश्चात् इसे बिलकुल बदल देना पड़ेगा। एक अङ्गरेज़ का कथन है कि आजकल की पढ़ाई 'Too distributive' है, जिससे 'Flabbiness and weakness of mind' (मस्तिष्क की दुर्बलता) हो जाने का भय है। वास्तव में हमें इतने विषय पढ़ाए जाते हैं कि हम किसी एक में भी निपुण न होकर सब में अधूरे रह जाते हैं। कारण यह है कि हमें मानसिक विकास के निमित्त शिक्षा नहीं दी जाती, वरन् नौकर बनाने के लिए दी जाती है। परिणाम यह होता है कि न तो हमें नागरिकता (Citizenship) का ज्ञान होता है और न सद्-व्यवहारों का ही। हो कैसे? हमारे शिक्षक अथवा हमारे बड़े भी तो अनुकरणीय नहीं।

परन्तु हमारी और भी आवश्यकताएँ हैं, जिनका आजकल स्कूल-कॉलेजों या परिवारों से कोई सम्बन्ध नहीं समझा जाता। मानव-कर्तव्य की पहली सीढ़ी शुद्धाचरण है। परन्तु हमारे समाज का वातावरण अति दूषित हो रहा है; हमारे माता-पिता 'शुद्धाचरण' के अर्थ ही नहीं समझते। इसलिए अब हमें देश के नेताओं को अपना सच्चा पथ-प्रदर्शक मान कर अपने आचार-व्यवहार बनाने होंगे। हमें प्रेम-सत्य-सेवा का भाव जाग्रत करना होगा। केवल दुर्बलों एवं निर्धनों पर दया कर, उनकी सेवा-सहायता करने से ही, हमारा विश्वास है, हृदय के अन्य उत्कृष्ट भाव स्वयमेव उत्पन्न हो जाते हैं। सेवा में यह बल है। गाँधी ने सत्य का प्रचार किया, ईसा ने प्रेम का प्रतिपादन किया, बुद्ध ने दया का पाठ पढ़ाया, परन्तु हमारी अटल धारणा है कि इन सबसे उत्तम धर्म 'सेवा' है। सेवा करिए, दया, प्रेम, सहानुभूति के भाव स्वयं आप में आ जाएँगे। न भी आएँ तो कोई हर्ज नहीं। हमें सेवा करना है, प्रेम का प्रदर्शन नहीं। उस प्रेम से क्या लाभ, जिसने सेवा के निमित्त प्रेरित नहीं किया?

इसके अतिरिक्त सफलता-प्राप्ति के हेतु उत्कट इच्छा, दृढ़ निश्चय, पूर्ण अध्यवसाय, वास्तविक योग्यता, अटल विश्वास आदि की भी आवश्यकता होती है। हमें पशुता से या सम्मान-रहित मानवता से यथार्थ मनुष्यता में परिणत होना होगा। ढीला-ढाला जीवन किस काम का? क्यों न हम उद्योगी एवं प्रयत्नशील बनें? ऐसे प्रयत्नशील, कि उसी में अपने प्राण तक दे दें और हँसते रहें। यह देह मिली किस लिए है, जिसका कुछ ठीक नहीं? तेज़ी से जीवन की दौड़ में आगे निकल जाने के लिए। यूरोप कहाँ चला गया? परन्तु भारत अभी वहीं है, और उसी में सन्तुष्ट है!

ये तो मानसिक उन्नति के साधन हुए, जो प्रथम आवश्यक हैं। परन्तु अभी एक बड़ा भाग कार्य का रह गया है। वास्तव में कार्य से ही ज्ञान की भी अभि-वृद्धि होती है। क्योंकि ज्ञान एवं कर्म का अन्योन्य

सम्बन्ध है ; क्योंकि ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, और अनुभव के लिए क्रिया परमावश्यक है। यदि कोई मनुष्य परोपकार, दया और सहानुभूति पर केवल किताबें ही पढ़ता रहे, तो वह समय का सत्यानाश ही करता रहेगा। एक बार किसी दरिद्र को दान देने के कोमल भाव जो हमें सिखा देते हैं, वह पुस्तकें नहीं सिखा सकतीं। तात्पर्य यह कि हमारे कर्तव्य का क्रियात्मक कार्य से बहुत सम्बन्ध है। कर्म ही ज्ञान—वह ज्ञान है जिसे भारतीय दर्शन साहित्य ने 'आध्यात्मिक सुख' और मनुष्य-जीवन का उद्देश्य बताया है, और जो पश्चिमीय अनात्मवादी (Materialistic) विद्वानों के 'आधिभौतिक सुख' से भिन्न है—का उद्गम-स्थान है और यह निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होता है। बस इसी ज्ञान—आध्यात्मिक सुख—के प्राप्त्यर्थ जो कार्य किए जाते हैं, उन्हीं को कर्तव्य कहते हैं। इसी का नाम धर्म भी है।

हमारा प्रथम धर्म पृथ्वी पर यह है कि हम जीवित रहें। प्राण से ही नहीं, वरन् नीरोग मन तथा हृष्ट-पुष्ट शरीर से। यह याद रखना चाहिए कि हम जो कुछ भी कर सकते हैं, बलिष्ट रह कर ही अच्छी तरह तथा अधिक कर सकते हैं। 'Survival of the fittest' बलवान ही अधिकार प्राप्त करेगा--प्रकृति का यही नियम भी है। मर जाना बड़ा भारी पाप है। केवल उसी को मर जाना चाहिए, जिसकी भुजाओं में अपने लिए रास्ता बनाने का बल न हो। और निरुद्देश्य तथा उत्साह-हीन मनुष्य तो सौ मर जाने के बराबर है। परमात्मा ने हमें पैदा किया है, स्वयमेव प्रयत्न करने के लिए और इसीके हेतु हमें काफ़ी स्वाभाविक आयु भी दी है, जिसका पता, यदि हम नियमानुकूल रहे तो लग सकता है। यह मानव-शरीर, जो प्राणि-जगत में सर्वोत्तम है, यह समझिए, कि आपकी परीक्षा के लिए मिलता है। इसमें आप काम करने के लिए—स्वत्वों की रक्षा और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए—स्वतन्त्र बना दिए जाते हैं!

परन्तु शोक तो यह है कि हमारे अभिभावक अपने साथ हमें भी ले डूबना चाहते हैं। भारत के युवक-समुदाय की दुर्बलता का वे ही मुख्य कारण हैं। उन्होंने हमें भीरु तथा परिश्रापटु बना रक्खा है। कारण यह है कि वे मोह में पड़े हैं। उन्हें, सच मानिए, हमसे प्रेम नहीं। क्योंकि प्रेम विनिमय अथवा व्यापार की भावना नहीं है। हमारे माँ-बाप हमें इसलिए पढ़ाते और पालते हैं कि हम उनका नाम चलाएँ। हमारा चाहे कुछ भी हो, परन्तु उनका नाम मरने के बाद भी चलता रहे! उनके स्वार्थ हमारे ऊपर निर्भर हैं। हमारा शीघ्रातिशीघ्र विवाह कर लेना—हमारा एक व्यक्तिगत अधिकार छीन कर, जिसमें वह केवल अनुमति देने के अधिकारी थे, उन्होंने अपने कर्तव्य में दाख़िल कर लिया है, यद्यपि इससे उनका विशेष प्रयोजन यही होता है कि अपनी ईश्वर-भक्ति की उम्र में बच्चे खिलाएँ। हमें कई दृष्टान्त ऐसे मालूम हैं, जहाँ उन्होंने बलपूर्वक अपनी सन्तानों का ब्याह, उनकी इच्छा के विपरीत धन के लोभ में, कर दिया है। यथार्थ में वे उनकी नहीं, अपनी शादी करते हैं।

उनका भ्रम है कि मनुष्य सदैव एक सा ही काम कर सकता है। किन्तु निःसन्देह यह आवश्यक नहीं कि जो उन्होंने अपने समय में किया था वही हम भी करें। यह भी आवश्यक नहीं कि बड़े होकर हम उनका कहना मानें ही। क्योंकि वृद्ध पुरुष का युवक से लाज़िमी बुद्धिमान होना किसी वेद-शास्त्र में नहीं लिखा है। पङ्गर पिट २२ वर्ष की अवस्था में इङ्गलैण्ड का 'Prime Minister' (प्रधान सचिव) हो गया था। वृद्धों को चाहिए कि सांसारिक सुखों का ख़याल छोड़ दें। आख़िर, किसके लिए इतना तूल करना, जब अन्तिम दिन दूर नहीं? उन्हें पता नहीं कि यह मोह ही सब दुःखों की खानि है? अपने परदादा भगवान कृष्ण की बातें क्या वे भूल गए? क्या इस बाह्य शरीर का कुछ भी मूल्य अथवा अस्तित्व उन्होंने बताया है? हम भाई, भगिनी, मित्र तो इसलिए हैं कि साथ रहते हैं, अन्यथा और कोई सम्बन्ध थोड़े ही है, सिवाय इसके कि सब मनुष्य हैं और उस एक प्रभु की सन्तान हैं। चिरस्थायी तो आत्मा है। उसी को उन्नत करना मानव-जीवन का उद्देश्य है। और उसका उत्थान सुकार्यों से ही होता है, न कि विवाह करके क्लर्क बन जाने और शान्तिमय जीवन बिताने से, चाहे पड़ोस में ही किसी बेचारे पर विपत्ति पड़ी हो।

हम विवाह का विरोध नहीं करते। भारतीय समाज, जिसका आचरण हद से ज़्यादा बिगड़ चुका है, इसके

बिना उच्छृङ्खल हो जाएगा। हमारा तो युवक भाइयों से यह कहना है कि वे अध्यवसाय करें। अर्थात् कुछ वर्ष तक यह अभ्यास करें कि वे अपने मन में बिना दुर्विचार लाए रह सकते है या नहीं? यदि नहीं रह सकते, तो उन्हें विवाह कर लेना होगा और यदि रह सकते है तो विवाह की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु यह कार्य दो-चार दिन या महीनों का नहीं, वर्षों का है। इसका एक बडा बढ़िया तरीक़ा यह है कि हम अपना एक जीवन-लक्ष्य बना ले और उसमें इतने लीन हो जायँ कि बुरी भावनाओं को मन में स्थान ही न मिले।

हम अपने ऐसे मिलने वालों को जानते हैं, जो आठों याम स्त्रियों की ही चर्चा किया करते हैं। अनेकों का तो उनसे अनुचित सम्बन्ध भी है। इसका कारण आजकल की हीन सामाजिक अवस्था है। प्राचीन समय में ६ वर्ष का बालक गुरुकुल में भेज दिया जाता था और वहाँ उसे स्त्री की सूरत भी २५ वर्ष पर्यन्त देखने को नहीं मिलती थी; पढाई भी आजकल से भिन्न थी। वे माँ-बाप के नहीं, राष्ट्र की सम्पत्ति समझे जाते थे। यदि धर्मार्थ उन्हें बलि-वेदी पर चढ़ना पड़ता, तो माँ-बाप को यह अधिकार नहीं था कि उन्हे रोके, प्रत्युत वे उन्हें प्रोत्साहित करते थे। क्या आजकल के माता-पिता इतना साहस कर सकते हैं?

एक दूसरी आवश्यकता, जिसे भारत में कम लोगों ने समझा है, नवयुवकों मे आत्मबल अथवा आत्म-निर्भरता की आदत है। बड़ी लज्जा का विषय है कि हमारे छात्र कॉलेज में आते-आते पति तथा प्रायः पिता भी बन जाते हैं, और फिर भी डटे रहते हैं अपने लडके के बाबा के सर पर। कितनी लज्जा तथा अपमान की बात है! दोनों साथ-साथ कभी न होना चाहिए। क़ुसूर हमारे माँ-बापों का भी है, क्योंकि वे बड़े होने पर भी अपने लाडलों को 'पालने का बालक' ही समझते रहते हैं। यदि पहले आधुनिक शिक्षा, तो दूसरे इनका यह व्यवहार भी उन्नति के मार्ग का काँटा बनने का कम उत्तरदायी नहीं है। प्राचीन भारत में कैसी अच्छी प्रथा थी! समृद्धिशाली देश अमेरिका में भी आज यही होता है। लड़के, चाहे वे अमीर हों चाहे साधारण, बहुधा घर से अलग हो जाते हैं और उन्हें निज निर्वाहार्थ स्वयं धनोपार्जन करना पड़ता है, और पढ़ना भी। कोई रसोइया बनता है, कोई चपरासी, कोई कहार। क्या इस प्रकार पढ़े हुए लड़के उद्योगहीन हो सकते हैं? किन्तु आदि-गुरु भारत अभी सोता है, प्रभात की सूर्य-किरणें उसे जगातीं नहीं, मानो थपकी दे रही हैं—हाय!!

उपर्युक्त लक्ष्य ये हो सकते हैं। आजकल हमारी भारत-माँ बेड़ियों में जकड़ी है, समाज पाताल की ओर अग्रसर है, धर्म का गला घुट रहा है और साहित्य में जान नहीं। क्या ये स्पष्ट कुछ काम हमारे करने योग्य नहीं हैं? लड़के कह देते हैं कि देश-सेवा हमारा कर्तव्य नहीं। तो क्या उनके गृहस्थ माँ-बाप या अन्य बूढे इसके उपयुक्त है? नहीं, यह हमारा ही काम है। हम इस बारे मे अधिक न कहेंगे। आजकल तो बच्चा-बच्चा तद्विषयक स्वकर्तव्य समझता है, फिर चाहे उसका प्रकार कोई भी हो।

समाज से हमें घोर युद्ध ठानना है। अनेक विद्वानों का तो विचार है कि भारत की राजनीतिक अवस्था सुधारने से पहिले उसकी सामाजिक दशा पर ध्यान देना अधिक आवश्यक है। हमारा बूढ़ा समाज वर्तमान वातावरण की उपेक्षा करता हुआ रूढ़ियों का उपासक हो रहा है। उसे समय के साथ करवट लेना नहीं आता। परन्तु समय का चक्र उसे पीस डालेगा। आवश्यकता है, क्रान्ति की। हमें बता देना है कि हमारा उत्तरदायित्व हमारे ही ऊपर है। हम समाज से डरें ही क्यों, जब वह स्वयं मुर्दा हो रहा है और अपनी शक्ति खो चुका है? डरें वे, जो बुज़ुर्ग हैं, और जिन पर उसका आतङ्क अभी तक छाया हुआ है। काफ़ी दिनों तक वह 'गुड़ियों का विवाह' कर चुका, और काफ़ी विधवाओं को सता चुका। उसे विधवाओं को अधिकार-च्युत कर विधुरों को सैकड़ों विवाहों की आज्ञा देते लज्जा न आई! उसने एक दीवार खड़ी की है, जिसके दूसरी ओर कुछ दीनजनों को अछूत कह कर निकाल दिया है। निर्वासित न इस ओर के कुओं का पानी पी सकते हैं, न यहाँ के मन्दिरों में पूजा कर सकते हैं और न उसे (समाज को) छू ही सकते हैं। यह घोर अन्याय नहीं तो क्या है? इन्हीं कुकर्मों के कारण हमारा समाज आज तक अपनी पतितावस्था से

नहीं उठ सका है। मनुष्य मनुष्य से घृणा करे, यह न जाने किस नीच पापी मनुष्य के मस्तिष्क का आविष्कार है? घृणा मनुष्य से नहीं, उसके दुर्गुणों से की जाती है, और उन दुर्गुणों के दूर करने का उपाय उनका मानसिक सुधार है। परन्तु यहाँ तो समाज के ठेकेदारों ने उनसे सब सम्बन्ध ही तर्क करा दिए। उन ठेकेदारों पर लानत! उनका नाश हो!!

नवयुवको! समाज हमीं लोगों के योग से बना है। हम ही यदि अच्छे हों तो समाज का काया-पलट कर सकते हैं। हमने आपस में तो भेद-भाव कुछ उठाया है। अपने छात्रालयों में प्रत्येक हिन्दू के साथ खा लेते हैं, और यवनों का छुआ भी खाते-पीते हैं। परन्तु लुक-छिप कर। अब हमें सरे-मैदान आना पड़ेगा। कह देंगे कि जिसे हम सहेतुक (Reasonable) समझते हैं, वह अवश्य करेंगे। यह क्रिया-क्षेत्र हमारा इतना विस्तृत हो कि अछूत उससे बाहर न रह जायँ। उनकी समस्या बड़ी बेढब है। हिन्दू-जाति याद रक्खेगी, यदि उन्हें उसने अपने में से निकाल दिया तो उसका सर्वनाश सरल एवं समीप हो जाएगा। मिलन से हमारा मतलब सहभोज से ही नहीं है। खाना-पीना तो छोटी सी बात है। वास्तव में हृदय मिलने चाहिए। हम अछूतों से इतनी सहानुभूति रखने लगें कि यदि वे हमारे धर्म में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दें, तो हम स्वयं भङ्गी और चमार बन जायँ। हमें उनसे इतना प्रेम हो जाय। कह दें संसार से कि उन्नत होंगे तो हम भी उन्हीं के साथ होंगे, नहीं तो उन्हीं में मिल कर रहेंगे। इङ्गलैण्ड के रहने वाले रस्किन (Ruskin) को निर्धनों से इतनी समवेदना थी कि उसने अपना तमाम धन उन्हीं में बाँट दिया, और स्वयं सड़क पर झाड़ू लगाने लगा। ये बातें हम साम्यवाद से भली-भाँति सीख सकते हैं।

आजकल धर्म तथा भगवान पर बड़ा झगड़ा हो रहा है। एक पक्ष उन्हें मृत्यु-शय्या पर लिटाता है और दूसरा उनका सर्वव्यापी अस्तित्व प्रमाणित करता है। यह झगड़े वास्तव में कभी तय न होंगे। पर यदि उनका अस्तित्व मान भी लिया जाए तो भी हमारी सहानुभूति प्रथम पक्ष की ओर जाती है; क्योंकि वे कर्त्तव्य पर आरूढ़ तो है, दूसरे की भाँति उन्हीं के नाम पर अत्याचार तो नहीं करते। पक्षों के दृष्टान्त के लिए हम रूसी तथा भारतीय हिन्दू-समाज को ले सकते हैं। ईश्वर की कभी यह इच्छा नहीं कि पङ्गु बन कर दिन-रात माला ही जपा जाय। जो अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को नहीं पहिचानते वे यथार्थ में ईश्वर से बहुत दूर हैं। हम ज़ालिम हाकिम को सम्मानहीन गुलाम से धार्मिक समझते हैं। हमारे यहाँ स्वाभिमान-शून्यता को क्षमा, और कायरता को अहिंसा समझा जाता है। हम इसके प्रतिकूल हैं। हमारे विचार में प्रत्येक मनुष्य को अपनी सीमित शक्ति के द्वारा अधिकारों की प्राप्ति और रक्षा करनी चाहिए। और कुछ नहीं तो उसके लिए प्राण तो हम अपने दे ही सकते है। कारलाइल (Carlyle) ने 'Dignity of Labour' नामक निबन्ध में कैसी सुन्दरता तथा सतर्कता से कार्य के पावन महत्व तथा उसकी अलौकिकता का वर्णन किया है। वास्तव में उस प्रकार का वास्तविक मत भी हमारे आस्तिक अन्धविश्वास एवं कूपमण्डूकता से कहीं अच्छा है। धर्म के यथार्थ अर्थ कर्त्तव्य के हैं। यदि हम सच बोलते हैं, सच्चरित्रता से रहते हैं, प्रेम, दया, सौजन्य, सहानुभूति, सहनशीलता आदि को व्यवहार में लाते हैं और अन्य उचित कार्य करते हैं, जिनमें दूसरों को हानि नहीं होती, तो हमें समझना चाहिए कि हम ईश्वराज्ञा की अवज्ञा नहीं करते।

हमारा स्वाभाविक धर्म 'मानव-धर्म' है। हम सब आदमी होने के नाते भाई-भाई हैं, चाहे हिन्दू हों, ईसाई हों, मुसलमान, पारसी, जैन या सिक्ख हों। किसी एक को दूसरे से घृणा का अधिकार नहीं। इसी कारण हमारा यही धर्म नहीं कि उक्त सदाचारों का व्यवहार करें, वरन् यह भी है कि उन्हें दूसरों द्वारा कराएँ भी। इसी को त्याग कहते है, जो मानव-कर्त्तव्य का अन्तिम सोपान है।

साहित्य के विषय में राष्ट्र-भाषा का अन्वेषण मुझे यहाँ नहीं करना। किसी एक का नाम ले देने से निबन्ध का विस्तार सङ्कुचित हो जायगा। किन्तु जो सर्व-सम्मति द्वारा पक्षपातहीनतापूर्वक सिद्ध हो वह सबको माननीय होना चाहिए। रहीं प्रान्तिक भाषाएँ। वे जैसी की तैसी रह सकती हैं और उनमें तथा राष्ट्र-भाषा में पृथक्-पृथक् साहित्य-निर्माण हो सकता है। प्रश्न है, साहित्य के प्रकार का। मेरे विचार में साहित्याचार्य बाबू श्याम-

सुन्दरदास जी के शब्दों में हमें 'ऐसे साहित्य की आवश्यकता है, जो मनोवेगों का परिष्कार करने वाला, सञ्जीवनी शक्ति का सञ्चार करने वाला, चरित्र को सुन्दर साँचे में ढालने वाला, तथा बुद्धि को तीव्रता प्रदान करने वाला हो।' बहुत से लोग साहित्यिक शक्ति को कुछ समझते ही नहीं। पर यदि वे फ़्रान्स की राज्य-क्रान्ति और इटली के पुनरुत्थान की ओर ध्यान दें, तो उन्हें विदित होगा कि उनके मूल में रूसो एवं वाल्टेयर और मेज़िनी का साहित्यिक आन्दोलन ही था। हमारे देश में रसिक सज्जन काफ़ी जन्म लेते हैं, जिससे उन्हे श्रृङ्गार-रस ही अधिकतया भाता है। वास्तव में वे हमारे सामाजिक देह के रोग हैं। यदि वे सेवा, त्याग तथा साहस का राग छेड़ते, तो अधिक शोभा देता।

मनुष्य का कर्तव्य समय के साथ-साथ बदलता रहता है। शान्ति के समय यदि मनुष्य की दृष्टि कलाओं की ओर जाती है, तो अस्थिर परिस्थिति में अपनी रक्षा के साधन जुटाना उसका कर्तव्य हो जाता है। जिस प्रकार परिस्थिति ने राणा प्रताप, गुरु गोविन्दसिंह और छत्रपति शिवाजी से नवीनता की उत्पत्ति करा ली, उसी प्रकार सदैव वह कठिन समयों मे समाज से एक नवीन युक्ति (Scheme) की आशा रखती है। और उसी के साथ नवयुवकों का भी कर्तव्य होता है। हमें ये सब बाते समझना, सोचना, ध्यान में धरना और परिवर्तन को अपनाना चाहिए। वह मनुष्य यथार्थ में मृतक के समान है, जिसके ध्यान में कोई ध्येय नहीं, और जो सफलता के पथ पर अग्रसर नहीं होता, क्योंकि उन्नति मनुष्य का स्वभाव-सिद्ध लक्षण है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि कर्त्तव्य का कभी टोटा नहीं होता। शोक! बहुत से लोगों की समझ में ही नहीं आता कि क्या करें। वास्तव में कर्तव्य कठिन समयों में और भी बढ़ जाता है। बुद्धिमत्ता कार्य को ढूँढ़ निकालने में है। यह भी नहीं भूलना होगा कि जिस प्रकार मानव-प्रकृति में भिन्नता होती है, वैसे ही कर्तव्य भी पृथक्-पृथक् होते हैं। कदाचित् मनुष्य-प्रकृति की भिन्नता के लाभ का इससे अच्छा उदाहरण और कहीं न मिलेगा।

एक बात और—परिस्थिति और साधनों के विषय में शिकायत करना बड़ी भारी भूल है। परिस्थिति कैसी भी हो, उसके अनुकूल कार्य छाँट लिया जा सकता है। हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना अक़्लमन्दी नहीं। अक्लमन्दी है, प्रत्येक प्रकार की परिस्थिति से लाभ उठाने में, उससे काम निकालने और उसे अपने लिए उपयोगी बना लेने में। आज के वैज्ञानिक आविष्कार न होते हुए भी सहस्रों वर्ष पूर्व समुद्र पार किए जाते थे। इसी प्रकार भाग्य भी कोई चीज़ नहीं। यदि है भी तो वह मनुष्य के उत्थान-पतन के साथ परिवर्तित होता रहता है। उसके बदलने की मनुष्य में पूरी शक्ति है। आपको बचपन से ही एक कोठरी में बन्द कर दिया जाय, तो आपके भाग्य में गूँगा होना बदा है, और यदि आपको उच्च शिक्षा दी जाय तो आपका विद्वान हो जाना भी आपके भाग्य के बाहर नहीं।

हाँ, तो लक्ष्य-निर्धारण ही उन्नति के शिखर की पहली सीढ़ी है। लक्ष्यहीन पुरुष उद्भ्रान्त पथिक के समान होता है। और युवा अवस्था ही उद्देश्य के स्थिर करने का सबसे उपयुक्त अवसर है। अतएव हमारा कर्तव्य चरित्र एवं शरीर को बनाते हुए उपर्युक्त कार्यों मे से दो या एक को, अपनी रुचि के अनुसार छाँट कर, योग्यता सम्पादित करने में है। रुचि की सलाह लेने से आसानी होती है। दूसरे परिस्थिति का भी कुछ ध्यान रखना साधारणतया बुरा नहीं, क्योंकि कार्य उसके अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों हो सकता है। परन्तु उससे अनजान बन बैठा रहना सेवा एवं कर्तव्य के प्रति अन्याय होगा। कितने हैं, जो नित्य कर्मों के साथ-साथ कुछ सदाचारों का भी अभ्यास किया करते है? कितने हैं, जो अपनी पाठ्य पुस्तकों या श्रृङ्गारपूर्ण उपन्यासों के अतिरिक्त संसार के उज्ज्वल जीवन-चरित्रों के भी पढ़ने का कष्ट उठाते हैं? कितने हैं, जिन्होंने देश-धर्म के ऊपर गम्भीर विचार करते हुए अपने कुछ मिनट खोए हैं? कितने हैं, जिन्होंने भारतीय किसान या मज़दूर से यहाँ के फक्कड़ रईसों का मुक़ाबिला किया है? कहाँ तक गिनाया जाय? सहृदय पुरुष के रोंगटे खड़े हो जाएँगे। हम नेताओं के इतनी पुकार करने पर भी शराब और विदेशी वस्तु बहिष्कार नहीं कर सकते। हम एक गाँव वाले को दोनों समय चना खाते देख कर भी नहीं पसीजते, बल्कि उसके भाग्य को दोष दे सिनेमादि

(शेष मैटर ३९५वें पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

[गताङ्क से आगे]

आर्थिक कठिनता और मिस्टर सुस्टर

राज्य की बागडोर हाथ में लेते ही द्वितीय पार्लामेण्ट को पता चला कि राज्य-कोष ख़ाली है। शासन-सञ्चालन के लिए अर्थ-सचिव ने यूरोप और फ़ारस के सेठों से ऋण लिए, जो रूस और इङ्गलिस्तान को नहीं रुचा। वे चाहते थे कि उनकी सरकार से धन उधार लिया जावे और शासन में उनका हस्तक्षेप स्वीकार किया जावे। इसको अर्थ-सचिव सानिउद्दौला ने नहीं माना। इसलिए दो रूसियों ने मिल कर उसको गोली से मार दिया। इन हत्यारों को रूसी सरकार ने कोई दण्ड नहीं दिया। फ़ारस की पार्लामेण्ट अब तो इन दोनों देशों को भली-भाँति समझ गई, इसलिए उसने अमेरिकन अर्थशास्त्री श्रीयुत सुस्टर को अर्थ-सचिव नियत किया और उसको आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए कर आदि लगाने में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। जब उसने बजट पूरा करने को एक कर लगाया तो रूसियों ने इसका विरोध किया और लोगों को सहायता के वचन दे-देकर भड़काया कि कर देने से इन्कार कर दे। इसका मिस्टर सुस्टर ने विरोध किया और जो लोग रूसियों की शरण में थे, उनसे कर वसूल करने को उसने सशस्त्र सैनिक भेजे। इस आचरण से चिढ़ कर रूसियों ने पार्लामेण्ट को आदेश किया कि मिस्टर सुस्टर को पदच्युत किया जावे। इस आदेश पर विचार करने के लिए पार्लामेण्ट की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई। उसमें रूसी आदेश का विरोध किया गया और ईरानी स्त्रियों ने भी इस विरोध-आन्दोलन में भाग लिया। आख़िर रूस ने अपने सेना-बल से इस विरोधी पार्लामेण्ट का अन्त कर दिया और अपने अनुकूल एक शासक-मण्डल की स्थापना कर दी। तबरेज़, रश्त और ऐन्ज़ली आदि कई नगरों में राष्ट्रीय देशभक्तों का रूसियों ने क़त्ले-आम किया। इस प्रकार दूसरी पार्लामेण्ट का अन्त हुआ। इससे पूर्व रूसियों ने निर्वासित शाह को सहायता देकर पुनः सिंहासन पर बैठाना चाहा था, परन्तु उनको सफलता नहीं मिली।

इसके बाद फ़ारस में रूस और इङ्गलैण्ड की तूती बोलने लगी। सारा प्रबन्ध इन्होंने अपने हाथ में ले लिया और नितान्त निरङ्कुश शासन ही नहीं, परन्तु रक्त-शोषक व्यापार-नीति भी ख़ूब चलने लगी। बालक शाह अहमद उनकी संरक्षता में पलता रहा। जब वह युवा हुआ तो उसके राज्याभिषेक के लिए जुलाई सन् १६१४ में एक पार्लामेण्ट बुलाई गई। इसके दो मास बाद ही यूरोप में भीषण रणचण्डी का नाच होने लगा।

अफ़ग़ानिस्तान

अन्य मुस्लिम देशों की भाँति अफ़ग़ानिस्तान से यूरोप का सम्पर्क अधिक नहीं रहा, इसलिए उनके समान वहाँ राष्ट्रीय भावों की जाग्रति भी नहीं हुई। १६वीं शताब्दी अफ़ग़ानिस्तान के लिए अन्धकार-काल था। एक तरफ़ अङ्गरेज़ और दूसरी तरफ़ रूसी लोग इसको दबाए हुए थे। उसकी आन्तरिक अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय थी। लूट-मार, रक्तपात और विप्लव रोज़ की घटनाएँ थीं। बात की बात में एक अमीर का क़त्ल हो जाता था या सिंहासन-च्युत कर दिया जाता था और उसके स्थान पर दूसरा बिठा दिया जाता था।

मौलवी मोहम्मद हाफिज़, अली मोहम्मद भीमजी, नवाब शमशुद्दौला, नवाब ग़ुलाम मोहम्मद, मौलवी मोहर्रमअली चिश्ती आदि मुसलमान सज्जन समय-समय पर कॉङ्ग्रेस में जाया करते थे और कभी-कभी भाषण भी दिया करते थे। सन् १९०४ की कॉङ्ग्रेस में बम्बई, मद्रास तथा बङ्गाल से एक-एक मुसलमान प्रतिनिधि भी आए थे, परन्तु ये लोग प्रायः हिन्दुओं के विशेष आग्रह से केवल उनको प्रसन्न करने के लिए और कभी-कभी किसी नेता के साथ विशेष घनिष्टता के कारण सम्मिलित होते थे। इन लोगों को रेल-किराया और दूसरा ख़र्चा भी प्रायः हिन्दू देशभक्त ही दिया करते थे। वास्तव में मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से कोई प्रेम नहीं था, बल्कि वे इसके विरोधी थे। उनके विरोधी होने के दो कारण थे—(१) आर्य-सभ्यता की पुनर्जाग्रति और (२) मुस्लिम सङ्गठन।

हिन्दू-जाग्रति

१९वीं शताब्दी की भारतीय राष्ट्रीयता हिन्दू-राष्ट्रीयता थी। आर्य-समाज खुल्लमखुल्ला कहता था कि वैदिक धर्म संसार में सर्वोच्च धर्म है। संस्कृत सर्वोत्तम भाषा है और आर्य-सभ्यता सर्वोत्तम सभ्यता है। इस संस्था के संस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती वैदिक सभ्यता को पुनर्जीवित करके भारत का उद्धार करना चाहते थे। इतना ही नहीं, वे वैदिक धर्म का प्रचार देशदेशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में करना चाहते थे। आर्य-समाज के प्रारम्भिक जोश के जगाने में आर्य भजनीक गली-गली में गाते फिरते थे कि "आएंगे ख़त अरब से जिनमें लिखा यह होगा; गुरुकुल का ब्रह्मचारी हलचल मचा रहा है।" इसी समय बँगला साहित्य की वृद्धि और संस्कृति होने लगी थी। बङ्किम बाबू आदि अनेक लेखकों ने अपने ग्रन्थों द्वारा देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की जाग्रति की थी। पर उनके लेखों मे भारतवर्ष हिन्दुओं का था। बङ्किम बाबू के अमर अद्भुत उपन्यास आनन्दमठ में भारतवर्ष को एक देवी माना है और उसके पुत्र उसके सामने उपस्थित होकर उसका उद्धार करने का प्रण करते हैं। वे लोग देवी के सामने वन्देमातरम् का गान गाते हैं, जो हमारा राष्ट्रीय सङ्गीत बन गया है। उसी समय हिन्दी-साहित्य की वृद्धि हुई और हिन्दी के लेखक दावा करने लगे कि हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा है। अनेक उच्च राजनैतिक हिन्दू नेताओं ने इससे सहमति प्रकट की और हिन्दी का प्रचार दक्षिण तक में किया जाने लगा। तत्कालीन हिन्दी-साहित्य मे भी राष्ट्रीयता और आर्य-सभ्यता की पुनर्जाग्रति एक ही बात है। भारतवर्ष हिन्दुओं का है और हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान का तराना है। प्रसिद्ध नाटककार बाबू हरिश्चन्द्र ने क्षत्रियों की बहुत प्रशंसा की है। प्राचीन आर्य-सभ्यता के नष्ट होने पर आँसू बहाए हैं और उनके पुनरुद्धार की प्रार्थना की है। कहीं-कहीं उन्होंने "काहे चोटी-कटवा बुलाए जयचन्दवा" आदि लिखे हैं। पञ्जाब में आर्य-समाज की प्रधानता थी ही। वहाँ औरङ्गज़ेब की धर्मान्धता, हक़ीकतराय की धर्मदृढ़ता आदि विषयों के गानों और 'ख़ुदा बड़ा कि शैतान' आदि पुस्तकों का प्रचार था। दक्षिण में लोकमान्य तिलक और श्रीमहादेव गोविन्द रानाडे दोनों बड़े विद्वान नेता थे। तिलक तो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान और गणित-शास्त्र के पारङ्गत पण्डित थे। उनको आर्य-संस्कृति का अभिमान था और उसके गौरव को पुनः स्थापित करने की चिन्ता थी। वे हिन्दुओं के उद्धार मे भारत का उद्धार मानते थे। शिवाजी-विजय और गणेश-चतुर्थी, इन उत्सवों को उन्होंने अपने प्रान्त मे प्रचलित किया था और इनको वे राष्ट्रीय जाग्रति के साधन मानते थे। उसी समय मराठी, हिन्दी, बँगला आदि भाषाओं में शिवाजी के कई जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए और उनको राष्ट्रीय नेता तथा उद्धारक माना जाने लगा। इसी समय भूषणकृत 'शिवा-बावनी' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जो मुसलमानों को कभी पसन्द नहीं आ सकता था।

पण्डित मदनमोहन मालवीय, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी, पण्डित अयोध्यानाथ, पण्डित बिशननारायण दर आदि कॉङ्ग्रेस-नेताओं ने कभी कोई बात मुसलमानों के विरुद्ध नहीं की, बल्कि ये सब मुसलमानों की सहयोगिता का प्रयत्न करते रहे और कॉङ्ग्रेस में सम्मिलित होने को प्रति वर्ष निमन्त्रित करते रहे। फिर भी मुसलमान हिन्दू-जाग्रति से डर कर कॉङ्ग्रेस मे सम्मिलित नहीं हुए।

मुस्लिम-सङ्गठन का सन्देश भारतवर्ष के मुसलमानों को १९वीं शताब्दी के मध्य में ही मिल चुका था। मुगल साम्राज्य का अधःपतन, मराठों का उत्कर्ष और सन् १८५७ में अङ्गरेज़ों द्वारा अन्तिम विजय, तथा मुस्लिम-सत्ता के निःशेषीकरण से भारतीय मुसलमान निराशा में पड़े हुए थे। मुस्लिम-सङ्गठन के सन्देश से फिर उनमें आशा का सञ्चार हुआ। अपने को वे विस्तृत मुस्लिम-संसार का एक अङ्ग मानने लगे। तुर्की, ईरान, मिसिर, अफ़ग़ानिस्तान ये चार मुस्लिम देश, जो अब तक प्रायः स्वतन्त्र थे, उनके गौरव में अपना गौरव, उनके पतन में अपना पतन समझने लगे। भारतीय विपदाओं का ध्यान छोड़ कर भारत के मुसलमान अन्य मुस्लिम देशों की विपदाओं के निवारण करने की चिन्ता करने लगे। स्वयं अपने देश के अतिरिक्त अन्य सब मुस्लिम देशों के प्रति इनका अनुराग बढ़ने लगा। वे अपने को विशाल मुस्लिम भ्रातृ-मण्डल में सम्मिलित समझ कर हर्षित होने लगे।

मुसलमानों का भय

अन्य मुस्लिम देशों में इस समय यूरोपीय जातियों के प्रति घोर घृणा उत्पन्न हो उठी थी, परन्तु भारतीय मुसलमानों में यह बात नहीं थी, वास्तव में उनको भय था कि कहीं जाग्रत हिन्दू-जाति उनको हड़प न जावे। मुसलमान मुगल साम्राज्य के ऐश्वर्य का स्मरण करते थे और हिन्दू लोग चित्तौड़ के रक्तपात तथा शम्भाजी के नृशंस वध को। मुसलमानों को अपने अतीत गौरव पर दुःख था और हिन्दुओं को अपनी पुनः जाग्रति के कारण हर्ष। कुछ उग्र और कट्टर हिन्दू तो अङ्गरेज़ और मुसलमान दोनों को समकक्ष समझ कर दोनों को एक ही लाठी से मार भगाना चाहते थे। ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं थी और न इनमें कोई ज़िम्मेदार नेता ही थे। परन्तु ऐसी बातें सुन कर मुसलमान चिन्तित, भयभीत तथा क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकते थे। इसके अतिरिक्त मुसलमानों को इस बात का गर्व था कि कल तक वे भारतवर्ष के शासक थे। १८वीं शताब्दी के मध्य में ही वास्तव में सिक्खों, मराठों और बुन्देलों ने मुसलमान-शक्ति को नष्ट कर डाला था, इसलिए हिन्दुओं का साहस और भी बढ़ रहा था। हिन्दू समझते थे और उनका समझना ठीक था कि उन्होंने अपना देश मुसलमानों से वापस छीन लिया था और विज्ञान-सम्पन्न अङ्गरेज़ों का हस्तक्षेप न होता तो भारतवर्ष पुनः स्वतन्त्र हो गया था। मुसलमानों को इन बातों से और भी चिढ़ होती थी। वे हिन्दुओं को अब भी भीरु रियाया मानते थे और बङ्गाली बाबू तथा संयुक्त प्रान्त के लालाओं को घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए हिन्दुओं की जाग्रति और बढ़ती हुई शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिए मुसलमान राष्ट्रीयता के बजाय मुस्लिम सङ्गठन तथा अपने समाज के उद्धार की ओर झुके जाते थे। इतना ही नहीं, वे अपने सङ्गठन को हिन्दुओं की राष्ट्रीयता का उत्तर समझते थे और हिन्दुओं से अपनी रक्षा करने के लिए अङ्गरेज़-सरकार की शरण लेते थे और उसकी प्रशंसा करते थे। १९वीं शताब्दी के अन्त में और २०वीं शताब्दी के आरम्भ में कुछ वर्षों तक मुसलमानों के इस कल्पित सन्देह के कारण भारत में पर्याप्त राजनैतिक उन्नति नहीं हुई। बङ्ग-भङ्ग के समय में मुसलमानों ने साथ नहीं दिया। फाँसी पर लटकने वाले और जेल जाने वाले सब हिन्दू थे। मानो भारत की स्वतन्त्रता में मुसलमानों का कोई गौरव ही न था।

१७वीं और १९वीं शताब्दी

वैसे तो १५वीं शताब्दी से ही भारत से यूरोप का सम्पर्क आरम्भ हो गया था, बल्कि ईसा से ३०० वर्ष पूर्व भी यूरोप भारत से और भारत यूरोप से नितान्त अनभिज्ञ नहीं थे, लेकिन मुसलमानों के इतिहास में उस प्राचीन सम्पर्क की गणना करना आवश्यक नहीं है। १६वीं शताब्दी के आरम्भ में बम्बई से नीचे की ओर पश्चिमी तट पर पोर्तुगालियों ने एक काफ़ी विस्तृत राज्य स्थापित कर दिया था और विजयनगर तथा बहमनी राज्यों में जो उस समय निरन्तर युद्ध हुआ करते थे, उससे वे लोग लाभ उठाया करते थे। विजयनगर का एक सम्पन्न व्यापारी उस समय यूरोप, चीन, जावा, बर्मा आदि देशों से व्यापार करता था और बहमनी राज्यों के मुसलमान सुलतानों के लिए यूरोप से युवतियाँ मँगवाया करता था। सम्राट अकबर

पोर्तुगाली विद्वानों से ईसाई मत के विषय पर प्रायः बातचीत किया करता था और जहाँगीर तो एक पोर्तुगाली के पास पढ़ता भी था। १७वीं शताब्दी के अन्त में सूरत मे और अन्यत्र कई जगह अङ्गरेज़ों ने कई कारख़ाने खोल दिए थे और शिवाजी के जहाज़ी बेड़े से उनके जहाज़ी बेड़े ने कई युद्ध भी किए थे। सूरत में कर्मचारी, सैनिक, व्यापारी आदि रूप मे अनेक अङ्गरेज़ रहते थे और देश के अन्दर भी कई स्थानों पर फैले हुए थे। १८वीं शताब्दी में अङ्गरेज़ और फ़्रान्सीसी दोनों भारतीय रियासतों मे हस्तक्षेप करने लगे और मुग़ल-साम्राज्य की जर्जरावस्था देख कर प्रान्तिक नव्वाबों को आपस मे लड़ा-लड़ा कर अपना मतलब गाँठने लगे। बहुत से नवाब और हिन्दू-शासक यूरोपीय सैनिक प्रणाली को अधिक उत्तम और यूरोपीय सैनिकों को अधिक उपयोगी समझ कर अपनी सेनाओं में उनको भरती करने लगे। एक जर्मन सिपाही, जो बङ्गाल के नवाब के यहाँ नौकर था, उसने एक मुसलमान महिला से विवाह भी कर लिया था। यह महिला भारत के इतिहास में बेगम समरू के नाम से प्रसिद्ध है। विधवा होने के बाद दिल्ली और भरतपुर आदि के शासकों को इसने सैनिक सहायता दी थी। मेरठ ज़िले के सरधाना नामक स्थान में इसकी क़ब्र बनी हुई है।

यूरोपीय लोगों के सम्पर्क से मुसलमानों ने कुछ नहीं सीखा। उस समय भौगोलिक ज्ञान और सेना-सङ्गठन के सिवाय यूरोप के पास सिखाने को भी कुछ न था। फ़्रान्स, स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया, रूस आदि सब छोटे-बड़े यूरोपीय देश उस समय निरङ्कुश शासकों के अधीन थे। इसके अतिरिक्त अभी तक भारत मे विदेशी भाषा का अध्ययन भी नहीं होने लगा था। इसलिए भारतीय मुसलमानों को यूरोप की सामाजिक अवस्था, राजनीति और भावनाओं का कुछ भी ज्ञान नहीं था। साथ ही भारतीय मुसलमानों की दृष्टि में अब तक मुग़ल-साम्राज्य का विपुल और विशाल ऐश्वर्य मँडरा रहा था। वे अपने आपको यूरोपीय लोगों से किसी बात में कम नहीं मानते थे और धार्मिक कट्टरता तो मुसलमानों का सहज गुण है ही। इसलिए मुसलमान लोग यूरोपियन लोगों से कुछ सीखने की परवा भी नहीं करते थे।

१९वीं शताब्दी

१९वीं शताब्दी में स्थिति बिलकुल बदल गई। सन् १८५७ के ग़दर के बाद, जिसमें मुग़ल-सम्राट को अङ्गरेज़ों ने क़ैद करके रङ्गून भेज दिया और उसके दो निर्दोष बच्चों को गोली से मार डाला, मुसलमानों को अनुभव हो गया कि अब अङ्गरेज़ों का राज्य भारत से हिलने का नहीं है। इससे उनमे नैराश्य और दैन्य बढ़ने लगा और अन्त में हार कर वे लोग अङ्गरेज़ों की छत्र-छाया मे ही उन्नति करने के स्वप्न देखने लगे। इसी समय हिन्दुओ में अपूर्व जाग्रति होने लगी, जिससे मुसलमान डरने लगे और अपने अस्तित्व के विषय में भी कई प्रकार की चिन्ताएँ करने लगे। उधर तुर्की, मिस्रि, ईरान आदि देशों में अनेक लोग यूरोप की आक्रमणात्मक नीति को समझ कर मुस्लिम-सङ्गठन की योजनाएँ कर रहे थे और उत्तर अफ़्रीका में सेनूसिया-सङ्घ धर्मोद्धार करने में लग गया था। जमालुद्दीन अफ़ग़ानी जैसे प्रचारक और अनेक पत्रों के द्वारा भारत में भी यह सङ्गठन-सन्देश आया। मुसलमानों ने इसका हृदय से अभिनन्दन किया। भारत के मुसलमानों में जाग्रति होने लगी और शिक्षा-प्रचार, साहित्य-वृद्धि और उर्दू भाषा के उद्धार के द्वारा वे अपनी कौम को सङ्गठित करने लगे।

१९वीं शताब्दी में भारतीय मुसलमानों के सबसे बड़े और योग्य नेता थे, सर सैयद अहमद। इनका जन्म सन् १८१७ मे दिल्ली के एक सम्पन्न परिवार मे हुआ था। इन्होंने उच्च मुस्लिम शिक्षा प्राप्त की थी और बाद में कुछ अङ्गरेज़ी भी पढ़ ली थी। सन् १८५७ के ग़दर में इन्होंने अङ्गरेज़ सरकार का साथ दिया था। इन्होंने मुसलमानों में शिक्षा-प्रचार का कार्य अपने हाथ मे लिया और सन् १८६४ मे अलीगढ़ में एक समिति की स्थापना की, जिसका उद्देश्य था पश्चिमीय वैज्ञानिक ग्रन्थों का उर्दू में अनुवाद करना। सन् १८७१ में अपने दो योग्य पुत्रों के साथ ये इङ्गलैण्ड गए। इनमें से एक वहाँ क़ानून पढ़ने के लिए रह गया और बड़ा योग्य बैरिस्टर बन कर आया। सर सैयद अहमद पहिले ही यूरोप की वैज्ञानिक उन्नति और विचार-स्वतन्त्रता पर मुग्ध थे। इङ्गलैण्ड का जीवन देखने के बाद तो उनके

विचार और भी दृढ़ हो गए। वे भारतीय मुसलमानों के सङ्कुचित विचार, अल्प ज्ञान, अशिक्षा और अनेक सामाजिक कुरीतियों को और भी दुःख के साथ अनुभव करने लगे। इङ्गलैण्ड से उन्होंने एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि इङ्गलैण्ड की नौकरानी भारत की उच्च कुलीन महिला से अधिक सुशिक्षिता होती है।

सर सैयद अहमद

इङ्गलैण्ड से वापस आकर सर सैयद अहमद ने एक पत्र का सम्पादन करना आरम्भ किया। इसके द्वारा वे अपने सहधर्मियों को विदेशी भाषाओं का अध्ययन करने तथा वैज्ञानिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने लगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अलीगढ़ मे एङ्गलो ओरियन्टल कॉलेज की स्थापना की, जिसकी व्यवस्था और प्रबन्ध-शैली में उन्होंने कैम्ब्रिज का अनुकरण किया, परन्तु मुस्लिम-धर्म की शिक्षा अनिवार्य रक्खी। सन् १८७२ में कॉलेज का शिलान्यास करवाते हुए सर सैयद अहमद ने तत्कालीन वॉयसरॉय लॉर्ड लिटन से कहा था कि "मेरे जीवन के सिद्धान्त है, इङ्गलैण्ड से प्रेम, अङ्गरेज़ी सरकार की भक्ति और मुझे विश्वास है कि इस कॉलेज मे इन सिद्धान्तों की शिक्षा मिलती रहेगी और यहाँ के विद्यार्थी अङ्गरेज़ी सरकार से जो लाभ हुए है, उनको अनुभव करना सीखेंगे।" सर सैयद अहमद अङ्गरेज़ी शिक्षा-प्रणाली को अत्युत्तम मानते थे और सन् १८८४ में जब वॉयसरॉय अलीगढ़ कॉलेज देखने गया, तो उन्होंने उसको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया। उसमें कहा था—"अङ्गरेज़ी राज्य से भारत को अनेक लाभ हुए हैं, पर सबसे बड़ा लाभ हुआ है पश्चिमीय प्रणाली द्वारा शिक्षा का प्रचार, जिसके कारण हम लोगों की नैतिक तथा बौद्धिक उन्नति होती जाती है।" इस अटूट राजभक्ति के कारण ही सर सैयद अहमद कॉङ्ग्रेस का विरोध करते थे और उस समय के मुसलमान प्रायः सब उनके साथ थे। वास्तव में उनको भारतवर्ष की उतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी मुसलमान जाति की। उनको मुसलमानों के अधःपतन पर बड़ा दुःख होता था और उनका उद्धार करना उनके जीवन का ध्येय था। सर सैयद के उपदेशों के प्रभाव से मुसलमान अङ्गरेज़ी का अधिकाधिक अध्ययन करने लगे थे और सङ्गठित होने लग गए थे। पश्चिम के अभ्युदय को देख कर उनमें अपने अतीत वैभव की स्मृतियाँ जाग्रत होने लगी थीं और अपनी वर्तमान अकर्मण्यता पर वे सन्ताप प्रकट करने लगे थे। इसी समय उर्दू परिमार्जित होने लगी और श्रृङ्गार-रस के सिवा अन्य उपयोगी विषयों पर काव्य-रचना होने लगी। उस समय के मुख्य कवि मौलाना अल्ताफ़ हुसैन हाली का जन्म, पानीपत में, सन् १८३७ मे हुआ था। सर सैयद अहमद ख़ाँ से इनकी बहुत घनिष्ठता थी। उस समय के सङ्कुचित हृदय मुसलमान सर सैयद को उनकी सुधार-प्रियता के कारण उनको काफ़िर कहा करते थे। लेकिन मौलाना हाली उनकी सुधार-योजना से पूर्ण सहमत थे। इन्होंने "मद्दोज़द इस्लाम" अर्थात् इस्लाम का उत्थान और पतन नामक एक मुसद्दस लिखा था। इसको लिख कर हाली साहब मुस्लिम-जगत में अमर हो गए हैं। उनकी यह कविता उर्दू जानने वालों में बहुत प्रसिद्ध हुई और मुसलमानों के तो गले का हार बन गई। इस समय भी सब शिक्षित मुसलमान हाली के मुसद्दस पर गर्व करते हैं। हाली ने इस मुसद्दस में पैग़म्बर मुहम्मद की शिक्षा का वर्णन किया है और मुसलमानों के अभ्युदय तथा चमत्कारी पराक्रम का सुन्दर चित्र खींचा है। भारत के वर्तमान मुसलमानों की अधोगति का वर्णन करते हुए यहाँ के ग़रीबों की मूर्खता, अमीरों की विलासिता, मौलवियों की कट्टरता और उपदेशकों की स्वार्थ-परायणता आदि का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। आपने लिखा है कि मुसलमानों का जो जातीय बेड़ा सात समुद्रों का सफ़र तै कर आया, वह गङ्गा के दहाने में आकर डूब गया। यहाँ के वायु के एक थपेड़े ने ही उसका काम तमाम कर दिया। ये पंक्तियाँ उद्धृत करने योग्य हैं—

वह दीने हजाज़ी का बेबाक़ बेड़ा।
निशाँ जिसका अफ़साए आलम में पहुँचा॥
मज़ाहम हुआ कोई ख़तरा न जिसका।
न अम्माँ में ठिठका न कुलज़म में झिझका॥
किए तै सफ़र जिसने सातों समुन्दर।
वह डूबा दहाने में गङ्गा के आकर॥

हाली की व्यापक पंक्तियों में मुसलमानों के व्यापक विचार का स्फुटीकरण था। इसीलिए वे हिन्दू जाग्रति से डरते थे और राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोध करते थे और अपनी जाति के उद्धार में लगे हुए थे। फिर भी कोई-कोई मुसलमान अनुभव करने लगे थे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता अच्छी है और इससे देश का कल्याण हो सकता है। स्वयं हाली ने लिखा था:—

तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर।
न किसी हमवतन को समझो ग़ैर॥
हो मुसलमान इसमें या हिन्दू।
बौद्ध मज़हब हो कि या ब्रह्मो॥
सबको मीठी निगाह से देखो।
समझो आँखों की पुतलियाँ सबको॥

सर सैयद अहमद काँङ्ग्रेस का साथ नहीं देते थे, लेकिन हिन्दू-मुस्लिम एकता वे भी चाहते थे। ऋषि दयानन्द के वे बड़े मित्र थे और उनसे कई बार मिले थे। लेकिन सर सैयद अहमद की हिन्दू-मुस्लिम एकता में राष्ट्रीयता नहीं थी। इसको वे मानव-धर्म समझते थे। प्रगाढ़ राजभक्ति के साथ राष्ट्रीयता आती भी कहाँ से?

अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए और एक प्रकार से काँङ्ग्रेस का विरोध करने के लिए मुसलमानों ने आग़ा ख़ाँ के नेतृत्व मे मुस्लिम-लीग की स्थापना की। लेकिन थोड़े वर्ष बाद ही बुद्धिमान मुसलमान अनुभव करने लगे कि स्वराज्य-प्राप्ति के बिना न जाति का कल्याण हो सकता है, न देश का। इसलिए मुस्लिम-लीग ने अपना ध्येय निश्चित किया वैध उपायों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति। ऐसा करने पर आग़ा ख़ाँ इससे अलग हो गए। यूरोपीय महासमर छिड़ जाने के बाद तक मुस्लिम-लीग में गवर्नर आदि उच्च अधिकारियों को निमन्त्रित किया जाता था और वे कभी-कभी आया भी करते थे। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सन् १९१४ के बाद से ही भारतीय मुसलमान अधिकाधिक राष्ट्रीय बनने लगे थे। डॉक्टर सर मोहम्मद इक़बाल का "क़ौमी शिवाला" और "हिन्दोस्ताँ हमारा" ये दो कविताएँ उर्दू-संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं और हिन्दोस्ताँ हमारा तो उत्तर भारत में वन्देमातरम् की भाँति राष्ट्रीय गीत हो गया है।

स्वप्न

[श्री० कपिलदेव नारायणसिंह 'सुहृद']

सन्ध्या के नीरव तम में, तेरा चुपके से आना।
पीछे की ओर निरख कर, रुकना आँसू बरसाना॥
अधरों का इषत् हिलाना, आहों का बाहर जाना।
छविमय उन गोरे-गोरे गालों का मुरझा जाना॥

कितना विषाद छाया था, उस मतवाली चितवन में।
उन छविवाले फूलों में, तारों मे और गगन में॥
तम के अन्तरतम में भी घनतम ताण्डव करता था।
नभ की शत-शत आँखों से अविरल आँसू झरता था॥

उद्वेलित उच्छ्वासों से रजनी का नीरव मन था।
उफ! उन घड़ियों में कितनी ज्वाला थी उत्पीड़न था॥
स्वप्नों के टूट रहे थे, वे तार सुनहले प्यारे।
स्मृतियाँ बेहोश पड़ी थीं, उस सूने क्षितिज किनारे॥

भविष्य में संसार के प्रधान देश

[श्री० सुमतिप्रसाद जी जैन, एम० ए०, एल-एल्० बी०]

संसार परिवर्तनशील है और यह परिवर्तन राजनीतिक स्थितियों में विशेषतया दिखलाई पडता है। प्राचीन काल के साम्राज्य चाहे वे भारतीय हों अथवा यूरोपीय, अब उस स्थिति में, जिसमें वह ईसा से दो हज़ार वर्ष पहिले पाए जाते थे, नहीं मिलते। प्राचीन रोमन साम्राज्य, जो सारे सभ्य संसार में फैला था, अब विलुप्त हो चुका है। इसी तरह एलेक्ज़ैण्डर द्वारा स्थापित महान साम्राज्य का भी पता नहीं। यही हाल अशोक और अकबर के साम्राज्यों का भी हुआ। सन् १९१४ के यूरोपीय महायुद्ध के बाद ही रूस की ज़ारशाही का भी अन्त हो गया। जर्मन और ऑस्ट्रियन साम्राज्य सदा के लिए इस संसार से उठ गए। प्राचीन तुर्क साम्राज्य (Ottoman Empire) टूट कर उसके स्थान पर केवल टर्की का छोटा सा राज्य रह गया है। इधर एशिया में सन् १९१० ई० के राज्य-विप्लव के बाद, चीन साम्राज्य के स्थान पर चीन का प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हुआ।

जैसे-जैसे पुराने साम्राज्यों का अन्त हुआ, वैसे-वैसे उनके स्थान पर नए-नए साम्राज्यों का जन्म होता गया। पुराने साम्राज्यों का विचार छोड़ कर यहाँ इतना लिख देना ही पर्याप्त होगा कि सन् १८७० ई० से यूरोपीय देशों ने साम्राज्य-विस्तार की दौड़ में भाग लिया और अपने प्रयत्न में सब से अधिक सफल रहा ब्रिटिश साम्राज्य। जहाँ तक हो सका, फ़्रान्स ने भी इस दौड़ में पूरा भाग लिया, परन्तु ब्रिटेन की तरह उसे सफलता न मिल सकी। जर्मनी के महामन्त्री प्रिन्स बिसमार्क की नीति साम्राज्य बनाने की न थी, किन्तु वह भी समय के प्रभाव को न रोक सका और जर्मनी भी "सूर्य में स्थान" (A place in the Sun) प्राप्त करने की चिन्ता में लगा, पर देर से कार्यारम्भ करने के कारण यथोचित सफलता न प्राप्त कर सका। यूरोपीय महायुद्ध का यही एक विशेष कारण भी था। इटली अपनी भीतरी स्थिति के कारण अपना भाग न ले सका। स्पेन और पुर्तगाल साम्राज्य-उत्पादन की शक्ति पहिले ही खो चुके थे। हॉलैण्ड और बेलजियम अपने पुराने पाए हुए भाग से ही सन्तुष्ट रहे। इसलिए उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई प्रयत्न ही नहीं किया। सारे यूरोप के दाँत अफ़्रीका को हड़पने पर लगे थे। परिणाम यह हुआ कि अबसीनिया और लाइबेरिया को छोड़ कर समस्त अफ़्रीकन द्वीप यूरोपीय राज्यों के फन्दे में फँस गए। एशिया मे साम्राज्य-निर्माण ने दूसरा रूप धारण किया और यह था, "आर्थिक साम्राज्यवाद।" भिन्न-भिन्न देशों के राजाओं को धन देकर यूरोपीय राज्यों ने उन्हे अपने वश में कर लिया। इस प्रकार के साम्राज्य-निर्माण में संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने विशेष भाग लिया। फ़ारस के शाह, मिश्र के खदीव और चीन के सम्राट ने खुले हाथों ऋण लिया, जिसका फल यह हुआ कि ऋण-दाताओं का उनके राज्य में हस्तक्षेप बढ़ गया। रूस जैसे ग़रीब देश के ज़ार ने एक अद्भुत बात की; स्वयं ऋणी होने पर भी उसने फ़्रान्स से धन लेकर फ़ारस के शाह को ऋण दिया, जिससे रूस का प्रभाव फ़ारस में क़ायम रहे! साम्राज्यवाद की अद्भुत लीला है। ब्रिटेन ने चीन मे नए प्रकार से साम्राज्य की नींव डाली। चीन वालों से कहा गया कि यदि तुम हमसे अफ़ीम न ख़रीदोगे तो हम तुम्हारे देश पर गोलेबारी करेंगे। प्रसिद्ध अङ्गरेज़ लेखक रस्किन ने इस पर एक मार्केदार टिप्पणी करते हुए लिखा है कि यह "अफ़ीम की लड़ाई" इतिहास के समस्त युद्धों से निकृष्ट है। चीन को हड़प जाने के लिए यूरोप की सभी जातियाँ उस पर दाँत लगाए बैठी थीं और अवसर पाते ही फ़्रान्स ने इण्डोचाइना, इङ्गलैण्ड ने हाङ्गकाङ्ग और बर्मा, रूस ने मन्चूरिया का उत्तरी भाग और

जापान ने कोरिया और मन्चूरिया का अधिकांश दबा लिया।

पर, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, समय और स्थिति परिवर्तनशील है। राजनीतिक संसार बहुत दिनों तक एक ही स्थिति में नहीं रह सकते। उन्नीसवीं शताब्दी में जो राज्य यूरोप के प्रधान राज्य थे, वे बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी प्रधानता खो बैठे। यूरोपीय महा-युद्ध के बाद इस परिस्थिति में फिर परिवर्तन हुआ और इस बार रूस और जर्मनी पहले की तरह प्रधान राज्य न रहे। वर्तमान समय मे संयुक्त राज्य अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ़ान्स, जापान और इटली प्रधान और महान राष्ट्र माने जाते हैं। परन्तु कौन कह सकता है कि इनकी स्थिति सदैव ऐसी ही बनी रहेगी। क्योंकि लक्षणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भविष्य में देशों की प्रधानता उनकी जन-संख्या तथा आर्थिक दशा पर निर्भर रहेगी। फलतः इस दृष्टिकोण से देखते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, भारतवर्ष, रूस, फ़ान्स और जर्मनी ही भविष्य में संसार के प्रधान राष्ट्र होंगे। इसका कारण यह है कि अमेरिका बड़ा उपजाऊ देश है। यहाँ सब प्रकार की वस्तुएँ पैदा होती हैं। यहाँ के अधिवासियों को दूसरे देश वालों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। खाद्य पदार्थ, रूई, तेल, खनिज पदार्थ, मैशीन इत्यादि अधिकता से यहाँ होते हैं। जल-वायु भी अति उत्तम है, जिसमें रह कर मनुष्य परिश्रम से जी नहीं चुराते। यहाँ की जन-संख्या भी दिनोंदिन उन्नति पर है और रहने के लिए स्थान की भी कमी नहीं है। इन सब कारणों को देखते हुए इसमे कोई सन्देह नहीं दिखाई पड़ता कि संयुक्त राज्य भविष्य में भी सब से प्रधान राजनीतिक देश रहेगा। भविष्य के प्रधान राष्ट्रों में दूसरा स्थान चीन को मिलेगा। यद्यपि वर्तमान समय में चीन की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। अभ्यन्तरीन और बाहरी उत्पातों तथा झगड़ों के कारण चीन अत्यन्त शिथिल हो रहा है। चीन के फ़ौजी ऑफ़ीसर राज्य और प्रधानता के लिए आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। बाहरी शत्रु इस आपसी लड़ाई मे उन अफ़सरों की धन तथा अस्त्र-शस्त्रादि से सहायता करते हैं। इस तरह चीन में आज-कल सदा ही गृहयुद्ध छिड़ा रहता है। उधर जापान भी दाँव लगाए हुए है। कोरिया सन् १९१० ई० से जापान के अधीन है। मन्चूरिया में भी उसने बहुत सी रेल-लाइने बनाई हैं और अपरिमित धन लगाया है और चीन-जापान की वर्तमान लड़ाई का विशेष कारण यह धन ही है। इसी तरह रूस, इङ्गलैण्ड तथा फ़ान्स भी चीन के सम्बन्ध में अपने दाँव देखते रहते हैं। परन्तु इस स्थिति का बहुत काल तक क़ायम रहना असम्भव है। चीन में राष्ट्रीयता की लहर उत्तरोत्तर बड़े वेग से उठ रही है। चीन राष्ट्र का निर्माण प्रति दिन बड़ी तेज़ी से हो रहा है। इसी राष्ट्रवाद के कारण चीनियों ने जापानी माल का पूर्ण बहिष्कार कर रक्खा है। यहाँ तक कि जापान इस बहिष्कार से घबरा उठा है। इधर चीनी जनरल भी अब पारस्परिक भेद-भाव भूल कर एक-दूसरे से मिल रहे है। यही कारण था कि पिछले चीन-जापान युद्ध मे चीन को दबाने में जापान को इतनी कठिनाई का सामना करना पड़ा। चीन अब बहुत दिनों तक अवनति की अवस्था में नहीं रह सकता। वह बहुत जल्द संसार के उन्नत राष्ट्रों में अपना उचित स्थान प्राप्त करेगा। चीन एक विशाल देश है, यहाँ का जल-वायु अच्छा है, पृथ्वी भी काफ़ी उपजाऊ है और चीनी लोग भी बहुत काम करने वाले होते हैं। वे शान्त महासागर के विभिन्न द्वीपों में जाकर मज़दूरी करते हैं। यहाँ भारत में भी हम प्रतिदिन साधारण चीनियों की बुद्धिमत्ता के नमूने देखते हैं। चीनी कारीगरों द्वारा बनाई हुई काग़ज़ की पङ्खियाँ और फूल हर बच्चे के हाथ में पाए जाते हैं। उनकी शिल्प-चातुरी के नमूने, लकड़ी के काम और चीड़ की पचीकारी पर दिखलाई पड़ते हैं। चीन की जन-संख्या भी संसार के समस्त देशों से अधिक है। राजनीतिज्ञों का मत है कि चीन की वर्तमान जन-संख्या प्रायः चालीस करोड़ है। चीनी लोग शीघ्र ही अपने देश की बागडोर अपने हाथ में लेंगे और तब संसार के राष्ट्रों में चीन का स्थान दूसरा होगा।

भारतवर्ष—यहाँ हमें अपने पाठकों को भारतवर्ष के प्राचीन वैभव का दिग्दर्शन नहीं कराना है। क्योंकि इतिहास का प्रत्येक पन्ना उसकी महानता का साक्षी है। और न हमे यहाँ भारतवर्ष की वर्तमान दशा का ही वर्णन करना है। क्योंकि सामयिक समाचार-पत्रों के वाचकों से कुछ छिपा नहीं है। यहाँ हमें केवल भारत-

वर्ष के भविष्य पर विचार करना है। भारत-सरकार की २० अक्टूबर सन् १९१७ की घोषणा के अनुसार भारतवर्ष शीघ्र ही स्वतन्त्र होगा और पुनः अपनी प्राचीन महानता प्राप्त करेगा। तब हम किसी के मुहताज न रहेंगे। भारतवासी संसार के अन्य देशों के निवासियों से किसी तरह कम न समझे जायँगे। भारतवर्ष का जलवायु विभिन्न प्रकार का होने के कारण यहाँ हर तरह की उपज बड़ी सुगमता से होती है। खनिज पदार्थ भी यहाँ बहुतायत से पैदा होते हैं। यहाँ की बड़ी-बड़ी नदियाँ बिजली की शक्ति का ख़ज़ाना हैं। भारतवर्ष के मनुष्य समझदार और परिश्रमी हैं और बहुत थोड़े में बसर करना जानते हैं। यहाँ की जन-संख्या लगभग पैंतीस करोड़ है; फलतः भारतवर्ष का भविष्य साधारणतया उज्ज्वल है। हमारे कथन का आशय यह है कि भारतवर्ष का स्थान भविष्य के राष्ट्रों मे कम से कम तीसरा होगा।

रूस यूरोप और एशिया के उत्तर में फैला हुआ महान देश है। इसका उत्तरी भाग बेहद ठण्ढा है, किन्तु मध्य देश तथा दक्षिणी भाग यथेष्ट उपजाऊ हैं। कई शताब्दियों तक रूस में ज़ारशाही की तूती बोलती रही, किन्तु बीसवीं शताब्दी में वहाँ की जनता इसे और अधिक समय तक न सह सकी। फलतः सन् १९१७ ई० में रूस में राज्य-विप्लव हुआ और पञ्चायती राज्य की स्थापना हो गई। रूस की नई सरकार ने ज़ार की सरकार द्वारा लिए हुए पुराने ऋण को चुकाने से एकदम इन्कार कर दिया। वे देश—विशेषतया इङ्गलैण्ड—जिन्होंने रूस को ऋण दे रक्खा था, हक्के-बक्के रह गए। अब नई सरकार ने देश का पुनर्निर्माण आरम्भ किया है। इस नवीन योजना के प्रथम पाँच वर्ष समाप्त हो चुके हैं और सन् १९३२ ई० से दूसरी पञ्च वार्षिक योजना आरम्भ हुई है। इस योजना के अनुसार रूस की उपज आगामी पाँच वर्षों में वर्तमान उपज से तिगुनी हो जायगी। रूसी लोग बड़े समझदार और परिश्रमी होते हैं। रूस में सब प्रकार की उपज बहुतायत से होती है। इन्हीं कारणों से भविष्य के राष्ट्रों में रूस का स्थान चौथे से नीचे नहीं रहेगा।

अब हमें फ़्रान्स के सम्बन्ध में कुछ कहना है। फ़्रान्स की सभ्यता सारे संसार में प्रसिद्ध है। इस सभ्यता का निर्माण करने मे फ़्रान्स को कई शताब्दियाँ बितानी पड़ी है। आज भी फ़्रेञ्च साहित्य के कारण यूरोप का मुख उज्ज्वल है। स्वाधीन विचारों में फ़्रान्स सदा आगे रहा है। रूसो के फ़्रान्सीसी ग्रन्थों का अवलोकन करने वाला प्रत्येक मनुष्य उसके सुन्दर विचारों से परिचित है। साधारणतया फ़्रान्स एक बड़ा देश कहा जा सकता है। यहाँ का जलवायु अच्छा है तथा भूमि भी उपजाऊ है। जिससे यहाँ सब प्रकार की उपज होती है। जन-संख्या भी पर्याप्त है। इसलिए विचारशीलों का अनुमान है कि भविष्य के उन्नतिशील राष्ट्रों में फ़्रान्स का स्थान पाँचवाँ रहेगा।

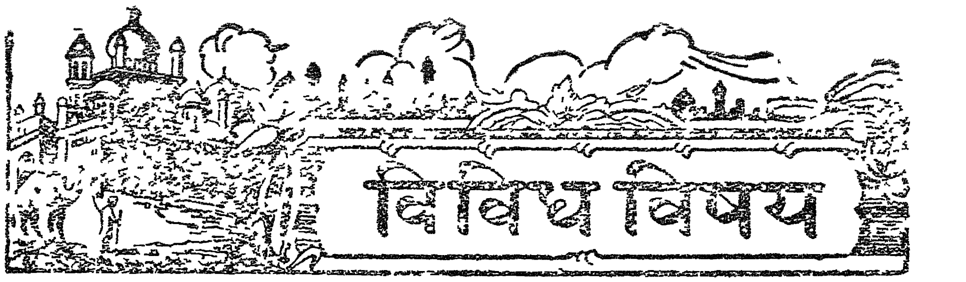
जर्मनी अपनी अद्भुत शिल्पकला के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के कारीगर प्रतिदिन की आवश्यकता की वस्तुएँ बड़े सस्ते दामों पर बनाते हैं। भारतवर्ष वहाँ से रङ्ग और सुई आदि सामान बहुतायत से ख़रीदता है। महायुद्ध से पहिले जर्मन-साम्राज्य बहुत शक्तिशाली था। किन्तु उस युद्ध में हार जाने से उसकी शक्ति का ह्रास हो गया। वारसाई की सन्धि के अनुसार जर्मनी को अपने समस्त उपनिवेश विजयी राष्ट्रों को देने पड़े, सेना कम करनी पड़ी और लड़ाई के बड़े जहाज़ छोड़ने पड़े। थोड़े शब्दों मे जर्मनी निःशस्त्र कर दिया गया। और साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि युद्ध के दण्ड-स्वरूप जर्मनी विजयी राष्ट्रों को युद्ध-दण्ड के तौर पर एक बहुत बड़ी रक़म कितने ही वर्षों तक देता रहे। जर्मनी का कैसर राज्य छोड़ कर भागा और उसके स्थान पर प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना हुई। वर्तमान काल में जर्मनी निःशस्त्र है। परन्तु निःशस्त्र होना भविष्य की उन्नति में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालता। जर्मनी अपनी पुरानी शक्ति फिर से एकत्रित कर रहा है। कोई ऐसा प्रयत्न, जिससे जर्मनी की आर्थिक दशा में उन्नति होने की आशा दीख पड़ती है, नहीं छोड़ा जा रहा है। वहाँ के पुराने कारख़ाने, जो युद्ध के अस्त्र-शस्त्र तैयार करने के लिए बनाए गए थे, अब फ़ैक्टरी और कार्यालयों में परिणत किए जा रहे हैं। जर्मनी अपनी आर्थिक अवस्था को सुधारने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। वह यह चाहता है कि उसको वारसाई की सन्धि द्वारा आरोपित ऋण न देना पड़े। सन् १९३१ ई० में उसने यह ऋण नहीं दिया और शायद भविष्य में भी न देगा।

इस प्रकार उऋण होकर अपनी चतुरता से जर्मनी फिर अपनी पुरानी उन्नति पर पहुँचेगा। जर्मन देश बहुत उपजाऊ है, खनिज पदार्थों की तो यहाँ भरमार ही है, जर्मनी की जन संख्या भी अच्छी है। इन सब बातों पर ध्यान रखते हुए इसमें सन्देह नहीं होता कि जर्मनी उन्नति करके कम से कम छठे स्थान पर पहुँचेगा।

वर्तमान काल के प्रधान राष्ट्रों में इङ्गलैण्ड, जापान और इटली ऐसे हैं, जो भविष्य में शायद अपने स्थान पर न रह सकेंगे। पहले ब्रिटिश साम्राज्य को ही लीजिए। इसकी कट्टरता का उत्तरोत्तर ह्रास हो रहा और उदारता बढ़ रही है। इसके भाग एक के बाद दूसरे अपने स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार प्राप्त कर रहे हैं। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका, न्यूज़ीलैण्ड, न्यूफ़ाउण्डलैण्ड, आयर्लैण्ड एक के बाद दूसरा आहिस्ता-आहिस्ता पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होते चले जा रहे हैं। यद्यपि ये देश कहने के लिए ब्रिटेन के उपनिवेश हैं, किन्तु यथार्थ में सब स्वतन्त्र हैं। सन् १९३१ ई० में स्टेच्यूट ऑफ़ वैस्टमिनिस्टर (Statute of West Minister) के पार्लामेण्ट में पास होने के कारण ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश क़ानूनन् भी प्रायः स्वतन्त्र हो गए हैं। इधर मिश्र देश भी स्वतन्त्र होने की चिन्ता मे है। यद्यपि उसे एक प्रकार की स्वतन्त्रता मिल चुकी है, परन्तु वह पूर्ण स्वराज्य लिए बिना न मानेगा। ईराक को सन् १९३२ ई० में स्वतन्त्र देश बना देने का वचन मिल चुका है। इस प्रकार इङ्गलैण्ड केवल एक छोटा सा द्वीप रह जायगा। यहाँ की ज़मीन भी कुछ विशेष उपजाऊ नहीं है, परन्तु जन-संख्या काफ़ी है। देश के अधिकांश लोग कारख़ानों में काम करके जीविका अर्जन करते हैं। किन्तु भविष्य में जब संसार के समस्त देश अपने-अपने कारख़ाने खोल लेंगे, तब इङ्गलैण्ड के माल की माँग न रहेगी। फल-स्वरूप इङ्गलैण्ड अपनी सारी जनता को भोजन तक न दे सकेगा। इसलिए कुछ अङ्गरेज़ों को अपना देश छोड़ कर व्यवसाय की चिन्ता में, अन्य देशों को जाना पड़ेगा। इस प्रकार इङ्गलैण्ड की वर्तमान प्रधानता नष्ट हो जायगी।

जापान की स्थिति इङ्गलैण्ड से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। वह भी इङ्गलैण्ड की तरह ही एक बहुत छोटा किन्तु शिल्प-प्रधान द्वीप है, जिसकी जन-संख्या उसके खाद्य-पदार्थों की अपेक्षा अब भी अधिक है। जापान अपना माल देकर बदले में खाना ख़रीदता है। किन्तु जब और देश भी शिल्प की प्रतियोगिता में जापान के बराबर हो जायँगे, तब दूसरे देशों में जापान के माल की खपत न हो सकेगी। और जापान अपनी वर्तमान प्रधानता पर स्थिर न रहने पाएगा। चीन के सामने जापान जैसे छोटे देश की कुछ गणना ही न रहेगी। इसी प्रकार इटली भी अपनी वर्तमान अवस्था में न रह सकेगा, उसका भी नीचे आना अनिवार्य है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है, उससे बहुत से पाठक शायद सहमत न होंगे। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। राजनीतिक भविष्य जैसे कठिन विषय पर मतभेद होना केवल स्वाभाविक ही नहीं, वरन् आवश्यक भी है। यह बात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्बन्ध में इससे भी अधिक लागू है। साधारण ज्योतिष दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक वह जो गणित से सम्बन्ध रखता है और नक्षत्रों की गति-विधि देख कर चन्द्र और सूर्य-ग्रहण का समय बतलाता है। ज्योतिष का यह भाग सर्वथा सत्य है। परन्तु उसका दूसरा भाग, जिससे पोथी देख कर मनुष्यों के भाग्य के निर्णय की चेष्टा की जाती है, इससे बिलकुल भिन्न है। राजनीतिक भविष्यद्वाणी भी इस दूसरी कक्षा में मानी जायगी। यहाँ परिस्थिति देख कर स्वयं अर्थ निकालना होता है और उसके ग़लत होने की उतनी ही सम्भावना है, जितनी कि उसके सही होने की। यही कारण है, जिससे इस लेख में दिए हुए विचारों से मतभेद होना नितान्त अनिवार्य है। फलतः हमें इस बात का दावा नहीं है कि हमने जो कुछ लिखा है, वह सत्य ही होगा।



शाहज़ादी रौशनआरा

शाहज़ादी रौशनआरा अपनी विचित्र प्रतिभा और दिलेरी के कारण मुग़ल-वंश के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखती है। यह प्रतिभा-शालिनी रमणी सम्राट शाहजहाँ की कन्या और औरङ्गज़ेब की बहिन थी। सम्राट औरङ्गज़ेब के शासन-काल का इतिहास लिखने वाले कभी रौशनआरा को भूल नहीं सकते। क्योंकि अगर रौशनआरा अपने भाई औरङ्गज़ेब की सहायता न करती तो शायद उसे अपने भाइयों को परास्त करने और अपने वृद्ध पिता को बन्दीगृह में बन्द करने में सफलता भी नहीं प्राप्त होती। सच बात तो यह है कि रौशनआरा की कूटबुद्धि ने ही औरङ्गज़ेब को भारत का सम्राट बनाया था, अन्यथा उस समय के घराऊ झगड़े से परित्राण पाना औरङ्गज़ेब के लिए कठिन था।

शाहज़ादी रौशनआरा अपने माता-पिता की पाँचवी सन्तान थी और सम्वत १६६४ विक्रमाब्द मे बुरहानपुर नामक स्थान में इसका जन्म हुआ था। यह अपने भाई औरङ्गज़ेब से एक साल दो महीने तेरह दिन बड़ी थी। दिल्ली में उन दिनों सैदतुन्निसा नाम की एक विख्याता विदुषी रमणी रहती थी। शाही ख़ान्दान के लड़कों और लड़कियों की शिक्षा का काम इसी के सिपुर्द था। शाहज़ादी रौशनआरा को भी इसीने अरबी और फ़ारसी की शिक्षा दी थी। इसके अतिरिक्त सैदतुन्निसा की मदद से शाहज़ादी रौशनआरा ने यूनानी चिकित्सा-शास्त्र तथा अन्यान्य विषयों का भी अध्ययन किया था। शाहज़ादी रौशनआरा अपने पिता शाहजहाँ की प्यारी पुत्री थी और कहते हैं कि सम्राट तत्कालीन राजनीति और शासन-व्यवस्था में भी उसकी सलाह लिया करता था, इसलिए राजनीति-चर्चा में भी रौशनआरा को ख़ासी दिलचस्पी थी। उसकी चातुरी और प्रतिभा पर मुग्ध होकर शाहजहाँ ने उसे तीन लाख रुपए पुरस्कार-स्वरूप प्रदान किया था और समय-समय पर इनाम-इकराम द्वारा उसकी निजी सम्पत्ति की वृद्धि करता रहा। इसके सिवा एक बार नौरोज़ उत्सव के अवसर पर पचीस लाख की रक़म शाहजहाँ ने रौशन-आरा को दिया था।

जहानआरा रौशनआरा की बहिन थी। उसे रौशन-आरा का सम्राट द्वारा बार-बार पुरस्कृत होना अच्छा नहीं लगता था। इसके सिवा कुछ और भी कारण थे, जिससे दोनों बहिनों में विषम वैमनस्य पैदा हो गया और धीरे-धीरे वह इतना बढ़ा कि दोनों एक-दूसरे की जानी दुश्मन बन गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्राट शाहजहाँ के जीते जी उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए झगड़ा आरम्भ हो गया। रौशनआरा औरङ्गज़ेब को ताज-व-तख़्त का मालिक बनाना चाहती थी और जहानआरा दाराशिकोह को। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दोनों बहिनों ने शाहजहाँ पर दबाव डालना आरम्भ किया। इन दोनों रमणियों के आन्दो-लन के कारण दरबारियों में भी दो दल बन गए थे। यद्यपि शाहजहाँ रौशनआरा को अधिक मानता था और जैसा कि हम ऊपर लिख आए हैं, राजकाज में उसकी सलाह भी लिया करता था, परन्तु उत्तराधिकार के सम्बन्ध में उसने जहानआरा का ही पक्ष लिया। क्योंकि जहानआरा ने सम्राट के दिल में यह बात जमा देने में सफलता प्राप्त कर ली थी कि साम्राज्य का उप-युक्त उत्तराधिकारी दाराशिकोह ही हो सकता है; औरङ्गज़ेब में ऐसी योग्यता नहीं है। परन्तु तीक्ष्ण-बुद्धि रौशनआरा दारा को फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहती थी। वह अपनी सारी शक्ति लगा कर औरङ्गज़ेब

को भारत का भावी सम्राट बनाना चाहती थी। उसने बड़ी चालाकी से औरङ्गज़ेब के कान भरने आरम्भ कर दिए। दरबार की हर एक छोटी-बड़ी बात औरङ्गज़ेब के कानों तक पहुँचा कर उसे उत्तेजित करने लगी। इसके सिवा उसने ऐसे कितने ही गुप्तचर नियुक्त किए, जो तरह-तरह की अफ़वाहें फैलाते और उन्हें औरङ्गज़ेब तक पहुँचाया करते थे। इसके सिवा साधारण जनमत को भी उसने औरङ्गज़ेब के पक्ष में करने की बड़ी चेष्टा की। सन् १६५८ ईस्वी में, जब शाहजहाँ मृत्यु-शय्या पर पड़ा तो उसके चारों लड़के—दाराशिकोह, शुजा, मुराद और औरङ्गज़ेब—अलग-अलग सम्राट-पद प्राप्त करने की चेष्टा में लगे। परन्तु अन्त मे औरङ्गज़ेब को ही सफलता प्राप्त हुई। शाहज़ादा मुराद को सब्ज़बाग़ दिखा कर उसने अपने वश में कर लिया। भामूगढ़ के मैदान में भाई-भाइयों में भयङ्कर समर आरम्भ हुआ। हज़ारों जानें गईं। दाराशिकोह हार कर दिल्ली की ओर भाग गया। शुजा पहले ही आसाम की ओर भाग चुका था। मुराद औरङ्गज़ेब के क़ैदख़ाने में था। औरङ्गज़ेब ने अपने सम्राट होने की घोषणा कर दी थी। परन्तु दरबारी षड्यन्त्रों का अभी अन्त नहीं हुआ था। सम्राट शाहजहाँ की उत्कट अभिलाषा थी कि उसका लाड़ला बेटा दाराशिकोह भारत का सम्राट बने। उसे औरङ्गज़ेब का बादशाह होना किसी तरह भी पसन्द न था। इसलिए उसने एक नई तदबीर सोची और अगर समय रहते ही रौशनआरा को इस बात की टोह न लग जाती तो मुग़ल साम्राज्य के इतिहास के पन्ने किसी और ही रङ्ग में रँगे गए होते। अस्तु।

भाइयों को परास्त करके, विजय का डङ्का बजाता हुआ, जिस समय औरङ्गज़ेब ने आगरे में प्रवेश किया, उस समय उसका वृद्ध पिता सम्राट शाहजहाँ नज़रबन्द था, इसलिए वह प्रगट रूप से दाराशिकोह की मदद नहीं कर सकता था। परन्तु वह चाहता था कि किसी तरह औरङ्गज़ेब के मनसूबे व्यर्थ कर दिए जावें, इसलिए एक दिन फ़ाज़िल ख़ाँ के मार्फ़त उसने औरङ्गज़ेब को पैग़ाम भेजा कि मेरी इच्छा स्वयं अपने हाथों से औरङ्गज़ेब के सिर पर राज-मुकुट धरने की है, इसलिए वह थोड़ी देर के लिए क़िले में चला आए, ताकि मेरी अभिलाषा पूरी हो जाए। इधर उसने क़िले की तुर्कमान स्त्रियों को, जो उसकी देख-रेख के लिए औरङ्गज़ेब द्वारा नियुक्त थीं, पुरस्कार आदि का प्रलोभन देकर इस बात पर राज़ी कर लिया कि जब औरङ्गज़ेब क़िले में आवे तो मार डाला जाय। यद्यपि औरङ्गज़ेब को अपने पिता पर विश्वास न था और जानता था कि यह दारा का तरफ़दार और मददगार है, तथापि वह इस चाल की गहराई को नहीं ताड़ सका। उसने पिता का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और क़िले में जाकर पिता के हाथों से राज-मुकुट धारण करने को राज़ी हो गया। परन्तु औरङ्गज़ेब के वहाँ जाने से पहले ही रौशनआरा ने इस षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ कर दिया। उसने औरङ्गज़ेब को बुला कर अच्छी तरह समझा दिया कि सम्राट के चकमे में न आना। औरङ्गज़ेब सावधान हो गया और अपनी रक्षा का उपाय करने लगा। कई इतिहासकारों का मत है कि यद्यपि शाहजहाँ की हैसियत उस समय एक राजनीतिक क़ैदी की थी और औरङ्गज़ेब की आज्ञा के बिना उसके पास तक मनुष्य तो क्या एक पक्षी भी नहीं पहुँच सकता था, फिर भी वह सम्राट था। बहुत से दरबारी, कर्मचारी और प्रजा उसके पक्ष में थी। शाहजहाँ था भी नेकदिल, दयावान और समझदार, इसलिए क़ैद होने पर भी उसका प्रभाव पूर्ववत् था। लोग उसकी नेकियों को नहीं भूले थे, इसलिए रौशनआरा के सावधान करने पर औरङ्गज़ेब ने स्पष्ट शब्दों में पिता की आज्ञा की अवहेलना न की और बहानेबाज़ी करके समय बिताने लगा। साथ ही दरबारियों और कर्मचारियों को प्रचुर रुपए-पैसे आदि देकर उन्हें अपने वश में करने लगा। अन्त में जब उसे विश्वास हो गया कि उसके मददगारों की तादाद काफ़ी हो गई तो उसने अपने नज़रबन्द पिता को कहला भेजा कि जब तक क़िले में हथियारबन्द सैनिक मौजूद हैं, तब तक मैं नहीं आ सकता। वृद्ध सम्राट पुत्र की इस चालाकी को न समझ सका! उसने अपने सैनिकों को बुला कर आज्ञा दे दी कि क़िला ख़ाली कर दिया जाय। औरङ्गज़ेब तो यही चाहता ही था। जब उसने देखा कि सम्राट के शुभ-चिन्तक और सैनिक क़िले से बाहर चले आए तो उसने अपने विश्वासी अनुचरों के साथ जाकर क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। कुछ लोगों का कहना है कि यह सारी

कार्रवाई उसने अपनी बहिन रौशनआरा की सलाह से की थी।

अस्तु, औरङ्गज़ेब के तख़्तनशीन होने पर रौशनआरा का दबदबा भी ख़ूब बढ़ गया। शासन-कार्य के प्रत्येक विभाग में उसकी तूती बोलने लगी। अब वह राज-महल की सर्व-प्रधाना शासिका थी। शासन की मशीन का हर एक पुर्ज़ा उसके इशारों पर चलने लगा। औरङ्गज़ेब ने प्रचुर धन-रत्न देकर उसे मालामाल कर दिया। नित्य-नैमित्तिक व्यय के लिए प्रति मास राजकोष से यथेष्ट रुपए मिलने लगे। राज-दरबार का प्रत्येक व्यक्ति रौशनआरा को सम्मान की दृष्टि से देखने लगा। जब कभी वह बाहर निकलती तो उसकी सवारी बड़े ठाट-बाट से निकला करती थी। यहाँ तक कि रौशनआरा के सामने औरङ्गज़ेब की शाह बेगम की भी कुछ नहीं चलती थी। इसके साथ ही रौशनआरा भी औरङ्गज़ेब को बड़े स्नेह की दृष्टि से देखती थी और उसे ही अपना सर्वस्व समझती थी। सन् १६६४ में औरङ्गज़ेब सख़्त बीमार पड़ा। धीरे-धीरे बीमारी यहाँ तक बढ़ी कि शाही हकीमों ने उसे दुस्साध्य बता दिया। सम्राट बहुधा बेहोशी की हालत में पड़ा रहने लगा। उस समय रौशनआरा ने उसकी बड़ी सेवा की थी। हज़ारों नौकरों, बाँदियों और बेगमों के रहते हुए भी वह दिन-रात उसके पलङ्ग के पास बैठी रहती और सारी सेवा-शुश्रूषा अपने हाथों से किया करती। इस समय भाई को उसके शत्रुओं के षड्यन्त्र से बचाने का भी उसने यथेष्ट प्रबन्ध कर रक्खा था। जिस महल में औरङ्गज़ेब रोग-शय्या पर पड़ा था, उसके बाहर और भीतर तुर्कमान स्त्रियों का ज़बरदस्त पहरा बिठा दिया गया था। यहाँ तक कि रौशनआरा की आज्ञा बिना बादशाह की बेगमें भी रोगी की शय्या तक नहीं पहुँच सकती थीं। रौशनआरा के शत्रुओं ने बाहर यह अफ़वाह उड़ा दी थी कि औरङ्गज़ेब की मृत्यु हो चुकी है और रौशनआरा स्वयं सम्राज्ञी बनना चाहती है, इसलिए उसने इस बात को प्रगट नहीं होने दिया है और भीतर ही भीतर प्रयत्न कर रही है। कुछ लोगों का कहना था कि रौशनआरा औरङ्गज़ेब के लड़के की जगह अपने सब से छोटे भाई को तख़्तनशीन करना चाहती है। सम्राट की इस दीर्घकालीन रुग्णता के कारण शासनतन्त्र में विशृङ्खलता और साम्राज्य में विद्रोहाग्नि के धधक उठने की पूरी सम्भावना थी। परन्तु बुद्धिमती रौशनआरा ने बड़ी दृढ़ता और गम्भीरता से इस विषम परिस्थिति का सामना किया। उसने सबसे पहले 'शाही मुहर' को अपने अधिकार में कर लिया और सूबेदारों, अधीनस्थ राजाओं और अन्यान्य राज-कर्मचारियों के नाम समय-समय पर हुक्मनामे जारी करके राज्य में शान्ति कायम रक्खी।

अन्त में रौशनआरा की सेवा-शुश्रूषा से औरङ्गज़ेब की हालत सुधरने लगी। परन्तु इन्हीं दिनों एक घटना सङ्घटित हुई, जिससे रौशनआरा के अधिकार और दबदबे को गहरा धक्का लगा। औरङ्गज़ेब की प्रधाना महिषी को अपने पति के ऊपर रौशनआरा का प्रभाव और अधिकार बड़ा बुरा मालूम हुआ। वह एक राजपूत रमणी थी। पति की रुग्णावस्था में उसकी सेवा करना अपना धर्म समझती थी। परन्तु रौशनआरा के सामने उसकी दाल नहीं गलने पाती थी। अन्त में हताश होकर उसने पहरेदारों को अपनी ओर कर लिया और जब रौशनआरा इधर-उधर चली जाती, तब यह बेगम औरङ्गज़ेब के पास पहुँचती और रौशनआरा की ख़ूब निन्दा किया करती थी। जब औरङ्गज़ेब सम्पूर्ण नीरोग हो गया तो बेगम ने अपने पुत्र शाहआलम को औरङ्गज़ेब के पास भेज कर रौशनआरा की बड़ी शिकायत कराई। दूसरी कई बेगमों ने भी, जो रौशनआरा से चिढ़ी हुई थीं, शाहज़ादे शाहआलम की शिकायतों का समर्थन किया। औरङ्गज़ेब के दिल पर इन शिकायतों का बड़ा असर पड़ा। वह रौशनआरा की अनधिकार चर्चा से चिढ़ गया और धीरे-धीरे उसके प्रभाव से अपने को मुक्त कर लिया। रौशनआरा के वे शानो-शौकत के दिन देखते-देखते हवा हो गए। शासनतन्त्र के सभी विभागों से उसका प्रभाव तिरोहित हो गया। औरङ्गज़ेब उसके तमाम अहसानों को भूल गया। अब वह राजपरिवार के बच्चों की शिक्षयत्री के सिवा और कुछ नहीं रह गई। अपने अच्छे दिनों में उसने राजपरिवार की दूसरी स्त्रियों के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसका फल उसे हाथोंहाथ मिल गया। औरङ्गज़ेब को भी अब उसकी सहायता और परामर्श की कोई ज़रूरत न रही। शाही महल के नौकर-चाकर भी रौशनआरा

की तुन्द-मिज़ाजी से परेशान रहते थे। सम्राट को अपने हाथों में कर लेने के कारण उसने सबके साथ दुर्व्यवहार करना आरम्भ कर दिया था। उसकी आज्ञा की अव-हेलना करना मृत्यु को वरण करना था। किसी की ज़रा सी चूक भी वह बरदाश्त नहीं कर सकती थी। साधारण से साधारण अपराध के लिए कठिन से कठिन दण्ड प्रदान करना उसके लिए मामूली बात थी। इसलिए सम्राट औरङ्गज़ेब के अन्तःपुर में कोई उसका शुभचिन्तक न था। वरन् सभी चाहते थे कि किसी तरह इसके चङ्गुल से प्राण बचे। इसके सिवा रौशनआरा के पतन का कारण औरङ्गज़ेब की कन्या शाहजादी ज़ेबुन्निसा भी थी। यह शाहज़ादी जैसी रूपवती थी, वैसी ही बुद्धि-मती भी थी। दया, दाक्षिण्य और मिलनसारी आदि कितने ही स्त्रियोचित सद्गुण इसमें थे। यह बड़ी मञ्जु-भाषणी थी। राजमहल के सभी छोटे-बड़े इससे प्रसन्न रहते थे। स्वयं सम्राट भी इसकी बुद्धिमानी और इसके मधुर व्यक्तित्व पर मुग्ध था। इसलिए रौशनआरा को ज़ेबुन्निसा के लिए स्थान खाली कर देना पड़ा।

शाहज़ादी रौशनआरा ने पचपन-छप्पन वर्ष की उम्र में इस संसार को छोड़ा था। दिल्ली का रौशनआरा-बाग़ आज भी उसकी याद दिलाता है। किसी समय इस बाग़ की शोभा दर्शनीय थी। आज भी उसकी गणना दिल्ली के दर्शनीय स्थानों में की जाती है।

—नवजादिकलाल श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

कहानी-कला पर विचार

"हमारे अधिकतर सम्पादकों को कहानी-कला की शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।" एक अमेरिकन पुस्तक में ये शब्द पढ़ कर हम चकित रह गए। ठीक यही भाव कई दिनों से हमारे मन में हिन्दी-सम्पादकों के प्रति उठ रहे थे। पर उन्हें प्रकट करने का साहस न होता था। परन्तु यदि अमेरिका—जिसे आधुनिक 'कहानी' का रूप निश्चित करने का सौभाग्य प्राप्त है और जहाँ आज भी कहानी अपने असली रूप में निकल रही है—की यह अवस्था है तो हिन्दी, जिसमें कहानी का प्रादुर्भाव हुए अभी केवल कुछ ही वर्ष हुए हैं—की यह हालत क्षम्य है। इसमें हमारे सम्पादकों का कोई दोष नहीं; क्योंकि हिन्दी में कहानियों की एक-दो को छोड़ कर कोई भी पत्रिका नहीं। अधिकतर पत्रिकाएँ यहाँ "विविध विषय सम्पन्न" हैं। वे मास में केवल एकाध कहानी देती हैं। इसके लिए कौन कहानी-कला का अध्ययन करता फिरे—विशेष कर जब कि पाठकों में साहित्यिक ज्ञान का अभाव होने के कारण कोई भी चीज़ कहानी के नाम से चल सकती हो। परन्तु उस भाषा के लिए, जो राष्ट्र-भाषा के उच्चासन पर आरूढ़ होने जा रही हो, यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं। हमें तो अभी विश्व-साहित्य में हिन्दी के लिए आदर का स्थान प्राप्त करना है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हमारे साहित्यिक प्रयास संसार के सम्मुख रक्खे जाने से पहिले साहि-त्यिक—केवल साहित्यिक—कसौटी पर परखे जाएँ तो।

"शिक्षा" तथा "उपयोगिता" कला को बहुत रौंद चुके हैं—उसका लगभग गला घोंट चुके हैं। इसलिए उनके पञ्जे से कला को छुड़ा कर हमें अब इस बेचारी को विकसित करने में प्रयत्नशील होना चाहिए। इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर हम आधुनिक कहानी पर दो शब्द लिखने बैठे हैं। क्योंकि हमारे क्षुद्र विचार में हिन्दी में बहुत कम कहानियाँ अपने नाम को सार्थक करने वाली हैं। और शायद यही लेख विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित करके हिन्दी-कहानी के विकृत रूप को सँवारने में कुछ लाभदायक हो जाए।

जिस दिन से मनुष्य ने होश सँभाला था, उसी दिन से वह कहानी कहने लगा था। चाहे ठीक हो या न हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य में कहानी बहुत पुराने समय से चली आ रही है। हमारे पुराणों में तथा मिश्र के ६,००० वर्ष पुराने पत्रों में इसके काफ़ी प्रमाण मिलते हैं। परन्तु जिस रूप में कहानी इस समय प्रचलित है, उस रूप को सब से पहिले संसार के सम्मुख, सन् १८२७ में, प्रसिद्ध फ्रेञ्च लेखक प्रॉस्पर मेरिमी (Prosper Merimee) ने अपनी अद्वि-तीय कहानी 'मैतियो फ़ाल्कन' (Mateo Falcon) द्वारा तथा सन् १८३० में विख्यात अमेरिकन लेखक तथा कहानी के पिता एडगर ऐलन पो (Edgar Allan Poe) ने अपनी कहानी 'बैरिनाईस' (Bernice)

द्वारा रक्खा। पो ने १८४२ में हॉथॉर्न (Hawthorne) की रचनाओं की समालोचना करते हुए कहानी की परिभाषा पर भी ख़ूब प्रकाश डाला। और पो की खींची हुई लकीरें आज भी प्रमाण मानी जाती हैं। तब से 'कहानी' साहित्य की एक भिन्न शाखा बन गई और पो के दिखाए हुए मार्ग पर चलने लगी। फल यह है कि आज 'कहानी' को लिखने तथा पढ़ने वालों की संख्या अपरिमित है। पश्चिम से भारतवर्ष में सबसे पहिले कहानी बङ्गला ने ली और बङ्गला से हिन्दी ने। इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि कहानी हमें पश्चिम से मिली है। इसलिए ठीक कहानी लिखने के लिए हमें उन्हीं के बाँधे हुए नियमों पर चलना चाहिए। इस लेख में उन्हीं नियमों को दृष्टिगत करते हुए कहानी-कला पर विचार किया जाएगा।

कहानी क्या है ?

कहानी एक मुख्य पात्र तथा एक प्रधान घटना का संक्षिप्त काल्पनिक वर्णन है। इसमें एक कथानक (Plot) आवश्यक है, जिसकी रचना विस्तारपूर्वक वर्णन को काट-छाँट कर इस भाँति हुई हो कि पढ़ने पर मस्तिष्क में वह केवल एक भाव की छाप छोड़ जाए।

इस परिभाषा मे निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

मुख्य पात्र

इसका यह मतलब नहीं कि एक को छोड़ कर और पात्र चाहिए ही नहीं। परन्तु उनकी आवश्यकता केवल मुख्य पात्र के वर्णन की सहायता के लिए है। जैसे लेखक को अपनी कहानी में माता की ममता दिखानी हो। इसमें माता मुख्य पात्र के अतिरिक्त एक दो बच्चे, बच्चों को कष्ट देने वाला कोई दुष्ट तथा उनकी सहायता करने वाला कोई सज्जन भी आवश्यक है। कभी-कभी दो मुख्य पात्र भी हो सकते हैं, परन्तु यह नियम नहीं, प्रत्युत उसका अपवाद है।

प्रधान घटना

प्रधान घटना के विकसित करने के लिए भी और घटनाओं का होना अनिवार्य है। इन घटनाओं के सहारे ही प्रधान घटना तक पहुँचा जा सकता है। जैसे प्रेमचन्द जी की कहानी "बूढ़ी काकी" में प्रधान घटना यद्यपि बूढ़ी का जूठी पत्तलों को चाटना है, परन्तु उस तक पहुँचने के लिए लेखक को छोटी-छोटी कितनी ही घटनाएँ पार करनी पड़ी हैं।

संक्षिप्त वर्णन

इसके अर्थ केवल यही नहीं कि कहानी छोटी हो, परन्तु यह भी हैं कि उसमें भर्ती का एक शब्द भी न हो। "शीतल सुखद समीर", "पूर्णमासी की उज्ज्वल रात्रि," "टूटी हुई वीणा" और अन्य ऐसे कवित्वमय भाव यदि कहानी के विकास के लिए आवश्यक न हों तो उनका वहाँ कोई स्थान नहीं। कला को छिपाना भी तो कला है। कला के उच्चतम आदर्श तक पहुँचने के लिए बीसियों नई सूझों तथा कमनीय विचारों को निछावर करना भी ज़रूरी है। आदर्श कहानी वही है, जिसमें एक-एक शब्द नाप-तौल कर रक्खा गया हो।

इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि कहानी में फ़ालतू शब्द आने से वह रद्दी हो जाएगी। इस कला के बड़े-बड़े विद्वानों की लेखनी से भी फ़ालतू शब्द निकल ही जाते हैं। अमर फ्रेञ्च लेखक मोपासाँ की प्रसिद्ध कहानी 'नेक्लेस' मे तथा अद्वितीय अमेरिकन लेखक ओ० हेनरी की कहानी "The Gift of the Magi" में भी ढूँढने पर कुछ शब्द फ़ालतू अवश्य मिल जाएँगे। परन्तु आदर्श वही होना चाहिए, जो ऊपर कहा गया है।

कथानक

कथानक लेखक द्वारा की हुई वह चतुर योजना है, जिससे उत्सुकता को उकसा कर वह अन्त में उसे शान्त कर देता है। यह कहानी का ख़ाका मात्र है। जैसे चितेरा चित्र का ख़ाका खींचने के अनन्तर उसमें रङ्ग आदि भरने तथा दृश्य चित्रित करने लगता है, उसी भाँति कहानी लिखने से पहिले कथानक निश्चित कर लेना अत्यावश्यक है। कथानक के बिना कहानी का बनना असम्भव है। और कुछ करने से पहिले लेखक की सब शक्तियाँ कथानक को तराशने में लगनी चाहिएँ। क्योंकि कुबड़े के कूबड़ की भाँति एक भद्दे कथानक को कोई भी कहानी नहीं छिपा सकती।

रोचकता कहानी का एक बड़ा भारी गुण है और उसे रोचक बनाने के लिए कथानक में कम से कम एक रुकावट का लाना अनिवार्य है। प्रधान पात्र या पात्री के पूर्णानन्द की राह में काँटों की बाढ़ का होना ज़रूरी है। उसे पार करने में, उन्हें सफल या असफल कराने में ही कथानक का कर्त्तव्य पूरा हो जाता है।

एक ही भाव की छाप

इसके लिए जहाँ तक हो सके, समय, स्थान, पात्र तथा घटनाओं की एकता को कहानी में लाने का उद्योग करना चाहिए। इसके ये अर्थ हैं कि जहाँ तक हो सके, घटनाएँ एक ही निश्चित समय में घटित हों, सीन एक ही स्थान तक परिमित रहे, कहानी प्रधानतया एक ही पात्र पर केन्द्रित हो तथा कहानी की सब शक्तियाँ एक ही प्रधान घटना को उत्पन्न करने में लगी हों।

ऊपर कही बातों से यह स्पष्ट है कि कहानी साहित्य-कला की कितनी कठिन शाखा है। इसे ठीक लिखने के लिए कितने संयम तथा परिश्रम की आवश्यकता है। यह प्रत्येक तृतीय श्रेणी के नौसिखिए लेखक की धरोहर नहीं, परन्तु साहित्य-मार्तण्डों के जौहर दिखाने की चीज़ है। पो इसे साहित्य में केवल कविता से नीचे गिनता है। सत्य, शिव और सुन्दर का चित्ताकर्षक चित्र खींचने के लिए यह साहित्य की किसी भी शाखा से टक्कर ले सकती है। इसलिए कहानी को ठीक मार्ग पर चलाने की बहुत आवश्यकता है। क्या यह आशा नहीं की जा सकती कि हिन्दी-प्रेमी इस ओर शीघ्र ध्यान देने की कृपा करेंगे?

इस लेख में हम केवल कहानी की परिभाषा मात्र दे सके हैं। कहानी को किस तरह आरम्भ करना चाहिए, कैसे समाप्त करना चाहिए, कहानी का नाम चुनने में कितनी सावधानी की आवश्यकता है, स्फूर्ति कहाँ से और कैसे मिल सकती है, आदि-आदि बातों पर फिर कभी समय मिलने पर प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

—पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए०, एल्-एल्० बी०

❀ ❀ ❀

कविता के क्षेत्र में

आजकल साहित्य में कविता को लेकर बहुत वाद विवाद हो रहा है। कविता के स्वरूप के विषय में भिन्न मत होना कोई अनुचित बात नहीं। पर जब 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की नौबत आ जाती है अथवा आने का भय रहता है, तब सतर्कता की अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ती है। अस्तु—

इस विवाद के कई स्पष्ट कारण हैं। पहला और मुख्य कारण तो समालोचना के पश्चिमी सिद्धान्तों का अन्धानुकरण है। हम इन सिद्धान्तों का उपयोग कविता की तोल में न करके, कविता को उनके पीछे घसीटे फिरते हैं। हिन्दी तथा संस्कृत के उत्तरकालीन अधिकांश कवियों पर भी यही दोषारोप है। हम उन पर दण्डी, मम्मट, विश्वनाथ आदि पण्डितों द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के उदाहरण पर कविता लिखने का लाञ्छन लगाते हैं। यह सत्य है कि इन कालों में कविता की वह सरलता नष्ट हो चुकी थी, जो इनसे पहले के कवियों में पाई जाती है। इन कालों में यदि अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की रचना होती, तो कालिदास के शाकुन्तल के समान, शकुन्तला की विदाई के समय की यह तीव्र भावनामयी युक्ति किसी कवि को न सूझती—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डु तरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं।
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्॥
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै—
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥

वास्तव में उस समय भावना का तिरस्कार हो गया था। कवि कल्पना के बोझ से इतने दब गए थे कि 'कृष्ण के मकराकृत कुण्डलों में मकरध्वज के चिन्हों के सिवा कुछ न देखते हुए, वे उन योगिराज को कामदेव का अवतार ही नहीं, अड्डा मान बैठे थे।' सूर ने भी कृष्ण के श्रृङ्गार का वर्णन ख़ूब किया है। पर बाल-लीला से गोपी-विरह तक उनका श्रृङ्गार सांसारिक विषय-लिप्सा के गर्त से कहीं ऊँचा है। उनकी यह भावना विरह-वर्णन के इस पद से स्पष्ट है—

कहाँ लौं कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मन सो तहाँ न जाई।।
जाके रूप न रेख बरन बपु नाहिन सङ्गत सखा सहाई।
ता निरगुन सों नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई।।
जल बिन तरँग भीति बिन लेखन बिन चेतहिं चतुराई।
या ब्रज मे कछु नहीं चाह है ऊधौ आनि सुनाई।।
मन चुभि रही माधुरी मूरति अङ्ग-अङ्ग अरुझाई।
सुन्दर श्याम कमल-दल-लोचन सूरदास सुखदाई।।

यही परमात्मा का सुन्दर और मङ्गलमय रूप है। इसी के भीतर सत्य की झलक दिखाई देती है।

हमारी भी दशा हिन्दी और संस्कृत के अधिकांश मध्य और उत्तरकालीन कवियों जैसी ही है। पश्चिमी सिद्धान्त भारतीयों के लिए बिलकुल नए होने से हमारी भी धाक पहले-पहल जमी। पर 'बकरे की माँ कब तक ख़ैर मनाएगी।' अब असलियत प्रकट हो गई है। आजकल कोई प्रतिभा-सम्पन्न सज्जन अपने अध्ययन के फल-स्वरूप कुछ सिद्धान्तों को लेकर चतुरतापूर्वक कविता लिखते हैं और दूसरे व्यक्ति, जिनकी प्रतिभा इतनी बढ़ी-चढ़ी नहीं होती, अथवा जिनका अध्ययन इतना प्रशस्त नही होता, उन्हीं के चुने सिद्धान्तों पर कविता लिखने लगते हैं; और उन्हें नवयुग का प्रवर्तक कह कर अपना महन्त मान लेते हैं। यह महन्तगीरी आजकल हिन्दी में बहुत चली है और भिन्न-भिन्न वादों के नाम से प्रसिद्ध है। बाह्य अथवा अन्तर्जगत् की वास्तविक अनुभूति का अभाव होने से इस प्रकार रची गई कविता में वह माधुर्य नहीं होता, जो चित्त को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर ले। संस्कृत के कवि भारवि लिखते हैं:—

विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः,
प्रसादयन्ती हृदयानपिद्विषान्।
प्रवर्तते नाकृत पुण्यकर्मणां,
प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती।।

इन कवियों की कविता के शब्द और अलङ्कार, विविक्त होने के स्थान पर, कुछ अज्ञात अर्थ रखने वाले होते हैं, जिसका ज्ञान स्वयं कवि महाशय को भी होता है या नहीं, इसमें सन्देह है। भारवि की माप के विरुद्ध शत्रुओं तक के चित्त प्रसन्न करने के स्थान पर कविता सुन कर सहृदयों के चित्त भी खिन्न हो जाते हैं। प्रसन्नता (भावों की स्पष्टता) का तो उनमें अभाव रहता ही है, पर हाँ, भारवि के एक मत का ख़ूब बढ़-चढ़ कर पालन होता है। वह यह कि गम्भीरता कहिए अथवा क्लिष्टता के मारे कविता की थाह ही नहीं लगती—कविता समझ में ही नहीं आती। यह क्लिष्टता जल की गम्भीरता नहीं है, किन्तु उसका अत्यन्त उथलापन; जिसके कारण प्रयत्न करने पर भी मारे कीच के पैर नीचे जाता ही नहीं। डुबकी लगाना तो दूर रहा, आचमन के लिए हाथ डालते ही नीचे बैठी गन्दगी जल की ऊपरी चादर को मैली कर देती है।

जिन अङ्गरेज़ कवियों के अनुकरण पर बहुधा आजकल की कविताएँ लिखी जाती है, उनमे भी भावना की प्रबलता थी। West Wind (पश्चिमी हवा) को सम्बोधित करके शेली लिखता है—

Make me thy lyre ev'n as the forest is,
What if my leaves are falling like its own!
The tumult of thy mighty harmonies
Will take from both a deep autumnal tone,
Sweet though in sadness.

इन पंक्तियों से जान पड़ता है कि कवि संसार का रङ्ग-ढङ्ग देख कर ऊब गया है। ये पंक्तियाँ हृदय के सच्चे उद्गार हैं, ऊब जाने की कल्पना मात्र नहीं। यह कवि की जीवनी से स्पष्ट है। उसकी प्रत्येक कविता से इसी प्रकार की प्रतिध्वनि निकलती है। आजकल के कवि विवाहित जीवन का आरम्भ होने से पहले ही विरह के गीत अलापने लगते हैं। ख़स की टट्टियों में बिजली के पङ्खों के नीचे बैठ कर गर्मी की दुपहरी बिताने वाले श्मशान-वर्णन और ग्रीष्मकाल पर कविता लिखते हैं। कुछ अधिक हुआ तो आसपास की किसी बग़ीची में बसन्त-ऋतु में बैठ कर पुष्पों का सौरभ-पान करते हुए नव घन और निर्झर पर कविता लिखने लगे। बताइए, इस प्रकार की उक्ति मे सजीवता कहाँ से आ सकती है? माना कि अन्धे सूर को कृष्ण का शृङ्गार देखने को नहीं मिला था। गोस्वामी जी ने भी धनुष-यज्ञ देखा न था। पर रात-दिन अपने इष्ट-देव के चिन्तन में लीन रहने से—हृदय में उनके प्रति अगाध और

अनन्य भक्ति होने से यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी कविता अनुभूति-रहित है। गोस्वामी जी ने प्रकृति का शुद्ध वर्णन नहीं किया। अपने महाकाव्य मे नितान्त आवश्यकता पड़ने पर ही इस दिशा में उनकी लेखनी चली है। कारण यही है कि इस ओर उनकी रुचि अधिक न थी। यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि अनर्गलता-रहित होने पर भी उनके ऐसे वर्णन, उनकी अन्य कविता के सामने फीके जँचते है।

अब इसमे सन्देह नहीं कि कविता का मूल अनुभूति है। इसके उत्तेजन के लिए बाह्य और अन्तर्जगत का सूक्ष्मावलोकन आवश्यक है। तभी कवि वर्ण्य विषय से अपनी एकता अनुभव करता है और यथार्थ कविता की सृष्टि होती है। अनुभूति के बिना, कविता के केवल लक्षण लेकर उन्हें अपनी रचना में घटित करने का प्रयत्न ठीक वैसा ही है, जैसे किसी के सिर में दर्द तो न हो, पर वह हाय-हाय करके इधर-उधर सिर पटकता फिरे। इस प्रकार के प्रयत्नों मे वह स्वाभाविकता, वह अनूठापन आ ही नहीं सकता, जो कविता की वास्तव में आत्मा है। आजकल के कवि-सम्मेलनों में यह बात स्पष्ट दिखाई देती है ! स्वाभाविकता की जड़ तो 'समस्या' के कुठार से पहले ही काट दी जाती है ; बस, कृत्रिमता को अवकाश मिल जाता है और वह भाँति-भाँति की चेष्टा दिखाती हुई नृत्य करने लगती है। कहीं-कहीं तो यह चेष्टा भी असह्य हो जाती है। वीर-जयन्तियों के उपलक्ष्य में होने वाले कवि-सम्मेलनों में होली के पद गाए जाते हैं। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि कवि-सम्मेलन होना अभीष्ट नही। हों, अवश्य हों। यह कहने में भी आपत्ति नही कि भावुक युवकों को मैदान मे आकर परीक्षा देने का तथा जनता के मनोरञ्जन के ये अच्छे साधन हैं। पर इस अखाड़े में वे ही उतरें, जिनके हृदय में कविता लिखने की वास्तविक विह्वलता हो। प्रत्येक व्यक्ति इस विषय में अपनी परीक्षा इस प्रकार कर सकता है कि कविता रचने को वह कवि-सम्मेलन की राह न देखे। ऐसे ही व्यक्तियों की रचनाओं में से जो-जो जनता के मनोभावों को सन्तुष्ट करने वाली होंगी, वे समय की चपेट के सामने ठहर सकेंगी; शेष उसकी बाढ़ में स्वयं विलीन हो जावेंगी।

कुछ विद्वानों का मत है कि कविता का युग चला गया। पर आजकल भी पत्र-पत्रिकाओं में कभी-कभी ऐसी कविताओं के दर्शन हो जाते हैं, जो वास्तव में हृदय-स्पर्शिनी होती हैं। ये ऐसी ही लेखनी से निकलती हैं, जिनमें तीव्र अनुभूति होती है। यह भी देखा जाता है कि एक ही महानुभाव की एक रचना तो बहुत भली लगती है, पर दूसरी नही। इनमे पहली तो हृदय का स्वाभाविक उद्गार है, और दूसरी किसी सम्पादक के पत्रों, अथवा स्वयं कवि महोदय की यश अथवा अर्थ-लोलुपता का फल। प्रेसों के प्रसाद से अच्छी और बुरी सभी रचनाएँ हमारे पास पहुँच जाती हैं। अच्छों का अंश कम होने से हम अधीर हो, कह बैठते हैं कि अब कविता का युग नही है। यही तब भी होता था, जिसे कविता का युग कहा जाता है। जो कुछ प्राचीन कविता उपलब्ध है, वह एक-दो नही, बीसों शताब्दियों की कृति है। उस समय आवागमन तथा छापे की सुविधा न होने से सब रचनाएँ प्रसिद्धि न पा सकती थीं। केवल चुना हुआ माल ही सड़ने से बच पाता था। अब भी यही होगा। वास्तविक कविता का ही अधिक पठन-पाठन होगा। शेष एकाध बार भले ही हमारे नेत्रों के सामने आ जायँ।

अनुभूति कोई मूर्त पदार्थ नही। इसके जाग्रत होने पर शब्दों का मूर्त रूप देने में कल्पना और बुद्धि का सहारा देना पड़ता है। इस प्रकार काव्य की सृष्टि होती है। इस काव्य को कविता का रूप देने के लिए एक विशेष प्रकार की 'लय' अत्यन्त आवश्यक है। इस लय का स्वरूप निर्धारित करने में भी कई पन्थों की सृष्टि हो चुकी है। एक मत कहता है कि छन्द अनावश्यक हैं, इनके बिना भी कविता में लय का कार्य सिद्ध हो सकता है। इसी मत के आधार पर आजकल कविता के अद्भुत-अद्भुत रूप दिखाई देते हैं। कवि महाशय सुविधानुसार अथवा अपनी झक का अनुसरण कर मन-माने स्थान पर पंक्ति का आरम्भ या अन्त कर देते हैं। सत्य है, 'विधि सों कवि सब विधि बड़े।' वास्तव में ये पंक्तियाँ कई गद्य-वाक्य है, जिन्हें तोड़-तोड़ कर मनमाने स्थान पर कर्ता, विशेषण, क्रिया, कर्म, प्रश्नवाचक और विस्मयादि-सूचक चिन्ह रख दिए जाते हैं। इस प्रकार उनके रचयिताओं ने स्वयं किसी वस्तु की कल्पना कर

जी है। इसमें किस प्रकार की 'लय' होती है, यह भी अनुभवगम्य नहीं। देखिए—

> हे गुणवान !
> किस अनादि के काल से
> तेरा अन्तहीन यह गान,
> गूँज रहा है,
> जीवन के प्रत्येक अंश मे
> अन्तहीन अम्बर में।
> अशनि-नाद,
> कर्म-कोलाहल,
> मेघ-मन्द्र
> सागर-गर्जन,
> खिले सुमन सी हँसी
> और वर्षा-सा रोदन,
> हो जाते है सभी लीन
> तेरे खर स्वर मे
> नीर-तरङ्ग समान,
> हे गुणवान !

छन्द के अभाव में यदि लेखक इन्हें गद्य-काव्य का ही रूप देते तो राय कृष्णदास की 'साधना' या रवीन्द्र की 'गीताञ्जलि' की शैली के अच्छे काव्य-ग्रन्थ बन जाते और जनता के मनोभावों को सरलता से पुष्ट करने में सहायक होते। इन महाशयों की 'लय' की जो कल्पना है, वह गद्य-काव्य में अच्छी प्रकार लाई जा सकती है। वैसे भी देखा जाय तो अच्छे गद्य-लेखक की शैली मे एक प्रकार की लय अवश्य होती है। पर इस लय और कविता की लय में भेद है। कविता की लय छन्दों पर ही आश्रित है।

छन्द के विरुद्ध मुख्य रूप से यह कहा जाता है कि उनकी यति और अन्त्यानुप्रास के कारण उक्ति (Expression) की सरलता मारी जाती है। यह कथन सर्वथा निर्मूल है। छन्द का बन्धन तोड़ने पर भी सुधारकों की उक्ति कहाँ तक सरल होती है, यह सभी जानते हैं। दूसरी ओर इन बन्धनों में—मर्यादा में—रहने वाले प्राचीन कवियों में क्लिष्टता का प्रायः अभाव ही है। गोस्वामी तुलसीदास ने मुख्यतः एक छन्द (चौपाई) का आश्रय ग्रहण कर रामायण जैसा अद्वितीय महाकाव्य बना दिया। उक्ति को कहीं कठिनाई न आई। बानगी के लिए एक चौपाई देखिए। इसमें दस का अर्थ लाने को 'षटचारी' (छः और चार) शब्द केवल अनुप्रास और मात्रा-पूर्ति के लिए लाया गया है। चौपाई है—

> गिरत दशानन उठा सँभारी।
> भूतल परे मुकुट षटचारी॥

प्रतिभा तो अपना मत सब हर कहीं सिद्ध कर लेती है। सौभाग्य से भारतीय पिङ्गल में छन्दों की भी कमी नहीं। अपनी सुविधानुसार किसी छन्द से काम लिया जा सकता है। यदि कहा जाय कि ब्रज-भाषा जैसी सुविधा खड़ी बोली को प्राप्त नहीं तो यह भी माननीय नहीं। गोस्वामी जी तथा कबीर आदि कुछ कवियों के अतिरिक्त प्रायः सभी ने बातचीत की भाषा में बहुत कम परिवर्तन किए हैं। संस्कृत जैसी व्याकरण-बद्ध भाषा तक में छन्द का जादू यहाँ तक फैला कि वैद्यक, ज्योतिष आदि तक के ग्रन्थ पद्य में लिखे गए। आजकल खड़ी बोली मे भी छन्दोबद्ध कविता सिद्ध-हस्त कवियों के हाथ से धड़ाके से निकलती है। यदि छन्द को कविता का शरीर (Form) बता कर उसकी आत्मा ही सब कुछ मानी जाय, तो उस निर्गुण परब्रह्म का अनुभव जन-साधारण की पहुँच के बाहर है, जब तक कि वह सगुण रूप में प्रकट न हो।

एक दूसरा मत छन्द की आवश्यकता तो मानता है, पर उसे मात्रिक छन्दों तक मे अन्त्यानुप्रास रुचिकर नहीं। कौन सहृदय व्यवहार मे इस कथन की उपयोगिता का अनुभव करेगा ? मेरा जहाँ तक विचार है, मराठी में तो वर्ण-वृत्तों तक में अन्त्यानुप्रास उपयोगी समझ कर रक्खे गए है। सत्य है कि अन्त्यानुप्रास के बिना छन्द का काम चल सकता है। 'लय' के लिए भी अन्त्यानुप्रास अत्यन्त आवश्यक नहीं। पर कम से कम मात्रिक छन्दों मे तो हमें अन्त्यानुप्रास का अभ्यास पड़ा हुआ है। चाहे इसे प्राचीन कविता से लगी चाट कहिए या कुछ, अन्त्यानुप्रास के बिना जिह्वा और कान को झटका सा लगता है और कविता का सङ्गीत फीका पड़ जाने से उसका आह्लादक गुण मारा जाता है।

इस अनुप्रास के बिना छन्द वैसा ही है, जैसे बिना सुपारी के पान। कुछ मनचलों को चाहे ऐसा पान रुचिकर हो, पर साधारण समाज तो उसे सुपारी डाल कर खाने का आदी है। यदि शैली की नवीनता कह कर अन्त्यानुप्रास के अभाव की उपयोगिता सिद्ध की जाय तो भी प्रश्न यह है कि इससे कविता का सौन्दर्य कहाँ तक स्थिर रहता है? नई बात लोक में कुछ कौतूहल भले ही उत्पन्न कर दे, पर जब तक वह उपयोगी अथवा सुन्दर नहीं है, लोक उसे ग्रहण नहीं कर सकता। हम किसी वस्तु को केवल नवीनता के कारण क्यों ग्रहण कर लें—विशेषकर जब कि उससे सुन्दर के—आत्मा के न सही, शरीर के सही—सौन्दर्य को आघात पहुँचता हो।

सरस्वती का उपयुक्त स्थान वही मस्तिष्क हो सकता है, जो शुद्ध हो, सरल हो, और हठधर्मी तथा मतमतान्तर की कीच से लिप्त न हो। कविता का स्वच्छन्द प्रवाह उसी हृदय से निकल सकता है, जिसमें तीव्र अनुभूति हो। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं कि मस्तिष्क और हृदय के बीच में कोई अवरोध है, और एक का सम्बन्ध दूसरे से नहीं। है, अवश्य है। सत्य तो यह है कि तीव्र अनुभूति होने पर भी सरस्वती की कृपा बिना कविता की सृष्टि हो ही नहीं सकती। किन्तु जहाँ मस्तिष्क का परिष्कार बहुत-कुछ मनुष्य के हाथ में है, हृदय का संस्कार परमात्मा कहिए अथवा प्रकृति, किसी अज्ञात शक्ति पर ही निर्भर है। फलतः कवि होना मनुष्य के हाथ में नहीं। यही अभिप्राय 'Poets are born, not made' कहने का है।

—पुरुषोत्तम दीक्षित, बी० ए०

❀ ❀ ❀

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों का स्थान

स्त्रियों को प्राचीन काल में 'अर्धाङ्गिनी' कहते थे। बस यह शब्द ही इस बात का काफ़ी प्रमाण है कि उस समय स्त्रियों का यथोचित आदर होता था तथा घर में उनका दर्जा पुरुष के दर्जे से किसी प्रकार भी कम नहीं माना जाता था। हाँ, एक बात अवश्य थी कि स्त्री अपने को पति की सहचरी समझने के साथ ही अनुचरी भी समझती थी। परन्तु अनुचरी का भाव वहीं तक था, जहाँ तक पति-सेवा से सम्बन्ध है। यज्ञादि में पतियों के साथ स्त्रियों का बैठना परमावश्यक था। स्त्रियों का स्थान महाभारत एवं रामायण में ही उच्च बताया गया है। यही नहीं, उसके बाद के काव्यों और नाटकों में भी वे श्रेष्ठ बताई गई हैं। फलतः मध्यकालीन भारत में भी स्त्रियाँ आदरणीय समझी जाती थीं। इसके प्रमाण के लिए भवभूति एवं नारायण भट्ट, इन दो व्यक्तियों का नाम लिख देना ही पर्याप्त है। इनके नाटकों में यह प्रश्न स्वयं हल हो गया है। स्त्रियों को शिक्षा दी जाती थी। वे स्वयं विद्या से प्रेम करती थीं। बाणभट्ट ने लिखा है कि राज्यश्री को बौद्ध सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए दिवाकर मित्र शिक्षक नियुक्त हुआ था। उस समय की ऐसी बहुत सी स्त्रियों के नाम मौजूद हैं, जो बौद्ध भिक्षुणी बन जाती थीं एवं अपने गहन अध्ययन द्वारा बुद्ध के सिद्धान्तों का अन्य लोगों के सम्मुख प्रतिपादन करती थीं। यह तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है कि मण्डन मिश्र की अगाध पण्डिता स्त्री ने शास्त्रार्थ में श्रीशङ्कराचार्य जैसे उद्भट विद्वान का मुँह बन्द कर दिया था। यह भी ज़ाहिर है कि कवि राजशेखर की धर्मपत्नी अत्यन्त ही रूपवती और विदुषी थीं। उपर्युक्त स्त्री-रत्न का नाम अवन्ति सुन्दरी था। राजशेखर ने अपने सिद्धान्त विषयक ग्रन्थों में जहाँ अन्य विद्वानों एवं स्वयं अपना मत प्रदर्शित किया है, या जहाँ उन्होंने उनके सिद्धान्तों एवं अपने सिद्धान्तों में मतभेद बताया है, वहीं—चार-पाँच जगह—अपनी विदुषी भार्या के सिद्धान्तों का भी दिग्दर्शन कराया है। विद्वानों का यह भी कथन है कि उस विदुषी ने प्राकृत भाषा में आने वाले देशीय शब्दों का एक कोष बनाया था और उसमें प्रत्येक शब्द के प्रयोग समझाने के लिए अपने ही बनाए उदाहरण रक्खे थे। इसका पता सिर्फ़ इसीसे चलता है कि हेमचन्द्र ने अपनी देशी नाममाला में दो जगह उसके मतभेद को बता कर उदाहरण में उसकी ही कविता उद्धृत की है। जैसे स्त्री-शिक्षा के विषय में आज आन्दोलन किए जा रहे हैं, वैसे पहिले बहुत कम होते थे। क्योंकि स्वयं कवि राजशेखर लिखते हैं:—

"पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी कवि हों। संस्कार तो आत्मा में होता है, वह स्त्री या पुरुष के भेद की अपेक्षा

नहीं करता। राजाओं और मन्त्रियों की कन्याएँ, वेश्याएँ, कौतुकियों की स्त्रियाँ शास्त्रों मे धुरन्धर विद्यावती देखी जाती हैं। बहुत सी सुन्दर कवियित्री भी हैं, जिनके नाम—इन्दुलेखा, मारुला, मोरिका, विज्जिका, शीला, सुभद्रा, पद्मश्री, मदालसा और लक्ष्मी इत्यादि हैं।"

यह तो हुई कवियित्री होने की बात। विद्वानों को यहाँ तक पता चला है कि उस समय की स्त्रियाँ गणित-शास्त्र मे भी बहुत ही दक्ष होती थीं। भास्कराचार्य ने अपनी कन्या को गणित का अध्ययन कराने के लिए "लीलावती" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। राज्यश्री सङ्गीत एवं नृत्यादि मे विशेष दक्ष थी। ये बातें सिद्ध करती हैं कि उस समय की स्त्रियाँ ललित-कलाओं में भी निपुण होती थीं। चित्रकला के विषय में हर्ष की "रत्नावली" देखने योग्य है। उसमें एक जगह रानी का वर्तिका अर्थात् ब्रुश से चित्र बनाने का वर्णन है।

मनु ने यद्यपि विवाहों के विषय में लिखा है कि आठ प्रकार के होते थे, परन्तु हमें यह याद रखना चाहिए कि मनुस्मृति मध्यकाल के बहुत पहिले बन चुकी थी। याज्ञवल्क्य स्मृति में सिर्फ़ चार ही प्रकार के विवाह बताए गए हैं। हारीत-स्मृति ने सिर्फ़ ब्राह्म विवाह को ही ठीक माना है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन काल मे शायद आठ प्रकार के विवाह होते रहे हों, किन्तु उसके बाद धीरे-धीरे एक ही प्रकार का विवाह रह गया। राजा, रईसादि बहुविवाह अवश्य करते थे। ऐसा एक शिलालेख से प्रकट हो चुका है। बाल-विवाह की प्रथा उस समय नहीं थी। कालिदास ने शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के मिलन का उल्लेख किया है। उस समय शकुन्तला काफ़ी बडी हो चुकी थी। मनुस्मृति भी विवाह के समय कन्या की अवस्था १६ वर्ष की होना बताती है। सङ्गीत-विशारदा राज्यश्री भी विवाह के समय १४ साल की थी। महाश्वेता भी विवाह योग्य हो गई थी, यह कादम्बरी में स्पष्ट है। मध्यकाल के अन्तिम भाग में मुसलमानों के आवागमन से बाल-विवाह प्रथा का प्रारम्भ हुआ। विधवा-विवाह भी कुछ न कुछ था अवश्य, पर बिलकुल ही नष्ट नहीं हुआ था। स्मृतियों में इसका ज़िक्र है। महर्षियों ने असम्भुक्त विधवा के विवाह होने के उपरान्त की सन्तान को जायदाद का अधिकारी तक बताया है। पुनर्विवाह कौन स्त्री कर सकती है? इस विषय में महर्षि पाराशर ने स्पष्ट लिखा है :—

> नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ।
> पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥

अर्थात्—"यदि किसी स्त्री का पति मर गया हो या साधु बन गया हो, लापता हो या पतित हो गया हो, नपुंसक हो या और किसी स्थिति में हो, वह स्त्री ऐसी दशा में दूसरा विवाह सानन्द कर सकती है।" इसके उदाहरण में वस्तुपाल, तेजपाल प्रसिद्ध मन्त्री मौजूद हैं। अलबत्ता ख़राबी यह हुई कि इस प्रथा की बुराई होते-होते यह प्रथा लोप हो गई। द्विजों ने तो इस प्रथा को अपने यहाँ से निकाल बाहर कर दिया। अलबेरूनी ने साफ़ लिखा है कि एक स्त्री दूसरी बार शादी नहीं कर सकती। आभूषणों के विषय में यही लिखा है कि सधवा स्त्रियाँ जो आभूषण धारण करती थीं, उनसे विपरीत आभूषण विधवाओं को पहनने पड़ते थे। स्त्रियाँ मध्यकाल में सीने के कार्य में विशेष पटु थी। स्त्रियों की, उस समय साधारण पोशाक साड़ी थी। उसे वे आधी पहिनतीं एवं आधी ओढ़ती थीं। जब कभी बाहर जाने की आवश्यकता पड़ जाती, तो दुपट्टा या चादर भी डाल लेती थीं। स्त्रियाँ नाचने-गाने के समय "पेशस्" अर्थात् कोई झीना वस्त्र पहनती थीं। कुछ मिली हुई तस्वीरों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। रानियाँ अक्सर लहँगे पहनतीं और दुपट्टे डालती थीं। मथुरा एन्टीक्विटीज़ (Muttra Antiquities) की प्लेट नम्बर १४ में एक जैन मूर्ति के नीचे दो श्रावक और तीन श्राविकाएँ खड़ी हैं, जो लहँगे पहिने हुए हैं। ये लहँगे आज जैसे लहँगों के समान ही है। यदि कोई कह दे कि दक्षिण में तो रिवाज नहीं है, तो उसके लिए यही उत्तर है कि नाचते-गाते समय दक्षिण की स्त्रियाँ अभी भी लहँगे पहनती हैं। अजन्ता की गुफा में एक चित्र है, जिसमें एक स्त्री बच्चे को गोद में लिए हुए बैठी है। उसमें उसने छींट पहनी है, इससे मालूम होता है कि उस समय छींट पहनने का भी रिवाज था। यही नहीं, अँगिया भी छींट की ही पहनती थीं। जिस समय विदुषी राज्यश्री का विवाह हुआ था, उस समय रेशम,

रूई, ऊन और सर्प की केचुली के समान महीन, श्वास से उड़ जाने वाले, इन्द्रधनुष के समान सतरङ्गी वस्त्रों से घर भर दिया गया था। यह बात कल्पना नहीं, महाकवि बाण ने लिखी है। स्त्रियाँ अक्सर रङ्गीन कपड़े ही पहनती थीं। विधवाएँ श्वेत वस्त्र धारण करती थीं। स्त्रियाँ बालों में पट्टी भी डालती थीं और जूड़े भी बाँधती तथा सुगन्धित पुष्प भी लगाती थीं।

स्त्रियाँ कानों को दो जगह छिदवाती थीं और उनमें सोने की बालियाँ पहनती थीं। ऐसी मूर्तियाँ अजायबघरों में विद्यमान हैं। हाथों में हाथी-दाँत के चूड़े या शङ्ख के चूड़े पहनती थीं। गले में बहुमूल्य हार और उँगलियों में उत्तम अँगूठियाँ पहनी जाती थीं। धनवान स्त्रियाँ हार भी पहनती थीं। कुछ स्त्रियाँ अपने स्तनों को खुले रखती थीं, पर बहुत सी ऐसी भी थीं, जो ढके रखती थीं। कादम्बरी में चाण्डाल कन्या भी रत्न-जटित गहने पहनती थी। इससे साफ़ मालूम होता है कि आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही वेश-भूषा थी। जात-पाँत का झगड़ा नहीं था।

क़ानून में राजनीतिक स्थिति स्त्रियों की भी मानी जाती थी। पुत्रहीन होने पर लड़की ही पिता की सम्पत्ति की अधिकारिणी होती थी। पितृगृह से मिले हुए धन पर स्त्री का ही अधिकार रहता था। उत्तराधिकार सम्बन्धी नियमों में स्त्रियों का स्वतन्त्र स्थान रक्खा गया था।

पर्दे की प्रथा उस समय नहीं थी। राज्य-स्त्रियाँ दरबार तक करती थीं। ह्यूनसाङ्ग के लेखों से स्पष्ट है कि बालादित्य की राजमाता उसके पकड़े जाने पर मिलने गई थी। कादम्बरी में विलासवती का अनेक ज्योतिषियों एवं पौराणिकों से मिलना बताया है। ह्यूनसाङ्ग से राज्यश्री मिली थी। यात्री अबूज़ैद ने भी राज-दरबारों में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों का उल्लेख किया है। कामसूत्र में भी स्त्रियों का पुरुषों के साथ मेले में जाना स्पष्ट है। स्त्रियाँ लड़ाई में भी जाती थीं। सेवक से लेकर साथी तक का समस्त काम स्त्रियाँ ही करती थीं। वे घोड़ों पर सवार होती थीं और शस्त्र भी धारण करती थीं। वे पुरुष-वेश में शस्त्र धारण कर मैदान में कट मरती थीं। पश्चिमी सोलङ्की विक्रमादित्य की बहिन अक्कादेवी वीर एवं राजनीति में अत्यन्त कुशल थी और उसीने गोगाके पर घेरा डाला था। ये बातें करती सिद्ध हैं कि उस समय पर्दे की प्रथा न थी। यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि पर्दे की प्रथा का प्रचार मुसलमानों के ज़माने से ही हुआ है और उसी का अनुकरण हमारे यहाँ घूँघट-रूप में हुआ। इससे पहिले भारतीय स्त्रियाँ घूँघट नहीं काढ़ती थीं। आज भी दक्षिण भारत में यह प्रथा बिलकुल नहीं के बराबर है।

सती-प्रथा उस समय पवित्र मानी जाती थी। मध्यकाल में इस प्रथा का कुछ-कुछ उत्थान ही हुआ। हर्ष-चरित में उनकी माता का अग्नि में कूदना सिद्ध ही है। राज्यश्री अग्नि में कूदने से स्वयं हर्ष द्वारा बचाई गई थी। इस प्रथा का पता शिलालेखों से भी मिलता है। अलबेरूनी लिखता है—"विधवाएँ या तो अग्नि में जल मरती थीं या तपस्विनी का जीवन व्यतीत करती थीं। राजाओं की स्त्रियाँ वृद्धा न होने पर सती हो जाती थीं।" किन्तु ऐसा मालूम होता है कि जिसकी इच्छा होती थी, वही सती होती थी। अस्तु—

उपसंहार

उपर्युक्त कथन से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि मध्यकाल में स्त्रियों की सामाजिक दशा बहुत उन्नत थी, उनका आदर बहुत ज़्यादा होता था। इन बातों के लिए हम अन्य कहीं न भटक कर सीधे वेदव्यास-स्मृति की ओर ही जाते हैं। उसमें लिखा है—"पत्नी पति से पूर्व उठे। घर-बार साफ़ करे। फिर स्नान करे। स्नानोपरान्त भोजन बनावे। पति को खिलाने के बाद ख़ुद खावे। बाल-बच्चों को सँभाले और आय-व्यय की चिन्ता करे। सायङ्काल फिर भोजन बना कर पति को खिलावे।"

ये बातें सिद्ध करती हैं कि स्त्री-समस्या उस समय इतनी रहस्यमयी न थी, जितनी आज है।

—दीनानाथ व्यास, विशारद

❀ ❀ ❀

शव-संस्कार की सर्वोत्तम प्रणाली

गत जून के 'चाँद' में 'विश्व-वीणा' शीर्षक स्तम्भों के नीचे, कराची के 'यङ्गबिल्डर' मासिक पत्र से किसी पारसी सज्जन का लिखा हुआ एक लेख उद्धृत किया गया है, जिसमें पारसियों में प्रचलित अन्तिम

संस्कार की विधि को सर्वोत्तम बताया गया है। बहुत थोड़े शब्दों में लेखक के कथन का आशय यही है कि ससार के विभिन्न मतवादियों में प्रचलित शव-संस्कार-विधियों में पारसियों की शव-संस्कार-प्रणाली सर्वोत्तम है। क्योंकि इसमें ख़र्च बहुत कम पडता है, अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं पडती और जन-साधारण के स्वास्थ्य को भी कोई हानि पहुँचने की सम्भावना नहीं होती। लेखक ने इस सम्बन्ध में किसी मज़हबी तरीक़े को कोई महत्व नही दिया है और न शव-संस्कार सम्बन्धी किसी मज़हबी तरीक़े पर उसकी आस्था ही है। उसने केवल शव-संस्कार सम्बन्धी किसी सहज-साध्य विधि की ओर लक्ष्य रख कर ही अपना मत प्रगट किया है। परन्तु हमने जहाँ तक पता लगाया है, पारसियों की शव-संस्कार-प्रणाली न तो सस्ती है और न स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से ही उपयोगी मानी जा सकती है। क्योंकि मुसलमान, ईसाई तथा अन्यान्य मतवादियों की भाँति पारसियों की अन्तिम संस्कार-विधि भी बड़ी ही आडम्बरपूर्ण, ख़र्चीली और अस्वास्थ्यकर है। 'चाँद' का लेख पढ़ कर, इस सम्बन्ध में हमने बड़ौदा आर्य-कन्या महाविद्यालय के अध्यापक श्रीयुत दया-शङ्कर जी भट्ट महोदय से बातचीत की थी। आप बहुत दिनों तक बम्बई में रह चुके हैं और इस बात के जान-कार भी है। आपके पड़ोस में एक पारसी गृहस्थ का निवास था। एक दिन शाम को उनके घर किसी व्यक्ति की मृत्यु हो गई। यह शोक-सम्वाद सुन कर उनकी विरादरी के पचासों सज्जन एकत्र हो गए। रात हो गई थी, इसलिए तत्काल ही शव-संस्कार की तैयारी कठिन थी। इसलिए निश्चय हुआ कि प्रातःकाल शव-संस्कार हो। फलतः उस रात को शव वहीं पड़ा रहा। पुरो-हितों ने शुद्धि-क्रिया के लिए चन्दन की लकड़ी और धूप आदि मँगवाया। रात भर धूप और चन्दन जलाया गया। चन्दन और धूप दोनों ही महँगी चीज़ें हैं। बम्बई जैसे शहर में इनका मूल्य और भी अधिक होता है। फलतः पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इस रात भर की शुद्धि-क्रिया में कितना ख़र्च पड़ा होगा।

प्रातःकल शव को उठा कर 'मृतक-कूप' में ले जाने की तैयारी हुई। इस काम के लिए आठ आदमी बुलाए गए। शव को शहर से बाहर एक निर्दिष्ट स्थान पर उठा कर ले जाना था। इसलिए जो आठ आदमी इसके लिए नियुक्त किए गए थे, उन्होंने मज़दूरी भी काफ़ी ली होगी। क्योंकि शहर का मामला ठहरा, वहाँ मज़दूरी भी गाँवों की अपेक्षा अवश्य ही अधिक देनी पड़ी होगी। अस्तु।

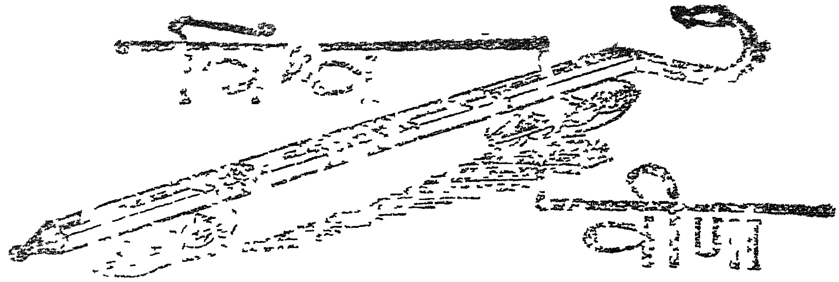
पारसियों का 'मृतक-कूप' एक सुदृढ़ स्तूप की शक्ल का, काफ़ी ऊँचा होता है। इसके निर्माण में सैकड़ों नहीं, वरन् हज़ारों रुपए की लागत पड़ती है। ये लोग शव को ले जाकर उसी स्तूप पर रख देते है और उसे नग्न करके उस पर प्रचुर घी और दही ढाल देते हैं, ताकि गृद्ध आदि मांसाहारी पक्षी शीघ्र ही आकर उसका मांस खाना आरम्भ कर दें। परन्तु बहुधा पक्षी-गण एक दिन में शव को खाकर समाप्त नही कर सकते, इसलिए उसका सड़ कर दुर्गन्धयुक्त हो जाना अनिवार्य है। फिर ऐसी दशा में उस मृतक-कूप के आसपास की वायु कैसे शुद्ध रह सकती है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे लाइन में अङ्कलेश्वर नाम का एक स्टेशन है। यहाँ पारसियों की बस्ती है। वहाँ जो उनका मृतक-कूप है, उससे अक-सर दुर्गन्धयुक्त वायु निकल कर एक मील तक के अधि-वासियों मे त्रास का सञ्चार किया करती है। मृतक-कूप की छत पर जब एक से अधिक मुर्दे हो जाते हैं, तब तो अवस्था और भी भीषण हो जाती है।

ख़ैर, अगर तर्क के लिए मान ले कि पारसियों की शव-संस्कार-विधि ही सर्वोत्तम है, तो इसके लिए भारत के लाख लाख गाँवों में वृहदाकार मज़बूत मृतक-कूप बन-वाने पड़ेंगे। प्रत्येक कूप के निर्माण में एक छोटे-मोटे गिर्जे से कम ख़र्च न पड़ेगा। अगर एक कूप का ख़र्च दो हज़ार रुपए भी मान ले तो कितने रुपयों का श्राद्ध हो जाएगा, इसे पाठक स्वयं ही विचार कर लें।

इसलिए हमारी तो राय है कि शव-संस्कार की सबसे उत्तम विधि उसे जला देना ही है। एक शव को जलाने के लिए २) की लकड़ी काफ़ी है। घी, शाकल्य और अन्य पदार्थों की बात हम नहीं कहते। क्योंकि यह तो व्यर्थ का आडम्बर और धन का अपव्यय है। इससे मृत व्यक्ति का कोई लाभ नहीं।

(शेष मैटर ४१९ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



मज़हब को विदा करो !

भारतवर्ष में धार्मिक क्रान्ति का आगमन हो रहा है और उसका सबसे अधिक प्रभाव उन लोगों पर पड़ रहा है, जो अब तक धर्म के बन्धन में सब से ज्यादा बँधे रहे हैं। जुलाई के 'स्त्री-धर्म' में श्रीमती समाथीबाई नाम की महिला ने धर्म और मज़हब के सम्बन्ध मे जो विचार प्रकट किए हैं, वे उपरोक्त कथन की सत्यता को भली-भाँति प्रमाणित करते हैं। पुराने ज़माने की बात हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, पर हाल के ज़माने में धर्म-कर्म, तीर्थ, मन्दिर आदि की सब से प्रधान समर्थक और सहायक स्त्रियाँ ही रही हैं। जब उनके भावों में इस प्रकार परिवर्तन होने लगा तो अनुमान होता है कि मज़हब-रूपी क़िले की नींव खिसक रही है और उसके भूमिसात् होने का समय निकट आ पहुँचा है। नीचे हम उक्त लेख का भावानुवाद पाठकों के लाभार्थ देते हैं :—

हमारे देश का इतिहास अब ऐसे स्थान पर आ पहुँचा है, जहाँ कि वे तमाम बातें, जिनको हम भूतकाल में बिना किसी प्रकार के तर्क के सत्य मान चुके हैं, वर्तमान काल के अनुभव की कसौटी पर कसी जायँगी। हमारे क़ायदे-क़ानून, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ, नियम आदि की, जो चिरकाल से हमारी सभ्यता के अङ्ग बने हुए हैं, आधुनिक विचारों के प्रकाश में जाँच की जायगी और फिर से उनके मूल्य का निर्णय किया जायगा। हमारा धर्म भी इस कसौटी पर कसे जाने से बच नहीं सकता, क्योंकि वह हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य में सम्मिलित है। हमारे मन्दिर भी, जो हमारे भगवान के निवास-स्थान-स्वरूप माने जाते हैं और जिनके नाम पर पुजारी लोग युगों से लोगों को आशीर्वाद देते आए हैं, अब दूसरी ही दृष्टि से देखे जायँगे। उनके सम्बन्ध में अब यह प्रश्न उठता है कि ये पत्थर के महाकाय भवन सचमुच हमारी संस्कृति के स्मारक हैं अथवा उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है। कलाविद् भले ही उनकी प्रशंसा के गीत गाएँ और अन्य लोग भी भले ही उनका अनुकरण करें, पर तर्कशील लोगों को उनके विषय में स्वतन्त्र रीति से विचार करना आवश्यक है। इनके सम्बन्ध में इतिहासज्ञों का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "ऐसे विशाल और साथ ही निरर्थक भवनों का निर्माण प्रकट करता है कि उनके बनवाने वाले राजा लोग अवश्य ही अत्याचारी होंगे और उनकी प्रजा ग़ुलाम होगी। चाहे उनके बनवाने वाले कैसे भी धनवान क्यों न रहे हों और चाहे उन्होंने कितना भी अधिक ख़र्च क्यों न किया हो, पर अगर ये भवन स्वाधीन लोगों से पूरी मज़दूरी देकर बनवाए गए होते, तो उनका बन सकना किसी प्रकार सम्भव न था। × × × यह स्पष्ट है कि उस समय के लोग पशुओं से कुछ ही बेहतर हालत में थे और उनसे बेगार में ज़बर्दस्ती काम कराया जाता था।" ऐसी दशा में जब ख़ुद देव-मन्दिर ही निर्दयता और निरङ्कुशता की नींव पर बने हैं, तो उस 'धर्म' के लिए क्या कहा जाय, जिसके वे निदर्शक हैं।

भारतवर्ष मे मज़हब ने—चाहे उसका दर्शनशास्त्र कैसा भी महत्वपूर्ण क्यों न हो—समाज की उच्च श्रेणियों का पक्षपात किया है और नीची श्रेणियों के साथ, जिनमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं, घोर अत्याचार किया है। इसने जनता के एक बहुत बड़े भाग को, जो वास्तव में परिश्रम करता है और जीवन-निर्वाह की सामग्री उत्पन्न करता है, दासता की परिस्थिति में पहुँचा दिया। निम्न-लिखित

उद्धरण से उपरोक्त कथन की सत्यता किसी हद तक प्रकट हो जायगी। स्मृतिकारों के मत से "अगर शूद्र वर्ण का कोई व्यक्ति उस आसन पर बैठे, जिस पर उससे ऊँचे वर्ण वाले बैठते हैं, तो या तो उसे देश-निकाला दिया जाना चाहिए या कोई अन्य यन्त्रणाजनक और अपमानपूर्ण दण्ड मिलना चाहिए, अगर वह उच्च वर्ण वालों के विरुद्ध निन्दात्मक शब्द उच्चारण करे तो उसका मुँह जला देना चाहिए; अगर वह वास्तव में उनका अपमान करे तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिए; अगर वह किसी ब्राह्मण को यन्त्रणा पहुँचावे तो उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए; अगर वह ब्राह्मण के साथ एक ही आसन पर बैठ जाय तो उसके हाथ-पैर काट डालने चाहिए; अगर वह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से धर्मशास्त्रों को सुन भी ले तो उसके कानों में जलता हुआ तेल डाला जाना चाहिए, अगर वह उन शास्त्रों को कण्ठाग्र कर ले तो उसे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए; यदि वह कोई अन्य अपराध करे तो उसे उच्च वर्ण वालों की अपेक्षा कठोर दण्ड दिया जाना आवश्यक है। पर यदि कोई उच्च वर्ण वाला शूद्र की हत्या कर डाले तो उसका दण्ड वही है, जो एक कुत्ता या बिल्ली या कौवे के मारने वाले को मिलता है।" क्या वर्तमान युग 'धर्म' के नाम पर इस प्रकार के विचारों को सहन कर सकता है?

मज़हब ने स्त्रियों को जो दर्जा दिया है, वह शूद्र की अपेक्षा थोड़ा ही बेहतर है। यद्यपि 'स्त्री' शब्द ही निन्दापूर्ण है, पर शास्त्रों ने उसे कुछ आध्यात्मिक महत्व प्रदान करके सन्तुष्ट करने की चेष्टा की है। धार्मिक क्रियाओं और यज्ञ आदि में सम्मिलित करके उसे बहकाया गया है। पर अपनी अज्ञानावस्था के कारण वह यह नहीं समझ पाती कि उसे वे सामान्य अधिकार भी प्राप्त नहीं हैं जो प्रत्येक नर-तन धारी को प्राप्त हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसे किसी न किसी पुरुष के अधीन रहना पड़ता है, चाहे वह पिता हो, पति हो या पुत्र। स्वाधीनता और ज्ञान से वञ्चित होकर स्त्री समाज की गुलाम होने के सिवा और किसी अर्थ की नहीं रहती। क्या इसका उत्तरदायित्व मज़हब पर नहीं है? क्या यह परिस्थिति अधिक समय तक कायम रहनी चाहिए।

नवीन युग पुकार कर कह रहा है कि इस प्रकार की तमाम असभ्य प्रथाओं का अन्त होना चाहिए, और उस मज़हब की जड़ पर भी कुठाराघात होना चाहिए, जो इन प्राचीन और जङ्गलीपन की बातों का कारण है। मज़हब ने जाति, सम्प्रदाय और लिङ्गभेद सम्बन्धी जो नक़ली भेदभाव उत्पन्न किए हैं, उनको ठोकर मार कर हटा देना चाहिए और उनके कारण जो लोग अभी तक अत्याचार सहते रहे हैं तथा पतित बने हुए हैं, उनको अपना अधिकार हस्तगत करना चाहिए। मज़हब की श्रद्धा और उसकी आज्ञाओं के प्रति सम्मान-भाव ने बड़ा उत्पात किया है। और अब हमको विवेकपूर्वक इस बात का निर्णय करना चाहिए कि क्या अभी मज़हब को विदा कर देने का समय नहीं आया है?

❀ ❀ ❀

(४१७वें पृष्ठ का शेषांश)

जलाने की प्रणाली को आजकल के वैज्ञानिकों ने भी पसन्द किया है। इससे वायु के दूषित होने की तो कोई सम्भावना ही नहीं रह जाती। रोग फैलाने वाले कीटाणु उसी शव के साथ ही जल कर भस्म हो जाते हैं। क़ब्रिस्तान की तरह इसके लिए विस्तृत स्थान की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। गाँव से बाहर किसी वन में या नदी किनारे लकड़ी एकत्र करके जला सकते हैं। इससे शव भी छीछालेदर से बच जाता है और यह तरीक़ा सबसे आसान भी है।

❀ ❀ ❀

सनातनी या सुविधावादी?

कुछ समय से हिन्दू-समाज मे अछूतो का प्रश्न ज़ोर पकड़ रहा है और उन लोगों मे एक नई जाग्रति भी, जिसका कुछ समय पहले पता भी न था, उत्पन्न हो रही है। अछूतों में एक दल ऐसा पैदा हो गया है, जो ऊँची जाति के हिन्दुओं से अलग हो जाने का प्रचार करता है। कुछ लोग ऐसे हैं, जो मुसलमान या ईसाइयों से मेल-जोल बढ़ाने का समर्थन करते है। एक तीसरी श्रेणी के अछूत भी है, जो मन्दिर-सत्याग्रह

आदि करके समाज में हलचल मचा रहे हैं। इस परिस्थिति को देख कर हिन्दुओं के कितने ही समझदार नेताओं को चिन्ता हुई है और वे किसी उपाय से अछूतों को सन्तुष्ट रखने और उनको हिन्दू-समाज का एक लाभदायक अङ्ग बनाए रखने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे ही लोगों में से एक माननीय मालवीय जी हैं। आप कई वर्षों से अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देते हैं, ताकि उसका जप करके वे ऊँचे वर्ण वाले लोगों के समकक्ष हो सकें। कितने ही कूप-मण्डूक सनातनी मालवीय जी के इस काम पर बहुत बिगड़ते हैं और उनको 'अधार्मिक', 'आर्य-समाजी' आदि के नाम से सम्बोधन करते हैं। दूसरी तरफ़ सामाजिक क्रान्ति के पक्षपाती मालवीय जी के इस कार्य को अछूतों को बहकाने और मार्गच्युत करने वाला बतलाते हैं। इसी प्रकार के विचार रखने वाले एक लेखक ने मालवीय जी के कृत्य की आलोचना करते हुए गुजराती के 'प्रजामित्र केसरी' नामक साप्ताहिक पत्र में एक लेख लिखा है, जिसका आशय यहाँ दिया जाता है :—

'ग़रज़ पड़ने पर गधे को भी बाप कहना पड़ता है'—इस तरह की कहावत प्रसिद्ध है। इसके अनुसार अगर ग़रज़ पड़ने पर अछूतों को अपनाना पड़े तो इसमें नवीनता क्या है? × × × हमको समाचार मिला है कि कट्टर सनातनी पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक ऐसी ही विचित्र योजना की है। उन्होंने बनारस के 'आज' में एक सूचना प्रकाशित कराई है कि अन्त्यजों को ऊँचा उठाने के लिए उनको मन्त्र-दीक्षा देनी चाहिए और अन्त्यजों को उनका जप ऊँचे वर्णों के हिन्दुओं के साथ बैठ कर करना चाहिए। पण्डित जी की सम्मति है कि मन्त्रों का जप करने से अन्त्यज भगवान के निकट पहुँचेंगे और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन कर सकेंगे। इसलिए सनातनधर्म के आचार्यों का कर्तव्य है कि दशहरा या निर्जला एकादशी के दिन गङ्गा आदि पवित्र नदियों में अन्त्यजों को स्नान कराके मन्त्र-दीक्षा दें। × × × 'धर्मभूषण' पण्डित मालवीय जी की यह सूचना बड़ी अद्भुत है। इस विज्ञान-प्रधान बीसवीं सदी में जो मनुष्य ऐसा कहता है कि केवल मन्त्र जपने से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति हो जायगी, उसके विषय में आशङ्का होती है कि उसका दिमाग़ यथास्थान है या नहीं?

मूर्ख या ढोंगी ?

इस तरह का प्रस्ताव करने वाले व्यक्तियों के विषय में आजकल इसी सिद्धान्त पर उपनीत होना पड़ता है कि या तो वे घोर मूर्ख होते हैं या ढोंगी होते हैं। हिन्दुस्तान की सर्व-प्रधान शासन-सभा में वाग्धारा प्रवाहित करने वाला मनुष्य मूर्ख होगा, यह तो कोई मान ही नहीं सकता। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि मालवीय जी एक नम्बर के ढोंगी हैं। अगर मालवीय जी सच्चे दिल से यह प्रस्ताव करते हैं और मन्त्रों के प्रभाव में उनकी वास्तविक श्रद्धा है, तो हम उनसे कुछ सवाल पूछना चाहते हैं। अगर मालवीय जी सचमुच यह विश्वास करते हैं कि मन्त्र जपने से एक जाति का या जनता का उद्धार हो सकता है, तो वे अपने देश-भाइयों को और ख़ासकर हिन्दुओं को, ब्रिटिश साम्राज्य की अधीनता से मुक्त होने के लिए, क्यों नहीं गौमुखी में हाथ डाल कर बैठने का उपदेश देते हैं? सम्प्रदायवादी मुसलमानों के मन को वश में करने के लिए तुलसी की माला का आश्रय क्यों नहीं लिया जाता? दूसरे लोग इस बात को न मानें तो कोई बात नहीं, पर स्वयम् मालवीय जी इस उपाय का अवलम्बन क्यों नहीं करते? वॉयसरॉय, गवर्नर, कमिश्नर आदि के साथ सलाह करने के लिए वे क्यों इधर से उधर दौड़ते रहते हैं? दिल्ली, शिमला और लन्दन की सड़कों पर वे किसलिए जूते तोड़ते हैं? इस प्रकार पण्डित जी के विचारों, बातों और कामों के बीच ज़मीन-आसमान का अन्तर है, यह मानना ही पड़ेगा।

'कथा के बैंगन'

सच तो यह है कि ये सब कथा के बैंगन हैं। मन्त्र जप कर अपनी उन्नति करने का उपदेश अछूतों को देने वाले अपने मन में अच्छी तरह जानते हैं कि राजनीतिक मुक्ति और सांसारिक उन्नति का मार्ग तो बरसते मेह में बम्बई की कुकर्षक रोड पर सत्याग्रह करके बैठे रहने

और आर्थर रोड जेल की कोठरियों में बन्द होने से ही मिल सकता है। पर हाँथी की तरह इन 'धर्मभूषण' पण्डित के दिखाने के दाँत और हैं और खाने के और है। पण्डित जी अच्छी तरह समझते है कि भगवान इतना बेवक़ूफ़ नहीं है कि प्रातःकाल गङ्गा-स्नान करके नाक दबाने से, अथवा मस्तक पर भस्म लगा कर महादेव के मन्दिर में घण्टा बजाने से वह अङ्गरेज़ों की बुद्धि को हिन्दुस्तान छोड़ कर चले जाने को प्रेरित कर देगा। इसलिए वे स्वयम् राजनीतिक आन्दोलन मे कूद पड़ते हैं और पूँजी वालों को इस बात की व्यावहारिक सम्मति देते हैं कि उनको अपने मूलधन की किस तरह रक्षा और वृद्धि करनी चाहिए। × × ×

जब से आर्य लोगों के पैर इस देश मे पड़े हैं, तभी से अछूत आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक—तीनों प्रकार की ग़ुलामी भोग रहे हैं। इस गुलामी के भीषण भार से उनका मनुष्यत्व बिलकुल कुचल गया है। इधर कई वर्षों से देश में स्वतन्त्रता का जो आन्दोलन फैलने लगा है, उसका प्रकाश इन ग़ुलामों के हृदयों तक भी पहुँचा है। अब वे भी अपनी पुरानी ज़ञ्जीरों को तोड़ फेंकने की आवश्यकता समझने लगे हैं। सनातनधर्मी हिन्दुओं के शिकार ये सात करोड़ व्यक्ति अब अपने ऊपर अत्याचार करने वालों के विरुद्ध सर ऊँचा उठाने लगे हैं और भारतीय नवयुवकों ने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए जिस उपाय का अवलम्बन किया है, उसका प्रकाश इनके हृदयों तक भी पहुँचा है। हिन्दू-जाति के ग़ुलामों में उत्पन्न हुई यह जाग्रति, हिन्दुओं की शोषण-प्रथा को अमर बनाने के लिए जन्म लेने वाले, मालवीय जी को काँटे की तरह खटकती है। इस जाग्रति के प्रवाह को रोकने के लिए मालवीय, मुञ्जे आदि तमाम हिन्दू नेता छटपटा रहे हैं और अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार मार्ग खोज रहे हैं। इन सबों में मालवीय जी की कौशलयुक्त योजना अनुपम है।

धर्म की अफ़ीम

मालवीय जी जानते हैं कि अछूतों को अब तक दाबे रखने का श्रेय मुख्यतः तीन शक्तियों को है:—राज्य-सत्ता, सामाजिक बहिष्कार और धर्म। इन तीनों में सब से अधिक महत्व का भाग धर्म का ही है। वैदिक हिन्दुओं के परमेश्वर माने जाने वाले रामचन्द्र जी ने स्वयं शुम्बुक नाम के एक शूद्र को केवल इस अपराध के लिए जान से मारा था कि वह तप कर रहा था। कठिन से कठिन सामाजिक बहिष्कार तो सदा से अछूतों के लिए मौजूद था। पर धर्म ने तो अन्त्यजों को सदा उच्च वर्ण के हिन्दुओं के अङ्कुश में रखने के लिए एक बड़ी सेना का काम किया है। बुद्ध, महावीर आदि कितने ही हिन्दू सुधारकों ने अछूतों के सामाजिक बहिष्कार को मिटाने की चेष्टा की, पर हिन्दुओं ने उसे निष्फल कर दिया। इन धर्मगुरुओं को हिन्दुओं ने ख़रीद लिया, पर अछूतों की ग़ुलामी को ढीला न पड़ने दिया। अछूतों के दिमाग़ में इस बात को जमा देने के लिए कि ग़ुलामी करते रहना ही उनके लिए स्वाभाविक है, उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने किराए के टट्टू ब्राह्मणों से तरह-तरह के धार्मिक ढकोसलों की रचना कराई। उन्होंने बतलाया कि चारों वर्णों को ईश्वर ने बनाया है, और प्रत्येक वर्ण को क्या काम करना चाहिए, यह भी उसी ने निश्चित कर दिया है। अछूतों को सन्तोष कराने के लिए उन्होंने कर्म और पुनर्जन्म में पाप का फल पाने की बात फैलाई। हिन्दुओं के ये तमाम नीतिशास्त्र संसार के इतिहास में सामाजिक ठगी के प्राचीन से प्राचीन और बढ़िया से बढ़िया नमूने हैं। अत्यन्त दुःख मे पड़ा हुआ मनुष्य जिस प्रकार आत्मघात कर लेता है, उसी प्रकार अनेक आपत्तियों से घिरे हुए अछूतों ने हिन्दू-धर्म-गुरुओं के तैयार किए इस ज़हर के प्याले को पी लिया और अपने हाथ से अपने मनुष्यत्व का ख़ून कर डाला।

पर अब विज्ञान की खुली हुई हवा के प्रभाव से उस ज़हर का असर दूर होने लगा है और अछूत मनुष्य के अधिकार प्राप्त करने को खड़े होने लगे है। यह देख कर उनको फिर उसी ज़हर से बेहोश करने और हिन्दुओं की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक ग़ुलामी में पड़े रखने का प्रयत्न मालवीय जी ने आरम्भ किया है। परन्तु पण्डित जी भूल जाते हैं कि अब ज़माना बदल गया है और × × × अछूत इन चालों मे नहीं फँस सकते।

❀ ❀ ❀

रूस में स्त्रियों का कायापलट

अब से कुछ वर्ष पहले रूस की स्त्रियों की प्रायः वैसी ही दुर्गति थी, जैसी कि भारतवर्ष मे देखने में आ रही है। वहाँ भी स्त्रियाँ घर का धन्धा करने वाली गुलाम थीं और वहाँ के पुरुष उनके साथ "ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी' वाले सिद्धान्त के अनुसार बर्ताव करते थे। उनमें शिक्षा का प्रचार बहुत कम था और वे तरह-तरह के अन्ध-विश्वासो मे फँसी हुई थीं। पर जब से रूस मे क्रान्ति हुई और बोलशेविकों ने समाज का नए सिरे से निर्माण करना आरम्भ किया, तब से स्त्रियों की कायापलट हो गई है। सच पूछा जाय तो बोलशेविज़्म का जन्म ही मज़दूरो और स्त्रियो के उद्धार के लिए हुआ है। क्योकि ये ही दोनों दल समाज द्वारा सब से अधिक पद्दलित किए जाते हैं और इन्हीं को सबसे कम अधिकार प्राप्त है। ऐसी दशा मे कोई आश्चर्य नहीं कि बोलशेविज़्म की हवा लगते ही स्त्रियों में नवजीवन का सञ्चार हो गया और वे वायुवेग से प्रगति के मार्ग मे अग्रसर होने लगीं। नीचे हम एक विलायती पत्र मे प्रकाशित एक लेख का कुछ अंश प्रकाशित करते हैं, जिससे वहाँ की स्त्रियो की वर्तमान परिस्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ता है :—

सन् १९१७ की राज्यक्रान्ति के पश्चात् रूस में जो परिवर्तन हुए हैं, उनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन वहाँ की स्त्रियों के सम्बन्ध में हुआ है। वहाँ इस बात के लिए अधिक से अधिक चेष्टा की गई है कि सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों और पुरुषों को समान रूप से सुविधाएँ प्राप्त हों। यह बात तभी हो सकती है, जब कि स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन हों। इस सम्बन्ध में रूस वालों का सिद्धान्त यह है कि स्त्रियों की आर्थिक स्वाधीनता का प्रश्न तभी हल हो सकेगा, जब कि कला-कौशल, खेती, शिक्षा आदि समस्त प्रकार के सार्वजनिक और सामाजिक कार्यों का द्वार उनके लिए उन्मुक्त कर दिया जाय।

पर प्रश्न होता है कि विवाहित स्त्रियाँ तब तक सार्वजनिक कार्यों को किस तरह सम्पन्न कर सकती हैं, जब तक कि उनके ऊपर घर के धन्धे और बच्चों के पालन-पोषण का भार है? इसके लिए सोवियट-सरकार ने सार्वजनिक भोजन-गृह, रसोई-गृह, कपड़ा धोने के कारख़ाने स्थापित किए हैं और बच्चों की देख-भाल तथा परवरिश के लिए 'क्रीचेज़' (शिशु-गृह) और किण्डरगार्टन स्कूल खोले हैं। आजकल गाँवों और शहरों मे 'क्रीचेज़' की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। सोवियट रूस के सब से बड़े प्रदेश में सिर्फ़ कारख़ानों से सम्बन्ध रखने वाले 'क्रीचेज़' की संख्या सन् १९३१ के आरम्भ मे १ लाख थी और वर्ष के अन्त में बढ़ कर १ लाख ४० हज़ार तक पहुँच गई। कोलहोज़ी प्रान्त में किसानों के ५० लाख बच्चों की देख-भाल इन 'क्रीचेज़' और नर्सों द्वारा परिचालित बच्चों के आमोद-गृहों में की जाती है। वर्तमान साल के अन्त तक और भी ३५ लाख बच्चों के लिए इस तरह का प्रबन्ध हो जाने की सम्भावना है। गत वर्ष इन 'क्रीचेज़' और बच्चों के आमोद-गृहों के लिए क़रीब २६ करोड़ रुपया ख़र्च किया गया था। माताओं तथा बच्चों के कल्याणार्थ अन्य कार्यों में क़रीब १५ करोड़ रुपया लगाया गया था।

इन उपायों द्वारा यह आशा की जाती है कि सन् १९३२ में कल-कारख़ानों से सम्बन्ध रखने वाले ७३ प्रति सैकड़ा बच्चों के लिए 'क्रीचेज़' का प्रबन्ध हो जायगा। अगर समस्त देश के बच्चों का हिसाब लगाया जाय, तो यह संख्या ४८.७ प्रति सैकड़ा होगी। इस प्रथा की उन्नति कैसी शीघ्रता से हो रही है, इस बात का पता इससे लगता है कि सन् १९३० में केवल २८ प्रति सैकड़ा बच्चों के लिए इस प्रकार का प्रबन्ध था। इस योजना के फल-स्वरूप दिन के अधिकांश भाग में बच्चों का पालन-पोषण शिक्षित व्यक्तियों द्वारा होता रहता है और स्त्रियाँ कोई भी कल-कारख़ाने का अथवा खेती का या शिक्षा-सम्बन्धी कार्य कर सकती हैं।

स्त्री-पुरुषों को समान वेतन

आठ वर्ष पहले रूस में २३ लाख ९४ हज़ार स्त्रियाँ किसी तरह की नौकरी करती थीं, पर अब उनकी संख्या ६० लाख तक जा पहुँची है। वर्तमान वर्ष में और भी

१५ लाख स्त्रियाँ किसी तरह की नौकरी करने लग जायँगी। स्त्रियों को प्रत्येक कार्य के लिए मर्दों के समान ही वेतन दिया जाता है। स्त्रियों के नौकरी करने का अर्थ यह नहीं है कि माता की हैसियत से उनकी उपेक्षा की जाती है। जो स्त्रियाँ शारीरिक श्रम का कार्य करती हैं, उनको बच्चा पैदा होने के पहले आठ हफ़्ते और बाद में आठ हफ़्ते की छुट्टी पूरी तनख़्वाह के साथ दी जाती है। दिमाग़ी काम करने वाली स्त्रियों को छः-छः सप्ताह की छुट्टी मिलती है। इसके सिवाय प्रत्येक नए बच्चे के ख़र्च के लिए अलाउन्स मिलता है। चिकित्सा आदि बिना दाम के की जाती है।

महिला-मज़दूर

आजकल अधिकांश कल-कारख़ानों में बहुसंख्यक स्त्रियाँ ऐसे कार्य कर रही है, जिनमें विशेष चतुराई की आवश्यकता है। अब से पहले वे उन कारख़ानों मे केवल सामान ढोने, सफ़ाई आदि का साधारण कार्य किया करती थीं। अब यह बात सिद्ध हो चुकी है कि यदि स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा दी जाय और उन्हीं की सी परिस्थिति में रक्खा जाय तो वे किसी तरह के कार्य में पुरुषों की अपेक्षा हीन नहीं रह सकतीं। उनको सिर्फ़ ऐसे काम करने से रोका जाता है, जिनका प्रभाव उनके स्त्री-अङ्गों पर स्पष्टतः हानिकारक पड़ता है।

रूस की स्त्रियाँ देश के शासन-सम्बन्धी मामलों में क्रियात्मक दिलचस्पी लेती हैं। क़रीब ३ लाख स्त्रियाँ सोवियटों (ग्राम्य और नगर-पञ्चायतों) तथा कार्यकारिणी कमिटियों आदि की मेम्बर हैं। इसके सिवा ५० हज़ार स्त्रियाँ सोवियट से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विभागों, कमिटियों और संस्थाओं में कार्यकर्त्ता की हैसियत से काम करती हैं। ट्रेड यूनियनों में महिला-सदस्यों की संख्या ५२ लाख है।

स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार

स्त्रियों में शिक्षा बड़ी तेज़ी से फैल रही है। गत तीन वर्षों में डेढ़ करोड़ स्त्रियों को पढ़ना-लिखना सिखलाया गया है। रूस के कारख़ानों के स्कूलों में स्त्रियों की संख्या सन् १९२८ में २८·८ प्रति सैकड़ा थी, सन् १९३१ में यह ४७ प्रति सैकड़ा हो गई। स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में किस तेज़ी से बढ़ी चली जाती हैं, इसका कुछ अनुमान इस बात से हो सकता है कि सन् १९३० में यूनीवर्सिटियों में प्रवेश करने वाली स्त्रियों की संख्या २७·५ प्रति सैकड़ा थी, और १९३१ में वह ४०·९ प्रति सैकड़ा हो गई।

कला और विज्ञान के क्षेत्र में स्त्रियाँ आश्चर्यजनक गति से उन्नति कर रही हैं। सन् १९३१ में नीचे लिखे विषयों के स्कूलों में महिला-छात्राओं का क्या अनुपात था, उसे देखिए:—

चिकित्सा सम्बन्धी स्कूल ७५ प्रति सैकड़ा; शिक्षक-कॉलेज ५१ प्रति सैकड़ा, टेकनिकल कॉलेज ३९·३ प्रति सैकड़ा, रीसर्च इन्स्टीट्यूट २९ प्रति सैकड़ा।

लोअर और अपर प्रायमरी स्कूलों के शिक्षकों में से ६७ प्रति सैकड़ा स्त्रियाँ हैं।

संसार में अन्य कोई देश ऐसा नहीं है, जहाँ स्त्रियों के उद्धार का कार्य ऐसी तेज़ी से हो रहा हो, जैसा रूस में हो रहा है।

❀ ❀ ❀

युद्ध और आतङ्कवाद

आजकल भारत में आतङ्कवाद की घटनाओं की संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है। गवर्नमेण्ट इस पथ के अनुयायियों का दमन करने के लिए तरह-तरह के विशेष अधिकारों का उपयोग कर रही है और जनता के जन्म-सिद्ध अधिकारों—जैसे समाचार-पत्र, सभाओं और भाषण आदि की स्वाधीनता—में भी हस्तक्षेप कर रही है, पर उसे सफलता होती दिखलाई नहीं पड़ती। आए दिन कोई न कोई ऐसी घटना हो जाती है, जो पिछली घटनाओं से बढ़ कर होती है। आतङ्कवाद का यह प्रवाह संसार के अन्य देशो में भी—जहाँ की सरकारें निरङ्कुश हैं और जनता के प्रतिनिधियों की बातों की उपेक्षा करती हैं—फैल रहा है। हाल ही मे जापान में इस तरह की कितनी ही घटनाएँ हुई थीं, जिनके फल-स्वरूप अनेक प्रभावशाली व्यक्ति, जिनमें प्रधान मन्त्री

इनुकाई भी हैं, मारे गए। इन घटनाओं पर विचार करते हुए 'जापान मैगज़ीन' नामक पत्रिका ने आतङ्कवाद के विषय में कितनी ही विचारणीय बातें लिखी हैं, जिनमें से कुछ यहाँ दी जाती हैं :—

प्रधान मन्त्री इनुकाई की हत्या जापान के इतिहास का एक बहुत ही शोचनीय काण्ड है। कुछ नवयुवक अफ़सर एक अस्सी वर्ष के बूढ़े पर हमला करके उसे गोली से मार दें, यह ऐसी अपमानपूर्ण और लज्जाजनक घटना है कि जिसका उदाहरण हमारे देश के प्राचीन अथवा अर्वाचीन इतिहास में कहीं नहीं मिल सकता। उस वृद्ध ने अपने अन्तिम काल में बहुत ही साहस का परिचय दिया और हत्याकारियों को बुला कर अपने पास बैठाया और अपने विरुद्ध उनके विचारों को सुना। × × ×

फ्रान्स के प्रेज़िडेण्ट तथा जापान के कितने ही प्रमुख सम्पत्तिशाली व्यक्तियों की हत्या, और शङ्घाई में जापानी नेताओं के प्राणों पर किया गया आक्रमण एक बड़े सत्य सिद्धान्त को प्रकट करते हैं। वह यह कि आजकल के राष्ट्र और गवर्नमेण्टें इस बात को नहीं समझतीं—और न इस पर अमल करती हैं—कि युद्धों का फल यह होता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह समझने लगता है कि उसे भी अपने शत्रुओं को मार देने का उसी तरह अधिकार है, जिस तरह एक देश पर हमला करके उसे नष्ट कर देने का। यह प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि आजकल लोगों में यह भावना ज़ोर पकड़ती जाती है कि व्यक्तिगत युद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। यही कारण है कि आजकल हत्याओं की संख्या प्रत्येक स्थान में बढ़ती जाती है। इस बुराई की जड़ शिक्षा की वर्तमान भ्रमपूर्ण प्रणाली है। कोई भी शिक्षा-प्रणाली जो मनुष्यों को सच्चे नैतिक और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान प्रदान नहीं करती, अन्त में उनको बोलशेविज़्म और अराजकतावाद की तरफ़ प्रेरित करती है। अगर भावी पीढ़ी का पालन-पोषण ऐसे ढङ्ग से किया गया कि न्याय-अन्याय के सिद्धान्त पर उनका विश्वास न रहा, तो प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए स्वयम् ही क़ानून बनाने लगेगा, और जो उसके मन में आएगा, वही कार्य करेगा। इस प्रकार की मानसिक दशा का स्वाभाविक परिणाम युद्ध है। हर एक आदमी को अपने शत्रुओं को मार डालने का अधिकार है। पुराने ज़माने में सरकारें अपने विरोधियों को उनका सर काट कर चुप कर देती थीं। ईसाई धर्म के सिद्धान्तों के फैलने के साथ-साथ पाशविक बल के स्थान पर न्याय का महत्त्व बढ़ने लगा और लोग मानव जीवन की पवित्रता में विश्वास करने लगे। मनुष्य-मात्र परमात्मा की सन्तान हैं, और इसलिए सब परस्पर भाई भाई हैं। आजकल के राष्ट्रीय स्कूलों में इस सिद्धान्त की शिक्षा नहीं दी जाती, और इस दशा में कोई आश्चर्य नहीं, अगर एक व्यक्ति असभ्यावस्था के 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त का अनुकरण करने लगे। इसलिए सच्चे धर्म के विषय में अज्ञान ही संसार के समस्त कष्टों का कारण है। इसी कारणवश यूरोपीय महायुद्ध का जन्म हुआ था और तभी से समस्त संसार में कङ्गाली फैली है। वर्तमान राष्ट्र इस सिद्धान्त में न तो विश्वास रखते हैं, न उसे समझते हैं, और यही कारण है कि सभ्यता की रक्षा के लिए जो उपाय किए जा रहे हैं, उनका परिणाम निराशाजनक ही होता है। अन्धे लोग अन्धों को रास्ता दिखला रहे हैं और दोनों गढ़े में गिरते हैं।

प्रेमिका—मैं क्या कर सकती हूँ? माता को विवाह करने में उज्र है।

प्रेमी—मैं तो तुमसे विवाह करना चाहता हूँ, उनसे तो विवाह करना नहीं चाहता, फिर उनके उज्र करने के क्या मानी हैं, और इसमें उज्र करने का उनको अधिकार ही क्या है?

एक चपरासी ने बैरिस्टर साहब को अपने सेठ जी का लिफ़ाफ़ा लाकर दिया। बैरिस्टर साहब लिफ़ाफ़े को हाथ में लेकर चपरासी से बोले—सेठ जी ने इस पर पता भी नहीं लिखा।

चपरासी—हुज़ूर, सेठ जी इतनी जल्दी में थे कि पता तो पता, चिट्ठी में भी कुछ नहीं लिख सके।



जि जित्सू

पाठक जून मास के 'चाँद' में 'जि जित्सू' के सम्बन्ध मे कई चित्र देख चुके हैं। इन पंक्तियों में इसी विषय पर प्रकाश डाला जायगा।

'जि जित्सू' जापानियों की मल्ल-विद्या है। यह क्रिकेट, टेनिस, बेसबॉल आदि की भाँति एक खेल ही नहीं है, बल्कि शरीर को स्वस्थ तथा पुष्ट बनाने की एक वैज्ञानिक विधि है। जापान के सिपाहियों, पुलिस वालों तथा नौसैनिकों को इसका सीखना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। कहा जाता है कि जितनी शक्ति और स्फूर्ति अन्य व्यायामों द्वारा १ वर्ष मे प्राप्त होती है, उतनी इस व्यायाम से केवल छः सप्ताह में ही प्राप्त हो सकती है। जब १९०० ईस्वी में सारे संसार की शक्तियो ने चीन पर चढ़ाई की थी, उस समय इस बात का पता लगा था कि जापानी सैनिकों में कष्ट सहन करने की शक्ति सब से बढ़ कर थी। इसी प्रकार रूस-जापान-युद्ध में भी यही बात सिद्ध हुई थी। और इसका कारण यही है कि प्रत्येक सिपाही को जि जित्सू सिखाया जाता है।

डॉक्टर ईटो ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है :—

"जब एक प्रतिद्वन्द्वी पीछे से मुझ पर हमला करता है, तो मैं उसका मुक़ाबला नहीं करता। परन्तु उसकी शक्ति को उसी की पराजय के लिए प्रयोग मे लाता हूँ। यही सिद्धान्त 'जि जित्सू' का मूल मन्त्र है। हम जापानी लोग आत्म-समर्पण करके विजय प्राप्त करते हैं। × × ×"

इस प्रणाली का जन्म जापान में लगभग २,५०० वर्ष पूर्व हुआ था। कुछ समय पूर्व इसका प्रचार जापान की 'सामुराई' नाम की जाति मे ही था, जिस प्रकार हमारे यहाँ अस्त्र-विद्या का प्रचार केवल क्षत्रियों में ही था। उस जाति की स्त्रियों मे भी इसका प्रचार था। अब इसका प्रचार सर्व-साधारण में हो गया है और इसे अब वहाँ का 'राष्ट्रीय व्यायाम' समझा जाता है। इसका प्रयोग स्वस्थ शरीर बनाने के लिए अधिक किया जाता है, न कि किसी शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए। इसका प्रचार स्कूलों और कॉलेजों में भी है और प्रत्येक बालक-बालिका को इसे अवश्य ही सीखना पड़ता है। इसके साथ ही धनुर्विद्या तथा तलवार चलाना भी सिखाया जाता है। जि जित्सू की शिक्षा क्लास के कमरों में ही दी जाती है। यह शिक्षा एक दिन में कई घण्टों तक दी जाती है।

जो इस विद्या मे असाधारण प्रवीणता प्राप्त कर लेते हैं, उनको 'ब्लैक बैल्ट' नामक उपाधि मिलती है। जो इस उपाधि को धारण करते हैं, उन्हे पीछे से इस विद्या के अन्य भेद बताए जाते हैं, जैसे किसी आक्रमणकारी को एक घूँसे में या कहीं थोड़ा सा ही बल-प्रयोग करके मार डालना,

अथवा इस प्रकार आहत हुए व्यक्ति को स्वस्थ बना देना आदि। इन 'ब्लैक बैल्टों' को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वे इन भेदों को सिवाय जापानियों के किसी अन्य व्यक्ति पर उद्घाटन न करेंगे। इसके ऊपर की कुछ और श्रेणियाँ हैं, परन्तु उन तक पहुँचने वालों की संख्या बहुत कम होती है।

जब व्यायाम पूरा हो जाता है, तो विद्यार्थी स्नान करने तथा तैरने के लिए जाता है। जहाँ तक हो सके, जल ठण्डा हो, यदि वह सहन न हो सके, तो उसमें कुछ गर्म पानी मिलाया जा सकता है। इसके बाद एक तौलिया से शरीर को ख़ूब रगड़ा जाता है।

भारत मे भी अब इस विद्या का प्रचार हो रहा है। अनेक स्त्रियाँ भी इसे सीखने लगी हैं। वास्तव में भारतीय महिलाओं को तो इसकी परम आवश्यकता है, क्योंकि आजकल की दशा मे आए-दिन उन पर आततायियों के अत्याचार होते रहते हैं।

—रतन प्रेम

❀ ❀ ❀

वायु-सेवन

एक मिनट में एक व्यक्ति १६-१८ श्वासें लेता है। वह पूरे दिन में लगभग २६,००० बार श्वास लेता है और उसको इसका पता भी नहीं लगता। श्वास लेने के कार्य में लगभग १०० मांस-पेशियाँ भाग लेती हैं। प्रत्येक श्वास में हम २५-३० इञ्च वायु लेते हैं। इसका अर्थ है पूरे दिन में लगभग १६-२० सेर वायु। यह वायु फेफड़े के १५ वर्ग फ़ीट स्थान में चक्कर लगाती है। फेफड़े में यह रक्त को शुद्ध करती है—ऑक्सीजन (प्राणवायु) रक्त मे चली जाती है और कारबन डाईऑक्साइड बाहर निकल आती है। फेफड़ों में सदैव १६० क्यूबिक इञ्च वायु भरी रहती है। वायु जितनी ही स्वच्छ होगी, शरीर के लिए उतना ही लाभ करेगी।

❀ ❀ ❀

नारङ्गी का रस

हाल ही में कुछ वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि दुग्ध में नारङ्गी का रस मिला देने से बच्चों के लिए अधिक पाचक हो जाता है।

आधी छटाँक रस निकाल कर आध सेर दूध मे मिलाया जाता है। इस प्रकार दूध पिलाने से यह पता लगा है कि बच्चों का वज़न अधिक बढ़ता है, आँतों के रोग बहुत कम होते हैं और ख़ुराक को घटाने-बढ़ाने आदि की झञ्झट नहीं करनी पड़ती। यदि नारङ्गी खट्टी हो, तो रस कम मिलाना चाहिए, नहीं तो पेट में वायु भर जाने का डर रहता है।

—दयाशङ्कर, बी० एस-सी०

पावस-प्रवाह

[श्री० अञ्जनीनन्दन चतुर्वेदी "चन्द्र"]

प्रबल प्रचण्ड मारतण्ड ते तपित छिति, आतप मिटाय ताहि सरस बनावैगो।
"चन्द्र" सर कूप औ तड़ाग बावली के उर, पय के प्रवाह ते नवीन ओज लावैगो।
पीतम संयोग ते बुझावैगो विरह-आग, व्यथित वियोगिनि उर मोह सरसावैगो।
छावैगो वितान हरि-वेलि ते धरा पै सुख, शान्ति सरसावत सु-पावस अब आवैगो।



पाँच उँगलियों वाली नारङ्गी

जापान में एक विचित्र प्रकार का वृक्ष पाया जाता है। इस वृक्ष की लम्बाई लगभग २ गज़ होती है और इस पर उगने वाली नारङ्गियाँ पाँच उँगलियो वाली होती हैं। इसकी शाखाएँ गाँठों से भरी हुई होती हैं और वृक्ष के तने से लिपटी हुई रहती हैं। फलों की रक्षा करने के लिए इस पर नुकीले छोटे-छोटे काँटे भी होते हैं। जब मञ्जरी निकलती है, तो उसकी भीनी सुगन्ध बड़ी मनमोहक होती है। सबसे अधिक आश्चर्य की चीज़ फल होता है। इसमे मनुष्य के हाथ की भाँति एक अँगूठा और चार अँगुलियाँ होती हैं और साथ ही उन पर नाख़ून भी लगे हुए होते हैं। फलों की लम्बाई भी मनोरञ्जक है। कोई-कोई फल तो लगभग १ फ़ुट लम्बा होता है। रङ्ग इसका पीला होता है। यह जून या जुलाई मे ही फलता है। फल की सुगन्धि भी बहुत तेज़ होती है। यहाँ तक कि जिधर की वायु होती है, उस ओर यह सुगन्धि एक मील तक जाती है।

❀

संसार का सबसे बड़ा होटल

न्यूयॉर्क में वाल्डॉर्फ़-एस्टोरिया नाम का एक विशाल होटल हाल ही में प्रेज़िडेण्ट हूबर ने खोला था। इसके बनाने में लगभग ८० लाख पौण्ड अर्थात् लगभग १० करोड़ रुपया व्यय हुआ था। इसमें ४६ मञ्ज़िलें हैं। और कुल २,२५३ कमरे हैं, एक अस्पताल है तथा ४ नाच-घर हैं। प्रत्येक कमरे के साथ एक-एक स्नानगृह् भी है। इसमें लगाने के लिए ४,००० चित्र ख़रीदे गए हैं, जिनका निर्वाचन न्यूयॉर्क के कलाभवन द्वारा सञ्चालित विशेषज्ञों की एक कमिटी ने किया था। अनेक कमरों को भीतर से अङ्गरेज़ी ढङ्ग से सजाया गया है, ताकि अङ्गरेज़ यात्री उन्हे पसन्द कर सकें। यात्रियों की सुविधा के लिए कई कमरों के लिए एक अलग भोजनालय बनाया गया है। अपने ढङ्ग का यह संसार में एक ही होटल है।

❀

पैरिस का मूल्य

यदि पैरिस आज बिक्री के लिए बाज़ार में रक्खा जाय, तो उसका मूल्य कम से कम २२ अरब रुपए होगा—ऐसा विशेषज्ञों का ख़याल है। इसी प्रकार लन्दन का मूल्य ३८ अरब तथा न्यूयॉर्क का मूल्य ५५ अरब लगाया गया है।

पैरिस के कैथीड्रल नौत्रदाम का मूल्य १० करोड़, ईफ़ेल टॉवर का मूल्य ८ करोड़, एलिसी के भवन का ३० करोड़, लुक्सेमबूर्ग भवन का १८ करोड़, ओपेरा का ३० करोड़, सड़कों का २ अरब, अण्डरग्राउण्ड रेलवे का ५० करोड़ तथा लूव्र के भवनों का मूल्य ६ अरब लगाया गया है।

❀

कबूतर सिपाही

युद्ध मे भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य मानव-सिपाहियों तथा मैशीनो से ही लिया जाता है, परन्तु विगत चीन-जापान युद्ध मे कबूतरों ने भी युद्ध में भाग लिया था। मञ्चूरिया के जङ्गलों में होकर आवागमन के लिए कोई भी सुविधा नहीं है। इन कबूतरों का कार्य इधर से उधर सन्देश ले जाना था। जापानियों ने इनका प्रयोग अधिकतर किया था और इनके द्वारा अनेक जापानी सिपाहियों की रक्षा समय पर सम्भव हो सकी।

एक बार एक कबूतर पर मार्ग में किसी जङ्गली पक्षी ने आक्रमण किया और उसे चुटीला बना दिया। परन्तु वह कबूतर किसी प्रकार अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गया और वहाँ उसका सन्देश मिल जाने पर जापानी सेना की रक्षा के लिए मोटर द्वारा अधिक सिपाही भेज दिए गए।

❀

संसार की मोटरें

संसार के विभिन्न देशों में कितनी मोटरें प्रतिवर्ष नई रजिस्टर की जाती हैं, यह नीचे के अङ्कों से विदित हो जायगा :—

फ़्रान्स	...	...	१,७८,०००
अमेरिका	...	...	१,२६,०००
इङ्गलैण्ड	..	...	६३,०००
जर्मनी	...	...	४९,७००
कनाडा	...	...	४१,६००
इटली	...	...	२८,०००
बेलजियम	...	...	१७,७००
हॉलैण्ड	...	...	१७,०००
अफ़्रीका	...	...	१४,६००
स्वीडन	...	...	१४,३००

इस समय अमेरिका में २,६६,९१,०००; इङ्गलैण्ड में १५,५८,०००; फ़्रान्स में १५,००,०००, कनाडा में १२,१५,००० तथा जर्मनी में ६,५९,००० मोटरें हैं।

विचित्र कछुआ

अमेरिका में एक ऐसा कछुआ है, जिसके दो सिर हैं। इसका शेष शरीर अन्य कछुओं की भाँति ही है। दोनों सिर अलग हैं और वह उन दोनो से ही काम ले सकता है। परीक्षा करने पर विदित हुआ कि दोनों सिरों की रक्त की नलियाँ तथा ज्ञान-तन्तु आदि अलग-अलग हैं। यह कछुआ इस समय अमेरिका के प्राणी-विज्ञान-कॉलेज मे है। ❀

सबसे बड़ा जहाज़

संसार के भिन्न-भिन्न देशों में संसार का सब से बड़ा जहाज़ बनाने की प्रतियोगिता चल रही है। कभी जर्मनी इसमें बाज़ी मार ले जाता है, कभी इङ्गलैण्ड। इस ओर तो २०,००० टन से बड़े जहाज़ देखने को भी नहीं मिलते, परन्तु अमेरिका तथा इङ्गलैण्ड के बीच बहुत बड़े जहाज़ चलते हैं। अभी हाल मे इङ्गलैण्ड मे एक नया जहाज़ बनाया गया है, जिसका वज़न ७३ हज़ार टन है। उसकी चार फनल्स ४०-४० फीट चौड़ी हैं। यह जहाज़ एक घण्टे मे लगभग ५० मील चलेगा।

❀

एक आधुनिक घड़ी

जापान की राजधानी टोकियो के ऊएनो स्टेशन के सामने की एक इमारत में एक आधुनिक घड़ी लगाई हुई है, जो संसार की सब से बड़ी घड़ी समझी जाती है। इसकी सेकेण्ड की सुई की लम्बाई ८·४ मीटर है तथा उसका वज़न ३३८ किलोग्राम है। पूरी घड़ी का वज़न ५०९० किलोग्राम है। मिनट की सुई की लम्बाई ७·६ मीटर तथा घण्टे की सुई की लम्बाई ६ मीटर है। इसके बनने के पहले न्यूजर्सी, अमेरिका की एक घड़ी को संसार की सब से बड़ी घड़ी होने का गौरव प्राप्त था। परन्तु अब वह घड़ी जापान की घड़ी के सामने नहीं ठहर सकती, इसका सञ्चालन बिजली के द्वारा होता है।

चीन की स्त्रियों में जाग्रति

[श्री० अभ्यङ्कर वर्मा, एम० ए०, एल्-एल्० बी०]

आज से कुछ वर्ष पहले भारतवर्ष की तरह चीन में भी स्त्रियों की दशा बड़ी ही हीन थी। जिस तरह यहां के कुछ समाजों में लड़की का पैदा होना ईश्वरीय अभिशाप माना जाता है, उसी तरह वहाँ भी माना जाता था और जिस तरह हमारे देश के कुछ उच्च-वंशोद्भव क्षत्रिय आदि, शायद ससुर बनने की तौहीन से बचने के लिए, पैदा होते ही नमक खिला कर लड़कियों को मार डालते थे, उसी तरह चीन के उच्चवंशीय भी अपनी लड़कियों को जन्मते ही शमन-सदन की राह दिखा देते थे! दैवयोग से या माता-पिता की असीम अनुकम्पा से अगर कोई भाग्यवती जीवित बच जाती थी, तो उसे आजन्म अपने मायके वालों की या ससुर-गृह की ग़ुलामी करनी पड़ती थी। जिन वंशों में लड़कियों को जन्मते ही मार डालने की प्रथा नहीं थी, वहाँ भी उनका सारा जीवन पुरुषों की ग़ुलामी में ही व्यतीत होता था। छोटेपन में ही उनके पैरों में लोहे के जूते पहना दिए जाते थे, ताकि वे अधिक चल-फिर न सकें। साथ ही स्त्री का छोटा पैर होना सौन्दर्य में भी दाख़िल था।

विवाह आदि के मामले में लड़कियों को बोलने का कोई हक़ नहीं था। अभिभावक जिसे चाहते थे, अपनी इच्छानुसार कन्या-सम्प्रदान कर सकते थे। पति-गृह में भी उनकी हैसियत एक दासी की तरह होती थी। घर के बड़ों और पति की आज्ञाओं का पालन करना, बचा-खुचा खाकर जीवन यापन करना और मोटा-झोटा पहन कर लज्जा निवारण करना, उनका कर्त्तव्य था। घर के भीतरी या बाहरी प्रबन्ध में उनका कोई हाथ नहीं होता था। पतिदेव पत्नी के जानोमाल तथा इहलोक और परलोक के मालिक समझे जाते थे। उन्हें पत्नी के साथ मनमाना व्यवहार करने का मानो जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त था। यहाँ तक कि इच्छा होने पर या आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी पत्नी को दूसरे के हाथ बेच भी सकते थे। माता को अपनी सन्तान पर कोई अधिकार नहीं होता था। पति के मरने पर उसके निकट सम्बन्धी उसकी सारी सम्पत्ति के मालिक और उसके बच्चों के अभिभावक बन जाते थे। माताएँ अपने अभिभावकता के अधिकार से भी वञ्चित थीं। स्त्रियों को पुनर्विवाह का भी अधिकार न था और न वे किसी भी हालत में अपने पतियों को छोड़ ही सकती थीं। स्त्री-शिक्षा की भी वही दशा थी, जो आज से कुछ साल पहले हमारे देश में थी। पढ़ना-लिखना स्त्रियों के लिए महापाप था। उनका वैधव्य जीवन बड़ा ही निकृष्ट था; पति के मर जाने पर उन्हें असीम दुर्गति का सामना करना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह कि गत सन् १९२५ तक चीन की स्त्रियों की दशा बड़ी ही गई बीती थी।

परन्तु सन् १९२६ मे एकाएक ज़माने ने पलटा खाया। चीन में भीषण राज्य-क्रान्ति आरम्भ हुई। सारे देश में उथल-पुथल मच गया। युवकों में विचित्र जाग्रति फैल गई। पुरानी रूढ़ियों को लोगों ने बुरी तरह ठुकराना आरम्भ कर दिया। युवकों के साथ ही युवतियों में भी जाग्रति के लक्षण दिखाई पड़ने लगे। इसी समय चीनी क्रान्ति के प्रधान नायक डॉक्टर सन्यात्-सेन ने स्त्रियों और पुरुषों के समानाधिकार की आवाज़ बुलन्द की। डॉक्टर महोदय की धर्मपत्नी श्रीमती सन्यात्-सेन ने भी इस कार्य में बड़े

उत्साह और लगन से भाग लिया। उनकी अनवरत चेष्टाओं ने चीनी स्त्रियों में एक नया जीवन ला दिया। स्त्रियों ने अपनी कई समितियाँ स्थापित कीं और युवकों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर देश की क्रान्ति को सफल बनाने की चेष्टा में लगीं। साथ ही उन्होंने अपनी बहिनों में जाग्रति फैलाना भी प्रारम्भ कर दिया। पढ़ी-लिखी स्त्रियों ने लोगों के घरों में जा-जाकर नव-जागरण का सन्देश सुनाया। सन् १६२६ से लेकर १६३१ तक के कई वर्षों में ही चीन की महिलाओं ने अपनी आशातीत उन्नति कर ली। कहाँ तो वे लोहे के जूते पहन कर चलने-फिरने से मजबूर थीं और कहाँ अब हर एक काम में पुरुषों की समता करने को तैयार हो गईं। रूढ़ियों के ग़ुलामों ने इस जाग्रति को रोकने की भी काफ़ी चेष्टा की। स्त्रियों की उन्नति के मार्ग में ख़ूब अड़ङ्गे लगाए गए। पुराने रीति-रिवाज़ों की ख़ूब दुहाई दी गई। परन्तु स्त्रियों ने इन दक़ियानूसी विचारों पर ध्यान भी नहीं दिया। मानो इन बाधाओं ने उन्हे और भी उत्साहित कर दिया। सन् १६३१ के अप्रैल में उन्होंने घोषणा की कि आगामी अमुक तारीख़ को चीनी स्त्रियों का बड़ा जुलूस यूरोपियन पोशाक में निकलेगा, अगर किसी में रोकने का साहस हो तो आकर रोक ले। इसी बीच में उन्होंने एक 'एण्टी ओल्ड मिशन' स्थापित किया, जिसका उद्देश्य था, समस्त पुराने रीति-रिवाजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा करना। हज़ारों स्त्रियों ने अपने बाल कटवा दिए, लोहे के जूतों को प्रणाम किया, पुराने ढङ्ग के पहनावे को उतार फेंका और घोषणा की कि अब हम अपने पतियों की ग़ुलाम नहीं, वरन् उनकी अर्द्धाङ्गिनी या धर्मपत्नी होकर रहेंगी। पुरुषों को बाध्य किया कि वे उनका अधिकार स्थायी रूप से स्वीकार करें। पुरुषों ने भी बिना ननुनच के उनकी माँगें स्वीकार कर लीं। जो लोग उनका विरोध करते थे, वे अपना सा मुँह लेकर रह गए।

अभी कुछ दिन हुए चीनी स्त्रियों की कॉन्फ्रेन्स ने घोषणा की है कि अगर पुरुष अपनी स्त्री को तलाक़ दे सकता है, तो स्त्री को भी अधिकार है कि जब चाहे पति को छोड़ दे। स्त्रियों के आन्दोलन करने पर चीन के प्रजातन्त्र ने उनका यह अधिकार स्वीकार कर लिया है कि अगर कोई पति अपनी पत्नी को अकारण छोड़ दे तो पत्नी को यह क़ानूनी अधिकार प्राप्त होगा कि वह क़ानून द्वारा अपने भरण-पोषण का ख़र्च वसूल करे।

चीन को स्वतन्त्र कराने में भी वहाँ की स्त्रियों का काफ़ी हाथ है। जिस तरह अपनी मातृभूमि को बन्धन-मुक्त करने में चीनी नवयुवकों ने अपना सर्वस्व विसर्जन कर दिया है, उसी तरह वहाँ की नवयुवतियों ने भी काम किया है। इसीलिए यह आशा की जाती है कि चीनी राष्ट्र उनकी सभी उचित माँगों को स्वीकार कर लेगा।

वकील पिता—देखो स्कूल से तुम्हारे सम्बन्ध में कितनी ख़राब रिपोर्ट आई है!

पुत्र—पिता जी, ज़रा ग़ौर से देखें, रिपोर्ट कहीं जाली न हो।

❀ ❀ ❀

एक जन्टलमैन अपनी प्रेमिका के लिए जो साइकिल ख़रीद कर लाए थे उसकी सीट कुछ छोटी साबित हुई। आपने साइकिल वाले को लिखा—"जो साइकिल मैं आपसे ख़रीद कर लाया था वह मेरी प्रेमिका को छोटी होती है, कृपया इसे बदल कर ऊँची सीट की साइकिल भेज दें।" उत्तर मिला—"एक बार की बेची हुई चीज़ को वापस लेने का नियम नहीं है; आप अपनी प्रेमिका बदल सकते हैं।"

माँ—बेटी, इतनी रात हो गई, तुम अभी तक सोई नहीं, छोटी लड़कियों को जल्दी सोना चाहिए।

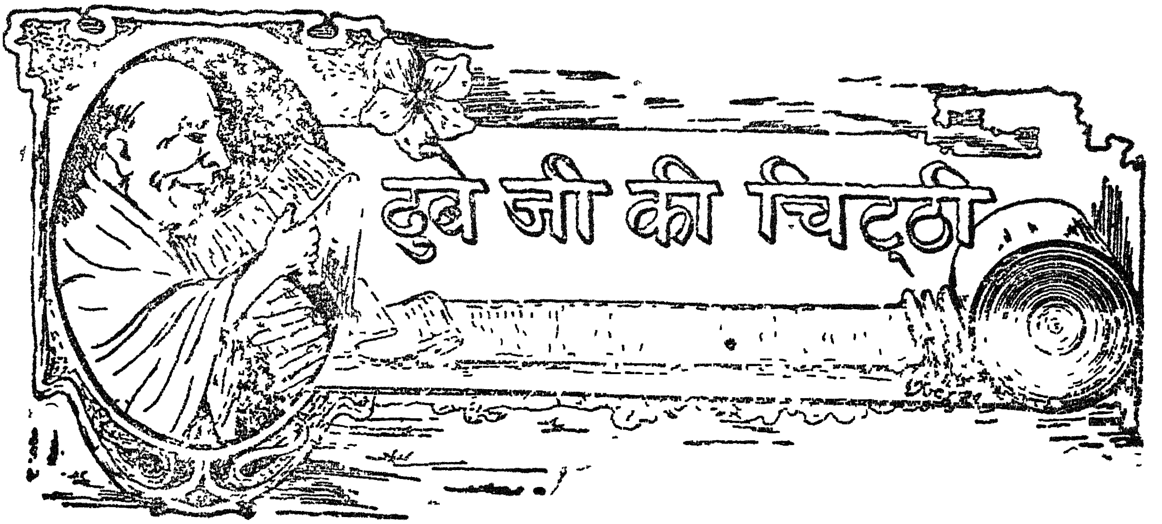
बेटी—अम्माँ, तुम्हारी बात का कोई ठीक नहीं। रात को तुम यह कहती हो और सुबह जब मैं देर तक सोती हूँ तब कहती हो कि तू इतनी बड़ी लौंठा हो गई अभी तक सो रही है, आख़िर सच-सच बताओ, मैं बड़ी हूँ या छोटी?

❀ ❀ ❀

प्रेमी—सच बतलाओ, तुम मेरे साथ शादी करोगी या नहीं?

प्रेमिका—नहीं, मैं शादी न करके सदा तुम्हारी बहिन ही बनी रहना पसन्द करती हूँ।

प्रेमी—हाँ, यह भी अच्छा तरीक़ा है।



दुबे जी की चिट्ठी

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आपको यह जान कर बहुत ही हर्ष होगा कि अपने राम ने हाल ही में एक एजेन्सी खोली है। इस एजेन्सी का अत्यन्त शुभनाम 'पुस्तक तथा लेखक आलोचन एजेन्सी' है। यह एजेन्सी क्या करेगी—यह बतलाने के पूर्व यह बता देना आवश्यक है कि इस एजेन्सी की आवश्यकता ही क्यों पड़ी। आवश्यकता आविष्कारों की जननी है, इसलिए इसकी आवश्यकता का कारण स्वयम् आवश्यकता ही है।

इन दिनों लोगों ने अपने राम की नाक में दम कर दिया था। किस प्रकार ? सुनिए! उस दिन बाहर जाने का अवसर आया। जिस नगर में गए थे, उसी नगर मे हिन्दी के एक प्रतिष्ठित लेखक रहते हैं। जी में आया कि चलो इनसे भी मिलते चलें। सो जनाब, उनके पास पहुँचे तो उन्होंने देखते ही अपना घर सिर पर उठा लिया—"आइए-आइए, दुबे जी, ख़ूब आए ! कब आए ? आपके तो दर्शन ही नहीं होते, इत्यादि, इत्यादि।" इन बातों का जवाब अपने राम ने भी वही दिया, जो कि लोग बहुधा दिया करते हैं। इसके पश्चात् उन्होंने पूछा—"कहिए, आजकल क्या लिख रहे हैं ?"

अपने राम बोले—क्या सदैव कुछ न कुछ लिखते रहना आवश्यक है ?

वह बोले—बेशक ! लेखक कभी ख़ाली बैठ ही नहीं सकता। मुझी को देखिए, नित्य कुछ न कुछ लिखता हूँ। जिस दिन कुछ नहीं लिखता, उस दिन ऐसा प्रतीत होता है कि आज का दिन बिल्कुल बेकार गया।

अपने राम ने कहा—तब तो आप पूरे लेखन-मशीन हैं और धन्य हैं। अपने राम में इतनी क्षमता नहीं है।

वह बोले—होनी चाहिए ! आप जैसे लोगों में क्षमता न होगी तो फिर होगी किसमें ?

अपने राम ने उत्तर दिया—आप जैसे लोगों में।

उन्होंने हँस कर कहा—नहीं, आप में भी होनी चाहिए।

कुछ देर तक इसी प्रकार की बातचीत होती रही। इसके पश्चात् उन्होंने अपनी एक नई पुस्तक मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा—देखिए, मेरा यह उपन्यास हाल ही में प्रकाशित हुआ है। इसे पढ़िएगा, आप ख़ुश हो जायँगे। मेरा अपना विचार यह है कि मेरी यह पुस्तक मेरा मास्टर-पीस है। आप इसे ध्यानपूर्वक पढ़िएगा। और यदि कष्ट न हो तो इसकी एक विस्तृत आलोचना लिख कर किसी मासिक पत्र में भेज दीजिएगा।

मैंने पुस्तक धन्यवादपूर्वक ले ली और बिना यह निश्चय किए हुए कि मैं पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ूँगा भी या नहीं, उनसे वादा किया कि आलोचना अवश्य लिखूँगा।

इसके पश्चात् वह हिन्दी की अधोगति का रोना रोते रहे। हिन्दी में न कोई अच्छा कवि है, न उपन्यास-कार न नाटककार! अपने राम की इच्छा हुई कि कह दें—"तब आप क्यों झख मारते हैं? लिखना-विखना सब छप्पर पर रखिए, और मौज कीजिए।" परन्तु फिर कुछ सोच-समझ कर मौन रहना ही उचित समझा। विदा होते समय उन्होंने फिर आलोचना करने की याद दिला दी, यद्यपि मैं बिलकुल भूल गया था।

उनके घर से निकल कर डेरे की ओर चला। रास्ते में एक कवि महोदय से मुठभेड़ हो गई। उन्होंने भी दूर ही से हल्ला मचाया। कुशल-क्षेम पूछने के पश्चात् बोले—आपने इस महीने की × × × देखी।

मैंने कहा—हाँ, देखी तो है।

वह—उसमें मेरी कविता निकली है, वह तो पढ़ी होगी।

अपने राम बोल उठे—हाँ, पढ़ी है।

यद्यपि मुझे यह पता तक नहीं था कि उनकी कोई कविता निकली है। उन्होंने कहा—वह आपको पसन्द आई?

मैंने कहा—भला आपकी कविता और पसन्द न आवे, ऐसा कभी हो सकता है?

वह बोले—यदि आपको पसन्द आई, तो आप उस पर एक छोटी सी आलोचना क्यों नहीं लिख डालते। जब आप जैसे लोग भी प्रोत्साहित न करेंगे, तो फिर करेगा कौन?

मुझे मजबूरन कहना पड़ा—कहते तो आप ठीक हैं—अच्छा लिखूँगा।

वादा कर लेने में अपने राम उतने ही पक्के हैं, जितने कि वादा न पूरा करने में। इसी प्रकार न जाने कितने लेखकों तथा कवियों ने अपनी पुस्तकों की आलोचना कर लेने का वादा अपने राम से ले लिया, परन्तु खेद है कि अपने राम एक भी वादा पूरा न कर सके। बहुधा लोगों ने पुनः स्मरण दिला कर आलोचना कराने की चेष्टा की। एक महोदय ने हताश होने पर यहाँ तक लिखा कि "आप किसी लेखक को आगे बढ़ता हुआ नहीं देखना चाहते।" अपने राम ने उन्हें लिखा कि मैं देखना तो सब कुछ चाहता हूँ, परन्तु अपने ही द्वारा ठेल-ठाल कर आगे बढ़ाए हुए लेखकों से मुझे कुछ शङ्का रहती है। सम्पादक जी, एक बार एक ऐसे लेखक की, जो अपनी प्रत्येक कृति को स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य समझते हैं, एक पुस्तक की भूमिका लिखने की भूल अपने राम ने की थी। उस भूल के साथ ही दूसरी भूल यह थी कि जहाँ उनकी पुस्तक के गुण दिखाए, वहीं त्रुटियों की ओर भी थोड़ा सङ्केत कर दिया। बस जनाब, उसी दिन से उन लेखक महोदय से अपने राम की बोलचाल तथा पत्र-व्यवहार बन्द है। अपने राम ने उसी दिन से तय कर लिया कि भूमिका लिखना पाप है। परन्तु इधर पुनः लेखकों ने घेरना आरम्भ किया। अतएव अपने राम ने झिंच होकर उक्त एजेन्सी की स्थापना कर ही तो डाली। इस एजेन्सी के प्रादुर्भाव से लेखकों को ऐसी सुविधा प्राप्त हो गई है कि कोई भी लेखक एक दिन में सब कुछ बन सकता है। इस एजेन्सी का काम यह होगा कि जो लेखक एजेन्सी के नियमानुसार फ़ीस जमा करेगा, उसकी पुस्तक की आलोचना की जायगी। प्रत्येक बात के लिए अलग-अलग फ़ीस होगी। जैसे कोई लेखक यह चाहता है कि वह यशस्वी लेखक बना दिया जाय तो उसकी फ़ीस अलग है। कोई लेखक सर्व-श्रेष्ठ लेखक की उपाधि चाहता है, कोई कविवर अथवा महाकवि बनना चाहता है, तो तुरन्त बना दिया जायगा, परन्तु फ़ीस अधिक पड़ेगी। इसी प्रकार जिस लेखक की जो इच्छा होगी, वह पूरी कर दी जायगी बशर्ते, कि वह फ़ीस जमा कर देगा। यदि वह चाहेगा तो मोपासाँ, बालज़क, रोमाँरोलाँ, पौशकिन इत्यादि का गुरु-घण्टाल बना दिया जायगा। उसकी पुस्तक पर नोबेल-प्राइज़ अथवा मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक दिए जाने की सिफ़ा-रिश एजेन्सी ज़ोरों से कर देगी—मिलना न मिलना उसके भाग्य की बात है। प्रकाशक लोगों को भी बड़ी सुविधा रहेगी। जो प्रकाशक अपने किसी लेखक अथवा पुस्तक की प्रशंसा कराना चाहेगा, वह बहुत अच्छे ढङ्ग से कर दी जायगी।

केवल इतना ही नहीं, यदि कोई व्यक्ति चाहेगा कि अमुक लेखक की अमुक पुस्तक की ऐसी आलोचना की जाय कि वह लेखक उस आलोचना के प्रकाशित होने के पश्चात् लिखना ही छोड़ दे, तो यह भी कर दिया जायगा, परन्तु यदि वह लेखक लिखना न छोड़ेगा

तो एजेन्सी ज़िम्मेदार न होगी। कोई प्रकाशक अपने किसी ऐसे लेखक को, जो कल तक सर्वश्रेष्ठ था, परन्तु आज उक्त प्रकाशक से सम्बन्ध तोड़ लेने के कारण प्रकाशक उसे नीचे गिरा कर किसी दूसरे को उठाना चाहता है, तो यह भी कर दिया जायगा। पुराने लेखक को मिट्टी में मिला कर नए को आकाश पर बिठा दिया जायगा। परन्तु यदि वह आकाश में अधिक दिनों तक टिक न सके और धड़ाम से नीचे आ गिरे, तो एजेन्सी ज़िम्मेदार न होगी।

'तू मुझे हाजी कह, मैं तुझे मुल्ला कहूँ' वाली नीति पर एजेन्सी काम न करेगी। एजेन्सी केवल "नक़द-नारायण" सिस्टम पर काम करेगी।

सम्पादक जी, यह एजेन्सी केवल परोपकार के लिए खोली गई है। इसके द्वारा ऐसे लेखकों को भी सर्वश्रेष्ठ बनने का सौभाग्य प्राप्त हो जायगा, जो इस जन्म में तो क्या सात जन्म में भी सर्वश्रेष्ठ की उपाधि पाने के अधिकारी नहीं हैं। साथ ही जिन लेखकों को उनके शिष्यों अथवा प्रकाशकों ने ढोल पीट-पीट कर ज़बरदस्ती सर्वश्रेष्ठ बना दिया है, उनको अपनी पोज़ीशन सँभालना कठिन पड़ जायगा। एजेन्सी की कृपा से नित्य अनेक लेखक बनेंगे तथा बिगड़ेंगे। इसी प्रकार यह कार्य उस समय तक जारी रहेगा, जब तक कि सर्वश्रेष्ठ लेखक गली-गली जूतियाँ चटकाते न फिरने लगेंगे, थर्ड क्लास लेखक हिन्दुस्तान छोड़ कर चले न जायँगे और हिन्दी की इतनी पुस्तकें नोबेल प्राइज़ पाने की अधिकारिणी न समझी जाने लगेंगी कि यह तय न हो सकेगा कि उनमें से किसे प्राइज़ दिया जाय। यह अभीष्ट सिद्ध हो जाने के पश्चात् एजेन्सी का कार्य समाप्त हो जायगा।

क्यों सम्पादक जी, यह योजना कैसी है? किसी को कोई शिकायत नहीं रहेगी। न किसी का पक्षपात किया जायगा, न किसी का विरोध। जितना गुड़ डाला जायगा, उतना ही मीठा खाने को मिलेगा।

आप कृपा करके इस चिट्ठी को प्रकाशित कर दीजिए, जिससे सर्वसाधारण को इसकी सूचना मिल जाय। एजेन्सी का पता फ़िलहाल गुप्त रक्खा जाता है। जब लोग इस एजेन्सी के विरह में सिङ्खिया खाना आरम्भ कर देंगे, तब इसका पता प्रकाशित कर दिया जायगा।

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

रक्षा-बन्धन

[श्री० शोभाराम जी धेनुसेवक]

वह वीरोचित शान हिन्द की तूने जब तक "राखी"।
रक्षा की हमने भी तेरी, तब तक, है जग साखी॥

बन्धन में पड़ कर भी तेरा, करते थे हम बन्दन।
आज कहाँ है बन्धु-करों में, बहिनों का वह बन्धन?

बलि होने की आज नहीं है, तेरे में वह शिक्षा।
दिखती है राखी तू सम्प्रति, दीन द्विजों की भिक्षा॥

भीरु बन्धुओं से बहिनों की आज कहाँ रक्षा है?
स्वत्वों पर हँस कर मर मिटने की किसको इच्छा है?

रोता है उर "रक्षा-बन्धन", तेरे घोर पतन पर।
वीरों के थोथे तीरों पर, पराधीन जीवन पर॥

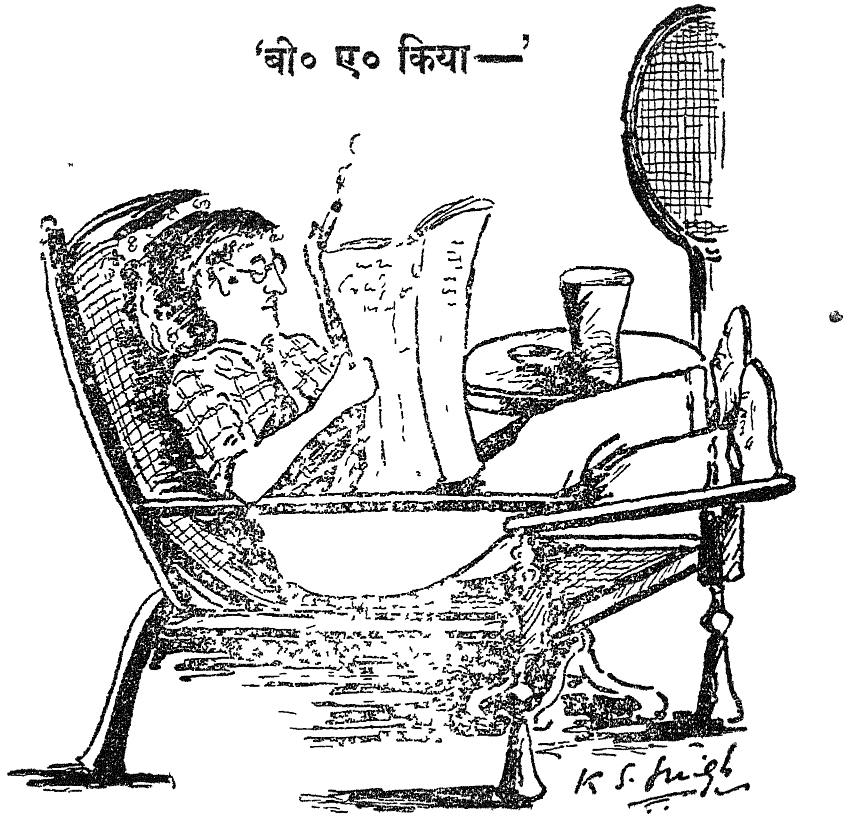
शक्ति नहीं है लाज बचाने की जिनके हाथों में।
लगा हुआ दुखद दास्यता का धब्बा माथों में॥

क्या जानेगा वह पापी-कर, तेरी लाज बचाना।
सीखा नहीं धर्म-रक्षा पर जिसने शस्त्र उठाना॥

भारतीय कर जब स्वतन्त्रता का साधन साधेंगे।
राखी तुझको तब कर में क्या मस्तक में बाँधेंगे॥

क्या कहें अहिबाब क्या कारे-नुमायाँ कर गए !
बी० ए० किया, नौकर हुए, पेन्शन मिली और मर गए !!—महाकवि 'अकबर'

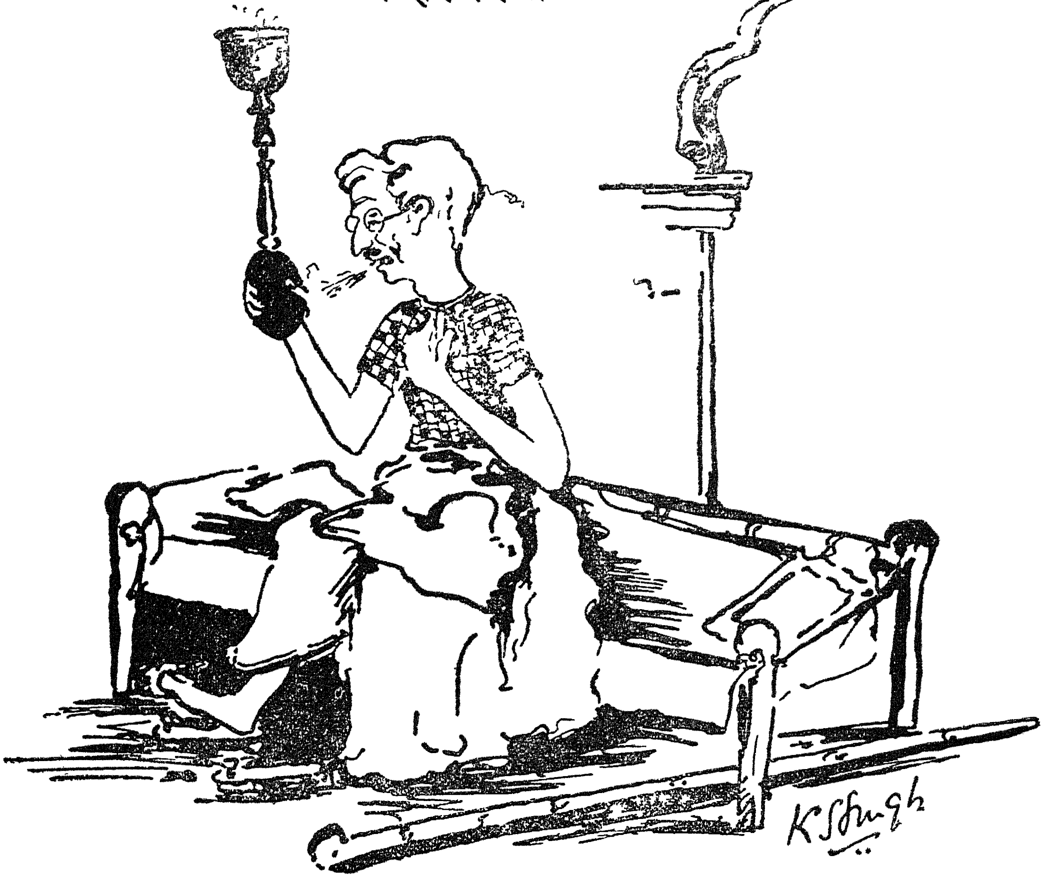
'बी० ए० किया—'



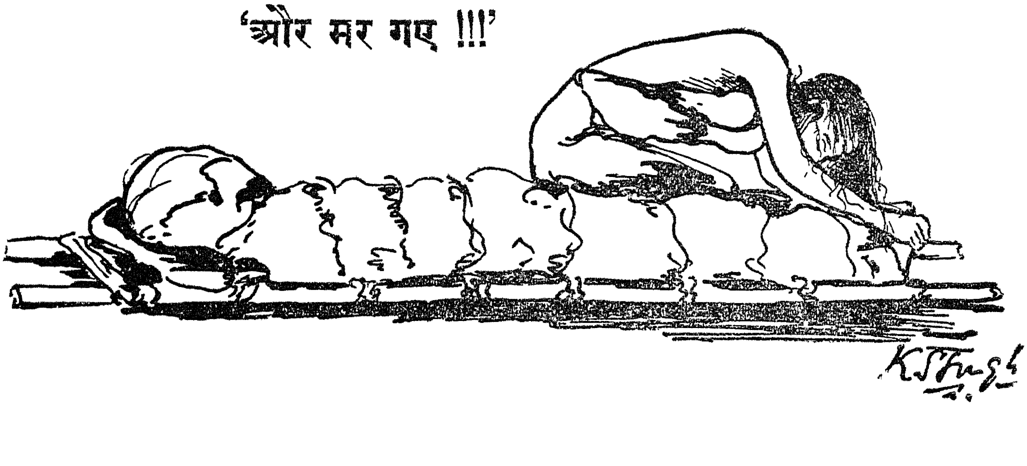
'नौकर हुए—'



'पेन्शन मिली —'



'और मर गए !!!'



वैधव्य

[श्री० विरक्त]

बिठा देता है मन वैधव्य,
सुखा देता है तन वैधव्य,
छुड़ा देता प्रिय-जन वैधव्य,
मचा देता क्रन्दन वैधव्य,
मिटा देता जीवन वैधव्य।

❀

रोकता है हँसना तक हाय !
सभी कुछ इसमें पातक हाय !
खून का प्यासा चातक हाय !
बना है जीवन-घातक हाय !
विपति बहु का वाहन वैधव्य।

❀

ससुर का मिट जाता उल्लास,
बताती 'पुत्र-घातिनी' सास,
कोसते, करते सब उपहास,
न आने पाती सुख-स्मृति पास,
दिखाता अपनापन वैधव्य।

❀

किसी को देखा घूँघट खोल,
प्यार से दिया किसी से बोल,
दिया मानो इसमें विष घोल,
घुला देता यौवन अनमोल—
वज्र जाता है बन वैधव्य।

❀

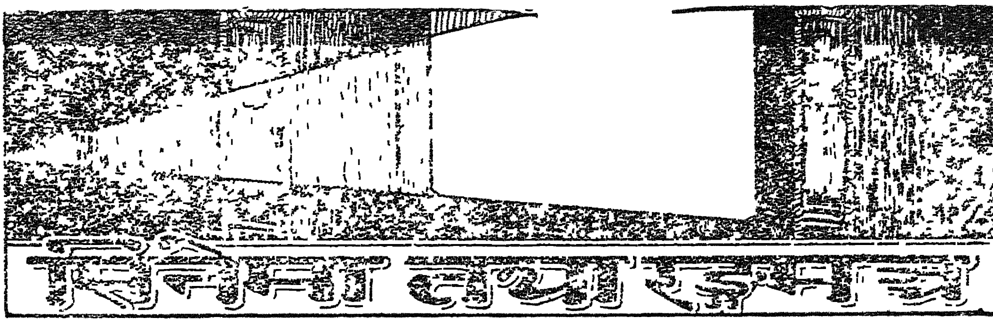
भवन पति का है दैवी-शाप,
न आश्रय दे सकता है बाप,
शोक है या है कटु-सन्ताप,
बना जीवन का साथी पाप,
बड़ा दुस्सह बन्धन वैधव्य।

❀

न पड़ जाए बच्चों पर छाँह,
'बन्हैया' बतलाते सब आह !
नहीं है अपमानों की थाह,
किसे है इनकी कुछ परवाह,
जलाता है प्रति-क्षण वैधव्य।

❀

भार बन जाते सब शृङ्गार,
जलाते हैं बन कर अङ्गार,
शत्रुतामय सबका व्यवहार,
करे ईश्वर ही बेड़ा पार,
चिता का है आसन वैधव्य।



ओटावा तथा भारतीय फ़िल्म कम्पनियाँ

एक बार इसी स्तम्भ में हम लिख चुके हैं कि इङ्गलैण्ड ने अपनी कम्पनियों के फ़िल्मों का प्रचार करने के लिए 'कोटा-सिस्टम' (Quota System) का आविष्कार कर रक्खा है। अर्थात् इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में दिखाए जाने वाले फ़िल्मों का कुछ प्रतिशत वहीं की कम्पनियों द्वारा बनाए गए फ़िल्मों द्वारा पूर्ण करना चाहिए। जो सिनेमा उस संख्या से कम स्वदेशी फ़िल्म दिखाते हैं, उन्हें दण्ड का भागी होना पड़ता है। चाहे इङ्गलैण्ड की जनता स्वदेशी फ़िल्मों को पसन्द न करे और फ़िल्म चाहे तृतीय श्रेणी के ही हों, उस संख्या को पूरा करना अनिवार्य है। यह सब इसलिए किया गया था कि इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में अमेरिका के फ़िल्मों की तूती बोल रही थी। अमेरिका का मुक़ाबला करने के लिए ही ऐसा किया गया था।

अब इङ्गलैण्ड भारत की ओर भी पैर फैला रहा है और अपने फ़िल्मों के लिए भारत में भी 'कोटा-सिस्टम' को जारी कराने के प्रयत्न में है। ओटावा कॉन्फ्रेन्स में जहाँ अन्य बातों पर विचार होगा, वहाँ इस बात पर भी विचार किया जायगा कि साम्राज्यान्तर्गत समस्त देश साम्राज्य के फ़िल्मों को तरजीह दें। इससे भारत को कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि भारतीय फ़िल्मों की दूसरे देशों में बिल्कुल भी खपत नहीं। लाभ तो इससे इङ्गलैण्ड को होगा, और इसीलिए सब कुछ किया जा रहा है। भारत को तो उल्टी हानि ही होगी; क्योंकि उसे मजबूरन जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका आदि के अच्छे फ़िल्मों को न लेकर इङ्गलैण्ड के घटिया फ़िल्मों को दिखाना पड़ेगा।

आवश्यकता इस बात की है कि भारत में स्वदेशी फ़िल्मों का प्रचार करने के लिए भारतीय सरकार यहाँ भी कोटा-सिस्टम जारी कर दे और अन्य सारे देशों के फ़िल्म एक ही दृष्टि से देखे जावें—अर्थात् जो अच्छे तथा सस्ते हों, वे लिए जायँ, चाहे वे जर्मन हों, चाहे रूस के और चाहे इङ्गलैण्ड के। इसी प्रकार हमारे फ़िल्म बनाने वालों को और प्रोत्साहन मिलेगा और वे फ़िल्मों को और भी अच्छा बनाने का उद्योग करेंगे।

इसके लिए स्थान-स्थान पर ऐसी संस्थाओं की स्थापना होनी चाहिए, जो फ़िल्म कम्पनियों, सिनेमाओं तथा दर्शकों में सद्भाव उत्पन्न करें तथा उनके बीच एक माध्यम का कार्य करें। इस दिशा में बम्बई में कुछ कार्य हुआ है। वहाँ पर एक समिति की स्थापना हो गई है और उसकी स्थापना में कई कम्पनियों के मालिकों ने भी भाग लिया है। ईश्वर करे इसका कार्य सफल हो और इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं की शीघ्र ही स्थापना हो, ताकि ओटावा भारत के साथ मनमानी-घरजानी न कर बैठे।

अन्य देशों के फ़िल्म

जर्मनी की 'ऊफ़ा' (Ufa) कम्पनी ने अङ्गरेज़ी में कई बोलते फ़िल्म बनाए हैं। उसका पहला फ़िल्म था 'ब्लू ऐञ्जल' (Blue Angel), जो सिनेमा-साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है। उसमें संसार के प्रसिद्ध अभिनेता 'एमिल जेनिंग्स' ने तथा मत्त-नयन अभिनेत्री 'मारलीन दी तरिच' ने काम किया था। 'ऊफ़ा' का दूसरा फ़िल्म 'सफ़ेद शैतान' (The White Devil) अभी बम्बई में दिखाया गया है। कला की दृष्टि से तो, चित्रकारी की दृष्टि से तो, अभिनय की दृष्टि से तो, सब प्रकार यह फ़िल्म अमेरिका के लगभग ८० प्रतिशत

फ़िल्मों से बाज़ी मार ले गया है। इसकी कहानी का आधार महर्षि टॉल्स्टॉय का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'हाजी मुराद' है। कहानी को फ़िल्म पर बड़े उत्कृष्ट रूप में अङ्कित किया गया है।

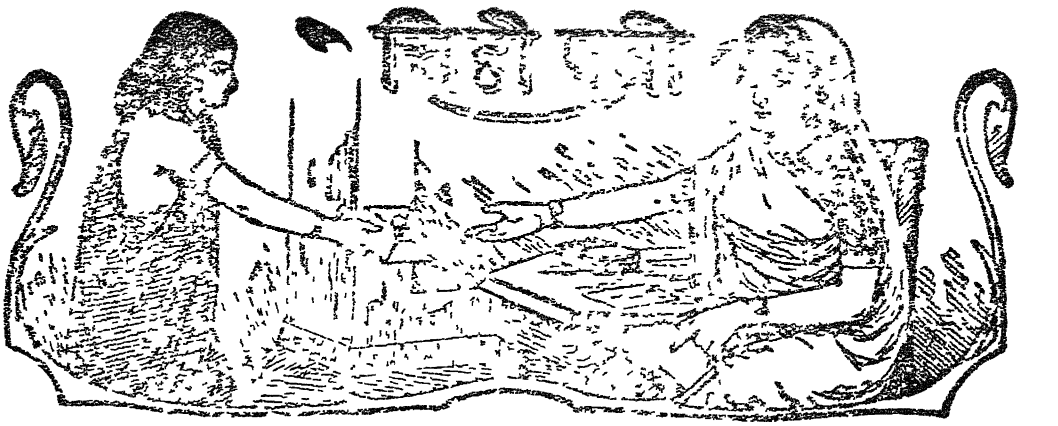
बम्बई में हाल ही में एक फ़्रेञ्च फ़िल्म भी दिखाया गया था, जिसका नाम था 'रात्रि में पेरिस पर चढ़ाई' (A night raid in Paris)। इसमें बातें तो फ़्रेञ्च में ही होती थीं, परन्तु उनके अर्थ अङ्गरेज़ी में साथ ही साथ दिखाए गए थे, जिससे दर्शक कथानक को बराबर समझता गया। इन पंक्तियों के लेखक ने अभी तक चार फ़्रेञ्च फ़िल्म देखे हैं। उनमें से सबसे पहला फ़्रेञ्च फ़िल्म, जो लन्दन में दिखाया गया था 'Sur de tois de Paris' अर्थात् 'पैरिस की छतों पर होकर', वह फ़िल्म भी इङ्गलैण्ड मे 'ब्लू ऐञ्जल' की भाँति ही प्रसिद्ध हो गया था और लन्दन के कई सिनेमाओं मे कई मास तक दिखाया गया था। इन फ़्रेञ्च फ़िल्मों की एक विशेषता यह होती है कि इनमे शब्द को वही स्थान दिया जाता है, जहाँ उसकी आवश्यकता होती है। शब्द का प्रयोग इनमे बड़ी ख़ूबी के साथ किया जाता है। सङ्गीत भी अनावश्यक तथा सीमा से अधिक नहीं होता। जहाँ केवल भाव-प्रदर्शन अथवा मूक अभिनय से काम चल सकता है, वहाँ फ़िल्म में न तो कोई बातचीत होती है, न सङ्गीत ही।

अमेरिका के प्रायः सभी पुराने विख्यात अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ बोलते हुए फ़िल्म बना चुके हैं, केवल चार्ली चैपलिन ने ऐसा नहीं किया। स्वर्गीय लौनचैनी पहले तो बोलते हुए फ़िल्म बनाने के बहुत ही विरुद्ध था, यहाँ तक कि उसने यह धमकी दे दी थी कि वह ऐक्टिङ्ग छोड़ कर डाइरेक्टर बन जायगा। परन्तु पीछे से वह बोलते फ़िल्म बनाने को राज़ी हो गया और अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले अपना अमर फ़िल्म 'The Unholy Three' (तीन पापात्मा) संसार को दे गया।

पुराने विख्यात व्यक्तियों में नौर्मा टॉलमेज का स्थान बहुत ऊँचा है। नौर्मा, नाटाली तथा कौन्स्टेन्स; ये तीनों बहिनें किसी समय सिनेमा-संसार में हलचल मचाती रहती थीं। नाटाली ने जब से बस्टर कीटन के साथ विवाह किया, तब से वह तो इस क्षेत्र से बिलकुल ही अलग हो गई। कौन्स्टेन्स का नाम भी अब सुनने में नहीं आता। यह हर्ष की बात है कि नौर्मा ने अपने बोलते फ़िल्म बनाए हैं। उसका पहला फ़िल्म 'New-york Nights' (न्यूयॉर्क निशा) काफ़ी अच्छा था। उसका दूसरा फ़िल्म 'Du Barry' (डू बारी) भी दिखाया जा चुका है। इसमें नौर्मा को इतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई। बात यह है कि नौर्मा की आयु अब काफ़ी हो गई है। वह 'मेकअप' करके युवती बनने की चाहे जितनी चेष्टा करे, फिर भी 'डू बारी' जैसी मादकता दिखाने मे वह असमर्थ ही रहेगी। केवल मैरी पिकफ़ोर्ड ही ऐसी है, जो ४० से ऊपर होकर भी सोलह वर्ष की सुन्दरी का पार्ट बड़ी सफलता से अदा कर सकती है।

अमेरिकन फ़िल्मों में 'पूर्व' का चरित्र

अमेरिका वाले अपने फ़िल्मों में वास्तविकता दिखाने के लिए प्रसिद्ध हैं। यूरोप, अफ़्रीका आदि के विषय में वे बड़ी खोज के साथ काम करते हैं। परन्तु जब एशिया का प्रश्न आता है, तो उनके आदर्श तथा सिद्धान्त एक ओर रक्खे रह जाते हैं। एशियावालों के चरित्र का वे जिस प्रकार चित्रण करते हैं, वह लज्जाजनक है। एक बार एक फ़िल्म बना था, जिसका नाम था 'Behind that Curtain' (पर्दे के पीछे)। अभिनय आदि की दृष्टि से यह फ़िल्म बहुत सुन्दर था, परन्तु जहाँ भारत के दृश्य आते थे, वह भाग बहुत भ्रामक तथा अशुद्धियों से पूर्ण था। बाज़ारों का दृश्य ऐसा था, मानो वे फ़ारस या अरब के बाज़ार थे। अङ्गरेज़ अफ़सर की भारतीय दासी का चरित्र बहुत ही निकृष्ट दिखाया गया था। इसी प्रकार की अशुद्धियाँ भरी हुई हैं। रैमन नोवारो के नए फ़िल्म 'Son of India' (भारत-पुत्र) में, जो कुछ समय पूर्व भारत में दिखाया गया था, अब समय है कि भारत में इन बातों के विरुद्ध आवाज़ उठाई जाय और अमेरिका वालों को भारतीय जीवन का सच्चा चित्र खींचने के लिए विवश किया जाय।



दृष्टिक्षीणता के प्रतिकार का उपाय

एक सज्जन ने लिखा है :—

आजकल नवयुवक समुदाय—विशेषतः विद्यार्थी समुदाय—बहुत थोड़ी उमर में ही अपनी आँखों की ज्योति खो बैठता है तथा जीवन-पर्यन्त चश्मे का व्यवहार करने को बाध्य होता है। आधुनिक चिकित्सक-वर्ग ने भी चश्मे को ही इस व्याधि का अन्तिम उपाय मान लिया है। परन्तु क्या चश्मे के अतिरिक्त इस व्याधि के प्रतिकार का और कोई उपाय आधुनिक या प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र में नहीं है। कुछ समय पूर्व मैने क्षीणता के सम्बन्ध में श्री० एच० एस० गेम्बर (H S Gamber) की लिखी हुई एक पुस्तक पढ़ी थी। परन्तु उसमें लिखे हुए उपायों की सत्यता के बारे में डॉक्टरों से बातचीत की तो किसी ने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि यदि 'चाँद' के पाठकों में से किसी सज्जन ने इस सम्बन्ध मे कोई जानकारी प्राप्त की हो अथवा इस व्याधि के प्रतिकार का और कोई उपाय किसी को मालूम हो तो कृपया उसे 'चाँद' मे छपवा कर सुयश के भागी बने।

[उपर्युक्त सज्जन ने नि.सन्देह एक अत्यावश्यक विषय की ओर 'चाँद' के पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। हमे आशा है कि इस सम्बन्ध की कुछ जानकारी रखने वाले सज्जन इस पर प्रकाश डालेंगे। इस विषय के जो लेख आदि हमारे पास आएँगे, उन्हे हम सहर्ष 'चाँद' में प्रकाशित करेंगे।
—स० चाँद]

❀ ❀ ❀

एक नवयुवक ने लिखा है :—

मै एक निर्धन और असहाय विद्यार्थी हूँ। मेरी उम्र इस समय २१ वर्ष है। मैंने प्रायः १४ वर्ष की उम्र में ही बुरे लड़कों की सङ्गति मे पड कर अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर डाला है। किन्तु कुछ दिनों (४ वर्ष) के बाद मुझे स्वामी शिवानन्द की "ब्रह्मचर्य ही जीवन है" नाम को किताब मिली, तब से मैं सुधर गया और हस्तमैथुन जैसा बुरा अभ्यास को छोड़ तत्कथित नियमानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करने लगा। किन्तु मेरे स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन नहीं हो रहा है। इसका कारण है एक राक्षसी अभ्यास। उसके विषय में लिखते मुझे बहुत ही लज्जा मालूम होती है। किन्तु ३ वर्ष तक उससे दुःख उठाते हुए कोई उपाय न देख कर आज आपकी शरण में आया हूँ।

वह राक्षसी अभ्यास है निद्रितावस्था में हस्तमैथुन। मैं जिस समय सोया रहता, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, उसी समय न जाने किस भूत या पिशाच की माया से उस कुकार्य को कर डालता हूँ। जब आँख खुलती है तो दुःख और सन्ताप के समुद्र में अपने को डूबता और उतराता पाता हूँ। इस तरह मेरा शारीरिक और मानसिक दोनों सत्यानाश हो रहा है। मैंने यथासाध्य सभी चेष्टा कर देखा है। लँगोट पहन कर सोता हूँ, परन्तु कुछ लाभ नहीं होता।

[इस प्रकार का यह पहला ही पत्र नही है। इस प्रकार के पत्र हमारे यहाँ बहुधा आया करते है। आजकल के नवयुवकों मे कम से कम ५० प्रतिशत में बाल्यकाल से यही घुन लग जाता है,

जो उनके शरीर को, उनके मन को तथा उनके चरित्र को नष्ट करके ही छोड़ता है। अनेक नवयुवक प्रयत्न करके इससे बचना चाहते हैं, परन्तु अन्य नशों की भाँति इस आदत से बचने मे भी उन्हें कठिनाई होती है। फिर भी यह आदत ऐसी नहीं है, जो छूट न सके। मन का संयम और व्यभिचार सम्बन्धी बातो से बचना तो आवश्यक है ही, साथ ही किसी अन्यतम मित्र या भार्या की सहायता भी आवश्यक है, जो रात्रि में सावधानी से रक्षा कर सके।

रात को हाथ बाँध कर सोने से भी काम निकल सकता है। हाँ, यह उपाय कुछ कष्टकर जरूर है। इसके साथ ही यदि किसी वैद्य या डॉक्टर से मिल कर कोई औषधि ली जाय, तब भी अच्छा है। जो डॉक्टरी दवाओं के विषय मे कुछ जानते हैं, वे रात्रि को सोने के पूर्व 'पोटेशियम ब्रोमाइड' १० ग्रेन खाकर सोएँ, तो उन्हे लाभ होगा। इसका सेवन अधिक दिनों तक नही करना चाहिए। बहुधा स्वप्नदोष पीठ के बल नरम बिछौने पर सोने से हुआ करता है। इसलिए इस रोग के रोगी को जमीन या काठ की चौकी पर सोना चाहिए और कमर मे रीढ़ के पास एक कड़ी गेंद बाँध लेनी चाहिए, ताकि पीठ के बल सोने से बच सकें। उन्हें गरम मसाला आदि उत्तेजक चीजों से परहेज रखना चाहिए। सोने से पहले हाथ-पैर, कान और सिर का पिछला भाग पानी से धो लेना विशेष लाभदायक है। दोनों गुप्तेन्द्रियों के मध्य के स्थान पर प्रतिदिन पन्द्रह-बीस मिनिट तक ठण्डे पानी का छींटा मारने से विशेष उपकार होता है।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक दुःखिनी बहिन लिखती हैं :—

मैं... ....के एक प्रतिष्ठित रईस एवं ज़मींदार की पुत्री हूँ और मैट्रिक तक पढ़ी हुई हूँ। माता-पिता के देहान्त के बाद मेरे भाई ने एक सज्जन से मेरा अन्तर्जातीय विवाह करा दिया है। मेरे पति बड़े ही क्रोधी, निष्ठुर-हृदय तथा मूर्ख हैं। शिकार का बड़ा शौक रखते हैं, मांसाहारी तथा नशेबाज़ भी हैं। उनको बोलने की भी तमीज़ नहीं है, हिन्दी तो समझते भी नहीं। इङ्गलिश बोलते हैं। वे वन-विभाग के कर्मचारी अर्थात् रेञ्ज फ़ॉरेस्ट ऑफ़ीसर हैं। मेरे साथ इनका व्यवहार बड़ा ही बुरा होता है। कई मर्तबे वे मुझे जान से मार डालने को तैयार हो गए। किन्तु नौकर तथा सिपाहियों ने मुझे बचा लिया। ख़ैर, इन बातों को जाने दीजिए। सारांश यह कि वे हमारे Choice (रुचि) के बिलकुल उल्टे हैं। सङ्गीत-साहित्य तो जानते भी नहीं कि क्या वस्तु है। इस समय मैं दो बच्चों की माँ हूँ। मेरी अवस्था १६ साल की है। मेरे भाई की स्थिति ख़राब होने के कारण पतिदेव मुझे हमेशा खरी-खोटी सुनाया करते हैं। उनके बुरे व्यसन दिन-प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। तीन-तीन दिन ग़ायब रहते हैं, मैं घर में बीमार बच्चों को लेकर जङ्गल में अकेली पड़ी रहती हूँ। यदि मैं कुछ बोलती हूँ, तो मुझे मारते, गाली देते, और कहते हैं कि तुम्हें सौ बार ग़रज़ हो रहो, नहीं तो चली जाओ, हम ऐसे ही रहेंगे। तुम और बच्चे सब मरो, हमें क्या? भाई की ग़रीबी के कारण मायके जाने का भी साहस नहीं होता। मेरे पास रुपया-पैसा भी नहीं कि चली जाऊँ। स्त्रियों की आर्थिक कठिनाई बड़ी ही दुःखदायिनी है। आज यदि मेरे पास धन होता तो मैं एक ऐसे नीच व्यक्ति के साथ नारकीय जीवन न व्यतीत करती। कृपया मुझे उचित मार्ग बताइए। मुझे अन्य स्त्रियों की भाँति वैवाहिक जीवन पसन्द नहीं है। मैं वर्तमान हिन्दू-समाज की रूढ़ियों तथा वर्तमान 'हिन्दू-लॉ' को किसी स्थिति में मानने को तैयार नहीं हूँ। मै अकेली विद्रोह कर सकती हूँ तथा उसकी परीक्षा से ज़रा भी विचलित न होऊँगी। हिन्दू-समाज हम स्त्रियों पर जैसा ज़ुल्म-अत्याचार कर रहा है, वैसा ही ईश्वर की दया से फल पा रहा है। जिसने स्त्रियों की मर्यादा कम की है, वह कभी भी सुखी न हुआ है, न होगा। मैं अधिक क्या लिखूँ। मैं अपने जीवन से तङ्ग आ गई हूँ। जी करता है, आत्म-हत्या कर लूँ, पर इन मासूम बच्चों पर दया आती है। जैसा कि 'चकबस्त' ने कहा है—"इनकी

तालीम का मकतब है तुम्हारा जानूँ, पास मर्दों के नहीं इनका ठिकाना हर्गिज़ ।"

आर्थिक कठिनाई के ही कारण मैं इस प्रकार कष्ट सह रही हूँ, अन्यथा मैं एक पल भी न रहती । मेरे बच्चे घर में बीमार पड़े रहते हैं । वे विशेषकर तो बाहर ही रहते है, पर यदि दैवात् कभी घर रहे तब भी नहीं पूछते कि बच्चों की तबीयत कैसी है । पति के इस व्यवहार से मैं अत्यन्त खिन्न तथा दु खी रहती हूँ । मुझसे तो बोलते तक नहीं । घर आते ही सो जाते हैं या पत्र या नॉविल पढ़ते रहते हैं । आप स्वयं विचार करिए, मैं अकेली दो छोटे-छोटे बीमार बच्चों को लिए चौबीसों घण्टे कैसे व्यतीत कर सकती हूँ ? मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ । यदि मै जाने को कहती हूँ तो कहते हैं बच्चों को छोड़ जाओ । कृपया इस पत्र को 'चाँद' में छाप दीजिए, ताकि मेरे हितचिन्तक भाई को मालूम हो जाय कि अनमेल विवाह तथा अन्त-र्जातीय विवाह का क्या परिणाम होता है । तथा विवाह में व्यर्थ पैसा नष्ट करने के बदले यदि उस रुपए को लड़की के नाम कर दिया जाय, तो कितना अच्छा हो । कृपया 'चाँद' में मेरा नाम-पता न दीजिएगा ।

❀ ❀ ❀

एक दूसरी बहिन ने लिखा है :—

जब मेरा विवाह हुआ था, तब मेरी उमर तेरह-चौदह वर्ष की थी । उसके बाद से आज पाँच वर्ष हो गए, मै बड़े कष्ट से अपना जीवन व्यतीत कर रही हूँ । विवाह के बाद जब मैं अपनी ससुराल आई तभी से मेरे पति न जाने क्यों मुझसे असन्तुष्ट रहने लगे और बात-बात पर मुझसे नाराज़ होने लगे । इस तरह एक साल भी नहीं गुज़रा था कि आप विलायत चले गए और दो वर्ष तक मेरी कोई खोज-ख़बर न ली । उस समय मेरे पेट में एक बच्चा भी था । उसके पैदा होने पर उसी का मुँह देख कर मैं अपने जीवन के दिन बिताने लगी । पिता का सहारा था, पर मेरी बदक़िस्मती से वे भी चल बसे ! मैं एकदम निराश्रया हो गई । इस प्रकार दो वर्ष बीतने के बाद मेरे पति ने मुझे दर्शन देने की कृपा की । साल भर तक मेरे दिन बड़े आनन्द से कटे । परन्तु इसके बाद फिर वही पुरानी बातें आरम्भ हो गई । बात-बात पर झगड़ा होने लगा । अब तो यह हालत है कि मेरी ज़रा भी परवा नहीं करते । दिन-रात बुरे दोस्तों की सङ्गत मे रहते हैं । मै कुछ बोलती हूँ तो साफ़ कह देते हैं कि जहाँ तेरा जी चाहे चली जा । अब आप कृपा करके बताइए कि मैं क्या करूँ । मै किस उपाय से उन्हें उनके बुरे दोस्तों से अलग करूँ और किस तरह उन्हें अपनी ओर आकर्षित करूँ ?

[ऐसे हीन-हृदय पुरुषों की हिन्दू-समाज में कमी नहीं है, जो धर्मपत्नियों पर अकारण नाना प्रकार के अत्याचार किया करते हैं । हमारी समझ में जब तक स्त्रियाँ पति की सम्पत्ति की अधि-कारिणी न मान ली जाएँगी और जब तक उन्हें तलाक देने का अधिकार न प्राप्त होगा, तब तक ऐसे अत्याचारों का प्रतिकार भी असम्भव है । इसलिए अब समय आ गया है कि स्त्रियाँ अपने पैरों पर खड़ी हों और वैध आन्दोलन द्वारा अपने अधिकारो को प्राप्त करें ।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

मेरी काली कहानी

एक समाज के सताए युवक ने लिखा है :—

महाशय,

अपने प्रेम की छोटी दुनिया को अन्धे समाज की कुप्रथाओं से बड़ी ही निर्दयतापूर्वक मिट्टी में मिला दी गई देख, आज आपकी याद आई है । उन पुरानी रूढ़ियों की जड़ में आहों के अङ्गारे बरसाने के लिए कृपया इसे अपने पत्र में थोड़ी सी जगह प्रदान करेंगे ।

मैं भूमिहार ब्राह्मण-कुल का एक अभागा युवक हूँ । उस दिन मेरे भाई ने पुनः प्रणय-सूत्र में बँध जाने की चर्चा चलाई थी । सुन कर अतीत-व्यथाओं की रेखा एकाएक आँखों के सामने नाच उठी । परन्तु भविष्य की भीषणता अखरी । कह दिया कि देख-भाल कर स्वीकार है ।

आख़िर घर से एक पत्र आया—सबने एक स्वर से अमुक महाशय को ज़बान दे दी है । लड़की भी पढ़ी है, बड़ी है, अच्छी है ।

मेरा निश्चय एक दूसरी ओर हो चुका था । मैंने निवेदन किया—वचन दे दिया है तो इससे क्या ?

वैवाहिक सूत्र में बँधना तो मुझे है। मैंने पूर्व ही आप लोगों को बता दिया है कि बिना मेरी सम्मति के किसी को ज़बान न दें।

इसके बाद दूसरा पत्र मिला—तुम्हारे लिखने के पूर्व ही ज़बान दे दी गई थी। बात पक्की हो चुकी है। जब एक दिन शादी करनी ही है तो हम लोगों को इस तरह बेइज़्ज़त क्यों करते हो? यदि नहीं मानोगे तो नन्हें भतीजे (८ वर्ष की आयु का) को ज़बान की रक्षा के लिए देना ही पड़ेगा।

पत्र पढ़ कर ख़ूब रोया और काँपती हुई लेखनी से पत्रोत्तर दिया—भैया! आपके इस पत्र का उत्तर हमारे सूखे दो आँसू के सिवा और क्या हो सकता है? एक नन्हें बच्चे को फाँसी पर लटकाने के बदले तो यही उत्तम है कि मैं ख़ुद ही फाँसी को गले लगा लूँ।

मेरे मित्र का ठीक इसी समय इस आशय का पत्र मिला कि जहाँ तुमने निश्चय किया है, वहाँ मैं गया था। ग़रीब घर की लड़की है, सुन्दर है, अच्छी है, पढ़ने में तेज़ है। उसके संरक्षक निठल्ले मूर्ख हैं। उसे किसी अपढ़, गँवार या अयोग्य के हाथों में सौंप देंगे। इसलिए अगर सम्बन्ध तुम्हारे साथ हो तो अच्छा है।

अब मुझे व्याकुलता ने बेचैन कर दिया था। दौड़ा गया, भैया के उन अमुक महाशय के यहाँ। उन्हें मैं भी पहचानता था। साफ़ शब्दों में कहा—महाशय, आपके यहाँ सम्बन्ध करने की मेरी इच्छा न कभी थी और न है। आप कोई दूसरा पात्र क्यों नहीं खोज लेते?

उन्होंने कहा—अब ऐसा कैसे हो सकता है? सब बातचीत पक्की हो गई है।

मैंने कहा—जिसके साथ मेरा जीवन-सूत्र ज़बरदस्ती बाँधा जा रहा है, उसे मैं एक बार देख नहीं सकता?

उत्तर मिला—कदापि नहीं।

मैंने प्रश्न किया—क्या इसमें कोई क्षति है?

वे कहने लगे—समाज के नियमानुसार भारी क्षति है। कहीं आप देख कर अस्वीकार कर दें तो हम लोग बखेड़े में पड़ेंगे। लोग अनायास ही शङ्का करने लगेंगे कि अमुक स्थान की बातचीत क्यों बिगड़ी?

मैंने कहा—जिस डर से आप आज डरते हैं, वही बात यदि विवाह के बाद हो तब?

उन्होंने कहा—प्रारब्ध का क्या इलाज है?

हाय रे अभागा समाज! जिसके साथ अपना जीवन बिताने जा रहा हूँ, उसे एक नज़र देख लेने का भी अधिकार नहीं!

अस्तु, घर आया। लोगों को अटल पाया। हार कर उस ग़रीब की बेटी को, जिससे मैंने अपना सम्बन्ध कर लेने का निश्चय किया था, इनकारी का पत्र लिख देना पड़ा!

मुझे मालूम नहीं कि वह पत्र उन्हें मिला या नहीं, पर यह पता लगा कि उस बेचारी की शादी भी एक 'कालिदास' से ही हुई है, अक्षर-ज्ञान से अभी कोसों दूर है। यह भी सुनने में आया था कि उस बेचारी ने भी 'प्रताप' में एक ऐसी ही चिट्ठी छपवा कर समाज को चेतावनी दी है।

मुझे जो सूर्पणखा जी मिली हैं, वह भी इस सम्बन्ध से ख़ुशी नहीं हैं। क्योंकि पड़ोस की स्त्रियों ने उनके रूप-रङ्ग की बड़ी कड़ी टीका की है। बेचारी अपने माता-पिता को कोस रही हैं।

[वास्तव में बिना देखे-सुने विवाह की यह कुप्रथा बड़ी ही भद्दी है। इससे वर-वधू आजन्म सन्तप्त और दुखी रहा करते हैं। मालूम नहीं, समाज की कब आँखें खुलेंगी और कब वह अपनी त्रुटियों को दूर करेगा!

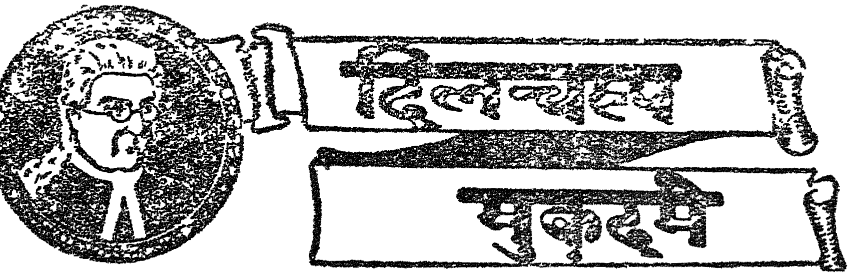
—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

नासूर की दवा

मेरठ से 'चाँद' की ग्राहिका श्रीमती शान्तिलता लिखती हैं:—

गत जुलाई मास के 'चाँद' द्वारा किसी बहिन ने नासूर की दवा दरियाफ़्त की है। उन्हें चाहिए कि सिलवर नाईट्रेट १ ड्राम (४ माशा) और स्प्रिट ईथरिस नाईट्रोसी १ औन्स (२॥ तोला) लेकर एक साफ़ शीशी में मिला लें और उसे एक पतली फुरैरी द्वारा प्रति दिन नासूर में अच्छी तरह लगा दिया करे। इससे पुराना से पुराना नासूर भी अच्छा हो जाएगा।



विधवा-विवाह और उत्तराधिकार

हाल में इलाहाबाद हाईकोर्ट में फ़ुलबेञ्च के सामने एक मामला पेश हुआ था, जिसमें इस बात का निर्णय करना था कि किसी हिन्दू-विधवा का क़ानून या रस्म के अनुसार पुनर्विवाह कर लेने के बाद अपने पूर्व पति की सम्पत्ति पर अधिकार रहता है या नहीं? अभियोग का सार यह है कि कौशल्या नाम की स्त्री ने, जिसके पति लचमीनारायण ऊमर का देहान्त हो चुका है और जिसने दूसरा विवाह कर लिया है, जौनपुर के एडीशनल सबॉर्डीनेट जज के इजलास मे अर्ज़ी दी कि उसे अपने बाबा की सम्पत्ति का, जिसका कोई भी वारिस नहीं है, उत्तराधिकार दिलाया जाय। उसके ससुर के दलालों और पति के चाचाओं ने उसके दावे का विरोध किया। उनका कहना था कि ऊमर बनियों की जाति के नियमानुसार अगर कोई विधवा पुनर्विवाह कर लेती है तो पहले पति की जायदाद पर उसका किसी तरह का अधिकार नहीं रहता। इसलिए कौशल्या अब पहले पति की सम्पत्ति की किसी तरह अधिकारिणी नहीं हो सकती। इस विषय में जज ने फ़ैसला किया कि किसी भी रस्म या क़ानून के अनुसार लचमीनारायण की सम्पत्ति पर से कौशल्या का अधिकार तब तक ख़ारिज नहीं किया जा सकता, जब तक कि वह ज़िन्दा है। उसके पुनर्विवाह कर लेने से इस अधिकार में बाधा नहीं पड़ सकती। जज के इस फ़ैसले के विरुद्ध प्रतिवादियों ने हाईकोर्ट में अपील की। पर वहाँ से भी एडीशनल जज का फ़ैसला बहाल रहा। फ़ुलबेञ्च के जजों ने निर्णय किया है कि जिन जातियों में पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित है, उनकी विधवाओं का हक़ पुनर्विवाह के बाद भी अपने पूर्व पति की जायदाद पर क़ायम रहता है।

मुसलमान-बालिकाओं का अपहरण

कलकत्ते के पास एक गाँव में हसन मियाँ नामक कुली-सरदार रहता है। पास ही दूसरे गाँव मे शेख़ रसूल का घर है। रसूल प्रायः हसन मियाँ के घर आया करता था। गत २१ फ़रवरी को रात के समय उसी गाँव के क़ुर्बान मियाँ ने देखा कि रसूल तथा एक और व्यक्ति हसन मियाँ की पुत्री नुरुन्निसा और भतीजी ख़ैरुन्निसा के साथ एक टैक्सी के पास खड़े हैं। जब तक क़ुर्बान टैक्सी के पास पहुँचे तब तक वह चल दी। इस पर उसने शोर मचाया और हसन मियाँ को सारा क़िस्सा बतलाया। लड़कियों की बहुत खोज की गई, पर कुछ पता न चला। छः दिन बाद ख़बर मिली कि लड़कियाँ रसूल के घर में हैं। इस पर वारण्ट निकलवा कर उसके घर की तलाशी ली गई और बालिकाओं का उद्धार किया गया। उन्होंने बतलाया कि घटना के दिन रसूल ने उनसे कहा था कि वह उनको काकिनाड़ा में बायस्कोप दिखाने ले जायगा। पहले तो उन्होंने इनकार किया, पर बाद में वे टैक्सी में रवाना हो गईं। जब उन्होंने देखा कि टैक्सी किसी दूसरी ही तरफ़ जा रही है, तो उन्होंने चिल्लाना चाहा, पर उनको छुरी दिखला कर चुप कर दिया गया। उनको एक मकान में पाँच दिन तक बन्द रक्खा गया। वहाँ पर उनके साथ अत्याचार करने की चेष्टा की गई, पर उन्होंने उसमें बाधा डाली। जब मकान के मालिक को इन बातों का पता चला तो उसने रसूल और उसके साथी को अपने यहाँ से चले जाने को कहा, इस पर रसूल उनको अपने घर ले आया और वहाँ से उनको छुड़ाया गया। लड़कियों की उम्र क्रमशः १४ और १९ वर्ष की है। दोनों अभियुक्तों पर मुक़दमा चल रहा है।

विवाह का लोभ देकर ठगा

कलकत्ता के प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट की इजलास में रामनाथ नाम के मारवाड़ी ने गङ्गाराम, गोविन्दराम, शिवदयाल और बालाबख़्श नाम के चार व्यक्तियों के विरुद्ध ठगने का मुक़दमा दायर किया है। फ़रियादी का कहना है कि गङ्गाराम और गोविन्दराम उसके पास विवाह कराने वाले दलाल की हैसियत से आए। उन्होंने कहा कि शिवदयाल के दस वर्ष की एक कन्या है। अगर रामनाथ शिवदयाल को १२००) और उन दोनों को दलाली का ५००) दे तो उस लड़की का विवाह उसके छोटे भाई के साथ हो सकता है। फ़रियादी इस पर राज़ी हो गया। इसके पश्चात् उसने शिवदयाल और उसके पुत्र बालाबख़्श को १०६६) तथा दलालों को १२७) दिए। इसके सिवाय १७५) के कपड़े और मिठाइयाँ आदि कन्या के घर उपहार-स्वरूप भेजे गए। पर जिस दिन विवाह होने की बात थी, उसके पहले ही शिवदयाल घर छोड़ कर भाग गया और जब रामनाथ के आदमी वहाँ पहुँचे, तो उन्होंने घर को ख़ाली पाया। जाँच करने से पता चला कि गङ्गाराम आदि ने इसी प्रकार छुगनलाल, सूरजलाल आदि कई अन्य व्यक्तियों को भी ठगा है। मुक़दमा चल रहा है।

❀

विवाह का रोज़गार

पाँचू उर्फ़ सुशीलकुमार बनर्जी नामक व्यक्ति ने विवाह का धोखा देकर कलकत्ते के कितने ही गृहस्थों को बुरी तरह ठगा, और अन्त में भण्डाफोड़ हो जाने पर वह गिरफ़्तार किया गया। प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट के सामने अभियोग चलने पर मालूम हुआ कि उसने अपने को कलकत्ता यूनीवर्सिटी का ग्रेजुएट और पटना कॉलेज के एक रायबहादुर प्रोफ़ेसर का लड़का बतला कर कितने ही सम्माननीय कुटुम्बों की लड़कियों से विवाह किया। इसमें उसको काफ़ी दहेज़ मिला। विवाह के पश्चात् वह ज़ेवर छीन कर लड़कियों को मार कर निकाल देता था। इस कार्य में उसकी माँ और दो रिश्तेदार उसके सहायक थे। प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट ने कुल अभियुक्तों को दोषी पाकर भिन्न-भिन्न मुद्दत की सख़्त सज़ा का हुक्म दिया। सज़ाओं के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील की गई है।

अन्ध-विश्वास का कुपरिणाम

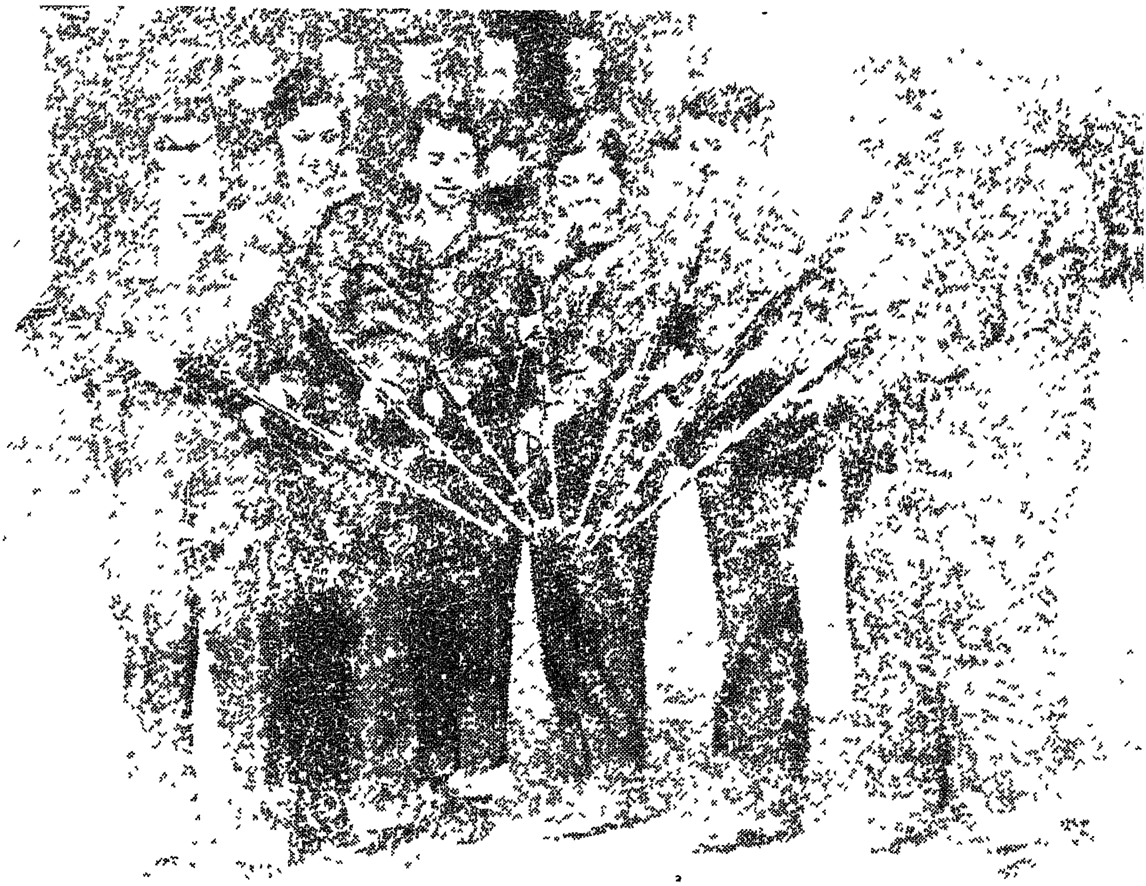
आसाम वैली का समाचार है कि वहाँ के किसी गाँव में लखन साअरो नामक व्यक्ति ज्वर से पीड़ित हुआ और उसकी बोलने की शक्ति जाती रही। लखन को सन्देह हुआ कि जम्पारा साअरो ने किसी तरह का जादू-टोना करके गूँगा बना दिया है। गत १७ दिसम्बर को वह गोरो साअरो और जिलका नामक व्यक्तियों के साथ जम्पारा के घर पहुँचा। उसके साथियों ने कहा कि 'लखन की बोलने की ताक़त लौटा दो, अन्यथा तुम्हारे लिए बड़ा बुरा फल मिलेगा।' जब जम्पारा ने इस बात से अपना सम्बन्ध होने से इनकार किया, तो वे उसे लाठी से मारने लगे और अन्त में छुरे से मार कर उसकी लाश कुँए में फेंक दी गई। कुछ लोगों ने, जो इस घटना को देख रहे थे, इसकी रिपोर्ट थाने में की और अभियुक्तों का चालान कर दिया गया। डिस्ट्रिक्ट जज की इजलास में मुक़दमा चलने पर जज और जूरी में मतभेद हो गया और मुक़दमा हाईकोर्ट भेज दिया गया। अभियुक्तों ने अपना अपराध स्वीकार किया और कहा कि चूँकि जम्पारा ने लखन पर जादू किया था, इसलिए हमने ऐसा काम किया। जजों ने तीनों अभियुक्तों को हत्या का अपराधी क़रार देकर आजन्म काले-पानी की सज़ा दी।

❀

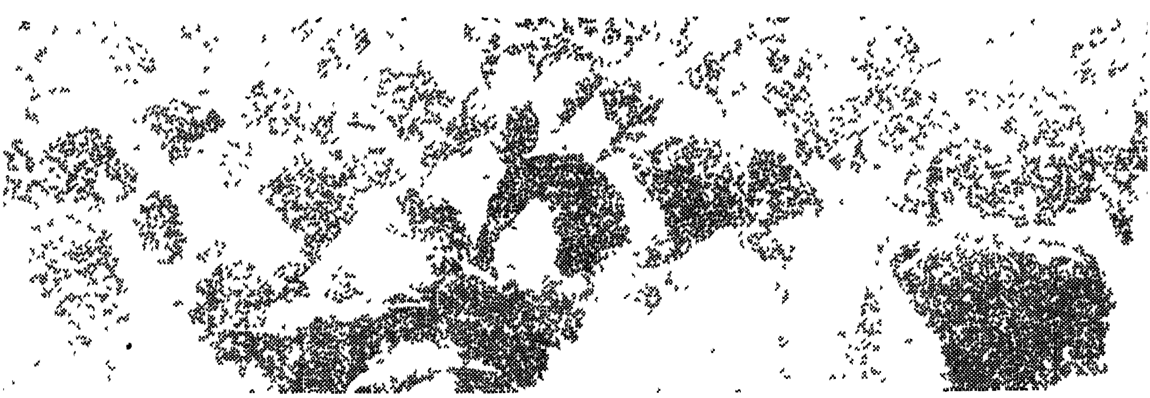
पत्नी के चुम्बन का मूल्य

बफ़ैलो (इङ्गलैण्ड) के सिटी कोर्ट में एक इटैलियन और उसकी पत्नी का मज़ेदार मामला पेश हुआ है। वह अपनी पत्नी के पास हफ़्ते में केवल एक बार जाता था और बच्चे के पालन-पोषण के लिए २ शिलिङ्ग तथा पत्नी को चूमने के लिए ४ शिलिङ्ग दे आता था। एक बार उसने चुम्बन के लिए ८ शिलिङ्ग दिया। इसके बाद जब पत्नी ने मूल्य बढ़ा कर १ पौण्ड कर दिया तो उसने आपत्ति की। इस पर दोनों में झगड़ा हुआ, जिसके फलस्वरूप पत्नी ने अदालत में मारपीट की नालिश की। जज ने बच्चे की परवरिश का अलाउन्स बढ़ा कर १ पौण्ड प्रति सप्ताह कर दिया, पर चुम्बन के मूल्य के विषय में बिलकुल चुप्पी साध ली।

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?



फ़िलेडेल्फ़िया (अमेरिका) की 'गर्ल्स राइफ़िल टीम' की कुछ सदस्याएँ, जो बन्दूक़ चलाने की कला में अत्यन्त प्रवीण हैं।



चीन की नवयुवतियाँ, जो जापानी माल के बहिष्कार के लिए घोर आन्दोलन कर रही हैं। प्रस्तुत चित्र मे पाठक उन्हें बहिष्कार सम्बन्धी एक सभा में भाग लेते हुए देखेंगे।

आधुनिक स्त्रियाँ क्या नहीं कर सकतीं ?



मिस निना जारविस, जो लन्दन के व्हाइट हॉल थिएटर में वेटरेस (महिला-अर्दली अथवा बाँदी) का कार्य करते हुए भी नाटक-लेखिका बनने का घोर प्रयत्न कर रही हैं ।



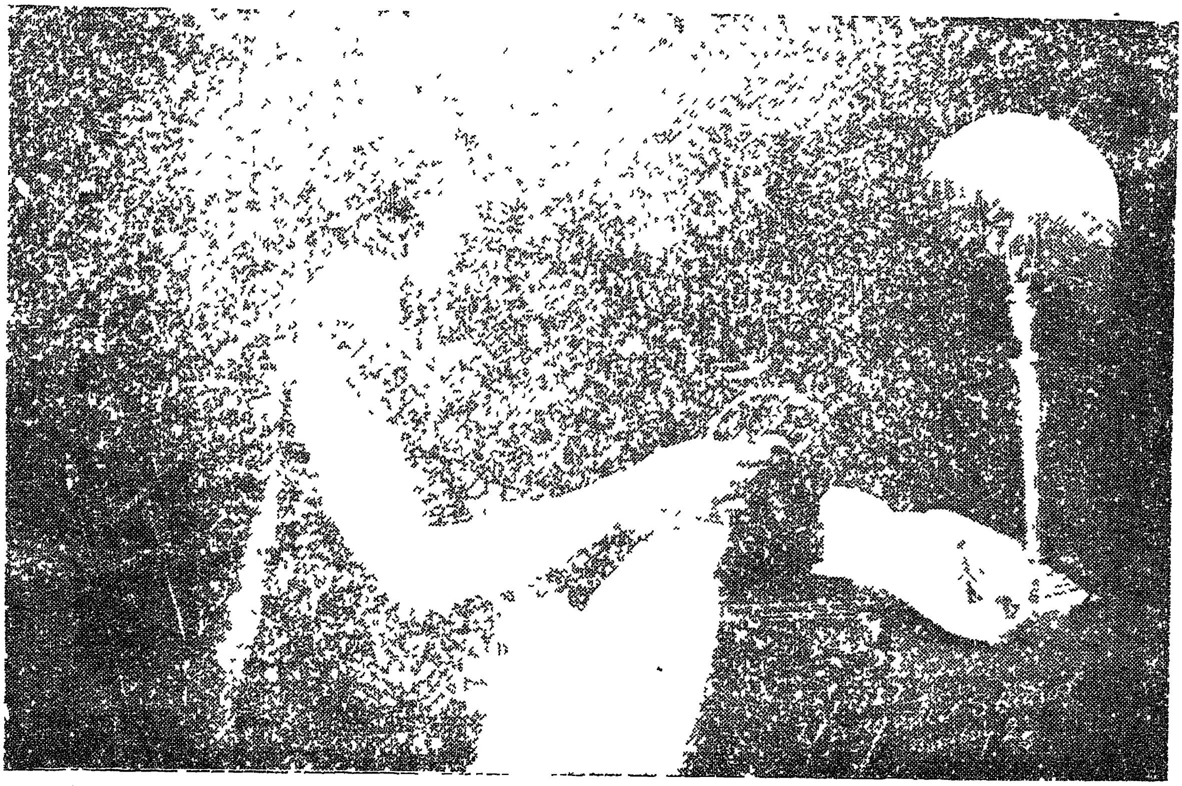
कुमारी सुरभि सिन्हा, बी० ए०, बी० एल०—आप बसीन (रङ्गून) के डॉ० आर० एन० सिन्हा ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट की पुत्री हैं। आप रङ्गून की पहली बङ्ग-महिला हैं, जिन्होंने वकालत पास किया है। आप बसीन की अदालत मे वकालत आरम्भ करने वाली है।



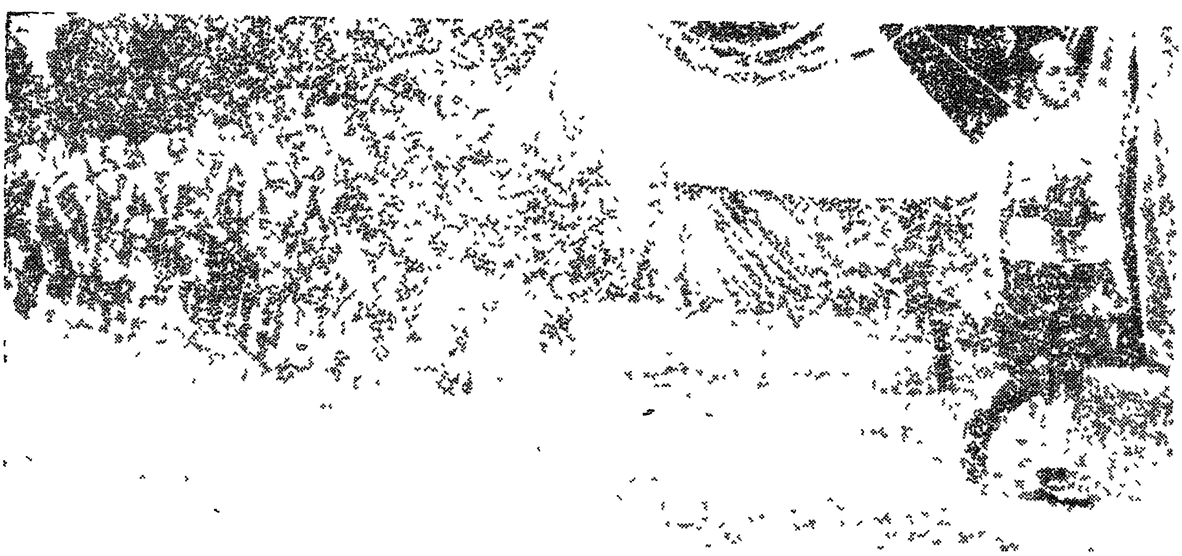
श्रीमती कमलादेवी गुप्ता। आप जबलपुर की महिला-सभा की दूसरी डिक्टेटर हैं। जबलपुर ज़िले की १८वीं डिक्टेटर की हैसियत से एक सभा करने के कारण आपको छः मास का कठोर कारावास का दण्ड मिला है।



नारी-स्वातन्त्र्य की मधुर कल्पना मे लीन—बम्बई की एक मज़दूर-बालिका



बम्बई की एक सुगृहिणी, जो सिलाई तथा सजावट आदि का कुल कार्य घर में ही करने के पक्ष मे है।



हाल ही मे कुछ ऐसे आविष्कार हुए हैं, जिनसे लड़ाई के मैदान में प्रयोग होने वाले भयङ्कर से भयङ्कर ज़हरीले गैस पर विजय पाई गई है। इन आविष्कारों में एक 'गैस-मास्क' (एक विचित्र प्रकार के चेहरे) भी है, जिसके लगाने से नाक, कान अथवा मुँह में ज़हरीले गैस का असर नहीं होता। इस चित्र में पाठक पोलैण्ड की सैनिकाओं



[गत १६ जुलाई १६३२ को गोरखपुर में एक अखिल भारतीय मशायरा हुआ था, जिसमें उर्दू के क़रीब १२० प्रतिष्ठित शायर पधारे थे। 'चाँद' की 'केसर की क्यारी' के सम्पादक कविवर 'बिस्मिल' भी बुलाए गए थे। आपकी रचना ने लोगों को तड़पा दिया था। उक्त मशायरे की कई चुनी हुई कविताएँ नीचे दी जाती हैं। शेष कविताएँ पाठकों को आगामी अङ्क में मिलेगी।

—स० 'चाँद']

किसको चाहें किस तरह हम, किसको देखें किस तरह ?
एक आलम है नज़र में, एक दुनिया दिल में है !
आप परदे में छुपे बैठे हैं किस दिन के लिए ?
रूबरू अब आइए, दुनिया बड़ी मुश्किल में है !!

रुबाई

दावा नहीं मुझको कि सखुनवर हूँ मैं,
बेहतर नहीं है क़ौज़ कि बेहतर हूँ मैं।
लेकिन शरफ़े[1] "नूह" मेरे नाम मे है,
माने कोई इसको तो पयम्बर[2] हूँ मैं।

क़िता

खयाले खातिरे अहबाब से मसरूर[3] आ पहुँचे,
मुबारक थी कशिश ऐसी, कि इतनी दूर आ पहुँचे।
जनाबे "नूह" को देखो फिर इनके जोश को देखो,
लिए भरपूर इक तूफ़ान गोरखपुर आ पहुँचे।

—'नूह" नारवी

क़िता

कश्तिए शेरोसखुन को लाए गोरखपुर मे,
ग़ैर-मुम्किन है कि चक्कर खाए गोरखपुर मे।
कह रहा है हर तरफ़ उठ-उठ के तूफ़ाने-कलाम,
"नूह" के हमराह[4] "बिस्मिल" आए गोरखपुर मे।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

१—बुज़ुर्गी, २—पैग़म्बर, ३—ख़ुश, ४—साथ।

इस तरह या, उस तरह, दम हर तरह मुश्किल में है,
तीर मे है दिल मेरा, या तीर मेरे दिल मे है !
खञ्जरे खूँख़्वार चल कर अब नई मुश्किल मे है,
कुछ तुम्हारे हाथ में है, कुछ हमारे दिल मे है।
खारे-सहरा[1] खुद कफ़े-पा[2] से अलग हो जाएँगे,
आप वह काँटा निकालें, जो हमारे दिल मे है !
कुछ अदब[3] का इकतिज़ा[4] भी, कुछ तुम्हारा खौफ़ भी,
ला नहीं सकते ज़बाँ तक, हम उसे जो दिल में है !
किसको चाहे किस तरह हम, किसको देखे किस तरह,
एक आलम है नज़र में, एक दुनिया दिल में है।
घर से बाहर का निकलना बन्द हो सकता नहीं,
दिल मे रख लें हम किसी को, यह इरादा दिल मे है।
रफ़्ता-रफ़्ता मिट गए वह सब हमारे ज़ौको[5] शौक़,
इन्तिहा[6] यह है कि अब हसरत की हसरत दिल में है।
जिस तरफ़ उट्ठी निगाहें, उस तरफ़ मन्ज़र[7] नया,
एक तुम्हारी शक्ल सौ शक्लो से मेरे दिल में है।

१—जङ्गल के काँटे, २—तलवा, ३—सभ्यता, ४—तक़ाज़ा, ५—उमङ्ग, ६—अन्त, ७—दृश्य।

अह्ला-अह्ला दास्ताने आरज़ू[1] का सिलसिला,
कह गए सब कुछ मगर फिर भी बहुत कुछ दिल में है।
पुरसिशे[2] दर्दे मुहब्बत से मुहब्बत खुल गई,
मेरे दिल ही में नहीं यह आपके भी दिल में है।
क्यों न तूफ़ाने-सख़ुन[3] से शाद हों अहले-सख़ुन,[4]
एक नया पहलू जनाबे "नूह" के हर दिल में है।
—"नूह" नारवी

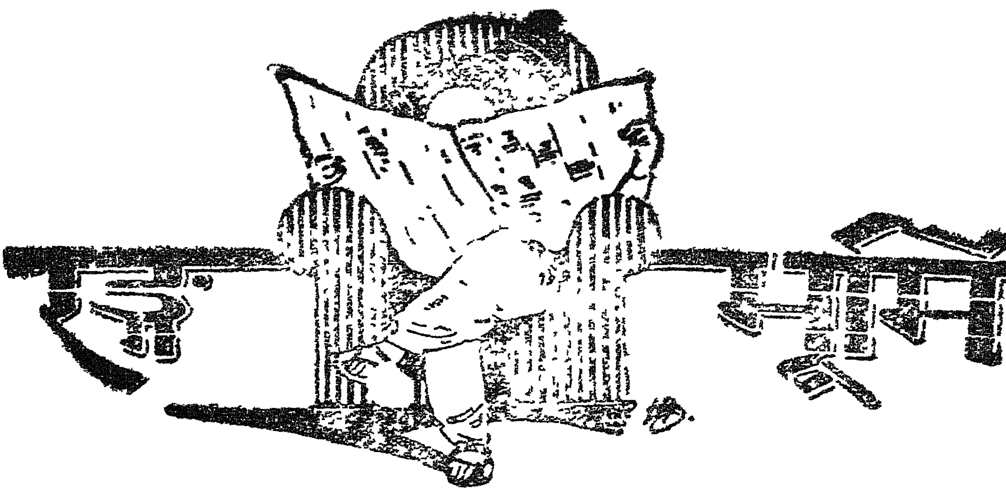
क्या ख़बर निकले,न निकले,आरज़ू जो दिल में है,
हाँ तमन्ना की झलक सी ख़ञ्जरे कातिल में है।
उससे अशवा[5] है जो पहली चर्ख़[6] की मञ्ज़िल में है,
जाँ-नवाज़ो[7] दिल-गुदाज़[8] एक शै कफ़े-कातिल[9] में है।
पूछते क्या हो तमन्नाए दिले पुरआरज़ू,
जो उदू[10] के दिल से बाहर है, वह मेरे दिल में है।
कुछ लिया होता सबक दिल-सोज़ियों[11] का इससे भी,
अश्क[12] रेज़ाँ शम्आ[13] महफ़िल आपकी महफ़िल में है।
आज वह बेड़ा तेरा, कश्ती वह डूबी इश्क़ की,
मुन्दरिज[14] एक-एक ख़बर हर मौजए[15] साहिल[16] में है।
घर ख़ुदा का है, महल[17] है हिर्स[18] का, एवाने[19]-ग़म,
इतनी वसअत,इतनी गुञ्जाइश[20] दो-हरफ़ी दिल में है।
शम्आ की लौ ने दिखाया मञ्ज़रे शादियों[21] ग़म,
यानी एक ख़ामोश महफ़िल,बोलती महफ़िल में है।
तीर की दूँ दाद या दिल को सराहूँ तीरज़न[22],
तीर में है दिल मेरा, या तीर तेरा दिल में है।

१—अभिलाषा की कहानी, २—पूछ-ताछ, ३—कविता की बाढ़, ४—कविगण, ५—छेड़छाड़, ६—आकाश, ७—जी बहलाने वाला, ८—दिल पिघलाने वाला, ९—हाथ, १०—दुश्मन, ११—दिल जलाना, १२—आँसू, १३—दीपक, १४—लिखा हुआ, १५—लहरें, १६—किनारा, १७—मौका, १८—लालच, १९—महल, २०—समाई, २१—ख़ुशी, २२—तीर चलाने वाला।

शैरो शायर का परख लेता है सुनते ही कलाम[23],
शायरी की और कुदरत[24] कौन सी "सायल" में है।
—"सायल" देहलवी

जीने वाले किसलिए जीने की हसरत दिल में है,
मौत के हाथों अजल[25] से ज़िन्दगी मुश्किल में है।
गो समझते हैं, मेरा अरमान सब के दिल में है,
उनको इससे क्या तअल्लुक कौन किस मुश्किल में है।
इस तरफ़ भी हो निगाहे लुत्फ़ ऐ आलम-नवाज़[26],
एक जहाने आरज़ू आबाद मेरे दिल में है।
आप परदे में छुपे बैठे हैं किस दिन के लिए,
रूबरू अब आइए दुनिया बड़ी मुश्किल में है।
चल रहे हैं चलने वाले अपनी-अपनी राह पर,
कौन यह किसको बताए कौन किस मञ्ज़िल में है।
एक तरफ़ ज़ौके परस्तिश[27],एक तरफ़ शौक़े-सजूद[28]
साथ काबे के सनमख़ाना[29] हमारे दिल में है।
यह अँधेरी रात, यह बहरे[30] ग़मे उल्फ़त का जोश,
ख़ैर से कश्ती हमारी दामने साहिल में है।
ग़ैर के आगे न पूछो इसमें है एक ख़ास राज़[31],
फिर बता देंगे तुम्हें, जो कुछ हमारे दिल में है।
जब बगूला दश्त[32] में उठ कर ज़रा ऊँचा हुआ,
कैस[33] यह समझा कि बस लैला इसी महमिल[34] में है।
आह करता मैं तो होता और भी रुस्वाए[35] ख़ल्क़,
यह ग़नीमत है कि दिल का राज़ मेरे दिल में है।
इससे बढ़कर और क्या हो तेग़[36] कातिल का लिहाज़
वह तमन्ना भी है बिस्मिल जो दिले "बिस्मिल" में है।
—"बिस्मिल" इलाहाबादी

२३—कविता, २४—ख़ूबी, २५—आदि, २६—संसार पर कृपा करने वाले, २७—पूजा करना, २८—सिजदा करना, २९—मन्दिर, ३०—ग़म का समुद्र, ३१—भेद, ३२—जङ्गल, ३३—मजनूँ का असली नाम, ३४—परदा, ३५—संसार से बुरा, ३६—तलवार।



संसार-व्यापी अर्थ-सङ्कट

वर्तमान समय में संसार ऐसे भीषण आर्थिक सङ्कट में होकर गुज़र रहा है, जिसकी मिसाल गत कई सौ वर्षों के इतिहास में नहीं मिल सकती। वैसे तो पूँजीवादी पद्धति, जिसका इस समय संसार में बोलबाला है, स्वभाव से ही ऐसी है कि उसके फल-स्वरूप सम्पत्ति का बटवारा अत्यन्त विषम रूप धारण कर लेता है और एक के बाद दूसरी आर्थिक हलचल उत्पन्न होती रहती है। पर गत महायुद्ध में जर्मनी के परास्त हो जाने और उससे खर्बों रुपए हर्जाने के स्वरूप में लेने से परिस्थिति और भी विकट हो गई है और तमाम संसार की दौलत अमेरिका तथा फ़्रान्स के पास इकट्ठी होती जाती है। इस समय जब कि अमेरिका के पास ३ अरब ६९ करोड और फ़्रान्स के पास ३ अरब २० करोड़ का सोना है, तब इङ्गलैण्ड और जर्मनी के सुवर्ण-भण्डार का मूल्य क्रमशः ६६ करोड और १६ करोड़ ही है। इसका प्रभाव अन्य देशों की आर्थिक स्थिति पर बहुत बुरा पड़ा है और उनका व्यापार-व्यवसाय नष्ट होता जाता है। इसके फल-स्वरूप सभी देशों में करोड़ों व्यक्ति बेकार बैठे हुए हैं और उनका भरण-पोषण सरकारों को करना पड़ता है। कितने ही विचारशील व्यक्तियों का कथन है कि यदि इस दशा में सुधार न हुआ तो शीघ्र ही यूरोप का सर्वनाश हो जायगा। भारत के भूतपूर्व अर्थ-सदस्य सर बेसिल ब्लैकट ने हाल ही में एक भाषण देते हुए कहा है :—

"हम सुन रहे हैं कि केवल दस-बारह वर्ष के भीतर यूरोपियन सभ्यता का उसी प्रकार नाश हो जायगा, जैसा किसी समय रोमन सभ्यता का हुआ था। साधारण लोग इस कथन को कोरी कल्पना मानते हैं। पर मेरा विश्वास है कि निश्चय ही एक बहुत बड़ा ख़तरा हमारे सामने मौजूद है, और पिछले दस-पाँच वर्षों में हमने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में जितनी बुद्धिमत्ता प्रकट की है, अगर अब उसकी अपेक्षा अधिक बुद्धिमत्ता से काम न लिया गया तो निश्चय ही हमको विपद में पड़ना पड़ेगा। सभ्यता का यह नाश, चाहे जिस ढङ्ग से हो, पर यह निश्चित है कि वह किसी अनपेक्षित मार्ग से होगा, और सम्भवतः वह शीघ्र नहीं होगा। सर्वनाश होने से पहले हम कितनी ही बार ऊपर-नीचे जायँगे और प्रत्येक बार थोड़ा-थोड़ा नाश के निकट पहुँचते जायँगे।"

इस भयङ्कर विपद से बचने के लिए यूरोपियन राष्ट्र कितने ही समय से भिन्न-भिन्न प्रकार की योजनाएँ तैयार कर रहे हैं और कितनी कॉन्फ्रेन्सें भी हो चुकी हैं। उनका मुख्य उद्देश्य यही रहा है, कि हर्जाने के प्रश्न का निर्णय किसी प्रकार इस रीति से किया जाय कि जर्मनी की आर्थिक दशा सँभली रहे। अन्यथा एक बड़े देश मे आर्थिक गड़बड़ी फैले रहने से उसका कुप्रभाव समस्त देशों पर पड़ना अवश्यम्भावी है। पर चूँकि

जर्मनी से किसी राष्ट्र को थोड़ा हर्जाना मिलता था और किसी को अधिक, इसलिए उनमें मतैक्य न हो सका और उनकी दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही रही। पर इधर दो-डेढ़ वर्ष से, जब कि अवस्था बहुत ख़राब होने लगी और जो देश हर्जाना पाकर कुबेर के भण्डार बन रहे थे, सम्पत्ति की अधिकता के कारण उनका समतोलपना भी नष्ट होने लगा, तो विभिन्न राष्ट्रों के कर्ता-धर्ताओं की आँखें खुलीं और उन्होंने लॉसेन में सब देशों के प्रतिनिधियों की एक कॉन्फ़्रेन्स की। इस कॉन्फ़्रेन्स में जर्मनी से लिए जाने वाले हर्जाने का परिमाण बहुत कम कर देने का निश्चय किया गया है। साथ ही यह भी तय हुआ है कि जो हर्जाना वसूल होगा, वह मध्य यूरोप के दुर्दशाग्रस्त राष्ट्रों की रक्षा में व्यय किया जायगा। इस योजना के महत्व को बतलाते हुए इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री मि० रामज़े मैकडॉनल्ड ने हाउस ऑफ़ कॉमन्स में कहा था :—

"लॉसेन कॉन्फ़्रेन्स के फल से हर्जाना-सम्बन्धी उन प्रश्नों का निबटारा हो सकेगा, जो किसी न किसी रूप में उन तमाम आर्थिक सङ्कटों के कारण रहे हैं, जो महायुद्ध के पश्चात् संसार को सहन करने पड़े हैं। इन्हीं के फल से प्रत्येक देश का वार्षिक बजट असलियत को खो बैठा है और यूरोप के मध्य में एक ऐसा देश उत्पन्न हो गया है, जिसकी आर्थिक दशा समस्त संसार के लिए भयजनक है। जब तक ये हर्जाने कायम रहेंगे, तब तक उद्योग-धन्धों का पुनरुद्धार कदापि नहीं हो सकता। इन हर्जानों के विषय में जो मूर्खता की गई थी, उसके सम्बन्ध में अनेक योजनाएँ बनाई गईं और बहुत सी कॉन्फ़्रेन्सें हुईं। अब आशा है कि लॉसेन कॉन्फ़्रेन्स इस सम्बन्ध में अन्तिम होगी।"

पर अभी यह समझौता पक्का नहीं हुआ है। क्योंकि अमेरिका ने, जिसके यूरोपियन राष्ट्र क़र्ज़दार हैं और जोकि हर्जाने की रक़म का एक बड़ा अंश पाता है, इसमें भाग नहीं लिया है और न उसने यह स्वीकार किया है कि वह अपना क़र्ज़ा छोड़ देगा। अगर अमेरिका ने अपना क़र्ज़ा न छोड़ा तो यूरोपियन राष्ट्र भी जर्मनी से हर्जाना लेना बन्द नहीं कर सकते। पर इस समझौते के सिवाय और भी कितनी ही शक्तियाँ इस सम्बन्ध में कार्य कर रही हैं। जर्मनी में हिटलर के अनुयायियों और एकतन्त्र के पक्षपातियों का ज़ोर बढ़ रहा है और वे स्पष्ट कहते हैं कि अब हम एक पाई भी हर्जाना न देंगे। उधर अमेरिका में भी इस सम्बन्ध में मतभेद है। ऐसी स्थिति में नहीं कहा जा सकता कि लॉसेन-समझौता सफल होकर संसार को आर्थिक सङ्कट से मुक्त करेगा अथवा वह एक नए महायुद्ध की सृष्टि करके दूसरे मार्ग से इस समस्या का अन्त करेगा।

❀ ❀ ❀

भिखारी-गृह

हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े नगरों और तीर्थ स्थानों में भिखारियों की संख्या आजकल निरन्तर बढ़ती जाती है, और देश के विचारशील व्यक्तियों का ध्यान इस तरफ़ आकर्षित हो रहा है। इन भिखारियों के कारण आर्थिक हानि तो होती ही है, साथ ही उनका दृश्य दर्शकों के हृदय में घृणा उत्पन्न करता है और उनके कारण रोग फैलने की भी सम्भावना रहती है। क्योंकि कोढ़ी और अन्य छूत वाले रोगों में ग्रसित भिखारियों को जो पैसे दिए जाते हैं, वे उनसे जीवन-निर्वाह की सामग्री ख़रीदते हैं, और डॉक्टरी मत के अनुसार ऐसा होने से उन रोगों के कीटाणु दूसरे लोगों तक पहुँचने की आशङ्का रहती है। इन कारणों से कितने ही लोग समय-समय पर भिखारी-गृहों की स्थापना का प्रस्ताव किया करते हैं, जहाँ पर इन लोगों को सुरक्षित रूप से रक्खा जाय और जिनसे हो सके उनसे यथाशक्ति काम भी कराया जाय। सन्तोष का विषय है कि उटाकमण्ड की म्युनिसिपैलिटी ने इस सम्बन्ध में आगे कदम बढ़ाया है। उसके सदस्यों ने रेवरैण्ड थियोबाल्ड के प्रस्ताव पर निश्चय किया है कि उटाकमण्ड की सड़कों और गिर्जे के रास्ते आदि में जो भिखारी भीख माँगते रहते हैं, उनमें से उपयुक्त लोगों को इस 'गृह' में भेज दिया जाय। रेवरैण्ड थियोबाल्ड ने अपने भाषण में यह भी बतलाया था कि इस प्रकार का भिखारी-गृह कोलम्बो में वर्तमान है। वहाँ भिखारियों की परवरिश की जाती है और उनसे काम भी कराया जाता है। जो लोग काम करना नहीं चाहते,

उनको या तो जेल जाना पड़ता है अथवा कोलम्बो से निकल जाना पड़ता है। इस प्रबन्ध के कारण कोलम्बो की सड़कों पर एक भी भिखारी दिखाई नहीं पड़ता। तञ्जोर में भी भिखारी-गृह खुला हुआ है, जो सन्तोषजनक रीति से चल रहा है। उसमें हरएक भिखारी पर छः रुपए मासिक ख़र्च पड़ता है। इन सब उदाहरणों से सिद्ध होता है कि यदि अन्य नगरों में भी इस प्रकार के 'गृह' खोले जायँ तो यह कोई कठिन बात नहीं है। इसका कुछ ख़र्च तो भिखारियों के काम से निकल आएगा, शेष चन्दे द्वारा इकट्ठा हो सकता है। चूँकि लोग अब भी भिखारियों को दान देते हैं और वे अपना पेट भरते ही हैं, ऐसी दशा में 'गृह' में रहने वाले भिखारियों के लिए भी चन्दा मिल जाना असम्भव नहीं है। इन लोगों का भार अब भी समाज पर है और उस दशा में भी समाज पर रहेगा। पर तब कम से कम उनकी एक व्यवस्था रहेगी और वे जनसाधारण को न तो तङ्ग कर सकेंगे न ठग सकेंगे, जैसा कि आजकल प्रायः देखने में आता है।

❀ ❀ ❀

स्कूली रीडरें

इधर कई वर्षों से स्कूली किताबों के सम्बन्ध में बड़ी गड़बड़ी देखने में आ रही है। प्रति वर्ष नई किताबें बदली जाती हैं, और एक ही समय कई प्रेसों की किताबें मञ्ज़ूर की जाती हैं। इसके फल-स्वरूप ग़रीब विद्यार्थियों को बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। अब से पच्चीस-तीस वर्ष पहले जब यह 'परिवर्तन' का रोग नहीं था, लड़के प्रायः अपने भाइयों, मित्रों या सहपाठियों से पुरानी किताबें माँग कर काम चला लेते थे। अथवा आधे या तिहाई दाम में दूसरों से पुस्तकें ख़रीद लेते थे। पर जब से शिक्षा का 'प्रचार' बढ़ने लगा है और विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई है, तब से इस व्यवसाय में चार पैसे की आमदनी देख कर अनेक प्रेस वालों, प्रकाशकों और लेखकों की लार टपकने लगी है। वे लोग अपने परिचित टैक्सट् बुक कमिटी के मेम्बरों अथवा अन्य उच्च-पदस्थ लोगों द्वारा कोशिश कराके अपनी-अपनी पुस्तकों को मञ्ज़ूर कराने की चेष्टा करते हैं। ऐसा होने से पुस्तक की उत्तमता अथवा निकृष्टता का प्रश्न गौण हो जाता है और सिफ़ारिश तथा वैयक्तिक प्रभाव की बात ही मुख्य रहती है। हमारा तो अनुमान है कि गवर्नमेण्ट ने जान-बूझ कर या कुछ स्वार्थी लोगों ने चालबाज़ी द्वारा इस प्रथा को प्रचलित किया या कराया है। इसका फल यह होता है कि कुछ चलते-पुर्ज़े लोगों और प्रेस वालों को बड़ी-बड़ी रकमें कमाने का अवसर मिल जाता है और उसका भार उन ग़रीब लोगों पर पड़ता है, जो भरपेट खाने को भी नहीं पाते और जिनके लिए दो-एक रुपए की पुस्तकें ख़रीदना भी बड़ा भारी काम है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या कारण है कि पहले दस-दस, बीस-बीस वर्ष तक एक ही तरह की किताबें पढ़ाई जाती थीं, पर अब हर साल बिना बदले काम नहीं चलता? पहले 'हिन्दी शिक्षावली' और मौलाना मुहम्मद इसमाईल-कृत उर्दू की किताबें लगातार बरसों तक स्कूलों में पढ़ाई जाती थीं, और जहाँ तक हम समझते हैं वे आजकल की रीडरों की अपेक्षा किसी प्रकार निकृष्ट न थीं। इतना ही नहीं, कितने ही पुराने अनुभवी शिक्षक तो उनको हर प्रकार से श्रेष्ठ बतलाते हैं। तब उनके स्थान में आजकल नई पुस्तकें जारी करने की क्या आवश्यकता थी? यदि थोड़ी देर के लिए इन पुरानी किताबों की बात छोड़ भी दें तो हम यह जानना चाहते हैं कि एक वर्ष जो पुस्तक मञ्ज़ूर की जाती है, दूसरे वर्ष उसमें ऐसा कौन सा दोष उत्पन्न हो जाता है, जिसके कारण उसका बदलना आवश्यक हो? यदि यह कहा जाय कि नवीन पुस्तकें पुरानी पुस्तकों की अपेक्षा उत्तम होती हैं, तो यह भी ग़लत है। यदि ऐसा होता तो बीसियों बार के परिवर्तन के फल से अब तक ये रीडरें निश्चय ही उन्नति के शिखर पर पहुँच गई होतीं। पर ऐसी कोई बात देखने में नहीं आती, वरन् प्रत्यक्ष में तो यही मालूम हो रहा है कि पुरानी दो-चार रीडरों के लेखों को संग्रह करके और उसमें दस-पाँच मासिक पत्रों के लेख जोड़ कर नई रीडर बना दी जाती है। यह बात भी जाँच करने लायक़ है कि जिन लोगों का नाम लेखक की हैसियत से इन रीडरों पर छपता है, वे हिन्दी के कितने बड़े विद्वान हैं और उन्होंने इसके पहले हिन्दी के किन-किन ग्रन्थों की रचना की है? मामला यहीं ख़त्म नहीं हो जाता। वास्तविक रहस्य,

जोकि अब जनता से अप्रकट नहीं है, यह है कि जिन लोगों का नाम लेखक की हैसियत से इन रीडरों पर छपता है, वे उनमें हाथ भी नहीं लगाते। वे उनको किसी बहुत साधारण व्यक्ति से सौ-पचास रुपया देकर संग्रह करवा लेते हैं। उनको जो लिखाई या गहरा पुरस्कार मिलता है वह प्रायः रीडरों के लिए नहीं होता, वरन् उनको मञ्जूर कराने में परिश्रम करने का होता है।

इस प्रकार हमारे बालकों को शिक्षा-विज्ञान-विहीन, भाषा-ज्ञान-शून्य और तीन कौड़ी के लेखकों द्वारा निर्मित सारहीन पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। यदि शिक्षा-विभाग का उद्देश्य सचमुच यही है कि बालकों के लिए उत्तम से उत्तम श्रेणी की पुस्तकें तैयार कराई जायँ, तो क्या यह उचित न होगा कि हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों और लेखकों की एक कमिटी नियत करके रीडरें तैयार कराई जायँ और फिर उनको दस-बीस वर्ष तक लगातार प्रचलित रक्खा जाय। ऐसा करने से बालकों के लिए श्रेष्ठ साहित्य भी तैयार हो सकेगा और ग़रीब लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने में सुभीता भी होगा। हमें आशा है कि शिक्षा-प्रेमी व्यक्ति इस सम्बन्ध में ध्यान देंगे और शिक्षा-प्रचार के मार्ग में पड़ने वाली इस बड़ी बाधा को दूर कराने का प्रयत्न करेंगे।

❀ ❀ ❀

समाचार-पत्रों की कठिनाइयाँ

कुछ समय पहले लाहौर के 'फ़्री प्रेस' द्वारा समाचार-पत्रों को सूचना दी गई थी कि उतमानज़ई गाँव में फ़्रण्टियर-गाँधी ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ का घर सरकारी सेना ने जला डाला। बाद में पता चला कि यह अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ कोई दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका मकान उमरज़ई नामक गाँव में है। सरकार ने 'फ़्री प्रेस' के एडीटर श्री० पी० दत्त और कई अख़बार वालों पर झूठी ख़बर भेजने और छापने का अभियोग चलाया। श्री० दत्त ने इस भूल के लिए खेद-प्रकाश किया, पर सरकार ने मुक़दमा जारी ही रक्खा। परिणाम-स्वरूप श्री० दत्त को दोषी ठहराया गया और १००) जुर्माना अथवा एक मास की सादी क़ैद की सज़ा दी गई। इस मुक़दमे की कार्रवाई पर ध्यान देने से स्पष्ट जान पड़ता है कि वास्तव में आजकल समाचार-पत्रों का कार्य बड़ा कठिन और भयपूर्ण हो गया है। जिस समय की यह घटना है, उस समय सीमा-प्रान्त में एक प्रकार से सेना का ही शासन था और वहाँ से लोगों का न आ सकना या वहाँ जा सकना एक प्रकार असम्भव हो गया था। चिट्ठी और तारों पर कड़ा सेन्सर था। ऐसी दशा में सिवा विश्वासपात्र व्यक्तियों द्वारा समाचार प्राप्त कर सकने के कोई साधन न था। पर उन लोगों को भी लुक-छिप कर तथा अपनी जान ख़तरे में डाल कर यह कार्य करना पड़ता था। मुक़दमे में कितने ही प्रतिष्ठित लोगों ने गवाही में बतलाया था कि सरकारी सेना और पुलिस ने उक्त गाँव और आस-पास के स्थानों में सैकड़ों घरों को बिना कारण जला दिया था। उनमें ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ के लालकुर्ती वालों के क्वार्टर भी थे। ऐसी परिस्थिति में अगर यह ख़बर फैल गई कि ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ का घर जला दिया गया तो इस पर विश्वास कर लेना स्वाभाविक ही था। पर मैजिस्ट्रेट ने इन बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया और उसने अपने फ़ैसले में लिखा है कि "अभियुक्त ने देश की राजनीतिक परिस्थिति को देखते हुए इस सम्बन्ध में पता लगाने की जो चेष्टा की, वह समुचित नहीं थी, और उसने इस विषय में उतना उद्योग नहीं किया, जितना किसी मनुष्य के लिए सम्भव था।" आश्चर्य की बात है कि यह मानते हुए भी कि उस समय सीमा-प्रान्त से पत्र-व्यवहार कर सकने या वहाँ आने-जाने का कोई साधन न था, मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त पर इस तरह का दोषारोपण किया। यह स्पष्ट है कि अख़बार वाले प्रत्येक मामले की जाँच ख़ुद मौक़े पर जाकर नहीं कर सकते। उनको अपने सम्वाददाताओं और प्रतिष्ठित नागरिकों द्वारा भेजे हुए सम्वादों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यदि उनमें कभी किसी तरह की भूल हो जाय तो न्यायाधीश का कर्तव्य है कि वह इस बात का पता लगावे कि भूल जान-बूझ कर की गई है या अनजान में। यदि अख़बार वाले का उस सम्वाद के प्रकाशित करने में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है और उसने केवल अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए उसे प्रकाशित किया है तो उसे दोषी नहीं माना

जा सकता। पर आजकल शासकों ने समाचार-पत्र वालों को विशेष रूप से अपना शत्रु बना रक्खा है, और इसलिए साधारण भूलों के लिए भी उनको दोषी ठहरा दिया जाता है। यह प्रश्न केवल 'फ़्री प्रेस' का ही नहीं है, वरन् समस्त समाचार पत्रों से इसका सम्बन्ध है। इसलिए चेष्टा की जानी चाहिए कि इसकी अपील की जाय और उपरोक्त दण्ड को दूर कराके पत्रों के एक अधिकार की रक्षा की जाय।

❀ ❀ ❀

स्वदेशी पर कुदृष्टि

स्वदेशी और खद्दर-प्रचार राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रधान अङ्ग हैं। देशोन्नति के लिए स्वदेशी के महत्व से कोई व्यक्ति इनकार नहीं कर सकता। और तो क्या, गवर्नमेण्ट भी इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती, और कम से कम प्रत्यक्ष में तो इसका समर्थन ही करती है। क्योंकि आजकल भारतवासियों को जो कष्ट सहन करने पड़ रहे हैं, उनका मूल कारण यहाँ की आर्थिक दुर्दशा है, और इसका सुधार अधिकांश में स्वदेशी द्वारा ही सम्भव है। इससे देश का करोड़ों रुपया, जो शौक़ीनी की अथवा कम लागत होने पर भी अधिक मूल्य वाली वस्तुओं के लिए, बाहर चला जाता है, वह देश में ही बच रहेगा। इस प्रकार लोगों को जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त कर सकने में सुभीता होगा। यह एक ऐसी आवश्यक बात है कि भारत ही नहीं, संसार का प्रत्येक देश इस नीति का अनुसरण कर रहा है। ख़ास इङ्गलैण्ड में इन दिनों स्वदेशी-प्रचार पर बहुत अधिक ज़ोर दिया जा रहा है।

यह सब होने पर भी यहाँ के कितने ही ऐङ्गलो-इण्डियन पत्र इस उपकारी आन्दोलन के प्रति शत्रुता का भाव रखते हैं और समय-समय पर इस पर ऐसे दोषारोपण किया करते हैं, जिससे सरकार इसमें हस्तक्षेप करे। हाल ही में बम्बई के 'टाइम्स ऑफ़ इण्डिया' ने इस सम्बन्ध में ऐसी ही मनोवृत्ति का परिचय दिया था। उसने कॉङ्ग्रेस और स्वदेशी पर आक्षेप करते हुए लिखा था :—

"कॉङ्ग्रेस की योजना यह है कि स्वदेशी आन्दोलन से अपने कार्यों को छिपाने में सहायता ले। इसके द्वारा उसके कार्यकर्ताओं को यह कहने का मौक़ा मिल जाता है कि वे केवल खद्दर बेचते हैं अथवा स्वदेशी-प्रचार करते हैं। इस उपाय से कॉङ्ग्रेस यह भी आशा करती है कि ऐसे लोगों की सहानुभूति भी, जो स्वदेशी को राजनीति से अलग समझ कर उसमें सम्मिलित होते हैं, उसके साथ हो जायगी। हमको आशा है कि न तो 'स्वदेशी ख़रीदो' आन्दोलन के नेता और न गवर्नमेण्ट कॉङ्ग्रेस-सञ्चालकों की इस चाल से धोखा खाएँगे।"

इसका स्पष्ट आशय यह है कि स्वदेशी-प्रचार का आन्दोलन कॉङ्ग्रेस ने सरकार को धोखा देने के लिए चलाया है, और सरकार को चाहिए कि उस पर कड़ी नज़र रक्खे। यह हो सकता है कि कुछ लोग ऐसे हों, जो कॉङ्ग्रेस में भी काम करते हों और स्वदेशी आन्दोलन में भी। पर इसके आधार पर इस समस्त आन्दोलन को कॉङ्ग्रेस की कार्यवाहियों का आवरण बतलाना कहाँ का न्याय है? स्वदेशी-प्रचार एक शुद्ध आर्थिक आन्दोलन है और कॉङ्ग्रेस का सम्बन्ध होने पर भी उसे दूषित अथवा आपत्तिजनक नहीं कहा जा सकता।

❀ ❀ ❀

सनातनधर्मी ध्यान दें!

रोम के पोप ने, जो संसार के करोड़ों रोमन कैथलिक ईसाइयों के सब से बड़े धर्मगुरु हैं, हाल में एक अनुकरणीय कार्य किया है। उन्होंने आदेश दिया है कि रोम के गिर्जाघरों में मूर्तियों के सम्मुख मोमबत्तियाँ न जलाई जायँ। क्योंकि इससे गिर्जाघरों की सुन्दरता अथवा स्वच्छता की तो वृद्धि होती नहीं, वरन् धुएँ से उनकी दीवालें काली हो जाती हैं। रोम के जिन गिर्जाघरों के सम्बन्ध में यह आज्ञा दी गई है, उनमें करीब एक हज़ार वर्षों से मूर्तियों के आगे बत्तियाँ जलती आई हैं और कितने ही लोग इसे एक महत्वपूर्ण धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। पर पोप ने इन बातों पर ध्यान न देकर एक हानिकारक प्रथा को एकदम बन्द करा

दिया। आशा की जाती है कि संसार के अन्य तमाम रोमन कैथलिक गिर्जाघर भी इस आदेश पर अमल करेंगे और इस प्रकार लाखों रुपए, जो बत्तियों में ख़र्च होते थे, अन्य उपयोगी कार्यों में ख़र्च किए जा सकेंगे। साथ ही गिर्जाघर भी पहले की अपेक्षा अधिक स्वच्छ रहेंगे। यह एक ऐसी घटना है, जिससे हमारे देश के कट्टर सनातनधर्मी, जो अपनी ख़ूबी पुरानी लकीर को पीटने में ही समझते हैं, बहुत लाभ उठा सकते हैं। ईसाइयों का रोमन कैथलिक सम्प्रदाय भी सनातन-धर्मियों के समान ही पुराण-पन्थी है, उन्हीं के समान वह मूर्तिपूजक भी है, और उसके पोप का रहन-सहन तथा स्थिति भी अनेकांश में हमारे यहाँ के आचार्यों और महन्तों से मिलती-जुलती है। पर इतना होने पर भी वे समय की गति को दृष्टि से ओझल नहीं होने देते और समय-समय पर अपने सम्प्रदाय में ऐसे सुधार करते रहते हैं, जो लाभदायक हों। पर हमारे यहाँ की हालत बिलकुल उलटी है। कई वर्ष पहले जब खद्दर का आन्दोलन आरम्भ हुआ था, तो मन्दिर वालों से कहा गया था कि वे विलायती वस्त्र त्याग कर ठाकुर जी को खद्दर के कपड़े पहिनाया करें। यह कोई युग-परिवर्तनकारी प्रस्ताव नहीं था, पर इसे भी उन लोगों ने लकीर से हट जाना समझा और अस्वीकार कर दिया। उनमें से कुछ लोगों ने जवाब दिया कि हमारे ठाकुर जी का शरीर बहुत कोमल है, उनको खद्दर के वस्त्र पहिनने से कष्ट होगा। यही हालत अछूतों के सम्बन्ध में है। सनातनधर्मियों से कहा जाता है कि जब कोई अछूत मुसलमान या ईसाई बन कर तुम्हारे कुएँ से पानी भर सकता है या तालाब में नहा सकता है, तो तुम उसे हिन्दू रहते हुए ही ऐसा करने की इजाज़त क्यों नहीं देते। पर इस दलील की सचाई को मानते हुए भी लकीर मिट जाने के भय से वे ऐसा करने को तैयार नहीं हैं। ये और इस तरह की अन्य सैकड़ों बातें प्रकट करती हैं कि हमारे सनातनी भाई या तो समय की गति पर दृष्टि नहीं रखते या उनकी बुद्धि ताले में बन्द है। अगर वे पोप के उपरोक्त उदाहरण से कुछ शिक्षा ग्रहण करें, तो उनका और देश का बहुत-कुछ कल्याण हो सकता है।

❀ ❀ ❀

भारत की आर्थिक दुरवस्था

भारतवर्ष की ग़रीबी और कङ्गाली संसार में मशहूर है। यहाँ के लोगों की औसत आमदनी दुनिया के तमाम देशों के निवासियों की औसत आमदनी की अपेक्षा कम है। अन्न-वस्त्र के अभाव से अनगिनती लोग प्रतिवर्ष प्राण खोते हैं। यहाँ के शिक्षित लोगों की दुर्दशा देख कर रोने को जी चाहता है। बेचारे किसी प्रकार मर-खप कर स्कूलों और कॉलेजों की परीक्षाएँ पास करते हैं और बाद में बीस-पचीस रुपए की नौकरी के लिए भी गिड़गिड़ाते फिरते हैं।

देश की ऐसी भयङ्कर आर्थिक अवस्था है, पर सरकार उसके सुधारने की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं देती। इसके विपरीत वह ऐसी आर्थिक नीति से काम लेती है, जिससे यहाँ की बची-खुची सम्पत्ति भी लुट रही है और व्यवसाय-वाणिज्य का नाश हो रहा है। इस नीति की आलोचना करते हुए कलकत्ते के इण्डियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स ने थोड़े दिन पहले भारत-सरकार के पास एक पत्र भेजा था, जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सरकार इस देश के निवासियों की अपेक्षा विलायत वालों के हित का ही ख़्याल पहले करती है, और उसी के फल से यहाँ की स्थिति सुधरने के बजाय दिन पर दिन ख़राब होती जाती है। कलकत्ते के चैम्बर ने और अन्य भारतीय व्यापारिक संस्थाओं ने समय-समय पर सरकार की इस नीति का विरोध किया है और स्थिति को सुधारने के उपाय सुझाए हैं, पर अधिकारियों ने दो-चार मीठी-मीठी बातें कह देने के सिवा उन पर कभी अमल नहीं किया। गत ६ जून को भारत-सरकार के अर्थ-सदस्य सर जॉर्ज शुस्टर ने भारतीय चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स-प्रेज़िडेण्ट को एक पत्र लिखा था, जिसमें कहा गया था कि वे परिस्थिति की गम्भीरता को भली-भाँति समझते हैं, और अच्छी तरह जानते हैं कि वस्तुओं का भाव गिर जाने से देश के सम्मुख बड़ी भीषण समस्या उत्पन्न हो गई है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि स्थिति को सुधारने का असली उपाय यही है कि सोने के मूल्य को घटा कर चीज़ों का भाव उचित स्थान पर पहुँचा दिया जाय। यद्यपि अर्थ-सदस्य ने इस प्रकार भारतीय व्यापारिक

संस्थाओं की अधिकांश बातों को स्वीकार कर लिया, पर उनमें से एक भी कार्यान्वित न हो सकीं। भारत की अर्थ-नीति का नियन्त्रण अब भी 'व्हाइट हॉल' (इङ्गलैण्ड की सरकार) द्वारा हो रहा है और भारतीयों की पुकार की बिलकुल उपेक्षा की जा रही है।

सरकारी अर्थ-नीति का एक फल यह हुआ है कि पिछले आठ-दस महीनों में सत्तर करोड़ रुपए से अधिक का सोना विदेश चला गया है। इस सम्बन्ध में भारतीय प्रतिनिधियों ने सरकार से बार-बार आग्रह किया कि सोने का इस प्रकार देश से निकल जाना बड़ा अमङ्गलजनक है और उसका कर्तव्य है कि वह स्वयं सोने को बाज़ार-दर पर ख़रीद कर ख़ज़ाने में रक्खे। यद्यपि इङ्गलैण्ड और अन्य तमाम देश इसी नीति का अनुसरण करके अपने देश के सुवर्ण की रक्षा कर रहे हैं, पर भारत-सरकार ने अभी तक इस सम्बन्ध में कोई भी कार्यवाही नहीं की है।

सोने की इस निकासी का प्रभाव देश के व्यापार पर बहुत बुरा पड़ा है। आरम्भ में तो चीज़ों का दाम कुछ चढ़ा, पर बाद में और भी गिर गया। पिछले नौ महीनों में ये भाव किस प्रकार बढ़े और घटे हैं, उसका विवरण इस प्रकार है। इससे प्रकट होता है कि सौ रुपए के माल की क़ीमत मे कितनी घटी हुई है :—

	अनाज	दाल	चाय	तेलहन	तेल	जूट
सितम्बर १९३१	७३	९१	६३	७८	६५	५४
अक्टूबर ,,	७७	९१	६८	८८	६४	६२
नवम्बर ,,	७६	९६	७५	८०	६५	६०
दिसम्बर ,,	७८	१०८	६८	८०	६५	५८
जनवरी १९३२	७६	१०६	६१	८१	६५	५२
फ़रवरी ,,	७२	९५	६२	८४	६५	५१
मार्च ,,	७०	८६	६०	७२	६१	४९
अप्रैल ,,	६६	८३	५९	७१	६४	४५
मई ,,	६६	८७	५७	७२	५७	४२

इसका प्रभाव भारत के आयात और निर्यात पर भी पड़ा है। अब तक इस देश मे जितना माल विदेशों से आता था, उसकी अपेक्षा अधिक रुपयों का माल यहाँ से जाता था। पर चूँकि अब यहाँ से सोना बाहर जा रहा है, इसलिए उसके बदले में विदेशी माल अधिक परिमाण में यहाँ आने लगा है। गत अप्रैल मास में २ करोड़ और मई में २ करोड़ ४६ लाख रुपए का माल निर्यात की अपेक्षा अधिक आया है।

इन तमाम बातों का सारांश यही है कि देश की वर्तमान आर्थिक दुरवस्था का सुधार करने की कुञ्जी सरकार के हाथ में ही है, और यह कार्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब कि शासकगण इङ्गलैण्ड के हानि-लाभ की अपेक्षा भारत के हानि-लाभ का ख़्याल पहले करें। सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि रुपए का सम्बन्ध पौण्ड से न रक्खा जाय और न उसके विनिमय की दर को कृत्रिम रीति से १ शिलिङ्ग ६ पेन्स नियत किया जाय। यदि भारत के सिक्के का अस्तित्व स्वतन्त्र हो जाय और यहाँ के सुवर्ण-भण्डार की उद्योगपूर्वक रक्षा की जाय, तो दुर्दशा की वृद्धि रुक सकती है और धीरे-धीरे परिस्थिति का सुधार भी हो सकता है।

❀ ❀ ❀

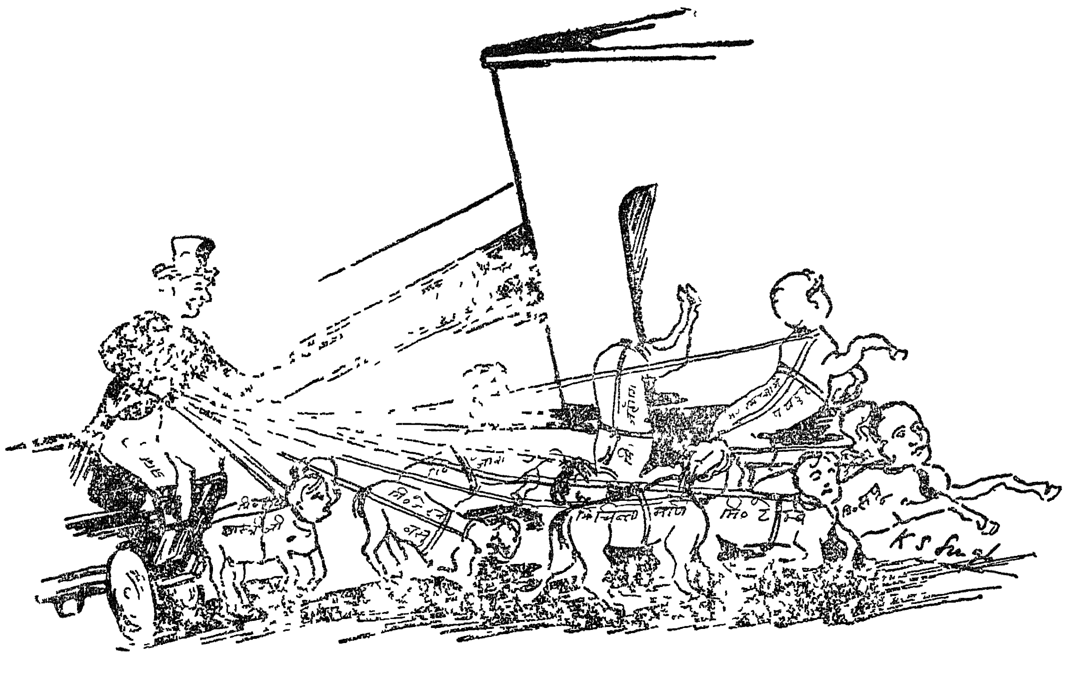
राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स खटाई में

यद्यपि म० गाँधी के आन्दोलन आरम्भ कर देने के बाद राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स से जनता को कुछ भी आशा न थी, पर देश में ऐसे कितने ही छोटे-छोटे राजनीतिक दल मौजूद हैं, जो इस अवस्था में भी उसमें सम्मिलित होने को उत्सुक थे। उनमें से कुछ तो समझते थे कि वहाँ पर लड़-झगड़ कर हम कुछ न कुछ महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेंगे और कुछ केवल विलायत वालों के सामने बढ़िया व्याख्यान देने की ही कामना रखते थे। पर अचानक भारत-मन्त्री सर सैमुअल होर की घोषणा ने, कि अब राउण्डटेबिल कॉन्फ़्रेन्स न होगी, वरन् उसकी कार्यकारिणी कमिटी ही बचा-खुचा कार्य पूरा कर लेगी, रङ्ग मे भङ्ग कर दिया। इस घोषणा से वैसे तो कॉङ्ग्रेस के सिवा अन्य तमाम राजनीतिक दलों के लोग असन्तुष्ट हैं, पर लिबरलों ने इस अवसर पर ख़ास तौर पर सरगर्मी

दिखलाई है। श्री० सप्रू और श्री० जयकर और अन्य लिबरल सदस्यों के कमिटी से स्तीफ़ों ने सरकार को चौंका सा दिया है। व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि भी नवीन नीति के घोर विरोधी हैं। इन लोगों ने चेष्टा करके समस्त देश मे इस सम्बन्ध में काफ़ी जोश उत्पन्न कर दिया है। इङ्गलैण्ड और भारत की सरकारों को सम्भवतः लिबरलों की तरफ़ से इस अप्रत्याशित विरोध की आशङ्का न थी, और इस कारण वे कुछ चिन्तित हो

जापान के माल पर कर-वृद्धि

भारतीय व्यापारी कितने ही समय से जापान की प्रतिद्वन्द्विता के कारण बड़े चिन्तित थे। जापान इधर कुछ दिनों से सस्ता माल बनाने में पूर्व समय के जर्मनी का मुकाबला करने लगा था और उसकी चीज़ों की खपत देश में दिन पर दिन बढ़ती



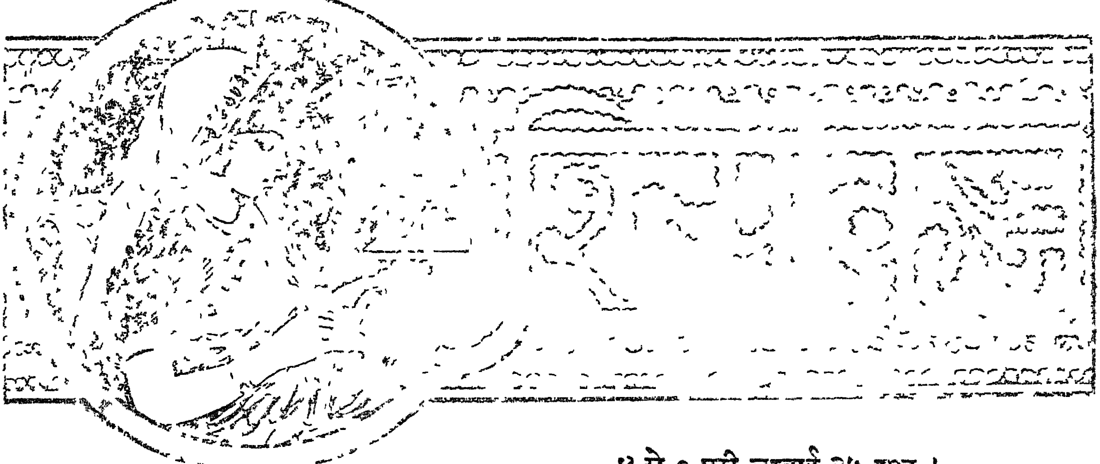
मि० जॉनबुल—(गोलमेज़-रूपी अस्तबल का बन्द फाटक देख कर भड़के हुए घोड़ों से) आह ! मेरे प्यारे टट्टुओ, घबराओ नहीं, तुम्हारे लिए नया अस्तबल बहुत जल्द तैयार हो रहा है।

उठी हैं। सर सैमुअल होर ने बाद में दो-तीन बार चिकनी-चुपड़ी बातें बना कर इस विरोध को ठण्डा करने की चेष्टा की है, पर फल कुछ नहीं निकला। क्योंकि वे अपनी नीति को त्यागने को तैयार नहीं हैं, केवल समझा-बुझा कर काम चलाना चाहते हैं। अभी यह कशमकश चल रही है और जान नहीं पड़ता कि अन्तिम परिणाम क्या होगा।

❀ ❀ ❀

जाती थी। इसके सिवाय उसका माल प्रायः उसी श्रेणी का होता है, जिस श्रेणी का भारतीय मिलें बनाती हैं। इसलिए इस देश के मिल-मालिकों को अङ्गरेज़ी कपड़े से भी अधिक भय जापानी कपड़े से रहता है। इधर जापान में सिक्के की दर एकदम गिर जाने से उसके माल का दाम बहुत ही घट गया और भारतीय बाज़ार में जापान के कपड़े की बाढ़ सी आ गई। यह दशा देख

(शेष मैटर ४६० वें पृष्ठ के दूसरे कॉलम में देखिए)



जम्पर कटिङ्ग

जम्पर—हिप लाइन (कमर के नीचे का हिस्सा) के नीचे ३ इञ्च तक लम्बा काटा जाता है। फ्रन्ट पार्ट (सामने के हिस्से) में बटन के भाग के पास मजबूती के लिए अन्दर कपड़े की पट्टी लगाते हैं। साधारणतया इसमें बटन नहीं भी होते हैं, शर्ट सरीखा यह पहना जाता है। हिप पर शोभा के लिए बकल लगा हुआ बेल्ट होता है। इसके घेरे में दूसरे प्रकार के घेरे की पट्टी होती है। इसमें दो जेटेड पॉकेट होते हैं। नीचे एक काट का नमूना बतलाया जा रहा है। उसी के अनुसार भिन्न नाप के जम्पर काटे जा सकते हैं।

नाप—छाती ३६" कमर २८" सीट ४०" कमर की लम्बाई १५" आधी पीठ ६१/३" आस्तीन २०" आड़ी छाती ८" गला १३१/२" (इञ्चों में)।

काटकोन करने की लाइन ० से १ तक स्केल का चौथा भाग + ३ इञ्च अधिक ठीक ७१/२ इञ्च।

२ से ० कमर लम्बाई १५ इञ्च।

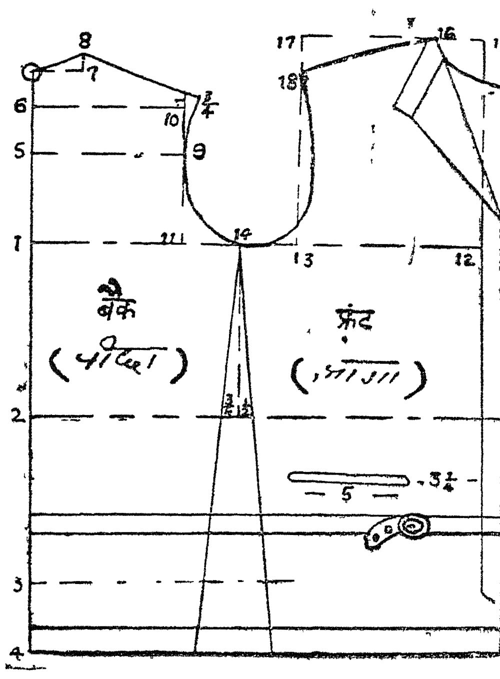
३ से २ हिप लाइन ७ इञ्च।

४ से ० पूरी लम्बाई २५ इञ्च।

०, १, २, ३, ४ इन सबको स्क्वेअर करो।

५, ० और ए का मध्य है।

६, ५ और ऐ का मध्य है।



७ से ० स्केल का छठा हिस्सा और आधा इञ्च कम याने २॥ इञ्च होता है।

८ से ७ का अन्तर पौन इञ्च है।

९ से ५ आधी पीठ और पाव इञ्च कम है।

९ से ११ और ९ से १० का स्क्वेअर करो।

१० के ऊपर १ इञ्च, १ इञ्च के आगे ¾ इञ्च लो, पौन इञ्च और ८ को जोड़ो।

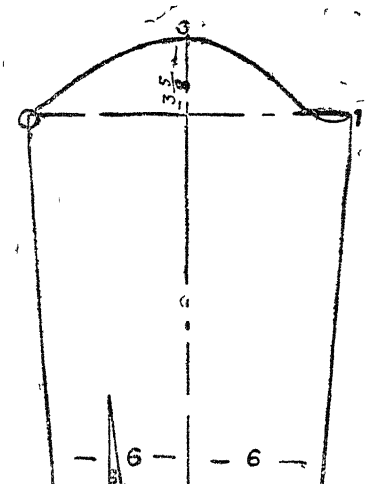
१२ से १ आधी छाती और १ इञ्च ज्यादा यह १९ इञ्च होगा।

१२ से आगे १ इञ्च ढिलाई के लिए लो।

१२ से १३ आड़ी छाती ८ इञ्च लो।

११ और १३ का बीच १४ इञ्च है।

१४ के नीचे स्क्वेअर बनाओ।



बैक की तरफ ¾ इञ्च का शेप दो और फ्रन्ट की तरफ ½ इञ्च का शेप देना चाहिए।

१५ से १२ तक का स्केल का आधा और पाव इञ्च ज्यादा याने ९। इञ्च होता है।

१६ से १५ स्केल का छठा भाग आध इञ्च कम।

१७ और १६ का तीसरा भाग १७ से १८ रक्खो।

१८ और १३ के बीच में आधे इञ्च का शेप दो।

बैक फ्रन्ट दोनों सलङ्ग है, सिर्फ दोनों ओर साइड में जोड़ होता है।

आस्तीन

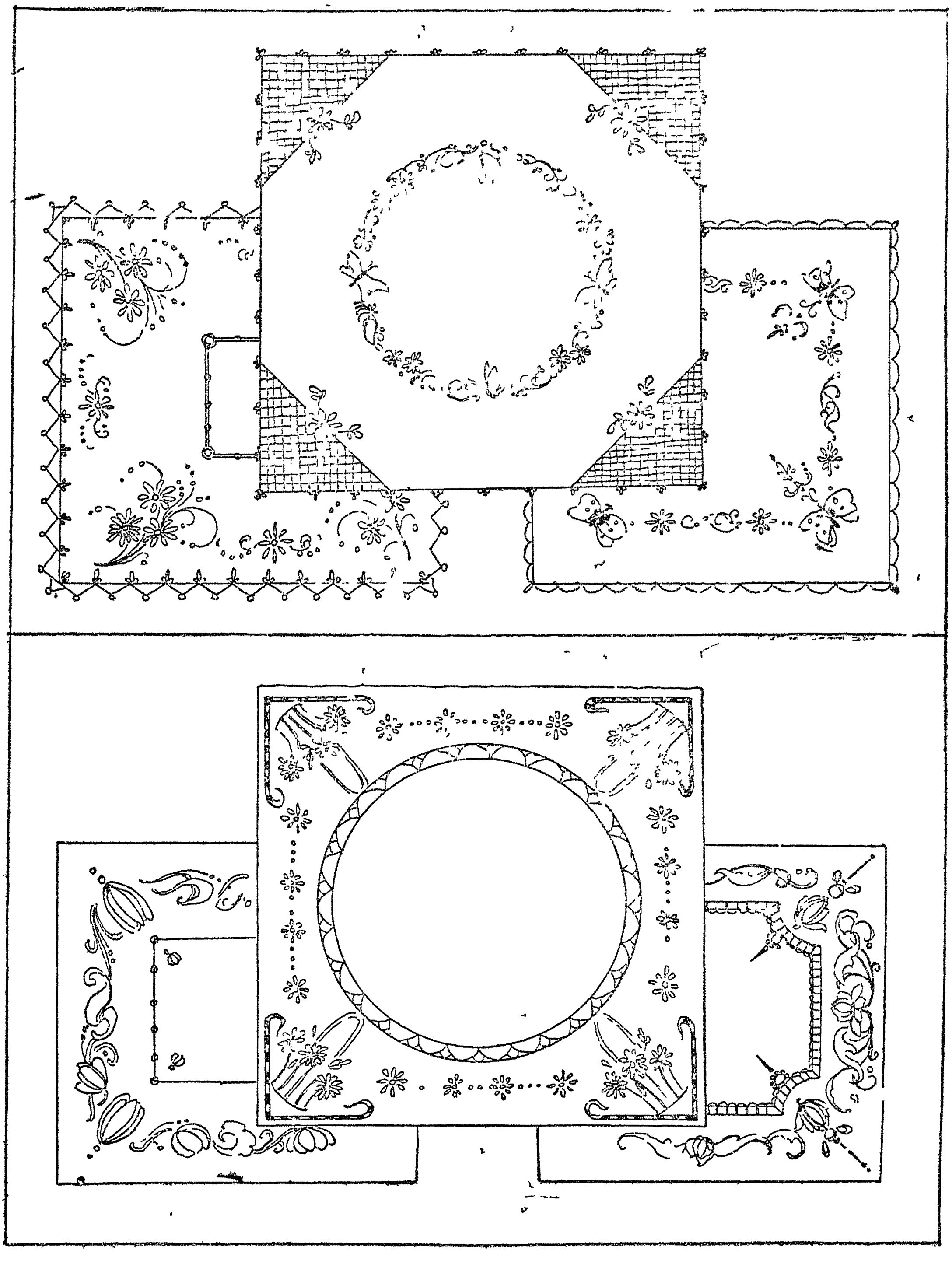
½ इञ्च से १४ और १४ से १८ आर्म होल (मुण्डे की खोली) इतना ० से १ तक १४½ इञ्च है। ३ से चार तक लाइन ० और A के मध्य में से गई है। ० से १४½ का चौथा भाग ३⅝ रहता है। १ से ३ और ३ से ० आकृति अनुसार शेप है। ३ से ४ आस्तीन की पूरी लम्बाई २० इञ्च है। बीच की लाइन के दोनों तरफ ६-६ इञ्च होना चाहिए। एक ओर ¾ इञ्च का डाट होना चाहिए।

—गजराजसिंह वर्मा, एफ़० सी० डी०, टेलर एण्ड कटर्स (ऑनर्स), लण्डन

❀ ❀ ❀

(४१८वें पृष्ठ का शेषांश)

कर बम्बई और अहमदाबाद के मिल ओनर्स एसोसिएशनों ने फिर हाय-तोबा मचाई और इस बार मालूम होता है कि उनकी पुकार व्यर्थ नहीं जायगी। भारत-सरकार ने टेरिफ़ बोर्ड को आज्ञा दी है कि हाल में कपड़े की क़ीमत में जो कमी हुई है, उसकी जाँच करके बहुत जल्द रिपोर्ट पेश की जाय। यद्यपि जापानी कपड़े के व्यापारी और जापान को रुई भेजने वाले इस कर-वृद्धि का विरोध कर रहे हैं, पर रङ्ग-ढङ्ग से जान पड़ता है कि इस बार भारतीय मिल वालों को सफलता मिल जायगी। पर हमको इसमें सरकार की विशेष उदारता नहीं जान पड़ती। क्योंकि जापान के माल से भारतीय मिलों के साथ ही इङ्गलैण्ड की मिलों को भी धक्का पहुँचता है, और सम्भवतः इसी कारण सरकार ऐसी तत्परता से काम ले रही है। कुछ भी हो, विदेशियों का व्यापार किसी तरह घटे और उसको रोकने की कोई व्यवस्था हो, यह भारत के लिए हितकर ही है।



'शिल्प-कुञ्ज' नामक पुस्तक के दो सुन्दर नमूने [चित्रकार—श्री० एच० बागची

साहित्य संसार

योगेश्वर कृष्ण—लेखक श्री० चमूपति जी, एम० ए०, प्रोफेसर तुलनात्मक धर्म-विज्ञान, गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार; प्रकाशक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी। पृष्ठ-संख्या २+४+२७+३६४; मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तक श्रीकृष्ण का महाभारत से सङ्कलित, पुराणानुमोदित ऐतिहासिक जीवन-चरित है। विद्वान लेखक ने इसे तुलनात्मक अध्ययन के बाद लिखा है। इस पुस्तक में 'योगेश्वर' का अर्थ उपाय बतलाने वाला माना गया है। लेखक महोदय ने इस सम्बन्ध में महाभारत का प्रमाण भी दिया है। उन्होंने श्रीकृष्ण को पूर्ण अहिंसावादी और उच्च कोटि का राजनीतिज्ञ माना है और एक आत्मनिर्णय-मूलक साम्राज्य की स्थापना करना उनके जीवन का उद्देश्य माना है। पुराणों में वर्णित श्रीकृष्ण की अद्भुत और अलौकिक बाल-लीलाओं का भी लेखक ने बहुत थोड़े मे उल्लेख किया है और अनुमान किया है कि श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में गोकुल और वृन्दावन के नरघाती हिंसक जन्तुओं को मार कर उन्हें निरापद बनाया होगा। महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों से आपने अपने कथन को प्रमाणित भी किया है। आपका यह भी अनुमान है कि श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का गोकुल में भी कोई घर होगा, इसीलिए श्रीकृष्ण वहाँ भेज दिए गए थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई थी। इसी तरह श्रीकृष्ण-चरित सम्बन्धी अन्यान्य बातों को भी पौराणिक अलौकिकता के घनान्धकार से निकालने की चेष्टा की गई है। पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। वास्तव में अब हमें गोपियों के साथ गलबहियाँ देकर रास रचाने वाले तथा उनका रास्ता रोक कर दही का दान माँगने वाले कृष्ण की आवश्यकता नहीं है। अब तो हमें श्रीकृष्ण को उसी दृष्टि से देखना होगा, जिस दृष्टि से श्री० चमूपति जी ने देखा है। पुस्तक की भाषा सरल और मार्जित है। छपाई आदि भी अच्छी है।

❀ ❀ ❀

पौरस्त्य धनुर्वेद—लेखक श्री० महेन्द्रकुमार वेदशिरोमणि, रिसर्च-स्कॉलर। भूमिका-लेखक पण्डित नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या ९६, मूल्य ।।) आने। मिलने का पता—व्यवस्थापक, शान्ति-निकेतन गुरुकुल, वृन्दावन।

यह भारतीय शस्त्रास्त्र सम्बन्धी छोटी सी पुस्तिका बड़े काम की चीज़ है अथवा यों कहना चाहिए कि हिन्दी में अपने विषय की पहली पुस्तक है। लेखक ने भारतीय शस्त्रास्त्र सम्बन्धी बहुत सी बातों पर प्रकाश डालने के सिवा, इस पुस्तक द्वारा यह भी प्रमाणित किया है कि बारूद और बन्दूक के आविष्कार का आदि-गुरु भारत ही है। प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर शस्त्रास्त्रों के निर्माण आदि की भी विधि बताई गई है। पुस्तक संग्रहणीय है।

❀ ❀ ❀

हाथ और ग्रह—लेखक श्री० विश्वनाथ त्रिवेदी, कुन्दनपुरा, मुजफ्फरनगर। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २१०, मूल्य १।।=), छपाई, कागज़ साधारण।

यह सामुद्रिक विद्या सम्बन्धी पुस्तक है, जिससे हाथ की रेखाओं द्वारा मनुष्य के भाग्य का पता लगता

है। लेखक की आज्ञा है कि—'अपने हाथों पर विश्वास करो!' फलतः पुस्तक भी ऐसे विश्वासियों के लिए ही है।

❀ ❀ ❀

आँधी—लेखक बाबू जयशङ्कर 'प्रसाद', प्रकाशक पुस्तक-मन्दिर बनारस, पृष्ठ-संख्या २१६; मूल्य २)

यह पुस्तक 'प्रसाद' जी की ग्यारह कहानियों का संग्रह है। 'आँधी' नामक पहली और 'दासी' नामक तीसरी कहानी अन्य नव कहानियों से बड़ी हैं। अन्तिम कहानी 'पुरस्कार' हिन्दी की अच्छी कहानियों में से एक है। 'मधुआ', 'बेड़ी', 'ग्राम-गीत' और 'घीसू' नामक कहानियाँ भी अच्छी हैं।

'प्रसाद' जी की भाषा मे कवित्व, वर्णन-शैली में प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक और चरित्र-चित्रण में पात्रानुकूल स्वाभाविकता है।

❀ ❀ ❀

धूप-दीप—लेखक पण्डित विनोदशङ्कर व्यास, प्रकाशक पुस्तक-मन्दिर बनारस, मूल्य ॥।)

यह पुस्तक पं० विनोदशङ्कर व्यास की पाँच कहानियों का संग्रह है।

इस संग्रह की पहली कहानी 'शीर्षकहीन' है और अन्त की पाँचवी कहानी का शीर्षक है "३०२"! पहली कहानी मे एक क्रान्तिकारी युवक के जीवन की पहेली और अन्तिम कहानी मे एक ग्रेजुएट ख़ूनी के जीवन का कच्चा चिट्ठा है। दूसरी कहानी का शीर्षक है "स्वराज्य कब मिलेगा?", तीसरी का है "और अब?", चौथी का है "उलझन"। तीसरी मे देश की साधारण प्रजा की मनोवृत्ति प्रकट होती है। चौथी मे गोरखधन्धा होने पर भी मनोविज्ञान की दृष्टि से बड़ी स्वाभाविकता और वास्तविकता है।

❀ ❀ ❀

'प्रेमा' (शृङ्गार-रसाङ्क)—सम्पादक, साहित्याचार्य पण्डित लोकनाथ सिलाकारी, प्रकाशक इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, जबलपुर शाखा। वार्षिक मूल्य ४।।) और इस अङ्क का मूल्य ॥।)

'प्रेमा' ने काव्य के नवरसों पर विशेषाङ्क निकालने का आयोजन कर रक्खा है। तदनुसार इससे पहले हास्य-रसाङ्क और शान्त-रसाङ्क निकल भी चुकी है। प्रस्तुत शृङ्गार-रसाङ्क इस सम्बन्ध का तीसरा विशेषाङ्क है। सम्पादक जी ने उपयुक्त सामग्री एकत्र करने मे सफलता प्राप्त की है। सभी लेख विषयानुकूल और अच्छे हैं। कई कविताएँ भी अच्छी है। कुमारी हरदेवी मलकानी ने अपने "शृङ्गार रस में महिलाओं की दुर्दशा" शीर्षक लेख में पहले तो कुछ अच्छी और खरी बातें कही हैं, परन्तु अन्त मे उन्होंने 'चाँद' पर अत्यन्त धृष्टतापूर्वक आक्रमण किया है और इसके उद्देश्यों के सम्बन्ध में 'प्रेमा'-प्रेमियों को भ्रम में डालने का घृणित प्रयत्न किया है। समाज में प्रचलित कुरीतियों का भण्डाफोड़ करना, आँख में उँगली डाल कर समाज के स्त्री-पुरुषों को उनके दोषों का दिग्दर्शन कराना और विशेष योग्यता प्राप्त करने वाली स्त्रियों का चित्र छापना उपर्युक्त कुमारी जी जैसी काण्ड-ज्ञान-शून्य स्त्रियों की दृष्टि में ही दोषावह हो सकता है, बुद्धिमानों की दृष्टि में नहीं।

❀ ❀ ❀

प्रजामित्र—साप्ताहिक समाचार-पत्र, आकार १०×१५, पृष्ठ-सं० १२, वार्षिक मूल्य साधारण सस्करण ३) और राज-संस्करण १०), सम्पादक श्री० श्रवणप्रसाद मिश्र 'श्रवणेश'।

यह पत्र अभी हाल में ही कॉली से प्रकाशित होने लगा है। इसके पहले भाग की ग्यारहवी संख्या हमारे सामने है। हिन्द-राजस्थान, रियासत, और सौराष्ट्र आदि की तरह देशी राज्यों की प्रजा के स्वत्वों की रक्षा, देशी नरेशों को कर्तव्यरत बनाना 'प्रजामित्र' का प्रधान उद्देश्य है। हम नए सहयोगी का सहर्ष स्वागत करते हैं और हमारी यह आन्तरिक कामना है कि वह अपने उद्देश्य मे सफलता प्राप्त करे। —'चक्रधर'

❀ ❀ ❀

[सूचना—समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिएँ, अन्यथा समालोचना न हो सकेगी। —स० 'चाँद']



गृह विज्ञान

पीनस

ऊँट की लेंडी कड़वे (सरसों के) तेल में पका कर छान ले। इसी तैल का नास ले और बर्बरी (बन-तुलसी) की पत्ती की टिकिया बना कर शिर के तालू मे रक्खे तो पीनस के कीड़े गिर कर रोग अवश्य आराम हो जाता है।

❀

मृगी

उत्तम असली हींग एक-एक रत्ती सुबह-शाम जल के साथ निगलते रहने से अपस्मार (मृगी) अवश्य एक वर्ष में आराम हो जाती है।

❀

दस्त

धाय के फूल, सफ़ेद राल, मोचरस, बेल का गूदा सम भाग, महीन पीस कर चूर्ण बना ले। मात्रा ४-४ माशे, सायं-प्रातः सेवन कर लोहे से बुझा पानी ऊपर से पिए। दस्त बन्द हो जायँगे।

❀

आतशक

इन्द्रायण की जड़ और फल दोनों एक-एक पाव पीस कर चार सेर पानी मे मिला दे, फिर उसी पानी को किसी बर्तन मे रख कर उसी बर्तन में खड़ा होकर पैरों को मलता रहे। जब तक मुँह में कड़वापन न आ जाय, तब तक बराबर मलता रहे। इसी प्रकार चार-पाँच दिन करने से उपदंश रोग अवश्य आराम हो जाता है।

ख़िज़ाब

मुर्दाशङ्ख दो तोले, सूखा चूना १ तोला, खड़िया-मिट्टी २ तोले को बारीक पीस कर सफ़ेद बालों पर लेप कर दे। फिर दो घण्टे बाद धोकर सरसों का तेल लगा दे तो सफ़ेद बाल काले होंगे।

❀

गर्भकारक

गुलाब का फूल एक माशा, और गाय का घी दो माशा लेकर दोनों को पत्थर पर ख़ूब रगड़े, जब काजल के समान हो जाय, तब ऋतुस्नान की हुई स्त्री इसी का नास ले। तीन रोज़ तक यदि इसी दवा का नास बाईं नाक से ले तो पुत्र और दाहिनी नाक से ले तो कन्या जन्म लेती है।

❀

अर्श

बैल के सींग का जमा हुआ कल्ला तोड़ कर बबूल के कोयलों की आँच में रख कर मस्सों को धूनी दे तो बादी बवासीर शर्तिया तीन दिन में आराम हो जाती है।

—उत्तराकुमारी वाजपेयी, अजगैन

❀

बिना मूल्य मृगी रोग की औषधि

एक जैन साधु की कृपा से प्राप्त श्रीमान सेठ गोपीलाल जी जैन पैंची (मालवा) निवासी की ओर से "श्रीजैन-सेवा-मण्डल, धूलियागञ्ज, आगरा" द्वारा वितीर्ण की जाती है। दवा मिलने का समय प्रातः ६ बजे से ६ बजे तक है।



ईमानदारी का फल

किसी ज़माने में कहीं एक राजा रहता था। वह शिकार खेलने का बड़ा प्रेमी था। दूसरे-तीसरे बराबर शिकार खेलने जङ्गलों में जाया करता था। एक दिन सन्ध्या को जब वह शिकार खेल कर अपनी राजधानी की ओर लौट रहा था, तो देखा कि जङ्गल के पास एक पेड के नीचे एक लड़का बैठा हुआ बाँसुरी बजा रहा है। राजा का घोड़ा थक गया था, इसलिए वह भी थोड़ी देर के लिए उसी पेड़ के नीचे ठहर गया और लडके से बातचीत करने लगा। लडका था तो छोटा सा, परन्तु बाते बड़ी बुद्धिमानी की करता था। राजा उसकी बाते सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और बोला कि अगर तुम मेरे साथ चलो तो मै तुम्हे बड़े आराम से रक्खूँगा; पहनने को अच्छे-अच्छे कपड़े और खाने को अच्छी-अच्छी चीज़ें दूँगा। राजा की बाते सुन कर लड़के ने उसके साथ चलना स्वीकार कर लिया।

राजा ने अपने घर ले जाकर लडके को बड़े आराम से रक्खा। उसे पहनने को साफ़ कपड़े दिए और खाने को भी अच्छे-अच्छे पदार्थ दिए, इसके साथ ही, उसे पढ़ाने के लिए एक गुरु जी को नौकर रख लिया। लड़का बड़ा परिश्रमी और मेधावी था। गुरु जी का दिया हुआ पाठ बड़ी जल्दी याद कर लेता था। इसलिए कुछ दिनों में ही वह पढ़-लिख कर पण्डित हो गया। तब गुरु जी ने राजा से कहा कि लड़का पढ़-लिख कर होशियार हो गया। राजा ने लड़के की परीक्षा लेकर उसका नाम वीरसिंह रख दिया और उसे अपने ख़ज़ाने का दारोग़ा बना दिया।

दारोग़ा के ओहदे पर पहुँच कर भी वीरसिंह अपने को न भूला। वह बडी ईमानदारी से अपना काम करता, सबसे अच्छा और भद्रता का व्यवहार करता और किसी को कोई कष्ट नहीं पहुँचाता। इसलिए लोग उससे बहुत प्रसन्न रहते थे। राजा भी उसके कामों से ख़ुश था और उसका यथोचित आदर करता था। परन्तु यह बात राजसभा के लोगों को अच्छी नहीं लगती थी। एक गड़ेरिए के बालक का इतना मान देख कर उन लोगों के मन में डाह पैदा हो गई और वे उसे नीचा दिखाने की चेष्टा करने लगे। यहाँ तक कि एक दिन लोगों ने राजा से उसकी बड़ी निन्दा की। परन्तु राजा सब कुछ जानता था, उसने निन्दकों की बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

संयोगवश राजा की मृत्यु हो गई और उसका बेटा राजगद्दी पर बैठा। परन्तु वह पहले राजा की भाँति बुद्धिमान नहीं था। कानों का कच्चा था। वीरसिंह के शत्रुओं को अच्छा अवसर मिल गया और वे उसके विरुद्ध नए राजा के कान भरने लगे। एक दिन सब दरबारी राजा के पास गए और कहने लगे कि वीरसिंह बड़ा बेईमान आदमी है, वह राज्य के ख़ज़ाने से रुपए लेकर हड़प कर जाता है। उसे किसी का डर नहीं है। यह सुन कर राजा आगबबूला हो गया और उसने वीरसिंह को बुला कर आज्ञा दी कि पन्द्रह दिन के अन्दर ख़ज़ाने का हिसाब हमें दिखाओ।

वीरसिंह बड़ा बुद्धिमान और मेहनती था। आज का काम वह कल पर नहीं छोड़ता था। उसने ख़ज़ाने

की चाबियाँ कमर से निकाल कर राजा के सामने रख दीं और कहा कि धर्मावतार, पन्द्रह दिन की क्या बात है, श्रीमान् अभी चल कर ख़ज़ाने की जाँच-पड़ताल कर लें।

राजा ने ख़ज़ाने की जाँच की तो एक पाई का भी फ़र्क़ नहीं निकला। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब मौजूद था और बाक़ी रुपया भी ख़ज़ाने मे मौजूद था। परन्तु राजा को इतने से सन्तोष नहीं हुआ, उसने सोचा कि राजसभा के इतने बड़े-बड़े सरदार क्या झूठ बोलेंगे। एक बार वीरसिंह का घर भी देख लेना चाहिए। उसने वीरसिंह से कहा कि अपना घर दिखाओ। वीरसिंह राजा को अपने घर ले गया। घर में साधारण व्यवहार की चीज़ों के सिवा और कुछ न था। राजा यह देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और अपने महल की ओर लौटना ही चाहता था कि एक चुगलख़ोर सरदार ने एक पिटारी की ओर इशारा किया। पिटारी में एक मामूली ताला लगा हुआ था। राजा ने पूछा—उसमें क्या है? वीरसिंह ने उत्तर दिया—उसमें मेरी सम्पत्ति है।

राजा के मन मे फिर सन्देह हो गया। उसने पिटारी को खुलवा कर देखा तो उसमें एक बाँसुरी, कुछ फटे-पुराने कपड़े, एक भेड़ों को हाँकने वाली लकड़ी और एक भेड़ की खाल रक्खी थी। राजा इन तुच्छ वस्तुओं को इस प्रकार सुरक्षित भाव से रक्खा हुआ देख कर अचम्भे में पड़ गया और पूछा—यह क्या है?

वीरसिंह ने उत्तर दिया—श्रीमान, यह मेरी असली हालत का सामान है।

इसके बाद उसने अपने यहाँ आने, पढ़ने-लिखने और दारोग़ा के पद पर पहुँचने का सारा क़िस्सा राजा को सुनाया। और अन्त में यह भी कहा कि मैं ऊँचे पद पर पहुँच कर अपनी असली स्थिति को भूल न जाऊँ, इसीलिए इन चीज़ों को इतने यत्न से रक्खा है। इसके सिवा मैंने इन्हें इसलिए भी रख छोड़ा है कि जब कभी श्रीमान् को मेरी ज़रूरत न रहे, तो मैं अपने पुराने सामान के साथ यहाँ से चला जाऊँ और फिर अपना पुराना धन्धा आरम्भ कर दू।

राजा यह बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ और वीरसिंह को अपना राज-मन्त्री बना लिया। चुग़लख़ोर अपना सा मुँह लेकर रह गए।

सच है, जो ऊँचा पद पाकर भी अपनी पहली दशा को नहीं भूलते, वे सदैव सुखी रहते हैं।

—कमलकिशोर श्रीवास्तव

❀ ❀ ❀

मदारी मियाँ के खेल

काग़ज़ की नाव का पानी पर दौड़ना

एक नाव ऐसे काग़ज़ की बनानी चाहिए, जो अधिक देर तक पानी मे रह सके। इसके बाद उस नाव के नीचे कपूर का एक बड़ा ढेला फँसा देना चाहिए। कपूर के बाहरी अंश को ऐसी छुरी से काटना चाहिए, जिसमे चिकनाई बिल्कुल न लगी हो। फिर नाव को पानी पर छोड़ देना चाहिए। बस, वह अपने आप इधर-उधर दौड़ने लगेगी।

पानी में आग लगाना

एक लम्बे गिलास में थोड़ा सा इथर (Ether) डाल दे, इसके बाद एक मटर के दाने के बराबर सोडियम (Sodium) या पोटाशियम (Potassium) छोड़ दो। बस, इसके बाद गिलास में पानी डालते ही उसमें से धुआँ और आग की लपटें निकलती दिखाई पड़ेगी।

सुई का नाच

एक काँसे (फूल) की थाली लेकर उसे धो-पोंछ कर साफ़ कर लो। फिर उसमें एक लोहे की सुई रख दो और थाली को बाएँ हाथ से उठा लो। दाहिने हाथ में लौह-चुम्बक लेकर थाली के नीचे घुमाना आरम्भ कर दो। बस, जिधर-जिधर थाली के पेंदी के नीचे का चुम्बक जायगा, उधर-उधर थाली के अन्दर की सुई भी दौड़ती फिरेगी।

—मदारी मियाँ

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

यह बात बावन तोले पाव रत्ती ठीक है कि बङ्गाल के स्वनामधन्य मुस्लिम लीडर सर हलीम ग़ज़नवी की छुट्टी में हिज़ होलीनेस को भूरि भोजन का निमन्त्रण नहीं मिला था। परन्तु चूँकि आप इतिहास-प्रसिद्ध महमूद ग़ज़नवी के वंशज हैं, इसलिए हिज़ होलीनेस आपके नामेनामी से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं।

❀

इसके अतिरिक्त गम्भीर ऐतिहासिक गवेषणा के बाद हिज़ होलीनेस इस तथ्य पर भी पहुँच गए हैं कि जब उक्त महमूद इस देश से 'हलाल' की रक़म बटोर कर अपनी जन्मभूमि की ओर प्रस्थान करने लगा होगा तो अपनी अमर सुकीर्ति की स्मृति में सर हलीम बहादुर के पूर्वजों में से किसी को यहाँ छोड़ गया होगा। क्योंकि सुकीर्ति की रक्षा का प्रबन्ध कोई अस्वाभाविक बात नहीं है।

❀

सो जनाब, हमारे ये हलीम बहादुर भी दिलोजान से अपने आबाए-माजिद की सुकीर्ति की रक्षा में तत्पर रहते हैं और अवसर पाते ही हाथ से नहीं, बल्कि मुँह से ही—कमबख़्त कुफ़्र के दो-चार बाल नोच डालने को उद्यत हो जाते हैं। आख़िर, आपकी रगों में जो ग़ज़नवी-वंश का जोशीला रक्त मौज-ज़न है, वह भला, शान्त कैसे रह सकता है?

❀

'क़द्र गौहर शह बेदानद या बेदानद जौहरी' के अनुसार हमारी परम गुणग्राहिनी गोरी सरकार ने भी आपके इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर आपके सर पर एक और 'सर' रख देने की उदारता दिखाई है! वल्लाह, उसी दिन से आपकी ज़बान भी अवसर पाते ही मानो खूँटा तुड़ा कर सरपट दौड़ने लगती है।

❀

इस ज़बान को लगाम से कोई सरोकार नहीं, जब चलने लगती है तो कतरनी को भी मात कर देती है! और, ख़ासकर जब कभी गौराङ्ग महाप्रभुओं के महाप्रसाद अर्थात् 'डिनर' का टेस्ट पा जाती है, तब तो मानो उस पर सान चढ़ जाता है और कमबख़्त 'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति' का नमूना बन जाती है।

❀

ख़ैर, अपने राम इस वक़्त सर हलीम की जन्मपत्री लिखने नहीं बैठे हैं, क्योंकि वह तो शैतान की आँत की नानी और भाँड़ की पगड़ी की लकड़दादी है और इधर हिज़ होलीनेस का चौथापन! लेहाज़ा कोई आशा नहीं, कि वह इस संसार की अल्पकालिक स्थूल स्थिति में समाप्त हो सके।

❀

आज तो हमें सिर्फ़ यही दिखाना है कि यथा नामो तथा गुणः के अनुसार हमारे हलीम बहादुर भारतीय स्त्रियों के परम हितैषी हैं और कृपण की कौड़ी की तरह उन्हें सात तह वाली 'मेड इन ग़ज़नी' नाम्नी पिटारी से क्षण भर के लिए भी निकालना पसन्द नहीं करते।

❀

आपकी शुभ सम्मति है कि भारतीय स्त्रियों को 'वोटाधिकार' बिल्कुल नहीं मिलना चाहिए, अन्यथा अल्लाह मियाँ की यह बा-मुशक़्क़त तैयार की हुई ख़ुदाई एकदम तहस-नहस हो जायगी और वे बेचारे (यानी बूढ़े अल्ला मियाँ) बेमौत मर जायँगे या इसी शोक में ज़हर खा लेंगे!

❀

उर्दू के एक शायर (हलीम साहब की तरह 'ग़ज़नवी' ही रहा होगा) ने लिखा है कि—'मगस

को बाग़ में जाने न दीजे, कि नाहक खून परवानों का होगा!' अर्थात् मधुमक्खी को बाग़ में न जाने दो, क्योंकि वह वहाँ से फूलों का रस लाएगी, उससे अपने मोमी-छत्ते की पुष्टि करेगी। मोम की बत्तियाँ बनेगी। वे जलाई जायँगी, जिनसे पतिङ्गे जलेंगे!

❀

तदनुसार अगर औरतों को वोट देने का अधिकार मिल जाएगा तो वे घर-गृहस्थी का काम और बच्चे देना छोड़ कर दिन-रात 'वोट' ही दिया करेंगी! बस, कुछ दिनों में या तो अल्लाह मियाँ की सारी ख़िलक़त ही चौपट हो जायगी या ख़ुदा न करे, यह जनन-कार्य सर हलीम जैसे बुज़ुर्गों के सिर आ पड़ेगा! सचमुच बड़ी क़बाहत होगी!

❀

दाढ़ी को बचा कर, ज़रा सावधानी से चूल्हा फूँक लेना कोई बड़ी बात नहीं। हर होलीनेस के बिगड़ बैठने पर अपने राम आसानी से यह काम कर सकते हैं। आयुष्मान लल्ला को सौचा कर उसकी आँखों मे काजल कर देना—यहाँ तक भी ग़नीमत है। मगर—मगर वह 'प्रसव की पीर!' या बाबा शाहमदार, इस ज़हमत से तो बचाए ही रखना!

❀

ऐसी दशा में स्त्री-वोटाधिकार-विरोधी सज्जनों की दूरन्देशी की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करने को अपने राम बाध्य हैं। बेटा जिए, सर हलीम ग़ज़नवी साहब का! सरकार एक 'सर' देकर उन्हे 'त्रिशिरा' बना दे! स्त्रियों के वोटाधिकार का विरोध करके आपने अपने हम-जिन्सों का असीम उपकार किया है। अरी बाहरी बुढ़िया ग़ज़नी, अभी भी तेरी झोली में ऐसे-ऐसे लाल पड़े हुए हैं!!!

❀

विषय प्रतिपादन-पटु ग़ज़नवी साहब जब बोलने लगते हैं, तो बेतहाशा बोलते हैं—विषय का बखिया उधेड़ कर रख देते हैं! अथवा यों कहिए कि 'हिज़ मास्टर्स वॉयस' को भी मात कर देते हैं। आपकी राय है कि अगर स्त्रियों को वोटाधिकार प्राप्त हो जायगा, तो इससे उनका कोई लाभ न होगा। क्योंकि 'शरीफ़ाएँ' तो परदे मे रहेंगी और देश भर की 'अवाञ्छिता' स्त्रियाँ कौन्सिलों में पहुँच जाएँगी।

❀

हमें तो मालूम होता है कि भारतीय मातृ-जाति के प्रति यह असीम श्रद्धा अल्लाहताला ने अपने दस्त-मुबारक से ही ग़ज़नवी साहब के अन्दर ठूँस दिया है! भारत की शिक्षिताएँ—श्रीमती सरोजिनी देवी, श्रीमती कमला देवी, श्रीमती अरुणा देवी आदि विदुषियाँ, जो भावी शासन-सभाओं में भारतीय स्त्री-समाज का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं, वे चूँकि 'काफ़िरानियाँ' हैं, इसलिए हलीम मियाँ जैसे धृष्ट मुसलमान की दृष्टि में 'अवाञ्छिता' हो सकती हैं। क्योंकि देवमूर्त्ति पर टाँग उठा कर × × × कर देने वाले जन्तु-विशेष से देवता के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन की आशा विडम्बना के सिवा और कुछ नहीं हो सकती!

❀

परन्तु श्रीमती शाहनवाज़ ख़ाँ, कुमारी ज़ुबैदा ख़ातून, श्री० ज़किया सुलैमान और मिस शीराज़ ख़ाँ आदि सैकड़ों मुस्लिम विदुषियाँ भी क्या अवाञ्छिताएँ हैं? लाहौल विलाक़ूवत, इल्ला-बिल्ला! अरे भई, हज़रत ग़ज़नवी के कथन का आशय यह है कि देश की स्त्रियाँ अगर मताधिकार प्राप्त कर लेगी तो अवाञ्छिता स्त्रियों को ही चुन-चुन कर कौन्सिलों में भेज देंगी। क्योंकि कोई वाञ्छिता थोड़े ही उनके पास वोट माँगने आएगी!

❀

हमारी राय है कि कम से कम मुस्लिम रमणियाँ तो इस सभ्यतानुमोदित अपूर्व उक्ति के लिए अवश्य ही ग़ज़नवी मियाँ को दाद दें। क्योंकि आपने उन्हें एक नई पदवी प्रदान करके उनके प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा का प्रदर्शन करने के साथ ही उनकी भी इज़्ज़त अफ़ज़ाई कर डाली है।

❀

एक बात और भी आँ हज़रत की खोपड़ी शरीफ़ा में ज़बरदस्ती घुसी चली आ रही है, और वह यह है कि इस मुल्क के काफ़िरों में ऐसे बहुत से अक़्ल के पीछे लट्ठ लेकर दौड़ने वाले मौजूद हैं, जो स्त्रियों के मताधिकार के समर्थक हैं। ऐसी दशा में अगर ग़ज़नवी साहब इस बात का विरोध नहीं करते, तो वल्लाह, उनका ख़ास

ग़ज़नी में पैदा होना ही व्यर्थ हो जाता। क्योंकि काफ़िर जिस बात के समर्थक हों, उसका विरोध कर देना अहले ग़ज़नी का लाज़िमी फ़र्ज़ है।

❀

इतिश्री स्कन्दपुराणे रेवा खण्डे ग़ज़नवी-गपोड़ा नाम पर्वाध्याय की समाप्ति के पश्चात् थोड़ी सी इधर-उधर की भी मुलाहिज़ा हो। क्योंकि बरसात का मौसिम है और चिकित्सा-शास्त्रियों का कथन है कि इस मौसिम में अजीर्ण का प्रकोप अधिक रहता है। ऐसी दशा में एक-आध पुड़िया कोई चटपटा 'चूरन' या बीकानेर की स्वादिष्ट गोलियों का, अगर आप सेवन न करेंगे तो श्रीजगद्गुरु के उपर्युक्त लट्ठ से फ़तवों को हज़म करना ज़रा कठिन हो जायगा। क्यों, समझ गए न?

❀

गत शीतकाल की शारदी वृष्टि के सम्बन्ध में तो इन्द्रदेव कञ्जूसी कर ही गए थे, इधर आषाढ़ से लेकर आधे श्रावण तक के डेढ़ महीने को भी एकदम सूखा ही टरका दिया! भक्तों ने बम्भोला बाबा को नाक तक गङ्गाजल में डुबाया, कर्मकाण्डियों ने कितने ही यज्ञ कर डाले और बेचारे बच्चों ने 'रामजी, रामजी, पानी दो' की टेर से आकाश गुँजा दिया! परन्तु हज़रत टस से मस न हुए! मानो कानों में तेल डाल कर अथवा वैशाखी शिवरात्रि के मेले में घोड़ा बेच कर सो गए थे।

❀

लोग 'त्राहि-त्राहि' पुकार ही रहे थे कि इतने में बुन्देलखण्डवासिनी सखी 'प्रेमा' ने अपना शृङ्गार-रसाङ्क निकाल डाला! अब भला परम रसिक, परियों के अखाड़े के नायक महाराज इन्द्रदेव कैसे चुप रह सकते थे। झख मार कर बरसना पड़ा! इधर हिन्दी-साहित्य 'रस' से सराबोर हो उठा और उधर पृथिवी माता ने अपने करोड़ों बाल-गोपालों के साथ तृप्ति की साँस ली!

❀

'देह गेह सब सन तृन तोरे' अथवा 'तापस वेष विशेष उदासी' या 'उदासिनी', निराभरणा और गैरिक-वसना (हाथ में एक त्रिशूल की नितान्त आवश्यकता थी) योगिनी की भाँति सखी का यह दोनों हाथों से 'दौलते-हुस्न' लुटाना देख कर, क़सम ख़ुदा की, अपने राम की तबीयत एकदम फड़क उठती है। मालूम होता है, चिरसञ्चित रस-राशि लुटा कर कोई वियोगिनी किसी निर्जन वन में धूनी रमाने के लिए चल पड़ी है!

❀

बिहारी, देव, मतिराम, पजनेस और पद्माकर की अपूर्व कीर्त्ति-कौमुदी छायावाद की अमानिशा के घनान्धकार में विलीन हो रही थी। ऐसे समय में जो है सो जाकर करकों, "अभ्युत्थानम् धर्मस्य × × × सम्भवामि युगे-युगे" के अनुसार परम् रसवती श्रीमती 'प्रेमा' ने प्रकट होकर सरस रस-वर्षण द्वारा सारी कलुष-कालिमा को धो बहाया! धन्योसि बाले! बस—

बना रहे अहिवात तुम्हारा,
जौ लौ गङ्ग-जमुन की धारा!

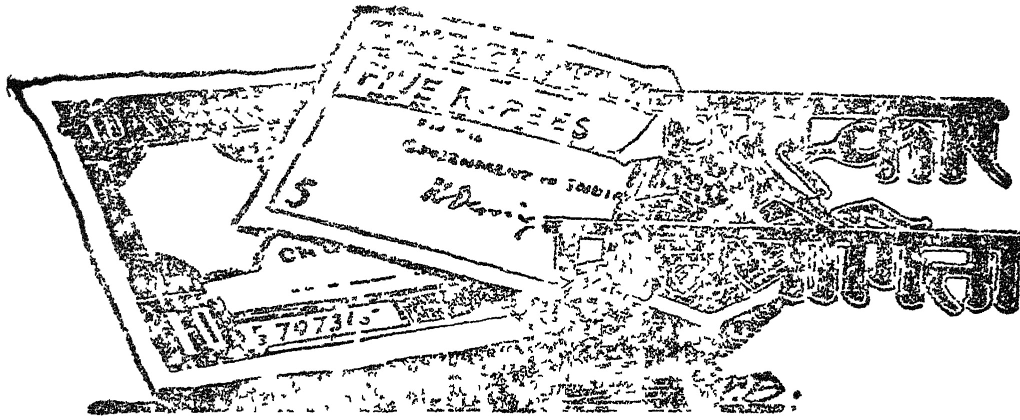
❀

हिज़ होलीनेस को इस बात का दुःख है कि हिन्दी-साहित्य-संसार में मृतवत्सा रोग बहुत बुरी तरह फैल रहा है! बेचारी प्रसूतियों की सारी प्रसव-पीड़ा व्यर्थ चली जाती है। कितने ही बच्चे माताओं के गर्भ-गह्वर से निकलते ही—'केहाँ-केहाँ' करके—काल-कवलित हो जाते हैं! डिप्लोमेड धात्रियों की देख-रेख में, बकरी का दूध आदि सेवन करके जो आयु के दो-चार महीने व्यतीत कर ले जाते हैं, वे भी अन्त में अन्नाभाव वश चल बसते हैं!

फूल तो दो दिन बहारे जाँ फ़िज़ाँ दिखला गए!
हसरत उन ग़ुञ्चों पे है जो बिना खिले कुम्हला गए!!

❀

'जागरण', 'लोकमत', 'रँगीला' और 'पतित-बन्धु' एक से एक सुन्दर, होनहार, मनोहर आए और अपनी शिशु-सुलभ सौन्दर्य-छटा दिखा कर काल के गाल में समा गए! लेहाज़ा प्रसव-पटु गुल्फस्मश्रु-समन्विता मनचलियों से हिज़ होलीनेस की विनम्र प्रार्थना है कि ऋतु-स्नान के समय किसी ज्योतिषी से शुभ मुहूर्त दिखवा लिया करें। साथ ही अगर कुछ मङ्गलानुष्ठान की व्यवस्था हो सके तो और भी अच्छी बात है।



इस मास की पहेली

नियम :—

१—यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। कूपन पर ग्राहकों को ग्राहक-संख्या अवश्य लिखनी चाहिए। प्रत्येक ग्राहक जितने चाहे उत्तर भेज सकता है। एक उत्तर तो निःशुल्क होगा, परन्तु उसके बाद प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना आवश्यक होगा। जो ग्राहक नहीं है, उन्हें पहले उत्तर के लिए ।।।) का टिकट तथा बाद के उत्तर के लिए ।) का टिकट भेजना चाहिए।

२—इसमें भाग लेने वालों को नीचे के ख़ानों की पूर्ति करनी है। सहायता के लिए नीचे तालिका दी हुई है। उदाहरणार्थ, सीधा चलने वाला नम्बर १ पहले ख़ाने से काले ख़ाने तक है और नीचे चलने वाला नम्बर बारहवें ख़ाने से अठारहवें तक है।

३—ख़ानों को भर कर उत्तर नीचे लिखे पते पर भेजिए :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग

चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

या—The CHAND Puzzle Deptt.,

The Chand Press, Ltd , Allahabad

४—उत्तर हमारे पास ता० ५ सितम्बर तक आ जाना चाहिए। इसके बाद उत्तर भेजने वालो के उत्तरों पर कोई विचार न किया जा सकेगा, चाहे वे उत्तर ब्रह्मा या आसाम-निवासियों के ही क्यों न हो।

५—उत्तर सादा काग़ज़ या पोस्टकार्ड पर भी भेजा जा सकता है। परन्तु उसके साथ कोई पत्र नहीं रखना चाहिए।

६—कृपया उत्तर की नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या संशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जायगा।

७—जिसका उत्तर हमारे उत्तर से मिल जायगा, उस ग्राहक को २५) नक़द या 'चाँद' ५ वर्ष के लिए मुफ्त दिया जायगा। जो ग्राहक नही हैं, उनको 'चाँद' दो वर्ष तक मुफ्त मिलेगा। यदि कोई भी उत्तर सही न होगा, तो सब से कम अशुद्धियो वाले ग्राहक को 'चाँद' तीन वर्ष तक मुफ्त दिया जायगा और जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ्त मिलेगा। निर्णय का सारा अधिकार सम्पादक को है। यदि एक से अधिक उत्तर ठीक होगे, तो पुरस्कार उत्तरदाताओं मे बराबर बाँट दिया जायगा।

तालिका

सीधे चलने वाले (Across) :—

१—एक संख्या

३—एक पुरुष का नाम

६—एक क्रिया का आज्ञावाची रूप।

८—जो धोखे से माल ले लेते हैं।

९—एक छोटा पक्षी

११—स्वर्ग

१३—बोझ का एक परिमाण

१५—पति

१७—एक फूल का नाम

१८—हिन्दी का एक प्रसिद्ध प्राचीन कवि

१९—एक प्रकार का वस्त्र

नीचे चलने वाले (Down) :—

१—एक संख्या

२—एक पौधा

४—बालकों का एक गुण

५—शहर

७—प्राचीन काल के नगरों में सबसे धनी व्यक्ति

९—'जुगल मनोहर दोषी' के प्रथम अक्षर (Initial)

१०—एक आभूषण

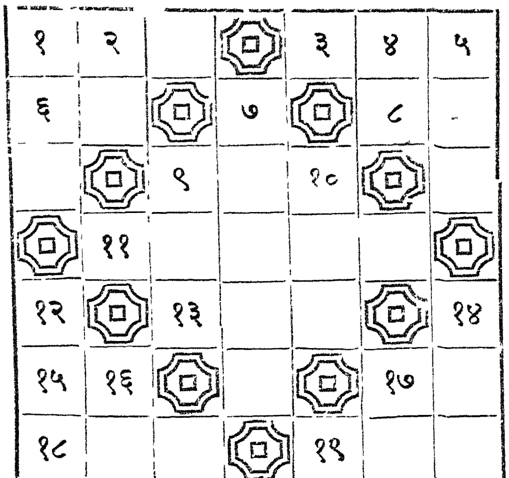
१२—दिशा का एक सङ्केत

१४—पुष्प

१६—वह ही

१७—गीत का एक भाग

कूपन



मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

देवी जी थिएटर देख कर बहुत देरी से घर पहुँची थीं। आपने पति देवता से कहा—तुम समझते होगे, मैं कहीं खो गई!

पति—नहीं प्यारी, मैं ऐसा सौभाग्यशाली नहीं हूँ।

पति—कुछ भी हो, मनुष्य को अपने घर से ज़्यादा आराम कहीं नहीं मिल सकता।

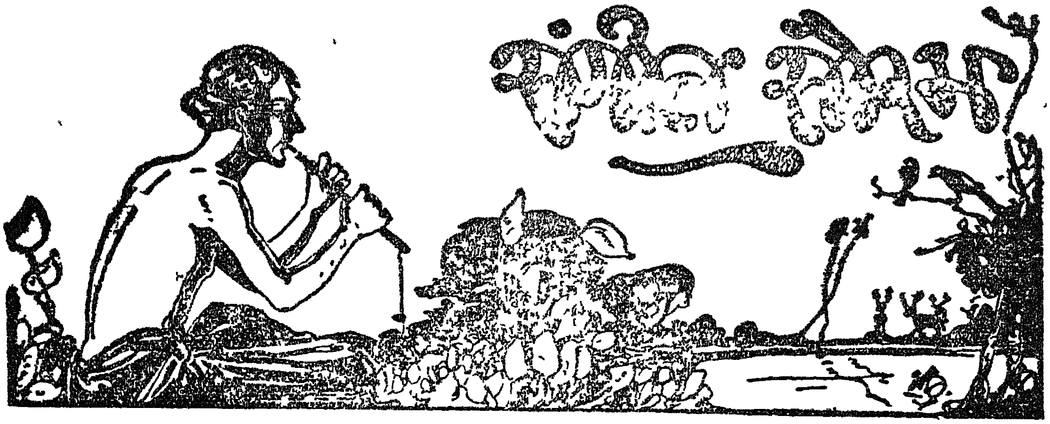
पत्नी—मालूम होता है, क्लब में किसी से लड़ाई हो गई है।

मित्र—इसमें शक नहीं तुम्हारी नौकरी बड़ी ही ख़राब है। कोई तुम्हारी सूरत तक नहीं देखना चाहता।

महाजन का मुनीम—जी, सो बात नहीं है। मैं जिस किसी के पास जाता हूँ, वही कहता है कि फिर कभी आइएगा।

एक मित्र—क्यों जी, तुमने अपने इकलौते लड़के को हवाई जहाज़ के बेड़े में क्यों दाख़िल करा दिया?

दूसरा मित्र—सिर्फ़ इसलिए कि ज़मीन का कुछ बोझ तो हलका हो।



[सम्पादक—श्री० नीलू बाबू]

राग भीमपलाश्री

[शब्दकार तथा स्वरकार— श्री० जितेन्द्रनारायण राय चौधरी (नीलू बाबू के शिष्य)]

ताल झूल मात्रा १०

स्थायी—शङ्कर शिव हर हर,
बम महादेव तव नाम ।
अन्तरा—देवेश सुरेश महेश त्रिपुरारी,
जय जय गौरीपति जय सन्तन हितकारी ।

स्थायी

×		०		१		२		०	
क			क					क	
न	—	ध	न	प	—	म	ध	ग	म
शं	ऽ	क	र	शि	व	ह	र	ह	र
		क				क		क	
प	सं	न	ध	प	म	ग	र	ऩ	स
ब	म	म	हा	दे	व	त	व	नां	म

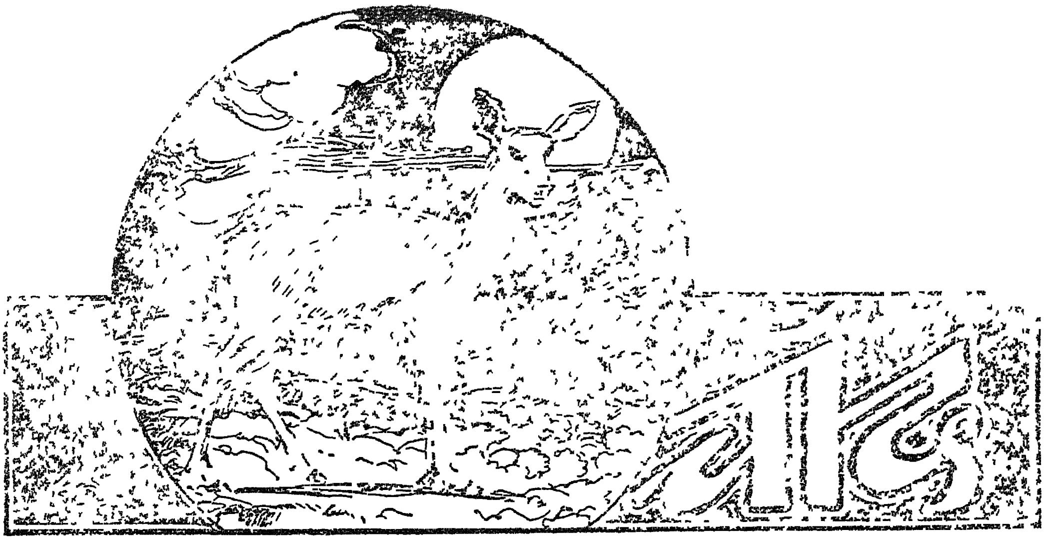
अन्तरा

		क			क				
म	प	ग	म	प	न	सं	—	—	सं
दे	ऽ	वे	ऽ	श	सु	रे	ऽ	ऽ	श
		क			क		क		
सं	रं	गं	रं	सं	न	ध	न	प	—
म	हे	ऽ	श	त्रि	पु	रा	ऽ	री	ऽ
		क				क			
म	प	ग	म	प	सं	न	ध	प	—
ज	य	ज	य	गौ	ऽ	री	ऽ	प	ति
		क				क		क	
म	प	ग	म	प	म	ग	र	ऩ	स
ज	य	सं	ऽ	त	न	हि	त	का	री

तबले का बोल :—

धा	आ	त	त	धा	तित	धा	तिट	गदि	गन

नोट :—यह गाना ख़ूब विलम्बित लय में गाना चाहिए ।



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक
इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि
हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २] सितम्बर, १९३२ [संख्या ५, पूर्ण संख्या ११९

यौवन के पथ पर—

[प्रोफ़ेसर रामकुमार जी वर्मा, एम० ए०]

इस जग में मैं जीवित हूँ, कण-कण के परिवर्तन से;
मुझको तुमने बाँधा है, इन साँसों के बन्धन से।

चर हूँ, पर नियति नचाती, मुझको मेरे ही मन से;
नश्वरता से लड़ता हूँ, यौवन के अवलम्बन से।

मैं भूला अपनापन-पथ, जग के इस अविदित वन से,
प्रेयसि! आओ तारों के झिलमिल प्रकाश कम्पन से॥



चाँद

सितम्बर, १९३२

भारतीय श्रमजीवी

भारतवर्ष प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश रहा है। आरम्भ से ही यहाँ के निवासी प्रायः छोटे-छोटे गाँवों में रहते आए हैं। ये लोग केवल खेती और पशु-पालन द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते थे। गाँव भर में केवल दस-पाँच घर ऐसे होते थे, जो खेती के सिवा किसी दस्तकारी द्वारा अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण करते हों। मिसाल के लिए लुहार, कुम्हार, जुलाहा, चमार आदि। पर ये लोग अपने पेशे के साथ ही थोड़ा बहुत खेती का काम भी करते रहते थे। क्योंकि गाँवों की जन-संख्या कम होती थी और गाँव वालों की आवश्यकताएँ भी बहुत नियमित रहती थीं, इसलिए उनको पर्याप्त काम किसी-किसी समय ही मिलता था। उपरोक्त पेशे वालों के अतिरिक्त गाँव वालों को समय-समय पर सुनार, दर्ज़ी, रँगरेज, मनिहार आदि की भी आवश्यकता पड़ती थी, पर इनकी पूर्ति वे दस-पाँच मील की दूरी पर किसी छोटे कस्बे में जाकर कर लेते थे।

इन गाँवों और क़स्बों के सिवा कुछ बड़े नगर भी थे, जहाँ शिल्पकला और कारीगरी का विशेष प्रचार था। ये नगर या तो राजाओं और बादशाहों की राजधानी थे अथवा बनारस और मथुरा जैसे तीर्थस्थान। इन स्थानों में बड़े-बड़े व्यापारी भी पाए जाते थे, जो तैयार होने वाले माल को दूर-दूर के स्थानों तक पहुँचा देते थे। इन स्थानों मे जो माल बनता था, वह सौन्दर्य और कला की दृष्टि से उच्च कोटि का होता था और अधिकांश में देश तथा विदेशों के श्रीमान पुरुषों के उपयोग में आता था। ग़रीबों तक उसकी पहुँच शायद ही होती थी, क्योंकि हाथ से बनाए जाने के कारण उसमें बहुत परिश्रम होता था और समय भी लगता था, इसलिए सम्भवतः उसका मूल्य अधिक होता था और धनवान लोग ही उसे ख़रीद सकते थे। इन वस्तुओं की श्रेष्ठता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बड़े-बड़े राष्ट्रों के सम्राट और प्रधान व्यक्ति उनको बड़े आग्रह से लेते थे। जिस प्रकार विदेशी माल की चमक-दमक और सुन्दरता को देख कर इस समय हमारी

आँखे चकाचौंध हो जाती हैं, उसी प्रकार प्राचीन काल में भारतीय कारीगरों की बनाई वस्तुएँ अन्य देश वालों को आश्चर्य में डाल देती थीं। यहाँ के व्यापारी उन वस्तुओं को जहाज़ों में भर कर ईरान, अरब, टर्की, यूनान और इटली तक ले जाते थे और उसके बदले में सोना चाँदी लाकर देश की सम्पत्ति की वृद्धि करते थे। भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित इम्पीरियल गैज़ेटियर तक में यह स्वीकार किया गया है कि ईसा की पहली शताब्दी में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध रोम के साथ था और वहाँ से प्रायः ६० लाख रुपए का सोना-चाँदी प्रतिवर्ष इस देश में आता था। मुग़ल बादशाहों के ज़माने में इस व्यापार की और भी वृद्धि हुई और यूरोप के तमाम प्रधान देशों में भारतीय माल की माँग होने लगी।

पर मुग़ल साम्राज्य के पतन होने के बाद जैसे ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पैर इस देश में जमे, उसने यहाँ के शिल्प तथा व्यवसाय का गला घोंटना आरम्भ कर दिया। उसने बलपूर्वक यहाँ के कच्चे माल को विलायत भेजना और विलायत में बने माल को यहाँ बेचना आरम्भ किया। इसके फल से कुछ ही दिनों में हालत बिलकुल बदल गई और यहाँ के शिल्पकार नष्ट-भ्रष्ट हो गए। उनको या तो खेती का सहारा लेना पड़ा या छोटी-मोटी नौकरी करके प्राणों की रक्षा करनी पड़ी।

कुछ दिन बाद यूरोप में विज्ञान द्वारा मैशीनों की आश्चर्यजनक उन्नति होने लगी और उनके द्वारा माल बनाने के सम्बन्ध में घोर क्रान्ति हो गई। जितना काम एक शिल्पकार हाथ द्वारा दिन भर में कर सकता था, उससे अधिक काम मैशीन द्वारा घण्टे भर से भी कम में किया जा सकता था। फिर मैशीन का माल देखने में भी अधिक साफ़ और भड़कीला होता था। इससे रही-सही दस्तकारी का भी नाश हो गया और भारतवर्ष तैयार माल के लिए सर्वथा विदेशों का मुखापेक्षी हो गया।

आधुनिक उद्योग-धन्धों का जन्म

यह अवस्था अधिक दिनों तक क़ायम न रह सकी। जैसे ही देश में शान्ति स्थापित हुई और लोगों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन का अवसर मिला, उनका ध्यान मैशीनों और कारख़ानों की तरफ़ गया। हिन्दू व्यापारी स्वभावतः चतुर और दूरदर्शी थे और समय-सूचकता का भी उनमें अभाव न था। उन्होंने अवसर आते ही अपने कारबार के ढङ्ग को बदल दिया और हाथ द्वारा माल तैयार करने के तरीक़े को छोड़ कर आधुनिक ढङ्ग के कारख़ाने स्थापित किए। इस कार्य में अग्रणी बम्बई और अहमदाबाद के व्यापारी थे। सन् १८५१ में बम्बई में सब से पहली मिल क़ायम हुई। दस-बारह वर्ष के भीतर ही उनकी संख्या एक दर्जन हो गई। सन् १८७६ में तमाम हिन्दुस्तान में ६३ कपड़े की मिलें थीं, जिनमें ५१ हज़ार मज़दूर काम करते थे। तब से आज तक इस व्यवसाय की सन्तोषजनक उन्नति हुई है और मिलों की संख्या २६४ और मज़दूरों की २ लाख ६० हज़ार तक जा पहुँची है। जूट-मिलों की भी इसी प्रकार उन्नति हुई है। सन् १८८० में उनकी संख्या २२ थी और उनमें २७ हज़ार मज़दूर काम करते थे। इस समय उनकी संख्या क्रमशः ६९ और २ लाख १६ हज़ार है। यही परिस्थिति लोहे, काग़ज़ और शीशे के कारख़ानों और कोयलों की खानों आदि की है। इस समय देश में सब प्रकार की फ़ैक्टरियों की संख्या ८,१२९ और उनमें काम करने वाले मज़दूरों की १५ लाख ४३ हज़ार १६६ तक जा पहुँची है। इनमें से १२,४६,१६५ मर्द; २,५७,१६१ स्त्रियाँ और ४६,८४३ बच्चे हैं। इनके सिवाय करीब १० लाख व्यक्ति रेलवे में, ७॥ लाख चाय वग़ैरह के बगीचों में, २ लाख ६१ हज़ार खानों में, १ लाख ४० हज़ार जहाज़ों और बन्दरगाहों पर काम करते हैं। ये सब लोग श्रमजीवी हैं, पर विस्तार-भय से इस लेख में फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की चर्चा ही विशेष रूप से की जायगी।

कल-कारख़ानों की उपरोक्त उन्नति भारतवासियों के लिए एक दृष्टि से प्रशंसा का विषय है। क्योंकि इस सम्बन्ध में इस देश को वे साधन और सुभीते उपलब्ध न थे, जो इङ्गलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशों को प्राप्त हैं। न तो यहाँ पर उन देशों के समान ज्ञान-विज्ञान की उन्नति हुई है और न विविध प्रकार की मैशीनों का आविष्कार। मैशीनों की कमी यहाँ के कल-कारख़ानों की उन्नति में सदा बाधा-स्वरूप रही है।

इसके कारण इस देश में कारख़ाना खोलने का ख़र्च दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक पड़ता है। मैशीनें तैयार करने के लिए आवश्यक लोहे और कोयले का भी यहाँ अभाव रहा है। यद्यपि इन पदार्थों की यहाँ की भूमि में कमी नहीं है, पर इन खानों की वृद्धि बहुत धीरे-धीरे हुई है। कोयले की कमी के कारण कारख़ानों के चलाने का ख़र्च भी यहाँ अधिक पड़ता है। यहाँ के मज़दूरों में भी कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं, जिनके कारण इन व्यवसायों की यथोचित उन्नति नहीं होने पाती।

इन असुविधाओं के होते हुए भी इस देश ने जो औद्योगिक उन्नति की है, उसका कारण यह है कि यहाँ के व्यवसायियों को कुछ ऐसे सुभीते भी प्राप्त हैं, जो अन्य देशों को नहीं हैं। उनमें सर्वप्रधान यह है कि जिस प्रकार इङ्गलैण्ड आदि को कच्चा माल पाने और तैयार माल को बेचने के लिए विदेशों पर आधार रखना पड़ता है, उस तरह की परिस्थिति भारतवर्ष की नहीं है। यहाँ पर रुई, जूट आदि सब प्रकार के कच्चे पदार्थ प्रचुर परिमाण में मिलते हैं, और कारख़ानों में बनने वाले माल को ख़रीदने के लिए बहुत बड़ी जन-संख्या भी मौजूद है। एक सुभीता यह भी है कि जन-संख्या की अधिकता और ग़रीबी के कारण यहाँ मज़दूर अन्य देशों की अपेक्षा सस्ते मिल जाते हैं।

मज़दूर कहाँ से आते हैं ?

भारतवर्ष की फ़ैक्टरियों में जितने मज़दूर काम करते हैं, वे प्रायः सब गाँवों के रहने वाले होते हैं। यद्यपि कारख़ानों का अस्वास्थ्यकर और बन्धनयुक्त जीवन इन खुली हवा में रहने वाले स्वच्छन्द प्रकृति के देहातियों के लिए बहुत कष्टकर प्रतीत होता है, पर कितने ही कारणों से लाचार होकर उनको अपनी प्रिय जन्मभूमि छोड़नी पड़ती है। इनमें मुख्य कारण तो यह है कि आजकल जन-संख्या की वृद्धि के कारण खेती के लायक़ ज़मीन का अभाव होता जाता है, और धीरे-धीरे ज़मीन की उर्वरा-शक्ति भी घटती जाती है। इससे कितने लोगों को तो ज़मीन मिलती ही नहीं और जिनको मिलती है, उनमें से कितनों के ही खेतों की उपज इतनी नहीं होती, जिससे वे लगान इत्यादि चुका कर अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण कर सकें। फ़सल के ख़राब हो जाने या अकाल पड़ जाने की दशा में इनका कष्ट और भी बढ़ जाता है और उनको लाचार होकर किसी कारख़ाने में जाकर रुपए कमाने की चेष्टा करनी पड़ती है। दूसरा कारण यह है कि यहाँ के अधिकांश लोग अपनी प्राचीन प्रवृत्ति के कारण खेती को इतना महत्वपूर्ण समझते हैं कि उसके द्वारा भरण-पोषण न हो सकने पर भी उस पर से अपना हक़ छोड़ना नहीं चाहते। इसलिए किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसकी ज़मीन तमाम लड़कों को बाँटी जाती है। उन लड़कों के लड़के भी ऐसा ही करते हैं। परिणाम-स्वरूप कुछ दिनों में ज़मीन इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाती है कि उसके द्वारा उन लोगों का गुज़ारा हो सकना असम्भव हो जाता है। ऐसे लोगों को भी इस बात की आवश्यकता होती है कि वे कुछ दिनों के लिए शहर में जाकर कुछ रुपया कमा लें, ताकि घर का काम चल सके। जो लोग संयुक्त-कुटुम्ब-प्रथा के अनुसार रहते हैं और जिनके पास इतनी ज़मीन नहीं होती कि घर के तमाम लोग उसमें काम कर सकें, तो उनमें से दो-एक आदमी कारख़ानों में चले जाते हैं। इससे घर का बोझ हलका हो जाता है और वे थोड़ा-बहुत रुपया भी अपने घर वालों के सहायतार्थ भेजते रहते हैं। इन कारणों के सिवा कुछ लोग सामाजिक अत्याचारों से तङ्ग आकर भी गाँवों का रहना छोड़ कर शहरों में जा बसते हैं, और कारख़ानों में काम करने लगते हैं। गाँवों के लोग सामाजिक और धार्मिक मामलों में शहर वालों की अपेक्षा अधिक कट्टर और लकीर के फ़क़ीर होते हैं और वहाँ किसी व्यक्ति को इन विषयों में स्वाधीनता मिल सकनी असम्भव है। वहाँ पर जो लोग किसी ग़ैर जाति की स्त्री से विवाह कर लेते हैं या विधवा-विवाह वग़ैरह करते हैं या किसी अन्य सामाजिक प्रथा के विरुद्ध चलते हैं, उनको प्रायः इतना तङ्ग किया जाता है कि उनका वहाँ ठहर सकना कठिन हो जाता है। उन लोगों को अपना कल्याण इसी में दिखलाई देता है कि कारख़ाने में जाकर काम करें, जहाँ जात-पाँत के बन्धनों की बहुत कम परवाह की जाती है।

श्रमजीवियों की अस्थिर दशा

पर इस प्रकार कारख़ाने में काम करने के लिए आने वालों में एक ख़ासियत यह होती है कि वे कभी

अधिक दिनों तक जम कर काम नहीं करते। जिनका घर पास होता है, वे कुछ महीनों में और जिनका दूर होता है, वे एक-दो साल में अपने घर अवश्य जाते हैं। कुछ तो चार-छः महीने बाद लौट आते हैं, पर शेष तब तक कारख़ाने का ख़्याल नहीं करते, जब तक कि फिर किसी आर्थिक सङ्कट में न फँसे। इन लोगों के लौटने का एक कारण तो यह होता है कि अपने खेतों की, जिन्हें वे अपने घर वालों या रिश्तेदारों के भरोसे छोड़ गए थे, देख-भाल करें और दूसरा यह कि अपने स्त्री-बच्चों से, जिन्हें वे अनेक प्रकार की असुविधाओं के ख़्याल से साथ नहीं ले जाते, भेंट कर लें। ख़ासकर जो लोग संयुक्त परिवारों में रहते हैं, वे तो अपने स्त्री-बच्चों को अवश्य ही गाँव में छोड़ जाते हैं। घर वाले भी उनको यह सोच कर साथ में नहीं जाने देते कि इनके कारण शहर में नौकरी के लिए जाने वाला व्यक्ति घर से सम्बन्ध-विच्छेद न कर सकेगा और कुछ न कुछ सहायता करता रहेगा। कितने ही लोग तो, जिनके घर में कोई काम करने लायक़ मर्द नहीं होता, प्रत्येक फ़सल के अवसर पर महीने-दो महीने के लिए नौकरी छोड़ कर गाँव चले जाते हैं। कितने ही बिना ज़मीन वाले मज़दूर भी फ़सल काटने आदि के अवसर पर, जब कि गाँवों में मज़दूरों की माँग बहुत बढ़ जाती है और मज़दूरी भी काफ़ी मिलती है, कारख़ानों से गाँवों को चल देते हैं।

श्रमजीवी-दल की उत्पत्ति में बाधा

इस प्रवृत्ति का एक हानिकारक परिणाम यह होता है कि इस देश के मज़दूर मैशीन द्वारा कार्य करने में निपुणता प्राप्त नहीं कर पाते। इससे न तो वे काफ़ी वेतन पा सकते हैं और न कारखाने वाला यथोचित नफ़ा उठा सकता है। यही कारण है कि यहाँ के मज़दूरों को योग्यता की दृष्टि से अन्य देश के मज़दूरों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ माना जाता है। आम तौर पर लोगों का ख़्याल है कि एक अङ्गरेज़-मज़दूर तीन या चार हिन्दुस्तानी मज़दूरों के बराबर काम करता है। एक बड़ी हानि और भी है। इसके कारण इस देश में एक ऐसे श्रमजीवी-दल की सृष्टि नहीं होने पाती, जो औद्योगिक क्षेत्र को ही प्रधान समझे और इसमें अपना प्रभाव बढ़ाने की चेष्टा करे। ऐसे श्रमजीवी-दल की सृष्टि हुए बिना भारत कभी विदेशियों के पञ्जे से स्वाधीनता लाभ कर सकेगा या नहीं, यह सन्देहजनक है। क्योंकि कृषि-कार्य करने वालों की परिस्थिति ऐसी नहीं होती कि वे कोई बड़ा सङ्गठन बना कर देश की स्वाधीनता जैसे महान कार्य को पूरा कर सकें। साथ ही उन सब की अवस्था में इतना अन्तर होता है कि उनमें कभी एकात्मता का भाव उत्पन्न ही नहीं होता। एक सौ बीघा ज़मीन रखने वाले किसान का स्वार्थ पाँच बीघे रखने वाले से कदापि नहीं मिल सकता। क्योंकि उन दोनों की आर्थिक अवस्था में बहुत अन्तर होगा और जिन बातों का कष्ट तथा अभाव एक अनुभव करता होगा उसका सम्भवतः दूसरे को पता भी न होगा। इसके अतिरिक्त तमाम किसानों का अधिकार ज़मीन पर एक सा नहीं होता। किसी का अधिकार पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए स्थायी होता है और किसी को ज़मींदार इच्छा करते ही हटा देता है। किसी को ज़मीन का लगान एक रुपया बीघा देना पड़ता है और दूसरे को उसी तरह की ज़मीन का दस रुपए बीघा। ऐसे भिन्न-भिन्न आर्थिक दशा वाले लोग किस प्रकार एक ही उद्देश्य के लिए मिल कर खड़े हो सकते हैं। इसके सिवाय गाँव इतने बिखरे हुए, दूर-दूर और एक-दूसरे की दशा से अनभिज्ञ होते हैं कि उनका एक नियत समय पर शीघ्रतापूर्वक कार्य कर सकना या आन्दोलन उठा सकना बड़ा कठिन है। इसके विपरीत कारख़ाने में काम करने वाले मज़दूर एक सेना की भाँति सङ्गठित और आज्ञापालन के अभ्यस्त हो जाते हैं। उनको एक साथ उठना, काम पर जाना और खाना-पीना तथा सोना होता है। उनकी छुट्टी तथा दिल-बहलाव का समय तथा ढङ्ग भी प्रायः एक ही होता है। उनकी आर्थिक दशा प्रायः समान होती है, सबका खाना-पीना, कपड़े आदि प्रायः मिलते-जुलते होते हैं। कारखाने में उनको समान रूप से कष्ट या आराम उठाना पड़ता है और पूँजीपति या शासक उनके लिए जो नियम बनाते हैं, उनका प्रभाव सब लोगों पर एक सा पड़ता है। उनमें जात-पाँत और मज़हब के बन्धन भी बहुत शिथिल हो जाते हैं और जिन लोगों से उनका आर्थिक हित समान होता है,

उन्हीं को वे अपना साथी समझते हैं। इसी प्रकार का दल देश के उद्धार के लिए कमर कस कर खड़ा हो सकता है, और एक-दूसरे से कन्धा भिड़ा कर स्वतन्त्रता के लिए प्राणपण से चेष्टा कर सकता है। खासकर वर्तमान युग में, जबकि शारीरिक बल और तोप-बन्दूकों की अपेक्षा रुपए की शक्ति बढ़ गई है, श्रमजीवी दल ही, जोकि वास्तव में सम्पत्ति का जन्मदाता है, आर्थिक संग्राम मे विजय प्राप्त कर सकने में समर्थ है।

श्रमजीवियों की वर्तमान दशा

पर वर्तमान समय में श्रमजीवियों की दशा जैसी निर्बल और शोचनीय हो रही है, उसे देखते हुए यह विश्वास नहीं होता कि वे कभी इस महान् कार्य को पूरा कर सकने में सफल हो सकेंगे। इस समय वे ऐसी दुर्गति में पड़े हैं और अन्यायों के शिकार हो रहे हैं कि किसी बड़े कार्य या बड़ी बात की कल्पना भी उनके दिमाग़ में नहीं आ सकती, उनकी दशा पशुओं के समान हो गई है और सिवा पेट भरने और ज़िन्दा रहने के और किसी बात का ख़्याल ही उनको नहीं आता।

बम्बई, कलकत्ता आदि बड़े शहरों में जो मज़दूर काम करते हैं, उनके घरों को अगर आप एक बार देख ले, तो आप आश्चर्य करने लगेंगे कि आख़िर इनमें रह कर वे ज़िन्दा किस तरह रहते हैं। एक छोटे से कमरे में, जिसमें न खिड़कियाँ होती हैं, न रौशनदान, पाँच-छः या इससे भी अधिक—आठ-दस तक आदमी रहते हैं! ये कमरे प्रायः सात-आठ वर्ग-गज़ से ज़्यादा नहीं होते। हमें एक ऐसे ही कमरे का दृश्य अब भी स्मरण हो आता है, जिसमें आठ व्यक्ति रहते थे। उन्होंने उसमें एक चारपाई बिछा रक्खी थी, जिस पर दो आदमी सोते थे। दो आदमी उस चारपाई के नीचे पड़ जाते थे। दो-दो व्यक्ति चारपाई के सिरहाने और पैताने की तरफ़ लेट जाते थे। उस कमरे में रोटी करने के लिए गज़ डेढ़ गज़ का एक स्थान था, जिस पर होकर सीढ़ियाँ गई थी। उस स्थान में चूल्हे से सट कर एक और आदमी समा जाता था। इतना करने पर भी शेष बचने वाले एक व्यक्ति को वह स्थान भी प्राप्त नहीं हो सकता था और उसे किसी दूसरे के घर मे या बाहर दरवाज़े पर समय काटना पड़ता था। जाड़े में वे लोग उस कोठरी का दरवाज़ा बन्द कर लेते थे और उन सातों व्यक्तियों को रात भर उसी गन्दी और महा हानिकारक हवा में साँस लेना पड़ता था।

श्रमजीवियों को अन्य लोगों की अपेक्षा कैसे गन्दे और सङ्कीर्ण मुहल्लों में रहना पड़ता है, इसका पता इससे लग सकता है कि बम्बई शहर में, जहाँ औसत हिसाब से प्रति एकड़ ७८.०९ मनुष्य रहते हैं, मज़दूरों की बस्ती की जन-संख्या प्रति एकड़ ६०० से सात सौ तक है। बम्बई में ६६ प्रति सैकड़ा लोग एक ही कमरे में रहते हैं, और औसत तौर पर एक कमरे में चार व्यक्तियों को गुज़ारा करना है, शेष लोगों में से अधिकांश को अपने कुटुम्ब-सहित दो कमरों में रहना पड़ता है, और केवल २० प्रति सैकड़ा तीन कमरों में रहते है। इस अवस्था की भीषणता का अनुमान तब होता है, जब हमको मालूम होता है कि लन्दन जैसे संसार के सब से बड़े शहर में प्रति एकड़ ६० व्यक्ति रहते हैं और एक कमरे में रहने वालों की संख्या केवल ६ प्रति सैकड़ा है और एक कमरे मे दो से भी कम व्यक्ति रहते हैं।

रहने की जगह की ऐसी तङ्गी के कारण श्रमजीवियों की कितनी हानि होती है और उनमें कैसे-कैसे दोष घुस जाते हैं, इसका अनुमान भी साधारण लोगों को नहीं हो सकता। उपरोक्त परिस्थिति में कौटुम्बिक-जीवन का तो सत्यानाश ही हो जाता है। इसके भय से अधिकांश मज़दूर तो अपने घर वालों को गाँव में ही छोड़ जाते है और स्वयं जिस प्रकार बन पड़ता है, सुख-दुःख में दिन काटते हैं। बेचारों को इतना सहारा भी नहीं होता कि बीमार पड़ने पर कोई एक गिलास पानी भी दे सके। जो लोग अपने स्त्री-बच्चों से भी मज़दूरी कराना चाहते हैं, वे उनको साथ ले जाते हैं, पर उनको मकानों के किराए की अधिकता के कारण प्रायः किसी के साथ में मकान लेना पड़ता है। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा गया है कि एक बड़े कमरे में आठ परिवार तक रहते हैं। ऐसी दशा में लज्जा की रक्षा कहाँ तक हो सकती है अथवा चरित्र को कहाँ तक पवित्र रक्खा जा सकता है, इसका अनुमान पाठक स्वयं ही कर लें। सफ़ाई का भी पूरा अभाव रहता है और यदि कोई इसका प्रेमी भी होता है, तो दूसरों के धुएँ और कूड़े के कारण उसका प्रयत्न व्यर्थ जाता है। इस सम्बन्ध में डॉक्टर बर्नेस नाम

की महिला-डॉक्टर का बयान ध्यान से पढ़ने लायक़ है। यह महिला काउण्टेस डफ़रिन फ़ण्ड के ख़र्च से इसलिए नियुक्त का गई थी कि वह सरकार के निर्देशानुसार बम्बई की श्रमजीवी स्त्रियों और उनके प्रसवकाल की अवस्था की जाँच करे। जाँच करते समय उसने मज़दूरों के कितने ही घरों को स्वयं भीतर जाकर भली प्रकार देखा। उसने कितने ही लोगों को ऐसे तहख़ानों या कोठरियों मे रहते पाया, जिनका फ़र्श सड़क से कहीं नीचा था और इसलिए बरसात के समय वे कुण्ड की तरह पानी से भर जाते थे। मज़दूर कैसी तङ्ग जगहों में रहते हैं, इसका भी उसने विशद रूप से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए उसने एक १५ फ़ीट लम्बे और १२ फ़ीट चौड़े कमरे का हाल बतलाया है, जिसमें छः परिवार रहते थे, जिनके लोगों की संख्या कुल मिला कर ३० थी। इनमें से तीन स्त्रियों को बच्चा होने वाला था और इसके लिए उसी कमरे में एक ३ फ़ीट चौड़ा और ४ फ़ीट लम्बा स्थान पर्दा डाल कर अलग कर दिया गया था। हर एक परिवार उसी कमरे में रोटी बनाता था और सबका चौका-चूल्हा अलग-अलग था। ऐसी परिस्थिति का प्रभाव उन गर्भवती स्त्रियों पर कैसा पड़ता होगा, यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। इस दशा को देखते हुए अगर एक कमरे में रहने वाले लोगों के बच्चे बहुत अधिक संख्या में मरें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। डॉ० बर्नेस का कहना है कि उसने इसी तरह के और भी अनेकों कमरे देखे थे।

कारख़ानों में काम करने वाले जो श्रमजीवी सकुटुम्ब शहर में रहते हैं, उनके बच्चों में से बहुत कम जीवित रहते हैं। बम्बई-सरकार के स्वास्थ्य-कमिश्नर का मत है कि उस शहर में प्रति सैकड़ा जितने अधिक बच्चे मरते हैं, उतने शायद ही दुनिया के किसी दूसरे शहर में मरते होंगे। बम्बई-कॉर्पोरेशन की रिपोर्ट से विदित होता है कि उस शहर में जितने बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से तीन चौथाई उन लोगों के यहाँ होते हैं, जो केवल एक कमरे में अथवा एक कमरे के एक भाग में रहते हैं। साथ ही यह भी स्मरण रखना आवश्यक है कि इस प्रकार जितने बच्चे उत्पन्न होते हैं, उनमें से ८६ प्रति सैकड़ा शीघ्र ही काल-कवलित हो जाते हैं। इन अभागे मज़दूरों से तो पशु ही कहीं अच्छे हैं। श्रमजीवियों की स्त्रियों को इसीलिए गर्भ-धारण और प्रसव का भयङ्कर कष्ट उठाना पड़ता है कि उनके हृदय के टुकड़े दो-चार दिन या दो-चार महीने में ही उनको रुला कर चले जायँ। किसी भी समाज की निकृष्ट अवस्था का इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण हो सकता है?

काम के घण्टे और वेतन

भारतीय मज़दूरों को इतना अधिक परिश्रम करना पड़ता है और इतना कम वेतन मिलता है कि वे मनुष्य-जीवन का कोई भी सुख या आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। उनका संसार में जन्म लेना केवल भार-वहन और कष्ट-सहन के लिए होता है। आरम्भ मे जब इस देश में कारख़ानों की स्थापना हुई थी, तब मज़दूरों से काम कराने की कोई सीमा न थी। उस समय मज़दूर बहुत ही अज्ञान और असङ्गठित थे और कारख़ानों की कमी के कारण शीघ्र ही एक नौकरी को छोड़ने के बाद दूसरी नौकरी भी नहीं पा सकते थे। इसलिए मिल-मालिक उनके साथ मनमाना व्यवहार करते थे और १५-१६ घण्टे प्रति दिन तक काम लेते थे। सन् १९०६ तक इस परिस्थिति में बहुत थोड़ा परिवर्तन हुआ। सन् १९०७ में सरकार की तरफ़ से कारख़ानों की जाँच के लिए एक कमीशन नियत किया गया, जिसकी रिपोर्ट से पता चलता है कि उन दिनों में औसत हिसाब से प्रत्येक मज़दूर को १२½ घण्टे काम करना पड़ता था और दोपहर की छुट्टी का समय इसमें शामिल न था। यह समय किसी मिल में ११ घण्टे था और किसी में १३ घण्टे, किसी-किसी मिल मे, ख़ासकर बङ्गाल की जूट-मिलों में मज़दूर १५-१६ घण्टे तक काम करते थे। इसके बाद सरकार ने काम करने का समय क़ानून द्वारा परिमित कर दिया और वर्तमान समय में मज़दूरों को दस घण्टे, किसी-किसी व्यवसाय में ११ और १२ घण्टे काम करना पड़ता है। वे प्रायः सुबह के ६॥ बजे या ७ बजे काम पर जाते हैं और शाम के ५॥ बजे या ६ बजे छुट्टी पाते हैं। बीच में दोपहर के समय एक घण्टे की छुट्टी विश्राम और खाने-पीने को मिलती है। जिन मज़दूरों के स्त्री-बच्चे साथ नहीं रहते अथवा मिल में काम करते हैं, उनको भोजन बनाने का कार्य नौकरी से लौटने पर करना पड़ता है।

इस प्रकार प्रायः सुबह के ४ बजे से रात के नौ बजे तक का समय उनको काम करते ही बीतता है। ऐसी हालत में सांसारिक उन्नति और मनोविनोद की बात तो दूर रही, अपने इष्ट-मित्रों से दुःख-सुख की दो बातें करने अथवा अपनी कष्टपूर्ण परिस्थिति पर विचार करने का भी मौका उनको नहीं मिलता। खाना खाते ही वे थकावट के कारण प्रायः दस-पाँच मिनट में नाक बजाने लगते हैं। यदि वे थोड़ी देर जगना भी चाहें, तो सुबह को उठने में देर होने का भय बना रहता है।

वेतन

इन श्रमजीवियों को जो मज़दूरी दी जाती है, वह प्रायः इतनी होती है कि जिससे वे किसी तरह प्राणों की रक्षा कर सकें। अच्छा खाना या अच्छा पहिनना तो वे जानते ही नहीं, बीमारी की हालत में न वे दवा करा सकते हैं और न पथ्य पा सकते हैं! अगर प्रकृति ने दया-वश चङ्गा कर दिया तो ख़ैर, नहीं तो संसार से चल बसते हैं। उनको अपनी आँखों से अपने छोटे-छोटे बच्चों को रोटी के टुकड़े के लिए रोते या लड़ते-झगड़ते देखना पड़ता है। जाड़े में उनको फटे-टूटे कपड़ों या कबाड़ियों के यहाँ मिलने वाले पुराने कोटों से काम चलाना पड़ता है और गर्मी के दिनों में नङ्गे बदन रहना होता है। यह मामूली मज़दूरी भी उनको सही-सलामत नहीं मिल जाती, वरन् इस पर कितने ही गृद्धों की निगाह लगी रहती है। पहले तो कारख़ाने का मालिक ही उसका एक अंश जुर्माने के स्वरूप में काट लेता है। कारख़ानों में मज़दूरों के साथ बड़ा डाट-डपट का व्यवहार किया जाता है और जहाँ ज़रा सी भूल हुई या काम पर पहुँचने में कुछ देरी हुई, जुर्माना ठोंक दिया जाता है। ब्याज पर रुपया देने वाले पठान या बौहरे भी मज़दूरों का बुरी तरह से रक्त-शोषण करते हैं। यदि कभी बीमारी के कारण या हड़ताल अथवा 'लॉकआउट' के कारण मज़दूर को दस-पाँच रुपए क़र्ज़ लेने की आवश्यकता पड़ गई, तो फिर जन्म भर उससे पिण्ड नहीं छूटता। वह प्रति मास आठ आना या रुपया के हिसाब से चुकाता हुआ पचासों रुपए दे डालता है, तो भी उस दस रुपए में कमी नहीं पड़ती। इस क़र्ज़ के कारण उस ग़रीब को धमकियाँ सहनी पड़ती हैं, गालियाँ सुननी पड़ती हैं और अन्य प्रकार से भी अपमानित होना पड़ता है। इनके सिवा पण्डे-पुरोहित आदि धर्मजीवी भी उस पर घात लगाए रहते हैं और थोड़ा-बहुत हिस्सा झटक ही लेते हैं। भारतीय जनता और ख़ास कर हिन्दुओं का समस्त जीवन धार्मिक नियमों में जकड़ा हुआ है और मनुष्य चाहे कैसे भी कष्ट में, दरिद्रता में क्यों न हो, उसे इन रीति रस्मों के लिए कुछ न कुछ ख़र्च करना ही पड़ता है।

अन्य कष्ट

इन प्रधान-प्रधान कष्टों के अलावा और भी अनेक साधारण कष्ट तथा असुविधाएँ श्रमजीवियों को सहन करनी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ कारख़ानों में न तो उनके विश्राम कर सकने का कोई स्थान होता है, न पीने के पानी और पेशाब-घर का ठीक प्रबन्ध। यह आशा करना तो निरर्थक है कि यहाँ के मिल-मालिक विलायत अथवा रूस आदि के कारख़ानों की तरह मज़दूरों के विश्राम के लिए पक्के और फ़र्श, मेज़, कुर्सी आदि से सुसज्जित कमरे बनवा देंगे। यदि वे उनके लिए टीन या खपरैल का ऐसा छप्पर भी बनवा दें, जहाँ गर्मी की तेज़ धूप और बरसात से बच कर वे बैठ सकें और जलपान कर सकें तो बड़ी बात है। पर अभी अधिकांश कारख़ानों में इस तरह का प्रबन्ध भी नहीं है और मज़दूरों को या तो किसी पेड़ आदि के नीचे समय काटना पड़ता है या वे छुट्टी के समय भी मैशीन के पास ही बन्द हवा में बैठे रहते हैं और उसी गन्दे स्थान में जलपान करते हैं। इसी प्रकार मज़दूरों को पानी का कष्ट उठाना पड़ता है। मज़दूरों की संख्या देखते हुए कारख़ाने में पानी के नलों की बड़ी कमी रहती है और छुट्टी के समय प्रायः पानी पीने के लिए धक्कमधक्का और कहा-सुनी हो जाती है। गर्मी में कितने ही लोगों को प्यासा रह जाना पड़ता है। पेशाब और पाख़ाने का प्रबन्ध क़ानून के अनुसार कारख़ाने वालों को करना पड़ता है, पर ये स्थान इतने गन्दे और दुर्गन्ध-युक्त रहते हैं कि उनमें जाने की इच्छा नहीं होती। सच तो यह है कि मज़दूरों को कारख़ाने वाले मनुष्य ही नहीं समझते और उनके लिए उसी प्रकार की व्यवस्था करते हैं, जिसमें कम से कम ख़र्च हो और किसी भी तरह

काम चल सके। छुट्टी के सम्बन्ध में भी इन ग़रीबों को बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। कारख़ानों के अधिकारी प्रायः इस विषय में बड़ी कठोरता और हृदयहीनता से काम लेते हैं और ज़रूरी से ज़रूरी काम पड़ने पर भी छुट्टी नहीं देते। हमने यहाँ तक देखा है कि यदि मज़दूर अपने किसी सम्बन्धी का देहान्त होने पर उसके शव के साथ श्मशान जाने की छुट्टी माँगता है, तो जवाब मिलता है कि वह इतवार के दिन क्यों नहीं मरा! अपनी स्त्री और बच्चों की भयङ्कर बीमारी के समय भी मज़दूर जल्दी छुट्टी नहीं पाते और अन्त समय में अपने प्रियजनों का मुँह तक देखने से वञ्चित रह जाते हैं। स्वयम् उनको बीमारी की दशा में काम करना पड़ता है और तभी छुट्टी मिलती है, जबकि हालत बहुत ख़राब हो जाती है।

मज़दूर-आन्दोलन

श्रमजीवियों की इस कष्टकर अवस्था का सुधार करने के लिए कितने ही समय से आन्दोलन हो रहा है और उनकी संस्थाएँ (यूनियनें) क़ायम की गई हैं। ऐसी सब से पहली यूनियन सन् १८९० में बम्बई में खोली गई थी, जिसके सञ्चालक श्री० नारायण मेघाजी लोखण्डे नामक सज्जन थे। इन्होंने 'दीन-बन्धु' नामक एक समाचार-पत्र भी प्रकाशित किया था, जो श्रमजीवियों की दुर्दशा को सर्वसाधारण के सामने प्रकट करता था और उनका पक्ष समर्थन करता था। इसके पश्चात् समय-समय पर और भी यूनियनें क़ायम होती रहीं, पर मज़दूरों की अज्ञानावस्था के कारण उनको बहुत कम सफलता प्राप्त हुई। मज़दूर-आन्दोलन का वास्तविक आरम्भ यूरोपीय महायुद्ध के समय से समझना चाहिए, जबकि चीज़ों का दाम चौगुना-पचगुना हो गया था। एक तरफ़ कारख़ाने वाले असीम लाभ उठा रहे थे और दूसरी तरफ़ मज़दूरों के कष्ट दुगने हो गए थे। उस समय मालिकों की स्वार्थपरता और अन्यायशीलता को नग्न रूप में देख कर इन अशिक्षितों की आँखें भी खुल गईं और वे अपने उचित अधिकारों के लिए उठ खड़े हुए। सन् १९१९ के अन्त में बम्बई में अनेक कारख़ानों के मज़दूर-प्रतिनिधियों की एक कॉन्फ्रेन्स हुई, जिसमें मज़दूरों की माँगों का एक 'मेमोरैण्डम' तैयार किया गया। इसमें विशेष ज़ोर काम करने के घण्टों के कम करने और वेतन के बढ़ाने पर दिया गया था। पर मालिकों ने इन माँगों की सर्वथा उपेक्षा की और उनको कोरी धमकी समझा। इस पर देश भर में हड़तालों की बाढ़ आ गई और मज़दूरों ने अपनी माँगों को पूरा करा कर छोड़ा। इस सफलता ने मज़दूरों के हौसले को बढ़ा दिया और तब से वे अपनी यूनियनों और आन्दोलन में यथाशक्ति भाग लेने लगे। सन् १९१९ से एक भी वर्ष ऐसा नहीं गया है, जिसमें मज़दूरों की बड़ी-बड़ी हड़तालें न हुई हों। सन् १९२९ में बम्बई के मज़दूरों ने जो हड़ताल की, उसमें एक लाख से भी अधिक मज़दूरों ने प्रायः छः महीने तक काम करना बन्द रक्खा। इस हड़ताल की व्यापकता और शक्ति को देख कर मिल-मालिक काँप उठे और सरकार को भी बड़ी चिन्ता लग गई। उसी समय से वह मज़दूर-आन्दोलन को उग्र उपायों की तरफ़ जाने से रोकने का प्रयत्न कर रही है। पर यह आन्दोलन बराबर बढ़ता जाता है और मज़दूरों का सङ्गठन भी दृढ़ हो रहा है। 'ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन कॉङ्ग्रेस' अब एक काफ़ी शक्तिशाली संस्था बन गई है और अवसर पड़ने पर भारत के तमाम प्रान्तों के श्रमजीवी उसका आदेश पालन करने को तैयार रहते हैं।

सुधार के उपाय

श्रमजीवियों की दुर्दशा का सुधार कैसे हो और किस प्रकार वे अपने अधिकारों को प्राप्त करें, यह एक विस्तृत और गहन विषय है। इसके उत्तर भी भिन्न-भिन्न हैं। मज़दूर आन्दोलन करने वालों में कितने ही मतों के व्यक्ति हैं और वे अपने-अपने सिद्धान्त के अनुसार कार्य करने का उपदेश मज़दूरों को देते हैं। इन कार्यकर्ताओं के लक्ष्य भी एक दूसरे से पृथक् हैं। जब कि एक सिद्धान्त वाले केवल इतना चाहते हैं कि कारख़ाने के नफ़ा में से मज़दूरों को उचित हिस्सा मिले और उसके प्रबन्ध में उनकी भी सम्मति ली जाय; तब दूसरे सिद्धान्त वालों का मत है कि कारख़ानों पर मज़दूरों का ही क़ब्ज़ा रहना चाहिए, और मालिकों को उनमें से कान पकड़ कर निकाल देना चाहिए। इन विभिन्न सिद्धान्तों और मतों

की मीमांसा करने का स्थान इस लेख में नहीं है और हम इस विषय में केवल उतना ही विचार करेंगे, जो देश की वर्तमान दशा मे सम्भव है और जिसका शीघ्र ही कार्यरूप में परिणत होना आवश्यकीय है।

सब से मुख्य आवश्यकता तो यह है कि कारख़ानों के प्रबन्ध में उनके कर्मचारियों का भी हाथ रहे और वे अपने लिए बनाए गए नियमों पर सम्मति दे सकें। वर्तमान समय में यह कहना कि कारख़ाने के मालिक को अपनी चीज़ का पूरा अधिकार है, वह जिस तरह ठीक समझे उसका प्रबन्ध करे, चाहे उसे बनाए या बिगाड़े, ठीक नहीं है। आजकल समाज और देश की आर्थिक व्यवस्था इतनी अन्योन्याश्रित और पेचीली हो गई है कि किसी व्यवसाय या कारख़ाने का दूसरों की सहायता या सम्बन्ध बिना चल सकना असम्भव है और एक व्यवसाय की अव्यवस्था और हलचल का परिणाम समस्त कारबार पर पड़ता है। इसके सिवा कारबार का मुख्य आधार श्रमजीवियों पर ही है और यदि वे काम करना छोड़ दें तो कारख़ाने की मैशीनें लोहे के टुकड़ों के सिवा कुछ नहीं हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि जिस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र का प्रबन्ध जनता के प्रतिनिधियों की शासन-सभा द्वारा होता है, उसी प्रकार कारख़ाने का प्रबन्ध मज़दूरों के प्रतिनिधियों की कमिटी की सम्मति द्वारा ही हो। ऐसा हो जाने से वे मज़दूरों की तमाम शिकायतों, कष्टों और असुविधाओं को बड़े कर्मचारियों पर प्रकट कर सकेंगे और उनका प्रतिकार करा सकेंगे। वे इस बात का भी ख़्याल रक्खेंगे कि कार्य की ऐसी व्यवस्था की जाय, जिससे मज़दूरों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव न पड़े। वह कमिटी कारख़ाने के आय-व्यय पर भी निगाह रक्खेगी और ऐसा प्रबन्ध करेगी कि मज़दूरों को इतना वेतन अवश्य दिया जाय, जिससे उनका जीवन-निर्वाह मनुष्य की तरह हो सके। कारख़ानों पर से उनके मालिकों का हक़ बिना किसी भारी क्रान्ति के हटा सकना असम्भव है, पर उक्त प्रकार का प्रबन्ध हो सकना, जिसमें दोनों पक्ष मिल कर कार्य करें, वर्तमान दशा में भी सम्भव है। इसके लिए आवश्यकता केवल इस बात की है कि कारख़ानों के स्वामी उनको केवल अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न समझें, वरन् राष्ट्र का एक अङ्ग मानें।

❦ ❦ ❦

एडीटर साहब ने एक दिन की हजामत के पैसे नाई से ऑफ़िस में देने का वादा किया। नाई ऑफ़िस में पहुँचा, उस समय एडीटर साहब और उनके साथी क़ैंची लिए समाचार-पत्रों से लेख काट रहे थे। नाई ने यह देख कर एडीटर साहब से कहा—मुझे यहाँ नौकरी दिला दीजिए।

एडीटर ने पूछा—एडीटर का काम तुम कर सकते हो?

नाई ने जवाब दिया—क्यों? क्या मैं क़ैंची नहीं चला सकता? मैंने भी १० वर्ष नाई का काम किया है।

❀ ❀ ❀

मास्टर जी—बताओ, राक्षस किसे कहते हैं?

विद्यार्थी—चुप रहा।

मास्टर जी—यों समझो कि तुम अपने बाप को खा गए। बताओ तुम क्या कहलाओगे?

विद्यार्थी—अनाथ!

❦

घड़ी में बारह बजे और घण्टे बजने लगे। बालक सोने के लिए लेटा ही था। उसने कहा—अम्माँ! घड़ी से कहो कि शोर न मचाए।

माता बोली—बेटा, घड़ी के कान नहीं होते।

बालक—तो फिर आप रोज़ सवेरे मरोड़ा किसे करती हैं?

❀ ❀ ❀

नाटक का मैनेजर—(नटी से) कुछ भी हो, तुम्हें ही अपना पार्ट करना पड़ेगा।

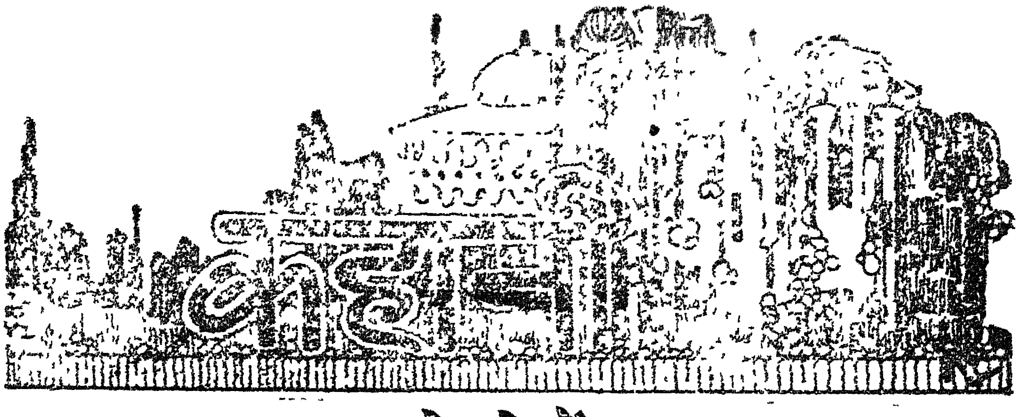
नटी—परन्तु मेरे सिर में बड़ा दर्द हो रहा है।

मैनेजर—तो क्या तुम्हें अपने सिर से थोड़े ही गाना है?

❀ ❀ ❀

लड़के पर नाराज़ होकर पिता ने कहा—तू निरा गदहा है।

लड़के ने कहा—बाबू जी, माफ़ कीजिए, मैं आपही का लड़का हूँ।



के दोनों

[श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०]

देवकृष्ण अभी कॉलेज से आकर बैठा ही था कि उसकी माँ सामने आ खड़ी हुई और सदा की भाँति, आँखों में आँसू भर कर बोली—मुझे इस तरह कब तक रुलाते रहोगे बेटा?

बेटा, और दिन की तरह, आज झुँझलाया नहीं। वह इधर माँ की इस अश्रु-समस्या पर गम्भीरता और सहानुभूति के साथ विचार करने लग गया है। निर्णय के निकट अभी तक पहुँचा नहीं, इसीसे साफ़-साफ़ कुछ कह नहीं सकता। 'हाँ' और 'ना' के पजे में पड़ी छटपटाने वाली इच्छा का प्रदर्शन करना सहज नहीं होता। वह सिर झुकाए चुप रहा।

"मैं दिन-रात रोया करती हूँ"—माँ ने बेटे का हाथ पकड़ कर कहा—"यह देख कर भी तुम्हारा दिल नहीं पसीजता?" उसकी स्नेह-भरी आँखें कातर भाव से जैसे किसी अनुकूल उत्तर की भिक्षा माँग रही थीं।

बेटे ने सहानुभूति-भरी वाणी को कँपा कर कहा—यह तो मेरा दिल ही जानता है माँ! मगर यह तो बताओ, तुम इस तरह रो-रोकर मरी क्यों जा रही हो?

"इसके सिवा मैं और कर ही क्या सकती हूँ बेटा?" बारम्बार आँचल से आँसू पोंछती हुई माँ कहने लगी—"भगवान ने मुझे बनाया ही इसीलिए है। मरने की उमर हो आई, अभी तक सुख का मुँह नहीं देख सकी हूँ। तुम पाँच ही महीने के थे तभी तुम्हारे पिता जी छोड़ कर भाग गए। पर तुम्हारे रहते, मैंने उस दुःख की परवा न की। तुम मेरी गोद में थे, फिर मुझे कमी किस बात की थी? लेकिन अब देखती हूँ, तुम भी मुझसे भागे-भागे फिरते हो। पचीस साल से अपने कलेजे के भीतर मैं जिस अरमान को पालती आ रही हूँ, उसीको कुचल कर तुम मेरे प्यार का बदला चुकाना चाहते हो। फिर बताओ, रोऊँ नहीं तो हँसूँ कैसे?"

देवकृष्ण की आँखें भी सजल हो आईं। वह एक गम्भीर नीरवता में डूब-सा गया।

माँ की भयभीत आशा पुलकित हो उठी। वह बेटे का आँसू पोंछ-पोंछ कर कहने लगी—भगवान की दया से धन-दौलत की कमी नहीं, तुम्हारी पढ़ाई भी ख़तम होने पर आई, उमर भी पचीस को पार कर गई; अब ऐसी कौन सी बात है, जो तुम्हें मेरी साध पूरी करने से रोक रही है, यह मैं बार-बार कोशिश करने पर भी समझ नहीं सकती। अपनी इस बीमार बुढ़िया माँ की ओर देखो बेटा, इसके पास सब कुछ है, पर यह आदमी की दुखिया है। इसको एक बहू ला दो, नहीं तो अब यह अधिक दिनों तक जी न सकेगी।

बेटा उसी तरह चुप रहा। माँ का अञ्चल तर हो गया, पर उसकी आँखें न सूख सकीं।

माँ ने बेटे को छाती से लगा लिया और कहा—तुम्हारे रोने से मेरा दुःख दूर नहीं होगा बेटा, बताओ

तुम्हें मेरे ऊपर कुछ दया-मया भी है या नहीं। हो तो मेरी यह साध पूरी कर दो।

"मैंने आज तक तुम्हारी कोई बात नहीं उठाई माँ !"—देवकृष्ण ने स्नेह-गद्गद स्वर में कहा—"लेकिन × × ×"

यहाँ आकर वह थोड़ा-सा रुका ही था कि इतने में माँ बोल उठी—लेकिन मेरी इस बात को तुम किसी तरह नहीं मान सकते। अच्छी बात है देवू! तुम जिससे सुखी रहो वही मेरा सुख है। ब्याह तो एक न एक दिन करोगे ही, पर अभी नहीं—मेरे मर जाने के बाद। माँ अपने बच्चे को अपना सब कुछ दे सकती है, पर उनसे उसे कुछ पाने की उम्मीद करने का हक नहीं है। भूखे को सगे भी भीख नहीं देते। जो दुखिया है उसे सुख की ओर देखना ही नहीं चाहिए। मैंने बड़ी ग़लती की, जो तुम्हें अपने सुख के लिए इतना तङ्ग किया। माफ़ करना, अब फिर कभी इस ग़लती को नहीं दोहराऊँगी।

माँ ने बेटे की ओर से मुँह मोड़ लिया। रूठ जाने का भाव प्रदर्शित करती हुई वह वहाँ से हट कर कुछ दूर पर जा बैठी और चुपचाप आँखों से अश्रु-धारा बहाने लगी।

स्नेहमयी माता का यह दुःख देवू से देखा न गया। आँखें पोंछता हुआ वह उसके पास जा खड़ा हुआ और बोला—माँ, तुम्हारी आज्ञा मेरे सिर-आँखों पर। जो कहो, करने को तैयार हूँ।

माँ कुछ बोली नहीं, मुँह ढाँप कर रोने लगी।

"तुम्हें मेरी क़सम है माँ !"—देवू ने उसका हाथ पकड़ कर सजल स्वर में विनती की—"मैं हर तरह से तुम्हारी बात मानने को तैयार हूँ।"

माँ ने आँसू पोंछ लिया। वह स्वस्थ होकर बोली—रायसाहब ने आज भी आदमी भेजा था। उनसे बात पक्की कर ली जाय?

देवू की हृदय-वीणा झङ्कृत हो उठी। एक प्रकार की अपरिचित आकांक्षा के रस से उसके प्यासे प्राण ओत-प्रोत हो गए। राय गोपीचन्द साहब की कन्या कमला? आह, वह तो मुझे बचपन से ही प्यार करती आ रही है। तो क्या वह मेरी ही है? नहीं, सपने सच नहीं होते, प्यार अधिकार के पञ्जे में पड़ कर जीवित नहीं रहता! फिर? क्या करूँ? 'ना' कह दूँ? नहीं, यह ठीक न होगा। 'हाँ' कह दूँ? लेकिन हृदय जो काँप रहा है? तब? यह भी ठीक नहीं, वह भी ठीक नहीं? आख़िर करूँ क्या? वह इसी उधेड़ बुन में थोड़ी देर तक चुप हो रहा।

माँ ने फिर पूछा—उन्हें कहला भेजूँ न बेटा? इधर तुम उन लोगों से मिलना-जुलना क्यों छोड़ बैठे हो? कमला की माँ को आज प्रणाम कर आओगे?

"फिर किसी दिन हो आऊँगा माँ!"—देवू ने लज्जा के भार से झुके हुए शब्दों में उत्तर दिया—"आज कॉलेज की एक सभा में जाना है।"

"तो मैं अपना काम शुरू कर दूँ न?"—माँ ने उल्लसित होकर पूछा।

बेटे ने मुस्करा कर जवाब दिया—कर दो। लेकिन याद रखना, तुम मुझे बेड़ी पहना रही हो।

"यही बेड़ी जीवन की सबसे बड़ी शोभा है बेटा!"—माँ ने भी आनन्द विकसित वाणी में प्रत्युत्तर दिया।

"शोभा पहनने की चीज़ नहीं है।"—देवू ने कुछ गम्भीर होकर कहा—"यह दूर ही से अच्छी लगती है। कोई वस्तु जब तक हम पा नहीं लेते, तभी तक वह अनमोल मालूम पड़ती है। जहाँ हाथ में आई कि उसका सारा महत्व गया। जब तक मैं अविवाहित हूँ तभी तक तुम्हें मेरा ब्याह जीवन-शृङ्गार के रूप में दिखाई पड़ रहा है; विवाह कर लेने के बाद यह बात नहीं रह जायगी। अभी मैं सम्पूर्ण रूप से तुम्हारा ही हूँ, ब्याह कर लेने के बाद बहुत कुछ किसी और का हो जाऊँगा। जो पक्षी आज स्वतन्त्रता के खुले वन में चहक रहा है, वही कल पिंजड़े का क़ैदी बन जायगा।"

थोड़ी देर के लिए माँ सन्नाटे में आ गई। किन्तु, शीघ्र ही सँभल कर बोली—आगे क्या होगा, यह कौन बता सकता है बेटा? कभी-कभी माताएँ भी अपने बच्चों की राह में कण्टक होकर पड़ जाती हैं सही, पर ऐसा करके दुःख भी वही उठाती हैं। भगवान करें, मैं इस दुःख से बची रहूँ। इससे अधिक इस समय और क्या कह सकती हूँ?

देवू ने देखा, इतना कहते-कहते माँ की आँखें फिर डबडबा आईं। बात का रुख़ बदल देने की नीयत से

उसने कहा—अच्छा यह तो बता दो माँ कि ब्याह कर लेने के इनाम में मुझे तुम दोगी क्या चीज़ ?

माँ ने बेटे को छाती से लगा लिया और उसके कपोलों पर चुम्बन-चिह्न अङ्कित करते हुए जवाब दिया—बहू !

बेटा लजा गया। मुस्करा कर बोला—अच्छा, अभी पहले खाने को दे लो। सभा में जाने का समय हो रहा है।

माँ दुलार-भरे हृदय से नाश्ता लाने चली गई और बेटा अपने अन्तस्तल के एक मधुर संग्राम में उलझ गया !

२

चारों ओर उल्लास की धारा उमड़ रही थी। तरह-तरह के बाजे बज रहे थे। मङ्गल-सङ्गीत की सुधामयी स्वर-लहरी लहरा रही थी। हँसी-ख़ुशी का फ़व्वारा छूट रहा था। मालूम होता था, पृथ्वी पर किसी प्रकार का शोक या सन्ताप रह ही नहीं गया है। सब के सब आनन्द में मस्त थे। सजी-सजाई बारात फाटक के बाहर निकलने ही वाली थी कि दूल्हे की पालकी को एक पुलिस-घुड़सवार ने आकर रोक दिया। देखते ही देखते वहाँ पचीसों हथियारबन्द पुलिस के सिपाही आ पहुँचे। दूल्हे की पालकी चारों ओर से घेर ली गई। इन्सपेक्टर ने उससे पूछा—आप ही का नाम देवकृष्ण है ?

देवू ने निर्भीक होकर उत्तर दिया—जी हाँ। कहिए, क्या काम है ?

"हम लोगों का और काम ही क्या हो सकता है ?" कह कर इन्सपेक्टर ने उसके हाथ में एक काग़ज़ थमा दिया।

देवू ने काग़ज़ पढ़ कर गम्भीर स्वर में पूछा—तो क्या आप मुझे गिरफ़्तार करना चाहते हैं ?

इन्सपेक्टर ने लज्जित होकर कहा—मैं लाचार हूँ।

देवू ने वीर की तरह जवाब दिया—लाचारी की कोई बात नहीं, मैं तैयार हूँ। लेकिन आपके साथ चलने के पहले ज़रा माँ से मिल लूँ ?

"मिल सकते हैं,"—इन्सपेक्टर ने दूसरा काग़ज़ दिखाते हुए कहा—"मुझे घर की तलाशी भी लेनी है।"

"चलिए"—कह कर देवू पालकी से उतर पड़ा। बारातियों का ख़ून खौल उठा, वे उत्तेजित होकर पुलिस के सिपाहियों की ओर बढ़े। मगर देवकृष्ण सावधान था। उसने तुरन्त उनकी राह रोक ली और विनीत स्वर में कहा—"आप लोग कृपा कर अपने-अपने घर चले जायँ। ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध आदमी कुछ कर नहीं सकता, झूठ मूठ दङ्गा-फ़साद करने से कोई फ़ायदा नहीं।"

लोग रुक कर इधर-उधर बिखर गए। अभी-अभी जहाँ आनन्द का आलोक बरस रहा था, वहाँ विषाद का अन्धकार फैल गया ! सब के सब चकित, व्यथित और उद्वेलित हो उठे। किसी की भी बुद्धि नियति की निष्ठुरता का यह रहस्य न समझ सकी !

सबको शान्त करके देवू ने, इन्सपेक्टर तथा पुलिस के अन्य हथियारबन्द सिपाहियों के साथ, आँगन में प्रवेश किया और अपनी कलपती हुई माँ के चरणों पर सिर रख दिया।

माँ ने बेटे को खींच कर छाती से लगा लिया और इन्सपेक्टर की ओर देख कर कातर स्वर में कहा—बड़ी मुश्किल से इसको ब्याह के लिए राज़ी कर सकी थी। मेरे घर बहू को आ जाने दीजिए, फिर इसे आप ले जाइएगा। यही एक बेटा है, इसी का मुँह देख कर जी रही हूँ। मुझ बीमार बुढ़िया पर रहम कीजिए।

इन्सपेक्टर ने लाचारी का भाव दिखलाते हुए कहा—मुझे देर हो रही है। आप इन्हें छोड़ दें, मैं घर की तलाशी लेना चाहता हूँ।

देवू स्वयं माँ को छोड़ कर अलग हो गया और बोला—माँ, रोना-धोना बेकार है। कलेजे को मज़बूत बना कर आशीर्वाद दो। हाँ, साहब, चलिए अपना काम कीजिए।

कोने-कोने की तलाशी ली जाने लगी। बहुत खोजने-ढूँढने पर भी पुलिस कोई आपत्तिजनक वस्तु पा न सकी।

देवकृष्ण ने इन्सपेक्टर से पूछा—अब ?

"अब मैं आपको गिरफ़्तार करता हूँ !"—उसने स्थिर स्वर में जवाब दिया—"आप मेरे साथ चलें।"

माँ ने, आँसू पोंछ कर रोषभरी वाणी में पूछा—इसका क़सूर क्या है ?

"आपको मालूम हो जायगा।"—इन्सपेक्टर ने जवाब दिया।

"कब ?"

"मैं नहीं कह सकता।"

"जब तक कहोगे नहीं, मैं अपने बेटे को न जाने दूँगी।"

इन्सपेक्टर ने हँस कर कहा—आपको मालूम है, आप किससे बातें कर रही हैं ?

"आदमी से ; क्या तुम आदमी नहीं हो ?"

"जी नहीं।"—इन्सपेक्टर की आँखें चढ़ गईं।

"हाँ, सचमुच नहीं हो। आदमी होते तो एक बीमार बुढ़िया के बेकसूर बेटे पर यह ज़ुल्म करते तुम्हारी छाती फट जाती। मगर देखती हूँ, तुम बेरहमी की हँसी हँसते हो, बेकसों पर आँखें तरेरते हो ! तुम्हारी माँ है ? तुम्हारे बाल-बच्चे भी हैं ? ख़ूनी जानवर, बताओ, तुम आदमी हो ? तुम्हारे दिल में कहीं रहम भी है ?"

इन्सपेक्टर कुछ बोल नहीं सका।

माँ ने फिर बिनती की—छोड़ दो, भैया ! आज भर के लिए ! सिर्फ़ आज ही भर के लिए ! नहीं छोड़ सकते ? नहीं छोड़ सकते ? दो-चार घण्टों के लिए भी नहीं ? आह ! तो क्या मुझे बहू का मुँह न देखने दोगे ? इतनी निष्ठुरता ? इतनी बेरहमी ? × × ×

देवू ने माँ के मुँह पर हाथ रखते हुए कहा—अब बस करो माँ ! आशीर्वाद दो, तुम्हारे इन आँसुओं का मूल्य चुका सकूँ—तुम्हारे दूध की लाज रख सकूँ ! इन्सपेक्टर साहब, चलिए। अब यह दृश्य नहीं देखा जाता। उफ़ ! × × ×

इन्सपेक्टर ने विवशता का भाव दिखा कर कहा—हुक्म है कि मैं आपको हथकड़ी पहना कर ले चलूँ।

"बड़े शौक़ से !"—कह कर देवू ने अपने दोनों हाथ आगे कर दिए।

इधर बेटे के हाथों में हथकड़ी डाली गई, उधर माँ अचेत होकर धरती पर गिर पड़ी !

देवू ने आँखे बन्द कर लीं। इन्सपेक्टर उसे लेकर जल्दी-जल्दी आँगन से बाहर निकल गया।

३

कमला की माँ ने राय गोपीचन्द साहब से पूछा—देवकृष्ण जी के बारे में कुछ मालूम हुआ ?

रायसाहब ने अनमने भाव से जवाब दिया—मालूम क्या होगा ? उनके बचने की तो कोई उम्मीद नज़र आती नहीं।

"क्यों ?"

"क्यों, क्या ? राजनैतिक डकैतियों और हत्याओं का अभियोग उन पर चलाया गया है। या तो फाँसी की सज़ा होगी या कालेपानी की।"

"ऐसी मनहूस बातें मुँह से न निकालो"—कमला की माँ ने कहा—"ईश्वर न करें, कहीं ऐसा हुआ तो हम लोग मिट्टी में मिल जायँगे।"

"हम लोग क्यों मिट्टी में मिल जायँगे ?"

"कमला सिसक-सिसक कर प्राण दे देगी।"

"और शायद तुम भी सिर धुन-धुन कर मर जाओगी, क्यों ?"

"और तुम, शायद, ख़ुशियाँ मनाओगे ; हुक्कामों को दावतें खिलाओगे।"

"नहीं, उसके लिए बैठ कर दिन-रात आँसू बहाता रहूँगा !"

"दिल भी हो तो आँसू बने।"

"समझ में नहीं आता कि आख़िर उसके लिए तुम इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो ?"

"समझ है भी तुम्हें ?"

"आज तुम इस तरह की बहकी हुई बातें क्यों कर रही हो ?"

"ठीक ही तो कह रही हूँ, तुम्हें समझ भी है ? समझ होती तो सब बातें ठीक-ठीक समझते नहीं ? समझने की कोशिश भी नहीं करते ?"

"कौन सी बात समझने की मैंने कोशिश नहीं की ?"

"कमला के हृदय की व्यथा का मर्म समझ सकते हो ?"

"समझ सकता हूँ, यह क्षण भर टिकने वाली भावुकता मात्र है।"

"नहीं ; यहीं तुम ग़लती करते हो ?"

"मगर मैंने निश्चय कर लिया है।"

"क्या ?"

"यही कि विप्लवी के साथ बेटी न ब्याहूँगा।"

"कमला विष खा लेगी।"

"खा खे × × ×"

"तुम यहाँ तक तैयार हो ?"

"हाँ, मैं अब उसे अपने घर के भीतर क़दम नहीं रखने दूँगा। वह राजद्रोही है, ख़ूनी है, ख़तरनाक है। कलक्टर साहब ने मुझे हिदायत कर दी है कि मैं ऐसे आदमी से अपना कोई हेल-मेल न रक्खूँ। अगर कभी ऐसा करूँगा तो जहन्नुम में चला जाऊँगा। इसलिए मैं सब कुछ सहने को तैयार हूँ, मगर इस बात के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूँ कि देवकृष्ण को अपना दामाद बनाऊँ।"

कमला की माँ जैसे आसमान से गिर पड़ी ! अपने स्वामी के इस निष्ठुर निश्चय की उसे आशङ्का नहीं थी। उसने व्याकुल होकर कहा—ईश्वर के लिए, कहीं ऐसा अनर्थ न कर बैठना। मैं कहीं की न रह जाऊँगी।

"इस मामले में मैं लाचार हूँ।"—रायसाहब ने उसकी व्याकुलता की कुछ परवा न करते हुए जवाब दिया।

थोड़ी देर चुप रहने के बाद कमला की माँ ने फिर पूछा—तुमने किसी और लड़के को ठीक भी कर लिया है क्या ?

रायसाहब ने कहा—हाँ; और मेरा विश्वास है कि कमला मेरे इस चुनाव को ख़ूब पसन्द करेगी। लड़का एक ऊँचे सरकारी पद पर है, दो ही चार साल में कलक्टर हो जाने की उम्मीद है।

"जस्टिस दिवानाथ का लड़का तो नहीं ?"—कमला की माँ ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"हाँ"—रायसाहब ने कहा—"तुमने तो लड़के को देखा है न ? और शायद कमला से भी उसकी जान-पहचान है; क्यों ?"

कमला की माँ ने एक लम्बी साँस खींच कर अत्यन्त संक्षेप में उत्तर दिया—हाँ।

"तुम्हें पसन्द है न ?"

"मुझे पसन्द हो या न हो, इसकी चिन्ता नहीं। पसन्द होना चाहिए कमला को; और मुझे इसमें शक है।"

पत्नी की चिन्ता-गम्भीरता से रायसाहब भी अब कुछ चिन्तित होते दीख पड़े। बोले—तो क्या समझती हो, इसके लिए उसकी भी राय लेनी होगी ?

"मैं तो ऐसा ही समझती हूँ !"—कमला की माँ ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"लड़की सयानी है, लिखी-पढ़ी है। ब्याह सब तरह से उसी की इच्छा और रुचि के अनुसार हो तभी वह सुखी और सन्तुष्ट रह सकती है।"

"मगर इस लड़के को नापसन्द करने का तो कोई कारण नहीं दीखता ?"

"कारण एक ही है, और वह यही कि कमला देव-कृष्ण को अपना हृदय दान कर चुकी है। तुम तो कुछ देखते-सुनते नहीं, वह उसी की तस्वीर की पूजा किया करती है और उसीके ध्यान में सदैव रोया करती है। ऐसी हालत में किसी और के साथ उसका ब्याह कराना ठीक है या नहीं, तुम्हीं सोच लो।"

रायसाहब की वाणी मूक हो गई। वह किसी गम्भीर चिन्ता में लीन हो गए।

इसी समय नौकर ने आकर कहा—सरकार ! बाहर एक बग्घी खड़ी है, उसमें एक माँ जी बैठी हैं। बच्ची रानी (कमला) को बुला रही हैं।

"यह कौन आई ?" कह कर रायसाहब चौंक उठे। कमला की माँ तुरन्त अगवानी को निकल पड़ी। बग्घी के पास जाकर देखा, पचास वर्ष की एक बीमार बुढ़िया आँखों में आँसू भर कर खड़ी थी। कमला की माँ को देखते ही वह बोली—बहिन, मेरी बहू कहाँ है ?।

कमला की माँ भौचकी-सी खड़ी रही। उसके मुँह से सहसा कोई बात ही न निकल सकी।

अब वह माँ जी धीरे-धीरे उसके पास पहुँच गईं और कातर स्वर में फिर बोलीं—एक बार मैं अपनी बहू को देखना चाहती हूँ बहिन, वह कहाँ है ?

कमला की माँ का कलेजा धड़कने लगा। उसने विनीत स्वर में पूछा—आप कहाँ से आ रही हैं ?

बुढ़िया बिलखने लगी—आह, मुझे अब कोई नहीं पहचानता ! देवू की दुखिया माँ को आज सारा संसार भूल गया ! सच है बहिन, सच है, तुम्हारा यह पूछना बिलकुल सच है कि मैं कहाँ से आ रही हूँ। अच्छा, बताती हूँ। लेकिन बहिन, पहले तुम तो बताओ कि तुम कौन हो ?"

"मैं कमला की माँ हूँ।"

"कमला की माँ?"—बुढ़िया जैसे उन्मत्त हो उठी—"मेरी बहूरानी की माँ? मेरी प्यारी समधिन? फिर इस तरह दूर रह कर क्यों बातें कर रही हो बहिन? आओ, मुझे गले लगा लो। हाँ, अपनी छाती से इस तरह चिपका लो कि कभी तुमसे अलग न हो सकूँ। और बहिन, मेरी बहू कहाँ है? बहू! बहू!! बहू!!! आह, वह तो सुनती ही नहीं! सच है बहिन, दुखिया की पुकार कोई नहीं सुनता। लेकिन क्या मेरी बहू भी नहीं सुनेगी? सुनेगी, ज़रूर सुनेगी। जब तक नहीं सुनेगी, मैं इसी तरह चिल्लाती रहूँगी। बहू! बहू!! बहू!!!× × ×"

कमला की माँ ने झपट कर उसे सँभाल लिया, नहीं तो वह बेहोश होकर गिर पड़ती।

कमला भी आ गई थी, पर दूर ही खड़ी-खड़ी नाख़ून से धरती खुरच रही थी।

रायसाहब बरामदे में बेचैनी के साथ टहल रहे थे, और बार-बार रूमाल से माथे पर का पसीना पोंछते जाते थे!

कमला की माँ ने बेटी की ओर देख कर स्नेह-विगलित स्वर में कहा—बच्ची, आओ इन्हें सँभाल कर भीतर ले चलें।

४

रायसाहब ने अपनी स्त्री से पूछा—अब उनकी क्या हालत है?

"हालत तो पहले से कुछ अच्छी दीखती है, अब बड़बड़ाती कुछ कम हैं।"

"बेचारी बेटे के विछोह मे मर रही है!"

"बार-बार यही कहती हैं कि बहू को मेरे घर जाने दो। पास से थोड़ी देर के लिए भी अगर कमला हट जाती है, तो वह बिलख-बिलख कर इस तरह रोने लगती हैं कि क्या बताऊँ!"

रायसाहब चुप रहे।

"बुढ़िया के रग-रग में बेटे का प्यार समाया हुआ है, बच्ची के ऊपर इसने जैसे जादू डाल दिया!"

रायसाहब ने एक लम्बी साँस ली।

"बुढ़िया जब मेरी बेटी को 'बहू' कह कर छाती से लगा लेती है, तब तुम देखो तो सचमुच रो पड़ो। मेरा तो हृदय उमड़ आता है।"

रायसाहब की आँखों से टप-टप करके आँसू की दो-तीन बड़ी-बड़ी बूँदें गिर पड़ी।

"तुम रोने क्यों लगे?"

रायसाहब की आँखें बरसाती नदियाँ बन गईं।

पत्नी ने प्यार भरे शब्दों में कहा—छिः! मर्द होकर इस तरह व्याकुल हो उठते हो? तुम डर किस बात से रहे हो? कलक्टर साहब से? उनकी धमकी से? कौन कह सकता है कि कल तुम्हारे बाल-बच्चों की भी वही हालत न होगी, जो आज देवू की हो रही है? इस तरह डरने से काम नहीं चलेगा। देवू की ओर से लड़ो और उस बेकसूर बच्चे को मेरी बच्ची के लिए छुड़ा लाओ।

इन शब्दों ने रायसाहब के ऊपर जादू का काम किया। वे पत्नी की ओर देख कर करुण स्वर में बोले—नहीं, देवू की माँ का यह दुःख मुझसे देखा नहीं जाता। कमला अब सब तरह से उन्हीं की है, मेरे सारे विचार बदल गए। आज ही मैं देवू की ओर से लड़ने के लिए बड़े-बड़े वकील ठीक किए आता हूँ। अपनी ओर से पूरी कोशिश करूँगा, आगे भगवान की इच्छा।

"तो बच्ची को उनके घर जाने दूँ?"

"बच्ची इसको पसन्द करेगी?"

"बच्ची? बच्ची को तो जैसे मनचाहा वरदान मिल जायगा!"

"जिसमें दोनों घर सुखी रहें, वही करो।"

"तुम उन्हे कभी-कभी देख क्यों नहीं आते?"

"उनके आगे मुझसे बिना रोए रहा नहीं जाता। इसीसे परहेज़ करता हूँ। क्या कुछ कह रही थीं?"

"उन्हे और कुछ कहने की सुध कहाँ रहती है? केवल 'बेटा!' 'बेटा!!' और 'बहू!' 'बहू!!' की रट लगाया करती हैं।"

"उनकी दशा देख कर जी मे आता है, देवू को चुरा कर ले आऊँ और उसकी जगह ख़ुद जेल में जा बैठूँ।"

पत्नी ने पति को खींच कर छाती से लगा लिया और अधरों पर परिपक्व प्रणय का प्रकम्पन नचाते हुए कहा—मेरा भी यही जी चाहता है प्यारे!

रायसाहब ने स्नेह-भरे शब्दों मे कहा—प्रिये! आज मेरी अन्तरात्मा का सारा मैल धुल गया।

कमला की माँ बोली—प्यारे! आज मैं कृतकृत्य हो गई।

५

देवकृष्ण का मुक़दमा सात महीने तक चलता रहा। राय गोपीचन्द साहब उसकी ओर से खूब कर लड़े—और ख़ूब लड़े। रुपए को पानी की तरह बहा दिया। देवू की माँ ने अश्रु-गङ्गा बहा कर उसके हृदय-क्षेत्र को अच्छी तरह सींच दिया था, उसमें स्वदेश-प्रेम के अङ्कुर उग आए थे। कमला की माँ ने उसे और भी पनपा दिया। अब इन्हें हुक्कामों को ख़ुश रखने की चिन्ता नहीं थी—चिन्ता थी दुखियों के दुःख दूर करने की, निरीह आत्माओं को उत्पीड़न-विमुक्त बनाने की। इस मुक़दमे में उन्होंने ख़ून और पसीना एक कर दिया। इस अनीति के युग में भी कभी-कभी पुण्य प्रमुदित हो उठता है, सत्य विजयी बन जाता है। और न्याय के मुख पर जीवन की ज्योति आ जाती है। देवू के मामले में भी यही हुआ। वह निर्दोष सिद्ध हुआ और छोड़ दिया गया। सब लोग ख़ुश थे, लेकिन वह ख़ुश नहीं था। उसके मुख-मण्डल पर निराशा नाच रही थी, विषाद मँडरा रहा था, वेदना तड़प रही थी!

रायसाहब ने उसे गले लगाया। उसने उनके चरण छुए। उन्होंने कहा—बेटा, चलो घर चलें।

देवू ने कहा—अभी नहीं।

"क्यों?"—रायसाहब ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा—"फिर कब चलोगे?"

"कह नहीं सकता।"

"तो अभी जाओगे कहाँ?"

"यह भी नहीं जानता।"

"तुम्हारी माँ मर रही हैं, बच्ची तभी से वहीं है।"

देवू की आँखें सजल हो आईं। वह सिर झुका कर बोला—अपमान से भरा हुआ यह जीवन-बोझ मुझसे अब नहीं ढोया जा सकेगा। देश की वर्तमान दुर्दशा में किसी स्वाभिमानी व्यक्ति का सुखपूर्वक बैठ सकना सम्भव नहीं है। मैंने अब देश सेवा में ही जीवन अर्पण कर देने का निश्चय कर लिया है।

"ईश्वर तुम्हें ऐसा सुअवसर दें बेटा!"—रायसाहब ने उसे गले लगाते हुए कहा—"लेकिन अभी चार पहर के लिए घर चले चलो। सब लोग तुम्हारे लिए तड़प रहे हैं। उन्हें एक बार देख भर आओ। स्वदेश-सेवा के कार्य में हम सब लोग तुम्हारा साथ देंगे। लेकिन, अभी मेरे साथ चले चलो।"

देवू अटल रहा। बार-बार आग्रह करने पर भी उसने यही कहा—अभी घर नहीं जा सकता, इसके लिए क्षमा कीजिए। महीने भर बाद मैं स्वयं पहुँच जाऊँगा।

रायसाहब लाचार होकर अपनी 'कार' में जा बैठे। देवू उन्हें प्रणाम करके एक ओर को चल दिया।

६

रायसाहब ने देवू की माँ को यह बात न जानने दी। वह योंही बीमार थी, खाट पर पड़ी तड़प रही थी, अगर कहीं यह सुन पाती कि बेटा रिहा होकर भी घर नहीं आया, तो उसी क्षण उसका हृत्-पिण्ड फट पड़ता।

रायसाहब ने अपनी स्त्री से कहा—देवू अभी तक राजनीति से पृथक् था, पर अब वह उसमें पूर्णतया कूद पड़ा।

"वह गया कहाँ है?" कमला की माँ ने उत्सुकता-पूर्वक पूछा।

"बिना कसूर किए ही जो उसकी यह दुर्दशा की गई, इससे उसका ख़ून खौल उठा है। आत्म-सम्मान की भावना इस तरह आग बन कर धधक उठी है कि उसमें वह अपना सब कुछ अर्पण कर देना चाहता है। मेरा अनुमान कहता है कि वह किसी देशोत्थान के कार्य में लग गया है।"

"कहीं ऐसा तो न होगा कि मेरी बच्ची को जनम भर रोना पड़े!"

पत्नी की कातरता से विद्ध होकर रायसाहब ने कहा—मैंने हिम्मत बटोरी तो अब तुम रोने बैठीं? कौन जानता है, कमला भी उसी की राह पर चल खड़ी हो? अगर वह ऐसा कर सके तो फिर उसके सुख की बराबरी कौन कर सकता है? मैं तो ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि 'वे दोनों' मिल कर सब तरह से 'एक' हो जायँ।

कमला की माँ इस पर कुछ कह नहीं सकी। पर सच तो यह है कि उसके हृदय का अरमान रो रहा था।

रायसाहब समझ गए और उसे समझाने लगे—मैंने अब तक देवू को नहीं पहचाना था। वह तो एक अनुपम रत्न है। वह भिखारी बन कर भी जीवन बिता-

वेगा तब भी कमला उसके साथ सुखी रहेगी। जिसके भीतर कर्त्तव्य-पालन करने की क्षमता है, वही प्रेम का भी पालन कर सकता है, क्योंकि दोनों ही का भोजन है त्याग और तपस्या। इसलिए, मैं अपनी बच्ची का भविष्य बहुत ही उज्ज्वल और आनन्दमय देखता हूँ। उसके लिए तुम कभी किसी तरह का सोच न किया करो।

कमला की माँ ने कहा—चलो, ज़रा बच्ची को देख आएँ।

"चलो"—कह कर रायसाहब उठ खड़े हुए।

७

"माँ! आप अधीर न हों, अब वे आने ही वाले हैं।"

"कौन? देवू? नहीं, अब मैं उसका मुँह न देख पाऊँगी बहू!"

कमला की आँखें उमड़ आईं। उसे सब बातें मालूम थीं। आज ही वह दिन था, जब देवू ने स्वयं उपस्थित हो जाने का वचन उसके पिता (रायसाहब) को दिया था। इसीसे वह ज़ोर देकर बोली—नहीं माँ, बाबू जी कह रहे थे कि वे आज छूट जायँगे।

"छूट जायगा? कौन? मेरा लाल? मेरे कलेजे का टुकड़ा? मेरा देवू?"—बेचारी बुढ़िया तड़प-तड़प कर बड़बड़ाने लगी—"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है बहू! मेरा इतना बड़ा भाग कहाँ कि मरने के पहले एक बार बेटे का मुँह देख लूँ? वह सरकार का मेहमान है, अभी वे लोग उसे यहाँ क्यों आने देंगे? मगर तू कह जो रही है! तो क्या वह आज आएगा? आएगा? सच बता बेटी, क्या वह आज मेरी गोद में आएगा?"

"आएँगे माँ, आज वे ज़रूर आएँगे।"—कह कर कमला ने अपने आँसू पोंछे और उस तड़पती हुई बुढ़िया के मुँह में एक चम्मच पानी डाल दिया। उसका तालू सूख गया था!

वह थक कर थोड़ी देर चुप पड़ी रही और फिर उसी तरह व्याकुल होकर बड़बड़ाने लगी—आ गए बेटा? नहीं, तुम भला क्यों आने लगे। जब दूध पीना रहता था तब दौड़-दौड़ कर आते थे। आज मेरे पास दूध जो नहीं है! आओगे किस लिए? मगर नहीं, तुम नहीं जानते बेटा! माँ के पास दूध की कमी कभी नहीं रहती। बच्चे के लिए वह अपने समूचे शरीर का लहू दूध बना डालती है—उसकी सूखी हड्डियों से भी दूध की धारा फूट पड़ती है। माँ सिर्फ़ दूध ही की बनी होती है बेटा! तुम आओ तो सही! एक बार देख तो जाओ, तुम्हारी इस बुढ़िया माँ के भीतर कितना दूध उमड़ रहा है। मगर नहीं, मत आओ। जी न चाहता हो तो मत आओ! मैं एक बार तुम्हें देखना चाहती हूँ ज़रूर, लेकिन इससे अगर तुम्हें दुःख हो तो मत आओ बेटा! मत आओ! ना! ना! ना!!! आने की ज़रूरत ही क्या है?

कमला का धीरज छूटता जा रहा था, वह विह्वल हो, माँ की छाती पर माथा गाड़ कर, रोने लगी!

माँ ने अपने दुर्बल हाथों से 'बहू' को जकड़ लिया और बोली—नहीं बेटी, तू इस तरह न रो! देख, वह आ रहा है। वह! वह!! वह!!! हाँ, आँखें उठा कर ज़रा देख तो बेटी! वह मेरा बेटा आ गया! आ गया!! हाँ, सचमुच आ गया!!!

बात बिलकुल सच निकली। कमला ने सिर उठा कर देखा, पलङ्ग के पास देवू खड़ा-खड़ा आँसू बहा रहा था!

वह धड़धड़ा कर खड़ी हो गई और बोली—यह सपना तो नहीं देख रही हूँ?

"नहीं; लेकिन तुम्हारा सोचना भी ग़लत नहीं कहा जा सकता। संसार में सब कुछ सपना ही तो है?"—देवू ने उत्तर दिया।

फिर वह माँ के पास घुटने टेक कर बैठ गया। माँ ने आँखें बन्द कर ली थीं, परन्तु स्नेह की अधीर धारा पलकों के नीचे दबी न रह सकी! वह अत्यन्त व्याकुल होकर बह निकली!

देवू ने कहा—माँ, मैं तुमसे आशीर्वाद लेने आया हूँ। मुझमें वह बल दो, जिससे तुम्हारे आँसुओं का मूल्य चुका सकूँ।

"बेटा!"—माँ ने स्नेह से अपने कलेजे के टुकड़े को अपनाते हुए कहा—"अब मैं बड़े सुख से मर सकूँगी! मगर अभी तक तुमने मेरी वह साध पूरी न की बेटा! क्या अब भी न करेगा? बहू, तू दूर क्यों हट गई? मेरे 'नन्हाँ' के पास आ जा! आ बेटी, इसमें लाज की कौन सी बात है? नहीं आती, बहू मेरी तुझसे रूठ गई है बेटा! जा, उसे मना ला! नहीं जाता? नहीं जाता? क्या तू भी उससे रूठ गया? नहीं, यह तेरी शरारत है! तू रूठ ही नहीं सकता, तुझे रूठने का हक़ ही नहीं

है। अपराध तो तेरा ही है! तू अभी तक था कहाँ? इतने दिनों से कहाँ जा छिपा था? वह बेचारी तो दिन-रात मेरे ही पास रहती थी! वह मेरी प्यारी बहूरानी है देवू! उसे तङ्ग न कर! कहती हूँ, उसे मत सता! उठ, जा, जा, मेरी रानी बिटिया को हाथ पकड़ कर मना ला! × × ×"

माँ की यह अवस्था देख कर बेटे का कलेजा टूक-टूक हुआ जा रहा था। वह उसी तरह बैठा आँसू बहाता रहा। कमला आई और माँ के मुँह में फिर एक चम्मच पानी डाल कर चुपचाप उसी जगह खड़ी हो गई।

माँ ने फिर ज़ोर दिया—बेटा, मेरी वह साध पूरी कर दे, मेरे आगे इसी समय तू अपने वचन का पालन कर।

इसी समय रायसाहब भी सपत्नीक आ खड़े हुए। दोनों ने बारी-बारी प्रेम से देवू को गले लगाया।

कमला की माँ अधिक देर तक अपने हृदय का भाव रोके न रह सकी। बिना किसी भूमिका के बोल उठी—बेटा! हम लोग आज अपनी बच्ची को तुम्हें सौंप देने आए हैं। तुम दोनों का असली ब्याह तो कभी का हो चुका। हम अब किसी रस्म-रिवाज़ की ज़रूरत नहीं समझते। सिर्फ़ हमारे आगे तुम मेरी बिटिया का हाथ पकड़ लो। फिर हम लोग निश्चिन्त हो जायँगे।

देवू की माँ फिर बड़बड़ाने लगी—नहीं मानता! बार-बार कहती हूँ, फिर भी नहीं मानता! जिसे पाल-पोस कर इतना बड़ा बनाया, वही आज मेरी एक मामूली सी बात नहीं मानता! हाय, तो क्या वह साध अब पूरी न हो सकेगी? न हो सकेगी? न हो सकेगी बेटा? मेरी वह साध अब पूरी न हो सकेगी? × × ×

"होगी माँ!"—देवू ने माँ को आश्वासन दिया—"तुम जो-जो कहोगी, सब करूँगा।"

"होगी?"—माँ ने फिर कहना शुरू किया—"मेरी साध पूरी होगी? सच कहते हो बेटा? सच कहते हो? मैं जो कहूँगी, करोगे? करोगे? सच बता दो बेटा, करोगे? तो आ जा, बेटी! तू मेरे पास आ जा! तेरा हाथ मैं अपने बेटे के हाथ पर रख दूँ! × × ×"

कमला, माँ के मुँह में एक चम्मच पानी डालने के लिए फिर उनके पास पहुँची। पानी पिला कर वह हटना ही चाहती थी कि उसकी माँ भी उसके पास ही पहुँच गई। उसने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा—बेटा, अब तुम भी अपना हाथ दे दो, तुम्हारी माँ का यही सब से बड़ा अरमान है, इसे पूरा कर डालो।

देवू ने बिना किसी सङ्कोच के अपना हाथ बढ़ा दिया। कमला सदा के लिए उसकी हो गई, वह सदा के लिए कमला का हो गया। दोनों सिर झुकाए पलङ्ग के पास ही खड़े थे। दोनों की माँ इस अनुपम जोड़ी की करुणापूर्ण छवि को प्रेम-गद्गद भाव से देख रही थीं। रायसाहब भी आनन्द-विभोर हो रहे थे। सहसा, बाहर कुछ आदमियों की हलचल सी सुनाई पड़ी! राय-साहब ने खिड़की से झाँक कर देखा, पुलिस के कुछ सशस्त्र सिपाही उस घर में घुसे आ रहे थे। देखते ही देखते, उनका कप्तान उन लोगों के आगे आ खड़ा हुआ।

देवू के अधरों पर मुस्कुराहट नाच उठी, कमला के अधरों पर वेदना की छाया! रायसाहब की स्त्री काँप उठीं और वे स्वयं स्तब्ध-से खड़े रहे! खाट पर की वह बीमार बुढ़िया चिल्ला उठी—क्या फिर पकड़ने आए?

देवू ने आगे बढ़ कर आत्म-समर्पण कर दिया और कहा—ले चलो।

कमला से न रहा गया। वह लपक कर साहब की तरफ़ बढ़ी और उसको ज़ोर से धक्का मार कर ज़मीन पर गिरा दिया। वह बोली—बताओ, तुम लोग इतना अत्याचार क्यों करते हो?

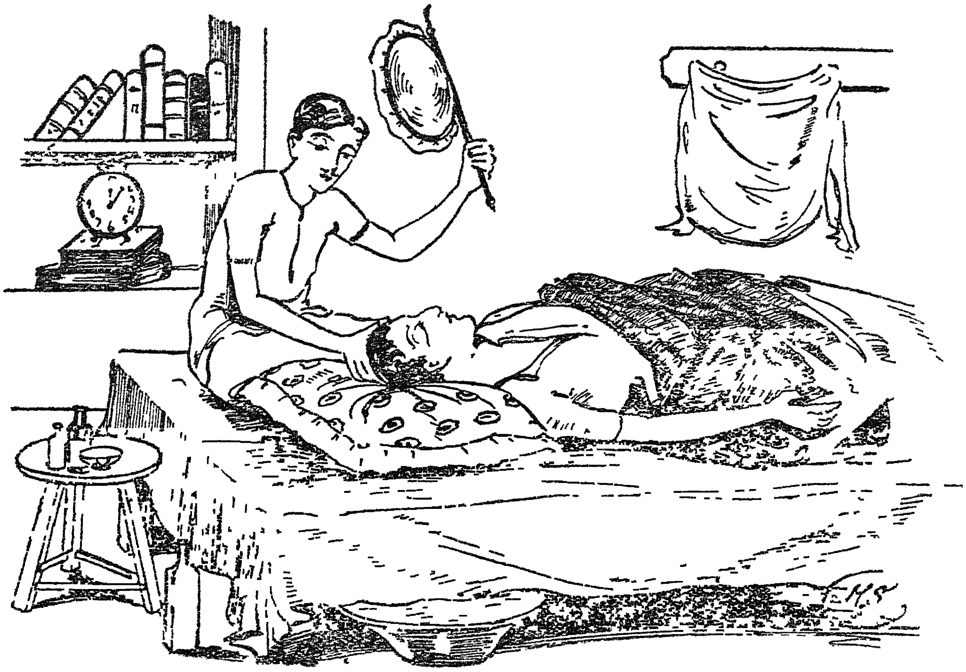
वह भी हँसती हुई गिरफ़्तार हो गई! दोनों के हाथ एक ही हथकड़ी से बाँध दिए गए!

देवू ने प्रमुदित होकर कहा—मेरी सच्ची सहधर्मिणी! तू मेरे जीवन-पथ की अमर ज्योति है, मैं अवश्य विजयी बनूँगा।

रायसाहब पत्थर की प्रतिमा बन गए थे, उनकी स्त्री फूट-फूट कर रो रही थीं और खाट पर की वह अभागिनी बुढ़िया बड़बड़ा रही थी—देखना, मेरी बहू को अच्छी तरह रखना बेटा! ख़बरदार, कभी उसे रुठाना नहीं! जाता है? अच्छा, जा! फिर आएगा न? कब आएगा? लाख बरस तक जीता रह! बेटी, मेरी बिट्टो! तेरा सुहाग सब दिन हँसता रहे × × ×

'वे दोनों' गिरफ़्तार होकर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गए, न इन लोगों की ओर फिर कर उन्होंने एक बार ताका, न इनसे कुछ कहा!

परिवर्तन



होस्टल में—



डिप्टी कलक्टर होने पर—

वर्तमान मुस्लिम-जगत्

[डॉक्टर मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

१९१४ में मुस्लिम संसार

सन् १९१४ में जब यूरोपीय महासमर की रणभेरी बजी, तो प्रायः सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पड़ा था। त्रिपोली और क़ुस्तुनतुनियाँ से पश्चिम का हिस्सा छिन जाने के कारण तथा यूरोपीय राष्ट्रों की सहायता से अरबी देशों के स्वातन्त्र्य आन्दोलन के कारण तुर्की का राज्य सङ्कुचित और उसका प्रताप क्षीण हो गया था। १९०८ की राज्यक्रान्ति भी एक प्रकार से असफल हो गई थी। मिसिर में लॉर्ड किचनर के सैनिक तथा निरङ्कुश शासन के कारण लोग दबे हुए थे। त्रिपोली, एलजेरिया, ट्यूनिस और मोरक्को, इटली, स्पेन तथा फ़्रान्स के अधीन थे। मोरक्को के मुसलमान फ़्रान्स के चङ्गुल में वैसे ही फँसे हुए थे, जैसे राजपूताने के राजे इस समय अङ्गरेज़ों के अधीन हैं। सीरिया, पैलेस्टाइन, हज्जाज और ईराक़ स्वतन्त्रता के स्वप्न देख रहे थे और तुर्की साम्राज्य से अलग होना चाहते थे। फ़ारस में रूसियों का अखण्ड राज्य था। अहमदशाह उनके हाथ की कठपुतली था और उसके राज्याभिषेक के समय जो पार्लामेण्ट बुलाई गई थी, वह केवल भुलावा था। उसके पीछे न कोई शक्ति थी और न वह प्रजा की प्रतिनिधि कही जा सकती थी। वास्तव में उस समय ईरान के स्वामी थे रूसी लोग और उनके बाद शक्तिशाली थे अङ्गरेज़। अफ़ग़ानिस्तान अभी कुछ उन्नत ही नहीं होने पाया था। वहाँ रेल, तार, स्कूल आदि नहीं खुल सके थे। अभी सभ्य संसार के राष्ट्रों में अफ़ग़ानिस्तान की गणना भी नहीं होने लगी थी। भारतवर्ष के मुसलमान काफ़ी सभ्य और उन्नत थे, परन्तु वे अङ्गरेज़ों की कड़ी ज़ञ्जीरों से जकड़े हुए और शस्त्रहीन थे। चीन, पश्चिमी तुर्किस्तान, जावा, बोर्नियो आदि में जो अल्पसंख्यक मुसलमान बस्तियाँ थीं, उनका भाग्य-सूत्र अपने देशवासियों के साथ बँधा हुआ था।

प्रत्येक देश के साथ अलग-अलग समस्याएँ और कठिनाइयाँ थीं। तुर्की को रूस, फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान तीनों से भय था। मिसिर पर तो अङ्गरेज़ों का पूर्ण अधिकार ही था। अरबी देशसमूह स्वतन्त्रता की तलाश में थे। ईरान रूस की चोटों के कारण कराह रहा था। फ़ारस में अफ़ग़ानिस्तान को धर्मान्धता और अनभिज्ञता से युद्ध करना और भारत के मुसलमानों को एक तरफ़ हिन्दुओं पर शक था तो दूसरी ओर सरकार से भय। कठिनाइयों में भेद होते हुए भी सम्पूर्ण मुस्लिम-जगत् एक बात में मिला हुआ था। मोरक्को से आसाम तक सारा मुस्लिम-जगत् यूरोप से प्रायः घृणा करता था। केवल भारतीय मुसलमान अभी अङ्गरेज़ों की वफ़ादारी के गीत गाते थे, परन्तु उसके कारण थे, जो पूर्व प्रकरण में बतलाए जा चुके हैं और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही यह रुख़ भी बदला जाने लगा था। इस व्यापक घृणा के कारण ही जब युद्ध छिड़ा, तो समस्त मुस्लिम-जगत् ने इस यूरोपीय आपत्ति का अभिनन्दन किया। यह समाचार कि इस महाप्रलय में यदि यूरोप के गर्विष्ट राष्ट्र सर्वथा विलीन नहीं हुए, तो कम से कम क्षत-विक्षत तो अवश्य हो जावेंगे। इसी आशा से मुसलमानों को बड़ा हर्ष हुआ। वे हृष्टोत्फुल्ल नेत्रों से ईसाई राज्यों के पारस्परिक कलह के समाचार पढ़ने लगे।

तुर्की युद्ध में क्यों सम्मिलित हुआ ?

१९१४ में तुर्की के सुलतान अब्दुलहमीद का देहान्त हो चुका था और सुलतान मुहम्मद पञ्चम उस

समय राज्य करता था। उसके समय में वहाँ का नव-युवक-सङ्घ फिर प्रबल होने लगा और शासन में भी अधिकाधिक भाग लेने लगा। ऐक्य और उन्नति-सङ्घ, जो कई वर्ष पूर्व स्थापित हो चुका था और कभी प्रबल तथा कभी निर्बल हो जाया करता था, इस समय फिर उकसा और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विचार करने लगा। तुर्की को महासमर में सम्मिलित होना चाहिए या नहीं, और अगर सम्मिलित हो तो किसकी तरफ़ से, यह प्रश्न देश में उठाया गया। रूस, तुर्की का पक्का शत्रु था, इसलिए यह कहा जाता था कि यदि महासमर में रूस विजयी हो जायगा तो वह अजेय और दुर्निवार्य होकर तुर्की को हड़प बैठेगा। इसलिए तुर्की को रूस के विरुद्ध लड़ना चाहिए। इसके सिवा तुर्की अङ्गरेज़ों पर भी अधिक सन्देह करने लगा था। अब तक तो रूस और इङ्गलैण्ड में मुस्लिम देशों के विषय में विरोध रहता था, जैसे ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में। परन्तु इस महासमर में दोनों देश मित्र बन गए थे। इस मित्रता के कारण इङ्गलैण्ड भी तुर्की तथा अन्यान्य मुस्लिम देशों का शत्रु माना जाने लगा। तीसरा कारण एक और था। समर के आरम्भ से पूर्व तुर्की इङ्गलैण्ड के कारख़ानों में दो जहाज़ बनवा रहा था और उनकी क़ीमत भी पेशगी दी जा चुकी थी, परन्तु इस समय इङ्गलैण्ड को जहाज़ों की बड़ी आवश्यकता थी, इसलिए ये दोनों जहाज़ अङ्गरेज़-सरकार ने अपने उपयोग के लिए रख लिए। इसी समय जर्मनी ने दो जहाज़ तुर्की को बेच दिए। इसे एक प्रकार से, इङ्गलैण्ड ने अपने विरुद्ध युद्ध-घोषणा समझी। उधर युयुत्सु-मित्र भी तुर्की को मित्र या शत्रु बनाने के लिए अधीर हो रहे थे। दनयाल और बोस्फ़रस के जल-विभाजक तुर्की राज्य में थे, इसलिए रूसी सेना के वास्ते दक्षिण में जलमार्ग नहीं था। बाल्टिक सागर से होकर आना जर्मनी के सान्निध्य के कारण असम्भव सा ही था। इसलिए तुर्की युयुत्सु-मण्डल का मित्र बनता तब काम चलता या उसको दबा दिया जाता तब मार्ग निष्कण्टक होता। उसको मित्र बनाना अङ्गरेज़ों को अभीष्ट नहीं था। सन् १९१४ के लगभग इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स में जो समझौता हुआ था, उसके अनुकूल पूर्वी मुस्लिम देशों पर इङ्गलैण्ड का अधिकार मान लिया गया था और भारत में अपना राज्य अटल रखने के लिए अङ्गरेज़ मिस्रि, अरब, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान को अपने अधीन करना चाहते थे। इस उद्देश्य से वे अरब और ईराक़ आदि को सहायता देकर तुर्की के विरुद्ध भड़काना चाहते थे और इस भेद-नीति से एक-एक करके मिस्रि से भारत तक सब मुस्लिम देशों को अधिकृत करने की फ़िक्र में थे। इसलिए उनकी अरबी नीति के कारण न तो तुर्की उनकी मित्रता स्वीकार कर सकता था और न स्वयं वे उसकी मित्रता के अभिलाषी थे। इसीलिए तो इङ्गलिस्तान ने तुर्की के जहाज़ों को छीनने के समय कुछ आगा-पीछा नहीं सोचा था।

इस स्थिति को देख कर तुर्की के ऐक्य-उन्नति-सङ्घ ने उसे इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स और रूस के प्रति युद्ध करने के लिए उभारना शुरू किया। शैख़-उल-इस्लाम ने फ़तवा दे दिया कि इन तीन काफ़िर देशों के विरुद्ध लड़ना जिहाद अर्थात् धर्म-युद्ध है और जर्मनी तथा ऑस्ट्रिया-हङ्गरी भी यद्यपि ईसाई राज्य हैं, तथापि उनके साथ मित्रता करने में तथा युद्ध में उनकी सहायता करने में कोई हानि नहीं है। सन् १९१४ में जितने मुस्लिम देश परतन्त्र थे, वे सब इङ्गलैण्ड, फ़्रान्स या रूस के अधीन ही थे। उस समय स्वतन्त्र देश वास्तव में तुर्की के सिवा और था ही कौन सा? इसलिए भी शैख़-उल-इस्लाम का फ़तवा अनुचित नहीं था। फिर भी जब तुर्की के ख़लीफ़ा ने मुस्लिम-जगत् को इस जिहाद में शामिल होने के लिए आह्वान किया तो मुसलमानों में एक हलका सा स्पन्दन होकर रह गया। इसके तीन कारण थे। पहला कारण यह था कि मिस्रि, ईरान, अफ़ग़ानिस्तान और भारतवर्ष या तो युयुत्सु-मित्रों के अधीन थे, या दबे हुए थे। भारत के सात करोड़ मुसलमान तो बिल्कुल निःशस्त्र थे। दूसरा हेतु यह था कि अनेक मुसलमान नेता नहीं चाहते थे कि मुसलमान इस युद्ध में सम्मिलित होकर अपना रक्त बहावें। उनका कहना था कि चाहे जर्मनी हारे चाहे इङ्गलैण्ड, ईसाइयों की शक्ति वाञ्छनीय है। इस पारस्परिक कलह के कारण ईसाई-राष्ट्र क्षीणबल और शान्त हो जावें तब मुसलमानों को अवसर देख कर हाथ-पैर हिलाना चाहिए। तीसरा कारण यह था कि अब जिहाद का समय भी बीत चुका था। मुसलमानों में राष्ट्रीयता

की जाग्रति के कारण अपने-अपने देश और स्वत्वों की रक्षा करने की अधिक फ़िक्र थी।

युद्ध-घोषणा

२८ अक्टूबर सन् १९१४ को तुर्की ने रूस के विरुद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया और कृष्ण सागर के बन्दरगाहों पर गोले बरसाए। फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली ने तुर्की की मित्रता छोड़ दी और ६ नवम्बर को ब्रिटिश-साम्राज्य के प्रधान मन्त्री श्री० लॉयड जॉर्ज ने ह्वाइट हॉल में भाषण देते हुए कहा कि तुर्की सरकार ने मानो स्वयं उद्घोषित कर दिया है कि यूरोप में ही नहीं, बल्कि एशिया में भी तुर्कों के राज्य का अन्त होने वाला है। यह गर्वोक्ति अर्धांश में ठीक निकली।

१९१५ और १९१६ की गुप्त सन्धियाँ

सन् १८१५ के आरम्भ में ही रूस, ग्रेटब्रिटेन और फ़्रान्स में एक गुप्त समझौता हुआ, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि रूस को अधिकार है कि वह क़ुस्तुनतुनिया दरेदानियाल और बोस्फ़रस तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश, समुद्रतट और टापू जीत कर अपने राज्य में मिला ले। एशियाई तुर्की में इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स का क्या भाग होगा और उसके किस प्रकार टुकड़े किए जाएँगे, इस विषय का निर्णय करने को फ़्रान्स, रूस और इङ्गलैण्ड में एक अलग समझौता होगा। यह दूसरा समझौता भी सन् १९१६ में हो गया और इसके अनुसार निश्चय हुआ कि एडज़ीरम, भेवीज़न्द, वान, वितलिस्ट और क़ुर्दिस्तान के दक्षिण के कुछ हिस्से रूस को मिलेंगे। सीरिया का समुद्रतट, अदाना की विलायत और नई रूसी सीमा के पूर्वोत्तर का प्रदेश फ़्रान्स को दिया जायगा तथा ईराक़ का दक्षिण भाग बग़दाद, पैलेस्टाइन का हेफ़ा और ऐकर बन्दरगाहों पर इङ्गलैण्ड अधिकार जमावेगा। इसी समझौते में यह भी तय हुआ कि फ़्रेञ्च और अङ्गरेज़ी राज्य के बीच में स्वतन्त्र अरबी रियासतें या रियासत होगी और युयुत्सु-सङ्घ के धार्मिक हितों को दृष्टि में रखते हुए पलस्तीन और उसके पवित्र नगरों में एक विशेष प्रकार का राज्य-प्रबन्ध स्थापित किया जावेगा और उसका स्वरूप रूस, फ़्रान्स तथा इङ्गलैण्ड आपस में मिल कर तय करेंगे।

महासमर में सम्मिलित होने का परिणाम यह हुआ कि अरबी देश और मिसिर तुर्की राज्य से अलग हो गए। ३० अक्टूबर सन् १९१८ में जब अस्थायी सन्धि हुई तो टोरस के दक्षिण में सब एशियाई देश युयुत्सु-सङ्घ के अधीन थे। अब दानियाल और बोस्फ़रस के जल-मार्ग भी उनकी नौ-सेनाओं के हाथ में आ गए। तुर्की के ऐक्य तथा उन्नति-सङ्घ की सब योजनाएँ और आकांक्षाएँ मिट्टी में मिल गईं और तुर्की राष्ट्र चार वर्षों के निरन्तर युद्ध से जर्जर होकर बैठ गया। चारों ओर निराशा और भ्रान्ति दिखाई देने लगी। कभी वे अपने भाग्य को कोसते और कभी मिसिर के भाग्य को सराहते थे। उस विपन्नावस्था में इन्हें मिसिर की पराधीनता भी अपनी दुर्दशा से अधिक अच्छी मालूम होती थी। अनेक बुद्धिमान तथा निराशावादी तुर्क यह अनुभव करने लगे कि संसार के वर्तमान जीवन-सङ्घर्ष में तुर्की वास्तव में अपने पैरों के बल खड़ा होने के योग्य नहीं है। वैज्ञानिक शस्त्रास्त्र से सुसज्जित यूरोपीय सेनाओं का तथा सदियों के शासन से परिपुष्ट यूरोपीय सरकार और धुरन्धर राजनीतिज्ञों का सामना करते-करते जर्जर होने और अन्त में जगतीतल से अन्तर्हित हो जाने से तो यही अच्छा है कि अमेरिका या इङ्गलैण्ड की अधीनता स्वीकार कर ली जावे। उनको क्या पता था कि निराशा-रजनी की कुछ ही घड़ियाँ शेष थीं और कमाल-सूर्य का शीघ्र ही उदय होने वाला था।

तुर्की को निर्बल करने के प्रयत्न

तुर्की को निर्बल करने के लिए यूरोपीय राष्ट्र सदैव उसके ग़ैर-तुर्की प्रदेशों में हस्तक्षेप किया करते थे। फ़्रेञ्च, रूसी और अमेरिकन आदि ईसाइयों की अनेक बस्तियाँ तुर्की में बसी हुई थीं, जो तुर्की राज्य में रहते हुए भी सदैव अपने विशेष स्वत्वों की रक्षा के लिए अपनी ईसाई सरकारों से अपील किया करती थीं और ईसाई-राष्ट्र हस्तक्षेप करने का अवसर ही ताका करते थे। हम पहिले ही बतला चुके हैं कि अरबी देश तुर्की की अधीनता को पसन्द नहीं करते थे और स्वतन्त्रता के लिए अनेक प्रकार के यत्न किया करते थे। उनके इस आन्दोलन में यूरोपीय राष्ट्र गुप्त रूप से

सहायक थे। कम से कम उनके साथ सहानुभूति रखते थे। अरबी प्रदेशों को पृथक् करके और मिल्लतों अर्थात् ईसाई बस्तियों को उभार करके यूरोपीय राष्ट्र "यूरोप के मरीज़" तुर्की की अन्त्येष्टि करना चाहते थे। सन् १९१४ तक तो यह नीति ही थी, और प्रत्यक्ष में सब ईसाई राष्ट्र तुर्की के मित्र थे। परन्तु जब तुर्की ने जर्मनी और आस्ट्रिया-हङ्गरी का पक्ष ग्रहण कर लिया तो विपक्षी राष्ट्र खुल्लमखुल्ला उसके घर में फूट के बीज बोने लगे और साम, दाम, दण्ड, भेद चारों प्रकार से अपने उद्देश्य की सिद्धि में लग गए। मक्के के बड़े शरीफ़ हुसैन इब्नअली के साथ बातचीत होने लगी कि वह किन शर्तों पर तुर्की के विरुद्ध बलवा कर सकता है। १९१५ में अङ्गरेज़ी वायुयानों के द्वारा अरबिस्तान मे हज़ारों विज्ञापन इस आशय के बाँटे गए थे कि जब युद्ध समाप्त होकर सन्धि होगी तो अङ्गरेज़ी सरकार उसमें यह भी शर्त रक्खेगी कि अरबिस्तान और उसके पवित्र स्थान बिलकुल स्वतन्त्र कर दिए जावें और इनमे से एक बाल भर भूमि भी अङ्गरेज़ी या मित्र-राष्ट्रों के राज्य में न मिलाई जावे। हुसैन के साथ बातचीत हुई। उससे कहा गया कि अरबी देशों का एक संयुक्त राज्य बना दिया जाएगा। अर्थात् ईराक, अरब और सीरिया आदि उसके अधीन हो जावेंगे और वह एक स्वतन्त्र अरब राष्ट्र का स्वामी बन जायगा। इसके साथ ही साथ उससे यह भी कहा गया था कि यदि वह तुर्की-सरकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर देगा तो उसको अङ्गरेज़ी-सरकार से आर्थिक सहायता मिलेगी। स्वतन्त्र राज्य-प्राप्ति के प्रबल प्रलोभन को कौन छोड़ सकता था? हुसैन ने इस रिश्वत को स्वीकार कर लिया और जून सन् १९१६ में तुर्की के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करके स्वयं अरब का सम्राट बन गया। अङ्गरेज़ सरकार ने इसको हज़ारों रुपए रोज़ देकर इसकी सहायता करनी शुरू कर दी और उसने अरब में तुर्कों के ख़िलाफ़ ज़हर फैलाना आरम्भ किया। ९ जुलाई सन् १९१६ में इसने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें घोषित किया कि "तुर्की साम्राज्य का शासन इस समय ख़लीफ़ा के हाथ में नहीं है, बल्कि ऐक्य और उन्नति-दल के हाथ में है, जिसके नेता इस्लाम के विरोधी क़ाफ़िर हैं। हमारे देश-भाइयों ने अब इस्लाम की सेवा करने का निश्चय कर लिया है। इस्लाम का मस्तक ऊँचा करना हमारा जीवन-ध्येय है। हमारे प्रयत्न सब शरियत के अनुकूल होंगे। इस्लाम धर्म और क़ानून के अनुकूल जो भी सुधार हो सकेंगे, सब किए जावेंगे। देश में सुधारों की माँग है, परन्तु तुर्की की भाँति यहाँ शरियत के विरुद्ध कोई कार्य न होगा।" तो भी इन विज्ञप्तियों की तह में क्या था, उसे मुसलमान-जगत् समझ गया था। सब मुसलमान मानने लगे थे कि हुसैन का बलवा तुर्की के विरुद्ध है और इससे इस्लाम का अहित होगा। पर मुसलमान कर ही क्या सकते थे। उनकी विवशता और हुसैन का विद्रोह दोनों एक ही नीति के फल थे। चारों तरफ़ से रूस, इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स उनकी बेड़ियों को मज़बूत करते जाते थे।

हुसैन और इब्नसऊद

उस समय हुसैन की मित्रता से अङ्गरेज़ों का ख़ूब काम बना। हुसैन का जन्म क़ुरेशी वंश में हुआ था। पैग़म्बर मुहम्मद भी इसी वंश के थे और मुस्लिम विद्वानों का मत था कि पैग़म्बर इसी वंश का होना चाहिए। मुसलमानों का सर्वाधिक पवित्र नगर मक्का पर कई शताब्दियों तक इस वंश का राज्य था। इसलिए ख़िलाफ़त और मक्का में घनिष्ट सम्बन्ध माना जाता था। मक्का की रक्षा करना और उसके मान तथा प्रतिष्ठा को बनाए रखना ख़लीफ़ा का सर्व-प्रथम कर्त्तव्य था। हुसैन स्वयं बड़ा धुरन्धर विद्वान था। अरबी साहित्य का वह पारङ्गत पण्डित था। देश में उसके लेखों की धूम थी और "अलक़िबला" नामक पत्र का वह सम्पादक भी था। वह पुनर्जीवित अरब राज्य, अरबी ख़लीफ़ा और अरब-गौरव के स्वप्न देखा करता था। उसके पुत्रों ने क़ुस्तुनतुनिया मे शिक्षा पाई थी और वर्तमान यूरोपीय विचारों से उनका सम्पर्क हो चुका था। वह पूर्व की परम्परागत नीति के अनुकूल शासक को पितावत् और प्रजा को पुत्रवत् मानने वाला था और इसी सिद्धान्त के अनुकूल उसने शासन किया था। एक व्यक्ति के शासन में, चाहे उसका ध्येय कितना ही ऊँचा क्यों न हो, भारी भूलें हुए बिना नहीं रह सकतीं। उसके पतन का एक कारण उसका अनियन्त्रित शासन ही था। वह अपनी समझ और सामर्थ्य का

अत्यधिक अनुमान करता था और विरोधियों के मत और बल को तुच्छ समझता था। इस कारण इब्न-सऊद और उससे घोर विरोध हो गया। इब्नसऊद वहाबी था और इस्लाम का पूर्ण सुधार चाहता था। पीछे से घुसी हुई कुरीतियाँ, गुरुडम और विलासिता उसकी आँखों में खटकती थी। उसकी धारणा थी कि जैसे मध्यकाल में रोम और रोम के पोपों की दशा बिगड़ गई थी, वही हालत उसके समय में मक्का की हो गई थी। उसके नज़दीक हुसैन भी अरब की उन्नति और सुधारों का विरोधी था। हुसैन ने अपने पुत्र को नज्द में भेजा और इब्नसऊद से समझौता करना चाहा, पर कुछ नहीं हुआ।

हुसैन की घोषणा

४ नवम्बर सन् १९१६ को हुसैन की ताजपोशी हुई और उसके सरकारी गज़ट में यह विज्ञप्ति प्रकाशित की गई कि "आज अरबों के बड़े सौभाग्य का दिन है कि उनका प्राचीन गौरव और खोया हुआ प्राचीन राज्य फिर उनको मिल गया है। अब अरब राज्य का शासन पुनः उसी वंश के हाथ में आ गया है, जो संसार में सबसे पुराना शाही घराना है। यह घराना ख़ुदा के सिवा और किसी को अपने से बड़ा नहीं मानता और अरबी झण्डे के सिवाय और किसी झण्डे का मान नहीं करता।" ताजपोशी बड़ी धूमधाम से की गई थी। सीरिया की ओर से सामी-उल-बकरीस प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित था, फ्रान्स ने नए बादशाह को मान लिया था और उत्तरी अफ्रीका के मुसलमानों का एक डेपूटेशन उसे सलाम करने आया था। पेरिस से एक अरबी पत्र प्रकाशित होता था, उसने भी इस अवसर का स्वागत किया था। परन्तु हुसैन ने गद्दी पर बैठते ही शरीयत की दोहाई देना छोड़ दिया और धार्मिक भेदों को भुला कर राष्ट्रीय सङ्गठन पर ज़ोर देने लगा। उसने प्रकाशित किया कि "हमारे इस कार्य ने हमारे मुसलमान और ईसाई देशवासियों के लिए मार्ग साफ़ कर दिया है। अपनी घरू नीति में हम अपने पूर्व पुरुषों का अनुसरण करते रहेंगे। परन्तु साथ ही यूरोपीय संस्थाओं से और वर्तमान सभ्यता से जितना लाभ मिल सकेगा ग्रहण करेंगे। जिन उपायों द्वारा अन्य देशों के समान हमारे उन्नत बनने की सम्भावना होगी, उनका हम उपयोग करेंगे। इस कार्य में हमको सम्पूर्ण अरबिस्तानियों के सहयोग की आवश्यकता है। ग़ैर-मुस्लिम भाइयों की सहायता लेने में हमारा धर्म या हमारी परम्परा बाधक नहीं होनी चाहिए। हमारे राज्य में मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों के समान अधिकार होंगे।" परन्तु एक मास बाद ही हुसैन को पता चल गया कि अरब में वह राज्य नहीं कर सकता। विवश होकर उसने हज्जाज के बादशाह का पद धारण किया। इस समय मदीने के सिवा शेष सम्पूर्ण हज्जाज को वह अधिकृत कर चुका था और अरबी सेना उसके पुत्र फ़ैसल के नेतृत्व में मित्रों की सेना के साथ-साथ जनरल एलन बी की अध्यक्षता में पलस्तीन में लड़ रही थी।

चर्चिल की योजना

इधर यह हो रहा था और उधर विन्स्टन चर्चिल अपनी अलग ही एक योजना बना रहे थे। वास्तव में इस समय मुस्लिम देश यूरोपीय और विशेषकर अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों के हाथ में एक प्रकार से शतरञ्ज की गोटें बन रहे थे। विन्स्टन चर्चिल की योजना थी कि मिस्र से भारत तक एक पूर्वी साम्राज्य स्थापित किया जावे। इस साम्राज्य की स्थापना में वह केवल तुर्कों को बाधक समझता था। और उनको क्षीणबल करने के लिए हुसैन आदि के बल ही से वह काम लेना चाहता था। चर्चिल समझता था कि यदि इस साम्राज्य की स्थापना हो जावेगी तो फिर रूस का बिलकुल डर न रहेगा और भारतवर्ष कभी अङ्गरेज़ों के हाथ से न जा सकेगा। चर्चिल की यह योजना बड़ी दूरदर्शितापूर्ण थी। यदि यह पूरी हो जाती तो एक प्रकार से सारा एशिया ही अङ्गरेज़ों के हाथ में चला जाता। चर्चिल को क्या मालूम था कि महासमर समाप्त होते ही सम्पूर्ण मुस्लिम देशों में राष्ट्रीय भावों की प्रबल बाढ़ उमड़ आवेगी और जहाँ अङ्गरेज़ी राज्य पहिले से जमा हुआ है, वहाँ भी इसकी जड़ें हिलने लगेंगी। अस्तु—

ईराक़ और सीरिया की विजय

अङ्गरेज़ लोग हुसैन को भड़का कर और सिखा-पढ़ा कर ही चुप नहीं हो गए। पूर्व में ईराक़ और पश्चिम में सीरिया आदि में उन्होंने अपनी सेनाएँ भेजना आरम्भ किया। लोगों से कहा जाता था कि अङ्गरेज़ी सेनाएँ

तुर्कों द्वारा पददलित अरबों को मुक्त बनाने के लिए आई हुई हैं। मार्च सन् १९१७ में अङ्गरेज़ों ने बग़दाद पर क़ब्ज़ा कर लिया और अङ्गरेज़ी सेनानायक ने यह विज्ञप्ति निकाली—"बग़दाद-निवासियो, आप यह मत समझ लेना कि अङ्गरेज़ लोग ज़बरदस्ती आपके यहाँ अपनी संस्थाएँ स्थापित करेंगे। अङ्गरेज़-सरकार की अभिलाषा है कि आपके कवि और दार्शनिकों का सम्मान बना रहे और फिर आप सम्पन्न और स्वस्थ बनें। आप लोगों के हित के लिए ऐसी संस्थाएँ जारी की जावेंगी जो आपके धर्म और क़ानून के अनुकूल होंगी। अङ्गरेज़ सरकार और उसके मित्र यह चाहते हैं कि अरबी राष्ट्र फिर उन्नत और सबल हो और संसार की सभ्य जातियों के सामने अपना मस्तक ऊँचा कर सके। आपको अङ्गरेज़ी प्रतिनिधियों के साथ सहयोग करना चाहिए और अन्य अरब देशों के साथ मित्रता स्थापित करनी चाहिए।"

अङ्गरेज़ सैनिकों की नीति और उसका प्रकटीकरण

इसके बाद, दिसम्बर सन् १९१७ में, अङ्गरेज़ी जनरल एलन बी ने यरूशलम पर अधिकार जमा लिया। जिस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु ईसाई राष्ट्र शताब्दियों से तड़प रहे थे, वह पूरा हो गया। इतना ही नहीं, मक्का पर भी अङ्गरेज़ों का दबदबा जम गया। बग़दाद, मक्का, यरूशलम आदि पर अङ्गरेज़ सैनिकों ने कब्ज़ा कर लिया था और फ़ैसल एक प्रकार से उनका नौकर ही था। हुसैन उनका सिखाया-पढ़ाया शिष्य और उन्हीं का बनाया हुआ बादशाह था। इस प्रकार सम्पूर्ण अरब और ईराक़ अङ्गरेज़ों ने अपने क़ब्ज़े में कर लिए थे, परन्तु जहाँ देखो वहाँ बातें यही करते थे कि अरबी देशों को स्वतन्त्र, उन्नत तथा गौरवान्वित करने के लिए यह सब कुछ किया जा रहा है। नेपोलियन भी जब देशों को विजय करने जाता था तो इसी नीति से काम लेता था। मिसिर, उत्तर इटली, जर्मनी आदि को ऐसे मीठे वचनों में उसने ख़ूब फँसाया था। यह नीति यूरोपीय विजेताओं के स्वभाव का अङ्ग जान पड़ती है। इधर अधिकृत देशों से ये बातें कही जाती थीं, लेकिन उधर सन् १९१५-१६ में ही गुप्त समझौता हो चुका था कि अरबी देशों को इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स किस प्रकार आपस में बाँटेंगे। शासकों और सैनिकों के बर्ताव से इन देशों को पता चलने लग गया था कि फ़्रान्स और इङ्गलिस्तान की मन्शा क्या है। १ली अगस्त सन् १९१६ को एक फ़्रान्सीसी पत्र में बैरूट के एक मुसलमान का निम्न-लिखित पत्र प्रकाशित हुआ था। उस समय के कई पत्र इस बात का अपने देश में प्रचार करते जाते थे कि सीरिया फ़्रान्स की अधीनता स्वीकार करने के लिए अत्यन्त लालायित है। यह वैसा ही प्रचार था, जैसा एङ्गलो-इण्डियन पत्र आजकल भारतवर्ष के विषय में कहा करते हैं। इसके जवाब में यह पत्र प्रकाशित हुआ था।

सीरिया का विरोध

"सीरिया और ईराक़ के बीच में न कोई भौगोलिक सीमा है और न वहाँ के निवासियों में कोई जाति-भेद है। धार्मिक विचारों में किञ्चित् भेद है, पर तुर्की शासकों के कारण वह कभी-कभी भयङ्कर रूप में प्रकट हुआ करता था। तुर्कों के शासन में अरब लोग शताब्दियों तक कष्ट भोग चुके हैं। अनेक अरबी लोग तुर्कों के अत्याचार से बचने के लिए विदेशों में भाग गए हैं। परन्तु वहाँ जाकर भी वे अपने प्यारे देश को नहीं भूले हैं और उसकी स्वतन्त्रता की उनको सदा चिन्ता रहती है। आप लोगों ने हमको शिक्षा दी है, उससे हमारा ज्ञान विस्तृत हो गया है और साथ ही हमारी आकांक्षाएँ भी उच्च बन गई हैं। हमने जो कुछ आपसे सीखा है, उसको अपने साहित्य का अङ्ग बना दिया है। जब से युद्ध का आरम्भ हुआ है, तभी से हम निरन्तर सुनते आए हैं कि इसका उद्देश्य लोगों को स्वतन्त्र बनाना है। यह जान कर हमको हर्ष-रोमाञ्च होने लगा है। हमारे अन्दर स्वतन्त्रता की अभिलाषा जाग उठी थी, लेकिन अब हमको निराशा का अनुभव होने लगा है। हम फ़्रान्स से प्रेम करते हैं, हम उसको स्वतन्त्रता का रक्षक समझते हैं; लेकिन यदि उसने भी हमको तुर्कों की भाँति दासता में जकड़ा तो हम उसको भी उसी भाँति कोसेंगे, जैसे हम तुर्कों को कोसा करते हैं। तुर्कों की अपेक्षा हमको फ़्रान्स की अधीनता अधिक असह्य होगी। ईराक़ से हमको जुदा कर देने से हमारी दशा पोलैण्ड की सी हो जावेगी। परिणाम यह होगा कि फ़्रेञ्च-विद्यालयों

(शेष मैटर ५०० पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

अन्धविश्वास

[श्री० सत्यभक्त जी]

अन्धविश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है। संसार का कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ इसकी पहुँच न हो। अफ़्रीका के घोर कुसंस्काराच्छन्न नर-भक्षियों से लेकर यूरोप और अमेरिका के वैज्ञानिक सामग्रियों से घिरे हुए श्वेताङ्गों तक पर इसका अतुलित प्रभाव देखने में आता है। इसकी माया ऐसी अद्भुत है कि यह जिस प्रकार अशिक्षितों और गँवारों को अपने चङ्गुल में फँसाता है, उसी प्रकार पढ़े-लिखों और सुसभ्य लोगों को भी अपना अनुयायी बना लेता है।

सबसे पहले भारतवर्ष को ही लीजिए। यहाँ के लोग धर्म के बहुत बड़े ज्ञाता और दार्शनिक होने का दावा करते हैं। ब्रह्म और जीव की एकता तथा ईश्वर की सर्वशक्तिमानता पर यहाँ के विद्वानों ने बड़े-बड़े पोथे लिख डाले हैं। इसी देश में सांख्य, न्याय, योग जैसे गहन विषयों के ग्रन्थ रचे गए हैं, जिनसे अनेक अन्धविश्वासों और भ्रममूलक धारणाओं का खण्डन हो जाता है। पर इतने पर भी अन्धविश्वास का जैसा अटल और व्यापक साम्राज्य इस देश में है, वैसा शायद ही पृथ्वी के किसी अन्य भाग में देखने को मिलेगा। यहाँ के स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध आदि सब श्रेणियों और सब अवस्थाओं के लोग अन्धविश्वास में फँसे हुए हैं, और उस पर इतनी अधिक श्रद्धा रखते हैं कि देखने वाले को आश्चर्य होता है। सच पूछा जाय तो सच्चे धर्म को यहाँ के निवासी सर्वथा भुला बैठे हैं और उसका स्थान भाँति-भाँति के अन्धविश्वासों ने ही ग्रहण कर लिया है।

हिन्दुओं में फैले हुए सैकड़ों तरह के अन्धविश्वासों में से एक प्रधान अन्धविश्वास मुहूर्त है। छोटा-बड़ा कोई कार्य करना हो, ये लोग सब से पहले उसके लिए कोई 'शुभ' मुहूर्त पूछने को पण्डित के पास दौड़ते हैं। जन्म से मरण तक की जितनी धार्मिक या सामाजिक क्रियाएँ हैं, उनके लिए तो मुहूर्त जान लेना आवश्यक ही है, पर यात्रा को जाने, दुकान खोलने, मकान बनवाने, यहाँ तक कि नए कपड़े पहिनने के लिए भी लोग मुहूर्त का पता लगा लेते हैं। कितने ही लोग बिना शुभ दिन के हजामत तक नहीं बनवाते। स्त्रियाँ चूड़ी पहिनने में शुभ और अशुभ दिन का ख़याल रखती हैं।

शकुन का महत्व भी कम नहीं है। छींक आने; छिपकली के गिरने; रवाना होते समय पानी का ख़ाली या भरा घड़ा मिलने; बिल्ली के मार्ग काट जाने; काने या अन्य हीन अङ्ग वाले व्यक्ति के मिलने; तेली, तमोली, चर्मकार, चाण्डाल आदि किसी ख़ास पेशे वाले से भेंट होने आदि बातों से यहाँ के लोग सफलता या असफलता, हानि या लाभ का निश्चय पहले ही से कर लेते हैं। कितने ही लोग अत्यावश्यक कार्य के लिए जाते हुए ऐसे किसी अपशकुन को देख कर वापस लौट जाते हैं और अपनी हानि कर लेते हैं। यदि वैद्य को बुलाने के लिए जाते हुए कोई अशकुन हो जाय तो ऐसे व्यक्ति रोगी के मर जाने की धारणा पहले से ही कर लेते हैं।

इनके सिवा जादू, मन्त्र, टोना, टोटका, झाड़-फूँक, नज़र आदि सम्बन्धी और भी सैकड़ों तरह के अन्धविश्वास यहाँ की साधारण जनता में देखने में आते हैं और इनके कारण प्रायः बड़ा अनिष्ट होता रहता है। बच्चों की मृत्यु का तो एक बहुत बड़ा कारण यही है। यहाँ की स्त्रियाँ और कितने ही पुरुष भी छोटे बच्चे को किसी प्रकार की तकलीफ़ होते ही सब से पहले नज़र लग जाने या टोना-टोटका की बात ही सोचते हैं और रोग का उपयुक्त इलाज करने के बजाय ओझाओं और स्यानों से झाड़-फूँक कराने पर ही अधिक ध्यान देते हैं। अथवा वे बच्चे को लाल मिर्चों आदि की धूनी देते हैं या फूल-बताशे आदि कितनी ही चीज़ें

एक दोने या मिट्टी के बर्तन में रख कर चौराहे पर रख आते हैं। इस युक्ति को 'उठावा' या 'चलावा' कहते हैं और लोगों का विश्वास है कि इसके द्वारा बच्चे का रोग उस व्यक्ति के पास चला जाता है, जो उन चीज़ों को उठाता है या छू लेता है। इस तरह की बातों का फल यह होता है कि बीमारी ज़ोर पकड़ जाती है और बच्चा प्रायः असमय में ही काल-कवलित हो जाता है। कभी-कभी इस प्रकार की धारणाओं का फल और भी भयङ्कर निकलता है और लोग अपने ही हाथों अपने प्रियजनों का घोर अनिष्ट कर बैठते हैं। कितने ही लोग भूत-प्रेतादिक को सिद्ध करने के फेर में पड़ कर अपनी जान गँवा देते हैं और कितने देवी-देवताओं से वर प्राप्त करने की अभिलाषा से अपना सर मूर्ति के सामने काट डालते हैं। कुछ समय पहले अख़बारों में एक विद्यार्थी का हाल छपा था, जिसने रामायण में रावण के सर काटने और पुनर्जीवित हो जाने का किस्सा पढ़ कर शिवजी के मन्दिर में अपना सर काट कर चढ़ा देने की चेष्टा की थी, पर गर्दन का कुछ भाग कटते ही वह यन्त्रणा से बेसुध हो गया और इससे उसके प्राण बच गए। इसी प्रकार चन्द कवि के जिह्वा काट कर देवी से वरदान पाने का हाल सुन कर एक व्यक्ति ने अपनी जीभ काट डाली थी। गोस्वामी तुलसीदास के सम्बन्ध में यह मशहूर है कि शौच से बचा हुआ जल लगातार एक बबूल के पेड़ की जड़ में डालने से एक प्रेत उन पर प्रसन्न हो गया था और उसी की कृपा से उनको भगवान का दर्शन प्राप्त करने की युक्ति विदित हुई थी। इस किस्से पर विश्वास करके कितने ही व्यक्ति शौच के समय आधे गन्दे रह कर भी पेड़ों की जड़ में जल डालते फिरते हैं। इसी प्रकार के अनगिनती अन्ध-विश्वासों ने इस देश में डेरा जमा रक्खा है।

अन्य देशों के उदाहरण

पर जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, यह अन्धविश्वास का रोग भारतवासियों को ही नहीं है, सभी देशों के निवासी थोड़े-बहुत अंशों में इसमें ग्रस्त हैं। पुराने ज़माने में रोमन लोग बुख़ार को दूर करने के लिए बीमार आदमी के नाख़ून काट कर उन्हें सूर्योदय से पूर्व किसी पड़ोसी के दर्वाज़े पर मोम से चिपका देते थे। वे समझते थे कि इस उपाय से बुख़ार उस व्यक्ति को छोड़ कर पड़ोसी के यहाँ चला जायगा। ओरकनी टापू के लोग आजकल भी किसी बीमार व्यक्ति को स्नान कराके उसका पानी दर्वाज़े के बाहर फेंक देते हैं और समझते हैं कि जो कोई व्यक्ति सबसे पहले उस पर से निकलेगा, बीमारी उसको लग जायगी और स्नान करने वाला व्यक्ति नीरोग हो जायगा। बवेरिया (जर्मनी) में किसी व्यक्ति को बुख़ार आने पर वह एक काग़ज़ पर लिखता है—"बुख़ार, यहीं ठहरो, मैं घर पर नहीं हूँ।" इस काग़ज़ को वह चुपके से किसी अन्य व्यक्ति के जेब में डाल देता है, ताकि बुख़ार उसे छोड़ कर दूसरे व्यक्ति के पास चला जाय। अथवा वहाँ के लोग एक विशेष प्रकार के वृक्ष की डाली तोड़ कर बिना बोले हुए ज़मीन में गाड़ देते हैं। तब बुख़ार उस डाली में चला जाता है और जो कोई उसे उखाड़ता है, उसको लग जाता है। बोहेमिया (ऑस्ट्रिया) में लोग दूसरी तरह का उपाय काम में लाते है। वहाँ के निवासी ज्वरग्रस्त होने पर एक ख़ाली बर्तन लेकर चौराहे पर जाते है और उसे वहाँ फेंक कर भाग आते हैं। जो व्यक्ति सबसे पहले उस बर्तन से ठोकर खाएगा, बुख़ार उसको लग जायगा और बीमार व्यक्ति का पीछा उससे छूट जायगा। ओल्डेनबर्ग के निवासियों का विश्वास है कि जब ज्वर में ख़ूब पसीना आ रहा हो, तो बीमार को एक सिक्का देना चाहिए। बाद में वह सिक्का रास्ते में फेंक दिया जाय। जो व्यक्ति उसे उठाएगा, वह बीमार हो जायगा और पहले व्यक्ति की हालत सुधर जायगी।

(४६८वे पृष्ठ का शेषांश)

में पढ़-पढ़ कर हम राजनैतिक विचारों में उन्नत बनेंगे। मध्य अरबस्तान के उग्र विचार, जो इस समय सुषुप्त हैं, पुनः जाग्रत होंगे। उनका हममें भी सञ्चार होगा। हम उठ खड़े होंगे और अरब साम्राज्य, जिसकी हम वर्षों से अभिलाषा कर रहे हैं, स्थापित होगा।"

इस पत्र से स्पष्ट है कि सन् १६१५-१६ के समझौते के शब्द चाहे अरब लोगों को मालूम नहीं थे, परन्तु उनको अनुभव होने लगा था कि दूसरों की दिलाई स्वतन्त्रता नहीं मिलती। उसे स्वयं प्राप्त करना पड़ता है।

असभ्य और अर्द्ध-सभ्य जातियों की भाँति यूरोप वालों में भी यह विश्वास आमतौर से प्रचलित है कि किसी मनुष्य की बीमारी या तकलीफ़ टोटके द्वारा किसी जानवर पर उतारी जा सकती है। कितने ही पुराने लेखों में कहा गया है कि अगर किसी आदमी को बिच्छू काट ले तो उसे गधे के ऊपर पूँछ की तरफ़ मुँह करके बैठ जाना चाहिए, अथवा उसके कान में कहना चाहिए—"मुझे बिच्छू ने काट लिया है।" इन तरकीबों से आदमी की तकलीफ़ गधे पर चली जायगी। कैशायर (इङ्गलैण्ड) में छोटे बच्चों को खाँसी की बीमारी हो जाने पर लोग एक मेंढक पकड़ कर लाते हैं और उसका सर थोड़ी देर तक बालक के मुँह में रखते हैं। इससे बालक अच्छा हो जायगा और खाँसी मेंढक को लग जायगी। एक पुराने यूरोपियन लेखक ने दमा की बीमारी को दूर करने की यह तरकीब बतलाई है कि बीमार आदमी किसी टट्टू के मुँह के झागों को गरम पानी में मिला कर पी जाय। इससे वह नीरोग हो जायगा, पर टट्टू मर जायगा। उसी लेखक ने आँतों की बीमारी के सम्बन्ध में लिखा है कि एक ख़रगोश को पैरों की तरफ़ से पकड़ कर बीमार के पेट पर फेरे और यह कह कर छोड़ दे—"भाग जाओ, भाग जाओ, छोटे ख़रगोश, और आँतों के दर्द को भी अपने साथ ले जाओ।" इङ्गलैण्ड के डेवनशायर नामक स्थान और वेल्स में खाँसी को दूर करने के लिए रोगी के सर का एक बाल मक्खन लगी हुई रोटी के दो टुकड़ों के बीच में रख कर कुत्ते को खिला देते हैं। इससे बीमार अच्छा हो जायगा और खाँसी कुत्ते को लग जायगी। ओल्डनबर्ग में लोग बीमारी को दूर करने को एक ऐसा उपाय काम में लाते हैं, जिसे इस देश के मनुष्य शायद ही कर सकेंगे। वे लोग एक कुत्ते के सामने प्याले में मीठा दूध भर कर रखते हैं और उससे कहते हैं—"कुत्ता जी, आप राज़ी-ख़ुशी हैं। क्या तुम बीमार होगे और मैं अच्छा हो जाऊँगा।" इसके बाद जब कुत्ता थोड़ा सा दूध चाट लेता है तो बीमार उसमें से एक घूँट पी लेता है। इस प्रकार तीन बार करने से बीमारी कुत्ते के पास चली जायगी। वहाँ की एक स्त्री ने गिर्जे के पादरी को बतलाया था कि एक बार वर्ष भर तक उसे बुख़ार आता रहा और किसी तरह आराम न हुआ। तब किसी व्यक्ति ने उसे अपना खाना कुत्ते और बिल्ली को देने की सलाह दी। इस उपाय से बुख़ार उन दोनों प्राणियों के पास चला गया। पर वह उन ग़रीब प्राणियों को रोज़ अपनी आँखों से दुखी देखा करती थी और इससे उसे बड़ा सन्ताप होता था। तब उसने इच्छा की कि वे नीरोग हो जायँ। तब कुत्ते और बिल्ली का बुख़ार जाता रहा और वह स्वयम् फिर बीमार हो गई।

फ़्रान्स के पर्के नामक स्थान के किसानों की धारणा है कि किसी व्यक्ति को बहुत अधिक उल्टी आने का कारण उसके मेदे का स्थानच्युत हो जाना है। इसके लिए वे किसी ओझे को बुलाते हैं, जो बीमारी का हाल पूछ कर तुरन्त ही ज़मीन पर गिर कर भयङ्कर रूप से तड़फड़ाने और लोटने लगता है। इस तरकीब से वह अपने मेदे को स्थानच्युत करता है। जब वह इसमें सफल हो जाता है, तो वह फिर उसे ठीक स्थान पर पहुँचाने की चेष्टा करता है और इसके लिए फिर तड़पना और इधर-उधर लोटना शुरू होता है। जैसे-जैसे वह इन हरकतों को करेगा, बीमार को आराम होता जायगा। इसकी फ़ीस तीन रुपए देनी पड़ती है। डाइक लोगों मे जब कोई ओझा बीमार का इलाज करने आता है, तो वह स्वयम् मुर्दा बन कर लेट जाता है। लोग उसके साथ मुर्दे का सा ही व्यवहार करते हैं और चटाई में बाँध कर घर से बाहर ले जाकर श्मशान-भूमि में रख देते हैं। घण्टे भर बाद दूसरा ओझा जाकर उसके बन्धन खोलता है और उसे फिर से जीवित करता है। उसके पुनर्जीवित होने से बीमार व्यक्ति भी नीरोग हो जायगा, ऐसा वहाँ के लोगों का विश्वास है।

कील ठोंकने से दाँत का दर्द मिटाना

यूरोप के कितने ही भागों में दाँत के दर्द को अच्छा करने के लिए लोग दर्वाज़े की चौखट में या छत की कड़ी में कील ठोंक देते हैं, और विश्वास करते हैं कि जब तक कील गड़ी रहेगी, दाँत का दर्द बन्द रहेगा। इसले नामक स्थान में एक पहाड़ी टीला है। लोगों का विश्वास है कि जो कोई उसमे कील ठोंक देता है, वह सदा के लिए दाँतों के दर्द से छुट्टी पा जाता है। उत्तरी अफ़्रीका के मुसलमान दाँतों में दर्द होने पर दीवार

पर कुछ अरबी अक्षर और संख्याएँ लिखते हैं। बीमार व्यक्ति दर्द करने वाले दाँत पर अँगुली रखता है और एक दूसरा व्यक्ति क़ुरान की आयतें पढ़ते हुए एक संख्या के ऊपर कील ठोंकता है। तब वह बीमार से पूछता है कि दर्द मिटा या नहीं। अगर वह 'हाँ' कहे तो कील पूरी ठोंक दी जाती है और यदि 'नहीं' कहे तो उस संख्या में से निकाल कर दूसरी पर ठोंकी जाती है। जब तक दर्द अच्छा न हो, यह कार्य जारी रहता है।

चीन में मेह बरसाने की विधि

जिस प्रकार मेह बरसने में देर होने पर हमारे देश में यज्ञ-हवन आदि किए जाते हैं, शिवलिङ्ग को पानी में डुबो दिया जाता है, लड़के और बड़ी उम्र के व्यक्ति घर-घर पानी माँगते और ज़मीन में लोट कर नहाते फिरते हैं, उसी प्रकार चीन में भी अवर्षण को दैवी प्रकोप समझ कर देवताओं से पानी बरसाने की प्रार्थना की जाती है। इसके लिए वहाँ के निवासी काग़ज़ का एक बहुत बड़ा अजगर बनाते हैं, जो कि वर्षा का देवता माना जाता है। इस अजगर का बड़ी धूमधाम से जुलूस निकाला जाता है और उससे पानी बरसाने की प्रार्थना की जाती है। पर जब इस पर भी मेह नहीं आता, तो अजगर को दण्ड-स्वरूप टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। किसी-किसी स्थान में लोग वर्षा के देवता को पीटने की धमकी देते हैं, अथवा उसे सर्व-साधारण के सम्मुख देवता के पद से च्युत कर देते हैं। इसके विपरीत यदि प्रार्थना करने पर पानी बरस जाता है तो सम्राट की आज्ञा द्वारा उसे और भी ऊँचा पद प्रदान किया जाता है। कहा जाता है कि मञ्चू वंश के किआ-किङ्ग नामक सम्राट के राज्य-काल में एक बार बहुत दिनों तक मेह नहीं बरसा और उत्तरी चीन के कई प्रदेश अकाल के कारण नष्ट हो गए। अजगर के सैकड़ों जुलूस निकाले गए, पर उसने एक बूँद पानी भी ज़मीन पर न गिराया। अन्त में सम्राट का धैर्य जाता रहा और उसने क्रुद्ध होकर देवता को सदा के लिए टॉर्स्गॉट प्रान्त में इली नदी के किनारे निर्वासित करने की आज्ञा दे दी। सन् १७१० में साङ्ग-मिङ्ग के टापू में मेह न बरसने से अकाल पड़ा। जब बहुत प्रार्थना करने पर भी देवता ने मेह नहीं बरसाया, जो वहाँ के शासक ने उसका मन्दिर बन्द करा दिया और पूजा वग़ैरह रोक दी। कुछ दिनों बाद मेह बरसा और देवता ने फिर पुराना सम्मान प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार सन् १८८८ में कैण्टन प्रान्त में अवर्षण होने पर वहाँ के गवर्नर ने देवता को पाँच दिन तक क़ैद रक्खा, तब कहीं जाकर मेह बरसा। एक बार यही देवता मेह न बरसने पर ज़ञ्जीर से बाँध कर मन्दिर के आँगन में बैठा दिया गया। इसका आशय यह था कि जब वह गर्मी से कष्ट पाएगा, तो उसे मेह की आवश्यकता स्वयम् प्रतीत होगी।

स्याम के निवासी भी अवर्षण होने पर देवताओं को सूरज की जलती हुई धूप में बैठा देते हैं। पर जब कभी मेह अधिक बरसता है तो वे देवताओं के गृह की छत को हटा देते हैं, जिससे मूर्तियाँ पानी में भीगने लगती हैं। वहाँ के निवासियों का विश्वास है कि जब देवताओं को असुविधा होगी, तब वे स्वयम् ही अपने भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करेंगे।

दीर्घजीवन देने वाले वस्त्र

चीन वालों ने दीर्घजीवन प्राप्त करने के लिए ऐसे विचित्र उपायों का आविष्कार किया है, जिनका अन्य देश वालों को पता भी न होगा। वहाँ के बहुत से व्यक्ति अपना कफ़न अपने जीवन-काल में ही तैयार करा लेते हैं और उसे किसी क्वाँरी कन्या अथवा बहुत कम उम्र की स्त्री से सिलाते हैं। वे समझते हैं कि कफ़न सीने वाला व्यक्ति अभी बहुत दिनों तक जीएगा और इसका कुछ न कुछ प्रभाव कपड़े पर भी अवश्य पड़ेगा। इसके फल-स्वरूप उस अवसर के आने में विलम्ब लगेगा, जब कि वह उपयोग में लाया जाय। इसके सिवा वे इस कफ़न को ऐसे साल में तैयार कराते हैं, जो दूसरे सालों की अपेक्षा बहुत अधिक लम्बा हो। उनके मतानुसार ऐसे वर्ष में तैयार हुआ कपड़ा, जो कि ग़ैर मामूली लम्बा है, अवश्य ही जीवन की वृद्धि करेगा। वहाँ के निवासी जो कपड़े पहनते हैं, उनमें से एक गहरे नीले रङ्ग का रेशमी चोग़ा होता है। इस पर ऊपर से नीचे तक हज़ारों की संख्या में 'दीर्घजीवन' शब्द लिखा जाता है। सामर्थ्यवान व्यक्ति अपने वृद्ध माता-पिता को इस प्रकार का बहुमूल्य चोग़ा भेंट करते हैं और यह उनके सपूत होने का बड़ा प्रमाण माना जाता है। इस चोग़े

को कभी-कभी, विशेषकर त्योहारों पर पहना जाता है, जिससे उसमें लिखे हुए शब्दों द्वारा पहनने वाले की आयु-वृद्धि हो। अपने जन्म-दिवस पर तो इसको अवश्य ही पहना जाता है।

पेड़ों की पूजा

हिन्दू लोग पेडों में भी आत्मा मानते हैं और कितने ही पेड़ तो देवता मान कर पूजे जाते हैं। पीपल के पेड़ को समस्त देवताओं का निवास-स्थान माना जाता है। उसका महत्व हिन्दुओं की दृष्टि में इतना अधिक है कि पीपल की डाल के काटे जाने के कारण हिन्दू-मुसलमानों के बड़े-बड़े दङ्गे हो चुके हैं। बड़, गूलर, आमला आदि के पेड़ भी पूजनीय माने जाते हैं। इस प्रकार का विश्वास अन्य जातियों में भी पाया जाता है। प्राचीन समय में जब कि लिथूनिया (यूरोप) में ईसाई धर्म का प्रचार नहीं हुआ था, तो एक पादरी ने वहाँ के निवासियों को गाँव के पूजनीय पेड़ों को काट डालने को समझाया। इस पर हज़ारों औरतों ने शासक के पास जाकर प्रार्थना की कि इस कार्य को रोका जाय, अन्यथा पेडों का देवता मेह और धूप को रोक देगा। आसाम में रहने वाले मुन्दारिल जाति के जङ्गली लोगों का भी विश्वास है कि यदि वे किसी पवित्र पेड़ को काट डालेंगे तो वर्षा न होगी। बर्मा के एक भाग में मेह बरसने के लिए लोग इमली के सबसे बड़े पेड़ के पास जाकर प्रार्थना करते हैं और उसमें रहने वाले देवता को रोटी, नारियल, केला तथा मुर्गे की बलि चढ़ाते हैं। कम्बोडिया के प्रत्येक गाँव में एक पवित्र पेड़ होता है और यदि मेह बरसने में देर होती है, तो लोग उसके पास जाकर बलिदान करते हैं। कितने ही स्थानों के लोग पानी बरसाने के लिए किसी खास पेड़ की डाल को तोड़ कर पानी में डुबो देते हैं। वे समझते हैं कि इस डाल में मेह के देवता का निवास है और वह पानी का स्पर्श होने से अवश्य मेह बरसाएगा।

कितने ही देशों में लोग अच्छी फ़सल होने के लिए भी पेड़ों से प्रार्थना करते हैं और भेंट चढ़ाते हैं। गोल्ड-कोस्ट (अफ़्रीका) के हबशी इस उद्देश्य से कुछ बहुत ऊँचे पेड़ों के नीचे जाकर बलिदान किया करते हैं और उनका विश्वास है कि अगर उनमें से कोई पेड़ गिर जाय तो पृथ्वी के तमाम फल नष्ट हो जायँगे। पूर्वी अफ़्रीका के वाबोनडेई जाति वाले एक विशेष वृक्ष के सामने प्रति वर्ष बकरे का बलिदान करते हैं और कहते हैं कि अगर इसमें चूक हो जाय तो पेड़ का देवता बीमारी और मृत्यु भेज देगा। यूरोप में स्वीडेन के किसान प्रत्येक हल के फाल में एक पेड़ की डाल बाँध देते हैं, जिससे फ़सल ख़ूब ज़्यादा हो। फ्रान्स और जर्मनी के किसान फ़सल कट जाने पर 'मे' नामक पेड़ की एक बड़ी शाखा काटते हैं और उसको अन्न की बालों से सजा कर अनाज की अन्तिम गाड़ी पर रख कर लाते हैं। यह शाखा साल भर तक खलिहान की छत पर रक्खी रहती है। इस शाखा में पेड़ के देवता का निवास माना जाता है, जिसमें फ़सल की वृद्धि करने की शक्ति है।

जिस तरह पेड़ों में फ़सल उत्पन्न करने की शक्ति मानी जाती है, उसी तरह लोग यह भी विश्वास करते हैं कि वे वन्ध्या स्त्री को फलवती कर सकते हैं। यूरोप में आम तौर पर पहली मई के दिन अपनी भावी पत्नी के घर पर एक हरा पौधा रक्खा जाता है, जिससे वह सन्तानवती हो। बवेरिया (जर्मनी) में नवविवाहित दम्पति इस तरह का पौधा अपने घर पर लगाते हैं। पर यदि स्त्री के शीघ्र ही सन्तान होने वाली हो, तो उसे नहीं लगाया जाता। दक्षिणी यूरोप की स्लैवोनियन जातियों की वन्ध्या स्त्रियाँ सेण्ट जॉर्ज दिवस को अपना नया कुर्ता किसी फलयुक्त वृक्ष पर रख देती हैं। दूसरे दिन प्रातःकाल वे वस्त्र को उठाती हैं और देखती हैं कि उस पर कोई जीवित कीड़ा-मकोड़ा चढ़ा है या नहीं। अगर कोई कीड़ा चढ़ा होता है, तो वे समझ लेती हैं कि उनकी अभिलाषा साल भर के भीतर पूर्ण हो जायगी और वे उस कुरते को वहीं पहिन लेती हैं।

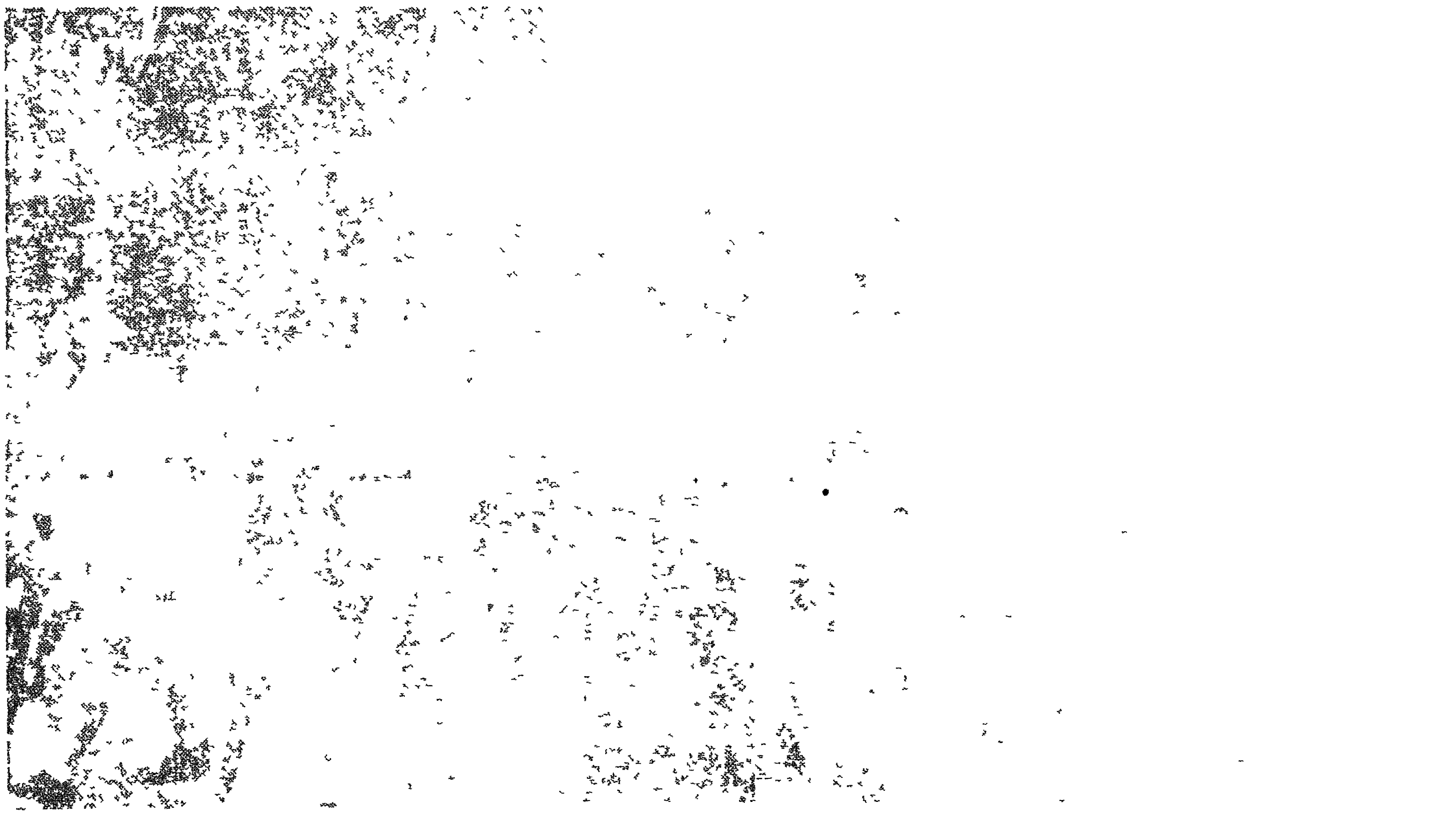
हिन्दुओं की तरह यूरोप के लोग भी वृक्षों की पूजा करते हैं! इनमें सबसे अधिक महत्व ओक का है। यह वृक्ष अति विशाल होता है। प्राचीन काल में तो उसे एक महान देवता ही माना जाता था। अब भी प्रायः सभी देशों में उसकी पूजा होती है। फ्रान्स में पादरी लोग ईसाई सन्तों के चित्र ओक-वृक्ष पर लटका देते हैं और सब लोग उसकी वन्दना करते हैं। मिण्डन में ईस्टर के अवसर पर युवक और युवतियाँ दलबद्ध हो ओक के किसी पुराने पेड़ के चारों तरफ़ नाचते और हर्षनाद करते

थे। जर्मनी में बीमार मनुष्यों और जानवरों को आरोग्य होने के लिए किसी ओक के तने के बीच में होकर, जिसमें ख़ुदबख़ुद रास्ता बन गया हो या काट कर बनाया गया हो, निकालते हैं। कुछ दिन पहले लिथूनिया के निवासी ओक के देवता को भेंट चढ़ाया करते थे।

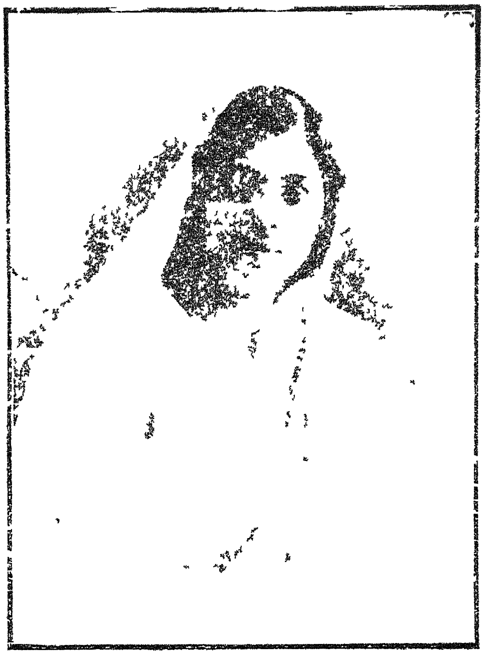
हानियाँ

इसी तरह संसार में न मालूम कितने अन्धविश्वास फैले हुए हैं। इनकी गणना कर सकना अथवा इनका पूरा विवरण दे सकना सर्वथा असम्भव है। इनमें से अधिकांश विश्वासों और प्रथाओं का कुछ न कुछ कारण अवश्य है। इनके विकास का इतिहास बड़ा ही मनोरञ्जक है और उससे मानव-प्रकृति के रहस्यों का बहुत-कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इन अन्धविश्वासों में से बहुत से प्राचीन काल की प्रथाओं के अवशेष अथवा किसी ऐतिहासिक घटना के स्मारक-स्वरूप हैं। उनमें से कितने ही केवल मनुष्यों के अज्ञान को प्रकट करते हैं, पर कितने ही ऐसे भी हैं, जिनसे जनता की बड़ी हानि होती है। उदाहरणार्थ हिन्दू लोग हनुमान जी की आकृति का होने से बन्दरों और गणेश जी का वाहन होने से चूहों को नहीं मारते। इस मूर्खता के फल-स्वरूप उनको बेहद नुकसान उठाना पड़ता है। बन्दर जैसे नटखट जन्तु थोड़े ही होते हैं और उसके कारण लोगों को अनेक बार बड़ी तकलीफ़ उठानी पड़ती है। वृन्दावन, अयोध्या जैसे स्थानों में लोग उनके भय से घरों को जेलख़ानों की तरह चारों तरफ़ से बन्द और सुरक्षित बना लेते हैं, जिससे स्वच्छ हवा के प्राप्त होने में भी बाधा पड़ती है। बन्दरों को खिलाने में साल में लाखों रुपए ख़र्च कर दिए जाते हैं वह अलग। इसी प्रकार चूहे प्रति वर्ष खेतों और घरों में करोड़ों रुपए के अन्न और माल की हानि करते हैं, पर अधिकांश व्यक्ति पाप समझ कर उनको नष्ट करने का कोई उपाय नहीं करते। एक तरफ़ तो करोड़ों मनुष्य भूख की ज्वाला से प्राण दे रहे हैं, छोटे-छोटे बच्चे रोटी के एक कौर के लिए बिलबिलाते रहते हैं, और दूसरी तरफ़ अपार सामग्री का इस प्रकार नाश किया जाता है। इसका नाम मूर्खता नहीं तो क्या है? यह तो एक साधारण उदाहरण है, इसी तरह न मालूम कितने अन्धविश्वासों से इस देश का नाश हो रहा है और यहाँ के निवासी कष्ट उठा रहे हैं। अन्धविश्वास को मामूली बात समझ कर टाल देना भूल है। इसके फल से अप्रत्यक्ष रीति से समस्त जनता में तरह-तरह के दोष उत्पन्न होते हैं। यह समझना ग़लती है कि यह केवल एक व्यक्तिगत विषय है, राष्ट्र की उन्नति से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। पुराने ज़माने में ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनसे विदित होता है कि अन्धविश्वास के कारण राष्ट्रों का नाश हो जाता है। दो हज़ार वर्ष से अधिक हुआ, ईरान वालों ने यूनान के स्पार्टा प्रदेश पर हमला किया था। स्पार्टा वालों का विश्वास था कि सेना को विजय तभी प्राप्त हो सकती है, जब कि वह शुक्ल पक्ष में रवाना हो। इसलिए उन्होंने कई दिन तक सेना को रणभूमि के लिए रवाना न किया और शत्रु बहुत आगे बढ़ आया। वह तो एथेन्स वालों ने उस अवसर पर उनकी सहायता कर दी और किसी तरह वे ईरान वालों को अपने देश से हटा सके। अन्यथा यूनान और सम्भवतः यूरोप का नकशा कई सौ वर्षों के लिए बदल जाता। इसी प्रकार एथेन्स वालों ने चन्द्रग्रहण के भय से अपने शत्रु सिराकुस के मुक़ाबले में सेना भेजने में एक दिन की देर कर दी और फल-स्वरूप उनका ज़बर्दस्त जहाज़ी बेड़ा और एक बड़ी सेना नष्ट हो गई तथा एथेन्स सदा के लिए उन्नति के पथ से गिर गया। भारतवर्ष की पराधीनता के अनेक कारणों में से एक कारण अन्धविश्वास भी है। इतिहासकारों ने लिखा है कि जब आरम्भ में मुसलमान आक्रमणकारियों ने इस देश पर हमला किया था, तो कितनी ही बार वे गायों का एक बड़ा समूह सामने करके इस देश वालों पर आक्रमण करते थे। गायों की हत्या के भय से हिन्दू सैनिक वार करने में हिचकिचाते थे और इससे मुसलमानों का काम बन जाता था। यह जान कर भी कि मुसलमान गौ-भक्षक हैं और यदि इस देश पर उनका क़ब्ज़ा हो गया तो सदा के लिए असंख्यों गायों की हत्या का मार्ग खुल जायगा, उन्होंने थोड़ी गायों के मरने के ख़याल से उनका मुक़ाबला न किया। अन्धविश्वास से होने वाली हानि का इससे बढ़ कर और क्या प्रमाण हो सकता है।

स्वतन्त्रता और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में रूसी महिलाओं की नई प्रगति



मास्को (रूस) की नाव चलाने वाली संस्था की सदस्याओं का एक विराट जुलूस, जिसमे ७५ हज़ार महिलाओं ने भाग लिया था ।



श्रीमती सावित्री हरदास कुन्दानी—आप एक सिन्धी महिला-रत्न हैं, जो हाल में ही हैदराबाद (सिन्ध) के बेञ्च की ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट बनाई गई हैं। इसके अतिरिक्त कतिपय सार्वजनिक संस्थाओं से भी आपका सम्बन्ध है।



कुमारी एफ़० मुहम्मद अली—आप कराची (सिन्ध) ज़िले की कन्या-पाठशालाओं की इन्स्पेक्ट्रेस नियुक्त की गई हैं।



श्रीमती जी० एन० गिनवाला—आप गुजरात प्रान्त की पहली पारसी महिला हैं, जो अङ्कलेश्वर की म्युनिसिपैलिटी की कौन्सिलर बनाई गई हैं।



श्रीमती सुशीला बाई पवार—आप लश्कर (ग्वालियर) की रहने वाली हैं। आपने एफ़० ए० क्लास की अर्थ-शास्त्र की परीक्षा में सर्व-प्रथम स्थान पाया है।

'चाँद' की दुर्लभ चित्रावली का एक पृष्ठ



पाकपटन (ज़िला मॉन्टगोमरी, पञ्जाब) के वकील दीवान जयचन्द जी की माता श्रीमती कौशल्यादेवी (उम्र ६२ साल) और उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती आनन्दकुमारी देवी, जिन्हें मॉन्टगोमरी ज़िला कॉङ्ग्रेस कमिटी की डिक्टेटर की हैसियत से ६-६ मास की कड़ी कैद और १-१ सौ रुपए जुर्माने की सज़ा दी जा चुकी है।



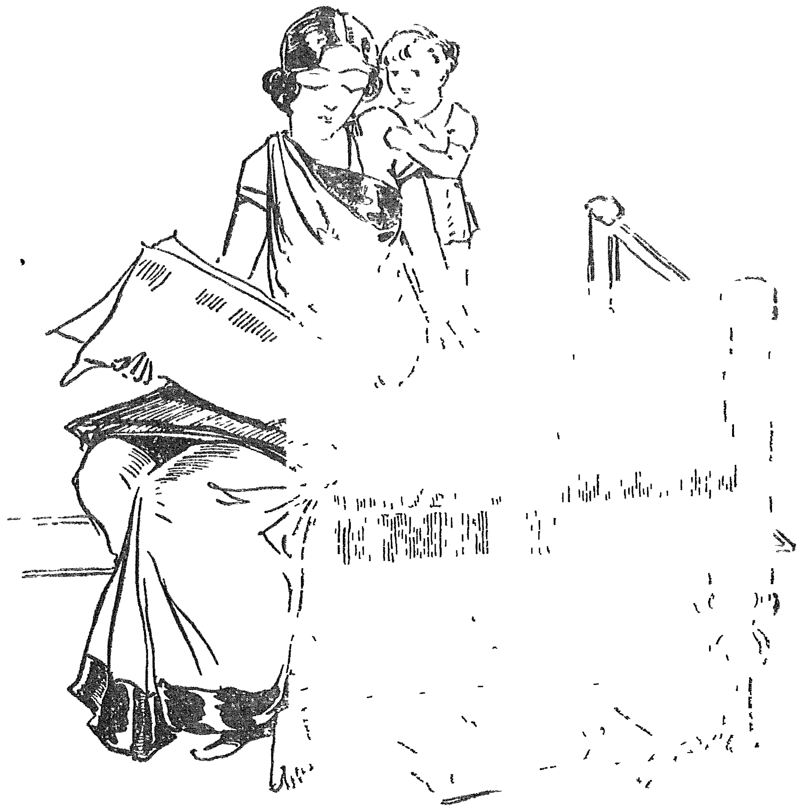
कुमारी शान्तिदेवी सक्सेना, उम्र १२ साल—यह बालिका इटावा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के हेडक्लर्क श्री० कालीप्रसाद जी सक्सेना की कन्या है, जो इस साल इलाहाबाद की हाई-स्कूल परीक्षा में सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुई है।

भेद



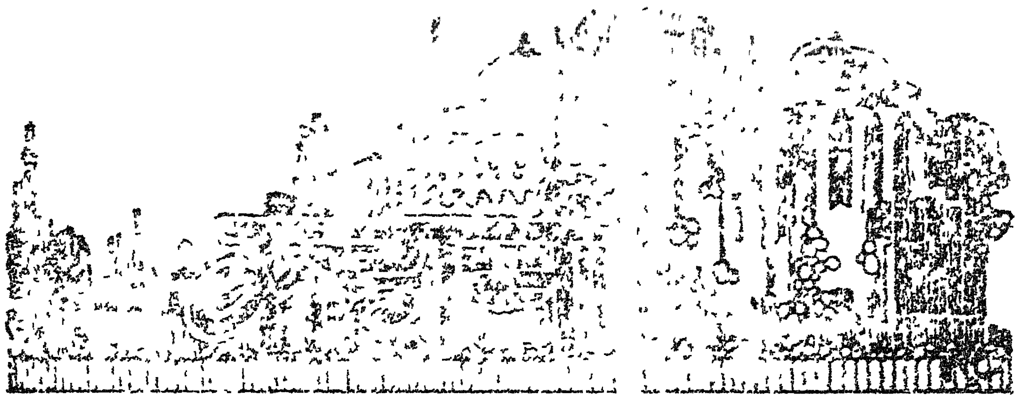
अशिक्षिता

पति का पत्र राहगीर से पढ़ाया जा रहा है !



शिक्षिता

घर बैठे संसार की सैर !!



गायक

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

जब आध घण्टे तक बाँसुरी से ओठों को रगड़ने के बाद भी भास्कर को कुछ न मिला, तो वह खिन्न-चित्त होकर सामने के मकान की एक सीढ़ी पर बैठ गया। उसे आशा थी कि कम से कम सन्ध्या के भोजन के लायक तो उसे अवश्य ही मिल जायगा, परन्तु वह आशा अब निराशा में परिणत हो गई। वह बैठा हुआ कभी आकाश की ओर देख कर और कभी पृथ्वी की ओर देख कर कुछ सोचने लगा। फिर उसने बाँसुरी को अपने दाहिने हाथ मे उठा कर उसकी ओर एकटक ताकना शुरू कर दिया। उसके मस्तिष्क में उस समय वह बाँसुरी ही समाई हुई थी। क्योंकि उसके जीवन मे वही बाँसुरी सबसे अधिक महत्व की वस्तु थी, वही उसके जीवन की आधार थी, और वही न जाने किन-किन बातों की भण्डार थी।

बाँसुरी उसके जीवन की आधार थी अवश्य, परन्तु वह इतनी आवश्यक न थी, जितना कि उसका जीवन। बाँसुरी के पीछे जीवन था सही, परन्तु बिना जीवन के बाँसुरी भी किस काम की थी। इसीलिए बाँसुरी से हट कर उसके विचार जीवन की ओर, वास्तविक जीवन की ओर, उसकी समस्याओं की ओर गए। वह एक-एक करके उनके विषय में सोचने लगा।

भास्कर उस नगर का रहने वाला नहीं था। उस स्थान से दूर एक छोटा सा ग्राम उसकी जन्मभूमि था। बाल्यकाल में ही मातृ-पितृ-विहीन हो जाने के कारण उसे संसार में अपना मार्ग स्वयं बनाना पड़ा था। परन्तु प्रयत्न करने पर भी उस मार्ग को वह विशद, वृक्षाच्छादित तथा कण्टकहीन न बना सका था। वह जिधर जाता था, वहीं ठोकरे खाने को मिलती थीं। सम्बन्धी समझते थे कि उनका उससे कोई सम्बन्ध था ही नहीं। मित्र समझते थे कि वह उनकी मित्रता का अधिकार प्राप्त करने की क्षमता रखता ही न था। यहाँ तक कि यदि वह किसी के पास थोड़े से द्रव्य की याचना के लिए जाता, तो वह उसके लिए भी उपयुक्त पात्र नहीं समझा जाता था। ऐसे समय में जीवन को स्थिर रखने के लिए, पेट के लिए कुछ दाने प्राप्त करने के लिए तथा शरीर पर कुछ वस्त्र धारण कर सकने के हेतु उसने बाँसुरी की शरण ली थी। सङ्गीतज्ञ माता-पिता की सन्तान होने के कारण बचपन से ही उसे बाँसुरी बजाने का अभ्यास हो गया था। और अब तक स्वयं अपने ही उद्योग से उसने उस कला में प्रवीणता प्राप्त कर ली थी। परन्तु एक ग्राम में सङ्गीत का इतना आदर कहाँ—और विशेषकर उस ग्राम में, जहाँ उसे प्रत्येक प्राणी जानता था, जहाँ उसकी आशाओं, उसकी महत्वाकांक्षाओं तथा उसके मानवोचित भावों का प्रत्येक दिन वध किया जाता था। यह बात नहीं थी कि लोग उसकी बाँसुरी की सुरीली तानों से

मुग्ध नहीं होते थे। वे मुग्ध होते थे, बड़े मनोयोग से उन तानों को सुनते थे, परन्तु उनके लिए वे पैसे देने के लिए तैयार नहीं थे। इसका एक कारण यह भी था कि पैसे देकर वे यह दिखाना नहीं चाहते थे कि भास्कर का सङ्गीत ऐसा है, जिसका कोई वास्तविक मूल्य भी हो सकता था।

इसी कारण भास्कर अपने ग्राम को सर्वदा के लिए छोड़ कर इस नगर में आया था। दिन भर पैदल चल कर वह थक गया था, परन्तु सन्ध्या के भोजन के लिए कुछ पैसे तो एकत्रित करने ही थे। उन्हीं के लिए उसने आध घण्टे अपनी बाँसुरी बजाई थी। उसे आशा थी कि दो-चार आने एकत्रित हो जाना कठिन नहीं था। परन्तु वह निराशा से पीला पड़ गया, जब उसने देखा कि सुनने वाले एक-एक करके सब चले गए, परन्तु उसे पैसा एक भी नहीं मिला। कुछ देर तक बाँसुरी को एक ओर पटक कर वह हाथों से आँखों को छिपा कर रोने लगा।

२

कुछ समय के अनन्तर उसने अपना रोना बन्द किया। वहाँ से उठा और बाज़ार के दूसरे भाग की ओर जाने लगा। यह उसके लिए बिलकुल स्वाभाविक था। यह उसका जीवन ही था। निराशा, आशा, फिर निराशा और फिर आशा। इसी पर वह अपने अस्तित्व को ठहराए हुआ था। घोर निराशा में दुखी होकर भी वह आशा का पल्ला नहीं छोड़ता था। इसीलिए वह इस नगर की पहली निराशा से परास्त नहीं हुआ। उसने फिर उद्योग करने का सङ्कल्प किया। इसके अतिरिक्त और कुछ करने को था ही नहीं। वह आगे बढ़ा चला गया। सन्ध्या हो चली थी। बाज़ार में भीड़ बढ़ चुकी थी। वह एक स्थान पर जाकर ठहर गया। थका हुआ था, भूखा-प्यासा था, आँखों में नींद भरी हुई थी, निराशा से हृदय व्यथित हो चुका था। फिर भी उसने अपनी बाँसुरी उठाई, एक बार आकाश की ओर नेत्र बन्द करके देखा और फिर एक मीठी सी तान छेड़ दी। वह बजाते-बजाते स्वयं झूमने लगा। बाज़ार में तहलका मच गया। इधर-उधर से लोग उसके चारों ओर एकत्रित होने लगे। धीरे-धीरे वहाँ काफ़ी भीड़ एकत्रित हो गई। भास्कर के साथ सभी बाँसुरी की तान के साथ झूम रहे थे।

वह समा भङ्ग हुआ। भास्कर ने बाँसुरी बजाना बन्द किया। भीड़ छटने लगी। जिस प्रकार सिनेमा समाप्त होते ही लोग शीघ्रता से अपने घरों की ओर चले जाते हैं, उसी प्रकार वह भीड़ भी वहाँ से काफ़ूर होने लगी। भास्कर आँखें फाड़-फाड़ कर चारों ओर देखने लगा। जो कुछ वह देख रहा था, वह ऐसा था कि वह भीड़ से पैसे माँगना भूल गया। क्या लोग इतने विचारहीन हो सकते थे—ये नगर के शिक्षित लोग—कि एक भिक्षुक की बाँसुरी सुन कर भी बिना पैसे दिए चले जा रहे हैं। उन सब में दो-चार भी ऐसे न निकले कि एक-एक पैसा भी उसे दे जाते। उसने इधर-उधर देखा, सब चले गए थे। केवल एक किशोरी वहाँ खड़ी उसकी ओर देख रही थी। भास्कर कुछ देर तक उसकी ओर देखता रहा। वह बाला भी कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही। फिर बाँसुरी एक ओर रख कर भास्कर उसके पास आया।

"तुम क्यों खड़ी हो?"—उसने पूछा।

"क्या बुरा लगता है?"

"नहीं तो।"

"फिर क्यों ऐसा पूछते हो?"

"इसलिए कि और सब यहाँ से चले गए हैं।"

"इसका कारण था।"

"क्या?"

"वे बाँसुरी सुनना चाहते थे, परन्तु कुछ देना नहीं चाहते थे।"

"और तुम?"

"यह है मेरी भेंट।"—कह कर उस बाला ने एक अठन्नी उसकी ओर बढ़ाई।

भास्कर ने अठन्नी हाथ में ले ली। कुछ देर उसकी ओर देखा, फिर उसे लौटाते हुए बोला—इसे मैं न लूँगा।

"क्यों?"

"मेरा इतना मूल्य नहीं है।"

"तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि अमूल्य है, तुम ऐसा क्यों समझते हो?"

"तुम ऐसा कहती हो न, परन्तु लोग तो ऐसा नहीं समझते। मैं इस ध्वनि को बाज़ार में बेचने के लिए तैयार हुआ और मुझे क्या मिला? एक पैसा भी नहीं। यह मेरा मूल्य है। यह मेरी बाँसुरी की ध्वनि का मूल्य है। फिर मैं तुम्हारी यह अठन्नी किस प्रकार स्वीकार कर सकता हूँ?"

जब उसने यह कहा, तो उसके नेत्र चमकने लगे। वह और भी पास आ गई।

"तुम साधारण भिक्षुक नहीं हो, जो केवल पैसे के लिए बाँसुरी बजाते हैं या गाना गाते हैं।"—उसने कहा।

"मैं उनसे भी गया-बीता हूँ।"—भास्कर ने उत्तर दिया।

"कोई दुर्भाग्य × × ×?"

"क्या पूछती हो!"

वह कुछ देर तक सोचती रही। फिर बोली—बोलो, तुम गाना भी गाते हो?

"हाँ।"

"अच्छा?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूँ!"—उसने लज्जा से शिर नवा कर कहा।

"गाकर बता तो सकते हो?"

"गाना ही पड़ेगा?"

"यदि चाहो तो?"

भास्कर ने पहले गले को साफ़ किया, फिर गाना आरम्भ कर दिया:—

खोज रहा तू क्या जीवन मे?
किसके लिए कर रहा विचरण—
बता, विश्व के विस्तृत वन में?
झूठी जग की सारी माया।
कैसा अपना और पराया?
अरे खोज कर पाले पहले,
अपने ही को अपने मन में।
खोज रहा तू क्या जीवन में?

भास्कर ने गाना बन्द किया। बाला अभी तक उसकी ओर देख रही थी, उसी उल्लास और मनोयोग से, जो एक भक्त के हृदय में अपने देवता के लिए होता है। गाना समाप्त होते ही वह बोली—तुम्हारा नाम क्या है?

"भास्कर!"

"भास्कर! यदि तुम्हें मैं सङ्गीत का भास्कर कहूँ तो?"

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"सुधाबाला।"

"कोई आश्चर्य नहीं, यदि तुम्हारी बातों में इतना माधुर्य भरा है। परन्तु इससे मेरे सङ्गीत के मूल्य में अन्तर नहीं पड़ता।"

"शायद! परन्तु क्या तुम इसका वास्तविक मूल्य देखना चाहते हो?"

"बहुत देख लिया है।"

"गलियों में? इस प्रकार मनुष्यों की भीड़ में?"

भास्कर बिना उत्तर दिए उसकी ओर देखता रहा।

"परन्तु गलियों में तुम अपना मूल्य नहीं लगा सकते।"

"फिर?"

"किसी थिएटर में।"

"थिएटर में मैं?"

"क्यों नहीं!"

"परन्तु किस प्रकार?"

"मेरे साथ आओ।"

सुधा ने भास्कर का हाथ पकड़ लिया और एक ओर को उसे ले जाने लगी। भास्कर बिना कुछ कहे, बिना कुछ पूछे, एक छोटे बालक की भाँति सुधा के पीछे हो लिया, मानो उसकी चेतनशक्ति का हरण सुधा ने कर लिया था।

३

घर पहुँच कर सुधा ने भास्कर को एक कुर्सी पर बैठाया।

"यह मेरा घर है।"—उसने भास्कर से कहा।

"तुम कौन हो?"—भास्कर ने हँस कर पूछा।

"सुधा, और कौन।"

"तुम मायाविनी हो!"

"अच्छा, मेरी माया पीछे देखना। पहले भोजन करने की बात बताओ।"

"भोजन तो मैं × × ×"

"× × × करके आया हूँ। यही न ?"—सुधा ने उसका वाक्य पूरा किया।

"करके तो नहीं आया, परन्तु × × ×"

"× × × करूँगा नहीं। यही न ?"

'हाँ !"

"मैं जानती हूँ, तुम ऐसा क्यों कह रहे हो। परन्तु तुम भूखे हो।"

"नहीं।"

"भूख छिप नहीं सकती। जिस समय तुम गा रहे थे, उसी समय तुम्हारे स्वर मे शिथिलता थी। मैं सब समझती हूँ। तुम सङ्गीत-प्रेमी हो, हम लोग भी सङ्गीत-प्रेमी हैं। तुम इस घर को अपना घर समझो। हाथ-पैर धोओगे ?"

"हाँ !"—भास्कर ने सङ्कोच के साथ कहा।

सुधा ने उसके हाथ धुलाए और भोजन का थाल लाकर सामने रख दिया। भोजन को सामने देख कर भास्कर का सारा सङ्कोच दूर हो गया। वह भूखा था, इस बात का उसे स्मरण हो आया। उसने एक साँस में भोजन समाप्त कर दिया।

भोजन कर चुकने के बाद भास्कर में एक नई स्फूर्ति आ गई। वह सुधा से बोला—तुम्हारी इस दयालुता का बदला मै किस प्रकार चुका सकूँगा ?

"बदले की इसमें क्या बात है ? यह तो संसार के चलने का उपाय है। कभी शायद तुम ही मेरे काम आओ। सारे जीवन में एक यही बात तो याद रखने के योग्य है—जहाँ तक हो सके दूसरों का दुःख बटाओ। तुम सङ्गीतज्ञ हो, तुम इसे भली-भाँति समझ सकते हो। यही मेरे पिता का मूलमन्त्र है, इसी की शिक्षा मुझे उन्होंने दी है।"

"पिता यहीं हैं ?"

"पास के कमरे मे बैठे हैं।"

"सङ्गीत के प्रेमी हैं ?"

"गुरुदास का नाम नहीं सुना ?"

"सङ्गीत के सुप्रसिद्ध कलाविद् ?"

"हाँ !"

"वह तुम्हारे पिता हैं ! अब मैं समझा। क्या उनके दर्शन न कराओगी ?"

"वह स्वयं तुम्हें देखने चले आएँगे। एक बार अपना गाना फिर गा दो।"

"उनके सामने ?"

"उन्हीं के सामने गाने से तो काम बनेगा।"

"अच्छा।"

सुधा हारमोनियम के स्वर ठीक करने लगी। भास्कर ने हारमोनियम के साथ अपना गला मिलाया और फिर गाने लगा। उस समय उसकी सारी शक्तियाँ गाने में भाग ले रही थीं। उसके स्वर में एक अपूर्व लालित्य आ गया था। गले के साथ वह भाव-प्रदर्शन में भी कमाल कर रहा था। साथ ही उसे मार्गदर्शिका सुधा मिली थी, जो हारमोनियम को बजाने में अपनी सारी पटुता का प्रयोग कर रही थी। उसने—"अरे खोज कर पाले पहले अपने ही को अपने मन में" लाइन गाकर समाप्त की ही थी कि देखा कि सुधा के पिता द्वार पर खड़े मुसकुरा रहे थे। सुधा ने भास्कर की ओर इशारा करके धीरे से कहा—'पिता जी !' भास्कर ने उनके चरणों का स्पर्श किया। सुधा ने उसका परिचय कराया।

"यदि तुम कुछ परिश्रम करो, तो अच्छे गायक बनोगे। तुम्हारे पास अद्भुत स्वर है और तुम उसका प्रयोग करना जानते हो।"—सुधा के पिता भास्कर की ओर देख कर बोले। भास्कर शिर नीचा किए हुए खड़ा था, उसने कुछ कहा नहीं। सुधा ने अपने पिता से पूछा—"थिएटर के योग्य ?"

"क्यों नहीं ? यहीं के थिएटर के योग्य नहीं, किसी भी स्थान के थिएटर के योग्य।"

"देखा, भास्कर !"—सुधा ने भास्कर की ओर देख कर कहा। भास्कर ने कृतज्ञता-भरी दृष्टि से आँसू बहाते हुए एक बार सुधा की ओर देख भर लिया।

भास्कर उसी दिन से सुधा के परिवार का एक सदस्य हो गया।

४

सुधा के पिता के प्रयत्न से भास्कर को वैज्ञानिक सङ्गीत का पूर्ण ज्ञान करने में देर न लगी। अब वह जहाँ बाँसुरी बजाने में सिद्धहस्त था, वहाँ गाने में भी अत्यन्त प्रवीण हो गया था। सुधा उसका उत्साह बढ़ाती रहती थी।

अन्त में वह दिन आया, जिसकी प्रतीक्षा सुधा और भास्कर कर रहे थे। सुधा के पिता ने स्थानीय थिएटर में भास्कर का सङ्गीत कराने का प्रबन्ध किया। भास्कर का नाम तो चारों ओर हो ही गया था। थिएटर का हॉल दर्शकों से खचाखच भर गया। आज भास्कर अपना प्रदर्शन करने से पूर्व अपना मूल्य ले रहा था, फिर भी लोगों को स्थान मिलना कठिन था। सङ्गीत प्रारम्भ होने से पूर्व भास्कर और सुधा, दोनों, पर्दे के पीछे खड़े थे। दोनों के नेत्रों में हर्ष के आँसू थे। सुधा ने रोली से भास्कर के ललाट पर तिलक किया और ऊपर से अक्षत लगा दिए। भास्कर ने सुधा का हाथ अपने हाथों में ले लिया और रोने लगा।

"अधीर क्यों हो रहे हो, भास्कर?"—सुधा ने उसे थपथपा कर पूछा।

"अधीर न होंगे? इतना गौरव, इतनी प्रतिष्ठा, यह सब मैं सहन नहीं कर सकता।"

"सहन नहीं कर सकते? क्यों नहीं? तुमने यह सब कुछ अपने बल पर प्राप्त किया है। आज बड़े सौभाग्य से यह दिन आया है, परन्तु वह सौभाग्य तुम्हारे लिए अनधिकार चेष्टा नहीं है।"

"यह ठीक है, सुधा, परन्तु वह दिन? ओफ़, उस दिन को अभी नहीं भूला हूँ। जब उस दिन की तुलना इस दिन से करता हूँ, तो मुझे विश्वास नहीं होता कि यह सब सत्य हो सकता है। परन्तु जब तुम्हारी ओर देखता हूँ, तो इस पर विश्वास होने लगता है × ×।"

"क्यों?"

"क्योंकि यह सब तुम्हारी कृति है।"

"मेरी?"

"हाँ, तुम्हारी! जो कुछ मेरे पास है, वह सब तुम्हारा है।"

"सब?"

"सब, और यदि उससे भी कुछ अधिक हो, तो वह।"

"तुम भी?" सुधा ने उसके नेत्रों की ओर देखा। भास्कर ने भी सुधा के नेत्रों की ओर देखा। दोनों ने एक-दूसरे का अर्थ समझ लिया। भास्कर ने धीरे से सुधा को अपनी ओर खींचते हुए कहा—"सबसे पहले।"

सुधा नें भास्कर की छाती के ऊपर अपना शिर रख लिया।

"मैं इतना भाग्यवान हो सकूँगा?"—भास्कर ने पूछा।

"यह मत पूछो, भास्कर! क्या अब तक समझे नहीं हो? जिस दिन तुम्हारा प्रथम गान सुना था, उसी दिन से × × ×।"

"मेरी सुधा!"—कह कर भास्कर ने उसे अपने हृदय से लगा लिया और बोला—"आज मैं परम भाग्यशाली हूँ। मेरे पास सङ्गीत की कला है, नाम है, गौरव है और सबसे बढ़ कर हो तुम! आज मेरे स्वर में सौगुना माधुर्य हो जायगा; आज मेरे गले में वह शक्ति आएगी, जो मैंने कभी भी अनुभव नहीं की; आज मेरी बाँसुरी वे स्वर निकालेगी, जो कभी किसी को सुनने को नहीं मिले।"

और दस मिनट बाद उसका स्वर सौगुना माधुर्य बखेर रहा था, उसका गला अपूर्व शक्ति का प्रदर्शन कर रहा था, उसकी बाँसुरी दर्शकों को मन्त्र की नाईं मुग्ध कर रही थी। आज सुधा के कहने से वह अपना वही गाना गा रहा था, जो उसने सुधा को प्रथम भेंट के अवसर पर सुनाया था। आज उसे इस गाने के अर्थ में कुछ अपूर्व विलक्षणता दिखाई देती थी। आज उसका वास्तविक अर्थ उसकी समझ में आ रहा था। अब तक वह न जाने किसकी खोज करता रहा—व्यर्थ खोज तथा असफल खोज। आज सुधा को पाकर वह अपने मन में अपने ही को पा गया था!

५

कुछ दिनों के अनन्तर सुधा के पिता का देहान्त हो गया। परन्तु उसके पूर्व सुधा और भास्कर विवाह-बन्धन में बँध चुके थे। यद्यपि भास्कर का नाम अपने ज़िले में काफ़ी हो चुका था, परन्तु नाम बढ़ने के साथ ही साथ उसकी और सुधा की आकांक्षाएँ भी बढ़ने लगीं। अब उनके हृदय में इस इच्छा ने घर कर लिया कि किसी प्रकार सङ्गीत के गढ़ बम्बई में भी भास्कर का नाम चमक जाय। उनकी यह महत्वाकांक्षा थी कि एक दिन भास्कर के सङ्गीत का प्रदर्शन बम्बई के 'रॉयल ओपेरा हाउस' में हो, उसका नाम बिजली से प्रकाशित बड़े-बड़े शब्दों में थिएटर के सामने लगा हो तथा उसका गुणगान और उसके चित्र बम्बई के सभी प्रसिद्ध पत्रों में पाए जायँ।

उनकी यह आकांक्षा तो थी, परन्तु उसके पूर्ण होने के लिए साधनों की आवश्यकता थी। सबसे अधिक प्रसिद्ध कलाविदों ही को वहाँ स्थान मिलता था। ज़िले के नाम से वहाँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। वहाँ तो मार्ग बनाने की आवश्यकता थी। थिएटर के अधिकारियों को यह दिखाने की आवश्यकता थी कि भास्कर वास्तव में एक श्रेष्ठ कलाविद था। और यह कार्य बिना रुपए के हो नहीं सकता था। भास्कर अभी तक इतना रुपया नहीं कमा पाया था कि सारा व्यय करके इस कार्य के लिए भी रुपया बचा सकता। परन्तु सुधा ने उसकी इस कठिनाई को सरल कर दिया। वह भास्कर को निराश देख कर एक दिन बोली—तुम निराश क्यों होते हो, मैं तुम्हें रॉयल ओपेरा हाउस तक पहुँचाऊँगी।

"पहुँचाओगी, सुधा?"

"हाँ।"

"किस प्रकार?"

"इस प्रकार।"—कह कर सुधा ने उसके सामने एक पोटली रख दी।

"इसमें क्या है?"—भास्कर ने पूछा।

"खोल कर देखो।"—सुधा ने उत्तर दिया। भास्कर ने पोटली को खोला, उसमें रुपए थे।

"रुपए?"—उसने कहा।

"गिनो।"

भास्कर ने रुपए गिने,-पूरे पाँच सौ थे।

"ये कहाँ से लाई हो?"

"हमारे हैं।"

"हमारे?"

"हाँ, पिता जी की यह अन्तिम भेंट थी।"

"तब तो ये तुम्हारे हुए।"

"मैं तुम्हारी हूँ न?"

"हो, प्रिये! परन्तु यह धन तुम्हारा है। तुम इस प्रकार इसे मेरे ऊपर व्यय नहीं कर सकती हो।"

"क्यों नहीं? तुम्हारे सामने संसार में मेरा क्या हो सकता है। जो कुछ भी मेरा कहला सकता है, वह पहले तुम्हारा है।"

"परन्तु मान लो कि यह रुपया व्यय हो गया और मुझे फिर भी सफलता न मिली?"

"इससे क्या होता है? दोनों मिल कर सड़कों पर गाएँगे और भीख माँगेंगे!"

भास्कर को अपना वह दिन याद आ गया। "तुम देवी हो, मेरी सुधा!"—कह कर उसने सुधा को अपने हृदय से लगा लिया।

६

बम्बई पहुँचते ही सुधा ने भास्कर के सङ्गीत का प्रदर्शन करने के लिए पूरा प्रबन्ध कर लिया। एक छोटा सा थिएटर एक रात्रि के लिए किराए पर लिया। प्रवेश-शुल्क बहुत कम रक्खी और नगर में भली-भाँति विज्ञापन करा दिया। अब वह उस रात्रि की प्रतीक्षा करने लगी, जब भास्कर को बम्बई के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करने का प्रथम अवसर मिलना था। उस अवसर की सफलता अथवा विफलता पर उन दोनों के जीवन की आकांक्षाएँ, सफलता तथा सुख सब निर्भर थे। इसने भास्कर को रिहर्सल बड़ी संलग्नता से कराया। इस प्रकार पूरा प्रबन्ध कर लेने के बाद वह रात्रि आई। टिकटें सब बिक चुकी थीं। रुपयों को गिन कर सुधा हर्ष से नाचने लगी। तीसरी घण्टी बज चुकी थी। हारमोनियम सुधा स्वयं ही बजाने वाली थी। भास्कर की ओर देख कर वह बोली—

"यह अवसर बार-बार नहीं मिलेगा, प्यारे! आज अपनी सारी कला का ज़ोर लगा देना। ईश्वर चाहेगा तो ओपेरा हाउस वाले कल ही आकर बात करेंगे।"

भास्कर ने एक हलकी सी थपकी सुधा के गाल पर मार कर कहा—यह मेरी सफलता नहीं है, पागल, यह तुम्हारी सफलता है। तुम्हारे बिना मैं क्या कर सकता था? तुमने मुझे गर्त से निकाल कर × × ×

वह बात को पूरी न कर पाया था कि सुधा ने अपनी अँगुलियाँ उसके होठों पर रख कर कहा—"न, न, ये बातें कभी न कहना, नहीं तो मैं नरक में घसिटती फिरूँगी।" कुछ देर तक दोनों ने निःशङ्क होकर एक-दूसरे की ओर देखा और अपने काम पर चले गए।

भास्कर को आशातीत सफलता मिली थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब बाँसुरी बजाई थी तब भी; और जब गाना गाया था तब भी; दर्शकों ने उसे बार-बार वही दुहराने की प्रार्थना की थी। गाना समाप्त

होने के बाद सुधा और भास्कर दोनों वार्तालाप कर रहे थे कि थिएटर के चपरासी ने आकर कहा—कोई आपसे मिलना चाहता है।

"मुझसे?"—भास्कर ने पूछा।

"हाँ, यह कार्ड है।"

भास्कर ने वह कार्ड ले लिया। एक बहुत ही सुन्दर कागज़ पर छपा हुआ तथा सुगन्ध में तर कार्ड को देख कर भास्कर को आश्चर्य हुआ। उस पर लिखा हुआ था—बेगम सुलताना।

"एक स्त्री?"—सुधा ने कार्ड देख कर पूछा।

"हाँ।"—भास्कर ने उत्तर दिया।

"वह क्या चाहती है?"

"मिलना चाहती होगी।"

"किस लिए?"

"शायद उससे आगे के लिए कुछ सहायता मिले।"

"मिलोगे उससे?"

"क्या हर्ज है?"

"स्त्री है।"

"पागल न बनो। स्त्री है तो क्या कर लेगी? तुम भी तो स्त्री हो।"

"सभी एक सी नहीं होतीं।"

"परन्तु मैं तो वही हूँ।"

"मुझे भय मालूम होता है।"

"चिन्ता न करो। मैं अभी आता हूँ।"

भास्कर कुछ देर बाद बाहर से आ गया। उसके मुख पर हर्ष के चिन्ह थे।

"एक खुशख़बरी, सुधा!"—वह ज़ोर से बोला।

सुधा उधर दौड़ी आई। उसके मुख पर उत्सुकता के चिह्न थे।

"हाँ?"—उसने पूछा।

"हाँ।"

"क्या है?"

"ओपेरा में गाना ठीक हो गया!"

"ठीक हो गया? ओह, भास्कर, मैं कितनी प्रसन्न हूँ।"

"और एक बात है!"

"क्या?"

"कल शाम को हम दोनों उसके यहाँ दावत के लिए निमन्त्रित हैं।"

"निमन्त्रित!"—सुधा के मुख के भाव बदल गए।

"हाँ।"

"कैसी स्त्री है वह?"

"बहुत धनवान!"

"यह मेरा मतलब नहीं था।"

"फिर?"

"उसका चरित्र कैसा है?"

"चरित्र? चरित्र के विषय में हमें इतनी चिन्ता की आवश्यकता नहीं। हमारी आकांक्षा पूरी हो जाए, फिर बस!"

७

भास्कर और सुधा, दोनों बेगम के यहाँ निमन्त्रण पर गए। मलाबार हिल पर बेगम का बड़ा शानदार बङ्गला था। बेगम विधवा थीं, दूसरा निकाह नहीं किया था। बच्चा कोई था नहीं। आयु भी तीस से अधिक नहीं थी। देखने में ख़ासी ख़ूबसूरत थीं। इन सबके अतिरिक्त उनके पास अतुल सम्पत्ति थी। सङ्गीत से प्रेम होने के कारण समाज में सर्वत्र उनकी पहुच थी।

दावत के बाद बेगम का जो व्यवहार भास्कर के साथ रहा, वह सुधा को सह्य न था। सुधा यह नहीं देख सकती थी कि वह एक ओर अकेली खड़ी रहे और भास्कर बेगम के साथ एक ओर अकेला बैठे। वह उसकी पत्नी थी। उसने भास्कर को अपनी ओर बुलाया।

"मैं अब अधिक यहाँ ठहरना नहीं चाहती।"—सुधा बोली।

"क्यों?"—भास्कर ने पूछा।

"मैं इस वातावरण को अच्छा नहीं समझती।"

"इसमें ऐसी कौन सी बात है?"

"तुम्हारी आँखें नहीं हैं और कान नहीं है, तो तुम यहाँ रहो। मैं नहीं रह सकती। और × × × मेरे सर में दर्द भी हो रहा है।"

"तुम भूल रही हो कि आज हमें एक स्वर्ण-सुयोग मिल रहा है। आज यहाँ हमें नगर के सम्माननीय व्यक्ति

मिलेंगे। एक प्रकार से हमारा प्रवेश यहाँ के सभ्य समाज में हो जायगा। हमारी जन्म भर की अभिलाषाएँ पूरी हो जायँगी। इस समय तो हमारा कर्तव्य है कि बेगम को ख़ुश रक्खें। और × × × वह इतनी बुरी भी नहीं है कि जितना तुम उसे समझती हो।"

"यदि ऐसा है, तो तुम यहाँ ठहरो। मुझे जाने दो।"

"अभी से ऐसी ईर्ष्या?"

"मुझे यहाँ से जाने दो, बस!"—सुधा ने तड़प कर कहा। इतने ही में बेगम वहाँ आ गईं।

"क्या बात है, भास्कर?"—उन्होंने पूछा।

"मेरी स्त्री के सिर में दर्द हो रहा है। मैं घर जा रहा हूँ।"

"घर जाने की क्या ज़रूरत है? यहीं डॉक्टर बुलवा देती हूँ।"

"डॉक्टर की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। घर जाकर थोड़ा आराम करना काफ़ी होगा।"

"फिर तुम्हारे जाने की क्या ज़रूरत है? मैं इन्हें अपनी कार में भेजे देती हूँ।"

"अकेली चली जाओगी, सुधा?"—भास्कर ने पूछा।

सुधा ने कुछ कहा नहीं, केवल सिर हिला कर स्वीकृति दे दी।

❀ ❀ ❀

अन्त में रॉयल ओपेरा हाउस के सामने बिजली के अक्षरों में यह लिखा दिखाई दे ही गया—

Prof. Bhaskar's musical night. Wonderful Indian Music-Vocal & Instrumental. Supported by Mrs. Sudha Bhaskar.

अर्थात्—

आज रात्रि को प्रोफ़ेसर भास्कर का भारतीय सङ्गीत। श्रीमती सुधा भास्कर भी स्टेज पर सहायता देंगी।

उस दिन का प्रदर्शन शान से समाप्त हुआ। स्टेज पर काम ज्योंही समाप्त हुआ, सुधा माला का प्रबन्ध करने लगी। उसने माला बनाई, भास्कर के ऊपर बखेरने के लिए फूल लिए और विङ्ग में आई। परन्तु वहाँ भास्कर का पता नहीं था। उसे केवल इतना ही पता चला कि भास्कर बेगम की कार में बैठ कर कहीं गया है। उसका हृदय टूट गया। इस महान सफलता के बाद अपनी स्त्री से बात भी न की और बेगम के साथ चला गया! वह इतनी प्यारी हो गई कि सुधा को सूचना देना तक भी उचित न समझा गया। उसने माला को तोड़ कर एक ओर फेंक दिया, फूलों को पैरों से कुचल डाला और रोते-रोते एक टैक्सी लेकर अपने निवास-स्थान पहुँची।

उस सन्ध्या के लिए उसने बड़ी तैयारियाँ की थीं। रसोइए से उस दिन विशेष प्रकार के भोजन बनवाए थे, जो एक मेज़ पर सजे हुए रक्खे थे। उसने भोजनों की ओर देखा भी नहीं। एक कुर्सी पर बैठ कर वह रोने लगी। इतने ही में नौकर ने एक पुर्ज़ा दिया। वह भास्कर का लिखा हुआ था। सुधा ने पढ़ा—

"मैं अचानक ही बेगम द्वारा घेर लिया गया। उन्होंने मेरी सफलता के उपलक्ष में उसी समय कुछ मित्रों को निमन्त्रित किया। मैं उनके साथ हो लिया। उस सफलता की ख़ुशी में मुझे तुम्हें सूचना देने की सुधि भी न रही। मैं एक घण्टे बाद आ रहा हूँ। प्रतीक्षा करना। भास्कर!"

इस पत्र को पढ़ कर सुधा का क्रोध और भी बढ़ गया, परन्तु फिर भी वह प्रतीक्षा करती रही। एक घण्टा बीता, दो बीते, तीन बीते, इसी प्रकार कई घण्टे बीते, परन्तु भास्कर न आया। कुर्सी पर बैठे-बैठे ही सुधा की आँख लग गई।

प्रातःकाल जग कर वह जब नहा-धो ली, तो भास्कर आया। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। मुख से मदिरा की गन्ध आ रही थी। वह आकर एक कुर्सी पर बैठ गया। सुधा ने थोड़ा सा जल उसके शिर पर तथा मुख पर डाला।

"सो अब तुम यहाँ तक आ पहुँचे!"—सुधा ने भास्कर से कहा।

"कहाँ तक?"

"शराब पीने तक।"

"शराब?"

"हाँ।"

"परन्तु मैंने नहीं पी थी।"

"फिर यह गन्ध कैसी आ रही है ?"

"यह बेगम ने पिलाई होगी।"

"चलो, अब चल कर सो रहो।"

"कै बजे हैं ?"

"सात।"

"तो मुझे नौ बजे जगा देना।"

"क्यों ?"

"दस बजे बेगम की कार यहाँ आएगी।"

"बेगम की कार ?"—सुधा उछल पड़ी।

"हाँ।"

"क्यों ?"

"मुझे लेने के लिए।"

"फिर उसी नरक में ?"

"ऐसा न कहना। बेगम को मुझसे एक आवश्यक कार्य है।"

"मैं जानती हूँ क्या आवश्यक कार्य है।"

"क्या जानती हो ?"

"वह तुम्हें मुझसे छीनना चाहती है। ओह, भास्कर चेतो, देखो, समझो! क्या तुम नहीं देख सकते कि यह स्त्री चरित्रहीना है ? इसका कार्य तुम जैसे नवयुवकों को विलासिता का पाठ पढ़ा कर नष्ट कर देना है। ईश्वर के लिए तुम अब भी सँभल जाओ। तुमने नाम कमा लिया है। अब तुम्हें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है।"—सुधा ने यह कह कर भास्कर का हाथ पकड़ लिया।

भास्कर ने उसका हाथ एक ओर करके कहा—"सुधा, मैं तुम्हारी ये व्यर्थ की बातें अब नहीं सुनूँगा। जब से हम लोग बम्बई आए हैं, तब से तुम्हारा व्यवहार बिलकुल बदल गया है। सन्देह और ईर्ष्या से तुम घुली जा रही हो। तुम समझती हो कि मैं तुम्हारा दास हूँ, जो कुछ तुम कहो, वही करूँ; जहाँ तुम चाहो, वहीं जाऊँ। मैं तङ्ग आ गया हूँ इन सब बातों से। तुम समझती हो कि तुमने मुझे यह सब यश, यह सब गौरव प्रदान किया है। परन्तु तुम नहीं जानती हो कि इस सबका श्रेय बेगम को है।"

"परन्तु मैं तुम्हें उसके पास नहीं जाने दूँगी।"

"नहीं जाने दोगी! देखना है, किस तरह। मैं अभी उसके यहाँ जा रहा हूँ और फिर × × × फिर कभी तुम्हारे पास नहीं आऊँगा।"—वह यह कह कर तेज़ी से बाहर निकल गया। सुधा 'भास्कर-भास्कर' चिल्लाती रही, परन्तु भास्कर तब तक वहाँ से चला जा चुका था।

७

मदिरा का दौर चल रहा था। एक कमरे में अकेले भास्कर और बेगम बैठे थे। बेगम ने भास्कर से गाना गाने को कहा। उस समय भास्कर को केवल अपना वह गाना याद आया, जो उसने सुधा के सामने पहले-पहल गाया था। वह गाने लगा :—

> खोज रहा तू क्या जीवन में ?
> किसके लिए कर रहा विचरण—
> बता, विश्व के विस्तृत वन में।

ये लाइनें गाते ही भास्कर के सामने सुधा का चित्र खिंच गया। जब उसे सुधा प्रथम बार मिली थी, तब से उसके वियोग के दिन तक के दृश्य उसके नेत्रों के सामने नाचने लगे। ओफ़, उसने क्या कर डाला था? जिस सुधा ने उसके लिए इतना किया, उसे यश की चोटी तक पहुँचाया, उसे ऊपर उठने का अवसर दिया, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, उसी सुधा को उसने इस निर्दयता से, इस अमानुषिकता से ठुकरा दिया! और वह भी एक ऐसी स्त्री के लिए, जिसकी मैत्री का कोई आदर नहीं था, जिसके अपनापन में कोई सार नहीं था, जिसके प्रेम का कोई मूल्य नहीं था! कुछ ही दिनों में वह पतन की किस श्रेणी तक जा पहुँचा था। वह मेज़ पर सर रख कर फूट-फूट कर रोने लगा।

"क्या हो गया ?"—बेगम ने पूछा।

भास्कर उठा और चलते हुए कहने लगा—मैं जा रहा हूँ।

"जा रहे हो ?"

"हाँ!"

"कहाँ ?"

"सुधा के पास।"

"सुनो, मूर्ख!"

"नहीं, बेगम अब मैं मूर्ख नहीं। हूँ, अब तक था। मुझे ऐसा विदित हो रहा है कि सुधा मेरे प्रत्येक ज्ञान-

तन्तु पर अपने पैरों से आघात पहुँचाया है। मैंने उसके प्रति घोर अन्याय किया है। अब मैं उसका प्रतिकार करने जा रहा हूँ।"

वह तेज़ी से वहाँ से निकल कर घर आया। सुधा वहाँ नहीं थी। चारों ओर खोजा, उसका पता नहीं था। नौकर आया, भास्कर ने उसकी ओर देखा।

"चली गईं।"—नौकर ने कहा।

"कब?"

"उसी समय।"

"कहाँ?"

"घर।"

"कुछ कह गई हैं?"

"यह लिख कर रख गई हैं।"

नौकर ने एक छोटा सा काग़ज़ का टुकड़ा भास्कर के हाथों में रक्खा। उस पर लिखा था :—

अरे, खोज कर पा ले पहले,
अपने ही को अपने मन में।

उसने घड़ी देखी, अभी गाड़ी मिल सकती थी। वह स्टेशन को ओर दौड़ा। गाड़ी में वह बैठा ही था कि वहाँ बेगम आ गई।

"सुधा के पास चल दिए?"

"हाँ।"

"बम्बई के इस जीवन को छोड़ कर? वहाँ कहाँ पाओगे, इतना नाम और × × × इतना जीवन का आनन्द?"

"मैं अब इस जीवन से अलग हो चुका, बेगम! न मैं नाम चाहता हूँ, न जीवन का आनन्द!"

"फिर वहाँ क्या करोगे?"

"अपने को अपने ही मन में खोजूँगा!"

गाड़ी उसी समय चल पड़ी। बेगम उसके वाक्य पर हँसने लगी, परन्तु भास्कर धीरे-धीरे गा रहा था—

अरे, खोज कर पा ले पहले,
अपने ही को अपने मन मे।

गणिका

[श्री० भुवनेश्वरसिंह जी 'भुवन']

चञ्चल मन है, चञ्चल चितवन,
चञ्चल नव-नव अनुराग-कथन।
मुस्कान चपल, चञ्चल-क्रन्दन,
जैसे बुद्-बुद्—जैसे जीवन॥
अन्तर जलती ज्वाला भीषण,
पर तू बाहर से मलय-पवन!

श्रावण-घन-सीकर रस-वर्षण,
तन-मन कर लेती आकर्षण।
पर अन्त दुखद सर्वस्व-हरण,
जब गिर पड़ती हो, बिजली बन॥
है गरल-सुधा से पूर्ण वचन,
नयनों में मादक सम्मोहन।

तू मूर्तिमान माया-कानन,
जिसमें छल-कौशल हिंसक-जन।
ये बाल-जाल द्रुम-पत्र सघन,
अन्तस्तल है, नीरव-निर्जन॥
फूले हैं, राग-विराग सुमन,
जिनमें अन्तर्हित कीट व्यसन।

तू, कला, कल्पना, प्रकृति-रतन,
सुन्दर तन, उच्छृङ्खल यौवन,
है, गति-विहीन असफल जीवन,
अवगुण ही गुण, गुण ही दूषण॥
प्रतिबिम्बित है समाज-साधन,
जिसमें तू वह उज्ज्वल दर्पण।



हिन्दी-शकुन्तला

संसार-प्रसिद्ध प्रेम-कथाओं में महाकवि कालिदास-कृत शकुन्तला अग्रगण्य है। मूलग्रन्थ संस्कृत-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है और इस सुन्दर ग्रन्थ का अनुवाद भी संसार की सभी उन्नत भाषाओं में हो चुका है। सभी जानते हैं कि वाग्विलासिता, उपमा और अलङ्कार मे कालिदास की बराबरी करने वाला कोई कवि नहीं। यूरोप के महाकवि गेटे (Goette) का कथन है—

"Would'st thou the earth and heaven in one sole name combine?
I name thee, O Shakuntala, and all at once is said."

'शकुन्तला' कितना प्यारा नाम है, इसके विचार मात्र से कवि-शक्ति के स्रोत का उमड़ना स्वाभाविक ही है।

अनुवाद में मूलग्रन्थ का आनन्द लाना सहज नहीं। मूलग्रन्थ के अनुवाद-स्वरूप अथवा भाव तथा कथा लेकर हिन्दी-साहित्य में कई सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। यहाँ हम अपने रसास्वादन का क्षेत्र परिमित करने के लिए केवल स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह जी कृत "अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक" (सन् १८८२ ई०) तथा श्री० मैथिलीशरण जी गुप्त कृत "शकुन्तला" (सम्वत् १९७४) को समक्ष रक्खेंगे।

एक बार कौशिक मुनि ने घोर तपस्या की, जिससे इन्द्र को अपना आसन छिन जाने का भय हुआ। फलतः मुनि का तप भ्रष्ट करने के लिए इन्द्र ने मेनका नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा। मेनका अपने कार्य में सफल हुई और फल-स्वरूप शकुन्तला का जन्म हुआ। मेनका शकुन्तला को प्रसव करते ही, उसे छोड़ कर इन्द्र-लोक को उड़ गई। इतने में वहाँ कण्व ऋषि आ निकले और दया करके शिशु को अपने आश्रम को ले गए। मालिनी नदी के किनारे सुन्दर तपोवन में महात्मा कण्व का आश्रम था।*

आश्रम में वृद्ध तपस्विनी गौतमी ने शकुन्तला को बड़े लाड़ प्यार से पाला। शकुन्तला बड़ी होने लगी। साथ ही उसकी सुन्दरता दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी; फलतः कण्व को उसके लिए योग्य वर की चिन्ता हुई। शकुन्तला आश्रम में आनन्द से रहती, वल्कल वस्त्र पहनती और अनसूया तथा प्रियम्वदा नाम की दोनों सखियों सहित आश्रम के वृक्षों और पौधों को सींचा करती, और—

रखती थी प्रेमार्द्र सभी को,
वह अपने व्यवहारों से,
पशु-पक्षी भी सुख पाते थे,
उसके शुद्धाचारों से।
सीमा-रहित अनन्त गगन सा,
विस्तृत उसका प्रेम हुआ;
औरों का कल्याण कार्य ही,
उसका अपना क्षेम हुआ।
हिंसक पशु भी उसे देख कर,
पैरों में पड़ जाते थे;
मुँह में हाथ दाब कर धीरे,
मीठी थपकी पाते थे!

* यह पुण्य-स्थान वर्तमान ज़िला बिजनौर में मालिनी नदी के किनारे लेखक के ग्राम से कुछ दूर है। वर्तमान समय में वहाँ वन के स्थान में नगर बसा है, मालिनी नदी भी कुछ सूख-सी गई है। —लेखक

गुरुजन की सेवा-शुश्रूषा,
भक्ति सहित वह करती थी ;
शीतल-जल-युत कन्द-मूल-फल,
उनके सम्मुख धरती थी।
आते थे जो अतिथि वहाँ वह,
अतिशय आदर पाते थे ;
मुक्त कण्ठ से उसके सद्‌गुण,
गाते गाते जाते थे।

—मैथिलीशरण गुप्त

एक बार कण्व मुनि अपना आश्रम शकुन्तला को सौंप कर तीर्थ-यात्रा को गए। इसी समय एक दिन राजा दुष्यन्त आखेट करते-करते आश्रम के समीप आ निकले। उन्होंने शकुन्तला को आश्रम के वृक्ष सींचते देखा और देखते ही उसके रूप-लावण्य पर आसक्त हो गए और छिप कर उसे देखने लगे। उसी समय एक भ्रमर ने शकुन्तला को तङ्ग करना आरम्भ किया। राजा लक्ष्मणसिंह ने उस समय का वर्णन आसक्त दुष्यन्त से इस प्रकार कराया है—

उतही ते मोरति दृगन आवत अलि जिहि ओर।
सीखति है मुग्धा मनो भय मिस भृकुटि मरोर॥

जिस ओर भ्रमर जाता है, उधर से शकुन्तला आँखे मोड़ लेती है। मानो डरने के बहाने मुग्धा नायिका भौं मरोड़ना सीखती हो।

शकुन्तला ने सखियों से रक्षा चाही, किन्तु वे हँसी से बोलीं कि रक्षा का भार राजा पर है, वही तुझे भ्रमर से बचाएगा। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर दुष्यन्त तुरन्त प्रकट हुआ। सखियाँ उसे देख कर चौक पड़ीं, और शकुन्तला उस पर मुग्ध हो गई। परन्तु कार्यवश इस भेंट का शीघ्र ही अन्त हो गया।

शकुन्तला और दुष्यन्त दोनों ही एक-दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो गए। दुष्यन्त ने इसके लिए राजमाता का, हस्तिनापुर वापस आने का आदेश टाल दिया। अपने बदले अपने सहचर माढव्य को भेज दिया और स्वयं शकुन्तला से मिलने की आशा में आश्रम के निकट डेरे डाल कर पड़ गया। यहाँ तक कि शकुन्तला के विरह में दुष्यन्त दुबला हो गया, जिससे शरीर के आभूषण ढीले पड़ गए। आभूषणों में जड़े हुए रत्नों की आभा शोक के आँसुओं से फीकी पड़ गई—

निशि-निशि आँसू ताप के, परत भुजा पै आय।
मानिक या भुजबन्द के, फीके भए बनाय॥
बार-बार ऊँचे करूँ, खिसलि-खिसलि यह जात।
मुरवी हू की गूथि पै, नेक नहीं ठैरात॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

इसी प्रकार, दुष्यन्त के विरह में शकुन्तला की भी बुरी दशा थी। वह भी आहार, निद्रा भूल कर दिन-रात दुष्यन्त की ही चिन्ता में निमग्न रहने लगी। दोनों सखियों ने जब शकुन्तला की यह दशा देखी तो रोगोपचार के लिए उसे एक कुञ्ज में ले गईं। वहाँ यह निश्चय हुआ कि दुष्यन्त को प्रेम-पत्र द्वारा निमन्त्रण दिया जाए। शकुन्तला को यह सङ्कोच था कि कहीं दुष्यन्त उसके प्रेम का अनादर न करे। परन्तु सखियों के अनुरोध से उसने कमल के कोमल पत्तों पर नखों से लिखा—

प्रियवर, मैं तव हृदय की, नहीं जानती बात।
सन्तापित करता मुझे, कुसमायुध दिन-रात॥

—मैथिलीशरण गुप्त

अर्थात्—"मैं तुम्हारे हृदय की तो नहीं जानती, किन्तु मुझे कामदेव दिन-रात तपाता है। देखिए, कुमुदिनी चन्द्रमा को चाहती है, किन्तु उसे चन्द्रमा के मन के भावों का ज्ञान नहीं होता।"

दुष्यन्त भी शकुन्तला से मिलने की आशा में कुञ्ज-कुञ्ज फिरा करता था। जिस समय यह पत्र लिखा जा रहा था, उस समय वह उसी कुञ्ज के निकट आ पहुँचा। पत्र सुन कर वह तुरन्त प्रकट होकर बोला—

केवल तोहि तपावही, मदन अहो सुकुमारि।
भस्म करत पै मो हियो, तू चित देखि विचार॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

अर्थात्—"प्रिये तेरे हृदय को तो काम केवल तपाता ही है, परन्तु मेरे हृदय को तो जला कर राख किए डालता है। तेरे लिए मेरा प्रेम, मेरे लिए तेरे प्रेम से कहीं अधिक है।"

अकस्मात् दुष्यन्त को वहाँ आया देख, सब बड़ी प्रसन्न हुईं; किन्तु यह मिलन अधिक समय तक न रह सका! क्योंकि कुछ देर बाद ही वृद्धा तपस्विनी गौतमी

शकुन्तला के शरीर का वृत्तान्त पूछने के लिए कुञ्ज में आ पहुँची। फलत. दुष्यन्त एक वृक्ष के पीछे छिप गए। गौतमी शकुन्तला और उसकी दोनों सखियों को उस कुञ्ज से अन्यत्र लिवा ले गई।

समय मिलने पर शकुन्तला और दुष्यन्त का गन्धर्व रीति से विवाह हो गया और शकुन्तला गर्भवती हुई। शीघ्र ही दुष्यन्त को राज-काज के लिए अपनी राजधानी जाना पड़ा। शकुन्तला ने विह्वल होकर फिर मिलने की अवधि पूछी। दुष्यन्त ने अपनी नामाङ्कित अँगूठी देकर कहा—

प्रति दिन तू मेरा एक-एक नामाक्षर—
गिनती रहना हे प्रिये ! सुनिश्चय रख कर।
जब तक सब अक्षर धन्य गण्य हों तेरे—
लेने आवेंगे तुझे योग्य जन मेरे ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

दुष्यन्त के चले जाने पर विचार-मग्ना शकुन्तला चित्र लिखित सी बैठी थी। इतने में भ्रमण करते हुए दुर्वासा ऋषि कण्वाश्रम में आ निकले। वे शकुन्तला के निकट गए, किन्तु उसके विचारों की लड़ी न टूटी। क्रोधी दुर्वासा ने इसे अपना निरादर समझा और तुरन्त अभिशाप दिया कि जिसकी चिन्ता में मग्न होकर तूने मेरा अतिथि-सत्कार नहीं किया, वह तुझे पूर्व-जन्म की कथा की भाँति एकदम भूल जायगा ! शकुन्तला निश्चल रही; उसने यह अभिशाप भी न सुना। किन्तु निकट ही उसकी सखियाँ थीं, जो तत्काल दौड़ी हुई वहाँ आईं। वे पैरों पर पड़ कर दुर्वासा से क्षमा माँगने लगीं। क्रोध शान्त होने पर दुर्वासा बोले—"मेरे शाप का असत्य होना असम्भव है, किन्तु उसका फल कम हो सकता है। अच्छा 'आवेगी सुधि मुद्रिका निरख के उद्भ्रान्त दुष्यन्त को'।" इतना कह कर वे वहाँ से चले गए।

कुछ दिनों के बाद जब महात्मा कण्व यात्रा से लौटे, तो यज्ञ के समय आकाशवाणी द्वारा उन्हें मालूम हो गया कि दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गन्धर्व-विवाह हो गया है और शकुन्तला गर्भवती भी है। सुयोग्य वर मिलने से कण्व को हर्ष हुआ। उन्होंने उसी समय शकुन्तला की विदा की तैयारी आरम्भ कर दी। उसे हस्तिनापुर पहुँचाने के लिए ऋषि के दो शिष्य शारङ्गरव और शारद्वत मिश्र तथा गौतमी नियुक्त किए गए। तपस्विनियों ने शकुन्तला के लिए स्नान-उबटन और शृङ्गार आदि का प्रबन्ध किया। वनदेवियों ने वृक्षों के शाखारूपी हाथों द्वारा माङ्गलिक श्वेत साड़ी, आभूषण, महावर के लिए लाख आदि दिए।

शकुन्तला की विदाई सभी को दुःख देने वाली थी। वन के जीव, वन-वृक्ष, सखियाँ और आश्रम के अन्यान्य निवासी सभी उसके वियोग में व्याकुल थे।

शकुन्तला ने वृक्षों से विदा माँगी। क्योंकि वृक्ष वनवासियों के बन्धु हैं। उन्होंने कोकिलों द्वारा विदा दी—

आज्ञा देत पयान की, ये तरुवर बनराय।
वनवासिन के बन्धु जन, कोयल शब्द सुनाय ॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

वनदेवियों ने वर दिया—तुम्हारा मार्ग सुखद हो, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु बहे, स्थान-स्थान पर जलाशय मिलें, शीतल छाया रहे और पृथ्वी कमल के समान कोमल हो जाए।

शकुन्तला के बिछुड़ने से—

त्यागी थे मुनि कण्व, उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।

—मैथिलीशरण गुप्त

इधर-उधर टहल कर कण्व ऋषि कहने लगे—

आज शकुन्तला जायगी, मन मेरो अकुलात।
रुकि आँसू गदगद गिरा, आँखिन कछु न लखात ॥
मोसे बनवासीन को, इतौ सतावत मोह।
तौ गेही कैसे सहे, दुहिता प्रथम बिछोह ॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

चलने के समय कण्व ने शकुन्तला को शुभाशीर्वाद के साथ कुल-वधुओं योग्य निम्न उपदेश दिया—

गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से ॥
परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।

इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चल कर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥
मेरा यह उपदेश कभी तू भूल न जाना,
शील-सुधा से सींच जगत को स्वर्ग बनाना ॥

—मैथिलीशरण गुप्त

यही भाव राजा लक्ष्मणसिंह जी के अनुवाद में है—

शुश्रूषा गुरुजन की कीजो ।
सखी-भाव सौतिन मे लीजो ॥
भरता यदपि करे अपमाना ।
कुपित होइ गहियो जनि माना ॥
मिठ भाषिनि दाखिन सङ्ग रहियो ।
बड़े भागि पै गर्व न लहियो ॥
या विधि तिय गेहिनि पद पावें ।
उलटी चल कुल-दोष कहावें ॥

शकुन्तला भी कण्व-विछोह से व्याकुल हो उठी। इसलिए कण्व ने उसे सान्त्वना देते हुए कहा—जब तू रानी होकर गृह-कार्यों से अवकाश न पाएगी और शर्मिष्ठा के समान पुत्रवती होगी, तो मुझसे अलग होने का दुःख भूल जायगी।

शकुन्तला ने आतुर होकर पूछा—अब मेरा इस आश्रम मे फिर कब आना होगा?

कण्व बोले—तेरा पति अपने पुत्र को राज्य सौंप कर तेरे साथ फिर इस आश्रम में आएगा।

गौतमी, दोनों मिश्र तथा शकुन्तला को पास के जलाशय तक पहुँचा कर आश्रमवासी लौट आए। उसी समय दुष्यन्त की नामाङ्कित अँगूठी सखियों ने शकुन्तला की उँगली में पहिना दी और कह दिया कि इसे दुष्यन्त को दिखा दीजियो। परन्तु मार्ग मे शकुन्तला ने एक जगह तीर्थाचमन किया और उसी समय वह अँगूठी उसकी अँगुली से निकल कर जल में गिर गई। परन्तु उसे इसकी ज़रा भी ख़बर न हुई।

अस्तु, शकुन्तला को लिए हुए गौतमी तथा दोनों मिश्र राजा दुष्यन्त के दरबार में पहुँचे। राजा ने ऋषियों का यथोचित स्वागत किया। परन्तु दुर्वासा के शापवश शकुन्तला को बिलकुल न पहचाना। इसलिए उसे स्वीकार करने से साफ़ इन्कार कर दिया। अन्त में ऋषि मण्डली शकुन्तला को छोड़ कर तथा यह कह कर चली आई कि—

अतः बन्धुजन यही चाहते—लोकाचार समझ कर—
पति के स्नेह बिना भी प्रमदा रहे प्रिय के घर।

—मैथिलीशरण गुप्त

निराश्रया शकुन्तला अपने भाग्य की बुराई करती हुई जा रही थी। मार्ग में से एक अप्सरा शकुन्तला को उड़ा कर आकाश में ले गई। यह समाचार पाकर दुष्यन्त को आश्चर्य हुआ।

× × ×

जलाशय मे गिरी हुई राजा दुष्यन्त नामाङ्कित मुद्रिका को एक मछली निगल गई। उसे किसी धीवर ने जाल में फँसाया और जब उसे चीरा तो पेट से एक कीमती अँगूठी निकली। अन्त में वह राजा दुष्यन्त के सामने लाई गई। बस, उसे देखते ही दुर्वासा का शाप दूर हो गया। राजा को शकुन्तला की याद आ गई और वह उसके विरह से व्याकुल हो उठा और अपनी राजधानी मे यह घोषणा कर दी कि :—

पापियों को छोड़ कर सुन लें सभी,
जिस स्वजन का हो वियोग जिसे कभी।
वह प्रजा दुष्यन्त को जाने वही,
और उसके स्थान में माने वही ॥

राजा दुष्यन्त देवराज इन्द्र का सखा था। इन्द्र ने अपने सारथी को भेज कर राजा को अपने पास बुलाया। क्योंकि कालनेमि वंश के दानवों के एक प्रबल दल को परास्त करने के लिए इन्द्र को राजा की सहायता की आवश्यकता थी। अस्तु, दानवों को जीत कर राजा दुष्यन्त इन्द्र के रथ पर चढ़े हुए अपनी राजधानी की ओर लौट रहे थे। कश्यप ऋषि का आश्रम निकट ही था, इसलिए ऋषि के दर्शनार्थ थोड़ी देर के लिए उतर पड़े। आश्रम के मार्ग में दुष्यन्त ने एक बालक को देखा। वह खेलने के लिए एक सिंहनी के बच्चे को, जिसने आधा ही दूध पिया था, घसीट रहा था।

आधो पीयो मातुथन, जो शावक मृगराज।
ताहि घसीटत केश गहि, यह शिशु खेलन काज ॥

—राजा लक्ष्मणसिंह

एक तपस्विनी बालक को बरजती थी, किन्तु वह मानता न था और सिंहनी के बच्चे का मुँह खोल कर उसके दाँत देखने का यत्न कर रहा था। दुष्यन्त को ऐसा पराक्रमी बालक देख कर अचरज हुआ। बालक में चक्रवर्तियों के लक्षण थे। अन्त में दुष्यन्त की आज्ञा मान कर बालक ने सिंहनी के बच्चे को छोड़ दिया। पता लगाने पर कुछ देर में दुष्यन्त को मालूम हुआ कि बालक पुरुवंशी है और उसकी माता का नाम शकुन्तला है। तपस्विनियों ने पिता का नाम बताने से इन्कार कर दिया। क्योंकि अकारण ही पत्नि का त्याग करने वाले का नाम कौन ले? बालक के जात-कर्म के समय कश्यप ऋषि ने एक 'अपराजित' नाम का गण्डा उसके गले में डाल दिया था और जिसे अगर बालक के माता-पिता के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति बालक को उठा ले, तो वह गण्डा साँप बन कर उसे डस लेता था। परन्तु राजा दुष्यन्त पर गण्डे का कुछ प्रभाव न पड़ा। यह समाचार सुन कर शकुन्तला वहाँ आई। दोनों ने एक दूसरे को पहचाना। दुष्यन्त ने शकुन्तला के चरणों में गिर कर क्षमा-याचना की। इसी समय कश्यप ऋषि ने भी आकर दर्शन दिए और दुर्वासा के शाप का भेद खोल दिया। इससे शकुन्तला का मनोमालिन्य मिटा, वह दुष्यन्त की निर्दोषिता जान गई। दुष्यन्त को भी, यह जान कर कि विस्मृति का कारण शाप था, शान्ति मिली। अपने ऊपर का क्रोध और ग्लानि दूर हुई। राजा धर्मपत्नी-परित्याग के अपवाद से बच गया। कश्यप ऋषि ने शकुन्तला, उसके लड़के सर्वदमन और दुष्यन्त को आशीर्वाद सहित विदा किया।

किये पशू सब बस येहीं 'सर्वदमन' भौ नाम।
प्रजा भरण कर होयगो, फेरि 'भरत' अभिराम॥

—सुमतिप्रसाद जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०

❀ ❀ ❀

बाल-शिक्षा

संसार में प्रत्येक कार्य शक्ति द्वारा हुआ करता है। परन्तु वह शक्ति कहाँ से प्राप्त होती है, अथवा उसका उद्गम किधर है? इस प्रश्न का उत्तर तो विचारशील व्यक्ति ही दे सकते हैं। पर हम देखते हैं कि हर एक शक्ति का स्रोत कहीं न कहीं हमारे शरीर में ही होता है। उस शारीरिक शक्ति को ही उचित रीति से उद्बुद्ध करना प्रत्येक मनुष्य का कार्य है। जितने भी राष्ट्रीय विद्यालय हैं, उनका भी यही कार्य होना चाहिए। पाशविक शक्ति और मनुष्य-शक्ति में केवल इतना ही अन्तर है कि पहिली अशिक्षित शक्ति है और दूसरी शिक्षित। मनुष्य यद्यपि पशु से कम शक्तिशाली होता है, परन्तु पशुबल के ऊपर मनुष्य का अधिकार इसीलिए होता है कि वह शिक्षित शक्ति द्वारा नाना प्रकार के दाँव-पेच से पशुबल के ऊपर विजयी हो जाता है। शक्ति को शिक्षित करने का दूसरा कारण यह भी है कि उसका उपयोग अर्थशास्त्र के उच्च सिद्धान्तानुसार हो। प्रायः देखा जाता है कि जङ्गल में रहने वाली जातियाँ अशिक्षित शक्ति के ही कारण अभी तक कष्टसाध्य जीवन व्यतीत कर रही हैं। उनको जलाने के लिए लकड़ी भी अधिक परिश्रम से प्राप्त होती है। वे बेचारे सारे दिन मिहनत कर अपना जीवन उतनी सुगमता से नहीं व्यतीत कर सकते, जितनी सुगमता से हम २-४ घण्टे मिहनत करके शिक्षित शक्ति द्वारा पेट भरने से कहीं अधिक पैदा कर लेते हैं। यह शिक्षित शक्ति का ही फल है कि एक भारतवासी की आमदनी ४६) प्रति व्यक्ति है, और एक अमेरिकन और अङ्गरेज़ की आमदनी ३००) और ४००) के लगभग है।

अपनी इतने साल की उन्नति का जब हम हिसाब लगाते हैं, तो पता लगता है कि हमारी आमदनी अभी अन्य देशों के मुकाबिले बहुत ही कम है। इतने शिक्षित समय में भी हमारे यहाँ प्रति वर्ष नवयुवक विभिन्न विषयों से अपनी-अपनी शक्तियों को शिक्षित कर निकलते हैं। परन्तु फिर भी देश की दरिद्रता बढ़ती ही चली जाती है। बेचारे नवयुवक विश्वविद्यालय की ऊँची-ऊँची डिगरियाँ प्राप्त कर हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते हैं। न तो इस दुर्दशा की तरफ़ राष्ट्र ही ध्यान देता है, और न माता-पिता ही ध्यान देते हैं। जब हम इस विषय पर अधिक ध्यान देते हैं, तब पता चलता है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली किसी स्थान पर अवश्य अपूर्ण है। वह स्थान विशेषतः हमारी बाल्यावस्था ही है। उस अवस्था में अपने बच्चों को किस तरह से शिक्षित

करना चाहिए, यह गम्भीर प्रश्न है। और इसी पर कुछ प्रकाश डालना इस लेख का उद्देश्य है।

महाभारत में एक स्थल पर लिखा है—"नास्ति मातः समः गुरू।" अर्थात् माता के समान कोई गुरू नहीं है, इसलिए हमको यह विवेचन करना चाहिए कि शिक्षा का भार हमारे माता-पिताओं के ऊपर कितना अधिक है। यह निःसन्देह सत्य है कि बालक का सारा शरीर एक बहुत सूक्ष्म माँ और बाप के भावरूप का परिणाम है, अर्थात् उसका बहुत सा भावी चरित्र माता और पिता के दर्शन करने के पहिले निर्माण हो जाता है और भविष्य के बहुत से कार्य इसी के अनुसार हुआ करते हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि हम सन्तान की अभिलाषा के पहिले अपना चरित्र-गठन उचित रीति से कर लें।

बच्चे का बहुत सा कार्य उसकी स्वाभाविक वृत्तियों द्वारा हुआ करता है और इन वृत्तियों की रचना अधिकांश परम्परागत होती चली आ रही है। यह स्वाभाविक वृत्तियाँ मुख्यतः अनुकूल (Homogeneous), प्रतिकूल (Heterogeneous) हुआ करती हैं। स्पष्टतया बहुत से बच्चे सीधे स्वभाव के हुआ करते हैं और बहुत से उलटे स्वभाव के। यद्यपि मनोविज्ञान कहता है कि उलटे स्वभाव वाले बच्चे ही विशेषत: उन्नतिशील और तेजस्वी होते हैं। जो माँ-बाप आन्तरिक शक्तियों से अपरिचित हैं, वे ही ऐसे बच्चों से घबरा जाते है, और उनको दण्ड इत्यादि देते हैं। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कितने ही अंशों में बच्चों की वृत्तियाँ हमारे ज्ञान से अधिक विश्वासपात्र होती हैं, इसलिए हमको बच्चों की वृत्तियों के ऊपर अधिक ध्यान देना चाहिए। इसका पाठक यह मतलब न लगा लें कि बच्चे के कार्य में कोई हस्तक्षेप ही न किया जाय। जिस प्रकार बाग़ के वृक्ष बिना माली के कहीं टेढ़े और कहीं जङ्गली पौधे अच्छे पौधों को दबा लेते हैं, अगर माली होता है तो वह काट-छाँट कर उपयोगी पौधों को ही समृद्धिशाली बनाने की चेष्टा करता है, ठीक इसी प्रकार माता-पिताओं को भी बच्चे की उन्हीं वृत्तियों को सुधारना चाहिए, जिनसे हानि होने की सम्भावना हो और जो वृत्तियाँ अच्छी हों, उनको बढ़ने के लिए उत्तेजित करते रहना चाहिए। साथ ही साथ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि बच्चे में हम और अच्छे-अच्छे गुणों का समावेश किस प्रकार कर सकते हैं।

इस स्थल पर हमें स्मरण रखना चाहिए कि हमको ज्ञानक्षेत्र में अपने बच्चों को उसी स्थान से शिक्षा शुरू करनी है, जिस स्थान पर हमारे पूर्वजों ने उसे छोड़ा है। इसी लक्ष्य को सामने रखते हुए हम शिक्षा के आदर्श को पूर्णतया समझ सकते हैं। शिक्षा के आदर्श का सबसे बड़ा मूल्य यही है कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ अनेकानेक प्राकृतिक पदार्थों का आस्वादन कर सकें और उनके अन्दर जाकर उनकी सत्ता का प्रदर्शन कर सकें। इस सिद्धान्त का साक्षात्कार हमको वर्तमान युग के चमत्कार से मालूम पड सकता है। जिस प्रकार विद्युत्-शक्ति के चमत्कार से कुछ व्यक्ति अपरिचित थे और उससे अपना कार्य लेना नहीं जानते थे। आज वही शक्ति हमको पानी से प्राप्त होती है और सैकड़ों नगर उससे देदीप्यमान होते हैं। पानी से विद्युत्-शक्ति को उपलब्ध करना हमारी ज्ञानेन्द्रियों का ही कार्य है। अस्तु, अब हमको यह अन्वेषण करना चाहिए कि हमारे बच्चों की ज्ञानेन्द्रियाँ कैसे प्रबल हो सकती हैं। बच्चा हर दशा मे बहुत ही निर्बल होता है, वह किसी पदार्थ को स्पष्ट रूप से ४-५ सेकेण्ड से अधिक नहीं देख सकता। उसकी रसना इतनी कमज़ोर होती है कि वह बहुत से पदार्थों का आस्वादन नहीं कर सकती। उसकी श्रोतेन्द्रियाँ कदापि अच्छे और बुरे स्वर के अन्तर को स्पष्टतया पहचान नहीं सकतीं। उसकी नाक सुगन्ध और दुर्गन्ध को नहीं पहचान सकती। परन्तु वे अपना बहुत सा कार्य स्पर्श-शक्ति द्वारा ही कर लेते हैं। इसका साक्षात् प्रमाण यही है कि वह हर एक वस्तु को अपने हाथ से स्पर्श कर सन्तुष्ट हो जाते है। इसलिए हमको चाहिए कि बच्चे की स्पर्श-शक्ति को पहले समृद्धिशाली होने दें। बच्चे का ज्ञान साधारण से विविध की तरफ़ चलता है। वह हमारी तरह एक वस्तु के भिन्न-भिन्न भागों का ज्ञान एकाएक नहीं प्राप्त कर सकता। उदाहरणार्थ हम तस्वीर के हरएक भाव को आसानी से देख सकते हैं। परन्तु बच्चा ऐसा नहीं कर सकता। वह तस्वीर के मनोरञ्जक भाव को थोड़े समय के लिए देख सकता है, पर उसके कोई ज्ञानरूप चेतन नहीं हो सकते। यह दशा छः-सात वर्ष की अवस्था तक रहती है।

माता-पिता को चाहिए कि जहाँ तक हो सके, बच्चे की प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय को पृथक्-पृथक् ढङ्ग से शिक्षित करें। और वह शिक्षा भी इतनी मनोरञ्जक हो कि बच्चे को उससे कभी घृणा उत्पन्न न हो जाय। जैसे, बच्चे को दृष्टि-शिक्षा देनी है, तो उनको चाहिए कि विविध रङ्गों से बच्चे को परिचय करावें और वे रङ्ग भी किसी स्थान पर गहरे और किसी स्थान पर हलके हों। अगर सुविधा हो तो बच्चे से स्वयं काग़ज़ पर हलके और गहरे रङ्ग के दृश्य खिचवाने चाहिए। लेकिन यह कार्य छोटा बच्चा कदापि नहीं कर सकता। इसके लिए बच्चे की अवस्था ४-५ साल की अवश्य होनी चाहिए और यह कार्य भी बच्चे के खेल-स्वरूप होना चाहिए। इसी प्रकार बच्चे की जिस तरफ़ रुचि हो, उसी कार्य का विधान करना चाहिए। बच्चे का मनोरञ्जन अधिक से अधिक हर समय होना चाहिए। अगर हमको स्वर-परिचय कराना है, तो हमको चाहिए कि स्वर को कभी धीमा और कभी ऊँचा करें। बहुत अच्छा हो कि हम बच्चे को भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों की बोलियों से परिचित करावें। स्वर-शिक्षा के लिए अधिकतर सङ्गीत-कला का स्वर-भेद ही उचित समझा गया है। इसी प्रकार हम नाक को भी नाना प्रकार की चीज़ों को सुँघा कर उनके स्वभाव से परिचित करा सकते हैं। यद्यपि बच्चा हरएक पदार्थ के अन्तर को स्पष्टतया दूसरों पर प्रगट नहीं कर सकता, परन्तु यह अन्तर किसी न किसी दशा में अर्द्धचेतन मस्तिष्क (Sub-conscious mind) के ऊपर अङ्कित अवश्य हो जाता है। साथ ही साथ मस्तिष्क में ज्ञानकूप (Neurones) बन जाते हैं और जब भविष्य में उन्हीं ज्ञानकूपों से मिलता-जुलता पदार्थ दृष्टिगोचर होता है, उस समय पुराने ज्ञानकूपों में और नए ज्ञानकूपों में सहयोग हो जाता है और वह सहयोग इतना बलवान हो जाता है कि बच्चे को उस पदार्थ के पूर्ण स्वरूप का आभास हो जाता है। इस तरह बच्चे के ज्ञानकूप ६ साल तक अधिक से अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु यह प्रयत्न उसी समय सफल हो सकता है, जबकि हम बच्चे को नित्य-प्रति नए-नए पदार्थों से परिचित करावें। बच्चा कभी इस तरफ़ अधिक मिहनत नहीं कर सकता। क्योंकि उसके ज्ञानकूपों की झिल्लियाँ (Tissues) एक घण्टे के अन्दर ही कार्य करने में बहुत पतली हो जाती हैं और बच्चे को थकावट होने लगती है। इसलिए पतली झिल्लियों को फिर स्वस्थ होने के लिए हमको उन्हें आराम देना चाहिए। यह आराम या तो निद्रा से या विषय-परिवर्तन से मिल सकता है। विषय-परिवर्तन से मेरा मतलब किसी अन्य पदार्थ की तरफ़ या किसी अन्य विषय की तरफ़ बच्चे को लगा देना है, जिससे पुराने विषय के ज्ञानकूपों की झिल्लियों को स्वस्थ होने का अवकाश मिल जाय। ज्ञानकूपों की झिल्लियों के बनने की पूर्ण व्याख्या स्थानाभाव के कारण हम इस लेख में नहीं कर सकते।

जैसा कि ऊपर सङ्केत किया गया है, बच्चे का खेलना-कूदना उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि उसके जीवन के लिए खाना। प्रकृति देवी ने बाल्यावस्था खेलने-कूदने ही के लिए बनाई है। जो बच्चे कम खेलते-कूदते हैं, वे या तो रोगी हैं, या उनके शारीरिक अवयवों में किसी बात की बड़ी भारी कमी है। जो बच्चे नीरोग होते हैं, वे अधिक से अधिक खेलना पसन्द करते हैं। खेलने-कूदने का एक बड़ा भारी कारण यह भी है कि बच्चा नाना प्रकार की हरकतों द्वारा अपने शारीरिक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट और सुडौल बनाता है। अमेरिका, जर्मनी और फ़्रान्स आदि पाश्चात्य देशों में डॉक्टरी परीक्षा करने के बाद, ७-८ साल के बच्चे को शिक्षित करने के लिए ज़्यादा ज़ोर दिया जा रहा है और यह शिक्षा भी प्रेममूर्ति स्त्री द्वारा ही देने का प्रयत्न हो रहा है। इस विषय में फ़्रान्स का तत्ववेत्ता रूसो बहुत ही आगे बढ़ कर लिखता है कि बच्चे का शिक्षा-काल कम से कम १२ वर्ष की अवस्था के बाद ही शुरू होना चाहिए। लेकिन इस देश में स्वार्थपरता ने हम लोगों को इतना जकड़ लिया है कि शिक्षा के बहाने कभी-कभी तो बच्चे का सर्वस्व हरण कर लिया जाता है। उसको ५-६ वर्ष के अन्दर ही शिक्षा के कोल्हू का बैल बन जाना पड़ता है। उसको शिक्षालय के कड़े से कड़े नियमों को ६-७ साल की अवस्था में ही पालन करना पड़ता है, जब कि उसको अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देकर प्रकृति से क्रीड़ा करने का समय होता। पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि ६-७ साल के बच्चे को २-३ घण्टे तक पढ़ना ही पर्याप्त है, और ये २-३ घण्टे की शिक्षा भी स्कूलों की अपेक्षा प्रकृति की गोद में देना

ही अच्छा है। इसका जीता-जागता उदाहरण बोलपुर का शान्ति-निकेतन पाठकों के सामने मौजूद है।

बच्चों को अनेक प्रकार के गुणों से विभूषित करना शिक्षा के आदर्श के अन्तर्गत ही आता है और जीवन में सफलता गुणों से ही मिलती है। यह गुण बच्चा मुख्यतः दूसरों के अनुकरण से सीख सकता है। अनुकरण शिक्षा के सम्बन्ध में भी बहुत उपयोगी होता है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह अपनी आदत के ही द्वारा करता है। एक पाश्चात्य तत्ववेत्ता यों लिखता है कि मनुष्य के ६० प्रतिशत कार्य आदतों द्वारा ही पूरे होते हैं (90 per cent of our activities are the outcome of our habits) और यह बुरी-भली आदतें मुख्यतः हमारे पूर्वजों द्वारा मिलती हैं। इसलिए केवल इतना ही विवेचन करना शेष है कि हम बच्चों को अच्छे गुणों और अच्छी आदतों से किस तरह सम्पन्न कर सकते हैं? बच्चों में मुख्यतः निम्न-लिखित प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं—(१) डरने, भागने और छिपने की, (२) उत्सुकता, (३) घृणा, (४) हठ, (५) स्वावलम्बन, (६) छोटापन, (७) सामाजिकता, (८) दया, (९) अधिकार, (१०) निर्माण। यह प्रवृत्तियाँ स्पर्श-मण्डल के ऊपर अधिक निर्भर रहती हैं और उपर्युक्त अनुकूल और प्रतिकूल विभाग वाले बच्चे इन्हीं प्रवृत्तियों और स्पर्श-मण्डल के अनुसार अपना शेष जीवन व्यतीत करते हैं। उपर्युक्त कुछ प्रवृत्तियाँ अवश्य ही कुछ ऐसी हैं, जिनका दुरुपयोग बुरे स्पर्श-मण्डल या कुसङ्गत में अवश्य हो सकता है। जैसे हम घृणा की प्रवृत्ति को लेते हैं, जिस बच्चे में अधिकार प्राप्त करने की प्रवृत्ति तीव्र हो, अगर वह बच्चा लालची और घमण्डी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति की सङ्गत करेगा तो बहुत सम्भव है कि उसकी यह अच्छी प्रवृत्ति भी कुमार्ग में पदार्पण करे और बच्चे का भी लालची और घमण्डी होना स्वाभाविक है। अगर हम चाहते हैं कि इस प्रवृत्ति वाला बच्चा अच्छे मार्ग को ग्रहण करे, तो हमें चाहिए कि बच्चे की सङ्गत उन्हीं व्यक्तियों के साथ करावें, जो अधिकार पाए हुए भी विनीत हों, और सञ्चय भी उस चीज़ का करें, जैसे विद्या और अच्छे गुण, न कि धन का। क्योंकि धन, विद्या और अच्छे गुण का परिणाम है। अगर किसी बच्चे में डरने और भागने की प्रवृत्ति है, तो ऐसी स्थिति में हमको चाहिए कि बच्चे को ऐसे स्पर्श-मण्डल में रक्खें या ऐसे व्यक्तियों का साथ करावें, जो बुरे कर्मों से डरते हों। यह 'Law of substitution' के अनुसार होता है।

आदतें उपरोक्त सङ्केतानुसार स्पर्श-मण्डल और प्रवृत्तियों का प्रतिफल हैं। एक कार्य को बार-बार करने का नाम ही आदत है और गुण उस भाव को कह सकते हैं, जिसके द्वारा हमारा कल्याण हो सके। नवीन गुण और आदतें अपनाना यद्यपि उतना कठिन नहीं है, जितना कि हम लोगों ने समझ रक्खा है। लेकिन कुछ कठिन अवश्य है। आदतें और गुण अनुकरण द्वारा सुगमता से आ जाते हैं, और अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। इसलिए माता और पिताओं का यह मुख्य कर्तव्य है कि उनको सन्तान की अभिलाषा करने के पहले अच्छे गुण और अच्छी आदतों से सम्पन्न होना चाहिए। क्योंकि माता और पिता ही बच्चे के लिए सब से उत्तम स्पर्श-मण्डल हो सकते हैं। दूसरे उचित स्पर्श-मण्डल को ढूँढना और प्राप्त करना कठिन है। बच्चा सब से पहले माँ-बाप का अनुकरण करता है। हमको यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि बच्चा समझने पर अपनी बहुत सी आदतें सुधार सकता है। लेकिन यह बहुत कम देखा जाता है। इससे यही उत्तम हो सकता है कि कठिनता को प्रारम्भिक अवस्था में ही जीत लेना चाहिए और अच्छी आदतों का समावेश उसकी कच्ची अवस्था में ही कर देना चाहिए।

जिन माता और पिताओं में कुछ अच्छे गुण और अच्छी आदतों का प्रभाव हो, उनको चाहिए कि वे बच्चों को शाम को सोने से पहले अच्छी आदतों और गुणों वाले व्यक्तियों की कथा सुनाया करें। कारण यह है कि हमारा अर्द्धचेतन मस्तिष्क (Sub-conscious mind) उस समय अधिक शान्त अवस्था में होता है। उस समय उसमें ग्रहण-शक्ति (Receptive power) अधिक होती है। विशेषतः जो कुछ अर्धचेतन मस्तिष्क को इस समय प्राप्त होता है, उसको वह तुरन्त ही इच्छाशक्ति (Volitional or conational power) को अर्पण कर देता है। जिससे कि विचार शीघ्रता से कार्यरूप में परिणत हो जाते हैं। हम प्रायः देखते हैं कि जो कुछ हम सोते समय निर्णय करते हैं,

प्रातःकाल पहला हमारा वही कार्य होता है। अच्छी आदतों और गुणों का सन्तान के अन्दर समावेश करने का सबसे अच्छा यही समय है।

—रामसहाय शर्मा

❀ ❀ ❀

आध्यात्मिक शिक्षा

भारत में आध्यात्मिक शिक्षा की परम आवश्यकता है। क्योंकि आत्मोन्नति के लिए धार्मिक विषयों का यह एक प्रधान अङ्ग है। अध्यात्म-प्रेमी पाठकों की जानकारी के लिए इस विषय सम्बन्धी आवश्यक एवं उपयोगी अथच विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बातें इस लेख में बतलाई जाती हैं।

इस लेख की बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य क्यों हैं? इसका कारण यह है कि एक तो इनकी सहायता से यह बात स्पष्टतया समझ में आ जायगी कि मन की एकाग्रता के द्वारा विचार को मार्ग दिखलाने और इसे बलिष्ठ बनाने से इसकी गूढ़ शक्ति कितनी महान हो जाती है। दूसरे इनसे यह भी विदित हो जायगा कि भौतिक और अलौकिक नियमों में आपस का क्या सम्पर्क है। दीप्तबल (Radiant Energy) और विचार-क्षेत्रों के कार्यों का उल्लेख करने के पहले यह समझ लेना अच्छा होगा कि दीप्तबल किसे कहते हैं और क्षेत्र क्या चीज़ है?

पहले गति से भिन्न बल का अर्थ समझिए। बल एक परिभाषा है। इसका प्रयोग किसी ऐसे पिण्ड (या वस्तु) के साथ होता है, जो चलते-चलते जब किसी दूसरी वस्तु के साथ टकराता है, तब वह भी फिरने लगती है। पहली वस्तु को दूसरी को हिला देने की शक्ति बल कहलाती है। इसका अन्दाज़ा उस गति से होता है, जोकि यह पैदा कर सकता है।

दीप्तबल एक परिभाषा है, जिसका प्रयोग किसी ऐसे पिण्ड या वस्तु के साथ होता है, जिसमें इस प्रकार का बल हो, जोकि वायु-मण्डल, या उस वस्तु को चारों ओर से घेरने वाले माध्यम को दिया जा सके। जिस वेग से यह बल दूसरे स्थान में भेजा जाता है, उसका सारा दारोमदार माध्यम की बल को भेजने की क्षमता पर है; स्वयं बल पर कुछ नहीं।

इस प्रकार विचार के परमाणुओं और आकाश-रूपी माध्यम में पूर्ण सहानुभूति है। फलतः विचार की लहरों को ले जाने के लिए आकाश एक आदर्श माध्यम है।

स्मरण रहे कि कोई वस्तु या पिण्ड जो दीप्तबल बखेर रहा है, प्रकृति के दूसरे पिण्डों में भी गति पैदा कर सकता है। विचार के थरथराने वाले धर्म के विषय में हमारे कथन का यह एक आवश्यक भाग है। ऐसी तरङ्ग-गतियों को आकाश सीधी रेखाओं में भेजता है। इनकी यात्रा की दूरी की तो कोई सीमा नहीं। वे अनियत हद तक चल सकती हैं। परन्तु जिस बात पर पाठकों को मैं ले जाना चाहता हूँ और जिसकी मैं व्याख्या करना चाहता हूँ, उसे वैज्ञानिक परिभाषा में क्षेत्र कहते हैं। क्षेत्र के विस्तार का सारा दारोमदार पिण्ड की शक्ति या बल पर है। इसमें जितनी अधिक शक्ति होगी, उतने ही अधिक विस्तृत क्षेत्र में इसका बल बँटा होगा। सोचिए कि संसार के बड़े-बड़े मस्तिष्क किस प्रकार अपने प्रभाव का अनुभव कराते हैं। या विचारिए कि सूर्य का बल उस विस्तृत शून्यमय स्थान में, जोकि उसके और हमारी पृथ्वी के बीच है, किस प्रकार फैल रहा है।

विचार-बल के लिए सब से उत्तम दृष्टान्त सूर्य-रूपी चुम्बक का ही सम्भव है। इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादक चुम्बक (Inducing magnet) या बिजली की धारा के बिना चुम्बक-क्षेत्र हो नहीं सकता। प्रत्येक चुम्बक के दो "ध्रुव" होते है। यह परिभाषा चुम्बक के दोनों सिरों के लिए प्रयुक्त होती है। इनमें से एक सिरा 'धन-ध्रुव' और दूसरा 'ऋण-ध्रुव' कहलाता है। पाठकों में से कई एक चुम्बक-शास्त्र से अनभिज्ञ होंगे। इसलिए इसकी थोड़ी सी व्याख्या कर देने से उन्हें विषय को समझने में सहायता मिल जायगी। साधारण चुम्बक या चुम्बक-पत्थर एशिया माईनर के अन्तर्गत मगनेशिया और भू-मण्डल के दूसरे भागों में पाया जाता है। इसमें इसपात और लोहे के टुकड़ों को अपने पास खींचने या आकृष्ट करने और सदा उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं को दिखलाते रहने का गुण है। इसपात के टुकड़ों को चुम्बक पत्थर

पर रगड़ने से वे कृत्रिम चुम्बक बन जाते हैं। इससे लोहा चुम्बक पत्थर के गुण ग्रहण कर लेता है। १६०० ईसवी में डॉक्टर गिलबर्ट ने मालूम किया था कि लम्बे आकार वाले चुम्बक में आकर्षण-शक्ति उसके दोनों सिरों पर वास करती प्रतीत होती है। इन दोनों प्रदेशों का नाम 'ध्रुव' रक्खा गया था। इसलिए चुम्बक का ध्रुव, पृथ्वी के ध्रुवों के सदृश, चुम्बक के बिन्दुओं में से एक बिन्दु होता है। इनमें से एक ध्रुव तो उत्तर की ओर, दूसरा दक्षिण की ओर रहता है। प्रायः ध्रुव सदा सिरों पर होते हैं। चुम्बक का वह भाग, जो दोनों ध्रुवों के बीच होता है, अपेक्षाकृत कम आकर्षण-शक्ति रखता है। यह उतने ज़ोर से आकर्षित नहीं करता और दोनों ध्रुवों के मध्य में तो आकर्षण बिलकुल ही नहीं होता।

चुम्बक-शास्त्र का पहला सिद्धान्त यह है कि "एक जैसे चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से परे भागने पर भिन्न-भिन्न चुम्बकीय ध्रुव एक दूसरे को आकृष्ट करते हैं।" अतः उत्तर की ओर रहने वाले दो ध्रुव प्रबल रूप से एक-दूसरे से परे भागेंगे। परन्तु ऐसे दो ध्रुव, जिनमें से एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर अर्थात् एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव, एक दूसरे को आकृष्ट करेंगे।

पृथ्वी स्वयं एक चुम्बक है। इसमें दो ध्रुव हैं। एक उत्तर की ओर रहता है और दूसरा दक्षिण की ओर। मनुष्य भी एक चुम्बक है। वास्तव में प्रकृति के सब भिन्न-भिन्न रूप और नाना आकार चुम्बकों के बने हुए हैं। प्रत्येक परमाणु और अणु में उत्तर और दक्षिण ध्रुव विद्यमान हैं।

मानव-मस्तिष्क के भी धनात्मक और ऋणात्मक रूप हैं। इसका धन-ध्रुव बड़े मस्तिष्क में और ऋण-ध्रुव छोटे मस्तिष्क मे है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि दीसबल को बाँटने के लिए किसी वस्तु या प्रकृति के पिण्ड का होना परमावश्यक है। जब तक क्षेत्र बनाने के लिए—यह क्षेत्र चाहे चुम्बक का हो, चाहे बिजली का; चाहे रासायनिक हो, चाहे यान्त्रिक; और चाहे यह विचार-क्षेत्र हो—कोई वस्तु या शक्ति न हो, तब तक कोई क्षेत्र नहीं हो सकता।

विचार-क्षेत्र की दशा में बल का सोता और क्षेत्र को उत्पन्न करने वाली शक्ति या प्रकृति का पिण्ड मस्तिष्क होता है। निर्बल और असङ्गठित मस्तिष्क में यह क्षेत्र दुर्बल रहता है और इसका प्रभाव भी बहुत परिमित स्थान तक ही होता है। परन्तु जितनी ज़्यादा आकर्षण-शक्ति होगी, जितना अधिक बलवान और सङ्गठित मस्तिष्क होगा, उतनी ही अधिक सीमा तक इसकी किरणें बिखरेंगी, उतना ही अधिक विस्तृत इसका क्षेत्र होगा और उतने ही अधिक चिरस्थायी इसके परिणाम होंगे। विचार-शक्ति या मन जब किसी मनुष्य में उत्पन्न हो, तब उसे समझ लेना चाहिए कि वह कोई बड़ा आदमी बनने वाला है। उसका यह बड़प्पन उसके परिश्रम और उसकी शासक-बुद्धि के अनुरूप होगा।

इस प्रकार के श्रेष्ठ पुरुषों में ईसा, बुद्ध, शेक्सपीयर, बोडीशिया आदि महात्माओं के नाम हैं, जिनमें गुण तो भिन्न-भिन्न थे, पर उनमें प्रत्येक में युग-युगान्तर तक बना रहने वाला बल पैदा करने के लिए यथेष्ट शक्ति थी।

जब मनः संयोग (टेलीपेथी) या चिकित्सा के उद्देश्य से दो मस्तिष्क इकट्ठे कार्य कर रहे हों, तब उनमें से एक का धनात्मक और दूसरे का ऋणात्मक होना आवश्यक है। परस्पर की सहानुभूति के द्वारा वे आकाश पर दबाव डालते हैं और विचार-क्षेत्र इस प्रकार कार्य करते है कि वे उपर्युक्त अवस्थाओं के नीचे दब कर इकट्ठे और संयुक्त हो जाते हैं। उनके ऐसा करने से आकर्षण पैदा होता है। वे अपने बल का परिवर्त्तन या बदला कर लेते हैं। यह बदला सदा ज़्यादा वेग वाले से कम वेग वाले की ओर होता है। इस प्रकार एक मनुष्य सञ्चारक (Transmitter) का और दूसरा ग्राहक (Reciever) का काम करता है। इनमें से एक धनात्मक है और दूसरा ऋणात्मक, नहीं तो आकृष्ट करने के स्थान में वे एक-दूसरे से दूर भागें, क्योंकि सदृश चुम्बकीय ध्रुव एक-दूसरे से दूर भागेंगे, पर एक धन-ध्रुव और दूसरा ऋण-ध्रुव एक-दूसरे को आकर्षित करेंगे। इसी प्रकार सदृश मन एक दूसरे से दूर भागते और असदृश मन एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। दूसरे

शब्दों में यों कहिए कि बलवान मन निर्बल मन को और निर्बल मन बलवान मन को आकृष्ट करता है।

—ज्ञानमल हंसराज जैन

भारतीय संस्कृति और उसकी महत्ता

किसी पदार्थ की वास्तविक स्थिति अथवा सत्ता तभी तक मानी जाती है, जब तक उस वस्तु का वास्तविक गुण उसमें स्थित रहता है। जैसे अग्नि का वास्तविक गुण ताप तथा प्रकाश है और यही उसका जीवन है। इसके विनाश होते ही उसकी सत्ता का भी लोप हो जाता है। एक सिंह जो अपनी वीर-वृत्ति परित्याग कर सर्कस के खिलाड़ियों के आतङ्क में आकर भेड़ और बकरियों के साथ खेलने लगता है, वह सिंह नहीं रह जाता; उसकी सिंहवृत्ति अजावृत्ति में परिणत हो जाती है। ठीक यही दशा हमारे वैयक्तिक तथा समष्टिक जीवन की भी है। मनन-शक्ति जिसमें हो, वह मनुष्य और जो इससे हीन हो, वह मनुष्याकार में एक पार्थिव पदार्थ के सिवा और कुछ नहीं हो सकता। अस्थि, मांस और मज्जा की समष्टि का नाम मनुष्य नहीं, क्योंकि सृष्टि के और भी जन्तु—कुत्ते और गधे आदि भी—इन्हीं के योग से बने हैं। यदि यह कहा जाय कि क्या कुत्ते और गधे उस भगवान की विभूति नहीं हैं? और अगर वही बन कर जीवन व्यतीत कर दिया जाय तो क्या हानि है? इसका उत्तर यही है कि हम किसी भी जीवनावस्था में क्यों न रहें, हमको उस योनि अथवा अवस्था के गुण-विशेष को धारण करना ही पड़ेगा, तभी हम उसकी संज्ञा प्राप्त करने के अधिकारी बन सकेंगे।

उपर्युक्त कथन से यह निष्कर्ष निकला कि प्रत्येक वस्तु की सत्ता उसके गुण-विशेष पर ही निर्भर होती है। इस गुण का ही दूसरा नाम जीवन या सार-तत्त्व है, जो भिन्न-भिन्न वस्तुओं में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जल में इसी का नाम शैत्य तथा द्रवता, अग्नि में ताप तथा प्रकाश, वायु में चाञ्चल्य, जीवधारियों में अहङ्कार, मनुष्य में विचार तथा आचार और समाज में इसी का नाम संस्कृति है। इन गुणों के विलीन होने से उक्त वस्तुओं की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं रह जाती। या यों कहिए कि गुणों के साथ ही साथ उनका भी पराभव हो जाता है।

इस लम्बी भूमिका का तात्पर्य यह है कि किसी भी समाज अथवा देश की स्थिति अथवा अस्थिति, उत्थान या पतन, उसकी चिर-अच्छिन्न तथा सुव्यवस्थित संस्कृति पर ही निर्भर होती है। विचारशील जातियाँ अपना सर्वस्व लुटा कर भी अपनी संस्कृति की रक्षा करती हैं। क्योंकि जिस प्रकार प्राण के निकल जाने पर शरीर का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता, उसी प्रकार संस्कृति के मिट जाने पर जाति का भी कुछ मूल्य नहीं रहता।

विश्व के इतिहास में यह बात निर्विवाद है कि आर्य-संस्कृति सर्वोत्कृष्ट रही है। इसका कारण यह है कि आर्य-संस्कृति-निर्माताओं के कल्पना-राज्य में समता का भाव और विषमता का अभाव था। जिस प्रकार सूर्य अपनी रश्मियाँ चर-अचर सब पर अवैषम्य भाव से डालता है, बालक तथा सुकुमार उष्णता से घबरा उठते हैं, परन्तु हृष्ट-पुष्ट मनुष्य निरन्तर अपने कार्य करते रहते हैं, फिर भी सूर्य पर पक्षपात का दोष नहीं लगता है। ठीक यही साम्य-वृत्ति आर्य-नियामकों की थी।

आर्य-संस्कृति में सत्य के लिए प्रियता का परिधान था। नीरस तर्कवाद की विस्तृत मरुभूमि में भक्ति-भाव का शीतल निर्झर प्रवाहित था। भौतिकवाद (Materialism) की धधकती हुई भीषण ज्वाला को शान्त करने के लिए अध्यात्मवाद (Spiritualism) की पुनीत जाह्नवी की उपासना तथा उसमें मज्जन का आदेश दिया और साथ ही साथ कि कहीं उस जाह्नवी के हिमवत सुशीतल जल में सतत स्नान करने के कारण लोग शीताङ्ग होकर अकर्मण्य न बन जायँ, अतएव उष्णाङ्ग बनाने के लिए भौतिकवाद की उपासना का निर्देश किया। अर्थात् इन दोनों विद्याओं को वेद के निम्नलिखित आदेशानुसार समान अधिकार दिए।

> विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदो अभय ँ्सः।
> अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

अर्थात् जो विद्या (अध्यात्म विद्या) और अविद्या (भौतिक विद्या) दोनों को जानता है, वह अभय है। क्योंकि भौतिक विद्या के बल से इस संसार-सागर को

पार कर जायगा या इहलोक में सुख प्राप्त करेगा और आध्यात्म विद्या से अमृत पद अर्थात् मोक्षपद को प्राप्त कर लेगा या यों कहो कि परलोक बना लेगा। अतः पूर्ण शान्ति प्राप्त करने के लिए दोनों विद्याओं के पढ़ने का आदेश किया।

इस तप्त काञ्चनवत् शोधित तथा सुव्यवस्थित पुनीत आर्य-संस्कृति के किन-किन अवयवों का वर्णन कहाँ तक किया जाय? सब एक से एक उत्तम तथा विशद गुण-युक्त हैं। यही संस्कृति हम आर्यों की जान है। यह नहीं तो हम नहीं; यह दृढ़ हम भी सुदृढ़। इसके बदले में चाहे समस्त भूमण्डल का साम्राज्य क्यों न हस्तगत हो जाय, दिक्पालगण चाहे बन्दी बन कर हमारी विशद विरुदावलि के गायक क्यों न बन जायँ, इहलोक से पर-लोक तक की निविड़ तमोराशि को नाश करने वाली चन्द्रोज्वला पुण्य प्रख्याति अप्रयास ही क्यों न मिल जाय; चञ्चला अचला बन कर सर्वदा को क्यों न अङ्क-शायिनी बन जाय तथा हिमालय से भी उच्च परकीय सभ्यता, महार्णव से भी गम्भीर भावुकता हमको क्यों न अपना ले, फिर भी इसका मूल्य हमारी संस्कृति के सामने कुछ भी नहीं है। क्यों? इसलिए कि संस्कृति हमारी जान है और जान का मूल्य भौतिक पदार्थों से कहीं अधिक होता है।

हमारा गौरव तो तब है जब हम आर्य-संस्कृति के अनुगामी होते हुए उक्त सौख्यों का उपभोग करें। अपना रङ्ग दूसरों पर चढ़ा दें, न कि उनके रङ्ग में स्वयं रँग जायँ। पाश्चात्य बन कर श्रेष्ठता प्राप्त की तो क्या महत्व? क्योंकि इस महत्वाकांक्षा की जन्मदात्री हमारी पुरातन संस्कृति फल प्राप्त होने के पूर्व ही विलीन हो गई। अब इस श्रेष्ठता-प्राप्ति का गर्व किस पर किया जाय?

कुछ उदार भाव रखने वाले सज्जनों को उक्त भाव रूढ़िवाद में जकड़े ज्ञात होंगे, परन्तु यदि निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय तो वे अत्यन्त विस्तृत तथा उदार सिद्ध होंगे। हमारी वैदिक संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य यही रहा है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करने में सर्वदा उद्यत रहो। गुण जहाँ भी कहीं हों, उनको विश्व-नियन्ता की विभूति समझ कर ग्रहण करो, परन्तु उसमें लिप्त होकर अपने आपको न भुला दो।

नींव जितनी ही गहराई और दृढ़ता से डाली जायगी, मन्दिर उतना ही दृढ़ और चिरस्थायी रहेगा। संसार के विशाल राष्ट्र इसी संस्कृति रूपी नींव पर खड़े होते हैं और उसके निर्बल पड़ जाने से वे ऐसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं कि उनके भग्नावशेष भी ढूँढ़े नहीं मिलते हैं। जो जाति अपनी संस्कृति की रक्षा करती है, उसकी रक्षा संस्कृति भी करती है और जो उसकी अवहेलना करती है वह उसके अस्तित्व ही को मिटा देती है। जो राष्ट्र इस तत्व को जानते हैं, वे विपत्ति-घन-मण्डल को दिवाकर की भाँति छिन्न-भिन्न करके संसार को आलोकित कर देते हैं। जो जातियाँ विजेताओं के आतङ्क में आकर उनकी सभ्यता तथा उनके आचार-विचारों को अङ्गीकार कर लेती हैं, उनकी स्वतन्त्र सत्ता का लोप होकर केवल नाम ही नाम रह जाता है। जैसे, रोम और यूनान, जिनकी विश्व-विजयिनी पताका कभी गगन-मण्डल में फहराती थी। परन्तु ज्योंही उन्होंने अपनी संस्कृति के रक्षण में प्रमाद से काम लिया, त्योंही उनका पतन हुआ। जो जाति शत्रुओं से पदाक्रान्त होने पर भी दूरस्थ भविष्य में उत्थान की पतली किरण पर दृष्टि लगाए हुए विजेताओं को अपना सर्वस्व देकर भी स्वसंस्कृति की रक्षा करती है, वह एक न एक दिन अवश्य ही अपने उन्नति-पथ की तमोराशि को विच्छिन्न कर पुनः गौरवमयी हो जाती है।

किन्तु यह समय बड़ा दुर्धर्ष है। परतन्त्रता के आक्रमण अभी तक भूमि, धन आदि बाह्य पदार्थों पर हुए थे। हम उनको अपनी प्रतिभा के बल से हटाते रहे। परन्तु अब की बार उसका आक्रमण बुद्धि पर हुआ है, जिसके कारण से रोम-रोम में उसके कीटाणु प्रविष्ट कर गए हैं। इसका उपचार खद्दर धारणादि बाह्य औषधियों से होना दुस्तर प्रतीत होता है। इसके लिए तो कोई ऐसा विरेचक क्वाथ चाहिए जिससे आन्तरिक स्वच्छता प्राप्त हो और बुद्धि का विकार दूर हो, जिससे हम अपनी संस्कृति की रक्षा कर सकें।

—बाबूलाल प्रेम

❀ ❀ ❀

विश्व-भारती का नारी-विभाग

जिन लोगों ने महर्षि देवेन्द्रनाथ का चरित्र पढ़ा होगा, उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास के इस कथन की यथार्थता का अनुभव अवश्य किया होगा कि 'बाढ़इ पूत पिता के धर्मा'। सचमुच ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के अनेक गुण आपके पूज्य पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ की देन हैं। स्वयं कवि ने भी इस बात को एकाधिक बार स्वीकार किया है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम भाग में देश में एक विचित्र जड़ता छाई हुई थी। सामाजिक बन्धन इतने कठोर और सुदृढ़ थे कि उनके जाल को तोड कर किसी महान आत्मा का विकास असम्भव था। राजा राममोहनराय ने सर्वप्रथम इस भीषण अवस्था का अनुभव किया था। महर्षि देवेन्द्रनाथ राजा राममोहनराय के दाहिने हाथ थे! उन्होंने भी इसका अनुभव किया और इसके प्रतिकार में राजा राममोहनराय का हाथ बँटाया। उन्हीं महर्षि ने रवीन्द्रनाथ की विशाल आत्मा के भावी विकास का रास्ता भी साफ़ कर दिया था।

उन्हीं महर्षि देवेन्द्रनाथ ने अपने ध्यान और उपासना के लिए कलकत्ते से प्रायः सौ मील की दूरी पर एक शान्तिमय स्थान चुना था, जिसे उन्होंने 'शान्ति-निकेतन' नाम दिया था। यह स्थान आजकल के ई० आई० रेलवे के बोलपुर स्टेशन से करीब दो मील दूर है। यह बड़ा ही उजाड़ और जन-शून्य स्थान था। दूर तक केवल मैदान ही मैदान दिखाई पड़ता था, बीच में केवल दो सप्तपर्णी के वृक्ष वर्तमान थे। उन्हीं वृक्षों के नीचे महर्षि के ध्यान की वेदी थी। आज भी, उस स्थान पर उनके दिव्य अनुभव, जो पत्थर पर खुदे हुए हैं, उस पुरानी स्मृति को जगा देते हैं :—

तिनि आमार प्राणेर आराम,
मनेर आनन्द, आत्मार शान्ति।

अर्थात्—"वे हमारे प्राणों के आराम, मन के आनन्द और आत्मा की शान्ति है।"

महर्षि के स्वर्गवास के बाद उनके कनिष्ठ पुत्र कविवर रवीन्द्रनाथ ने यहाँ एक विद्यालय की स्थापना की। देश की प्रचलित नवीन शिक्षा-प्रणाली से, जो ज़बर्दस्ती उसके गर्दन पर लाद दी गई थी, असन्तुष्ट होकर ही कवि ने इस विद्यालय का सूत्रपात किया था। यह सन् १९०१ की बात है। उस समय केवल दो विद्यार्थियों को लेकर ही कार्य आरम्भ किया गया था। परन्तु इन तीस वर्षों मे उस स्थान की कायापलट हो गई है। जो निर्जन स्थान कभी डाकुओं और ठगों का अड्डा था, वह आज फल-पुष्पों से सुशोभित सुन्दर उपवन बन गया है, देश-देशान्तर के बालक-बालिकाओं के आनन्द-कल्लोल का स्थान है और संसार भर के मनीषियों की तत्त्व चिन्ता का सङ्गम-स्थल हो गया है। वह छोटा सा विद्यालय आज 'विश्व-भारती' के विशाल रूप में परिणत है, एक नया ही संसार यहाँ सृष्ट हो गया है! अन्य विश्वविद्यालयों की तरह वहाँ भव्य-भवन नहीं बने हैं—अध्ययन-अध्यापन का काम उन्मुक्त आकाश के नीचे, खुली हवा, वृक्षों की शीतल छाया में ही हो जाते है। परन्तु विद्या के लिए जिस शान्त वातावरण की आवश्यकता है, वह यहाँ पूर्ण मात्रा मे वर्तमान है।

विद्यालय की स्थापना के समय कवि ने उसके आदर्श के बारे में कहा था—

"हमारी आदर्श संस्था वृक्षों की छाया में, उन्मुक्त वायु-मण्डल में शहरों से दूर स्थित होगी। जहाँ शिक्षक अध्यापन भी करेंगे और अपना अध्ययन भी जारी रक्खेंगे और विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हुए एक शान्त और कोलाहल-रहित वातावरण में बढ़ेंगे।"

कवि के इस आदर्श को विश्व-भारती ने सदा ध्यान-पथ में रक्खा है। यहाँ के छात्र और छात्रियाँ जिस शान्त और कोलाहल-रहित वातावरण में प्रकृति के साथ हिल-मिल जाती हैं, वह सचमुच अनुपम है। इस स्थान पर विश्व-भारती के अन्य विभागों की चर्चा न करके हम अपने पाठकों को उसके नारी-विभाग का परिचय कराना चाहते हैं।

क्या बालक और क्या बालिका, विश्व-भारती की शिक्षा का लक्ष्य ही यह है कि उन्हें यह सुयोग दिया जाय कि मानव-प्रकृति के किसी अंश के सङ्कुचित हुए बिना ही स्वतन्त्र रूप से उनका स्वाभाविक और सम्पूर्ण विकास हो। इसीलिए विश्व-भारती के प्रतिष्ठाता स्त्री-शिक्षा के लिए एक ऐसा क्षेत्र प्रस्तुत कर रहे हैं, जहाँ उनकी जिज्ञासा-वृत्ति, उनकी बुद्धि, उनका सौन्दर्य-बोध

और उनकी सेवा-भावना सब ओर से उद्बुद्ध होकर उन्हें अपने आपको प्रकाशित करने में सहायता दे। भारतवर्ष में ऐसी कोई भी संस्था नहीं है, जहाँ स्त्रियों को उतने साधन और सामग्री प्राप्त हों, जितने यहाँ प्राप्त हैं। छोटी उमर से लेकर बड़ी उमर तक की लड़कियों को प्रारम्भिक से लेकर उच्चकोटि तक की शिक्षा का यहाँ बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है। शुरू से अन्त तक यहाँ बालक-बालिकाएँ, एक ही वृक्ष की छाया में, एक ही शिक्षक या शिक्षयित्री से विद्याभ्यास करती हैं, एक ही स्थान पर भोजन करती हैं और एक ही उन्मुक्त वायु-मण्डल में साँस लेती हैं। नीचे एक-एक करके सभी विभागों का परिचय दिया जाता है।

१—शिशु-विभाग

शान्ति-निकेतन में लड़कियों के लिए जो छात्रावास है, उसका नाम है 'नारी-भवन'। इसी 'नारी-भवन' के एक ख़ास अंश में एक पृथक् मेट्रन के तत्त्वावधान में शिशु-विभाग की लड़कियों के रहने का प्रबन्ध है। इस विभाग में ६ से लेकर १२ वर्ष तक की लड़कियाँ ली जाती हैं। यह अवस्था उनके शारीरिक और मानसिक विकास की है, इसीलिए उनके खेल-कूद और तन्दुरुस्ती का बहुत ख़्याल रक्खा जाता है। बँगला, हिन्दी, अङ्गरेज़ी, हिसाब, भूगोल, इतिहास आदि पाठ्य विषयों के अतिरिक्त सङ्गीत, नृत्य, चित्र-विद्या, लकड़ी के काम, मिट्टी की कारीगरी (Clay-modelling) और सिलाई आदि की शिक्षा की अति सुन्दर व्यवस्था है।

२—स्कूल और कॉलेज-विभाग

इन विभागों में कलकत्ता विश्वविद्यालय के मैट्रिक, आई० ए० और बी० ए० परीक्षाओं के लिए छात्रियाँ तैयार की जाती हैं। पर यह बात सम्पूर्णतया उनकी इच्छा पर निर्भर है कि वे उक्त विश्वविद्यालय की परीक्षा की तैयारी करें या न करें। जो परीक्षा की तैयारी न करके किसी विशेष विषय का अनुशीलन स्वतन्त्र रूप से करना चाहें, उनके लिए भी विश्व-भारती की ओर से प्रबन्ध है। पाठ्य विषय के अतिरिक्त, सङ्गीत, चित्र-कला, सिलाई, बुनाई प्रभृति हाथ के कामों में जिनकी अभिरुचि हो, उनके लिए भी हर तरह की सुविधा दी जाती है।

लड़कियों के तत्त्वावधान के लिए एक महिला वार्डन और एक मेट्रन है। पर वे अपनी परिचालना के लिए यथासम्भव अपना प्रबन्ध आप करती हैं। इस प्रकार उन्हें स्वायत्त शासन के प्रति सम्मान और जवाबदेही का अभ्यास डलवाया जाता है। इसके अतिरिक्त रन्धन-शाला में यथायोग्य सहायता देना, बच्चों की देख-भाल और रोगियों की शुश्रूषा प्रभृति कार्य-भार देकर उनकी शिक्षा को पूर्ण करने की चेष्टा की जाती है।

३—कला-भवन

जिन छात्रियों की रुचि केवल सङ्गीत या चित्र-कला की शिक्षा की ओर ही हो, उनके लिए कला-भवन में बड़ा उत्तम प्रबन्ध है। इस विभाग के अध्यक्ष हैं, श्री० नन्दलाल बसु, जो अपनी कला-चातुरी के लिए संसार में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस विभाग के छात्र-छात्रियों को, यदि वे चाहें तो, अन्य विषय के अध्ययन की सुविधा भी दी जाती है। इस विभाग के अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का अन्दाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि अब तक इसने यूरोप, अमेरिका और एशिया के अन्य देशों (जापान, चीन, जावा आदि) से छात्र-छात्रियों को आकृष्ट किया है।

४—विद्या-भवन (रिसर्च-डिपार्टमेण्ट)

कला-भवन की भाँति इस विभाग ने भी यथेष्ट अन्तर्राष्ट्रीय महत्व प्राप्त किया है। अब तक अमेरिका, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, डेनमार्क, स्कैण्डिनेविया, ऑस्ट्रिया, जर्मनी, रूस, चीन, जापान, लङ्का, जावा, मङ्गोलिया, तिब्बत प्रभृति दूर-दूर देशों के विद्वान और छात्र समय-समय पर इसकी ओर आकृष्ट हुए हैं और उनका सहयोग प्राप्त होता रहा है। इस विभाग में उन छात्र और छात्रियों के अध्ययन का प्रबन्ध है, जो किसी ख़ास विषय का अनुसन्धान और अनुशीलन करना चाहते हैं। सम्प्रति इस विभाग में निम्न-लिखित विषयों की गवेषणा का प्रबन्ध है :—

(१) संस्कृत भाषा और साहित्य, (२) पालि भाषा और साहित्य, (३) प्राकृत अपभ्रंश भाषाएँ और उनका साहित्य, (४) बँगला और साहित्य, (५) हिन्दी भाषा और साहित्य, (६) अरबी, उर्दू, फ़ारसी साहित्य, (७) प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति

(८) मध्य युग में भारतीय साधना की धारा (सन्त-साहित्य), (९) दर्शन, (१०) जरथुस्ट्रियन (पारसी) अध्ययन, (११) बाल-मनोविज्ञान (१२), जैन-दर्शन और शास्त्र ।

५—शिल्प विभाग

अर्थकर शिल्प की शिक्षा ग्रहण करने की इच्छुक बालिकाएँ निम्न-लिखित शिल्पों को सीख सकती हैं :—

बुनाई, दस्तकारी, छपाई, सिलाई, जिल्दसाज़ी, लाह के काम, चमड़े के काम, काठ पर खुदाई और बैटिक वर्क ।

६—ग्राम-सङ्गठन और सेवा-विभाग

पश्चिमी देशों में जो स्त्रियाँ समाज-सेवा का व्रत लेना चाहती हैं, उनके लिए उन देशों में शिक्षा का विशेष प्रबन्ध है । हमारे देश की स्त्रियों में सेवा-भावना की नई लहर आई तो है, पर दुर्भाग्यवश यहाँ कोई ऐसी संस्था नहीं है, जहाँ वे समुचित शिक्षा प्राप्त कर सकें । सम्भवतः महाराष्ट्र मे ऐसी एक संस्था है । विदेशों में सभी स्त्रियाँ तो जा नहीं सकतीं और जो जा भी सकती हैं, वे भारतीय समस्याओं का कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकतीं । फलतः ऐसी अभिरुचि रखने वाली महिलाओं के लिए विश्व-भारती के अन्तर्गत श्रीनिकेतन मे बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध है । यहाँ पर देशी और विदेशी विद्वानों की देख-रेख में ग्राम-सङ्गठन और उनके नष्ट स्वास्थ्य के उद्धार की चेष्टा की जा रही है । ग्रामीण स्त्री-पुरुष और बालकों की शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओं को लेकर महिलाएँ ग्रामीण अवस्था का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं । श्रीनिकेतन की विद्वन्मण्डली की वक्तृता और आलोचना-प्रत्यालोचनाओं में योग देकर वे उक्त विषय का सैद्धान्तिक (थियोरिटिकल) ज्ञान भी प्राप्त कर सकती हैं । इस प्रकार की अभिरुचि रखने वाली महिलाओं के लिए श्रीनिकेतन में एक पृथक् छात्री-निवास बनवाया गया है ।

७—व्यायाम

लड़कियों के शारीरिक व्यायाम का भी प्रबन्ध है । लाठी, छुरा आदि के अतिरिक्त जापानी मल्लविद्या जुजुत्सू के सिखाने का भी प्रबन्ध है । इसके सिवा फुटबॉल, वॉलीबाल आदि मैदान सम्बन्धी खेलों की व्यवस्था भी है ।

इस प्रकार विश्व-भारती में स्त्री-शिक्षा का सर्वाङ्गीण प्रबन्ध है । इसके प्रतिष्ठाता का ध्यान सदा इस विषय पर रहता है कि पढ़ाई केवल पुस्तकों की ही न हो और न शिक्षा के भार से मानव-प्रकृति की कोमल वृत्तियाँ दबा कर नष्ट कर दी जायँ ।

—हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

❀ ❀ ❀

वीर्यपात से बचने का उपाय

नैसर्गिक अवस्था के सिवा अन्य समयों में वीर्यपात होना अस्वाभाविक और हानिकारक है । पन्द्रह वर्ष से तीस वर्ष की अवस्था वाले पुरुषों को प्रायः यह बीमारी होती है । यद्यपि यह कोई प्राणघातक रोग नहीं है, तथापि नवयुवक इस रोग से उद्विग्न होकर जीवन से निराश हो जाते हैं । जिससे पूछिए वही इस रोग की एक दवा बता देता है । रोगी तो चिन्तित रहते ही हैं, अतएव जिसने जो कहा उसी को प्रयोग में लाने लगते हैं । अधूरे वैद्यों को हाथ दिखाइए वे चरक और सुश्रुत के लच्छेदार श्लोकों का उच्चारण कर रोगी के सामने बीसों प्रकार के प्रमेह का नक्शा खींच देते हैं । रोगी को विश्वास हो जाता है कि रोग बड़ा भयानक है और उसका मस्तिष्क चक्कर खाने लगता है । अधूरे वैद्य रोग के कारण का न ढूँढ़ कर, भङ्ग-धतूरा-मिश्रित बाजीकरण औषधि दे देते हैं, जिससे रोगी को लाभ के बदले हानि ही होती है । डॉक्टरों के यहाँ तो वीर्यपात कोई रोग ही नहीं है, अतएव वे ब्रोमाइड इत्यादि शान्तिजनक (Sedative) अथवा फ़ौस्फ़ेट इत्यादि मिश्रित कोई पौष्टिक (Tonic) दवा देकर ऐसे रोगियों से अपना पिण्ड छुड़ा लेते है । कोई ख़ून की जाँच कराता है, कोई पेशाब की और कुछ धनिक व्यक्ति कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े शहरों में चिकित्सा के लिए चले जाते हैं । परन्तु अन्त में, अधिकांश रोगी चिकित्सा के सब द्वारों को खटखटा कर, हतोत्साह होकर घर बैठे रहते हैं और कुछ दिनों में बिना चिकित्सा के ही

विस्मयजनक लाभ अनुभव करते है। कुछ लोगों को पेशाब के पहले या पीछे कुछ उजला सा पदार्थ निकलता है, जिसे देख कर वे अत्यन्त चिन्तित हो जाते हैं। यह उजला पदार्थ या तो 'यूरिक एसिड' (Uric Acid) रहता है या फ़ौस्फ़ेट। इसके लिए विशेष चिन्ता को आवश्यकता नहीं है। कुछ लोग सूज़ाक के पीब को भी वीर्य ही समझते हैं।

वीर्य बनने का स्थान और उसके बाहर निकलने के पथ

वीर्य अण्डकोष के दोनों गाँठों (Glands) में बनता है और वहाँ से वीर्यवाहिनी नली (Ductus deferens) के द्वारा, पेट में (Abdomen) होते हुए, वीर्यस्थली (Seminal Vesicle) की नली से संयुक्त होकर, मूत्र-नली (Viethra) में चला जाता है। प्रत्येक गाँठ के लिए विभिन्न नलियाँ हैं। वीर्य बन कर वीर्यस्थली में जमा रहता है और काम पड़ने पर बाहर निकलता है। वह न तो समूचे शरीर में बनता है, न समूचे शरीर में रहता ही है।

रोग के कारण

(१) क़ब्ज़ियत—वीर्यपात का क़ब्ज़ियत से घनिष्ट सम्बन्ध है। क़ब्ज़ियत होने पर अवश्य ही वीर्यपात होता है। क्योंकि क़ब्ज़ियत होने से पुरीष वीर्यस्थली के पीछे, अँतड़ी से निचले हिस्से (Rectum) में जमा हो जाता है। पुरीष के जमा हो जाने से वीर्यस्थली पर दबाव पड़ता है, और दबाव पड़ने से, वीर्य उससे बाहर निकल पड़ता है। इसके सिवा पुरीष इकट्ठा होने से, जननेन्द्रियों की नसें (Lumber centre) विक्षुब्ध हो जाती हैं, फलतः वीर्यपात हो जाता है।

(२) भोजन सम्बन्धी दुर्व्यवहार—(क) लाल मिर्च और खटाई आदि चटपटे पदार्थों का अधिक खाना, (ख) मिठाई, खोआ, खीर, रबड़ी इत्यादि गुरु पाक पदार्थों का अत्यधिक खाना, (ग) मांस, मछली और अण्डे का अत्यधिक भोजन, ऐसे पदार्थों के भोजन से क़ब्ज़ियत और जननेन्द्रियों में उत्तेजना होती है, (घ) मिल के आटे और मैदे की बनी रोटी और पूरी का खाना, इससे भी क़ब्ज़ियत होती है, (ङ) भोजन में हरे पदार्थ की कमी। हरे पदार्थ क़ब्ज़ियत को दूर करते हैं।

(३) बुरी आदतें—(क) अत्यधिक स्त्री-संयोग। स्त्री-संयोग पुरुषों की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, किन्तु इस प्रवृत्ति का लोग दुरुपयोग करते है। स्त्री-संयोग का मुख्य अभिप्राय सन्तान-जनन है। इस विषय में हम लोगों को प्रकृति से शिक्षा लेनी चाहिए। स्त्रियाँ एक महीने में एक बार रजस्वला होती हैं। रजस्वला होना, गर्भाशय को वीर्यवपन के लिए तैयार करना है। इसलिए महीने में एक बार स्त्री-संयोग करना प्रकृति के अनुकूल प्रतीत होता है। पशु-पक्षी भी गर्भ-धारण के ही लिए संयोग करते हैं। किन्तु हम जितने ही सभ्य और शिक्षित होते जाते हैं, उतने ही काम-लिप्सा की तृप्ति के लिए अनेकों उपाय के आविष्कार करते हैं। यही कारण है कि हम लोग स्वास्थ्य के सब नियमों को जानते हुए भी अधिक रोगी और निर्बल रहते हैं। कितने पुरुष स्त्री-संयोग से सन्तुष्ट न होकर, हस्तक्रिया और पुरुष-प्रसङ्ग (Sodomy) से अपनी काम-लिप्सा तृप्त करते हैं। ऐसे पुरुषों के स्वास्थ्य और शरीर कब तक ठहर सकते हैं। अत्यधिक स्त्री संयोग और अस्वाभाविक मैथुन से वीर्य की जनन-शक्ति क्षीण हो जाती है और तनिक भी उत्तेजना से वीर्य-स्खलन हो जाता है। फलतः स्त्री-संयोग के लिए एक निश्चित नियम बना लेना श्रेयस्कर है। (ख) गन्दे उपन्यासों का पढ़ना। (ग) स्त्रियों का सतत ध्यान। (घ) हस्त-क्रिया और पुरुष-प्रसङ्ग। (ङ) पाख़ाना-पेशाब का रोकना। (च) व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम की कमी। (छ) आलस्य और बेकारी।

(४) निर्बलता—निर्बल पुरुषों को वीर्यपात की शिकायत बहुधा रहती है। क्योंकि उनकी नसें शिथिल रहती हैं, अतएव तनिक आहार-विहार के विपर्यय से वीर्य-स्खलन हो जाता है। शरीर स्वस्थ और सशक्त होने से स्वयं यह शिकायत दूर हो जाती है।

चिकित्सा

वीर्यपात की चिकित्सा के लिए साधारणतः किसी वैद्य या डॉक्टर के यहाँ जाने की आवश्यकता नहीं रहती, स्वयं आहार-विहार के नियमों को निश्चित रूप

से अनुसरण करने से और मनोवृत्ति को शुद्ध रखने से यह रोग दूर हो जाता है। क़ब्ज़ियत को सदा दूर रखने का ध्यान रखना चाहिए। सवेरे आधा सेर ताज़ा पानी पीना, चना भिगो कर जलपान करना, चक्की के आटे की रोटी खाना, हरी तरकारी खाना, रात में सोने के पहले कम से कम आधा सेर गरम दूध पीना और ताज़े फल खाना, क़ब्ज़ियत को दूर करने के अमूल्य उपाय हैं। धनिक व्यक्ति केवल दूध और फलाहार करें तो सब से उत्तम होगा। खटाई, मिर्च, मिठाई और मांस-मछली का खाना निश्चय रूप से छोड़ देना चाहिए। गन्दे उपन्यासों का पढ़ना और बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिए। यथाशक्ति किसी तरह का व्यायाम करना चाहिए। जिनसे किसी तरह का व्यायाम न हो सके, उन्हें सवेरे और शाम को कम से कम एक मील पैदल घूमना चाहिए। ठण्ढे पानी से अथवा नदी या तालाब में सवेरे स्नान करना लाभदायक होगा। सदा अल्पाहार करने का ध्यान रखना चाहिए और रात को आधा खाना अथवा केवल दूध पीकर रहना श्रेयस्कर होगा। बिना संयम के किसी तरह की दवा खाना लाभदायक नहीं होगा। स्त्री-संयोग और सहवास, कुछ दिन के लिए छोड़ देना लाभदायक होगा।

—रामचरित्र कुँवर, एल० एम० पी०

बाल-विवाह का दुष्परिणाम

[मुन्शी रामजीमल कपूर, सम्भलीं 'राम']

हो गईं अनक़ा[1] हमारी देश की सब ख़ूबियाँ,
हैं हमीं और आप इस गुलज़ार के बादे-ख़िज़ाँ[2]।
किस तरह सरसब्ज़ हो अब इस चमन की डालियाँ,
कमसिनी में कर रहे हैं हिन्द वाले शादियाँ।

जब ज़रा बढ़ने लगा मासूम बच्चा शीरख़्वार,[3]
फ़िक्र शादी में हुए माँ-बाप उसके बेक़रार।

अलग़रज़ शादी हुई, बारात भी रुख़सत हुई,
आगई दुलहिन नई घर में बड़ी ज़ीनत[4] हुई।
शादमाँ[5] नौशा[6] हुआ माँ-बाप को फ़रहत[7] हुई,
अब ज़रा सुनिएगा जो तालीम की हालत हुई?

उस नई दुलहिन के जो नौशाह को दर्शन हुए,
इल्म से नफ़रत हुई स्कूल से बदज़न[8] हुए!

जब बढ़े कुछ उम्र में तालीम के क़ाबिल हुए,
छोड़ कर तालीम को बीबी पे वह मायल[9] हुए।
शब को कमरे मे दुल्हन के शौक़ से दाख़िल हुए,
अलग़रज़ हम-बिस्तरी के ऐश सब हासिल हुए।

सामने बीबी के अब बेकार माँ और बाप हैं,
बीबी है, ख़िल्वत[10] है, और चश्मा लगाए आप हैं!!

अब न है तालीम से मतलब न पढ़ने का ख़याल,
है उन्हे एक दम को भी स्कूल का जाना मोहाल।
कर रहे हैं मश्क़ उसकी जो हैं जोरू के सवाल,
अब उन्हे जुग़राफ़िया है अपने जोरू का जमाल[11]।

कमसिनी की शादियों का हाल मैं कब तक कहूँ,
जिससे पूछो वह यह कहता है मिडिल में फ़ेल हूँ!!

१—ग़ायब, २—पतझड़ की हवा, ३—दुधमुँहा, ४—शोभा, ५—ख़ुश, ६—दूल्हा, ७—आनन्द, ८—नज़र फिर जाना, ९—प्रेमी, १०—एकान्त, ११—सौन्दर्य।

जानिबे तालीम रुग़वत[१२] किस तरह अब हो जनाब,
अब तो उनकी दर्स[१३] मे है वस्ले-बीबी की किताब !
सामने बीबी के है स्कूल जाने से हिजाब[१४],
किस तरह अब हों भला वे इम्तेहाँ में कामयाब ?
कहते हैं बीबी से, अब जो कुछ भी हैं, वह आप हैं,
मेरी आँखों मे समाते ही नहीं माँ-बाप हैं !

ज़ोफ़[१५] से यह हाल है दीखे नहीं है रात में,
चल दिए शब को बिला लकड़ी लिए गर हाथ में।
गिर गए घर से निकलते ही ज़रा सी बात में,
जिस तरह दीवार कच्चो गिर पड़े बरसात में !
जिस्म से ताकत गई चेहरे से ज़ेबाई[१६] गई,
दर्दे सर पैदा हुआ आँखों से बीनाई[१७] गई !

हो गई बरबाद उनकी तन्दुरुस्ती इस कदर,
दस्त जारी हैं कभी और है कभी दर्दे-कमर।
क़ब्ज़ मेदे में कभी है और कभी है दर्दे-सर,
रोज़मर्रह हैं खड़े दर पर तबीबो डॉक्टर।
मुज़तरिब[१८] माँ-बाप हैं देखा जो यह हाले-पिसर,
यह न सोचा कमसिनी के व्याह का यह है असर !

वक्त से पहले जवानी का मज़ा जाता रहा,
अब यह ताकत ही नहीं,ज़रिया जो था औलाद का।
ढूँढ़ते फिरते हैं अब औलाद होने की दवा,
बाप-माँ भी माँगते हैं रात-दिन यह ही दुआ !
पर इधर को ख़्याल है माँ-बाप का मुतलक नहीं,
नख़ल[१९] भी बेतुख़्म[२०] के दुनिया में होता है कहीं ?

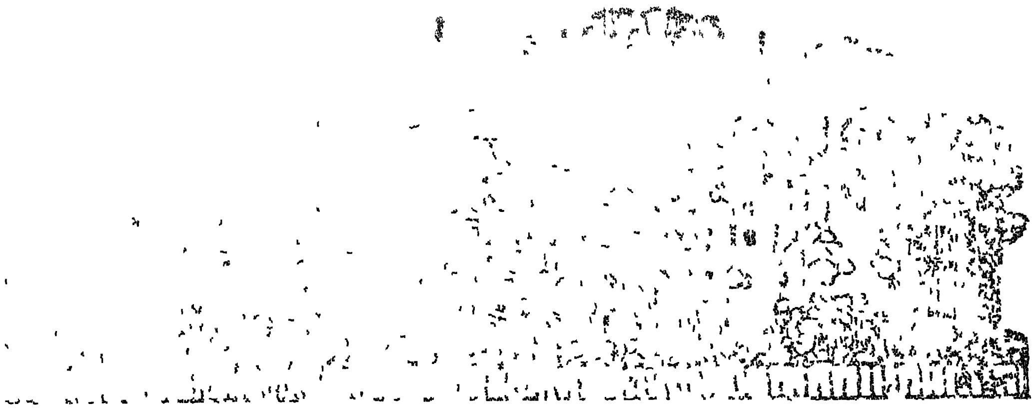
वह शमा क्योंकर जले जिसमें न हो रौगन भरा,
जिसकी हो बुनियाद कम वह नख़्ल हो क्योंकर हरा ?
वह चमन में किस तरह गुन्चा[२१] शिगुफ्ता[२२] हो भला,
दूर जिसकी हो गई हो ताकते नशवोनुमा।
दौलतेज़ाती को अपनी हरकतों से खो चुके,
आने वाली ताक़तो से हाथ अपने धो चुके !

और तो सब तर्ज़ बदला आपका ऐ हमनशीन,
कमसिनी की शादियों की रस्म को बदला नहीं।
.खुद बने औलाद के हक में हो मारे[२३] आस्ती,
यह सितम औलाद पर कोई भी करता है नहीं।
रहम करना चाहिए अब आपको औलाद पर,
ख़ूब हो शादी करो तुम बाद एफ़-ए के अगर।

कमसिनी की शादियों से है मुनासिब इजतिनाब[२४],
जिस कदर हैं नुक्स इसमें मुझसे सुनिएगा जनाब।
हालते तालीम हो जाती है लड़कों की खराब,
देखते मुतलक[२५] नहीं रुग़बत से तालीमी किताब।
जिस्म को कमज़ोर करती हैं, ऐसी शादियाँ,
होती है औलाद भी पैदा नहीफो-नातवाँ[२६]।

ख़्वाबे-ग़फ़लत से उठो ऐ हमदमो हुशियार हो,
है नहीं अब वक्त सोने का ज़रा बेदार हो !
कमसिनी के ब्याह से गर आपको इन्कार हो,
तो तुम्हारे देश का मादूम[२७] यह इदबार[२८] हो।
यह जहालत हिन्द से ऐ 'राम' उस दम दूर हो,
नज़्म यह मेरा जो अहले हिन्द को मन्ज़ूर हो !

१२—इच्छा, १३—पाठ, १४—लज्जा, १५—दुर्बलता, १६—शोभा, १७—दृष्टि, १८—बेचैन, १९—पौदा, २०—बीज, २१—कली, २२—खिलना, २३—आस्तीन का साँप, २४—परहेज़, २५—बिल्कुल, २६—कमज़ोर, २७—दूर, २८—दुर्भाग्य।



दासू भगत

[श्री० ललितकिशोरसिंह जी, एम० एस्-सी०]

मुनियाँ जात की भङ्गिन थी। पर इतना रूप लेकर वह भङ्गिन के घर कैसे पैदा हुई थी? भगवान की विचित्र लीला है! मुनियाँ जिधर निकल जाती, उधर एक तहलका सा मच जाता था। युवक मन्त्र मुग्ध से रह जाते। बड़े बूढ़े कहते, 'यह गोबर में पदुम होकर पैदा हुई है।'

वह जहाँ जाती, वहीं रस के समुद्र में लहरें आने लगतीं। उसके रूप के सलोनेपन से आँखों की प्यास बढ़ती; उसकी वाणी की मिठास से मन के पर चिपकते। बातों में कभी कोई उससे जीत न सका, पर किसी को कभी हारने का खेद भी न हुआ। उसकी चञ्चलता का कोई पीछा नहीं कर सकता। उसके परिहास पर हँस देने के सिवा दूसरा चारा नहीं। उससे एक बार दो-चार होते ही आत्म-विश्वास चला जाता, संयम पर भरोसा न रहता, हाथ-पाँव ढीले पड़ने लगते थे।

वासना की डोर में बँधे कितने ही उसके चारों ओर चक्कर लगाते, पर पास न आते थे। रसिक हाथ मल-मल कर रह जाते—उनके दिल की यह कसक न जाती कि 'हाय! मुनियाँ आज भङ्गिन न होती तो कैसा होता!'

मुनियाँ का पति दासू भी विलक्षणता से ख़ाली न था। धर्म की ओर उसका अजीब झुकाव था। अपनी बिरादरी में वह 'दासू भगत' के नाम से विख्यात था। वह गले में तुलसी की माला रखता और अभक्ष्य के पास न जाता था। सब से बड़ी बात यह थी कि वह नित्य ठाकुर जी की पूजा करता था। अपने घर ही में उसने ठाकुर जी की एक तस्वीर ला रक्खी थी। उसी के सामने वह नाचता, गाता, रोता, हँसता और कभी बेसुध होकर गिर पड़ता था।

नीच जाति के लोग उसका बड़ा सम्मान करते और कुछ-कुछ डरते भी थे। पर उच्च जाति वाले, चाहे ऊपर से जैसा बर्ताव करें, भीतर से उसके आचरण से जलते थे। कोई उसे ढोंगी कहता, कोई बदमाश। कोई उसे परले सिरे का ढीठ समझता और खीझता कि 'अब भले आदमियों मे वह ताब न रहा, नहीं तो एक ही दिन में दसुआ का पूजा-पाठ सब भूल जाय।'

ब्राह्मण-क्षत्रिय के गाँव में बस कर भी अब तक दासू भगत पर कोई विपत्ति न आई थी। इसका कारण मुनियाँ का प्रभाव था। एक दिन की बात है। गाँव में कहीं श्रीमद्भागवत की कथा हो रही थी। गाँव वालों का ठट्ठ जमा था। दासू भी एक किनारे दुबका हुआ बैठा था। एक राजपूत युवक दासू से झुँझला कर बोला—"दूर हट कर बैठो। क्यों लोगों के बीच में धँसे पड़ते हो?" दूर तो दासू पहले ही से था,

अब और भी सरक गया। दूसरे ही दिन मुनियाँ आँखे तरेर कर उन युवक महाशय से बोली—"क्यों बाबू! अब तो देखती हूँ कि हम लोगों को गाँव ही छोड़ना पड़ेगा।" यह ताना सुन युवक झेंप गया और बोला—"यह भी कोई बात है, भक्तिन भाभी? तू तो योंही ज़रा सी बात पर खिंच बैठती है।"

और एक दिन की बात है। दासू कुएँ पर पूजा के लिए जल भरने गया था। उसी समय एक ब्राह्मण युवक ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया। कई दिन बाद जब वह युवक मुनियाँ के साथ दो बातें करने के लालच में उसके पास आया, तो मुनियाँ ने उसे बुरी तरह झिड़क दिया। तेवर बदल कर बोली—"मैं तुम सरीखे गँवार छोकरों से बातें नहीं करती। जो साधु-सन्तों का मान नहीं करता, उसे मैं आदमी नहीं समझती।" उस दिन से ब्राह्मण-कुमार के होश ठिकाने आ गए। युवक-मण्डली पर मुनियाँ का यह प्रभाव बड़े-बूढ़ों को सदा खटकता था। पर युवकों को हाथ में रखने की क्षमता उनमें न थी, इसीसे विवश थे।

मुनियाँ दासू की सेवा बड़ी श्रद्धा से किया करती थी। विशेषतः दासू के पूजा-पाठ में वह कभी त्रुटि नहीं आने देती। नित्य दोनों समय पूजा के बर्तन माँज-धोकर ठीक रखती और आप भूखी रह जाय तो रह जाय, पर ठाकुर जी के राग-भोग में कमी नहीं होने देती। दासू भी दिन भर भजन-कीर्तन में मग्न रहता था। वह सचमुच ही भजनानन्द था। जैसे उसको संसार की कुछ चिन्ता न थी, वैसे ही मुनियाँ के आचरण से भी वह उदासीन था।

इस प्रकार मुनियाँ के दिन दासू भगत के साथ बड़े चैन से कटते थे।

२

मनोहर मिश्र बड़े ही सम्पन्न व्यक्ति थे। इस अञ्चल में इनकी जैसी धाक किसी की न थी। अपने गाँव के ये एकमात्र नेता थे। इसमें कभी किसी ने इनकी स्पर्धा न की। कोई करता कैसे? एक तो ब्राह्मण, दूसरे धनी। चाहे न्यायालय में हो या यज्ञालय में, मनोहर मिश्र ही सबसे आगे रहते थे। कहीं गाँव वालों की भिड़न्त होती तो इन्हीं का जयजयकार होता। कहीं धर्म की टाँग टूटती तो इन्हीं की दुहाई दी जाती। सार यह कि गाँव भर के लोक-परलोक का भार इन्हीं के माथे था। मिश्र जी भी इस भार को बड़ी सावधानी से ढोए जाते थे।

जो सब से अच्छी वस्तु हो वह मिश्र जी की भेंट! इसी नियम के अनुसार मुनियाँ मिश्र जी के यहाँ काम करती थी। इसमें किसी को आपत्ति न थी। मुनियाँ जैसी भक्तिन का निबाह किसी और के यहाँ हो भी नहीं सकता। ज्योंही मुनियाँ ब्याह कर दासू के घर आई, मिश्र जी के यहाँ उसकी रोज़ी लग गई।

दो-चार बार की देखा-देखी में ही मुनियाँ ने मिश्र जी का मन अपनी ओर खींच लिया। मिश्र जी ने सोचा कि मुनियाँ जैसी भक्तिन से कोई गन्दा काम लेना कुरुचि का परिचय देना है। फिर क्या था? मुनियाँ से केवल बाहर-बाहर की सफ़ाई का काम लिया जाने लगा। जैसे मुनियाँ के झाड़ू के कोमल स्पर्श से मिश्र जी का घर-द्वार हँस पड़ता था, वैसे ही उसके कटाक्षों और मृदु-मुस्कान के सरस स्पर्श से मिश्र जी का हृदय भी प्रफुल्ल हो उठता था।

इसका एक विशेष कारण था। कुसंयोग से मिश्र जी की धर्मपत्नी के स्वभाव में कुसंस्कार और कुरुचि का ही अंश अधिक था। और गृहस्वामिनी होने से उनका अभिमान भी इतना बढ़ गया था कि वे पग-पग पर मिश्र जी से उलझने लगी थीं। कोई सन्तान न होने से उनका स्वभाव और भी चिड़चिड़ा हो गया था। इससे मिश्र जी के पारिवारिक जीवन में सुख नाम-मात्र को भी न था। ऐसी अवस्था में मुनियाँ का हँसता चेहरा, मीठी बोली और मृदु स्वभाव मिश्र जी को एक नई दुनिया में खींच लाए। ऐसी आनन्द की सृष्टि उनकी अनुभूति और भावना के बाहर की वस्तु थी। इस नए लोक की वायु के स्पर्श से वे आपा भूल गए। पूर्व-संस्कार मिट गया, भविष्य आँखों से ओझल हो गया। उनका हृदय बड़े वेग से मुनियाँ की ओर बढ़ा।

मुनियाँ ऐसे अवसर को कब हाथ से निकलने देती? उसने मिश्र जी के बढ़ते हुए हृदय का ऐसा स्वागत किया कि उन्हें पागल बना दिया। यह नहीं कि मुनियाँ को धन का लोभ न था—उसे गहने-कपड़े का बड़ा चाव था, शृङ्गार से बड़ा प्रेम था। पर मिश्र जी का जो

उसने उत्साह बढ़ाया, उसका एकमात्र कारण धन ही न था। उसे अपने रूप का बड़ा गर्व था। वह उसे दिग्विजयी बनाना चाहती थी। शिकारी को जैसे शिकार मार कर उल्लास होता है, योद्धा को जैसे शत्रु को वश करने में उत्साह होता है, वैसे ही मुनियाँ को अपने रूप की सफलता पर उल्लास और उत्साह होता था। दूसरों का हृदय मथने मे उसे एक अपूर्व आनन्द मिलता। यह उसका स्वभाव सा हो गया था।

मुनियाँ के साथ रस-सम्पर्क होने पर भी मिश्र जी को सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान सदा बना रहता था। इसीसे अपने कृत्यों पर उन्होंने गहरा पर्दा डाल रक्खा था। इस आवरण के अन्धकार में धीरे-धीरे कहाँ तक आगे बढ़ गए थे, इसे मुनियाँ जितना जानती थी, उतना और कोई नहीं जानता था।

३

रात को बारह बज गए है। चारो ओर सन्नाटा छाया हुआ है। अन्धकार का अटल राज्य है। पर मनोहर मिश्र के कमरे मे रोशनी अब भी जल रही है। कमरे के बाहर चौकीदार नींद के मारे ऊँघ रहा है। भीतर एक पलँग पर मिश्र जी अस्त-व्यस्त पड़े हैं। बीच में एक मेज़ पर बोतल और ग्लास रक्खे हुए हैं। मेज़ के आसपास कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं। पलँग के सिरहाने एक तिपाई पर पानी की सुराही रक्खी हुई है।

मिश्र जी बड़े बेचैन से जान पड़ते है। पलँग से उठ कर कभी कुर्सी पर बैठते, कभी शराब ढाल कर पीते और आरामकुर्सी पर जा लेटते। ज़रा सी आहट पाते ही चौंक पड़ते और बड़ी आतुरता से द्वार की ओर निहारने लगते। फिर बड़बड़ाते हुए पलँग पर जा गिरते। पर चैन कहीं न मिलता।

जब बेचैनी बहुत बढ़ी, तो उन्होंने चौकीदार से धीरे से कहा—क्यों मोहनसिंह? अभी तक नहीं आई? तुमसे क्या कहा था?

"मुझसे तो कहा था कि तुम चलो, मै अभी आती हूँ। हुकुम हो तो फिर जाऊँ?"

"जाओ, पर ख़ूब होशियारी से जाना।"

इतना कह मिश्र जी कुर्सी पर आ बैठे। शान्त-भाव से थोड़ी देर तक आसरा देखा। जब कोई आता दिखाई न दिया तो कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और आप ही आप बोले—अब जान पड़ता है, नहीं आएगी। कैसा धोका दिया।

इतना कह मेज़ के पास गए और शराब ढाल-ढाल कर पीने लगे। जब हाथ काँपने लगे, पाँवों की ताकत जाती रही, तब मेज़ के पास से हटे। इरादा था कि पलँग पर जा लेटे। पर वहाँ तक पहुँचने के पहले ही क़ालीन पर लम्बे हो गए। कई बार उठने की चेष्टा की, पर अङ्ग-अङ्ग जवाब दे रहा था। निदान फ़र्श पर ही पड़े रहे।

मिश्र जी इसी अवस्था में थे कि कमरे का द्वार खुला और मुनियाँ भीतर आई। किवाड़ लगा कर आगे बढ़ी तो फ़र्श पर पड़े हुए मिश्र जी दिखाई दिए। वह मिश्र जी के पास गई तो देखा कि वे आँखे बन्द किए पड़े हैं। मुनियाँ के हाथ लगाते ही मिश्र जी चौक पड़े। आँखे खोली और घूर-घूर कर चारों ओर देखने लगे। अन्त में मुनियाँ के मुख पर उनकी दृष्टि स्थिर हो गई। थोड़ी देर एकटक निहारने के बाद वे एकाएक उसके गले से लिपट गए और लड़खड़ाती हुई ज़बान से बोले—आ गई......आ .... गई। अब तक . कहाँ थी...... मुनियाँ?

मुनियाँ कुछ कहा ही चाहती थी कि मिश्र जी अचेत हो गए। मुनियाँ झट उनके मुँह पर पानी के छींटे देने लगी। आँचल भिगो कर सर पोंछा। कुछ देर में मिश्र जी होश मे आ गए।

होश में आते ही उन्होंने मुनियाँ का हाथ पकड़ कर अपनी छाती पर रक्खा और प्रेम-भरी निगाह से उसे निहार कर धीरे-धीरे बोले—इतनी देर कैसे हो गई मुनियाँ? और तो कभी ऐसा नहीं होता था।

मुनियाँ ने मुस्कुरा कर मिश्र जी की ओर देखा और उनके कान के पास मुँह ले जाकर बोली—आज कई छोकरे मेरा पीछा कर रहे थे। इसी से देर हो गई थी।

मिश्र जी ने घबरा कर पूछा—फिर तुमने क्या किया?

"करती क्या? आपकी बदनामी के डर से मैं आना नहीं चाहती थी। पर आपका चौकीदार जो सर पर सवार था।"

मिश्र जी चुप हो गए। थोड़ी देर बाद मुनियाँ के गाल पर हलकी सी चपत मार कर बोले—हैं, मेरी बदनामी! इसकी तू परवा न कर। जात-परजात सब मेरी मुट्ठी में हैं। ओह! गला सूख रहा है मुनियाँ, जल्दी पिला।

"क्या पानी चाहिए?"

'नहीं'—बोतल की ओर इशारा करके—"वह"।

मुनियाँ पहले ज़रा ठिठकी, फिर ग्लास में थोड़ी सी शराब डाली और सुराही का पानी मिला कर ले आई। मिश्र जी उसे दो ही घूंट में साफ़ करके बोले- यह तो बड़ा फीका था। थोड़ा और ले आ। ज़रा गहरा चाहिए।

मुनियाँ ने ज़रा विचलित होकर कहा—अब मत पीजिए। फिर बेहोशी आ जायगी।

"अरी जल्दी क्यों नहीं देती! बिलकुल नशा उतार कर ही छोड़ेगी?"

इतना कहते हुए वे स्वयं उठने लगे। उनकी व्यग्रता देख मुनियाँ फिर ले आई। इस बार मात्रा अधिक थी। मिश्र जी का होश-हवास जाता रहा।

मुनियाँ ने मिश्र जी को जैसे-तैसे उठा कर बिस्तर पर लेटा दिया। घड़ी पर दृष्टि पड़ी तो देखा, तीन बज चुके हैं। मुनियाँ घबरा कर कमरे से बाहर हो गई। मोहनसिंह बाहर ख़र्राटे ले रहा था। मुनियाँ ने उसे जगाना अच्छा नहीं समझा, अकेली ही घर की ओर चल दी।

४

गाँव के कुछ गण्य-मान्य लोग मिश्र जी के बाहर के कमरे में उनसे मिलने को बैठे हैं। ग्यारह बज गए, पर अभी तक मिश्र जी पूजा पर से उठे नहीं। आज देह में कुछ दर्द-सा हो रहा था, जिससे बिस्तर छोड़ने में देर हो गई।

इस कमरे से लगी हुई ही पूजा की कोठरी है। इससे इन लोगों के आने की ख़बर मिश्र जी को भी हो गई। वे जैसे-तैसे पूजा समाप्त कर खड़ाऊँ खटखटाते हुए कमरे में आए और यथोचित शिष्टाचार के बाद उन लोगों के बीच जा बैठे।

उनमें से एक सज्जन की ओर मुँह फेर कर बड़ी नम्रता से मिश्र जी ने पूछा—क्यों कुञ्जबिहारी, इस समय कैसे पहुँचे? और देखता हूँ, गभू चाचा को भी साथ ले आए हो। बात क्या है?

कुञ्जबिहारी पाण्डे बड़ी गम्भीरता से बोले—मिश्र जी, यों तो बात कुछ नहीं है। पर सोच कर देखिए तो बड़ी गहरी बात है।

"वह बात है कौन सी?"

"मिश्र जी, बात यह है कि हम लोगों के देखते-देखते दुनिया का रङ्ग बदला जा रहा है। देखता हूँ, अब इस गाँव में भले आदमियों की इज़्ज़त बचने का कोई भरोसा नहीं रहा।"

मिश्र जी ऊब कर बोले—भई, असल बात क्यों नहीं बताते? इन सब बाहरी बातों से क्या लाभ?

"हाल यह है कि इस गाँव में जो दासू भङ्गी है, उसका साहस दिन पर दिन बढ़ता जाता है। लोग जितना उससे परहेज़ करते हैं, वह उतना ही आसमान पर चढ़ता जाता है। आए-दिन हम लोग कितनी ही बातों को तरह देते गए। इसका नतीजा यह हुआ कि कल दोपहर को गाँव के बाहर, तालाब के किनारे जो ठाकुर जी का मन्दिर है, उसमें वह घुस गया। जब पुजारी ने छेड़ा तो उनसे उलझ पड़ा।"

मिश्र जी गम्भीर होकर बोले—यह कल दोपहर की बात है?

प्रभुदत्त तिवारी ने जवाब दिया—हाँ, भाई! कल दोपहर की ही बात है। धर्म की बात में यह बढ़ाबढ़ी मुझे अच्छी नहीं लगती। (आँखों में आँसू भर कर) आज मेरे भैया होते तो भला यह कभी होने पाता। साले की देह का चमड़ा उधेड़ डालते और कहीं कुछ न होता। थाना-पुलिस उनकी मुट्ठी में रहती थी। वे दिन ही कुछ और थे। क्या करो, तुम लोग भी दीन-दुनिया देख कर चलते हो। पर बाबू, यह तो मैं कहे देता हूँ कि इतने ढीलेपन से साहिबी नहीं चलती। हरगिज़ नहीं।

मिश्र जी ने मुस्कुरा कर कहा—आपका कहना ठीक है, चाचा। पर जब तक सच्चा-सच्चा हाल न मिल जाय, तब तक कुछ कर बैठना क्या उचित होगा?

यह सुन कर एक सज्जन जो मुँह फुलाए, आँखें लाल किए कुछ पीछे बैठे थे, तिनक कर बोल उठे—तो क्या हम लोग सब के सब झूठे हैं? एक दसुआ ही सच्चा पैदा हुआ है?

"दसुआ की यहाँ कौन सी बात है? बिना पानी के मोज़े क्यों उतारते हो? मेरे कहने का मतलब यह है कि तुम लोगों में से किसी ने आँख से तो देखा नहीं, जिसने देखा है, उसे बुलाया जायगा। दासू को भी मेरा आदमी पकड़ लाएगा। फिर उसके सामने हायल-कायल होगा। क़सूर साबित होने पर सज़ा दी जायगी। वह पाँच से बाहर तो हो नहीं सकता!"

इतने में मिट्ठनसिंह एक ओर से बोल उठे—मिश्र जी, आप बुरा न मानें। मेरा तो बाहर-भीतर एक है। मैं बना कर बातें करना नहीं जानता। जब से मुनियाँ आपके यहाँ काम करने लगी है, तभी से दासू का मन बढ़ गया है। अब तो वह समझता है कि गाँव का मालिक मैं ही हूँ। मुझे तो यह मामला-मुकद्दमा पसन्द नहीं। आप पाँच पञ्च मुझे हुकुम दीजिए, अभी मैं अकेला जाकर उस साले की मरम्मत करके छठी का दूध याद करा दूँ।

"भाई, देखो ग़ुस्से से काम बिगड़ता है। फिर पीछे पछताना पड़ता है। जो कुछ किया जाय, समझ-बूझ कर किया जाय। भला दासू कहाँ का रुस्तम है कि गाँव भर से हैकड़ी करके निकल जायगा? मुनियाँ मेरे यहाँ काम करती है, तो मजूरी पाती है। इसका एहसान क्या? वहाँ कोई सिंहासन पर तो उसे बैठाता नहीं। भङ्गिन है, भङ्गिन का काम करती है। दासू को इसका घमण्ड हो तो देख लेना, वह भी चूर हो जायगा। पर सभी काम सहूलियत से होना चाहिए।"

मिश्र जी की बात पर कुञ्जबिहारी मिट्ठनसिंह की ओर देख कर बोले—अजी, कोरी बकवाद से क्या लाभ। मिश्र जी, आप ही बताइए न कि अब क्या हो?

मिश्र जी ने शान्त भाव से कहा—मेरी तो राय यह है कि कल आप लोग फिर इकट्ठे हों। दासू को भी बुलाया जाय। मन्दिर के पुजारी भी आएँ, जिनकी आँख देखी बात है। फिर जैसा होगा, विचार किया जायगा।

मिश्र जी का रुख़ देख, कुञ्जबिहारी ने कहा—मिश्र जी का कहना ठीक ही है। ऐसी हड़बड़ी की कौन सी बात है। कल ही सही।

सब के सब उठना ही चाहते थे कि मिट्ठनसिंह ने कहा—यह भी ठीक हो जाय कि मन्दिर का क्या होगा। मैं लटपट नहीं जानता।

मिश्र जी थोड़ा ठहर कर प्रभुदत्त जी की ओर इशारा करके बोले—यह तो प्रभू चाचा ही बता सकते हैं कि ऐसी हालत में क्या होना चाहिए।

प्रभुदत्त जी ने गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा—"भाई, हम लोगों की चलती में तो कभी ऐसा हुआ नहीं था। पर जैसा सुना है उससे तो यही उचित जान पड़ता है कि जब तक फिर से प्राण-प्रतिष्ठा न हो ले, तब तक कोई मन्दिर में प्रवेश न करे। द्वार पर ताला लगा दिया जाय। पूजा-पाठ, राग-भोग बन्द रहे। अच्छे-अच्छे पण्डितों से स्थापना का यज्ञ कराया जाय। आसपास के दो-तीन गाँव के ब्राह्मणों की भोजन-प्रतिष्ठा हो। क्यों, यह ठीक है न कुञ्जो?" कुञ्जबिहारी ने बड़ी ही निरुत्सुकता से कहा—"भला आपकी बात और ठीक न हो?"

प्रभुदत्त तिवारी की बातों से मिश्र जी कुछ चिन्ता में पड़ गए। कुछ सोच कर उन्होंने कहा—अच्छा जैसा प्रभू चाचा कहते हैं, वैसा ही होगा। पर अभी तो मन्दिर बन्द करवा देना चाहिए।

"यह तो मैं आज ही शाम को करा दूँगा।"—इतना कह कर कुञ्जबिहारी उठ खड़े हुए। उनको उठते देख एक-एक कर सब उठ गए और सामान्य शिष्टाचार के बाद वहाँ से बिदा हुए।

जब वे सब सदर सड़क पर आए तो आपस में तर्क-वितर्क होने लगा। एक ने कहा—भई, यह भी एक ही रही! जो बात कहने की थी, वह किसी के मुँह से निकली ही नहीं।

मिट्ठनसिंह ने ग़ुस्से की आवाज़ में कहा—मैंने बात छेड़ी थी। पर कुञ्जबिहारी बीच ही में कूद पड़े। मुँह की बात मुँह ही में रह गई। भला मैं क्या करता?

कुञ्जबिहारी ने झल्ला कर कहा—मुझे क्यों झूठ-मूठ बदनाम करते हो? बड़े सिंहरास के हो तो जाकर कह क्यों नहीं आते? चलो, मैं चलने को तैयार हूँ।

यह कह उन्होंने मिट्ठनसिंह का हाथ पकड़ा। मिट्ठनसिंह ने हाथ झिटक कर कहा—"सिंहरास नहीं तो क्या मैं भी किसी के पाँवों में तेल लगाने जाता हूँ? आपही जैसे ब्राह्मणों ने तो धर्म का सत्यानाश किया।" कुञ्जबिहारी कड़क कर बोले—"ख़बरदार! मुँह सँभाल कर बोलो, नहीं तो जीभ पकड़ कर खींच लूँगा।" "अरे!

इतना साहस? अच्छा तो तुम मेरी जीभ खींच ही लो।"—यह कह मिट्ठनसिंह डण्डा सँभाल पैतरा बदलने लगा। बात बढ़ चली। मारपीट की नौबत आ गई। प्रभुदत्त मामला बिगड़ता देख बीच में आ खड़े हुए और बड़ी कठिनाई से दोनों को शान्त किया।

५

"नहीं, मैं यह अन्याय नहीं सह सकती।"

"मैं कहता हूँ कि अन्याय नहीं होगा। तू क्यों घबराती है?"

"मैं घबराती हूँ, इससे कि सारा गाँव हमारी जान का गाहक हो रहा है।"

"मेरे रहते भला कुछ हो सकता है?"

"आप लोग सब के सब एक ही हैं।"

"तो क्या तू मुझ पर भी विश्वास नहीं करती?"

"घर के भीतर मुनियाँ को छाती से लगाना एक बात है और भरी सभा में दासू का पच्छ लेना दूसरी बात।"

"चतुराई से दोनों किया जा सकता है।"

"चतुराई तो तब चले, जब बात छिपी हो। सारे गाँव में तो ढिंढोरा पिट गया है।"

"मैं तो ऐसा नहीं समझता।"

"आपके नहीं समझने से क्या होता है? आपको पता है कि कल मुझे यहाँ आने में देर क्यों हुई थी?"

"तूने कुछ बताया तो था सही।"

"वह बात झूठी थी। असल बात यह है कि कल मन्दिर की बात लेकर गाँव में जाने क्या-क्या चक्र चलता रहा। रात को कुञ्जो महाराज, मिट्ठनसिंह और कई लोगों के साथ भगत के पास आकर उसे धमकाने लगे। बोले कि 'कुसल चाहो तो कल लड़के ही मुनियाँ के साथ गाँव छोड़ कर कहीं चले जाओ, यही मालकिन का हुकुम है।' मैं यह पूछने कल आई थी कि मालिक का क्या हुकुम है? पर आप तो कल बेहोस पड़े थे। अब आज यह साफ-साफ बता दीजिए।"

सारा हाल सुन मिश्र जी चिन्ताग्रस्त हो गए। कुछ देर बाद वे आप ही आप बोले—मामला यहाँ तक बढ़ गया!

मुनियाँ ने झुँझला कर कहा—मामला बढ़ने का मुझे सोच नहीं। आप मुँह खोल कर कह दीजिए, मैं कल ही यहाँ से विदा हो जाऊँ।

मिश्र जी सूखे हुए गले से बोले—तू कहाँ जायगी मुनियाँ?

"जिधर पाँव उठेगा, चल दूँगी।"

"नहीं, ऐसा नहीं होने पाएगा, मुनियाँ। तुझे यहीं रहना होगा। तेरा कोई कुछ नहीं कर सकता।"—इतना कह उन्होंने मुनियाँ को खींच कर छाती से लगा लिया।

मिश्र जी की गोद में पड़ी-पड़ी मुनियाँ ने जाने कितने आँसू बहाए। मिश्र जी ने कितने ही वादे किए। उसे बार-बार दिलासा दिया। उसके आँसू पोंछे। घण्टों बाद मुनियाँ शान्त हुई। मिश्र जी ने शराब के प्याले में इहलोक-परलोक की चिन्ता डुबा दी।

❀ ❀ ❀

जिस समय यहाँ यह लीला हो रही थी, उसी समय इसी महल के किसी दूसरे खण्ड में दूसरा ही नाटक रचा जा रहा था। मिश्र जी की धर्मपत्नी का कमरा भीतर से बन्द था। अन्दर एक तो मिश्रानी जी थीं, दूसरे थे कुञ्जबिहारी पाण्डे। इन दोनों के सम्बन्ध के इतिहास का अन्वेषण व्यर्थ है। पर इस समय ये दोनों किसी विशेष कुचक्र की चिन्ता में इकट्ठे हुए थे।

मिश्रानी जी ने कुञ्जबिहारी के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—नहीं, कुञ्जबिहारी, मेरी बात मानो। इस अवसर को हाथ से जाने मत दो।

"मुझे तो इस काम का होना कठिन जान पड़ता है।"

"कठिन-वठिन कुछ नहीं है। सच तो यह है कि तुम कुछ करना नहीं चाहते।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं! भला आपकी बात मैं उठा सकता हूँ?"

"नहीं जी, तुम्हें डर होता है कि मुनियाँ के आँखों से ओझल होते ही मिश्र जी का झुकाव मेरी ओर होगा। और तब तुम्हारा × × ×"

कुञ्जबिहारी झेंप कर बीच ही में बोल उठे—ऐसी बातों से आप जान-बूझ कर मेरा दिल दुखाती हैं?

कुञ्जबिहारी को झेंपते देख मिश्रानी जी कुछ सीधी पड़ गईं। प्रेम-भाव से कुञ्जबिहारी का हाथ अपने हाथों

में लेकर बोलीं—तुम विश्वास मानो, कुञ्जबिहारी, अब मिश्र जी की निगाह मेरी ओर नहीं फिर सकती। सच तो यह है कि मुनियाँ के दूर होते ही मुझसे उनका दिल और भी फट जायगा। मेरा भी मतलब यह नहीं कि मिश्र जी का नेह पाकर मैं फिर से सुहागिन बनूँ। वे दिन दूर निकल गए। मैं तो मुनियाँ को अच्छी तरह कुचलना चाहती हूँ। उसे देखते ही देह में आग फुँक जाती है।

"तो आप जो कहें, मैं करने को तैयार हूँ। न करूँ तो बुरा-भला कहिए।"

"काम तो बहुत सीधा है। गाँव के बड़े-बूढ़े तो उसके नाम से खार खाते ही हैं। एक मिश्र जी ही उसके सहायक हैं, जो किसी तरह इस आँधी को दबाने का यत्न करेंगे। कहीं वे हठ कर बैठे तो उनका सामना करने का साहस किसी को न होगा। इसलिए ऐसा करना चाहिए कि वे किसी तरह रास्ते पर आ जायँ। उन्हें हठ का अवसर न मिले। यह काम तुम जैसे घाघ से ही हो सकता है।"

कुञ्जबिहारी ने ज़रा सोच कर कहा—अच्छा, यत्न करके देखूँगा।

मिश्रानी जी ने मुस्करा कर कहा—जाओ। मन लगाओगे तो पौबारह है।

कुञ्जबिहारी ने जाते-जाते मुस्करा कर जवाब दिया—आपके इशारे पर भला मैं क्या नहीं कर सकता?

६

मनोहर मिश्र के बँगले पर भीड़ लगी हुई है। गाँव भर के लोग, क्या जवान, क्या बुड्ढे, बड़ी उत्सुकता से बैठे हैं—कुछ शतरञ्जी पर, कुछ ओसारे की सीढ़ी पर और कुछ नीचे मैदान में। मनोहर मिश्र बीच में गद्दी पर विराज रहे हैं। उनके चेहरे का रङ्ग रह-रह कर बदल रहा है। कभी चिन्ता, कभी क्षोभ, कभी विरक्ति के पर्दे पलट रहे हैं। उनके आस-पास गण्यमान्य लोग—कोई आसन मारे, कोई उकड़ूँ, कोई हथेली पर सिर टेके चिन्ताशील सा मुँह बनाए बैठे हैं।

इधर-उधर देख, मिश्र जी बोले—प्रभू चाचा नहीं आए?

प्रभुदत्त तिवारी एक किनारे दीवार के सहारे बैठे पकी मूँछों पर ताव दे रहे थे। मिश्र जी को पूछते देख, वहीं से बोले—मैं यहाँ बैठा हूँ भैया।

"आप यहाँ आ जाइए। एक किनारे क्यों बैठे हैं?"

"मैं बड़े आराम से हूँ। यहीं से सब देखता-सुनता जाऊँगा। अब काम भी शुरू होना चाहिए। शुभस्य शीघ्रम्!"

मिश्र जी ने कुञ्जबिहारी से कहा—हाँ भाई, अब देर क्यों हो रही है? पुजारी को बुलाओ न। पहले उन्हीं से पूछा जाय।

इतने में "पुजारी जी," "पुजारी जी," "कहाँ हैं पुजारी जी" का शोर मच गया। और एक दुबला-पतला सा आदमी, नङ्गे बदन, कन्धे पर छोटा सा अँगोछा डाले, गले में मैली जनेऊ लटकाए आ खड़ा हुआ।

मिश्र जी ने पूछा—आप इस मामले में क्या जानते हैं?

पुजारी जी सहम कर बोले—मैं तो इतना ही जानता हूँ कि परसों दोपहर को मन्दिर की साँकल चढ़ा कर मैं थोड़ी देर के लिए बाहर चला गया था। मैं जब लौट कर आया तो देखता हूँ कि मन्दिर का द्वार खुला हुआ है और दासू ठाकुर जी का चरणामृत ले रहा है। मैंने पूछा कि तुम क्यों मन्दिर के भीतर घुसे, तो वह मुझसे झगड़ा करने लगा।

इतना कह कर पुजारी चुप हो गया। उसे चुप होते देख मिट्ठनसिंह ने कहा—दासू से क्या-क्या बातें हुईं, सो साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहते? यहाँ क्या कोई बाघ बैठा है, जो तुम्हें खा जायगा? अजीब आदमी हो। आधी बात कहते हो, आधी मुँह में रख लेते हो।

पुजारी धीरे से बोला—दासू कहने लगा कि 'मैं किसी साले की परवा नहीं करता।' जब मैंने कहा कि मैं अभी मिश्र जी के यहाँ जाता हूँ, तो वह मुझे मारने दौड़ा और बोला कि जाओ अपने बाप के पास। देखें वे मेरा क्या कर लेते हैं।

"मैं तो पहले ही कहता था कि इसका साहस बढ़ रहा है।" "मैं पुजारी होता तो मज़ा चखा देता।" "गाँव से रोब उठ जाने पर यही सब झेलना पड़ता है।" ऐसी ही बातें चारों ओर सुनाई पड़ने लगीं।

पुजारी के बैठने के बाद मिश्र जी ने कहा—"अब दासू से पूछना चाहिए। वह इसका क्या जवाब देता है?" दासू को पुकार हुई। वह सामने आ खड़ा हुआ। उसका मुँह सूखा हुआ था। कुञ्जविहारी पाण्डे के पूछने पर उसकी आँखें डबडबा आईं। वह हाथ जोड़ कर बोला—"सरकार, नीचे पञ्च ऊपर परमेसुर! सरकार की गद्दी के सामने, इस पञ्चवेदी में झूठ बोल कर मेरी क्या गत होगी? मेरे मुँह से एक अच्छर भी झूठ निकले तो मैं कोढ़ी होकर मरूँ। मैं मन्दिर के भीतर गया हूँ ठीक, पर चरनामृत मैंने नहीं छुआ। दोहाई ठाकुर जी की!"

"तू मन्दिर में क्यों घुसा था?"

"मैं सच कहता हूँ, सरकार। उस दिन मैं अपनी बहिन की ससुराल से आ रहा था। मन्दिर के पास पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गया। मेरी बहिन ने थोड़ा कलेवा साथ कर दिया था। मैंने सोचा कि घर में तो सब खा-पी चुके होंगे, सो यहीं तालाब मे नहा-धोकर कुछ पानी पी लूँ। जब मैं नहा-धो चुका तो याद पड़ी कि मैंने ठाकुर जी की सेवा नहीं की। बहुत दिनों से मेरा नेम हो गया है कि मैं नित्त ठाकुर जी की सेवा करके अन्न-जल से मिलता हूँ। मन्दिर पर आँख पड़ी तो देखा कि दोनों पट्ट खुला हुआ है। सरकार, मन्दिर खुला देख कर मैं ठाकुर जी की सेवा करने का लालच दबा न सका।"

इतना कहते-कहते दासू का गला भर आया। भर्राई हुई आवाज़ में उसने फिर कहा—मैं दौड़ कर फुलवारी से फूल तोड़ लाया। मन्दिर के भीतर जा अलग से ही ठाकुर जी के चरन पर फूल चढ़ा दिया। जब मैं बाहर आ रहा था तब पुजारी जी से भेंट हुई।

"अच्छा, तो फिर पुजारी जी से तू उलझ क्यों पड़ा?"

"मालिक, पुजारी जी ब्राह्मण-देवता हैं। मैं उन्हें झूठा कैसे बनाऊँ। पर मैंने अपने जानते कोई ऐसी बात नहीं कही। मैंने इतना ही कहा कि पुजारी जी, अब तो मुझसे कसूर हो गया। आप इसके लिए चाहे जो सजा दें। आपकी जूती मेरे सिर पर है। इस पर पुजारी जी गाली-गलौज करने लगे। मेरी जीभ पर एक भी खोटी बात आई हो तो मेरे मुँह में कीड़े पड़ जायँ।"

दासू की बात पूरी होने पर उसे दूर हटा दिया गया और पञ्चों के बीच तर्क-वितर्क होने लगा। पञ्चों मे से कोई भी दासू पर दया दिखाने को तैयार न था। मिश्र जी उभय-सङ्कट में पड़े हुए थे। एक ओर तो दासू को बचाना, दूसरी ओर स्वयं अपयश से बचना। वे अन्य पञ्चों से किसी तरह भी सहमत न हो सके। अन्त में कुञ्जबिहारी पाण्डे ने बीड़ा उठाया। मिश्र जी को एकान्त में ले जाकर समझाया। इधर पञ्चों को भी आगा पीछा सुझाया। फल यह हुआ कि दासू के दण्ड के विषय में एकमत हो गया।

दासू की फिर पुकार हुई। कुञ्जबिहारी पाण्डे ने बड़ी गम्भीरता से दासू को सम्बोधन करके कहा—दासू भगत, देखो तुम्हारा क़सूर बहुत बड़ा है। इसमें क्या दण्ड नहीं हो सकता है? मान लिया तुम्हारी ही बात ठीक है। तुमने गाली गलौज नहीं की, पुजारी का अपमान नहीं किया। पर भले आदमियों के गाँव में ठाकुर जी के मन्दिर में घुस जाना! कितने बड़े साहस का काम है!! जो हो, पञ्चों की राय है कि फिर से मन्दिर का यज्ञ करने में जितना ख़र्च बैठे, वह तुम्हे सहना पड़ेगा। दूसरे, इस यज्ञ में जो ब्राह्मण-क्षत्रिय पधारेंगे, उनका जूता सिर पर लेकर सारे गाँव की परिक्रमा करनी होगी। तीसरे, अपने यहाँ से ठाकुर जी की मूर्त्ति-ऊर्त्ति जो कुछ भी हो, हटाना पड़ेगा। इस गाँव में बसना हो तो भङ्गी का जो कर्म है, वही करते हुए बसो, नहीं तो गाँव छोड़ कर चले जाओ।

यह दण्ड-विधान सुन कर दासू को काठ मार गया! उसे विश्वास हो गया कि उसका घर-द्वार, जमा-पूँजी कुछ भी शेष न रहेगा। साथ-साथ अपमान भी सहना पड़ेगा। पर सब से अधिक चिन्ता और क्षोभ उसे इस बात का था कि अब भगवान के भजन में भी बाधा पड़ने की नौबत आ गई।

वह अवाक् बैठा धरती की ओर एकटक निहार रहा था। इतने में मुनियाँ पाए की आड़ मे आ खड़ी हुई, और वहीं से बोली—मै यह जानना चाहती हूँ कि क्या मालिक का भी यही हुकुम है?

मिट्ठनसिंह ने क्रोध के साथ जवाब दिया—हाँ, हाँ। यही हुकुम नहीं, तो क्या दूसरा हुकुम होगा?

"मै उन्हीं के मुँह से सुनना चाहती हूँ।"

एक किनारे से किसी की आवाज़ आई—"अरे यह तो बड़े रोब में बोल रही है !" किसी ने कहा—"मालिक पर हुकुम चलाने आई है ।"

मामला बढ़ता देख मिश्र जी बड़ी रुखाई से बोले—मेरा भी यही हुकुम है। मैं क्या पञ्च से बाहर हूँ।

मिश्र जी के मुँह से बात निकलते ही मुनियाँ की आँखें लाल हो उठीं, भौं पर बल पड़ गए, सर पर भूत सवार हो गया। उसने तीखी आवाज़ से कहा—मैं इस पञ्चवेदी में एक ही बात का जवाब चाहती हूँ। क्या भङ्गी अछूत होता है और भङ्गिन बाभनी होती है? भङ्गी से तो ठाकुर जी तक छू न जायँ और भङ्गिन के साथ होठ में होठ मिलाने पर भी जात न जाय ?

मुनियाँ का इतना कहना था कि सारी सभा में सनसनी फैल गई। कुछ नवयुवकों के बीच इशारेबाज़ी भी होने लगी; कुछ-कुछ दबी हुई हँसी की भी झलक दीख पड़ी। पर मिश्र जी के आसपास बैठे हुए लोगों में खलबली मच गई। किसी ने कहा—"इसकी ढिठाई तो देखो!" किसी ने कहा—"यह तो नङ्गी सड़क पर नाचने वाली है!" कुञ्जबिहारी पाण्डे ने तेज़ होकर दासू से कहा—"देखो दासू, तुम अपनी जोड़ू को सँभालो। नहीं तो अनर्थ हो जायगा।" दासू चौंक पड़ा—जैसे सोए से उठा हो। उसने बड़े ही कोमल स्वर में मुनियाँ से कहा—"तू घर चली जा। यहाँ तेरा क्या काम? जो कुछ होगा, मैं भुगतने को तैयार हूँ।"

"होगा क्या? कोई दुर्गति बाक़ी न रहेगी और गाँव भी छोड़ना पड़ेगा। पर सबका न्याव करने वाला ऊपर बैठा है। वह सब कुछ देखता-सुनता है। हमें जो चाहे सता ले, पर उसे कोई धोका नहीं दे सकता। मैं यही सबको बता देना चाहती हूँ।"

मुनियाँ का यह ताव भला वहाँ कौन सहता? कोई लट्ठ लेकर दौड़ा, किसी ने जूता फेंका, किसी ने गालियों की झड़ी बाँध दी। बात की बात में हङ्गामा मच गया। बड़ी-बड़ी कठिनाई से मिश्र जी ने लोगों को शान्त किया। इस काम में कुञ्जबिहारी ने उनकी बड़ी सहायता की। मिश्र जी ने अपने आदमी के साथ दासू और मुनियाँ को उनके घर पहुँचवा दिया।

सभा भङ्ग होने पर जब मिश्र जी अपने सूने कमरे में आए, तो उनको इस पार्थिव-जीवन की शून्यता प्रत्यक्ष हो उठी। उन्होंने एक बार अपने अतीत जीवन पर दृष्टि डाली। एक बार मुनियाँ की भर्त्सना पर ध्यान दिया; एक बार अपने और अपने समाज के दम्भ पर घृणा की। अन्त में अचेत होकर बिस्तर पर आ गिरे।

७

"अब इस गाँव की मोह-ममता छोड़ो।"

"कैसे छोड़ूँ? छूटती नहीं।"

"तो यहाँ क्या लेकर रहोगे? घर द्वार चला ही गया। तुम्हारे ठाकुर जी अपना बचाव कर ही नहीं सकते, हमारा-तुम्हारा क्या करेंगे?"

दासू की आँखों में आँसू छलछला आए।

"यह मेरी जनम-भूम है, मुनियाँ! कितनी साध थी कि जहाँ जनमा हूँ, अन्तकाल वहीं की मिट्टी में मिलूँगा।"

"पर तुम्हारे मिलने से यहाँ की मिट्टी क्या भले लोगों के काम की रहेगी?"

"तू ठीक कहती है, मुनियाँ! पर कहाँ जाकर सुख मिलेगा?"

"वहाँ चलो, जहाँ बाभन-छत्री नाम के भले लोग न हों। चलो, क्रिस्तान हो जायँ, मुसलमान हो जायँ।"

"ऐसी बात जीभ पर मत ला, मुनियाँ! भगवान तेरा भला करें। तू तो मुझे मेरे ठाकुर जी से भी जुदा करना चाहती है।"

"वही ठाकुर जी न, जो भङ्गी के फूल चढ़ाने से कूड़े की तरह फेंक दिए जाते हैं?"

"वह तो बाभन-छत्रियों के ठाकुर जी हैं। (छाती पर हाथ रख कर) मेरे ठाकुर जी तो यहाँ हैं, यहाँ। तुझे छाती चीर कर कैसे दिखाऊँ, मुनियाँ?"

मुनियाँ दासू की बातों पर रो पड़ी। रोते ही रोते उसने कहा—तो बताते क्यों नहीं कि तुम्हें कहाँ ले चलूँ? तुम्हें कहाँ चल कर सुख मिलेगा?

"अभी तो यहाँ से बहिन के यहाँ चलो।"

"और वहाँ से भी निकलना पड़े तो?"

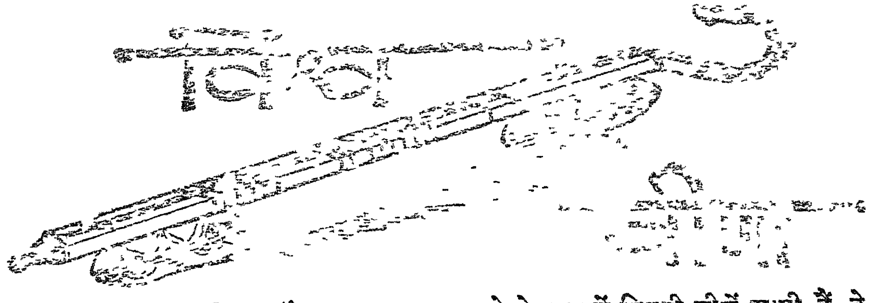
"तो किसी तीसरी जगह।"

(शेष मैटर ५४८ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)



भारतीय नारी का बोझ

'एक व्याधि ते नर मरहिं, ये असाध्य बहु व्याधि !!'



अमेरिका की स्त्रियाँ

अब तक अधिकांश पुरुषों की सम्मति यह सुनने में आती है कि स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र घर के भीतर है। हमारे देश में तो अधिकांश पुरुष स्त्रियों द्वारा स्वतन्त्र व्यवसाय या नौकरी किए जाने की कल्पना भी नहीं कर सकते और जो स्त्रियाँ ऐसा करती हैं, उनको नीची निगाह से देखा जाता है। पर समय का प्रवाह इन बातों की परवाह नहीं करता और स्त्रियाँ बराबर उन क्षेत्रों में आगे बढ़ती जाती हैं, जो कुछ समय पहले तक पुरुषों की ही मिलकियत समझे जाते थे। अमेरिका की स्त्रियों ने इस सम्बन्ध में बड़ी उन्नति की है। वहाँ के उद्योग-धन्धों में स्त्रियों की संख्या किस तेज़ी से बढ़ रही है, इसका वर्णन करते हुए अमेरिकन लेबर डिपार्टमेण्ट के 'बुलेटिन्स' में कहा गया है :—

अगर तीस-चालीस वर्ष पहले के लोग, जिनका हार्दिक विश्वास था कि सार्वजनिक उद्योग-धन्धों में स्त्रियों का भाग लेना अनुचित और हानिकारक है, वर्तमान समय में न्यूयार्क रियासत के विविध प्रकार के कारबारों में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या सुन लें, तो सम्भवतः बेहोश होकर मर जायँ। यहाँ पर लाखों स्त्रियाँ हर तरह के पेशों और कारबार में लगी हुई हैं। वे मछली पकड़ने, मोटर चलाने, पानी का नल लगाने, बिजली का काम करने, मकान बनाने, पशु चराने से लेकर क़ब्रों के पत्थर और लेख खोदने तक का काम करती हैं।

पुराने ज़माने में, जब कि फ़ैक्टरी, कारख़ाने और दफ़्तर नहीं थे, स्त्रियाँ ही घरों के भीतर संसार के उपयोग की समस्त वस्तुएँ तैयार करती थीं। खाने और पहनने के काम में जितनी चीज़ें आती हैं, वे सब स्त्रियों की सहायता से ही तैयार होती थीं। जब कारख़ानों की प्रथा का उदय हुआ और मैशीनों का आविष्कार होने लगा, तो ये काम घरों से हटा कर थोड़े से मज़दूरों द्वारा एक छोटे से कारख़ाने में होने लगे। जब उद्योग-धन्धों का अच्छी तरह विकास हो गया और घरों में होने वाला तमाम काम मैशीनों द्वारा फ़ैक्टरियों में होने लगा, तो स्त्रियाँ भी अपना घर छोड़ कर वहाँ जा पहुँची।

जैसे-जैसे उद्योग धन्धों की वृद्धि हो रही है, वैसे-वैसे ही काम करने वाली स्त्रियों की माँग बढ़ती जाती है। जिस कार्य के लिए आज शारीरिक शक्ति और दीर्घ काल तक अभ्यास करने की आवश्यकता है, वही काम कल १६ वर्ष की लड़की के करने लायक़ बन सकता है। नई मैशीनों के कारण स्त्रियों को नौकर रखना आसान हो गया है, और २५ वर्ष के भीतर न्यूयार्क रियासत में नौकरी करने वाली स्त्रियों की संख्या तिगुनी हो गई है। आजकल इस एक रियासत में दस लाख से अधिक स्त्रियाँ वेतन पर काम कर रही हैं। कुछ समय पहिले तक स्त्रियाँ केवल ऐसे कामों के लिए रक्खी जाती थीं, जिनमें कुशलता की आवश्यकता नहीं पड़ती। अब भी अधिकांश स्त्रियाँ उसी प्रकार का काम करती हैं, पर हज़ारों ऐसी भी हैं, जो फ़र्नीचर, फ़ौलाद, लोहा, मिट्टी, पत्थर, काँच आदि के कारख़ानों में कुशल कारीगरों की हैसियत से काम कर रही हैं। यद्यपि साहित्य, सङ्गीत और चित्रकारी आदि के क्षेत्रों में स्त्रियाँ बहुत दिनों से काम रही हैं। न्यूयार्क रियासत में ऐसी स्त्रियों की संख्या सुन कर लोगों को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा! वहाँ की स्त्रियों में से आजकल ३,००० चित्रकार, १,००० सम्पादक और रिपोर्टर, १,००० चिकित्सक, और १०० पादरी हैं। महिला वकीलों की संख्या सन् १९१० में जितनी थी, सन् १९२० में उससे दुगनी हो गई। लेन-देन का

कारबार अब तक स्त्रियों की शक्ति से बाहर समझा जाता था, पर न्यूयार्क मे आजकल ४०० महिलाएँ बैङ्कर और ६०० जायदादों की एजेंट हैं। इसके सिवा बहुसंख्यक महिलाएँ इञ्जीनियर, रासायनिक, और नक़्शानवीस आदि का कार्य करती हैं। सच तो यह है कि आजकल जिन स्त्रियों ने कॉलेज अथवा स्कूल की डिग्री प्राप्त कर ली है, वे ३०-४० साल पहले की स्त्रियों के समान परतन्त्रता और आलस्य की ज़िन्दगी बिताना नहीं चाहती। वरन् वे देश के आर्थिक जीवन में सहायता देना, और सब प्रकार के व्यवसायों और धन्धों में भाग लेकर अपने कार्य-क्षेत्र को विस्तृत करना चाहती हैं।

उद्योग-धन्धों में स्त्रियों की संख्या में जो वृद्धि हुई है, उसका कारण यही नहीं है कि स्त्रियाँ इसकी इच्छुक हैं, वरन् उद्योग-धन्धों के कर्ताधर्ता भी स्त्रियों द्वारा काम कराने को बड़े उत्सुक रहते हैं। कारख़ाने वाले यह अनुभव करते हैं कि उनको स्त्रियों से काम कराने मे लाभ है और इसलिए वे अपने कारबार के ढङ्ग को इस तरह बदल रहे हैं, जिससे स्त्रियों को काम करने मे सुविधा हो। उदाहरण के लिए एक छोटे से क़स्बे में जहाँ, एक कारख़ाने के मालिक को अविवाहिता स्त्रियाँ नहीं मिलती हैं, विवाहिता स्त्रियाँ नौकर रक्खी जाती हैं। वह समझता है कि वे तभी उसके यहाँ काम कर सकती हैं, जब कि कारख़ाने का वक़्त ऐसा हो जिससे उनके घर-बार के काम मे बाधा न पड़े। इसलिए कारख़ाना सोमवार को दोपहर के बाद खुलता है और शनिवार को दिन भर बन्द रहता है। इस तरह का दस्तूर कितनी ही फ़ैक्टरियों में देखने में आता है।

जो स्त्रियाँ कारख़ानों में जाती हैं, उनके दो ही उद्देश्य होते हैं। या तो उन्हे अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनी होती है या काम करने का शौक होता है। चाहे उनके बिना नौकरी किए ही घर का काम मजे में चल रहा हो, तो भी वे अनुभव करती हैं कि अगर वे भी काम करके कुछ पैदा करें तो घर की हालत और अच्छी हो सकती है। यह भाव सभी श्रेणी की स्त्रियों में पाया जाता है।

एक स्त्री ने, जो एक इञ्जिन द्वारा कपड़े धोने के बड़े कारख़ाने में काम करती है, इस विषय में प्रश्न करने पर कहा था कि "यह सच है कि मेरा पति कुटुम्ब के पालन-पोषण के लिए काफ़ी आमदनी कर लेता है, पर मैं अपने बच्चों के लिए कुछ विशेष प्रबन्ध करना चाहती हूँ। मेरी इच्छा है कि वे स्कूल मे अधिक समय तक पढ़ सकें और मनोविनोद का अधिक अवसर पा सकें।" इसी तरह के विचार एक वकील महिला ने प्रकट किए थे, जो अपने पति के साथ काम करने जाती है। ये स्त्रियाँ घर को अनिवार्य भार की तरह नहीं समझती, वरन् वे उसे कुटुम्ब की उन्नति और विकास का केन्द्र मानती हैं।

कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो घर के नित्य-कर्मों को पसन्द नहीं करतीं और इससे ऊब कर नौकरी कर लेती हैं। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि अब स्त्रियाँ दिन-प्रतिदिन अधिक संख्या में उद्योग-धन्धों और उच्च श्रेणी के पेशों में योग दे रही हैं। अब वे अपने पतियों और भाइयों के कन्धे से कन्धा भिड़ा कर काम करना चाहती हैं। स्त्रियों को नौकरी मिलने का सुयोग कभी इतना

(५४५वें पृष्ठ का शेषांश)

"ऐसे कब तक भागते-भागते फिरोगे ?"

"चाहे सारे हिन्दुस्तान की धूल छाननी पड़े, पर मेरे ठाकुर जी को कोई मुझसे अलग नहीं कर सकता, यह तू जान ले मुनियाँ। दासू झूठ नहीं बोलता।"

उसके दूसरे ही दिन ब्राह्म मुहूर्त्त में दासू भगत ने ठाकुर जी की छोटी सी पोटली गले से बाँधी, आँखों में आँसू भर कर जन्मभूमि को बार-बार प्रणाम किया, धूल उठा कर बड़ी श्रद्धा से माथे में लगाई, और एक गठरी कन्धे पर रख राम-राम जपता हुआ उस गाँव को सदा के लिए छोड़ दिया।

मुनियाँ बड़ी दृढ़ता और गौरव के साथ माथा ऊँचा किए हुए, पूजा के सामान की पिटारी हाथ से लटकाए दासू भगत के पीछे चल दी। पीछे फिर कर एक दृष्टि उसने अपने घर पर डाली, एक दृष्टि मिश्र जी के महल पर। जिस गाँव को एक दिन उसने अपने सौन्दर्य से पागल बना डाला था, उसे आज साँप की केंचुली की भाँति त्याग कर दासू भगत के पीछे जा रही है।

धन्य मुनियाँ ! धन्य दासू भगत !!

❀ ❀ ❀

अधिक नहीं था, जितना कि आजकल है। स्त्रियों ने अपनी योग्यता और परिश्रम से सैकड़ों वर्ष के पुराने पक्षपातपूर्ण विचारों को नष्ट कर डाला है और अब वे अपने स्वाभाविक अधिकार प्राप्त कर रही हैं।

❀ ❀ ❀

रूस की औद्योगिक उन्नति

सोवियट रूस ने पिछले दस-बारह वर्षों में आश्चर्यजनक औद्योगिक उन्नति की है। इसके पहले वह भी भारतवर्ष की तरह कृषि-प्रधान देश था और शिल्प-कला सम्बन्धी वस्तुओं के लिए विदेशों का मुखापेक्षी रहता था। पर आज वह केवल अपनी ज़रूरत का सामान ही तैयार नहीं कर रहा है, वरन् दूसरे देशों में अपने कारखानों का माल विक्रयार्थ भेज रहा है। अभी कुछ दिन पहले ही रूस के माल से भरा हुआ एक जहाज़ कराची आया था, जिसमें कपड़ों से लेकर मोटर के टायर तक सब तरह की चीज़ें थीं। अभी तो आरम्भ है, थोड़े समय पश्चात् संसार के अन्य देशों को उसके सामने ठहर सकना असम्भव हो जायगा। कारण यह है कि रूस के कारखानों पर मज़दूरों की सत्ता है और वे अपने कार्य में जितनी दिलचस्पी लेते हैं, उतनी दिलचस्पी उन देशों के मज़दूर नहीं लेते, जहाँ वे ग़ुलामों की तरह रक्खे जाते हैं और मालिकों से असन्तुष्ट रहते हैं। साथ ही अन्य देशों के कारखाने वाले मज़दूरों की मज़दूरी के सिवा एक बड़ी रक़म अपने लिए भी रखते हैं और इसलिए रूस के कारख़ानों के मुक़ाबले में सस्ता माल नहीं दे सकते। वर्तमान समय मे रूस की औद्योगिक परिस्थिति क्या है और वह किस ढङ्ग से कार्य करके उन्नति कर रहा है, इसके सम्बन्ध में एक लेख गुजराती भाषा के साप्ताहिक 'प्रजामित्र अणे केसरी' मे प्रकाशित हुआ है, जिसका आशय नीचे दिया जाता है:—

सोवियट रूस ने जो पञ्चवर्षीय आयोजन तैयार किया था, उसमें अमेरिका के कला विशारदों का भी एक विशेष स्थान है। इन अमेरिकनों में जो किसी विशेष उद्योग के विशेषज्ञ हैं, वे 'पायोनियर' कहे जाते हैं। रूस के जो निवासी किसी ज़माने में अमेरिका चले गए थे और वहाँ जिन्होंने कल कारख़ानों का काम सीखा है, उनमें से कितने ही अब रूस में साम्यवादी-समाज की स्थापना होने से अथवा अमेरिका की आर्थिक हलचल के कारण स्वदेश को वापस आ गए हैं। उनको भी कारख़ानों मे महत्वपूर्ण पद दिए गए हैं। इनसे उतर कर रूस के वे इञ्जीनियर हैं, जिन्होंने हेनरी फ़ोर्ड के मोटर के कारख़ाने में अथवा अमेरिका की जनरल एलेक्ट्रिक कम्पनी में काम करके अनुभव प्राप्त किया है।

रूस के बाकू और कास्पियन समुद्र के किनारे मिट्टी के तेल के बड़े-बड़े क्षेत्रों पर दृष्टि डालने से मालूम होता है कि वहाँ अमेरिकन बुद्धि उपयोग मे लाई गई है। हर जगह आधुनिक मैशीनें और बिजली की रोशनी दिखलाई देती है। मज़दूरों के घरों की व्यवस्था भी वहाँ सर्वोत्तम है। तेल का तमाम व्यवसाय आधुनिक ढङ्ग पर चलाया जाता है। एक समय जहाँ पर्दानशीन कामिनियाँ कन्धे पर पानी की सुराही लेकर चलती थीं, वहाँ आज नवीन युग के विशाल यन्त्रों की ध्वनि सुनने में आती है। इस उद्योग को नवीन ढाँचे में ढालने का श्रेय एक अमेरिकन को ही है, जिसका नाम ए० पी० सेरेब्रोस्की है।

रेलों की वृद्धि के लिए आशालोव नामक अमेरिकन जी-जान से चेष्टा कर रहा है। जब तुर्किस्तान-साइबेरियन रेलवे का उद्‌घाटन हुआ था, तो दर्शकों ने उसे ज़बर्दस्त बूट पहिने और फ़ौजी पोशाक मे सुसज्जित देखा था। उसके सीने पर सोवियट-सरकार द्वारा प्रदान किए गए तमग़े चमक रहे थे। उसने सन् १९१९ में लाल सेना का सञ्चालन करके पैट्रोग्राड (अब लेनिनग्राड) की रक्षा की थी और उसीके उपलक्ष में उसे यह सम्मान प्राप्त हुआ था। अमेरिका में इस व्यक्ति ने एक ज़बर्दस्त रेलवे कम्पनी की स्थापना की थी। आजकल वह सोवियट के 'तर्कसीव' नामक विभाग का प्रधान है, जिसका कार्य रूस में लम्बी से लम्बी रेलवे लाइनें तैयार करना है। आशालोव को अमेरिका में अराजकतावादी आन्दो-

लन के प्रवर्तक होने के कारण जेल की सज़ा भी हुई थी। उसने 'तर्कसीव' में एक नवीन विशेषता यह उत्पन्न की है कि इञ्जीनियरों को केवल सलाह देकर ऑफ़िस मे बैठा न रहना चाहिए, वरन् उनको कारख़ाने में जाकर काम भी करना चाहिए। इञ्जीनियर को केवल बातें करने वाला न होना चाहिए, वरन् उसमे ज़रूरत पड़ने पर लोहे के खम्भे उठाने की ताक़त भी होनी चाहिए।

आर्थर पावेल डेविस नाम का अमेरिकन, जो कैलीफ़ोर्निया का निवासी है और अमेरिकन रीक्लेमेशन-सर्विस का प्रधान था, मध्य एशिया में नहरें खुदवाने का कार्य कर रहा है। इन नहरों से सोवियट सरकार तुर्किस्तान मे कपास की खेती की उन्नति करना चाहती है। इसके लिए डेविस ने बोख़ारा और समरक़न्द से लेकर हिन्दुस्तान की सीमा पर पामीर और हिन्दूकुश तक अच्छी तरह सफ़र किया है। टॉमस वोलर नाम का अमेरिकन मध्य एशिया से आर्कटिक समुद्र तक फैले हुए जङ्गल के प्रबन्ध और उन्नति के लिए ज़िम्मेवार है। इस जङ्गल मे अपार लकड़ी का भण्डार है और उससे रूस को बहुत आमदनी हो सकती है।

रूस में इस प्रकार विदेशियों को नौकर रखना कोई नई बात नहीं है। दो सौ वर्ष पूर्व जब महान पीटर ने रूस के उद्योग-धन्धों की उन्नति का विचार किया था, तो उसने समस्त यूरोप के कारीगरों को अपने यहाँ बुला कर रक्खा था। १६१७ की क्रान्ति के पश्चात् रूस के तमाम कारख़ाने, जिनमें से बहुतों के मालिक विदेशी लोग थे, सरकार ने ज़ब्त कर लिए और उनमें काम करने वाले इञ्जीनियर अपने देशों को चले गए। पर रूस के साम्यवादी नेताओं को भली-भाँति पता था कि विदेशी कारीगरों और कला-विशारदों के बिना हमारा काम चल नहीं सकता। लेनिन ने कितनी ही बार कहा था कि हमने पूँजीवाद का नाश अवश्य किया है, पर उसकी कला-कुशलता का ज्ञान प्राप्त करना हमारे लिए परमावश्यक है। किस तरह माल तैयार करना और किस तरह उसमें नवीनता और मज़बूती लाना, यह अच्छी तरह जानना ज़रूरी है। सन् १६३१ में स्टेलिन ने अपने भाषण में कहा था—"हर एक रूसी भाई का कर्तव्य है कि वह यन्त्र-विशारद बने। वर्तमान समय के साम्यवादियों को मैशीन के कार्य में निपुण होना चाहिए।" पर जब तक कोई बतलाने वाला न हो, तब तक बड़ी-बड़ी मैशीनों का भेद समझ सकना और उनसे माल तैयार कर सकना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसलिए क्रान्ति के पश्चात् सोवियट सरकार को स्वभावतः यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि अपने औद्योगिक विकास के लिए विदेशी यन्त्र-विशारदों को बुला कर अपने देशवासियों को इन कार्यों मे शिक्षित बनावे।

पहले तो यह विचार किया गया था कि विदेशों के कारख़ाने वालों को रूस मे उद्योग-धन्धे आरम्भ करने और उनके साथ हिस्सा बँटा लेने से काम चल जायगा। इस तरीके से विदेशी कारख़ाने वाले ख़ूब नफ़ा उठाने लगे। तो भी यह आशा थी कि विदेशी यन्त्र-कला-विशारदों के साथ रह कर रूस वाले भी इन कार्यों में निपुण हो जायँगे। पर बाद में इस पद्धति में अनेक दोष जान पड़े और इसे धीरे-धीरे त्याग दिया गया।

जब पञ्च-वर्षीय आयोजन आरम्भ हुआ, तो रूस मे इतने बड़े-बड़े कारख़ानों की स्थापना होने लगी, जिनकी तुलना संसार में मिल सकनी कठिन है। इनमें विदेशी यन्त्र-विशारद अपने आप आने लगे। इनमें से अधिकांश अमेरिका और जर्मनी के हैं। अमेरिकन कम्पनियाँ ख़ासकर स्टील, मोटर, ट्रेक्टर, बिजली के सामान और कोयले के काम में अग्रसर हैं। रूस ने मोटर और ट्रेक्टर के बड़े-बड़े कारख़ाने खोले और इनमें अमेरिका वालों से सहायता ली। १६३१ के अन्त में रूस के मोटर और ट्रेक्टर के कारख़ानों में सात सौ चालीस विदेशी इञ्जीनियर और फ़ोरमैन तथा अमेरिका के छः सौ निपुण कारीगर थे।

नीजनी नोवगोराड की मोटर फ़ैक्टरी हेनरी फ़ोर्ड के कारख़ाने की बिलकुल नक़ल है। इसमें प्रति वर्ष १ लाख ४० हज़ार मोटरें और माल लादने की लॉरियाँ तैयार होने का अनुमान किया गया है। स्टेलिनग्राड और खारकोव की ट्रेक्टर फ़ैक्टरियाँ अमेरिका की फ़ैक्टरियों से कहीं बड़ी हैं। हर एक में प्रति वर्ष ५० हज़ार ट्रेक्टर तैयार हो सकते हैं।

अमेरिका की जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने सन् १६२८ में रूस के हाथ २ करोड़ ६० लाख डॉलर का

बिजली का सामान बेचा था। वह बिजली के कारख़ाने क़ायम करने में रूस की बहुत सहायता कर रही है। नीपर नदी के कारख़ाने में ६॥ लाख हार्स पॉवर की बिजली उत्पन्न की जाती है। यूरोप में इससे बड़ा बिजली का कारख़ाना दूसरा नहीं है। शिकागो की स्टुअर्ट जेम्स एण्ड कुक कम्पनी रूस की कोयले की खानों का काम धूमधाम से चला रही है। साइबेरिया में स्टील का एक कारख़ाना खोला गया है।

अधिकांश अमेरिकन रूस में तनख्वाह पर काम करते हैं। हेनरी फ़ोर्ड, जनरल मोटर्स, इण्टर नेशनल हारवेस्टर आदि कम्पनियों के कर्मचारी प्रायः वहाँ नौकरी के लिए फिरते रहते हैं। इससे प्रकट होता है कि अमेरिका में बेकारी दिन पर दिन बढ़ रही है। रूस भी अपने यहाँ के युवकों को मैशीनों के सम्बन्ध में शिक्षा प्राप्त करने विदेश भेजता है। सोवियट के अधिकारियों को इस बात का बड़ा ध्यान रहता है कि युवकों को सब से पहले अवसर दिया जाय। वे नवयुवकों को बड़ी ज़िम्मेवारी के पदों पर नियुक्त कर देते हैं। ये रूसी युवक बड़े-बड़े पदों पर रह कर भी कारख़ानों में अपने हाथ से काम करते हैं, जिसका प्रभाव छोटे दर्जे के कर्मचारियों और मज़दूरों पर अद्भुत पड़ता है। इस प्रकार की नीति के कारण आज के दिन जब समस्त देशों में बेकारी की विकट समस्या सामने खड़ी है तथा लाखों योग्य व्यक्तियों को भूखों मरना पड़ रहा है, रूस में मानव-प्रगति का नवीन इतिहास रचा जा रहा है।

❀ ❀ ❀

महिला राजनीतिक क़ैदियों से व्यवहार

वर्तमान सत्याग्रह-संग्राम में पुरुषों के साथ कितनी ही महिलाएँ भी जेल जा रही हैं। इसके पहले महिला क़ैदियों की संख्या बहुत कम रहती थी और उनकी व्यवस्था की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं जाता था। पर अब उनकी संख्या में अकस्मात् वृद्धि हो जाने और उच्च श्रेणी की तथा समाज में अग्रगण्य महिलाओं के जेल जाने से इस प्रश्न की तरफ़ जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। समाचार-पत्रों में भी इस सम्बन्ध मे लिखा-पढ़ी और आन्दोलन हो रहा है। मद्रास के 'स्त्री-धर्म' (अङ्गरेज़ी) ने इस विषय मे एक संक्षिप्त सम्पादकीय नोट लिखा है, जिसका भावानुवाद नीचे दिया जाता है :—

देश की कितनी ही जेलों मे महिला राजनीतिक क़ैदियों के साथ जैसा दुर्व्यवहार हो रहा है, उसके विरोध में समाचार-पत्रों में कई बार लिखा जा चुका है। वेलोर जेल में 'सी' क्लास की महिला कैदियों को जीवन-निर्वाह की अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ भी नहीं दी जातीं। इसी जेल से नाममात्र के अथवा काल्पनिक अपराध पर दो महिलाओं को मदूरा की जेल में साधारण क़ैदियों के साथ रहने को भेज दिया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप एक महिला का शारीरिक स्वास्थ्य नष्ट हो गया और मानसिक दशा पर भी बड़ा कुप्रभाव पड़ा। ख़बर है कि इन क़ैदियों को मट्ठा, जो कि दक्षिण प्रान्त के शाकाहारी लोगों के भोजन का एक विशेष पदार्थ है और जिसमें ख़र्च भी बहुत कम पड़ता है, देने से भी जान-बूझ कर इनकार किया गया। इस परिस्थिति में हम विवश होकर इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जेल भेजने से सरकारी अधिकारियों का अभिप्राय केवल उनको कार्य करने से रोकना नहीं है, वरन् उन लोगों ने अपने विश्वास के अनुसार जो काम किया है, उसका बदला लेना है। हम 'इण्डियन सोशल रिपोर्टर' से एक लेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं, जिससे पाठकों को महिला क़ैदियों के साथ होने वाले अनुचित व्यवहार का कुछ पता लग जायगा।

"महिला राजनीतिक अभियुक्तों के स्वास्थ्य, स्वभाव और शिक्षा का कुछ ख़्याल न करके उन्हें लम्बी और कड़ी क़ैद की सज़ाएँ दी जाती हैं। उनको एक जेल से दूसरी जेल में जल्दी-जल्दी बदला जाता है। यह बदलने का कार्य प्रायः बड़े कुसमय में होता है और क़ैदियों को यह भी नहीं बतलाया जाता कि उनको कहाँ जाना पड़ेगा। इससे महिलाओं के हृदय में एक अव्यक्त भय उत्पन्न हो जाता है। जब कि थाना जेल से आठ महिला

क़ैदियों का एक दल, जिनमें तीन स्त्रियों के साथ बच्चे भी थे, दो बच्चे छः मास से कम उम्र के थे—यरवदा जेल को बदला गया, तो उनको आधी रात के बाद जेल से रवाना किया गया। सम्भवतः ऐसा गवर्नमेण्ट के आदेशानुसार हुआ था। परिवर्तन के समय महिलाओं के साथ जो पुलिस वाले जाते हैं, उनके व्यवहार के सम्बन्ध में जितना कम कहा जाय उतना ही अच्छा है। उनकी संख्या प्रायः क़ैदियों की संख्या के बराबर ही होती है और इसके अतिरिक्त एक जमादार भी होता है। पुलिस वाले हमेशा थर्ड क्लास के उसी डिब्बे में बैठने का आग्रह करते हैं, जिसमें महिला कैदी सवार होते हैं, और वे उनके बीच में सट कर बैठने में भी सङ्कोच नहीं करते। वे एक ही पेशाबख़ाने का उपयोग करते हैं, बीड़ी पीते हैं, गन्दे मज़ाक़ करते जाते हैं, भ्रष्ट गाने गाते रहते हैं और बीच के स्टेशन पर मिलने वाले लोगों से गाली-गलौज करते जाते हैं। ये ही सब उनके दिल-बहलाव के ढङ्ग हैं और महिलाएँ इनके कारण घोर असन्तुष्ट होती हैं। हमको जब पूना से बेलगाम भेजा गया था, तो इन बातों का बड़ा कटु अनुभव हुआ था। महिलाओं को अपने निवासस्थान से दूर-दराज़ के मुक़ामों को भेज देने से, उनके साथ मुलाक़ात करने और चिट्ठी-पत्री भेजने में बड़ी असुविधा होती है।"

जिन भारतवासियों को इस देश के शासन-प्रबन्ध में कुछ बोल सकने का अधिकार है, क्या उनका यह परम कर्तव्य नहीं है कि उपर्युक्त परिस्थिति को शीघ्र ही समाप्त करने की चेष्टा करें? इसके सिवा हम राजनीतिक क़ैदियों को साधारण अपराधियों की श्रेणी में रखने और उनकी जीवन-निर्वाह की साधारण आवश्यकताओं की भी पूर्ति न करने को न्याययुक्त नहीं कह सकते। उनके लिए कपड़ों, बिस्तरों, पाख़ानों और स्नानगृहों का ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उनके हार्दिक भावों को चोट न पहुँचे। ऐसी सुविधाओं के लिए, जिनसे स्वच्छता और सुसभ्यता की रक्षा होती है, जान-बूझ कर इनकार करने से शासकवर्ग का कुछ लाभ नहीं हो सकता। ये कार्य जनता के रोष को अत्यन्त भड़काने वाले हैं। जनता के प्रतिवाद की निरन्तर अवहेलना का फल यह होगा कि उत्तरदायी अधिकारियों के प्रति लोगों का भाव और भी कटु हो जायगा। इस परिस्थिति का जितनी जल्दी सुधार हो उतना ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए, जिसका क़ानून, व्यवस्था और न्याय से किसी तरह का सम्बन्ध है, हितकर है।

❀ ❀ ❀

निःशस्त्रीकरण

गत महायुद्ध में यूरोप के देशों की जैसी बर्बादी हुई थी, उससे वहाँ की जनता और विचारशील लोगों में युद्धों के विरुद्ध एक ज़बर्दस्त आन्दोलन उत्पन्न हो गया है। उसके प्रभाव से उन देशों के शासकों को भी इस तरफ़ ध्यान देना पड़ा है और वे समय-समय पर निःशस्त्रीकरण के सम्बन्ध में बातचीत करते-रहते हैं, जिससे या तो युद्धों का होना बन्द हो जाय या कम से कम वे अधिक भयङ्कर रूप धारण न कर सकें। यह कह सकना कठिन है कि ये लोग इस कार्य को नेकनीयती से कर रहे हैं अथवा केवल जनता को भुलावे में डाल कर रखना चाहते हैं, पर यह प्रत्यक्ष है कि कई बार महीनों तक कॉन्फ्रेन्स करके भी अभी तक उन्होंने कोई लाभदायक निर्णय नहीं किया है। इस प्रश्न पर विचार करते हुए भारतीय पाठकों के सुपरिचित मिस्टर एच० एन० ब्रेल्सफ़ोर्ड ने 'दी न्यू रीपब्लिक' में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें बतलाई हैं, जिनका सारांश हम पाठकों के लाभार्थ यहाँ देते हैं:—

यह स्मरण रखना कि जेनेवा में एक निःशस्त्रीकरण कॉन्फ्रेन्स हो रही है, सहज नहीं है, क्योंकि व्यर्थ की बातों को याद रखना किसी समझदार आदमी का काम नहीं है। सच तो यह है कि इसमें चार महीने तक वादविवाद हो चुका है, पर न तो अभी तक कोई निर्णय हुआ है, और न कोई ऐसी बात दिखलाई पड़ रही है, जिससे मालूम हो कि इस विषय में सब लोगों का मतैक्य हो सकेगा। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि इस कॉन्फ्रेन्स के कारण किसी भी जनरल, जल-सेनापति या युद्ध-सामग्री के ठेकेदार की नींद में विघ्न नहीं पड़ा है। ××× इस असफलता के कारण

क्या हैं ? इस सम्बन्ध में कुछ बातें तो ऐसी हैं, जिन्हें लोग आमतौर पर जानते हैं। वर्तमान समय में संसार के तमाम राजनीतिज्ञों का ध्यान पूर्णतया आर्थिक प्रश्नों की तरफ़ लगा हुआ है। यदि एक व्यक्ति के सामने लड़खड़ाते हुए राष्ट्रीय आय-व्यय को सँभालने का प्रश्न हो, बेकारों की पुकार कानों के पर्दे फाड़ रही हो, और दिवाला निकालने का भय सामने मुँह फाड़े खड़ा हो, तो उसके लिए जेनेवा की कॉन्फ्रेन्स को भूल जाना आश्चर्यजनक नहीं है। इसके सिवा जापान ने मन्चूरिया और शङ्घाई में जो करतूते की हैं, उनको देख कर रचनात्मक शक्ति और मानवीय सभ्यता की दुहाई पर क्या भरोसा किया जा सकता है ? इङ्गलैण्ड के कर्णधार, अनुदार दल का मुखिया अवश्य ही एक ऐसा व्यक्ति है, जिसने कभी शान्ति की स्थापना के लिए बहुत बड़ा बलिदान किया था। पर अब मिस्टर मैकडॉनल्ड अधिक पुराने हो चुके हैं और सन् १९१४ की अपेक्षा कहीं अधिक सफलता प्राप्त कर चुके हैं। फ्रान्स के सम्बन्ध में कॉन्फ्रेन्स यही निश्चय नहीं कर सकती कि वहाँ के प्रतिनिधि मोशिये टारडियू के साथ कैसा व्यवहार किया जाय ? वह उसके साथ समझौता करके बुरा-भला जैसा हो, कोई निर्णय कर ले, अथवा इस आशा में कि शीघ्र ही वह अधिकारच्युत हो जायगा, बिना किसी प्रकार का निर्णय किए उस अवसर की प्रतीक्षा करे ? इस कॉन्फ्रेन्स में दो देशों के प्रतिनिधि ऐसे हैं, जिनके प्रस्ताव कुछ वास्तविक परिवर्तन करने वाले हैं। ये हैं रूस के कम्यूनिस्ट और इटली के फ़ैसिस्ट प्रतिनिधि। रूसी प्रतिनिधि कॉमरेड लिटविनोव एक ही बार में युद्ध-सामग्री का पूर्णतया नाश कर देने का प्रस्ताव करते हैं। पर उनकी बातें कॉन्फ्रेन्स को वर्तमान सभ्यता पर व्यङ्गबाण फेंकने के सदृश जान पड़ती हैं। यदि सेनाओं को बिलकुल तोड़ दिया जाय, तो यूरोप की सीमा में बहुत परिवर्तन करना पड़ेगा, भारत जैसे पराधीन देशों को मुक्ति देनी होगी, और वर्तमान सामाजिक सङ्गठन पर भी आफ़त के बादल मँडराने लगेंगे। रह गए इटली के प्रतिनिधि, उनकी बातों का उद्देश्य या तो अमेरिका से क़र्ज़ प्राप्त करना था, अथवा वे चालाकी के साथ निःशस्त्रीकरण के समर्थकों में फूट डालना चाहते थे।

❀ ❀ ❀

ग्राम-सङ्गठन

भारत में ग्रामों की संख्या क़रीब सात लाख है और इस देश के अधिकांश निवासी ग्रामों में ही रहते हैं। इसलिए राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की किसी भी योजना की उपयोगिता का आधार इसी पर है कि उसके द्वारा ग्रामों का वास्तविक सुधार और सङ्गठन हो सके। वर्तमान समय में इस उद्देश्य को सिद्ध करने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता किस बात की है, इसका ज़िक्र करते हुए 'प्रबुद्ध भारत' का एक लेखक कहता है :—

ग्राम-सङ्गठन के विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ के निवासियों के हृदय से निराशा के भाव को दूर किया जाय। उनका जीवन अज्ञानपूर्ण है और बाहरी संसार से उनका किसी तरह का सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिए अपने ऊपर पड़ने वाले अधिकांश कष्टों को वे अनिवार्य मान लेते हैं। अगर वे यह जानते कि इसी प्रकार की कठिनाइयों—कभी-कभी इनसे भी भयङ्कर कठिनाइयों—का सामना अन्य देशों के निवासियों को भी करना पड़ा है, और उन्होंने उनसे मुक्ति पाई है, तो वे इस तरह भाग्य के भरोसे न बैठे रहते। उनके हृदयों में इस प्रकार का विश्वास उत्पन्न करना परमावश्यक है कि अपनी दशा का सुधार कर सकना अधिकांश में उन्हीं के हाथों में है। मि० ब्रायन नामक लेखक का कथन है—"ग्रामों के रहने वाले ४० साल की उम्र में ही ६० वर्ष वालों की तरह क्यों दिखलाई पड़ते हैं ? इसका कारण यह है कि वे सदा भयभीत रहते हैं। उनके सामने भूख और अकाल का भय रहता है, बीमारी का भय रहता है, अदालतों और बोहरों का भय रहता है, अपने पड़ोसियों का भय रहता है। × × × हमारा कर्तव्य यही है कि हम इन भयों को दूर करके उनमें यह विश्वास उत्पन्न करें कि यदि वे हमारी सम्मति के अनुसार कार्य करेंगे, तो वे और उनके कुटुम्ब वाले स्वस्थ रहेंगे, भोजन और वस्त्र की कमी न रहेगी, घर सुन्दर होंगे और किसी के साथ झगड़ा न होगा।" जहाँ तक विदित होता है, बहुत समय तक कष्ट

पावे रहने के कारण ही इन लोगों में यह निराशा का भाव उत्पन्न हुआ है, और इसलिए जो लोग सौभाग्य-वश अच्छी परिस्थिति में हैं, उनको इस सम्बन्ध में सहायता करना आवश्यक है।

भारतवर्ष के अधिकांश ग्रामों की समस्या शिक्षा, सफ़ाई और दरिद्रता की है। वे लोग अज्ञान में पड़े हुए हैं, उनका रहन-सहन अस्वास्थ्यकर है, उनके आस-पास बड़ी गन्दगी रहती है, और इसके परिणाम-स्वरूप वे सहज ही में किसी भी महामारी के शिकार हो जाते हैं, और वैसे भी प्रायः अकाल में ही मरते रहते हैं। चौहरों के लूटने, मुक़दमेबाज़ी, दूरदर्शिता के अभाव और सब से बढ़ कर देश में फैले हुए अर्थाभाव के कारण उनको सदा भीषण दरिद्रता में जीवन बिताना पड़ता है। पर यदि शिक्षा की समस्या हल हो जाय तो और बहुत सी समस्याओं का हल होना सहज हो जायगा।

❀ ❀ ❀

मन्त्र-दीक्षा का ढोंग

'चाँद' के पिछले अङ्क में हमने एक गुजराती साप्ताहिक पत्र का लेख प्रकाशित किया था, जिसमें मालवीय जी द्वारा अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देने का विरोध किया गया है। उसी प्रकार की सम्मति लाहौर से प्रकाशित होने वाले हिन्दी मासिक पत्र 'युगान्तर' ने अगस्त के अङ्क मे प्रकट की है, जिसे हम पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत करते हैं :—

श्रीमान मालवीय जी इस कलिकाल में पतित-पावन बने हैं। आप अछूतों को मन्त्र-दीक्षा देकर पवित्र कर रहे हैं। ब्राह्मण देवता के मुख से 'नमो भगवते वासुदेवाय' की गुनगुनाहट सुन कर ही हमारे अछूत भाइयों का उद्धार हो जायगा। हम तो केवल भगवन्त को ही पतित-पावन सुनते आए हैं, पर अब मालूम हुआ कि कुछ मनुष्य भी अपने को पतित-पावन समझते हैं।

मनुष्यता का कितना भारी अपमान है! इस साम्यवाद और प्रजातन्त्र के युग में भी एक मनुष्य अपने को केवल जन्म के कारण इतना ऊँचा समझता है कि वह दूसरे मनुष्यों को नीच और पतित मान कर अपनी गुनगुनाहट से उनका उद्धार कर सकता है! ब्राह्मण की यह जन्म की उच्चता ही तो अछूतपन का मूल कारण है। और मन्त्र-दीक्षा का ढोंग रच कर उसी उच्चता को और भी दृढ़ किया जा रहा है। यह रोग की चिकित्सा नहीं; यह तो उसे और भी बढ़ाना है। इस युग में इस मन्त्र-दीक्षा का मूल्य ही क्या है? यह ढोंग तो शङ्कराचार्य के समय में रचा जाना चाहिए था, जब वेद-मन्त्र सुन लेने पर शूद्र के कान में पिघला हुआ सीसा भर दिया जाता था और मन्त्र उच्चारण करने पर उसकी ज़बान काट डाली जाती थी। (देखिए गौतम धर्म-सूत्र १२४ और ब्रह्मसूत्र शङ्कर भाष्य अ० १० प० ३, अध्याय १ सूत्र ३८)। इस समय तो कोई भी अछूत बालक यूनिवर्सिटी कॉलेज में भर्ती होकर वेद पढ सकता है। कई अछूत भाई पढ भी चुके हैं, और किसी भी जन्माभिमानी को अङ्गरेज़ी राज्य में उनके कान में सीसा भरने या उनकी जिह्वा काट डालने का साहस नहीं हो सकता। आज अधेले-अधेले को सन्ध्या और गायत्री मन्त्र बिक रहे हैं। इस समय 'नमो भगवते वासुदेवाय' की गुनगुनाहट का महत्व ही क्या है?

सनातनी पत्र 'आनन्द' लिखता है कि 'अन्त्यज हिन्दुओं को उन बातों और उन कामों से बचाए रखने के लिए, जिनसे कि वे साफ़ और शुद्ध नहीं रह सकते, और उनको समाज में मिल-जुल कर बैठने का अधिकार दिलाने के लिए पूज्य मालवीय जी ने यह नुस्ख़ा तजवीज़ किया है कि उन्हे दीक्षा दी जाय।' हम 'आनन्द' का कुछ मतलब नहीं समझ सके। क्या उसका आशय यह है कि मन्त्र-दीक्षा लेने के बाद भङ्गी टट्टी उठाना बन्द कर दे, चमार जूते बनाना छोड़ दे और भँजड़ा छाज न बनाए? यदि उसका यही आशय है, तो हम पूछते हैं कि इन कामों को फिर कौन करे? क्या इन कामों को करने वाले मुसलमान या ईसाई हो जाएँ, क्योंकि आपकी दृष्टि में तो यह काम करने वाले हिन्दू समाज में मिल कर नहीं रह सकते? सहस्रों ब्राह्मण, क्षत्रिय और बनिए अत्यन्त मैले और गन्दे रहते हैं; कोई उन्हें अछूत नहीं ठहराता।

इसके विपरीत बहुतेरे अछूत ग्रेजुएट और वकील हैं और उन सबको मन्त्र-दीक्षा देकर शुद्ध करने की आवश्यकता है !! मालूम नहीं आप किस युग की बातें कर रहे हैं ? इस समय अवस्था बिलकुल उलटी है। हिन्दुओं से मिल-जुल कर रहना तो दूर, अछूत लोग हिन्दू ही रहना नहीं चाहते। और आप उनके लिए मन्त्र-दीक्षा का बन्धन लगा रहे हैं। यह तो वही बात हुई :—

जोरू फिरे नथ गढ़ावन नूँ।
तो खसम फिरे नक वढ़ावन नूँ ॥

अर्थात्—"स्त्री तो नथुनी बनवाने के लिए ज़ोर दे रही है और पति उसकी नाक ही काट डालने की फ़िक्र में है।" अछूतों को इस समय मन्त्र-दीक्षा की आवश्यकता नहीं। उन्हें तो मनुष्यता के अधिकार चाहिए। आप इनको अपने कुओं पर चढ़ाने को तैयार नहीं, अपने भोजनालयों में खाना खिलाने को तैयार नहीं; अपने मोहल्लों में रहने देने के लिए तैयार नहीं; उनको राजनीतिक अधिकार देने को तैयार नहीं; ऐसी अवस्था में वे मन्त्र-दीक्षा को शहद लगा कर चाटें? क्या इससे उनके उपर्युक्त कष्ट दूर हो सकते हैं? बात तो वास्तव में यह है कि हिन्दुओं की मनोवृत्ति अभी नहीं बदली। वे अछूतों को वास्तव में समता के अधिकार देना नहीं चाहते। जब मुसलमानों की लाठियाँ और छुरे उनके सामने मृत्यु का रूप धारण करके प्रकट होते हैं, तब उन्हें अछूतों की याद आती है। मगर सङ्कट टल जाने पर परनाला वहीं का वहीं रहता है।

काले बादल

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

हे काले-काले बादल,
ठहरो तुम बरस न जाना।
मेरी दुखिया आँखों से,
देखो मत होड़ लगाना ॥

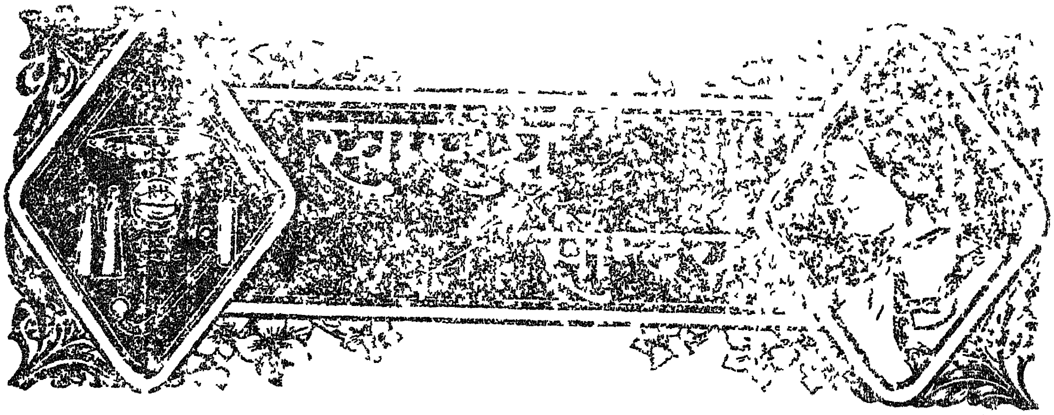
❀

तुम अभी-अभी आए हो,
यह पल-पल बरस रही हैं।
तुम चपला के सङ्ग खुश हो,
यह व्याकुल तरस रही हैं!

तुम गरज-गरज कर अपनी,
मादकता क्यों भरते हो?
इस विधुर हृदय को मेरे,
नाहक़ पीड़ित करते हो ॥

❀

मैं उन्हें खोजती फिरती,
पागल सी व्याकुल होती।
गिर जाते इन आँखों से,
जाने कितने ही मोती !!



सर्वोत्तम व्यायाम

वर्तमान समय में ज्ञान-विज्ञान की अभूतपूर्व उन्नति होते हुए और सुख, सुभीता और सुभीते के तमाम साधनों के उपस्थित होते हुए भी संसार में एक बड़ी भारी त्रुटि देखने में आ रही है, जो इस तमाम उन्नति पर एक प्रकार से पानी फेर देती है और इसके महत्व को बहुत धुँधला कर देती है। वह त्रुटि है मनुष्यों की स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्बलता। आजकल चिकित्सा-विज्ञान इतनी अधिक उन्नति कर चुका है कि अगर यह कहा जाय कि डॉक्टर लोग मरे आदमी को जिला सकते हैं, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं। आजकल के कुशल सर्जन मनुष्यों के समस्त अवयवों को चाहे जैसे काट-छाँट कर फिर से इस तरह से नए ढङ्ग का बना देते हैं, जैसे कोई मूर्तिकार मिट्टी को तोड़-मरोड़ कर मनमानी मूर्ति बना देता है। पर इतना होने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जाता है। हमारे देश की बात तो छोड़ दीजिए, यहाँ के लोग तो संसार के सबसे बड़े रोग—भूख की बीमारी—में इतने अधिक फँसे हुए हैं कि उनको दूसरी जितनी भी बीमारियाँ हों, वह कम हैं। यहाँ के लोगों के स्वास्थ्य की दशा की तो आलोचना करना ही निरर्थक है। पर यूरोप, अमेरिका के देश, जो सम्पत्ति और वैभव के भण्डार बने हुए हैं और जो सब प्रकार के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की खान हैं, वहाँ के लोगों के स्वास्थ्य की दशा भी अच्छी नहीं। वहाँ की सरकार और डॉक्टर असीम परिश्रम करके और करोड़ों-अरबों रुपए खर्च करके किसी एक रोग को निर्मूल करते हैं, तो उसकी जगह दो नए रोग पैदा हो जाते हैं। अगर यह बात न होती तो इन देशों में इतने अधिक डॉक्टरों और अनगिनती पेटेण्ट औषधियों की सृष्टि देखने में न आती।

इस त्रुटि का एकमात्र कारण वर्तमान समय का कृत्रिम रहन-सहन है। विज्ञान के द्वारा कल-कारख़ानों, व्यापार-व्यवसाय में जो घोर परिवर्तन हुआ है और उसके फल से भारी-भारी और गन्दी आबहवा वाले शहरों की जैसी वृद्धि हुई है, उससे अधिकांश मनुष्यों के लिए स्वाभाविक जीवन बिताना कठिन हो गया है और वे प्रकृति से बहुत दूर रहने लगे हैं। ग़रीब लोग धनाभाव और जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति न होने के कारण मरते रहते हैं और धनवान लोग मनमानी सम्पत्ति और ऐश के साधन पा जाने से दुर्व्यसनों अथवा आलस्य के शिकार बन कर नष्ट हो जाते हैं। विशेषकर व्यापारिक प्रतियोगिता और अन्तर्राष्ट्रीय जटिल परिस्थितियों के कारण मनुष्य के जीवन में बड़ी व्यग्रता उत्पन्न हो गई है और वह प्रत्येक काम को जल्दी से जल्दी पूरा करने की इच्छा रखता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए रेल, मोटर, हवाई जहाज़, तार, टेलीफोन आदि का आविष्कार हुआ है, जिससे देश और काल का अन्तर नाममात्र को शेष रह गया है। इस परिवर्तन के कारण मनुष्य की कार्यकारिणी शक्ति अवश्य बहुत अधिक बढ़ गई है, पर वह एक प्रकार से अपङ्ग सा बनता जाता है। आजकल बड़े शहरों के रहने वाले अधिकांश मनुष्यों के लिए चार-छः कोस चल

सकना पहाड़ उठाने के समान मुश्किल काम हो गया है और देहात के रहने वाले भी जहाँ तक रेल या मोटर-लॉरी पा सकते हैं, पैदल चलना पसन्द नहीं करते। इसका फल मनुष्यों के स्वास्थ्य के लिए बड़ा घातक हुआ है और वे शारीरिक श्रम और साफ़ हवा के अभाव से दिन पर दिन निर्बल और निस्तेज बनते जाते हैं।

पश्चिमी देशों के कितने ही विद्वानों को मनुष्य-जीवन की यह कृत्रिमता बहुत खटकने लगी है और वे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने पर बहुत ज़ोर देने लगे हैं। उनके मत से मनुष्य को सादा तौर पर रहना और खाना-पीना चाहिए, अधिकांश समय खुली हवा और धूप में बिताना चाहिए, और शरीर से ख़ूब परिश्रम करना चाहिए। उनका कहना है कि इस प्रकार का स्वाभाविक जीवन ही आजकल फैली हुई असंख्य बीमारियों और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्त दोषों की एकमात्र दवा है। इसी सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन प्रकृतिवादी ने सवारियों के दोषों और पैदल चलने के लाभों पर बहुत सी उपयोगी बातें बतलाई हैं। उनका कहना है कि शरीर की जीवनी शक्ति को बनाए रखने के लिए पैदल चलना एक अनिवार्य बात है। यह एक ऐसा व्यायाम है, जिसकी प्रशंसा कर सकना असम्भव है। चाहे मनुष्य और कितनी भी तरह-तरह की कसरतें क्यों न करे, पर पैदल घूमने की आदत उसे अवश्य रखनी चाहिए। क्योंकि ऐसी कोई भी कसरत नहीं है, जो इसकी कमी को पूर्ण कर सके। यूरोप और अमेरिका के सभी अच्छे खिलाड़ी और पहलवान इस नियम का पालन करते रहते हैं। अन्य अनेक प्रकार की कसरतों द्वारा रग-पुट्ठों को मज़बूत अवश्य बनाया जा सकता है, पर हृदय और फेफड़ों की शक्ति, जोकि जीवन का मूल है, सिवाय पैदल घूमने के किसी और कसरत द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती।

घूमना मनुष्य की जीवनी शक्ति को सुदृढ़ बनाता है, और सहनशक्ति को बहुत अधिक बढ़ा देता है। इससे मनुष्य की शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नति होती है। अगर तुम्हारा मन और शरीर निर्बल पड़ गया है, तो तुम्हारे शारीरिक सङ्गठन को सम स्थिति पर लाने के लिए घूमने से बढ़ कर कोई उपाय नहीं हो सकता। घूमने से समस्त शरीर में अच्छी तरह से रक्त-सञ्चार होने लगता है। यह रक्त के दूषित अंश को साफ़ करके उसके स्थान में नवीन और शुद्ध रक्त उत्पन्न करने में बड़ी सहायता पहुँचाता है। शुद्ध रक्त ही स्वास्थ्य के उत्तम रहने का प्रधान साधन है। मनुष्य के देह में सदा मृतक परमाणु इकट्ठे होते रहते हैं और यदि वे शीघ्र ही बाहर न निकाल दिए जायँ, तो तरह-तरह के रोगों को उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ गठिया की बीमारी जैसा भयङ्कर रोग इसी दोष के कारण उत्पन्न होता है।

आजकल के ज़माने में अधिकांश लोग एक प्रकार से 'चलना' भूल गए हैं। पिछले कुछ वर्षों में आवागमन के साधनों की इतनी उन्नति हुई है कि हम हर जगह सवारी पर चढ़ कर जा सकते हैं। अगर आदमी चाहे तो उसे कभी चलने की ज़रूरत नहीं पड़ सकती। इस प्रकार चलने की कमी से मनुष्य में जैसी हीनता पैदा होती जाती है, उसका अनुमान लगा सकना मुश्किल है। आजकल मोटरों का दाम इतना घट गया है कि साधारण हैसियत का आदमी भी किसी न किसी तरह की गाड़ी ख़रीद सकता है। हम लोग जहाँ चाहें वहाँ तेल या कोयले की शक्ति से जा सकते हैं। ऐसी दशा में आजकल के ज़माने के साधारण आदमी, अगर उनको कभी मील दो मील चलने का भी काम पड़ जाय, तो थक कर वे चूर हो जाते हैं।

भविष्य के इतिहासकार जब इस ज़माने का हाल लिखेंगे, तो वे सम्भवतः इसका 'यन्त्र द्वारा चलने का युग' के नाम से वर्णन करेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि बीस-पचीस वर्ष में ही हम लोग 'उड़ने वाले युग' में जा पहुँचेंगे, जब कि सब लोग पक्षियों की तरह उड़ सकने में समर्थ होंगे। पर इसमें सन्देह है कि हम कभी भी पक्षियों की तरह अपने अङ्गों की शक्ति से हवा में उड़ने लायक बन सकेंगे। हमको किसी दूसरे साधन से ही शक्ति प्राप्त करनी पड़ेगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब हम उड़ते-उड़ते थक जायँगे, तब हम इस योग्य हो सकेंगे कि चलने के वास्तविक महत्व को समझ सकें। उस समय हमारे लिए होरिसमेन नाम के विद्वान की कही हुई यही उक्ति चरितार्थ होगी कि "संसार का अन्तिम मनुष्य

अपने समस्त ज्ञान-भण्डार से वही चीज़ प्राप्त करेगा, जिसका संसार के सबसे पहले मनुष्य ने बिना किसी प्रकार के ज्ञान के उपभोग किया था।" अति प्राचीन काल के मनुष्यों का मुख्य काम घूमना-फिरना था। प्रतिदिन बीस-तीस मील चलना उनके लिए कोई बात ही न थी। वे लोग बिना किसी कठिनाई के सैकड़ों मील का सफ़र कर सकते थे।

सम्भव है कि संसार में ऐसा समय आने वाला है, जब कि पैदल यात्राएँ उसी प्रकार पसन्द की जाने लगे, जिस प्रकार आजकल मोटर द्वारा यात्रा करना पसन्द किया जाता है। अगर तुम छुट्टियों में सैर के लिए जाना चाहते हो और इच्छा रखते हो कि उसके द्वारा तुम्हारे स्वास्थ्य की आश्चर्यजनक उन्नति हो, तो तुमको अपना समय पैदल घूमने में बिताना चाहिए। तुम अपनी पसन्द का कोई भी प्रदेश चुन लो और आवश्यक समझो तो वहाँ तक रेल द्वारा जाओ। वहाँ पहुँच कर गाड़ी से उतर पैदल चलने लगो। जब तक थक न जाओ, तब तक चलना जारी रक्खो। इसके बाद जब तुम भोजन करने बैठोगे तो उसमें तुमको निराला ही आनन्द आवेगा। उसके बाद थोड़ी देर विश्राम करके फिर चलना शुरू कर दो। इस तरह की पैदल यात्रा को खाते और विश्राम करते बराबर जारी रक्खो। इससे तुम्हारी भूख और पाचन शक्ति में आश्चर्यजनक उन्नति होगी। तुमको भोजन में वैसा ही स्वाद और आनन्द आने लगेगा, जैसा बचपन में आया करता था। जो समस्याएँ तुम्हें इस समय परेशान करती रहती हैं, वे सम्भवतः सब हवा में उड़ जायँगी। उस समय तुमको उनका हल करना बहुत ही सहज और सुखकर प्रतीत होगा।

पैदल घूमने से दिमाग़ की शक्ति बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि स्वच्छ और तीव्र बन जाती है और वह कहीं अधिक निश्चयात्मक और सन्तोषप्रद तरीक़े से सभी प्रश्नों का निर्णय कर सकता है। अगर मनुष्य सवेरे चार-पाँच बजे उठ कर चार-पाँच घण्टे घूम ले तो उसकी शारीरिक और मानसिक दशा में आश्चर्यजनक उन्नति हो जायगी, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इस व्यायाम की सब से बड़ी ख़ूबी यह है कि यह बहुत ही सहज में किया जा सकता है। तुम चाहे कहीं भी रहो, पर तुमको घूमने को जगह मिल ही सकती है। अगर तुम शहर में रहते हो, तो तुम देहात की तरफ़ घूमने को जा सकते हो। अगर तुम बन्द स्थान में काम करते हो, तो तुम्हारे शरीर को जब अधिक जीवनी शक्ति की आवश्यकता प्रतीत हो तो तुम दिन में दो-चार घण्टे के लिए बाहर घूम सकते हो।

यह व्यायाम ऐसा अमूल्य और जीवनी शक्ति का उत्पादक है, कि जिन अनेक पुरानी बीमारियों का इलाज बड़े-बड़े डॉक्टरों से नहीं हो पाता, वे इसके द्वारा सहज ही में दूर हो सकती हैं। अगर तुम थोड़ी ही दूर चल सकने में समर्थ हो, तो भी तुम इस व्यायाम को कर सकते हो और धीरे-धीरे अपनी चलने की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ा सकते हो। अगर आरम्भ में तुमको केवल आधा मील चलने से थकावट मालूम होगी, तो अभ्यास द्वारा कुछ दिनों में नित्य दस-बारह मील तक आसानी से घूम सकोगे। इससे तुम्हारी जीवनी शक्ति और सहनशक्ति की वृद्धि होगी, शरीर के प्रत्येक अङ्ग तथा शरीर के प्रत्येक परमाणु पर इसका असर पड़ेगा, रक्त-सञ्चार की गति बढ़ेगी और तुम्हारे स्वास्थ्य और शक्ति में बहुत अधिक उन्नति दिखलाई पड़ेगी। यदि तुम काफ़ी समय तक इस प्रकार का व्यायाम करते रहोगे, तो हर तरह से वास्तविक अर्थ में मनुष्य बन जाओगे।

अगर तुम पर्याप्त परिमाण में पैदल घूमने की प्रवृत्ति को क़ायम रक्खोगे, तो इससे तुमको अपने जीवन में कहीं अधिक शक्ति का अनुभव होगा। अगर तुम नियमित घूमने का क्रम जारी रक्खोगे, तो तुम्हारा हर एक दिन हर तरह से अधिकाधिक पूर्ण और सन्तोषप्रद होगा। यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं है कि इससे तुम्हारी आयु भी काफ़ी बढ़ जायगी। अधिकांश मनुष्य जो समय से पहले मर जाते हैं, उसका कारण जीवनी शक्ति की कमी ही होता है और इस शक्तिहीनता का कारण प्रायः बैठे बैठे काम करना होता है। वे लोग अपने अङ्गों का उपयोग नहीं करते और स्वास्थ्य के नियमों की अवहेलना करते रहते हैं।

जिस प्रकार भारतवर्ष में कुश्ती और क्रिकेट, फुटबॉल आदि के मैच हुआ करते हैं, उसी प्रकार यूरोप,

अमेरिका में पैदल चलने के भी मैच हुआ करते हैं। और जिस प्रकार हमारे यहाँ कितने ही पहलवान केवल कुश्ती लड़ने का ही पेशा करके अपना निर्वाह करते हैं, उसी प्रकार ये चलने वाले भी यही पेशा करते हैं। प्रायः देखा जाता है कि ये चलने वाले बड़ी उम्र के हो जाने पर भी जवान दिखलाई पड़ते हैं। जेम्स हाकिङ्ग नाम के व्यक्ति की उम्र इस समय पचास वर्ष से ऊपर हो चुकी है, पर वह अभी तक नवयुवक मालूम होता है। उसमें जीवनी शक्ति कूट-कूट कर भरी है। उसके लिए चलना ऐसा ही आवश्यक है, जैसा कि खाना और सोना। प्रति दिन दस से बीस मील तक चले बिना उसके शरीर को चैन नहीं मिलता।

हमारे जङ्गली अवस्था में रहने वाले पूर्वजों को अपने जीवन-निर्वाह के लिए चलना पड़ता था। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि उस अति प्राचीन काल में उनमें से अधिकांश शिकार द्वारा ही अपना पेट भरते थे और उस अतीत युग में आजकल के बन्दूक़धारी और साथ में कुत्ता रखने वाले शिकारियों की अपेक्षा उनको जानवरों के पकड़ने के लिए बहुत अधिक दौड़-धूप करनी पड़ती थी।

पैर और हाथों की रचना काम करने के लिए की गई है। हमारी टाँगें ख़ासकर ठोस और भारी मांस-पेशियों से बनी हैं। जब उनको ठीक तरह से काम में लाया जाता है, तो ख़ून जल्दी-जल्दी दिल, फेफड़े और समस्त अङ्गों में होकर दौड़ने लगता है और उससे वास्तविक जीवनी शक्ति का उद्भव होता है। उस दशा में तुम्हारा ज्ञान उज्ज्वल हो जाता है, तुम प्रत्येक बात को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हो और सच्चे अर्थ में जीवन को प्राप्त करते हो।

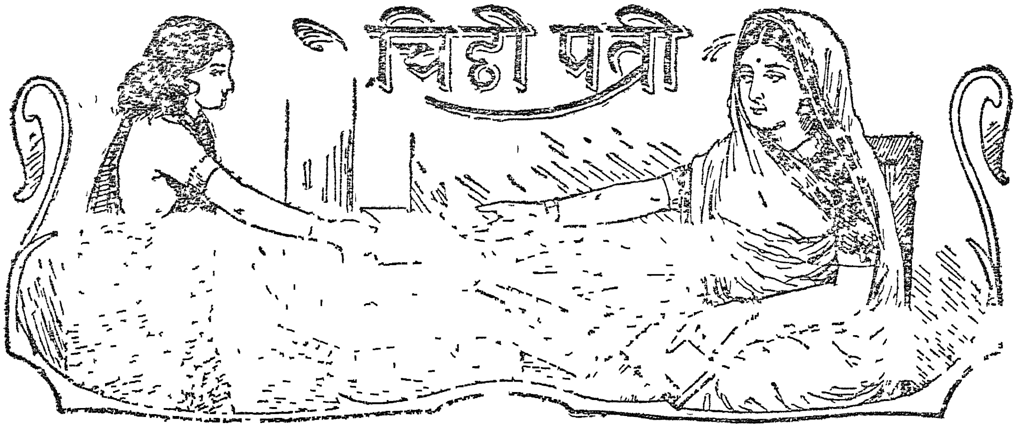
चलते समय गहरी साँस लेना भी परमावश्यक है। ख़ासकर शुद्ध और खुली हुई हवा में ज़ोर से साँस लेने से देह में बड़ी चैतन्यता आती है और अपरिमित लाभ पहुँचता है।

एक साधारण श्रेणी का व्यक्ति, जोकि पचास से सत्तर वर्ष की उम्र में मर जाता है, अगर उचित रीति से पैदल घूमने की आदत बना ले, तो सहज में सत्तर से नब्बे वर्ष तक ज़िन्दा रह सकता है।

किसी आदमी को प्रतिदिन कितना चलना चाहिए, यह उसकी शक्ति पर आधार रखता है। कभी-कभी इतनी दूर तक चलना, जब तक कि ख़ूब थकावट न लग जाय, अच्छा है। यह आवश्यक नहीं कि ऐसा प्रतिदिन किया जाय, पर छुट्टियों में, शनीचर या इतवार के दिन, या जब कभी अवसर मिले, एक दिन अधिकांश समय पैदल घूमने मे व्यतीत करना लाभदायक है। इस प्रकार की आदत से तुम्हारी आर्थिक दशा, तुम्हारा गृह-जीवन और तुम्हारी आध्यात्मिक दशा की वास्तव में बहुत-कुछ

उन्नति हो सकेगी। और यदि तुम दीर्घजीवन की कुछ भी कामना रखते हो, तो निश्चय समझ लो कि इस उपाय से तुम्हारे आयु-बल में निस्सन्देह कई वर्ष की वृद्धि हो जायगी।

जो लोग इस उपाय से जीवनी शक्ति प्राप्त करते हैं, उन पर किसी रोग का आक्रमण नहीं हो सकता। तुम जीवन-तत्व से ऐसे परिपूर्ण बन जाओगे, तुम्हारा स्वास्थ्य ऐसा सुदृढ़ हो जायगा, तुम्हारी नस-नस में ऐसी चैतन्यता भर जायगी कि बीमारियों के बीजाणुओं का तुम्हारे ख़ून की धारा में ठहर सकना असम्भव हो जायगा।



भागे हुए पति के नाम—

कृपानिधान !

रजिस्ट्री पत्र आपका मिला। पढ़ कर जो सदमा हुआ, लिख नहीं सकती। आपने मुझे बहुत धोखा दिया, ऐसा आपका धर्म नहीं है। मुझ असहाया अबला को किसके भरोसे पर छोड़ गए हैं ? बच्चों को पालने के लिए तो मुझे कहा, परन्तु मेरा प्रतिपालन कौन करे ? अगर मुझे छोड़ कर जाना था, तो मेरी जान पहले ले लेते, उसके बाद जो इच्छा होती करते। मैंने आपके साथ अपनी जान में कोई बुराई नहीं की। जो कुछ कहा, आपकी भलाई के लिए ही। आपको मुझे गर्भावस्था में छोड़ कर जाना उचित नहीं था। आदमी का दिन सदा एक-सा नहीं रहता। जो सुख करता है वही दुःख करता है और जो दुःख करता है वही सुख करता है। आप सब कुछ जानते हुए अधर्म की राह पर जा रहे हैं, मनुष्य का कर्त्तव्य है कि दुःख में सदैव दृढ़ता रक्खे। आपने किसकी सलाह से ऐसा किया। यह पत्र आपके पढ़ने के लिए छपवाती हूँ। यदि अपने बाल-बच्चों के ऊपर आपकी कुछ भी ममता है, तो इसे पढ़ कर अपना पता दीजिए। जिसको आप अपना मित्र समझते हैं, वह आपकी इज़्ज़त और जान-माल का दुश्मन है। संसार में आपका कौन हित चाहने वाला है, उसे पहचानिए। जिसने आपसे कहा था कि आपके ऊपर मुसीबत आने वाली है, वह एकदम झूठा है। ग़लती मनुष्य से ही होती है। एक ग़लती होने पर उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। भूल के ऊपर भूल करने से उसका फल बड़ा दुखदाई होता है। आपके हृदय में यदि मेरे लिए कुछ भी प्रेम हो तो आप अपने मन में बिना कुछ ख़्याल किए चले आइए, या पता दीजिए। मैं ही आकर आपके दर्शन करूँ। आप दूसरों का न्याय करते थे, मेरा भी न्याय करिए।

—आपकी 'C.' इलाहाबाद

❀ ❀ ❀

दुःखिनी माता

एक बहिन ने लिखा है :—

मैं एक प्रतिष्ठित कुल की पुत्रवधू और पुत्री हूँ। परन्तु मेरी ससुराल वाले मुझे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते हैं। मेरे पतिदेव के पास धन नहीं है। वे कोई काम ढूँढ़ने के लिए बाहर गए हुए हैं। परमात्मा ने मुझे चार पुत्र-रत्न दिए हैं, जिनमें एक आठ वर्ष का और दूसरा छः वर्ष का है। धनाभाव के कारण हम इन बच्चों की पढ़ाई का कोई उपाय नहीं कर सकते। मैं स्वयं भी पढ़ी-लिखी हूँ। हाथ का काम भी बहुत अच्छा और हर क़िस्म का जानती हूँ। परन्तु दुर्भाग्यवश मेरी आँखों को भयङ्कर बीमारी हो गई है, इससे हाथ का काम कुछ भी नहीं कर सकती। डॉक्टरों की राय है कि मैं आँखों की बीमारी के लिए कुछ दिन पहाड़ों में जाकर रहूँ, परन्तु मेरे पास पैसे कहाँ हैं, जो कहीं अन्यत्र जाकर रह सकूँ। मुझे सबसे बड़ा दुःख यही है कि अर्थाभाव के कारण मैं अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सकती। मेरी आपसे विनीत प्रार्थना है कि आप मेरे इस निवेदन को अपने 'चाँद' में छाप दें। अगर कोई भाई या बहिन मेरी कुछ सहायता कर सकें, तो मैं उनका बड़ा आभार मानूँगी। अगर कोई संस्था मेरे बच्चों की शिक्षा और

भरण-पोषण का भार लेने की दया करे, तो मेरा बड़ा भारी सङ्कट दूर हो जाय।

आपकी,
'एक दुःखिनी'

[यह बहिन पञ्जाब की रहने वाली हैं। इन्होंने अपना नाम और पता गुप्त रखने की इच्छा प्रगट की है। अगर कोई सज्जन या किसी सार्वजनिक संस्था के अधिकारी इनके बच्चों को शिक्षा या इनकी आँख के इलाज में इनकी कुछ सहायता करना चाहें, तो पत्र लिख कर हमसे इनका पता पूछ सकते हैं। हम इस बहिन का पता उन्हीं सज्जनों को देंगे, जिनसे कुछ विशेष सहायता की आशा होगी। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक बालिका की अन्तिम अभिलाषा

एक मृत बालिका की दुःखिनी माता ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी,

मैं एक महा दुःखिनी हूँ। मैंने 'चाँद' में देखा है कि आप दीन-दुखियों पर हमेशा दया करते हैं। इसी आशा से मैं भी यह पत्र आपकी सेवा में लिख रही हूँ।

मेरी एक सोलह वर्ष की लड़की थी, जो काफ़ी पढ़ी-लिखी थी। परन्तु ईश्वर ने उसे मुझसे छीन लिया। मेरा लाल लुट गया, परन्तु मैं अभागिनी जीती हूँ। मृत्यु से कुछ समय पहले मेरी बच्ची ने मुझसे कहा था कि "माँ, अब मेरे जीने की कोई आशा नहीं है। बस, मेरी अन्तिम अभिलाषा यही है कि मैंने जो पुस्तकें और कविताएँ लिखी हैं, उन्हें तुम 'चाँद' के सम्पादक जी के पास भेज देना और उनसे छपाई का ख़र्च आदि पूछ कर इन्हें छपवा देना। फिर इनकी बिक्री से जो पैसे आवें, उनसे मेरी एक मूर्ति बनवा कर मेरे बग़ीचे में रखवा देना और मेरी मृत्यु-तिथि के रोज़ जो बन पड़े, ख़ैरात करवा देना।'

परन्तु मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ और न छपाई आदि का कुछ हाल ही जानती हूँ। इसलिए यह पत्र लिख कर आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप इस सम्बन्ध में मुझे उचित सलाह देकर मेरी बच्ची की अन्तिम अभिलाषा की पूर्ति में मेरी सहायता करें। आपकी,

एक अभागिनी बहिन

[दुःख है कि इस बहिन ने अपने पत्र में अपना पता-ठिकाना कुछ भी नहीं लिखा है और अपने पत्र का उत्तर 'चाँद' द्वारा माँगा है। हमारी राय है कि वे अपनी मृत कन्या की रचनाएँ अपने निकट के किसी साहित्यिक को दिखलाएँ और उनसे राय लें कि ये छपने पर बिक सकती हैं या नहीं। अगर वे बिक जाने लायक़ हों तो उन्हें छपवाने का उद्योग करें, अन्यथा उनकी छपाई में पैसे लगाने व्यर्थ होंगे और इससे उनकी मृत पुत्री की अन्तिम अभिलाषा भी पूरी न होगी। अगर ये बहिन मृत बालिका की रचनाएँ हमारे पास भेज सकें, तो हम उन्हें देख कर उनके सम्बन्ध में अपनी सम्मति दे सकते हैं। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

बेमेल विवाह का भीषण परिणाम

एक व्यथित-हृदय युवक ने लिखा है :—

मैंने एक कुलीन वैश्य-कुल में जन्म पाया है। इण्ट्रेन्स पास करके ४०) मासिक की एक सरकारी नौकरी कर ली है। मेरा शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा है और उमर मेरी अभी कुल इक्कीस वर्ष की है। परन्तु दुर्भाग्यवश मुझे जो पत्नी मिली है, वह अत्यन्त कुरूपा और बुद्धिहीना है। मालूम नहीं, मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है, जिसके फल-स्वरूप मुझे ऐसी स्त्री प्राप्त हुई है। मैं दिन-रात इसी चिन्ता में डूबा रहता हूँ। इस कुरूपा स्त्री के कारण मेरी ज़िन्दगी बरबाद हो रही है। जब उसे देख लेता हूँ, तो मानो सारे शरीर में आग सी लग जाती है। समझ में नहीं आता कि इस जीवन-पथ के कण्टक को कैसे दूर करूँ। कभी-कभी तो घर-बार छोड़ कर कहीं चले जाने को जी चाहता है। कभी-कभी बाज़ारू स्त्रियों की ओर मन दौड़ जाता है। परन्तु वहाँ प्रेम कहाँ प्राप्त हो सकता है? कभी-कभी दूसरा व्याह कर लेने की इच्छा होती है। दिन-रात तबीयत परेशान रहती है। बहुत सोच-

विचार कर अब आपकी शरण में आया हूँ, कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे मुझे शान्ति प्राप्त हो।

आपका—

—'कुसुम'

[यह है, बेमेल और बिना देखे-सुने लड़के-लड़कियों को एक-दूसरे के गले मे ज़बरदस्ती बाँध देने का भीषण परिणाम। हमारा ख़याल है कि जब तक लड़के और लड़कियों को अपने मन के मुताबिक जीवन-सहचर चुन लेने का अवसर नहीं प्राप्त होगा, तब तक समाज का यह रोग भी दूर न होगा। वास्तव में यह कितनी भद्दी बात है कि जिसके साथ हमें अपना जीवन व्यतीत करना पड़ेगा, उसे विवाह से पहले एक बार देख भी नहीं सकते। हमारी समझ में नहीं आता कि जब कन्या वाले वर को अच्छी तरह देख-भाल लेते हैं, तो फिर कन्या को भी दिखा देने में उन्हें क्या आपत्ति है। अस्तु, पत्र-प्रेषक युवक से हमारा कहना है कि इस मामले मे जिस तरह आप निर्दोष हैं, उसी तरह आपकी पत्नी का भी कोई अपराध नहीं है। क्योंकि वह बेचारी जान-बूझ कर कुरूपा और बुद्धिहीना नहीं बनी है और न वह अपनी इच्छा से आपके गले ही पड़ा है। ऐसी दशा में उस पर नाराज़ी प्रगट करना तो सरासर अन्याय है। दूसरी सलाह हमारी यह है कि विवाह करके केवल संसार-सुख का उपभोग करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य नहीं है। उपर्युक्त युवक को चाहिए कि ब्रह्मचर्यपूर्वक रह कर ऐसे बेजोड़ विवाहों का विरोध करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लें। इससे उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त होगी और समाज की भी सेवा होगी। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक नीच पति

एक अबला ने लिखा है :—

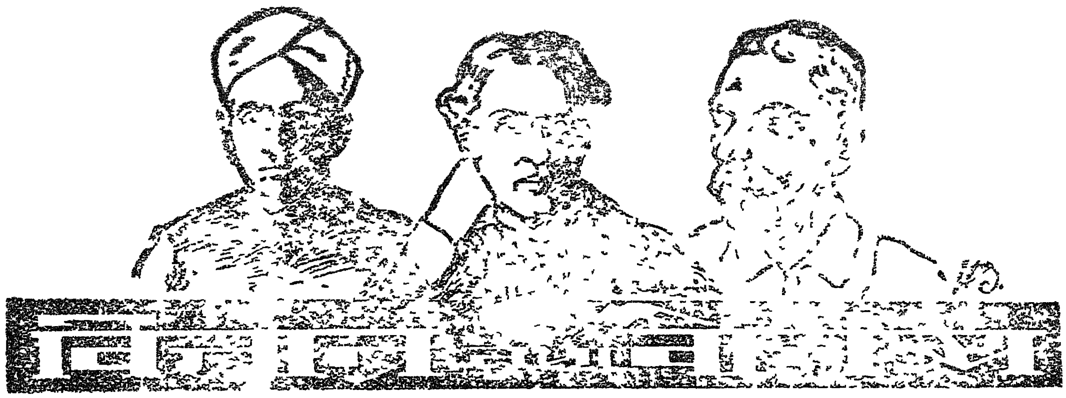
श्रीमान सम्पादक जी, सादर नमस्ते। मैं आपकी सेवा में अपनी दुःख-गाथा लिखती हूँ। कृपा करके अपने 'चाँद' पत्र द्वारा मुझे कोई उचित उपाय बता कर मेरा सङ्कट दूर कीजिए।

मेरे पतिदेव बड़े विद्वान, विवेकी और दूरदर्शी हैं। उनकी मान-प्रतिष्ठा भी अपने समाज में ख़ूब है। वह मुझे प्यार भी ख़ूब करते हैं, मुझे हर तरह से सुखी रखने का ख़ूब यत्न करते हैं। परन्तु मेरी क़िस्मत में शायद सुख बदा ही नहीं है। क्योंकि पतिदेव का यह प्रेम बिलकुल दिखाऊ और बनावटी है। वास्तव में वह एक दूसरी स्त्री से प्रेम करते हैं और मुझे चकमा देने के लिए कपट-प्रेम दिखलाते हैं। इस गुप्त प्रेम से बाज़ आने के लिए मैंने उनसे बड़ी मिन्नतें कीं, उनके पैरों पड़ी, परन्तु कोई नतीजा न निकला। वह प्रेम टूटने के बदले और घनिष्ठ होता गया। अब तो यह हालत है कि सुबह उठ कर वह जब तक उस स्त्री का मुँह नहीं देख लेते, तब तक मेरी तरफ़ मुँह फेर कर देखना भी पाप समझते हैं। जब उसका मुँह देख लेते हैं, तब कहीं जाकर नित्यकर्म आदि करते हैं। उनकी यह गुप्त लीला मुझ अभागिनी के सिवा और कोई नहीं जानता। परन्तु अब तो मेरे लिए यह सब असह्य हो रहा है। जी में आता है कि ज़हर खाकर इस दुःख से छुटकारा पा जाऊँ। परन्तु अपमृत्यु से डरती हूँ। अब आपकी शरण ली है, जो मुनासिब समझिए उपाय बताइए।

—एक दुखिया

[इस तरह के पत्र हमारे पास बहुत आया करते हैं। हमारा विचार है कि यदि पत्नियाँ कुछ साहस से काम लें तो वे स्वयं इस दुःख से छुटकारा पा सकती हैं। ऐसे दुराचारी मनुष्यों को उनके अपराध का कठोर दण्ड मिलना चाहिए। उनके साथ मुरव्वत करना तो पाप को प्रश्रय प्रदान करना है। उक्त पत्र-लेखिका को चाहिए कि साहस करके इस पाप-कृत्य का भण्डाफोड़ कर दे और इसके लिए जो मुसीबतें झेलनी पड़ें, प्रसन्नता से झेलें। ऐसा करके वह अपने पति को पाप-पङ्क से बचा सकती हैं और स्वयं भी शान्ति प्राप्त कर सकती हैं।

—स० 'चाँद']



बोलने वाली घड़ी

पेरिस की वेधशाला (ऑबज़र्वेटरी) से वहाँ के निवासी प्रायः ठीक समय जानने के लिए टेलीफ़ोन द्वारा पूछा करते हैं। इस तरह पूछने वालों की संख्या अब बहुत बढ़ गई है और इस काम के लिए वेधशाला वालों को एक विशेष विभाग खोलना पड़ा है। इस दिक़्क़त और ख़र्च को मिटाने के लिए अब वहाँ पर एक बिजली की बोलने वाली घड़ी लगाई है। जब कोई व्यक्ति वेधशाला से समय पूछेगा, तो घड़ी के तार को उसके टेलीफ़ोन से संयुक्त कर दिया जायगा और घड़ी स्वयं समय बतला देगी। इसमें ठीक वही तरकीब काम में लाई गई है, जो आजकल बोलने वाले सिनेमा की फ़िल्मों में काम मे लाई जाती है। घड़ी के साथ एक ऐसी फ़िल्म लगी है,जिसमें पाँच-पाँच सेकेण्ड के अन्तर से समय की आवाज़ भरी है! फिर हर एक सेकेण्ड पर 'पीप' का शब्द होता है। उदाहरणार्थ अगर आप पौने दस बजने के अठारह सेकेण्ड बाद घड़ी से समय पूछें तो वह उत्तर देगी "नौ-पैंतालीस-पन्द्रह-पीप-पीप-पीप।"

❀

नापने का नया तरीक़ा

आजकल नापने का काम इञ्च, फ़ीट और गज़ों से लिया जाता है। साधारण व्यक्तियों को इनके व्यवहार में किसी तरह की कठिनाई नहीं जान पड़ती और वे बाज़ार में बिकने वाले पैमानों से सहज में अपना काम चला लेते हैं। पर वैज्ञानिक लोगों को इस विषय में बहुत चिन्तित रहना पड़ता है और वे प्रायः इस विषय में विचार करते रहते हैं कि कोई ऐसा तरीक़ा निकाला जाय, जिससे पैमानों में किसी तरह की भूल न पड़े। क्योंकि वे लोग जो नाप-जोख करते हैं, उसमें एक बाल का हज़ारवाँ या लाखवाँ भाग ग़लती हो जाने से भी त्रुटि रह जाती है। इसलिए उन्होंने इञ्च और फ़ीट आदि के पैमानों के सही होने की जाँच के लिए एक नया तरीक़ा निकाला है। इसके अनुसार इञ्च को एक विशेष प्रकार की रोशनी की लहरों में विभाजित किया जायगा। इस रोशनी की लहरों की लम्बाई में कभी अन्तर नहीं पड़ता और कई हज़ार लहरों की लम्बाई एक इञ्च के बराबर होती है।

❀

राक्षसी जहाज़

अमेरिका में आजकल इस तरह के जहाज़ बनाए जा रहे हैं, जो साधारण समय में यात्रियों और सामान को ले जाने का काम करेंगे और लड़ाई के मौके पर युद्ध-पोत के रूप में बदले जा सकेंगे। इनकी बनावट ऐसी रक्खी गई है कि किसी चीज़ से टकरा जाने और पानी भर जाने पर भी वे न डूब सकेंगे। उनमें दो लाख हॉर्स-पॉवर के इञ्जन लगाए जायँगे और उनकी चाल इतनी तेज़ होगी कि वे अमेरिका से यूरोप तक की यात्रा साढ़े चार दिन में पूरी कर लेंगे। इन जहाज़ों की लम्बाई ६६२ फ़ीट और गहराई १०८ फ़ीट होगी। उनका वज़न ४६ हज़ार टन होगा। उन पर २,७६६ यात्री और १,१८१ खलासी जा सकेंगे। इस प्रकार के एक जहाज़ के लिए नौ या दस करोड़ रुपया ख़र्च होगा।

❀

नक़ली रबड़

मेक्सिको की एक मिट्टी के तेल की कम्पनी तेल से निकलने वाले मैल से नक़ली रबड़ बनाने लगी है। मैल में गन्ना या कोई ऐसा पदार्थ, जिसमे खाँड पर्याप्त प्रमाण में मौजूद हो, मिलाया जाता है और उसे साफ़ करके धूप में सुखा लिया जाता है। फिर उसमें गन्धक का पुट देने से वह ठीक रबड़ के माफ़िक पदार्थ बन जाता है। इस पदार्थ से मोटर के टायर बनाए गए है और वे सन्तोषजनक सिद्ध हुए हैं। असली रबड़ जिन-जिन कामों में आता है, उन सब कामों में यह नक़ली रबड़ भी लाया जा सकता है।

❀

सड़क बनाने का दैत्याकार यन्त्र

अमेरिका मे सड़क बनाने का एक ऐसा भारी यन्त्र बनाया गया है, जो एक दिन में एक मील रास्ता बना कर तैयार कर देता है। इसके अगले भाग में पत्थर की गिट्टियों और सीमेण्ट का मिश्रण तैयार होकर सड़क के ऊपर फैलता है और पिछला भाग उसे दबा कर बराबर करता जाता है। सड़क पर जितना मोटा पत्थर का पर्त जमाना होता है, उतना ही मसाला यह यन्त्र गिराता है। इसमें ऐसी भी योजना है, जिससे सड़क के बीच का भाग कुछ ऊँचा और अगल-बगल का कुछ ढालू हो जाता है। इससे सड़क में कहीं भी गड्ढे नहीं बनते।

❀

रेशम के समान काँच

इञ्जिन बॉयलर, गैस के नल, रेल और जहाज़ के इञ्जिन आदि की भाफ ले जाने वाली नलियों को अधिक गर्म हो जाने से बचाने के लिए उनके ऊपर रबड़ या सन लपेट दिया जाता है। इसके कारण गैस या भाफ की गरमी बाहर नहीं निकल सकती। अब इस कार्य के लिए इस तरह का काँच बनाया गया है, जो रेशम के तारों की तरह बुना जा सकता और इन नलियों के चारों तरफ़ आसानी से लपेटा जा सकता है। इस काँच पर ६०० डिग्री तक की गर्मी का कुछ भी असर नहीं पड़ता।

गञ्जेपन का कारण और इलाज

कितने ही लोगों के मस्तक के बीच के बाल उड़ जाते हैं, जिससे वे देखने में कुरूप जान पड़ते है। इस सम्बन्ध में खोज करके डॉक्टरों ने पता लगाया है कि मनुष्य के शरीर में 'एण्डोक्राइन' नाम की जो गाँठ होती है, उसमे से जब यथेष्ट मात्रा में रस नहीं निकलता तो मस्तक के बाल गिरने लगते हैं। इसके लिए अमेरिका की इलीनोइस यूनीवर्सिटी के मेडिकल कॉलेज में एक दवा तैयार की गई है, जिसका इञ्जेक्शन देने से बाल फिर निकल आते हैं। एक व्यक्ति के बाल अट्ठारह वर्ष पहले गिर गए थे, उसको चार सप्ताह इस दवा की पिचकारी देने से बाल निकल आए। वहाँ के चिकित्सकों का कहना है कि जिन लोगों के तमाम सर के बाल उड़ गए हों, उनको भी इस दवा की पिचकारी प्रतिदिन साल-छः महीने तक देने से नए बाल निकल आएँगे। एक रोगी के तो आँखों की भौहों और बरौनियों के बाल उड़ गए थे, उसको भी इस दवा से नए बाल आ गए।

❀

सेफ़्टीरेज़र में बिजली का प्रकाश

हाल में एक ऐसा सेफ़्टीरेज़र बनाया गया है, जिसमें बिजली की छोटी सी बत्ती भी लगी है। इससे अँधेरे या कम प्रकाश वाले स्थानों में हजामत बनाने में बड़ी सुविधा होगी। इसके प्रयोग से दाढ़ी के कट जाने अथवा बालों के छूट जाने का अन्देशा बहुत कम रहेगा। रेज़र के हैण्डिल के भीतर एक छोटी सी बैटरी है, और ऊपर बटन है। बटन को ज़रा सा हटा देने से ही रोशनी हो जाती है।

❀

क्या आप जानते हैं?

१० लाख से अधिक आबादी के शहर संसार भर में ४० हैं।

लन्दन में प्रति वर्ष १८ करोड़ ६० लाख आदमी मोटर बस द्वारा यात्रा करते है।

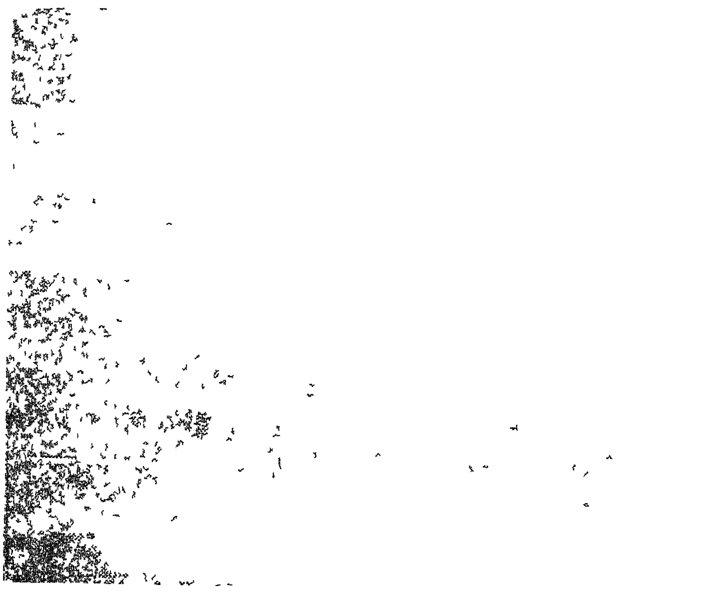
बड़ी उम्र का प्रत्येक व्यक्ति हर रोज़ १८ सेर हवा साँस द्वारा खींचता है।



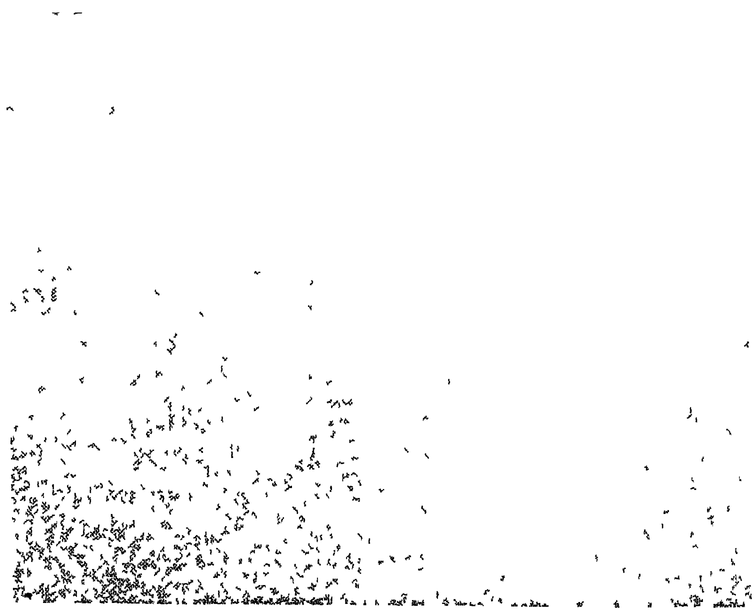
बम्बई के न्यू चारनी रोड पर अवस्थित पारसियों की विवाह-शाला। इसी इमारत में पारसी दम्पति विवाह-सूत्र में आबद्ध होते हैं।



बम्बई के गोवालिया टैङ्क पर अवस्थित पारसियों का औद्योगिक भवन।



बम्बई के हगीज़ रोड पर अवस्थित पारसी महिलाओं का सुविख्यात औद्योगिक भवन या "सर रतन टाटा इण्डस्ट्रियल इन्स्टीट्यूट फ़ॉर पारसी वीमेन।"



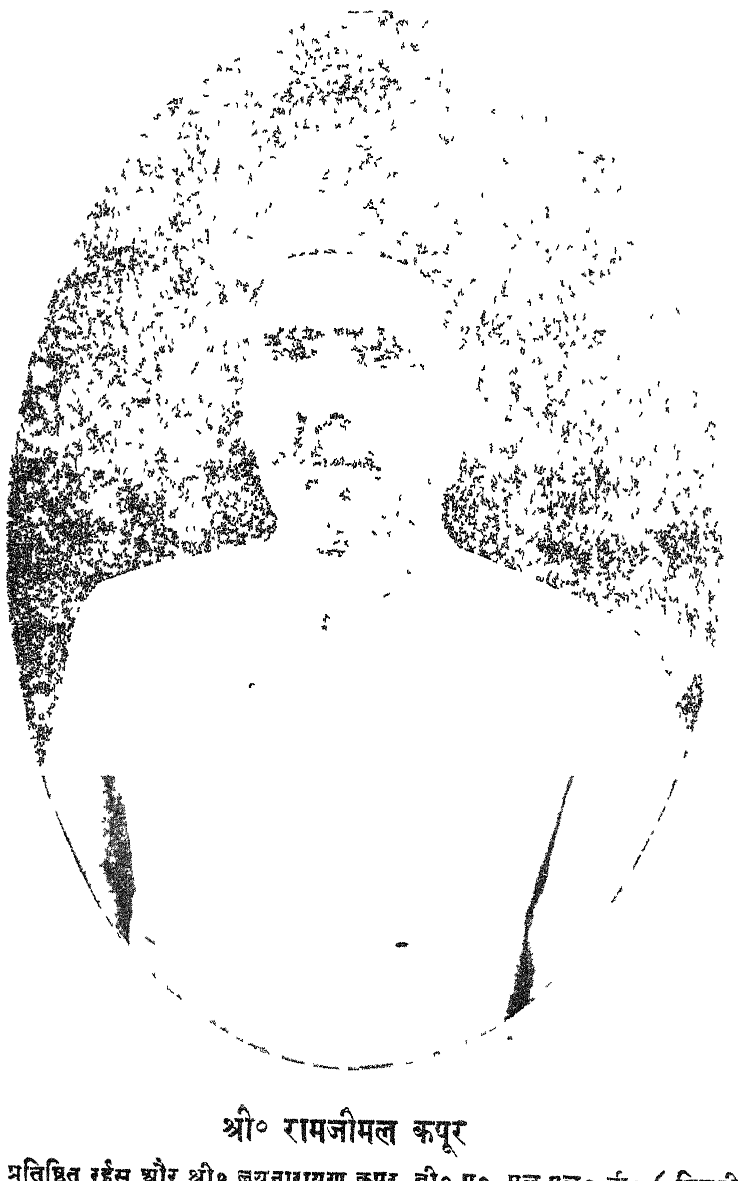
जिन ज़ोरस्तानियों ने गत महायुद्ध में अङ्गरेज़ी साम्राज्य के रक्षार्थ अपने जीवन की आहुति दे दी थी, उन्हीं की स्मृति-रक्षा के लिए बना हुआ स्मृति-सौध।



बम्बई के धोबी तालाब पर अवस्थित पारसियों का दूसरा अग्नि-मन्दिर (Fire Temple)

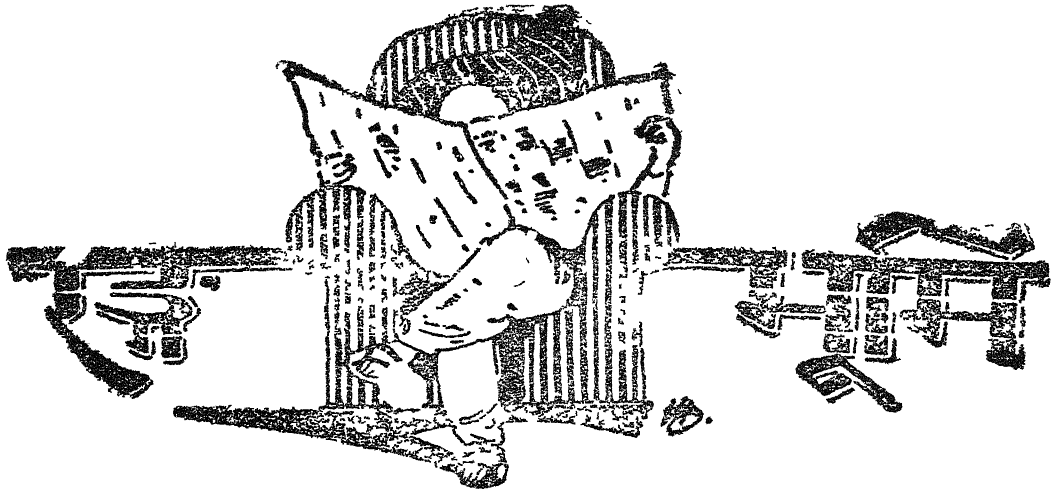


बम्बई के प्रिन्सेज़ स्ट्रीट मे अवस्थित पारसियों का सुप्रसिद्ध बाडिया अग्नि-मन्दिर (Fire Temple)



श्री० रामजीमल कपूर

आप मौरावाँ के प्रतिष्ठित रईस और श्री० जयनारायण कपूर, बी० ए०, एल्० एल्० बी० (जिनकी मनोरञ्जक रचनाएँ पाठक प्रायः 'चाँद' में पढ़ा करते हैं) के पिता हैं। आप उर्दू तथा फ़ारसी के अच्छे ज्ञाता हैं। आपको रामायण से बहुत प्रेम है। आपने हाल ही में उर्दू कविता में तथा उर्दू-लिपि मे एक 'रामायण' लिखी है, जो आपके १२ वर्ष के कठिन परिश्रम का फल है। रामायण बहुत प्रभावोत्पादक भाषा में लिखी गई है। आपकी एक रचना पाठक इसी अङ्क में अन्यत्र देखेगे।



साम्प्रदायिक 'निर्णय'

जिस साम्प्रदायिक विवाद और मतभेद के कारण दो राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्सें प्रायः विफल हो गई थीं, उसका 'निर्णय' ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से प्रधान मन्त्री मि० मैकडॉनल्ड ने प्रकाशित कर दिया। भारत की राजनीतिक उन्नति की दृष्टि से यह जीवन-मरण का प्रश्न है। क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि साम्प्रदायिक मताधिकार के कारण इस देश की विभिन्न जातियों में फूट का भाव बढ़ता जाता है और राष्ट्रीय भाव की जड़ पर कुठाराघात हो रहा है। इसलिए प्रत्येक सच्चे भारतीय की उत्कट अभिलाषा थी कि नवीन शासन-सुधारों में इस प्रकार का आयोजन किया जाय, जिससे इस विषमयी प्रवृत्ति की शक्ति घटे और सच्चे राष्ट्रीय भाव की वृद्धि हो। यदि जैसी कि कॉङ्ग्रेस की माँग थी ब्रिटिश सरकार इस देश वालों को वयस्क मताधिकार दे देती तो यह झगड़ा अनेकांश में समाप्त हो जाता और किसी सम्प्रदाय वाले को कम से कम यह कहने का अवसर नहीं मिलता कि सरकार ने अमुक दल का पक्ष लिया है। पर इसके बजाय सरकारी 'निर्णय' ने उलझन को और भी बढ़ा दिया और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिसमे विभिन्न सम्प्रदायों की तनातनी और भी बढ़ने की सम्भावना है।

इस 'निर्णय' में सब से भयङ्कर दोष यह है कि इसमें किसी एक सिद्धान्त से काम नहीं लिया गया है। न तो इसमें विभिन्न सम्प्रदायों की जन-संख्या का ख़्याल रक्खा गया है, न अल्प संख्या का, और न महत्व का। जहाँ जैसा सुभीता समझा है, जो बँटवारा अपनी दृष्टि में लाभजनक प्रतीत हुआ है, वही कर दिया गया है। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्त मे हिन्दुओं की संख्या ८४·४ और मुसलमानों की १५ प्रति सैकड़ा है। इसके अनुसार इस प्रान्त की २२८ सीटों में से हिन्दुओं को प्रायः १९० और मुसलमानों को ३४ मिलनी चाहिए थीं। पर 'निर्णय' के अनुसार हिन्दू सदस्यों की संख्या १३२ और मुसलमानों की ६६ रहेगी। अर्थात् मुसलमान यद्यपि हिन्दुओं के पाँचवें अंश से भी कम हैं, पर उनको अल्पसंख्यक सम्प्रदाय मान कर ठीक आधी जगहें दी गई हैं। इसके मुकाबले में पञ्जाब की परिस्थिति देखिए, जहाँ मुसलमानों की संख्या आधे से कुछ अधिक है, हिन्दू $\frac{3}{8}$ हैं और सिक्ख लगभग $\frac{1}{8}$ हैं। इस प्रान्त की १७५ सीटों में से जन-संख्या के अनुसार हिन्दुओं को करीब ६५ सीटें मिलनी चाहिए थीं और यदि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय वाले नियम का ख़्याल रक्खा जाता तो इससे भी कुछ ज़्यादा। पर उनको केवल ४३ सीटें दी गई हैं। सिक्खों के साथ कुछ रियायत की गई है, पर उनको भी २२ के बजाय केवल ३२ सीटें मिली है। यदि उनके साथ उसी सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार किया जाता, जिसके अनुसार यू० पी० के मुसलमानों से किया गया है तो उनको क़रीब ४२ सीटें मिलनी चाहिए थी। यही बात बङ्गाल में हुई है। वहाँ की ४,७५,९२,४६२ जन-संख्या में से २,५४,८६,१२४

मुसलमान और २,०८,०६,१४८ हिन्दू हैं। इसके अनुसार बङ्गाल-कौन्सिल की २५० सीटों मे से हिन्दू-सीटों की सख्या प्रायः ११० हुई। अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के कारण इसमे और कुछ वृद्धि होनी चाहिए थी। इसके विपरीत हिन्दुओं को केवल ८० सीटे दी गई है। यही दशा बिहार, सी० पी०, बम्बई, मद्रास आदि प्रान्तों की है। सर्वत्र मुसलमानों को अल्प-संख्यक सम्प्रदाय मान कर उनकी जन-संख्या के अनुपात से कही अधिक सीटें दी गई हैं, पर हिन्दुओं के साथ ऐसा व्यवहार एक भी प्रान्त मे नही किया गया है।

इस 'निर्णय' मे सरकार ने एक और इस तरह की बात की है जिससे मुसलमानों के प्रति उसकी विशेष कृपा स्पष्ट झलकती है। सिन्ध और उड़ीसा को बहुत समय से स्वतन्त्र प्रान्त बनाने का प्रश्न उठा करता है। विशेषज्ञों ने हिसाब लगा कर बतलाया है कि यदि सिन्ध को स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जाय तो उसे प्रतिवर्ष २ करोड़ का घाटा रहेगा। उड़ीसा के सम्बन्ध मे ८० लाख का घाटा होने का अनुमान लगाया गया है। एक बात यह और है कि जहाँ सिन्ध के हिन्दू बड़े प्रभावशाली और धनी हैं तथा वे सिन्ध के पृथक् प्रान्त बनाए जाने का घोर विरोध कर रहे हैं, उड़ीसा मे मुसलमानों की संख्या नाममात्र को है और उनकी तरफ़ से कभी किसी प्रकार का विरोध इस विषय में नही किया गया। यह सब होने पर भी 'निर्णय' में कहा गया है कि यदि घाटे की पूर्ति के साधन मिल जायँ तो सिन्ध को स्वतन्त्र प्रान्त बना दिया जायगा। साथ ही स्वतन्त्र सिन्ध प्रान्त की कल्पना करके उसकी शासन-सभा के सदस्यों की संख्या का बँटवारा भी कर दिया गया है। पर उड़ीसा को स्वतन्त्र प्रान्त बनाने के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं लिखा गया।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि इस 'निर्णय' से हिन्दुओं के हृदय मे स्वभावतः यही भाव जाग्रत होगा कि सरकार ने मुसलमानों के साथ पक्षपात अथवा विशेष कृपा का व्यवहार किया है, और हमारे न्यायोचित अधिकारों को निर्दयतापूर्वक ठुकराया है। ऐसे मनोभाव का वर्तमान परिस्थिति में, जब कि दोनों सम्प्रदायों मे मनोमालिन्य मौजूद है और प्रायः भीषण साम्प्रदायिक दङ्गों की ख़बरें आती रहती हैं, क्या फल निकलेगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। बङ्गाल मे यद्यपि मुसलमान हिन्दुओं की अपेक्षा कुछ लाख अधिक हैं, पर वे बड़ी अवनतिपूर्ण और अज्ञानावस्था में हैं। उस प्रान्त की जो उन्नति हुई है और वहाँ की सम्पत्ति, वैभव की जो वृद्धि हुई है, उसका श्रेय हिन्दुओं को है। पर नए सुधारों के अनुसार जब पूर्वी बङ्गाल के मूर्ख और धर्मान्ध मुसलमान कौन्सिल में बैठ कर विद्या, बुद्धि, शक्ति, अधिकार आदि सब बातों मे अपने से श्रेष्ठ हिन्दू प्रतिनिधियों के प्रस्तावों को मनमाने ढङ्ग से ठुकराएँगे और हिन्दू करदाताओं से प्राप्त होने वाली सरकारी आय का उपयोग विशेष रूप से अपने जाति-भाइयों के हित के लिए करेंगे, तो यह कैसे सम्भव है कि हिन्दुओं में असन्तोष का भाव उत्पन्न न होगा? पञ्जाब की दशा इससे कहीं गम्भीर है। यद्यपि सिक्ख अल्प-संख्या में हैं, पर पञ्जाब में उनकी प्रधानता है। बड़ी-बड़ी ज़मींदारियाँ उनके पास है, और प्रान्त के वैभव का बहुत-कुछ आधार उन पर है। थोड़े समय पहले ही उनका पञ्जाब में एकछत्र राज्य था और इस कारण वे स्वभावतः वहाँ सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। उनका और मुसलमानों का वैमनस्य बहुत पुराना है। उन दोनों के सम्बन्ध की ऐतिहासिक घटनाएँ भी इस प्रकार की हैं कि उनमें शीघ्र ही वास्तविक मेल हो सकना कठिन है। ऐसी दशा में उस प्रान्त में मुसलमानों का निश्चयात्मक बहुमत कर देना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है। सिक्खों का कहना था कि जब बङ्गाल के यूरोपियनों को, जिनकी संख्या ½ प्रति सैकड़ा से भी कम है, दस प्रति सैकड़ा सीटें दी गई हैं, जिसके द्वारा वे हिन्दू मुसलमान वोटों का समतोलपना क़ायम रख सकते है, तो पञ्जाब मे सिक्खों को उस तरह का अधिकार देने मे क्या आपत्ति थी? सिक्खों के इस दावे को कोई न्यायप्रेमी अस्वीकार नहीं कर सकता। खेद का विषय है कि सिक्खों ने जिस मुस्लिम प्रान्त को विजय करके पञ्जाब में सम्मिलित किया था, आज वही उनके मार्ग में प्रधान कण्टक बन रहा है।

इस 'निर्णय' के रचयिताओं के हृदय में साम्प्रदायिक भेद-भावों को स्थिर रखने की आकांक्षा कैसी बलवती थी, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण स्त्रियों की सीटों का

साम्प्रदायिक आधार पर बाँटा जाता है। इस सम्बन्ध में राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स में स्त्रियों की प्रतिनिधि होकर जाने वाली श्रीमती सुब्बारायन का कहना है कि "स्त्रियों की तरफ़ से बार-बार यह कहा गया था कि अगर उनके लिए सीटें सुरक्षित रक्खी जायँ, तो उनका बँटवारा साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि भारतीय स्त्रियों ने प्रायः एकमत होकर साम्प्रदायिक चुनाव का स्पष्टतः विरोध किया था। इस तथ्य की सचाई मताधिकार कमिटी की रिपोर्ट से मालूम की जा सकती है। किसी भी प्रान्तीय कमिटी या प्रान्तीय सरकार ने स्त्रियों की सीटों को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने की सिफ़ारिश नहीं की थी। इस प्रश्न पर विचार करते समय सरकार ने इन तमाम बातों को भुला दिया है। × × × स्त्रियाँ सुरक्षित सीटों के विशेषाधिकार को छोड़ सकती हैं, पर ऐसी योजना को कभी स्वीकार नहीं कर सकती, जो कि देश के लिए प्रत्यक्षतः भयङ्कर है।" निःसन्देह सरकार का यह कार्य भारतीय मातृत्व का घोर अपमान करना है, और यदि वह इसमें परिवर्तन नहीं करती, तो स्त्रियों का आगामी कौन्सिलों में भाग ले सकना असम्भव है।

भावी कौन्सिलों में विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों की स्थिति

प्रान्त	जनरल	मुसलमान	यूरोपियन	ऐंग्लो-इण्डियन	सिक्ख	देशी ईसाई	ज़मींदार	व्यापारी	यूनीवर्सिटी	अछूत	पिछड़े प्रदेश	श्रमजीवी	योग
पञ्जाब	४३	८६	१	१	३२	२	५	१	१	×	×	३	१७५
यू० पी०	१३२	६६	२	१	×	२	६	३	१	१२	×	३	२२८
सी० पी०	७७	१४	१	१	×	×	३	२	१	१०	१	२	११२
बङ्गाल	८०	११९	११	४	×	२	५	१९	२	×	×	८	२५०
बम्बई (सिन्ध को छोड़ कर)	१०९	३०	३	२	×	३	२	७	१	१०	१	७	१५५
सिन्ध	१९	३४	२	×	×	×	२	२	×	×	×	१	६०
मद्रास	१३४	२९	३	२	×	९	६	६	१	१८	१	६	२१५
बिहार और उड़ीसा	९९	४२	२	१	×	२	५	४	१	७	८	४	१७५
आसाम	४४	३४	१	×	×	१	×	११	×	४	९	४	१०८
सीमाप्रान्त	९	३६	×	×	३	×	२	×	×	×	×	×	५०
योग	७४६	४९०	२६	१२	३५	२१	३६	५५	८	६१	२०	३८	१,५४८

राष्ट्रीय भाव की दृष्टि से यह 'निर्णय' ऐसा असन्तोष-जनक है कि समस्त दलों और श्रेणियों के नेता तथा समाचार-पत्रों ने इसकी एक स्वर से निन्दा की है और इसे देशोन्नति के लिए घोर बाधा-स्वरूप बतलाया है। देहली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' ने इस 'निर्णय' को "बुद्धि के विपरीत और राष्ट्रीयता के विपरीत" बतलाया

है। उसके मतानुसार "प्रधान-मन्त्री का निर्णय समस्त देश को साम्प्रदायिक राजनीति के जङ्गल में और भी अधिक फँसाने वाला और राष्ट्रीय जीवन में गम्भीर कलह उत्पन्न करने वाला है। ××× यह आयोजना बड़ी दोषपूर्ण, अव्यावहारिक और एकता की नाशक है, और अन्त में यह अपने ही अन्याय के भार से नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी।" 'लीडर' इस 'निर्णय' की पोल खोलता हुआ लिखता है—"हर एक पाठक को अपने दिल से यह सवाल पूछना चाहिए कि क्या इस 'निर्णय' के फल से शान्ति फैलने और एकता की वृद्धि होने की सम्भावना है? इसमें जिस 'प्रान्तीय स्वराज्य' का वादा किया गया है वह कैसा होगा?" ट्रिब्यून ने लिखा है कि "जनता को जिस बुरे से बुरे परिणाम का सन्देह था वह ठीक निकला। इस समय भारत के सम्मुख ऐसी गम्भीर समस्या है जैसी कि उसके इतिहास में कभी पेश नहीं आई थी। इस परिस्थिति में उद्धार का मार्ग केवल यही है कि देश की समस्त जातियों और दलों के सच्चे और समझदार लोग एकमत होकर इसे अस्वीकृत कर दें। इससे या तो सरकार शीघ्र ही लाचार होकर इसका जड़मूल से संशोधन करेगी अथवा उसके सामने कोई दूसरा ऐसा प्रस्ताव पेश किया जायगा, जिसे मानने से वह इनकार न कर सके।" 'लिबर्टी' का कहना है कि 'निर्णय' द्वारा "देश की दो प्रधान जातियों में से एक को अल्प-संख्यक सम्प्रदाय के समस्त विशेष अधिकार और बहुसंख्यक सम्प्रदाय के स्वाभाविक अधिकार, दोनों अर्पित किए गए हैं और दूसरी को दोनों बातों से इनकार कर दिया गया है। ××× हमारा झगड़ा इस समय मुसलमानों या अछूतों या किसी अन्य विशेषाधिकार प्राप्त करने वाले दल से नहीं है। हमको पञ्चायत में शामिल होने वाली पार्टियों की शिकायत नहीं करनी है, वरन् हमको पञ्चों की शिकायत है। ××× ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक माँग की जाँच करता और तब परस्पर विरोधी दावों का पक्षपातरहित निर्णय करता। भारतीय साम्प्रदायिक प्रश्न का सन् १९३२ वाला 'निर्णय' एक पवित्र ऐतिहासिक 'ट्रस्ट' को बहुत ही भद्दे और अयोग्यतापूर्ण ढङ्ग से पूरा करना है।" इसी तरह की सम्मतियाँ अन्य राष्ट्रीय पत्रों ने प्रगट की हैं।

इस 'निर्णय' से सबसे अधिक चिन्ताजनक परिस्थिति पञ्जाब में उत्पन्न होने की आशङ्का है। जैसा कि समाचार-पत्रों से प्रगट हो रहा है, कि सिक्ख लोग इस तरह अपने अधिकार अपहरण कराने को तैयार नहीं हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि शीघ्र ही यह मामला गम्भीर रूप धारण कर ले। सरदार सन्तसिंह ने, जो बड़ी व्यवस्थापक सभा के सदस्य हैं, एक प्रेस-प्रतिनिधि से कहा है कि "सिक्ख इस 'निर्णय' को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसा निर्णय करके सरकार ने पञ्जाब में एक ज़बर्दस्त आन्दोलन की जड़ जमा दी है, क्योंकि सिक्खों ने इस बात के लिए एक बड़ी पवित्र शपथ ली है कि वे किसी भी सम्प्रदाय का निश्चयात्मक बहुमत स्वीकृत नहीं कर सकते। मैं अपने सहधर्मियों को भली-भाँति जानता हूँ और यह कह सकता हूँ कि वह इस 'निर्णय' को बदलवाने में किसी भी तरह का बलिदान करने से पीछे नहीं हटेंगे। वास्तव में इस 'निर्णय' से जैसे फल निकलने की सम्भावना है उनका ख़्याल आने से मैं काँप उठता हूँ।" बड़ी व्यवस्थापक सभा के अन्य सिक्ख सदस्यों ने भी, जिनमें से कई 'सर' और 'राजा' हैं, स्पष्ट कहा है कि "इस निर्णय ने अङ्गरेज़ी सरकार की न्याय-बुद्धि और सत्य व्यवहार पर से सिक्खों की श्रद्धा को हिला दिया है।" पञ्जाब के हिन्दू-नेता भी इस 'निर्णय' से घोर असन्तुष्ट हैं और उन्होंने इसे "पञ्जाब के हिन्दुओं के लिए अत्यन्त अनुचित" बतलाया है।

'मॉडर्न रिव्यू' के सम्पादक श्री० रामानन्द चटर्जी जैसे निष्पक्ष राजनीतिज्ञ की सम्मति में यह निर्णय प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों और उत्तरदायी शासन के सर्वथा प्रतिकूल है। उनका मत है कि "इसके द्वारा हिन्दुओं के साथ बड़ा गम्भीर, मानहानिजनक और अपमानपूर्ण अन्याय हुआ है। इसका कारण सम्भवतः यही है कि हिन्दुओं ने ही स्वराज्य की माँग की थी और उसके लिए सबसे अधिक चेष्टा की थी। यह निर्णय समस्त सच्चे देशभक्तों के हृदय में घोर चिन्ता उत्पन्न करने वाला है, क्योंकि ऐसी परिस्थिति में न तो शान्ति रह सकती है न शान्तिपूर्ण उन्नति हो सकती है। अहिंसात्मक उपायों का कोई भी अनुयायी इस निर्णय को स्वीकार नहीं कर सकता और न इस सम्प्रदायवाद से पूरित विधान को व्यवहार में ला सकता है। यदि वह

ऐसा करे तो अपने सिद्धान्त से च्युत समझा जायगा। उसका कर्तव्य है कि अधिक से अधिक चेष्टा करके इस निर्णय को बदलवाए।" सर पी० सी० राय की सम्मति और भी स्पष्ट और खरी है। उन्होंने इसे उन्नति की गति में बहुत बड़ी बाधा माना है और निस्सङ्कोच भाव से कह दिया है—"यह एक जाति को दूसरी जाति के विरुद्ध खड़ा करने वाला है। इससे राष्ट्रीयता की वृद्धि सर्वथा रुक जायगी।"

इन तमाम बातों पर विचार करने से हृदय मे स्वयमेव तरह-तरह की आशङ्काएँ उदय होती है, और प्रतीत होता है कि साम्प्रदायिक शान्ति और राजनीतिक प्रगति का युग अब भी कोसों दूर है। इस 'निर्णय' ने देश के विभिन्न सम्प्रदायों में एकता और प्रेम उत्पन्न करने के बजाय उनको और भी पृथक् कर दिया है और इसका फल देश के लिए कल्याणजनक नहीं हो सकता। देश के नेता इस सम्बन्ध में किस नीति से काम लेंगे और जनता को किस कार्यक्रम के अनुसार चलने का आदेश देंगे, यह तो अभी स्पष्ट नहीं हुआ है, पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कोई भी देशभक्त और राष्ट्रीयता का उपासक भारतवासी इस योजना को स्वीकार करने योग्य नहीं समझता। हिन्दू ही नहीं, राष्ट्रीयता का भाव रखने वाला कोई सच्चा मुसलमान भी इसका समर्थन नहीं कर सकता। डॉ० किचलू और मि० छागला ने इसे सर्वथा अस्वीकार करने योग्य और राष्ट्रीयता का घातक बतलाया है। ऐसी परिस्थिति में देशवासियों का कर्तव्य स्पष्ट है, और हमें पूर्ण आशा है कि या तो ब्रिटिश मन्त्रि मण्डल इस 'निर्णय' को वापस लेकर भारतवासियों के मनोनुकूल दूसरी नीति से काम लेगा, अथवा अब की बार कौन्सिलों का ऐसा पूर्ण रूप से बॉयकॉट होगा, जैसा असहयोग आन्दोलन और कॉङ्ग्रेस की भरपूर चेष्टा द्वारा भी न हो सका था।

❀ ❀ ❀

इङ्गलैण्ड में स्वदेशी आन्दोलन

अङ्गरेज़ों में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो इस देश के स्वदेशी आन्दोलन को अच्छी निगाह से नहीं देखते। ऐसे लोगों को उचित है कि वे एक बार अपने घर को देखें। पुराने ज़माने की बात तो जाने दीजिए, जब कि इङ्गलैण्ड में भारत का बना कपड़ा सौ प्रति सैकड़ा कर लगा कर, और जेल का भय दिखा कर रोका गया था। वर्तमान समय में वहाँ स्वदेशी का ऐसा प्रचण्ड आन्दोलन उठाया गया है, जिससे मालूम होता है कि अब वहाँ किसी अन्य देश का बना माल बिक सकना असम्भव है। वहाँ पर सरकारी तौर पर प्रत्येक व्यवसाय की जाँच की जा रही है और उनकी उन्नति के उपाय सोचे जा रहे हैं। जितनी तरह की चीज़ें अब तक विदेशों से आती थीं, उन सबको इङ्गलैण्ड में ही तैयार करने की चेष्टा की जा रही है। इङ्गलैण्ड के सिनेमाओं में बहुत सी अमेरिकन फ़िल्में दिखलाई जाती हैं, जिनके लिए करोड़ों रुपए प्रति वर्ष देना पड़ता है। इस सम्बन्ध में जाँच करने को एक फ़िल्म कमीशन नियत किया गया था। उसने अपनी रिपोर्ट मे कहा है कि—"अमेरिका में ऐसी फ़िल्में बनाई गई हैं और बनाई जा रही हैं, जो कला की दृष्टि से सर्वाङ्गपूर्ण है, जिन्हें देख कर लोग अत्यन्त आनन्दित होते है, और साथ ही जो अनुपम शिक्षापूर्ण हैं। इसलिए केवल यह कह देने से काम नहीं चल सकता कि 'अङ्गरेज़ी फ़िल्में दिखलाओ।' इसके साथ ही हमको यह भी कहना चाहिए कि—'ऐसी अङ्गरेज़ी फ़िल्में तैयार करो, जो अद्वितीय हों और सर्वत्र जिनकी माँग हो।'" इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कमीशन ने बहुत बड़े पैमाने पर एक 'नेशनल फ़िल्म इन्स्टीट्यूट' सङ्गठित करने की सलाह दी है, जो सरकार द्वारा संरक्षित होगा। ऐसी ही चेष्टा अन्य विषयों में की जा रही है। इस दशा को देख कर सैनफ़्रान्सिस्को (अमेरिका) से प्रकाशित होने वाले एक समाचार-पत्र ने लिखा है:—

"इङ्गलैण्ड-निवासियों ने एक ऐसा आन्दोलन उठाया है, जिसके फल-स्वरूप वे वास्तव में संसार भर के देशों के माल का बॉयकॉट कर सकेंगे। आजकल वहाँ जो आर्थिक सङ्कट आया है, उसी से रक्षा पाने के लिए उन्होंने इस उपाय का अवलम्बन किया है। पर वे लोग बड़े चालाक हैं और अपने आन्दोलन को किसी बुरे नाम से प्रसिद्ध नहीं होने देंगे। इसलिए उन्होंने बॉयकॉट के स्थान पर 'अङ्गरेज़ी माल ख़रीदो' की आवाज़ उठाई है, और इसकी आड़ में एक परम शक्तिशाली

संस्था ने समस्त विदेशी चीज़ों के बॉयकॉट का कार्य आरम्भ किया है। इस संस्था का नाम 'दी ट्यूडर रोज़ लीग' है। इस आन्दोलन को सर्वप्रिय बनाने के लिए राजवंश के बड़े-बड़े लोग इसके मुखिया बने हैं। ड्यूक ऑफ़ ग्लास्टर, प्रिन्स ऑफ़ वेल्स, प्रिन्स जॉर्ज, और कितनी ही राजकुमारियाँ इस लीग की मेम्बर हैं।"

जब इङ्गलैण्ड जैसे सम्पन्न और एक महाविशाल साम्राज्य के स्वामी देश को स्वदेशी आन्दोलन द्वारा अपना अर्थ-सङ्कट टालने की आवश्यकता पड़ रही है, तो भारत जैसा ग़रीब देश अगर अपने कष्टों को कम करने के लिए इस उपाय का अवलम्बन करे, इसे कोई भी न्याय-प्रेमी किस प्रकार अनुचित कह सकता है?

❀ ❀ ❀

समाज-सुधार का मार्ग

हम सुधार का शोर तो बहुत मचाते हैं, पर उन विचारों को कार्यरूप में परिणत करने का साहस बहुत थोड़े लोगों में देखने में आता है। सभाओं में, जलसों में और समाचार-पत्रों में अनेक व्यक्ति विधवा-विवाह, जात-पाँत की निरर्थकता, अछूतोद्धार आदि का ज़ोरों से समर्थन करते हैं, पर जब अवसर पड़ता है तो वे स्वयम् भय अथवा स्वार्थ के कारण अपने विचारों के विपरीत कार्य करते हैं। यही कारण है कि हमारे यहाँ समाज-सुधार का कार्य बड़ी मन्द गति से हो रहा है और जान पड़ता है कि इन हानिकारक प्रथाओं का कभी पूर्णतया अन्त न हो सकेगा। ऐसी परिस्थिति में जो लोग समाज और घर वालों के भय को त्याग, साहसपूर्वक अपने सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हैं, वे निस्सन्देह प्रशंसा के पात्र हैं। इस तरह का एक उदाहरण हमको हाल ही में भावनगर (काठियावाड़) से प्राप्त हुआ है। वहाँ के एक माननीय ब्राह्मण-कुटुम्ब की पुत्री ने, जिसका नाम मन्छा बेन है और जो राजकोट ट्रेनिङ्ग कॉलेज में शिक्षा प्राप्त कर रही थी, अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध अपना विवाह गुजरात विद्यापीठ के आर्य-मन्दिर के विद्यार्थी भाई चन्दूलाल भट्ट के साथ वैदिक विधि से कर लिया है। ये दोनों ऐसी विभिन्न ब्राह्मण जातियों के हैं, जिनमें परस्पर में विवाह-शादी नहीं होती। इन्होंने अपने पिताओं को पत्र लिख कर बतला दिया है कि उनके इस तरह आचरण करने का उद्देश्य क्या है। मन्छा बेन ने अपने पिता को लिखा है कि—'विवाह जैसे जीवन के अति महत्त्वपूर्ण विषय में आपने मेरा विरोध किया। इतना ही नहीं, वरन् उसमें भरसक विघ्न डालने की चेष्टा की। जिस मनुष्य के साथ मुझे समस्त जीवन व्यतीत करना है, जिसके साथ सुख-दुःख में रहना है, उसको मुझे स्वयम् ही पसन्द करना चाहिए। जीवन का साथी ढूँढ़ने में मैंने जिस स्वतन्त्रता से कार्य लिया है, वह आपको मर जाने के समान जान पड़ती होगी। इसीलिए शायद आपने डरा कर, धमका कर, चौकी-पहरे में रख कर मुझे दबाने का विचार किया होगा। पर स्त्री भी पुरुष की भाँति ही समाज का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है और उसे भी उतनी ही स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसी के अनुसार मैंने अपने जीवन के साथी को ढूँढ लिया है।" मन्छा बेन का सत्साहस सराहनीय है, और इस हिन्दू-जाति के सुधार के लिए इस तरह की हज़ारों बहिनों की आवश्यकता है। समाज का मुख्य आधार स्त्रियों पर ही रहता है, और यदि वे हानिकारक प्रथाओं को तोड़ कर अपने मानवीय अधिकारों को काम में लाने लगें, तो कल ही तहलक़ा मच जाय और अन्त में इस जाति को अपना सुधार करना ही पड़े। गुजरात में ऐसी कई घटनाएँ पहले भी हो चुकी हैं और हम आशा करते हैं कि जिस प्रकार वर्तमान समय में राजनीतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में गुजरात, देश के लिए मार्ग-प्रदर्शक बना हुआ है, उसी प्रकार समाज-सुधार में भी वह लोगों को रास्ता दिखलाएगा।

❀ ❀ ❀

एक नया स्वदेशी कारबार

इस समय स्वदेशी की बड़ी तेज़ी से उन्नति हो रही है। कल तक जिन चीज़ों का हम इस देश में बन सकना असम्भव समझते थे, आज वे दूकानों पर बिक्री के लिए रक्खी हुई दिखलाई देती हैं। बिजली

के लैम्प भी ऐसी ही चीज़ों में से हैं। यद्यपि इनकी देश में काफ़ी खपत है और दिन पर दिन इसका बढ़ते जाना भी सुनिश्चित है, पर अभी तक किसी का ध्यान इनके बनाने की तरफ़ नहीं गया था। वैसे भी इस कार्य में उच्च कोटि के वैज्ञानिक ज्ञान और कलाकुशलता की आवश्यकता है, और इन गुणों से सम्पन्न व्यक्ति इस देश में बहुत थोड़े पाए जाते हैं। हर्ष का विषय है कि एक बङ्गाली नवयुवक ने इस कठिन कार्य की तरफ़ क़दम उठाया है और एक प्रकार से कार्य आरम्भ भी कर दिया है। इन सज्जन का नाम है श्री० एच० के० मल्लिक, बी० एस-सी०, ए० आई० आई० एस-सी०, जी० आई० ई० ई० (लन्दन)। कलकत्ता यूनीवर्सिटी से बी० एस-सी० की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने बङ्गलोर के साइन्स इन्स्टीट्यूट में बिजली की शिक्षा प्राप्त की, और वहाँ से इङ्गलैण्ड जाकर टॉमसन हाउटन कम्पनी में इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। बिजली के लैम्प (बल्ब) बनाने में निपुणता प्राप्त करने के लिए ये और भी कितनी ही कम्पनियों में गए और बड़े परिश्रम से इस सम्बन्ध के उन रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया, जिन्हें कारख़ाने वाले भरसक बाहरी लोगों को नहीं जानने देते। भारत लौट कर उन्होंने कलकत्ते में परीक्षा के तौर पर एक छोटा सा कारख़ाना खोला, जिसमें बिजली के बल्ब बनाए जाते हैं। कलकत्ता-कॉर्पोरेशन के रोशनी-विभाग ने जाँच करके उनको उपयोगी बतलाया है। पर इस व्यापार के विस्तार और विदेशों की करोड़ों की पूँजी की बिजली कम्पनियों को देखते हुए मि० मल्लिक का यह कारख़ाना निरा खिलवाड़ है। जब तक पर्याप्त मूलधन लगा कर और बड़ी मैशीनें मँगा कर यह कार्य काफ़ी बड़े पैमाने पर आरम्भ न किया जायगा, तब तक यह आशा करना कि श्री० मल्लिक द्वारा बनाए गए सौ दो सौ बल्बों से देश में एक नए कारबार की सृष्टि हो जायगी और हॉलैण्ड, जर्मनी, जापान आदि का माल आना रुक जायगा, नासमझी की बात है। श्री० मल्लिक भी इस बात को समझते हैं और इसलिए उन्होंने एक लिमिटेड कम्पनी की योजना की है। देश के सम्पत्तिशाली और व्यवसायी लोगों का कर्तव्य है कि आगे बढ़ कर इस नवीन तथा लाभजनक कारबार की तरफ़ ध्यान दें और देश की एक आवश्यकता की पूर्ति करें। व्यवसाय बड़े नफ़े का है। जो लोग इसमें पूँजी लगाएँगे, वे अवश्य ही लाभ में रहेंगे।

❀ ❀ ❀

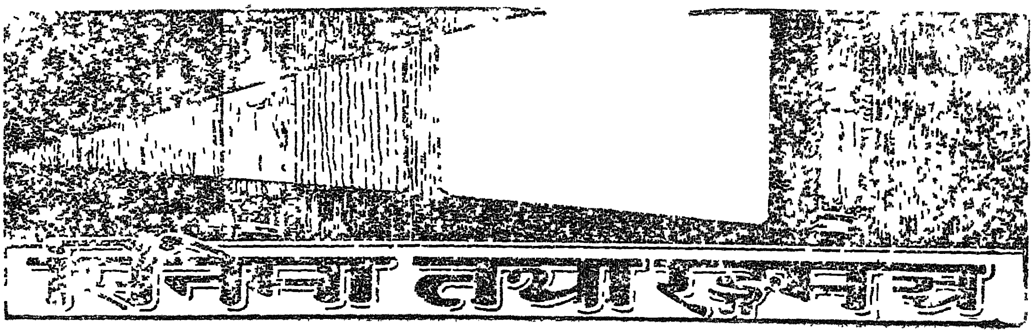
भारतीय कृषक और आधुनिक आविष्कार

भारतीय कृषि की अवनति के जो अनेक कारण बतलाए जाते हैं, उनमें से एक यह भी है कि यहाँ के किसान पुराने ढङ्ग के औज़ार काम में लाते हैं, जिनमें परिश्रम अधिक पड़ता है और काम कम होता है। इसलिए सरकारी कृषि विभाग कितने ही वर्षों से इस बात की चेष्टा कर रहा है कि इस देश के किसान लकड़ी के हलों का प्रयोग छोड़ कर लोहे के बने विलायती हलों से काम लें। इस सम्बन्ध में हाल ही में सतारा ज़िला के कृषि-इञ्जीनियर मि० बेटन ने एक योजना तैयार की है, जिससे मालूम होता है कि समस्त ब्रिटिश भारत में २,५५,२७,६१८ और देशी रियासतों में ५२,१३,२०४ हल काम में आते हैं। पर लोहे के हल पिछले पचास वर्षों में चेष्टा करने पर केवल ७ लाख बिक सके हैं। इसलिए मि० बेटन ने अपनी योजना में मुख्य विचार इसी बात पर किया है कि किस उपाय से लकड़ी के देशी हलों के स्थान पर लोहे के विलायती हलों का प्रचार हो सकता है। अगर उनकी स्कीम कार्य-रूप में परिणत हो जाय, तो वे विश्वास दिलाते हैं कि पाँच वर्षों में इस देश की पैदावार दुगुनी-तिगुनी हो जायगी और यहाँ के किसान वर्तमान समय की अपेक्षा १० अरब रुपए अधिक पा सकेंगे। इस सम्बन्ध में मि० बेटन ने सरकार से फौलाद का कर उठा देने का प्रस्ताव किया है और एक विशाल कारख़ाना स्थापित करने की स्कीम भी तैयार की है। यद्यपि इस योजना के अनुसार कार्य होने से बहुत से भारतीय बढ़इयों और लुहारों की, जो आजकल हल बनाने का कार्य करते हैं, रोज़ी मारी जायगी, पर तो भी इस आधार पर हम उन्नति के पहिए की गति रोकना पसन्द नहीं करते। क्योंकि यदि दस्तकारों की रक्षा का प्रश्न ही मुख्य माना जाय तो रेल, तार, कल, कारख़ाने सभी हानिकारक सिद्ध होते हैं और उस दशा में तो दो-चार हज़ार वर्ष पुरानी परिस्थिति में पड़े रहना ही कल्याणजनक है। पर ऐसा होना असम्भव है। परिवर्तन और उन्नति की गति रोकी नहीं जा सकती। यदि वास्तव में देशी हलों के बजाय लोहे के हलों से काम लेने से पैदावार की वृद्धि हो सकती है, और उनका उपयोग वर्तमान परिस्थिति में सम्भव भी है, तो कोई कारण नहीं कि उनसे काम न लिया जाय। हाँ, इस बात का ध्यान पूरी तरह रक्खा जाय कि ये लोहे के हल देश में ही बनाए जायँ। यदि इस योजना का उद्देश्य विलायत वालों के लिए एक नए कारबार का रास्ता खोल देना है, जैसा कि मि० बेटन की योजना को ध्यानपूर्वक पढ़ने से कुछ-कुछ प्रकट होता है, तो इसका समर्थन कोई समझदार भारतीय नहीं करेगा। अगर सरकार सचमुच भारतवासियों का हित चाहती है, तो उसे चाहिए कि वह या तो ख़ुद इस तरह का कारख़ाना खोले, या किसी को इस काम का ठेका दे दे। यदि किसी भारतीय कारख़ाने वाले को सहायता (Subsidy) देकर काम कराया जाय, तब भी सफलता हो सकती है।

❀ ❀ ❀

शिक्षा का माध्यम

भारतवर्ष में जब से नवीन राष्ट्रीय जाग्रति का जन्म हुआ है, तब से विचारशील लोगों का ध्यान यहाँ की शिक्षा-प्रणाली की तरफ़ भी आकृष्ट होने लगा है। वे समझ गए हैं कि जब तक शिक्षा-प्रणाली का माध्यम एक विदेशी भाषा रहेगी, तब तक यहाँ के नवयुवकों में सच्ची राष्ट्रीय भावना का उदय हो सकना असम्भव है। इसके फल से उनके हृदय में अपनी भाषा के प्रति तिरस्कार अथवा कम से कम उदासीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे लोगों से यह आशा करना कि वे अपने देश की अन्य बातों की तरफ़ श्रद्धा की दृष्टि से देखेंगे, बहुत कम सम्भव है। उनमें से कितने ही तो अङ्गरेज़ों और उनके रीति-रिवाज़ों को ही आदर्श समझने लगते हैं और उन्नति की चरम सीमा इसी में मानते हैं कि वे भी ऐसे बन जायँ कि साधारण लोग उनको 'साहब' समझने लगें। इस उद्देश्य से वे अपनी भाषा, भेष, खान-पान, रहन-सहन आदि सब बातों को बदल डालते हैं और अङ्गरेज़ों की नक़ल करके भारतीयता



अङ्गरेज़ी नाटक के भारतीय पात्र

बम्बई में अपने ढङ्ग की एक नई बात हो रही है। 'ग्रान्ट एण्डरसन' कम्पनी के मि० एण्डरसन ने यहाँ पर एक 'राष्ट्रीय थिएटर' नाम की संस्था की स्थापना की है। इसका उद्देश्य होगा, 'भारतवासियों द्वारा अङ्गरेज़ी में अभिनय कराना।' मि० एण्डरसन का प्रयास प्रशंसनीय है, क्योंकि अभी तक कुशल कलाकार भी अङ्गरेज़ी में अपना अभिनय-चातुर्य दिखाने का अवसर नहीं पाते थे। प्रसन्नता की बात यह है कि इस कार्य में उन्हें अनेक सम्भ्रान्त अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों से सहायता मिल रही है। श्री० जगदीश, श्री० पृथ्वीराज आदि जैसे प्रख्यात सिनेमा-स्टार भी इस कार्य में अपना सहयोग दे रहे हैं। हम मि० एण्डरसन के इस कार्य में हार्दिक सफलता चाहते हैं और उन्हें इसके लिए बधाई देते हैं।

कुछ भारतीय 'स्टार'

भारतीय सिनेमा-स्टारों के विषय में जनता को बहुत कम बातें ज्ञात होती हैं। इसके कई कारण हैं, जिनका उल्लेख इस स्थल पर करना असङ्गत होगा। हमें हर्ष है, कलकत्ते के 'Filmland' ने इस विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है। कुछ स्टारों का परिचय उसने इस प्रकार दिया है :—

श्री० विट्ठल—पूरा नाम 'विट्ठल रघुनाथ' है। जब उनकी माता यात्रा के लिए निकली थीं, तब उनका जन्म कोल्हापुर के निकट एक जङ्गल में हुआ था। वह फ़िल्मों में ठेके पर काम करते हैं और इस प्रकार लगभग १,५००) रु० मासिक की आय कर लेते है।

श्री० डी० बिलीमोरिया—पूरा नाम दीन शॉ रुस्तमजी बिलीमोरिया है। जाति पारसी है। पूना के निकट किरकी में पैदा हुए थे। ५००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० ई० बिलीमोरिया—ऐडी रुस्तमजी बिलीमोरिया पारसी हैं। डी० बिलीमोरिया के बड़े भाई हैं। वेतन ३००) मासिक है।

श्री० पृथ्वीराज—पूरा नाम पृथ्वीराज कपूर, बी० ए० है। संयुक्त प्रान्त में इनका जन्म हुआ था। मासिक वेतन ४५०) है।

श्री० पी० जयराज—श्रीमती सरोजिनी नायडू के एक सम्बन्धी हैं। सिकन्दराबाद जन्मभूमि है। ४००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० जाल मरचेन्ट—पारसी हैं। बरौदा जन्मभूमि है। ७५०) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० नवीनचन्द्र—असली नाम श्री० नरहरि एन० जोशी है। बरौदा जन्मभूमि है। ४००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० बच्चू—गुजराती हिन्दू हैं और काठियावाड़ से आते हैं। ३००) मासिक कमाते हैं।

श्री० जमशेद जी—मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुए थे। २००) मासिक वेतन पाते हैं।

श्री० नन्द्राम—कोल्हापुर जन्मभूमि है। ६००) मासिक वेतन है।

श्री० चन्द्रराउ—बम्बई जन्मभूमि है । २००) मासिक पाते है।

बड़ी गौहर—पूरा नाम गौहर के० कामाजी है। मुसलमान हैं। लाहौर जन्मभूमि है। १,९००) मासिक वेतन पाती हैं। श्री० रणजीत फ़िल्म कम्पनी की एक हिस्सेदार हैं।

छोटी गौहर—इन्होंने फ़िल्मों में काम करना अब छोड़ दिया है।

श्री० सीतादेवी—असली नाम 'मिस रेने स्मिथ' है। एङ्गलो-इण्डियन हैं। कलकत्ते में पैदा हुई थीं। २,०००) मासिक पाती हैं।

श्री० एरमैलीन—पूरा नाम 'मिस एरमैलीन कोरडाज़ो' है। ईसाई हैं। बम्बई जन्मभूमि है। ७५०) मासिक पाती हैं।

श्री० सुलोचना—असली नाम 'मिस रुबी मायर्स' है। एङ्गलो-इण्डियन यहूदी हैं। पूना जन्मभूमि है। पहले टेलीफ़ोन ऑपरेटर थीं। २,०००) मासिक वेतन पाती हैं।

श्री० माधुरी—असली नाम 'मिस क्लेसन' है। एङ्गलोइण्डियन हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ८००) मासिक वेतन पाती हैं।

श्री० सविता देवी—असली नाम 'मिस आइरिश गैस्पर' है। एङ्गलो-इण्डियन हैं। कलकत्ते में पैदा हुई थीं।

श्री० लोनो—ईसाई हैं। बम्बई की ही रहने वाली हैं। ३००) मासिक वेतन है।

श्री० जुबैदा—सूरत के निकट पैदा हुई थी। मुसलमान हैं। फ़ातमा और सुलताना की बहिन हैं। २,०००) मासिक पाती हैं।

श्री० जिल्लू—कच्छी मेमन मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ८००) मासिक पाती हैं।

श्री० ज़ेबुन्निसा—मुसलमान हैं। बम्बई में पैदा हुई थीं। ६००) मासिक वेतन है।

श्री० शान्ताकुमारी—दक्षिणी। बम्बई मे पैदा हुई थीं। कृष्णा-कम्पनी में काम करती हैं और वेतन ७००) मासिक पाती हैं।

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय डाइरेक्टर मिश्र

फ़िल्मों के प्रेमियों को और विशेषकर संयुक्त-प्रान्त-निवासियों को, यह पढ़ कर दुःख होगा कि डाइरेक्टर भगवतीप्रसाद मिश्र का कुसमय में देहान्त हो गया। संयुक्त-प्रान्त ने श्रीयुत मिश्र के अतिरिक्त अभी तक कोई फ़िल्म-डाइरेक्टर उत्पन्न नहीं किया, इसलिए हमारे लिए यह और भी दुःख की बात है।

श्रीयुत मिश्र का जन्म बनारस में कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुटुम्ब में हुआ था। आपने अपना विद्यार्थी-जीवन



स्वर्गीय श्री० भगवतीप्रसाद मिश्र

बनारस में ही व्यतीत किया था और हिन्दू-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। आपकी रुचि ललित कलाओं की ओर अधिक थी, अतः आपने चित्रकला का विशेष अध्ययन किया। जब असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ, तो आपने उसमे भी भाग लिया।

जब श्रीयुत मिश्र बम्बई आए, तो पहले आपने श्री० आर्देशिर ईरानी की 'स्टार' फ़िल्म-कम्पनी में चित्रकार का काम पाया। आप बड़ी ख़ूबी के साथ फ़िल्मों

के पोस्टर बनाया करते थे। परन्तु आपको अपनी प्रतिभा अन्य क्षेत्रों में भी प्रगट करनी थी, अतः आप वहीं रह कर ऐक्टिङ्ग आदि का अभ्यास करते रहे। कुछ दिनों बाद 'विजय' नामक फ़िल्म में आपको एक छोटा-सा पार्ट दिया गया। इसके बाद दूसरा फ़िल्म, जिसमें आपने काम किया, था 'वीर दुर्गादास'। इस फ़िल्म से आपका नाम बढ़ने लगा। कुछ दिनों के बाद नवल गाँधी के दो फ़िल्म 'मुम्बई की शेठाणी' तथा 'शाहजहाँ' में भी आपने प्रमुख काम किया। इसके बाद आपने और मे० जगतप ने मिल कर स्वतन्त्ररूप से, 'दक्षिण का आकाश' नामक फ़िल्म बनाया, जिसमें मिस जिलू ने प्रमुख काम किया था। उसके बाद श्रीयुत मिश्र का जीवन फ़िल्म-डाइरेक्टर की भाँति व्यतीत हुआ। कुछ दिनों आपने रॉयल आर्ट स्टुडिओ में काम करके फिर इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उसे अपनी मृत्यु-पर्यन्त स्थिर रक्खा। हाँ, केवल कुछ दिनों के लिए 'ज़ारीना' फ़िल्म कम्पनी के साथ आपने एक फ़िल्म बनाया था। इम्पीरियल के साथ आपने 'पहाडी पिंढारा', 'अलादीन', 'बदला', 'क़ातिल हार', 'कमलाकुमारी', 'एक अबला', 'राजरमणी', 'मेवाड का मोती', 'चैलेञ्ज', 'सिनेमा-गर्ल' आदि बे बोलते फ़िल्म तथा 'द्रौपदी', 'यौवन', तथा 'सती मदालसा' ये तीन बोलते फ़िल्म बनाए हैं। 'सती मदालसा' आपकी अन्तिम कृति है। इसीके बनाने के समय आपको न्यूमोनिया हो गया, जिसके कारण आपका देहान्त हो गया।

आपका विवाह तो बाल्यावस्था ही में हो चुका था, परन्तु पीछे से पत्नी का देहान्त हो गया। इधर इम्पीरियल की स्टार मिस अर्मलीन से आपका बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गया था। यहाँ तक कि मिस अर्मलीन ने श्रीयुत मिश्र की स्मृति में हिन्दू-धर्म स्वीकार करके अपना नाम सुधाबाला रख लिया है। आप अपने पीछे अपनी वृद्ध माता, बहिन तथा अनेक मित्रों को छोड़ गए हैं। आपके निधन से भारतीय फ़िल्म-संसार की बड़ी क्षति हुई है। परमात्मा आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

❁ ❁ ❁

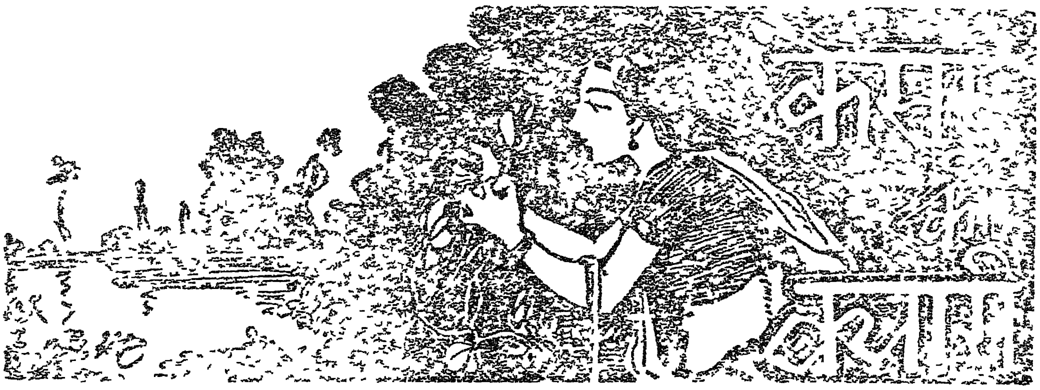
'अयोध्या का राजा'

प्रभात कम्पनी के फ़िल्म 'अयोध्या का राजा' के विषय में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह फ़िल्म कई बातों में बहुत श्रेष्ठ है, परन्तु इसकी अत्यधिक प्रशंसा का यह फल होगा कि कम्पनी उसके दोषों पर बिलकुल ही ध्यान न देगी। वास्तविक कथा को कई स्थानों पर तोड़-मरोड़ डालना, काशी का ग़लत चित्र खींचना, ग़ुलाम-विक्रय की प्रथा को फ़िल्म में दिखाना, तथा विश्वामित्र के एक शिष्य का मूर्खतापूर्ण मज़ाक़ आदि बातें ऐसी हैं, जो कभी भी क्षमा करने योग्य नहीं हैं। हमें आशा है कि जहाँ प्रभात कम्पनी इस फ़िल्म की प्रशंसा से उत्साहित हो, वहाँ इन भद्दी भूलों को अपने आगामी फ़िल्मों में सुधारने का प्रयत्न करे।

मंगल-कामना

[श्री० रामचन्द्र जी शुक्ल 'सरस']

लीन्हे छत्र चँवर सदाई सङ्ग राजै जय, विजय विराजै जौ पराजय हरयौ करै।
'सरस' बखानै मञ्जु मुख मुसुकानि कानि, कलित कृपा की बानि कलुष दरयौ करै।
दुति दसनावलि की दीपति दिगन्तनि लौं, विपति घनाली कौ घनौतम गरयौ करै।
बीरबर पारथ महारथ कौ सारथ सो, सारथ हमारौ पुरुसारथ करयौ करै॥



नज़र उनकी फिरी तो फिर हुआ क्या, ज़मीं पर गिर पड़े हम आस्माँ से !

आस्माँ

शरफ़[1] बख़शा यह किसके नक़्शे-पा[2] ने,
ज़मीं दबती नहीं है आस्माँ से !

उड़ाई ख़ाक यूँ दश्ते[3] जुनूँ की,
ज़मीं मिल-मिल गई है आस्माँ से ।

—'नूह' नारवी

वह क्यों बिगड़े मेरे शोरोफ़ुग़ाँ[4] से,
शिकायत उनसे थी या आस्माँ से ।

—'हसरत' मोहानी

हमारे मुन्तशिर[5] ज़र्रों दिल को,
सितारे भाँकते हैं आस्माँ से ।

—'अमीन' सलोनी

छुड़ाया हाथ किसको आशियाँ[6] से,
कि एक तारा सा टूटा आस्माँ से !

—'माजिद' इलाहाबादी

हसीं तुममें है, उनमें हैं सितारे,
ज़मीं टेढ़ी न होना आस्माँ से ।

—'शफ़ीक़' लखनवी

तेरे जौरो[7] सितम भी ऐ सितमगर,
तजावज़[8] कर गए हैं आस्माँ से ।

—'बिरयाँ' इलाहाबादी

अगर मैं काम लूँ आहोफ़ुग़ाँ से,
ज़मीं पर आग बरसे आस्माँ से ।

फ़ना[9] के बाद बातें कर रही है,
हमारी ख़ाक उड़ कर आस्माँ से ।

नज़र उनकी फिरी तो फिर हुआ क्या,
ज़मीं पर गिर पड़े हम आस्माँ से !

—'बिस्मिल' इलाहाबादी

आशियाँ

पयाम[10] आया है कुछ बर्क़े-तपाँ[11] से,
लिपट कर रो रहा हूँ आशियाँ से !

फ़लक से देखता सूए ज़मीं क्यों,
मगर मजबूर हूँ मैं आशियाँ से ।

—'इशरत' बलरामपुरी

कहा बुलबुल ने है यह बदशगूनी,[12]
गिरे जाते हैं तिनके आशियाँ से !

—'शफ़ीक़' लखनवी

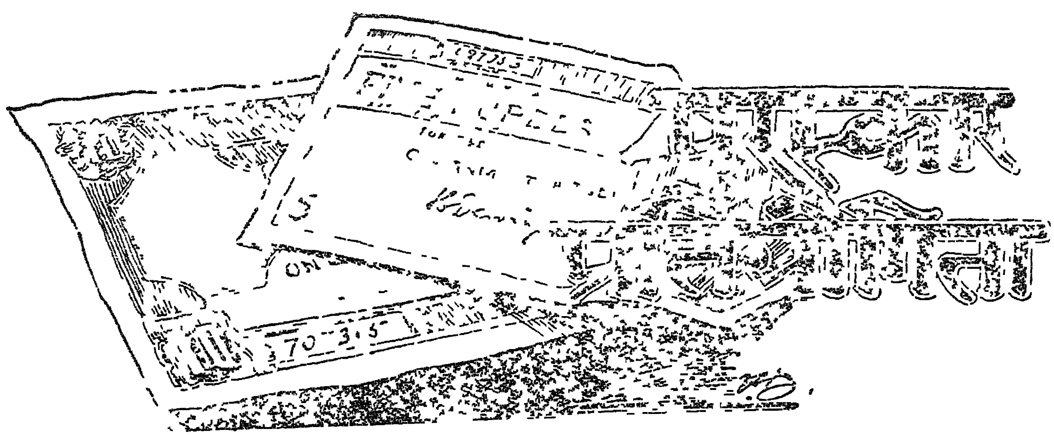
जो थर्रा कर गिरी बर्क़ आस्माँ से,
वह खुल खेली हमारे आशियाँ से ।

जला कुछ इस तरह बर्क़े तपाँ से,
नहीं उठता धुआँ तक आशियाँ से ।

नज़र में है फरेबे रङ्गे गुलशन,[13]
क़फ़स[14] को देखता हूँ आशियाँ से ।

१—मरतबा, २—पाँव का निशान, ३—जङ्गल, ४—कराहना, ५—बिखरे हुए, ६—घोंसला, ७—ज़ुल्म ८—बढ़ जाना ।

९—नाश होने पर, १०—पैग़ाम, ११—तड़पती हुई बिजली, १२—मनहूस, १३—बाग़, १४—पिंजड़ा ।



इस मास की दो पहेलियाँ

पुरस्कार प्रतियोगिता के प्रेमी पाठकों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि इस मास के 'चाँद' में हमने दो पहेलियाँ दी हैं। प्रथम पहेली का ठीक उत्तर देने वाले 'चाँद' के ग्राहक को दो वर्ष तक 'चाँद' बिना मूल्य दिया जाएगा और द्वितीय पहेली का ठीक उत्तर देने वाले 'चाँद' के ग्राहक को २५) नक़द पुरस्कार-स्वरूप दिए जायँगे। दोनों पहेलियों के नियम नीचे पढ़िए :—

नियम

१—यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठकों के लिए है। जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक हैं, उन्हें कूपन पर अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। प्रत्येक ग्राहक जितने उत्तर चाहे भेज सकता है। एक उत्तर तो निःशुल्क होगा, परन्तु उसके बाद के उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजने की आवश्यकता है। जो 'चाँद' के स्थायी ग्राहक नहीं हैं, उन्हें पहले उत्तर के साथ ।॥) तथा शेष उत्तरों के लिए प्रत्येक उत्तर के साथ ।) का टिकट भेजना चाहिए।

२—प्रत्येक पहेली का उत्तर अलग-अलग काग़ज़ों पर लिखा होना चाहिए। एक ही काग़ज़ पर लिखे हुए उत्तरों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

३—पहली पहेली। इसमें भाग लेने वालों को 'चाँद' के इस अङ्क में प्रकाशित सभी विज्ञापनों को सावधानी से पढ़ कर यह बताना होगा कि उनमें से कौन से दस विज्ञापन ऐसे हैं, जो जनता को चीज़ ख़रीदने के लिए विशेष रूप से आकर्षित कर सकते हैं। इसके बाद उन्हें उन दस विज्ञापनों को श्रेष्ठता के विचार से कूपन के ख़ानों में रखना चाहिए; जो सब से अच्छा है, वह पहले में और उसके बाद का दूसरे में, आदि। पाठकों को यह याद रखना चाहिए कि प्रतियोगिता में 'चाँद' प्रेस के विज्ञापन सम्मिलित नहीं हैं। (उनके लिए आगे चल कर दूसरी प्रतियोगिता होगी।) ख़ानों में विज्ञापनों के पते का प्रथम अंश लिखा जाना चाहिए। जैसे—सुखसञ्चारक कम्पनी, ओकासा कम्पनी आदि।

४—एक विज्ञापनों से सम्बन्ध रखने वाले सज्जन ने इन विज्ञापनों में से दस को चुन कर सूची हमारे पास भेज दी है। जिस पाठक का उत्तर हमारे पास रक्खी हुई सूची से मिल जायगा, उस पाठक या पाठकों को दो वर्ष तक 'चाँद' बिना मूल्य दिया जायगा। जो ग्राहक नहीं हैं, उन्हें 'चाँद' एक वर्ष तक मुफ्त मिलेगा। यदि कोई उत्तर ठीक न होगा तो सब से कम अशुद्धियों वाले उत्तरदाता को, ग्राहक होने पर एक वर्ष तक और ग्राहक न होने पर ६ मास तक 'चाँद' मुफ़्त मिलेगा।

५—दूसरी पहेली। इसमें भाग लेने वालों को नीचे दिए हुए पहेली नं० २ के ख़ानों की पूर्ति करनी चाहिए। सहायता के लिए तालिका भी नीचे दी हुई है।

६—पहेलियों के उत्तर हमारे पास आगामी १५ अक्टूबर तक अवश्य आ जाने चाहिएँ। इसके बाद के आए हुए उत्तरों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

७—उत्तर सादे कागज़ों पर या दो पोस्टकार्डों पर अलग-अलग आने चाहिएँ। परन्तु कृपा करके उत्तर के साथ कोई पत्र न रखिए। उत्तर की एक नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या संशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जाएगा।

८—दोनों पहेलियों का या केवल एक ही पहेली का उत्तर देना, उत्तरदाता की इच्छा पर निर्भर है।

९—दूसरी पहेली का जो उत्तर हमारे उत्तर से मिलेगा, उसके प्रेषक को २५) नक़द मनिऑर्डर कमीशन काट कर भेज दिए जाएँगे। यदि एक से अधिक उत्तर ठीक होंगे, तो पुरस्कार की रकम उत्तरदाताओं में बराबर बाँट दी जायगी।

१०—निर्णय का सम्पूर्ण अधिकार प्रतियोगिता-सम्पादक को है।

११—चाँद प्रेस, लिमिटेड के कर्मचारियों को इसमें भाग लेने का अधिकार नहीं है।

१२—पहेलियों के उत्तर नीचे लिखे पते से आने चाहिएँ :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग,

चाँद प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद

या—The CHAND Puzzle Deptt.

The Chand Press, Ltd.,

Allahabad.

कूपन (पहेली नं० १)

१	
२	
३	
४	
५	
६	
७	
८	
९	
१०	

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

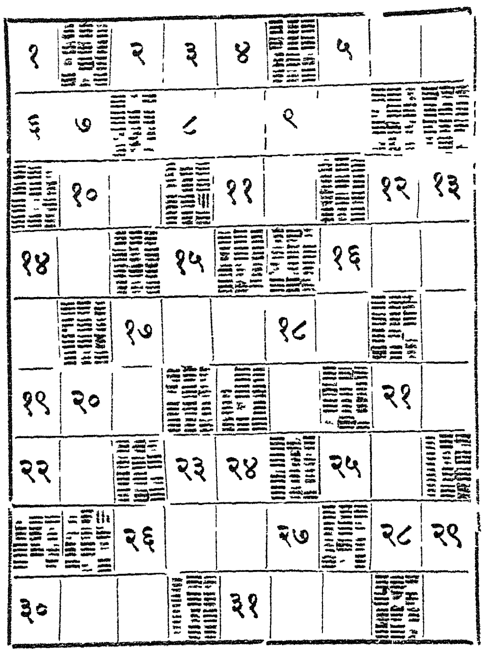
ग्राहक नं० ————

नाम ————

पूरा पता ————

————

कूपन (पहेली नं० २)



तालिका

सीधे (Across)

२—मुलायम।
५—प्रत्येक मनुष्य खाता है।
६—जी।
८—एक नदी।
१०—रया का अशुद्ध शब्द।
११—पैगम्बर
१२—केवल राजा के पास होता है।
१४—मदार।
१६—एक बाजा।
१७—हिन्दी का एक प्रसिद्ध पत्र।
१९—जो मुक़दमा लड़ता है
२१—हृदय।
२२—जो क़लाबाज़ी करता है।
२३—अङ्गरेज़ी तोल की एक नाप।
२५—पुरुष।
२८—उसमें रक्त बहता है।
३०—कृषक
३१—रत्न का अशुद्ध रूप

ऊपर से नीचे (Down)

१—गीला
३—एक अङ्गरेज़ी शराब का नाम।
४—बड़ा।
५—दरिया।
७—जहाँ पापी मनुष्य जाता है।
९-११—सीधा (Across)
१२—एक प्रकार की गुड़ की मिठाई।
१३—तालाब, कुआँ इत्यादि
१४—जीवन भर
१५—नया
१६—देह
१७—एक राजा
१८—जङ्गल
२०—कौड़ा
२१—मृग
२३—घण्टी का शब्द
२४—गद्य का उर्दू शब्द
२६—दौलत
२७—राय
२९—सूर्य का अङ्गरेज़ी शब्द।

पिछली पहेली का परिणाम

१—ठीक उत्तर इस प्रकार हैः—

१	महामाया
२	राधारानी
३	मणिमोहन
४	भजनलाल
५	ब्रजकिशोरी
६	अट्टालिका
७	महावीर

निम्नलिखित देवियों के बिलकुल सही उत्तर प्राप्त हुए हैं, अतः उन्हें 'चाँद' ढाई-ढाई वर्ष के लिए मुफ़्त भेजा जायगा :—

१—श्रीमती लक्ष्मीदेवी, धनबाद (बिहार)
२—श्रीमती विमलादेवी, दालबन्दीन (बलोचिस्तान)

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

अल्लाह मियाँ की इस पुरानी झोली में बदनसीबों की कमी नहीं; एक से एक शतधा-विदीर्ण तक़दीर वाले जीव इसमें पड़े हुए हैं। परन्तु ख़ुदा झूठ न बुलवाए, इस सम्बन्ध में हमारे पूज्यपाद दादा सनातनधर्म की होड़ कोई माई का लाल नहीं कर सकता, चाहे उसकी तक़दीर फूट कर चूर-चूर हो गई हो अथवा संसार-चक्र के आवर्त्त मे पड़ कर पिसान हो गई हो।

❀

बात यह है कि गुजरात प्रान्त की एक ब्राह्मण-कुमारिका ने अपने बूढ़े सनातनी बाप की आज्ञा और अनुमति के विरुद्ध, अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार अपने लिए वर चुन कर, दादा सनातनधर्म की जरा-जीर्ण कमर पर एक ऐसा पूरे सवा मन का ध्योंसा जमा दिया है कि बेचारे कमर थाम कर बैठ गए हैं और लक्षणों से मालूम होता है कि अगर स्वयं बाबा ज्ञाना-नन्द भी, साल दो साल अङ्गूर के मुरब्बे के साथ चन्द्रोदय सेवन करके ज़ोर लगावे तो भी दादा जी की कमर सीधी न होगी।

❀

उपर्युक्त कुमारी के धर्मप्राण पिता ने अपनी कन्या के इस धर्म-विरुद्ध कार्य में यथाशक्ति बड़ी-बड़ी बाधाएँ उपस्थित कीं; अपने परम प्रिय धर्म-भगवान को इस आसन्न-विपद् से बचाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया; परन्तु कमबख़्त लड़की है कि आफ़त की परकाला! पूज्य पिता की ज़रा भी दाल नहीं गलने दी, बेचारे कन्यादान के महापुण्य की बदौलत स्वर्ग-सुख की कल्पना ही करते रह गए और लड़की ने अपने मनोनीत पति से वैदिक विधि के अनुसार पाणिपीड़न करा लिया!

❀

इसीलिए तो अपने राम ने जब से होश सँभाला और लँगोटी बाँधना सीखा, तभी से चिल्ला रहे हैं कि बाबा, अगर अपना और धर्म का भला चाहते हो तो लड़कियों को ककहरा के करीब भी मत जाने दो, उनके चेहरे को धर्मध्वंसी मुक्त वायु के स्पर्श से सतर्कतापूर्वक बचाए रक्खो, नहीं तो दादा सनातनधर्म की अवशिष्ट एकमात्र टाँग भी टूट जाएगी और धर्मधुरन्धरों के हाथों में रह जायँगे केवल कठिन कठोर दो अदद सींग और मुट्ठी भर पशमों का गुच्छा यानी पूँछ!

❀

ख़ैर, आइए, एक ख़ुशख़बरी सुनाएँ। घटना अवश्य कुछ पुरानी है, परन्तु उसके महत्त्व को ज़रा भी रेप नहीं लगी है। साथ ही इससे आपको यह भी मालूम हो जाएगा कि अगर एक ओर कुछ लोगों ने धर्म-भगवान को उलटे छुरे से मूँड़ना आरम्भ कर दिया है, तो दूसरी ओर उनके एक से एक धुरन्धर रक्षक भी मौजूद हैं। किसी ने क्या ख़ूब कहा है कि—

दुश्मन अगर क़वीस्त तो निगहबाँ क़वीतरास्त !*

❀

श्री० पाँचू चौधरी धोबी दानापुर के 'मुन्शीपाल' बोर्ड के कमिश्नर हैं। उस दिन बोर्ड के एक बचकाने अधिवेशन में हज़रत महामहिम्वित चेयरमैन साहब के सामने एक चेयर (कुर्सी) पर जा बैठे! चेयर के प्रति चौधरी की यह चपलता, भला चेयर के महत्त्व को समझने वाले चेयरमैन साहब कैसे बर्दाश्त कर जाते! आपने चट चौधरी को चेयर छोड़ कर बेञ्च पर बैठ जाने की आज्ञा दी!

❀

---

*शत्रु अगर बलवान है तो रक्षक उससे भी बलवान है।

बड़ी ख़ैरियत हुई ! चतुर चेयरमैन की उपस्थित बुद्धि ने चेयर को चौधरी के चाप से बचा लिया, नहीं तो बेचारी को इहजीवन में जाति-च्युत होकर जीना पड़ता और मरने पर नरक में जाती। हिन्दुत्व की मर्यादा बेचारी की क्या दशा होती, इसकी तो कल्पना ही कलेजे में कण्डुअन पैदा कर देती है। किसी ने सच कहा है कि 'चाम की महिमा चमार ही समझता है।' लेहाज़ा चेयर की महिमा भी अगर चेयरमैन की समझ में आ गई तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

❀

परन्तु कुछ भी हो, अपने राम की राय में तो चेयरमैन और चौधरी, दोनों ही 'मल-हर' हैं। एक का काम है कपड़ों की मैल दूर करना और दूसरे का रास्ते और गली-कूचों का ! किसी म्युनिसिपल बोर्ड का चेयरमैन अगर अपने को धोबी से उच्च और अधिक प्रतिष्ठित समझता है, तो यह उसकी मूर्खता है—उसके मन में जमी हुई पुश्त-दरपुश्त की मैल का यह प्रभाव है। इस मल को दूर करने के लिए अख़बार वालों को हलाल-ख़ोरी करने की ज़रूरत नहीं। युगधर्म का झाड़ू पड़ते ही ऐसी खोपड़ियों की मैल अपने आप दूर हो जायगी।

❀

दूधों नहायँ और पूतों फलें, रामपुर स्टेट के वे धर्म-धुरन्धर हिन्दू, जिन्होंने अभी हाल में ही अपने देवता को चार सौ चमारों के नेत्र-स्पर्श से बाल-बाल बचा लिया है ! अन्यथा आज एक देवता की जान मुफ़्त में चली जाती। चमार-चक्षु-स्पर्श के कारण बेचारे की पवित्रता गदहे के सींग की तरह ग़ायब हो जाती। देवता जो न घर के रह जाते और न घाट के ! लेहाज़ा बड़ी बात हुई जो बेचारे आकाल मृत्यु से बच गए !

❀

अब ज़रा इन चमारों की स्पर्धा तो देखिए। हमारे पूज्यपाद महामना मालवीय जी ने अपना युग-युगान्तर-सञ्चित मन्त्रागार खोल दिया है और दोनों हाथों से 'ॐ नारायणाय' तथा 'नमः शिवाय' लुटा रहे हैं, तो भी ये कमबख़्त अछूत हमारे देवताओं के पीछे पड़े हुए हैं। आख़िर, देव-दर्शन का उद्देश्य मुक्ति ही तो ठहरा। सो जनाब, इसका प्रशस्त पथ तो मालवीय जी ने खोल ही रक्खा है। फिर आए दिन का यह तूफ़ाने-बेतमीज़ी क्यों ?

❀

हिन्दुओं ने प्रचुर दूध-मलाई और मालपूआ आदि का भोग लगा-लगा कर अपने देवता को पाल रक्खा है। बेचारों में कितने ही ऐसे हैं, जिनके बाल-बच्चों को भादों की झड़ी से बचने के लिए एक अच्छा फूस का झोंपड़ा भी नहीं, परन्तु देवता के आरामो-आराइश के लिए उन्होंने पक्के मन्दिर बनवा रक्खे हैं। दिन-रात उनकी शोभा और उनके सौन्दर्य की वृद्धि के उपायों में लगे रहते हैं। ऐसी हालत में अगर वे उन्हें अछूतों के दृष्टि-स्पर्श से बचाए रखते हैं, तो क्या बुरा करते हैं ? ख़ुदा न करे, अगर कहीं किसी अछूत की नज़र लग जाएगी तो राई-नून क्या आपके घर से आएगा ?

❀

मगर ये अछूत हैं कि दईमारे मानते ही नहीं। बस, इसी ज़रा सी बात पर रूठ कर मुसलमान होने जा रहे हैं ! चलो, अच्छा ही रहेगा। देवताओं के शत्रुओं की संख्या कम हो जाएगी। बला से चार ही सौ सही। अहा ! देवता जी ने जब सुना होगा कि उनका दर्शन न कर सकने के कारण रामपुर स्टेट के चार सौ चमार मुसलमान होने जा रहे हैं तो वल्लाह, उनकी बाछें खिल गई होंगी और ख़ुशी के मारे उन्होंने अपनी देवताइन जी का मुँह चूम लिया होगा।

❀

चार ही सौ क्यों, हमारी तो राय है कि अगर देश भर के सभी अछूत मुसलमान या ईसाई हो जाएँ तो हमारे देवताओं के सर से बड़ी भारी बला टल जाए। बेचारे सुख की नींद सोवें और जब तक जिएँ, तब तक चैन की वंशी बजाते रहें ! उनके साथ ही उनके जानो-माल के ठीकेदार—उच्च जाति के हिन्दूगण भी निश्चिन्त हो जाएँ और दादा सनातनधर्म की चिकनी चाँद वर्षा का पानी पाए हुए दूर्वादल के मैदान की तरह लहलहा उठे !

❀

मगर महामना मालवीय जी न मानेंगे। क्योंकि उन्होंने अछूतों को बिना खेवा-उतरारी के ही वैतरणी पार करने के लिए अपनी बुढ़ौती के कारण किञ्चित् ख़मीदा कमर को स्वदेशी आबेरवाँ के दुपट्टे से अच्छी तरह कस लिया है। काशी में अछूतों के लिए बाबा विश्वनाथ के सौतेले भाई (?) बाबा अण्डकटाहनाथ की स्थापना कराने वाले हैं। परन्तु काशी के बूढ़े विश्वनाथ

बाबा मालवीय जी के गर्भस्थ अखण्डकटाहनाथ बाबा से रोटी-बेटी का सम्बन्ध रक्खेंगे या नहीं, इस प्रश्न पर शायद पीछे विचार कर लिया जायगा। अथवा इसके निर्णय का भार दादा मुग्धानल देव को सौंप दिया जाएगा। क्योंकि साम्प्रदायिक 'निर्णय' में आपने अपनी निष्पक्षता का पूरा परिचय दिया है।

❀

मगर अपने राम चूँकि क़ाफ़िले से दो क़दम आगे ही बढ़े रहने के पक्षपाती है। इसलिए इनकी शुभ-सम्मति तो यह है कि काशी मे नए अखण्डकटाहनाथ की स्थापना कराने के बदले अगर मालवीय जी अछूतों के लिए एक नए ईश्वर की ही सृष्टि कर डाले तो सदैव के लिए झञ्झट ही मिट जाए। क्यों? जो विश्वनाथ के एक नए प्रतिद्वन्दी की कल्पना कर सकता है, उसके लिए एक नया ईश्वर गढ़ कर रख देना कौन सी बड़ी बात है?

❀

हह्! आप मुस्कुरा क्यों रहे हैं! अजी हज़रत, आपको मालूम नहीं, जब महर्षि विश्वामित्र जी के पट्ट शिष्य हिज़हाईनेस राजा बहादुर त्रिशङ्कु जी को देवताओं ने अपने स्वर्ग में घुसने नहीं दिया तो महर्षि ने उनके लिए एक नए स्वर्ग की नींव डाल दी! नारियल, सुपारी, साँवा, कोदो—और न जाने क्या-क्या रच डाला! ब्रह्मा बाबा अपने चारों मुँह बाकर हक्के-बक्के से रह गए और देवताओं को भी लेने के देने पड़ गए!

❀

विश्वामित्र जी ने राजर्षि से ब्रह्मर्षि की डिग्री प्राप्त की थी—वशिष्ठ बाबा ने बड़ी-बड़ी कठिन परीक्षाओं के बाद उन्हें ब्रह्मर्षि का सर्टीफ़िकेट प्रदान किया था, और तब कहीं जाकर वे स्वर्ग-निर्माण के लिए पक्के इञ्जीनियर बन सके थे। परन्तु हमारे महामना जी तो, चश्मेबद्दूर, 'बॉर्न ब्रह्मर्षि' है। वे तो अगर चाहें तो चुटकी बजाते-बजाते दर्जनों ईश्वरों की सृष्टि कर डालें। ऐसे ही सर्व-शक्तिमान महापुरुषों के लिए बाबा तुलसी-दास की कविता मे थोड़ा सा इज़ाफ़ा करके एक सज्जन फ़रमा गए हैं :—

समरथ को नहिं दोस गुसाईं, चाहे कूदि परइँ भरसाईं!

❀

लेकिन अफ़सोस तो यह है कि अछूतों को सीधे स्वर्ग भेजने के लिए ऐसी-ऐसी आसान और लाजवाब तदबीरों के मौजूद रहते हुए भी कुछ मद्रासियों ने अस्पृश्यता दूर करने के लिए एक कमिटी गढ़ डाली है! धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में उच्च वर्ण के हिन्दुओं ने अनादि काल से जो मौरूसी हक़ हासिल कर रक्खा है, उसी में अछूतों को भी शरीक कर लेने की सोलहों आने 'ग़ैर क़ानूनी' तदबीरें हो रही हैं। परन्तु उच्च जाति के हिन्दुओं के दिलों में अपने धर्म के प्रति जो अटल आस्था है, उसके अपने राम कायल हैं।

❀

किसी अछूत के सुन्नत करा कर रामटहल से मौलवी फ़रज़न्दअली बन जाने पर हिन्दू उसे अपनी बग़ल में बिठा लेंगे। चौधरी पाँचू धोबी अगर बपतिस्मा लेकर रेवरेण्ड पञ्चमसिंह बन जाएँ तो दानापुर के चेयरमैन साहब उनसे हाथ मिला कर अपने को गौरवान्वित समझेंगे। परन्तु जब तक उनके सर पर चोटी रहेगी, तब तक अपने पवित्र कुँओं पर उनकी परछाईं भी नहीं पड़ने देंगे!!

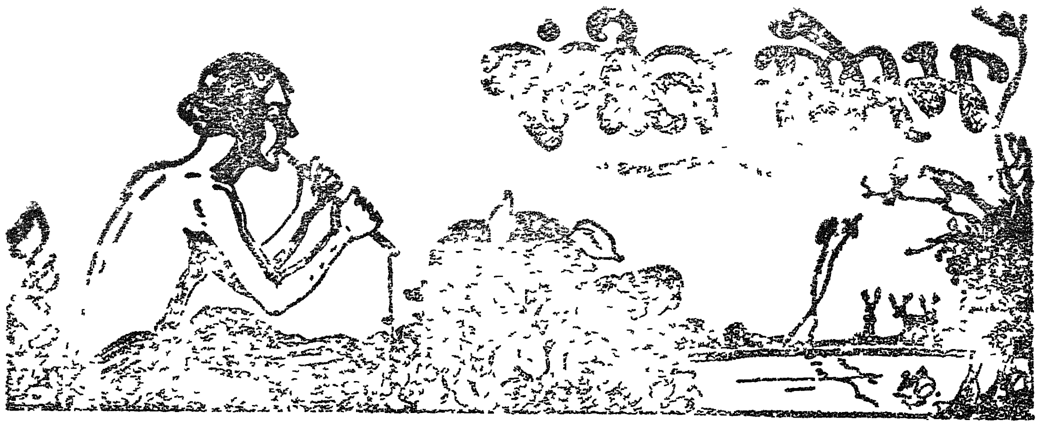
❀

भई, सच पूछो तो अपनी इसी धार्मिकता के कारण परिवर्तन की ठोकरें खाकर भी यह जाति अभी तक जीवित है। चपत पड़ते-पड़ते चपतगाह, पॉलिश किए हुए जूते की तरह चिकनी और चमकीली बन गई है, माशाअल्लाह, ऐसी चिकनी, कि अगर मक्खी बैठ जाए तो फिसल कर मुँह के बल गिर पड़े, परन्तु अभी तक वह पुरानी आन-बान और शान में बाल बराबर भी अन्तर नहीं आने पाया है। जैसे—

फूलइ फरइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद!

❀

अभी महीना भर भी नहीं बीता होगा, बदायूँ के मुहल्ला जालन्धरी सराय के एक मौलवी साहब के मकान में आग लगी। मर्द तो खैर, किसी तरह कूद-फाँद कर बाहर निकल आए, परन्तु बाहर निगोड़े मर्दुओं का ठट्ट लगा था, बेचारी पर्दानशीन औरते उनके सामने कैसे आएँ? लेहाज़ा वह अन्दर ही जल कर भस्म हो गईं! जब मुसलमान स्त्रियाँ तक अपने शरीअत (धर्मशास्त्र) के नाम पर क़ुर्बान हो सकती हैं, तो हम हिन्दू क्या उन औरतों से भी गए-गुज़रे हैं! अरे, राम भजिए, ये कुत्तों की मौत मर जाएँ, पर धर्म न छोड़ें!!



[सम्पादक तथा स्वरकार — श्रीयुत नीलू बाबू]

विहाग तीन ताल

[शब्दकार—अज्ञात]

मात्रा १६

स्थायी—करम की नज़र कीजियो तुम ।
बड़े ग़रीब निवाज़,
हज़रत ख़्वाजा, राजन के राजा तुम ॥

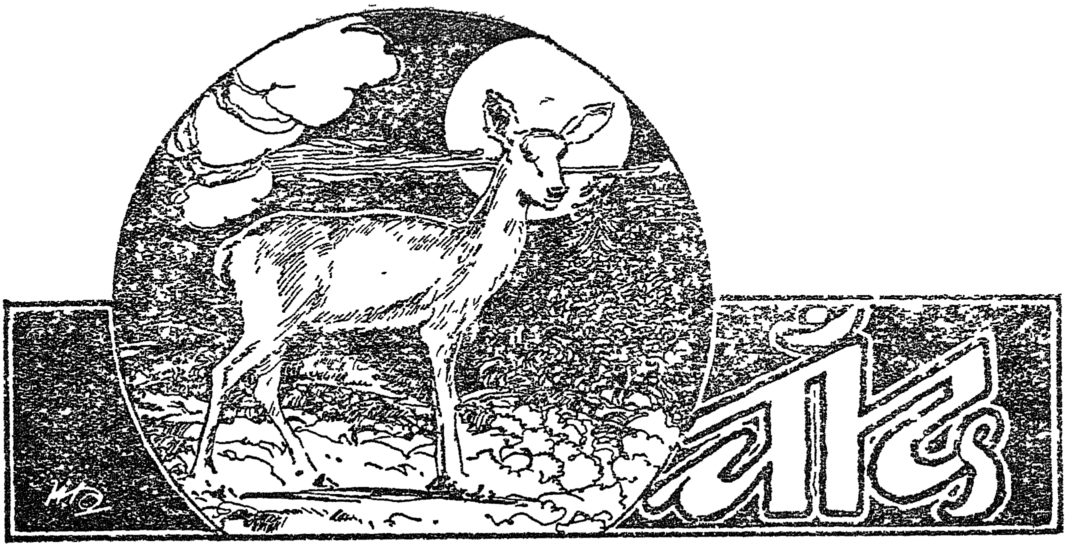
अन्तरा—दीन दुनि में नाम तिहारो,
रटत रहत सब निशि-दिन पल-छिन ॥

स्थायी

०				१				×				३			
स	ग	म	प	—	नि	ध	नि	सं	—	—	नि	ध	प	म	ग
क	र	म	की	—	न	ज़	र	की	—	—	जि	ओ	आ	तु	म
प	प	—	प	म (त)	प	ग	म	ग	—	—	—	स	स	नि	नि
ब	ड़े	—	ग	री	ई	ब	नि	वा	—	—	ज़	ह	ज़	र	त
स	—	ग	—	स	—	ग	म	प	म (त)	ग	म	ग	—	स	नि
ख़्वा	—	जा	—	रा	—	ज	न	के	ए	रा	आ	जा	—	तु	म

अन्तरा

प	—	नि	नि	सं	—	सं	—	ध	नि	सं	रें	सं	नि	सं	—
दी	—	न	दु	नि	—	में	—	ना	आ	म	ते	हा	आ	रो	—
स	गं	मं	गं	सं	नि	प	प	ग	म	प	म	ग	ग	स	नि
र	ट	त	र	ह	त	स	ब	नि	शि	दि	न	प	ल	छि	न



आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष १०, खण्ड २] | अक्टूबर, १९३२ | [संख्या ६, पूर्ण संख्या १२०

कामना

[प्रो० रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

यह अभिनव श्री विकसित हो,
तरु उमङ्ग से निर्मित कलिका, स्वप्न-रूप से मुकुलित हो,
यह अभिनव श्री विकसित हो !

चन्द्रकिरन का उज्ज्वल पावस,
बरस-बरस कर सस्मित हो।
तारो का अस्फुट शिशुपन,
लुक-छिप कर छवि पर विस्मित हो।
यह अभिनव श्री विकसित हो !

मेरे यौवन के वैभव से,
यह अनन्त श्री पुलकित हो।
मेरे जीवन से सदैव ही,
इसका जीवन परिचित हो।
यह अभिनव श्री विकसित हो !



चाँद

अक्टूबर, १९३२

भारतीय कृषक

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के ७१ प्रति सैकड़ा अधिवासी खेती-बारी द्वारा अथवा खेतो मे मज़दूरी करके जीवन-निर्वाह करते है। यह विशाल जन-समुदाय कितनी ही श्रेणियो मे विभक्त है। इसमे ऐसे भी व्यक्ति है, जिनके दरवाज़े पर सदा हाथी-घोड़े बँधे रहते हैं और जो चाँदी के बर्तनो मे भोजन करते हैं, और ऐसे भी है, जिनको कठोर शीत मे पेड़ के नीचे रात काटनी पड़ती है, घास-पात या निकृष्टतम अन्न से पेट भरना पड़ता है; और जिनकी दो गज़ की जीर्ण लँगोटी भली-भाँति लज्जा भी निवारण नहीं कर सकती। एक किसान वे भी है, जो हज़ार-पाँच सौ एकड़ भूमि के स्वामी है, और ऐसे भी लोग किसान कहलाते है, जिनके पास आधा बिस्वा ही ज़मीन है। पर जहाँ पहली तरह के किसान हज़ार मे एक मिलेंगे, दूसरी तरह के हज़ार मे चार पाँच सौ तक मिल जायँगे। सच पूछा जाय तो वर्तमान काल मे भारतीय कृषक के समान दरिद्र और दुर्दशाग्रस्त समुदाय संसार के किसी भी भाग या देश मे नही पाया जा सकता। वे यद्यपि समाज के अन्नदाता कहलाते है, पर उनको भोजन का उतना भी सुभीता नही है, जितना कि जङ्गल के पशु-पक्षियो को होता है।

भारतवर्ष की ६७ करोड़ एकड़ भूमि मे से क़रीब २२ करोड़ एकड़ प्रति वर्ष जोती-बोई जाती है और क़रीब ५ करोड़ एकड़ परती रहती है। शेष भूमि ऊसर, बञ्जर, जङ्गल आदि के रूप मे है। इस समस्त भूमि की स्वामी ब्रिटिश सरकार है, जिसने उसे कहीं जमींदारो को और कहीं किसानो को दे रक्खा है। पहली प्रथा को, जो विशेषतः बङ्गाल, बिहार और यू० पी० में प्रचलित है, ज़मींदारी कहते है, और दूसरी को, जो विशेषतः बम्बई, मद्रास आदि मे प्रचलित है, रैयतवारी। भूमिकर वसूल करने के भी दो तरीके जारी हैं। बङ्गाल, अवध के अधिकांश भागो और मद्रास के कुछ भागो मे भूमिकर सदा के लिए स्थायी रूप से नियत कर दिया गया है और शेष भागो मे प्रति तीस वर्ष के पश्चात् नया 'बन्दोबस्त' होता है।

आर्थिक दशा

भारतवर्ष में जितनी भूमि जोती-बोई जाती है, उसको यदि समस्त किसान-परिवारो में समान रूप से बाँट

दिया जाय तो प्रत्येक को प्रायः चार-पाँच एकड़ भूमि मिल सकती है। पर हम ऊपर लिख चुके हैं कि देश मे ऐसे भी किसान है, जिनके पास हज़ार-पाँच सौ एकड़ तक भूमि है। पञ्जाब मे ऐसे लोगो की संख्या काफ़ी है, जो अकेले हजारो एकड़ भूमि में खेती कराते है। दूसरे प्रान्तों के कितने ही जमींदार भी अपने लिए दो-चार सौ एकड़ खेती अलग करा लेते है। इन लोगों की भूमि को यदि पृथक् कर दिया जाय तो अधिकांश किसानो के हिस्से मे औसत हिसाब से दो-तीन एकड़ से अधिक भूमि नही आती। इतनी भूमि की पैदावार से एक परिवार का, जिसमे औसत हिसाब से पाँच व्यक्ति होते है, गुज़ारा हो सकना असम्भव होता है। इसलिए उनको अन्य प्रकार की मेहनत-मज़दूरी करके इस घटी की पूर्ति करनी पड़ती है अथवा जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं को अपूर्ण रखना पड़ता है।

कुछ समय पूर्व तक किसानो की वास्तविक आमदनी और ख़र्च के सम्बन्ध मे पढ़े-लिखे लोगो को किसी तरह का ज्ञान नही था। उनके कष्टो और उन पर होने वाले अन्यायो के सम्बन्ध में कभी-कभी समाचार-पत्रो मे चर्चा हुआ करती थी, पर किसी ने बाक़ायदा ढङ्ग से उनकी परिस्थिति की जाँच न की थी। अब दस-बारह वर्षों से कृषि-विभाग के कर्मचारियो और भिन्न-भिन्न यूनीवर्सिटियो के प्रोफ़ेसरों और छात्रो ने आधुनिक अर्थशास्त्र की दृष्टि से कुछ गाँवो की जाँच की है और जाँच के फल को पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया है। इस प्रकार की जाँच पञ्जाब, यू० पी०, बम्बई, मद्रास आदि सभी प्रान्तो से की गई है और उनकी रिपोर्टों का मिलान करने से विदित होता है कि कुछ ऊपरी बातो, रहन-सहन और खान पान मे अन्तर होने पर भी समस्त प्रान्तो के साधारण किसानों की आर्थिक दशा प्रायः एक समान ही है। उपर्युक्त ढङ्ग की जाँच लखनऊ यूनीवर्सिटी की तरफ़ से कुछ छात्रों ने अवध के गाँवो मे की थी। उससे पता लगता है कि गाँवो मे ऐसे परिवारो की, जिनकी आय ५००) सालाना से अधिक हो, संख्या २५ प्रति सैकड़ा से अधिक नही होती। ये परिवार प्रायः ठाकुर, ब्राह्मण, कायस्थ, कलवार और मुराव आदि जातियों के होते है। शेष ७५ प्रति सैकड़ा लोगों की आमदनी ५००) प्रतिवर्ष से कम होती है। इनमे से लगभग एक तिहाई ऐसे होते है, जिनको भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता। उक्त लेखकों ने ऐसे दो कुटुम्बों के आय-व्यय का हिसाब दिया है। एक व्यक्ति, जिसके तीन छोटी उम्र के बालक हैं, वर्ष भर मे कई प्रकार के कार्य करके ८१) पैदा करता है और दूसरा, जिसके परिवार में सात व्यक्ति हैं, १५४) पैदा करता है। पहले व्यक्ति का वार्षिक व्यय १३३) है, अर्थात् वह साल भर में ५२) का क़र्ज़दार हो गया। दूसरे व्यक्ति का १५८) है, अर्थात् वह किसी तरह अपनी आमदनी में परिवार का गुज़ारा कर लेता है। पहिले व्यक्ति का जीवन बड़ा दुखी है। उसके बच्चे सदा आधे भूखो रहते है, और प्रायः इधर-उधर माँगते फिरते है। वे लोग प्रायः ज़मीन पर ही सोते हैं। जाड़े में अगर तालुक़ेदार की मेहरबानी हो गई तो थोडा सा पयाल बिछाने को पा जाते है। ये बच्चे साल मे छः महीने बिलकुल नङ्गे रहते है। जाड़े मे अगर कोई दयालु किसान फटा हुआ कपड़ा दे देता है, तो उससे देह ढँक लेते हैं, अन्यथा आग ताप कर ठण्ड से बचते हैं। इन कारणों से वे हमेशा बीमार से और कमज़ोर दिखलाई पड़ते है। दूसरे व्यक्ति के घर में उसकी स्त्री और लड़कियाँ तथा लड़के काम करने लायक़ है और वे सब किसी न किसी तरह की मज़दूरी करके पेट भर लेते हैं।

उपरोक्त विवरण में तीन मध्यम श्रेणी के परिवारों का आय-व्यय भी दिया गया है। इनमें क्रमशः ६, ४ और ९ व्यक्ति है और ५, ३ और २ एकड़ खेती करते हैं। ये लोग खेती, दूकानदारी और नौकरी से सब मिला कर क्रमशः ४३८ ; २६५ और २५९ रुपए की आमदनी करते है। इनका व्यय क्रमशः ३२१ ; ४१४ और २७५ रुपया है। इनमे से पहले परिवार को छोड़ कर शेष दोनों का व्यय आमदनी की अपेक्षा अधिक है और इसलिए उनका क़र्ज़े का बोझा बढ़ता जाता है। ये सब लोग खाने और कपड़े पर बहुत कम ख़र्च करते है। मध्यम श्रेणी के परिवार वाले प्रत्येक व्यक्ति के भोजन का ख़र्च २) मासिक से कम होता है। अन्तिम श्रेणी वाले एक रुपए या इससे भी कम मे गुज़ारा करते है। शहरो के रहने वाले जो लोग हर रोज़ मिठाई, फल और चाट आदि में चार-छः आने ख़र्च कर देते है, इन अङ्को पर शीघ्र विश्वास न करेंगे। वे कहेगे कि इतने कम ख़र्च मे कोई व्यक्ति जीवित कैसे रह सकता है? पर उनको समझना चाहिए

कि जबकि शहर वाले चूरन-चटनी खाकर भूख बढ़ाने की चेष्टा किया करते है, गाँवो के ग़रीब लोग भूख को दबाने और किसी तरह उसको शान्त कर देने की चेष्टा किया करते है। वे लोग प्रायः खेतो और बागो से कच्चा अन्न और फल आदि खाकर बहुत सा समय निकाल देते है। आम और जामुन की फ़सल मे वे लोग इन चीजों से पेट भर लेते है और केवल एक बार थोड़ी सी रोटी खाते हैं। ग़रीब लोग आम की गुठली को भी भून कर खा जाते हैं, जो बहुत देर मे पचती है। धान का कना और भूसा भी इनसे नहीं बचता और उसे भी ये पेट मे डाल लेते हैं। इसके सिवाय वे जङ्गल से कितने ही तरह के फल, जैसे बेर आदि, पत्ते और जड़ आदि संग्रह करके उनमे भी भूख मिटा लेते है। इस तरह चाहे जिस चीज़ को पेट में डाल लेने का प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर अच्छा नहीं पड़ता और वे प्रायः काहिल और निस्तेज हो जाते हैं।

खेतों का टुकड़ों में बाँटा जाना

भारतीय कृषकों की उपरोक्त आर्थिक दुर्दशा के कितने ही कारण हैं। यह तो हम ऊपर बतला ही चुके है कि किसानों के पास आमतौर से जितनी भूमि होती है, वह उनके गुज़ारे के लिए काफ़ी नहीं होती। पर यह भूमि भी ऐसे बेढङ्गे तरीक़े की होती है कि किसान का बहुत सा परिश्रम व्यर्थ ही जाता है। वर्तमान काल मे जो देश खेती मे उन्नति कर रहे हैं, उनमें सबसे अधिक ध्यान इस बात पर रक्खा जाता है कि खेतों का आकार बड़े से बड़ा हो। अमेरिका मे एक लाख एकड तक के खेत पाए जाते हैं। इन खेतों को जोतने, बोने और सींचने में बड़ा सुभीता होता है और उनकी निगरानी भी अच्छी तरह से की जा सकती है। पर भारतीय किसानों के खेत इतने छोटे-छोटे हिस्से में बँटे होते हैं और एक-दूसरे से इतने फ़ासले पर होते है कि किसान का बहुत सा समय उनको अलग-अलग जोतने-बोने और उन तक आने-जाने मे व्यर्थ नष्ट हो जाता है। ऐसे खेतों को सींचने और उनकी रखवाली का कार्य तो और भी कठिन होता है। ऐसे खेतों में से अधिकांश को किसान केवल बीज बोकर छोड़ देते हैं और आपसे जो कुछ उनमें पैदा हो जाता है, उसी पर सन्तोष कर लेते हैं। यह तरीक़ा आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हानि-कारक है और भारतीय कृषि की उन्नति में एक बड़ी बाधा-स्वरूप है। खेतों का यह विभाजन किस हद तक जा पहुँचा है, यह नीचे लिखे हिसाब से विदित हो सकता है। यह हिसाब अवध के एक गाँव का है और अधिकांश गाँवों की यही स्थिति है :—

एक किसान के खेतों का कुल क्षेत्रफल बीघे और बिस्वों में	टुकड़ों की संख्या
९-२	११
१३-१६	१३
१०-०	१२
४-५	१०
८-७	१२
१६-१९	२५
१५-५	२१
२४-१३	२७
१३-६	१८
८-१९	१६

इस हिसाब से स्पष्ट प्रकट है कि किसानों को औसत हिसाब से एक बीघे से भी छोटे ज़मीन के टुकड़ों में खेती करनी पड़ती है, जो प्रायः एक-दूसरे से पृथक् होते हैं। ऐसी परिस्थिति में नए ढङ्ग की मैशीनों से काम लेने या सिंचाई के लिए पम्प आदि लगाने का उपदेश, जो सरकार की तरफ़ से कृषि-प्रदर्शनियों द्वारा किसानों को दिया जाता है, बिल्कुल बेकार है।

खेतों के इस प्रकार टुकड़े होने के कितने ही कारण हैं। उनमे से मुख्य जन-संख्या की वृद्धि और उत्तराधिकारियों में ज़मीन का बाँटा जाना है। यद्यपि भारतवर्ष की जन-संख्या अन्य देशों के मुक़ाबले में कम बढ़ती है, तो भी जितनी संख्या बढ़ती है, उसके लिए पैदावार को बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की जाती। वैज्ञानिक खाद आदि डाल कर ज़मीन की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की जाती। क्योंकि न तो किसानों को इसका ज्ञान है और न उनके पास इसके लिए साधन हैं। इसलिए उनमें स्वभावतः अधिक परिमाण में भूमि प्राप्त करने की आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है, जिससे वे अपनी आय को कुछ बढ़ा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे जब, जहाँ और जिस प्रकार ज़मीन मिल जाती है, उसे लेने की चेष्टा करते हैं। इसी कारणवश उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की भूमि को प्राप्त

करने के लिए आपस में प्रायः लड़ते रहते हैं, और ज़मीन के भरण-पोषण के लिए पर्याप्त न होने पर भी वे कोई दूसरा कार्य करने के बजाय अपना हिस्सा बँटा लेने की ज़िद करते हैं। उन लोगों को इस विषय मे इतना आग्रह होता है कि वे ज़मीन के बदले में रुपया भी लेना स्वीकार नहीं करते और चाहे उतनी थोडी ज़मीन में खेती करने से उनकी हानि ही क्यों न हो, वे अपना हिस्सा ज़मीन के रूप में ही लेते है। कितनी ही बार ऐसा करने का कारण उत्तराधिकारियों का पारस्परिक द्वेष और सन्देह भी होता है। इसके सिवा कुछ समय से शहर के धनवान व्यवसाइयों अथवा नौकरीपेशा वालो को भी ज़मींदारी का शौक लग गया है और वे रुपया क़र्ज़ देकर अथवा ख़रीद कर किसानों की थोड़ी बहुत ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। ज़मींदार भी अपने कार्य के लिए अथवा अपने कृपा-पात्रों के लिए किसानों की ज़मीन छीन लेते है।

क़र्ज़

भारतीय किसानों का महाजन या बौहरे से अविच्छिन्न सम्बन्ध होता है। वे जन्म से मरण तक कभी उसके बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। अधिकांश किसान तो पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए उसके क़र्ज़दार होते है। उनकी खेती की आय इतनी कम होती है कि किसी भी वर्ष में अवर्षण या अतिवर्षा के कारण फसल के ख़राब हो जाने से उनके लिए क़र्ज़ लेने के सिवा दूसरा चारा नहीं होता। सरकार और ज़मींदार ऐसे अवसरों पर किसानों के कष्टों और उनकी हानि का ख़्याल करने के बजाय अपना लगान वसूल करने की चिन्ता ही अधिक करते है, और राज़ी से या ज़बर्दस्ती जैसे भी हो रुपया वसूल कर लेते है। उस समय ग़रीब किसान के लिए सिवा साहूकार की गद्दी के आगे जाकर खड़े होने के और कोई उपाय नहीं सूझता। क़र्ज़ लेने का एक और कारण हिन्दू-समाज की कितनी सामाजिक प्रथाएँ भी है। विवाह, शादी, मुण्डन, यज्ञोपवीत, तीर्थ-यात्रा आदि के अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम एक निर्दिष्ट रक़म ख़र्च करनी ही पड़ती है, चाहे उसकी आर्थिक अवस्था कैसी भी हो और चाहे इसके फल से उसका सर्वस्व नष्ट क्यों न हो जाय। इसके लिए भी किसानों को प्रायः महाजन से क़र्ज़ लेना पड़ता है। तीसरा कारण मुक़दमेबाज़ी है, जिसमें किसानो को राज़ी से अथवा लाचार होकर फँसना पड़ता है और इसमें भी बिना क़र्ज़ लिए काम नहीं चलता। गाँवों के कितने ही बौहरे अथवा उनके गुर्गे साधारण बातों पर लोगों को भड़का कर मुक़दमा लड़वा देते हैं और फिर रुपए क़र्ज़ देकर उनका सर्वस्व अपहरण कर लेते है।

उपर्युक्त कारणो से अथवा अन्य किसी दैवी आपत्ति, बीमारी, बेकारी आदि के कारण जब किसान एक बार बौहरे के चङ्गुल मे फँस जाता है, तो फिर उसका छुटकारा हो सकना कठिन होता है। वह एक फ़सल में जो कुछ पैदा करता है, उसका अधिकांश ब्याज और मूल के कुछ अंग के रूप मे महाजन को अदा कर देता है और महीने दो महीने बाद अपने कुटुम्ब के पालन-पोषण और खेती की आवश्यकताओं के लिए फिर क़र्ज़ लेता है। यही चक्र जीवन भर जारी रहता है और किसान की मृत्यु के बाद उसके पुत्रों को अन्य वस्तुओं के साथ यह क़र्ज़ भी उत्तराधिकार मे मिलता है। ब्याज की दर भी साधारण नहीं होती। दो पैसा फी रुपया या साढ़े सैंतिस रुपया प्रति सैकड़ा वार्षिक तो कम से कम दर है। यह दर उस दशा मे होती है, जबकि आभूषण, मकान या ज़मीन महाजन के पास बन्धक रख दी जाय। अन्यथा एक आना रुपया अथवा ७५) प्रति सैकड़ा सूद लिया जाता है। १०० प्रति सैकड़ा या इससे भी अधिक सूद लेना आश्चर्यजनक नहीं है। महाजन केवल सूद लेकर ही सन्तोष नहीं करता, वरन् प्रत्येक फ़सल की कुछ सौगात भी उसका हक समझा जाता है। ज़रूरत पड़ने पर वह किसान से अपना छोटा-मोटा काम भी करा लेता है। ग़रीब किसान, जिसकी स्वतन्त्रता महाजन के हाथ बिकी रहती है, किसी भी बात से इनकार नहीं कर सकता। रुपए के सिवाय किसान लोग बीज के लिए बौहरे से अन्न भी क़र्ज़ लेते हैं, जिसे फ़सल के समय वे सवाए या ड्योढ़े के हिसाब से चुका देते है। देते समय बाज़ार दर से एक सेर कम की दर से अनाज दिया जाता है और लेते समय एक सेर ज़्यादा। जो अनाज वसूल होता है, उसे महाजन अगले वर्ष फिर किसानो को बीज के लिए उधार देते हैं। इस प्रकार महाजन का भण्डार दिन पर दिन बढ़ता जाता है और

किसान की मिहनत का तमाम फल उसी को मिलता है। किसानों को किन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राय. कर्ज़ा लेना पडता है, इसका कुछ पता नीचे लिखे नक़्शे से चल सकता है, जो एक ज़िले की कोपरेटिव सोसाइटियो के वर्ष भर के लेन-देन के आधार पर तैयार किया गया है :—

आवश्यकता	रकम
मवेशी	१७,३३८)
पुराना क़र्ज़	१४,५४१)
बीज	९,९०६)
लगान	४,६०४)
व्यवसाय	१,३४६)
विवाह	८२०)
आबपाशी	५६४)
खेती की अन्य आवश्यकताएँ ...	४४९)
कुँआ	२३५)
खाद	११५)
चारा	११७)
घर की मरम्मत	१०५)
घर-खर्च	३३)

यद्यपि इस नक़्शे में विवाह सम्बन्धी ऋण बहुत कम दिखलाई देता है और मुक़द्दमेबाज़ी का तो जिक्र ही नहीं है, पर दरअसल इन दोनों में काफ़ी ख़र्च होता है। कितने ही लोग तो खेती की आवश्यकता के नाम पर कर्ज़ लेकर इन कामों में ख़र्च कर देते है और कितने ही घर का रुपया इनमें ख़र्च करके खेती के लिए कर्ज़ लेते हैं। मामूली से मामूली किसान भी, जिसके पास सिर्फ़ दो-तीन बीघा ज़मीन होती है और जो क़र्ज़ में फँसी होती है, शादी-विवाह में तीन-चार सौ रुपया ख़र्च कर देता है, जिसके फल से वर्ष दो वर्ष मे ही उसको खेत महाजन के हवाले कर देने पड़ते है और वह स्वयं मजदूरी करके पेट भरने लगता है। इसके सिवा किसी रिश्तेदार के यहाँ शादी होने, लडका पैदा होने या भोज वगैरह होने की हालत में भी काफ़ी ख़र्च करना पडता है। ऐसे कामों में ख़र्च न करने से लोग समझते है कि हमारी नाक कट जायगी और समाज की निगाह से गिर जायँगे। क़र्ज़ लेते-लेते कितने ही लोगों को तो उसका मैंज़ लग जाता है और यदि किसी भी ढङ्ग से कर्ज़ मिल सकता है तो वे लेने से नहीं चूकते। इस तरह क़र्ज़ लिया रुपया प्राय: व्यर्थ के कामों में नष्ट होता है। एक तरफ़ कर्ज़दार सोचता है कि यदि फ़सल अच्छी हो गई या मँहगी हो गई तो एक ही बार मे क़र्ज़ा अदा कर दिया जायगा। दूसरी तरफ़ महाजन ताक लगाए रहता है कि जैसे ही कर्ज़ का परिमाण इतना हो जाय जिसे किसान अदा कर सकने में असमर्थ हो, वैसे ही नालिश करके उसका तमाम घरबार कुर्क़ करा लिया जाय। इसमें सफल-मनोरथ प्राय: महाजन ही होता है। क्योंकि जिसे क़र्ज़ लेने की चाट पड जाती है वह चुकाने में प्रायः ढील करता है और उसे फ़िज़ूलख़र्ची की आदत भी लग जाती है। यह आदत यहाँ तक बढ़ती है कि जब एक महाजन का अधिक देना हो जाता है और वह आगे देने से इनकार करता है, तो लोग दूसरे महाजन से कर्ज़ लेने लगते है। किसानों की क़र्ज़ लेने की आदत का पता इससे लग सकता है कि साधारण स्थिति के लोगों में से प्रायः ९० प्रति सैकड़ा अवश्य ही किसी न किसी रूप मे क़र्ज़दार होते है। उनके सम्बन्ध में किसी अर्थशास्त्रकार का यह कथन बिलकुल सत्य है कि—"किसान ऋण में जन्म लेते है, जीवन भर उस ऋण को बढ़ाते रहते है, और मरते समय ऋण के दलदल मे ऐसे फँस जाते है कि उससे छुटकारा पाने की कोई आशा नही रहती।"

स्वास्थ्य

साधारणतः यह ख़्याल किया जाता है कि गाँव वालों का स्वास्थ्य शहर वालों की अपेक्षा अच्छा होता है। गाँवों की खुली हवा और खेती के लिए आवश्यक कठिन शारीरिक श्रम को देखते हुए ऐसा ख़्याल करना अस्वाभाविक भी नही है। पर तो भी गाँवों मे बीमारियों का प्रकोप शहरों की अपेक्षा अधिक देखने में आता है, और जब कोई छूत वाला रोग फैलता है तो गाँव के गाँव नष्ट हो जाते है। इसका प्रधान कारण पौष्टिक भोजन का अभाव और आर्थिक चिन्ताओं मे ग्रस्त रहना है। अन्य कारण गन्दगी और अज्ञान है। गाँव वाले चाहे शरीर की सफ़ाई कितनी भी करें, और अछूतों आदि से कितनी भी घृणा प्रकट करें, गाँव की सफ़ाई का उनको ज़रा भी ख़्याल नही रहता। उनमे से कितनो ही के घर बहुत साफ़ और लिपे-पुते होते है, पर उनके आस-पास कैसी गन्दगी रहती है, उसकी

चिन्ता वे नहीं करते। वे लोग प्रायः उन्हीं तालाबों का पानी काम मे लाते है, जिनमे पशु पानी पीते है और नहाते है। पीने के पानी के कुएँ भी प्रायः उन्हीं तालाबों के पास रहते है, और उनमें प्राय पेड़ों की पत्तियाँ पड़ कर सड़ती रहती है। पशुओं के गोबर का ढेर भी घरों के पास लगा दिया जाता है, जो कितने ही दिनों तक सड़ता रहता है। बरसात में तो इन स्थानों की गन्दगी बेहद बढ़ जाती है और मक्खी तथा मच्छरों के सबब से वहाँ एक घण्टे ठहर सकना कठिन हो जाता है। इन कारणों से प्रायः वहाँ मलेरिया अथवा अन्य प्रकार के ज्वर का प्रकोप होता है। सैकड़ों बच्चे शीतला और अन्य बीमारियों की भेंट हो जाते है। मैसूर के कई गाँवों की जाँच करने से मालूम हुआ था कि वहाँ के २,७७१ अधिवासियों मे से १,४०९ किसी न किसी बीमारी मे ग्रस्त थे। ६२३ अछूतों में से ३४३ रोगी पाए गए। इतने पर भी जब चिकित्सा की आवश्यकता होती है, तो वैद्य-डॉक्टर आदि से दवा लेने के बजाय वे ओझों-स्यानों से झाड़-फूँक कराते है, जिससे बीमारी और भी बढ़ती है।

स्त्रियों की स्थिति और सामाजिक दशा

देहाती-समाज मे स्त्रियों का स्थान बड़े महत्व का है। जब कि शहरों के निवासी, विशेषकर उच्च जातियों के लोग, स्त्रियों को केवल घर का प्रबन्धकर्ता और विषय-कामना की पूर्ति का साधन मानते है, देहातों मे वे आर्थिक जीवन मे पूरा भाग लेती है। स्त्रियों की सहायता के बिना खेती का काम चल सकना असम्भव है। कितने ही कार्य तो ऐसे है, जिन पर स्त्रियों का एकाधिकार है। घर का काम तो देहात मे सभी जातियों की स्त्रियों को करना पड़ता है, और वह शहर के घर के काम से कहीं अधिक होता है। सुबह उठ कर वे घर की आवश्यकता के लायक़ आटा पीसती है। इसके पश्चात् घर मे झाड़ू लगाती है, बर्तन माँजती है और कुएँ से पानी भर कर लाती हैं। गाय-भैंसों को दुहना, दूध गर्म करना, दही को मथ कर घी निकालना भी उनके ही ज़िम्मे होता है। इसके पश्चात् वे खाना पकाती है और प्रायः उसे अपने पतियों के लिए खेतों में ले जाती है। बच्चों का पालन-पोषण, कपड़े सीना और उनकी मरम्मत करना, घर को लीपना-पोतना आदि कार्य इनके अलावा है। देहात की प्रायः प्रत्येक स्त्री इतना काम अकेली कर लेती है।

कुछ ऊँची जाति वालों को छोड़ कर अन्य तमाम जातियों की स्त्रियाँ घर के काम के अलावा अपने या दूसरों के खेतों मे भी काम करती हैं। उनको प्राय. ३ से ६ आना तक मज़दूरी मिलती है और दस घण्टे काम करना पड़ता है। हल चलाने को छोड़ कर स्त्रियाँ प्रायः खेती के सभी काम कर सकती है और करती है। बीज बोने और निराने का काम केवल स्त्रियाँ ही करती है। निराई का काम बड़ा ही कठिन और परिश्रम का है और उसे स्त्रियाँ ही अच्छी तरह कर सकती है। उनको प्राय· घण्टों तक पानी और कीच में खड़े रह कर खेत का घास-कूड़ा साफ़ करना पड़ता है। लड़कियाँ भी इस काम को बड़ी फुर्ती से करती है।

अन्य पेशे वालों की स्त्रियाँ भी अपने व्यवसाय मे पूरा भाग लेती है। उदाहरणार्थ तेलियों की स्त्रियाँ घर मे तेल पेरती रहती है और तेली उसे बाहर ले जाकर बेचते है। कुम्हारों की स्त्रियाँ बर्तन बनाने को मिट्टी खोद कर लाती है, वे ही लकड़ी और कण्डे इकट्ठे करती है और बर्तनों को बेचने जाती है। चमार आदि जातियों की स्त्रियाँ लकड़ी आदि लेकर पास के क़स्बों मे बेचने जाती है और उनकी आय से घर का बहुत कुछ काम चलता है। कितनी ही स्त्रियाँ टोकरी, रस्सी, पत्तल, दोने आदि बनाने का काम करती है। और भी कितने ही काम ऐसे है, जिनके द्वारा स्त्रियाँ अपने घर की आर्थिक सहायता करती रहती है।

देहाती-समाज मे भी शहरों की तरह अनेक दोष घुस गए है। बाल-विवाह का वहाँ बहुत अधिक प्रचार है। वहाँ लड़के-लड़कियों का विवाह-सम्बन्ध प्राय. चार-पाँच या सात-आठ साल की अवस्था मे ही कर दिया जाता है। वहाँ की स्त्रियाँ यद्यपि अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता से अधिक उपार्जन कर लेती हैं, तो भी वे उसी तरह पराधीन होती है, जैसी शहरों की स्त्रियाँ। समाज उनको मर्द के पैर की जूती ही मानता है और पति कैसा भी भला-बुरा हो, उसकी आज्ञानुसार चलना उसका कर्तव्य समझा जाता है। जो स्त्री इसके विपरीत चलती है, वह नीची निगाह से देखी जाती है। छोटी जातियों मे तलाक देने की प्रथा जारी है और इसलिए उनकी स्त्रियों को किसी क़दर स्वाधीनता प्राप्त है। पर इस अधिकार का उपयोग भी पुरुष अधिक करते है। स्त्रियाँ खुल्लमखुल्ला

ऐसा करने का साहस प्रायः कम करती है। जब वे बहुत कष्ट पाती हैं या किसी कारण रुष्ट हो जाती है, तो चुपचाप घर से चल देती है।

शिक्षा और ज्ञान के अभाव से गाँवों के निवासी बड़े अपरिवर्तनशील होते हैं। इसलिए यदि कोई व्यक्ति वहाँ प्रचलित नियमों का उल्लङ्घन करता है, तो उस पर चारों तरफ़ से आक्षेपों की बौछार होने लगती है और उसका गाँव में टिक सकना असम्भव हो जाता है। कितनी बार तो गाँव वाले ऐसे व्यक्ति को ज़बर्दस्ती मार-पीट कर निकाल देते हैं। यदि कोई अछूत जाति का व्यक्ति वर्तमान आन्दोलन के प्रभाव से ऊँची जाति वालों का मुकाबला करना चाहे अथवा अपने उचित अधिकारों के लिए दावा करे, तो उसे ऐसा भयभीत कर दिया जाता है कि वह सिर उठाने की हिम्मत नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि कोई ऐसा व्यक्ति, जिसकी जाति में विधवा-विवाह का प्रचार नहीं है, ऐसा कार्य कर डाले तो उसको गाँव से निकाल कर ही चैन लिया जाता है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि वहाँ के लोग सच्चरित्रता के बड़े पक्षपाती होते हैं। गाँवों में भी आजकल व्यभिचार का वैसा ही प्रचार है, जैसा शहरों में। इतना हो सकता है कि वहाँ वाले इस कार्य को शहर वालों की अपेक्षा अधिक छुप कर करते हैं।

पर इस अपरिवर्तनशीलता के फल से एक बात, जिसे कुछ लोग लाभदायक बतलाते हैं, यह हुई है कि गाँवों का सामाजिक सङ्गठन अधिक दृढ़ और सुसङ्गठित है। वहाँ आज भी भारत के प्राचीन स्वायत्त-शासन की झलक देखने में आती है। प्रत्येक बड़ा गाँव प्रायः स्वावलम्बी होता है और उसकी आवश्यकता के तमाम कार्य उसी में हो जाते हैं। पुरोहित, नाई, कहार, माली, धोबी, कुम्हार, मोची आदि, जिनकी आवश्यकता गाँव वालों को नित्य प्रति पड़ती है, सब वहाँ पर ही रहते हैं। गाँव के लुहार और बढ़ई खेती के लिए आवश्यक औज़ार बना देते हैं। गाँवों में जुलाहों का भी अभाव नहीं होता और यदि गाँव वाले बारीक और भडकीले कपड़ों का लालच त्याग दें, तो उनकी वस्त्रों की आवश्यकता भी घर में ही पूरी हो सकती है। इस प्रकार प्रत्येक गाँव स्थानिक स्वराज्य का नमूना होता है और उसे बाहरी सहायता की आवश्यकता बहुत कम पड़ती है।

तृष्णा

[कुमारी शान्तिदेवी]

लग रही बड़े ज़ोर से प्यास।
पीने दे शीतल जल जी भर, मिट जाए यह त्रास।

मृग-जल पल-पल मुझे छल रहा;
धरा सहित आकाश जल रहा;
सन सन सन सन पवन चल रहा;
तन-मन-दाहक अनल बल रहा;
सूरज की तीखी किरणों से अधिक उष्ण उच्छ्वास।

प्रातः से यात्रा पर चल दी,
भूल गई पथ चलती-चलती;
निर्जन बन में फिरी भटकती;
आई शान्त-सिन्धु-तट तकती;
रे भविष्य की भ्रान्ति! छेड़ मत ले लेने दे साँस।

कहानी

कुसुम

[श्री० प्रेमचन्द जी]

साल भर की बात है, एक दिन शाम को हवा खाने जा रहा था कि महाशय नवीन से मुलाक़ात हो गई। मेरे पुराने दोस्त है, बड़े बेतकल्लुफ़ और मनचले। आगरे मकान है। अच्छे कवि है। उनके कवि-समाज मे कई बार शरीक हो चुका हूँ। ऐसा कविता का उपासक मैंने नही देखा। पेशा तो वकालत है, पर डूबे रहते है काव्य-चिन्तन मे। आदमी ज़हीन है, मुक़दमा सामने आया और उसकी तह तक पहुँच गए, इसलिए कभी-कभी मुक़दमे मिल जाते है। लेकिन कचहरी के बाहर अदालत या मुक़दमे की चर्चा उनके लिए निषिद्ध है। अदालत की चारदीवारी के अन्दर चार-पॉच घण्टे वह वकील होते है। चारदीवारी के बाहर निकलते ही कवि है, सिर से पॉव तक। जब देखिए कवि-मण्डल जमा है, कवि-चरचा हो रही है, रचनाएँ सुन रहे है, मस्त हो-होकर झूम रहे है और अपनी रचना सुनाते समय तो उन पर एक तल्लीनता सी छा जाती है। कण्ठ-स्वर भी इतना मधुर है कि उनके पद बाण की तरह सीधे कलेजे मे उतर जाते है। अध्यात्म मे माधुर्य की सृष्टि करना, निर्गुण में सगुण की बहार दिखाना उनकी रचनाओं की विशेषता है। वह जब लखनऊ आते, मुझे पहले सूचना दे दिया करते थे। आज उन्हे अनायास लखनऊ में देख कर मुझे आश्चर्य हुआ। पूछा—आप यहाँ कैसे? कुशल तो है? मुझे आने की सूचना तक न दी।

बोले—भाई जान, एक जञ्जाल मे फँस गया हूँ। आपको सूचित करने का समय न था। फिर आपके घर को मै अपना घर समझता हूँ। इस तकल्लुफ़ की क्या ज़रूरत है कि आप मेरे लिए कोई विशेष प्रबन्ध करें। मै एक बड़े ज़रूरी मुआमले मे आपको कष्ट देने आया हूँ। इस वक़्त की सैर को स्थगित कीजिए और चल कर मेरी विपत्ति-कथा सुनिए।

मैने घबडा कर कहा—आपने तो मुझे चिन्ता मे डाल दिया। आप और विपत्ति-कथा! मेरे तो प्राण सूखे जाते है।

"घर चलिए, चित्त शान्त हो तो सुनाऊँ।"

"बाल-बच्चे तो अच्छी तरह हैं?"

"हॉ, सब अच्छी तरह है। वैसी कोई बात नही है।"

"तो चलिए 'रेस्ट्राँ' मे कुछ जलपान तो कर लीजिए।"

"नहीं भाई, इस वक़्त मुझे जलपान नहीं सूझता।"

हम दोनों घर की ओर चले।

घर पहुँच कर मैंने उनका हाथ-मुँह धुलाया, शरबत पिलाया। इलायची-पान खाकर उन्होने अपनी विपत्ति-कथा सुनानी शुरू की :—

"कुसुम के विवाह में तो आप गए ही थे। उसके पहले भी आपने उसे देखा था। मेरा विचार है कि किसी सरल प्रकृति के युवक को आकर्षित करने के लिए जिन गुणो

की जरूरत है, वह सब उसमे मौजूद है। आपका क्या ख़्याल है ?"

मैंने तत्परता से कहा—मैं आपसे कहीं ज़्यादा कुसुम का प्रशसक हूँ। ऐसी लज्जाशील, सुघड, सलीक़ेदार और विनोदिनी बालिका मैंने दूसरी नहीं देखी।

महाशय नवीन ने करुण स्वर मे कहा—वही कुसुम आज अपने पति के निर्दय व्यवहार के कारण रो-रोकर प्राण दे रही है। उसका गौना हुए एक साल हो रहा है। इस बीच मे वह तीन बार ससुराल गई। पर उसका पति उससे बोलता ही नहीं। उसकी सूरत से बेज़ार है। मैंने बहुत चाहा कि उसे बुला कर दोनो मे सफ़ाई करा दूँ, मगर न आता है, न मेरे पत्रो का उत्तर देता है। न जाने ऐसी क्या गाँठ पड़ गई है कि उसने इस बेदर्दी से आँखे फेर ली। अब सुनता हूँ, उसका दूसरा विवाह होने वाला है। कुसुम का बुरा हाल हो रहा है। आप शायद उसे देख कर पहचान भी न सके। रात-दिन रोने के सिवा दूसरा काम नहीं है। इससे आप हमारी परेशानी का अनुमान कर सकते है। जिन्दगी की सारी अभिलाषाएँ मिटी जाती है। हमे ईश्वर ने पुत्र न दिया। पर हम अपनी कुसुम को पाकर सन्तुष्ट थे और अपने भाग्य को धन्य मानते थे। उसे कितने लाड़-प्यार से पाला, कभी उसे फूल की छड़ी से भी न छुआ। उसको शिक्षा-दीक्षा मे कोई बात उठा न रक्खी। उसने बी० ए० नहीं पास किया, लेकिन विचारों की प्रौढ़ता और ज्ञान-विस्तार मे किसी ऊँचे दर्जे की शिक्षिता महिला से कम नहीं। आपने उसके लेख देखे है। मेरा ख़्याल है, बहुत कम देवियाँ वैसे लेख लिख सकती है। समाज, धर्म, नीति, सभी विषयो मे उसके विचार बड़े परिष्कृत है। बहस करने मे तो वह इतनी पटु है कि मुझे आश्चर्य होता है। गृह-प्रबन्ध मे इतनी कुशल कि मेरे घर का प्रायः सारा प्रबन्ध उसी के हाथ मे था। किन्तु पति की दृष्टि मे वह पाँव की धूल के बराबर भी नहीं। बार-बार पूछता हूँ, तूने उसे कुछ कह दिया है, या क्या बात है ? आखिर वह क्यो तुझसे इतना उदासीन है। इसके जवाब मे रोकर यही कहती है—'मुझसे तो उन्होने कभी कोई बातचीत ही नहीं की।' मेरा विचार है कि पहले ही दिन दोनो मे कुछ मनमुटाव हो गया। वह कुसुम के पास आया होगा और उससे कुछ पूछा होगा। उसने मारे शर्म के जवाब न दिया होगा। सम्भव है, उसने दो-चार बातें और भी की हो। कुसुम ने सिर न उठाया होगा। आप जानते ही है, वह कितनी शर्मीली है। बस पतिदेव रूठ गए होंगे। मै तो कल्पना ही नही कर सकता कि कुसुम जैसी बालिका से कोई पुरुष उदासीन रह सकता है। लेकिन दुर्भाग्य को कोई क्या करे। दुखिया ने पति के नाम कई पत्र लिखे, पर उस निर्दयी ने एक का भी जवाब न दिया। सारी चिट्ठियाँ लौटा दी। मेरी समझ में नहीं आता कि उस पाषाण-हृदय को कैसे पिघलाऊँ। मै अब ख़ुद तो उसे कुछ लिख नहीं सकता। आप ही कुसुम की प्राण-रक्षा करें तो करे, नही शीघ्र ही उसके जीवन का अन्त हो जायगा, और उसके साथ हम दोनो प्राणी भी सिधार जायँगे। उसकी व्यथा अब नही देखी जाती।

नवीन जी की आँखे सजल हो गईं। मुझे भी अत्यन्त क्षोभ हुआ। उन्हे तसल्ली देता हुआ बोला—आप इतने दिनो इस चिन्ता मे पड़े रहे, मुझसे पहले ही क्यो न कहा। मैं आज ही मुरादाबाद जाऊँगा और उस लौंडे की इस बुरी तरह खबर लूँगा कि वह भी याद करेगा। बचा को ज़बरदस्ती घसीट कर लाऊँगा और कुसुम के पैरो पर गिरा दूँगा।

नवीन जी मेरे आत्मविश्वास पर मुस्करा कर बोले—आप उससे क्या कहेंगे ?

"यह न पूछिए! वशीकरण के जितने मन्त्र हैं, उन सभी की परीक्षा करूँगा।"

"तो आप कदापि सफल न होंगे। वह इतना शील-वान, इतना विनम्र, इतना प्रसन्न-मुख है, इतना मधुर-भाषी कि आप वहाँ से उसके भक्त होकर लौटेंगे। वह नित्य आपके सामने हाथ बाँधे खड़ा रहेगा। आपकी सारी कठोरता शान्त हो जायगी। आपके लिए तो एक ही साधन है। आपके कलम मे जादू है। आपने कितने ही युवको को सन्मार्ग पर लगाया है। हृदय मे सोई हुई मानवता को जगाना आपका हिस्सा है। मैं चाहता हूँ, आप कुसुम की ओर से एक ऐसा करुणाजनक, ऐसा दिल हिला देने वाला पत्र लिखे कि वह लज्जित हो जाय और उसकी प्रेम-भावना सचेत हो उठे। मै जीवन-पर्यन्त आपका आभारी रहूँगा।"

नवीन जी कवि ही तो ठहरे। इस तजवीज़ मे वास्तविकता की अपेक्षा कवित्व ही की प्रधानता थी।

आप मेरे कई गल्पों को पढ कर रो पड़े है, इससे आपको विश्वास हो गया है कि मैं चतुर सँपेरे की भाँति जिस दिल को चाहूँ नचा सकता हूँ। आपको यह मालूम नहीं कि सभी मनुष्य कवि नहीं होते, और न एक से भावुक। जिन गल्पों को पढ कर आप रोए है, उन्ही गल्पों को पढ कर कितने ही सज्जनो ने विरक्त होकर पुस्तक फेंक दी है। पर इन बातो का वह अवसर न था। वह समझते कि मै अपना गला छुडाना चाहता हूँ। इसलिए मैने सहृदयता से कहा—आपको बहुत दूर की सूझी है और मै उस प्रस्ताव से सहमत हूँ, और यद्यपि आपने मेरी करुणोत्पादक शक्ति का अनुमान करने मे अत्युक्ति से काम लिया है, लेकिन मैं आपको निराश न करूँगा। मै पत्र लिखूँगा और यथाशक्ति उस युवक की न्याय-बुद्धि को जगाने की चेष्टा भी करूँगा। लेकिन आप अनुचित न समझें तो पहले मुझे वह पत्र दिखा दें, जो कुसुम ने अपने पति के नाम लिखे थे। उसने पत्र तो लौटा ही दिए हैं और यदि कुसुम ने उन्हें फाड नहीं डाला है, तो उसके पास होंगे। उन पत्रों को देखने से मुझ ज्ञात हो जायगा कि किन पहलुओं पर लिखने की गुञ्जाइश बाक़ी है।

नवीन जी ने जेब से पत्रों का एक पुलिन्दा निकाल कर मेरे सामने रख दिया और बोले—मै जानता था, आप इन पत्रों को देखना चाहेंगे, इसलिए इन्हें साथ लेता आया। आप इन्हें शौक से पढ़ें। कुसुम जैसी मेरी लड़की है, वैसी ही आपकी भी लड़की है। आपसे क्या परदा!

सुगन्धित, गुलाबी, चिकने काग़ज़ पर बहुत ही सुन्दर अक्षरों मे लिखे हुए उन पत्रों को मैने पढना शुरू किया :—

पहला पत्र

मेरे स्वामी, मुझे यहाँ आए एक सप्ताह हो गया, लेकिन आँखें पल भर के लिए भी नहीं झपकी। सारी रात करवटें बदलते बीत जाती है। बार-बार सोचती हूँ, मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ कि उसकी आप मुझे यह सज़ा दे रहे हैं। आप मुझे झिड़कें, घुड़कें, कोसें, इच्छा हो तो मेरे कान भी पकड़ें। मैं इन सभी सज़ाओं को सहर्ष सह लूँगी। लेकिन यह निष्ठुरता नहीं सही जाती। मैं आपके घर एक सप्ताह रही। परमात्मा जानता है कि मेरे दिल मे क्या-क्या अरमान थे। मैने कितनी बार चाहा कि आपसे कुछ पूछूँ, आपसे अपने अपराधों को क्षमा कराऊँ। लेकिन आप मेरी परछाईं से भी दूर भागते थे। मुझे कोई अवसर न मिला। आपको याद होगा कि जब दोपहर को सारा घर सो जाता था, तो मैं आपके कमरे मे जाती थी और घण्टो सिर झुकाए खडी रहती थी। पर आपने कभी आँख उठा कर न देखा। उस वक्त मेरे मन की क्या दशा होती थी, इसका कदाचित आप अनुमान न कर सकेंगे। मेरी जैसी अभागिनी स्त्रियाँ इसका कुछ अन्दाज़ कर सकती है। मैने अपनी सहेलियों से उनकी सोहागरात की कथाएँ सुन-सुन कर अपनी कल्पना मे सुखो का जो स्वर्ग बनाया था। उसे आपने कितनी निर्दयता से नष्ट कर दिया!

मै आपसे पूछती हूँ, क्या आपके ऊपर मेरा कोई अधिकार नहीं है? अदालत भी किसी अपराधी को दण्ड देती है तो उस पर कोई न कोई अभियोग लगाती है, गवाहियाँ लेती है, उसका बयान सुनती है। आपने तो कुछ पूछा ही नहीं। मुझे अपनी ख़ता मालूम हो जाती तो आगे के लिए सचेत हो जाती। आपके चरणों पर गिर कर कहती, मुझे क्षमा-दान दो। मै शपथपूर्वक कहती हूँ, मुझे कुछ नहीं मालूम, आप क्यो रुष्ट हो गए। सम्भव है, आपने अपनी पत्नी मे जिन गुणो के देखने की कामना की हो वह मुझमे न हो। बेशक मै अङ्गरेज़ी नहीं पढ़ी, अङ्गरेज़ी समाज की रीति-नीति से परिचित नहीं, न अङ्गरेज़ी खेल ही खेलना जानती हूँ। और भी कितनी ही त्रुटियाँ मुझमे होंगी। मैं मानती हूँ कि मै आपके योग्य न थी। आपको मुझसे कहीं अधिक रूपवती, गुणवती, बुद्धिमती स्त्री मिलनी चाहिए थी। लेकिन मेरे देवता, दण्ड अपराधो का मिलना चाहिए, त्रुटियो का नहीं। फिर मै तो आपके इशारे पर चलने को तैयार हूँ। आप मेरी दिलजोई करें, फिर देखिए, मै अपनी त्रुटियों को कितनी जल्द पूरा कर लेती हूँ। आपका प्रेम-कटाक्ष, मेरे रूप को प्रदीप्त, मेरी बुद्धि को तीव्र और मेरे भाग्य को बलवान कर देगा। वह विभूति पाकर मेरी कायाकल्प हो जायगी।

स्वामी, क्या आपने सोचा है, आप यह क्रोध किस पर कर रहे हैं? वह अबला, जो आपके चरणो पर पड़ी हुई आपसे क्षमा-दान माँग रही है, जो जन्म-जन्मान्तर

के लिए आपकी चेरी है, क्या इस क्रोध का सहन कर सकती है ? मेरा दिल बहुत कमज़ोर है। मुझे रुला कर आपको पश्चात्ताप के सिवा और क्या हाथ आएगा। इस क्रोधाग्नि की एक चिनगारी मुझे भस्म कर देने के लिए काफी है। अगर आपकी यही इच्छा है कि मैं मर जाऊँ तो मै मरने के लिए तैयार हूँ। केवल आपका इशारा चाहती हूँ। अगर मेरे मरने से आपका चित्त प्रसन्न हो तो मै बड़े हर्ष से अपने को आपके चरणो पर समर्पित कर दूँगी। मगर इतना कहे बिना नहीं रहा जाता कि मुझमे सौ ऐब हों, पर एक गुण भी है—मुझे दावा है कि आपकी जितनी सेवा मैं कर सकती हूँ, उतनी कोई दूसरी स्त्री नही कर सकती। आप विद्वान है, उदार है, मनोविज्ञान के पण्डित है, आपकी लौंडी आपके सामने खड़ी दया की भीख माँग रही है। क्या उसे द्वार से ठुकरा दीजिएगा ?

आपकी अपराधिनी,

—कुसुम

यह पत्र पढ़ कर मुझे रोमाञ्च हो आया। यह बात मेरे लिए असह्य थी कि कोई स्त्री अपने पति की इतनी ख़ुशामद करने पर मजबूर हो जाय। पुरुष अगर स्त्री से उदासीन रह सकता है, तो स्त्री क्यों उसे नही ठुकरा सकती। यह दुष्ट समझता है कि विवाह ने एक स्त्री को उसका ग़ुलाम बना दिया। वह उस अबला पर जितना अत्याचार चाहे करे, कोई उसका हाथ नहीं पकड़ सकता, कोई चूँ भी नहीं कर सकता। पुरुष अपनी दूसरी, तीसरी, चौथी शादी कर सकता है, स्त्री से कोई सम्बन्ध न रख कर भी उस पर उसी कठोरता से शासन कर सकता है। वह जानता है कि स्त्री कुल-मर्यादा के बन्धनो में जकड़ी हुई है, उसे रो-रोकर मर जाने के सिवा और कोई उपाय नहीं है। अगर उसे भय होता कि औरत भी उसकी ईंट का जवाब पत्थर से नहीं, ईंट से भी नही, केवल थप्पड़ से दे सकती है तो उसे कभी इस बदमिज़ाजी का साहस न होता। बेचारी स्त्री कितनी विवश है। शायद मैं कुसुम की जगह होता तो इस निष्ठुरता का जवाब इसकी दस गुनी कठोरता से देता। उसकी छाती पर मूँग दलता। संसार के हँसने की ज़रा भी चिन्ता न करता। जो समाज अबलाओ पर इतना ज़ुल्म देख सकता है और चूँ तक नहीं करता, उसके रोने या हँसने की मुझे ज़रा भी परवाह न होती। अरे अभागे युवक ! तुझे खबर नहीं, तू अपने भविष्य की गर्दन पर कितनी बेदर्दी से छुरी फेर रहा है। यह वह समय है, जब पुरुष को अपने प्रणय-भण्डार से स्त्री के माता-पिता, भाई-बहिन, सखियाँ-सहेलियाँ, सभी के प्रेम की पूर्ति करनी पडती है। अगर पुरुष मे यह सामर्थ्य नही है, तो स्त्री की क्षुधित आत्मा को कैसे सन्तुष्ट रख सकेगा। परिणाम वही होगा जो बहुधा होता है। अबला कुढ़-कुढ़ कर मर जाती है। यही वह समय है, जिसकी स्मृति जीवन मे सदैव के लिए मिठास पैदा कर देती है। स्त्री की प्रेम-क्षुधा इतनी तीव्र होती है कि वह पति का स्नेह पाकर अपना जीवन सफल समझती है, और इस प्रेम के आधार पर जीवन के सारे कष्टों को हँस-खेल कर सह लेती है। यही वह समय है, जब हृदय में प्रेम का बसन्त आता है और उसमे नई-नई आशा-कोपले निकलने लगती है। ऐसा कौन निर्दयी है, जो इस ऋतु मे उस वृक्ष पर कुल्हाड़ा चलाएगा ! यही वह समय है, जब शिकारी किसी पक्षी को उसके बसेरे से लाकर पिंजरे मे बन्द कर देता है। क्या वह उसकी गर्दन पर छुरी चला कर उसका मधुर गान सुनने की आशा रखता है ? मैने दूसरा पत्र पढना शुरू किया।

२

दूसरा पत्र

मेरे जीवन-धन, दो सप्ताह जवाब की प्रतीक्षा करने के बाद आज फिर यह उलहना देने बैठी हूँ। जब मैंने वह पत्र लिखा था तो मेरा मन गवाही दे रहा था कि उसका उत्तर जरूर आएगा। आशा के विरुद्ध आशा लगाए हुए थी। मेरा मन अब भी इसे स्वीकार नही करता कि आपने जान-बूझ कर उसका उत्तर नहीं दिया। कदाचित आपको अवकाश नही मिला, या ईश्वर न करे, कही आप अस्वस्थ तो नहीं हो गए। किससे पूछूँ ? इस विचार से ही मेरा हृदय काँप रहा है। मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि आप प्रसन्न और स्वस्थ हो, मुझे पत्र न लिखे न सही, रोकर चुप ही तो हो जाऊँगी। आपको ईश्वर का वास्ता है। अगर आपको किसी प्रकार का भी कष्ट हो तो मुझे तुरन्त पत्र लिखिए, मै किसी को साथ लेकर आ जाऊँगी। मर्यादा और परिपाटी के बन्धनों से मेरा जी घबराता है। ऐसी दशा में भी यदि आप मुझे अपनी सेवा

से वञ्चित रखते हैं, तो आप मुझसे मेरा वह अधिकार छीन रहे है जो मेरे जीवन की सबसे मूल्यवान वस्तु है। मै आपसे और कुछ नहीं माँगती, आप मुझे मोटे से मोटा खिलाइए, मोटे से मोटा पहनाइए, मुझे ज़रा भी शिकायत न होगी। मै आपके साथ घोर से घोर विपत्ति मे भी प्रसन्न रहूँगी। मुझे आभूषणों की लालसा नहीं, महल मे रहने की लालसा नहीं, सैर-तमाशे की लालसा नहीं, धन बटोरने की लालसा नहीं। मेरे जीवन का उद्देश्य केवल आपकी सेवा करना है। यही उसका ध्येय है। मेरे लिए दुनिया मे कोई देवता नहीं, कोई गुरु नहीं, कोई हाकिम नहीं। मेरे देवता आप है, मेरे गुरु आप हैं, मेरे राजा आप है। मुझे अपने चरणों से न हटाइए, मुझे ठुकराइए नहीं। मै सेवा और प्रेम के फूल लिए, कर्तव्य और व्रत की भेंट अञ्चल मे सजाए आपकी सेवा मे आई हूँ। मुझे इस भेंट को, इन फूलों को, अपने चरणों पर रखने दीजिए। उपासक का काम तो पूजा करना है। देवता उसकी पूजा स्वीकार करता है या नहीं, यह सोचना उसका धर्म नहीं।

मेरे सिरताज, शायद आपको पता नहीं, आजकल मेरी क्या दशा है। यदि मालूम होता तो आप इस निष्ठुरता का व्यवहार न करते। आप पुरुष है, आपके हृदय मे दया है, सहानुभूति है, उदारता है, मैं विश्वास नहीं कर सकती कि आप मुझ जैसी नाचीज़ पर क्रोध कर सकते है। मैं आपकी दया के योग्य हूँ—कितनी दुर्बल, कितनी अपङ्ग, कितनी बेज़बान। आप सूर्य है, मै अणु हूँ; आप अग्नि हैं, मै तृण हूँ; आप राजा है, मैं भिखारिन हूँ। क्रोध तो बराबर वालों पर करना चाहिए, मैं भला आपके क्रोध का आघात कैसे सह सकती हूँ। अगर आप समझते हैं कि मै आपकी सेवा के योग्य नहीं हूँ तो मुझे अपने हाथों से विष का प्याला दे दीजिए। मै उसे सुधा समझ कर सिर और आँखों से लगाऊँगी और आँखें बन्द करके पी जाऊँगी। जब यह जीवन आपकी भेंट हो गया तो आप उसे मारें या जिलाएँ, यह आपकी इच्छा है। मुझे यही सन्तोष काफ़ी है कि मेरी मृत्यु से आप निश्चिन्त हो गए। मै तो इतना ही जानती हूँ कि मै आपकी हूँ और सदैव आपकी रहूँगी, इस जीवन मे ही नहीं, बल्कि अनन्त तक। अभागिनी,

—कुसुम

यह पत्र पढ़ कर मुझे कुसुम पर भी झुँझलाहट आने लगी और उस लौंडे से तो घृणा हो गई। माना तुम स्त्री हो और आजकल के प्रथानुसार पुरुष को तुम्हारे ऊपर हर तरह का अधिकार है। लेकिन नम्रता की भी तो कोई सीमा होती है। स्त्री मे कुछ तो मान, कुछ तो अकड़ होनी चाहिए। अगर पुरुष उससे ऐंठता है तो उसे भी चाहिए कि उसकी बात न पूछे। स्त्रियों को धर्म और त्याग का पाठ पढ़ा-पढ़ा कर हमने उनके आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास दोनों ही का अन्त कर दिया। अगर पुरुष स्त्री का मुहताज नहीं, तो स्त्री पुरुष की मोहताज क्यों हो। ईश्वर ने पुरुष को हाथ दिए है, तो क्या स्त्री को उससे वञ्चित रक्खा है। पुरुष के पास बुद्धि है तो क्या स्त्री अबोध है? इसी नम्रता ने तो मरदों का मिज़ाज आसमान पर पहुँचा दिया। पुरुष रूठ गया तो स्त्री के लिए मानो प्रलय आ गया। मैं तो समझता हूँ, कुसुम नहीं, उसका अभागा पति दया के योग्य है, जो कुसुम जैसी स्त्री-रत्न की कद्र नहीं कर सकता। मुझे ऐसा सन्देह होने लगा कि इस लौंडे ने कोई दूसरा रोग पाल रक्खा है। किसी शिकारी के रङ्गीन जाल मे फँसा हुआ है।

ख़ैर, मैने तीसरा पत्र खोला—

तीसरा पत्र

प्रियतम, अब मुझे मालूम हो गया कि मेरी ज़िन्दगी निरुद्देश्य है। जिस फूल को देखने वाला, चुनने वाला, कोई नहीं वह खिले तो क्यों? क्या इसीलिए कि मुरझा कर ज़मीन पर गिर पड़े और पैरों से कुचल दिया जाय? मै आपके घर मे एक महीना रह कर दोबारा आई हूँ। ससुर जी ही ने मुझे बुलाया, ससुर जी ही ने मुझे विदा कर दिया। इतने दिनों में आपने एक बार भी मुझे दर्शन न दिए। आप दिन में बीसों ही बार घर में आते थे, अपने भाई-बहिनों से हँसते-बोलते थे, या मित्रों के साथ सैर-तमाशे देखते थे। लेकिन मेरे पास आने की आपने कसम खा ली थी। मैंने कितनी बार आपके पास सन्देशे भेजे, कितना अनुनय-विनय किया, कितनी बार बेशर्मी करके आपके कमरे मे गई, लेकिन आपने कभी मुझे आँख उठा कर भी न देखा। मैं तो कल्पना ही नहीं कर सकती कि कोई प्राणी इतना हृदयहीन हो सकता है। मैं प्रेम के योग्य नहीं, विश्वास के योग्य नहीं, सेवा करने के भी

योग्य नहीं, तो क्या दया के योग्य भी नही? मैने उस दिन कितनी मेहनत और प्रेम से आपके लिए रसगुल्ले बनाए थे। आपने उन्हे हाथ से छुआ भी नहीं। जब आप मुझसे इतने विरक्त है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जी कर क्या करूँ। न जाने वह कौन सी आशा है, जो मुझे जीवित रक्खे हुए है। क्या अन्धेर है कि आप सजा तो देते हैं, पर अपराध नहीं बतलाते! यह कौन सी नीति है! आपको ज्ञात है, इस एक मास मे मैंने मुश्किल से दस दिन आपके घर मे भोजन किया होगा। मैं इतनी कमज़ोर हो गई हूँ कि चलती हूँ तो आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। आँखों में जैसे ज्योति ही नहीं रही। हृदय मे मानो रक्त का सञ्चालन ही नहीं रहा। ख़ैर, सता लीजिए, रुला लीजिए, जितना जी चाहे, इस अनीति का अन्त भी एक दिन हो ही जायगा। अब तो मृत्यु ही पर सारी आशाएँ टिकी हुई है। अब मुझे प्रतीत हो रहा है कि मेरे मरने की खबर पाकर आप उछलेगे और हलकी साँस लेंगे, आपकी आँखो से आँसू की एक बूँद भी न गिरेगी। पर यह आपका दोष नहीं, मेरा दुर्भाग्य है। उस जन्म मे मैने कोई बहुत बडा पाप किया था। मैं चाहती हूँ, मै भी आपकी परवाह न करूँ, आप ही की भाँति आपसे आँखे फेर लूँ, मुँह फेर लूँ, दिल फेर लूँ, लेकिन न जाने मुझमे वह शक्ति नही है। क्या लता वृत्त की भाँति खडी रह सकती है। वृत्त के लिए किसी सहारे की जरूरत नहीं। लता वह शक्ति कहाँ से लाए? वह तो वृत्त से लिपटने के लिए पैदा की गई है। उसे वृत्त से अलग कर दो और वह सूख जायगी। मै आपसे पृथक अपने अस्तित्व की कल्पना ही नही कर सकती। मेरे जीवन की हर एक गति, प्रत्येक विचार, प्रत्येक कामना मे आप मौजूद होते है। मेरा जीवन वह वृत्त है जिसके केन्द्र आप है। मै वह हार हूँ, जिसके प्रत्येक फूल मे आप धागे की भाँति घुसे हुए है। उस धागे के बगैर हार के फूल बिखर जायँगे और धूल मे मिल जायँगे।

मेरी एक सहेली है शन्नो। उसका इस साल पाणिग्रहण हो गया है। उसका पति जब ससुराल आता है, शन्नो के पाँव ज़मीन पर नही पड़ते। दिन भर मे न जाने कितने रूप बदलती है। मुख-कमल खिल जाता है। उल्लास सँभाले नहीं सँभलता। उसे बिखेरती, लुटाती चलती है, हम जैसे अभागो के लिए। जब आकर मेरे गले से लिपट जाती है तो हर्ष और उन्माद की वर्षा में जैसे मै लथपथ हो जाती हूँ। दोनों अनुराग से मत-वाले हो रहे है। उनके पास धन नहीं है, जायदाद नहीं है, मगर अपनी दरिद्रता में ही मगन हैं। इस अखण्ड प्रेम का एक क्षण! उसकी तुलना मे संसार की कौन सी वस्तु रक्खी जा सकती है। मै जानती हूँ, यह रङ्गरेलियाँ और बेफ़िक्रियाँ बहुत दिन न रहेगी। जीवन की चिन्ताएँ और दुराशाएँ उन्हें भी परास्त कर देंगी। लेकिन यह मधुर स्मृतियाँ सञ्चित धन की भाँति अन्त तक उन्हें सहारा देती रहेगी। प्रेम में भीगी हुई सूखी रोटियाँ और प्रेम मे रँगे हुए मोटे कपड़े और प्रेम के प्रकाश से आलो-कित छोटी सी कोठरी अपनी इस विपन्नता मे भी वह स्वाद, वह शोभा और वह विश्राम रखती है, जो शायद देवताओं को स्वर्ग मे भी नसीब नही। जब शन्नो का पति अपने घर चला जाता है, तो वह दुखिया किस तरह फूट-फूट कर रोती है कि मेरा हृदय गद्‌गद हो जाता है; उसके पत्र आ जाते है तो मानो उसे कोई विभूति मिल जाती है। उसके रोने मे भी, उसकी विफलताओं मे भी, उसके उपालम्भों मे भी एक स्वाद है, एक रस है। उसके आँसू व्यग्रता और विह्वलता के हैं, मेरे आँसू निराशा और दुःख के। उसकी व्याकुलता में प्रतीक्षा और उल्लास है, मेरी व्याकुलता में दैन्यता और परवशता। उसके उपालम्भ में अधिकार और ममता है, मेरे उपालम्भ मे भग्नता और रुदन।

पत्र लम्बा हुआ जाता है और दिल का बोझ हलका नहीं होता। भयङ्कर गरमी पड रही है। दादा मुझे मसूरी ले जाने का विचार कर रहे है। मेरी दुर्बलता से उन्हें 'टी० बी०' का सन्देह हो रहा है। वह नहीं जानते कि मेरे लिए मसूरी नहीं, स्वर्ग भी कालकोठरी है।

अभागिनी,

—कुसुम

चौथा पत्र

मेरे पत्थर के देवता, कल मसूरी से लौट आई। लोग कहते हैं, बड़ा स्वास्थ्यप्रवर्धक और रमणीक स्थान है। होगा। मै तो एक दिन भी कमरे से नही निकली। भग्न-हृदयो के लिए संसार सूना है।

मैंने रात एक बड़े मज़े का सपना देखा। बतलाऊँ, पर क्या फायदा। न जाने क्यों मैं अब भी मौत से डरती हूँ। आशा का कच्चा धागा मुझे अब भी जीवन से बाँधे हुए है। जीवन-उद्यान के द्वार पर जाकर बिना सैर किए लौट जाना कितना हसरतनाक है! अन्दर क्या सुषमा है, क्या सौरभ है, क्या आनन्द है। मेरे लिए वह द्वार ही बन्द है! कितनी अभिलाषाओं से विहार का आनन्द उठाने चली थी—कितनी तैयारियों से—पर मेरे पहुँचते ही द्वार बन्द हो गया है।

अच्छा बतलाओ, मैं मर जाऊँगी तो मेरी लाश पर आँसू की दो बूँदें गिराओगे। जिसकी ज़िन्दगी भर की ज़िम्मेदारी ली थी, जिसकी सदैव के लिए बाँह पकड़ी थी, क्या उसके साथ इतनी उदारता भी न करोगे? मरने वालों के अपराध सभी क्षमा कर दिया करते हैं। तुम भी क्षमा कर देना। आकर मेरे शव को अपने हाथों से नहलाना, अपने हाथ से सोहाग के सिन्दूर लगाना, अपने हाथ से सोहाग की चूड़ियाँ पहनाना, अपने हाथ से मेरे मुँह में गङ्गाजल डालना, दो-चार पग कन्धा दे देना, बस मेरी आत्मा सन्तुष्ट हो जायगी और तुम्हें आशीर्वाद देगी। मैं वचन देती हूँ कि मालिक़ के दरबार में तुम्हारा यश गाऊँगी। क्या यह भी मँहगा सौदा है? इतने से शिष्टाचार से तुम अपनी सारी ज़िम्मेदारियों से मुक्त हुए जाते हो। आह! मुझे विश्वास होता कि तुम इतना शिष्टाचार करोगे तो मैं कितनी ख़ुशी से मरती, कितनी ख़ुशी से मौत का स्वागत करती। लेकिन मैं तुम्हारे साथ अन्याय न करूँगी। तुम कितने ही निष्ठुर हो, इतने निर्दयी नहीं हो सकते। मैं जानती हूँ, तुम यह समाचार पाते ही आओगे और शायद एक क्षण के लिए मेरी शोक-मृत्यु पर तुम्हारी आँखें रो पड़ें! कहीं मैं अपने जीवन में वह शुभ अवसर देख सकती।

अच्छा, क्या मैं एक प्रश्न पूछ सकती हूँ? नाराज़ न होना। क्या मेरी जगह किसी और सौभाग्यवती ने ले ली है? अगर ऐसा है तो बधाई! ज़रा उसका चित्र मेरे पास भेज देना। मैं उसकी पूजा करूँगी, उसके चरणों पर शीश नवाऊँगी। मैं जिस देवता को प्रसन्न न कर सकी, उसी देवता से उसने वरदान प्राप्त कर लिया! ऐसी सौभागिनी के तो चरण धो-धो पीना चाहिए। मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम उसके साथ सुखी रहो। यदि मैं उस देवी की कुछ सेवा कर सकती, अपरोक्ष न सही, परोक्ष रूप से ही, तुम्हारे कुछ काम आ सकती। तुम मुझे केवल उसका शुभनाम और स्थान बता दो, मैं सिर के बल दौड़ी हुई उसके पास जाऊँगी, और कहूँगी, देवी मैं तुम्हारी लौंडी हूँ, इसलिए कि तुम मेरे स्वामी की प्रेमिका हो, मुझे अपने चरणों में शरण दो। मैं तुम्हारे लिए फूलों की सेज बिछाऊँगी, तुम्हारी माँग मोतियों से भरूँगी, तुम्हारी एड़ियों में महावर रचाऊँगी—यही मेरे जीवन की साधना होगी! यह न समझना कि मैं जलूँगी या कुढ़ूँगी। जलन तब होती है, जब कोई मुझसे मेरी वस्तु छीन रहा हो। जिस वस्तु को अपना समझने का मुझे कभी सौभाग्य ही न हुआ, उसके लिए मुझे क्यों जलन हो।

अभी बहुत-कुछ लिखना था, लेकिन डॉक्टर साहब आ गए हैं। बेचारा हृदय-दाह को 'टी० बी०' समझ रहा है।

दुःख की सताई हुई,

—कुसुम

इन दोनों पत्रों ने मेरे धैर्य का प्याला भर दिया। मैं बहुत ही आवेशहीन आदमी हूँ। भावुकता मुझे छू भी नहीं गई। अधिकांश कलाविदों की भाँति मैं भी शब्दों से आन्दोलित नहीं होता। क्या वस्तु दिल से निकली है, क्या वस्तु केवल मर्म को स्पर्श करने के लिए लिखी गई है, यह भेद बहुधा मेरे साहित्यिक आनन्द में बाधक हो जाता है। लेकिन इन पत्रों ने मुझे आपे से बाहर कर दिया। एक स्थान पर तो सचमुच मेरी आँखें भर आईं। यह भावना कितनी वेदनापूर्ण थी कि वही बालिका, जिस पर माता-पिता प्राण छिड़कते रहते थे, विवाह होते ही इतनी विपद्ग्रस्त हो जाय! विवाह क्या हुआ मानो उसकी चिता बनी, या उसकी मौत का परवाना लिखा गया। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी वैवाहिक दुर्घटनाएँ कम होती हैं, लेकिन समाज की वर्तमान दशा में उनकी सम्भावना बनी रहती है। जब तक स्त्री-पुरुष के अधिकार समान न होंगे, ऐसे आघात नित्य होते रहेंगे। दुर्बल को सताना कदाचित प्राणियों का स्वभाव है। काटने वाले कुत्ते से लोग दूर भागते हैं, सीधे कुत्ते पर बालवृन्द विनोद के लिए पत्थर फेंकते हैं। तुम्हारे दो नौकर एक ही श्रेणी के हों, उनमें कभी झगड़ा न होगा।

लेकिन आज उनमे से एक को अफ़सर और दूसरे को उसका मातहत बना दो, फिर देखो अफसर साहब अपने मातहत पर कितना रोब जमाते है? सुखमय दाम्पत्य की नींव अधिकार-साम्य ही पर रक्खी जा सकती है। इस वैषम्य मे प्रेम का निवास हो सकता है, मुझे तो इसमे सन्देह है। हम आज जिसे पुरुषो मे प्रेम कहते है, वह वही प्रेम है जो स्वामी को अपने पशु से होता है। पशु सिर झुकाए काम किए चला जाय, स्वामी उसे भूसा और खली भी देगा, उसकी देह भी सहलाएगा, उसे आभूषण भी पहनाएगा। लेकिन जानवर ने ज़रा चाल धीमी की, ज़रा गर्दन टेढ़ी की और मालिक का चाबुक पीठ पर पड़ा। इसे प्रेम नही कहते।

ख़ैर, मैने पाँचवाँ पत्र खोला।

पाँचवाँ पत्र

जैसा मुझे विश्वास था, आपने मेरे पिछले पत्र का भी उत्तर न दिया। इसका खुला हुआ अर्थ यह है कि आपने मुझे परित्याग करने का सङ्कल्प कर लिया है। जैसी आपकी इच्छा। पुरुष के लिए स्त्री पाँव की जूती है, स्त्री के लिए तो पुरुष देवतुल्य है, बल्कि देवता से भी बढ़ कर। विवेक का उदय होते ही वह पति की कल्पना करने लगती है। मैने भी वही किया। जिस समय मै गुड़ियाँ खेलती थी, उसी समय आपने गुड्डे के रूप मे मेरे मनोदेश मे प्रवेश किया। मैने आपके चरणो को पखारा, माला-फूल और नैवेद्य से आपका सत्कार किया। कुछ दिनो के बाद कहानियाँ सुनने और पढ़ने की चाट पड़ी। तब आप कथाओ के नायक के रूप मे मेरे घर आए। मैने आपको हृदय मे स्थान दिया। बाल्य-काल ही से आप किसी न किसी रूप मे मेरे जीवन मे घुसे हुए थे। वह भावनाएँ मेरे अन्तस्तल की गहराइयों तक पहुँच गई है। मेरे अस्तित्व का एक-एक अणु उन भावनाओ से गुँथा हुआ है। उन्हे दिल से निकाल डालना सहज नही है। उसके साथ मेरे जीवन के परमाणु भी बिखर जायँगे। लेकिन आपकी यही इच्छा है तो यही सही। मै आपकी सेवा मे सब कुछ करने को तैयार थी। अभाव और विपन्नता का तो कहना ही क्या, मै तो अपने को मिटा देने को भी राज़ी थी। आपकी सेवा मे मिट जाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य था। मैने लज्जा और सङ्कोच का परित्याग किया, आत्म-सम्मान को पैरों से कुचला, लेकिन आप मुझे स्वीकार नही करना चाहते। मजबूर हूँ। आपका कोई दोष नही। अवश्य मुझसे कोई ऐसी बात हो गई है, जिसने आपको इतना कठोर बना दिया है। आप उसे जबान पर लाना भी उचित नही समझते। मै इस निष्ठुरता के सिवा और हर एक सज़ा झेलने को तैयार थी। आपके हाथ से ज़हर का प्याला लेकर पी जाने मे भी मुझे विलम्ब न होता। किन्तु विधि की गति निराली है। मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने मे बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मै उसे पुरुष की सहचरी, आर्धाङ्गिनी समझती थी। पर अब मेरी आँखे खुल गईं। मैने कई दिन हुए एक पुस्तक मे पढा था कि आदिकाल मे स्त्री पुरुष की उसी तरह सम्पत्ति थी, जैसे गाय, बैल या खेत-बारी। पुरुष को अधिकार था स्त्री को बेचे, गिरो रक्खे या मार डाले। विवाह की प्रथा उस समय केवल यह थी कि वर-पक्ष अपने सूर-सामन्तो को लेकर सशस्त्र आता था और कन्या को उडा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर मे रुपया-पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था उसे भी उठा ले जाता था। स्त्री को अपने घर ले जाकर वह उसके पैरो मे बेड़ियाँ डाल कर घर के अन्दर बन्द कर देता था। उसके आत्म-सम्मान के भावो को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बडी विभूति है। आज कई हज़ार वर्षों के बीतने पर पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नही हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या सस्कृत रूप मे मौजूद है। आज मुझे मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री-समाज की दशा का कितना सुन्दर निरूपण किया था।

अब आपसे मेरा सविनय अनुरोध है और यही अन्तिम अनुरोध है कि आप मेरे पत्रो को लौटा दें। आपके दिए हुए गहने और कपड़े अब मेरे किसी काम के नही। इन्हे अपने पास रखने का मुझे कोई अधिकार नही। आप जिस समय चाहे वापस मँगवा लें। मैंने उन्हे एक पेटारी मे बन्द करके अलग रख दिया है। उनकी सूची भी वहीं रक्खी हुई है। मिला लीजिएगा। आज से आप मेरी जबान या क़लम से कोई शिकायत न सुनेंगे। इस भ्रम को भूल कर भी दिल मे स्थान न दीजिएगा कि मैं

आपसे बेवफ़ाई या विश्वासघात करूँगी। मैं इसी घर में कुढ़-कुढ़ कर मर जाऊँगी, पर आपकी ओर से मेरा मन कभी मैला न होगा। मैं जिस जलवायु में पली हूँ, उसका मूल तत्व है पति में श्रद्धा। ईर्ष्या या जलन भी उस भावना को मेरे दिल से नहीं निकाल सकती। मैं आपके कुल-मर्यादा की रक्षिका हूँ। उस अमानत में जीते जी ख़ियानत न करूँगी। अगर मेरे बस में होता तो मैं उसे भी वापस कर देती। लेकिन यहाँ मैं भी मजबूर हूँ और आप भी मजबूर हैं। मेरी ईश्वर से यही बिनती है कि आप जहाँ रहें, कुशल से रहें। जीवन में मुझे सबसे कटु अनुभव जो हुआ वह यही है कि नारी-जीवन अधम है, अपने लिए, अपने माता-पिता के लिए, अपने पति के लिए। उसकी कदर न माता-पिता के घर में है, न पति के घर में। मेरा घर शोकागार बना हुआ है। अम्माँ रो रही हैं, दादा रो रहे हैं, कुटुम्ब के लोग रो रहे हैं। एक मेरी ज़ात से लोगों को कितनी मानसिक वेदना हो रही है। कदाचित वे सोचते होंगे, यह कन्या कुल में न आती तो अच्छा होता। मगर सारी दुनिया एक तरफ़ हो जाय, आपके ऊपर विजय नहीं पा सकती। आप मेरे प्रभु हैं। आपका फ़ैसला अटल है। उसकी कहीं अपील नहीं, कहीं फ़रियाद नहीं। ख़ैर, आज से यह काण्ड समाप्त हुआ। अब मैं हूँ और मेरा दलित, भग्न हृदय। हसरत यही है कि आपकी कुछ सेवा न कर सकी।

अभागिनी

—कुसुम

३

मालूम नहीं, मैं कितनी देर तक मूक-वेदना की दशा में बैठा रहा कि महाशय नवीन बोले—आपने इन पत्रों को पढ़ कर क्या निश्चय किया?

मैंने रोते हुए हृदय से कहा—अगर इन पत्रों ने उस नरपिशाच के दिल पर कोई असर नहीं किया, तो मेरा पत्र भला क्या असर करेगा। इससे अधिक करुणा और वेदना मेरी शक्ति के बाहर है। ऐसा कौन सा मार्मिक भाव है, जिसे इन पत्रों में स्पर्श न किया गया हो। दया, लज्जा, तिरस्कार, न्याय मेरे विचार में तो कुसुम ने कोई पहलू नहीं छोड़ा। मेरे लिए अब यही अन्तिम उपाय है कि उस शैतान के सिर पर सवार हो जाऊँ और उससे मुँह-दरमुँह बातें करके इस समस्या की तह तक पहुँचने की चेष्टा करूँ। अगर उसने मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर न दिया तो मैं उसका और अपना ख़ून एक कर दूँगा। या तो मुझी को फाँसी होगी, या वही कालेपानी जायगा। कुसुम ने जिस धैर्य और साहस से काम लिया है, वह सराहनीय है। आप उसे सान्त्वना दीजिएगा। मैं आज रात की गाड़ी से मुरादाबाद जाऊँगा और परसों तक जैसी कुछ परिस्थिति होगी उसकी आपको सूचना दूँगा। मुझे तो यह कोई चरित्रहीन और बुद्धिहीन युवक मालूम होता है।

मैं उस वहक में जाने क्या-क्या बकता रहा। इसके बाद हम दोनों भोजन करके स्टेशन चले। वह आगरे गए, मैंने मुरादाबाद का रास्ता लिया, उनके प्राण अब भी सूखे जाते थे कि मैं क्रोध के आवेश में कोई पागलपन न कर बैठूँ। बारे मेरे बहुत समझाने पर उनका चित्त शान्त हुआ।

मैं प्रातःकाल मुरादाबाद पहुँचा और जाँच शुरू कर दी। इस युवक के चरित्र के विषय में मुझे जो सन्देह था वह गलत निकला। मुहल्ले में, कॉलेज में, उसके इष्ट-मित्रों में, सभी उसके प्रशंसक थे। अँधेरा और गहरा होता हुआ जान पड़ा। सन्ध्या-समय मैं उसके घर जा पहुँचा। जिस निष्कपट भाव से वह दौड़ कर मेरे पैरों पर झुका है वह मैं नहीं भूल सकता। ऐसा वाक्-चतुर, ऐसा सुशील और विनीत युवक मैंने नहीं देखा। बाहर और भीतर में इतना आकाश-पाताल का अन्तर मैंने कभी न देखा था। मैंने कुशल-क्षेम और शिष्टाचार के दो-चार वाक्यों के बाद पूछा—तुमसे मिल कर चित्त प्रसन्न हुआ, लेकिन आखिर कुसुम ने क्या अपराध किया है, जिसका तुम उसे इतना कठोर दण्ड दे रहे हो। उसने तुम्हारे पास कई पत्र लिखे, तुमने एक का भी उत्तर न दिया। वह दो-तीन बार यहाँ भी आई, पर तुम उससे बोले तक नहीं। क्या उस निर्दोष बालिका के साथ तुम्हारा यह अन्याय नहीं है।

युवक ने लज्जित भाव से कहा—बहुत अच्छा होता कि आपने इस प्रश्न को न उठाया होता। इसका जवाब देना मेरे लिए बहुत मुश्किल है। मैंने तो इसे आप लोगों के अनुमान पर छोड़ दिया था, लेकिन इस गलतफ़हमी को दूर करने के लिए मुझे विवश होकर कहना पड़ेगा।

यह कहते-कहते वह चुप हो गया। बिजली की बत्ती पर भाँति-भाँति के कीट-पतङ्ग जमा हो गए थे। कई झींगुर उछल-उछल कर मुँह पर आ जाते थे और जैसे मनुष्य पर अपनी विजय का परिचय देकर उड़ जाते थे। एक बड़ा सा ग्रैखफोड भी मेज़ पर बैठा था और शायद जस्त मारने के लिए अपनी देह तौल रहा था। युवक ने एक पङ्खा लाकर मेज पर रख दिया, जिसने विजयी कीट-पतङ्गों को दिखा दिया कि मनुष्य इतना निर्बल नहीं है, जितना वे समझ रहे थे। एक क्षण मे मैदान साफ़ हो गया और हमारी बातो में दख़ल देने वाला कोई न रहा।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—सम्भव है, आप मुझे अत्यन्त लोभी, कमीना और स्वार्थी समझें, लेकिन यथार्थ यह है कि इस विवाह से मेरी वह अभिलाषा न पूरी हुई, जो मुझे प्राणो से भी प्रिय थी। मै विवाह करने पर रज़ामन्द न था, अपने पैरों मे बेड़ियाँ न डालना चाहता था, किन्तु जब महाशय नवीन बहुत पीछे पड़ गए और उनकी बातों से मुझे यह आशा हुई कि वह सब प्रकार से मेरी सहायता करने को तैयार है, तब मै राज़ी हो गया। पर विवाह हो जाने के बाद उन्होने मेरी बात भी न पूछी। मुझे एक पत्र भी न लिखा कि कब तक वह मुझे विलायत भेजने का प्रबन्ध कर सकेंगे। हालाँकि मैंने अपनी इच्छा उन पर पहले ही प्रकट कर दी थी, पर उन्होने मुझे निराश करना ही उचित समझा। उनकी इस अकृपा ने मेरे सारे मन्सूबे धूल में मिला दिए। मेरे लिए अब इसके सिवा और क्या रह गया है कि एल्-एल्० बी० पास कर लूँ और कचहरी में जूती फट-फटाता फिरूँ।

मैंने पूछा—तो आखिर तुम नवीन जी से क्या चाहते हो। लेन-देन मे तो उन्होने शिकायत का कोई अवसर नहीं दिया। तुम्हें विलायत भेजने का ख़र्च तो शायद उनके क़ाबू से बाहर हो।

युवक ने सिर झुका कर कहा—तो यह उन्हें पहले ही मुझसे कह देना चाहिए था। फिर मैं विवाह ही क्यों करता। उन्होने चाहे कितना ही खर्च कर डाला हो, पर इससे मेरा क्या उपकार हुआ। दोनों तरफ़ से दस-बारह हज़ार रुपए ख़ाक मे मिल गए और उनके साथ मेरी अभिलाषाएँ ख़ाक मे मिल गईं। पिता जी पर तो कई हज़ार का ऋण हो गया है। वह अब मुझे इङ्गलैण्ड नहीं भेज सकते। क्या पूज्य नवीन जी चाहते तो मुझे इङ्गलैण्ड न भेज देते। उनके लिए दस-पाँच हज़ार की कोई हक़ीक़त नहीं।

मै सन्नाटे मे आ गया। मेरे मुँह से अनायास निकल गया—छिः! वाह री दुनिया! और वाह रे हिन्दू-समाज! तेरे यहाँ ऐसे-ऐसे स्वार्थ के दास पड़े हुए है, जो एक अबला का जीवन सङ्कट मे डाल कर, उसके पिता पर ऐसा अत्याचारपूर्ण दबाव डाल कर ऊँचा पद प्राप्त करना चाहते हैं। विद्यार्जन के लिए विदेश जाना बुरा नहीं। ईश्वर सामर्थ्य दे तो शौक से जाओ। किन्तु पत्नी का परित्याग करके, ससुर पर इसका भार रखना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। तारीफ़ की बात तो तब थी कि तुम अपने पुरुषार्थ से जाते। इस तरह किसी की गरदन पर सवार होकर, अपना आत्म-सम्मान बेच कर गए तो क्या गए। इस पामर की दृष्टि मे कुसुम का कोई मूल्य ही नहीं। वह केवल उसकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन मात्र है! ऐसे नीच प्रकृति के आदमी से कुछ तर्क करना व्यर्थ था। परिस्थिति ने हमारी चुटिया उसके हाथ मे दे रक्खी थी और हमे उसके चरणो पर सिर झुकाने के सिवाय और कोई उपाय न था।

दूसरी गाड़ी से मै आगरे जा पहुँचा और नवीन जी से यह वृत्तान्त कहा। उन बेचारे को क्या मालूम था कि यहाँ सारी ज़िम्मेदारी उन्हीं के सिर डाल दी गई है। यद्यपि इस मन्दी ने उनकी वकालत भी ठण्डी कर रक्खी है और वह दस-पाँच हज़ार का ख़र्च सुगमता से नहीं उठा सकते, लेकिन इस युवक ने उनसे इसका सङ्केत भी किया होता तो वह अवश्य कोई न कोई उपाय करते। कुसुम के सिवा दूसरा उनका कौन बैठा हुआ है। उन बेचारे को तो इस बात का ज्ञान ही न था। अतएव मैने ज्योंही उनसे यह समाचार कहा तो वह बोल उठे—छिः! इस ज़रा सी बात को इस भले आदमी ने इतना तूल दे दिया। आप आज ही उसे लिख दें कि वह जिस वक्त जहाँ पढ़ने के लिए जाना चाहे, शौक़ से जा सकता है। मैं उसका सारा भार स्वीकार करता हूँ। साल भर तक निर्दयी ने कुसुम को रुला-रुला कर मार डाला।

घर मे इसकी चर्चा हुई। कुसुम ने भी माँ से सुना। मालूम हुआ, एक हज़ार का चेक उसके पति के नाम

भेजा जा रहा है, पर इस तरह, जैसे किसी सङ्कट का मोचन करने के लिए अनुष्ठान किया जा रहा हो।

कुसुम ने भृकुटी सिकोड़ कर माँ से कहा—अम्माँ, दादा से कह दो, कहीं रुपए भेजने की ज़रूरत नहीं।

माता ने विस्मित होकर बालिका की ओर देखा—कैसे रुपए? अच्छा! वह! क्यों इसमें क्या हर्ज है? लड़के का मन है तो विलायत जाकर पढ़े। हम क्यों रोकने लगे। यों भी उसी का है, ओ भी उसी का है। हमें कौन छाती पर लाद कर ले जाना है।

"नहीं, आप दादा से कह दीजिए एक पाई न भेजें!"

"आख़िर इसमें क्या बुराई है?"

"इसीलिए कि यह उसी तरह की डाकाज़नी है, जैसे बदमाश लोग किया करते है। किसी आदमी को पकड़ कर ले गए और उसके घर वालों से उसके मुक्तिधन के तौर पर अच्छी रकम ऐंठ ली।"

माता ने तिरस्कार की आँखों से देखा।

"कैसी बातें करती हो बेटी? इतने दिनों के बाद तो जाके देवता सीधे हुए है और तुम उन्हें फिर चिढ़ाए देती हो।"

कुसुम ने झल्ला कर कहा—ऐसे देवता का रूठे रहना ही अच्छा। जो आदमी इतना स्वार्थी, इतना दम्भी, इतना नीच है, उसके साथ मेरा निर्वाह न होगा। मै कहे देती हूँ, वहाँ रुपए गए तो मै ज़हर खा लूँगी। इसे दिल्लगी न समझना। मैं ऐसे आदमी का मुँह भी नहीं देखना चाहती। दादा से कह देना और अगर तुम्हें डर लगता हो तो मै ख़ुद कह दूँ। मैंने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है।

माँ ने देखा, लड़की का मुख-मण्डल आरक्त हो उठा है। मानो इस प्रश्न पर वह न कुछ कहना चाहती है, न सुनना।

दूसरे दिन नवीन जी ने यह हाल मुझसे कहा तो मै एक आत्म-विस्मृत की दशा में दौड़ा हुआ गया और कुसुम को गले लगा लिया। मैं नारियों में ऐसा ही आत्माभिमान देखना चाहता हूँ। कुसुम ने वही कर दिखाया जो मेरे मन मे था और जिसे प्रकट करने का साहस मुझमे न था।

साल भर हो गया है, कुसुम ने पति के पास एक पत्र भी नहीं लिखा और न उसका ज़िक्र ही करती है। नवीन जी ने कई बार जमाई को मना लाने की इच्छा प्रकट की, पर कुसुम उसका नाम भी सुनना नहीं चाहती। उसमे स्वावलम्बन की ऐसी दृढ़ता आ गई है कि आश्चर्य होता है। उसके मुख पर निराशा और वेदना के पीलेपन और तेजहीनता की जगह स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की लाली और तेजस्विता भासित हो गई है।

एक मौलवी साहब एक वकील साहब के यहाँ बहुधा जाया करते थे। मौलवी साहब तुर्की टोपी लगाते थे और एक लम्बी दाढ़ी रखाए हुए थे। एक दिन वकील साहब का लड़का ज़िद करने लगा कि हम भी मौलवी बनेंगे।

मौलवी साहब ने अपनी टोपी उतार कर लड़के के सर पर रख दी और कहा—लो, अब तुम मौलवी बन गए।

लड़के ने कुछ देर तक मौलवी साहब की ओर देखा और फिर दाढ़ी की ओर इशारा करते हुए कहा—इसे और उतार कर दे दीजिए, तो मैं पूरा मौलवी बन जाऊँगा।

मास्टर साहब समझाते-समझाते हार गए, परन्तु रामू गणित के प्रश्न का ठीक उत्तर न निकाल सका। मास्टर साहब मेहरबान थे, उन्होने रामू को एक और अवसर दिया। जब रामू सवाल निकाल चुका, तो मास्टर साहब को दिखाने के लिए ले चला। मास्टर साहब ने उत्तर देख कर निराशा से कहा—रामू, अब भी तुम्हारे उत्तर मे छः पाई की कमी है।

रामू ने चुपचाप दो पैसे जेब से निकाल कर उत्तर दिया—लीजिए, मास्टर साहब, अब तो कमी पूरी हो जायगी।

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल जी शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

मिसिर में जाग्रति

सन् १९१४ में मिसिर अत्यन्त असहायावस्था में था। परन्तु राष्ट्रीय भावों का पूर्णोदय हो चुका था। कमालपाशा के एक लेख का उदाहरण पहिले दिया जा चुका है। एक दूसरे देशभक्त श्रीयुत हामिदअली ने ब्रूसल्स में भाषण देते हुए कहा था कि—"मेरा विषय राजनीति से भी गहरा है, मैं आपको यह बतलाऊँगा कि मिसिर में अङ्गरेज़ों के निरवधि शासन के कारण कैसा नैतिक पतन और बुद्धि का ह्रास होता जा रहा है। मैं रूई के बोरों और धन-कुबेरों की सम्पत्ति के नाश का ज़िक्र नहीं करना चाहता। मैं वर्णन करना चाहता हूँ मनुष्यों का, पुरुषों का और स्त्रियों का; जो ईसाई मत के अनुकूल परमात्मा की प्रतिमाएँ हैं। मैं ज़िक्र करना चाहता हूँ उन बच्चों का, जिनको यदि अनुकूल अवसर मिले तो वे वास्तव में परमात्मा की प्रतिमाएँ बन सकते हैं। अङ्गरेजी शासन के कारण आज ये सब खतरे में है। जब हमारे देशभाई वर्तमान आन्दोलन के इस स्वरूप को समझेंगे, तो उनको पता लगेगा। तब वे आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों को छोड़ कर इस प्रश्न के महत्व को समझेंगे। तब उनका ध्यान उन सुन्दर बालकों की ओर आकर्षित होगा, जिनको विदेशी राज्य के दुःख अपने बाप-दादाओं की भूलों के कारण उठाने पड़ेंगे। अपनी मातृभूमि, अपने पुरुषाओं का गौरव और न्याय तथा सत्य का पक्ष, इन सबके नाम पर चाहे मेरे देशभाइयों को जोश न आवे, पर जब वे अपने प्यारे बच्चों की भावी और वर्तमान विपत्ति का अनुभव करेंगे, तो उनका ख़ून उबलने लगेगा।" विद्वान वक्ता ने आगे चल कर प्राचीन गौरवान्वित इतिहास का स्मरण दिला कर मिसिरवासियों को अपने मान की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया। उसने कहा—"जिस समय यूरोप का अस्तित्व भी नहीं था, उस समय मिसिर उन्नत और सभ्य देश था। जो मिसिरवासी मद्य पीकर अपनी अकर्मण्यता को बढ़ाता है, वह अङ्गरेज़ी शासन की जड़ को मानो दृढ़ करता है। वह उस लेखक से भी अधिकतर हानिकर है, जो अङ्गरेज़ी राज्य के पक्ष में लेख लिखता है। लेख और वक्तृताएँ तो भुला दी जा सकती है, पर क़ौम की अकर्मण्यता कठिनता से जाती है। विदेशी शासन के कारण देश के जीवन में कृत्रिमता आ जावेगी, जिसके कारण नैतिक और मानसिक उन्नति असम्भव हो जावेगी। जिस जाति पर विदेशियों का शासन रहता है, उसकी मौलिकता और विकास-शक्ति नष्ट हो जाती है। कौम की आत्मा और शरीर में भेद हो जाता है, जिसके कारण अच्छे-अच्छे पुरुष दब जाते है और उन्नत नहीं होने पाते।"

लॉर्ड किचनर का दमन

जिस देश के निवासियों में ऐसे भावों की जाग्रति हो चुकी थी, वह दबाए नहीं दब सकता था। परन्तु तो भी लॉर्ड किचनर ने मिसिर की राष्ट्रीयता को नष्ट करने में कोई कसर न उठा रक्खी। युद्ध-घोषणा होते ही नाम-मात्र की व्यवस्थापिका सभा को विदा कर दिया गया। सभाएँ करने की मनाही कर दी गई और फ़ौजी क़ानून जारी कर दिया गया। अब तक कम से कम कहने को तो मिसिर में तुर्की का राज्य माना जाता था, परन्तु अब बाज़ाब्ता एलान कर दिया गया कि मिसिर अङ्गरेज़ों की सुपुर्दगी में रहेगा। उस समय ख़दीव (मिसिर का राजा) क़ुस्तुन्तुनिया में था। उसको राज्यसिंहासन से हटा कर उसके स्थान पर उसके चचा हुसेन को बिठा दिया गया। ऑस्ट्रेलिया और हिन्दुस्तान से सेनाएँ मँगवा कर मिसिर में तैनात कर दी गईं और उसके

उद्दण्ड व्यवहार से मिसिर को अनेक कष्ट हुए। इन सेनाओं के वास्ते रसद और बेगार देते-देते मिसिर के कृषक और मज़दूर थक गए। सेनाओं के मज़दूर-विभाग में इनको भरती किया गया, वहाँ भी उनके साथ घोर दुर्व्यवहार किया गया और उनको ऐसी अवस्था में रक्खा गया कि उनकी मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ गई। अनेक दम्भी और अदूरदर्शी अफ़सरों के कारण उनके क्रोध और घृणा आदि भी बढ़ने लगे। अनेक बार रेडक्रॉस का चन्दा एकत्र किया गया, जिसमें कई प्रकार से ज़बरदस्ती की गई।

इन अत्याचारों के कारण देश में घोर अशान्ति फैल गई। अङ्गरेज़ों ने प्रभूत सेना-बल से मिसिर को पूर्ण कर रक्खा था, इसलिए देश-व्यापी ग़दर या बलवा तो होना असम्भव था। फिर भी जहाँ-तहाँ उत्पात होने लगे, जिनको कठोरतापूर्वक दबाया गया। एक फ्रेञ्च यात्री ने उस समय का वर्णन यों लिखा है—"सुलतान की जिहाद-घोषणा के कारण मुसलमान ईसाइयों के शत्रु बने हुए हैं। अक्टूबर के बाद से ही प्रत्येक मुसलमान की आँखों में क्रोध की ज्वाला धधकती हुई दिखाई देने लगी है। ईसाइयों का बध उसकी जीवनाकांक्षा हो गई है। केरो की गलियों में मुसलमान अङ्गरेज़ों की ओर आँखें चढ़ा तथा दाँत पीस-पीस कर देखते हैं। जब यह समाचार आया कि सुलतान ने जिहाद का एलान कर दिया है तो अनेक मुसलमान तो हर्षातिरेक में नाचने लगे। पुलिस के शिकायत करते ही ऐसे आदमियों को तत्क्षण जेल में ठूँस दिया जाता था। अलअज़र जैसे स्थान तक में यही दशा थी। मुझसे एक मित्र ने कहा था कि जो यूरोपीय मुस्लिम-विश्वविद्यालय को देखने जाता है, उसको वह लोग अरबी में अनेक गालियाँ देते हैं।"

असन्तोष और दमन

राष्ट्रीय भावों को प्रकट करने के अपराध में लॉर्ड किचनर ने कितने ही देशभक्त मिसिरियों को देश-निर्वासित किया। परन्तु इन लोगों ने विदेशी सरकारों की शरण में जाकर और भी अधिक उग्र बातें कहना और प्रकाशित करना आरम्भ किया। उनके नेता मुहम्मद फ़रीद बे ने जिनेवा से एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें लिखा था कि—"गत दिसम्बर की १८ तारीख़ को अङ्गरेज़ों ने मिसिर में नए शासन की जो घोषणा की है, वह अन्यायपूर्ण और क़ानून के विरुद्ध है। इङ्गलिस्तान, बेलजियम की रक्षा करने के लिए जर्मनी से युद्ध करने का दम भरता है, लेकिन मिसिर के अधिकारों को पैरों तले रौंद रहा है। उसके साथ जो सन्धियाँ हुई हैं, उनको केवल काग़ज़ के टुकड़े समझता है।" ये निर्वासित देशभक्त जर्मनी में पहुँच कर वहाँ अपने हृदय का बुग़्ज़ निकालने लगे। राष्ट्रीय दल के मन्त्री श्री० अबुल यलीफ़ इन्शा ने नवम्बर सन् १९१६ ई० में एक जर्मन पत्र में लिखा था कि "मिसिर में शायद ही कोई मनुष्य होगा, जो यह प्रार्थना न करता हो कि इङ्गलिस्तान हारे और उसका साम्राज्य नष्ट हो। युद्ध के आरम्भ में जब मैं अपने देश में था, तो मैंने इसका अनुभव किया था। नगर, ग्राम और सर्वत्र, आबाल-वृद्ध, ग़रीब, अमीर, कृषक, सन्त सबको विश्वास है कि क़ैसर इस्लाम का प्रेमी और ख़लीफ़ा का मित्र है। वे सब जर्मनी की विजय के लिए प्रार्थना किया करते थे।" इस प्रकार के लेख राष्ट्रीय भावों के द्योतक अवश्य थे, परन्तु जर्मनी में रहते हुए लेखक और लिखता ही क्या। मिसिर में उस समय अङ्गरेज़ों ने इतनी सेना एकत्र कर रक्खी थी कि इस प्रकार के लेखों से उनका बाल भी बाँका नहीं हो सकता था। जब कभी तुर्कों ने स्वेज़ नहर पर हमला किया, तभी उसको हटा दिया गया और मिसिर में लॉर्ड किचनर की दुन्दुभी बजती रही। अङ्गरेज़ों के सैनिक बल से त्रस्त होकर मिसिर मन मसोस कर चुप बैठा रहा। दासता की बेड़ियों के भार से वह इधर-उधर हिल भी नहीं सकता था और जब चिल्लाता था तो उसकी जीभ पकड़ ली जाती थी, इसलिए वह चुपचाप स्वतन्त्रता की माला जपता रहा। जाग्रत राष्ट्रीय भावों को अङ्गरेज़ों का वैज्ञानिक शस्त्र-बल और उनके कूटनीतिज्ञों का बुद्धि-बल भी कैसे दबा सकता था?

रीफ़ और फ्रान्स

पूर्व प्रकरण में हम बतला चुके हैं कि उत्तर अफ्रीका में मोरक्को पर फ्रान्स का अधिकार था और शेष त्रिपोली से पश्चिम भाग में समुद्र-तट पर स्पेन था और दक्षिण की ओर फ्रान्स का प्रभुत्व था। महासमर में स्पेन उदासीन राष्ट्र था। उस समय उत्तरी अफ्रीका के स्पेनी राज्य में अनेक जर्मन इञ्जीनियर आदि रहते थे, उनके प्रसङ्ग और बहाने से उस भाग में जर्मनी के प्रचारक आ गए

और उदासीन प्रदेश मे रहते हुए फ्रान्स के राज्य मे कई प्रकार के उत्पात करवाने लगे। फ्रान्स के विरुद्ध उन्होने मुसलमानो को उभाड़ना आरम्भ किया। छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के द्वारा उन्होंने फ्रान्स के अत्याचार का वर्णन किया और उनमे स्वतन्त्रता की अभिलाषा जाग्रत की। रीफ़ लोग (उत्तर अफ्रीका के निवासी) पहले ही विदेशियो से तङ्ग थे। जर्मन लोगो की अपील उनके दिल मे बस गई और फ्रान्स-सरकार के विरुद्ध नित्य उपद्रव होने लगे। अनेक उच्च रीफ़ सरदार इस आन्दोलन मे सम्मिलित हो गए। प्रसिद्ध रीफ़-नेता अब्दुल क़रीम का वंश उनमे से एक था। मोरक्को और अलजीरिया के बीच मे उस समय जो रेलवे लाइन थी, वह फ्रान्स के लिए बड़े काम की थी। यह स्पेन की सीमा से मिली हुई जाती थी। असन्तुष्ट रीफ़ों ने इस लाइन को कई बार तोड़ा, कई बार तार काट डाले, कई स्टेशनों को नष्ट किया और कई बार माल लूट लिया। इस लाइन को येन-केन-प्रकारेण चलती रखने के लिए फ्रान्स को बड़े-बड़े यत्न करने पड़े और उसका बहुत धन खर्च हुआ।

इससे पूर्व रीफ़ लोगों ने यूरोपियन लोगो को केवल विजेताओ के रूप मे देखा था। यूरोपीय लोग अपने को उच्च समझते थे और रीफ़ो से अधिक मिलते-जुलते नही थे। कुछ रीफ़ यूरोप मे घूम आए थे और उन्होंने यूरोपीय रहन-सहन ग्रहण कर लिया था। इस सम्पर्क के कारण उन लोगों के परम्परागत विचारो मे भी परिवर्तन होना आरम्भ हो गया था। लेकिन अधिकांश रीफ़ महासमर से पूर्व यूरोप वालो को हव्वा समझते थे। लड़ाई के समय जर्मन जासूसो को अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए रीफ़ों की मित्रता करनी पड़ी, कभी उनकी खुशामद करनी पड़ी और उनसे मिल-जुल कर रहना पड़ा। उधर फ्रान्स वालो को भी रीफ़ों के साथ अच्छा व्यवहार करना पड़ा, क्योकि उनको अपनी सेना मे भरती किया गया था। इस सम्पर्क के कारण रीफ़ो को यूरोपीय लोगो की नीति, बल और निर्बलता से अधिक परिचय हुआ और यूरोप की स्वतन्त्रता को देख कर उनमे स्वतन्त्र बनने की अभिलाषा प्रबल हो गई।

उत्तर ईरान में रूस और तुर्की

जिस समय यूरोपीय युद्ध का आरम्भ हुआ, उस समय कोई भी मुस्लिम देश इतना जीर्ण-शीर्ण और निर्बल नही था, जितना ईरान। अहमदशाह वहाँ का नाम-मात्र का सम्राट था और उसकी राज-परिषद् आदि सब प्रबन्ध-व्यवस्था की विडम्बना थी। वास्तव मे देश के स्वामी रूसी और अङ्गरेज़ थे। उत्तर मे रूस का प्रभुत्व था और दक्षिण मे अङ्गरेज़ो का। ईरान असली युद्ध-स्थल से बहुत दूर था, पर तो भी वह विज्ञान-बल और पुरुषार्थ की रङ्ग-भूमि बने बिना नही रह सकता था। इसका कारण था भारतवर्ष का सान्निध्य। तुर्की और ईरान की सीमा तो मिली हुई थी ही। इसलिए यदि तुर्की और जर्मन-सेना फ़ारस को अधिकृत कर लेती, तो अफ़ग़ानिस्तान से होकर हिन्दुस्तान मे घुसने का उनका प्रयत्न सफल हो सकता था। इसके अतिरिक्त फ़ारस के दक्षिण मे कितने ही मिट्टी के तेल के कुएँ थे, जो अङ्गरेज़ो के हाथ मे थे। उनकी रक्षा करना भी अङ्गरेज़ो के लिए ज़रूरी था। युद्ध आरम्भ नही हुआ, उसके पहिले ही उत्तर-पश्चिमी भाग मे रूस और तुर्की मे खटपट रहा करती थी। युद्ध-घोषणा होने पर तो इन दोनो देशो की सेनाएँ तैयार होने लगी और खुल्लमखुल्ला युद्ध होने लगा और लगभग ढाई वर्ष तक इनमे युद्ध होता रहा। फ़ारस-सरकार उदासीनता की दुहाई देने के सिवाय कुछ कर ही नही सकती थी। दो प्रतिद्वन्द्वी शक्तियो के पारस्परिक सङ्घर्ष के कारण अपने देश की बरबादी को वह दुखी-हृदय के साथ अपनी असहायावस्था के कारण देखती रही।

दक्षिण में अङ्गरेज़

महासमर की आशङ्का होते ही भारत-सरकार ने बहरीन द्वीप-समूह मे सेना भेज दी थी और एक क्रूज़र-शत्तक अरब के मुहाने पर तैनात कर दिया गया था। युद्ध-घोषणा होते ही इस सेना ने बसरे पर अधिकार कर लिया और तेल के कुएँ सुरक्षित कर दिए गए। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम मे रूस और दक्षिण-पश्चिम मे अङ्गरेज़ो ने अपना पैर जमा लिया था। पर उत्तर और दक्षिण के बीच का प्रदेश पश्चिम से पूर्व तक अभी तक उन दोनों की शक्तियों के हाथ में पूरी तरह नहीं था। यहाँ पर तुर्की और जर्मन सेनाओं ने महाऊधम मचाना शुरू कर दिया। इससे अङ्गरेज़ और रूस दोनो सरकारों को भारी हानि हुई। कहीं उनके भूले-भटके सैनिकों को मार डाला जाता था, कहीं उनके कारख़ानों को नष्ट कर दिया

जाता था, और कई बार उनके राजदूतों के भवनों पर आक्रमण किए गए थे। भोले भाले ईरानियों को भी बड़े भुलावे में डाला गया था। उनमें यह समाचार फैला दिया गया था कि क़ैसर ने मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया है। उसने हज-यात्रा भी कर ली है और अब वह हाजी विलियम क़ैसर कहलाता है। सन् १९१७ ई० में रूस में राज्य-क्रान्ति हो गई और रूसी सेना उत्तरी ईरान से हट गई। ख़ाली मैदान देख कर अङ्गरेज़ों ने उत्तर में भी अपना अधिकार स्थापित कर दिया। मध्य ईरान में कितने ही जर्मनों को क़ैद कर लिया गया। कहते हैं कि जब इनकी तलाशी ली गई, तो एक ऐसा चित्र मिला था, जिसमें गिद्ध के अण्डे में से एक ईरानी निकलता हुआ बतलाया जाता था।

ईरान को क्षति और लाभ

समरोत्पातों से सम्पूर्ण फ़ारस को महती क्षति हुई। सैकड़ों हरे-भरे खेत युद्धाङ्गण बन गए, सहस्रों चौपाए सैनिकों का भोजन बन गए और व्यापार मटिया-मेट हो गया, परन्तु साथ ही कुछ लाभ भी हुए। सैनिकों के वास्ते रसद, कपड़ा आदि ख़रीदने में, रास्ते तैयार करने में, लोगों को अपने अनुकूल करने में रूसी और अङ्गरेज़ों को मनमाना धन व्यय करना पड़ा। इसके कारण जहाँ पहिले सोने के दर्शन भी नहीं होते थे, वहाँ ढेर दिखाई देने लगे। इससे भी अधिक लाभ यह हुआ कि ईरान में कई मार्ग बन गए। करमनशा और हमदन के बीच का कच्चा और ख़राब मार्ग भी उत्तम बन गया और बन्दर अब्बास तथा इस्फ़हान के बीच में पक्की सड़क बन गई। दक्षिण ईरान में उस समय लगभग १,२०० मील लम्बा पक्का रास्ता बन गया था।

अफ़ग़ानिस्तान

अफ़ग़ानिस्तान में राष्ट्रीय जाग्रति तो अभी नहीं हुई थी, परन्तु अमीर अब्दुल रहमान ने सड़कें, तार, डाकघर, शफ़ाख़ाने आदि पश्चिमीय संस्थाएँ स्थापित करना आरम्भ कर दिया था। अफ़ग़ानी लोग अभी प्रायः कट्टर, धर्मान्ध और रक्तपिपासु थे। इस्लाम सङ्गठन का सन्देश जब तक पहुँच चुका था और कट्टर मुल्लाओं का ज़ोर बढ़ता जाता था। समर-घोषणा के समय भारत-सरकार को अफ़ग़ानिस्तान की तरफ़ से भारी भय होना चाहिए था, लेकिन अमीर अब्दुल रहमान अङ्गरेज़ों का पक्का मित्र था। उसने अपने देश में या सरहद में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होने दिया और अपनी मित्रता का पूर्ण परिचय दिया। जब तुर्की सुलतान ने जिहाद की घोषणा की और सब मुसलमानों को रण का निमन्त्रण दिया, तो अफ़ग़ानों का ख़ून उबलने लगा। लेकिन अब्दुलरहीम ने उनको येन-केन-प्रकारेण शान्त रक्खा। जब जर्मनी से कुछ सरदार उसको अङ्गरेज़ों के विरुद्ध भड़काने के लिए आए तो उसने उनको मीठी-मीठी बातें करके बिदा कर दिया। तुर्की के प्रतिनिधियों को भी यह कह कर टाल दिया कि "मैं तुर्की की विजय चाहता हूँ, पर मैं क्या करूँ?" अफ़ग़ानिस्तान को अपने अमीर की यह दब्बू नीति पसन्द नहीं थी। सुलतान ख़लीफ़ा का आदेश, मुल्लाओं की अनुमति, काफ़िरों के रक्त से अपने हाथ रञ्जित करने का अवसर— इससे अधिक रक्तपिपासु और उत्पातप्रिय अफ़ग़ानियों को क्या चाहिए था। इसलिए अमीर के प्रति उनका रोष और असन्तोष बढ़ने लगा। उधर युद्ध समाप्त भी नहीं होने पाया था कि उसने अमीर का वध कर डाला। अङ्गरेज़ों के प्रति घृणा इस समय पराकाष्ठा पर पहुँच गई।

सरहद

अफ़ग़ानिस्तान और भारतवर्ष के बीच में जो सरहदी भाग है, वहाँ के जर्मन-जासूसों ने बहुत तूफ़ान मचाया। जर्मन क़ैसर की ओर से सरहदी सरदारों के पास उर्दू और फ़ारसी में लिखे हुए पत्र पहुँचे, जिनमें अङ्गरेज़ों की सहायता करने में हानि और जर्मनी का पक्ष करने में लाभ विस्तारपूर्वक बतलाए गए। अङ्गरेज़ों को भी अफ़-ग़ानी सेनाओं को भी भड़काने का पूरा पत्न किया गया, इससे सरहदी मुस्लिम जातियों में घोर असन्तोष उमड़ा। अमीर अब्दुल रहमान ने भारत-सरकार को सलाह दी कि सरहद की शान्ति को दबाने में दमन या अदूरदर्शिता से काम न लेना चाहिए। जहाँ सेना द्वारा उत्पात को दबाने की आवश्यकता पड़े, वहाँ भी संयम से काम लेना चाहिए और सेनानायक कठोर और निर्दयी न होना चाहिए। भारत-सरकार ने अमीर की सलाह को माना और सरहदी प्रान्त में केवल एक अवसर पर ही भारत-सरकार को सेना का उपयोग करने की आवश्यकता पड़ी।

भारतवर्ष

भारतीय मुसलमान भी तुर्की सुलतान की युद्ध-घोषणा सुन कर प्रक्षुब्ध हो गए। तुर्की की हार, अरब का बलवा, ईराक की पराजय, फ़ारस की दुर्दशा, अफ़ग़ानिस्तान की अशान्ति आदि का हाल सुन-सुन कर उनका ख़ून उबलने लगा। परन्तु करते क्या? भारत-सरकार के प्रभूत सेना-बल और अद्भुत सङ्गठन ने उनको दबा रक्खा था। इस असहायावस्था के कारण वे अनुभव करने लगे कि अङ्गरेज़ों की शरण ग्रहण करने से इस्लाम की रक्षा नहीं हो सकती और उनको राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित होना चाहिए।

२०वीं शताब्दी के आरम्भ में यूरोप के प्रत्येक राष्ट्र का दाँत तुर्की पर लगा हुआ था। कुस्तुन्तुनिया जैसे महत्वपूर्ण नगर का ग़ैर-ईसाई शक्ति के हाथ में होना सबके दिल में खटकता था। फिर रूस उसको अपनी सम्पत्ति समझता था। ग्रेट-ब्रिटेन भारत में अपना राज्य बनाए रखने के कारण उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता था। फ़्रान्स और इटली यह नहीं चाहते थे कि कुस्तुन्तुनिया की प्राप्ति के द्वारा रूस या ग्रेट-ब्रिटेन की शक्ति दुर्द्धर्ष हो जावे। इस अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थ के कारण तुर्की में सदैव चिन्ता और अनिश्चितावस्था बनी रहती थी। यूरोप की ये कूट चालें भारतीय मुसलमानों को भी मालूम होने लगी थीं। वे जानते थे कि तुर्की में १९०८ की राज्य-क्रान्ति यूरोप की स्वार्थमयी नीति के कारण ही सफल नहीं हो सकी। सन् १९११ में जब इटली ने त्रिपोली पर अपना अधिकार स्थापित करके तुर्की राज्य को निर्बल बना दिया, तो भारत के मुसलमान अपनी स्थिति को अनुभव करने लगे। ईरान में जो अङ्गरेज और रूसी लोग अत्याचार कर रहे थे, उससे मुस्लिम लोगों की धारणा और भी दृढ़ हो गई कि यूरोप के लोग मुसलमानों के हितैषी नहीं हैं। अब हिन्दुस्तान के मुसलमानों को सूझा कि राजभक्ति के तराने अलापते रहने से उनको कोई लाभ नहीं है। सन् १९१३ में लखनऊ में मुस्लिम-लीग का अधिवेशन हुआ, जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत किया गया कि लीग का उद्देश्य ऐसा स्वराज्य प्राप्त करना है, जो भारत के अनुकूल हो।

ऐक्य-वृद्धि

अब तक हिन्दू और मुसलमान प्रायः पृथक् थे। तिलक जैसे धुरन्धर और सूक्ष्मदर्शी नेता ने भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिए कोई प्रबल प्रयत्न नहीं किया था। लेकिन अब नई पीढ़ी के युवकों को अनुभव होने लगा कि दोनों क़ौमों के मिले बिना न देश का उद्धार हो सकता है और न किसी एक क़ौम का ही मस्तक ऊँचा हो सकता है। अब मुसलमानों का दर्प शनैः-शनैः कम होने लगा। उन्होंने कहना छोड़ दिया कि हम शासक हैं और हिन्दू प्रजा है। उनको अनुभव होने लगा कि यूरोप इस्लाम को नष्ट करना चाहता है। और यदि भारत के मुसलमान उसकी रक्षा के लिए कुछ कर सकते हैं, तो उसी अवस्था में कर सकते हैं, जब स्वयं उनका देश स्वतन्त्र हो। इस स्थिति को समझ कर नरम दल के मुसलमान भी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की महत्ता को स्वीकार करने लगे और कहने लगे कि हिन्दू-मुसलमानों में एक देशवासी होने के कारण अनेक समताएँ हैं। सन् १९१४ में आग़ा ख़ाँ ने लिखा था कि "पहिले हिन्दू और मुसलमानों में इतनी समता नहीं थी, जितनी अब पाई जाती है। किसी भी साधारण उच्चकुलीन मुस्लिम युवक को लीजिए। अपनी परम्परागत धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त उसकी अन्य शिक्षा में और उसके हैसियत वाले एक हिन्दू-युवक की शिक्षा में कुछ भी भेद नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि अलीगढ़ कॉलेज जैसी मुस्लिम संस्थाओं में भी वही पढ़ाई, वही शिक्षा-प्रणाली और वैसे ही अध्यापक होते हैं, जैसे हिन्दू-कॉलेजों में। इस नवीन प्रणाली से जो मुस्लिम नवयुवक शिक्षित हुए हैं, वे आगे आते जाते हैं और राजनैतिक विचारों में वे अन्य क़ौम के युवकों से मिलते-जुलते हैं। इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रीयता किस प्रकार बढ़ती जाती है।" सन् १९१० में सर वेलेन्टाइन चिरोल ने लिखा था कि "ब्रिटिश राज्य के जम जाने के बाद जैसे हिन्दू-मुसलमान मिल गए हैं, वैसे पहिले कभी नहीं मिले थे।"

(क्रमशः)

चाँद प्रेस, लिमिटेड

[कम्पनी का वक्तव्य (Manifesto)]

भविष्य में और भी व्यापक एवं ठोस सेवा करने की शुभ-भावनाओं से प्रेरित होकर ; पाठकों को जान कर प्रसन्नता होगी, कि संस्था को एक सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी—Public Limited Company—का रूप दे दिया गया है। ९ वीं जून को कम्पनी की रजिस्ट्री भी हो चुकी है। संस्था का निर्धन से निर्धन प्रेमी भी इसका हिस्सेदार बन सके, इसी उद्देश्य से फ़ी हिस्सा केवल १०) रुपए का रक्खा गया है ; वह भी, चार क़िश्तों में देना होगा। कम्पनी की योजनाओं के अनुसार हिस्सेदारों को २०) रुपए से २५) रुपए सैकड़ा लाभ हो सकता है। कम्पनी का मूल धन ८ लाख रक्खा गया है और १॥ लाख के ऊपर के हिस्से अब तक बिक चुके हैं। जबकि एक सहगल जी की सेवाओं से संस्था ऐसा विराट रूप धारण कर सकी है, तब कोई कारण नहीं कि कम्पनी की ये विशाल योजनाएँ हज़ारों व्यक्तियों का सहयोग पाकर अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल न हों। जो लोग बैङ्कों तथा डाक-ख़ानों में रुपए जमा करके ४ या ५ रुपए सैकड़ा सूद पाकर ही सन्तुष्ट रहते हैं, उन्हें चाहिए कि काफ़ी तादाद में हिस्से ख़रीद कर स्वयं भी इतना अधिक लाभ उठावें और साथ ही परोक्ष रूप से देश तथा समाज-सेवा के इस पुनीत कार्य में संस्था का हाथ बटावें। संस्था ने जो वक्तव्य—Manifesto—प्रकाशित किया है, उसे पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है और उसके प्रत्येक शब्द से हम सहमत हैं। आशा है, संस्था द्वारा की गई पिछले १० वर्षों की सेवाओं को दृष्टि में रखते हुए संस्था का प्रत्येक प्रेमी यथाशक्ति उसे सहायता प्रदान करेगा।

—सं० 'चाँद'

भारतवर्ष मे इस समय एक अभिनव चैतन्यता और नवजीवन का प्रादुर्भाव हो रहा है। राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक विभाग मे एक नई स्फूर्ति दृष्टि-गोचर हो रही है। यद्यपि इस समय सब से अधिक ज़ोर राजनीतिक जागृति का है और उसी की तरफ़ साधारण लोगों का ध्यान लगा हुआ है, पर जो व्यक्ति परिस्थिति का विचारपूर्वक अवलोकन कर रहे है, उनको कला, साहित्य, विज्ञान आदि सभी चेत्रों मे पुनर्जीवन के चिन्ह स्पष्ट दिखलाई देते है। चित्र-कला, कविता और मूर्ति-निर्माण आदि मे भारतवर्ष फिर संसार के अन्य देशों से टक्कर लेने लगा है। विज्ञान के चेत्र मे भारतीय शीघ्रता-पूर्वक बढ रहे है और नए-नए आविष्कार करके संसार को चकित कर रहे है। देश के स्वाधीनता-संग्राम मे हम लोगों ने ऐसे मार्ग का अवलम्बन किया है, जिसकी संसार के अन्य देशों के निवासी कल्पना भी न कर सकते थे। ये सब बातें भारतीयों के हृदयों मे नवीन आशा के अङ्कुर

उत्पन्न कर रही है। भारतवर्ष के भविष्य के लिए ये परम शुभ चिन्ह है। पर इनसे भी बढ कर महत्त्वपूर्ण वह सामाजिक क्रान्ति है, जिसके दर्शन इस समय हम कर रहे है। भारतीय स्त्रियाँ, जो सदियों से ग़ुलामी मे पडी हुई थीं, देश-सेवा और बलिदान के मार्ग मे अग्रसर हो रही है, और इस प्रकार अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर रही है। अन्याय-पीडित किसान पतित अवस्था से निकल कर जीवन-निर्वाह के मनुष्योचित अधिकार का दावा पेश कर रहे है। जो लोग शक्तिहीन तथा निर्बल समझे जाते थे, वे अपनी अजेय इच्छा-शक्ति द्वारा पाशविक बल का सामना करने को तैयार दिखलाई पड़ते है।

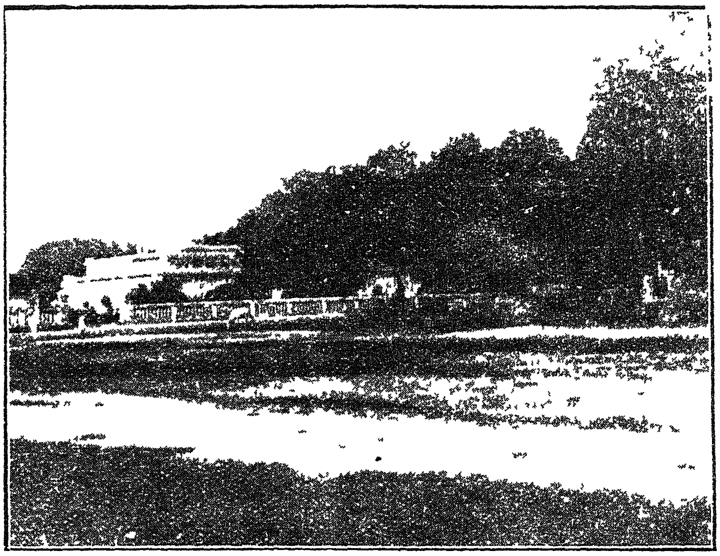
इस प्रकार आज देश के जीवन मे चारों तरफ़ उन्नति के चिन्ह दिखलाई पड़ रहे है, पर हमको भविष्य के लिए इससे भी आगे बढ़ने की आवश्यकता है। हमको भावी सन्तानों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयत्न करना आवश्यक है; हमको उन्हे ऐसी शिक्षा प्रदान करनी है, जिससे वे राष्ट्रीय जागरण के महान कार्य को अग्रसर कर सकें। अन्य देशों की तुलना मे हमारे यहाँ बाल-साहित्य की शोचनीय स्थिति है। हमारे यहाँ ऐसी पुस्तकों का बड़ा अभाव है, जिनको पढ़ने से बालकों के हृदय मे भाव-वैचित्र्य उत्पन्न हो और मनोरञ्जन के साथ-साथ वे शिक्षा भी प्राप्त कर सकें। हमको उनके लिए ऐसी पुस्तके तैयार करनी चाहिएँ, जिससे वे अपने प्रान्त या अपने देश के अलावा संसार के विभिन्न स्थानों का हाल-चाल जान सकें, और अब तक दुनिया मे जो अद्भुत आविष्कार हुए है, उनका ज्ञान प्राप्त कर सकें।

बङ्ग-भाषा मे ऐसी कितनी ही पत्र-पत्रिकाएँ वर्तमान हैं, जिनसे वहाँ के निवासियों मे ज्ञान-प्रचार में बड़ी सहायता मिल रही है। खेद है कि उस प्रकार के साहित्य की हमारे यहाँ बड़ी कमी है और इस कारण हिन्दी-भाषा-भाषी आधुनिक विषयों के ज्ञान मे बहुत पिछड़े हुए है। हमको एक ऐसे युग का निर्माण करना है, जिसमे भारतीय कहलाना गर्व का विषय समझा जाय, और यह तभी सम्भव है, जबकि हमारी मातृ-भाषा मे संसार के आधुनिक से आधुनिक और श्रेष्ठ से श्रेष्ठ विचारों का समावेश हो। हमको ऐसे उच्च श्रेणी के मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ निकालनी है, जो छपाई और विषय-निर्वाचन—दोनों दृष्टियों से दर्शनीय हों। अभी तक हिन्दी प्रेसों मे इस प्रकार की बढ़िया छपाई का काम बहुत कम होता है, जिससे इस आवश्यकता की पूर्ति हो सके।

कितने ही समय से हम विदेशी संस्कृति की दासता मे पडे थे। अपनी तबाही और ग़ुलामी की आरम्भिक अवस्था मे पश्चिमी सभ्यता ने हमको मृग-तृष्णा की तरह भ्रम मे डाल दिया। हमने अङ्गरेज़ों की आदतें सीखीं, उनके विचारों की नकल की, और एक प्रकार से अङ्गरेज़ बन जाने की ही चेष्टा की। पर अब हमारा भ्रम जाता रहा है। हम समझ गए है, कि हमको पश्चिमी सभ्यता की नक़ल नहीं करनी चाहिए, वरन् उसकी लाभ-दायक बातों को लेकर अपने साँचे मे ढालना चाहिए। हमारी प्राचीन सभ्यता भी महान ज्ञान का भण्डार है, और हम पश्चिमी देशों के ज्ञान से तभी वास्तविक लाभ उठा सकते है, जबकि उसका सारांश ग्रहण करके उसे अपनी मातृ-भाषा के भण्डार मे सम्मिलित कर दें। हमारा कर्तव्य है, कि हम अपनी मातृ-भाषा को इस योग्य बनावें कि वह इन नवीन विचारों को भली-भाँति प्रकट कर सके। इन बातों से हिन्दी मे उच्च श्रेणी का साहित्य-निर्माण करने की आवश्यकता स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। इतना ही नहीं, हम लोगों ने हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा के पद पर अधिष्ठित किया है और इसलिए उसे इस योग्य बनाना ही पड़ेगा, कि वह बीसवीं सदी के नवीन भारत के आदर्शों, चेष्टाओं, असफलताओं और सफलताओं को भली-भाँति प्रकट कर सके।

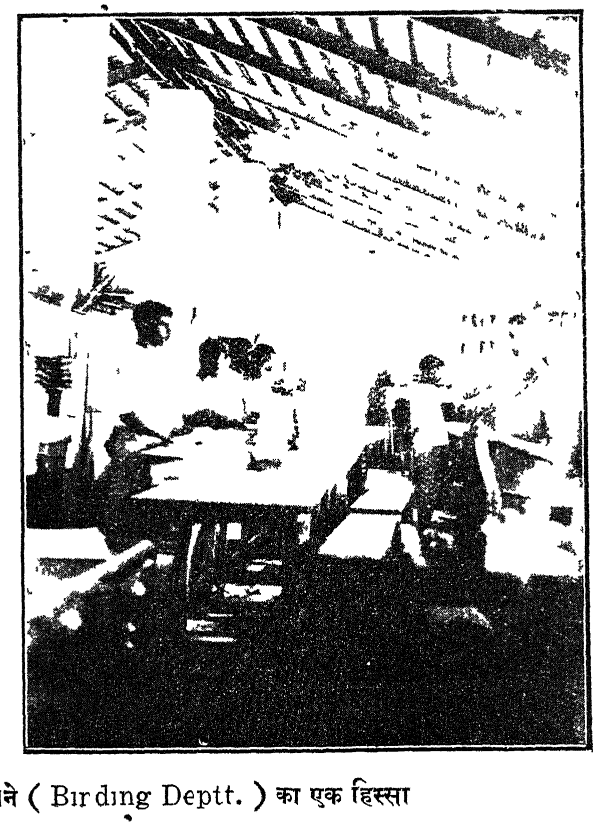
इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर और यह समझ कर, कि देश को उन्नति के मार्ग पर अग्रसर करने के लिए समाज-सुधार के लिए उद्योग करना तथा स्त्रियों की ग़ुलामी की कलङ्ककारिणी प्रथा का समूल नाश कर देना अत्यावश्यक है, श्री० आर० सहगल ने सन् १९२२ मे 'चाँद' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह मासिक पत्र आरम्भ मे साधारण स्थिति मे प्रकाशित किया गया था, पर शीघ्र ही इसने आशातीत उन्नति कर दिखाई।

इस सफलता से उत्साहित होकर श्री० सहगल जी अपने कार्य-क्षेत्र की सीमा बढ़ाने लगे। 'चाँद' के अलावा उन्होंने एक उच्च श्रेणी के साप्ताहिक 'भविष्य' का प्रकाशन आरम्भ किया। कारबार बराबर बढ़ता गया और सहगल जी ने दो आलीशान बङ्गले बनवाए, जिनमे इस समय इन



सिविल लाइन मे अवस्थित सस्था के विख्यात भवन का बाहिरी दृश्य—
जो "चन्द्रलोक" के नाम से विख्यात है।





फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज के दफ़्तरीखाने (Birding Deptt.) का एक हिस्सा

पत्रों का कार्यालय अवस्थित है। इसमें उनको एक लाख से अधिक रुपए व्यय करने पड़े। इन पत्रों के अतिरिक्त उन्होंने पुस्तक-प्रकाशन का कार्य भी हाथ में लिया। अब तक



संस्था के संस्थापक और मैनेजिङ्ग डाईरेक्टर
श्री० सहगल जी

उनके यहाँ से हिन्दी की प्रायः १५० उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से कई के तो पाँच संस्करण तक हो चुके हैं, और कितनी ही बहुत समय से बिक चुकी हैं और फिर से छपाई जाने को हैं। सहगल जी की सफलता का एक अनुपम उदाहरण 'फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज' है, जहाँ नई से नई मशीनें काम में लाई जाती हैं और जिसकी छपाई हिन्दुस्तान के किसी भी प्रेस की छपाई के मुक़ाबले में पेश की जा सकती है।

सन् १९२९ में 'चाँद' की ग्राहक-संख्या १५,००० तक जा पहुँची, जिसके लिए सरकारी हिसाब-परीक्षकों से प्रमाण-पत्र मिल चुका है। यह 'चाँद' की सफलता और लोक-प्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। हिन्दी ही क्या, भारत की किसी भी भाषा में शायद ही कोई मासिक पत्र इस दृष्टि से इतना सफल हुआ होगा। पर जैसे-जैसे सफलता मिलती गई, जनता की माँग भी विशाल रूप धारण करती गई। उर्दू पढ़ने वाली जनता के अत्यन्त आग्रह करने पर श्री० सहगल जी को सन् १९३० में 'चाँद' का उर्दू संस्करण भी जारी करना पड़ा। इसमें भी पूरी सफलता मिली, पर इसके कारण काम इतना बढ़ गया, जो चाँद प्रेस की शक्ति और साधन के बाहर था। इसलिए जब तक प्रेस की वृद्धि न हो, तब तक के लिए यह उर्दू संस्करण स्थगित कर दिया गया।

इस प्रकार 'चाँद' कार्यालय का कार्य-भार निरन्तर बढ़ता जाता है, जिसे मूलधन की कमी से वह सँभाल सकने में अशक्य है। यह दशा देख कर निश्चय किया गया कि इस कारबार में अन्य सज्जनों का सहयोग प्राप्त किया जाय, और पर्याप्त मूलधन से एक ऐसी कम्पनी सङ्गठित की जाय जो उपर्युक्त उद्देश्य को पूर्ण रीति से सफल बना सके। आरम्भ में इस कम्पनी को प्राइवेट



संस्था की सञ्चालिका—श्रीमती विद्यावती सहगल—
जिनके सहयोग के सहगल जी कायल हैं।

लिमिटेड बनाने का विचार किया गया था, पर अब वह सम्भव नहीं जान पड़ता। क्योंकि आजकल रुपए के बाज़ार में बड़ी हलचल मची हुई है, और साथ ही यह भी अनुभव

हो रहा है कि भविष्य में छोटे सङ्गठन से विशेष लाभ नहीं हो सकता। इस समय हिन्दी का महत्त्व दिन पर दिन बढ़ता जाता है, वह अधिकाधिक शिक्षा का माध्यम



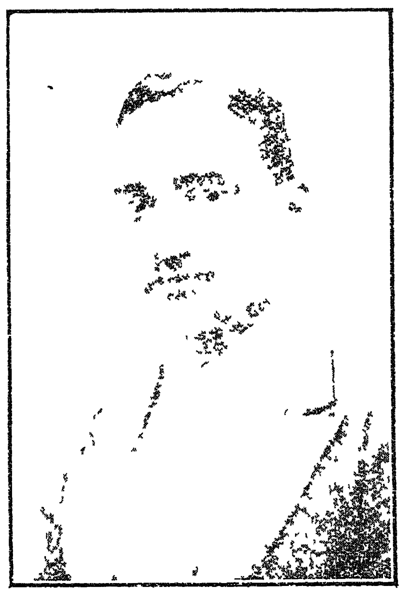
कम्पनी के प्रवर्त्तकों में से एक—श्री० जी० जे० एम० हेमिल्टन, भूतपूर्व डाईरेक्टर ऑफ़ इण्डस्ट्रीज़—ग्वालियर स्टेट

बनती जाती है, उसे परीक्षाओं में स्थान मिल रहा है, व्यापार-व्यवसाय और सरकारी कार्यालयों में भी उसका प्रचार बढ़ता जाता है। इसके अतिरिक्त जैसे-जैसे हमको स्वराज्य के अधिकार मिलते जायँगे, हमारी भाषा का प्रभाव भी बढ़ता जायगा। इस समय भी चाँद प्रेस को बाहर से आने वाले छपाई के अधिकांश काम को लौटा देना पड़ता है; क्योंकि उसकी छापने की शक्ति परिमित है। अतएव हमको भविष्य में विशेष आयोजन के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए।

उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा हमको प्रेस के लिए और भी आधुनिक मैशीनों का मँगाना ज़रूरी है। हर एक विषय में हमको अग्रसर होने की आवश्यकता है। हमको संस्था के वर्तमान प्रकाशनों का ही सञ्चालन नहीं करना है, वरन् वर्तमान स्थिति को देखते हुए हमको एक अङ्गरेज़ी दैनिक पत्र की आवश्यकता अनुभव हो रही है, जो अङ्गरेज़ीदाँ लोगों के सामने भारतीय दृष्टिकोण को पेश करे। हमको 'चाँद' का उर्दू एडीशन फिर से जारी करना है, बच्चों के लिए आधुनिक ढङ्ग की सचित्र पुस्तकें प्रकाशित करनी हैं, और बड़ी संख्या में नई-नई पुस्तकें प्रकाशित करनी हैं तथा पुरानी पुस्तकों के नए संस्करण निकालने हैं। हमारी वृहत् योजनाओं में कुछ ये हैं :—

हमारी योजनाएँ

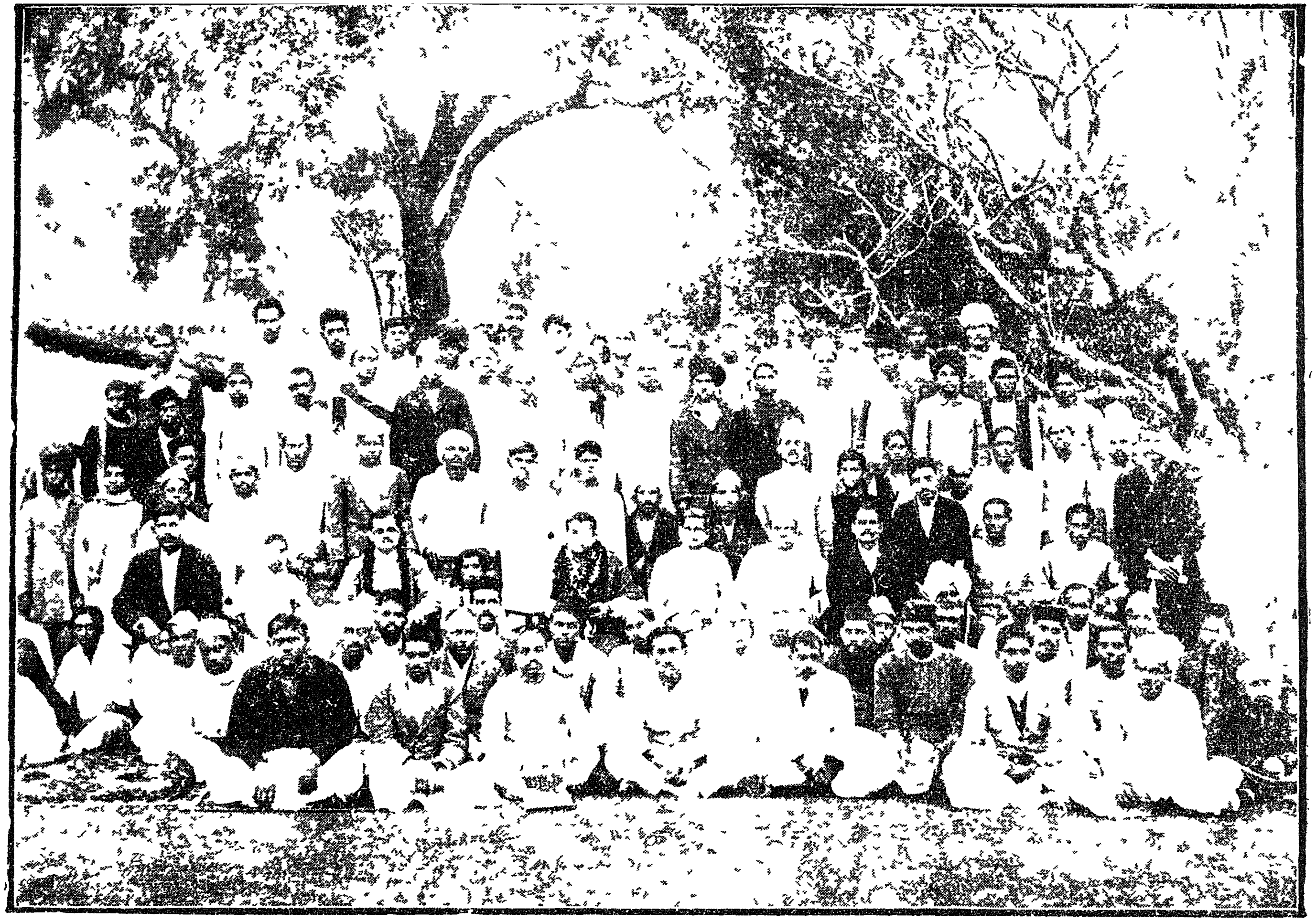
(१) संस्था की वर्तमान इमारतों को—जिनका मूल्य एक लाख से कहीं अधिक आँका जाता है—और भी बढ़ाया जाय, ताकि नई स्कीम के अनुसार



कम्पनी के प्रवर्त्तकों में से एक—स्वर्गीय श्री० कृष्णचन्द्रसिंह भाटिया, एम० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट हाईकोर्ट

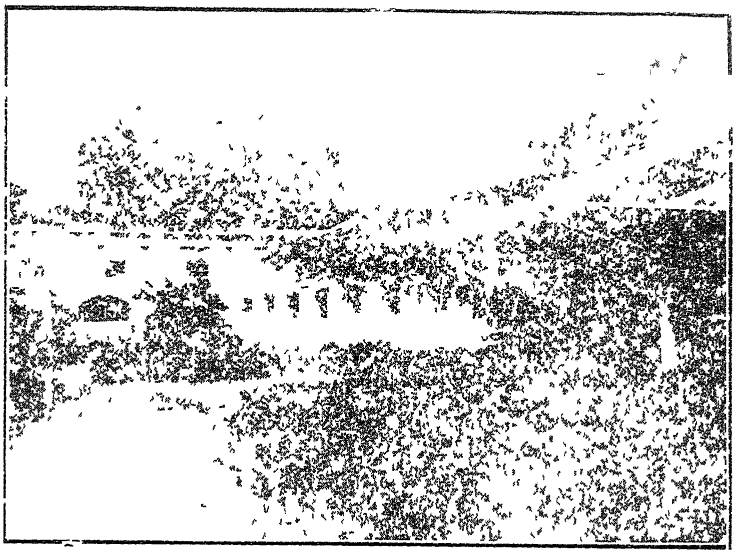
संस्था के २५० से अधिक कर्मचारी सुचारु रूप से काम कर सकें।

(२) लगभग एक लाख से अधिक मूल्य की और भी मैशीनें (जिसमें एक वृहत् 'रोटरी' और 'लाइनो-

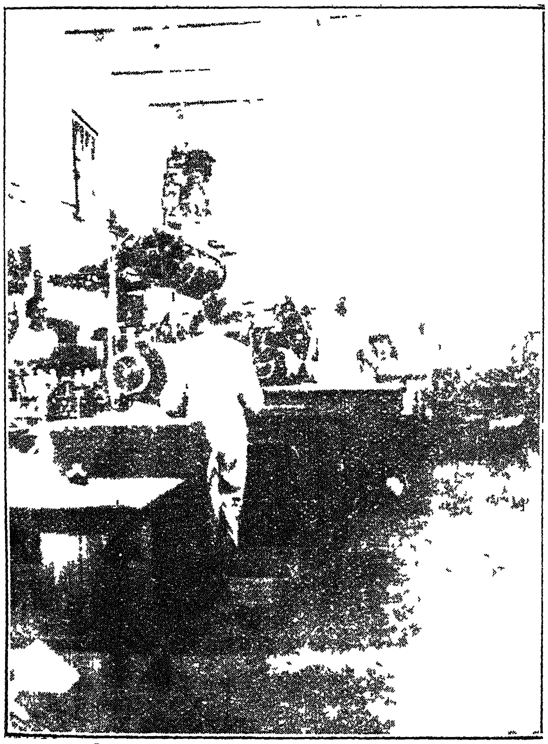


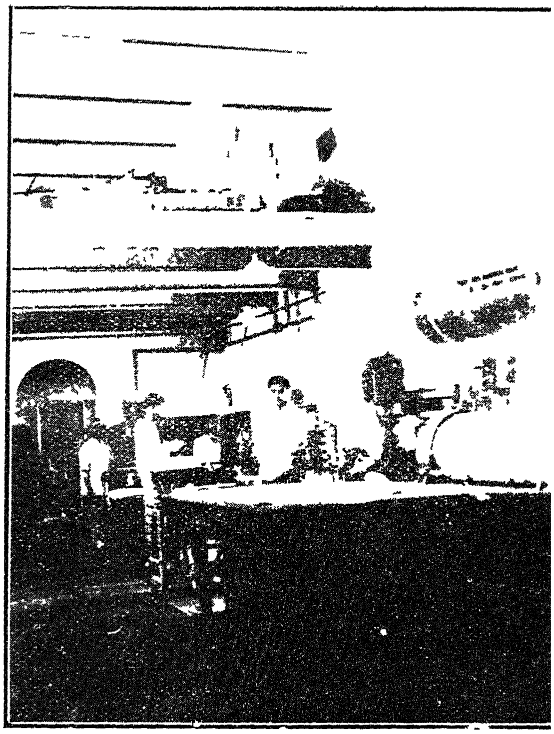
संस्था के कुछ कर्मचारियों का ग्रूप

[यह चित्र पिछली बार श्री० सहगल जी के जेल से मुक्त होने पर प्रेस की इमारत में प्रेस-कर्मचारियों द्वारा लिया गया था।]



फाटक के भीतर से फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज ('चाँद' का अपना प्रेस)
नामक फ़ैक्टरी का बाहिरी दृश्य





फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज के छपाई विभाग का एक दृश्य

टाइप्स' आदि की भी व्यवस्था होगी) तुरन्त मँगवाई जावें।



कम्पनी के प्रवर्त्तकों में से एक—प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०, इलाहाबाद-विश्वविद्यालय

(३) संस्था की एक निजी टाइप-फ़ाउण्डरी खोली जाय, ताकि संस्था द्वारा प्रकाशित होने वाले समस्त पत्र-पत्रिकाओं की छपाई सदैव दर्शनीय हुआ करे।

(४) संस्था का एक ऐसा ब्लॉक बनाने का विभाग (Process Deptt) भी खोला जाय, जिसके द्वारा रात में भी चित्र लेकर दैनिक पत्रों मे प्रातः-काल प्रकाशित किया जा सके।

(५) चूँकि स्थानाभाव एवं छपाई की मैशीनों आदि की कमी के कारण आज हमारे लिए बाहिरी छपाई का काम लेना सम्भव नही है ; इसलिए एक विशेष जॉब विभाग (Job Deptt) तुरन्त खोला जाय, जिससे संस्था बाहर के कामों को भी सुचारु रूप से करके भरपूर लाभ उठा सके।

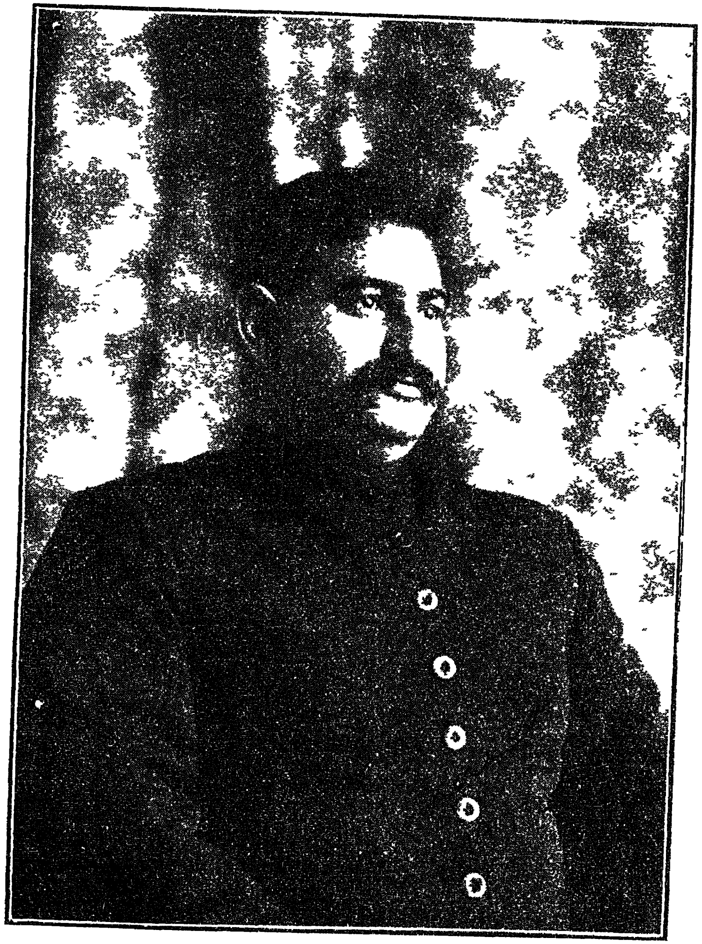
(६) राष्ट्रीय विचारों से सना हुआ एक उच्चकोटि का अङ्गरेजी सचित्र दैनिक (एक आने मूल्य का) निकाला जाय, ताकि हम अपने वास्तविक विचारों को अङ्गरेज़ी भाषा-भाषी सज्जनों के सामने भी उपस्थित करके उनकी सहानुभूति भी अपने पक्ष मे कर सकें।

(७) इसी प्रकार का एक सचित्र राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक (एक आने मूल्य का) भी निकाला जाय, ताकि हिन्दी-प्रेमी पाठक देश तथा समाज मे होने वाली प्रत्येक घटना का ठीक उसी प्रकार अध्ययन एव विचार-निर्माण कर सकें, जिस प्रकार का साधन



कम्पनी के डाईरेक्टर—श्री० विशुननाथ जी सक्सेना, बी० ए०, एल्-एल्० बी०, एडवोकेट

आज अङ्गरेज़ी भाषा-भाषी सज्जनों के लिए उपस्थित है—और हमारा दावा है, आज हमारे



कम्पनी के डाईरेक्टर—रायबहादुर लाला प्रयागनारायण साहब,
तालुक़ेदार और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, मौरावाँ



कम्पनी के डाईरेक्टर—श्रीमान् राजा श्रीराम साहब, तालुकेदार
और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट, मौरावाँ

देश में एक भी ऐसा सर्वाङ्ग-पूर्ण हिन्दी दैनिक नहीं है, जिसकी हम कल्पना कर रहे हैं।



कम्पनी के डाईरेक्टर—श्री० दर्बारीलाल साहब, रईस और ज़मींदार

(८) 'भविष्य' के सचित्र साप्ताहिक संस्करण को और भी सुन्दर रूप दिया जाय और मूल्य चार आने होते हुए भी उसे इतना आकर्षक एवं उपयोगी बनाया जाय, जैसे बारह आने मूल्य तक के विदेशी सचित्र साप्ताहिक निकल रहे हैं।

(९) 'चाँद' के हिन्दी संस्करण को और भी सुन्दर रूप दिया जाय और वार्षिक चन्दा ६॥) रु० होते हुए भी उसमें कम से कम पृष्ठ तथा चित्र-संख्या ड्योढ़ी कर दी जाय, काग़ज़ आदि और भी सुन्दर लगाए जावें, पाठक जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

(१०) बच्चों के लिए एक बहुत ही उच्च कोटि की सचित्र मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाय; ताकि हमारे बच्चे भी अपनी आयु के अनुसार बीसवीं सदी के चमत्कारों द्वारा अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। पत्रिका बालक तथा बालिकाओं के लिए समान रूप से उपयोगी हो सके, इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाय।

(११) 'चाँद' के उर्दू संस्करण को—जिसका प्रकाशन स्थान एवं मैशीनों की कमी के कारण स्थगित कर दिया गया है—पुनर्जीवित किया जाय ताकि, हम अपने वास्तविक विचार उन बहिन-भाइयों के सामने भी उपस्थित कर सकें, जो केवल उर्दू ही पढ़-लिख सकते हैं।

(१२) पाठकों को बतलाना न होगा, कि आज तक संस्था हिन्दी की लगभग १५० पुस्तकें प्रकाशित कर चुकी है, जिनमें से बहुत सी पुस्तकों के ४-५ संस्करण तक हो चुके हैं। इसी प्रकार उच्च-कोटि



कम्पनी के डाईरेक्टर और जनरल मैनेजर—श्री० नन्दगोपालसिंह सहगल

की एक राजनैतिक पुस्तक-माला का प्रकाशन भी आरम्भ किया जाय, ताकि हिन्दी भाषा-भाषी

जनता भी उच्च-कोटि के राजनैतिक साहित्य का रसास्वादन कर सके—जो हमारे दुर्भाग्य से आज दुर्लभ है।

(१३) उन पुस्तकों को तुरन्त प्रकाशित किया जाय, जिनके ४-५ संस्करण प्रकाशित होने पर भी—आज स्थान, मैशीन एवं पूँजी की कमी के कारण उनके नवीन संस्करण छापने मे संस्था असमर्थ है। इत्यादि—इत्यादि—इत्यादि।

उन सज्जनों से, जो भारतीय सभ्यता के उत्थान मे सहायक बनना चाहते है; और अन्य उदाराशय व्यक्तियों से हम यही कहना चाहते है, कि यदि आप हमारी सेवाओं का प्रमाण चाहते है तो ध्यानपूर्वक हमारे कार्यों का अवलोकन करें। हमने सामाजिक सुधार का बीडा उठाया है और उसके लिए यथाशक्ति चेष्टा की है। अछूतपन, बाल-विवाह, अनिवार्य-वैधव्य आदि कुप्रथाएँ जो हिन्दू-समाज की जड को खोखला कर रही हैं, हम सदा उनके प्रतिकार के लिए उद्योग करते रहे है। हमारे उत्साह प्रदान करने से हिन्दी मे कितने ही नए लेखकों का आविर्भाव हुआ है, जिनकी रचनाओं को हम क्रय करके प्रकाशित करते है। इसलिए हम उन लोगों से, जो हिन्दी-भाषा की उन्नति की कामना रखते है, और राष्ट्रीय उन्नति के अभिलाषी है, हम कम्पनी के हिस्से ख़रीदने का आग्रह करते है।

हमको पूरा विश्वास है कि भारतीय जनता ने हमारी अब तक की सेवाओं की काफ़ी क़द्र की है और बहु-संख्यक व्यक्ति इस संस्था से हार्दिक अनुराग रखते है। इसी आधार पर हमने इस कम्पनी की स्थापना का निश्चय किया है। हमारी अब तक की सेवाएँ प्रशंसनीय मानी गई है, हमने भारत के कल्याण की चेष्टा की है, और भविष्य के लिए हमने जो कार्यक्रम निर्धारित किया है, वह नवीन भारत की आकांक्षाओं के सर्वथा अनुकूल है। इसलिए हम जनता से अपने ऊपर विश्वास करने का अनुरोध करते है और आशा करते है कि हमारे देशवासी भाई और बहिनें इस महान अनुष्ठान मे अवश्य हमारा हाथ बटाएँगे।

❀ ❀ ❀

स्वागत

तेज (उर्दू दैनिक)

देहली १३ अगस्त, १९३२ ई०

मिस्टर सहगल को पार्टी

चाँद प्रेस को लिमिटेड बनाने की स्कीम

देहली, १० अगस्त। इलाहाबाद के मशहूर जर्नलिस्ट मिस्टर आर० सहगल को पण्डित इन्द्र जी, मालिक 'अर्जुन' ने अपनी जाये-रहाइश पर आज शाम को एक पुरतकल्लुफ़ पार्टी दी, जिसमे शहर के बहुत से सरकरदः अख़बारनवीस शरीक हुए।

मिस्टर सहगल चाँद प्रेस को आठ लाख रुपए के साथ लिमिटेड बना रहे है। चुनाञ्चे इसी स्कीम के सिलसिले मे आप चन्द रोज से देहली मे मुक़ीम है। आपकी स्कीम निहायत वसीह है, जिसमे उर्दू, हिन्दी और अङ्गरेज़ी तीनों ज़बानों मे एक-एक रोज़ाना अख़बार का इजराय शामिल है। मिस्टर सहगल का हिन्दी माहवार 'चाँद' जर्नलिज़्म में उनकी कामयाबी का एक नमूना है।

उम्मीद की जाती है कि उनकी स्कीम से बिलअलूम दिलचस्पी और हमदर्दी का इज़हार किया जायगा और वह जल्दी पाए-तकमील तक पहुँच जायगी × × ×।

❀ ❀ ❀

अर्जुन

देहली ता० ११ अगस्त, सन् १९३२ ई०

श्रीरामरखसिंह देहली में—

सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी बनाने की स्कीम

'चाँद' और 'भविष्य' के मशहूर श्रीरामरखसिंह सहगल आजकल दिल्ली पधारे है! आप अपने सम्पूर्ण

कारोबार को, जिसमें 'चाँद', 'भविष्य' तथा ग्रन्थमाला आदि शामिल है—एक ८ लाख के मूलधन को सार्वजनिक लिमिटेड कम्पनी के सुपुर्द कर देना चाहते हैं। कम्पनी के कई हिस्से बिक चुके हैं। साहित्यिक रुचि, व्यापार-कौशल से आपने अभी तक हिन्दी-साहित्य की जो सेवा की है, उसे देख कर हमें सहगल जी के प्रयत्न की सफलता का निश्चय होता है।

वर्तमान

कानपुर सोमवार १४ दिसम्बर, १९३१

'चाँद' की लिमिटेड कम्पनी

यह बात हिन्दी-संसार से छिपी नहीं है कि इलाहाबाद के फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज के सञ्चालक श्री० रामरखसिंह सहगल, 'चाँद' तथा 'भविष्य' द्वारा अपने ज्ञान और साधनों के अनुसार मातृ-भाषा की रोचक सेवा करते आ रहे हैं। दोनों ही पत्र अपने-अपने क्षेत्र में काफ़ी लोक-प्रिय हैं और उनका प्रचार भी यथेष्ट है। लेकिन हिन्दी-संसार में अभी पत्र-सञ्चालन का व्यवसाय सफल व्यवसाय नहीं बन पाया है। कारण यह है कि लोग अच्छी पूँजी लगा कर इस व्यवसाय से लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते। लगभग सभी पत्रों को घाटा होता रहता है, उसके सञ्चालक अथवा हितैषी मित्र उसकी पूर्ति किया करते हैं। एक बार यदि हिन्दी-प्रेमी व्यवसाय के तौर पर इस कार्य को सफल करके दिखला सकें, तो अच्छा उदाहरण बन सके। इस कार्य के लिए 'चाँद' तथा 'भविष्य' को एक प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी बनाना एक ऐसा ही नवीन प्रयास है। सहगल जी ने ४ लाख की पूँजी मान कर इसे प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का रूप देना चाहा है। उनका कथन है कि एक लाख बीस हज़ार के शेयर सात सज्जनों ने खरीद भी लिए हैं।

अच्छा हो, यदि हिन्दी-प्रेमी इस चालू काम में हिस्सा लें, और इस अनूठे व्यवसाय के प्रबन्ध-ज्ञान को हासिल करके हिन्दी में व्यापारिक प्रकाशन कार्य को सफल कर दिखलावें।

वतन (उर्दू दैनिक)

देहली ११ अगस्त, १९३२ ई०

चाँद प्रेस पब्लिक लिमिटेड बन गया

मिस्टर सहगल की देहली में आमद

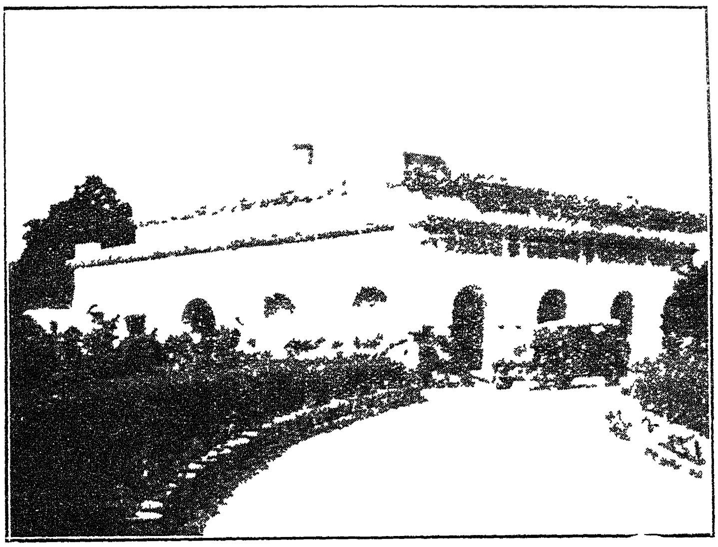
देहली, ८ अगस्त। मिस्टर सहगल मालिक चाँद प्रेस दो रोज से देहली में आए हुए हैं। आपने चाँद प्रेस को पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में तबदील कर दिया है और उसका सरमाया आठ लाख रुपए रक्खा है। मिस्टर सहगल की खिदमात से हर शख्श वाकिफ है और 'चाँद' और 'भविष्य' ने जो कुछ काम किया है, उसका भी सब को अहसास है। अब मिस्टर सहगल का इरादा है कि इस लिमिटेड कम्पनी के जरिए एक अङ्गरेजी का और एक हिन्दी का अप-टू-डेट रोजाना अखबार जारी किया जावे। इलाहाबाद से ऐसे दो कौम-परस्त अखबारों की ज़रूरत से कोई भी इनकार नहीं कर सकता। और मिस्टर सहगल-जैसे कामयाब जर्नलिस्ट की ज़ेर-निगरानी से इन अख़बारात की कामयाबी भी यकीनी है इसके अलावा चाँद प्रेस से सैकड़ों आला दर्जे की किताबें तबअ् होती रही हैं, जिनसे प्रेस को निहायत माकूल मुनाफ़ा रहा है। रिसाला 'चाँद' निहायत मक़बूल है और फ़ायदा में चल रहा है। इन हालात में पूरी तवक्क़ा है, कि चाँद प्रेस लिमिटेड को कामयाबी होगी और उसके हिस्सेदारान काफी मुनाफ़ा हासिल कर सकेंगे × × ×।

आर्यावर्त्त

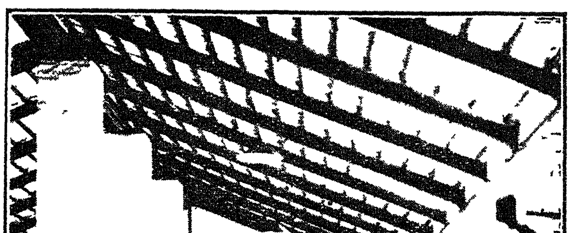
पटना १८ दिसम्बर, ११३१

सहगल जी की विराट् आयोजना

हिन्दी-साहित्य-संसार में श्रीयुत रामरखसिंह जी सहगल का नाम उनकी सेवाओं के कारण अवश्य ही अमर रहेगा। सहगल जी ने 'चाँद' और 'भविष्य' के द्वारा हिन्दी-साहित्य में क्रान्ति ही नहीं की है, प्रस्तुत



फाटक के भीतर से 'चाँद' कार्यालय का मनोहर दृश्य—जिसके बीच के हॉल में पुस्तक-विभाग अवस्थित है।



फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज का हिन्दी कम्पोज़िङ्ग विभाग



कम्पनी के विभिन्न दफ़्तरों एवं फ़ैक्टरी का बाहिरी दृश्य

हिन्दी-साहित्य की आशातीत उन्नति भी। आपने इन दोनों पत्रों के द्वारा स्त्री जाति और अछूतों का जैसा उपकार किया है, वह किसी से छिपा नहीं है। आपको समय-समय पर कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ा है। पर आप ऐसे दृढ़ सेवी हैं कि बिना तनिक घबड़ाहट के वीरोचित भाव से उनका सामना करते, अपने सेवा के उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ते ही गए और जा रहे हैं। बड़े ही हर्ष और सन्तोष की बात है कि गत १६ नवम्बर से और अधिक ठोस सेवा की लालसा से उन्होंने चाँद प्रेस को लिमिटेड कम्पनी का रूप दे दिया और मूलधन ४ लाख (८ लाख ?) रखने का निश्चय किया है। कम्पनी के नए प्रबन्ध के मुताबिक़ ब्लॉक डिपार्टमेण्ट और टाइप-फ़ाउण्डरी खोलने का प्रबन्ध एवं प्रकाशन-विभाग के द्वारा उच्चकोटि की राजनैतिक ग्रन्थमाला निकालने की योजना हो रही है। अवश्य ही सहगल जी का यह सराहनीय उद्योग है—हिन्दी-साहित्य के उत्कर्ष एवं गौरव का विषय है। इसके लिए सहगल जी को हार्दिक बधाई है। हम हृदय से आपके इस शुभ उद्योग को सफल देखना चाहते हैं।

—भवानीदयाल संन्यासी

❀ ❀ ❀

चाँद प्रेस लिमिटेड

लाला ख़ुशहालचन्द जी, सम्पादक और अध्यक्ष दैनिक 'मिलाप' (उर्दू तथा हिन्दी संस्करण) लाहौर से श्री० सहगल जी को लिखते हैं :—

'चाँद' कार्यालय ने आपके पुरुषार्थ से समाज तथा देश की जो सेवा की है, वह वाञ्छनीय है। परमात्मा इसका फल आपको देंगे ही, परन्तु आपने इस प्रकार की सेवा का जो मार्ग लोगों को दिखलाया है, इससे हिन्दी-साहित्य कई मञ्ज़िलें तय करके आगे बढ़ गया है। 'चाँद' कार्यालय को एक लिमिटेड कम्पनी के रूप में परिवर्तन करके आपने इसकी जड़ें पाताल में लगा दी हैं। मैं अपने दोनों पत्रों (हिन्दी 'मिलाप' तथा उर्दू 'मिलाप') में इस पर नोट लिखूँगा× × ×।

हमें आशा है, संस्था का प्रत्येक शुभचिन्तक यथाशक्ति कम्पनी के हिस्से ख़रीद कर हमें इस समय प्रोत्साहित करेगा। जो लोग कम्पनी का विस्तृत प्रॉस्पेक्टस (Prospectus) देखना चाहें, वे सहर्ष मँगा सकते हैं। कम्पनी के हिस्से बेचने के लिए हमें प्रत्येक ज़िले में प्रतिष्ठित मित्रों की आवश्यकता है। हमारे मित्र नियमावली मँगा कर स्वयं भी लाभ उठा सकते हैं और ऐसे महान् उद्देश्य की पूर्ति में सहायक भी हो सकते हैं।

महाकवि अकबर

[श्री० अन्तर्वेदी]

जीवन-परिचय

उर्दू भाषा के कवियों मे महाकवि अकबर इलाहाबादी ही एक ऐसे कवि है, जिनका आदर हिन्दी-साहित्य-संसार मे भी है । स्वर्गवासी पण्डित पद्मसिह जी शर्मा अकबर साहब की कविता के परम प्रेमी थे । उनकी एक-एक उक्ति को मज़े ले-लेकर पढ़ते, औरों को सुनाते और प्रसङ्गवसात् अपने लेखों में भी उनकी उक्तियाँ उद्धृत किया करते थे। फलतः अगर कहा जाय कि सबसे पहले उक्त स्वर्गीय पण्डित जी ने ही हिन्दी वालों से अकबर का परिचय कराया, तो शायद अत्युक्ति न होगी। पण्डित जी ने समय-समय पर कई लेख भी अकबर साहब के सम्बन्ध मे लिखे हैं, जिनके पढ़ने से मालूम होता है कि आप इस महाकवि के कितने प्रेमी थे।

पण्डित जी के अलावा स्वनाम-धन्य राजा महेन्द्र-प्रताप भी महाकवि अकबर और उनकी सुन्दर कविताओ के प्रेमियों मे है। पण्डित जी की तरह ही राजा साहब ने भी एकाधिक लेख लिख कर अकबर साहब के प्रति अपनी आन्तरिक श्रद्धा प्रगट की है। श्रीयुत उमरावसिह कारुणिक बी० ए० लिखित "महाकवि अकबर और उनका उर्दू काव्य" नाम की पुस्तक की भूमिका मे राजा साहब ने जिन शब्दों मे अकबर को याद किया है, वे महाकवि के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा के द्योतक है। राजा साहब लिखते है :—

"अकबर उर्दू के महाकवि थे। वह हिन्दुस्तान के रत्न थे। उनकी कविता मोहनी और निराली है। उनके शब्दों मे विशेष आकर्षण-शक्ति है। उनकी कविता की अधिक प्रशंसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है।"

वास्तव मे बात भी कुछ ऐसी ही है। ग़ालिब, ज़ौक़, दाग़, मीर, अनीस और आतिश आदि एक से एक बढ़े-चढ़े कवि उर्दू मे हो चुके है, सबने अपनी-अपनी अनूठी उक्तियों द्वारा उर्दू साहित्य को परिपुष्ट और परिवर्द्धित किया है। परन्तु जो काम अकबर की लेखनी ने किया है, वह शायद किसी से नहीं बन पड़ा। अकबर युगप्रवर्त्तक कवि थे। उन्होंने उर्दू कविता की धारा ही पलट दी और उसे 'गुलोबुलबुल' के फ़साने के सङ्कीर्ण दायरे से निकाल कर एक नवीन अथच प्रशस्त मार्ग पर ला रक्खा, माशूक़ की 'मूएकमर' (बाल सी पतली कमर) की तलाश की जहमत से बचा कर कविता के वास्तविक उद्देश्य की ओर घसीट लाए।

इसका मुख्य कारण यह था कि अकबर कोरे कवि ही न थे, वरन् देश, काल और पात्र के ज्ञाता एक अनुभवी विद्वान थे। उन्हे संसार की प्रगति का ज्ञान था। इसीलिए कविता की आड़ मे उन्होने देश को उसकी वास्तविक अवस्था का ज्ञान करा दिया। अकबर कवि थे, फ़िलॉसफर थे, समाज-सुधारक और राजनीतिज्ञ थे। उनकी भाषा मे जोर और उनके क़लम मे जादू था। जो काम बड़े-बड़े प्रबन्धा, लेखों और व्याख्यानों द्वारा नही हो सकता था, उसे वे एक ही चुभती हुई लाइन मे कर जाते थे। यही अकबर की विशेषता थी।

सन् १८४६ ईस्वी मे इलाहाबाद के निकट बारा नामक क़स्बे मे महाकवि अकबर का जन्म हुआ था। आपके पिता सय्यद तफ़ज़्ज़ुल हुसेन साहब एक सदाचारी और धार्मिक मुसलमान थे। आपने अपने आदर्श द्वारा अपने पुत्र को भी उन्ही गुणो से विभूषित किया। सबसे पहले आपने अकबर को सदाचार और धार्मिकता की शिक्षा दिलाई। इसके बाद कुछ गणित का अभ्यास कराया। तत्पश्चात् फ़ारसी और अरबी ज़बानो की शिक्षा दी गई। परन्तु ज़माना अङ्गरेज़ो का था। इसलिए चौदह वर्ष की अवस्था मे घर पर ही एक सुयोग्य शिक्षक नियुक्त करके अकबर को अङ्गरेज़ी की शिक्षा दी जाने लगी। परन्तु अकबर को इतने से ही

सन्तोष न हुआ। वे अङ्गरेज़ी मे पारदर्शिता प्राप्त करने के इच्छुक थे, अत. बाध्य होकर पिता को उच्च शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध करना पड़ा। अङ्गरेजी की यथेष्ट योग्यता प्राप्त कर लेने पर, सन् १८६७ मे, अकबर साहब ने वकालत की परीक्षा दी और सफलतापूर्वक उत्तीर्ण हुए। आप वकील तो हो गए, पर इस काम मे आपकी तबीयत नहीं लगी। इसलिए दो वर्ष के बाद तहसीलदारी के ओहदे पर चले गए। इसके बाद हाईकोर्ट के नाजिर नियुक्त हुए।



स्वर्गीय महाकवि अकबर

अकबर साहब को अपने कर्तव्य का अच्छा ज्ञान था। आप बड़ी मुस्तैदी से अपना काम किया करते थे। इसलिए उन्नति का मैदान भी आपके लिए खाली था। सन् १८८८ मे आप सदरुलसदूर, सन् १८९२ मे अदालत खफ़ीफ़ा के जज और सन् १८९४ मे डिस्ट्रिक्ट सेशन जज नियुक्त हुए।

सन् १८९८ मे सरकार ने आपका 'खान बहादुर' की पदवी देकर अपनी गुणग्राहिता का परिचय दिया। परन्तु अकबर साहब को यह सम्मान-वृद्धि विशेष प्रसन्नता न प्राप्त करा सकी। क्योंकि आपने लिखा है .—

नेशनल वकअ़त के गुम होने का डर 'अकबर' को है,
ऑफिशल इज्जत का उसको कुछ मजा मिलता नहीं।

हजरत अकबर एक कर्त्तव्यशील सुयोग्य राजकर्मचारी थे। उन्होंने बडी तत्परता से अपने कर्तव्य का पालन किया था। सरकार भी उन्हे उनकी कर्त्तव्यशीलता का समुचित पुरस्कार प्रदान करना चाहती थी। आप हाई-कोर्ट के जज नियुक्त होने वाले थे। परन्तु इससे पहले ही आपने पेन्शन ले ली। नौकरी से मानो जी उचट गया था और आप अपना अन्तिम जीवन स्वतन्त्रतापूर्वक व्यतीत करना चाहते थे। हाईकोर्ट की जजी को लक्ष्य करके आपने एक बडा ही मार्केदार शेर कहा था। इससे मालूम होता है कि अकबर साहब सरकारी नौकरी और सरकारी सम्मान को किस नजर से देखते थे। आपकी वह मार्केदार उक्ति इस प्रकार है :—

जज बना कर अच्छे-अच्छो का लुभा लेते हैं दिल,
है निहायत खुशनुमा दो 'जीम' उनके हाथ मे।

नौकरी से अलग होने पर आपने स्थायी रूप से प्रयाग को अपना निवास-स्थान बनाया। यहाँ 'इशरत-मञ्ज़िल' नाम का आपका विशाल भवन मौजूद था। परन्तु इस 'इशरत-मञ्जिल' या आनन्द-भवन मे आपको सुख नहीं मिला। प्रयाग आने के कुछ दिन बाद ही आपकी ऑखो मे मोतियाबिन्द की बीमारी हो गई। अन्त मे कलकत्ता जाकर ऑखो मे नश्तर लगवाना पडा।

ऑखे तो किसी तरह काम चलाने लायक हो गईं, परन्तु इसके बाद आपको सुशीला पत्नी के विषम वियोग का कष्ट सहन करना पडा और अभी यह मर्मभेदी कष्ट भूला भी न था कि आपका छोटा और प्यारा पुत्र हाशिम भी चल बसा! धर्मपत्नी की मृत्यु के बाद ही एकाएक इस जवान लडके की मृत्यु ने अकबर साहब को म्रियमाण कर दिया। आपकी इस मनोवेदना का थोड़ा सा दिग्दर्शन पाठको को नीचे लिखी पक्तियो से हो सकता है। इन सतरो मे कितनी मर्म-पीड़ा छुपी हुई है। साहब लिखते है —

आग़ोश से सिधारा मुझसे यह कहने वाला—
'अब्बा, सुनाइए तो क्या आपने कहा
अशआर हसरतआगी कहने की ताब किसको
अब हर नज़र है नौहा, हर साँस मर्सिया

यद्यपि हाशिम की मृत्यु ने अकबर साहब के दिल की सारी उमङ्गों पर पानी फेर दिया, तथापि आपने इस विपत्ति का बड़े साहस से मुकाबला किया। इसके बाद आप बहुधा इशरत मञ्जिल मे ही रहा करते थे। भगवद्-भजन और कविता देवी की आराधना आपका प्रधान शग़ल था और जीवन के अन्तिम दिनो तक आप इन्हीं दो कामों मे लगे रहे।

कविता

अकबर साहब मे कवित्व-प्रतिभा प्रकृति-प्रदत्त थी। लड़कपन में ही आपके हृदय मे कविता का उद्रेक हो गया था। परन्तु सब से पहले इलाहाबाद के एक बड़े मुशायरे मे जब आपने अपनी रचना सुनाई थी, तब आपकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी। उस समय आप वकालत की परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। इलाहाबाद मे 'वहीद' नाम के एक अच्छे शायर रहते थे। ये ही अकबर साहब के कविता-गुरु थे। उपर्युक्त मुशायरे मे जो ग़ज़ल आपने पढ़ी थी, उसके पहले शेर ने ही लोगों का ध्यान आपकी ओर आकर्षित कर लिया। उस ग़ज़ल की कुछ सतरें नीचे दी जाती है :—

समझे वही उसको जो हो दीवाना किसी का,
अकबर यह ग़ज़ल मेरी है अफ़साना किसी का।
गर शेख़ोबिरहमन सुनें अफसाना किसी का,
माबिद न रहे काबा-व-बुतख़ाना किसी का।
अल्लाह ने दी है जो तुम्हे चाँद सी सूरत,
रोशन भी करो जाके सियहख़ाना किसी का।
अश्क आँखों में आ जायँ एवज़ नींद के साहब,
ऐसा भी किसी शब सुनो अफ़साना किसी का।
हम जान से बेज़ार रहा करते हैं 'अकबर',
जब से दिले बेताब है दीवाना किसी का।

पहले कुछ दिनो तक कविता मे आप इसी प्राचीन शैली का अनुसरण करते रहे। परन्तु कुछ दिनो के बाद ही आपको अपनी कविता को विशेष विकसित करने का अवसर और साधन प्राप्त हो गया। सन् १८७६ मे लखनऊ से 'अवध-पञ्च' नाम का एक हास्य-रस-प्रधान अख़बार निकलने लगा। अकबर साहब भी इसके स्थायी लेखकों मे थे। 'अवध-पञ्च' मे आपके राजनीति, समाज, धर्म-विषयक लेख और कविताएँ निकलने लगीं। आपने कविता मे जिस विनोदात्मक नई शैली का अनुसरण किया था, उसमे ख़ूब सफलता प्राप्त की। आपकी रचनाओं के कारण 'अवध-पञ्च' का भी समादर बढ़ा। राजनीति, धर्मनीति, समाज और प्रेम आदि ऐसा कोई विषय न था, जिस पर अकबर साहब ने कुछ न लिखा हो।

विनोद-प्रियता

विनोद-प्रियता अकबर साहब की अपनी चीज़ थी। बात-बात मे मज़ाक पैदा कर देना, रोतो को हँसा देना, गम्भीर से गम्भीर विषय को विनोद के आवरण मे व्यक्त करके सुनने वालो के दिलो पर चोट करना अकबर साहब का ख़ास काम था।

आपके पुत्र इशरतअली सीतापुर मे डिप्टी कलक्टर थे। आप उनसे मिलने सीतापुर गए थे। एक दिन डिप्टी साहब के कुछ मित्र उनसे मिलने आए। अकबर साहब भी अपने सीधे-सादे वेष मे एक तरफ़ बैठे थे। किसी को ख़बर भी न थी कि यह साधारण वेष-भूषा वाला आदमी डिप्टी साहब का पिता है। परन्तु डिप्टी साहब के मित्रों मे एक सज्जन हज़रत अकबर को पहचानते थे। उन्होने अन्य मित्रों को इशारे से बताया कि आप डिप्टी साहब के पिता हैं। यह सुनते ही डिप्टी साहब के मित्रो ने बड़े अदब से आपसे बाते करनी आरम्भ की। परन्तु परम विनोदी हज़रत अकबर कब इस अवसर से चूकने वाले थे। आपने फ़ौरन एक मज़ेदार लतीफ़ा गढ़ डाला। मुस्कराते हुए बोले—एक बार यूरोप मे अल्लाह मियाँ आए थे, परन्तु किसी ने उन्हे पहचाना ही नहीं। अन्त मे जब किसी ने बताया कि यह अल्लाह मियाँ ईसा मसीह के बाप है, तो लोग उनकी ख़ातिरदारी के लिए दौड़े!

अकबर साहब ने यह बात ऐसे गम्भीर ढङ्ग से कही, मानो किसी सच्ची घटना का वर्णन कर रहे हो। परन्तु डिप्टी साहब के मित्र समझ गए कि यह व्यंग्य उन्हीं पर है। बेचारे झेंप कर रह गए!

प्रयाग की प्रदर्शिनी मे पहले-पहल हवाई जहाज़ आए थे। अकबर साहब अपनी हवेली की छत पर से उनका उड़ना देख रहे थे। दिल्ली के हज़रत ख़्वाजा हसन निज़ामी भी थे। अकबर साहब ने फ़रमाया—मानो अङ्गरेज़ लोग कह रहे हैं कि अब हम उड़ रहे हैं, तो उड़ो भाई, हम कब मना करते है। ख़ुशी से उड़ो।

अकबर साहब कट्टर मुसलमान थे। आजकल के नवयुवकों का दाढ़ी-मूँछ मुड़वाना उन्हें ज़रा भी पसन्द नहीं था। इस सम्बन्ध में आपकी व्यंग्यात्मक उक्तियाँ देखने लायक़ है। अलीगढ़ के अब्दुल गफ़ूर नाम के एक सज्जन ने दाढ़ी-मूँछ मुड़वा डाली। अकबर को यह 'फ़ैशन' अच्छा न लगा। एक दिन जब गफ़ूर ख़ाँ अपने मित्रों के साथ बैठे थे, तो एकाएक अकबर साहब बोल उठे :—

देख, अब्दुल गफ़ूर ख़ाँ की तरफ़,
मर्दे ख़ुशहाल इसको कहते हैं।
चारअबरू का याँ सफ़ाया है,
फ़ारिग़-उल्-बाल इसको कहते हैं।

इस व्यंग्योक्ति में 'फ़ारिग़-उल्-बाल' शब्द ध्यान देने योग्य है। यह मुहावरा है, जिसका अर्थ है, निश्चिन्त होना। अथच् इसका लफ़्ज़ी मानी होता है, जिसके बाल न हो।

बनारस से 'ओल्ड बॉय' नाम का एक मासिक पत्र निकला था। उसे देख कर अकबर ने लिखा :—

निकला ब-आबोताब बनारस से 'ओल्ड बॉय',
अल्लाह उसको 'गोल्ड' भी दे और 'पर्ल' भी !
ख़्वाहिश है अब यह बाज़ मुहिब्बाने क़ौम की।
निकले किसी तरफ़ से योंही ओल्ड गर्ल भी।

एक बार आपके सामने सरकारी 'अन्जुमने-तरक्किए उर्दू' का ज़िक्र आया। आप बोल उठे :—

हमसे छिन कर हो गई बज़्मे-तरक्क़ी के सपुर्द,
सच कहा मिरज़ा ने अब उर्दू भी 'कोरट' हो गई !

सन् १९२० में ख़िलाफ़त कमिटी का एक डेपुटेशन विलायत गया। मौ० मुहम्मदअली, सय्यद हुसेन और 'मआरिफ़' के सम्पादक मौ० सय्यद सुलेमान नदवी भी उसमें शामिल थे। परन्तु एक सच्चे मुसलमान का विलायत जाना अकबर साहब को पसन्द न आया। आपने फ़ौरन् एक फ़बती कस दी :—

सुलैमान की बात कैसी बनी,
कि नदवी से अब लन्दनी बन गए।
रहे वादानोशो से बेशक खिचे,
मगर चाय वालों से गाढ़ी छनी !
मुहम्मदअली की हिफाज़त में हैं,
ख़ुदा ग़ैर से इनको कर दे ग़नी !

धर्म को स्वार्थ-साधन का रास्ता बना लेने वाले को लक्ष्य करके आपने कहा है :—

फ़रमा गए हैं यह ख़ूब भाई घूरन,
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन !

अब ज़रा अकबर साहब द्वारा अङ्कित यूरोप की व्यावसायिक उन्नति का व्यंग्यात्म चित्र देखिए :—

यूरोप में गो है जङ्ग की क़ुव्वत बढ़ी हुई,
लेकिन फ़िज़ूँ है, उससे तिजारत बढ़ी हुई।
मुमकिन नहीं लगा वह सकें तोप हर जगह,
देखो मगर पियर्स का है सोप हर जगह।

अकबर साहब दोशाले में लपेट कर वार करने वालों में थे। एक जगह आप फ़रमाते हैं :—

कलई भी रियाकार की खुलती रहे अकबर,
तानों में मगर तर्ज़े मुहब्बत भी न छूटे।

ख़िताब-लोलुप सरकारी ख़ुशामदियों के बारे में आपने लिखा है :—

अक्ल ने अच्छी कही कल लाला मजलिसराय से,
झुक के मिलना चाहिए हम सबको वॉयसराय से।
शेर कैसा ही हो लेकिन क़ाफ़िए हैं इसके ख़ूब,
कौन ऐसा है जो हो मुख़्तलिफ़ इस राय से।

अब ज़रा ज़मींदार महोदयों के सम्बन्ध में आपकी उक्ति सुनिए :—

मुहताज दरे वकीलो-मुख़्तार हैं आप,
सारे अमलों के नाज़बरदार हैं आप।
आवारा-व-मुन्तशिर हैं मानिन्द ग़ुबार,
मालूम हुआ मुझे ज़मींदार हैं आप।

अख़बार वालों के कुछ लिख भेजने की प्रार्थना से तङ्ग आकर आप फ़रमाते हैं :—

उश्शाक़ को भी माले तिजारत समझ लिया,
इस क़दर को मुलाहिज़ा लिल्लाह कीजिए।
भरते हैं मेरी आह को फ़ोनोग्राफ़ में,
कहते हैं, फ़ीस लीजिए और आह कीजिए।

कहाँ तक लिखा जाए, अकबर का कमाल देखने ही लायक़ है। ऐसा फ़बता हुआ व्यंग्य आज तक किसी भाषा के कवि से नहीं बन पड़ा। आपकी कविताओं का वृहत् संग्रह अब तक तीन भागों में छप चुका है, परन्तु सुनते

है, अभी और भी बहुत कविताएँ अप्रकाशित है। पाठकों के मनोविनोदार्थ थोडी सी कविताएँ नीचे दी जाती है। पाठक देखे कि इन उक्तियों मे कितना मज़ा है :—

क्या ज़ौक़े-इबादत हो उनको,
जो मिस के लबों के शैदा है ;
हलवाए-बहिश्ती एक तरफ़,
होटल की मिठाई एक तरफ़ ।

❀

फ़रियाद किए जा ऐ 'अकबर',
कुछ हो ही रहेगा आखिरकार ;
अल्लाह से तोबा एक तरफ़,
साहब से दुहाई एक तरफ़ ।

❀

उन्हे शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी,
निकलती हैं दुआएँ उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर।

❀

निकाला करती है घर से यह कह कर तू तो मजनूँ है,
सता रक्खा है मुझको सास ने लैला की माँ होकर !
रकीबे सिफ़ला-ख़ू ठहरे न मेरी आह के आगे,
भगाया मच्छरो को उनके कमरे से धुआँ होकर।

❀

कौल बाबू का है जब 'बिल' पेश हो,
पेशे हाकिम बिलबिलाना चाहिए।
कुछ न हाथ आए मगर इज़्ज़त तो है,
हाथ उस मिस से मिलाना चाहिए।

❀

हुस्ने मिस पर कर नज़र मज़हब अगर जाता है जाय,
क़द्रदाँ को निर्ख़ की क्या बहस 'अकबर' माल देख !

❀

अज़ीज़ाने वतन को पहले ही से देता हूँ नोटिस,
चुरुट और चाय की आमद है, हुक़्क़ा-पान जाता है।

❀

मेरी दाढ़ी से रहता है, वह बुत इन्कार पर क़ायम,
मगर जब दिल दिखाता हूँ तो फ़ौरन मान जाता है।

❀

बाप-माँ से, शेख़ से, अल्लाह से क्या उनको काम,
डॉक्टर जनवा गए तालीम दी सरकार ने।

❀

भरते हैं, मेरी आह को फ़ोनोग्राफ़ में,
कहते हैं, फ़ीस लीजिए और आह कीजिए।

❀

एक अदा से मिसों ने कहा, कम ऑन,
तीर की मुझमें अब रवानी है।

❀

'स्माल' नहीं 'ग्रेट' होना अच्छा,
दिल होना बुरा है पेट होना अच्छा।
पण्डित हो कि मौलवी हो दोनों बेकार,
इन्सान को ग्रेजुएट होना अच्छा।

❀

थे 'केक' की फ़िक्र में सो रोटी भी गई,
चाहते थे बड़ी शै सो छोटी भी गई !
वाइज़ की नसीहत क्यों न मानें आखिर,
पतलून की ताक में लँगोटी भी गई !

❀

कर दिया करज़न ने ज़न मर्दों की सूरत देखिए,
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बना कर पोंछ ली !
सच यह है इन्सान को यूरप ने हलका कर दिया,
इब्तदा दाढ़ी से की और इन्तहा में मूँछ ली !

❀

किस्सए-मन्सूर सुन कर बोल उठी वह शोख़ मिस,
कैसा अहमक़ लोग था पागल को फाँसी क्यों दिया !

❀

मेम्बरी के लिए लपका मेरी जानिब वह ग़ोल,
गाय मोटी नज़र आई तो क़साई दौड़े !

❀

इस क़दर था खटमलों का चारपाई मे हुजूम,
वस्ल का दिल से मेरे अरमान रुख़सत हो गया।
लात दुनिया ने जो मारी बन गया दींदार वह,
थी बुरी ठोकर मगर शैतान रुख़सत हो गया।

फ़ैज़े कालिज से जवानी रह गई बालाए ताक़,
इम्तिहाँ पेशे नज़र और आशिक़ी बालाए ताक़।
वह चिराग़ों से हैं जलते ऐसे है रोशन ज़मीर,
कहते हैं, रखिए पुरानी रोशनी बालाए ताक़ !

❀

छोड़ लिटरेचर को अपनी हिस्ट्री को भूल जा,
शैख़ो मसजिद से तअल्लुक़ तर्क कर स्कूल जा।
चार दिन की ज़िन्दगी है कोफ़्त से क्या फ़ायदा,
खा डबल रोटी किलरकी कर ख़ुशी से फूल जा।

❀

तुम बीबियों को मेम बनाते हो आजकल,
क्या ग़म जो हमने मेम को बीबी बना लिया !

❀

नई तहज़ीब में दिक़्क़त ज़ियादा तो नहीं होती,
मज़ाहब रहते हैं क़ायम, फ़कत ईमान जाता है।

❀

जो मिल गया वह खाना, दाता का नाम जपना,
इसके सिवा बताऊँ क्या तुमको काम अपना।

❀

अय बिरहमन हमारा तेरा है एक आलम,
हम ख़्वाब देखते हैं, तू देखता है सपना।

❀

अजल से वह डरें जीने को जो अच्छा समझते हैं,
यहाँ हम चार दिन की ज़िन्दगी को क्या समझते हैं।

❀

मैं अपने नक़्द दिल से जिन्से-उल्फ़त मोल लेता हूँ,
'अतिब्बा' को ज़रा देखो इसे सौदा समझते हैं !

❀

इसे हम आख़िरत कहते हैं जो मशग़ूले-हक़ रक्खे,
ख़ुदा से जो करे ग़ाफ़िल उसे दुनिया समझते हैं।

❀

दुनिया का तरद्दुद जब तक था,
जब तक कि हम उसके तालिब थे,
फेरी जो नज़र ग़म हो गए कम,
रग़बत न रही दुनिया न रही।

आफ़िशल आमालनामे की न होगी कुछ सनद,
हश्र में तो नामए-आमाल देखा जायगा।

❀

इधर हमसे भी बातें आप करते हैं लगावट की,
उधर ग़ैरों से भी कुछ अहदो-पमाँ होते जाते हैं।

❀

तासीरे-इन्तज़ार ने ये हाल कर दिया,
आँखें खुली हुई हैं मगर देखते नहीं।

❀

ख़याले-ज़ुल्फ़ में अय दिल न तय कर मन्ज़िले-उल्फ़त,
अँधेरी रात में नादान कोई राह चलता है।

❀

जब कहा मैंने भुला दो ग़ैर को हँस कर कहा,
याद फिर मुझको दिलाना भूल जाने के लिए।

❀

ये तर्ज़ अहसान करने का तुम्हीं को ज़ेब देता है,
मरज़ में मुबतला करके मरीज़ों को दवा देना।

❀

ये कहके ख़ूने-जिगर माँगता है ग़म दिल से,
कि तेरे घर में रहें रात दिन तो खाएँ कहाँ।

❀

ख़ुदा जाने वह क्या समझे कि बिगड़े इस क़दर मुझ पर,
कहा था मैंने इतना ही मुझे कुछ अर्ज़ करना है।

❀

देख कर मुझको वो कहते हैं कि अच्छे तो रहे,
ज़िन्दा हैं, साँस लिए जाते हैं, अच्छे क्या हैं।

❀

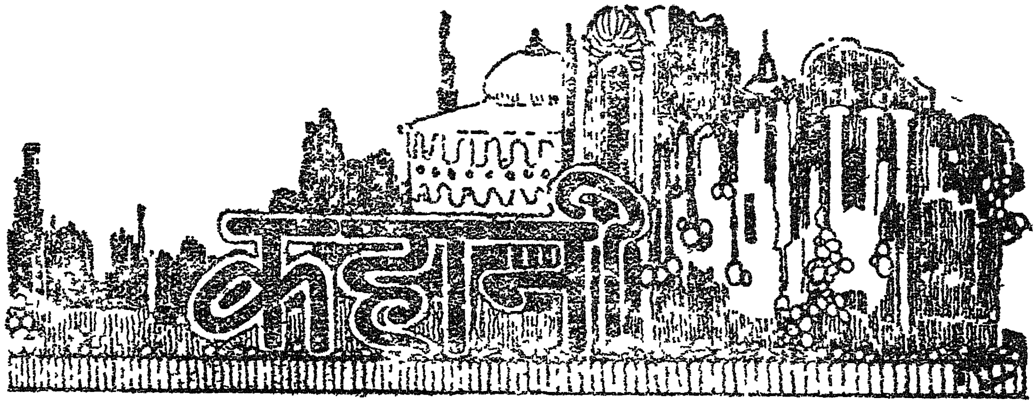
जफ़ाएँ झेल कर तासीर उल्फ़त की दिखाते हैं,
हिना की तरह पिस लेते हैं तब हम रङ्ग लाते हैं।

❀

कुछ नतीजा न सही इश्क़ की उम्मीदों का,
दिल तो बढ़ता है तबियत तो बहल जाती है।

❀

काँटे बिछ जाते हैं उन लोगों की राहे-रिज़्क़ में,
ख़ौफ़ आता है छुरी चलती है उनकी मेज़ पर।



पहेली

[डॉक्टर धनीराम प्रेम]

'जीवन एक पहेली है।'

होस्टल के आगे की घास पर बैठे हुए कॉलिज के कुछ नवयुवक विद्यार्थियों ने अपने लम्बे विवाद के बाद यह निष्कर्ष निकाला।

कुछ देर बाद वे उठ कर अपने-अपने कमरों की ओर चले गए।

कॉलेज के विद्यार्थियों के सामने जीवन की समस्याओं का आना अब एक अद्भुत बात नहीं है। हम ऐसे युग मे रह रहे है, जब सभी को जीवन की जटिलताओं पर विचार करना पड़ता है, उन्हे सुलझाने की चिन्ताएँ करनी पडती हैं। कॉलिज का निश्चिन्त, निर्द्वन्द्व, निश्चल वातावरण कुछ देर के लिए मन में उठे हुए तूफ़ान को प्रकट न होने दे, परन्तु उसमे उसे नष्ट करने की अथवा उसका निरोध करने की क्षमता नहीं है। ये ऐसे ही कुछ विद्यार्थी थे, जिनके सामने जीवन अपना जटिल रूप लिए खड़ा था। किसी के सामने कोई समस्या थी, किसी के सामने कोई। सभी उन्हें सुलझाना चाहते थे, सभी उसमे असमर्थ थे। इसीलिए वे सब मिले थे। यह देखने के लिए कि शायद उनमें से कोई किसी दूसरे की समस्या को सुलझाने का कोई उपाय बता सके। परन्तु वे असफल रहे। और अन्त में उन्होंने यही समझ लिया कि जीवन एक पहेली है और ऐसी पहेली, जिसका सुलझाना दुर्लभ है।

मुकुट जब अपने कमरे में जाकर बैठा, तो उसके सामने यही समस्याएँ थी। जीवन एक पहेली है, परन्तु क्या वह कभी उसे सुलझा न सकेगा? जिस दिन से उसने पिता की बीमारी के समाचार पाए थे, उसी दिन से वह इन बातों को सोच रहा था। यदि उनको कुछ हो गया, तो उसके लिए संसार बिलकुल ही भिन्न मालूम पड़ेगा। उसकी परिस्थितियों में महान परिवर्तन हो जायगा और साथ ही उसके भावी जीवन का स्वरूप भी परिवर्तित हो जायगा।

मुकुट ने पिछले वर्ष उसी कॉलेज से इण्टर-साइन्स पास किया था। उसका विचार बी० एस्-सी० पास करके डॉक्टरी पढ़ने का था। पिता कचहरी में नौकर थे। वेतन अधिक नहीं था, परन्तु मुकुट एकलौता पुत्र था, अतः उसके लिए वह प्रत्येक मास व्यय के लिए यथेष्ट प्रबन्ध कर देते थे। परन्तु वह प्रबन्ध उनके जीवन के साथ ही था। जब तक उनके जीवन के विषय मे कोई शङ्का नही थी, तब तक मुकुट ने जीवन की समस्याओं पर कभी विचार ही न किया था। जीवन की चिन्ताएँ क्या होती है, भविष्य की व्यग्रता क्या होती है, आदि बातें उसे कभी सूझी ही नही थीं। वह समझता था कि संसार उसी प्रकार चलता रहेगा। उसके पिता जीवित रहेंगे, कमाएँगे, उसे खर्च देंगे और वह जिस प्रकार भी तथा जहाँ कहीं भी चाहेगा, पढ़ता रहेगा। परन्तु पिता जी की बीमारी के पत्र ने उसके मानसिक जगत में भूकम्प

पैदा कर दिया। अब उसे मालूम पडने लगा कि उसके मानसिक जगत के अधिकांश भवनो का शिलारोहण शीघ्रता मे हुआ था तथा वे भवन वायु के छोटे से झोके से भी हिलने लगते थे। इन भवनों की रक्षा करना उसके लिए असम्भव था। यही समस्या थी उसके सामने; यही पहेली थी उसके आगे, जिसके सुलझाने में वह अपने को असमर्थ पाता था।

वह इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उसे एक तार मिला। तार में लिखा था कि उसके पिता की दशा निराशाजनक है और उसे शीघ्र आने को लिखा था।

२

वह चल पडा। उन्ही समस्याओं पर विचार करता हुआ—उन्हीं पहेलियों में उलझा हुआ। घर पहुँच कर वह पिता के अन्तिम दर्शन भर कर सका। उनसे वार्तालाप भी न हो सका। शव की अन्त्येष्टि-क्रिया करके उसने घर की दशा देखी। कुछ रह न गया था। जो कुछ पिता के पास था, वह बीमारी मे लग गया था और घर की कोई सम्पत्ति थी नही, जिसका कुछ सहारा होता। मुकुट के सामने निराशा ही निराशा थी।

घर में भी और कोई नहीं था। वह और उसकी स्त्री। स्त्री का होना भी न होने के बराबर था। उनका विवाह पिछले वर्ष ही हुआ था। विवाह के बाद मुकुट को पता लगा था कि उसकी स्त्री न सुशिक्षिता थी, न सुरूपा। वह मूर्खा नहीं थी, न कुरूपा थी। वह ऐसी ही थी, जैसी साधारण स्त्रियाँ हुआ करती हैं। अन्य किसी व्यक्ति के लिए उसके साथ विवाह करने मे कोई आपत्ति न होती, परन्तु मुकुट अपनी स्त्री के विषय मे अद्भुत कल्पनाएँ कर चुका था, इसी कारण अपनी स्त्री को उन कल्पनाओं से बहुत दूर देख कर उसे सन्तोष न हुआ था। पिता ने विवाह कराया था, अतः उसने उसके विषय में तनिक भी चूँ-चरा नहीं किया था। परन्तु उसने स्त्री के ऊपर एक प्रकार से घोर अत्याचार किया था। उसने कभी उसे तथा उसके भावों को समझने का प्रयत्न नहीं किया। इस भय से कि उसे अपनी स्त्री का सामना न करना पड़े, वह छुट्टियों मे घर न आकर इधर-उधर घूमने चला जाता था। वह स्त्री से बचना चाहता था। परन्तु वह कब तक इस प्रकार बच सकेगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी।

परन्तु अब एक यह समस्या भी उसके सामने आई। अब तो उसे स्त्री के साथ रहना ही पड़ेगा। उसने उसे अपनाने का निश्चय कर लिया। दो कारणो से—एक तो इसलिए कि कोई स्थान ऐसा न था, जहाँ वह उसे कम से कम कुछ समय के लिए भी भेज देता। उसकी ससुराल में भी कोई न था। दूसरा कारण यह था कि अब उसका भविष्य भी अन्धकारमय था। वह होना चाहता था, डॉक्टर — उसकी आकांक्षाएँ तथा आशाएँ बहुत बढी-चढ़ी थीं। परन्तु अब वे सब नष्ट-भ्रष्ट हो गई थीं।

पार्वती भी इस बात को जानती थी। वह भी अपने पति से डरती हुई रहती थी। वह समझती थी कि वह उनके योग्य नहीं है, अतः वह मुकुट से इसी प्रकार दूर-दूर रहती थी, जिस प्रकार एक अछूत एक उच्च वर्ण हिन्दू से रहता है।

मुकुट उस दिन बहुत उदास था। पहिली बार पार्वती को वह लगातार कई दिनों तक देखने को मिला था। पहली बार वह उसे कुछ-कुछ समझने, कुछ-कुछ जानने लगी थी। कई दिनो से वह मुकुट के उदास मुख को देख कर उससे बातें करना, कुछ पूछना, कुछ सान्त्वना देना चाहती थी, परन्तु झिझकती थी। आज उससे न रहा गया, हिम्मत करके वह आगे बढ़ी।

"जी कैसा है?"—उसने धीरे से पूछा।

"कैसा भी नहीं।"—मुकुट ने लापरवाही से कहा।

"उदास तो है।"

"मै उदास नही हूँ।"

"मुख से तो ऐसा ही दीखता है।"

"जान क्यो खाए जाती हो, कह दिया, उदास नहीं हूँ।"—बड़े कर्कश स्वर मे मुकुट ने कहा।

पार्वती योंही की योंही, केवल आँखो की कोर में आँसू की दो बूँदें रक्खे, पीछे लौटी। मुकुट ने धीरे से उधर सर फिराया, एक बार पार्वती की ओर देखा। फिर धीरे से ही उसने कहा—लौट आओ, जाओ मत!

इस बार उसके स्वर मे कुछ मिठास था, कुछ पश्चात्ताप का भाव था।

पार्वती एक बार ठिठकी, फिर लौट आई।

"मुझे दुःख है, मैंने तुम्हे डाँट दिया! क्या करूँ, बुरी आदत हो गई है।"—उसने कहा।

पार्वती के नेत्रों से आँसू बहने लगे।

"रो क्यो रही हो ?"

"अपने भाग्य पर !"

"मुझे दुःख है, मै अब तक तुम्हे समझा ही नही हूँ।"

"आप दुःख क्यो करते हैं। दुःख तो मुझे करना चाहिए।

"क्यो ?"

"आपको उदास देख कर।"

"मेरी उदासी की चिन्ता न करो।"

"चिन्ता किए बिना रहा तो नहीं जाता।"

"क्यो ?"

"हिन्दू स्त्री का हृदय ही जो है। यदि पति की चिन्ता न करेगी, तो फिर किसकी करेगी।"

मुकुट कुछ बोल न सका। उसने एक बार पार्वती के रोते हुए मुख की ओर देखा और उसे अपनी ओर खींच लिया।

"क्यो उदास हो ?" —पार्वती ने फिर पूछा।

"पूछ कर तुम्हे भी कष्ट होगा।"

"यह तो मेरा सौभाग्य होगा। मै तुम्हारा दुःख बटाना चाहती हूँ।"

"बटा सकोगी ?"

"प्राण देकर भी।"

"मुझे अपनी आकांक्षाओं के चूर हो जाने का दुःख है। मेरा सारा भविष्य अब अन्धकारमय हो गया।"

"क्या आकांक्षाएँ थीं ?"

"डॉक्टर होने की। अब वह सम्भव कहाँ है ? अब तो कही क्लर्की करके पेट भरना पड़ेगा।"

"सम्भव क्यों नहीं है ?"

"रुपए कहाँ हैं ?"

"कितने रुपए चाहिए ?"

"चार हज़ार कम से कम।"

"यदि चार हज़ार मिल जायँ तो ?"

"चार हज़ार ? कौन देगा, पार्वती ? यह बड़ी रक़म है।"

"बड़ी रकम सही, पर मिल जायगी।"

"मिल जायगी ?"—मुकुट ने उत्सुक होकर पूछा।

"मैं दूँगी।"

"कैसे ?"

"मेरे गहने एक हज़ार के लगभग होगे। साढे तीन हज़ार मेरे पिता ने मेरे नाम से बैङ्क मे जमा करा दिए थे। आप वह सब ले सकते है।"

"पार्वती, देवी !"—कह कर मुकुट ने उसे अपने वक्षस्थल से लगा लिया।

"तुम मेरी रक्षा कर रही हो, प्रिये !"—वह फिर बोला।

"रक्षा ? आप ऐसा कह कर मुझे नरक के पथ की ओर क्यो घसीटते हैं ? मैं क्या हूँ और यह सम्पत्ति क्या है ? जो कुछ भी है, आपके पीछे है और आपका ही है। आपके बिना मै क्या, और मेरी सम्पत्ति क्या ?"

पार्वती के मुख का प्रथम बार चुम्बन करते हुए मुकुट को प्रतीत हुआ कि उसके जीवन की एक पहेली सुलझी !

३

पार्वती का समुचित प्रबन्ध करके मुकुट बम्बई डॉक्टरी पढने चला गया। एक वर्ष के बाद उसने प्रथम परीक्षा पास की। अभी तक वह घर नहीं गया था। इसी बीच में वह एक पुत्र का पिता भी हो गया था। अतः उसने अब घर जाने की तैयारी कर ली। पार्वती को उसने दो दिन पूर्व अपने पहुँचने के समय की सूचना दे दी। जाने की तैयारी कर चुका था। जिस दिन जाने को था, उसके एक दिन पूर्व रात्रि के समय बड़े ज़ोर से वर्षा हुई और तूफ़ान आने लगा। चारो ओर से खिड़कियो के खड़खड़ाने का शब्द आ रहा था। उसके द्वार का एक शीशा टूटा हुआ था, उसी मे से पानी गिर रहा था। उस जगह एक तख़्ता लगाने के उद्देश्य से उसने द्वार खोला, तो बाहर एक युवती को रेनकोट मे सिकुड़ते हुए खड़ा देखा। युवती वर्षा से तर हो रही थी और जाड़े से थरथर काँप रही थी। वह उसे देख कर कुछ देर तक तो आश्चर्य करता रहा, फिर धीरे-धीरे उसके पास पहुँचा।

"आप कौन है ?"—उसने पूछा।

"यहाँ खड़े-खड़े क्या बताऊँ ?"—युवती ने उस अवस्था मे भी मुस्करा कर कहा।

"तूफ़ान के कारण यहाँ खड़ी है ?"

"हाँ।"

"कितना समय हुआ ?"

"बीस मिनट। सोचा था, वर्षा बन्द होने पर चली जाऊँगी ; परन्तु वह ठहरने का नाम ही नहीं लेती।"

"यहाँ पर तो आपको कष्ट हो रहा होगा।"

"क्या कर सकती हूँ ? सड़क पर तो और भी भयङ्कर दशा होगी। कोई गाड़ी भी दिखाई नहीं दी कि जिसमें बैठ कर चली जाती।"

मुकुट कुछ देर तक सोचता रहा।

"यहाँ इस प्रकार आप कब तक खड़ी रहेंगी ?"

"मैं स्वयं नहीं कह सकती।"

"यदि आप बुरा न मानें तो × × ×"—मुकुट रुका।

उसने वाक्य पूरा किया—मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

"हाँ।"

"मुझे तो बड़ी प्रसन्नता होगी, परन्तु आपको व्यर्थ ही कष्ट होगा।"

"मुझे तो कष्ट नहीं होगा। हाँ, आपको शायद कुछ असुविधा हो।"

"क्यों ?"

"घर में मैं अकेला हूँ।"

"इससे क्या हुआ।"

"मेरा अर्थ था, कोई स्त्री नहीं है और आप हैं एक स्त्री।"

"स्त्री से क्या डर लगता है ?"

"डर तो नहीं, परन्तु अकेले में एक स्त्री के साथ×××"

"यदि ऐसा है तो मैं बाहर ही खड़ी रहूँगी। आप द्वार बन्द कर लीजिए।"

"अच्छा, आइए ! जब तक तूफान रहेगा, समय जाग कर काट लेंगे।"

इतना कह कर मुकुट ने युवती को दिखा कर द्वार की ओर सङ्केत किया। युवती भीतर गई, पीछे से द्वार बन्द करके मुकुट भी भीतर गया। प्रकाश में दोनों ने एक दूसरे को भली-भाँति देखा। देखा और फिर देखा। युवती ने रेनकोट उतारा। वस्त्र अङ्गरेज़ी ढङ्ग के थे। सर नङ्गा था। बाल पीछे से कटे हुए थे।

"आपके वस्त्र भीग गए हैं।"—मुकुट बोला।

"कुछ हर्ज़ नहीं।"

"सर्दी लगने का डर है।"

"फिर ?"

"कपड़े बदल लीजिए।"

"कोई स्त्री तो यहाँ है नहीं।"

"स्त्री तो नहीं है, परन्तु स्त्री के वस्त्र हैं।"

"यह कैसे ?"

"मैंने कुछ वस्त्र अपनी स्त्री के लिए आज ही ख़रीदे थे। परन्तु वे भारतीय हैं।"

"काम चल जायगा।"

मुकुट बक्स में से धोती आदि निकालने लगा।

"आप विवाहित हैं ?"—युवती ने पूछा।

"हाँ।"

"ये घर जाने की तैयारियाँ हैं ?"

"हाँ।"

मुकुट ने इतना कह कर वस्त्र उसके हाथ में दिए।

"ये ख़राब हो जायँगे, तो आपकी स्त्री नाराज़ हो जायगी।"

"इसकी चिन्ता न करें। उसे इन बातों की तमीज़ नहीं है।"

युवती एक ओर को चली गई और कुछ देर में ही वस्त्र बदल कर आ गई।

"हैं, आप तो इन वस्त्रों में अपूर्व सुन्दरी दीखती हैं।" मुकुट सहसा कह उठा।

"आप ऐसा समझते हैं ?"

"समझना पड़ता है।"

"ऐसे वस्त्र मैंने पहली ही बार पहने हैं।"

वे दोनों पास पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए।

"नाम क्या है ?"—मुकुट ने पूछा।

"रोज़ा।"

"ईसाई हैं ?"

"हाँ ?"

"आपका नाम ?"

"मुकुट ?"

"हिन्दू ?"

"हाँ।"

"कॉलेज में पढ़ते हैं ?"

"मैडिकल कॉलेज में।"

"डॉक्टर होने जा रहे हैं ?"

"उद्योग कर रहा हूँ। आप ?"

"मैं एक दफ़्तर में टाइपिस्ट हूँ।"

"यह बड़े भाग्य समझिए कि हम लोग इस प्रकार अनायास ही मिल गए ?"

"आप प्रसन्न हैं ?"

"आपकी कृपा है ।"

"मेरा सौभाग्य है ।"

"कुछ पिएँगी ?"

"क्या-क्या है ?"

"है कुछ नहीं, बना दूँगा ।"

"बनी हुई चीज़ नहीं पीते ?"

"यानी ?"

"कोई × × × शराब !"

"नहीं, कभी नहीं । हम लोगों को तो उसका दर्शन करना भी मना है ।"

"एक सिगरेट दीजिए !"

"मुझे दुःख है कि मैं सिगरेट भी नहीं पीता । पड़ोस से माँग लाऊँ ?"

"नहीं, रहने दीजिए ।"—कह कर रोजा कुछ सोचने लगी ।

"क्या सोच रही हैं आप ?"—मुकुट ने पूछा ।

"आपकी बात ।"

"क्या ?"

"यही कि आप न सिगरेट पीते हैं, न शराब पीते हैं । फिर पीते क्या हैं ?"

"चाय ।"

"बस ?"

"पानी !"

रोज़ा हँसी ।

"धर्म ?"—उसने पूछा ।

"नहीं, यह बात नहीं । कभी पहले नहीं किया । झिझक मात्र है ।"

"आपको बहुत कुछ सीखना है !"

"चाय बना दूँ ? कुछ तो गर्मी आ ही जायगी ।"

"मैं बना कर आपको पिलाऊँगी । सामान कहाँ है ?"

"चलिए, मैं भी सहायता दूँगा !"

दोनों ने मिल कर चाय बनाई । मुकुट ने प्याला समाप्त कर कहा—ऐसी चाय मैंने आज तक नहीं पी ।

"आपने बहुत कुछ नहीं किया है ।"

"बहुत कुछ शायद अब सीखने को मिल जायगा । क्यों ?"

मुकुट ने उत्तर के लिए रोज़ा के नेत्रों की ओर देखा । रोज़ा ने भी कुछ देर उसकी ओर देखा और फिर आँखें फिरा कर ही उत्तर दे दिया ।

"यह क्या ग्रामोफोन है ?"—रोज़ा ने एक कोने की ओर सङ्केत करके पूछा ।

"हाँ, बजाऊँ ?"

"हिन्दी गाने हैं सब ?"

"कुछ अङ्गरेज़ी भी हैं ।"

मुकुट ने रिकार्ड उसके सामने लाकर रख दिए । रोज़ा ने रिकार्ड पलट कर देखे । Blue Angel (ब्यू ऐन्जेल) फिल्म का 'Falling in love again' गाना था, रोजा ने उसे ग्रामोफ़ोन पर चढ़ा दिया । ग्रामोफ़ोन जब गाने लगा—

Falling in Love again
more and more each day
Can't you hear me say, 'I
adore you' ?

(तुम्हारे लिए मेरा प्रेम नित्यप्रति बढ़ता ही जा रहा है । क्या तुम मुझे यह कहते हुए नहीं सुनते—मैं तुम्हारी उपासिका हूँ !)

रोजा ने मुकुट का हाथ पकड़ा ।

"चलो, नाचें ।"

"परन्तु मुझे नाचना आता नहीं ।"

"मैं सिखा दूँगी ।"

"तुम्हें विश्वास है, मैं सीख जाऊँगा ?"

"मेरे साथ भी नहीं ?"

"तुम्हारे साथ—हाँ ।"—कह कर मुकुट उठ खड़ा हुआ और रोज़ा के साथ-साथ रिकार्ड की धुन के अनुसार पैर रखने लगा ।

४

अङ्गरेज़ी रिकार्ड समाप्त हुए और साथ ही वर्षा भी बन्द हुई । रोजा ने जाने की इच्छा प्रगट की ।

"इस समय गाड़ी नहीं मिलेगी । अब प्रातःकाल ही जाना ।"—मुकुट ने कहा ।

"इसी समय चली जाऊँगी। प्रातःकाल दफ़्तर जाना है।"—कह कर रोज़ा ने अपने भीगे हुए वस्त्रों की परीक्षा की। वे अब भी भीगे हुए थे।

"वे अभी पहनने के योग्य नहीं। मेरे वस्त्र ही पहने हुए चली जाइए।"—मुकुट बोला।

"ये दूसरे व्यक्ति के हैं।"

"अभी तक नहीं है। अभी मेरा ही अधिकार है।"

रेनकोट उठा कर रोजा चलने को तैयार हो गई।

"आपको किस प्रकार धन्यवाद दूँ?"—वह बोली।

"मुझे धन्यवाद न दीजिए। धन्यवाद दीजिए तूफान को, जिसने हम दोनों को इस प्रकार मिलाया। मैं सत्य कहता हूँ, इससे पूर्व मैंने जीवन के अर्थ नहीं समझे थे। इस रात्रि को मैंने आपसे बहुत-कुछ सीखा है।"—मुकुट का उत्तर था।

द्वार खोल कर मुकुट रोज़ा के साथ बाहर निकला।

"मकान कहाँ है?"—उसने पूछा।

"बाइकला में।"

"दूर है। मैं पहुँचाने के लिए साथ चलूँगा।"

"मैं चली जाऊँगी, इतना कष्ट न करें।"

मुकुट ने न सुना। द्वार से ताला लगाया और रोज़ा के साथ हो लिया।

"अब कब मिलेंगे?"—विदा होते समय मुकुट ने रोजा से पूछा।

"कल शाम को यहाँ आइए।"

"कल शाम को?"

"हाँ! चाय पिएँगे, कुछ गाना होगा। और × ×"

"घूमने या सिनेमा चलेंगे!"

"हाँ! आओगे?"

"न आऊँगा, तो तुम्हारा आकर्षण इधर खींच कर ले आएगा। गुडनाइट!"

"गुडनाइट!"—कह कर रोज़ा ने चट से मुकुट के मुख पर एक हलका सा प्यार जड़ दिया और ऊपर दौड़ गई। मुकुट कुछ देर तक स्तम्भित खड़ा रहा, फिर उसके मुख पर प्रसन्नता के दबे हुए भाव झलक गए और 'Falling in love again more and more each day' को सीटी में निकालता हुआ वह अपने घर की ओर चल दिया।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन मुकुट के सामने एक कठिन समस्या आई। वह घर जाने के लिए पार्वती को लिख चुका था। उधर रोज़ा से भी उसने प्रतिज्ञा कर ली थी। जिस समय उसकी गाड़ी उसे घर ले जाने को थी, उसी समय उसे रोज़ा से मिलना था। उसके सामने घर का चित्र खिच गया। उसे अपने सामने पार्वती और अपने पुत्र के कल्पित चित्र नाचते हुए दिखाई पड़ने लगे। पहले पार्वती को अपने पत्र के साथ प्रसन्न होते हुए देखा, फिर प्रतीक्षा करते हुए पाया, प्रतीक्षा के बाद निराशा, अधीरता, संशय और चिन्ता में जकड़ा हुआ पाया। उन सब दृश्यों पर विचार कर लेने के बाद उसका मन रोज़ा की ओर गया। पहले रात्रि के सारे दृश्य उसके नेत्रों के आगे होकर नाच गए। फिर रोज़ा का वह चित्र उसके सामने आ गया, जो वह उस दिन देखने के लिए बुलाया गया था। वह चित्र और पार्वती का चित्र। उन दोनों की वह तुलना करने लगा। कितना अन्तर था। पार्वती का चित्र मृत था, रोज़ा का चित्र सजीव। एक मुर्झाया हुआ था, दूसरे में प्रातःकालीन गुलाब की भाँति ताजगी थी। उस सजीव तथा ताज़ा चित्र की कल्पना करते-करते वह झूमने लगा। यदि संयोगवश वह मिली है, तो क्या उसे छोड़ कर वह पार्वती के पास जायगा? उसने अपने हृदय से यह प्रश्न किया और उसे उसका उत्तर 'नहीं' में मिला। उसने अपना विचार बना लिया। पार्वती को निराश करना और रोज़ा के पास जाना। उसने एक पत्र पार्वती के लिए लिखा, उसे जेब में डाल कर रोजा की ओर चला। उसे रोज़ा से मिलने की उत्कण्ठा में उस पत्र को लेटरबॉक्स में डालने की याद भी न रही।

५

पार्वती को जब से मुकुट के आने का समाचार मिला था, तब से वह बस उसी के ध्यान में रत रहती थी। जिस गाड़ी से उसे मुकुट की प्रतीक्षा थी, उसके समय से कई घण्टे पहले उसने सारा घर लीप कर साफ़ कर लिया था और बड़े मनोयोग से उसने कई प्रकार का भोजन मुकुट के लिए बनाया था। प्रातःकाल से भूखी रह कर वह उस भोजन को लिए उस घण्टे की प्रतीक्षा करती रही, जब उसका प्राणेश इतने समय के बाद फिर उसके पास आने को था।

वह घण्टा निकल गया, परन्तु मुकुट न आया। दूसरा घण्टा निकल गया, वह न आया। तीसरा घण्टा निकल गया, वह न आया। अब पार्वती अधीर हो उठी। उसके मन मे भाँति-भाँति के बुरे विचार आने लगे। कहीं रेल लड़ न गई हो। कहीं लाइन पर कुछ दुर्घटना न हो गई हो। बच्चा रोने लगा। वह उसे छाती से चिपटा कर मुकुट की मङ्गल-कामना के लिए प्रार्थना करने लगी। फिर एक घण्टा व्यतीत हो गया। वह घबरा कर उठी और द्वार पर आ गई। मार्ग चलतों से उसने गाड़ी के विषय मे पूछा। उन्होंने उसे बताया कि गाड़ी आ चुकी थी। फिर क्या हो गया? क्या वह गाड़ी के लिए लेट हो गए? तब फिर दूसरी गाड़ी से आते होंगे। सन्ध्या को दूसरी गाड़ी आती थी। पार्वती ने बच्चे को दूध पिला कर सुला दिया। स्वयं बिना कुछ खाए, बिना कुछ पिए चौके मे बैठी सन्ध्या की गाडी की प्रतीक्षा करने लगी।

सन्ध्या आई और चली गई। बिना खाए, बिना सोए, भोजन को लिए पार्वती मुकुट की प्रतीक्षा करती रही, परन्तु प्रातःकाल हो गया और मुकुट का पता नहीं। इसी प्रकार एक दिन नहीं, कई दिन व्यतीत हो गए। न मुकुट आया और न उसका कोई समाचार। वह रोकर, कभी निराशा मे, कभी आशा में समय बिताती रही। परन्तु उसका हृदय मुकुट के समाचार के लिए छटपटाता रहा। वह न आता, इसे वह सहन कर लेती, परन्तु उसका कोई समाचार भी नहीं मिला, इस बात से वह व्यथित होने लगी। कोई ऐसा भी तो न था, जिससे वह इस विषय मे कुछ सहायता प्राप्त करती। इसका अर्थ था नित्य का रोना-कलपना, परन्तु इसके अतिरिक्त वह और कर ही क्या सकती थी।

कई मास व्यतीत हो गए, परन्तु पार्वती को मुकुट का कोई समाचार न मिला। एक दिन उसने सुना कि एक व्यक्ति बम्बई से निकट के ग्राम में आया था। वह उसके पास दौड़ी हुई गई।

"यह मुकुट की पत्नी है!"—किसी ने उसे बतलाया।

"क्या आप मेरे पति को जानते है?"—पार्वती ने उससे पूछा।

"मेडिकल कॉलेज में पढ़ते है न?"

"हाँ।"

"क्या करोगी उनके विषय में सुन कर?"

"क्या × × ×?"—पार्वती ने आतुर होकर प्रश्न किया।

"नहीं, वह सकुशल हैं। परन्तु तुम्हारे लिए वह खोए जा चुके है।"

"खोए जा चुके है?"

"लगभग!"

"अर्थात्?"

"वह किसी दूसरे के हो चुके है!"

"दूसरी स्त्री के?"

"एक वेश्या के। एक ईसाई वेश्या के।"

"एक वेश्या के!"—कह कर पार्वती कराहती हुई पृथ्वी पर बैठ गई। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

"क्या करोगी अब?"

"कुछ समझ मे नहीं आता! शायद बम्बई जाऊँगी।"

"उस स्त्री का जादू दूर कर सकोगी?"

"मैं न कर सकूँ, पर शायद यह बच्चा कर सके!"

वह बम्बई के लिए रवाना हो गई। उसके पास व्यय करने के लिए अधिक नहीं रह गया था। किसी प्रकार वह बम्बई पहुँची। पूछ कर वह मुकुट के मकान की ओर पहुँची। सन्ध्या का समय था। जब वह द्वार के निकट पहुँची, तो उसने मुकुट को रोज़ा के साथ पास खड़ी हुई मोटर की ओर जाते हुए देखा। दोनो ही शराब के नशे मे झूम रहे थे। पार्वती को उसे देख कर प्रसन्नता भी हुई और घृणा भी। ईर्ष्या भी हुई और क्रोध भी। बच्चे को गोद में लिए वह आगे बढ़ी। तब तक वे दोनो मोटर में बैठ चुके थे।

पार्वती ने जाकर पुकारा—स्वामी!

रोज़ा ने मोटर मे से उसकी ओर देखा।

"एक स्त्री तुम्हे पुकार रही है।"—उसने मुकुट से कहा।

"कैसी स्त्री है?"

"कोई गँवार दिखाई देती है।"

मुकुट ने घूम कर देखा। पार्वती सामने खड़ी हुई थी। पार्वती के नेत्र भी उसकी ओर लग गए। मुकुट के मुख पर ऐसे भाव थे, मानो उसके मस्तिष्क मे प्रतिद्वन्द्वी भावों में घोर युद्ध हो रहा था। पार्वती कुछ आगे बढ़ी।

"यह कौन है?"—रोज़ा ने पूछा।

मुकुट ने एक बार पार्वती की ओर देखा, एक बार रोज़ा की ओर देखा।

"यह कौन है?"—रोज़ा ने फिर पूछा।

"कह नहीं सकता, कोई भिखारिन होगी।"—मुकुट ने उत्तर दिया!

"क्या चाहती है?"

"शायद भीख।"

"कुछ दे दो।"

"मुझसे जो कुछ माँगेगी, वह मैं शायद न दे सकूँगा। तुम कुछ दे दो।"

मोटर के पास आकर खडी हुई पार्वती की ओर रोज़ा ने दो आने फेंक दिए। मोटर चल दी।

६

कई मास के बाद।

उस समय तक मुकुट ने अपना सर्वस्व रोजा के अर्पण कर दिया था। एक प्रकार से अब वह रोजा का आश्रित होकर रहता था। फिर भी उसे रोजा के आकर्षण से मुक्ति नहीं मिली थी। वह जानता था कि पार्वती अपने बच्चे के साथ किसी प्रकार कठिनता से निर्वाह कर रही थी। वह स्वाभिमानिनी थी। उस दिन के मुकुट के व्यवहार से वह इतनी क्षुब्ध हो उठी थी कि मेहनत करके पेट भरना या भूखों मर जाना उसे पसन्द था, परन्तु फिर मुकुट के पास जाना उसे स्वीकार न था। मुकुट ने स्वयं कई बार उसके पास जाकर क्षमा माँगने का विचार किया था, क्योंकि अपने व्यवहार पर उसे मानसिक ग्लानि होती थी। एक ओर पार्वती थी, जिसने उसके लिए सभी कुछ निछावर कर दिया। एक ओर वह था, जो उसके साथ प्रत्युपकार करना तो अलग, उल्टी कृतघ्नता ही दिखा रहा था। परन्तु ये सारे पावन विचार रोज़ा के सामने आकर काफ़ूर हो जाते थे।

एक दिन उसे समाचार मिला कि उसका बच्चा उसके कॉलेज के अस्पताल मे ही मरणासन्न दशा मे लाया गया है। वह व्याकुल हो उठा। उसे अन्तिम बार देखने के लिए उसका हृदय तड़पने लगा। पार्वती ने उसके पास कोई समाचार न भेजा था, इसलिए उसे और भी दुःख हो रहा था। वह रोज़ा के पास गया।

"मैं अपने पुत्र को देखने जा रहा हूँ।"

"आवश्यक है?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"वह मरणासन्न दशा में है।"

"यह कुछ भी नहीं। उसका बहाना है। तुम्हें वह अपने क़ाबू मे करना चाहती है।"

"यह सत्य नहीं है।"

"फिर मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता है?"

"एक बार उन्हें देखने का वचन दे चुका था।"

"वह शर्त भी याद है?"

"तुम्हे खोने की?"

"हाँ।"

"परन्तु यह बात दूसरी है। परिस्थिति ही ऐसी है।"

"यदि तुम वहाँ जाओगे, तो यह द्वार तुम्हारे लिए बन्द हो जायगा।"

मुकुट ने कुछ देर सोचा, फिर वह बोला—मैं जा रहा हूँ। तुम्हारा जी चाहे, सो करना।

वह चला गया, परन्तु आधे घण्टे मे ही लौट कर आया। उसके नेत्रों मे आँसू थे, मुख पर उदासी थी।

"फिर आ गए?"—रोज़ा ने पूछा।

"वह चल दिया!"

"फिर यहाँ क्या कर रहे हो?"

"जो करता था। तुम्हारा आकर्षण, तुम्हारा जादू ऐसा है कि बाहर रह नहीं सकता। पतित तो हो ही गया हूँ, और पतन सही। देखना है, यह पतन का कूप कितना गहरा है। शराब का एक पैग दो!"

"शराब कहाँ है?"

"नहीं मँगाई?"

"थोडी है वह मैं पिऊँगी।"

"इतनी निर्दय न बनो।"

"निर्दयता? इसमे क्या है, इस हाथ दे, उस हाथ ले।"

"बहुत कुछ—सब कुछ दे चुका हूँ। अभी सन्तोष नहीं है?"

"सन्तोष क्या होगा? देने का कभी अन्त हो सकता है? जब देने का अन्त हुआ, तो तुम जानते हो, क्या होता है?"

"बाहर?"

"हाँ!"

"मैं अब कुछ नहीं दे सकता। बाहर निकालोगी।"

"क्यों नहीं?"

"पिछली बातों का कुछ ख़्याल नहीं?"

"नहीं।"

"पछताओगी। निराश व्यक्ति सब कुछ कर सकता है?"

"करके दिखाओ न कुछ!"—रोज़ा ने हँस कर कहा।

"अच्छा, देखोगी, पिशाचिनी, नागिन!"—कह कर मुकुट वहाँ से चल दिया।

७

जहाँ मुकुट रहा करता था, उस मकान के सामने पागल हुई पार्वती घूम रही थी। जिस दिन से बच्चे की मृत्यु हो गई थी, वह बस इसी प्रकार घूमा करती थी। न उसे खाने-पीने की सुध थी, न कपड़ों की। कभी वह हँसती, कभी रोती, कभी बकती।

एकाएक उसे मुकुट के कमरे मे से धुआँ निकलता दिखाई पड़ा। फिर उसमे कुछ लपटें भी दीख पड़ीं। पार्वती आँखे फाड़-फाड़ कर उस ओर देखने लगी। धीरे-धीरे उसे कुछ होश-सा हुआ। उसकी सुप्त स्मृति जागी। वह चिल्ला पड़ी—आग, आग, कोई बचाओ!

परन्तु सब उसे पागल समझ कर उसकी बातों की ओर ध्यान न देकर चले जाते। यह देख कर वह स्वयं ऊपर दौड़ी। कमरे का द्वार बन्द था। उसमे जाने कहाँ से अपूर्व शक्ति आगई। धक्का देकर उसने किवाड़ तोड़ डाला और भीतर घुस गई। कमरा धुआँ और लपटों से भरा था। उसे इन बातों की चिन्ता न थी। उसे थी चिन्ता मुकुट की। उसने चारों ओर टटोला। भूमि पर मुकुट बेहोश पड़ा था। उसने उसे गोद में उठा कर खींचा और पीठ पर लाद कर नीचे ले आई। उस समय तक लोगों का ध्यान इस घटना की ओर आकर्षित हो गया था। वह मुकुट को गाड़ी मे रख कर अस्पताल ले गई।

"अच्छे हो जायँगे, डॉक्टर साहब?"—उसने डॉक्टर से पूछा।

"आशा तो है, परन्तु इनके शरीर मे किसी अन्य व्यक्ति का रक्त प्रवेश करने की आवश्यकता है।"

"मै तैयार हूँ।"

डॉक्टर ने एक बार उसकी ओर देखा।

"तुम?"

"क्यों नहीं?"

"तुम्हारे शरीर मे स्वय ही रक्त नहीं है। तुम्हारा जीवन ख़तरे मे पड़ जायगा।"

"इसकी चिन्ता न कीजिए, डॉक्टर साहब! मैं मर जाऊँ, परन्तु इन्हे बचा लो!"

"पत्नी हो?"

"हाँ!"—पार्वती ने धीरे-धीरे उत्तर दिया।

उसका रक्त निकाल कर मुकुट के शरीर मे प्रविष्ट किया गया, तब उसकी जान बची। परन्तु पार्वती कमज़ोरी के कारण अस्पताल मे रख ली गई।

❀ ❀ ❀

वह पलङ्ग पर लेटी हुई थी। धीरे-धीरे मुकुट ने प्रवेश किया!

"कौन?"—पार्वती ने आँखें खोल कर पूछा।

"एक पापी, पतित व्यक्ति!"—मुकुट ने उत्तर दिया।

पार्वती चुप हो गई।

मुकुट फिर बोला—एक ओर तुम्हारा जीवन है—उज्ज्वल, बलिदानमय, तपस्या का। एक ओर मेरा जीवन है—कलुषित, स्वार्थमय, पाप का। मेरी समझ मे अभी तक इस जीवन की पहेली का रहस्य नहीं आया। परन्तु अब भी समय है, पार्वती!

"है, स्वामी?"

"हाँ, प्रिये! हम दोनों मिल कर नए सिरे से, नए रूप मे शायद इस पहेली का अर्थ समझ सकें।"

"दोनों?"

"हाँ!"

"इस बार ऐसा हृदय से कह रहे हो?"

"हृदय की तह से, पार्वती!"

और दोनों ने इस जीवन की पहेली को सुलझाने का पहला प्रयास प्रारम्भ कर दिया।



श्रीमती दुर्गाबायम्मा

श्रीमती गुम्मिडाडाला दुर्गाबायम्मा एक परम देश-भक्त मद्रासी महिला है। आपने आन्ध्र-प्रान्त में हिन्दी भाषा के प्रचार और विस्तार के सम्बन्ध मे जो प्रयत्न किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आप स्वयं निहायत अच्छी हिन्दी बोलती और लिखती है। आपके लेख 'हिन्दी-प्रचारक' तथा मद्रास के अन्यान्य पत्रों मे बराबर छपा करते हैं। लिखने के अलावा आपमे बोलने की भी अच्छी शक्ति है। आपका भाषण मधुर और युक्ति-तर्कपूर्ण होता है। अपने विषय का प्रतिपादन निहायत अच्छे ढङ्ग से करती है। अपने प्रान्त की जनता पर आपका प्रभाव भी अच्छा है। विशेष रूप से वहाँ की नवयुवतियों पर। आप अपना सारा समय देश-सेवा सम्बन्धी कार्यों मे व्यतीत करती है।

श्रीमती गुम्मिडाडाला दुर्गाबायम्मा का जन्म १० जुलाई, सन् १९०९ को एक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था। आपके माता-पिता ने आपकी शिक्षा का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था। बारह वर्ष की आयु मे आपका विवाह हो गया और ससुराल मे, जो कोकोनाडा मे है, शिक्षा प्राप्त करने का और अधिक सुयोग मिला। तेरह वर्ष की उम्र मे आप हिन्दी सीखने लगीं और छः ही महीने मे उसमे निपुण हो गईं। उन्होंने अपने ख़र्च से कोकोनाडा मे एक स्कूल खोला, जिसमे लड़कियों को हिन्दी सिखलाई जाती थी। उस साल जब वहाँ कॉङ्ग्रेस का अधिवेशन हुआ, तो उस स्कूल में एक सौ लड़कियाँ पढ़ती थीं। जिन नेताओं ने इस संस्था को देखा, उन पर इसका बहुत प्रभाव पडा। इस अवसर पर श्रीमती जी स्कूल मे शिक्षक का कार्य करती थी और घर पर स्वयं सङ्गीत और अङ्गरेज़ी सीखती थीं। इसके साथ ही उन्होंने अपनी मातृ-भाषा तेलगू को भी नही भुला दिया था। इसके सिवा आपने बिजगापट्टम मे भी एक और हिन्दी स्कूल की स्थापना की। शिक्षा-प्रचार मे इस प्रकार संलग्न रहते हुए राष्ट्रीय कार्यों मे भी आप भाग लेती रहीं।

सन् १९२९ मे महात्मा गाँधी आन्ध्र देश में पधारे। दुर्गाबाई ने २५ दिन तक महात्मा जी के साथ रह कर उनके आदर्शों का ज्ञान प्राप्त किया। इससे उनके जीवन मे एक नया परिवर्तन हुआ और देशसेवा की आकांक्षा हृदय मे बलवती होने लगी।

सन् १९३० मे वे ईस्ट गोदावरी तालुका बोर्ड की सदस्या हुईं। पर इसमे वे कोई विशेष कार्य न कर सकीं, क्योंकि अपने पति की बीमारी के कारण उनको उसी समय मद्रास चला जाना पड़ा। वहाँ आप 'गृहलक्ष्मी' और 'भारती' नाम की तेलगू भाषा की दो प्रसिद्ध मासिक पत्रिकाओं के लिए लेख लिखा करती थीं।

सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ होने पर जब श्री० प्रकाशम् गिरफ़्तार किए गए, तो श्रीमती दुर्गाबाई मद्रास की डिक्टेटर नियत की गईं। आपको आर्काट मे १ वर्ष की सज़ा दी गई, पर गाँधी-इर्विन समझौते के कारण आप शीघ्र ही मुक्त कर दी गई। दोबारा आन्दोलन शुरू होने पर आपने पुनः उसमे भाग लिया, जिसके फल-स्वरूप छः मास का कारागार दण्ड हुआ। कारागार की अवधि समाप्त होने पर इसी वर्ष १८ जून को आप छोड़ी गई है। इस बीच मे आप चर्खा चलाना और हिन्दी-प्रचार का कार्य करती रहीं। जेल मे आपने एक 'कम्मा' नाम की स्त्री को अपने बच्चे का गला घोंट कर मारने से रोका था।

—माया

❀ ❀ ❀

प्राकृतिक शक्तियों के प्रादुर्भाव का समय

यह सचमुच भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि इस देश के विद्यालयों मे माता-पिताओं को शिशुपालन सम्बन्धी शिक्षा नहीं दी जाती। यहाँ बेकारी की जो अवस्था है, उसे देखते हुए पिताओं की कठिनाइयों का अनुमान हम आसानी से कर सकते है। उन बेचारों को रोटी कमाने से ही फ़ुर्सत नही मिलती। बच्चों के लालन-पालन का ध्यान कौन करे? हाँ, माताओं को—विशेषकर उनको, जिन्हे परमात्मा ने धन-धान्य पर्याप्त दिया है—काफ़ी समय मिलता है। पर वे भी बच्चो को नौकर-नौकरानियों पर छोड़ कर ही सन्तोष कर लेती है। उन्हे अपने बनाव-शृङ्गार से समय कैसे मिले। अफ़सोस! स्त्रियों के विद्यालयो मे व्यर्थ के विषयों की शिक्षा तो बहुत दी जाती है, पर इस उपयोगी विषय पर जरा भी ध्यान नही दिया जाता।

'चाँद' की पाठिकाओं मे से बहुत सी माताएँ होंगी या बहुत सी ऐसी होंगी, जिन्हे शीघ्र ही माता के उत्तर-दायित्व को अपने कन्धे पर लेना होगा। उनमे बहुत सी इस विषय को जानना चाहेगी कि भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे बालको मे किन-किन प्राकृतिक शक्तियो का प्रादुर्भाव होता है। शिक्षिता माताएँ किस प्रकार उनकी सहायता से अपने बच्चों को योग्य बनाने में कृतकार्य हो सकती है। ये ही बातें हम इस लेख मे लिखने का प्रयत्न करेंगे।

हम इस समय तीन वर्ष की अवस्था से लेकर १८ वर्ष तक की अवस्था के बालकों के स्वभाव का उल्लेख करेंगे। इन अवस्थाओं को तीन भागो में बाँट दिया गया है :—

(१) शैशवावस्था, (२) बाल्यावस्था और (३) किशोरावस्था।

शैशवावस्था

शैशवावस्था को भी दो भागों मे विभाजित कर हम बालकों के स्वभाव का विश्लेषण करेंगे। एक तो ३ वर्ष से ७ वर्ष तक की अवस्था और दूसरी ७ से १० वर्ष तक की।

तीन से सात वर्ष तक का बालक शारीरिक, मानसिक और आचार-सम्बन्धी सभी बातों को बड़े ग़ौर से देखता है। उसमे बड़ी तीव्र जिज्ञासा-शक्ति होती है। हर एक बात को वह जानना चाहता है। सम्भव और असम्भव प्रश्नो से माता-पिता को तङ्ग कर देता है। अनाड़ी माता-पिता बालक के प्रश्नो से ऊब कर उसे धमकाते है। इसका फल यह होता है कि उनके हृदय मे जिस जिज्ञासा-शक्ति के अङ्कुर का प्रादुर्भाव हो रहा है और जो एक न एक दिन बढ़ कर विशाल वृक्ष बन जाता, उसे निर्दयी माता-पिता अकारण ही उखाड़ कर फेंक देते है। अतएव बालक मन्दबुद्धि बन जाते है।

यही नहीं, बालकों मे अनुकरण की भी प्रबल प्रवृत्ति होती है। कहावत है, 'ख़रबूज़े को देख कर ख़रबूज़ा रङ्ग बदलता है' इसलिए इस सम्बन्ध मे माता-पिता को ख़ूब सावधान रहना चाहिए। जो पिता स्वयं सिगरेट पीता है, उसका पुत्र सिगरेट पीने से बच जाय, यह असम्भव है। अतएव माता-पिता का आचरण आदर्श होना चाहिए। पता नहीं, उनकी किस चेष्टा का असर बालक पर बुरा पड़े। हम पैसे के लोभ से अपने बालको को रद्दी स्कूलो मे भेज देते है, या ग़ैरज़िम्मेदार अनाड़ी शिक्षकों से उन्हें पढ़वाते है। फलतः हमारे बालक निकम्मे हो जाते है। छोटे बच्चों के लिए शिक्षक चुनते समय हमे अत्यन्त सावधानी से काम लेने की ज़रूरत है। क्योंकि यही समय है, जब बालक ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ आचार और सद्व्यवहार की भी शिक्षा ग्रहण करता है। ध्यान रहे, बालक इस अवस्था में खेल और काम में अन्तर नही समझता। इसीलिए शिक्षा मे मनोरञ्जन का समावेश अवश्य होना चाहिए। बालोद्यान अर्थात् किण्डर-गार्टन (Kindergarten) एवं अन्य मनोरञ्जक उपायों द्वारा शिक्षा देना लाभदायक है।

इसी आयु मे बालक मे कल्पना-शक्ति का भी प्रादुर्भाव हो जाता है। हाँ, उसमें इतनी समझ नहीं होती कि वह सम्भव-असम्भव का भेद कर सके। बल्कि असम्भव बातें उसे अधिक प्रिय होती है। वह अपनी बुढ़िया नानी की बात और उसकी भूत-प्रेत की कहानी सुनना अधिक पसन्द करता है। इसीलिए नवयुवती माताओं को भी थोड़ी देर के लिए 'बुढ़िया' बन कर बच्चों को उनकी रुचि के अनुसार बातें सुनानी चाहिए।

जिससे उनकी कल्पना-शक्ति दब न जाय। हाँ, इसी आयु मे वह बड़ो के आदर और आज्ञापालन मे भी प्रवृत्त हो जाता है। इसलिए माताओं को उनकी इस प्रवृत्ति से लाभ उठाना चाहिए। उन्हे बड़ो को प्रणाम, नमस्ते आदि करना सिखाना, उठने-बैठने आदि के सम्बन्ध मे कुछ मोटी-मोटी बातें भी बतानी चाहिए, जो उसके भावी जीवन मे लाभदायक सिद्ध हो।

७ से १० वर्ष की शैशवावस्था

आठवे वर्ष को पार करने के बाद बालक मे यह शक्ति आने लगती है कि वह खेल और काम मे भेद कर सके। यही समय है, जब बालक को किसी नियमित दिनचर्या पर चलाया जा सकता है। परन्तु वह दिनचर्या मनोरञ्जक होनी चाहिए। पढ़ना थोड़ा और खेलना अधिक। खेल भी ऐसे चुने जा सकते है, जिसमे जहाँ बालक का मनोविनोद हो वहाँ वह कुछ सीख भी सके। इस समय १५-२० मिनट तक लगातार उससे एक काम लिया जा सकता है।

इस आयु मे बालकों को स्कूल जाने का बड़ा शौक होता है। प्रायः देखा जाता है कि इस आयु के बच्चे बस्ते लेकर समय से बहुत पहले ही स्कूल पहुँच जाते है। वे इस बात की भी परवा नहीं करते कि माँ उन्हे समय पर रोटी देती है या नहीं। क्या ही अच्छा हो, यदि माताएँ अपने बच्चों को इस आयु मे स्कूल जाने की आदत डलवा सकें। भाषा पढ़ने के सङ्केत और गिनती आदि भी बालक बड़ी ख़ुशी से सीखता है। उसकी स्मरण-शक्ति इस समय बड़ी तेज होती है। अच्छी-अच्छी बातों को याद कराने का यही उपयुक्त समय होता है।

इसी समय बालक मे क्रमश. विवेक-शक्ति का भी प्रादुर्भाव होने लगता है। फलत अब नवयुवतियों को बुढ़िया बनने की आवश्यकता नही रहती। उन्हे भूत-प्रेत और राजाओं की मनगढन्त कहानियाँ सुनाने की जरूरत नहीं। वह युवती रह कर भी धार्मिक और वीरतापूर्ण ऐतिहासिक कहानियाँ सुना कर उनकी ज्ञान-पिपासा शान्त कर सकती है। क्योकि इस समय बच्चे मे सच-झूठ, सम्भव-असम्भव मे विवेक करने की क्षमता हो जाती है।

साथ ही अनुकरण की शक्ति और प्रवृत्ति भी मौजूद रहती है। इसलिए जो माता अपने बच्चे को आदर्श बनाना चाहती है, उसे पहले स्वयं आदर्श बनने की जरूरत है।

बाल्यावस्था

(११ से १४ वर्ष तक)

१० वर्ष तक तो बच्चे की दुनिया थी, उसका घर। उसके साथी थे, भाई और बहिन। मित्र थे, पड़ोसी बच्चे, परन्तु अब वह समय नहीं रहा। पहले वह भाषा नहीं जानता था। अब उसे भाषा पढ़ने का शौक़ हो गया है। उसके पढने मे कुछ शीघ्रता भी आ गई है। यही समय उसके ज्ञान को बढ़ाने के लिए उपयुक्त है। कहानी की पुस्तकें देकर उसके ज्ञान को बढ़ाओ। वह जितना पढ़ना चाहे उसे पढ़ने दो, रोको नही। जो लोग सम्पन्न है, उन्हे तो बच्चों के पढ़ने के लिए घर मे ही एक छोटा सा पुस्तकालय भी खोल देना चाहिए।

ध्यान रहे अब वह समय नहीं रहा, जब माता-पिता की घुड़की बच्चे को बुरे काम से रोक सके। शारीरिक दण्ड तो बच्चों को और भी ख़राब करता है। मारने-पीटने से लड़के सुधरते नही। बात यह है कि अब वह समय नही रहा जब उसका ज्ञान प्रत्यक्ष तक ही सीमित था—हर एक बात को अपनी आँखों से देख कर ही उसे यक़ीन होता था—माता-पिता को छोड़ कर उसे किसी का पता नही था। वही उसके जीवन की अन्तिम सीमा बने हुए थे। अब उसने कहानियो की बीसियो पुस्तकें पढ़ डाला है—वह इतिहास और उपन्यास के पात्रो से भी परिचित हो गया है—सिनेमा देखने से देश-विदेश का बहुत सा ज्ञान उसे प्राप्त हो गया है—वहाँ की चालाकियों को भी बहुत-कुछ सीख चुका है। इसीलिए अब वह माता-पिता से उतना नहीं डरता, जितना अपने साथियो से। वह अपने साथियो मे श्रेष्ठ बनना चाहता है—वह चाहता है उनकी सम्मति उसके सम्बन्ध मे अच्छी हो। इसलिए यदि बालक कोई क़सूर करता है तो सब से अच्छा है, उसे साथियों से डराना। इस समय जनमत ही उसकी बुराइयों को दूर करने का सर्वोत्तम साधन है।

इस अवस्था मे शरीर बढ़ना है और व्यायाम करने योग्य बन जाता है। व्यायाम की टेव डालने का यह



मद्रास की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय कार्यकर्त्री

[illegible]

(आपका विस्तृत परिचय अन्यत्र देखिए)

[लोधा प्रेस, एगमोर
(मद्रास) के सौजन्य से प्राप्त]

अच्छा अवसर है। अब बालक बहुत सी सूक्ष्म बातों का ज्ञान भी प्राप्त करने की क्षमता रखता है, इसलिए सूक्ष्म बातें भी उसे कभी-कभी समझाई जा सकती हैं।

किशोरावस्था
(१४ से १८ वर्ष तक)

यह अवस्था शरीर के विकास होने की और बालक-बालिकाओं के उमङ्गपूर्ण जीवन की है। इस आयु में मृत्यु बहुत कम होती है। घाँटी फूटी जाती है और लड़की और लड़कों के स्वर में स्पष्ट भेद हो जाता है। शरीर के साथ मस्तिष्क का भी विकास हो जाता है। उच्च कोटि के मानसिक व्यापार, विवेक आदि स्पष्ट रूप में उसमें प्रकट हो जाते हैं। इसीलिए इस आयु में गणित, विज्ञान आदि सूक्ष्म विषयों की शिक्षा देनी चाहिए।

लड़के-लड़कियों के लिए यह समय हवाई महल बनाने का है। वे सदा भविष्य में रहते हैं। वर्तमान को भूल कर भविष्य के मधुर स्वप्न ही देखते रहते हैं। यह समय हौसले और उच्चाकांक्षाओं की वृद्धि का होता है। होना भी चाहिए। जीवन के प्रभात में भी बड़े-बड़े मन्सूबे न हों तो कब हों। बस यही समय है, जब माता-पिता सन्तान की सदाकांक्षाओं को उत्तेजना दे सकते हैं और दुराकांक्षाओं को दबा सकते हैं।

यही नहीं, बालक इस समय सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं में भी भाग लेना चाहता है। संस्थाओं के बनाने और व्याख्यान देने तथा सुनने का उसे बड़ा चाव होता है। श्रृङ्गार-रस के गानों को वह बड़े चाव से गाता और सुनता है। यह अवस्था मनुष्य के जीवन में भयङ्कर तूफ़ान के समान है। यही बालक-बालिकाओं के बनने-बिगड़ने का समय है। इसलिए जिन माताओं के बालक इस अवस्था पर आ जाएँ, उन्हें बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। यह आवश्यक नहीं कि हर समय माता-पिता डण्डा लेकर सन्तान का पीछा किया करें। परन्तु यह देखना उनका कर्तव्य है कि लड़का अपना समय कैसे बिताता है। कहीं वह अपना समय व्यर्थ इधर-उधर तो नहीं गुज़ारता ? कहीं वह बेकार तो नहीं बैठा रहता।

विद्वानों का कहना है—"एक आलसी का दिमाग़ शैतान का कारख़ाना है।" दुनिया भर की बुरी बातें आलसी मनुष्य के दिमाग़ में भरी रहती हैं। इसलिए इस अवस्था के बालकों की दिनचर्या जितनी भरी जा सकती है, भर देनी चाहिए। खेल-कूद के लिए जितना समय दिया जाय अच्छा है। इसी प्रकार उन्हें बेकार रखने से तो मनोरञ्जन में उनके समय को बीतने देना कहीं अच्छा है। जहाँ तक हो वे काम में उलझे रहें, ताकि उन्हें बुरी बातों के सोचने का अवकाश ही न मिले। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है, मनुष्य जैसा सोचता है, वैसा ही करता है। इसलिए शक्ति को रोकने के बजाय उनकी शक्ति को दूसरी ओर प्रवाहित कर देना कहीं अच्छा है।

आशा है, पाठक-पाठिकाएँ हमारे इस लेख को पढ़ कर फेंक ही न देंगी, वरन् इसका क्रियात्मक उपयोग कर अपना और हमारा परिश्रम सार्थक करेंगी।

—जगदीशचन्द्र शास्त्री, काव्यतीर्थ

❀ ❀ ❀

क्या रामायण की कथा काल्पनिक है ?

आस्तिक तथा धर्मप्राण हिन्दुओं की दृष्टि में 'राम' नाम की महिमा वर्णनातीत है। यह पवित्र शब्द उनके लिए केवल एक अमूल्य निधि ही नहीं; बल्कि उनका जीवन-सर्वस्व है। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते और अपना काम-काज करते वे सदा इस नाम का स्मरण किया करते हैं।

वह कौन सा नाम था, जिसने दस्यु रत्नाकर को ब्रह्म-विद्-वरिष्ठ महर्षि बाल्मीकि के रूप में परिणत कर दिया ? वह कौन सा नाम था, जिसकी परिक्रमा कर भगवान गजानन अमर-मण्डली में प्रथम पूज्य बन गए ? वह कौन सा नाम था, जिसके बल पर साधु-शिरोमणि प्रह्लाद ने पिता द्वारा दी हुई दारुण यन्त्रणाओं को भी तुच्छ समझा ? वह कौन सा नाम था, जो राक्षसेन्द्र रावण के हृदय में एक भीषण विभीषिका का रूप धारण कर काँटे की तरह सदा चुभता था ? वह कौन सा शुभनाम है, जिसका पवित्र उच्चारण बार-बार कर श्मशान को जाते हुए आज भी आस्तिक हिन्दू अपने दिवङ्गत बन्धु-बान्धवों की वियोग-व्यथा को भूल जाते तथा संसार की

असारता की घोषणा करते है ? इन सभी प्रश्नो का केवल एक ही उत्तर है—'राम-नाम'।

यह मङ्गलकारी नाम उस महापुरुष का है, जिसने राज्य-लक्ष्मी को ठुकराते हुए बनवास अङ्गीकार कर पितृ-भक्ति का एक अपूर्व आदर्श संसार के सामने रख दिया। यह नाम उस महापुरुष का है, जिसने अपनी विमाता द्वारा पूर्णत. तिरस्कृत तथा स्वमातृभूमि से निर्वासित होकर भी उसके प्रति अपनी माता से भी अधिक श्रद्धा तथा भक्ति दिखा कर अपने विशाल हृदय का परिचय दिया। यह नाम उस महापुरुष का है, जिसने भगवती मैथिली जैसी सती-साध्वी प्रियतमा को भी, प्रजा की तुष्टि के लिए, कूड़े-करकट की भाँति जङ्गल मे फेकवा कर महाकवि के "राजा प्रकृतिरञ्जनात्" वचन को चरितार्थ कर दिखाया। यह नाम उस महापुरुष का है, जिसने कुकर्मरत, अतः सर्वथा हनन-योग्य, रावण जैसे जन्मना कुलीन ब्राह्मण को भी पुत्र-पौत्र-सहित यमधाम की यात्रा करा कर, अपने अनन्य भक्त गोस्वामी तुलसीदास जी के "पूजिय विप्र जो सब विधि हीना" इस धर्मध्वंसी उपदेश को धर्मरक्षणार्थ, अपने पैरो से कुचल देने मे तनिक भी आगा-पीछा नही किया। यह नाम उस महापुरुष का है, जिसने ब्राह्मण-राज्य लङ्का को ब्राह्मण विभीषण के, बानर-राज्य किष्किन्धा को बानर सुग्रीव के तथा निषाद-राज्य शृङ्गबेर को निषाद गुह के हाथों मे सौप कर मनुष्य-मात्र की स्वातन्त्र्य-रक्षा एवं विश्व-बन्धुता का एक अनुकरणीय उदाहरण दिखला दिया।

परन्तु भगवान रामचन्द्र तथा उनके आनन्दवर्षी नाम मैं उक्त गुणों का समावेश मानते हुए भी हम लोगो मे से कितने है, जो रामायण को आलोचिका दृष्टि से पढते हैं ? कितने है, जो इस महाकाव्य के नायक राम तथा नायिका सीता की समकालीनता पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करते हैं ? कितने है, जो हिन्दुओं के इस पवित्र ग्रन्थ के कथानक को 'आदि कवि के उर्वर मस्तिष्क की उपज' मात्र मानते है ? कोई नहीं, अथवा बहुत कम। अत॰ आइए, पाठक, आज हम लोग तर्क की कसौटी पर अपने इष्टदेव श्रीसीताराम की समकालीनता की जाँच करें और देखे कि रामायण की अमूल्य-शिक्षा-प्रदायिनी कथा का आधार वास्तविक घटनाएँ है अथवा कवियो की केवल ललित कल्पनाएँ !

रामचन्द्र तथा सीता की समकालीनता पर ही सर्व-प्रथम विचार करने का प्रस्ताव मै ऊपर कर चुका हूँ। उनकी समकालीनता ही सारी कथा को आधार-शिला (Foundation stone) होगी ; क्योंकि उन दोनो के समकालीन सिद्ध होने पर ही उन दोनो का पुण्य-विवाह-बन्धन मे बँधा जाना, रावण द्वारा सीता के हरी जाने पर राम का उनकी विरह-व्यथा से विकल होकर वन-वन विलाप करते हुए खोजते फिरना, सुग्रीव, जाम्ब-वान् आदि बानर-भालुओ की सहायता से राक्षस-राज का बधपूर्वक सीता का पुनः प्राप्त होना एव फिर रामचन्द्र का गर्भवती सीता को प्रजा के सन्तोषार्थ घर से निर्वासित करना आदि सभी घटनाएँ सम्भव हो सकती है, अन्यथा नही। अब यहाँ यह देखना है कि किस उपाय से सीता-राम की समकालीनता की जाँच ठीक-ठीक हो सकती है। विचार करने से मालूम पड़ता है कि इस जाँच के लिए हमे पुराण-वर्णित सूर्यवंशीय नरपतियो की वशावली की शरण लेकर इस बात का अनुमान करना होगा कि उक्त वंशावली को सही मान लेने पर सीता और रामचन्द्र का जन्म एक काल मे हुआ मानना कहाँ तक युक्तियुक्त तथा बुद्धिसङ्गत है। सूर्यवंशीय राजघरानो का वर्णन विष्णु-पुराण, भविष्य-पुराण, भागवत-पुराण आदि मे है। उन्ही पुराणो को देख कर और मिला कर हमे अपने ध्येय पर पहुँचना होगा। यद्यपि पुराणो की उक्त वंशावली के कथन में दो-एक राजाओ के नाम तथा क्रम मे परस्पर कुछ मत-भेद दीख पड़ता है, तो भी यह मतभेद इतना प्रबल नही है कि हमारा निशाना ठीक लक्ष्य पर जाकर न लगे। इन मतभेद मे कुछ भी सार नही है। किसी भी राजा के कई नाम होने से भिन्न-भिन्न पुराणों मे वह भिन्न-भिन्न नामो से अभिहित किया गया है। इसी प्रकार दो-एक जगहों मे नामो के क्रम में भी कुछ विभिन्नता दिखाई पड़ती है ; अर्थात् एक पुराण मे जो नाम पिता की जगह लिखा गया है, दूसरे पुराण मे वही नाम भाई की जगह पाया जाता है। पर इस भिन्नता के होते हुए भी मूल-पुरुष से चल कर किसी इष्ट राजा तक पीढ़ियों की सख्या सभी पुराणो मे प्राय एक ही है। इस प्रकार वंशावली को एक बार ठीक कर लेने पर हमे इस बात का बहुत-कुछ ठीक-ठीक पता लग

सकता है कि उसमें वर्णित किसी भी दो निर्दिष्ट व्यक्तियों के जन्म-काल में कितनी पीढ़ियों का या कितने वर्षों का अन्तर हुआ।

ऊपर लिख आए हैं कि रामचन्द्र और सीता की समकालीनता पर विचार करने के लिए हमें सूर्यवंशीय नरेन्द्रों की वंशावली का सहारा लेना होगा। यहाँ पर यह जान लेना चाहिए कि उक्त दोनों व्यक्ति एक ही वंश की दो भिन्न-भिन्न शाखाओं के वंशज माने गए हैं। इन दो शाखाओं में से एक की रङ्गभूमि कोशल और दूसरे की मिथिला थी। यह सभी को विदित है कि कोशल की राजधानी अयोध्या (अवध) तथा मिथिला की राजधानी जनकपुर थी। इन दोनो शाखा-राज-वंशो के समान मूल-पुरुष (Common Progenitor) इक्ष्वाकु मनु थे। इक्ष्वाकु के पुत्र थे, विकुक्षि और निमि। विकुक्षि की शाखा अयोध्या में तथा निमि की शाखा जनकपुर मे राज्य करती थी। मैंने सूर्यवंशीय राजाओं की वंशावली को पूर्वोक्त विविध पुराणों से मिला कर, जो इसका शुद्ध रूप ढूँढ़ निकाला है, उसके अनुसार रामचन्द्र का जन्म विकुक्षि की शाखा में इक्ष्वाकु की ६०वीं पीढ़ी मे हुआ दीख पड़ता है। पर आश्चर्य है कि भगवती सीता का शुभ प्रादुर्भाव निमि की शाखा में इक्ष्वाकु की २४वीं पीढ़ी मे ही हो जाता है! निम्न-लिखित शाखा-वंशावलियो पर कृपा-दृष्टि डालिए :—

(क) १—इक्ष्वाकु, २—विकुक्षि (शशाद), ३—पुरञ्जय (इन्द्रवाह, ककुत्स्थ), ४—अनेना, ५—पृथु, ६—विश्वगन्धि, ७—चन्द्र (अद्रि), ८—युवनाश्व (प्रथम), ९—श्रावस्त, १०—बृहदश्व, ११—कुवलयाश्व, १२—दृढ़ाश्व, १३—हर्यश्व (प्रथम), १४—निकुम्भ, १५—वर्हाश्व (संहताश्व), १६—कृशाश्व, १७—सेनजित् (प्रसेनजित्), १८—युवनाश्व (द्वितीय), १९—मान्धाता, २०—पुरुकुत्स, २१—त्रसदस्यु, २२—अनरण्य, २३—पृषदश्व, २४—हर्यश्व (द्वितीय), २५—अरुण, २६—त्रिबन्धन, २७—सत्यव्रत (त्रिशङ्कु), २८—हरिश्चन्द्र, २९—रोहित, ३०—हरित, ३१—चम्प (चञ्चु), ३२—सुदेव, ३३—विजय, ३४—भरुक (रुरुक), ३५—वृक, ३६—बाहुक, ३७—सगर, ३८—असमञ्जस, ३९—अंशुमान, ४०—दिलीप (प्रथम), ४१—भगीरथ, ४२—श्रुत, ४३—नाभ, ४४—सिन्धुद्वीप, ४५—अयुतायु, ४६—ऋतुपर्ण, ४७—सर्वकाम, ४८—सुदास, ४९—सौदास (मित्रसह, कल्माषपाद), ५०—अश्मक, ५१—मूलक (नारीकवच), ५२—दशरथ (प्रथम), ५३—ऐडविड़ (इलिविल), ५४—विश्वसह, ५५—खट्वाङ्ग, ५६—दिलीप (द्वितीय वा दीर्घबाहु), ५७—रघु, ५८—अज, ५९—दशरथ (द्वितीय) ६०—राम = ६० पीढ़ियाँ।

(ख) १—इक्ष्वाकु, २—निमि, ३—मिथिल, ४—उदावसु, ५—नन्दि-वर्द्धन, ६—सुकेतु, ७—देवरात, ८—बृहद्रथ, ९—महावीर्य, १०—सुधृति, ११—धृष्टकेतु, १२—हर्यश्व, १३—मरु, १४—प्रतीप (प्रदीपक), १५—कृतरथ, १६—देवमीढ १७—विश्रुत, १८—महाधृति, १९—कृतिरात, २०—महारोमा, २१—स्वर्णरोमा, २२—ह्रस्वरोमा, २३—सीरध्वज, २४—सीता = २४ पीढ़ियाँ।

यहाँ पर हम पाठको को यह बतला देना चाहते हैं कि 'जनक' वा 'विदेह' मिथिला के किसी भी व्यक्ति-विशेष शासक का नाम न था ; बल्कि दोनो ही जर्मनी, रूस, मिश्र, बग़दाद आदि देशो के प्राचीन तथा भूतपूर्व शासकों की क़ैसर, ज़ार, खदीव, ख़लीफा आदि उपाधियो की तरह उनकी कुलोपाधियाँ वा पदोपाधियाँ थीं। आत्म-ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँच जाने के कारण उन्हे अपनी देह की सुध-बुध न रहती थी ; इसी कारण वे 'विदेह' कहलाए तथा प्रजा को जनक (पिता) की तरह पालने के कारण वे 'जनक' उपाधि के भागी बने। जिन जनक (विदेह) को हल चलाते समय खेत मे सीता जी प्राप्त हुई थी, उनका वैयक्तिक नाम सीरध्वज था ; जैसा कि (ख) शाखा की वंशावली से विदित होता है।

अब ऊपर की दोनो शाखा-वंशावलियो पर पाठक विचार करे और देखे कि इससे कौन सा फल निकलता है। रामचन्द्र का जन्म इक्ष्वाकु की ६०वीं तथा सीता का जन्म उन्हीं की २४वीं पीढ़ी में होता है; अर्थात् सीता का जन्म रामचन्द्र के जन्म से ६०-२४ = ३६ पीढ़ियाँ पूर्व पड़ता है ! यदि प्रत्येक पीढ़ी के लिए कम से कम औसत रूप से २५ वर्ष ही मान लिए जायँ, तो इन दोनों व्यक्तियों के जन्म मे, जिनके ऊपर सारी रामायण का दारोमदार है, ३६×२५ = ९००वर्षों का अन्तर आता है; अर्थात् सीता का जन्म रामचन्द्र के जन्म से प्रायः एक हज़ार वर्ष पहले

ही हुआ सिद्ध होता है, अथवा यों कहिए कि जिस समय पुत्रप्राण वात्सल्यमूर्ति माता कौशल्या अपने जीवन-धन शिशु रामचन्द्र को अपनी सौभाग्यशालिनी गोद मे लेकर उनके नवनीत कोमलाङ्गों के सुख-स्पर्श से एक अनिर्वचनीय आनन्द-रस का आस्वादन कर रही थी और उनके दुग्ध-पूर्ण मुख-कमल की मन्द-मन्द मुस्कान को देख-देख कर अपना जीवन धन्य मान रही थीं, उसके कई सौ वर्ष पूर्व ही रामायण की नायिका भगवती जानकी का ख़ातमा हो गया होगा; क्योंकि कोई भी मानव-प्राणी किसी भी युग मे स्वकालीन ३६ पीढ़ियों तक जीवित नहीं रह सकता। इस तर्क-सरणि का अनुसरण करने से रामचन्द्र का शुभ-विवाह जानकी के साथ और इसी प्रकार उनके छोटे भाई लक्ष्मणादि का विवाह उर्मिला आदि अन्य मैथिल-राजकुमारियो के साथ हुआ मानना, आकाश-पुष्प या शशकशृङ्ग अथवा बन्ध्या-पुत्र की सत्ता मे विश्वास करने की तरह केवल पागलपन जान पड़ता है।

रामायण की वार्ता त्रेतायुग से सम्बन्ध रखती है। यह हम मानते हैं कि आजकल की अपेक्षा प्राचीन काल के मनुष्य दीर्घायु होते थे; पर किसी भी युग को लीजिए, एक जलवायु मे पले उस युग के सभी मनुष्यों के लिए औसत पूर्णायु एवं बालिग़ होने की भी औसत एक ही माननी पडेगी। यहाँ बालिग़ शब्द से हमारा अभिप्राय शरीर की उस अवस्था से है, जिसमे सन्तानोत्पादन की क्षमता पूर्ण मात्रा मे विकसित हो जाती है। इस स्थल पर यह भी मानना पडेगा कि वर्तमान काल मे दो सहोदर भाइयो के बीच बड़ाई-छुटाई, बालिग़ अवस्था, प्रजनन प्रारम्भ-काल एवं पीढ़ी परिवर्तन-काल का जितना अधिक से अधिक आपेक्षिक औसत अन्तर हुआ करता है, उससे अधिक अन्तर प्राचीन काल मे भी न होता होगा। यहाँ "आपेक्षिक" शब्द ध्यान देने योग्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार आजकल इधर ज्येष्ठ भाई की शाखा में प्रपौत्र या अधिक से अधिक उसका भी पुत्र होने से पाँच पीढ़ियाँ उत्पन्न हो गईं, तो उधर कनिष्ठ भाई की शाखा मे अभी केवल पुत्र होने से दूसरी पीढ़ी का ही आरम्भ हुआ है। इसी प्रकार पूर्व काल में भी जानना चाहिए। एक ही वंश की दो शाखाओं के बीच पीढ़ियों का अन्तर इससे अधिक कहीं नही देखा गया और न यही कहीं देखा गया कि किसी भी वंश की दो शाखाओं के बीच पुश्त-दरपुश्त यही नियम बराबर जारी रह कर उक्त अन्तर को बढ़ाता चला जाय। ऐसी घटना किसी भी वंश मे कदाचित् ही हुआ करती है, बार-बार नही। अतः हम अपनी कल्पना-शक्ति की लगाम ढीली कर उसे कितनी ही लम्बी से लम्बी छलाँग मारने की स्वच्छन्दता दे, इक्ष्वाकु की विकुक्षि शाखा की ६०वीं पीढी उनकी निमि-शाखा की २४वीं पीढ़ी की समकालीन कदापि नही हो सकती। और सीता-राम की समकालीनता के इस प्रकार खण्डित हो जाने से रामायण की जगमगाती हुई विशाल अट्टालिका की जड़ खुद जाती है, जिससे वह निरवलम्ब होकर धराशायिनी हो जाती है, और उसके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग चकनाचूर होकर धूलि मे मिल जाते है। मालूम होता है, महर्षि बाल्मीकि ने, जो रामायण की कहानी के आदि प्रचारक है, राम और सीता नामक दो आदर्श स्त्री-पुरुषों की कल्पना कर उन्हे दो विख्यात राजकुलो के सन्तान-रत्न बताते हुए विवाह के पवित्र बन्धन मे बाँध दिया और रामायण-रूपी एक धूएँ का धौरहर खड़ा कर डाला, जो समालोचना की बयार के छूते ही छिन्न-भिन्न होकर अनन्त आकाश के गभीर गर्भ मे विलीन हो जाता है। इस दशा मे रामायण का महत्व एक कल्पित घटनाओं से गुम्फित; पर शिक्षाप्रद उपन्यास की अपेक्षा कुछ भी अधिक नही देख पडता।

परन्तु हम आस्तिक हिन्दू है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी रामायण जैसे अद्वितीय धर्म-ग्रन्थ को समालोचको की निष्ठुर लेखनी के प्रचण्ड आघातो से बचावे। जो सीता-राम आज बाइस करोड़ हिन्दू-हृदयों के आराध्यदेव बने है, जिन सीता-राम की पवित्र विरुदावलि को कवियो ने कविता द्वारा, चित्रकारों ने चित्र द्वारा तथा शिल्पियो ने मूर्ति द्वारा सर्वसंहारी प्रबल काल के कराल कवलो से सुरक्षित कर अपना जीवन सफल किया है, जिन सीता-राम के मङ्गलमय नाम पर आज असंख्य हिन्दू-नर-नारी अहर्निश योग, जप, तीर्थ, व्रत, दान-पुण्य आदि कर अपनी ऐहिक तथा पारलौकिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति की आशा करते हैं, जिन सीता-राम के बहुमूल्य मन्दिरों को देश के कोने-कोने में बनवा कर हिन्दू-जनता ने अपने करोडो रुपयों को पानी की तरह बहा दिया है, जिन सीता-राम की विमल चरितावली

का अभिनय कर नाटक तथा रामलीला की मण्डलियाँ उसे हमारे स्मृति-पट से मिटने नहीं देंगी, आज उन्हीं सीता-राम के अस्तित्व पर ही इस प्रकार रबर (Rubber) फिरते देख कर किस हिन्दू की अन्तरात्मा व्यथित न हो उठेगी ? पर करना क्या है ? हमें अपने धर्म-ग्रन्थों के परस्पर विरोधी वचनों की येन-केन-प्रकारेण सङ्गति लगा कर समालोचकों को मुँह-तोड़ उत्तर देना पड़ेगा, जिसमें रामायण का दिवाला न निकलने पावे ; अन्यथा रामप्राण हिन्दुओं की दशा उस तोते की सी होगी, जिसने सेमर के फूलों के रूप-लावण्य पर मुग्ध होकर उसके फलों के माधुर्य की कल्पना करता हुआ बहुत काल तक उसकी आराधना की ; पर जब बेचारे उस अबोध पक्षी ने चोंच मारा, तब फलों में केवल रूई देख कर हाय-हाय करके रह गया।

आशा है कि विद्वन्मण्डली रामायण-विषयक इस गोरखधन्धे को सुलझाने की कृपा करेगी।

—रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल्०

❀ ❀ ❀

अमीरों के लिए क़ानून

रूबन और इसहाक़ दो सहोदर भ्राता थे। वे दोनों एक दिन अपने किसी सम्बन्धी की मुर्दनी में गए। लौटते समय दोनों को भीगी घास पर चलना पड़ा; क्योंकि मूसलधार पानी बरस रहा था। दैवयोग से रूबन को बड़े ज़ोर से एक छींक आई। उसके पश्चात् कुछ खाँसी भी आ गई।

वह चिल्ला उठा—यह देखो, 'रेबिका' ने इससे सचेत रहने के लिए मुझसे पहले ही कह दिया था। ये मुर्दनियाँ बड़ी ख़राब होती हैं।

मानो अपने भाई से सहानुभूति प्रकट करने ही के लिए अकस्मात् इसहाक़ ने भी छींका और उसे भी खाँसी आई। उसने कहा—हत्तेरे की।

क़ब्रिस्तान के द्वार तक पहुँचने पर उन्हें प्रकट हो गया कि दोनों भाइयों को ठण्ड लग गई है और ज़ुकाम हो गया है। दोनों बराबर छींकते और खाँसते रहे। क़ब्रिस्तान के दरवाज़े पर एक बड़ी बढ़िया मोटरकार खड़ी थी। वह रूबन की थी। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि सूरत-शक्ल में दोनों भाई बहुत-कुछ मिलते-जुलते थे।

दोनों एक ही प्रकार के शोक-वस्त्र पहने हुए थे। अतएव ऐसा कोई सङ्केत न था, जिससे यह प्रकट होता हो कि इसहाक़ निर्धन था और रूबन बड़ा धनवान। 'नाटिङ्ग हिल' पर इसहाक़ की बिसातख़ाने की दूकान थी। दूकान के ऊपर ही वह अपनी स्त्री और पाँच बच्चों समेत रहता था। इस दूकान से इतनी आमदनी हो जाती थी कि उनका ख़र्च चल जाता था। अतएव कुटुम्ब सन्तुष्ट था और आनन्द से रहता था।

रूबन ने लोहे की अँगिया (Corsets) से अपना व्यापार आरम्भ किया था। किन्तु अब तो वह अनेक प्रकार के व्यापार करने लगा था, और इतना धनवान हो गया था कि यदि कोई व्यापार से धन प्राप्त करने की इच्छा करता था तो उसके सामने रूबन की उपमा दी जाती थी। यहाँ तक कि उसके धन की महानता को स्वीकार करके एक राजनीतिक दल की ओर से उसे 'सर' की उपाधि प्रदान की गई थी। अब वह 'सर रूबन' था।

क़ब्रिस्तान के दरवाज़े पर सर रूबन ने कहा—आओ मैं तुम्हें रास्ते में उतार दूँगा।

ऐ धनी लोगो, जिनके पास मोटर गाड़ियाँ हैं, तुम लोग दूसरों को 'रास्ते में उतारने' का नाम न लिया करो। या तो तुम उन्हें बिलकुल अकेला छोड़ दो, या उन्हें उनके घर के द्वार तक पहुँचा दो। यदि तुम्हें दो-चार मिनिट अधिक लगेंगे, तो इसमें तुम्हारी कोई हानि न होगी। परन्तु तुम यह नहीं अनुभव करते कि तुम्हारे थोड़ी देर के अतिथि के लिए इससे कितना फ़र्क़ पड़ जाता है। तुम्हारे साथ इतनी देर मोटर पर चढ़ने के पश्चात् थोड़ी दूर भी पैदल चल कर घर पहुँचने में सारा आनन्द फ़ीका पड़ जाता है। सर रूबन स्वभाव से ही 'रास्ते में उतारने' वाला था। वह नम्र-हृदय और सद्भावना रखने वाला था। जब तक स्वयं उसके सुख और स्वातन्त्र्य में अन्तर न पड़े, तब तक वह उदारता के पक्ष में था। अतएव उसने अपने भाई इसहाक़ को 'मार्बल आर्च' के निकट उतार दिया और जैसे बने वैसे अपने घर जाने के लिए छोड़ दिया और स्वयं केंसिङ्गटन में अपने प्रासाद तक आनन्द से लुढ़कता चला गया।

इससे यह न समझना चाहिए कि रूबन अपने भ्राता इसहाक़ से प्रेम नहीं करता था। वह उससे प्रेम करता था। परन्तु इस समय उसका सारा ध्यान अपनी खाँसी और छींकों की ओर लगा हुआ था। वह बीमारी और कष्ट से बहुत घबड़ाता था और मरने के विचार से भी उसे भय और घृणा थी। अतएव जब उसने अपने भाई को 'मार्बल आर्च' पर उतार दिया, तो समझ लेना चाहिए कि उसने कुछ समय के लिए अपने हृदय से भी उतार या भुला दिया। अपने भवन मे पहुँचते ही उसने अपनी स्त्री को पुकारा। किन्तु तुरन्त उसका प्रत्युत्तर न पाकर उसने ताली बजाई। उसका बावर्ची आया। किन्तु इतने ही मे 'रेबिका' भी आ गई। वह सुघड पत्नी थी। उसने उसे उठा कर लिटा दिया और गर्म पानी की दो बोतलें उसके पास रख दीं। और अपने पारिवारिक डॉक्टर 'सर एङ्गस मेकहीथ' को तुरन्त टेलीफ़ोन से सूचित किया। डॉक्टर मेकहीथ दो घण्टे पश्चात आए और अपने साथ स्टेथेस्कोप, ट्यूब और अन्य प्रकार के अस्त्र लेते आए। उन्होंने रोगी की नाड़ी, पसीना, तापमान, रङ्ग-ढङ्ग और अन्य बातें देखीं। कई बार उन्होंने "हाँ" और "हूँ" कहा। फिर उन्होंने रेबिका को बुलाया और बोले—"मेरे ध्यान मे आता है कि रात को रोगी की सेवा करने के लिए किसी सेविका (नर्स) को बुला लेना चाहिए। रोग का आक्रमण भयङ्कर है।" रूबन को रात भर बेचैनी और बीमारी की चिन्ता रही। और जब उसे नींद लगभग आने को होती थी, तभी सेविका उसे दवा की पुड़िया देने को आ जाती थी। दूसरे दिन सर एङ्गस बड़े तडके ही आ गए और दिन के लिए एक दूसरी सेविका रक्खी गई। सर एङ्गस ने काफ़ी देर तक रोगी को देखा-भाला। वह कुछ अधिक चिन्तित और असाधारण रूप से गम्भीर दिखलाई दिए। अन्त मे उन्होंने सर रूबन से कहा कि, "मुझे आपके 'कौए' (Uvula) के लक्षण अच्छे नहीं दिखलाई देते। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो मेरी राय है कि मैं इसे अपने मित्र 'सर एलनब्लेकी' को भी दिखला लूँ।"

सर रूबन ने, जोकि बहुत घबड़ाया हुआ था, तुरन्त इस बात को स्वीकार कर लिया और कहा—"हाँ-हाँ, ठीक है।" तीसरे पहर सर एलन आए। उन्होंने भी अच्छी तरह से परीक्षा की और सर एङ्गस से राय मिला कर इस परिणाम पर पहुँचे कि तकलीफ़ का मूल कारण 'कौआ' नहीं है, किन्तु 'तालू' (Larynx) है। उस समय सारे लण्डन मे 'तालू' को अच्छी तरह समझने वाला केवल एक मनुष्य था और वह थे डॉक्टर 'सर जेम्स बेयर्ड मेकदोइक।' सौभाग्य से सर जेम्स मिल गए और दूसरे रोज प्रातःकाल रोगी को देखने आए। अच्छी तरह देख-भाल कर उन्होंने सर एङ्गस और सर एलन से एक घण्टे तक राय मिलाई। अन्त में सर एङ्गस ने रूबन से कहा कि, "हम लोगों की राय है कि गले में एक बहुत ही छोटा सा 'चीरा' या 'शिगाफ' लगाया जाय, ताकि आयन्दा कोई ख़तरा न रहे।" रोगी ने उत्तर दिया—"हाँ, ठीक है। ऐसा काम करो कि जिसमे कोई डर न रहे।" सर एङ्गस ने एक बात और कही कि "मुझे किञ्चित शङ्का है कि कहीं आपके फेफड़े पर तो कुछ असर नहीं हो गया। इसलिए मै चाहता हूँ कि मै अपने मित्र 'सर ब्रायन बगेसली' को एक बार आपका फेफड़ा दिखला लूँ, ताकि शङ्का दूर हो जाए।" सर रूबन ने कहा—"हाँ, ठीक है।" फेफड़ा देखा गया और बिलकुल ठीक निकला। दूसरे दिन सर जेम्स बेयर्ड मेकदोइक आए और उनके साथ सर एङ्गस तथा डॉक्टर हेक्टर ब्राउन मेकिटाका भी थे, जो लण्डन के चीर-फाड़ करने वाले सबसे उत्तम डॉक्टर समझे जाते थे। वह छोटा सा 'चीरा' सफलता के साथ लगाया गया। जब सर रूबन अच्छे होकर बैठने योग्य हो गए, तब फिर एक दिन सर एङ्गस बुलाए गए और उन्होंने सलाह दी कि "आप एक मास के लिए पहाड़ पर चले जाइए तो आपका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो जावेगा।" अतएव सर रूबन अपनी प्रियतमा रेबिका के साथ एक मास के लिए पहाड पर गए। वहाँ एक दिन धूप मे बैठे कुछ सोचते रहे कि यदि मैं इङ्गलैण्ड मे होता, तो न जाने इतने दिनों मे कितने रुपए पैदा करता।

लौट कर आते ही सर रूबन नियमानुसार अपने काम पर जाने लगे। परन्तु डॉक्टर की सलाह से शाम को शीघ्र ही लौट आते थे। लौटते समय एक दिन अकस्मात् उन्हें अपने भाई इसहाक की याद आई और कहने लगे कि—"हे भगवान, मैं इसहाक़ को तो बिलकुल भूल ही गया।" मुर्दनी के दिन की सारी घटनाएँ उन्हे

स्मरण हो आई। उनका और इसहाक का गीली घास पर चलना, दोनों को छींकें और खाँसी का आना और दोनों का प्राय. एक सी दशा मे होना, यह सब उन्हे याद आ गया। सोचने लगे कि इसहाक़ की क्या दशा हुई होगी। कहीं वह बीमारी से मर तो नहीं गया? उसके पास तो इतना धन नहीं था कि बड़े-बड़े डॉक्टरों को बुलाता या पहाड़ों की यात्रा करता। हे भगवान, इसहाक़ पर क्या बीती होगी? यह सोच कर तुरन्त टेलीफ़ोन से उन्होने अपनी 'कार' मँगवाई और ड्राइवर से बोले कि "नाटिङ्ग हिल पर इसहाक़ के मकान पर चलो।" वहाँ पहुँच कर द्वार पर घण्टी बजाई गई। घण्टी के सुनते ही इसहाक का सहकारी 'मेयर्स' निकला। उसने सर रूबन को पहचान लिया और मुस्कुरा कर उन्हे भीतर ले गया। इसहाक और उसकी धर्मपत्नी 'ईमा' ने रूबन से भेट की। दोनों बड़े प्रसन्न दिखलाई देते थे। "कहो भाई रूबन, अच्छे हो?" "कहो भाई इसहाक़ मजे मे हो?" दोनो मे थोड़ी देर तक इधर-उधर की गपशप होती रही। फिर रूबन बोला:—"क्यों इसहाक़! तुम्हे मुर्दनी का वह दिन स्मरण है, जब हम दोनों को एक साथ छींकें और खाँसी आई थी?" इसहाक़ ने जवाब दिया कि "हाँ, याद तो है। उस दिन जब मै घर लौटा तब बड़ा परेशान था। ईमा ने मेरे गले मे एक चम्मच डाल कर देखा और बोली—"इसहाक तुम्हारा गला तो बहुत ख़राब है। मालूम होता है कि 'कौआ' लटक आया है।"

रूबन ने पूछा—हाँ, तो फिर तुमने क्या किया?

"फिर क्या? ईमा ने मुझे बिस्तर पर लिटा दिया और ठण्डे पानी का एक पलस्तर चढ़ा दिया। फिर उसने मुझे थोड़ी सी ह्विस्की पिलाई और दूसरे दिन मैं बिल्कुल चङ्गा हो गया।"

"हे भगवान! हे ईश्वर!"—कह कर रूबन उसकी ओर बड़े ध्यान से देखने लगा। ठण्डे पानी का पलस्तर! हे नाथ! और दूसरे दिन चङ्गा! जब उसने अपनी बीमारी का विचार किया, तब उसके मन मे सब बाते दौड़ने लगी। विशेषज्ञ, डॉक्टर, सेविकाएँ, चीरा, पहाड़ों की यात्रा। इन सब मे लगभग बारह सौ पौण्ड ख़र्च हुए होंगे और अपने काम को छोड़ने से जो हानि हुई वह अलग रही। अन्याय और पक्षपात! मुझसे भी किसी ने ठण्डे पानी के पलस्तर का ज़िक्र अवश्य किया था। यह सब सोच कर वह ईमा के प्रसन्न मुख की ओर देखने लगा। ईमा ने पूछा कि क्यों रूबन! तुम अभी ठहरोगे और चाय पियोगे?

रूबन ने बड़े जोर से कई बार अपना सिर हिला कर अपनी स्वीकृति दी। इसलिए नहीं कि वह चाय पीना चाहता था; चाय तो वह पीता ही न था। कमरे मे रसोई का धुआँ आ रहा था और कुछ दुर्गन्धि भी आ रही थी। ऊपर छत पर लड़के बेतहाशा शोर मचा रहे थे, किन्तु वह जाना नहीं चाहता था। उस समय उसे यह अनुभव हुआ कि इन लोगों से कुछ शिक्षा मिल सकती है। वास्तव मे वह उनसे प्राप्त कर सकता है।

सचमुच ठण्डे पानी का पलस्तर! हे नाथ! हे भगवान!*

—नारायणप्रसाद अरोड़ा

❀ ❀ ❀

वैदिक तथा अवैदिक दर्शन

व्यावहारिक उन्नति की दौड मे भारतवासी इस समय चाहे जितने पिछड़ गए हों, परन्तु पारलौकिक उन्नति जो उन्होने प्राचीन काल मे कर ली थी, उसकी बराबरी आज भी दुनिया मे सभ्यता का प्रचार करने का डङ्का पीटने वाली जातियाँ नहीं कर सकतीं। हमारी इस उन्नति का सारा श्रेय उन वैदिक ऋषियों को है, जो अपनी अनन्त ज्ञान-राशि हमे वेदों के रूप मे छोड़ गए है। हम भारतीयों का सिद्धान्त है कि वेद सब विद्याओं का मुख्य केन्द्र है। अतएव वेद में दार्शनिक विचारों की भी कमी नहीं है। सृष्टि कैसे हुई? सत् से या असत् से? इस प्रश्न का उत्तर चाहने वालों के लिए ऋग्वेद के दशम मण्डल का १२९वाँ सूक्त देखना चाहिए। इस प्रकार की खोज करने से मालूम होता है कि दार्शनिक विचार सूक्ष्म-रूप मे वेदों मे उसी प्रकार विद्यमान है, जिस प्रकार बट के बीज मे बटवृक्ष रहता है।

---

* "One Law for the Rich" —by Stacy Aumonier के आधार पर।

भारतीय दर्शन के दो विभाग हैं। वैदिक तथा अवैदिक। जो वेद को प्रमाण मानते है, वे वैदिक और जो वेद को प्रमाण नही मानते है, वे अवैदिक दर्शन हैं।

वैदिक दर्शनो मे सबसे पहले वैशेषिक तथा न्याय-दर्शन का नाम आता है। वैशेषिक दर्शन कणाद् ऋषि का बनाया हुआ है। ये खेतो मे गिरे हुए कणो ही के ऊपर अपना जीवन व्यतीत करते थे। अतएव इनका नाम कणाद् पडा। इनका दूसरा नाम काश्यप भी मिलता है।

न्याय-दर्शन के कर्त्ता गौतम ऋषि है। कही-कही इनका नाम 'गोतम' भी मिलता है। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने नैषध-चरित मे गोतम ही लिखा है।

मुक्तयैयः शिलात्वाय शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेत्यैव यथा वित्थ तथैव सः॥

गोतम ऋषि का नाम ऋग्वेदादि संहिता मे भी मन्त्र द्रष्टा के रूप मे प्राप्त होता है। इनके न्याय-दर्शन पर वात्सायन ऋषि ने वात्सायन-भाष्य लिखा है। और इस भाष्य पर भारद्वाज का वार्तिक है। फिर इस वार्तिक पर पण्डित वाचस्पति मिश्र की तात्पर्य टीका और इस टीका पर उदयनाचार्य की तात्पर्य-परिशुद्धि टीका है। ये बहुत बड़े विद्वान थे। भविष्य-पुराण देखने से मालूम होता है कि ये मैथिल ब्राह्मण थे। इनके विषय मे कई कथाएँ है। जैसे—

इनके राजा के पास एक बहुत बड़ा नास्तिक विद्वान् आया। वह राजा को बौद्ध-धर्म की दीक्षा देना चाहता था। राजा ने कहा कि यदि आप हमारे पण्डित जी को शास्त्रार्थ मे हरा देंगे, तो मैं बौद्ध धर्म की दीक्षा आपसे ले लूँगा। उस नास्तिक विद्वान् ने कहा, एवमस्तु। राजा ने उदयनाचार्य को बुलाया और सारा क़िस्सा सुना कर कहा कि महाराज, यदि आपका पराजय हो जायगा तो हमे बाध्य होकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेनी पड़ेगी। उदयनाचार्य ने कहा कि महाराज, आप ज़रा भी न घबड़ाएँ। मैं अवश्य विजयी हूँगा। इसके बाद शास्त्रार्थ शुरू हुआ। नास्तिक ने कहा कि यदि मैं शालग्राम की मूर्ति को जलमय कर दूँ, तो मेरा मत माना जाय। यह कह कर उसने झट ऐसा कर भी दिया। इसके बाद उदयनाचार्य ने फिर पूर्ववत् कर दिया। फलतः किसका सिद्धान्त ठीक है, यह निर्णय न हो सका। इस पर नास्तिक ने कहा कि वेद 'अप्रमाण है', हम यह वाक्य कह कर और आप 'वेद प्रमाण है' यह वाक्य कह कर एक बहुत ऊँचे ताड के वृक्ष से कूदें। जो जीवित रहे उसी का मत प्रमाण माना जाय। उदयनाचार्य ने कहा कि यही सही। फिर दोनों महाशय अपना-अपना सिद्धान्त लेकर कूदे। नास्तिक गिरा और तुरन्त ही मर गया। पर उदयनाचार्य को कुछ भी चोट नही आई।

एक और कथा है। जगन्नाथपुरी मे दर्शनार्थ एक बार उदयनाचार्य गए। वे जिस द्वार पर जाते थे, वह बन्द हो जाता था। ये बेचारे बडे परेशान हुए। तब इन्होने आखिर मे कहा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि मामवज्ञाय वर्त्तसे।
उपस्थितेषु बौद्धेषु मदधीना तव स्थितिः॥

अर्थात्—"हे जगन्नाथ! आप अपनी ईश्वरता के फेर मे है और मेरी अवहेलना कर रहे है। यदि इस समय बौद्ध आ पड़े तो आपकी सत्ता मेरे अधीन हो जायगी।"

न्याय तथा वैशेषिक के सिद्धान्त प्रायः एक ही है। शुरू मे धर्म पर दोनो ज़ोर देते है और दोनों ही इसको मुक्ति का साधन मानते हैं। कणाद् ने सात और गोतम ने सोलह पदार्थ माने है। सूक्ष्म रीति से विचार करने पर मालूम होता है कि वास्तव मे कोई भेद नही है। क्योंकि यह सोलह पदार्थ सात के अन्तर्गत आ जाते है। न्याय-दर्शन मे वाद, जल्प, वितण्डा, छल और जाति इत्यादि का बहुत अच्छा वर्णन है।

अवैदिक दर्शनकारो मे प्रथम नाम चार्वाक का लिया जाता है। यह प्रमाणो मे केवल प्रत्यक्ष को मानते है। इनका मत है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु यह चार ही तत्व है। इन्हीं से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है। जब तक शरीर रहता है, तब तक चेतना रहती है। शरीर नष्ट होने पर चेतना भी नष्ट हो जाती है। शरीर से अतिरिक्त दूसरा आत्मा नही है। जो कुछ सुख है, वह ऐहलौकिक ही है, पारलौकिक नही। यहाँ पर यह लिखने की विशेष आवश्यकता नही है कि वैदिक दर्शनकार आत्मा और पर-लोक इन दोनों को मानते है। चार्वाक का कथन है—

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः॥

चार्वाक की अपेक्षा बौद्ध-दर्शन में अधिक विचार किया गया है। यह केवल चार्वाक की तरह प्रत्यक्ष ही को प्रमाण नहीं मानते हैं। अनुमान को भी प्रमाण मानते हैं। इनका यह कहना है कि यदि अनुमान को प्रमाण नहीं माना जायगा, तो इस दुनिया से निवृत्ति हो जायगी। मनुष्य की इन्द्रियों की शक्ति सीमित है। वस्तुओं के सन्निकर्ष से ही प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और यह असम्भव है कि सर्वदा सभी पदार्थ सबके सामने रहें। जैसे मान लीजिए कि हमें अपने मित्र हरिनारायणसिंह वकील से मिलने ग़ाज़ीपुर जाना हो, तो बनारस में बैठे उस मित्र का हमें प्रत्यक्ष नहीं होगा। हम यह नहीं कह सकते कि वह जीवित है या नहीं। यदि अनुमान माना जाय तो यह कहा जा सकता है कि वह अभी तक जीवित है। आज ही उनका पत्र आया था। वह अच्छी तरह से हैं। वहाँ जाने पर सम्भवतः भेंट हो जायगी। अतएव अनुमान की सत्ता अनिवार्य है।

बौद्ध दर्शन के चार भेद हैं। ये उनके माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक इन चारों शिष्यों के द्वारा रचे गए हैं। भगवान बुद्ध के चार नियमों के सिद्धान्त मान कर ये चारों दर्शन बनाए गए हैं। चारों सिद्धान्त ये हैं—क्षणिकं, स्वलक्षणं, दुःखम् और शून्यम्। संसार में जितने पदार्थ हैं, वह सब क्षणिक हैं। अर्थात् कोई भी पदार्थ स्थायी नहीं है। एक प्रकार की ज्ञान-धारा बह रही है। इस समय जो घट है, वह दूसरे समय नहीं। अतएव कोई वस्तु दूसरे पदार्थ की तरह नहीं है। क्योंकि समानता में स्थायित्व की आवश्यकता रहती है। और इस दुनिया से मुक्ति प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक है कि सब चीज़ों को दुःख-रूप माना जाय। क्योंकि बिना दुःख माने इनसे निवृत्ति नहीं हो सकती। अन्त में बुद्ध ने मुक्ति को शून्य रूप माना है। परन्तु बुद्धदेव के चारों शिष्यों ने इस शून्य वस्तु को भिन्न-भिन्न रूपों में लिया है। पहला शिष्य माध्यमिक ने सब पदार्थों को शून्य माना है। दूसरे योगाचार ने बौद्ध पदार्थों को सत्य तथा बाह्य को शून्य माना है। तीसरा सौत्रान्तिक ने बौद्ध तथा बाह्य वस्तुओं को भी माना, परन्तु बौद्ध प्रत्यक्ष तथा बाह्य को अनुमान से सिद्ध माना है। चौथे शिष्य वैभाषिक ने बाह्य पदार्थ को भी प्रत्यक्ष माना है। क्योंकि इनका ज्ञान भी इन्द्रिय तथा अर्थों के सन्निकर्ष से होता है। इस प्रकार एक ही वाक्य से भिन्न-भिन्न अर्थ का ज्ञान बौद्ध शिष्यों को हुआ। जैसे सूर्यास्त हो गया, इस एक ही वाक्य से भिन्न-भिन्न श्रोताओं में से किसी को सन्ध्या करने का, किसी को गाय दुहने का, किसी को घर जाने का और किसी को सिनेमा देखने जाने का ज्ञान हुआ।

—गिरिजा देवी

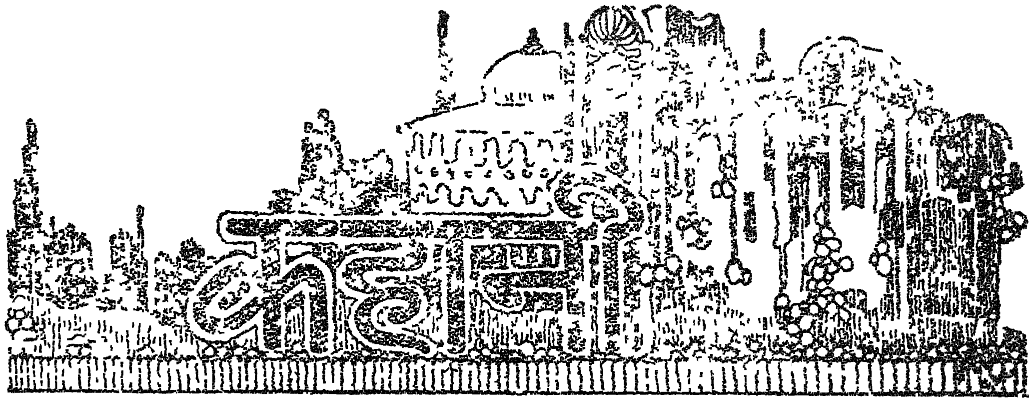
❀ ❀ ❀

वेश्यावृत्ति-निवारक बिल

जुलाई १९३२ के 'चाँद' में 'भारतीय आचार-नीति' नामक लेख श्री० चन्द्रराज जी भण्डारी ने लिखा है। उसे पढ़ने के बाद हमारे दिल में लेखक के लिए अत्यन्त मान का उद्भव हुआ। लेख बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण है। लेखक ने अवश्य ही इस विषय का ख़ूब अभ्यास किया होगा। पाश्चात्य विद्वानों की भी बहुत पुस्तकें इस विषय पर पढ़ी होंगी। दीर्घकाल के मनन और अध्ययन के फल-स्वरूप ही ऐसा लेख हो सकता है।

इसी अङ्क के पृष्ठ ३३४ पर 'वेश्यावृत्ति-निवारक बिल' के बारे में भी लिखा गया है। मैं इसी विषय पर कुछ कहना चाहती हूँ। क्योंकि बिल बड़ा ही उपयोगी और आवश्यक था। कौन्सिलरों को उसका विरोध नहीं करना चाहता था।

'वेश्यावृत्ति-निवारक बिल' में ऐसे तमाम व्यक्तियों को, जो वेश्यालय रखते हैं या वेश्यावृत्ति के लिए किसी स्त्री या लड़की को कहीं ले जाते हैं, दो साल तक की क़ैद और एक हज़ार रुपए तक जुर्माने की सज़ा का प्रस्ताव किया गया था। जो लोग अपने मकानों से वेश्याओं को हटाना चाहें, उनको सरकार द्वारा सहायता दिए जाने की भी तजवीज़ की गई थी। परन्तु संयुक्त प्रान्तीय कौन्सिल के कितने ही सदस्यों ने इस बिल का विरोध किया, और तीसरे वाचन में वह बहुमत से अस्वीकृत हो गया। इसके विरोधियों की जो दलीलें हैं, उनमें बिलकुल सार नहीं है। वे कहते हैं कि "वेश्याएँ समाज का एक आवश्यकीय अङ्ग हैं × × × वेश्यावृत्ति को हटाने की चेष्टा करना अव्यवहारिक है।" यह



रूप का लोभी

[श्री० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', एम० ए०]

सुलोचना को क्षय की बीमारी ने इधर वर्षों से जर्जर बना रक्खा था। न अच्छी होती थी, न मरती थी। वह .खुद तो इस तरह की जिन्दगी से आजिज़ आ ही गई थी, और लोग भी बुरी तरह परेशान थे। बेचारी दिन-रात यही मनाती रहती कि किसी तरह प्राण-पखेरू उड़ भागें। आख़िर, भगवान ने उसकी करुण विनती पर कान दिया। एकाएक उसकी अवस्था बिगड़ने लगी और सात ही दिनों के भीतर इतनी बुरी तरह बिगड़ गई कि सुधरने की कोई आशा न रही। माँ-बाप की ममता बिलखने लगी, छोटी बहिन सुधा का स्नेह अधीर होकर रोने लगा, मुहल्ले के लोग आहें भर-भर कर कहने लगे—'हाय! बेचारी ने अभी तक सुख का मुँह भी नहीं देखा!'

नहीं देखा था, हाँ, सचमुच उसने अभी तक सुख का मुँह नहीं देखा था! विवाह के बाद ही तो बेचारी लड़की बीमार पड़ गई! खेलने-खाने के दिन तो अब आ ही रहे थे, तब तक इसने जाने की तैयारी कर ली! पर क्या मरते समय वह एक बार अपने पति का दर्शन न कर सकेगी? कैसे कर सकेगी? उन्हें किसी ने ख़बर भी दी है? अब ख़बर देकर ही क्या होगा? समय पर उन्हें मिल सकेगी, समय पर वे आ सकेंगे? सुलोचना की आँखों में आँसू भर आए। उसने वेदना-विद्ध वाणी को धीरे से कँपा कर कहा—सुधा! मेरी प्यारी सुधा!

सुधा अपनी बहिन के अन्तस्तल का पूरा परिचय रखती थी। अपने उमड़ते हुए आँसुओं के आवेग को रोक कर बोली—मैं उन्हें परसों ही चिट्ठी भेज चुकी हूँ, वे आते ही होंगे।

यह सुन कर सुलोचना की अश्रुधारा और भी अधीर हो उठी। वह कुछ बोल न सकी।

सुधा ने फिर कहा—अभी थोड़ी ही देर पहले, एक तार भी भेज दिया है।

सुलोचना की कृतज्ञता चुप थी।

सुधा ने स्नेह-स्निग्ध वाणी में कहा—इस तरह रोया न करो, भगवान चाहेंगे तो जल्दी ही अच्छी हो जाओगी।

सुलोचना ने बड़े कष्ट से थोड़ी-सी मुसकाने की चेष्टा की, किन्तु वेदना के आवेग ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। वह बोली—अब भगवान ऐसा न चाहें, वही अच्छा। वे चाहेंगे भी नहीं। मेरा मन कह रहा है कि अब मैं नहीं बचूँगी। बच कर करूँगी भी क्या? सुख तो मेरे लिए बना नहीं है। और जब सुख ही नहीं, तब जीवित रहने की चाह किसलिए? अच्छी होने की अब मेरी इच्छा नहीं है सुधा! जो सवेरे नहीं हँसा वह साँझ को

हँसने की आशा कैसे करे? लेकिन ××× आह! ××× लेकिन ×××!

सुलोचना एकाएक बेचैन हो उठी। सुधा ने विकल होकर उसका हाथ अपने हाथ मे लिया और कहा—तुम्ही धीरज छोड़ बैठोगी तो मेरा क्या हाल होगा? इस तरह कुछ कहते-कहते तुम सहसा रुक क्यों गई? कहो न, क्या कहना चाहती हो?

"मै जो कहना चाहती हूँ"—सुलोचना ने याचना का भाव अभिव्यक्त करते हुए पूछा—"उसे तुम मान सकोगी सुधा?"

सुधा ने सिर झुका कर कहा—अगर मेरे बस की बात होगी ×××।

सुलोचना ने सजल स्वर मे कहा—यही कह रही थी सुधा, कि मैं तो सुख से चली जाऊँगी—इस दुख से छुट्टी पा जाऊँगी। लेकिन उनका क्या होगा, वे कैसे रहेंगे?

सुधा ने एक लम्बी साँस खींच ली।

सुलोचना ने फिर पूछा—तुम चुप क्यों हो सुधा! मुझे बता दो, वे किस तरह रहेंगे?

सुधा सब समझ गई। बोली नही, चुपचाप आँसू बहाने लगी।

सुलोचना ने कहा—तुम्हे वे बहुत मानते है बहिन, तुम्हीं उनका ख़्याल रखना; और क्या कहूँ?

इसी समय सुलोचना की माँ ने कमरे मे प्रवेश किया। अपनी स्नेहमयी बेटी की यह पिछली बात उसने सुन ली। उसका हृदय द्रवीभूत हो उठा। उसने कहा—सुधा! तू जा भोजन परोस कर अपने बाबू जी को खिला दे, तब तक मै यहाँ बैठती हूँ।

सुधा उठ कर जा ही रही थी कि उसके बाबू जी भी वहीं आ पहुँचे और बोले—जाओ सुधा, वे बाहर बैठे रो रहे हैं, उन्हे लिवा लाओ।

"कौन? हरि बाबू आ गए?"—कह कर सुधा चट-पट कमरे से बाहर निकल गई।

२

हरिमोहन को देख कर सुलोचना का हृदय तड़प उठा। अपने प्राण-वल्लभ की वह सेवा न कर सकी, उनके सुख का साधन न बन सकी, उनके हरे-भरे यौवन को अपने जीवन-रस से सींचने का अवसर न पा सकी! इसकी कचट उसे बेतरह सता रही थी। अभी कुछ ही देर पहले वह मर जाना चाहती थी, अब चाहती है कि किसी तरह जी उठे, कुछ दिनों तक और बच जाय। कौन जानता है, बीमारी सब दिन के लिए भाग जाय और उसे जीवन तथा यौवन का अभिनव आशीर्वाद प्राप्त हो! दुख के बाद सुख भी तो आता है। आह! अगर वह एक बार आ जाता! प्राणपति को थोड़ा सा तो आनन्द प्रदान कर लेती! रह-रह कर उसका जी मसोसने लगा, रह-रह कर वह जीवन-अवधि को खींच कर लम्बी करने के लिए आतुरता प्रकट करने लगी! पर यह उसके बस की बात न थी। जीवन-प्रदीप की वह उद्दीप्ति अनुप्राणित हो उठी, जो उसके निर्वाण की सूचना कहलाती है। वह आधी बेहोशी के आवेश मे आकर बड़बड़ाने लगी—देखना, सुधा, मै जा रही हूँ, पर इन्हें तुम भागने न देना। बहुत भागे-भागे फिरते थे! अब भाग जाओ तो देखूँ? भाग जाओगे? अच्छा, भागो तो? नहीं मानते? नहीं मानते? अच्छा, जाओ, मैं तुमसे नहीं बोलती ×××।

सुलोचना की दाँती बैठ गई, और लोगो की छाती! बड़ी कठिनाई से दाँती छुड़ाई गई। थोड़ी देर के लिए वह फिर होश मे आई, मगर आँखो मे अतृप्त प्रेम की बेहोशी तड़प रही थी! देख कर, हरिमोहन के धीरज का बाँध टूट गया, वह फूट-फूट कर रोने लगे।

उन्हें कौन चुप कराए, कौन समझाए-बुझाए, कौन सान्त्वना दे? उनके ससुर, दीनानाथ जी, को स्वयं रोने से फ़ुर्सत नही मिल रही थी; उनकी सास का तो जैसे सर्वस्व लुटा जा रहा था, उनकी साली, सुधा, बहिन को पकड़े बैठी अलग आँसू बहा रही थी! सब के सब शोक-समुद्र मे डूबे जा रहे थे, कौन किसको सँभालता और बचाता? लेकिन नही, होश मे आते ही सुलोचना की प्यास-भरी आँखें पति पर पड़ीं और उसने तुरन्त कहा—सुधा, उन्हे रोने न दो।

इससे अधिक वह और कुछ कह नही सकती थी। फिर उसी तरह की आधी बेहोशी मे आकर बड़बड़ाने लगी—अहा, सुधा रानी! कैसी अच्छी लग रही है आज तू! देखना, इन्हें ख़ूब कस कर बाँधे रहना! लाज करती है? दुर, पगली! लाज कैसी? ये तेरे, तू इनकी! लाज कैसी? ××× ना, ना, मुझसे लजाने की ज़रूरत

नहीं ! मुझसे क्या परदा ? ये भी मेरे, तू भी मेरी ! मगर नहीं × × × ना, ना, तू इनकी नहीं हो सकती । ये मेरे है । मेरे, हाँ, सब तरह मे मेरे ! × × × ना, ना, ना ! इन्हें छोड़ !

सुधा ने मुँह मे एक चम्मच पानी डालते हुए सजल स्वर मे कहा—इस तरह क्यों बक रही हो, होश मे आओ । देखो, ये भी रो रहे है ।

सुलोचना ने मानो बहिन की बात मान ली । फिर होश मे आई । वह दो-एक बार मुँह के पास अपना हाथ ले गई ।

माँ ने कहा—बेटी, कुछ खाओगी ?

बेटी ने अपने पति की ओर इशारा किया ।

पति ने आगे बढ़ कर पूछा—मेरे हाथ से खाओगी ?

सुलोचना ने दोनो हाथ बढ़ा दिए । हरिमोहन ने उन्हें अपने हाथो से थाम लिए और कहा—माँ ! अब परहेज़ की तो कोई ज़रूरत नही है । कुछ लाइए, मै अपने हाथ से खिला दूँ । कम से कम यह अरमान तो पूरा हो !

दीनानाथ जी ने कहा—अब खिलाना-पिलाना क्या ? फिर भी, जाओ, कुछ ले आओ !

माँ ने तुरन्त थोड़ी सी मलाई लाकर हरिमोहन के हाथ में रख दी ।

सुलोचना ने कहा—माँ-बाबू जी !

"बेटी !" कह कर माँ-बाप एक साथ ही उसके और भी नज़दीक आ गए । उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हुए जा रहे थे, आँखें बरसाती झरने बन रही थीं !

सुलोचना ने मार्मिक दृष्टि से अपने स्वामी की ओर देखा और फिर बड़े कष्ट से कहा—सुधा को × × ×।

इतना कहते ही उसकी हालत फिर बिगड़ने लगी । अब की वह बड़बड़ा न सकी । एकाएक उसकी आँखें पथरा गईं !

हरिमोहन ने मलाई उसके मुँह के पास पहुँचाई ही थी कि उसने ज़ोर-ज़ोर से हिचकियाँ लेनी शुरू कीं । मलाई के बदले सुधा ने मुँह मे पानी डाला !

३

सुलोचना की मृत्यु का धक्का हरिमोहन सँभाल न सके । बीमार होकर खाट पर गिर पड़े । पूरे डेढ महीने तक ससुराल ही मे रह गए । सास और ससुर अब भी उन्हे उसी तरह मानते रहे, स्नेह-सम्मान मे कोई कमी नहीं आने पाई । उन्होने मन मे सोचा, एक बेटी चली गई, दूसरी तो है न ? इसी से अपने दामाद को फिर वापस कर लेगे । दामाद के ऊपर भी यह आशय प्रकट कर दिया गया । सुधा ने अपनी सेवा-सञ्जीवनी के सहारे ही इन्हें मरने से बचाया । दिन-रात इन्ही के उपचार मे लगी रहती । कहाँ का खाना, कहाँ का पीना, कहाँ का सोना ! सब सुख और आराम छोड़ कर उस तपस्विनी ने अपनी बहिन की आज्ञा का, और स्वयं अपने अन्तःकरण की प्रेरणा का पालन किया । सुधा के माँ-बाप इससे और भी ख़ुश हुए । सुधा और हरिमोहन के बीच उन्होंने किसी प्रकार के व्यवधान का स्थान नही रहने दिया । उनके व्यवहार-स्वतन्त्रता की प्रगति बेरोक-टोक बढ़ती गई । दोनों एक-दूसरे से इतने अधिक हिल-मिल गए कि उन्हे देख कर दीनानाथ जी की धर्मपत्नी अपनी बड़ी बेटी के मर जाने का दुख तक बहुत-कुछ भूल गईं । स्वयं दीनानाथ जी ने भी निश्चिन्तता की एक सुखद साँस ली । किन्तु सुधा का अन्तस्तल अशान्त, कम्पित और भय-त्रस्त हो रहा था ! न जाने क्यों, वह भीतर ही भीतर दिन-रात रोया करती थी ! प्रेम की इस चाँदनी रात पर उसका विश्वास नही जमता था, किसी सर्प की आशङ्का मे वह सदैव चौकन्नी बनी रहती ! किन्तु निराधार आशङ्का आशा का विनाश नही कर सकती । आशा आदि-काल से मानव-हृदय को ठगती चली आ रही है, इसे कौन ठग सकता है ?

एक दिन हरिमोहन ने विरह का उच्छ्वास बिखेरते हुए कहा—अब मैं यहाँ से चल देना चाहता हूँ सुधा ! कॉलेज की पढाई मे योंही बहुत पिछड़ गया हूँ, अब और समय नष्ट करना ठीक नही ।

सुधा ने स्वाभाविक गम्भीरता के साथ कहा—यह तो ठीक है, लेकिन मेरी इच्छा थी कि अभी एक-आध सप्ताह आप और आराम कर लेते ।

"इस ज़िन्दगी में आराम कहाँ ?"

"मन की भावना में ।"

"मन भी अपने बस में हो तब न ?"

"उसे बस मे रखना पहला काम होना चाहिए ।"

"तुम यह काम कर सकती हो ?"

"कभी करके देखा नहीं, लेकिन शायद कर सकती हूँ।"

"मुमकिन है, शायद तुम कर सको"—हरिमोहन ने जैसे कुछ व्यथित होकर कहा—"मै तो कोशिश करके भी ऐसा नही कर सकता। बराबर विपद की मार खाने वाला मेरा यह दुर्बल मन दिन-रात रोता ही रहता है, और देखता हूँ, इसका यह रुदन कभी बन्द नहीं होने का। मेरा यह उत्पीड़ित, अशान्त, अस्थिर और असहाय मन मेरे बस मे कभी नहीं रहा, न मैं कभी इस बात की चेष्टा ही कर सका कि उसे अपने बस मे रक्खूँ। तुम इसे बस में रख सकती हो, क्योंकि तुम्हारा मन कभी मर्म-विद्ध नही हुआ, उसे कभी किसी के अन्तस्तल की आकुलता का अनुभव नहीं हुआ।"

सुधा कैसे बताती कि उसका भी मक्खन सा कोमल मन कितना अधिक पीड़ित, अशान्त, अस्थिर और अस-हाय है तथा वह भी कभी मर्म-विद्ध हुआ है या नहीं? आज 'किसी' के अन्तस्तल की आकुलता का जितना गम्भीर और करुण अनुभव वह कर रही है; उतना और किसने किया है? लेकिन नही, वह अपनी अन्तर्वेदना को अभिव्यक्त करने की क्षमता नहीं रखती। नारी, छिपा कर रखना जानती है, खोल कर लुटाना नहीं। पुरुष, खोल कर लुटाना जानता है, छिपा कर रखना नही। नारी गुप्त मन्त्रणा है, पुरुष बोलता हुआ विज्ञापन। इसीसे हरिमोहन सब कुछ कह गए और सुधा, उनके अन्तिम वाक्य की मार्मिक चोट खाकर भी, कुछ न बोली। उसने एक हलकी सी ठण्डी साँस खीच कर सिर झुका लिया।

उसे योंही थोड़ी देर रहने देकर, हरिमोहन ने फिर पूछा—सच कहना सुधा, तुम्हे अपने मन पर पूरा अधिकार है?

सुधा ने आँखों में आँसू भर कर प्रकम्पित वाणी मे उत्तर दिया—नहीं।

"नहीं? यह क्यों? अभी तो कह रही थीं कि है।"

'हृदय ने धोखा दिया, मन को पहचान न सकी।"

"अब पहचाना?"

"हाँ।"

"वह तुम्हारे बस मे है?"

"शायद नहीं।"

"फिर किसके बस मे है?"

"कैसे बताऊँ?"

"अच्छी तरह टटोल कर।"

"रहने भी दो"—सुधा ने स्नेह-गद्गद स्वर मे कहा—"जब वह मेरे बस मे है ही नही, तब फिर टटोल कर क्या देखूँ? जिसके बस मे होगा, उसकी कृपा के लिए भगवान से विनती करना ही मेरा काम है, इसके सिवाय और कुछ करने की ज़रूरत नही समझती। चलो, तुम कुछ जलपान कर लो।"

हरिमोहन की आँखों मे नशा छा गया। उसने प्रेम-मुग्ध वाणी मे कहा—जलपान कर लूँगा, पहले एक बात बता दो।

"पूछो।"

"मै चला जाऊँगा तो मुझे कभी याद भी करोगी?"

"कह नही सकती।"

"तुम्हें बताना पड़ेगा, मेरे सिर की कसम।"

"क़सम न दो, तुम्हारी यही बात तो अच्छी नही लगती।"

"अच्छा एक क़सूर माफ़ कर दो। बताओ, याद करोगी कभी?"

"याद करने की जरूरत तब पड़ती है जब भूल जाय।"

"भूल जाते कितनी देर लगती है?"

"मैं मर्द नहीं हूँ।"

"अच्छा यही बता दो, मेरी याद करके रोओगी भी?"

सुधा की आँखें डबडबा आईं। उसने हरिमोहन का हाथ पकड़ कर खीचते हुए कहा—सच कहती हूँ, तुम पागल हो जाओगे, पागल! जब देखो, तब इसी तरह की बेसिर-पैर की बातें किया करते हो। चलो, जलपान कर लो। फिर × × ×

इसी समय सुधा की माँ भी आ पहुँची। उसका हृदय-समुद्र आनन्द-तरङ्गों से उद्वेलित हो उठा। सुधा ने झट हरिमोहन का हाथ छोड़ दिया और कहा—देखती हो माँ, घण्टे भर से चिरौरी कर रही हूँ कि चलिए जलपान करने, पर ये उठते ही नही। अब मैं ज़्यादा ख़ुशामद नही करती। हाँ, नही तो!

माँ ने मुस्करा कर कहा—किसी बात पर रूठ गए होंगे बेटी! इन्हे मनाओगी नहीं तो फिर खाएँगे कैसे?

अच्छा, अबकी मान जाओ बेटा! मेरी बेटी का कहना मान जाओ। चलो, जलपान तैयार है।

हरिमोहन मुस्कुराते हुए उठ खड़े हुए। उन्होने कनखियों से सुधा की ओर देखा। वह लजा कर नाख़ून से धरती खुरचने लगी थी। उसकी माँ वहाँ से हट गई।

हरिमोहन ने कहा—जलपान यहीं क्यो नहीं ले आती।

"ले आती हूँ। मगर मुझे खाने को तङ्ग मत करना।"—कह कर सुधा जलपान लाने चली गई।

४

इसी तरह तीन-चार साल बीत गए। दीनानाथ जी के घर हरिमोहन का आना-जाना होता रहा। कॉलेज बन्द होते ही वे पहुँच जाते और छुट्टी के दिन बिता कर तब विदा होते।

सुधा अब ऐसी नहीं थी कि बिनब्याही रक्खी जाय। जल्दी से जल्दी उसका विवाह हो जाना बहुत ज़रूरी था, अवस्था के नाते भी और लोक-लज्जा के नाते भी। उसके और हरिमोहन के इस स्नेह-सम्बन्ध को लोग अब मन ही मन अवाञ्छित समझने लग गए थे, उन दोनो का इस तरह खुल कर मिलना-जुलना समाज की आँखों मे खटकने लग गया था। इसका कारण सिर्फ़ यही था कि वे दोनो अभी तक विवाह-संस्कार पूरा करके 'एक' नही हो पाए थे। हमारे यहाँ प्रेम के लिए विवाह आवश्यक है, विवाह के लिए प्रेम नहीं। लौकिक दृष्टि से उन दोनों को प्रेम की अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति का कोई नैतिक अधिकार नहीं था—तब तक, जब तक वे ब्याहे नही गए थे। सुधा के माँ-बाप भी अब इस गम्भीर आवश्यकता का अनुभव करने लग गए थे। दीनानाथ जी से उनकी धर्मपत्नी ने एक दिन कहा भी—अब हरिबाबू से कहो, ब्याह कर लें। सुधा अब बच्ची नही है।

इस बार जब विजया दसमी की छुट्टी में हरिमोहन आए तो दीनानाथ जी ने अपनी धर्मपत्नी से कहा—तुम्हारा ही कहना अच्छा होगा। मुझसे वे बहुत लजाते हैं।

सुधा की माँ ने बड़े प्यार से हरिमोहन को अपने पास बुलाया और कहा—बेटा, अब वह शुभ कार्य जितनी जल्दी पूरा हो जाय, उतना ही अच्छा। सुधा बड़ी हो गई है, हम लोग भी पके आम हो रहे है।

हरिमोहन सिर झुकाए चुपचाप खड़े रहे।

सुधा की माँ ने कहा—चुप क्यो हो रहे हो बेटा? कुछ कहो न, तुम क्या कहते हो?

हरिमोहन ने उत्तर दिया—मैं क्या कहूँ? आप लोगों की जैसी इच्छा, लेकिन × × ×

"लेकिन, क्या बेटा?"

"एम० ए० का इम्तिहान हो जाता तो अच्छा था।"

"इम्तिहान के कै महीने और रह गए?'

"छै महीने।"

"यही सही, उसके बाद ही रहने दो। ठीक है न?"

"आप लोगों की जैसी इच्छा।"

सुधा की माँ के मन का एक बहुत बड़ा बोझ जैसे कुछ हलका पड़ गया। बेटी के ब्याह-सुख की मीठी कल्पना से वे आनन्द-उत्फुल्ल हो उठीं। आशा के आश्वासन मे मनोल्लास बढ़ाने की अद्भुत क्षमता है।

इधर हरिमोहन के हृदय का मधुर भार और भी बढ़ गया। उन्मुक्त प्रणय-क्रीड़ा के बीच जब दायित्वपूर्ण भार-सम्वाहन का प्रश्न आ खड़ा होता है, तब लोग प्रेमी से बदल कर दार्शनिक हो जाया करते है। यही दार्शनिकता कभी-कभी, प्रेम-पथ को प्रशस्त बना कर उस पर कर्तव्य-ज्ञान का आलोक फैला देती है।

जिस समय इन दोनो की ये बातें हो रही थीं, उस समय सुधा अपने कमरे मे बैठी एक तस्वीर का शृङ्गार करने मे लगी हुई थी। बातचीत समाप्त करके हरिमोहन चुपचाप उसके कमरे मे घुस गए और उसके पीछे जाकर खड़े हो गए। आहट पाकर, सुधा ने फिर कर देखा तो वह लाज मे गड़ सी गई।

हरिमोहन ने मुस्करा कर पूछा—कहिए, क्या हो रहा है?

"आप पहले मेहरबानी करके मेरे कमरे से निकल जाइए।"—सुधा ने भी मुस्करा कर जवाब दिया—"नहीं तो × × ×"

"नहीं तो गिरफ़्तार कर लिए जाएँगे।"—हरिमोहन ने अपनी ओर से वाक्य पूरा करते हुए, उसी तरह मुस्करा कर कहा—"क्यो, यही न?"

"जी हाँ, ज़रूर गिरफ़्तार कर लिए जाएँगे।"—सुधा ने मुस्कान का जादू फेंक कर जवाब दिया—"आप इस

तरह चोर बन कर किसी के सूने कमरे में क्यों घुस आते हैं ?"

"चोरी करने और चोरी पकड़ने के लिए। यह क्या चीज़ है ?"—कह कर हरिमोहन ने सुधा के हाथ से वह तस्वीर झिटक ली। देखा, तस्वीर उन्हीं की थी।

सुधा हड़बड़ा कर उठ खड़ी हुई और उनके हाथ से तस्वीर छीनती हुई बोली—यह सब बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं, मेरी चीज मुझे दे दो।

"ले क्यों नहीं लेती ?"—कह कर हरिमोहन ने तस्वीर को ऊपर उठा लिया।

सुधा ने बहुत हाथ-पैर मारे, पर तस्वीर उसके हाथ न आई। तब वह, साश्रुनयना, उनके पैरों पर गिर पड़ी और बोली—मैं हार गई, अब दया करो।

हरिमोहन ने उसे उठा कर छाती से लगा लिया। तस्वीर की सुध ही न रही, वह आप ही आप हाथ से नीचे गिर पड़ी। उसका शीशा चूर-चूर हो गया।

सुधा ने व्यग्र भाव से कहा—हाय ! यह क्या हुआ ?

हरिमोहन ने आश्वासन दिया—कोई बात नहीं, मैं तो स्वयं तुम्हारे पास ही हूँ।

सुधा ने कातर भाव से उसकी ओर देखा। न जाने क्यों उसका हृदय रो रहा था। वह एकटक उसकी ओर देखती रही।

हरिमोहन ने इस बार भी उसे छाती से लगाने को हाथ फैलाया ही था कि सुधा की माँ आ पहुँची और बोली—बेटी, इन्हें आज कुछ खिलाओ-पिलाओगी नहीं ?

५

हरिमोहन एम० ए० पास करके तुरन्त अपने ही कॉलेज में प्रोफ़ेसर हो गए। लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि गत जाड़े वाली छुट्टी के बाद से वे दीनानाथ जी के घर आना ही भूल गए। चिट्ठी-पत्री का सिलसिला कुछ दिनों तक चलता रहा, फिर वह भी बन्द हो गया। इस आश्चर्य ने सन्देह का रूप धारण किया और सन्देह के भीतर से ऐसी-ऐसी बातें निकल कर फैलने लगीं, जिन्हें सुन कर किसी भी भलेमानस की कुल-मर्यादा काँप उठ सकती है! दीनानाथ जी समाज की इस कुत्सित धारणा के विरुद्ध किसी प्रकार का भी युद्ध नहीं कर सकते थे। उनके पास साधन-शस्त्र का अभाव था। अफ़वाह ज़ोर पकड़ती जा रही थी, वे कमज़ोर पड़ते जा रहे थे। अन्त में एक दिन उनकी स्त्री ने उनसे कहा—इस तरह बैठे रहने से अब काम नहीं चलेगा। विवाह के दिन बीतते चले जा रहे हैं। हरि बाबू से साफ़-साफ़ पूछो कि क्या बात है, वे इस तरह टाल-मटोल क्यों कर रहे हैं ?

"किसी बात पर रूठ तो नहीं बैठे हैं ?"—दीनानाथ जी ने पूछा।

"रूठने की तो कोई ऐसी बात कभी हुई नहीं।"

"सुधा से न कहीं कुछ कहा-सुनी हो गई हो।"

"यह तो मैं नहीं कह सकती, लेकिन उससे भला ऐसी कौन सी बात हो सकती है, जिस पर वे इतना बड़ा मान कर बैठे ?"

"तो फिर बात क्या है ? दो-तीन चिट्ठियाँ भेजीं, उनका भी कोई जवाब नहीं आया। सुधा के पास इधर कोई चिट्ठी-पत्री आई है ?"

"आती तो वह इसी तरह उदास रहा करती ? देखते नहीं हो, कैसी हो गई है ? रोना तो उसका कभी बन्द ही नहीं होता। लाख पूछती हूँ, कुछ बोलती ही नहीं।"

"तो फिर मैं ही चला जाऊँ उनके पास ?"

"और नहीं तो दूसरा जायगा कौन, तुम्हारे बदले ?"

"कहो तो एक बार फिर चिट्ठी भेज कर देख लूँ।"

"नहीं, अब चिट्ठी से कार्य नहीं चलेगा। ख़ुद जाओ और मामला साफ़-साफ़ तय कर आओ। इतनी बड़ी लड़की को अब मैं कुँवारी नहीं रख सकती। लोग योंही मुँह में कालिख पोत रहे हैं, अगर यह लगन भी निकल गया तो भगवान ही मालिक है।"

इसके बाद दीनानाथ जी को कुछ बोलने की हिम्मत न पड़ी। वे हरिमोहन के पास जाने को तैयार हो गए।

इसी समय नौकरानी ने आकर कहा—जल्दी चलिए, बहिन जी अकबार (अख़बार) पढ़ते-पढ़ते चीख मार कर बेहोश हो गईं !

दोनों प्राणी घबड़ाए हुए सुधा के कमरे की ओर दौड़े। वहाँ जाकर देखा, सुधा अचेत पड़ी थी और उसके पास ही पड़ा था एक अख़बार। दीनानाथ जी की आँखें एक तस्वीर पर जा पड़ीं। वह हरिमोहन की तस्वीर थी और उसके साथ ही यह किस लड़की की तस्वीर है ? उनकी छाती धड़कने लगी। ज़रा और ग़ौर से देखा।

तस्वीर के नीचे लिखा था—"इन्दिरा देवी, जो इस प्रान्त की सौन्दर्य-प्रतियोगिता मे प्रथम आई है और जिनके साथ इसी सप्ताह मे प्रो० हरिमोहन जी का ब्याह हुआ है।"

दीनानाथ जी माथा ठोक कर वहीं बैठ गए! उसी समय उनके जी मे आया 'सुधा भी मर जाती तो अच्छा होता!' मगर उसकी स्नेहमयी जननी, अख़बार की ओर बिल्कुल ध्यान न देकर, उसे होश मे लाने की चेष्टा कर रही थी।

६

"इन्दिरा रूप की रानी है। सुधा इसके आगे कोई चीज़ नहीं। उससे यह सौ नहीं, हज़ार नहीं, लाख गुना अच्छी है। रूप-रङ्ग मे, बातचीत मे, आचार-व्यवहार मे, किसी मे भी इसकी बराबरी सुधा कर नहीं सकती। लेकिन, लेकिन, वह मुझे बहुत मानती थी। 'थी'? और 'है' नहीं? नहीं, अब भी वह मुझे उसी तरह मानती होगी। मैंने उसे प्यार किया है। अब भी मन उसी की तरफ़ दौड रहा है। उफ़! बड़ा अत्याचार किया, सचमुच बड़ा अत्याचार किया मैंने उसके साथ! वह क्या सोचती होगी अपने मन मे? कितना नीच समझती होगी मुझे? मैंने यह किया क्या? क्या किया मैंने? कोई नई बात तो नहीं की! वही किया, जो मुझे करना चाहिए था। यह कब कहा था कि उसी के साथ ब्याह करूँगा? प्रतिज्ञा तो कभी नहीं की, वचन तो कभी नहीं दिया। वह मुझसे बहुत ही हिलमिल गई थी, मेरे बहुत ही नज़दीक आ गई थी। पर इससे क्या? साली और बहनोई के ख़याल से यह तो कोई बड़ी बात नहीं थी। सभी ऐसा करते है। दुख मे उसने मेरा साथ दिया। देना ही चाहिए था, नातेदारी का धर्म और है क्या? उसने मुझे प्यार किया, मैंने भी उसे प्यार किया। वह मुझसे लिपट कर रोई, मै भी उसे गले लगा कर रोया। उसने मेरा आदर किया, मैंने भी उसे देवी समझा। ठीक तो है, अब और क्या करता? ब्याह? क्यों, ब्याह के बन्धन मे क्यों पड़ता? ब्याह तो पसन्द का सौदा है। जहाँ जी चाहा वहाँ किया। उस घर की पहली शादी नहीं फूली-फली। दूसरी भी नहीं फूलती-फलती तो? दिल काँप उठा, भविष्य के भय ने डरा दिया। नहीं, यह सच नहीं है। डर-भय कुछ नहीं। इन्दिरा की अपार रूप-राशि ही सब कुछ है। इसे देख कर आँखें किसी और पर टिक ही नहीं सकतीं। सौन्दर्य के प्रभाव ने प्रेम के उस पुराने बन्धन को काट दिया। मैं क्या करता? रूप का जादू कुछ करने देता तब तो? माना कि वह भी देखने-सुनने मे बुरी नहीं है। पर कहाँ यह और कहाँ वह? इस अप्सरा की रूप-ज्वाला ने देखते ही देखते अतीत की सारी सञ्चित भावनाएँ भस्मसात कर दीं! ठीक तो किया, उन्हे रक्खे रहने की ज़रूरत ही क्या थी? याद करना और भूल जाना, जुड़ना और टूटना, मिलना और अलग होना, यह तो संसार का पुराना कायदा है। मै इसे बदल कैसे देता? याद? हाँ, उसकी मीठी-मीठी याद अब भी गुदगुदा रही है! तो क्या इसी तरह एक दिन इन्दिरा भी अपनी याद दिला कर बेचैन बनाएगी? यह नाता भी टूटेगा? इससे भी अलग होने की घडी आएगी? नहीं, इसके सम्बन्ध मे यह नियम लागू नहीं है। यह मेरी धर्मपत्नी है, मैंने इसे ब्याहा है! क्या?—सुधा रो रही है? तो मैं क्या करूँ? दुनिया मे न जाने कितने रोने वाले है! सबको कहाँ तक चुप कराता फिरूँ। क्या कहा, सुधा को मैं अपनी बना चुका था? अ . अ ..अ .....ऐसी बात तो . . . न . न...नहीं है। लेकिन हाँ, वह मेरे हृदय के बहुत ही पास रहने लग गई थी। इसमे मेरा अपराध? नहीं, मै सब तरह से निर्दोष हूँ। उन लोगों को मेरे ऊपर कोई अधिकार नहीं था, मै कभी वचन-बद्ध नहीं हुआ। इन्दिरा, इन्दिरा, ओ मेरी इन्दिरा! × × ×"

इसी तरह की बातें सोचते-सोचते हरिमोहन एकाएक कुर्सी पर से उठ खड़े हुए और बड़ी बेचैनी के साथ कमरे में इधर से उधर, उधर से इधर टहलने लगे। इन्दिरा आई और उसने इनके तमावृत मुख-मण्डल पर अपने मुखचन्द्र की मुस्कान-ज्योत्स्ना डाली। ये मुस्कराए और रूप की उस जादूगरनी से स्निग्ध स्वर मे बोले—कॉलेज से आकर आज की सी इन्तज़ारी करनी पड़ेगी तो मुझे मरा ही समझो।

इन्दिरा के शशि-मुख पर उदासी का बादल छा गया। उसने आँखें नीची करके कहा—मनोरमा आने ही नहीं दे रही थी, अब से ऐसी ग़लती न होगी। तुम्हारा जी तो अच्छा है? इतने सुस्त से क्यों दीखते हो?

हरिमोहन की नसों में प्रेम की विद्युत्-धारा दौड़ने लगी, मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा। बोले, सुस्त नहीं हूँ प्रिये! यह तुम्हारे अभाव की उदासी थी। अब तो ख़ुश देख रही हो?

"हाँ" कह कर इन्दिरा ने उस छोटे से कमरे मे सुख, आनन्द और उल्लास के वैभव बिखेर दिए।

"प्रिये!"

"प्रियतम!"

"तुम क्या हो?"

"तुम्हारी दासी।"

"और मैं?"

"मेरे स्वामी।"

"नहीं, तुम मेरी रानी हो और × × × "

"और तुम मेरे राजा।"

"राजा नहीं हूँ प्रिये! मुझे अपने प्रेम का भिखारी समझो।"

"भिखारी नहीं, तुम मेरे प्रेम के भगवान हो प्रियतम!"

"एक बात पूछूँ इन्दो?"

"ख़ुशी से!"

"तुम मुझे सब दिन इसी तरह प्यार करती रहोगी न? कभी मुझसे नाराज़ तो न हो जाओगी? कभी मुझे ठुकरा तो नहीं दोगी?"

"इस तरह के प्रश्न क्यों पूछ रहे हो प्यारे? तुमसे नाराज़ होकर, तुम्हें ठुकरा कर, किस नरक मे जगह पाऊँगी? क्या तुम मेरे प्रेम पर विश्वास नहीं करते?"

इन्दिरा का अधर-प्रकम्पन देख कर हरिमोहन का हृदय हिल उठा। वे कोमल स्वर मे बोले—नहीं, ऐसी बात नहीं। प्रेमी का हृदय सदैव एक न एक अभाव की कल्पना किया करता है। तुम बुरा मान गईं क्या?

नारी का रूप-गौरव उद्दीप्त हो उठा। वह मान-भरे स्वर में बोली—किस बिरते पर बुरा मानूँ? मेरे पास है ही क्या? अगर तुम अविश्वास ही रक्खोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर लूँगी?

हरिमोहन ने धीरे से मुसकरा कर अपनी दोनों बाँहें फैला दीं और कहा—आओ, अब हम तुम 'एक' हो जायँ, नहीं तो यह झगड़ा बढ़ता ही जायगा।

"मैं नहीं आती।"—कह कर इन्दिरा इठलाती हुई कमरे से निकल गई।

७

"भाग्य ने धोखा दिया! नहीं, उसका क्या दोष? जैसा किया वैसा ही तो पाऊँगा। आदमी अपने ही हाथों अपना भाग्य बनाता या बिगाड़ता है। परिस्थिति? हाँ, उसका सृजन-कर्त्ता भी तो वह स्वयं है। स्थिति को सँभालने की शक्ति भी तो भगवान ने उसे दे रक्खी है। मै उसे सँभालूँ ही नहीं तो फिर चारा क्या है दूसरा? किसे दोषी बनाऊँ? इन्दिरा को? नहीं, दोषी मैं हूँ। मैं उसके सुनहले रूप पर रीझ क्यों गया? सोने के घड़े का भीतरी भाग भी तो एक बार झाँक कर देख लेता? नहीं देखा, इसीसे तो आज विष पीना पड़ रहा है! केवल ऊपरी आवरण पर आसक्त होने वाला मैं आज किसी की सहानुभूति का पात्र नहीं! इन्दिरा मुझे प्यार नहीं करती! क्यों करे? मुझमें है ही क्या? कुन्दन-कान्ति को लजाने वाली वह रूप की रानी, सोना छोड़ कर मुझे क्यों प्यार करे? उसे रोज़ एक न एक नया गहना चाहिए, तब वह ख़ुश रहेगी! क़ीमती बनारसी साड़ियों के बिना वह मुझे प्रेम की भिक्षा नहीं दे सकती! नाटक और सिनेमा के बिना उसका दिल नहीं बहलाया जा सकता! उसे सबके साथ घूमने-फिरने, मिलने-जुलने, हँसने-बोलने तथा खाने-पीने की पूरी स्वतन्त्रता चाहिए! ठीक तो है। उसका दावा कुछ बेजा तो नहीं है! वह जो कुछ माँगती है, उससे कम माँग भी तो नहीं सकती! क्यों माँगे? उसके सौन्दर्य का मूल्य इससे कम होगा भी कैसे? क्या? प्रेम की प्यास? नहीं, इस जीवन मे अब इसके बुझने की आशा नहीं! रूप का लोभी प्रेम का अमृत नहीं पी सकता, सुधा? हाय, इस पवित्र नाम को अपनी कलुषित वाणी से क्यों अपावन बना रहा हूँ? उसे स्मरण करके अब एक बार रोने का भी अधिकार नहीं रह गया? नहीं, नहीं, सौ बार नहीं, हज़ार बार नहीं! आह रे पापी का पुण्य! तू उसके पापानल से भी बढ़ कर दाहक होता है? इन्दिरा, इन्दिरा, तू मेरे किस जन्म की पाप-ज्वाला है? जला दे, हाँ, ख़ूब अच्छी तरह जला दे! इतना जला दे कि फिर कभी जलने-जलाने की ज़रूरत ही न पड़े! × × × "

आँखें बन्द किए, इसी तरह विचार-मग्न होकर, प्रो० हरिमोहन आरामकुर्सी पर लेटे थे। भीतरी भावावेश

से बीच-बीच मे उनके अधर-पल्लव काँप उठते थे, आँखो से दो-चार बड़ी-बड़ी अश्रु-बूँदें भी गिर पड़ती थीं। उन्हे पता नहीं था कि इन्दिरा कब से आकर खड़ी है और कितनी गम्भीरता से वह उनके अधरों के उत्थान और पतन का इतिहास पढ़ रही है! बहुत देर तक चुप-चाप खड़ी रहने के बाद उसने अपने वेदना-व्यस्त पति का हाथ पकड़ लिया और बड़ी कोमलता से पूछा—कैसी तबीयत है?

हरिमोहन पहले तो चौंक उठे, फिर धर्मपत्नी के मुख-मण्डल पर अपनी स्थिर, कातर, भावभरी दृष्टि डाल कर बोले—अच्छी है।

"अच्छी तबीयत ऐसी ही होती है?"—इन्दिरा उनके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—"इतने सुस्त क्यो पड़े रहते हो? रो क्यो रहे थे? सपना तो नहीं देख रहे थे?"

"हाँ, बहुत ही अमाङ्गलिक सपना था।"

"क्या?"

"यही कि मैं मर रहा हूँ, तुम हँस रही हो।"

"तुम बड़े ही निठुर हो।"—कह कर इन्दिरा अपने पति से लिपट गई। थोड़ी देर के लिए हरिमोहन अपनी सारी व्यथा भूल गए। इन्दिरा की आँखो से आँसू बरसने लगे। हरिमोहन प्रेम-गद्‌गद होकर बोले—"ना, ना, तू रो नहीं इन्दो! मै कोई सपना नहीं देख रहा था। सपना तो आज मैं स्वयं हो गया हूँ! बता तो, जिसकी गोद पर तू इस समय लेट रही है वह मै ही हूँ?"

इन्दिरा कातर भाव से पति का मुँह निहारने लगी। उसकी समझ मे कुछ न आया। वेदना-व्यञ्जक स्वर में बोली—सच कहो, तुम्हारा जी आज कैसा है। तुम इस तरह की बाते क्यो कर रहे हो?

हरिमोहन की आँखें डबडबा आईं। उन्होंने कहा—प्रेम की बातें ऐसी ही अटपटी हुआ करती हैं प्रिये! मेरा जी अच्छा है। चलो, थोडी देर बाहर घूम आवें।

इन्दिरा उसी तरह पति की गोद मे निश्चेष्ट पड़ी रही।

८

आज हरिमोहन ने खिजला कर कहा—रोज़-रोज़ मुझे थियेटर और सिनेमा मे जाना अच्छा नहीं लगता।

इन्दिरा भी कुढ़ कर बोल उठी—जब मै जाने का नाम लेती हूँ, तब अच्छा नहीं लगता, अपने आप तो जाते ही हो।

"तो तुम चली क्यो नही जाती?"

"नाटक देखे बिना मर नही जाऊँगी।"

"मेरे साथ चलने से क्या हो जायगा?"

"देखो जी, मेरा जी न जलाओ। मैं अपनी बात वापस लेती हूँ, नही जाऊँगी अब कभी नाटक देखने। बस, कि और कुछ?"

"मै तुम्हे कहीं जाने-आने से रोकता हूँ?"

"रोकोगे क्या मैं तुम्हारी बाँदी हूँ?"

"मै कब कह रहा हूँ यह?"

"जब जहाँ जी चाहेगा, जाऊँगी। किसी की ख़रीदी हुई लौंडी तो नही हूँ?"

हरिमोहन के तन-बदन मे आग लग गई। पर बोलें क्या? भीतर ही भीतर मन मसोस कर रह गए। इन्दिरा वहाँ से चली गई। इसी समय मनोरमा आ पहुँची। इसे देख कर हरिमोहन का ख़ून खौल उठा। इसका आचरण अच्छा नही, यद्यपि यह एक अच्छी पढ़ी-लिखी लड़की है। इसके सम्पर्क से ही इन्दिरा के स्वभाव और आचरण मे परिवर्तन होता जा रहा है, नाटक और सिनेमा का शौक बढ़ता जा रहा है। यह सुप्रसिद्ध नव-युवक अभिनेता 'आनन्द' की सगी छोटी बहिन है।

इसने आते ही मुस्कुरा कर हरि बाबू को प्रणाम किया और स्निग्ध स्वर मे पूछा—बहिन जी कहाँ हैं?

हरिमोहन ने कमरे की ओर इशारा किया ही था कि इन्दिरा बाहर निकल आई।

"आज भैया 'मजनूँ' का पार्ट करेंगे। चल रही हो?"—मनोरमा ने मुस्कुराते हुए पूछा।

इन्दिरा के दिल मे गुदगुदी लगी। 'आनन्द, सचमुच आनन्द बिखेर देता है। आज वह मजनूँ बनेगा? आह, कितना अच्छा लगता है, वह मुझे स्टेज पर! स्टेज ही पर क्यो, उसके बाहर भी वह रूप का राजा है! लेकिन जाऊँ कैसे? ये जो भरे बैठे है? इन्हे मनाना होगा × × ×।' इसी तरह की बाते सोचती हुई, ज़रा चुप रह कर, वह बोली—"मेरे मालिक आज मुझसे रूठ गए हैं मनोरमा! तू जा, मैं उन्हें मना लूँगी तब फिर कोई और काम करूँगी।"

हरिमोहन का सारा क्रोध न जाने कहाँ भाग गया। नारी! तेरी मधुर वाणी मे भी क्या ही अद्‌भुत शक्ति है! तू कितनी प्रवञ्चना-पटु होती है, कितनी मायाविनी, कितनी पीयूषभाषिणी; किन्तु कितनी विष-भरी! अभी-अभी जो आदमी आग का अँगार बना बैठा था, वही अब पानी-पानी होकर बोला—तू अब शरारत करना ख़ूब सीख गई है इन्दो, क्यो?

"हाँ, तुम्ही से।"—कह कर इन्दिरा मुस्कुरा उठी।

"मै नही जाता, जाओ × × ×"

"इतना मान न करो, चले चलो। तुम्हारे पैरों पड़ूँ।"

"अच्छा, पड़ो पैरो पर।"

इन्दिरा पति के पैरो पर माथा टेकती हुई बोली—कभी तुम ख़ुशामद करते हो कभी मै करती हूँ, इसमे बात ही क्या है?

मनोरमा खिलखिला कर हँस उठी। हरिमोहन की बेहोशी भाग गई। उसके आगे प्रेम का यह अभिनय उन्हे ग्लानिदायक मालूम हुआ। पर पहले इसका ध्यान ही न रहा। वे अपनी ही दृष्टि मे जैसे कुछ ओछे-से दीख पड़ने लगे। उनका मुख-मण्डल फिर उदास हो गया। पर मनोरमा के साथ इन्दिरा को अकेली नहीं जाने देना चाहते थे। इसी से बोले—अच्छा चलो, तुम्हारी सखी के आगे तुम्हारी बात टालना उचित नही समझता।

अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्दिरा, मनोरमा का हाथ पकड़े, अपने कमरे के अन्दर घुस गई। हरिमोहन जी भी कपड़े बदलने चले गए।

९

हरिमोहन को यह भाँपते देर न लगी, बल्कि ख़ूब अच्छी तरह समझ गए, कि इन्दिरा की प्रणय-धारा बड़े वेग से 'आनन्द' की ओर बढ़ी जा रही है, वह उस आकर्षक अभिनेता को जी-जान से चाहने लग गई है। यह एक ऐसा दारुण अनुभव था, ऐसी दर्दनाक जानकारी थी, जिसके भीतर सन्ताप-ज्वाला के अतिरिक्त और कुछ रहता ही नहीं। इन्दिरा अब धीरे-धीरे ढीठ होती जा रही थी, उपेक्षा और तिरस्कार की मात्रा उसमे बढ़ती जा रही थी। जो प्रेम-वल्लरी के रूप में अपनाई गई थी, वही पाप-व्यालिनी के रूप मे दीखने लगी। प्रोफ़ेसर साहब को बनारस काटने लगा। वे उसे छोड़ कर किसी और जगह भाग जाने की बात सोचने लगे।

बड़ी कोशिश-पैरवी के बाद, लखनऊ-विश्वविद्यालय मे जगह मिल गई। अब यहीं रहने लगे। मगर नेपाल जाने ही से क्या हुआ, कपाल तो साथ ही रहा? इन्दिरा को तो वे नही बदल सकते थे। वह वैसी ही रही, जैसी बनारस मे थी। बल्कि यहाँ आकर एक बात और बढ़ ही गई। पहले कभी-कभी कुछ कहा-सुनी हो जाया करती थी, अब पल-पल पर विग्रह और विवाद होने लगा। बात-बात पर दोनो एक-दूसरे से उलझ पड़ते और इसका सिलसिला तब तक बन्द नही होता, जब तक रोने-धोने की बारी न आ जाती। प्रतिदिन के इस कलह-बाण से विद्ध होकर हरिमोहन का जीवन जर्जर हो गया।

एक दिन हरिमोहन के हाथ एक चिट्ठी लग गई। वह इन्दिरा के नाम की थी। आनन्द उसका भेजने वाला था। सारा पत्र प्रेम के मादक भावो से भरा था। हरिमोहन के हृदय मे प्रतिहिंसा और परिताप की ज्वाला धधक उठी। चिट्ठी अपने ही पास रख ली और एक रण-पराजित घायल सिपाही की तरह, ग्लानि की चादर ओढ़ कर, बिस्तरे पर निश्चेष्ट होकर पड़ रहे। उन्हें भयानक बुख़ार चढ़ आया!

इन्दिरा ने आकर अनमने भाव से पूछा—जी अच्छा नहीं है क्या?

"बहुत अच्छा है।"—अपनी अग्निमयी आँखें तरेर कर हरिमोहन ने जवाब दिया—"आप बनारस कब जा रही हैं!"

"बनारस क्यो जाऊँगी?"

"आनन्द बाबू ने बुलाया जो है?"

"देखो जी, इस तरह जी न जलाया करो। तुम्हारी गालियाँ खाते-खाते अब मै तङ्ग आ गई!"

"इसीसे तो कहता हूँ, वही जाकर आराम की ज़िन्दगी काटो। मेरे पास अब क्या धरा है?"

इन्दिरा का कलेजा धड़कने लगा। मगर वह ढिठाई से बोली—तुम मुझे यहाँ रहने दोगे या मै कही चली जाऊँ?

हरिमोहन क्रोध से दाँत पीसते हुए बोले—पिशाचिनी, ले अपने यार की चिट्ठी और छोड़ दे आज से मेरा साथ। तू समझती है कि मैं कुछ जानता ही नही?

इन्दिरा चिट्ठी उठा कर तेजी के साथ कमरे से निकल गई। हरिमोहन मूर्च्छित होकर वहीं पड़े रहे!

१०

डॉक्टर सुबोधचन्द्र रात मे बड़ी देर करके आए तो उनकी स्त्री ने पूछा—भोजन ठण्डा हो गया, इतनी देर कहाँ लगाई आज?

"केस बड़ा सीरियस है।"—उन्होंने व्यग्रता के साथ जवाब दिया—"अभी तुरन्त फिर वहीं जाना होगा।"

"क्या हुआ?"

"यहाँ एक बड़े ही अच्छे नए प्रोफ़ेसर आए है। वे मर रहे है और उनकी पत्नी कल शाम ही से ग़ायब है।"

"वह भाग गई है?"

"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

"कौन है, ये सज्जन?"

"पहले बनारस मे प्रोफ़ेसर थे, अब यहाँ आए है। नाम है हरिमोहन।"

डॉक्टर साहब की धर्मपत्नी को काठ मार गया। उनकी धड़कन जैसे थोड़ी देर के लिए बन्द सी हो गई!

डॉक्टर साहब ने कहा—अरे, तुम्हे क्या हो गया? तुम रोने क्यो लगीं?

"उनके साथ और कौन-कौन है?"

"एक लड़का-सा नौकर है। वह अकेला कुछ कर नही सकेगा, इसीलिए तो मै आज रात भर वहीं रहना चाहता हूँ।"

"मै भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"पागल हो गई हो क्या?"

"हाँ।"

"अजीब औरत हो तुम भी, इस तरह आँसू क्यो बहा रही हो! उन्हे तुम जानती हो क्या?"

'पहले इनकी शादी मेरी ही बहिन से हुई थी×××"

इसके आगे सुधा और कुछ न कह सकी। उसका हृदय उमड़ा आ रहा था!

डॉक्टर साहब ने कहा—तो जल्दी तैयार हो जाओ। लाओ, खाना लाओ।

× × ×

रात भर डॉक्टर साहब और उनकी धर्मपत्नी की सेवा-सुश्रूषा करने पर सबेरे हरिमोहन की आँखें खुलीं! बुखार अब भी उतरा नही था। पर हालत कुछ सुधर गई थी, बेहोशी दूर हो गई थी।

डॉक्टर की स्त्री को देख कर वे उसे पहचानने की चेष्टा करने लगे। निर्णय पर पहुँचने मे ज़रा देर लगी। निर्णय पर पहुँच कर भी थोड़ा सा झिझके, अन्त मे मुँह से निकल ही गया—आप × × ×?

"आपकी सुधा"—कह कर डॉक्टर साहब की स्त्री ने स्वयं उनकी बात पूरी कर दी। उसका हृदय तड़प रहा था, आँखे अश्रु-वृष्टि कर रही थी।

हरिमोहन ने मुँह फेर लिया! वे बच्चो की तरह फुक्का फाड-फाड़ कर रोने लगे।

सुधा ने उनका हाथ पकड़ लिया और कहा—तुम्हे मेरे मरने की क़सम, रोओ नहीं।

पर रूप का वह लोभी, प्रेम की उस देवी के आगे रोने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था?

एक व्यक्ति, जिसका नाम भिखारी था, अपनी ससुराल गया। जिस समय वह ससुराल पहुँचा, कोई सोकर नहीं उठा था। उसने द्वार खटखटाया।

"कौन है?"—एक स्त्री ने भीतर से पूछा।

"मैं हूँ भिखारी।"—इन्होने उत्तर दिया।

इस पर वह स्त्री भीतर से क्रोधित होकर बोली—चला है बड़ा भिखारी का बच्चा तड़के ही भीख माँगने। तुझे मरने के लिए कोई और वक़्त नहीं मिला था?

एक देहाती—(दूसरे से) कहाँ से आ रहे हो? पाँव धूल से भरे हुए है।

दूसरा देहाती—स्टेशन से आ रहा हूँ। पत्र डालने गया था।

पहला देहाती—पत्र डालने के लिए तीन कोस जाने की क्या ज़रूरत थी, यहीं डाल दिया होता।

दूसरा देहाती—जब यहाँ के डाक-बाबू ने मुझसे दूध लेना छोड़ दिया तो मैं उसके यहाँ पत्र क्यो डालूँ।

अन्तर



अशिक्षिता

जो वैधव्य के बोझ से दबी जा रही है।



शिक्षिता

जो 'पतिदेवता' की ग़ुलाम नहीं है।



प्राकृतिक चिकित्सा

प्राकृतिक उपायो द्वारा रोगो की चिकित्सा करने की प्रणाली नई नही है। प्राचीनकाल मे इसका काफ़ी प्रचार था। अनेक ऐसे उपाय थे, जिनमे औषधियों का तनिक भी प्रयोग नही किया जाता था। यह तो सभी जानते है कि हमारे पूर्वज, आयुर्वेद के होते हुए भी योग-चिकित्सा, आत्म-बल-चिकित्सा, जल-चिकित्सा आदि का पूर्ण ज्ञान रखते थे और उनका उपयोग करते थे। उपवास-चिकित्सा का तो घर-घर मे प्रचार था। आजकल भी ग्रामों मे लोग इसी प्रकार अपने रोगो की चिकित्सा कर लेते हैं।

आजकल के बड़े-बडे डॉक्टरो का भी यह मत है कि किसी बीमार को अधिक औषधियाँ खिलाने से लाभ के बदले हानि ही होती है—वे औषधियाँ चाहे डॉक्टरी की हो, चाहे आयुर्वेद की; चाहे यूनानी की और चाहे किसी अन्य प्रणाली की। वास्तव मे चिकित्सा का अर्थ यह है कि शरीर मे पैदा हुए विषैले पदार्थों को निकाल बाहर करना और शरीर के बल की वृद्धि करना। और इन दोनों बातो के लिए औषधियाँ कभी अधिक काम नही कर सकतीं। इसमे सन्देह नही कि किन्ही स्थलो पर औषधियाँ ही लाभदायक सिद्ध होती है। इसी कारण आजकल अनेक प्रणाली प्राकृतिक चिकित्सा के लिए चल पड़ी है। एलोपैथिक प्रणाली मे भी अब जल-चिकित्सा, उपवास-चिकित्सा, योग-चिकित्सा आदि को स्थान मिल रहा है। यह भी आशा है कि इन साधनो का प्रयोग दिन पर दिन बढ़ता ही जायगा। आजकल के इन साधनों मे से कुछ मुख्य ये है :—

१—जल-चिकित्सा।
२—उपवास-चिकित्सा।
३—दुग्ध-चिकित्सा
४—मृत्तिका-चिकित्सा
५—रङ्ग-चिकित्सा
६—योग-चिकित्सा
७—मनोविज्ञान-चिकित्सा
८—सूर्यरश्मि-चिकित्सा
९—शारीरिक व्यायाम
१०—एलेक्ट्रिक व्यायाम
११—रेडियम तथा एक्सरे।

जल-चिकित्सा

इस चिकित्सा का वर्णन लुई कूने की लिखी हुई पुस्तको मे विस्तृत रूप से दिया हुआ है। साधारणतः तीन प्रकार के स्नान रोगो के लिए बताए गए हैं।

(१) पूर्ण स्नान—इसमे सारा शरीर जल में १५ मिनट तक रहता है और शरीर की तौलिया द्वारा मालिश की जाती है। इस प्रकार के स्नान के लिए जल ठण्डा होना चाहिए। ये स्नान सन्निपात, न्यूमोनिया, बहुत तेज बुख़ार आदि मे बड़ा लाभ पहुँचाते हैं, इनसे ताप कम हो जाता है और रोग के विष बाहर निकल जाते है, जिसके कारण ज्ञानतन्तुओं को शान्ति मिलती है। यदि बीमार कमज़ोर हो तो उसे इस प्रकार स्नान न करा कर एक तौलिया द्वारा, जो ठण्डे पानी में भीगा

हो, सारे शरीर के भागों को एक-एक करके धीरे-धीरे मलना चाहिए। भीगी हुई तौलिया शरीर पर डालने से अथवा वर्फ को शिर पर या मस्तक पर रखने से भी यही काम निकल आता है।

(२) पेड़ू-स्नान—इसमे पेड़ू जल मे रहता है और तौलिया द्वारा उदर के निम्न भाग की मालिश की जाती है। सबसे अधिक प्रयोग इसका कोष्ठबद्धता तथा मूत्राशय के रोगो मे होता है।

(३) इन्द्रिय-स्नान—इसमे जननेन्द्रिय के चर्म को ही धीरे-धीरे भीगे हुए तौलिया से मला जाता है। इससे ज्ञान-तन्तुओं को शक्ति मिलती है तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी दूषण दूर होते है।

इसके अतिरिक्त वाष्प-स्नान भी इनमे सम्मिलित किया जा सकता है। गर्म-गर्म वाष्प के द्वारा शरीर के सारे छिद्र खुल जाते है और मल बाहर निकल जाता है। पसीना आने से बुख़ार भी कम हो जाता है।

उपवास-चिकित्सा

इसमें बीमार को कई दिनों तक भोजन नहीं दिया जाता। आयुर्वेद मे भी इसका प्रयोग काफ़ी किया जाता है।

इसका सिद्धान्त यह है कि आमाशय को आराम देने से शरीर की शक्तियाँ शरीर के विषैले पदार्थों को बाहर निकालने मे संलग्न हो जाती हैं। और उपवास-चिकित्सकों के विचार मे सारे रोगों की जड वे विषैले पदार्थ है, जो पाचन-क्रिया की गडबड़ी के कारण उत्पन्न हो जाते है। उपवास के साथ जल पीने को दिया जाता है और नित्य एनीमा दिया जाता है। उपवास उस दिन तोडा जाता है, जब प्राकृतिक क्षुधा प्रतीत होती है। उस दिन नारङ्गी का रस लिया जाता है। धीरे-धीरे पूरा भोजन खाने को दिया जाता है। महात्मा गाँधी इस चिकित्सा के बहुत पक्ष मे है। अधिकांश डॉक्टर लम्बे उपवासों के विरुद्ध है। उनके कथनानुसार, लम्बे उपवास से शरीर मे विषैले पदार्थ उत्पन्न हो जाते है, जो मनुष्य को मार तक सकते हैं।

दुग्ध-चिकित्सा

कुछ चिकित्सक सब रोगों में भिन्न-भिन्न मात्रा मे केवल दुग्ध देते हैं, और कोई खाद्य-पदार्थ नही देते। वे दूध को दिन मे दस-पन्द्रह सेर तक बढ़ा ले जाते हैं। इस प्रकार के चिकित्सक बहुत कम है। परन्तु कई बीमारों को इस प्रकार स्वास्थ्य लाभ हुआ है, ऐसा सुना गया है। दुग्ध सम्पूर्ण भोजन है, इसमे कोई सन्देह नही, परन्तु केवल दूध पर ही निर्वाह करना आदर्श नही है।

मृत्तिका-चिकित्सा

महात्मा गाँधी ने मृत्तिका के गुणों पर भी बहुत-कुछ लिखा है। साफ़ स्थान की मिट्टी को लेकर उसमे यथेष्ट मात्रा मे पानी मिलाया जाता है, जिससे वह आटे की भाँति हो जाय। फिर वह किसी भी भाग पर लगाई जा सकती है। इसका कोई विशेष गुण तो है नही, परन्तु हाँ, इसमे ठण्ढक या गर्मी पहुँचाने का गुण है, क्योंकि यह बहुत देर तक ठण्ढक या गर्म रह सकती है।

रङ्ग-चिकित्सा

इसमे भिन्न-भिन्न रङ्गों की बोतलें पानी से भर कर धूप में रख दी जाती है, जहाँ वे काफी देर तक रक्खी रहती है। २४ घण्टे के बाद उनका प्रयोग किया जा सकता है। इसके अनुयाइयों के सिद्धान्तानुसार शरीर मे सूर्य की रश्मियों के रङ्गो के कारण लगातार रासायनिक क्रियाएँ होती रहती है। यदि इन क्रियाओं मे कुछ अन्तर पड जाय, तो मनुष्य को रोग हो जाता है। यह रोग सूर्य-रश्मियों के उसी रङ्ग को शरीर मे व्याप्त करने से चला जाता है, जिसकी कमी के कारण वह उत्पन्न हुआ था। किस रङ्ग को किस रोग मे प्रयोग में लाना चाहिए और पानी की कितनी मात्रा होनी चाहिए, इस विषय पर विस्तार से किसी अन्य लेख मे लिखा जायगा। यदि पानी के स्थान पर बोतल मे तेल रक्खा जाय, तो उसको शरीर पर मालिश के लिए काम में लाया जा सकता है।

योग-चिकित्सा

इसका प्रयोग भारतीय योगियों द्वारा दो प्रकार से होता था।

(१) अदृश्य मानसिक शक्तियों द्वारा—इस प्रकार की मानसिक शक्तियों को प्राप्त करना और उन पर नियन्त्रण रखना प्रत्येक व्यक्ति का कार्य नहीं है। इसे वही कर सकते है, जिन्होने वर्षों योग की शिक्षा पाई है। हठयोग आदि भी इसी श्रेणी मे आते है।

(२) आसन—आसनों का प्रचार अब भारतवर्ष मे काफ़ी होता जा रहा है। इन विभिन्न प्रकार के आसनो से शरीर के सारे अवयवो, धमनियो, ज्ञान-तन्तुओं आदि को शक्ति प्राप्त होती है। इनसे छोटे-छोटे ज्ञान-तन्तुओं और मांसपेशियो तक का व्यायाम हो जाता है। उदाहरण के लिए 'सर्वाङ्गासन' से थाइरॉइड नाम की ग्लाण्ड को उत्तेजना मिलती है, पीठ की तथा उदर की मांसपेशियों को शक्ति प्राप्त होती है। आसनो का प्रयोग रोगो मे ही नहीं, नीरोगावस्था में भी किया जाता है। रोगो की आसनो द्वारा चिकित्सा करने के लिए लोनावला (बम्बई) मे श्रीकुवलयानन्द जी ने एक आश्रम खोल रक्खा है, जिसका नाम है 'कैवल्य धाम'। यह अपनी भाँति का सारे भारतवर्ष मे अकेला ही आश्रम है और इसके द्वारा अब तक सहस्रो रोगियों को आरोग्य लाभ हुआ है। इस आश्रम मे कई ऐसे रोगी नीरोग हो गए थे, जिन्हें सभी प्रकार के चिकित्सको ने जवाब दे दिया था। आसनो का विशेष प्रभाव पुराने रोगो मे होता है।

मनोविज्ञान-चिकित्सा

यह प्रणाली ही मानसिक रोगो मे कुछ-कुछ लाभदायक सिद्ध हुई है। कई ज्ञान-तन्तुओ के रोगों में भी इनका प्रयोग होता है। इस प्रणाली का आविष्कार डॉक्टर ब्रेड तथा मेस्मर ने किया था। अमेरिका तथा यूरोप के डॉक्टरी के कॉलेजो मे यह भी एक पाठ्य विषय है। इसका सिद्धान्त इस प्रकार है। मानसिक रोगो—पागलपन, विक्षिप्तता आदि—का सम्बन्ध हमारे मन की अर्द्धचेतनावस्था से है। इसका पता लगाना बड़ा कठिन है। इसके लिए चिकित्सक अपने मन की शक्तियों के प्रभाव से रोगी से भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नो द्वारा उसकी अर्द्धचेतनावस्था की बातें जान लेता है और उसका उसी प्रकार उपचार करता है। इस प्रकार यह मालूम हो जाता है कि किसी व्यक्ति के विक्षिप्त होने का कारण कोई सदमा है, कोई मस्तिष्क का रोग है अथवा कोई और बात है।

इसी प्रणाली के अन्तर्गत है वह विद्या, जिसे 'मोहिनी विद्या' (Hypnotism) कहते है। बहुतेरे बीमारों को केवल यह रोग होता है कि वे समझते है कि उन्हें कोई रोग है, या उनका पीछा कोई शत्रु कर रहा है, या उनको मारने के लिए कोई षड्यन्त्र रच रहा है आदि। इन व्यक्तियों को यह समझाना बड़ा कठिन है कि उनका रोग वास्तव मे भ्रम है। यहीं मनोवैज्ञानिक चिकित्सक की आवश्यकता पड़ती है। वह अपनी मानसिक शक्ति द्वारा बीमार के मन में विचार बैठा देता है कि उसे कोई रोग नहीं है।

सूर्यरश्मि-चिकित्सा

सूर्य की किरणो द्वारा चिकित्सा करना भी आजकल बहुत प्रचलित है। सूर्य की रश्मियाँ कई प्रकार की है :—(१) रेडियो की किरणें, (२) उष्णता की किरणें, (३) प्रकाश की किरणें, (४) अल्ट्रावायॉलेट किरणें। अल्ट्रावायॉलेट किरणें दिखाई नही पड़तीं। इन्हीं का प्रयोग चिकित्सा मे किया जाता है। कठिनता यह है कि ये सूर्य की किरणों की केवल ३ प्रतिशत होती है और इसलिए शुद्ध रूप मे प्राप्त नहीं की जा सकतीं! इसी कारण अब कई प्रकार के ऐसे यन्त्र बन गए हैं, जिनके द्वारा ये किरणें किसी भी स्थान पर तथा किसी भी समय बनाई जा सकती हैं। उन देशो मे, जहाँ सूर्य के दर्शन कभी-कभी ही होते है, इन किरणों से चिकित्सा मे बड़ी सहायता मिलती है। इनका प्रयोग चर्मरोग, पायोरिया, शरीर मे चर्बी का बढ़ जाना, क्षयरोग आदि मे होता है।

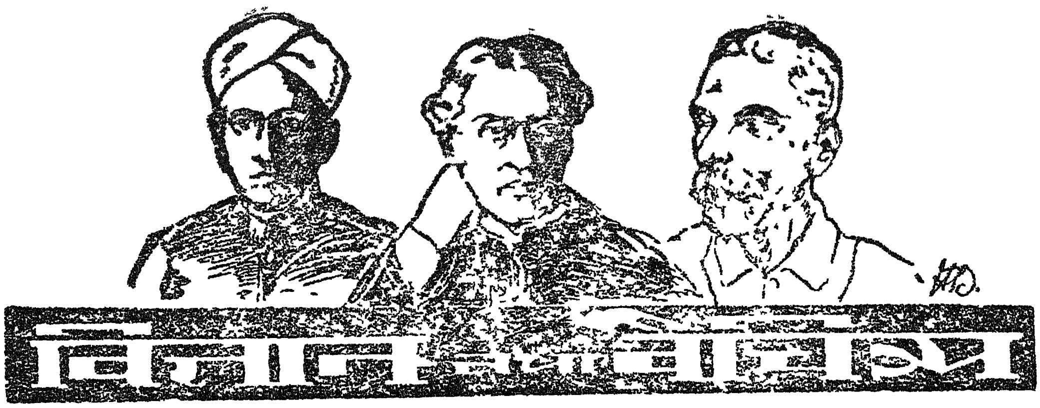
शारीरिक व्यायाम

शारीरिक व्यायाम से भी रोगों की चिकित्सा में बड़ी सहायता मिलती है। विशेषकर उन रोगो में, जहाँ क्षुधा का नाश हो जाता है या कोष्ठबद्धता आदि रहती है। व्यायाम करते समय कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जिनमे से मुख्य ये है। आवश्यकता से अधिक व्यायाम न करना, समय पर व्यायाम करना, शरीर के प्रत्येक अङ्ग की मांसपेशियों को व्यायाम मे सम्मिलित करना।

विद्युत्-चिकित्सा

विद्युत् का प्रयोग चिकित्सा मे बढ़ता जा रहा है, क्योकि अब प्रत्येक बड़े नगर में विद्युत् का प्रचार हो गया है। वे मैशीनें, जिनके द्वारा चिकित्सा के लिए विद्युत् मापी जा सकती है, अब सस्ती हो गई हैं। परन्तु

(शेष मैटर ६७५ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)



जेल में आविष्कार

जोलिएट इलिनोइस (अमेरिका) के एक जन्म-क़ैदी ने एक अद्भुत आविष्कार किया है। हवाई जहाज़ मे एक भाग 'प्रोपेलर' नाम का होता है। यह पहिए की भाँति आगे लगा होता है। पहले मोटर की सारी शक्ति लगाने पर भी यह प्रोपेलर वायु को भली-भाँति नही चीर सकता था। अब वह ऐसा कर सकेगा। एक मनोरञ्जक बात यह है कि इस क़ैदी ने हवाई जहाज़ पास से कभी नहीं देखा। वह कहता है कि इस आविष्कार का विचार उसे स्वप्न मे हुआ था। वह इस आविष्कार को बेचना नही चाहता। वह उसके लिए एक बात चाहता है, उसकी स्वतन्त्रता।

❀

हवाई जहाज़ों के कुछ करश्मे

एटलान्टिक महासागर को पार करने मे कितने उड़ाको ने बाज़ी मारी है, उसका विवरण नीचे दिया जाता है :—

जुलाई १९१९—हवाई जहाज़ आर ३४; ईस्ट फ़ौर्च्यून से मिन्योला तक, समय १०८ घण्टे १२ मिनट।

अक्टूबर १९२४—ज़ैड-आर ३ (जर्मन); फ्रीदरिश शावेन से लेक हर्स्ट तक, समय ८१ घण्टे १७ मिनट।

अगस्त १९२९—ग्राफ़ज़ैपलिन (जर्मन), फ्रीदरिश शावेन से लेक हर्स्ट तक, समय ९४ घण्टे।

सितम्बर १९२९—ग्राफ़जैपलिन, दुबारा समय ७२ घण्टे।

जुलाई १९३०—आर १०० (इङ्गलिश); कारडिङ्गटन से मोन्ट्रील तक, समय ७६ घण्टे ४५ मिनट।

❀

पृथ्वी और सितारे

आप सब जानते है कि पृथ्वी की आयु बहुत लम्बी है, लाखो वर्ष की है, परन्तु सूर्य और सितारों के सामने यह बिलकुल बालक ही है।

सूर्य के प्रकाश की गति एक सेकेण्ड मे १,८६,००० मील है और वह प्रकाश हमे ८-१० मिनट मे मिलता है। जिन सितारों को आज हम देखते है, उनकी किरणो ने हम तक आने मे ४-५ वर्ष लिए थे। अर्थात् ये सितारे हमे ऐसे विदित होते है, जैसे वे ४-५ वर्ष पूर्व थे। यदि एक सितारा आज टूटे, तो उसका पता हमे आज नहीं लगेगा। उसका पता ५ वर्ष के बाद लगेगा। तब तक हम उसको योंही देखते रहेंगे।

❀

नए प्रकार की ठगी

विलायत में सिगरेट आदि बनाने वाली कम्पनियाँ अपने माल के साथ कूपन रख देती है और एक निश्चित संख्या मे कूपन मिलने पर कुछ इनाम देती हैं। वहाँ पर कुछ व्यक्ति ऐसे प्रगट हो गए है, जो नोटों की भाँति झूठे कूपन बना कर बेचते हैं। नोटों से उनका बनाना और बेचना आसान है, इसलिए वे अभी तक पकड़े नही जाते। कम्पनियों को इसका पता तो चल जाता है कि उनके पास बिके हुए माल के कूपनों से अधिक कूपन आते है, परन्तु वे उनको पहचान नहीं सकते। कही-कही तो कम्पनियाँ इन सहस्रो की संख्या में आने वाले कूपनो को गिन नहीं सकती, अतः उनकी संख्या मालूम करने के लिए उन्हे वे तोलती हैं। इस प्रकार बहुतेरे ठग तो सादा काग़ज़ भी कूपनो की जगह रख देते है। लोग इन

कूपनों को इसलिए ख़रीदते हैं कि उनके द्वारा जो इनाम की वस्तुएँ मिलेंगी, वे बाज़ार से सस्ती पड़ेंगी। पुलिस इस ठगी का पता लगाने का प्रयत्न कर रही है। कम्पनियाँ भी कूपन के काग़ज़ मे ऐसे परिवर्तन कर रही है, जो नक़ली कूपनो मे न किए जा सकें।

❀

विचित्र काग़ज़

अब तक कागज़ लकड़ी से बना करता था, परन्तु काग़ज़ का जितना खर्च संसार में होता है, उससे यही दीखता है कि काग़ज़ बनाने के इस साधन मे अब कमी हो जायगी। इसी समस्या को हल करने के लिए एक रूसी वैज्ञानिक ने समुद्री लताओं से कागज़ बनाने की विधि का आविष्कार किया है। इससे सस्ता और अच्छा काग़ज़ तैयार होता है। इसके लिए एक कारख़ाना भी खोल दिया गया है। मैशीनों द्वारा लताओं से केवल आध घण्टे मे ही काग़ज़ तैयार हो जाता है।

❀

(६७३वें पृष्ठ का शेषांश)

इस चिकित्सा के लिए बड़ी निपुणता की आवश्यकता है। इन मैशीनो द्वारा या तो सम्पूर्ण शरीर को विद्युत्-स्नान कराया जाता है, या किसी विशेष अङ्ग मे होकर विद्युत् का प्रवेश शरीर में कराया जाता है।

एक्सरे तथा रेडियम
(X-rays and Radium)

एक्सरे वे किरणें है, जो शरीर के भीतर के भागो का चित्र भी खींच सकती हैं। विशेषकर इनका प्रयोग निदान मे किया जाता है, परन्तु चिकित्सा मे भी कभी-कभी ये काम मे लाई जाती हैं। रेडियम एक धातु है, जो बहुत भारी है। इसमे से छोटे-छोटे कण वायु में मिलते रहते हैं, परन्तु इतने धीरे-धीरे कि रेडियम के एक टुकड़े को पूर्णतया नष्ट होने मे २,००० वर्ष लगें। इन्हीं कणो का प्रयोग नासूर, चर्मरोग, गण्डमाला, कैन्सर आदि मे होता है और यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्यो को यह ईश्वर की देन है।

—डी० वार्ष्णेय

❀ ❀

कीड़ों के लिए नए प्रकार की मृत्यु

एक इञ्जिनियर ने पौधों को नष्ट करने वाले कीड़ो को मारने के लिए विशेष प्रकार की किरणो का आविष्कार किया है। ये किरणें एक प्रकार की लालटेन से निकलती हैं, जो उस इञ्जिनियर ने बनाई है। इस प्रकाश से पौधों को कुछ भी हानि नहीं होती, बल्कि कीड़े सब नष्ट हो जाते हैं।

❀

एक अद्भुत मकान

लन्दन में एक ऐसा मकान है, जिसकी चौड़ाई एक गज़ से कुछ ही अधिक है, परन्तु उसमे दरवाज़े, खिड़कियाँ आदि सभी कुछ हैं। उसमें कोई रहता नहीं, न कोई घण्टी है, न कोई लेटर-बक्स है, न किवाड़े हैं। बात यह है कि यह लेटर स्क्वेयर नामक पातालगामी रेल का एक स्टेशन है। पहले वहाँ ऊपर एक चबूतरा था, यह मकान उसीके स्थान पर बनवा दिया गया है, ताकि वहाँ का दृश्य अच्छा दिखाई देने लगे। इस मकान को सामने से देखने पर तो मकान दीखता है, पीछे की ओर देखने से केवल एक दीवाल दिखाई देती है। कभी-कभी लोग इसके सहारे अपने मित्रों से मजाक़ भी कर बैठते है। क्योकि वे वहाँ बुलाए जाते है और आने पर भीतर जाने का कोई मार्ग ही दिखाई नहीं पड़ता, न कहीं बजाने को घण्टी ही दिखाई पड़ती है। लन्दन में बहुत कम व्यक्ति ऐसे निकलेंगे, जो इस भेद को जानते हो।

❀

अपराध जाँचने की नई कला

अब तक अपराधों और अपराधियो का पता लगाने मे पुलिस और ख़ुफ़िया तथा गवाहो से ही काम लिया जाता था। फिर भी एक व्यक्ति वास्तव मे अपराधी है, इसका पता लगाना बड़ा कठिन हो जाता था। अब वैज्ञानिको ने इस समस्या को हल करने का एक नया ढङ्ग निकाला है। वे अब वैज्ञानिक साधनों द्वारा अपराधियो की जाँच करते हैं। इन साधनों मे मुख्य हैं—रसायन-शास्त्र, बिजली, फ़ोटोग्राफ़ी, अल्ट्रावायोलेट किरणें, विष-विज्ञान, केश-आकार-वाणी विज्ञान आदि। ये

वैज्ञानिक सन्दिग्ध अपराधी के रक्त की परीक्षा करते हैं, एक्सरे से उसका चित्र लेते है, उसके वस्त्रो की रासायनिक परीक्षा करते हैं तथा उसके हृदय की परीक्षा करते हैं। इस प्रकार आशा है कि केवल वास्तविक अपराधी ही दण्डित हुआ करेंगे और निरपराध व्यक्तियों को पुलिस द्वारा तङ्ग नहीं होना पड़ेगा।

❀

क्या आप जानते हैं ?

१९१४ में संसार की फौजें

क्या आपको याद है कि यूरोपीय महायुद्ध के समय ससार के विभिन्न देशो में फ़ौजो की संख्या कितनी थी ? यदि नहीं, तो निम्न-लिखित अङ्कों को ध्यानपूर्वक पढ़िए:—

अमेरिका	..	८४,००,०००
ऑस्ट्रिया	...	२०,००,०००
बेल्जियम	...	२,२०,०००
बलगेरिया	...	२,७५,०००
चीन	...	१,५०,०००
फ्रान्स	...	३१,२०,०००
इटली	...	१०,००,०००
जापान	...	१६,५०,०००
नार्वे	...	१,१५,०००
पुर्तगाल	...	१,५०,०००
रूमानियाँ	...	१,७५,०००
रूस	...	५७,००,०००
सर्विया	...	९५,०००
स्पेन	...	५५,०००
स्वीडन	...	४,८०,०००
स्विटज़रलैण्ड	...	२५,५००
टर्की	...	३,५०,०००
इङ्गलैण्ड	...	८,००,०००
भारत	...	१,६०,०००

१९१४ में लड़ाई के जहाज़

इसके साथ ही लड़ाई के जहाज़ो के अङ्कों को भी पढ़िए :—

इङ्गलैण्ड ५५, अमेरिका ३१, जापान १६, फ्रान्स २१, रूस ६, जर्मनी ३३, ऑस्ट्रिया १२, इटली ८।

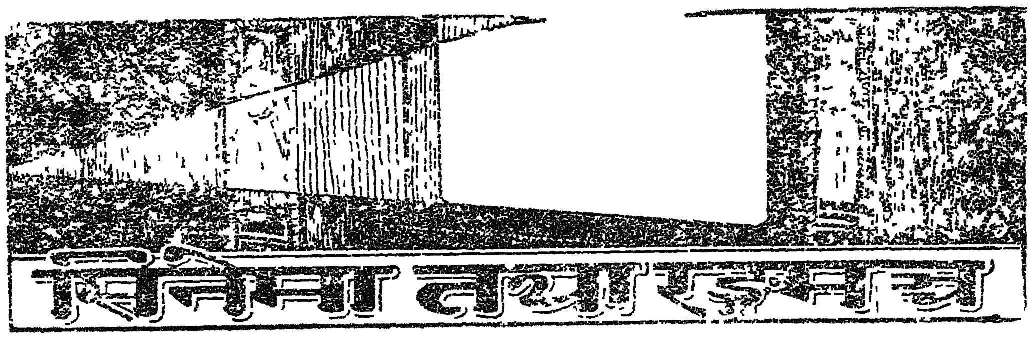
❀

भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बत्

आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि संसार में लगभग ५० सम्बत् प्रचलित हैं। इनमे से मुख्य-मुख्य का विवरण नीचे दिया जाता है :—

नाम सम्वत्			कितना पुराना है।
१—सृष्टि सम्बत (वैदिक,आर्य)			१,९७,२९,४९,०३४ वर्ष
२—चीनी	सम्बत्	...	९,६०,०२,४३१ „
३—पारसी	„	...	१,८९,८९९ „
४—मिश्री	„	...	२७,५८५ „
५—ईरानी	„	...	५,९३६ „
६—यहूदी	„	...	५,६९२ „
७—कलियुगी	„	...	५,०३३ „
८—युधिष्ठिरी	„	...	४,३८० „
९—इब्राहीमी	„	...	३,८५२ „
१०—स्पार्टन	„	...	३,६३५ „
११—मूसवी	„	...	३,५०४ „
१२—यूनानी	„	...	२,७०७ „
१३—रूमी	„	...	२,६८४ „
१४—बौद्ध	„	...	२,४७८ „
१५—विक्रमी	„	...	१,९८९ „
१६—ईसवी	„	...	१,९३२ „
१७—शालिवाहन	„	...	१,८५४ „
१८—हिजरी	„	...	१,३५० „
१९—बङ्गाली	„	...	१,३३९ „
२०—ज़ोरोस्टरियन	„	...	१,३०१ „
२१—नानक	„	...	४६२ „
२२—दयानन्दी	„	...	४९ „

—रतन प्रेम



'रणजीत' के दो नए फ़िल्म

पिछले महीने रणजीत फ़िल्म-कम्पनी के कार्याध्यक्ष मि० डी० जे० शाह ने मुझे रणजीत फ़िल्म-कम्पनी के दो नए फ़िल्म देखने के लिए आमन्त्रित किया। इनमें से 'शैलबाला' आजकल इम्पीरियल सिनेमा बम्बई मे दिखाया जा रहा है। दूसरा फ़िल्म था 'चार-चक्रम' (Four Rascals), जो कलकत्ता, देहली आदि स्थानों मे दिखाया जा चुका है, परन्तु बम्बई मे अभी नही दिखाया गया। इसको प्राइवेट रूप से दिखाया गया था।

निमन्त्रण पाकर मैं रणजीत मूवीटोन की दादर वाली स्टुडिओ मे गया। वहाँ श्री० शाह से बातचीत करके चित्त प्रसन्न हो गया। किसी कम्पनी के मैनेजर को मैने इतना नम्र और मृदुभाषी नही पाया। उन्हीं के कारण रणजीत कम्पनी ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। उस समय उनके पास साउण्ड इञ्जिनियर, चित्रकार, डाइरेक्टर आदि कई सज्जन बैठे थे। उनकी ओर इशारा करके वह बोले—"हम लोग कम्पनी की भाँति काम नही करते। ये सब कम्पनी को एक परिवार समझते हैं।" यह बात रणजीत के फ़िल्म से ही ज्ञात हो जाती है।

बातचीत करते-करते 'देवी देवयानी' की चर्चा होने लगी। 'चाँद' ने 'देवी देवयानी' की जो समालोचना की थी, इससे उन्हें प्रसन्नता ही हुई थी। देवी देवयानी के दोषों को स्वीकार करके उन्होने बताया कि उन्होंने अपना वह पहला बोलता फ़िल्म किन कठिनाइयों के बीच बनाया था। तब से अब तक उन्होंने निरन्तर दोषों को दूर करने की चेष्टा की है, और यही कारण है कि 'रणजीत' के फ़िल्म प्रथम श्रेणी मे गिने जाते है। क्या ही अच्छा हो, यदि दूसरी कम्पनियाँ भी अपने दोषो को देख सकें और उनको दूर करने के लिए तैयार रहें। मैं एक दूसरे लेख मे रणजीत कम्पनी के इतिहास और विकास पर प्रकाश डालूँगा। यहाँ तो केवल उन दो फ़िल्मो के विषय मे कुछ शब्द लिखना पर्याप्त होगा।

'शैलबाला' एक सङ्गीतमय नाटक है; लेखक हैं पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'। गानो की इसमे भी बहुलता है और कु० गौहर तथा श्री० भगवानदास का मुख्य कार्य है। दोनो ने अपना कार्य ख़ूबी के साथ निभाया है और यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि कु० गौहर के स्वर का माधुर्य दिन पर दिन बढ़ता जाता है। कहानी मे हास्य का भी समावेश है। साथ ही जादू और धार्मिकपन की बू भी है। इसमे सन्देह नहीं कि पहले फ़िल्मों से यह कई गुणा अच्छा है और अन्य कम्पनियों के फ़िल्मों से बाज़ी मार ले गया है। इसका बहुत-कुछ श्रेय डाइरेक्टर श्री० चन्दूलाल शाह को है।

'चार-चक्रम' एक कॉमिक है। भारतीय टॉकी-संसार मे यह पहला ही लम्बा कॉमिक है और इस हिसाब से कम्पनी के कार्यकर्त्ता बधाई के पात्र हैं! कहानी का कथानक, जिसके रचयिता डाइरेक्टर जयन्त देसाई हैं, मज़ेदार है और कई स्थलो पर तो ख़ूब हँसाता है। इसमे मुख्य कार्य करने वाले हैं श्री० घोरी, श्री० ई० बिलीमोरिया, श्री० दीक्षित तथा श्री० केकी अडजानिया। श्री० घोरी का नाम तो फ़िल्म-संसार मे प्रसिद्ध ही है। कहानी इस प्रकार है—बैरिस्टर और एक शास्त्री जी मित्र हैं। वे दोनो अपने-अपने पुत्रों को बड़ा सच्चरित्र समझते हैं। वे एक दिन इस बात की शर्त बदते हैं कि यदि उनमे से किसी का पुत्र किसी स्त्री के साथ देख लिया जायगा, तो उसकी सारी सम्पत्ति दूसरे के पुत्र को मिल जायगी। परन्तु पकड़े जाते हैं दोनो के पुत्र। किस प्रकार फिर दोनों पिता सन्तुष्ट होकर पुत्रों को विवाह की अनुमति देते है, यह चित्रपट पर देखने में ही

अच्छा लगता है। इस फिल्म मे यह बड़े सन्तोष का विषय है कि गाने बहुत कम है और सभी उपयुक्त स्थानों पर हैं। फ़िल्म मे कुछ दोष रह गए है—ऐक्टरों का अधिक हँसना, कहीं-कहीं मुख अधिक बनाना आदि। परन्तु पहला फ़िल्म होने से वे क्षम्य है। आशा है, अन्य कॉमिक फ़िल्मो मे ये दोष न पाए जायँगे।

❀

फ़िल्मों के कुछ रहस्य

'ट्रेडर-हॉर्न', 'अफ्रीका स्वीक्स' आदि फ़िल्मो मे अमेरिकन कम्पनियो ने अफ्रीका के जङ्गलों के तथा जानवरों के ऐसे दृश्य दिखाए है कि मालूम होता है कि वे सब दृश्य सच्चे हैं और वास्तविक बातों के ही चित्र लिए गए थे। परन्तु बात यह नहीं है। वास्तविक बात यह है कि इन जङ्गलो मे जाकर कुछ दृश्य लिए जाते हैं और कुछ दृश्य स्टुडियो मे ही पर्दों के सहारे लिए जाते है। दूसरी ओर सरकस के हाथी, शेर आदि पशुओ के भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र लिए जाते है और उन्हे पहले चित्रों के ऊपर जड़ दिया जाता है। किन्हीं फ़िल्मो के लिए प्लास्टर के पशु बना कर उन्हें बिजली आदि द्वारा चलाया जाता है, और उनके चित्र ले लिए जाते है। इस प्रकार हमे चित्रपट पर वास्तविक बाते और दृश्य दीख पड़ते हैं।

❀

'विशेषज्ञ'

भारतीय फ़िल्मों मे भिन्न-भिन्न प्रकार का कार्य करने के लिए विशेषज्ञ नहीं होते, परन्तु अमेरिका में छोटे से छोटे कार्य के लिए भी विशेषज्ञ रक्खे जाते हैं। कुछ व्यक्ति 'पसीना पैदा करने' के विशेषज्ञ होते है, इनका कार्य घबराए हुए, डरे हुए व्यक्तियो के माथे पर पसीना लाना है, जो एक मैशीन के द्वारा किया जाता है। उस मैशीन के प्रयोग में विशेष योग्यता की आवश्यकता पड़ती है। एक प्रकार के विशेषज्ञ स्टुडियो के सीन-सीनरी मे प्राचीनता लाने के लिए ही नियुक्त होते हैं। कुछ विशेषज्ञ विविध जाति के पशु-पक्षियों के शब्दो को चित्र मे दर्शाने के लिए ही होते है। दूसरे प्रकार के विशेषज्ञ उन लकड़ी की वस्तुओ का चार्ज लेते है, जो फ़िल्म बनाने मे टूटती है। ये इस प्रकार की लकड़ी की बनी हुई होती है कि आसानी से टूट सकती हैं तथा उनके टूटने से किसी को चोट नहीं आती। प्रत्येक कम्पनी की एक फ़िल्म-लाइब्रेरी होती है। इसमे प्रत्येक प्रकार के दृश्यो के चित्र रहते है। आवश्यकता के समय लाइब्रेरियन अल्प काल ही मे इच्छित दृश्य वाला फ़िल्म निकाल कर दे सकता है। इसी प्रकार विशेषज्ञ प्रत्येक प्रकार की सवारी—प्राचीन तथा अर्वाचीन—का ज्ञान रखते है, प्रत्येक प्रकार के पुष्पों की प्रतिलिपि बना सकते हैं, प्रत्येक प्रकार के रङ्गो का ज्ञान रखते हैं। हमे फ़िल्म देखते समय इन व्यक्तियो का ध्यान नही आता, परन्तु फ़िल्म की सफलता मे इनका बड़ा भाग रहता है।

दूसरे प्रकार के विशेषज्ञ ऐसे-ऐसे कार्य करते है, जो साधारण ऐक्टरों से नहीं हो सकते, जैसे जलते हुए तेल के तालाब मे कूद पड़ना, आग की लपटों मे होकर निकलना, उड़ते हुए हवाई जहाज़ से गुब्बारे द्वारा उड़ना, छत से गिर पड़ना, ऊँचे लट्ठो आदि पर चढ़ना इत्यादि। मुख्य ऐक्टर या ऐक्ट्रेस स्वयं इन कामों को नही करते, यद्यपि फ़िल्मो मे दिखाया यही जाता है। उस समय उनके स्थान पर ये विशेषज्ञ ही इन कामो को करते है, यद्यपि सबका श्रेय मिलता है ऐक्टरो को, तालियाँ बजती है उनके लिए और भरी हुई थैलियाँ जाती हैं उनकी जेबों मे। सनसनीदार तस्वीरो की सफलता का श्रेय वास्तव मे इन विशेषज्ञों को ही होता है, परन्तु उन बेचारों के नाम कभी जनता के सामने आते भी नही।

❀

जर्मनी में फ़िल्मों पर प्रतिबन्ध

हम पाठको को एक पिछले अङ्क मे यह बता चुके हैं कि इङ्गलैण्ड आदि देशों मे कोटा-प्रणाली का प्रचार हो चुका है, जिससे वहाँ के बने हुए फ़िल्मो को बहुत-कुछ प्रोत्साहन मिल रहा है। वहाँ की कम्पनियाँ दिन पर दिन उन्नति कर रही है। यही हाल अब जर्मनी में हो गया है। वहाँ भी सरकार ने विदेशी फ़िल्मो पर प्रतिबन्ध लगा दिया है। यही नही, वहाँ जो विदेशी कम्पनियाँ अपनी स्टुडियो खोल कर जर्मन भाषा में फ़िल्म बना रही है, उनके लिए भी कुछ शर्तें निश्चित

कर दी गई है। शुद्ध जर्मन फ़िल्म होने के लिए नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं :—

१—जर्मन कम्पनी द्वारा या ऐसी कम्पनी द्वारा, जो जर्मनी में ही रजिस्टर्ड हो, बनाया जाय।

२—सभी चित्र जर्मनी की सीमाओं के भीतर लिए जायँ।

३—कहानी और सङ्गीत के रचयिता जर्मन हों।

४—डाइरेक्टर जर्मन नागरिक हो।

५—मज़दूरों तथा अन्य कार्यकर्ताओं में जर्मनों की संख्या ७५ प्रतिशत से कम न हो।

इनके अतिरिक्त एक बहुत महत्वपूर्ण शर्त यह है कि जर्मनी में उस विदेशी फ़िल्म कम्पनी का एक भी फ़िल्म न आने दिया जायगा, जो जर्मनों के विरुद्ध प्रचार करती है, न उस देश के फ़िल्म प्रवेश पाने पावेंगे, जो जर्मन फ़िल्मों को अपने यहाँ नहीं दिखाते। इनमें वे देश भी सम्मिलित हैं, जहाँ की भाषा जर्मन है। इस प्रकार अब जर्मनी के विरुद्ध विष उगलने वाले फ़िल्मों का जन्म न होगा और जो पहले बन चुके हैं, उनका गला घोट दिया जायगा। क्या ही अच्छा हो, यदि इसी प्रकार के क़ानून हमारे देश में भी बन जायँ।

भारतीय फ़िल्मों में भाव-प्रदर्शन

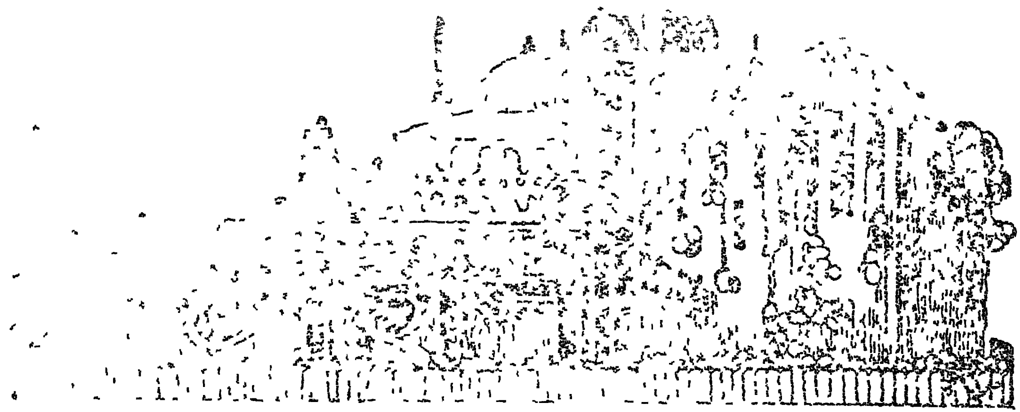
भारतीय फ़िल्मों में भाव-प्रदर्शन की कमी बहुत अखरती है। बहुत कम ऐसे अभिनेता तथा अभिनेत्रियाँ हमारी कम्पनियों में हैं, जिनके मुख के भाव हमें सब कुछ बता दें। वे हाथ-पैर चलाते हैं, मुँह मटकाते हैं, शिर को इधर-उधर हिलाते हैं, परन्तु भाव-प्रदर्शन की कला तक वे पहुँचते भी नहीं। विदेशी फ़िल्मों में हम जब अभिनय देखते हैं, तो इतनी दौड़-धूप, शरीर के अवयवों की इतनी गति नहीं देखते। वहाँ सब कुछ हम मुख के भावों में पढ़ लेते हैं। प्रेम, घृणा, स्नेह, दया, ममता, क्रोध, आश्चर्य आदि को वे अभिनेता अपने मुख के भावों द्वारा ही प्रदर्शित कर सकते हैं। जब से फ़िल्म बोलने लगे हैं, तब से हम यह देखते हैं कि अभिनेताओं तथा अभिनेत्रियों के मुख पर वे भाव कभी नहीं दीख पड़ते, जिनको वे अपने वार्तालाप द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे बातें करते हैं केवल तोते की भाँति, बिना कुछ समझे, बिना कुछ बूझे। इस प्रकार का ऐक्टिङ्ग शिक्षित समुदाय को कभी पसन्द नहीं आ सकता। इसके साथ ही हमारे फ़िल्मों में एक कमी इस बात की भी रहती है कि नैसर्गिक भावनाओं और दशाओं को बिना उनके विकास का विचार किए दिखला दिया जाता है। यदि प्रेम के दृश्य दिखाने हैं, तो उस प्रेम का विकास कभी नहीं दिखाया जाता। प्रेम इस प्रकार दिखाया जाता है, मानो किसी को कोई पड़ी हुई वस्तु मिल गई हो। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण भी दिए जा सकते हैं। हमें आशा है कि फ़िल्मों की कहानियों के लेखक, सीनरियों के लेखक, डाइरेक्टर, ऐक्टर आदि सभी इन बातों पर विचार करेंगे।

कुछ नए भारतीय फ़िल्म

भारतवर्ष में इस समय दर्जनों फ़िल्म-कम्पनियाँ खुली हुई हैं। प्रति मास कुछ इनमें से बन्द हो जाती हैं, कुछ नई खुल जाती हैं। पुरानी कम्पनियाँ अच्छा काम कर रही हैं। बम्बई में इस समय कई नए फ़िल्म दिखाए जा रहे हैं, जो हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव के कारण रोक रक्खे गए थे। इम्पीरियल में रणजीत कम्पनी का 'शैलबाला', वैस्टएण्ड में पूना की सरस्वती कम्पनी का 'श्यामसुन्दर', कृष्ण में 'कृष्णावतार', मैजेस्टिक में सागर कम्पनी का 'सुभद्रा-हरण' तथा ग्लोब में मदन कम्पनी का 'चतरा बकावली' अभी-अभी प्रारम्भ हुए हैं।

उधर पञ्जाब में भी अब कई कम्पनियाँ खुल गई हैं और अच्छे-अच्छे फ़िल्म बना रही हैं। कमला मूवीटोन ने 'राधेश्याम' बनाया है, जिसके लिए, कहा जाता है, उन्होंने एक लाख रुपया व्यय किया है। एक दूसरी कम्पनी बम्बई की एक स्टुडियो में अपना एक फ़िल्म लगभग बना चुकी है। स्यालकोट के 'रॉयल प्लेयर्स कॉरपोरेशन' ने 'भाई का श्राप' फ़िल्म बनाना प्रारम्भ कर दिया है। इसमें काश्मीर के दृश्य होंगे और यह बेबोलता होगा। संयुक्त-प्रान्त बिलकुल चुप है, क्योंकि यहाँ एक भी कम्पनी नहीं है।

—'चाँद' के बम्बई के प्रतिनिधि द्वारा



मँझली रानी

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

वे मेरे कौन थे ? मैं क्या बताऊँ ? वैसे देखा जाय तो वे मेरे कोई भी न होते थे। होते भी तो कैसे ? मैं ब्राह्मण, वे क्षत्रिय, मैं स्त्री, वे पुरुष; फिर न तो रिश्तेदार हो सकते थे और न मित्र। आह ! यह क्या कह डाला मैंने ! मित्र ? भला किसी स्त्री का कोई पुरुष भी मित्र हो सकता है ? और यदि हो भी तो क्या इसे समाज बरदाश्त करेगा ? यहाँ तो किसी पुरुष का किसी स्त्री से मिलना-जुलना या किसी प्रकार का व्यवहार रखना भी पाप है। और यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से किसी प्रकार का व्यवहार रखती है, प्रेम से बातचीत करती है तो वह स्त्री भ्रष्टा है, चरित्रहीना है, नहीं तो पर-पुरुष से मिलने-जुलने का और मतलब ही क्या हो सकता है ? ख़ैर, न तो मुझे समाज से कुछ लेना-देना है, न समाज से कुछ सरोकार। समाज ने तो मुझे दूध की मक्खी की तरह निकाल कर दूर फेंक दिया है। फिर मैं ही क्यों समाज की परवाह करूँ।

मेरे माता-पिता साधारण स्थिति के आदमी थे। परिवार में माता-पिता के अतिरिक्त मुझसे बड़े मेरे तीन भाई और थे। मैं सब से छोटी थी। छोटी होने के कारण घर में मेरा लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार में हुआ था। मेरे दो भाई बनारस हिन्दू-युनीवर्सिटी में पढ़ते थे और दोनों से छोटा राजन मैट्रिक में पढ़ रहा था। मेरे पिता जी संस्कृत के पूरे पण्डित थे और पुरानी रूढ़ियों के कट्टर पक्षपाती। यहाँ तक कि वे मेरा विवाह नौ साल की ही उमर में करके गौरीदान के अक्षय पुण्य के भागी बनना चाहते थे। कई लोगों के और विशेषकर मेरे भाइयों के विरोध के कारण ही वे ऐसा न कर सके थे।

जब मैं पाँचवीं अङ्गरेज़ी में पढ़ रही थी और मेरी आयु चौदह साल के लगभग थी, तब मेरे माता-पिता को मेरे विवाह की चिन्ता हुई। वे योग्य वर की खोज में थे ही कि संयोग से ललितपुर के ताल्लुक़ेदार राजा राममोहन हमारे क़स्बे में शिकार खेलने के लिए आए। कस्बे से लगा हुआ ही एक बड़ा जङ्गल था, जहाँ शिकार खेलने का अच्छा मौक़ा था। उनका ख़ेमा जङ्गल से बाहर क़स्बे के पास ही था। क़स्बे वालों के लिए यह एक ख़ासा तमाशा सा हो गया था। उनके टेण्ट में कभी ग्रामोफ़ोन बजता और कभी नाच-गाना होता। लोग बिना पैसे के तमाशा देखने को झुण्ड के झुण्ड जमा हो जाते। एक दिन मैं भी राजन और पिता जी के साथ राजा साहब के डेरे पर गई। मेरे पिता जी की राजा साहब से जान-पहिचान हो ही गई थी। हम लोग उन्हीं के पास जाकर कुर्सियों पर बैठ गए। राजा साहब ने हमारा बड़ा सम्मान किया। लौटते समय उन्होंने हम लोगों को अपनी ही सवारी पर भेजा और साथ में बहुत से फल, मेवा और

मिठाई इत्यादि भी रखवा दी। क़स्बे की कई लड़कियों और लड़कों ने मुझे राजा साहब की सवारी पर लौटते हुए उत्सुक नेत्रों से देखा, किन्तु उस सवारी पर बैठ कर मैं अनुभव कर रही थी कि जैसे मैं भी कहीं की रानी हूँ और मैंने उनकी ओर आँख उठा कर भी न देखा।

दूसरे दिन राजा साहब ने स्वयं पिता जी को बुलवा भेजा और उनसे मिल कर दो-तीन घण्टे बाद जब पिता जी लौटे तो इतने प्रसन्न थे कि उनके पैर धरती पर पड़ते ही न थे। ऐसा मालूम होता था कि वे सारे संसार को जीत कर आ रहे हैं। आते ही उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी और माँ से बोले—"लो, इससे अच्छा और क्या हो सकता था? तारा का विवाह राजा साहब के मझले लड़के से तय कर आया।" माता-पिता दोनों ही इस सम्बन्ध से बड़े प्रसन्न हुए।

२

मेरे भाइयों ने जब सुना कि तारा का विवाह, एक तालुक़ेदार के विलासी लड़के से, जो मामूली हिन्दी पढ़ा-लिखा है, तय हुआ है, तो उन्होंने इसका बहुत विरोध किया। किन्तु उनके विरोध को कौन सुनता था। पिता जी तो अपना हठ पकड़े थे, उनकी समझ में इससे अच्छा घर और वर मेरे लिए कहीं मिल ही न सकता था। सबसे अधिक आकर्षक बात तो उनके लिए यह थी कि वर बहुत बड़े ख़ान्दान—बीस बिस्वे कनवजियों के घर का लड़का था। फिर राजा से रिश्तेदारी करके क़स्बे में उनकी इज़्ज़त न बढ़ जायगी क्या? इसके अतिरिक्त, विवाह का प्रस्ताव भी तो स्वयं राजा साहब ने ही किया था। नहीं तो भला मामूली हैसियत के मेरे पिता जी यह प्रस्ताव कैसे ला सकते थे? और सब से बढ़ कर बात तो यह थी कि दहेज के नाम से कुछ न देकर भी लड़की इतने बड़े घर में ब्याही जाती थी, फिर भला इतने बड़े-बड़े आकर्षणों के होते हुए भी पिता जी इस प्रस्ताव को कैसे टाल देते?

पिता जी मेरी क़िस्मत की सराहना करके कहते—मेरी तारा तो रानी बनेगी। रानी बनने की ख़ुशी में मैं फूली-फूली फिरती थी। भाइयों का विरोध करना मुझे अच्छा न लगता; किन्तु मैं उनके सामने कुछ कह न सकती थी। ख़ैर, भाइयों के बहुत विरोध करने पर भी मेरा विवाह मँझले राजा मनमोहन के साथ हो ही गया।

फूलों से सजी हुई मोटर पर बैठ कर मैं ससुराल के लिए रवाना हुई। हमारे क़स्बे और ललितपुर के बीच में केवल २७ मील का अन्तर था। इसलिए बारात मोटरों में ही आई और गई थी। जीवन में पहली ही बार मोटर पर बैठी थी। मुझे ऐसा मालूम होता कि जैसे मैं हवा में उड़ी जा रही हूँ। सत्ताइस मील तक मोटर पर बैठने के बाद भी जी न भरा था। यही चाहती थी कि रास्ता लम्बा होता जाय और मैं मोटर पर घूमा करूँ। किन्तु यह क्या सम्भव था? आख़िर को एक बड़े भारी महल के ज़नाने दरवाज़े पर मोटर जाकर खड़ी हो गई। सास तो थीं ही नहीं, इसलिए मेरी जिठानी बड़ी रानी जी परछन करके मुझे उतार ले गईं। मुझे एक बड़े भारी सजे हुए कमरे में बिठाल दिया गया और स्त्रियाँ बारी-बारी से मेरा मुँह खोल-खोल के देखने लगीं। कोई रुपया, कोई छोटे-मोटे ज़ेवर या कपड़े मेरी मुँह-दिखाई में दे-देकर जाने लगीं। मेरी जिठानी बड़ी रानी ने भी मेरा मुँह देखा, कुछ बोलीं नहीं, 'उँह' करके मेरी अँगुली में एक अँगूठी पहिना दी। मैंने सुना कि वे पास ही किसी कमरे में किसी से कह रही थीं—देखा बहू को? क्या तारीफ़ के पुल बँध रहे थे? ससुर जी के कहने से तो बस यही मालूम होता था कि इन्द्र की अप्सरा ही होगी? पर न रूप, न रङ्ग, न जाने क्यों सुन्दर कह-कह के कँगले की बेटी ब्याह के अपनी इज़्ज़त हलकी की। रोटी-बेटी का व्यवहार तो अपनी बराबरी वालों ही में होता है, बिरजू की माँ! पर ससुर जी तो इसके रूप पर बिलकुल लट्टू ही हो गए थे। मैं सुन्दर नहीं हूँ तो क्या सुन्दरता की परख भी नहीं है। न जाने कितनी सुन्दरियाँ देखी हैं, यह तो उनके पैरों की धूल के बराबर भी न होगी। मालूम होता है, उमर के साथ-साथ ससुर जी की आँखें भी सठिया गई हैं, मँझले राजा को डुबो दिया।

बिरजू की माँ उनकी हाँ में हाँ मिलाती हुई बोली—सुन्दर तो है रानी जी! जैसी आप लोग हैं वैसी ही है। पर अभी बच्चा है, जवान होगी तो रूप और निखर आएगा।

बड़ी रानी तिलमिला सी उठीं और बोलीं—रूप निखरेगा पत्थर, 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' निखरने वाला रूप सामने ही दीखता है। फिर वे ज़रा

विरक्ति के भाव से बोली—ऊँह, जाने भी दो, अच्छा हो या बुरा, हमें करना ही क्या है ?

जब मैं वहाँ अकेली रह गई, सब औरतें चली गईं, तो मेरे माँ के घर की ख़वासन ने सूना कमरा देख कर मेरा मुँह खोल दिया। शीशा उठा कर मैंने एक बार अपना मुँह ध्यान से देखा, फिर रख दिया। ढूँढ़ने से भी मुझे अपने रूप-रङ्ग में कोई ऐब न मिला।

३

पहली बार केवल ५ दिन ससुराल रह कर मैं अपने पिता के साथ मायके आ गई। ससुराल के ५ दिन मुझे ५ वर्ष की तरह मालूम हुए। मैंने जो रानीत्व का सुनहला सपना देखा था, वह दूर हो चुका था। ससुराल से लौट कर मैंने तो कुछ नहीं कहा; किन्तु ख़वासन ने वहाँ के सब हाल-चाल बतलाए। माँ ने कहा—तो क्या रानी केवल कहने ही के लिए होती हैं, भीतर का हाल हमारे घरों से भी गया-बीता होता है ?

मैं अपनी माँ के साथ मुश्किल से महीना सवा महीना ही रह पाई थी कि मुझे बुलाने के लिए ससुराल से सन्देसा आया। राजाओं की इच्छा के विरुद्ध तिल भर भी मेरे पिता जी कैसे जाते ? न चाहते हुए भी उन्हें मेरी बिदाई करनी ही पड़ी। इतनी जल्दी ससुराल जाना मुझे ज़रा भी अच्छा न लगा, परन्तु क्या करती, लाचार थी। सावन में जब कि सब लड़कियाँ ससुराल से मायके आती हैं, मैं ससुराल-रूपी क़ैदख़ाने में बन्द होने चली। देवर के साथ फिर मोटर पर बैठी। इस बार मैंने अपना छोटा सा हारमोनियम भी साथ रख लिया था।

फिर ससुराल पहुँची। पहली बार तो मेरे साथ माँ के घर की ख़वासन थी। इस बार उस हारमोनियम और थोड़ी सी पुस्तकों को छोड़ कर कोई न था। मेरा जी एक कमरे में चुपचाप बैठे-बैठे बड़ा घबराया करता। घर में कोई ऐसा न था, जिससे घण्टे दो घण्टे बातचीत करके जी बहलाती। केवल छोटे राजा, मेरे देवर की बातें मुझे अच्छी लगती थीं; किन्तु वे भी मेरे पास कभी-कभी और अधिकतर बड़ी रानी की नज़र बचा कर ही आते थे। मैं सारे दिन पुस्तकें पढ़ा करती, पर पुस्तकें थीं ही कितनी ? आठ-दस दिन में सब पढ़ डालीं। यहाँ तक कि एक-एक पुस्तक दो-दो, तीन-तीन बार पढ़ी गई। छोटे राजा कभी-कभी मुझे अख़बार भी ला दिया करते थे, किन्तु सबकी आँख बचा कर।

घर में सब काम के लिए नौकर-चाकर और दास-दासियाँ थीं। मुझे घर में कोई काम न करना पड़ता था। मेरी सेवा में भी दो दासियाँ सदा बनी रहती थीं। परन्तु मुझे तो ऐसा मालूम होता था कि मैं उनके बीच में क़ैद हूँ; क्योंकि मेरी राई-रत्ती भी बड़ी रानी के पास लगा दी जाती थी। उन दासियों में से यदि मैं किसी को किसी काम से कहीं भेजना चाहती, तो वे मेरे कहने मात्र से ही कहीं न जा सकती थीं, उन्हें बड़ी रानी से हुक्म लेना पड़ता था। यदि उधर से स्वीकृति मिल जाती तो मेरा काम होता, अन्यथा नहीं। इसी प्रकार हर माह मुझे १५०) ख़ज़ाने से हाथ-ख़र्च के लिए मिलते थे; किन्तु क्या मजाल कि उनमें से एक पाई भी महाराजा से बिना पूछे ख़र्च कर दूँ। भीतर के शासन की बागडोर बड़ी रानी के हाथ में थी और बाहर की महाराजा मेरे ससुर के हाथ में। मेरे पति मँझले राजा, बड़े ही विलासप्रिय, मदिरा-सेवी, शिकार के शौक़ीन और न जाने क्या-क्या थे, मैं क्या बताऊँ ? वे बहुत सुन्दर भी थे। किन्तु उनके दर्शन मुझे दुर्लभ थे। चार-छः दिन में कभी घण्टे आध घण्टे के लिए वे मेरे कमरे में आ जाते तो मेरा अहोभाग्य समझो। उनकी रूप-माधुरी को एक बार जी भर के पीने के लिए मेरी आँखें आज तक प्यासी हैं, किन्तु मेरे जीवन में वह अवसर कभी न आया।

इस दिखावटी वैभव के अन्दर मैं किसी प्रकार अपने जीवन को घसीटे जा रही थी। इसी समय मेरे अन्धकार-पूर्ण जीवन में प्रकाश की तरह वे आए।

छोटे राजा की उमर १७-१८ साल की थी। वे बड़े नेक और होनहार युवक थे। घर में पढ़ने-लिखने का शौक़ केवल उन्हीं को था। छोटे राजा मैट्रिक की तैयारी कर रहे थे और वे उन्हें पढ़ाया करते थे। घर में आने-जाने की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता थी। घर में स्त्रियों की आवश्यक वस्तुएँ बाहर से मँगवा देना भी मास्टर बाबू के ही ज़िम्मे था। इसलिए वे घर में सबसे और भी ज़्यादा परिचित थे।

विवाह के बाद से ही बड़ी रानी मुझसे नाराज़ थीं। उन्हें मेरी चाल-ढाल, रहन-सहन ज़रा भी न सुहाती। हर बात में मेरे ऐब ही ढूँढ निकालने की फ़िराक़ में

रहतीं। मेरी ज़रा-ज़रा सी बात को वे तिल का ताड़ बना कर, परिचित या अपरिचित, जो कोई भी आता उससे कहतीं। शायद वे मेरी सुन्दरता को मेरे ऐबों से ढँक देना चाहती थीं। वही बात उन्होंने मास्टर बाबू के साथ भी की। वे तो घर में रोज़ ही आते थे, अतः रोज़ उनसे मेरी शिकायत होने लगी। किन्तु इसका असर ही उलटा हुआ। मैंने देखा, तिरस्कार की जगह मास्टर बाबू का व्यवहार मेरे प्रति अधिक मधुर और आदरपूर्ण होने लगा।

४

छोटे राजा को मेरा गाना बहुत अच्छा लगता। वे बहुधा मुझसे गाने के लिए आग्रह करते। मुझे तो अब गाने-बजाने की ओर कोई विशेष रुचि न रह गई थी; किन्तु छोटे राजा के आग्रह से मैं अब भी कभी गा दिया करती थी। एक दिन की बात है। जाड़े के दिन थे, किन्तु आकाश बादलों से फिर भी ढँका था। मैं अपने कमरे में बैठी एक मासिक पत्रिका के पन्ने उलट रही थी, इतने में छोटे राजा आए। मुझसे बोले, मँझली भाभी कुछ गा के सुनाओ।

मैंने बहुत टाल-मटूल की, किन्तु छोटे राजा न माने, बाजा उठा कर सामने रख ही तो दिया। मैंने हारमोनियम पर छेड़ा--

"विहरत हरिरिह सरस वसन्ते।
नृत्यति युवति जनेन् समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते।
ललित लवङ्ग लता परिशीलन कोमल मलय समीरे।
मधुकर निकर करम्बित कोकिल कूजत कुञ्ज कुटीरे।।"
(गीत गोविन्द)

वे भी न जाने कैसे और कहाँ से आए और पीछे चुपचाप खड़े हो गए। छोटे राजा की मुस्कुराहट से मैं भाँप गई। पीछे फिर कर जो उन्हें देखा तो हारमोनियम सरका कर मैं चुपचाप बैठ गई। वे भी हँस कर वहीं बैठ गए। बोले—मँझली रानी! आप इतना अच्छा गा सकती हैं, मैंने आज ही जाना।

छोटे राजा—अच्छा न गाती होतीं तो क्या मैं मूर्ख था, जो इनके गाने के पीछे अपना समय नष्ट करता?

इधर यह बातें हो रही थीं कि दूसरी तरफ़ से पैर पटकती हुई बड़ी रानी कमरे में आईं। क्रोध से बोलीं—यह घर तो अब भले आदमी का घर कहाने लायक़ रही नहीं गया है। लाज-शरम तो सब जैसे धोके पी लीं हों। बाप रे बाप! हद हो गई। जैसे हल्के घर की हैं वैसी ही हल्की बातें यहाँ भी करती हैं। पास-पड़ोस वाले सुनते होंगे तो क्या कहते होंगे? यही न, कि मँझले राजा की रानी रण्डियों की तरह गा रही है। बाबा! इस कुल में तो ऐसा कभी नहीं हुआ, कुल को तो न लजवाओ देवी! बाप के घर जाना तो भीतर क्या, चाहे सड़क पर गाती फिरना। किन्तु यहाँ यह सब न होने पावेगा। तुम्हें क्या, घर के भीतर बैठी-बैठी चाहे जो कुछ करो, वहाँ आदमियों की तो नाक कटनी है।

एक साँस में इतनी सब बातें कह के बड़ी रानी चली गईं।

मैंने सोचा, शराब पीकर रण्डियों की बाँह में बाँह डाल कर टहलने में नाक नहीं कटती। ग़रीबों पर मनमाने ज़ुल्म करने पर नाक नहीं कटती। नाक कटनी है मेरे गाने से, सो अब मैं बाजे को कभी हाथ ही न लगाऊँगी। उस दिन से फिर मैंने बाजे को कभी नहीं छुआ और न छोटे राजा ने ही कभी मुझसे गाने का आग्रह किया। यदि वे आग्रह करते तब भी मुझमें बाजा छूने का साहस न था।

इस घटना के कई दिन बाद एक दिन वे छोटे राजा को पढ़ा कर ऊपर से नीचे उतर रहे थे और मैं नीचे से ऊपर जा रही थी। आख़िरी सीढ़ी पर ही मेरी उनसे भेंट हो गई। वे ठिठक गए। बोले—कैसी हो मँझली रानी?

"जीती हूँ।"

"ख़ुश रहा करो, इस प्रकार रहने से आख़िर कुछ लाभ?"

"जी को कैसे समझाऊँ, मास्टर बाबू?"

"अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ा करो, उनसे अच्छा साथी संसार में तुम्हें कोई न मिलेगा।"

"पर मैं अच्छी-अच्छी पुस्तकें लाऊँ कहाँ से?"

"लाने का ज़िम्मा मेरा।"

"यदि आप अच्छी पुस्तकें ला दिया करें तो इससे अच्छी और बात ही क्या हो सकती है?"

"यह कौन बड़ी बात है मँझली रानी! मेरे पास बहुत सी पुस्तकें रक्खी हैं। उनमें से कुछ मैं तुम्हें ला दूँगा।"

इस कृपा के लिए उन्हें धन्यवाद देती हुई मैं ऊपर चली और वे बाहर चले गए। मैंने जो ऊपर आँख उठा

कर देखा तो बड़ी रानी खड़ी हुई तीव्र दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। मैं कुछ भी न बोल कर नीची निगाह किए हुए अपने कमरे में चली गई।

५

दूसरे दिन मास्टर बाबू समय से कुछ पहले ही आए। उनके हाथ में कुछ पुस्तकें थीं। वे छोटे राजा के कमरे में न जाकर सीधे मेरे कमरे में आए और बाहर से ही आवाज़ दी, किन्तु दोनों दासियों में से इस समय एक भी हाज़िर न थी। इसलिए मैंने ही उनसे कहा—आइए मास्टर बाबू! वे आकर बैठ गए। किताबों और लेखकों के नाम बतला कर वे मुझे किताबें देने लगे। ये महात्मा गाँधी की 'आत्मकथा' के दोनों भाग हैं। यह है बाबू प्रेमचन्द जी की 'रङ्गभूमि', इसके भी दो भाग हैं। यह है मैथिली बाबू का 'साकेत' और पन्त जी का 'पल्लव'। इसके अतिरिक्त और भी बहुत सी पुस्तकें हैं, इन्हें तुम पढ़ लोगी तब मैं तुम्हें और ला दूँगा।

इसके बाद वे 'साकेत' उठा कर उर्म्मिला से लक्ष्मण की बिदा का जो सुन्दर चित्र मैथिली बाबू ने अङ्कित किया है, मुझे पढ़ कर सुनाने लगे। इतने ही में मुझे वहाँ बड़ी रानी की झलक देख पड़ी और उसके साथ मेरे कमरे के दोनों दरवाज़े फटाफट बन्द हो गए। मास्टर बाबू ने एक बार मेरी तरफ़, फिर दरवाज़े की तरफ़ देखा, फिर वे बोले—भाई यह दरवाज़ा किसने बन्द कर दिया है, खोल दो।

जब कोई भी उत्तर न मिला तो मुझे क्रोध आ गया। मैंने तीव्र स्वर में कहा—यह दरवाज़ा किसने बन्द किया है? खोलो, क्या मालूम नहीं है कि हम लोग भीतर बैठे हैं?

बड़ी रानी की कर्कश आवाज़ सुनाई दी—ठहरो, अभी खोल दिया जायगा। तुम लोग भीतर हो, यही दिखाने के लिए तो दरवाज़ा बन्द किया गया है। पर देखने वाले भी तो ज़रा आ जायँ। यह नारकीय लीला अब ज़्यादा दिन न चल सकेगी।

'नारकीय लीला'! मेरा माथा ठनका। हे भगवान! क्या पुस्तक पढ़ना भी नारकीय लीला है? इस प्रकार लगभग १५ मिनट हम लोग बन्द रहे। गुस्से से मास्टर बाबू का चेहरा लाल हो रहा था। उधर बाहर बड़े राजा, मँझले राजा और महाराजा जी की आवाज़ मुझे सुनाई दी और उसके साथ ही कमरे का दरवाज़ा खुल गया।

बड़ी रानी बोलीं—मेरी बातों पर तो कोई विश्वास ही नहीं करता था। अब अपनी-अपनी आँखों से देखो। आँखें धोखा तो नहीं खा रही हैं?

आज तक मैंने मँझले राजा की विलासी मूर्ति देखी थी। आज मैंने उनका रुद्र रूप भी देखा। क्रोध से पैर पटकते हुए वे बोले—किरणकुमार, इस कमरे में तुम किसके हुक्म से आए?

मास्टर बाबू भी उसी स्वर में बोले—मुझे किस कमरे में जाने का हुक्म नहीं है?

बड़े राजा—मास्टर बाबू, अब यहाँ से चले जाओ, इसी में तुम्हारी कुशल है।

वे—मैं ऐसी कुशल को ठोकर मारता हूँ। मैं पापी नहीं हूँ कि कायर की तरह भाग जाऊँगा। जाने से पहिले मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि मैं और मँझली रानी दोनों ही पवित्र और निर्दोष हैं। यह हरकत ईर्षा और जलन के ही कारण की गई है।

बड़ी रानी गरज उठीं—"उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। चोरी की चोरी उस पर सीनाज़ोरी। मैं! मैं ईर्षा करूँगी तुमसे? तुम हो किस खेत की मूली? मैं तुम्हें समझती क्या हूँ? तुम हो एक अदना से नौकर और यह है कल की छोकरी। सो भी किसी रईस के घर की नहीं। ईर्षा तो उससे की जाती है जो अपनी बराबरी का हो।" फिर बड़े राजा की तरफ़ मुड़ कर बोलीं—"तुम इसे ठोकर मार के निकलवा क्यों नहीं देते? तुम्हारे सामने ही खड़ा-खड़ा ज़बान लड़ा रहा है और तुम सुन रहे हो। पहले ही कहा था कि नौकर-चाकर को ज़्यादा मुँह न लगाया करो।"

महाराजा बड़े गुस्से से बोले—किरणकुमार, चले जाओ।

इसी समय न जाने कहाँ से छोटे राजा आ पड़े और उन्हें ज़बरदस्ती पकड़ कर अपने साथ लिवा ले गए। मास्टर बाबू चले गए। मुझ पर क्या बीती होगी, कहने की आवश्यकता नहीं; समझ लेने की बात है। नतीजा सबका यह हुआ कि उसी दिन एक चिट्ठी के साथ सदा के लिए मैं बिदा कर दी गई। एक इक्के पर बैठाल कर चपरासी मुझे माँ के घर पहुँचाने गया। चिट्ठी मेरे पिता

जी के नाम थी, जिसमें लिखा था कि "आपकी पुत्री भ्रष्टा है, इसने हमारे कुल मे दाग़ लगा दिया है। इसके लिए अब हमारे घर में जगह नहीं है।" मेरे पिता के घर पहुँचने से पहिले ही यह बात वहाँ पहुँच गई थी।

६

जब मैं पिता जी के घर पहुँची, शाम हो चुकी थी। इस बीच माता जी का देहान्त हो चुका था। भाई भी नीनो कॉलेज में थे। घर पर मुझे केवल पिता जी मिले, उन्होंने मुझे अन्दर न जाने दिया, बाहर दालान मे ही बैठाला। चिट्ठी पढ़ने के बाद वे तड़प उठे, बोले—"जो यह भ्रष्ट हो चुकी है तो इसे यहाँ क्यो लाए? रास्ते मे कोई खाई-खन्दक न मिला, जहाँ ढकेल देते? इसे मैं अपने घर रक्खूँगा? जाय कहीं भी मरे। मुझे क्या करना है?" मै पिता जी के पैरों पर लोट गई। रोती-रोती बोली—"पिता जी, मैं निर्दोष हूँ।" पिता जी दो क़दम पीछे हट गए और कड़क कर बोले—"दूर रह चाण्डालिन, निर्दोष ही तू होती तो इतना यह बवण्डर ही क्यों उठता? उन्हे क्या पागल कुत्ते ने काटा था, जो बैठे-बैठाए अपनी बदनामी करवाते? जा, जहाँ जगह मिले समा जा। मेरे घर मे तेरे लिए जगह नहीं है। क्या करें, अङ्गरेजी राज्य न होता तो बोटी-बोटी काट के फेंक देता।"

इस हो-हल्ला मे समाज के कई ऊँची नाक वाले अगुआ और कई पास-पड़ोस वाले भी जमा हो गए। सबने मेरे भ्रष्टाचरण की बात सुनी और घृणा से मुँह बिचकाया। एक बोला—"नहीं भाई, अब तो यह घर में रखने लायक़ नहीं। जब ससुराल वालों ने ही निकाल दिया तो क्या पण्डित रामभजन अपने घर रख कर जात में अपना हुक्का-पानी बन्द करवावेंगे।" दूसरे ने पिता जी पर पानी चढ़ाया—"अरे भाई! घर मे रक्खें तो रखने दो, पर हम तो पण्डित जी के दरवाज़े पर पैर न देंगे।"

मैं फिर एक बार भीतर जाने के लिए दरवाज़े की तरफ़ झुकी, किन्तु पिता जी ने एक झटके के साथ मुझे दरवाज़े से कई हाथ दूर फेंक दिया। कुल मे दाग़ तो मैंने लगा ही दिया था, वे मुझे घर में रख कर क्या जात बाहर भी हो जाते। मैं दूर जा गिरी और गिर कर बेहोश हो गई। मुझे जब होश आया तब मेरे घर का दरवाज़ा बन्द हो चुका था और मुहल्ले भर में सन्नाटा छाया था। केवल कभी-कभी एक-दो कुत्तों के भूकने का शब्द सुन पड़ता था। मैं उठी, बहुत-कुछ सोचने के बाद स्टेशन की तरफ़ चली। एक कुत्ता भूँक उठा, जैसे कह रहा हो कि अब इस मुहल्ले मे तुम्हारे लिए जगह नहीं है। जब मैं स्टेशन पहुँची, एक गाड़ी तैयार खड़ी थी। बिना कुछ सोचे-बिचारे मैं गाड़ी के एक ज़नाने डिब्बे मे बैठ गई। गाड़ी कितनी देर तक चलती रही, कहाँ-कहाँ खड़ी हुई, कौन-कौन से स्टेशन बीच मे आए, मुझे कुछ पता नहीं, किन्तु सबेरे जब ट्रेन कानपूर पहुँच कर रुक गई और एक किसी रेलवे-कर्मचारी ने आकर मुझे उतरने को कहा, तो मैं जैसे चौंक सी पड़ी। मैंने देखा, सारी ट्रेन यात्रियों से ख़ाली हो गई है। स्टेशन पर भी यात्री बहुत कम थे। ट्रेन पर से उतर कर मेरी समझ मे ही न आता था कि कहाँ जाऊँ। कल इस समय तक जो एक महल की रानी थी, आज उसके लिए खड़े होने के लिए भी स्थान न था। बहुत देर बाद मुझे एकाएक ख़याल आया कि सत्याग्रह-सङ्ग्राम तो छिड़ा ही हुआ है, क्यो न मैं भी चल कर स्वयंसेविका बन जाऊँ और देश-सेवा में जीवन बिता दूँ। पूँछती हुई मैं किसी प्रकार कॉङ्ग्रेस-दफ़्तर पहुँची। वहाँ पर दो-तीन व्यक्ति बैठे थे। उन्होने मुझसे पूछा कि मेरे पास किसी कॉङ्ग्रेस कमेटी का प्रमाण-पत्र है? जब मैंने कहा 'नहीं', तब उन्होंने मुझे स्वयंसेविका बनाने से इन्कार कर दिया। इसके बाद इसी प्रकार मैं कई संस्थाओं और सुधारकों के दरवाज़े-दरवाज़े भटकी, किन्तु मुझे कहीं भी आश्रय न मिला। विवश होकर मैं भूखी-प्यासी चल पड़ी। किन्तु जाती कहाँ? थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गई। मैंने अपनी अवस्था पर विचार किया। मैं आज रानी से पथ की भिखारिणी हो चुकी थी। मेरे सामने अब भिक्षावृत्ति को छोड़ कर दूसरा उपाय ही क्या था? इसी समय न जाने कहाँ से एक भिखारिणी बुढ़िया भी उसी पेड़ के नीचे आकर बैठ गई। मेरी तरफ़ देखा, मैंने भी उसकी ओर देखा। दुःख में भी एक प्रकार का आकर्षण होता है, जिसने क्षण भर में ही हम दोनों को एक कर दिया। भिखारिणी बहुत बूढ़ी थी, उसे आँख से भी कम देख पड़ता था। भिक्षावृत्ति करने के लिए अब उसे किसी साथी या सहारे की ज़रूरत थी। मैं उसी के साथ रहने लगी।

कई बार मैंने आत्मघात करना चाहा, किन्तु उस समय ऐसा मालूम होता कि जैसे कोई हाथ पकड़ लेता

हो। मैं आत्मघात भी न कर सकी। लगातार एक साल तक भिखारिणी के साथ रह कर भी मुझे भीख माँगना न आया। आता भी तो कैसे ? अतएव मैं बुढ़िया का हाथ पकड़ कर उसे सहारा देती हुई चलती और भीख वही माँगा करती। मैं जवान थी, सुन्दर थी, फटे-चीथड़े और मैले-कुचैले वेष में भी मैं अपना रूप न छिपा सकती और मेरा रूप ही हर जगह मेरा दुश्मन हो जाता। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए मुझे बहुत सचेत रहना पड़ता था और इसीलिए मुझे जल्दी-जल्दी स्थान बदलना पड़ता था।

मेरे बदन की साड़ी फट कर तार-तार हो गई थी; बदन ढाँकने के लिए साबित कपड़ा भी न था। प्रयाग में माघी अमावस्या को बड़ा भारी मेला लगता है। बुढ़िया ने कहा, वहाँ चलने पर हमें ३-४ महीने भर के खाने को मिल जायगा और कपड़ों के लिए पैसे भी मिल जायँगे। मैं बूढ़ी के साथ पैदल ही प्रयाग के लिए चल पड़ी।

माँगते-खाते कई दिनों में हम लोग प्रयाग पहुँचे। यहाँ पूरे महीने भर मेला रहता है। दूर-दूर के बहुत से यात्री आते हैं। हम लोग रोज सड़क के किनारे एक कपड़ा बिछा कर बैठ जाते, दिन भर भिक्षा माँग कर शाम को एक पेड़ के नीचे अलाव जला कर सो जाते। एक दिन इसी प्रकार शाम को जब हम दिन भर की भिक्षावृत्ति के बाद लौट रहे थे, तब एक बग्घी निकली, जिसमे कुछ स्त्रियाँ थी। बुढ़िया एक पैसे के लिए हाथ फैला कर गाड़ी के पीछे-पीछे दौड़ी। कुछ देर के बाद गाड़ी के अन्दर से एक पैसा फेंका गया। शाम के धुँधले प्रकाश मे बुढ़िया जल्दी पैसा न देख सकी। वह पैसा देखने के लिए कुछ देर तक झुकी रही। उसी समय, एक मोटर पीछे से और एक सामने से आ गई। बुढ़िया ने बहुत बचना चाहा और मोटर वाले ने भी बहुत बचाया, पर बुढ़िया मोटर की चपेट मे आ ही गई, उसे गहरी चोट लगी और उसे बचाने की चेष्टा मे मुझे भी काफ़ी चोट आई। जिस मोटर की चपेट हम लोगों को लगी थी, उस मोटर वाले ने पीछे मुड़ कर देखा भी नहीं, किन्तु दूसरी मोटर वाले रुक गए। उसमें से दो व्यक्ति उतरे। मेरे मुँह से सहसा एक चीख़ निकल गई।

७

कई दिनो तक लगातार बुख़ार के बाद जिस दिन मुझे होश आया, मैंने अपने आपको एक ज़नाने अस्पताल के परदा वार्ड के कमरे में पाया। एक खाट पर मैं पड़ी थी, मेरे पास ही दूसरी खाट पर भिखारिणी भी मरणासन्न अवस्था में पड़ी थी। मैं खाट से उठ कर बैठने लगी। वे पास ही कुर्सी पर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। मुझे उठते देख कर बोले—अभी आप न उठें। बिना डॉक्टर की अनुमति के आपको खाट पर से नहीं उठना है।

"क्यों ? मैं पथ की भिखारिणी, मुझे ये साफ़-सुथरे कपड़े, ये नरम-नरम बिछौने क्यों चाहिए ? कल से तो मुझे फिर वही गली-गली की ठोकर खानी पड़ेगी न ?"

उनकी बड़ी-बड़ी आँखें सजल हो गईं। वे बड़े ही करुण स्वर में बोले—मँझली रानी ! क्या तुम मुझे क्षमा न करोगी ? तुम्हारा अपराधी तो मै ही हूँ न ? मेरे ही कारण तो आज तुम राजरानी से पथ की भिखारिणी बन गई हो।

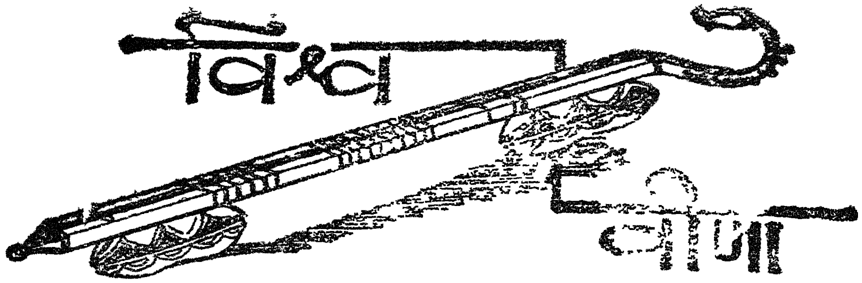
जब मुझे उन्होंने 'मँझली रानी' कह कर बुलाया तो मैं चौंक सी पड़ी। सहसा मेरे मुँह से निकल गया "मास्टर बाबू !"

× × ×

दो-तीन दिन मे मैं पूर्ण स्वस्थ हो गई। परन्तु भिखारिणी की हालत न सुधर सकी, और एक दिन उसने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उसके अन्तिम संस्कारों से निवृत्त होकर मैं उन्हीं के साथ उनके बँगले मे रहने लगी। किन्तु मैं अभी तक नहीं जान सकी कि वे मेरे कौन हैं ? वे मुझ पर माता की तरह ममता, पिता की तरह प्यार करते है; भाई की तरह सहायता और मित्र की तरह नेक सलाह देते है; पति की तरह रक्षा और पुत्र की तरह आदर करते हैं। इसीलिए कुछ न होते हुए भी वे मेरे सब कुछ है; और सब कुछ होते हुए भी वे मेरे कुछ नहीं हैं। *

---

* देवी जी की 'बिखरे मोती' नामक अप्रकाशित पुस्तक की एक कहानी।



[पाठकों को यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भारत-माता के भाल से अछूतपन की कलङ्क-कालिमा मिटाने के लिए विश्ववरेण्य महात्मा गाँधी जी ने गत २० सितम्बर से आमरण अनशन व्रत करने की भीष्म प्रतिज्ञा कर ली है। आपके उपवास व्रत ने अछूत-समस्या के विषय में एक नई क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। देश के छोटे-बड़े तमाम नेताओं ने म० गाँधी के विचारों का समर्थन किया है। नीचे इस सम्बन्ध मे विभिन्न दलों के नेताओं की सम्मतियों का सारांश पाठकों के लाभार्थ दिया जाता है।

—सम्पादक 'चाँद']

माननीय मालवीय जी—

कोई हिन्दू ऐसा नहीं है, जिसने अछूतोद्धार के लिए महात्मा गाँधी से बढ़ कर उद्योग किया हो। वे प्रायः कहा करते हैं कि पृथक् चुनाव का अधिकार अछूतों और ऊँची जाति के हिन्दुओं—दोनों के लिए समान रूप से हानिकारक है। अपने इस विश्वास का प्रत्यक्ष प्रमाण उन्होंने इस निर्णय द्वारा दिया है कि अछूत जातियों को पृथक् करने और उनके तथा ऊँची जाति के हिन्दुओं के बीच गहरी खाई खोदने के प्रतिकार मे वे अपने प्राण दे देंगे। यह दुःख का विषय है कि अछूतों के प्रतिनिधित्व के विषय मे हम आपस मे समझौता नहीं कर सके। पर यदि इस अवसर पर इस महान हानि को देखते हुए भी अछूतों और अन्य हिन्दुओं के नेता इस प्रश्न का निबटारा न कर सकें, तो यह एक महान राष्ट्रीय दुर्घटना और घोर लज्जा की बात होगी।

❀

बाबू राजेन्द्रप्रसाद—

अगर भारत और संसार के लिए महात्मा जी के प्राणों की रक्षा करनी है, तो हिन्दू-समाज को अछूत-समस्या को हल करना पड़ेगा। इस प्रश्न के सामाजिक और धार्मिक—दो पहलू हैं। हिन्दुओं को साहसपूर्वक यह कार्य हाथ में लेना चाहिए और हिन्दू-धर्म पर से इस धब्बे को मिटा देना चाहिए। अछूत कहे जाने वालों को मन्दिरों मे दर्शन करने, कुओं से पानी भरने, स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने और सड़कों पर चलने आदि का अधिकार दिया जाना चाहिए। इस प्रश्न का हल करना एकमात्र हिन्दू जाति के ही हाथ में है। यह कार्य ऐसे ढङ्ग से होना चाहिए, जिससे असन्दिग्ध रूप से प्रकट हो जाय कि अछूत कहे जाने वाले किसी तरह हिन्दुओं मे भिन्न नहीं हैं। यह हिन्दू जाति की परीक्षा का समय है और यदि उसमें जीवन है तो उसे कोई महान और दर्शनीय कार्य कर दिखलाना चाहिए। × × × हिन्दू जाति को सम्मिलित रूप से, जिसमे अछूत जातियाँ भी हों, बिना विलम्ब किए परस्पर में समझौता कर लेना चाहिए और ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालना चाहिए कि वह इस सम्बन्ध मे अपने निर्णय को बदल दे। तभी महात्मा जी के, जिन्हें केवल इस देश के करोड़ों व्यक्ति ही प्रेम और आदर नहीं करते, वरन् जिनको सारा संसार श्रद्धा की दृष्टि से देखता है, जीवन की रक्षा हो सकती है।

❀

श्री० राजगोपालाचार्य—

अगर इस सम्बन्ध में कुछ उद्योग न किया गया और उपवास के फल-स्वरूप महात्मा जी की मृत्यु हो गई तो उसका फल कल्पनातीत भयङ्कर होगा। चाहे इस प्रकार का सत्याग्रह युगों के प्राचीन अज्ञान, अन्धविश्वास और भय को न मिटा सके, पर शिक्षित-वर्ग के हठ पर यह अवश्य प्रभाव डालेगा। ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की

हठवादिता पर भी इसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा और अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों की अन्तरात्मा जाग्रत हो जायगी।

बाबू भगवानदास—

महात्मा जी ने प्रायोपवेशन की, आमरण अनशन की, भीष्म-प्रतिज्ञा इस सङ्केत से की है, कि भावी स्वराज्य-विधान में, अछूत हिन्दू और छूत हिन्दू का नाम देकर, दो पृथक्-पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र बना कर, हिन्दू-समाज के परस्पर विवदमान दो खण्ड सदा के लिए न हो जाने पावें—यह सुन कर सभी भारत के शुभचिन्तक सज्जनों का हृदय कम्पमान हो रहा है। ऐसे निस्स्वार्थी, परमार्थी महापुरुष की कृतियों का अर्थ, मेरे ऐसे तपस्याहीन, स्वार्थी जीवन बिताने वाले जीव के लिए, समझना कठिन है। बहुधा शङ्का मे पड़ जाता हूँ, और अपनी शङ्काओं को असमय-कुसमय कहता रहता हूँ। तो भी, हृदय मे दृढ़ विश्वास है कि महात्मा जी के परम शुद्ध हृदय में जो कुछ प्रेरणा उठेगी, वह परमात्मा की ओर से ही आई होगा, और ऋतसत्य ही होगी, लोकोपकारी ही होगी।

× × ×

हिन्दू-समाज के एक बड़े अङ्ग को दलित और अछूत कहने की चाल चल पड़ी है। पर, अपने को ऊँची से ऊँची जाति के मानने वाले कौन भारतीय आज हैं, जो स्वयं अछूत और दलित नही। जिस देश में स्वराज्य नही उस देश के सभी मनुष्य प्रत्यक्ष ही दूसरों के पद से दलित हो रहे हैं, और यहाँ के सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कहलाने वाले वर्णों अथवा जातियों की हजारों अवान्तर जातियाँ सभी खानपान में परस्पर अछूत हैं।

इस महाभेदबुद्धि, दुर्बुद्धि का परिमार्जन हुए बिना भारतवर्ष का जीर्णोद्धार असम्भव है। और इस परिमार्जन का और कोई उपाय नहीं, सिवाय इसके कि महात्मा जी के ऐसा महापुरुष ऐसे आत्यन्तिक अनशन का व्रत लेकर सब हिन्दू कहलाने वालों के हृदय में आग लगा दें, जिससे दुर्भाव भेद-भाव जल जायँ, और अभेदभाव सद्भाव का सोना रह जाय। यदि हिन्दू-समाज ने अपने भीतर की इस छूत-अछूत की फूट को मिटा दिया, तो और सब फूटों को यह सहज में मिटा लेगा, और बाद में हिन्दू-समाज के और दूसरे नाम वाले समाजों के भेद और फूट को मिटा ले सकेगा, और तब मानव-समाज का सुन्दर रूप अवतार लेगा। यदि यह न भया तो हिन्दू-समाज भी नहीं रहेगा।

श्री० रङ्गा अय्यर एम० एल० ए०—

महात्मा जी ने जिस निर्णय के विरुद्ध विद्रोह किया है, वह हमारे धर्म और जाति मे फूट डालने वाला और हमारे धर्म पर एक अमिट धब्बा लगाने वाला है। महात्मा जी ने अपने प्राण देकर इस निर्णय का विरोध करने की प्रतिज्ञा की है। अगर गाँधी जी जीवित रहेंगे तो सब जीवित है और यदि वे मरते हैं तो शेष लोगो को भी मृत समझना चाहिए। उन्होने इसलिए अपने प्राण देने का निश्चय किया है, जिससे अछूत लोग जीवित रह सकें। एक विदेशी जाति का प्रधान मन्त्री, जिसके विचार और दृष्टिकोण भिन्न हैं और जिसकी बुद्धि भी परिमित है, इस भेद-भाव उत्पन्न करने वाले निर्णय का औचित्य सिद्ध करता है। इस विष का प्रवेश बीस वर्ष के लिए कराया जा रहा है, जिससे हमारा धर्म, हमारे देवता और हमारी जाति के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के लाभ के लिए टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। ××× क्या प्रधान मन्त्री अछूतो के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखते हैं? इसके सिवाय श्री० एम० सी० राजा ने, जो दो बार अछूतों के प्रतिनिधि की हैसियत से एसेम्बली के सदस्य मनोनीत किए जा चुके हैं, भी हिन्दू-महासभा के सभापति डॉ० मुञ्जे से समझौता कर लिया है। ऐसी दशा में गवर्नमेण्ट दिखावटी और फ़र्ज़ी संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों के, जिनका कोई अनुयायी नही है, मतों को क्यों सुनती है? प्रधान मन्त्री ने राजा-मुञ्जे पैक्ट को स्वीकार क्यों नहीं किया? ग्रेट ब्रिटेन को चैतन्य होकर महात्मा गाँधी के प्राणो की रक्षा करनी चाहिए, जिससे भारत के साथ उसके सम्बन्ध की रक्षा हो सके। क्योंकि अगर महात्मा गाँधी की मृत्यु हो गई, तो उसके साथ इङ्गलैण्ड और भारत के सम्बन्ध की भी मृत्यु हो जायगी और भावी पीढ़ी इङ्गलैण्ड और इङ्गलैण्ड की हर एक चीज़ से घृणा करने लगेगी।

डॉक्टर मुञ्जे—

महात्मा गाँधी ने अछूतपन को उठा देने और हिन्दू-समाज की रक्षा के लिए अभूतपूर्व भीषण और हृदय-विदारक बलिदान करने का जो निश्चय किया है, उसका प्रभाव अवश्य ही समस्त हिन्दुओं पर पड़ेगा, चाहे वे छूत हों अथवा अछूत। उनका कर्तव्य है कि वे हिन्दू जाति को अछूत-प्रथा से मुक्त करने और महात्मा जी की प्राण-रक्षा करने के लिए उदार भाव से काम करें और गाँधी जी की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए अधिक से अधिक बलिदान करने को तैयार हो जायँ, अपनी तरफ़ से मैं यह घोषणा कर देना चाहता हूँ कि अगर संयुक्त-निर्वाचन के आधार पर मेम्बरी की तमाम सीटें अछूतों को दे दी जायँ, तो भी मुझे एतराज़ न होगा। मैं केवल इसी बात को सहन नहीं कर सकता कि अछूतों को हिन्दू जाति से पृथक् करके अछूतपन के कलङ्क को स्थायी बना दिया जाय।

❀

वर्णाश्रम स्वराज्य-सङ्घ (बनारस) के प्रधान मन्त्री श्री० देवनायक जी आचार्य—

यदि अछूत बन्धुओं के पृथक् निर्वाचन सम्बन्धी प्रश्न की वर्तमान जटिलता हिन्दू-समाज के अंश का प्रायः समस्त प्रतिनिधित्व तक भी देने से हल होती हो, तो हिन्दू-समाज को कोई आपत्ति न होनी चाहिए। अछूत-भाई हिन्दू-समाज के अत्यावश्यक और वात्सल्यास्पद अङ्ग हैं। उनका पृथक् निर्वाचन किसी भी रूप में हिन्दू-समाज के लिए वस्तुतः घातक ही सिद्ध होगा।

यों तो पृथक् निर्वाचन मात्र राष्ट्रीयता की दृष्टि से आपत्तिजनक है। लेकिन इस समय प्राणान्त अनशन की प्रतिज्ञा कर श्री० गाँधी जी जिसका विरोध करने जा रहे हैं और जिससे देश भर में हलचल मची हुई है, वह है—"अछूतों के पृथक् निर्वाचन का प्रश्न।" किसी भी रूप में अछूतों का पृथक् निर्वाचन हिन्दू-समाज के लिए तथा स्वयं अछूत बन्धुओं के लिए भी हितकर होने के बदले दोनों का अस्तित्व मिटाने वाला ही सिद्ध होगा—इस बात का अनुभव सभी दूरदर्शी हिन्दू-नेता कर रहे हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि इस जटिल समस्या का निबटारा किस प्रकार हो? प्रधान मन्त्री श्री० मेकडॉनल्ड की स्पष्टोक्ति का रुख़ देखते हुए तो आपस के समझौते के सिवाय कोई भी अन्य सुगम उपाय प्रतीत नहीं होता। इसलिए इस जीवन-मरण के प्रश्न को आपस में ही अविलम्ब हल करना हिन्दू-समाज के प्राण-रक्षण का एकमात्र कर्तव्य होना चाहिए।

× × ×

ऐसी अवस्था में, जब कि हम सब के सब हिन्दू इन अछूत भाइयों को ही अपना सारा प्रतिनिधित्व देकर आगे बढ़ाने के लिए प्रस्तुत होंगे, तो मेरी समझ में ऐसा कोई भी कारण नहीं आता, जिससे अङ्गरेज़ी सरकार इस पृथक् निर्वाचन-रूपी हलाहल को क्षण-मात्र भी क़ायम रख सके।

❀

सर पी० सी० राय—

गाँधी जी टेरेन्स मेकस्विनी और जतीन्द्रनाथ दास की तरह दृढ़ निश्चय के साथ हँसते-हँसते मृत्यु को आलिङ्गन करेंगे। एशिया की ज़मीन पर ही ईसा मसीह की तरह संसार के कल्याणार्थ यह दूसरा आत्म-बलिदान होगा।

❀

श्री० वी० जे० पटेल, भूतपूर्व प्रेज़िडेण्ट इण्डियन लेजिस्लेटिव एसेम्बली—

मेरी सम्मति में महात्मा गाँधी का देहोत्सर्ग करोड़ों मनुष्यों के लिए, जो उनकी तरफ़ अपने उद्धार के लिए टकटकी लगाए हुए हैं, बहुत बड़ी हानि होगी। इससे बेहतर तो यह होता कि वे राजनीति से पृथक् होकर जीवित रहते।

❀

श्री० हरविलास शारदा—

भारतवर्ष के लिए महात्मा जी के प्राण कितने बहुमूल्य हैं, यह शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। उनके प्राणों की रक्षा किसी भी प्रकार अवश्य की जानी चाहिए, चाहे इसके लिए हिन्दुओं को अपनी तमाम सीटें अछूतों को क्यों न दे देनी पड़ें।

रेव० उत्तम (ब्रह्मदेश)—

भारत अपने सब से बड़े नेता और संसार के सब से बड़े मनुष्य की हानि को सहन नहीं कर सकता। हमको शीघ्रतापूर्वक चेष्टा करके गाँधी जी के इच्छानुकूल कार्य करना चाहिए, जिससे साम्प्रदायिक चुनाव के सम्बन्ध में सरकारी निर्णय बदला जाय और गाँधी जी की प्राण-रक्षा हो।

❀

पं० हृदयनाथ कुँज़रू—

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने हानिकारक पृथक् निर्वाचन को जारी करके अपने ऊपर बड़ी भारी ज़िम्मेदारी ली है। पर हम भी इस सम्बन्ध मे कम ज़िम्मेदार नहीं हैं। वर्तमान घटना से जिस अपूर्व भाव की जाग्रति हुई है, उससे हमारे लिए उदार-हृदयता से काम लेकर देश को आपत्ति से बचा लेना सम्भव है।

श्री० घनश्यामदास बिड़ला—

निस्सन्देह हमारे सामने बड़ी भयङ्कर परिस्थिति उत्पन्न हुई है, पर ईश्वरेच्छा से बदी से भी नेकी उत्पन्न होना सम्भव है। × × × अछूतों का कर्तव्य स्पष्ट है। गाँधी जी से बढ़ कर उनका शुभचिन्तक कौन है? चाहे इङ्गलैण्ड वाले इस बात को न जानते हों, पर भारत मे कोई भी गाँधी जी के अछूतों का असली प्रतिनिधि होने से इन्कार नहीं कर सकता। अगर जनमत ग्रहण किया जाय, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि ९९ प्रति सैकड़ा अछूत गाँधी जी के पक्ष मे राय देंगे।

❀

सर तेजबहादुर सप्रू—

साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध में इस समय जैसी हलचल मची है, उसे देखते हुए गाँधी जी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जो इस समस्या को किसी हद तक सुलझा सकते हैं। अगर वे भी इसमे असफल हों, तो मैं ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं देखता, जो इसमें सफलता प्राप्त कर सके।

डॉ० जी० वी० देशमुख (बम्बई)—

महात्मा गाँधी की प्राण-रक्षा उपवास करने, लम्बे-चौड़े प्रस्ताव करने अथवा ज़ोरदार अपील करने से नहीं हो सकती। अगर उनके उपवास को रोकना है तो शीघ्रता-पूर्वक साहसपूर्ण कृत्य कर दिखलाने की आवश्यकता है, जिससे अछूतपन का महारोग एकदम ख़त्म कर दिया जाय। यद्यपि महान आत्माओं के अन्तर की बात जान सकना कठिन होता है, तो भी मेरा अनुमान है कि महात्मा जी को जितनी चिन्ता अछूत-प्रथा की है, उतनी शासन-विधान की नहीं है।

❀

अछूत-नेता

रावबहादुर एम० सी० राजा (प्रेज़िडेण्ट अखिल भारतवर्षीय अछूत एसोसिएशन)—

हम ब्रिटिश सरकार से सहायता की आशा रखते थे, पर राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स ने हमारी आशाओं पर पानी फेर दिया और प्रधान मन्त्री के निर्णय के पश्चात् हमको ऐसा प्रतीत होने लगा कि हमारे हित को ऐसा धक्का लगा है, जिसका प्रतिकार हो सकना असम्भव है। अगर हिन्दुओं ने हमको सामाजिक दृष्टि से अछूत बना रक्खा था जो अङ्गरेज़ी सरकार ने राजनीतिक दृष्टि से अछूत बना दिया। गाँधी जी समस्त हिन्दुओं के लिए सयुक्त निर्वाचन की व्यवस्था चाहते हैं और अछूतो को उनकी संख्या के हिसाब से अधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार देने को तैयार है। हिन्दू-महासभा के प्रेज़िडेण्ट डॉ० मुञ्जे भी संयुक्त निर्वाचन और जन-संख्या के अनुसार अछूतो के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को स्वीकार कर चुके हैं। इस प्रकार का निर्णय समस्त भारत के अछूतों के इच्छानुकूल है। यह इससे सिद्ध होता है कि जब सायमन कमीशन ने संयुक्त निर्वाचन के पक्ष मे राय दी थी तो उसके विरुद्ध एक भी आवाज़ सुनाई न दी थी। यह उस अपवित्र 'माइनोरिटी पैक्ट' का ही परिणाम है कि उसने हमारी कमिटी की सफलता का नाश कर दिया और हिन्दू-समाज को खण्ड-खण्ड कर डाला। मेरा विश्वास है कि हमारी जाति का प्रत्येक व्यक्ति इस बात के लिए गाँधी जी का कृतज्ञ होगा कि

उन्होंने इस प्रश्न को उठाया और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि समस्त संसार का ध्यान इस तरफ़ आकर्षित होगा। इसके फल-स्वरूप शीघ्र ही हमारी जाति का पुनरुत्थान होगा।

❀

श्री० वी० जे० देवरूखकर (बम्बई के राष्ट्रीय विचारों के अछूत नेता)—

मैं और मेरे अनुयायी महात्मा जी के निर्णय की ख़बर सुन कर विचलित हो गए हैं। अछूत जातियों के अनेक स्त्री-पुरुषों ने जब इस ख़बर को सुना तो उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। गवर्नमेण्ट ने महात्मा गाँधी की चेतावनी की जान-बूझ कर उपेक्षा की है और मालूम होता है कि उसे उनके जीने-मरने की कोई पर्वाह नहीं। पर अछूत जाति के लोग गवर्नमेण्ट की निन्दा करके ही शान्त नहीं हो सकते, वरन् वे किसी भी तरह और कैसा भी मूल्य चुका कर गाँधी जी की प्राण-रक्षा की चेष्टा करेंगे। अथवा गवर्नमेण्ट के साथ ही उनके मस्तक पर भी कलङ्क का अमिट टीका लग जायगा और अपने सब से बड़े हितचिन्तक की हत्या की ज़िम्मेवारी उन पर भी समझी जायगी। अगर जनमत ग्रहण किया जाय तो म० गाँधी की तरफ़ बहुत बड़ा बहुमत होगा।

❀

श्री० पी० बालू (अखिल भारतवर्षीय अछूत-कॉन्फ्रेन्स बम्बई की स्वागतकारिणी-समिति के प्रधान)—

महात्मा गाँधी ने जिस उद्देश्य से अछूतों के लिए अपने प्राण अर्पित कर देने की घोषणा की है, उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ। महात्मा गाँधी का यह निर्णय कोरी धमकी नहीं है। इससे प्रकट होता है कि उनके हृदय में अछूतों की सहायता की अभिलाषा कहाँ तक मौजूद है।

❀

श्री० देवीदास जाटव, मन्त्री अखिल भारत-वर्षीय जाति-सुधार महासभा, देहली—

हमारे (अछूतों के) लिए म० गाँधी के प्राणान्त तक अनशन करने से यह कहीं अच्छा होगा कि हम अपनी माँगों को त्याग दें। महात्मा जी ने हमारे लिए अपने प्राण उत्सर्ग करने का निश्चय करके हमको बड़ा आभारी बना दिया है और हमारी जाति का बच्चा-बच्चा महात्मा जी की जान पर किसी तरह का ख़तरा आने से पहले अपना सर्वस्व और प्राण तक अर्पण कर देगा।

❀

श्री० गवई एम० एल० सी० नागपुर (अछूतों के प्रतिनिधि)—

यद्यपि लोथियाँ कमिटी और प्रान्तीय सरकार ने इस प्रान्त (सी० पी०) में संयुक्त निर्वाचन की सिफ़ारिश की थी, पर ब्रिटिश सरकार ने पृथक् निर्वाचन का निर्णय किया। सरकार ने हमारी जन-संख्या के अनुसार प्रतिनिधित्व की माँग को अस्वीकार कर दिया। इससे विदित होता है कि सरकार जनमत पर ध्यान नहीं देती। अगर हमारी जाति को हिन्दुओं से पृथक् कर दिया जायगा, तो उसकी हानि होगी। अछूतों को हिन्दुओं से अलग करना वैसा ही है, जैसा कि किसी बच्चे को माँ से अलग करना।

❀

मुस्लिम-नेता

शेख अब्दुल मजीद एम० एल० सी० (ख़िलाफ़त कॉन्फ्रेन्स के आगामी अधि-वेशन के मनोनीत सभापति)—

महात्मा गाँधी का अनशन करके मर जाने का भयङ्कर निर्णय, जो उन्होंने अछूत जातियों से संयुक्त निर्वाचन स्वीकार कराने के उद्देश्य से किया है, बड़ा त्रासजनक है। उनका यह भय किसी प्रकार ग़लत नहीं है कि इससे हिन्दू जाति जल्दी या देर में टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। पर मेरी सम्मति में इसका कारण पृथक् निर्वाचन का मसौदा नहीं है, वरन् जाति-भेद का अस्तित्व है। अगर संयुक्त निर्वाचन के आधार पर हिन्दू-समाज के दोनों अङ्गों में समझौता हो जाय, तो मुझे बड़ी ख़ुशी होगी। पर मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि यदि हिन्दू-समाज में से जाति-भेद को मिटा देने या कम से-कम उसमें ऐसा सुधार करने की, जिससे वह आधुनिक

प्रजातन्त्र, न्याय और भ्रातृभाव के विचारों के अनुकूल बन जाय, चेष्टा न की जायगी, तो हिन्दू-समाज अवश्य ही थोड़े बहुत समय के भीतर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा।

❀

सर मुहम्मद याकूब—

महात्मा गाँधी का निर्णय भारतवासियों के बहुत बड़े भाग मे और ऐसे लोगो मे भी, जो उनके राजनीतिक विचारों से सहमत नहीं है, खलबली मचा देगा। राजनीतिक विकास के इस अवसर पर यह बड़ी दुःखदायी घटना होगी, अगर ऐसी बहुमूल्य जान ऐसे अप्राकृतिक ढङ्ग से नष्ट हो जायगी। × × × अगर ऊँची जाति के हिन्दू अपने मन्दिरो आदि का दरवाज़ा अछूतों के लिए खोल दें तो उनमे समझौता हो सकता है।

❀

ईसाई और अङ्गरेज़

इण्डियन क्रिश्चियन एसोसिएशन, इलाहाबाद—

महात्मा गाँधी के अन्त समय तक अनशन करने की ख़बर से हमारे भीतर बड़ी हलचल मच गई है। हम अपने शहर के प्रतिष्ठित नेता सर तेजबहादुर सप्रू की इस सम्मति से सर्वथा सहमत है कि "साम्प्रदायिक प्रश्न के सम्बन्ध मे इस समय जैसी हलचल मची है, उसे देखते हुए म० गाँधी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति है, जो इस समस्या को किसी हद तक सुलझा सकते है।" × × × हम अनुभव करते है कि दोष होते हुए भी प्रधान मन्त्री के निर्णय को मान लेना उचित है। पर साथ ही हमारा यह भी मत है कि फ़ैसला करने वाले पक्ष को इसे और भी उत्तम बनाने का अधिकार है। × × × अगर सरकार साहस करके पृथक् निर्वाचन को रद्द करके उसके स्थान मे संयुक्त निर्वाचन जारी कर देती, जिसमे प्रत्येक जाति के लिए सीटें सुरक्षित रहतीं, तो प्रजातन्त्र के सिद्धान्त की अधिक रक्षा हो सकती थी। हम नहीं समझते कि इस प्रकार की चेष्टा से देश की शक्ति के लिए कोई भयङ्कर ख़तरा पैदा हो जाता अथवा सरकार से सहानुभूति रखने वालों की संख्या कम हो जाती। वर्तमान निर्णय से हमको भय है कि इससे केवल बाहरी स्वरूप परिवर्तित हो जायगा, पर वास्तविक तत्व ज्यों का त्यों बना रहेगा।

❀

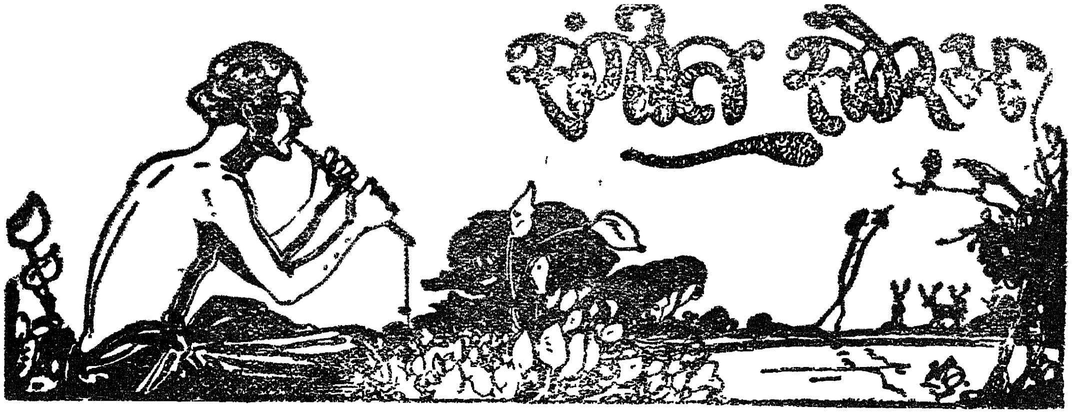
मि० हेरल्ड के० हेल्स (मेम्बर पार्लामेण्ट)—

महात्मा गाँधी का अनशन करके मर जाने का दृढ़ निश्चय केवल उस सङ्कट को शीघ्र लाने वाला होगा, जो इस समय धीरे-धीरे, पर निश्चय रूप से देश मे सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। कुछ ही दिनो मे भारत मे गृह-युद्ध आरम्भ होना सम्भव है और ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिससे सरकार और भारतवासी दोनों कर्तव्य-विमूढ़ हो जायँगे। जैसी विकट परिस्थिति इस समय यहाँ देखने में आ रही है, वैसी मेरे ख़्याल से कभी किसी राष्ट्र के सामने नहीं आई होगी। इसके निर्णय पर ही देश का नाश अथवा मुक्ति निर्भर है।

❀

मि० लेन्सबरी (मेम्बर पार्लामेण्ट)—

अपने सिद्धान्त के लिए आत्मोत्सर्ग कर देने से महात्मा गाँधी की शक्ति और भी बढ़ जायगी। अङ्गरेज़ों को ऐसा निर्णय भारत पर हरगिज़ न लादना चाहिए, जिससे फूट और झगड़े की वृद्धि हो।



[शब्दकार—श्री० राधेमोहन सक्सेना, बी० ए० (नीलू बाबू के शिष्य)]

कामोद—तीन ताल

मात्रा १६

[स्वरकार—श्री० जितेन्द्रनारायण राय चौधरी, बी० ए० स्टूडेण्ट (नीलू बाबू के शिष्य)]

स्थायी—मोहे श्याम बिना नहीं कल रतियाँ।
अन्तरा—अधर मधुर सुर मुरली बजावत,
सास-ननदिया मोहे डरपावत,
विरह अतिशय जिया तड़पावत;
कासे कहूँ दुख बतियाँ सखियाँ॥

स्थायी

		×				२				०				१	
					त										
नि	स	म	रे	.प	म	प	—	ध	प	ग	म	रे	स	स–रे	
मो	हे	श्या	आ	म	बि	ना	—	न	हीं	क	ल	र	ति	याँ	आँ

अन्तरा

म	ग	म	म	प	प	नि	नि	सं	नि	सं	नि	धनि	संरें	संनि	सं
अ	ध	र	म	धु	र	सु	र	मु	र	ली	ब	जाआ	आआ	वअ	त
प	—	नि	नि	नि	नि	ध	नि	धनि	संरें	सं	नि	धनि	धसं	निध	प
सा	—	स	न	न	दि	या	आ	मोओ	हेए	ड	र	पाआ	आआ	वअ	त
गं	रें	मं	गं	रें	—	सं	—	नि	सं	रें	सं	संनि	संनि	ध	प
वि	र	ह	अ	ति	—	श	य	जि	या	त	ड़	पाआ	आआ	व	त
				त											
सं	नि	ध	प	म	प	ध	प	ग	म	रे	स	स	रे	नि	स
का	आ	से	क	हूँ	ऊँ	दु	ख	ब	ति	याँ	आँ	स	खि	याँ	आँ



अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

इस समय देश की स्थिति ऐसी डाँवाडोल हो रही है कि अपने राम का दिमाग़ चकरघिन्नी बन गया है। अभी तक अपने राम समझते थे कि देश के हितैषियों मे मौलाना शौकतअली ही ऐसे है, जिन्हें ज़मीन पर क़दम रखने की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है। मगर अपने राम का ख़्याल उतना ही ग़लत निकला, जितनी कि आजकल के ज्योतिषियों की भविष्य-वाणियाँ। मौलाना शौकतअली तो गोरी स्त्री से विवाह करने के पश्चात् काफ़ी ठण्डे पड़ गए, अब तो उन्हे किसी मामले पर राय देने में भी जम्हुवाई आती है। मगर जनाब, यह तो दुनिया है—एक आता है, एक जाता है। मैदान कभी ख़ाली नहीं रहता। मौलाना ने मैदान छोड़ा तो डॉ० अम्बेदकर ख़म ठोंक कर आ डटे। क़सम भङ्ग भवानी की, उन्होंने वह अड़ङ्गा लगाया है कि सारा हिन्दुस्तान थर्रा गया। मौलाना बुड्ढे थे—यह अभी जवान पट्ठा है। राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स में विलायती गौओ का मक्खन खा-खाकर तैयार हुआ है। देखिए न, तमाम हिन्दुस्तान भर के नेता ज़ोर लगा रहे हैं, मगर वह टस से मस नही होता। यहाँ तक कह डाला कि महात्मा जी मरते हों तो मर जायँ, मैं इन राजनैतिक धमकियो मे नहीं आता। यह दम-ख़म भला किसी दूसरे मे है ? लोग कहते हैं कि बछड़ा सदैव खूँटे के बल पर कूदता है। सो जनाब, जिस खूँटे से डॉक्टर साहब बँधे हैं, वह खूँटा कोई कमज़ोर खूँटा नही है, शेषनाग की खोपड़ी तक पहुँचा हुआ है। उस खूँटे के बल पर डॉक्टर साहब आसमान तक छू सकते हैं।

कुछ लोग कह रहे है कि यह डॉक्टर अम्बेदकर है कौन ? सन् १९३० के पहले तो इनको कोई जानता भी नही था। अपने राम इस लचर दलील को रुपए मे सत्रह आने भी मानने के लिए तैयार नहीं। मदारी लोग देखते-देखते आम का पेड़ पैदा कर देते है, साँप निकाल देते हैं। तब यदि डॉक्टर अम्बेदकर पैदा कर दिए गए, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? कमाल इसी को कहते हैं। वल्लाह ! क्या बोलता-चालता पुतला पैदा किया है, जो सिवाय 'नहीं' के 'हाँ' करना जानता ही नहीं। इसीसे कहना पड़ता है कि आजकल के वैज्ञानिक ईश्वर के भी कान कतरते है। ऐसे मायावी वैज्ञानिकों से जीतने की आशा रखना अगर खामख़याली नहीं है, तो फिर है क्या ?

और जनाब, एक कमाल हो तो कहा जाय। यहाँ तो कमाल पर कमाल और उस पर भी कमाल का परदादा सवार है। तमाम हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान के अधिकांश अछूत गला फाड़-फाड़ कर चिल्ला रहे हैं कि हमारे नेता महात्मा गाँधी हैं, डॉक्टर अम्बेदकर नहीं, मगर फिर भी वह नेता बने ही हुए हैं। किसकी मजाल है, जो उन्हें अछूत-नेता के सर्वोच्च आसन से हटा सके। लोग बका करें, नेता झख मारा करें, महात्मा जी उपवास करके मर

जायँ, मगर डॉक्टर साहब नेता बन बैठे, सो बन बैठे। ठीक भी यही है और इन्साफ़ भी यही कहता है कि एक बार जिसे जो मान लिया सो मान लिया। यह कमीनो का काम है कि आज किसी को किसी निगाह से देखते हैं तो कल किसी दूसरी निगाह से।

मुसीबत के डर, जान के हौल से।
बहादुर बदलते नहीं क़ौल से॥

जिसे क़ौल दे दिया सो दे दिया—अब चाहे जान चली जाय, मगर क़ौल तो निभाना ही पड़ेगा। सुना है कि डॉक्टर साहब ने राउण्डटेबुल कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर यही राग अलापा था कि "सुनो तुम यार परदेसी वचन कैसे निबाहोगे", तब उन्हे आश्वासन दिया गया कि "प्राण जायँ पर वचन न जाई।" तब जाकर डॉक्टर साहब को सन्तोष हुआ और उन्होने निश्चय कर लिया कि हिन्दुओं को नाकों चने न चबवा दूँ तो नाम नहीं।

और सच बात तो यह है कि इन्साफ़ से पूछा जाय तो अपने राम बिना घण्टे दो घण्टे विचारे ही कह सकते हैं कि डॉक्टर साहब भी एक अवतार है, जो अछूतों का उद्धार करने के लिए तवल्लुद हुए हैं। यह डॉक्टर साहब ही की करामात है कि हिन्दू लोग अछूतों के लिए खटाखट मन्दिर और कुँए खोलते चले जा रहे हैं। वरना जनाब, महात्मा गाँधी के लाख चीख़ने-चिल्लाने पर भी आज तक कोई सनका तक नही था! यहाँ तक कि साम्प्रदायिक बँटवारा हो जाने पर किसी की खोपड़ी-शरीफ़ा मे यह बात नही धँसी कि इस बँटवारे मे अछूतों को हिन्दुओ से बिलकुल अलग कर दिया है। डॉक्टर अम्बेदकर तो हक् से रह गए थे और मन ही मन नेताओं पर दाँत पीसते थे कि सब अक्ल के पुतले हैं। ब्रिटिश सरकार को कोस रहे हैं, हमारी ख़ुशामद कोई नही करता। आख़िर जब महात्मा जी के उपवास का समाचार निकला और नेताओ मे खलबली मची, तो डॉक्टर साहब ने सन्तोष की साँस ली कि अब 'सिद्धा' की दशा ने ज़ोर मारा! अब लोग हमारे क़दम चूमेंगे।

सच बात यह है कि हुआ भी यही। इस समय डॉक्टर साहब भारत के भाग्य-विधाता बने हुए हैं। महात्मा जी के प्राण उनकी मुट्ठी मे हैं। सारे हिन्दुस्तान की नज़र उन पर है कि देखें डॉक्टर साहब हिन्दुस्तान को उबारते हैं या रसातल मे भेजते हैं।

हालाँकि अपने राम को इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं है कि डॉक्टर साहब किस जाति के हैं, मगर अनुमान ऐसा है, कि होंगे अछूत ही; क्योंकि अछूत ही को अछूतों से इतनी हमदर्दी हो सकती है, या फिर महात्मा जी जैसे महात्माओं को।

उस दिन हमारे मेहतर ने अपने राम से प्रश्न किया कि बाबू जी, यह डॉक्टर अम्बेदकर कऊन हैं? अपने राम बोले—हमें तो ठीक-ठीक पता नही है। तुम्हारी ही जाति-बिरादरी के होंगे।

इतना सुनते ही वह बिगड़ कर बोला—अरे बाबू, हमरी बिरादरी माँ ऐस कौनो नहीं है, होत तो हम ओहका हुक्का-पानी बन्द करवा देइत। यौ तो हमें जान परत है कौनो इरिस्टान-किरिस्टान है।

अपने राम ने पूछा—क्यों भई, हुक्का-पानी क्यो बन्द करवा देते?

वह बोला—जो गाँधी बाबा की बात न मानै वह हमरी जाति का आदमी कैसे होई सकत है, यौ कौनो अमार-चमार, बौरिया, धानुक होई।

इसी समय एक दूसरा मेहतर उधर से निकला। वह हम लोगों की बातें सुन कर खड़ा हो गया और बोला—काहे बाबू जी, यौ अम्बेदकर ससुर कौने मुलक का मनई है?

अपने राम बोले—घबराओ नहीं, वह यहीं का है। ऑस्ट्रेलिया या अफ़रीका से पकड़ कर नहीं आया है।

वह—तब फिर गाँधी बाबा के परान काहे लीन्हे लेत है?

अपने राम—तुम्ही लोगो के भले के लिए।

अपने राम का मेहतर बोला—बाबू जी की बातें। अबही लग कौने बिलुका माँ घुसे रहे जो आज हम लोगन का भला सोचै खातिर निकरे हैं। हम तौ गाँधी बाबा की बात मान सकित है। ऐले पेरन गैरन नाथू खैरन का पूछत को है?

दूसरा मेहतर बोला—बाबू जी हम सुना यौ विलायत की कौन्सिलौ माँ गा रहै।

अपने राम—हाँ, गया तो था।

वह—यौ हुवाँ (वहाँ) कैसे पहुँचिगा?

अपने राम—सरकार ने भेजा था ?

वह—तो पढ़ा-लिखा होई ?

अपने राम—हाँ, अङ्गरेज़ी पढ़ा है।

अपने राम का मेहतर बोला—बाबू जी, खता माफ कीन्हौ, इन चमार-गडरियन का पढ़ाए यहै दसा होत है। ई जहाँ चार अच्छर पढ़ लिहिन तहाँ अपने का लाट साहब का नाती ही समझै लागत हैं।

अपने राम—भई, वह तुम लोगों को भी पढ़ाने-लिखाने और लाट साहब की कौन्सिल में भेजने की कोशिश कर रहा है।

दूसरा मेहतर बोला—हमरे ऊपर दया राखैं। कुछ अपना पढ़िके पूरा किहिन हैं—अब कुछ हम लोगन का पढ़इहैं। उनकी तो धजा (ध्वजा) फहराय रही है—सारी दुनिया माँ थुड़ी-थुड़ी होइ रही है। सरमदार होंय तो चुलुवा भर पानी माँ डूबि मरैं।

अपने राम का मेहतर बोला—और बदनाम हम लोगन का करत-फिरत है—यौ मजा देखौ। ओहसे कोनौ पूछै कि हम लोग कब ओहके हाथ जोरन गे रहन कि हमरे खातिर तू गाँधी बाबा से लड़ाई लड़ु।

दूसरा मेहतर बोला—अरे भइया की बातें, गाँधी बाबा से अधिक हम लोगन का हितू और कोनौ नहीं होइ सकत। एहिमाँ कुछ उनही का मतलब होई।

अपने राम ने कहा—यह तो भगवान जानै। हम कैसे कहें।

दूसरा मेहतर—आप न कहौ, मुदा हम तो छाती ठोंक के कहित है। गाँधी बाबा का छाँड़िके और कोनौ जो यह कहै कि वह हम लोगन का हिमायतदार है तो वह × × ×।

अपने राम ने देखा कि ये लोग अब गाली-गलौज पर आ गए। अतएव अपने राम ने उनको विदा किया।

अफ़सोस ! जिनके लिए डॉक्टर साहब ने इतना तूफ़ान उठा रक्खा है, वही उन्हे नहीं पतियाते। यह क़िस्मत की ख़ूबी है और कुछ नहीं।

यद्यपि अपने राम को पूर्ण आशा है कि इस समय डॉक्टर साहब चाहे जितना भड़कें, परन्तु अन्त मे उन्हे अड्डे पर आना ही पड़ेगा, क्योंकि बड़े पुराने-पुराने लासेबाज़ उनके पीछे लगे हुए है—कहाँ तक बचेंगे ? साथ ही महात्मा जी का भी तो कुछ पुण्य-प्रताप है। उनके प्राण इतने कमज़ोर और सस्ते नही हैं, जिसे अम्बेदकर साहब ले सकें। परन्तु फ़िलहाल तो अम्बेदकर साहब के बड़े ठाठ है। बच्चे-बच्चे की ज़बान पर डॉक्टर साहब का नाम है। चाहे कोई किसी भाव से नाम ले, मगर लेता तो है। अपने राम तो रश्क़ के मारे बताशे की तरह घुले जा रहे हैं। क्योंकि अपने राम का भी सिद्धान्त यही है कि लोग चाहे गालियाँ ही दें, पानी पी-पी कर कोसें, मगर नाम तो लें ! बदनाम भी होंगे तो क्या कुछ नाम न होगा ?

भवदीय,

—विजयानन्द (दुबे जी)

मुन्सिफ़ साहब के सामने एक ग़रीब आदमी का मुक़दमा पेश था, वह बेचारा बग़ैर वकील के हाज़िर हुआ।

मुन्सिफ़—तुम्हारे वकील नहीं हैं ?

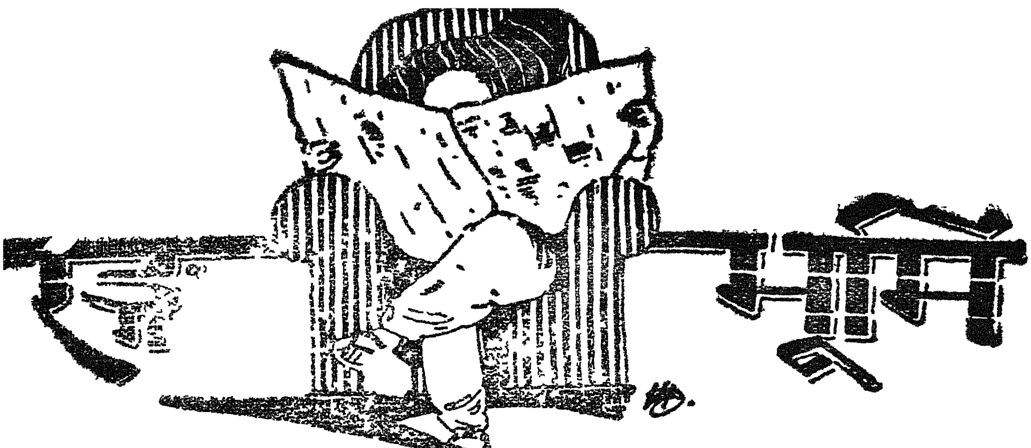
ग़रीब आदमी—जी नहीं, मैं ग़रीब हूँ, कहाँ से वकील लाऊँ !

मुन्सिफ़—"जाओ वकीलघर मे कहना, मुन्सिफ़ साहब ने एक दो रुपए वाला वकील बुलाया है।" ग़रीब आदमी ने ख़ाली लौट कर मुन्सिफ़ से कहा—"वकीलों ने कहा कि दो रुपए वाले वकील तो सब मुन्सिफ़ बन गए।"

बालक ने बूढ़े को प्रणाम किया। बूढ़ा बोला—तुम्हारी उमर बढ़े।

बालक बिगड़ कर कहने लगा—और मैं छोटा ही रह जाऊँ।

लड़का पहले ही दिन स्कूल जा रहा था। पिता ने पूछा—"बेटा, स्कूल से भाग कर तो नहीं आओगे ?" लड़के ने फ़ौरन जवाब दिया—"भाग कर नहीं, धीले-धीले आएँगे ?"



महाकवि शङ्कर जी का महाप्रस्थान

वास्तव मे यह साल हिन्दी-साहित्य के लिए महा अशुभ प्रतीत हो रहा है। क्योंकि अभी इसके छः मास भी नहीं बीते और एक-एक करके हिन्दी के चार महारथी संसार से चल बसे! साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंह शर्मा, महाकवि रत्नाकर जी और पण्डित किशोरीलाल जी के वियोग की विषम व्यथा अभी भूली भी न थी कि बेचारी कविता को अनाथिनी बना कर कविता-कामिनी-कान्त पण्डित नाथूराम जी शङ्कर शर्मा भी परमधाम के लिए प्रस्थान कर गए! उपर्युक्त महारथियो के बाद ही महाकवि शङ्कर जी के निधन से राष्ट्र-भाषा, आर्यसमाज और सुधारक-समाज की जो असीम क्षति हुई है, उसकी पूर्ति कालान्तर मे भी न होगी। शङ्कर जी ने जो बहुमुखी प्रतिभा प्राप्त की थी, वह बहुत कम भाग्यवानो को नसीब होती है। आप कवि थे, वैद्य थे, समाज-सुधारक और कई भाषाओं के प्रगाढ़ पण्डित थे। इन सभी क्षेत्रों में आपने अपनी अलौकिक क्षमता का परिचय देकर जनता की श्रद्धा अर्जित की थी। नागरिक हिन्दी मे ब्रज-भाषा की तरह उपमा-अलङ्कार-युक्त छन्दो की रचना करके आपने कविता-क्षेत्र में नवीन सुधार किया था। चुभता हुआ व्यंग्य-विनोद लिखने में तो आपको कमाल हासिल था। आप अपनी रचनाओं मे नवीन भावो का ही नही, वरन् नवीन शब्दो और नवीन शैली का भी समावेश अद्भुत ढङ्ग से कर डालते थे। पिङ्गल के कठिन नियमों का पालन करते हुए विशुद्ध हिन्दी मे सरस कविताओ की रचना करना आप ही का काम था। धार्मिक और सामाजिक धाँधलियों तथा रूढ़ियो के तो आप कट्टर शत्रु थे और अवसर पाते ही इनकी जड़ो पर अपने तीक्ष्ण व्यंग्य-वाणों की बौछार आरम्भ कर देते थे। 'गर्भरण्डा-रहस्य' और 'वायस-विजय' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। हास्य, व्यंग्य, कवित्व और सुधारक-प्रवृत्ति का एकत्र समावेश पाठक महाकवि शङ्कर जी की ही कविताओ मे पा सकते हैं। शङ्कर जी निर्भीक समालोचक थे। किसी की निन्दा-स्तुति की कोई परवा न कर, उन्हे जो कहना होता था, बरजस्ता कह गुज़रते थे। परन्तु इन तमाम बातो के होते हुए भी शङ्कर जी सहृदयता की मूर्ति थे और मिलने वालो पर अपने सरल स्वभाव की अमिट छाप अङ्कित कर देते थे।

शङ्कर जी का जन्म चैत सुदी ५ स० १९१६ वि० में अलीगढ ज़िले के हरदुआगञ्ज में हुआ था। आपने स्कूल मे केवल मिडिल तक की शिक्षा पाई थी, परन्तु आप अध्ययनशील थे और अध्ययन द्वारा आपने अपनी योग्यता की विशेष वृद्धि कर ली थी। हिन्दी के सिवा, उर्दू और फ़ारसी भी आप अच्छी जानते थे। उर्दू मे ग़ज़लें भी लिखा करते थे। कुछ दिनो तक नहर-विभाग मे नौकरी भी की थी। परन्तु थोड़े दिन के बाद ही उसे छोड़-छाड़ कर वैद्यक करना आरम्भ कर दिया था और आजीवन वही करते रहे। शङ्कर जी ने बहुत सी कविताएँ लिखी है। परन्तु वे सब प्रकाशित नही है। अब तक जो ग्रन्थ आपके प्रकाशित हो चुके है, वे ये है—(१) शङ्कर-सरोज, (२) अनुराग-रत्न, (३) वायस-विजय और (४) गर्भरण्डा-रहस्य। हिन्दी-प्रेमियों का कर्तव्य है कि वे शङ्कर जी की स्मृति मे उनकी सम्पूर्ण कविताओं का एक सर्वाङ्ग सुन्दर संग्रह प्रकाशित करें।

महात्मा गाँधी की भीष्म-प्रतिज्ञा

ब्रिटिश सरकार के प्रधान मन्त्री मि० रामज़े मैकडॉनल्ड ने हाल ही मे जो 'साम्प्रदायिक निर्णय' प्रकट किया था, उसका विरोध भारतीय नेता और सार्वजनिक कार्यकर्ता एक स्वर से कर चुके है। उक्त निर्णय मे हिन्दू और मुसलमानों का पृथक् निर्वाचन क़ायम रखने के साथ ही अछूत कहलाने वाले हिन्दुओं को भी शेष हिन्दुओं से अलग करने की व्यवस्था की गई थी। इसके अनुसार अछूतो को एक के बजाय दो वोटो का अधिकार दिया गया था। एक वोट वे हिन्दुओ के सार्वजनिक चुनाव मे देते और दूसरा वोट अपनी जाति के विशेष प्रतिनिधियो को। यह व्यवस्था यद्यपि मुसलमानो के लिए निश्चित की गई व्यवस्था से कुछ भिन्न थी, पर परिणाम दोनो का एक ही था। जिस प्रकार हिन्दू-मुसलमानों के पृथक् निर्वाचन के फल से गत दस वर्षों मे दोनो जातियो का मतभेद दिन पर दिन बढ़ता गया है, उसी प्रकार अछूतो का पृथक् निर्वाचन होने से वे भी हिन्दुओ से अपने को भिन्न समझने लगते और कुछ ही समय मे हिन्दू-समाज ऐसे दो दलो मे विभक्त हो जाता, जो एक दूसरे को मित्र समझने के बजाय शत्रु समझने लगते। इस व्यवस्था की निन्दा तो सभी हिन्दू नेताओ ने की, पर इसकी वास्तविक गम्भीरता म० गाँधी ने ही समझी और जेल मे बन्द होने के कारण दूसरा कोई उपाय इसके प्रतिकार का न देख कर उन्होने अपने प्राण देकर इसकी तरफ़ देश का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझा। महात्मा जी गत राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स के समय से ही जान गए थे कि यह साधारण दिखाई देने वाली योजना थोड़े ही समय मे महान विष-वृक्ष के रूप मे परिणत हो जायगी और हिन्दू-जाति को ही नहीं, वरं भारत की राजनीतिक आकाक्षाओं को सदियो के लिए नष्ट-प्राय कर देगी। महात्मा गाँधी के उपवास के फल-स्वरूप देश भर मे अछूतो के पृथक् निर्वाचन के सम्बन्ध मे जो चर्चा चल पड़ी है, उससे भी यह पता चलता है कि अछूतों के पृथक् निर्वाचन के प्रधान समर्थक डॉक्टर अम्बेडकर के पीछे कोई बड़ी सम्पत्ति और प्रभाव रखने वाली शक्ति है, जिसका उद्देश्य है अछूतो के इस प्रकार हिन्दुओं से पृथक् हो जाने पर उन्हें अपने मे मिला लेना। यह बतलाना अनावश्यक है कि उक्त बयान मे जिस शक्ति की तरफ़ इशारा किया गया है, वह मुसलमानो की है। यदि मुसलमान छः करोड़ अछूतो को अपने मे मिला लें और हिन्दुस्तान की जन-संख्या दो बराबर के युद्धशील दलों मे बँट जाय तो फिर हिन्दुस्तान मे राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने और जनसत्तात्मक शासन स्थापित करने के लिए कोई ज़बर्दस्त आन्दोलन खड़ा होने की आशा बहुत वर्षों के लिए जाती रहेगी। महात्मा गाँधी अछूतों के पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था मे निहित इस सम्भावना को भली प्रकार समझने वाले सबसे पहले व्यक्ति है और इसीलिए उन्होंने इस सङ्कट से देश और जाति की रक्षा करने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान, जो उनकी शक्ति मे था, करने का निश्चय किया था।

महात्मा जी के लिए इस प्रकार निश्चय करने में किसी तरह की अलौकिकता नहीं है। उनके जीवन का अधिकांश दलितवर्ग की सेवा और उसके उद्धार की चेष्टा मे ही व्यतीत हुआ है और इसके लिए उन्होंने बहुत कुछ कष्ट भी सहा है। यद्यपि कितने ही लोगों को गाँधी जी की उपरोक्त प्रतिज्ञा आकस्मिक जान पड़ी थी, पर वास्तव मे सदा से वे इस प्रश्न को देश और समाज के लिए सब से अधिक महत्व का समझते रहे है और इसके लिए प्राण अर्पण करने का उनका विचार भी बहुत पुराना है। अब से पाँच-छः वर्ष पहले उन्होंने एक लेख मे ठीक यही विचार प्रकट किए थे। (यह लेख मई १९२७ के 'चाँद' मे ९६वें पृष्ठ पर उद्धृत किया गया है।) इस लेख के अन्त मे उन्होंने कहा है :—

"अस्पृश्यता-निवारण के आन्दोलन मे सम्मिलित होने के पहले मैने अपने धार्मिक उत्तरदायित्व को अच्छी तरह सोच-समझ लिया है। एक आलोचक ने यह भविष्य-वाणी की है कि कालान्तर मे मेरे विचार बदल जायँगे! इस सम्बन्ध मे मुझे इतना ही कहना है कि यदि कभी ऐसा समय आएगा, तो उसके पहले मै हिन्दू-धर्म ही नही, ससार के धर्म मात्र का त्याग कर चुकूंगा। परन्तु मेरी यह दृढ़ धारणा है कि हिन्दू-धर्म को पूर्वोक्त कलङ्क से मुक्त करने मे यदि अपना शरीर भी देना पड़े तो भी यह कोई बड़ी बात नहीं है।"

महात्मा जी के कथन के प्रतिवाद मे ब्रिटिश सरकार के अधिकारियो का कहना था कि उन्होंने जो कुछ व्यवस्था अछूतों के सम्बन्ध मे की थी वह उनके हित की दृष्टि से और उन्हे ऊँची जाति के हिन्दुओ के अन्यायो से बचाने के लिए की थी। मि० मैकडॉनल्ड ने महात्मा जी को जो उत्तर दिया था उसमे भी एक जगह लिखा है कि "आपने अनशन करके देहोत्सर्ग का जो निश्चय किया है, वह मेरी समझ मे इसलिए नही है कि अछूतो को अन्य हिन्दुओं के साथ संयुक्त निर्वाचन का अधिकार दिया जाय, क्योकि यह व्यवस्था निर्णय में की जा चुकी है। न इसका उद्देश्य हिन्दुओं की एकता को क़ायम रखना है, क्योकि उसकी व्यवस्था भी हो चुकी है। इसलिए आपके उपवास का यही उद्देश्य हो सकता है कि अछूतो को, जो वर्तमान समय मे निस्सन्देह बडे-बड़े अन्यायो के शिकार हो रहे हैं, अपने थोडे से विशेष प्रतिनिधि चुनने का जो अधिकार दिया गया है—ये प्रतिनिधि उनकी तरफ से भावी व्यवस्था-सभाओं मे बोलगे और उनके भविष्य पर विशेष रूप से प्रभाव डालेंगे—उससे वे वञ्चित हो जायँ।"

इस प्रकार मि० मैकडॉनल्ड ने अपने को अछूतो का सबसे बड़ा मित्र और हितचिन्तक सिद्ध करने की चेष्टा की थी, और म० गाँधी को, जिन्होने उम्र भर अछूतों और पद्दलितो की सेवा की है तथा अछूतोद्धार की भावना का समस्त देश मे बहुत कुछ प्रचार किया है, उनका शत्रु बतलाया था। यही ध्वनि अन्य अङ्गरेज राजनीतिज्ञो के वक्तव्यो से, जो इस सम्बन्ध मे समाचार-पत्रों मे प्रकाशित हुए थे, प्रकट होती थी। पर उन्होंने यह बतलाने का कष्ट नही उठाया कि आख़िर उनको यह पता कैसे चला कि इस व्यवस्था से अछूतों का उपकार होगा और इसे वे पसन्द करते है। अछूतो की सब से बड़ी शिकायत इस समय यही है कि वे ऊँची जाति के हिन्दुओं द्वारा अस्पृश्य माने जाते हैं और उनको कितने सार्वजनिक अधिकारो से—जैसे मन्दिर-प्रवेश, कुँओ से पानी भरना, स्कूल मे पढ़ना, सड़को पर चलना आदि—वञ्चित रक्खा जाता है। ब्रिटिश सरकार का निर्णय इस अछूतपन के भाव को मिटाने की व्यवस्था किस प्रकार करता? केवल थोड़े से प्रतिनिधियो के कौन्सिलो मे जाने से हिन्दू-समाज मे वे नीच से उच्च किस प्रकार समझे जाने लगते? इसके विपरीत इस निर्णय से तो उनका अछूतपन और भी दृढ़, स्पष्ट और अमिट हो जाता और वे इससे तभी छुटकारा पा सकते, जब कि हिन्दू-धर्म को छोड़ कर किसी अन्य धर्म के अनुयायी बन जाते।

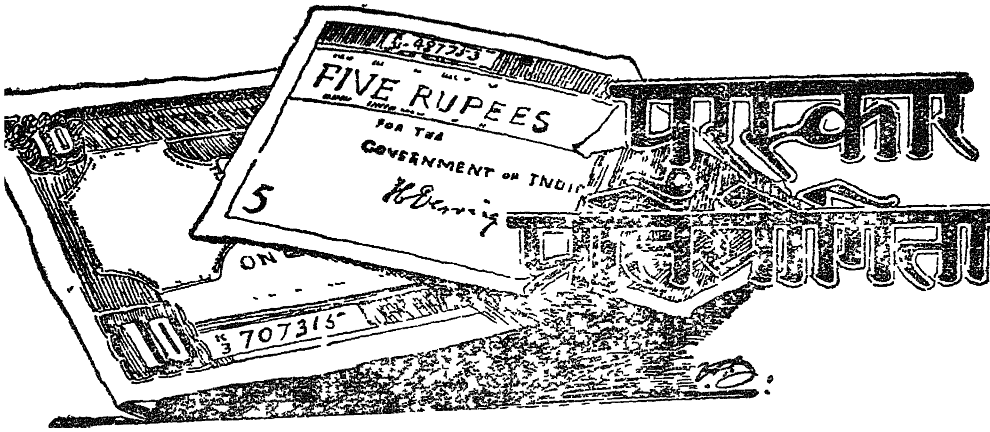
सच तो यह है कि सरकार ने यह निर्णय अछूतों अथवा हिन्दुओ के हित की दृष्टि से नही, वरन् अपने हित की दृष्टि से किया था, जिससे भारतवासियो का सङ्गठन मज़बूत होने के बजाय और भी कमज़ोर हो जाय और वे विभिन्न दलों मे बँट कर आपस में ही विवाद करते रहे तथा सरकार को राजनीतिक अधिकारों के लिए तङ्ग न कर सकें। यदि ऐसा न होता तो कोई कारण न था, जिससे अछूतो के पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था आवश्यक मानी जाती। सायमन कमीशन और लोथियन कमिटी के सामने अधिकांश अछूतों ने संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया था। राउण्डटेबिल कॉन्फ्रेन्स मे जब गाँधी जी और डॉ० अम्बेडकर मे इस सम्बन्ध मे विवाद हुआ तो इस देश में सैकड़ों अछूत-सभाएँ संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में हुई थीं और उनकी तरफ़ से प्रधान-मन्त्री के पास तार भेजे गए थे। अछूतों के प्रधान नेता, श्री० एम० सी० राजा, जो कितने ही वर्षो से उनके प्रतिनिधि की हैसियत से लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सदस्य हैं, और उनकी ऑल-इण्डिया अछूत-एसोसिएशन भी पृथक् निर्वाचन के विरोधी थे। पर इन तमाम बातों पर ध्यान न देकर सरकार ने डॉक्टर अम्बेडकर जैसे व्यक्ति को, जिनका नाम पहले कभी सार्वजनिक क्षेत्र में सुनने में न आया था, न मालूम कहाँ से ढूँढ़ निकाला और अछूतो का सबसे बड़ा प्रतिनिधि क़रार दे दिया और उनकी सम्मति के आधार पर ही इस नई व्यवस्था को जन्म दे दिया। यह एक ऐसी स्पष्ट घटना है, जिससे लोगो को गवर्नमेण्ट की नीयत पर सन्देह होना अकारण नहीं कहा जा सकता।

म० गाँधी की महान प्रतिज्ञा ने देश को बिजली का सा धक्का पहुँचाया और उससे व्यथित होकर छूत और अछूत सभी जातियों के हिन्दू-नेता इस प्रश्न के निर्णय मे संलग्न हो गए। देश भर के अछूत-नेताओ ने म० गाँधी के कथन को सत्य बतलाया और संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया। इस एक सप्ताह के भीतर सैकड़ों व्यक्तियो की रायें—जिनमे बीसियो प्रमुख अछूत कार्यकर्ता है—समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हुई, पर उनमें से एक भी—डॉ० अम्बेडकर को छोड़ कर—संयुक्त

निर्वाचन के विरोध मे नहीं थी। अछूतो की जो सार्वजनिक सभाएँ देश भर में की गईं, उनमें भी किसी ने इसका विरोध नही किया। क्या इन बातो से सिद्ध नहीं होता कि भारत के अछूत ऊँची जाति के हिन्दुओं के अन्यायों को सहते हुए भी उनसे पृथक् होना अपने लिए लाभजनक नही समझते, वरन् उनके साथ रह कर ही अपने अधिकार प्राप्त करना चाहते है।

ऊँची जाति के हिन्दुओं का कर्तव्य इस अवसर पर स्पष्ट है। इसमे कुछ भी सन्देह नहीं कि यह सङ्कटपूर्ण परिस्थिति उनके दोष से ही उत्पन्न हुई है। अछूतोद्धार का प्रश्न नया नही है। राजा राममोहन राय और स्वामी दयानन्द से लेकर महात्मा गाँधी तक सैकड़ों सुधारक वर्षों से अछूतों के प्रति उनके अन्यायपूर्ण और मनुष्यता के विरुद्ध व्यवहार को निन्दनीय बतला चुके है और उनको उसका सुधार करने को समझा चुके हैं, पर उन्होंने इस सम्बन्ध मे अभी तक कोई ठोस कार्य करके नहीं दिखाया। अब भी अछूत मन्दिर-प्रवेश के लिए सत्याग्रह करते हैं। कुएँ ही क्यो, सडको पर लगे नलो से पानी भरने से रोके जाते है और स्कूलों में अपने लड़के भेजने पर गाँवो से निकाले जाते हैं। यह ऐसी परिस्थिति है, जिसके कारण प्रत्येक न्यायशील और समानता के प्रेमी का मस्तक लज्जा से झुक जायगा। आख़िर यह कहाँ का धर्म है कि एक शराबी, कबाबी, वेश्यागामी, अप्राकृतिक व्यभिचार करने वाला ब्राह्मण, पुजारी या पण्डा तो पूजनीय माना जाय और एक ईमानदारी के साथ पसीना बहा कर पेट भरने वाला और सद्गुणी शूद्र छूने लायक़ भी न समझा जाय? कितने ही बड़े-बड़े धर्मगुरु ब्राह्मण जघन्यतम अपराधों के लिए अदालत से सज़ा पा चुके है, पर उनको आज तक किसी ने अछूत क़रार नहीं दिया और न वे सार्वजनिक अधिकारों से वञ्चित किए गए। इसके विपरीत जो शूद्र समाज के अत्यावश्यक कार्यों को करते हैं और जिनका जीवन प्रायः सब प्रकार से सीधा-सादा और आडम्बर-शून्य होता है, वे समाज के पतित अङ्ग बतलाए जाते हैं। यह कितनी बड़ी मूर्खता और अहम्मन्यता की बात है। यह अपने पैरो मे आप ही कुल्हाड़ी मारना है। आश्चर्य यही है कि ऐसे घोर अमानुषिक व्यवहार को सहते हुए भी अछूत आज तक हिन्दू समाज के दायरे मे मौजूद हैं और अब भी उससे पृथक् होना नही चाहते। पर यह दशा अधिक समय तक क़ायम नहीं रह सकती। डॉक्टर अम्बेडकर और उनके सहकारियो का आविर्भाव यह बतला रहा है कि यदि हिन्दू अब भी सचेत न हुए तो वह दिन दूर नहीं है, जब कि अछूत उनसे पृथक् हो जायँगे और उनके सहायक बनने के बजाय उसी प्रकार उनके कट्टर विरोधी हो जायँगे, जिस प्रकार करोड़ो मुसलमान, जिनके पूर्वज किसी ज़माने मे हिन्दू थे और जो हिन्दुओं के मिथ्याभिमान से विधर्मियो की गोद मे चले गए, आजकल हिन्दुओ का विरोध करना ही अपना धर्म समझते है।

यद्यपि उच्च और अछूत जाति के हिन्दू प्रतिनिधियों के आपस मे समझौता कर लेने तथा उस समझौते के ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत हो जाने से गाँधी जी का उपवास समाप्त हो गया है, पर इससे यह समझ लेना कि अछूत-समस्या तय हो गई, बड़ी भूल है। स्वयम् महात्मा जी ने २५ ता० को समाचार-पत्रो के प्रतिनिधियों से कहा है कि "अगर प्रधान-मन्त्री ने समझौते को पूर्णतः स्वीकार कर लिया तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उपवास त्याग देना होगा ××× पर उसी समय से मेरे लिए एक और वास्तविक संग्राम शुरू हो जायगा। ××× मैने अपने मित्रों से कह दिया है कि ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल से सन्तोषजनक उत्तर मिल जाने से उपवास समाप्त तो हो जायगा, पर उसे एक प्रकार का स्थगित होना समझना चाहिए। क्योकि यदि आगामी महीनो मे हिन्दुओ ने इस समझौते मे बतलाई गई शर्तों की भली-भाँति पूर्ति न की तो उपवास का पुनः आरम्भ हो जाना भाग्य की लकीर की तरह निश्चित है।" गाँधी जी के उद्गार पर विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यदि हिन्दू इस कार्य मे ढील करेंगे तो अबकी बार एकमात्र वे ही महात्मा जी के प्राणो के ग्राहक बनगे। हमको पूर्ण आशा है कि महात्मा जी के आत्म-त्याग तथा बलिदान के उदाहरण ने देश मे जो अपूर्व जाग्रति उत्पन्न कर दी है, वह जल्दी ही समाप्त न हो जायगी, वरन् हिन्दू जाति अपने मस्तक से इस घोर कलङ्क को मिटा कर ही चैन लेगी।



इस मास की दो पहेलियाँ

गत मास की तरह इस मास के 'चाँद' मे भी हमने दो पहेलियाँ दी है। प्रत्येक पहेली का ठीक-ठीक उत्तर देने वाले को पच्चीस-पच्चीस रुपए नक़द पुरस्कार दिए जाएँगे। नियम नीचे पढ़िए—

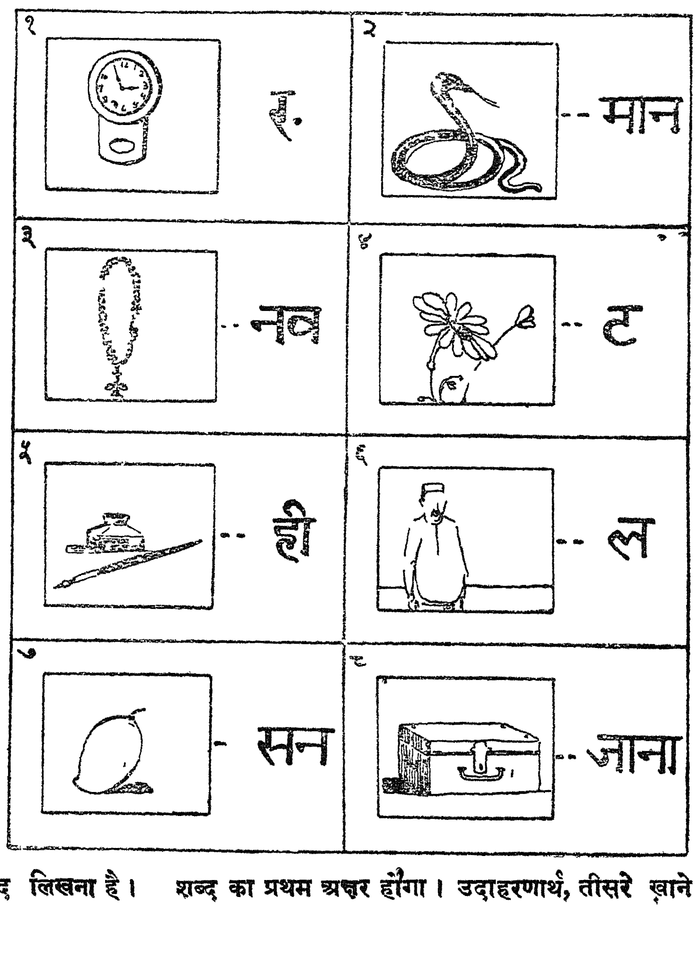
नियम

१—यह प्रतियोगिता 'चाँद' के सभी पाठको के लिए है। जो 'चाँद' के ग्राहक है, उन्हें कूपन पर अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए। जो ग्राहक हैं, उन्हें प्रत्येक पहेली के उत्तर के साथ ।) का और जो ग्राहक नहीं है उन्हे ।।।) का टिकट भेजना चाहिए। बिना टिकट के उत्तरो पर कोई ध्यान नही दिया जाएगा। इस नियम के अनुसार जो चाहे वह एक से अधिक उत्तर भी भेज सकता है। अर्थात् फ़ी उत्तर के साथ इतना टिकट भेजना चाहिए।

२—प्रत्येक पहेली का उत्तर अलग-अलग काग़ज़ों पर आना चाहिए। एक काग़ज़ पर आए हुए उत्तरों पर कोई ध्यान नहीं दिया जायगा।

३—पहेली नम्बर १

इस पहेली मे आठ ख़ाने दिए गए है। प्रत्येक ख़ाने मे पाठकों को एक शब्द लिखना है। शब्दो के कुछ अक्षर तो ख़ानों मे लिखे हुए हैं, परन्तु प्रत्येक शब्द के प्रथम अक्षर के स्थान पर एक चित्र दिया हुआ है। इस चित्र के नाम का प्रथम अक्षर ही ख़ाने के शब्द का प्रथम अक्षर होगा। उदाहरणार्थ, तीसरे ख़ाने



मे 'माला' का चित्र है और उसके आगे 'नव' लिखा है। फलतः इच्छित शब्द 'मानव' होगा।

कूपन (पहेली नं० १)

१		२	
३	मानव	४	
५		६	
७		८	

मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

ग्राहक-नं० ————————

नाम ————————

पूरा पता ————————

————————

————————

४—पहेली नम्बर २

इसमें भाग लेने वाले को नीचे दिए हुए पहेली नं० २ के ख़ानों की पूर्ति करनी चाहिए। सुगमता के लिए एक तालिका भी कूपन के साथ दे दी गई है।

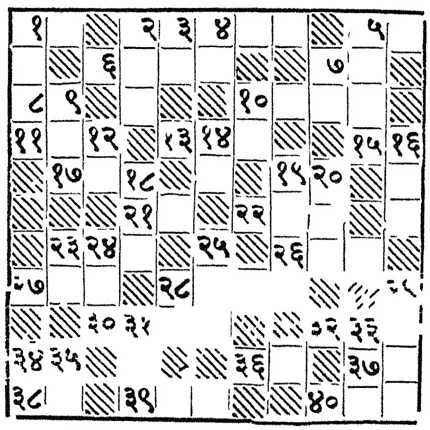
५—पहेलियो के उत्तर हमारे पास आगामी १५ नवम्बर तक आ जाना चाहिए। इसके बाद के आए हुए उत्तर रद्दी की टोकरी के हवाले कर दिए जाएँगे।

६—उत्तर सादे काग़ज़ो पर या दो पोस्ट-कार्डों पर अलग-अलग आने चाहिएँ। परन्तु कृपा करके उत्तर के साथ कोई पत्र न रखिए। उत्तर की एक नक़ल अपने पास रख लीजिए। कटा-छटा या सशोधित उत्तर नियम-विरुद्ध समझा जाएगा।

७—दोनो पहेलियों का या केवल एक ही पहेली का उत्तर देना उत्तरदाता की इच्छा पर है।

८—दोनो पहेलियों के उत्तर हमारे पास रक्खे हुए हैं। जो उत्तर हमारे उत्तर से मिल जाएँगे, उनके प्रेषक को प्रत्येक पहेली के लिए २५) नक़द पुरस्कार दिए जाएँगे। अगर एक से अधिक उत्तर सही आएँगे, तो

कूपन (पहेली नं° २)



मैंने 'चाँद' की प्रतियोगिता के नियम पढ़ लिए हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उनका पालन करूँगा और सम्पादक के निर्णय को स्वीकार करूँगा, तथा इस विषय में कोई पत्र-व्यवहार न करूँगा। (जो इस प्रकार की प्रतिज्ञा न करना चाहें, वे कृपया उत्तर न भेजें।)

ग्राहक-नं० ————————

नाम ————————

पूरा पता ————————

————————

————————

पुरस्कार की रक़मे उत्तरदाताओं में बराबर-बराबर बाँट दी जाएँगी।

९—निर्णय का सम्पूर्ण अधिकार प्रतियोगिता-सम्पादक को है।

१०—चाँद प्रेस लिमिटेड के कर्मचारी इस प्रतियोगिता में भाग नहीं ले सकेंगे।

११—पहेलियों के उत्तर नीचे लिखे पते पर आने चाहिएँ :—

'चाँद' प्रतियोगिता विभाग,
चाँद प्रेस, लिमिटेड
इलाहाबाद

The CHAND Puzzle Deptt ,
The Chand Press, Ltd.,
Allahabad.

तालिका

सीधे (Across)

१—तक़दीर।
२—हिन्दुस्तान।
५—सोने का समय।
६—मौक़ा।
७—साँस की एक बीमारी।
८—घड़ी का अङ्गरेज़ी शब्द।
१०—बुरा समय।
११—समुद्र में पाया जाता है।
१३—सूखा।
१५—अँगूठी पर जड़ा रहता है।
१७—कर्म का अशुद्ध रूप।
१९—बटन के साथ-साथ रहता है।
२१—बोतल बन्द करने के काम आता है।
२२—आग।
२३—बैठने की वस्तु।
२६—पूजा।
२७—शराब।
२८—गवर्नमेण्ट।
३०—नाप।
३२—बहिन का बहुवचन।
३४—मृत्यु।
३६—पत्र जो आपके सामने है।
३७—दूल्हा।
३८—पैर।
३९—ज़ुकाम।
४०—शपथ।

नीचे (Down)

१—ख़ुशनसीब।
२—भाई की स्त्री।
३—नूबू मे होता है।
४—भीगा हुआ।
५—हिन्दुओं का एक धर्म-ग्रन्थ।
७—साँस।
९—बिजली मे होती है।
१०—सब।
१२—हाथ।
१४—कारज।
१६—आकाश।
१८—घर।
१९—एक शहर।
२०—कमल।
२३—प्रारम्भ।
२४—क्रोध मे आकर मुनि-जन दे डालते हैं।
२५—वजह।
२९—रमणीय।
३१—फ़ीता।
३३—लालच।
३४—कोयला सा × ×।
३५—आदत।

अगस्त की पहेली का परिणाम

१—पहेली का सही उत्तर :—

ते	ई	स		सो	ह	न
र	ख		न		ठ	ग
ह		जु	ग	नू		र
	अ	म	र	पु	री	
उ		दो	से	र		प्र
ध	व		ठ		टे	सू
र	ही	म		चि	क	न

२—निम्नलिखित ग्राहकों का उत्तर बिल्कुल सही था, अतः उन्हे 'चाँद' ढाई-ढाई वर्ष के लिए मुफ़्त भेजा जायगा :—

१—श्रीमती लक्ष्मीदेवी मिश्रा, लखनऊ (नम्बर १२०७०)

२—श्री० ख़ुरशेद बहादुर, अजगैन, उन्नाव (नम्बर २७३८६)



एक युवक की सदाकांक्षा

एक सज्जन ने लिखा है :—

एक गान्धर्व-कुलोत्पन्न नवयुवक, जिसकी उमर २४ वर्ष की है और जो सुन्दर, स्वस्थ, सुशिक्षित, सुशील, सदाचारी, व्यापार-कुशल और धनवान है, जिसकी वार्षिक आय एक हज़ार है, प्रतिष्ठित गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करने का अभिलाषी है और अपने ही सदृश गुणयुक्त कन्या के साथ विवाह करना चाहता है। कन्या हिन्दू हो, कुमारी हो या बालविधवा। वेश्या-परिवार की लड़कियाँ भी, जो अपने घृणित जीवन से मुक्त होना चाहती हों, इस अवसर से लाभ उठा सकती है। पत्र-व्यवहार इस पते से करना चाहिए :—

पं० जगदीशनारायण पाण्डेय,
कमङ्गर गली, पटना-सिटी।

❀ ❀ ❀

दृष्टिक्षीणता के प्रतिकार का उपाय

गत मास के 'चाँद' मे उपर्युक्त शीर्षक से एक पत्र छपा था। जिसके उत्तर मे हमारे पास बहुत से पत्र आए है। उनमे से कुछ जो विशेष युक्तियुक्त प्रतीत होगे, आगामी मास के 'चाँद' मे प्रकाशित किए जाएँगे।

—सम्पादक 'चाँद'

❀ ❀ ❀

दो अनाथा लड़कियाँ

महाशय जी, नमस्ते! मैंने दो अनाथा लड़कियों की, जिनमें एक ब्राह्मण की है और दूसरी मूर जाति की, परवरिश की है। दोनो प्रायः आठ-आठ साल की है। परन्तु दुःख है कि अब मै उनका ख़र्च नही चला सकता, इसलिए चाहता हूँ कि वे किसी अनाथालय मे रख कर पढ़ाई जावें और फिर जब बड़ी हो जाएँ तो उनकी इच्छा से उनका ब्याह कर दिया जावे। परन्तु आजकल बहुत से अनाथालय वाले लड़कियाँ लेकर उन्हें बेच देते है। मैं ऐसा नही चाहता। मेरा पता :—

बालकृष्ण राधामोहन,
कटरा अहमदगञ्ज बजाज़ा
फ़र्रुख़ाबाद।

❀ ❀ ❀

रानी साहबा की उदारता

लण्ढौरा राज्य (ज़िला सहारनपुर) की बड़ी रानी साहबा ने अपने एक पत्र में लिखने की कृपा की है—

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते! मेरी पुत्री राजकुमारी कृष्णकुमारी के पास 'चाँद' आता है, मै भी उसे पढ़ती हूँ। वह एक आदर्श तथा उच्च कोटि का समाज-सुधारक मासिक पत्र है। मेरी इच्छा है कि उसमे ईश्वर की महिमा विषयक लेख और कविताएँ भी कभी-कभी छपा करे। इस सम्बन्ध मे जो लेख और कविता अच्छे होगे, उसके लेखक महाशय को मेरी ओर से समुचित पुरस्कार और एक साल तक 'चाँद' मुफ़्त दिया जाएगा।

आपकी,

—राजकुमारी
(सीनियर रानी ऑफ़ लण्ढौरा स्टेट)

श्रीजगद्गुरु का फ़तवा

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

महात्मा गाँधी जी के उपवास आरम्भ करने की ख़बर पाते ही कलकत्ते की काली माई ने अपने दोनो पट्ट खोल दिए। अयोध्या के राम तो पहले ही से भीलनी के जूठे बेर खाकर जात-पाँत खो चुके थे। उन्होने भी अपने दरवाजे से "नो एड्मिशन फ़ॉर अछूत" का पुराना साइन-बोर्ड हटवा दिया। और वह साइनबोर्ड सड़ भी गया था।

❀

'प्राप्तेषु भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजा भवेत्' वाले बाबा जगन्नाथ का 'प्रसाद' (भात) अगर चाण्डाल क्या, कुत्ता भी जूठा कर दे तो वह अपवित्र नहीं होता। परन्तु स्वयं बाबा को अछूतों की नज़र लग जाने का बड़ा ख़ौफ़ रहता है। बात यह है कि ऐसी नज़रों से बचने के लिए उनके भाल पर 'दिठौना' लगाने की भी गुञ्जाइश नहीं। क्योंकि हज़रत के आपाद-मस्तक सारे शरीर की कालिमा स्वयं ही जापानी वार्निश को भी मात कर देने वाली है। उस पर काजल का टीका क्या लगेगा।

❀

ख़ैर, बिहारी नेताओं ने उनके 'गार्जियन्स' के पास ज़रूरी तार भेज कर उन्हे सावधान कर दिया है कि नज़र-गुज़र के बचाव के लिए भले ही बाबा के गले में गण्डे-ताबीज डाल दो, मगर दरवाज़ा सबके लिए खोल दो। अमाँ, इसमे घाटा ही क्या है? कुछ आमदनी ही बढ़ेगी। अछूत ग़रीब हैं तो क्या ठाकुर जी के 'अटका' के लिए कुछ न कुछ दे ही जाएँगे। फलत. इस टाले के ज़माने मे द्वार पर आई हुई लक्ष्मी को ठुकराना भला कहाँ की अक़्लमन्दी है? बेचारे अछूत कुछ ठाकुर जी का झब्बा-झुलनी थोड़े ही उतार लेंगे।

❀

कुछ भी हो, हिज़ होलीनेस को विश्वास है कि जब डॉक्टर अम्बेदकर साहब पसीज गए, तो इन पत्थर के देवताओं को पसीजते कुछ देर न लगेगी। क्योंकि इन्होने न तो किसी 'माइनॉरिटी पैक्ट' पर हस्ताक्षर किया है और न किसी गवर्नर के एडीकाङ्ग से स्वागत ही कराने की अभिलाषा रखते है। हमे जहाँ तक मालूम है, लीडरी का भी उन्हें शौक नही है।

❀

हाँ, बनरसिए विश्वनाथ का नशा ज़रा देर में उतरेगा। क्योंकि भाँग तथा गाँजे के दम के बाद कभी-कभी दो-चार फल धतूरे के भी चाब जाते है! हालाँकि बेचारे जात-पाँत के झगड़े से तो बहुत दिनों से बरी हैं। जिसके माँ-बप्प का ही ठिकाना नहीं, उसकी जात-पाँत क्या?

❀

फलतः, मालूम होता है कि अछूत-दृष्टि-स्पर्श के कारण सारे देव-समाज के पतित हो जाने पर भी ये भङ्गड़ देव अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही उबालते रहेगे। किसी के लडके के साथ उन्हें बेटी थोड़े ही ब्याहनी है। काशी में न छनेगी तो कैलास पर छनेगी, अन्यथा डूब मरने के लिए ज्ञानवापी तो मौजूद ही है।

❀

काली ने अछूतो को अपनाकर समस्या को ज़रा जटिल कर दिया है। गङ्गा तो पहले ही की गई-गुज़री ठहरी। जन्म से ही कभी छुआछूत का विचार न रक्खा। सदा सब धान बाइस पसेरी का व्यापार रहा। बेचारी को न महामहोपाध्याय से प्रेम, न चण्डाल से नफ़रत! इनके लिए तो बस यही कह देना यथेष्ट होगा कि—

उम्र सारी तो कटी इश्के-बुताँ में 'मोमिन',
आख़िरी वक़्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे।

❀

मगर कहावत है कि 'भागे भूत की लँगोटी ही सही!' बाबा विश्वनाथ की जात-पाँत बची रह जाए तो भी ग़नीमत है। दादा, सनातनधर्म उतने से ही सन्तोष कर लेंगे। अपने स्थूल जीवन के इने-गिने अवशिष्ट दिन

बाबा विश्वनाथ के साथ ही भाँग-बूटी छान कर व्यतीत कर देंगे। और न सही, मरने पर कुम्भिपाक के कष्ट से तो बच जाएँगे।

❀

क़यामत के सत्यानाशी तूफ़ान से अपनी ख़ुदाई को बचाने के लिए अल्लाह मियाँ ने भी पहले से ही अपना 'प्लान' बना रक्खा है। इस प्लान के अनुसार, जब क़यामत शुरू होगी तो हज़रत नूह अपनी बड़ी किश्ती में मनुष्य से लेकर मच्छड़ और मतकुण तक के एक-एक जोड़े उठा कर रख लेंगे और उसे लेजा कर हिमालय की सब से ऊँची चोटी से बाँध देंगे।

❀

इसी तरह अछूतोद्धार की आँधी से अपने प्रिय सनातनधर्म की रक्षा के लिए बी काशी भी 'नूह की किश्ती' बनेंगी। इसमें एक जोड़ा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा का, दूसरा पण्डा जी और पण्डाइन जी का और तीसरा जो है सो जाकर कर लो, महामहोपाध्याय और महामहोपाध्याइन जी का होगा। नाख़ुदाई का भार काशी के कोतवाल हज़रत काल भैरव के ज़िम्मे रहेगा और पतवार पकड़ेंगे श्रीजगद्गुरु के उदर-फ़ेलो बाबा ढुण्ढिराज जी!

❀

इस तरह श्रीमती काशीपुरी के उदर-गह्वर मे छिप कर दादा सनातनधर्म तो जीते रह जाएँगे। परन्तु आफ़त में फँसेंगे बेचारे ढुण्ढिराज और हमारे दूसरे 'हम-शिकम' मौलाना शौकतअली साहब। वल्लाह, किसे ख़बर थी कि यह मुट्ठी भर हड्डियों वाला गाँधी एक ही लटके में मौलाना के बरसो के परिश्रम पर पानी फेर देगा। मौलाना ने अपने हृदय के सारे वात्सल्य-स्नेह से अछूतों को ओत-प्रोत करके तथा जल्दी से जल्दी उनकी सुन्नत करके अपने स्वर्गवासी छोटे भैया का सुख-स्वप्न सार्थक कर देने का आयोजन कर डाला था।

❀

ख़ैर, मौलाना चतुर आदमी हैं। आपने इस मौक़े पर गाँधी जी और उच्च जाति के हिन्दुओं को भर पेट कोस कर सारे घाटे की पूर्त्ति कर ली है और साथ ही इस्लाम तथा इस्लामी सभ्यता का भी मुखोज्ज्वल कर दिया है। अब तक अपने राम मौलाना को भोजन-भट्ट ही समझते थे, मगर वल्लाह, आप गाली-भट्ट भी हैं और ऐसे हों भी क्यों नहीं, जब कि आपका लड़कपन ख़ास रामपुर मे बीता है, जिसका नाम लखनौएपन के लिए लखनऊ के बाद ही लिया जाता है।

❀

इस्लाम की बहबूदी और उसके जाहो जलाल की तरक़्क़ी के लिए मुतहरिम मौलाना ने जो दूसरा कमाल अभी हाल मे ही किया है, वह आपका काबुल-यात्रा सम्बन्धी लेख है। इस सवा दो कालम के इस्लामोपयोगी लेख मे वल्लाह, बारह जगह भूरि-भोजन का उल्लेख है। भई, सच तो यह है कि 'पाँच कौर भीतर तब देवता और पीतर!"

❀

हाँ, तो हमारे मौ० महोदर अली फ़रमाते हैं:— (१) भूपाल पहुँच कर नवाब साहब के साथ शब को खाना खाया। (२) देहली पहुँच कर अहबाब का लाया हुआ नाश्ता खाया, (३) लाहौर पहुँचे तो ग़ुलाम रसूल और सालिक ने खाना खिलाया, (४) पेशावर पहुँचे, पानी पीकर रवाना हो गए। (५) जमरूद के क़िले पर वहाँ के अफ़सर ने चाय और खाने की दावत दी, (६) लण्डीकोटल मे भी खाने और चाय की दावत हुई, (७) ख़ाम पहुँचे तो शरबत और पानी पिया, (८) डक्का में एक फ़ौजी-अफ़सर ने तरबूज़ और मिठाई से तवाज़ा की, (९) नमला मे रात को पुरलुत्फ़ खाना खाया, (१०) सुबह को उठे तो पुरलुत्फ़ नाश्ता किया, बहुत से अण्डे, मक्खन, केक, मिठाई, तरबूज़ और ख़मीरी रोटी थी, (११) नौ बजे × × ख़मीरी रोटी और चाय ख़रीदी × × और खाया, (१२) काबुल पहुँचे तो फ़ौरन अङ्गरेज़ी चाय और अफ़ग़ानी खाना खाया।

❀

अफ़सोस, मौलाना यह बताना तो भूल ही गए कि इस लम्बे सफ़र मे कितनी बार पाख़ाने गए और कितनी बार पेशाब किया। अरे, आप हँसते क्यो है। क़सम ख़ुदा की, अगर इसका भी 'फ़ुल डिटेल' मौलाना के क़लम से निकल गया होता तो 'इस्लामी ख़िलाफ़त' के साथ ही अख़बार "ख़िलाफ़त" के पाठकों का आमालनामा भी दुरुस्त हो गया होता। हमे तो रश्क है 'ख़िलाफ़त' के उन सौभाग्यशाली पाठको की ख़ुशक़िस्मती पर जिन्हे ऐसे पुरलुत्फ़ लेख पढ़ने को मिलते हैं और धन्य है, वह समाज जिसके लीडर हैं हमारे ये पेटू दादा!

चाँद

वर्ष १०, खण्ड २

मई, सन् १९३२ से अक्टूबर, सन् १९३२ ई० तक

सम्पादक—

मुन्शी नवजादिकलाल जी श्रीवास्तव

श्री० सत्यभक्त

प्रकाशक—

चाँद प्रेस, लिमिटेड

चन्द्रलोक—इलाहाबाद

वार्षिक चन्दा ६॥)] [छःमाही चन्दा ३॥)

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press, Ltd., by Shrimati Lakshmi Devi, at The Fine Art Printing Cottage. 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad.